

भैनाचार्य-जैनधर्मविवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-  
विरचितयाऽऽचारचिन्तामणि-ध्यास्यया सममकृतं  
हिन्दीयुर्जरभाषाऽनुवादसहितम्-

# आचाराङ्गसूत्रम् ।

( प्रथमो भाग अध्या० १ )

[ पथमः धृतस्कन्धः ]

ĀCHĀRĀNGA SĪTRA

PART

CHAPTE

निबोधक

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यान-  
पण्डित-मुनिश्रीकन्हैयालालजी-महाराज

५ -

प्रकाशक

अ० भा० श्वे० स्या० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुख  
श्रेष्ठि-श्री-शान्तिनाथ-मङ्गलवास-मार्ग-महोदयः

मु० राजकोट

द्वितीय आवृत्ति  
प्रति १०००

वीर संवत्  
१९८७

विश्वम् संवत्  
२०२४

ईस्वीसम्  
१९५८

मूल्यम्-रु० १२-०-०

राजधानी उद्यान

श्री अ. सा. श्रे. स्थानकुवारी  
 वन शास्त्रोद्धार मन्त्रि  
 ठे गरेडिया इमारत, श्रीन लोका  
 पास, राजकोट. (गोरापुर)

★

शील आर्षि प्रत १०००

वीर मंत्र २४८४

विक्रम मंत्र २०१४

श्री देवी मंत्र १६५८

★

• सुप्रस

भयिलाल छगनलाल शाह  
 धी नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस  
 धीकाटा रोड : अमदावाद.

રૂા ૧૦,૦૦૦) આપનાર આદર સુરબ્ધી સમિતિના પ્રમુખા;  
દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ યાંતિલાલ મજાજદાસભાઈ  
અમદાવાદ.

---

---

श्री-वर्धमान-ममलु-सधना आस्थानंश्री

पूज्य आत्मारामल महाराजश्रीये

आपेक्ष

सम्भतिपत्र —

\*

उपरंत

पूज्य श्री वासीदासल महाराज-रचित

जीव सुत्रोनी टीका भाटे तेजोश्रीना मतन्ने

\*

तेमल

कन्य महात्मानो, महाशतीलने, कपतन-पदतिवणा केदेलना प्रीक्षेसरो

तेमल

शास्त्रल आवडोना अक्षिमायो

---

---

जैनागमचारिधि-जैनधर्मदिवाकर-प्रधानाचार्य-पण्डित-मुनि-  
श्रीमदात्मरामजीमहाराजानाम् आचाराङ्गसूत्रस्याचार-  
चिन्तामणिटीकायां

### सम्मतिपत्रम्

श्रीमल्लबधसपर्याचार्यवर्यघासीलालजित्कृता श्रीमदाचाराङ्गसूत्र-  
प्रथमाध्ययनस्याचारचिन्तामणिवृत्तिः साकल्पेनोपयोगितापूर्वक कर्णकुह-  
रीकृता, वृत्तिरिय न्यायसिद्धान्तोपेता व्याकरणनियमोपनिबद्धा, तथा च  
प्रासङ्गिकरीत्या अन्यसिद्धान्तसङ्ग्रहोऽप्यस्यां याथातथ्येनाभासत एव,  
अपि च निखिला अपि विषयाः सम्यग् व्यक्तीकृता लेखकेन, विशेषण  
प्रौढविषयाणां स्फुटतया गीर्वाणवाण्यां प्रतिपादनम् अधिकतरं मनो-  
रञ्जकम् । अत आचार्यमहोदयो धन्यवादमर्हतीति ।

आशासे जिज्ञासुमहोदया अस्याः सम्यग् अध्ययनेन जैनागम-  
सिद्धान्तपीयूषं पायं पायं मनोमोद विधास्यन्तीति । अस्याः परिशीलनेन  
चतुर्णामनुयोगानां परिचय प्राप्तुवन्तु सज्जनाः । अथ आचार्यमहोदया  
एवमेवान्येषामपि जैनागमानां विशदव्याख्यानेन श्वेताम्बराणां स्थानक-  
वासिनां महोपकृतिं विधाय यशस्विनो भविष्यन्तीति ।

पञ्चनदप्रान्तान्तर्वर्ति-लुधियानामण्डल-स्थानकवास्तव्यो जैनमुनि-  
रुपाध्याय आत्मारामः ।

विक्रमाब्दः २००२, मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपत्, शुभमस्तु ॥

જૈનાગમવારિષિ-જૈનધર્મદિવાકર પ્રધાનાચાર્ય પરિહત-  
મુનિશ્રી આત્મારામજી મહારાજ ( પબળ ) ના જો  
આચારામસૂત્રની આચારચિતામણિ ટીકા પર આપેલ

## સમતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ

મે પૂજ્ય આચાર્યવર ધાસીલાલજી (મહારાજ) ની જનાવેલ શ્રીમદ્ આચારાંજ સૂત્રના પ્રથમ અધ્યાયની આચારચિતામણિ ટીકા સમ્પૂર્ણ ઉપયોગ પૂર્વક સંભળી.

આ ટીકા ન્યાય સિદ્ધાંતથી મુક્ત, આકરણના નિષમથી નિવૃત્ત છે તથા જોમા પ્રસંગે પ્રસંગે કમથી અન્ય સિદ્ધાંતોનો સંબંધ પણ ઉચિતરૂપથી જણાઈ આવે છે.

ટીકાકારે અન્ય તમામ વિષયો સમ્યક્ પ્રકારથી સ્પષ્ટ કરેલ છે તેમજ પ્રોહ વિષયોનો વિશેષરૂપથી સંસ્કૃત-આચાર્ય સ્પષ્ટતાપૂર્વક પ્રતિપાદન કરતિ મનો રચક છે જે માટે આચાર્ય મહોદય જરૂર જન્યવાદને ખત્ર છે.

હું આચાર્ય રાણુ જી કે જિજ્ઞાસુ મહોદયો જોતા સારી રીતે પઠન પઠન દ્વારા જૈનાગમ સિદ્ધાંતરૂપ અમૃત પીધ પીધને મનને જ્ઞાનહિત કરે અને તેના મનનથી રક્ષાનો વાર જનુયોગોત્તુ સ્વરૂપજ્ઞાન મેળવે.

તથા આચાર્યવર આવી જ રીતે બીજા પણ જૈનાગમોના સ્પષ્ટતાપૂર્વક વિવેચન દ્વારા શ્રવેતાંજર સ્થાનકજાસી સમાજ પર મહાન ઉપકાર કરીને વસાસ્વી બને.

વિ. સ ૨૦૦૨  
માગસર સુદી ૧

જૈનમુનિ-ઉપાધ્યાય આત્મારામ  
હુમિયાના ( પબળ )  
શુભમસ્તુ

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-प्रधानाचार्य-पण्डित-मुनि-  
श्रीमदात्मरामजीमहाराजानाम् आचाराद्गसूत्रस्याचार-  
चिन्तामणिटीकायां

### सम्मतिपत्रम्

श्रीमल्लवधसपर्याचार्यवर्यघासीलालजित्कृता श्रीमदाचाराद्गसूत्र-  
प्रथमाध्ययनस्याचारचिन्तामणिवृत्तिः साकल्येनोपयोगितापूर्वकं कर्णकुह-  
रीकृता, वृत्तिरियं न्यायसिद्धान्तोपेता व्याकरणनियमोपनिबद्धा, तथा च  
प्रासङ्गिकरीत्या अन्यसिद्धान्तसङ्ग्रहोऽप्यस्यां याथातथ्येनाभासत गद्य,  
अपि च निखिला अपि विषयाः सम्यग् व्यक्तीकृता लेखकेन, विशेषण  
प्रौढविषयाणां स्फुटतया गीर्वाणवाण्यां प्रतिपादनम् अधिकतरं मनो-  
रञ्जकम् । अत आचार्यमहोदयो धन्यवादमर्हतीति ।

आशासे जिज्ञासुमहोदया अस्याः सम्यग् अध्ययनेन जैनागम-  
सिद्धान्तपीयूषं पायं पाय मनोमोदं विधास्यन्तीति । अस्याः परिशीलनेन  
चतुर्णामनुयोगानां परिचय प्राप्तुवन्तु सज्जनाः । अथ आचार्यमहोदया  
एवमेवान्येषामपि जैनागमानां विशदव्याख्यानानि श्वेताम्बराणां स्थानक-  
वासिनां महोपकृतिं विधाय यशस्विनो भविष्यन्तीति ।

पञ्चनदप्रान्तान्तर्वर्ति - लुधियानामण्डल-स्थानकवास्तव्यो जैनमुनि-  
रुपाध्याय आत्मारामः ।

विक्रमाब्दः २००२, मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपत्, शुभमस्तु ॥

# सम्मतिपत्र

( मापान्तर )

श्रीश्रीरनिर्वाण स० २४५८ आसोत्र

शुक्ल १५ ( पूर्णिमा ) शुक्रवार छविाना

मैंने और पंडितमणि हेमचन्द्रजीने पंडितरत्नमणिश्री घासोलाल जीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसजीवनी नामक टीका पंडित मूलचन्द्रजी ग्यामसे आण्योपात्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली-अच्छी बनी-है। मध्य यह गृहस्थोंके तो जीवमदात्री-सयमरूप जीवनको देनेवाली-ही है। टीकाकार ने मूलसूत्र के भाषको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा भाषकका सामान्य धर्म क्या है ? और विशेष धर्म क्या है ? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्यादावका स्वरूप, कम-पुरुषार्थ-वाद और भाषकोंकी धर्मके अन्दर दृढता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें मलीर्माति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा स्पष्ट झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे अमण भगवान महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजहाली पर था और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुंचा इस विषयका तो ठीक बिना ही बित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंको भी पूरा लाभ होगा क्योंकि टीका संस्कृत है, उसकी सरल हिन्दी कर दी गई है। इसके पढ़नेसे कर्माकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका यह काय परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भाषसे पढ़ने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें ! भाषकों ( गृहस्थों ) का तो यह सूत्र भवस्व ही है अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें भाषक के धारद नियम प्रत्येक पुरुषके पढ़ने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है, तथा अहितय्यतायाद और पुण्यकार



जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामी  
 महाराज तथा न्यायन्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७  
 श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ  
 श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

### सम्मइवत्तं

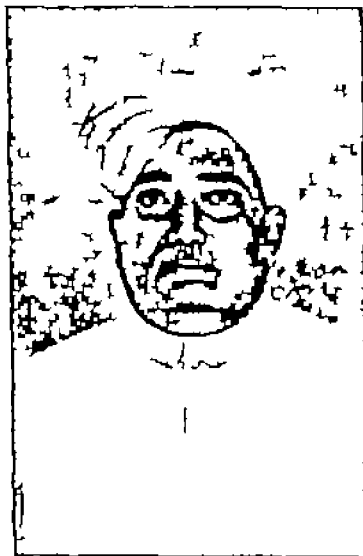
सिरि-वीरनिव्वाण-सवच्छर २४५८ आसोई  
 ( पुण्णमासी ) १५ सुक्कारो लुट्टियाणाओ ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-वासीलालविणिम्मिया सिरिउवा-  
 सगमुत्तस्स अगारधम्मसंजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंत  
 सुया, समीईणं, इयं वित्ती जहाणामं तहा गुणेवि धारेड, सच्चं अगाराणं तु इमा  
 जीवण ( संजमजीवण ) दाई एव अत्थि । वित्तिकत्तुणा मूलमुत्तस्स भावो उज्जु-  
 सेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामण्विसेसधम्मो, णयसियत्रायवाओ,  
 कम्मपुरिसट्टवाओ, समणोत्रासयस्स धम्मदहया य, इच्चाइविसया अस्सि फुडरीइओ  
 वण्णिया, जेण कत्तुणो पडिहाए सुट्टुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि  
 सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाणभरहवासस्स य कत्तुणा विसय-  
 प्पयारेण चित्त चित्तिय, पुणो सक्कयपाढीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए  
 भासीग य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्जं  
 परमप्पससण्णिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव  
 लाहप्पयं, अवि उ सावयस्स तु ( उ ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो  
 अणेगकोडिसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अवंतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमो-  
 वयारो कडो, अह य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि,  
 जेसिं पढावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ  
 पुरिसकारपरकमवाओ य अवस्समेव दसण्णिज्जो, किंवाहुणा इमोए वित्तीए पत्तेय-  
 विसयस्स फुडसहेई वण्णणं कयं, जइअनोवि एवंअम्हाणं पमुत्तप्पाए समाजे विज्जं  
 भवेज्जा तथा नाणस्स चरित्तस्स तहा सधस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं ह मन्ने॥

मवईओ-

उवज्झाय-जइणमुणि-आथाराम-पंचनईओ,

ક્ર. નં ૦૦) આપનાર આપે સુરજીશી



શ્રી ઠાણીદાસ વારીયા  
ભાણુવડ.

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहां तक कहें, इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताया गया है। हमारी सुसंप्राय (सोई हुई सी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान, चारित्र तथा श्रीसधका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्मराम पंजावी.



इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८  
श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी  
महाराजके दिचे हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके  
प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज-कृत श्री उपासकदशाङ्ग  
सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका  
अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने बड़े परिश्रम व पुरुषार्थसे  
तय्यार किया है, सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्ति-  
योकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके  
विद्वान् साधुवर्ग पढ़ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढ़नेसे हमको  
अत्यानन्द हुआ, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी  
समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे  
लिये बड़े गौरवकी बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन  
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.



श्री हाताधर्मकबाहुसूत्र की 'अनगारधर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर  
 जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य भद्रेश्वर  
 जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका  
 सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म० द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत-वर्षिणी'  
 टीका वाले श्री हाताधर्मकबाहु सूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आघोषान्त  
 भक्ष्य किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी  
 म० ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन  
 स्थलों पर सार-पूर्व विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलों को  
 सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी  
 संस्कृत पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे हृदिकारके परिश्रम  
 को सफल बना कर छात्रमें दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित  
 करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।



श्रीमान्जी जयधीर

आपकी सेवामें पोष्टद्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की  
 जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं, पहुँचने पर समाचार दें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म० ठामे ६ कुम्भशान्तिसे बिराजते हैं।  
 पूज्य श्री घासीलालजी म० सा० ठामे ४ को हमारी ओरसे पदना बर्जकर  
 सुनसता पूर्ण।

पूज्यश्री घासीलालजी म० जीका छित्वा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी  
 देखना चाहते हैं। इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस  
 भेज देंगे। आपके पास नहीं हो तो जहाँसे मिले वहाँसे १ कापी बरकर भिज  
 जाने का कष्ट करें, ठपर बन्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवेदक

प्यारेलाल जैन



जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि  
श्रीआत्मारामजी महाराज ( पंजाब ) का आचाराङ्गसूत्र की  
आचारचिन्तामणि टीका पर

### सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री घासीलालजी ( महाराज )की यनाई  
हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका  
सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी ।

यह टीका, न्यायसिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध  
है । तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित  
रूप से मालूम होता है ।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं,  
तथा प्रौढ विषयोंका विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक  
प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवादके  
पात्र हैं ।

मैं आशा करता हूँ कि जिज्ञासु महोदय इसका भलीभांति  
पठन-द्वारा जैनागमसिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को  
हर्षित करेंगे, और इसके मनन से, दक्ष जन चार अनुयोगों का  
स्वरूपज्ञान पावेंगे । तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमोंके  
विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उप-  
कार कर यशस्वी बनेंगे ।

वि. स. २००२

मृगत १

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम

लुधियाना (पंजाब). शुभमस्तु ॥

\*

वीकानेरवासी समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठियाका अभिप्राय-

\*

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है ।  
इससे जैनजनताको काफी लाभ पहुंचेगा ।

( ता २८-३-५६ के पत्रमेंसे )

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिषि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्यश्री आत्मारामजी-

महास्राजानां पञ्चनद-(पंजाप) स्वानामनुचरोपपातिकसूत्राणा-

मर्षयोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

भाषार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुचरोपपातिकसूत्राणामर्ष  
 बोधिनीनाम्नी सस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वकं सफलान्पि स्वच्छिव्यमुखेनाऽभाषि मया, इयं  
 हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति । श्रीमन्निर्मुनिभिः सूत्राणामर्षान् स्पष्टयितुं  
 यः प्रयत्नो व्यषायि तदर्थमनेकश्रो प-पचादानईति च । यथा वेयं वृत्तिः  
 सरला सुबोधिनी च तथा सारकस्यपि । अस्या स्वाध्यायेन निर्वाणपदममीप्सु-  
 मिर्निर्वाणपदमनुसरन्निर्वाण-दर्शन-चारिष्ये प्रयतमानैर्मुनिभिः भाषकैश्च ज्ञान-  
 दर्शन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

भाषासे श्रीमदाशुक्रविर्मुनिवरो गीर्वाणभागीशुभां विदुषां मनस्तोपाय  
 जैनाममसूत्राणां सारावबोधाय च अन्वेषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः  
 सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देशगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च “ मुनिवरस्य परिभ्रमं सकलयितुं सरलां सुबोधिनीं वेदां  
 सुप्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाययिष्यन्त्येकस्यं सुयोग्या ईसनिमाः पाठका ”  
 इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२ }  
 भाषणकृष्या प्रतिपदा }  
 लुधियाना }

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः

(श्री दशकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥श्री वीरगौतमाय नमः ॥

### सम्मतिपत्रम्

मए पंडितमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मृलचन्द्रवासवारा पत्ता  
पंडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सक्कय-हिन्दी-भापाहिं जुत्ता  
सिरि-दसवेयालिय-नामसुत्तस्स आयारमणिमजूसा वित्ती अवलो-  
इया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सहाणं अइसयजुत्तो अत्थो  
वण्णिओ, विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती  
दीसइ। आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्वं उल्लेहो कडो,  
तहा अहिंसाए सरूवं जे जहा-तहा न जाणति तेसिं इमाए वित्तीए  
परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णणं  
कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय-  
जुत्ता सिज्जइ। सक्कयइया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुबोहदायगो  
अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दइव्वा। अम्हाणं समाजे  
एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सन्भावो समाजस्स अहोभगं अत्थि, किं  
उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ, जो अम्हाण समाजो सुत्तप्पाओ  
अम्हकेर साहिन्च च लुत्तप्पायं अत्थि, तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ ?  
जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो  
निव्वाण पाविहिइ। अओह आयारमणिमंजूसाए कत्तुणो पुणो  
पुणो धन्नवायं देमि- ॥

वि स. १९९० फाल्गुन } ३३-  
शुक्लत्रयोदशी मङ्गले } उवज्जाय जइण-मुणी, आयारामो  
(अलवरस्टेट) } (पंचनईओ)

ऐसे ही :—

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी  
श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टि-  
गत हुआ, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है, यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग-  
सुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है।



૩૧ ૫૨૫૧) આપનાર આઘ મુરબીમી



કોમરી હરજો વિદલાઈ જે ચા હ  
રાજકોટ.

निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र  
 भाममनाराधि-सर्वभन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य पूज्यश्री  
 आत्मारामश्री महाराजकी तरफका भाषा हुआ  
 सम्मतिपत्र

छथियाला ता ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबन्दजी पानाबंदजी ! सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयावलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्त्य  
 ठीक न होनेसे उनके शिष्य पं श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र  
 लिख दिया है, आपको भेज रहे हैं, कृपया एक कोपी निरयावलिका की  
 और भेज दीजिये, और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ।।

मधवीय

गुजरमल-बख्शतराय जैन

॥ सम्मति ॥

( लेखक जैनमुनि पण्डित श्री हेमचंद्रजी महाराज )

सुन्दरशोचिनीटीकया समलङ्कन हिन्दी-गुर्जर-भाषानुयादमहितं च  
 श्रीनिरयावलिकासूत्र मेधाधिनामन्यमेपसां शोपकारकं भविष्यतीति  
 सुहृद् मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकयं मरला सुषोषा सुललिता चात ण्य  
 अन्वर्थनाम्नी आप्यस्ति । सुविशदत्त्वाम् सुगमत्त्वान् प्रपैकदुर्बोधपद-  
 ध्यातव्यायुतस्वाय गैकैषा संकृतसाधारणज्ञानयतामप्युपयोगिनी  
 भाषिनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुयादावपि एतद्भाषाविज्ञानां  
 महीयसे एवमाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मविधाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराजानां  
 परिभ्रमोऽय प्रनांसनीयो, धन्यवादादांश्च ते मुनिमत्तमा । एवमेव श्री-  
 ममीरमल्लजी-श्रीक इलालजी-मुनियरेण्ययोर्भियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं,  
 तावपि च मुनियरौ धन्यवादाहो म्मः ।

सुन्दरप्रस्तापनायिष्यपस्तुक्तमदिना समलङ्किते सूत्ररत्नजिस्मिन् यदि  
 शब्दकोषोऽपि दत्त स्यात्सहि परतर स्यात् । एतोऽस्यावश्यकतां  
 सर्वेऽप्यन्वयकथिर्गामोऽनुभवन्ति ।

पात्रका सूत्रम्याध्ययनाप्यापनेन लेखकनिर्भोजकमद्बोदयानां परि-  
 भ्रम सकलपिप्यन्तीत्याशाम्भे । इति ।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-  
तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूं ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की है,  
वारतव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत  
आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढा  
सकते हैं । ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं । ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्र-  
काशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव  
करती हुई, महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति  
में अग्रसर होती रहेगी ।



ता. २९-११-३६

अम्बाला ( पंजाब )

पत्र आपका मिला । श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-  
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया । आपकी भेजी हुई  
उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई ।  
दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं ।  
ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है । इन पुस्तकों  
से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है । आपका यह पुरुषार्थ  
सराहनीय है ।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

શ્રી ૫૦૦૧૫ આપનાર આદ્ય મુસ્લિમી



(૧૫.) શ્રી ૬ ધારસીભાઈ અબલુભાઈ  
સોલાપુર

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैनसमाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण  
महान् विद्वान् संतोए तेमज विद्वान् श्रावकोए सम्मतिओ समपीं  
छे, तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे-

- (१) लुधियाना-संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिमाका पत्र, श्रुतज्ञान के  
भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री  
आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य  
श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज.
- (२) लाहौर-वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित श्री  
१००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७  
श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.
- (३) खीचन-से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८  
श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.
- (४) बालाचोर-ता १४-११-३६ का पत्र, परमप्रसिद्ध भारतरत्न श्री  
१००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचदजी महाराज.
- (५) बम्बई-ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री  
कवि नानचंद्रजी महाराज.
- (६) आगरा-ता. १८-१२-३६, जगत्-बल्लभ श्री १००८ जैनदिवाकर  
श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी  
श्री प्यारचन्दजी महाराज.
- (७) हैद्राबाद-(दक्षिण) ता. २५-११-३६ का पत्र, स्थविरपदभूषित  
भाग्यवान् पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज, तथा प्रसिद्धवक्ता श्री १००७  
श्री सोभागमलजी महाराज.
- (८) जयपुर-ता. २७-११-३६ का पत्र, संमदाय के गौरववर्धक शांत-  
स्वभावी श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज.
- (९) अम्बाला-ता. २९-११-३६ का पत्र, परमप्रतापी पंजाबकेशरी श्री  
१००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

- (१०) सेखाना-ठा २९-११-३६ का पत्र, कासोके डाता श्रीमान्  
रवनलालजी बोसी
- (११) खीचन-सा ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ मुभाबक  
श्रीशुक् माधवलालजी

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासकदर्शांग सूत्र तथा पत्र मिला यहाँ विरा  
जित प्रवर्तक धयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री  
किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं  
आपके यहाँ विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री  
घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी धन्ना भज कर  
सुख शांति पूर्ण, आपने उपासकदर्शांग सूत्र के विषय में यहाँ  
विराजित मुनिवरों की सम्मति मंगाई, उसके विषय में वक्ता  
श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी  
समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज भोजूद हैं मगर जैनशास्त्र  
की वृत्ति रखनेका साहम जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा  
अपने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त  
उपयोगी तो यों है ही, संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने से  
चारों भाषा घाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैनसमाज  
में ऐसे विद्वानों का गौरव बढ़े, यही शुभ कामना है। आशा है कि  
स्थानकवासी सब विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य दिवसे शेष शुभ

मधवीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री जैनविद्याकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोपमलजी  
महाराज व पंडितरत्न मुख्याध्यायी गणीजी श्री प्यारचण्ड जी  
महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खाँचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की है, वारतव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा सकते हैं । ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं । ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव करती हुई, महावीर के असूत्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी ।



ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला । श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया । आपकी भेजी हुई उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई । दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं । ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है । इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है । आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है ।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

શ્રી ૫૦૦૧૭ આપનાર આદ્ય સુરભીશી



(સ.) શ્રી ધારસીભાઈ જીવણભાઈ  
સોલાપુર



शान्तस्वभावी बैराम्यमूर्ति तत्ववारिधि, धैर्यधान भी जैनाचार्य पूज्यवर भी श्री १००८ श्री स्वचंदजी महाराज साहेबने सप्त भी उपासकदशास्त्री को देखा। आपने फरमाया कि पंडित मुनि भी घासीलाछी महाराज ने उपासक-दशास्त्र सप्तकी टीका भिन्नेमें बड़ा ही परिभ्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सप्तोंकी संक्षोभनपूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होनेसे समाजान निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रसका काम मिल सकता है।



बासाणोर से भास्वरल दयावधानी पंडित मुनि भी १००८ श्री रत्नचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि—

उत्तरोत्तर जोतां मूस्मूअनी संस्कृत टीकाओ रचबामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास क्योँ छे, जे स्थानक्यासी समाज माटे मगरूरी लेबा जेहुँ छे, बळी करीपीना भी संघे सारा कागळ्मां अने सारा टाईपमां पुस्तक उपाधी प्रगट क्योँ छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बनाबी छे



बम्बई शहरमें बिराममान कवि मुनि भी मानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।



स्त्रीजन से स्वर्णित क्रियापात्र मुनि भी रत्नचन्दजी महाराज और पंडित रत्न मुनि भी समर्पणबन्धी फरमाते हैं कि—विद्वान् महाराज्य पुस्तकों का प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम भीमद उपासकदशास्त्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधिनी शुद्ध हिन्दी भाषा बनी ही सुंदरता से भिन्नी है।



श्री वीतरागाय नमः ।

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जै-  
नाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर  
शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो ऐसा  
कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्यने  
नहीं किया ।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह  
कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना  
करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनीको उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान  
करें ता कि आप जैनसमाज से ऊपर और भी उपकार करते रहें, और  
आप चिरञ्जीवी हों ।

हम हैं आपके मुनि तीन  
मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन,

## इतपारी बाजार

मागपुर ता १९-१९-५६

प्रभार विद्यान् जेनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्वारा हुआ और हो रहा है सचमुच महाराम श्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कई मार्मिक स्थलोंको पढ़ा, पढ़ कर विद्यान् मुनिराजजी की शुद्ध भद्रा तथा छेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पड़ी।

वास्तवमें मुनिराम श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा छापकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाजका नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रखना ना रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घरमें होना आनश्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि अम



# શ્રી દશવૈકલિક સૂત્રનું સમ્મતિપત્ર

શ્રમણ સઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતંત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

\*

મે તથા પડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પડિત મુલચંદ વ્યાસ (નામૌર મારવાઢવાલા) દ્વારા મળેલી પડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુદર બની છે તેમા પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમજાવવામા આવેલ છે

તેથી તે વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાવાળી છે ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો ઉલ્લેખ સારો કરેલ છે. જે આધુનિક-મતાવલખી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણુતા, દયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શું વસ્તુ છે' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે. વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે

આ વૃત્તિમા એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદચ્છેદ સુબોધદાયક બનેલ છે

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ. વધારે શું કહેવું? અમારી સમાજમા આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુમપ્રાય-સુતેલો સમાજ અને હુમપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે અને વૃત્તિકારને વારવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સવત ૧૯૬૦ ફાલ્ગુન શુકલ  
તેરસ મગળવાર  
(અલવર સ્ટેટ)

} ઈતિ  
ઉપાધ્યાયજૈનમુનિ આત્મારામ  
(પંજબી)

ક્રમણ સવના પ્રચારમત્રી પબ્લિકેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદલ  
મહારાજ લેખોશ્રી શબ્દકોશમાં પધારેલ હતાં ત્યારે તેઓના તરફથી યાજ્ઞોને  
માટે મળેલો અભિપ્રાય.

\*

યાજ્ઞોદારઅમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રચારિણિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી  
વાસીલાલ મહારાજ દ્વારા યાજ્ઞોદારજી જે કાર્ય ચર્ચરજી છે તે કાર્ય લેનસમાજ  
તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીલેનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતની  
જાહેર મંજુર કરવાવાળું છે

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રથમનીય છે માટે દરેક અખિલજે તેમાં  
યથાશક્તિ લોગ દેવાની ખાસ આજ્ઞાવ્યતા છે અને તેથી જો લગીરમ કાર્ય જલ્દીથી  
જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા મુતશાનનો લાભ મેળવી શકે

\*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઈશ્વરલાલ મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સ બ ષ વિચારો

નમામિ વીર જિજિશારધીર

પૂજ્યપાદ સાનિમયર શ્રી વાસીલાલ મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનેજલાલ  
મહારાજ આદિ શાસ્ત્રા ણી સેવામાં—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપગ્રમથી મુનિ દવાનદલના ૧૦૮ પ્રશ્નિપાત.

આપ સવે શાસ્ત્રાઓ મુજ સમાધિમાં હશે નિરતર ધર્મજ્ઞાન ધર્મસ-  
ધનામા લીન હશે.

સુત પ્રકાશન કાર્ય તસ્મિં લાભ જોવી ભાવના છે દર્શવેદાલિક તથા  
આચારાંજ જ્યે જ્યે ભાગ અહીં છે, ટીકા પુન મુદર, સરજ અને અર્થ શાષે પ્રકા  
શન વાચ તે આવકજણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે, અને પૂજ્ય આચાર્ય શુદ્ધવેવને  
આંજો મોતીશો ઉતરાઓ છે અને આર છે એવ

આસો સુદ ૧૦, મગજવાર, તા. ૨૫-૧૦-૧૫

પુન પુન શાતા ઈચ્છતો,  
શ્યામુનિદ પ્રશ્નિપત.

\*

દરિયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઈચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય  
શ્રી

ગાગુપુર તા. ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિત્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિ  
મુનિવરોની મેવામા, આપ સર્વ સુખસમાધીમા હુશે.

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુદર થઈ રહ્યું છે તે વાજી અત્યંત આનંદ આપના  
પ્રકાશિત થયેલાં કેટલાક સૂત્રો મેં જોયા. સુદર અને મગ્લ મિદ્ધાનના ન્યાયને પુષ્ટિ  
કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને મુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે મૂત્રપ્રકાશનનું કામ  
ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામા આધનભૂત  
થાય એજ અભ્યર્થના

લી. પંડિતરત્ન બાળપ્રદાયારી  
૫૦ શ્રી ભાઈચંદ્ર મહારાજની  
આજ્ઞાનુચિત્તે શાન્તિમુનીના  
પાયવદન સ્વીકારશે

\*

તા. ૧૧-૫-૫૬  
વિરમગામ

ગરુડાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના  
આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ધૃત.

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુદર  
અને સરળ ભાષામા થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ  
સમય ઓછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શક્યા નથી છતાં જેટલું સાહિત્ય  
જોયું છે, તે બહુજ સારૂ અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને  
અનુરૂપ લાગે છે આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાચવા યોગ્ય છે આમા  
સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસણાની દૃઢતા શાસ્ત્રાનુરૂપ છે.  
આચાર્યશ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે

લી. કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.  
સુ ખીચન

\*



કરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશકત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ઠઠ અસ્તુ.

ચાતુર્માસ સ્થળ લીબડી } લી.  
સ. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ } સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

\*

### શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિદ્યા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાયું છે, આગમો ઉપરની તેમની સસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ધણી જ સુદર છે સસ્કૃતરચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી સુક્ત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ.

આ મહાન કાર્યમા પડિતરત્ન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમણે આગમ ઉપરની સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ }  
તા ૨૨-૪-૫૬ સ્વીવાર } મુનિ પુનમચંદ્રજી  
મહાવીર જ્યોતિ

\*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય  
લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલબાઈ મગળદાસબાઈ.

પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત પ્રવેં સ્થાં જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

સુ અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ. વિ. મા આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીના સૂત્રોમાથી ઉપાસકદશાંગસૂત્ર, આચારાગસૂત્ર, અનુત્તરોપપતિકસૂત્ર



દશવેદાલિહસુત્ર વિવેર સૂત્રો જોમાં તે સૂત્રો સરકૃત દિન્દી અને સુલ્યાલી  
ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને વધુ જ લાભદાયક  
છે તે વાંચન વધુ જ સુદર અને મનોરજન છે આ કાર્યમાં પૂજ્ય બ્રાહ્મ  
યજ્ઞી જે બ્રાહ્મ પુરુષાય કાય કરે છે તે માટે વારવાર ખન્નવાદને પાત્ર છે  
આ સૂત્રોથી સમાજને વધો લાભ થવા સભવ છે

હવે સમાન બુદ્ધિવાળા બ્રાહ્મણો સ્વપરના લેહથી નિબાહસ ભાષનાઓ  
ખવલોક કરશે તો આ સદ્વિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને જોસ્વ  
લેવા જેવું છે હરેકે ભવ્ય બ્રાહ્મણોને સૂચન કરૂ છું કે આ સૂત્રો પોત-  
પોતાના ઘરમાં વસાવવાની સુદર તકને ચૂકસો નહિ. કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર  
અને સ્વપરપરાને પુષ્ટિરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યમાં બ્રાહ્મણી  
તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકર્ષે જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમાં મહાન નિર્ભયનુ  
કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ખન્નવાદ જો જ

લી શાસ્ત્રાબાઈ સ્વામી  
બલાત સમદાય.



બસ્વાળા સમ્રહાયના વિદુષી મહાસતીજી મેઘીબાઈ  
સ્વામીનો અભિપ્રાય

૫૫૭૫ વા ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મજળદાસબાઈ  
પ્રમુખ અં ભાં પ્રવેં સ્વા બૈનશાસ્ત્રોદાર સમિતિ  
મુ રાજકોટ

અત્રે બીરાજતા મું મુ ના ભદાર મહાસતીજી વિદુષી મેઘીબાઈ સ્વામી  
તથા હીરાજઈ સ્વામી આદિલણાં બન્ને મુખશાવમાં બીરાજે છે આપને સૂચન છે  
કે અપ્રમત્ત ખવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મજ્ઞાન કરશે જોજ આશા છે

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય બ્રાહ્મણ મહારાજ શ્રી વાસીલાલજી મહારાજના  
સ્નેહમાં સૂત્રો ભાઈ પોષટ ખનજીભાઈ તરફથી લેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ  
બ્રાહ્મણાન્ત વાંચનાં મનન કર્યાં અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને  
અને બીતરાત્રમાત્રને ખુબ જ ઉન્નત બનાવનાર છે તેમાં આપણી મદદ જોરથી  
આપરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે જોસ્વ લેવા જેવું છે હવે સમાન

આત્માઓ જ્ઞાનઝરણાઓથી આત્મરૂપવાડીને વિકસિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છે. આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરૂ કરાવશે તેવી આશા છે.

એજ લિ. બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી  
મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામી  
ના ફરમાનથી લી. ખોડીદાસ ગણેશભાઈ—ધધુકા  
સ્થાનકવાસી જૈન સઘના પ્રમુખ

\*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કેલેજના એક વિદ્વાન  
પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાખંડ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાસ થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયા છે તે હું જોઈ શક્યો છું, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધભાગથી હિંદી ભાષાઓના નિબંધાત છે એ એમનો ટુક પરિચય કરતા સહજ જણાઈ આવે છે. શાસ્ત્રોનું સંપાદન કરવામાં તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમા ત્રણ પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પડિતોનો સહકાર મેળવી આપી, મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે. સ્થાનકવાસી સમાજમા વિદ્વતા, ઘણી ઓછી છે, તે દિગ્બર મૂર્તિપૂજક સ્વેતાબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતા હું વિરોધના ભય વગર કહી શકું પૂં મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમા પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારા આપવામા આવ્યા છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોક્કસ કહી શકું છું. ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલા છે મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાલયમા અને કુટુંબોમા વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગજ, વડોદરા

કામદાર કેશવલાલ હિંમનરામ

તા. ૨૭-૨-૧૯૫૬

સુબધની બે ઠોલેબોના મોહિસરોનો અભિપ્રાય

સુબધ વા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શ્રી શાન્તિલાલ મગજલાલ

પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત પ્રવે. સ્થા. બૈનસાબોદારસમિતિ,

રાજકોટ

પત્ન્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલ મહાશયે તેવાર કરેલાં આવાસમ, ઇશવૈકાલિકા આચર્યક, ઉપાસકશ્યામ વમેરે સૂત્રો અને બેવાં. આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે, અને સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યા છે. સંસ્કૃતટીકા અને ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાંતરો બોલાં અત્યાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એક સરખા અસાધારણ પ્રયુત્વની સમૈાટ અને મુરેજ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર જ્યોમા પાને પાને પ્રગટ થતી આવાચ્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વત્તા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હિંદીમાં કયેલાં ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરખતા નોખપત્ર છે. એથી વિદ્વજન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સતોષ આપે એવી એમની રેખનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હેનુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે. બીજા ૭ સૂત્રો લખાઈને તેવામ થઈ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો ત્યારે એમને હાથે તેવાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે બૈનસૂત્ર-આલિપ્તમાં અમૂલ્ય અપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી. આવાચ્યશ્રીના આ મહાન કર્મને બૈનસમાજનો વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાધવી રહેશે એવી અમે અપ્રા સખીએ છીએ.

પ્રો. રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ  
 સેટ એવિયસ ઠોલેજ, સુબધ  
 પ્રો. તારા રમણલાલ શાહ  
 સોફીયા, કલોજ સુબધ



રાજકોટ ઈર્ષેન્દ્રસિંહલ ઠોલેજના મોહિસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ  
 અમનાથ પ્લોટ  
 રાજકોટ, વા. ૧૮-૪-૫૬

પત્ન્યાચાર્ય પ. મુનિશ્રી ઘાસીલાલ મહાશય આને બૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાસ થયેલા છે કે જે સમાજ માટે જડું ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તેવાર કરેલાં આવાચ્ય, ઇશવૈકાલિકા, શ્રી વિષ્ણુમુત નિ. મે. એવાં

આ સૂત્રો જોતા પહેલી જ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાણુજણાઈ આવે છે એક પછી ભાષા મહારાજશ્રીથી અનભી નથી આપણે જોઈએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે તેની વસ્તુ ગભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, એટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાતર પૂઠ ધાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને ભીતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવના ઓમરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાતર દરેક જિજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યા છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સકળાયેલા જોઈએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કદવના કરી શકાય તેમ છે તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે.

પ્રો રસીકલાલ કસ્તુરચંદ ગાંધી  
એમ એ એલ. એલ ખી  
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ  
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

\*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ બિનાસર કોન્ફેરેન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખત શ્રી શ્વેતાખર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુંભાવોએ આ વાત ઠીક ઠીક દૃષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદહી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્યમત્રી નીમ્યા છે, તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ. ભા શ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામાં છેલ્લા વલોદરા યુનિવર્સિટીના પ્રિફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ.એ. પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સમિલન તથા કેન્દ્રોદ્ધાર હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને તેમના કામને બધા બધા અને જે જે જરૂર પડે-પાઠિતોની અને નાણાંની તે તે પોતાની પાસેના ફાઇલમાં અને બહાર બનતા પાસથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને બ્યારે આટલી જમી પ્રશસ્તાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કે. હોસ્તેસ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ તુરી હોય તે પ ર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાનિધ્યમાં જઈ બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો આ કામને ટકાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપસ્થા અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે બેવા પ્રમુખ સાહેબને બહામણુ કરે છે

(૧૪૫ જૈન પત્ર વા ૪-૫-૫૬)



સ્વતંત્રવિચારક અને નિહર લેખક ‘જૈનસિદ્ધાંત’ના તત્ત્વી શેઠ નગીનદાસ ઝીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ બાલવી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્ર શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠવપાસી શુદ્ધ કરી સસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમાં યુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ. સિવાય અને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન યુનિ જેવામાં આપણા નથી હાંખી તપાસને જતે મે યુનિશ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા શાસ્ત્ર હતા તેમ વિચારક પણ હતા. આપણે તેમજ યુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાંચના લેતા, તેમ સ્વપ્નસર્ચા પણ કરતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી વધાય જ હોય એમાં

નવાઈ નથી અને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલા સૂત્રો જોતા સી કોઈને ખાત્રી થાય તેમ તે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ પાસેથી રાખેલી તે ધરાબર કૃણીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે.

કેટલાકનો એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનું કામ આપણું નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ભ્રમ તફન ખોટો છે ખીજા કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા આ સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામાં (અર્ધભાગધી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલાં છે એટલે સૂત્રો વાચવા તેમજ સમજવામાં ઘણા સરળ છે.

માટે કોઈ પણ વાચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવું નહિ એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલાં સૂત્રો જ વાચવા

સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થાં જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી. સ્થાં જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે ખીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડ્યા છે, જે સૂત્રો-અનુયોગદ્ધાર અને ઠાણાગ સૂત્ર-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે તે પછી ખાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે.

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થાં બધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ધરમા વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ

‘જૈન સિદ્ધાંત’ પત્ર-મે ૧૯૫૫

## શ્રુત-મહિત

(૫૦ આવાય શ્રી ઘાસીલાલ મં સા ની આગ્રા અનુસાર લખનાર)

દ. સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદ મહારાજ

તા ૨૩-૬-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આને લગભગ ૨૦ વર્ષથી અદ્યેય પરમપૂજ્ય જ્ઞાનદિવાકર ૫૦ મુનિશ્રી ઘાસીલાલ મં ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુચર, અનુપમ ન્યાય મુક્ત પૂર્ણપર અવિરોધસ્વરૂપ કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના ઘોતક જેવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌરાણિક સંસ્કૃત્યક્રિ અનેક ભાષાના પ્રચર પઠિત છે અને જિનવાણીને પ્રકાશ સંસ્કૃત, શુભરાવી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દો, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે. જે જૈન સમાજ માટે અતિ ઔચ્ચ અને આનંદનો વિષય છે

શ્રી મહાવીર અત્યારે આપણી યાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરરેક જલ્ધર મહારાજોએ શ્રુતપરપરાએ સાક્ષી સખ્યે. શ્રુતપર પરાધી સખવાતુ જ્ઞાન અત્યારે વિશ્વત ઘવાને સમય ઉપસ્થિત ઘવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવદિગ્ગજિ સમાજમણે વસ્તીપુસ્તકમાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂંક કર્યો. આને આ સિદ્ધિ આપણી યાસે છે તે અર્ધમાગધી ભાષામાં છે અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનજલ્ડની ધર્મભાષા છે તેને આપણા અમણે અને અમણીઓ તથા પ્રમુખ આપક આનિકાઓ મુખપાઠ કરે છે પરંતુ તેના અર્થ અને ભાવ ઘણા યોગ્યો સમને છે

જિનાગમ જે આપણા અદ્યેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે જે આપણી આજો છે તેનો અભ્યાસ કરવો જે આપણી ધર્મી-જૈન માત્રની ફરજ છે તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા અમણો જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજે સત્ સંકલ્પ કર્યો છે અને તે વિગિત સૂત્રોને પ્રચટાવી જાઓવાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરલ વહેલી કરી છે આવા અનુપમ કાર્યમાં સહજ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો પડે અને તેનો વધારેમા વધારે પ્રચાર ઘાલ તે માટે પ્રયત્નો કરવા પડે

શ્રી મહાવીરને જલ્ધર યૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત ઘાય ? ભગવાન તેના પ્રતિ ઉત્તર અપે છે કે પ્રવત્ની આરાધનાથી જીવેના અજ્ઞાનનો નાશ ઘાય છે અને તેઓ સસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ યેગવે છે અને અસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ ઘર્તા શેક્ષની ફળની પ્રાપ્તિ ઘાય છે

આવા નાનકાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગ્ગજિ અને અન્ય ધર્મિઓ હજારો અને લાખો રૂ ઠીકા ખર્ચે છે હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા જ વ ધીનાના સેક્ટો નહિ પણ હજારો ટીકા ખર્ચે દુનિયની લગભગ સર ભાગઓમાં પ્રચટ ઘવા છે ઈશાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મ અન્ય બાઈજના પ્રચારકો તેનું જન્મતની સર્વ

ભાષાઓમા ભાષાંતર કરી તેને પડતર કળતા પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-  
સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે મુઘ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનું  
અનેક ભાષાઓમા ભાષાંતર કરી સમાજમા પ્રચાર કરે છે આપણે પૈસા પરનો મોહ  
ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવા  
જોઈએ અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો  
કરવા જોઈએ આવા પવિત્ર કાર્યમા સાપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઈએ  
અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ સમિતિના નિયમા-  
નુસાર ૩ ૨૫૫ ભરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઈએ ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના  
મૂકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાનપ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું જોઈએ  
આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ  
મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહ મેશ તત્પર રહેવું જોઈએ જેથી  
પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય (સ્થા જૈન તા ૫-૭-૫૬)

\*

શ્રી અ ભા ૨વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના પ્રમુખ શ્રી વગેરે રાણપુર  
પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાંત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ  
પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના પુનીત પગલા થયાં છે ત્યારથી  
ઘણા લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ  
થઈ રહ્યો છે અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક  
કાર્યમા તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમે સર્વને ધન્ય છે અને  
એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લે છે, મને તો સમજાય છે કે  
સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા  
સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાત્ર-સાત સાધુઓ જો  
સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમા હોય તો સમાજનું શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે સમાજ  
કાશમા સ્થા જૈન સ પ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળાહણી નીકળે પણ વૈ દિન

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધા-  
વસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાશે તેવી છે તેમને ગામેગામ  
વિહાર કરવું અને ગાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમા ઘણા શારીરિક માનસિક અને  
વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે, તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાંના શ્રાવકો ભક્તિ  
વાળા હોય વાડાના રાગના વિષથી અલિપ્ત હોય એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું  
કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઈએ  
ખીજ કોઈ એવા સ્થળની અનુકૂળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમા યોગ્ય સ્થળે  
રહેવાની સગવડ કરી અપાય તો વધુ સારું મહારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા  
કરી યાદ આપું છું ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને  
મારા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકારશે લી સદાનંદી જૈનસુનિ છોટાલાલજી



## “લૈનસિદ્ધાંતના” તત્ત્વીયીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો જહાર પાઠનારી આ જોકની જોક સ્થા છે, અને જોના આ ઉચ્ચારિધિઈ ઉપરથી જણાય છે કે—તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ જ્ઞાન હ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, ઢિંદી તથા સુજ્ઞાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો જહાર પઠવાં જો કાંઈ સહેજું કામ નથી જો જોક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાઓદાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી ચાર પાડી સ્થી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા જોરબનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો જહાર પડી સુઠવાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઈ બયાં છે અને જબૂદીપ્રગતિ તથા નદીસૂત્ર તેવાર કાંઈ રહ્યાં છે

હાલમાં મત્રી શ્રી કાંકરજી હ ભાગ્યિ હ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આજો વખત આજે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમના ખવ માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તાં તેા છે વયોવૃદ્ધ પદ્ધિત મુનિશ્રી વાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનુ સશોધન તથા સસ્કૃત ટીકા તેજોશ્રી જ તેવાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા. લૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. જો ઉપકારનો જહારો તેા વાળી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની તેના જહાર પઠેલાં સૂત્રો ઘરમા વસાવી તેનુ અધ્યયન કરવામાં આવે તેા જ મહારાજશ્રીનુ ઘોડુ ત્રણ જહાર કમું બણાય.

જનવાને કમું છે કે પદ્ધતં વાજ તમો રવા પહેલુ જ્ઞાન પછી હમા હવા ધર્મ ઘણાઈ સમજવેઈ હોય તેા જનવાનની વચ્ચીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ જોઈજો તેનુ અધ્યયન કરવું જોઈજો અને તેનો ભાવર્થ સમજવેા જોઈજો.

જેટલા માટે શાઓદારસમિતિના સર્વ સૂત્રો હરેક સ્થા લૈને પોતાના ઘરમાં વસાવવાં જ જોઈજો સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયેલુ છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે હરેક સ્થા લૈન આ સૂત્રો વાંચે જો ખાસ જરૂરનુ છે.

## શ્રી ઉપાસકદશાંગસૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે ધનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત

પ્રકાશક-અ ભા શ્રવે સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા શાહ, શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૧૧૬ ખીજી આવૃત્તિ ઝેવડું (મોટું) કદ પાકુ પુસ્તક, જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિમત રૂા ૮-૮-૦

આપણા મૂળ ખાર અગ સૂત્રોમાનું ઉપાસકદશાંગ એ સાતસું અંગ સૂત્ર છે. એમા લગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોના જીવનચરિત્રો આપેલા છે, તેમા પહેલુ ચારિત્ર આનંદ શ્રાવકનુ આવે છે

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને ખાર વ્રત લગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા ( પ્રત્યાખ્યાન ) લીધા તેનુ સવિસ્તર વર્ણન આવે છે, તેની અતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ નરક, દેવલોક વગેરેનુ વર્ણન પણ આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે ખાર વ્રત લીધા તે ખાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધુ આપેલુ છે તેજ પ્રમાણે ખીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામા અરિહત્ત્વેદ્યાઈ શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનુ એત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સબધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ ખેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામા અનેક રીતે પ્રમાણે આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહત્ત્વેદ્યાઈ નો અર્થ સાધુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે

એટલે આ સૂત્ર હરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાચ્યુ જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ વારવાર અધ્યયન કરવા માટે ધરમા વસાવ્યુ જોઈએ

પુસ્તકની શરૂઆતમા વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સમતિપત્ર તથા ખીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણબૂતતાની ખાત્રી આપે છે

“ જૈનસિદ્ધાંત ” જાન્યુઆરી-૫૭

એ કહો સર્વોદ્ધારી ઉપરાંત હાલમાં મળેલ  
કેટલાક તાબા અભિપ્રાયો.

## શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તત્ત્વીકથાનેથી (જૈનકથાતિ) તા ૧૫-૬-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કૃપા યુક્ત હાલમાં જમનાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા. જૈન ઉપાધ્યયમાં બિરાજમાન છે તેઓ શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂજ્ય જીવત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આજો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીનાં સૂત્રોની ટીકા જેમ અને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ રાખી રહેલ છે સ્થા. જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ અને જેથી જમી શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ આજ સુધી પણ મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ ચાલુ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂજ્ય કરેલ નથી. પૂજ્યશ્રી જમુલજીજી મહારાજને બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ અનેલ, ત્યારબાદ આશ્વાર્થ શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણાં શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયાં. પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજને એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ પૂજ્ય શ્રી જગદિશભાઈ મહારાજશ્રીએ સૂચનરાજસૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ શ્રી સોબાજીમલજી મહારાજને આશ્વારંજની હિંદી ટીકા લખેલ પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા. જૈન સામુજ્યો તરફથી થયેલ નથી. જ્યારે પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસ બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ રીમાં છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે બંધગાંને પાત્ર છે.

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના શ. ૨૪૧૭ ભરોને લાઈફ મેમ્બર થનારને વધારામાં શાસ્ત્રો શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી જોટ મળે છે આ રીતે એક પણ અને ટો કાલ અને રીતે લાભ થાય તેમ છે શ. ૨૪૧૭ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે છે પણ મોટો લાભ છે અને પ્રથમની પ્રમાણના કરવાનો ખર્ચ લાભ પણ મળે છે.

આ સાથે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના મુશિષ્ય પં સુનશ્રી કનૈયા-  
લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના  
મેમ્બરો કરવા માટે અદાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે અને  
અત્યાર સુધીમા મુંબઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ  
મેમ્બર બની ગયા છે અને મુંબઈમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે  
ઈચ્છવા યોગ્ય છે શ્રીમત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ  
મોજાઓખના કામોમા તેમજ વ્યવહારિત કામોમા વાપરી રહ્યા છે તો આવા  
શાસ્ત્રોદાર જેવા પવિત્ર કાર્યમા રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાયે.  
અને બદલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે જેતું વાચન  
કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રારા પ્રભાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.

શતાવધાની મુનિશ્રી અતિલાલભાઈ મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો  
પત્ર “સ્થાનકવાસી કૈન” તા ૫-૬-૫૭ ના અઠર્થમાં છપાએલ છે જે  
નીચે મુજબ છે

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા ૭-૮-૫૭ના રાજ્ય જત્રે વિસજ્વલા શાસ્ત્રીદ્વારક જ્ઞાત્યાર્થ મહારાજશ્રી  
વાસીલાલભાઈ મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો  
હતા, તે સમયે મારે પૂ. મ. સા. સાથે જે વાતચીત થઈતે સમાજને બધું  
કરાવા સાફ થયું છે

શાસ્ત્રોતુ કામ એક જઠન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમાં અચિરત પ્રવક્ત્રો  
કરવા એઈએ. સ પૂર્ણ શાસ્ત્રોતુ જ્ઞાન તેમજ ફરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન  
હોમ તોજ જ્ઞાતમોદ્વારકનુ કાર્ય સફળતાથી થાય છે જ્ઞા પ્રકારનો પ્રબલ હાલ  
અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જેન સ્થાનકમા વિરાજતા પૂજ્ય શ્રી વાસીલાલભાઈ  
મહારાજ ફરી રહ્યા છે શાસ્ત્રલેખનતુ જ્ઞા મર્થ થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક  
અભિવ્યક્તિને અનેક પ્રકારની શકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર  
થાય છે ? કરવામાં આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ ઠેટલાકને થાય છે અને તેવો  
પ્રમ થાય ને સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિશાસ્ત્રે તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના  
મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થયેલા છે જેથી જ્ઞા કાર્યમાં પણ સમાજને શકા થાય.

પણ ખરી રીતે એવું, જ્ઞાત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્વારનુ કામ બાલી રહ્યું છે તે  
વિષે સમાજને ખાત્રિ જ્ઞાપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્વાર સમિતિ તરફથી  
જ્ઞાત્યાર સુધીમાં પ્રગટ થયેલાં જ્ઞાતમોના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામા  
આવેલ નથી અને ભવિષ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમાં ફેરફાર થશે નહિ તેની  
જ્ઞાત્યાર નોંધ થશે.

લી

શતાવધાની શ્રી અવલ મુનિ-અમદાવાદ

# શ્રી અખિલ ભારત શ્રેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધા છે સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામા આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વ સ્થા જૈન લાઈબ્રેરીઓ આ સસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હલુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાત્રી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા કેન્દ્ર-સ જેમ ખોટા બધુગઃ કુંકનારી સસ્થાની કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય દરજ છે

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂત્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહા-ગજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે વયોવૃદ્ધ હોવા છતા તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેણે કામ હલુ સુધી બીજા કોઈ એ કયું નથી અને બીજુ કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શકા લયું છે પૂત્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો ઝિચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછો હો તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

“જૈનસિદ્ધાન્ત પત્ર” એક્ટોમ્બર ૧૯૫૭

\*

## શ્રી હરવૈકાલિક તથા ઉગ્રસહસ્રાંગ સૂત્રો

સુજ્જરાવી ભાષામાં જનુવાદ થયેલાં પૂજ્ય શ્રી વાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ધરમાં હોવા જોઈએ તે વાંચવાથી આવકે ધર્મ જાને અમણુ ધર્મના આચારનુ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને આવકે પોતાની નિસ્વધ અને એવશ્યિય સેવા અમણુ પ્રત્યે જાણવી શકે છે વર્તમાનકાળે આવકેમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અધિકારીએ અમણુ વગની વૈભવશ્ચ તેા કરી રહેલ છે પરંતુ 'કલ્પ શુ અને જલકલ્પ શુ' એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા જર્ણી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર અમણુ વર્જને પોતાને સહાયક થવામાં ધસડી રહ્યા છે, અને અમણુ વગની પ્રાપ્તિ કુસેવા કરી રહ્યા છે તેમાંથી જાણી લાગતુ કારણુ જ્ઞાપ અને અમણુને યજ્ઞાતશ્ચ સેવા જર્ણી તેમને ધણુ જ્ઞાનદર્શન આસ્ત્રિની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન આસ્ત્રિની આરાધના કરી મુખ્યતિ મેળવી શકે અમણુની યજ્ઞાતશ્ચ સેવા કરવી તે જાવશ્ય બૃહસ્પતિની કૃત્ય છે

પૂજ્ય શ્રી વાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોદારનુ જનુવાદન ત્રણુ ભાષામાં ફેરી રીતે કરી રહ્યા છે અને ફેરીયા ૨૫૧૫ ભરી મેમ્બર ઘનારતે રૂા ૪૦-૫૦૦ ની લગભગ કીમતના જત્રીસે આગમો ફેરી મળી શકે છે તેા તે રૂા ૨૫૧૫ ભરી મેમ્બર થઈ જત્રીસે આગમો દરેક આવકે વરે મેળવવા જોઈએ જત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે. તેા તે લાજ પોતાની નિર્ભય માટે પુન્યાનુ જાણી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપરોક્ત જાને સૂત્રોની કીમત અમિતિ કઈક જોઈથી રાજે તેા હરકોઈ જામમાં કીમત હોય તે સૂત્રો લાવી જરૂરી કીમતે, મહત્ત જાણવા પૂરી કીમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ધરમાં વચાવી શકે

—બૈક બૃહસ્પતિ

નેધિ-ઉપરની સુજ્જનાને અમે જાવકારીએ ખીજો જાવાં સૂત્રો દરેક ધરમાં વચાવવા ચોખ તેમજ દરેક આવકે વાંચવા ચોખ છે ત ત્રી-

૨૦૦૦-૧૦-૫૭

તા. ૧-૧૦-૫૭

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં

બનાવેલાં સૂત્રો

કારમીર...થી .. કન્યાકુમારી

તેમજ કરાંચી.....થી.....કલકત્તા

સુધી

દરેક સ્થળે હોંશથી વંચાય છે.

કારણ કે

આવી રીતે શાસ્ત્રો તૈયાર કરવાનું અનોખું કાર્ય

હજી સુધી કોઈ કરી શક્યું નથી

\*

\*

\*

શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમાજ

ઉપરાંત

શ્રી દેરાવાસી સંપ્રદાયના મહાન આચાર્યશ્રી રામવિજયસૂરીજી

તથા અન્ય સુનિવરોએ

તેમજ

તેરાપંથી મહાસભા કલકત્તાવાળાએ આ સૂત્રો અપનાવ્યાં છે

\*

\*

\*

દેશ-પરદેશના મેમ્બરો સૂત્રો વાચી જૈન ધર્મના શ્રુતજ્ઞાનનો અણમોલો

લાલ લઈ રહ્યા છે

હમણાજ લડનની ઈન્ડિયા ઓફીસ લાયબ્રેરીએ આ સૂત્રો મગાવ્યા છે

\*

\*

\*

આપ રૂપીઆ ૨૫૧-૦-૦ મોકલી મેમ્બર તરીકે નામ નોંધાવી હપ્તે હપ્તે  
લગલગ રૂપીઆ પાચમો સુધીની કિંમતના શાસ્ત્રો વિના મૂલ્યે મેળવી શકો છો

વધુ વિગત માટે લખો

૪ ઓન લોન્ પાસે,

ગરેડીઆકુવા રોડ

રાજકોટ

મત્રી

શ્રી અખિલ ભારત પ્રવે સ્થા જૈન

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ



भी आचाराङ्गस्य प्रथमश्रुतस्फञ्च प्रथम मध्ययनका

## विषयानुक्रम

विषय—	पृष्ठाङ्क—
मङ्गलाचरण	१-३
अथतरणा	३-१५९
(१) भगवान् के षष्ठी में कस्यवृत्त के फुलों के षष्ठीस (२५) गुणोंकी उपमा	४-१३
(२) भगवान् की षष्ठी के ३५ अतिशय	१४-१९
(३) अनुयोग (४)	२०-१५८
(१) धरणकरानुयोग	२०-२३
(२) धमकयानुयोग	२३-२४
(१) आक्षेपाप्यादिधर्मरूपा (४)	२५-३१
(२) धर्ममहिमा	३२-३४
(३) गणितानुयोग	३५-५३
प्रब्रन्यादानसमपनिर्णय	३६-५३
(१) मातृविचार	३७
(२) पृथुविचार	३८
(३) त्रिपिचिचार	३८
(४) वारविचार	३९
(५) नक्षत्रविचार	३९
(६) यागविचार	४१
(७) करणविचार	४१
(८) लग्नविचार	४६
(९) ग्रहविचार	४६
(१०) गीमप्रग्रह्यासमपनिरूपण	४७

विषय-	पृष्ठाङ्क-
(११) केशलुञ्चन	५१
(१२) प्रथमगोचरीविचार	५२
(१३) नूतनपात्रव्यापारण	५३
(१४) आचार्यादिपदप्रदानसमय	५३
(४) द्रव्यानुयोग	५३-१५९
द्रव्यलक्षण	५४
पर्यायलक्षण	५८
द्रव्यविभाग ( भेद-६ )	६१
[१] धर्मास्तिकायस्वरूप	६३
[२] अधर्मास्तिकायस्वरूप	६७
[३] आकाशास्तिकायस्वरूप	७२
[४] कालनिरूपण	८२
कालशब्दव्युत्पत्ति	८२
कालसिद्धि	८३
काललक्षण	८४
कालस्वरूप	८८
[५] पुद्गलास्तिकाय	९६
पुद्गलशब्दार्थ	९६
पुद्गललक्षण	९७
पुद्गलप्रदेशसंख्या	९८
पुद्गलक्षेत्रस्थिति	९८
पुद्गलभेद	१०४
परमाणुस्वरूप	१०५
स्कन्धस्वरूप और उसके भेद	१०८
परमाणुबन्धकारण	११२
परमाणुबन्धव्यवस्था-कोष्टक	१२१

विषय—	पृष्ठाङ्क—
[६] जीवास्तिक्याय	१२२
जीवसूत्रार्थ	१२२
जीव स्वरूप माप और उसके भेद—५	१२४
(१) औपश्रमिक माप	१२५
(२) स्यायिक माप	१२६
(३) साधोपश्रमिक माप	१२७
(४) शौच्यिक माप	१२७
(५) पारिगामिक माप	१२८
जीव का स्थितिक्षेत्र	१३०
जीव की ज्ञान-वृद्धि	१३२
जीव की कर्मगति	१३४
जीवतत्त्व	१३५
इति जीवास्तिक्याय	१४०
पद्मस्य विचार	१४१
जीवसूत्रस्य विचार	१४३
पद्मस्यो का सक्रिय- निष्क्रिय विचार—	१४५
व्यवहारनय को लेकर पद्मस्य विचार—	१४७
पद्मस्यो के विषय में— कर्तृत्वाकर्तृत्वनिरूपण	१४७
व्यवहार नय—(६)	१४८
(१) शुद्धव्यवहार नय	१४८
(२) अशुद्धव्यवहार नय	१५०
(३) शुभव्यवहार नय	१५१
(४) अशुभव्यवहार नय	१५३

विषय-	पृष्ठाङ्क
(५) उपचरितव्यवहार नय	१५२
(६) अनुपचरितव्यवहार नय	१५४
जीव के स्वरूप में सदृश- विसदृश विचार	१५६
इति अवतरण सम्पूर्ण	१५९
सूत्र का उपक्रम	१५९
सूत्र प्रथम	१६०
'भग' शब्दार्थ	१६१
सूत्र द्वितीय (संज्ञा)	१६४-१९६
संज्ञा के भेद (१६)	१६६
(१) आहारसंज्ञा	१६७
(२) भयसंज्ञा	१६९
(३) मैथुनसंज्ञा	१६९-१७०
(४) परिग्रहसंज्ञा	१७०
(५) क्रोधसंज्ञा	१७१
(६) मानसंज्ञा	१७१
(७) मायासंज्ञा	१७२
(८) लोभसंज्ञा	१७२
(९) लोकसंज्ञा	१७२-१७३
(१०) ओषसंज्ञा	१७३
(११) सुखसंज्ञा	१७३
(१२) दुःखसंज्ञा	१७४
(१३) मोहसंज्ञा	१७४
(१४) त्रिचिकित्सासंज्ञा	१७४-१७५
(१५) शोकसंज्ञा	१७५
(१६) धर्मसंज्ञा	१७५-१७६
ज्ञानसंज्ञा के भेद-(५)	१७६

विषय-	पृष्ठाङ्क-
(१) मतिज्ञान	१७६
(२) श्रुतज्ञान	१७७
(३) अर्थविज्ञान	१७९
(४) मन-पर्ययज्ञान	१८१
(५) कवञ्चज्ञान	१८४
मतिज्ञान के भेद (५)	१८५-१९०
ईहा	१८५-१८६
अपोह	१८६-१८७
मीमांसा	१८७
मार्गणा	१८७
गवपणा	१८८
सद्वा	१८८
स्मृति	१८८-१८९
मति	१९०
प्रज्ञा	१९०
सूत्र तृतीय (संज्ञा)	१९५-२००
तीन प्रकार का जन्म	१९८
(१) समूच्छेनजन्म	१९८-१९९
(२) गर्भजन्म	१९९-२००
(३) उपपातजन्म	२०१
सूत्र चतुर्थ (सद्वा)	२०२-२०८
सूत्र पञ्चम	२०९-२१७
आत्मवादिप्रकरण	२१०-२३८
आत्मद्वन्द्व	२११
आत्मालित्यमिद्वि	२१३
भाग्य का द्रव्यत्व	२२८
आत्माका स्वरूप (१३)	२३१

विषय-	पृष्ठाङ्क-
(१) जीवत्वनिरूपण	२३३
(२) नित्यत्वनिरूपण	२३७
(३) चेतनावचननिरूपण	२४३
(४) उपयोगवचननिरूपण	२४४
(५) परिणामित्वनिरूपण	२४७
(६) प्रभुत्वनिरूपण	२४८
(७) कर्तृत्वनिरूपण	२५०
(८) भोक्तृत्वसिद्धि	२५३
(९) शरीरपरिणामत्वसिद्धि	२५५
(१०) अमूर्त्तत्वनिरूपण	२५९
(११) प्रतिशरीरभिन्नत्वसिद्धि	२६३
(१२) पौद्गलिककर्मसयुक्तत्वसिद्धि	२६३
(१३) ऊर्ध्वगतिस्वभावत्वसिद्धि	२६८
इति आत्मवादि प्रकरण	२६८
लोकवादिप्रकरण	२६९-२९९
षड्जीवनिकाय	२७०-२७१
(१) पृथिवीकायभेद	२७१
(२) अप्कायभेद	२७३
(३) तेजस्कायभेद	२७४
(४) वायुकायभेद	२७४-२७५
(५) वनस्पतिकायभेद	२७५-२७६
(६) त्रसकायभेद	२७६
(१-४) द्वित्रिचतुरिन्द्रियभेद	२७७-२७८
(६) पञ्चेन्द्रियभेद (४)	२७९
मनुष्यभेद	२८०
अकर्मभूमि	२८२
देवनिकाय (४)	२८३

विषय

पृष्ठसङ्ख्या

(१) मयनपतिदेवमेव	२८४
(२) म्यन्तरदेवमेव	२८६
(३) ज्योतिष्कदेवमेव	२८७
(४) पैमानिकदेवमेव	२८८
कन्पातीत	२९४
पद्मजीवनिकायमेदसंकस्तन	२९५
जीवसंख्या	२९८
कर्मवादिप्रकरण	२९९
(१) कर्मस्वरूप	३००
(२) कर्मसिद्धि	३०१
(३) कर्म का मूर्च्छत्व	३१२
(४) जीव और कर्म का संबन्ध	३१३
(५) कर्म का अनादित्व	३१७
(६) अकर्मवादिसत्तनिराकरण	३१८
(७) बन्धस्वरूपनिरूपण	३२०
(८) बन्धकारणनिरूपण	३२५
(१) प्रकृतिबन्ध	३३२
बाठ कर्मों के सत्त्व	३३३
(२) स्वितिबन्ध	३३४
स्वितिबन्धकोच्छ्र	३३५-३३७
(३) अनुमापबन्ध	३३८
पुष्पपापकर्मनिरूपण	३४४
सर्वपाति प्रकृतिर्या (२०)	३४७
देसपाति प्रकृतिर्या (२५)	३५२
अपाति प्रकृतिर्या (७५)	३५६
उत्तरप्रकृतिसंख्या (१४८)	३५८-३७४

विषय-	पृष्ठाङ्क
कर्मक्षयविचार	३७४
इति कर्मवादिप्रकरण	३८३
क्रियावादिप्रकरण	३८३-३९७
प्राणातिपातक्रिया	३८६
मृगवध में उद्यत की क्रिया	३८८
कुसूल में लोह डालने वाले की क्रिया	३८९
धनुष से वींघने वाले की क्रिया	३९०
वृष्टिज्ञान के लिये हस्तादि-	
फैलाने वाले की क्रिया	३९१
ताड पर चढ़ कर उसके फल तोड़नेवाले की क्रिया	३९२
अठारह पापस्थान	३९२-३९७
(१) प्राणातिपात	३९२
(२) मृषावाद	३९४
(३) अदत्तादान	३९४
(४) मैथुन	३९४-३९५
(५) परिग्रह	३९६
(६-१८) क्रोध से मिथ्यादर्शनशल्यतक इति क्रियात्रादि प्रकरण	३९६-३९७
छठा सूत्र ( कर्मसमारम्भ )	३९७-४०१
सूत्र सप्तम ( अपरिज्ञात कर्मजीव )	४०२-४०३
सूत्र अष्टम ( जीव का योनिसंधान )	४०३-४०९
योनिभेद (९)	४०४
चौरासी लाख योनियाँ	४०७
सूत्र नवम ( परिज्ञा )	४०९
सूत्र दशम ( कर्मसमारम्भ )	४११
सूत्र एकादश ( उपसंहार )	४१५
सूत्रद्वादश ( उपसंहार )	४१६



विषय—	पृष्ठसंख्या—
प्रथम अध्यायन के प्रथम उद्देशकी समाप्ति	४१७
दूसरे उद्देशका उपक्रम	४१८
जीव के विशिष्ट ज्ञानके अभावका कारण	४२०
पृथिवीकाय की हिंसा में तदाभित	
जीवों की हिंसा	४२३
पृथिवीकायसंज्ञा	४२५
पृथिवीकायमरूपता	४३३
पृथिवीकायजीवपरिणाम	४३७
पृथिवीकायवपद्वार—शुद्धप्रार	४४०
पृथिवीकाय का उपमोग	४४१
पृथिवीकायसमारम्भप्रयोजन	४४२
पृथिवीकायसमारम्भफल	४४९
दृष्टान्तद्वारा पृथिवीजीवसिद्धि	४५५
पृथिवीकायसमारम्भनिवृत्ति	४६१
उपसंहार—उद्देशसमाप्ति—	४६३
तृतीय उद्देश	४६४
उपक्रम और दृष्टान्त	४६४—४६८
अनगारलक्षण	४६९
अनगारकर्षण	४७३
भ्रदास्वरूप	४७४—४९८
(१) ययामवृत्तिक्रम	४८५
(२) अपूर्णकरण	४८९
(३) अनिवृत्तिकरण	४९२
(४) अधिगमभ्रदा	४९४
अण्कायभ्रदोपदेश	४९९—५०३
अण्काय की हिंसा में	
तदाभित अन्य जीवों की हिंसा	५०४
अण्कायसंज्ञा	५५
अण्कायपरसोपदेश	५०९
अण्कायमोग—	५१२

विषय-	पृष्ठाङ्क-
अप्कायसचित्ता	५१४
अप्कायजीवलक्षण	५१९
अप्कायप्ररूपणा	५२०
अप्कायजीवपरिमाण	५२२
अप्कायशस्त्र	५२४
धावनजल-धावनपानी-(२१)	५२८
अप्कायविराधनादोष	५३०
अप्काय के विषय में अन्य- मत समीक्षा	५३२
अन्यमतागमविरोध	५३४
उपसंहार	४३७
चतुर्थोद्देशक	५३८
उपक्रम	५३८
अग्निकाय के अभ्याख्यान में आत्मा का अभ्याख्यान	५३९
अग्निकायलक्षण	५४१
अग्निकायसचित्ता	५४२
अग्निकायप्ररूपणा	५४३
अग्निकायजीवपरिणाम	५४६
अग्निकायापलाप	५४८
दीर्घलोकशस्त्र ( अग्निकाय ) का- खेदज्ञ	५५०
दीर्घलोकशब्दार्थ	५५३
अग्निकायशस्त्र	५५५
अग्निकायसमारम्भनिवृत्तिप्रतिज्ञा	५६०
अग्निविराधनादोष	५६२
अग्निकायोपभोग	५६७
अग्निसमारम्भदोष	५७०
अग्निसमारम्भ में उसके आश्रित अन्य जीवों की हिंसा उपसंहार	५७३ ५७९

विषय-	पृष्ठ-
उद्देशकसमाप्ति	५८१
पञ्चमोद्देशक ( वनस्पति )	५८२
उपक्रम	५८२
अनगारसंज्ञा	५८४
वनस्पतिकायसचिच्छता ( सप्तम्यद्वार )	५८६
वनस्पतिप्ररूपणा ( मेद् )	५९१
वनस्पतिपरिमाण	६०९
वनस्पतिकायोपमर्दन संसार का हेतु है-	६१२
रूपादि गुण में मूर्च्छा संसार का कारण है-	६१७
रूपादिगुणमूर्च्छादोष	६२१
वनस्पतिद्वयसमारम्भ में	
तदाभित्त अनेक जीवहिंसा-	६२२
वनस्पतिविराधक साध्यामास	६२६
उपमोगद्वार	६३०
वनस्पतिविराधनाफल	६३२
मनुष्यशरीर के साथ वनस्पति- की सचिच्छता की सिद्धि-	६३६
उपसंहार	६४१
उद्देशकसमाप्ति	६४३
पष्ठोद्देश ( प्रसकाय )	६४४
उपक्रम	६४४
प्रसों के मेद्	६४५
प्रसकायसप्तम	६५०
प्रसकायप्ररूपणा	६५१
प्रसकायपरिणाम	६५२
प्रत्येक प्रस जीवों के सुख दुःख अलग अलग है-	६५४

## विषय-

## पृष्ठाङ्क-

प्रत्येक दिशा विदिशा में	
पृथिवी आदि आश्रित	
त्रसजीवों को परिताप	
देने से संसार भ्रमण-	६५७
त्रसकाय के समारम्भ में	
अन्य प्राणियों की हिंसा	६५९
त्रसकाय की हिंसा में	
परिज्ञा ( त्रसकायसमारंभदोष )	६६३
उपभोगद्वार	६६४
वेदनाद्वार	६६६
त्रसजीवविराधनाफल	६६७
त्रसजीवहिंसाप्रयोजन	६७०
उपसहार	६७३
उद्देशसमाप्ति	६७५
सप्तम उद्देश ( वायुकाय )	६७६
वायुकायविराधनविवेक	६७७
वायुकायलक्षण	६८३
वायुकायप्ररूपणा	६८४
वायुकायपरिमाण	६८५
वायुकायशस्त्र	६८६
वायुकाय की हिंसा में षड्जीव-	
निकायरूप लोक की हिंसा	६८९
द्रव्यलिङ्गिकृत वायुकायविराधना	६९०
वायुकायोपभोग	६९३
वायुविराधनादोष	६९६
वायुविराधनापरिहार	७००
सुखवृत्तिकाविचार	७०४
पह्निकायारम्भदोष	७१२
षड्जीवविराधनापरिहार	७१७
प्रथम अध्ययन समाप्ति	७२०

श्रीबीतरागाय नमः



श्रीनाथार्य-भैरवधर्मविवाकर-पूज्यश्री-घासीलाळश्रीमहाराजविरचिता-  
ऽऽचारभित्तामणिटीकासमलङ्कृतम्

## आचाराङ्गसूत्रम् ।

[ प्रथमः श्रुतस्कन्धः ]

मङ्गलाचरणम्

अर्धमद् बीरबिन प्रणम्य,  
लम्बेधरं गौतम-भासकम् ।  
गणेश्वरं पूर्वधरं च चित्ते,  
सन्धाय त्रैनी गिरमुञ्चयन्तीम् ॥ १ ॥

आचाराङ्गसूत्रकी

आचारभित्तामणिटीका का हिन्दीभाषानुवाद ।

मङ्गलाचरण

( १ )

मम्य बीरबिन मनोरथ पूण करते जो बुद्धा

उन बीरबिन चिन्त के परणामुजों से बलि सदा ।

आचारसूत्रे मुनिघासिलालः,

प्रयत्नतः साधुजनेष्टसिद्धये ।

आचारचिन्तामणिमादधेऽहं,

भव्याः सदैवं हृदि धारयन्तु ॥ २ ॥

अनेक लब्धिप्राहि चौदह पूर्वधारक जो तथा,

अध्यात्मशक्ति विभूतियुक्त विराजते है जिन यथा ॥

( २ )

आचार्य गणधर लोक हित गौतमपदाम्बुज में नती,

मेरी विराजे सर्वदा देवे विमल मति शुभ गती ।

निर्दोषतत्त्वनिरूपिणी उनकी समुज्ज्वल भारती,

घरते उसे हिय में सदा जो भव्यजन को तारती ॥

( ३ )

विनीत 'घासीलाल' मुनि जनता तथा मुनि के लिये,

भगवत्सुभाषितरत्न 'आचाराङ्ग गुणगुफित किये ।

मणिमालिका के रूपमें करते प्रकाशित है क्षमी,

आचारचिन्तामणि हृदयगृह में रखे जनता सभी ॥

( ४ )

जड द्रव्य चिन्तामणि हृदयपै बाहिरे जाते घरे,

'आचारचिन्तामणि' (टीका) हृदयमें वारिता तमको हरे ॥

सब भव्यजन ससार वन में घूमते इसको गहे,

जिससे प्रकाशित मार्ग हो निज लक्ष्य पद सत्वर लहे ॥

इह सार्द्धसतीयद्वीपास्यन्तरे पञ्चदशश्रेष्ठात्मकनन्दनकान्ते सम्यक्त्वालवालमध्ये  
 आत्मरूपा कसम्बा विश्रुतिस्थानकपुनःपुनःसमाराधनसंस्थितेन सधर्दिताः सत  
 स्तीयङ्कस्वरूपा अभिनवकल्पपादपा प्रादुर्भवन्ति ।

सम्पत्ति के समस्त मनोरथ पूर्ण करने बाळ श्री वीर मत्मान् को प्रणाम करके,  
 तथा विविध प्रकार की उन्मिया के भारक चौदह १२ पूर्वी के ज्ञाता आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न  
 श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके समस्त दोषों से रहित होने के कारण तथा वास्तविक  
 वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने के कारण उन्मयल चिन्तामणि को हृदय में धारण करके—

मैं 'घासीलास' मुनि प्रकृत करके सम्पत्तियों को तथा मुनिजना की इष्टिदि के स्थिते  
 आनन्दरूप सूत्र (दोः) में मग्नप्रकृत विविध आचाररूप मणियां मास्वरूपमें धिरोता  
 हूँ । सम्पन्न इसे सदैव अपने हृदयमें धारण करे । अद्वयस्वरूप चिन्तामणि हृदय पर  
 अर्थात् वक्ष स्थल पर धारण किया जाता है किन्तु यह आचारचिन्तामणि (टीका) हृदय में  
 धारण करने योग्य है ॥ २ ॥

इस अर्थाई द्वीप के भीतर पन्द्रह कर्मसूत्र रूप नन्दनवन में सम्पत्तस्वरूप कमारीमें  
 आत्मारूपी कसम्बा तीर्थहर गोत्र बांधने के कारणमूल बीस स्थानों की बारबार आराधना रूपी  
 कल्पे वृष्टिको प्राप्त होकर तीर्थहररूप नूतन कल्पवृक्ष उत्पन्न होते हैं ।

आचारराग सूत्रनी आचारचिन्तामणि टीकानो गुजराती अनुवाद.

अअसायरसु

सर्व लोकेना तमाम मनोरथ पूज्य कस्वावाण श्री वीर लजवानने प्रणाम करीने,  
 तथा विविध प्रकारनी उन्मियेना भारक चौद पूर्वीना ज्ञाता आध्यात्मिक शक्तिशी सम्पन्न  
 श्री गौतम जगधरने नमस्कार करीने सकल दोषोशी रहित होवानी कारणे तथा वास्तविक  
 वस्तुस्वरूपने प्रकाशित करवाना कारणे उन्मयल चिन्तामणीने हृदयमा धारण करीने—

हूँ धासीलास मुनि प्रकृत करीने, सर्व पुर्यो-लोकेनी तथा मुनिजनेनी धर्ष  
 शिद्धि भाटे श्री आत्मारूप सूत्र (दोः)मां लजवइकाचित-विविध आचार रूप  
 मणियोने आत्मारूपमा परेवुं हूँ सर्व अनुभव तेने रुमेयां हृदयमा धारण करे. अद्वय  
 रूप चिन्तामणि हृदय पर अर्थात् वक्षस्थल उपर धारण कराव छे किन्तु आ  
 आचारचिन्तामणि (टीका) हृदयमा धारण करवा योग्य छे २

आ श्री वीरनी अहरे, पहर कर्मसूत्रिणी नन्दन-वनमां सम्पत्तस्वरूप  
 कमारीमा आत्मारूपी कसम्बा-कसम्बा (श्री) तीर्थहरगोत्र बांधवाना कारणमूल वीस  
 स्थानोनी बारबार आराधनारूपी अलशी वृष्टि फरिने तीर्थहररूप नूतन-नवीन  
 कल्पवृक्ष उत्पन्न आव छे

तद्वचनेषु हि कल्पतरुकुसुमगतसौन्दर्यादिगुणाः समुपलभ्यन्ते । यथा—

(१)—सौन्दर्यम्, (२)—सुगन्धः, (३)—त्रिदोषनाशकत्वम्, (४)—सप्तधातु-  
पौष्टिकत्वम्, (५)—त्वग्रोमवलकरत्वम्, (६)—हृदयाह्लादकत्वम्, (७)—तापशमनत्वम्,  
(८) शोभाकारित्वम्, (९) उत्साहकत्वम्, (१०) स्फूर्तिकारकत्वम्, (११) वीर्य-  
वर्द्धकत्वम्, (१२)—श्रमहारित्वम्, (१३)—मधुरत्वम्, (१४)—स्निग्धत्वम्, (१५)—  
बहुदलत्वम्, (१६)—विषविनाशकत्वम्, (१७)—मकरन्दधारित्वम्, (१८)—  
व्याधिनाशकत्वम्, (१९)—विकसनशीलत्वम्, (२०)—तृष्णानिवारकत्वम्,

जैसे कल्प वृक्षों के फूलों में सौन्दर्य आदि गुण पाये जाते हैं उसी प्रकार तीर्थङ्करोंके वचनोंमें भी सौन्दर्य आदि सभी गुण पाये जाते हैं । दोनोंमें समान रूपसे पाये जाने वाले गुण इस प्रकार हैं—

(१)—सौन्दर्य, (२)—सुगन्ध, (३)—त्रिदोषनाशकता, (४)—सप्तधातुपुष्टिकरता,  
(५)—त्वक्-रोम-बलकारित्व, (६) हृदयाह्लादकत्व, (७) तापशमनत्व, (८) शोभाकारित्व,  
(९)—उत्साहकता, (१०)—स्फूर्तिजनकता, (११)—वीर्यवर्धकता, (१२)—श्रमहारित्व, (१३)—  
मधुरता, (१४)—स्निग्धता, (१५)—बहुदलता, (१६)—विषविनाशकता, (१७)—मकरन्द-  
(पुष्परस) धारित्व, (१८)—व्याधिनाशकता, (१९)—विकसनशीलता, (२०)—तृष्णा-

जैसी रीते कल्पवृक्षोना कुलोभा सौन्दर्य आदि गुणो देभाय छे, ते प्रमाणो तीर्थङ्करोना वचनोभा पणु सौन्दर्य आदि तभाभ गुणो देभाय छे अन्नेभा समान रूपथी देभाता गुणो आ प्रकारना छे—

(१)—सौन्दर्य, (२)—सुगन्ध, (३)—त्रिदोषनाशकपणु, (४)—सात धातुनी पुष्टि  
करना, (५)—आमडी, वाण-अणकारीपणु, (६)—हृदयने आनंदकारक, (७)—तापतु शमन  
करवापणु, (८)—शोभाकारीपणु, (९)—उत्साहकपणु, (१०)—स्फूर्तिजनकपणु, (११)—  
वीर्यवर्धकपणु, (१२)—श्रमनिवारणुपणु, (१३)—मधुरता (१४)—स्निग्धता-चिक्छा-  
पणु, (१५)—अहुदलता, (१६)—विषविनाशकपणु, (१७)—मकरन्द-पुष्परस-धारकता,  
(१८)—व्याधिनाशकता, (१९)—विकसनशीलता, (२०)—तृष्णानिवारकता,



(२१) मूर्छाहारकत्वम्, (२२) पथ्यत्वम्, (२३) मेध्यत्वम्, (२४) उत्कृष्ट  
मावोत्पादकत्वम्, (२५) अवयवसन्निवेशविशेषत्वम् ।

तत्र सौन्दर्यादिकं यथा कल्पतरुस्तुमेषु भगवद्रचनेषु च विद्यत, तथा  
प्रदर्शयामः—

स गुणाः	कल्पतरुस्तुमपथं	भगवद्रचनपथं
१ सौन्दर्यम्	मनोहराकृतिमस्त्वम्,	माधुर्यप्रसादगुणवस्त्वम्,
२ सुगन्ध	प्राणैन्द्रियवृत्तिमनकत्वम् ।	दिव्यध्वनिरूपत्वेन भगवद्रचन स्वार्थानार्थद्विपदक्षतुष्पदादीनां

निवारकता, (२१)—मूर्छाहारिण, (२२)—पथ्यता (२३) मेध्यता (२४)—उत्कृष्टमावो-  
त्पादकता, (२५)—अवयवसन्निवेशविशेषत्वम् ।

ये पचीस गुण कल्प वृक्षके फूलों में तथा भगवान् के बचनों में किस प्रकार समानरूप  
से पाये जाते हैं वह बतलाते हैं

सं गुण	कल्पवृक्षके फूलोंके पक्षमें	भगवान्के बचनोंके पक्षमें ।
(१) सौन्दर्य	मनोहर आकृति वाला	माधुर्य और प्रसाद गुण वाला
(२) सुगन्ध	प्राणैन्द्रियको तृप्त करने वाला	दिव्यध्वनिरूप होने के कारण आर्थ, अनार्थ, द्विपद, तथा

(२१)—मूर्छाहनिवारकता, (२२)—पथ्यता, (२३)—मेध्यता, (२४)—उत्कृष्ट मावोनु-  
त्पादकत्वम् अने (२५)—अवयवसन्निवेशविशेषत्वम्

आ पचीस गुणों कल्पवृक्षना फूलोंमें तथा भगवान्ना बचनोंमें क्वी ढीते  
समानपक्षे देणाम छे ते जतावे छे—

स. गुण	कल्पवृक्षना फूलोंना पक्षमा	भगवान्ना बचनोंना पक्षमा
(१) सौन्दर्य	मनोहर आकृतिवाला,	माधुर्य अने प्रसाद गुण सौन्दर्य
(२) सुगन्ध	प्राणैन्द्रियको तृप्त करने वाला	दिव्यध्वनिरूप होनेकी आर्थ अनार्थ छे यजवाणां तथा चार पञ्चवाणां

		स्वस्वभावापरिणतत्वेन तृप्ति- जनकत्वम् ।
३ त्रिदोषनाशकत्वम् ,	वात-पित्त-कफ नाश- कत्वम् ,	मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वमोहनीय दोषनाशकत्वम् ।
४ सप्तधातुपौष्टिक- त्वम् ,	रसासृङ्-मासमेदोऽस्थिम- ज्जाशुक्र-वर्द्धकत्वम् ,	द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-नया- भ्यां म्यादस्त्यादिमत्तभङ्गाना पुष्टिकरत्वम् ।

		चतुष्पद आदि की अपनी २ भाषा में परिणत होजानेके कारण तृप्तिकारक ।
(३) त्रिदोषनाशकत्वम् ,	वात पित्त और कफ इन तीन दोषों को दूर करने वाला ।	मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय इन तीन कर्मों को नष्ट करने वाला ।
(४) सप्तधातुपौष्टि- कत्वम् ,	रस, रक्त, मास, मेद, हड्डी और वीर्य, इन सात धातुओं को बढ़ाने वाला ।	द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा कथञ्चित् अनित्यता आदि सात भगो का पोषक ।

एतेने पोत पोतानी लापामा  
पण्डित डोवाना डारणे  
तृप्तिकारक

(३) त्रिदोषनाशकत्वम् ,	वात, पित्त अने कफ, आ त्रिषु दोषोने दूर करवा वाला	मिथ्यात्व, मिश्र अने सम्य- कत्व-मोहनीय, आ त्रिषु कर्मोने नाश करनार
(४) सातधातुने पुष्ट, करवापण्डु	रस, रक्त मास, मेद, हड्डिका मज्जा अने वीर्य, आ सात धातुने बलवान करनार	द्रव्यार्थिक अने पर्यायार्थिक- नयनी अपेक्षाके कथञ्चित् नित्यता कथञ्चित् अनित्यता आदि सात लक्षणो पोषक

५ त्वग्रोमबलकरत्वम्,	शारीरिकविकारहारकत्वम्	आत्मचित्त आचरौद्रघ्यानात्मकविकारस्य निवारकत्वम्।
६ हृदयाहादकत्वम्,	हृदयमात्रेण हृदयसुखजनकत्वम्	श्रवणमात्रेण सर्वेषां पाणिनाममन्दानन्दजनकत्वम्।
७ तापशमनत्वम्,	शैत्यगुणवत्त्वेन तापहारकत्वम्,	शान्तरसवत्त्वेन कृपायानलत्वापहारकत्वम्।
८ शोभाकारित्वम्,	भूषणरूपेण द्युतिवर्द्धकत्वम्,	मिथ्यात्वादिकालुष्यापहरणपूर्वकमात्मतन्त्रप्रकाशकत्वम्।

- (५) त्वग् रोमबलकरत्वम् शरीरसंबन्धी विकार दूर करने वाला।
- (६) हृदयाहादकत्वम्, हृदि पड़ते ही हृदयको आनन्दित करने वाला।
- (७) तापशमनत्वम् शीतल होने से सन्ताप हरने वाला।
- (८) शोभाकारित्वम् भूषणरूप होने के कारण शोभा बनाने वाला।
- अप्यमा के आतप्यान और शौद्रप्यानरूप विकारको नाशक।
- कानमें पड़तेही प्राग्मिमात्र को अत्यंत आनन्द देने वाला।
- शान्तरसमय होने के कारण कृपावर्धनित सन्तापको मट करने वाला।
- मिथ्यात्व आदि की मर्ममला दूर करके आभासा तेज प्रमदाने वाला।

(५) आभरी करने वाली अन्तःकारक	शरीरसंबन्धी विकार दूर करने	आत्मान्ता आत्मस्थान करने शौद्र आनन्द रूप विकारोन्ने नाश करने
(६) हृदयने आनंदकारी	हृदि पड़ने पर हृदयने आनंद आपनाने	कानमात्र मात्र आनी मात्रने आत्मन्ता आनंद आपनाने
(७) तापनिवारण करने	शीतल होनाभी सन्ताप दूरनाने	शान्तरसमय होनाभी कृपावर्धनित सन्तापने नाश करने
(८) शोभाधारीत्वम्	धूषणरूप होनाभी शोभा बंधाने	मिथ्यात्व आदिनी मर्ममला दूर करीने आत्माना तेजने प्रमदाने

- ९ उत्साहकत्वम्, उत्साहजनकत्वम्, प्रमादपञ्चकनिवारकत्वेन धर्मा-  
राधने योगत्रयोत्तेजकत्वम् ।
- १० स्फूर्तिकारकत्वम्, हर्षोत्पादकत्वेन स्वेष्टला- मोक्षाय पराक्रमस्फोटनत्वम् ।  
भाय प्रवृत्तिजनकत्वम्,
- ११ वीर्यवर्द्धकत्वम्, सकलेन्द्रियशक्तिदायकत्वम्, तपःसंयमाभ्यामात्मबलोत्कर्ष  
कत्वम् ।

- (९) उत्साहकत्व, उत्साह उत्पन्न करने वाला । पाच प्रमादों का निवारण  
करके धर्म की आराधना में  
तीनों योगों को उत्तेजित  
करने वाला ।
- (१०) स्फूर्तिकारकत्व, हर्षजनक होने के कारण मोक्ष के लिये पराक्रम फोड़ने  
अपनी इष्ट सिद्धि के लिये प्रवृत्ति की प्रेरणा करने वाला ।  
कराने वाला ।
- (११) वीर्यवर्धकत्व सब इन्द्रियों को शक्ति देने तप, और संयम द्वारा आध्या-  
त्मिक बल बढ़ाने वाला ।

- (९) उत्साहकत्व उत्साह उत्पन्न करना पाच प्रमादों का निवारण  
करने धर्म की आराधना में  
तीनों योगों को उत्तेजित  
आपनार
- (१०) स्फूर्ति उत्पन्न हर्ष उत्पन्न करना होवार्थी मोक्ष माटे पराक्रम करवानी  
करवापण्य चेतानी धर्मनुसार सिद्धि प्रेरणा करना  
माटे प्रवृत्ति करवानार
- (११) वीर्यवर्धकत्व तमाम इन्द्रियों को शक्ति तप अने संयम द्वारा आध्या-  
त्मिक बल बढ़ानार,

१२ भ्रमहारित्वम्,	सौगन्ध्यादिविषिषणुभोक्त पेयं तत्तदिन्द्रियाणां वैषि स्यनिवारकत्वम्,	चतुर्गतिपरिभ्रमणैः भ्रान्तानां भवभ्रमभोपरमेभ सेदात्पन्तिक भिर्चंसकत्वम् ।
१३ मधुरत्वम्,	मधुररसवस्त्वम्,	अपूर्वाक्षयधियसुस्वानुमत्तात्मक रसत्वम् ।
१४ स्निग्धत्वम्,	सुमन्वस्पर्शकत्वम्,	भवभ्रमाप्रेषाऽऽत्मनः प्रतिप्रदेशं धर्मानुरागमनकत्वम् ।

(१२) भ्रमहारित्व	सुगन्ध आदि कमक गुणा की अधिकता होनेसे उससे इन्द्रियों की शक्तिरूपा दूर करने वाला ।	चार गतियों में भ्रमण करके बके हुए प्राणियों का भ्रम- भ्रमण मिटाकर उनके सेदको सर्वथा नाश करने वाला ।
(१३) मधुरत्व	मधुर रस वाला ।	अपूर्व अविनाशी मोक्षसुखकी- अनुभूति रस वाला ।
(१४) स्निग्धत्व	चिकित्सापन ।	ज्ञान में पड़ते ही भ्रमण के प्रत्येक प्रदेश में धर्मानुराग जगान वाला ।

(१२) भ्रमनिवारण इत्यापद्य	सुगन्ध आदि अनेक सुखेनी विशेषता होवाची ते ते धर्मेणोनी शिथिलता इर इत्यादि.	चार गतिभ्रमों अमल करीने बाही जसेवा एतेना अथ अमलने निवारण करीने तेना जेइने सुवधा नाश इत्यादि
(१३) मधुरत्वम्	मधुर रसवत्त्वम्,	अपूर्व अविनाशी मोक्ष सुखना अनुभव हुए रसवाजी
(१४) स्निग्धता	चिकित्सापद्य	ज्ञानमें पड़तां अ आप्तपाना इरेके-इरेक भ्रमेशमा धर्मानु- गत अजाइत्यादि

- १५ बहुदलत्वम्, शतपत्रमहस्रपत्रादिरूपेणा- स्वपत्रममयस्वरूपप्रदर्शकबहुवि-  
ऽधिकपत्रवच्चम्, धप्रमाणनयनिक्षेपादिवच्चम् ।
- १६ विषविनाशकत्वम्, स्थावरजङ्गमविषहारकत्वम्, विषयवासनाऽपहाङ्कत्वम् ।
- १७ मकरन्दधारित्वम्, परागवच्चम्, अनित्यादिभायनाजनितवैरा-  
ग्यवच्चम् । (१)

(१५) बहुदलत्व, गतपत्र, सहस्रपत्र आदि रूपसे स्वसमय और पत्रसमय के  
बहुत पत्तोंवाला । स्वरूपका प्रकाशक होने के  
कारण भाति-भाति के प्रमाण,  
नय, निक्षेप, आदि से युक्त ।

(१६) विषविनाशकत्व, स्थावर और जङ्गम विष का नाश विषय वासनारूप विषका नाश  
करने वाला । करने वाला ।

(१७) मकरन्दधारित्व, पुष्परसवाला । अनित्य आदि वारह भावनाओं  
से उत्पन्न वैराग्यजनित शान्त  
रस वाला ।

(१५) बहुदलता सो पत्र, डल्लर पत्र आदि स्वसमय अने परसमयना  
रूपथी धल्ला पत्रो ( पाहडा ) स्वरूपना प्रकाशक होवाना  
वाणा डारखे नूही नूही जातना  
प्रमाण, नय, निक्षेप आदिथी  
युक्त

(१६) विषनाशकत्व. स्थावर अने जगम विषनो विषयवासनारूप विषनो-अरेनो  
नाश करनार नाश करनार

(१७) मकरन्द-धारित्व कुल्लोना रस वाणा अनित्य आदि धार भावना-  
ओधी उत्पन्न वैराग्यजनित  
शातरस प्रगटावनार

१. वैराग्यवच्चम्-प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धेन ।

१८ व्याधिनाशकत्वम्,	क्षतध्यादिसकलावज्जुनिवा रक्तत्वम् ,	सर्वधातिप्रभृतिसकलकर्मनाशक त्वम् ।
१९ विकसनशीलत्वम्,	मुकुलितपत्रस्फुटन स्वभाव त्वम् ,	अनन्तकालप्रसुप्तात्मगुणविक्र सित्वम् ।
२० वृष्यानिवारकत्वम् ,	अमिसापापहारकत्वम् ,	विषयामिषापनिवर्षकत्वम् ।
२१ मूर्च्छाहारकत्वम् ,	नप्येषानिवारकत्वम् ,	मोहविनाशकत्वम् ।

(१८) व्याधिनाशकत्व	मय आदि समस्त व्याधियोंको हटानेवास्म ।	सर्वधामि आदि समस्त कर्मोंका नाश करने वास्म ।
(१९) विकसनशीलत्व	कमला विकसित होता जानेवास्म ।	अनन्तकालसे सते पडे आत्मा के गुणोंका विकास करनेवास्म ।
(२०) वृष्यानिवारकत्व	सम्पत्ता हटानेवास्म ।	विषयों की अमिसापाप दूर करने वास्म ।
(२१) मूर्च्छाहारकत्व	मूर्च्छा (बिहोसी) मिटाने वास्म ।	मोह का नाशक ।

(१८) व्याधि विनाशक पद्य	कम आदि तमाम व्याधिजोने निवारण करुणार	सर्वधाति प्रभृति आदि तमाम कर्मोंने नाश करुणार
(१९) विकासवापद्य	कमला: विकास भवभाववाण।	अनन्त कालसे सुता पडेला आत्माना शुद्धिने: विकास करुणार.
(२०) वृष्यानिवारकपद्य	लास्य दूर करुणार	विषयोंनी अमिसापाप दूर करुणार

२२ पथ्यत्वम्	हितकरत्वम् ,	गैहिकपारत्रिकगुणोन्पादकत्वे- नान्मनो नितान्तोपकारित्वम् ।
२३ मेध्यत्वम् ,	पवित्रत्वम् ,	मिथ्यात्वमलाभावेन नैर्मल्यम् ।
२४ उत्कृष्टभावोत्पा- दकत्वम्	दैन्यशोकादिजनितदुश्चिन्त- नापनयेन विशुद्धविचारा- ऽऽविष्कारकत्वम् ।	विभावपरिणामजन्यदुर्वासनाप- नयनेन तीर्थङ्करगोत्रोपार्जन- योग्यविशिष्टभावनाजनकत्वम् ।

(२२) पथ्यत्व, हितकर । उल्लोक और परलोक सम्बन्धी  
सुखजनक होनेसे आमा का  
अचन्त उपकारी ।

(२३) मेध्यत्व, पवित्रता वाला । मिथ्यावादि पाच आसव रूपा  
मल स रहित होने के कारण  
निर्मल ।

(२४) उत्कृष्टभावोत्पा- दैन्यशोक धादि से उत्पन्न  
दकत्व, हुई चिन्ता को दूर करके  
विशुद्ध विचार उत्पन्न  
करने वाला । विभाव परिणति द्वारा जनित  
दुर्वासना को दूर करके तीर्थङ्कर  
गोत्र वाघने के योग्य विशिष्ट  
भावनाको उत्पन्न करने वाला ।

(२२) पथ्यता उचितकर आ लोक अने परलोक स भ धी  
सुख उत्पन्न करनार होवाथी  
आत्माने अत्यन्त उपकारी.

(२३) मेध्यता पवित्रता करनार मिथ्यात्व आदि पाच आश्रव  
रूपा भणथी रहित होवाना  
कारणो निर्मल

(२४) उत्कृष्ट भावो उत्पन्न दैन्यशोक आदिथी उत्पन्न विभाव परिणति द्वारा उत्पन्न  
करवापछुं थनार चिन्ताने दूर करीने थयेली दुर्वासनाने दूर करीने  
विशुद्ध विचार उत्पन्न करनार तीर्थं कर गोत्र पाधवा योग्य  
विशिष्ट भावना उत्पन्न  
करनार



२५ अवयवसन्निवेश- सकलावयवपूर्णत्वम्, सकलाज्ञोपाङ्गपूर्णत्वम् ।

विशेषणत्वम्

तीर्थहरकल्पपादपानां षडतन्मूलानि गणधराः भद्रामूर्ते संप्रत्य्य गद्य-  
पद्यात्मकविधिविधाज्ञोपाङ्गरूपा मामा व्यगिरचन । अथ सा माता इदय निभाय तत्-  
ज्ञसमाहर्ष स्वस्मनि भावयन्तो मावितास्मान सन्तो ज्ञानक्रियाम्यां कर्मरजोऽप-  
नीय बाधापीडाऽवजितमपुनरावृत्तिं सिद्धिगतितानामवेयं शिवपदं समाभयन्ति,  
भवमीस्व मन्यानपि तत्पदं प्रापयन्ति ।

(२५) अवयवसन्निवेश- सब अवयवों से परिपूर्ण । सब भाँडा और उपाङ्गति युक्त ।

विशेषणत्व

तीर्थहररूपी कल्पवृक्षा के बचनरूपी पुष्पां को गणधराने भद्रारूपी सूत्रमं गूँधकर गद्य-  
पद्यरूप विधिव अङ्गउपाङ्गमय माताएँ रनी उन माताओं को बाण करके उनकी महत्ता  
का अन्व-करण में विचार करते हुए माहितरमा पुरुष ज्ञान और क्रिया के द्वारा कर्मरजो  
हटाते हैं । तथा सब प्रकार की बाधा और पीडासे रहित, जिन्हें पाकर फिर कमी कामा नहीं  
पडता ऐसे सिद्धिगतिरूप शिवपद प्राप्त करते हैं साथ ही भवमीक अथ मम्म बीना का  
भी उसी पद की प्राप्ति करते हैं ।

(२५) अवयवसन्निवेशानु- सब अवयवोंकी परिपूर्ण सब अथि अने उपविधिभुक्ता  
विशेषणत्व

तीर्थ हरणी कल्पवृक्षोन्य वचनरूप पुष्पाने, अक्षयशोभे भद्रारूपी सूत्र दोशमां  
भुक्ती करी अद्य-पद्यरूप विधिव अज-उपगमस माताओं रनी ते माताजाने त्वहसमां  
भास्व करीने तेनी भद्रत्वाने अताकश्यमां विचार करार भावितात्मा पुरुषज्ञान अने  
क्रिया द्वारा कर्मरजोऽपुने हर करे छ तथा सब प्रकारकी उपाधि अने पीडाकी रहित,  
जने प्राप्त करीने इरीकी कर्तव्यपय अल्पपु पडत नकी कोवी सिद्धिअतिरूप शिवपदने  
प्राप्त करे छ तेमन्त बनकीइ अन्त बन्त लयेने यद्य ते यः ( शिवपद )नी अस्ति  
कश्ये छे ।

કલ્પપાદપા હિ એહિકમેવાધ્રુવ ક્ષણભદ્ગુરં સુખં પ્રદાતુમીશતે, ઇમે તુ લોકોત્તર-  
મક્ષયં શાશ્વતં સુખ વિતરન્તિ । લૌકિકસુખં તુ સુતરાં સિદ્ધમેવ, ન પુનસ્તત્ર  
પ્રદાનાપેક્ષેતિ ભાવઃ ।

ભગવદ્વચનેષુ પશ્ચત્રિંશદ્ અતિશયા લોકોત્તરાઃ સર્વેરનુભૂયન્તે, પશ્ચત્રિંશતો-  
ત્તિશયાનાં સમવાયાદ્ગમ્ત્રે નિર્દેશાત્ । તથા ચ સૂત્રમ્—“પળતીસ સચ્ચવયળાઙ્સેસા  
પળ્લત્તા” ઇતિ । પશ્ચત્રિંશત્ સત્યવચનાતિશેપાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, ઇતિ ચ્છાયા । સત્ય-  
વચનં — ભગવદ્વચન સકલહિતકરત્વાત્, તસ્ય અતિશેપાઃ = અતિશયાઃ પશ્ચ-  
ત્રિંશત્ પ્રજ્ઞપ્તાઃ કથિતાઃ, ઇત્યર્થઃ । તત્રૈતે પશ્ચત્રિંશદતિશયાઃ—પરંપરયાઽવગમ્યન્તે—

કલ્પવૃક્ષ તો ડસી લોકસમ્બન્ધી સુખ દે સકતે હૈ ઓર વહ સુખ મી અધ્રુવ ઓર  
ક્ષણભદ્ગુર હોતા હૈ, કિન્તુ તીર્થદ્ગર મગવાન્ લોકોત્તર અક્ષય ઓર શાશ્વત સુખ પ્રદાન કરતે હૈ ।  
લૌકિક સુખ તો કિસાન કે લિયે મૂસે કે સમાન સ્વત સિદ્ધ હૈ હી—વહ આનુપદ્ધિક હૈ ।

મગવાન્ કે વચનોં મે પૈતીસ લોકોત્તર અતિશયોં કા સમી પ્રાણિયોં કો અનુભવ હોતા  
હૈ । શ્રી સમવાયાદ્ગમ્ત્રે મે પૈતીસ અતિશયોં કા ઉલ્લેખ પાયા જાતા હૈ । મૂલ પાઠ ઇસ પ્રકાર  
હૈ—“પળતીસં સચ્ચવયળાઙ્સેસા પળ્લત્તા ।”

અર્થાત્ સત્ય વચન કે પૈતીસ અતિશય—ગુણ કહે ગયે હૈ ।

કલ્પવૃક્ષ તો આ લોક સમ્બન્ધી સુખ આપી શકે છે અને તે સુખ પણ અધ્રુવ  
અને ક્ષણભુલ ગુર હોય છે, પરન્તુ તીર્થ કર ભગવાન લોકોત્તર અક્ષય અને શાશ્વત—નિત્ય  
સુખ આપેછે, લૌકિક સુખ તો ખેડુત માટે ભુશકા ( અનાજ વિનાના ક્ષેતરા ) સમાન  
સ્વાભાવિક સિદ્ધ છે

ભગવાનના વચનોમા પાત્રીશ લોકોત્તર અતિશયોનો સર્વ પ્રાણીઓને અનુભવ  
થાય છે, શ્રી સમવાયાગ સૂત્રમા એ પાત્રીશ અતિશયોનો ઉલ્લેખ જોવામા આવે છે  
મૂલ પાઠ આ પ્રકારે છે— “ પળતીસ સચ્ચવયળાઙ્સેસા પળ્લત્તા ”

અર્થાત્—સત્ય વચનના પાત્રીશ અતિશય ગુણ કહેવામા આવ્યા છે અહિં સત્ય-  
વચનનો અર્થ છે—ભગવાનના વચન, કેમકે તે સર્વ હિત કરનારા છે તે વચનોનો અતિશય  
અર્થાત્ ગુણ પાત્રીશ છે પરપરાના નિયમ પ્રમાણે પાત્રીશ અતિશય આ પ્રમાણે  
માનવામા આવ્યા છે—

(१) सस्कारवत्त्वम् = प्रकृतिमस्यपस्मिन्नवधनादियुक्तत्वम् । (२) उदात्तत्वम् = भोत्वमुद्योतत्वम् (३) उपचारोपेतत्वम् = अथाङ्गमनमापाकदस्तीलादि दोषरहितत्वम् । (४) गम्भीरध्वनित्वम् = मेघवद् गम्भीरनादवत्त्वम् । (५) अनुनादित्वम् = प्रतिध्वनित्वम् । (६) दक्षिणत्वम् = श्वश्रुत्वम् । (७) उपनीतरागत्वम् = मालकोशरागगुणवत्त्वम्, यथा मालकोशरागः प्रस्तरानपि द्रावयति, तथा कठिनचेतसोऽपि जनान् मगबद्धवन द्रावयतीति इत्यद्रावकत्वमिति भावः । (८) महायत्वम् = मोक्षमार्ग-

यही सत्य वचन का अर्थ है—मगवान के वचन, क्योंकि वे सके रित करने वाले हैं। उन वचनों के—बाणोंके अन्तिम अर्थात् गुण पैंतीस हैं। परम्परा के अनुसार बाणोंके पैंतीस गुण इस प्रकार माने जाते हैं—

(१) सस्कारवत्त्व—प्रकृति प्रथम सिद्ध वचन यदि स युक्त होना (२) उदात्ता—भोताओं के लिये सुगम । (३) उपचारोपेता—नौचारों की भाषा में पाये जाने वाले अक्षरोंका यदि दोषों से रहित । (४) गम्भीरध्वनित्व—मेघकी समान गम्भीर नाद होना । (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनित युक्त होना । (६) दक्षिणता—सरस्वता । (७) उपनीतरागवत्त्व—मालकोश राग सरसीसा गुण होना, अर्थात् बैध— मालकोश राग पापाण को भी पिच्छ देता है, उसी प्रकार मगवान् के वचन कठोर हृदय को भी पिच्छ देते हैं। तत्पर्य यह है कि—मगवान के वचन बड़े ही इत्यद्रावक होते हैं । (८) महायता—मगवान् के वचन मोक्ष—मार्ग के प्रतिपादक होने से प्रकृतपूर्ण और अर्थ

(१) स स्कारवत्त्व—प्रकृति, प्रथम सिद्ध, वचन अदिधी युक्त अननु (२) उदात्तता—भोताओं के लिये सुगम (३) उपचारोपेता—भूष—न गभी मालकोशनी भाषामा लोचामा आवत्ता अक्षरहीत—अक्षर, शरभ आवे लेवा भाषाना दोषो रहित. (४) गम्भीरध्वनित्व मेघना लोचो न नीर शब्द. (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनि युक्त होतु (पदमात्र पद्य) (६) दक्षिणता सरस्वता (७) उपनीतरागत्व—मालकोश राग लेवे शुभ होतु अर्थात्—लेवी दीते मालकोश राग पश्चरने पञ्च पित्राणी दे छे ते प्रभावे अगवानना वचने कठोर हृदय चामा भावुसने पञ्च पित्राणी दे छे त्पथ जे छे के—अत्रचानना वचन महान हृदय द्रावक होव छे (८) महायता—अत्रचानना वचन मोक्षमार्गनु प्रतिपादन इत्यन्त छे तेही महत्वपूर्ण अने अथवी युक्त होव छे (९) अन्त्यादतपोर्वापर्य—पूर्वापर

કલ્પપાદપા હિ ઐહિકમેવાધ્રુવ ક્ષણમહ્નુરં સુખં પ્રદાતુમીશતે, ઇમે તુ લોકોત્તર-  
મક્ષય શાશ્વતં સુખ વિતરન્તિ । લૌકિકસુખં તુ મૃતરાં સિદ્ધમેવ, ન પુનસ્તત્ર  
પ્રદાનાપેક્ષેતિ ભાવઃ ।

મગવદ્વચનેષુ પશ્ચત્રિંશદ્ અતિશયા લોકોત્તરાઃ સર્વેરન્નુભૂયન્તે, પશ્ચત્રિંશતો-  
તિશયાનાં સમવાયાઙ્ગમૂત્રે નિર્દેશાત્ । તથા ચ મૂત્રમ્—“પળતીસં સચ્ચવયળાઙ્ગસેસા  
પળ્લત્તા” ઇતિ । પશ્ચત્રિંશત્ સત્યવચનાતિશેપાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, ઇતિ ળ્છાયા । સત્ય-  
વચનં — મગવદ્વચન સકલહિતકરત્વાત્, તસ્ય અતિશેપાઃ = અતિશયાઃ પશ્ચ-  
ત્રિંશત્ પ્રજ્ઞપ્તાઃ કથિતાઃ, ઇત્યર્થઃ । તત્રૈતે પશ્ચત્રિંશદતિશયાઃ—પરંપરયાઙ્ગમ્યન્તે—

કલ્પવૃક્ષ તો ડસી લોકસમ્બન્ધી સુખ દે સકતે હૈ ઓર વહ સુખ મી અધ્રુવ ઓર  
ક્ષણમહ્નુર હોતા હૈ, કિન્તુ તીર્થદ્ધર મગવાન્ લોકોત્તર અક્ષય ઓર શાશ્વત સુખ પ્રદાન કરતે હૈ ।  
લૌકિક સુખ તો કિસાન કે લિયે મૂસે કે સમ્માન સ્વત સિદ્ધ હૈ હી—વહ આનુપદ્ધિક હૈ ।

મગવાન્ કે વચનોં મે પૈતીસ લોકોત્તર અતિશયોં કા સમી પ્રાણિયોં કો અનુભવ હોતા  
હૈ । શ્રી સમવાયાઙ્ગમૂત્ર મેં પૈતીસ અતિશયોં કા ઉલ્લેખ પાયા જાતા હૈ । મૂલ પાઠ ઇસ પ્રકાર  
હૈ—“પળતીસં સચ્ચવયળાઙ્ગસેસા પળ્લત્તા ।”

અર્થાત્ સત્ય વચન કે પૈતીસ અતિશય—ગુણ કહે ગયે હૈ ।

કલ્પવૃક્ષ તો આ લોક સમ્બન્ધી સુખ આપી શકે છે અને તે સુખ પણ અધ્રુવ  
અને ક્ષણભ્રુ ગુર હોય છે, પરન્તુ તીર્થ કર લગવાન લોકોત્તર અક્ષય અને શાશ્વત—નિત્ય  
સુખ આપે છે, લૌકિક સુખ તો ખેડુત માટે ભુશકા ( અનાજ વિનાના ક્ષેત્ર ) સમાન  
સ્વાભાવિક સિદ્ધજ છે

લગવાનના વચનોમા પાત્રીશ લોકોત્તર અતિશયોનો સર્વ પ્રાણીઓને અનુભવ  
થાય છે, શ્રી સમવાયાગ મૂત્રમા એ પાત્રીશ અતિશયોનો ઉલ્લેખ જોવામા આવે છે  
મૂલ પાઠ આ પ્રકારે છે— “ પળતીસ સચ્ચવયળાઙ્ગસેસા પળ્લત્તા ”

અર્થાત્—સત્ય વચનના પાત્રીશ અતિશય ગુણ કહેવામા આવ્યા છે આહિં સત્ય-  
વચનનો અર્થ છે—લગવાનના વચન, કેમકે તે સર્વ હિત કરનારા છે તે વચનોનો અતિશય  
અર્થાત્ ગુણ પાત્રીશ છે પરપરાના નિયમ પ્રમાણે પાત્રીશ અતિશય આ પ્રમાણે  
માનવામા આવ્યા છે—

(१) संस्कारवत्त्वम् = प्रकृतिप्रत्ययसंज्ञिवचनादियुक्तत्वम् । (२) उदाचत्वम् = भोक्तृसुवेद्यत्वम् (३) उपचारोपेतत्वम् = अप्राज्ञमनमापाब्दसीतादिदोषरहितत्वम् । (४) गम्भीरध्वनित्वम् = मधक्त्वं गम्भीरनादवत्त्वम् । (५) अनुनादित्वम् = प्रतिध्वन्दोपेतत्वम् । (६) वक्षिण्यत्वम् = श्वसुत्वम् । (७) उपनीतरागत्वम् = मालकोत्तरागगुणवत्त्वम्, यथा मालकोत्तरागमस्तरानपि द्रावयति, तथा कठिनवेत्सोऽपि जनान् ममवद्वचनद्रावयतीति हृदयद्रावकत्वमिति भावः । (८) महार्थत्वम् = मोक्षमार्ग

जहाँ सब बचन का अर्थ है—भगवान् के बचन क्योंकि वे सबके हित करने वाले हैं । उन बचनों के—बाणिके अतिराम अर्थात् गुण पैंतीस हैं । परम्परा के अनुसार बाणिके पैंतीस गुण इस प्रकार माने जाते हैं—

(१) संस्कारवत्त्व—प्रकृति प्रत्यय, संज्ञा वचन आदि से युक्त होना (२) उदाचता—अन्ताभा के लिये सुगम । (३) उपचारोपेतता—सँचारे की भाषा में पाये जाने वाले अक्षरमिष्टा आदि दोषों से रहित । (४) गम्भीरध्वनित्व—मधक्की समान गम्भीर नाद होना । (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनिसे युक्त होना । (६) वक्षिण्यता—सस्वता । (७) उपनीतरागत्व—मालकोत्तराग सरिता गुण होना, अर्थात् जैसे—मालकोत्तराग वावाण को भी पिपस्व देता है, उसी प्रकार भगवान् के बचन कठोर हृदय को भी पिपस्व देते हैं । तात्पर्य यह है कि—भगवान् के बचन बड़े ही हृदयप्राप्तक होते हैं । (८) महार्थता—भगवान् के बचन मोक्ष-मार्ग के प्रतिपादक होने से महत्वपूर्ण और अर्थ

(१) संस्कारवत्त्व—प्रकृति, प्रत्यय विंग, वचन आदिसे युक्त अननु (२) उदाचता—भोक्तृसुवेद्य भाटे सुगम (३) उपचारोपेतता—भूष-व गली भावुसेनी भाषाम् अवेवाम् ज्ञवता अरबील-असज, शरभ आवे तेवा भाषाम् दोषे रहित (४) गम्भीरध्वनित्व मेधना जेवेज कीर शब्द (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनि युक्त होवु (५) माह्य वचु (६) वक्षिण्यता सरवता (७) उपनीतरागत्व—मालकोत्तराग जेवे सुषु होवु अर्थात्—जेवी शीते मालकोत्तराग पध्धने पवु पिजणवी दे छे ते प्रभावे भगवानना वचने कठोर हृदय वाण्य भावुसने पवु पिजणवी दे छे तात्पर्य जे छे के—भगवानना वचन भक्तान हृदय द्रावक होय छे (८) महार्थता—भगवानना वचन मोक्षमार्गनु प्रतिपादन कर्नास छे तेवी महत्वपुषु अने अर्थवी युक्त होय छे (९) अनुनादित्वोपात्त—पूर्वपर

प्रतिपादकत्वेन महत्वविशिष्टार्थकत्वम् (९) अव्याहृतपौर्वापर्यत्वम् । = पूर्वापर-  
 विरोधराहित्यम् । (१०) शिष्टत्वम् = शिष्टाभिमततत्त्वबोधकत्वम् । (११) असं-  
 दिग्धत्वम् = अभिधेयार्थानां स्फुटतया प्रतिपादनेन संशयाजनकत्वम् । (१२)  
 अपहृतान्योत्तरत्वम् = सकलगुणपूर्णत्वेन परकृतदोषान्वेषणाऽविषयत्वम् । (१३)  
 हृदयप्राहित्वम् = सर्वेषां प्राणिनां श्रवणमात्रेण हृदयहारित्वम् । (१४) देशकाला-  
 व्यतीतत्वम् = द्रव्यक्षेत्रकालभावानुकूलत्वम् । (१५) तत्त्वानुरूपत्वम् = विवक्षित  
 वस्तुद्रव्यपर्यायस्वरूपप्रकाशकत्वम् । (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्वम् = प्रसङ्ग विना-  
 न विस्तीर्णत्वं नातिसंक्षिप्तत्वम् (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्वम् = पदानामर्थानां वा

से युक्त होते हैं । (९) अव्याहृतपौर्वापर्य-पूर्वापर विरोध से रहित होते हैं । (१०)  
 शिष्टता-शिष्ट पुरुषों द्वारा स्वीकृत तत्त्व का बोध कराते हैं । (११) असंदिग्धता-अभिधेय  
 अर्थ का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करने के कारण संशयजनक नहीं होते । (१२) अपहृता-  
 न्योत्तरत्व-समस्त गुणों से युक्त होने के कारण दूसरे वादी उनमें कोई दोष नहीं निकाल  
 सकते । (१३) हृदयप्राहित्व-समस्त श्रोतागणों के हृदय को हरण करने वाले । (१४) देशकाल-  
 लाव्यतीतत्व-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुकूल । (१५) तत्त्वानुरूपत्व-विवक्षित  
 वस्तुके द्रव्य और पर्याय का स्वरूप प्रकाशित करने वाले (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्व-

विशेषार्थी रक्षित होय छे (१०) शिष्ट पुरुषों द्वारा स्वीकारेला तत्त्वने बोध करावे छे  
 (११) असंदिग्धता-अभिधेय-वाक्यार्थनु स्पष्ट रूपार्थी प्रतिपादन करवाना कारण्ये स शय  
 उत्पन्न थतो नथी (१२) अपहृतान्योत्तरत्व-समस्त गुणोर्था युक्त होवार्थी यीन पक्षना  
 वादीनेमा कोर्ष पणु प्रकरने दोष काडी शकता नथी (१३) हृदयप्राहित्व-समाप्त श्रोता  
 वर्गना हृदयने उरुणु उन्वावाणा (१४) देशकालाव्यतीतत्व-द्रव्य, क्षेत्र काल अने  
 भावने अनुकूल (१५) तत्त्वानुरूपत्व-विवक्षित-वस्तु अटके भोलवा भाटे मनमा नक्षी  
 करेणु, तेना द्रव्य अने पर्यायना स्वरूपने प्रकाशित करवावाणा (१६) अप्रकीर्ण-प्रसृतत्व  
 प्रसङ्ग विना विस्तार रक्षित नरुद्धि कडेणु, तथा संक्षेपमा नरुद्धि कडेणु (१७) अन्योन्य  
 प्रगृहीतत्व-पूर्वापर पदोनी अने अर्थोनी अपेक्षा सम्भवा वाणा, अर्थार्थ प्रकरण सगत

पूर्वापरसापेक्षत्वम् । (१८)—अभिजातत्वम् = सूक्ष्मस्यापि भीषादिस्वरूपस्य बाह्यप  
 प्रत्यक्षीकरमवत्प्रतिपादकत्वम् । (१९)—अतिस्निग्धमधुरत्वम्=अमृतत्ववृत्तिमनकत्वम् ।  
 (२०)—अपरमर्मवेधित्वम् = परममोहादनरहितत्वम् । (२१)—अर्धधर्माभ्यासान-  
 पेक्षत्वम्=पारमार्थिकार्थमबोधकत्वम् (२२)—उदारत्वम्=सर्वप्राणिकल्याणकारित्वं,  
 तुच्छार्पणमिधायकत्वं वा । (२३)—परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रमुक्तत्वम् = परोक्षेपात्म-  
 पक्षसाहीनत्वम् (२४)—उपगतस्त्रापत्वम् = सकलद्वितकरत्वेन समादतत्वम् (२५)—

प्रसङ्ग के बिना न कहना, न विस्तारयुक्त और न संक्षिप्त कहना (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्व  
 पूर्वापर पदों की और अर्थ की अपेक्षा रखनेवाले अर्थात् प्रकरणसङ्गत, (१८) अभि-  
 जातता — भीष आदि के अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूपको भी इतना स्पष्ट निरूपण करने वाले  
 जैसे कि बालों से देख रहे हों (१९) अतिस्निग्धमधुरता — अमृत के समान  
 वृत्तिकारक, (२०) अपरमर्मवेधित्व — दूसरों के मर्म को न प्रगट करने वाले, अथवा  
 प्रतिपक्षियों के मर्म ( हेतुओं एवं युक्तियों ) का निराकरण करने वाले, (२१) अर्ध-  
 धर्माभ्यासानपेक्षता — परमात्र अर्थात् मोक्ष तथा मोक्ष के साधनरूप धर्म का बोध  
 कराने वाले, (२२) उदारता — प्राणिमात्र का कल्याण करने वाले अथवा तुच्छ अर्थों का  
 प्रतिपादन न करने वाले (२३) परनिन्दाऽऽत्मोत्कर्षविप्रमुक्तता — परनिन्दा और  
 आत्मप्रशंसा रहित (२४) उपगतस्त्रापत्व — सर्वद्वितकारी होने के कारण सभी

(१८) अभिजातता—एव आदि तत्त्वेना अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपं पक्षे तेषु स्पष्ट  
 निरूपणं कस्यावाप्य नेमके नेत्रधी नेत्र रक्षा होय (१९) अतिस्निग्धमधुरता—अमृत  
 धर्मान वृत्ति कस्या वाप्य (२) अपरमर्मवेधित्व—भीषना अर्थने प्रगट नहि  
 कस्या वाप्य अथवा प्रतिपक्षीयोन्य अर्थ ( हेतुयो-युक्तिष्ये ) नुं निराकरणं कस्या  
 वाप्य (२१) अधधर्माभ्यासानपेक्षता—परमार्थ—अर्थात् मोक्ष तथा मोक्षना साधनरूप  
 धर्मनि बोध कस्या वाप्य (२२) उदारता—प्राणिमात्रं कस्या कस्या कस्या वाप्य, अथवा  
 तुच्छ अर्थोनुं प्रतिपादन नहि कस्या वाप्य (२३) परनिन्दाऽऽत्मोत्कर्षविप्रमुक्तता—पर  
 निन्दा अने आत्मप्रशंसायी रहित (२४) उपगतस्त्रापत्व—सर्वद्वितकारी होवाने

अनपनीतत्वम् = श्रुतिकटुत्वादिवचनदोषापेतत्वम् (२६)-उत्पादिताच्छिन्नकौतू-  
हलत्वम् = नवनवार्थप्रतिपादकत्वेन पुनः पुनः श्रवणाभिलाषजनकत्वम् । (२७)-  
अद्भुतत्वम् = शीघ्रतारहितत्वम् । (२८)-अनतिविलम्बितत्वम्=वाक्यापरिसमाप्तौ  
विश्रामरहितत्वम् । (२९)-विभ्रमविक्षेपरोषावेशादिराहित्यम् = विभ्रमो=भ्रान्तिः,  
विक्षेपः=विवक्षितार्थं प्रत्यनासक्तता, रोषावेशः=क्रोधावेशस्तैर्विभ्रुक्तत्वम् । (३०)-  
विचित्रत्वम् = वर्णनीयवस्तुस्वरूपप्रकाशनेन लोकोत्तरत्वम् । (३१)-आहितविशेषत्वम्  
=द्रव्य-पर्याय-विशेषप्रतिपादकत्वम् । (३२)-साकारत्वम्=हेतुकारणादिभिः स्फुटतया

के लिये उपादेय, (२५) अनपनीतत्व - कर्णकटुकता आदि दोषों से रहित,  
(२६) उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्व - नूतन नूतन अर्थ का निरूपण करने के कारण वार  
वार सुनने की अभिलाषा उत्पन्न करनेवाले, अर्थात्-भगवानके वचनोंको वार वार सुनने की  
इच्छा होती है । (२७) अद्भुतत्व-शीघ्रता से रहित, (२८) अनतिविलम्बितत्व-बहुत विलम्ब  
से उच्चारण न किये जाने वाले, अर्थात् वाक्य समाप्त होने से पहले विश्राम लिए बिना ही  
बोले जाने वाले । (२९) विभ्रम-विक्षेप-रोषाऽऽवेशादिराहित्य, विभ्रम अर्थात् भ्रान्ति, विक्षेप  
अर्थात् प्रतिपाद्य वस्तु के प्रति असावधानी, रोष अर्थात् क्रोध, के आवेश से रहित, (३०)  
विचित्रता वर्णन की जाने वाली वस्तु का स्वरूप प्रकाशित करने के कारण लोकोत्तर,  
(३१) आहितविशेषता - द्रव्य और पर्याय की विशेषता का प्रतिपादन करने वाले,

कारणों सर्वने भाटे उपादेय-अद्भुत करवा योग्य. (२५) अनपनीतत्व-कानने अभिय  
लागे अथवा दोषोपेक्षी रहित (२६) उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्व-नवानवा अर्थानु निरूपण  
करवाना कारण वार वार सांलगवानी अलिखाषा उत्पन्न करवावाणा, अर्थात् भगवानना  
वचनोने वार वार सांलगवा अलिखाषा-छाया थाय छे, (२७) अद्भुतत्व-शीघ्रताथी रहित  
(२८) अनतिविलम्बितत्व-अद्भुत विलम्ब अथी उच्चारण नहि करवावाणा, अर्थात्-वाक्य  
समाप्त तथा पड़ेला विश्राम दीधा बिनाज बोलवावाणा (२९) विभ्रम-विक्षेप-रोषा-  
वेशादिरहितत्व-विभ्रम अर्थात्-भ्रान्ति, विक्षेप-अर्थात् प्रतिपाद्य वस्तु तरङ्ग गइलत,  
रोष-अर्थात् क्रोधना आवेशथी रहित (३०) विचित्रता-वर्णन करवा योग्य वस्तुना  
स्वरूपने प्रकाशित करवाना कारण लोकोत्तर (३१) आहितविशेषता-द्रव्य अने पर्यायनी



प्रकाशनेनार्थानां साक्षात्कारजनकत्वम् । (३३)—सत्त्वपरिगृहीतत्वम्—उपादध्ययघ्नौष्य-  
युक्तसद्यथाश्रमकाशकत्वम् । (३४)—अपरिखेदितत्वम् = स्वपरस्वेदानुरपादकत्वम् ।  
(३५)—अभ्युच्छेदितत्वम् = वर्धनीयपदार्थनिर्णयं यावद्विच्छिन्नत्वम् ।

हृदयप्रदायविद्विरप्युक्तम्—

(१)—सकारणं, (२)—उद्वचं, (३)—उच्यारोक्षेयं (४)—गभीरज्ज्वपिचं,  
(५)—अजुष्पादिचं, (६)—द्विस्त्राच, (७)—उष्णीपरागचं, (८)—महत्त्वचं, (९)—  
अम्बाहयपुष्पावज्जचं, (१०)—सिद्धचं, (११)—असदिद्वचं, (१२)—अवहरियमकुत्तरचं,  
(१३)—द्वियगगादिचं, (१४)—इसकालमर्धयचं, (१५)—उत्ताणुक्त्वचं, (१६)—  
अप्यप्यसुरियचं, (१७)—मन्तुअप्यमाहीयचं, (१८)—अहिजायचं, (१९)—महण्ड  
महुरचं, (२०)—अबरमम्मवेदिचं, (२१)—अत्यपम्मम्मासाप्यवेयचं, (२२)—उपारचं,  
(२३)—परनिदाअप्युकरिसद्विप्युत्तच, (२४)—उषगयसिठापचं, (२५)—अणक्कीयचं,  
(२६)—उप्यादयच्छिन्नकोउरुचं, (२७)—अदुयचं, (२८)—अण्डविलेपियचं, (२९)—  
विम्ममविक्षेवरोसावेसाइरादिचं, (३०)—विचिचं, (३१)—माडियविसेसचं, (३२)—  
सागारचं, (३३)—सत्त्वपरिमाहीयचं, (३४)—अपरिखेदयचं, (३५)—अभ्युच्छेदचं ।

(३२) साक्षरता—हेतु कारण आदि के द्वारा स्पष्ट रूप से प्रकाशित करके पदार्थों का  
साक्षात्कार करने वाले (३३) सत्त्वपरिगृहीतत्व—उपादध्यय और घ्नौष्यमय सत्त्वा  
के रूपमें अर्थ के प्रकाशक (३४) अपरिखेदितत्व—एक को और पर को सेव म  
पूर्ण करने वाले (३५) अभ्युच्छेदितत्व—प्रतिपाद्य विषय का निर्णय हुए बिना न करने वाले,  
अर्थात् विवक्षित वस्तु का पूर्ण निर्णय करने वाले ।

विशेषतानु प्रतिपादन इत्या वाण्य (३२) साक्षरता—हेतु कारण आदि वडे स्पष्ट  
रूपमें प्रकाशित करीने प्रकाशने साक्षात्कार इत्यपवा वाण्य (३३) सत्त्वपरिगृहीतत्व—  
उपाद, अथ, अने धौष्य—अथ सत्त्वान्ना इत्यभा अर्थाना प्रकाशक (३४) अपरिखेदितत्व  
पातने अने धारणने जेह नदि फ्लेग्यादनार (३५) अभ्युच्छेदितत्व—प्रतिपाद्य विषयने  
निर्णय कवा बिना नदि अटक्यास, अर्थात् विवक्षित वस्तुने पूर्ण निर्णय इत्या वाण्य ;

भगवद्वचनानि चतुर्विधेऽनुयोगे प्रविभक्तानि, स चेत्थम्—

(१)—चरणकरणानुयोगः, (२)—धर्मकथानुयोगः, (३)—गणितानुयोगः, (४)—द्रव्यानुयोगश्च ।

युज्यते=संबध्यते भगवदुक्तार्थेन सहेति योगः = गणधरकथनरूपः, अनु = अनुकूलो योगोऽनुयोगः । भगवद्वचनानुरूपा गणधरोक्तिरित्यर्थः । (१)

(१) अथ चरणकरणानुयोग—

(१) चर्यते = गम्यते = प्राप्यते भवोदधेः पर कूलं चतुर्दशगुणस्थाना-

भगवान् के वचनों में ये पैतीस अतिशय अर्थात् गुण होते हैं । प्राचीन आचार्यों ने भी कहा है — 'सकारवत्तं' इत्यादि ३५ ।

(वाणी के पैतीस गुण पहले कह चुके हैं अतः यहाँ इनका अर्थ कहने की आवश्यकता नहीं ।

भगवान् के वचन चार अनुयोगों में विभक्त हैं । चार अनुयोग ये हैं —

१ चरणकरणानुयोग, २ धर्मकथानुयोग, ३ गणितानुयोग, और ४ द्रव्यानुयोग ।

भगवान् के वचनों के अनुकूल गणधरों का व्याख्यान अनुयोग कहलाता है ।

(१) चरणकरणानुयोग—

जिसके द्वारा भव-सागर का किनारा अर्थात् चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त किया जाय

भगवान् के वचनोमा आ प्रभाषे पात्रीश अतिशय अर्थात्—शुषु डोय छे प्राचीन आचार्योंके पशु कहु छे— “सकारवत्तं” इत्यादि उप. (पात्रीश वाणीना शुषु पडेला कही गया छीके लेथी अहिं ओने अर्थ कहेवानी आवश्यकता नहीं।)

भगवान् के वचन चार अनुयोगोमा वडे आयेला छे चार अनुयोग आ छे— (१) चरणकरणानुयोग (२) धर्मकथानुयोग, (३) गणितानुयोग अने (४) द्रव्यानुयोग

भगवान्—द्वारा प्ररूपित अर्थनी साथे गणधरैना वचनोमा योग डोय ते अनुयोग कहेवाय छे, तात्पर्य अे छे के —भगवान् के वचनोने अनुकूल गणधरैके करेखु व्याख्यान ते अनुयोग कहेवाय छे

(१) चरणकरणानुयोग—

जेनाथो भवसागरने किनारे अर्थात् चौदह गुणस्थान प्राप्त करी शकय, तेने अर्थात् मूलगुणने 'चरण' कहे छे, अथवा मत आदि चरण कहेवाय छे ते सिन्तेर (७०) छे कहु पशु छे—

पस्वास्वरूपमनेनेति चरणं = मूलगुणरूपम् । यद्वा चरणं=व्रतादि, तच्च सप्तति-  
संख्यकम्, उक्तम्—

“ वयस्य समवयस्यम् १० संसम १७, वेपावर्ष १० च वंसगुचीओ ९ ।  
वाप्याइविप्यंश्च तव १२ कोइनिगाइइश्च चरणमेये ॥ १ ॥ ” इति ।

क्रियते चरन्स्य पुष्टिरनेनेति करणम् = उत्तरगुणरूपम् । यद्वा करणं=  
पिण्डविशुद्ध्यादि, एतदपि सप्ततिसंख्यकम्, उक्तम्—

उत्ते बर्वात् मूलगुणको चरण ' कहते हैं । अथवा तस्य भावि चरण ' कहलते हैं । वे  
७० सत्तर हैं । कहा भी है —

पांच महाव्रत दश अम्णावर्ष सत्रह संवत्, दश वैशाखृत्य, नौ महावर्ष की  
गुप्तिमा एतस्य — (सम्भ्रगुज्ञान, दर्शन, चारित्र), बारह प्रकारका तप, चार कोषादि  
विषय—(कोषविषय, मायाविषय, मानविषय, लोभविषय), यह ७० सत्तर प्रकारका 'चरण'  
कहा जाता है ।

चरण की पुष्टि करने वाला 'करण' कहा जाता है । करण का अभिप्राय है—  
उत्तर गुण । अथवा पिण्डविशुद्धि आदिको करण कहते हैं । इसके भी सत्तर ७० वेद  
हैं । कहा भी है —

चरि मन्दास्त, इत्य अमस्तुवर्ष, सत्तर सवत्, दश वैशाखृत्य, नव अम्णावर्ष नी  
शुप्तिज्जे, स्तत्रक—(सम्भ्रगुज्ञान दर्शन ज्ञाने चारित्र) चार प्रभवेना तप, चार  
कोषादिविषय,—(कोषविषय, मानविषय, मायाविषय, लोभविषय) चार प्रभवे  
चित्तेर (७०) प्रकारता चरसु कहेवास्ये ॥ १ ॥

अस्तुनी पुष्टि करने वाला करसु कहेवास्ये ॥ अस्तुनेना अभिप्राय है—उत्तर गुण,  
अथवा पिण्डविशुद्धि आदिने करसु कहे ॥ तेना पञ्च सित्तर वेद ॥ कहु पञ्च ॥ —

“पिंडविसोही४ समिर्इ५, भावण१२ पडिमा१२ य इन्द्रियनिरोहो५ ।  
पडिलेहण२५ गुत्तीओ३, अभिग्गहा४ चेव करणं तु ॥ १ ॥” इति ।

तयोरनुयोगश्चरणकरणानुयोगः (१) ।

धर्मकथानुयोगादयश्चरणकरणयोर्भव्यजीवान् प्रवर्तयन्तीति तेषां चरण-  
करणाद्गतया प्राधान्यमेतस्यानुयोगस्य, अत एवास्य प्राथम्यम् । उक्तञ्च—

आत्मन् । जानीहि पूर्वं चरणकरणयोराश्रये यन्महत्त्वं,

मोहं दूरीकरोति प्रकटयति परं निश्चयात्मस्वरूपम् ।

“चार पिण्डविशुद्धि, पाच समितिआ, वारह भावना, वारह पडिमा, पाच  
इन्द्रियनिरोध, पचीस प्रतिलेखना, तीन गुप्तिया, चार अभिग्रह, यह सत्तर ७० प्रकारका करण  
कहलाता है ।

इस तरह चरण और करण के अनुयोग को, अर्थात् भगवान् की वाणी के अनुकूल  
व्याख्यान को चरणकरणानुयोग कहते हैं । तात्पर्य यह है कि—जिस शास्त्र में चारित्र  
सम्बन्धी निरूपण है, वह चरणकरणानुयोग समझना चाहिए ।

धर्मकथानुयोग आदि शेष तीन अनुयोग भव्यजीवी को चरण और करण में  
प्रवृत्त करते हैं, अत वे इसी अनुयोग के अङ्ग हैं । इस प्रकार चारों अनुयोगों में  
चरणकरणानुयोग ही प्रधान है । प्रधान होने के कारण ही इस की गणना सर्वप्रथम की गई  
है । कहा भी है—

हे आत्मन् ! चरण और करण में जो महत्त्व है, उसे पहले समझ ले । वह मोह को  
निवारण करता है, आत्मा के निश्चय अर्थात् वास्तविक स्वरूप को प्रकट करता है, वह सब

“आर पिंडविशुद्धि, पाच समितिओ, आर भावना, आर पडिमा, पाच इन्द्रिय  
निरोध, पचीस प्रतिलेखना, त्रयु गुप्तियो, आर अभिग्रह, आ सर्वां करणु  
कहेवाय छे” ॥ १ ॥

आ प्रभाणु यरणु अने करणुना अनुयोगने अर्थात् भगवान् की वाणीने अनुकूल  
व्याख्यानने यरणुकरणानुयोग कहे छे तात्पर्य ओ छे के—जे शास्त्रमा चारित्रसम्बन्धी  
निर्णय छे ते यरणुकरणानुयोग समजनु जेधओ

धर्मकथानुयोग आदि आकीना त्रयु अनुयोग भव्य जीवोने यरणु अने करणुमा  
प्रवृत्त करे छे; तेतवा भाटे ते पणु ओ अनुयोगनु अग छे आ प्रकारे आरथ अनुयो-  
गोमा यरणुकरणानुयोग प्रधान—मुप्य छे

मुप्य होवाना कारणे न तेनी गणुना सोधी प्रथम करी छे कहुं पणु छे—

“हे आत्मन् ! यरणु अने करणुमा जे महत्त्व छे, तेने प्रथम समज ले, ते

आचारोऽयं सुमानामपनयति सदाऽनादिमिथ्यात्वदोष,  
हेतुर्योऽयं विशुद्धैर्बभूवति नितरामिन्द्रियाणि मुक्तं य ॥ १ ॥  
सम्यग्ज्ञानस्य दाता शिवसुखजनकः कर्मभूलेभ्य इति,  
कर्त्ता विद्योत्पन्नस्याऽऽत्मनि सकम्पुजस्याऽद्वितीयः प्रकाशः ।  
आत्मग्नेवात्मनीनिर्भरणकरणयोरामयः काऽत्र सङ्गा ?,  
सङ्कारो मेव लोकः परिणविषिरसा किं सुखाशां करोषि ? ॥ २ ॥

(२) अथ धर्मकमानुयोगः—

महामुनिषीं निपठन्तं मन्थजातं धारयति=धरिषि तत्सपति ह्यमस्वानं  
धापयतीति धर्मः, तस्य कथा भगवदेक्षनात्मक्षयो वाक्यमन्वः धर्मकथा । अरिसा  
दिप्रकृषणा वा धर्मकथा । अथवा भुक्तपारिभ्रमणधर्मप्रधानकथा-धर्मकथा । यथा

गुणों का आधार है, और अन्वदिकाकेन मिथ्यात्व दोष को दूर करता है, विशुद्धि का कारण  
है, और इन्द्रियों को शीघ्र ही दमन करने वाला है ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञान का दाता है, मोक्षसुख उत्पन्न करने वाला है कर्मरूपी भूक्तों को दूर  
करने वाला है, आत्मामें उद्योत-प्रकाश करने वाला है और समस्त गुणों का अद्वितीय  
प्रकाशक है, हे आत्मन् ! कर्ण और कर्ण का आश्रय समकारी है, इस विषयमें संका को  
रवान ही क्या है ? अर्थात् निश्चितरूपसे ही वह कर्मज्ञान करने वाला है, यह लोक (संसार)  
तो परिणाम में एकदम नीरस है, तू इस से मुक्त की अभिप्राया क्यों करता है ॥ २ ॥

(२) धर्मकमानुयोग

संसाररूपी सागरमें डूबते हुए मनुष्य जीवों को धारण करनेवाला—मीठा के समान

मोक्षानुं निवारण करे छे आत्माना निश्चय अर्थात् वास्तविक स्वधुने प्रगट करे छे, ते  
सर्वं सुखोमेव आधार जने आत्मादि कालना मिथ्यात्व दोषने दूर करे छे, विशुद्धिनुं धरण  
जने धन्त्रियेभ्य शीघ्र दमन भाटे ते सदायक छे ॥ १ ॥

सम्पन्नसुख देनाए छे जने मोक्षसुख उत्पन्न करवावाछे छे कर्मरूपी भुक्तने  
दूर करवावाछे छे आत्माभा उद्योत-प्रकाश करवा वाछे छे जने समस्त सुखोमेव  
अद्वितीय प्रकाशक छे हे आत्मन् ! कर्ण जने कर्णने आश्रय करवावाकारी छे,  
आ विषयमां संकाने स्थान क क्या छे ? अर्थात् निश्चित रूपमी क ते कर्णवा करवा-  
वाछे छे, आ लोक (संसार) तो परिणामी अकेरम नीरस-स्वराहित छे, तू तेमां  
मुण्णी अविद्यावा था भाटे करे छे ? ॥ २ ॥

(२) धर्मकमानुयोग

संसाररूपी सागरमां डुबता जन्म लवने धारण करवावाणी, बदाय प्रभावे

शुभाशुभकर्मविपाकोपदर्शनं धर्मकथा । किञ्च - तीर्थङ्करचक्रवर्त्यादिचारित्रवर्णनं धर्मकथा । तस्या अनुयोगः धर्मकथानुयोगः ।

धर्मकथा चतुर्विधा—(१)-आक्षेपणी-(२)-विक्षेपणी- (३)-सवेदनी-(४)-निर्वेदनीभेदात् ।

आक्षेपण्यादिधर्मकथाभिराक्षिप्ताः विक्षिप्ताः सवेदिता निर्वेदिताः सन्तो भव्यप्राणिनश्चारित्रं प्राप्नुवन्ति ।

किनारे लगा देने वाला, अर्थात् शुभस्थानमें पहुँचा देनेवाला धर्म कहलाता है ।

उस धर्म की कथा अर्थात् भगवान की देवता जिसमें पाई जाय उसे धर्मकथा कहते हैं । अथवा अहिंसा आदि की प्ररूपणा धर्मकथा कहलाती है । अथवा श्रुत और चारित्र की प्रधानता वाली कथा को धर्मकथा कहते हैं । अथवा शुभ और अशुभ कर्मफल को प्रकाश करना धर्मकथा है । या तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि महापुरुषों का चरित्र वर्णन करना धर्मकथा है । उसके अनुयोग-व्याख्यान को धर्मकथानुयोग कहते हैं ।

धर्मकथा चार प्रकार की है—(१) आक्षेपणी (२) विक्षेपणी (३) सवेदनी और (४) निर्वेदनी ।

आक्षेपणी आदि धर्मकथाओं से आक्षिप्त सवेदित और निर्वेदित (विरक्त) हुए भव्य जीव चारित्र प्राप्त करते हैं ।

किनारे लक्ष्मी नगरी, अर्थात् शुभ स्थानमा पहुँचायाडी देवा वाणी वस्तुने धर्म कहेवाभा आवे छे ते धर्मनी कथा अर्थात् भगवानने उपदेश नेमा जेवाभा आवे छे. तेने धर्मकथा कहे छे अथवा अहिंसा आदिनी प्ररूपणा ते धर्मकथा कहेवाय छे अथवा तो श्रुत अने चारित्रनी प्रधानतावाणी कथाने धर्मकथा कहे छे, अथवा शुभ अने अशुभ कर्म-इतने प्रगट करवु ते धर्मकथा छे अथवा तीर्थ कर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषेना चरित्रनु वर्णन करवु ते धर्मकथा छे तेना अनुयोग-व्याख्यानने धर्मकथानुयोग कहे छे

धर्मकथा चार प्रकारनी छे (१) आक्षेपणी (२) विक्षेपणी (३) सवेदनी अने (४) निर्वेदनी

आक्षेपणी आदि धर्मकथाओंसे आक्षिप्त, विक्षिप्त, सवेदित अने निर्वेदित (विरक्त) थयेला भव्य एव चारित्र प्राप्त करे छे

(१) आक्षेपणी—

आक्षिप्यते=मोहं निराकृत्य चारित्रं प्रति समाकृष्यते भोत्राऽनयति-आक्षेपणी,

उक्तम्—

“स्याप्यते सत्पथे भोत्रा, यथा साऽऽक्षेपणी कृया ।  
यथेष्टुकारं कमला,—स्ती धर्मं व्यतिष्ठिषत् ॥ १ ॥”

वास्यामस्यतनयद्वयसमन्वितः सपत्नीको मृगपुरोहितः सर्वस्वं परिहाय वीक्षार्य  
सदनाभिर्ययौ । तदोर्यं सफलं वसु परिगृहीतं पत्येति विदिन्वा कमलावती राक्षी  
वैराग्यमुपमता स्वपतिमिष्टुकारं नृपतिं प्रत्यबोधयत् । ‘राजम् ! किं पान्वाभिवद्

(१) आक्षेपणी

बिस् कथा के द्वारा भोत्रा मोह से हटकर चारित्र के प्रति आकर्षित होते हैं, यह  
आक्षेपणी धर्मकथा कहलाती है, कथा भी है —

“ बिस् के द्वारा भोत्रा सम्मार्ग में स्थापित किये जाते हैं, उसे आक्षेपणी कथा कहते  
हैं । जैसे कमलावतीने इष्टुकार को धर्म में स्थिर किया ॥ १ ॥ ”

छोटी उम्र वाले अपने दो भाइयों के साथ पत्नीसहित मृग पुरोहित सर्वस्व त्याग  
कर वीक्षा ग्रहण करने के लिये अपने घर से निकला । उस पुरोहित का समस्त धन में  
पति (राजा) ने छे लिया है, ऐसा जान करके रानी कमलावती को वैराग्य हो गया और  
उसने अपने पति राजा इष्टुकार को समझाया—“ महाराज ! बिस् धनका मृग पुरोहित ने

(१) आक्षेपणी—

ये कथाद्वारा भोत्रा मोक्षणी हुई जन्मि चारित्र तरङ्ग आकर्षित थाव छ ते  
आक्षेपणी धर्मकथा ठहरेवाव छे कथु यवु छे—

जेनाथी भोत्राने सन्मार्गमा स्थापित करी शक्य छ तेने आक्षेपणी कथा  
कहे छे जेची रीते कमलावतीने इष्टुकारने धर्ममा स्थिर कथे ॥ १ ॥

नानी उमरवाणा पीताना से आषोडनी साथे तथा पत्नीसहित मृग पुरोहित  
सर्वस्व त्याग करीने वीक्षा ग्रहण करवा माटे पीताना वरणी नीकला, ते पुरोहितनु  
वधाम धन भाग पति (राजा) जे छे छे वीक्षु छे जेनु आषोडने राजी कमलावतीने  
वैराग्य रूपन धर्म जथे जने तेजे पीताना पति राजा इष्टुकारने समबन्ध—

भोगमाशंससे ?' इत्यादि । अथ कमलावतीवचनश्रवणक्षणसंजातप्रतिबोध इपुकारः  
कमलावती च दीप्तार्थं सदैव निष्क्रान्तौ ।

(२) विक्षेपणी—

विसिप्यते=सम्यग्वादगुणोत्कर्षमदर्शनेन मिथ्यावादादपसार्यते श्रोताऽनपेति  
विक्षेपणी । उक्तञ्च—

“सम्यग्वादमकर्षेण, मिथ्यावादस्य खण्डनम् ।  
यया विक्षेपणी सैव, यथा केशी मदेशिनम्” ॥ २ ॥

मिथ्यावादादपसारयामासेति शेषः ।

वमन कर दिया, वह धन भोगोगे ? आप वमन का सेवन करने वालों की तरह भोग की  
लालसा क्यों करते हैं ?” इत्यादि । इपुकार को कमलावती के वचन सुनते ही वैराग्य हो  
आया और राजा तथा रानी दोनों साथ-साथ दीक्षा ग्रहण कर ली ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद या सिद्धान्त के गुणों का दिग्दर्शन कराकर श्रोताओं  
को मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवाद से हटाने वाली कथा विक्षेपणी कहलाती हैं ।  
कहा भी है —

“महाराज ! वे धनने लूथु पुरोहिते वमन करी नाभ्यु छे ते धनने आप भोगवशी ?  
आप वमननुं सेवन करवावाणानी येठे भोगनी लालसा शा भाटे करे छे ?” इत्यादि

राज्य धपुकार येते कमलावतीना वचन साभणतां ७ वैराग्य प्राप्त्य अने राज्य  
तथा राणी धनने साथे-साथे दीक्षा ग्रहण करी ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद, अथवा सत्यसिद्धातना शुद्धोक्तु दिग्दर्शन  
करापीने श्रोताओंने मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवादधी हूर करवानारी कथा ते विक्षेपणी  
कथा कहेवाय छे कहु यहु छे —



केसिधमगतः कल्याणसपरिपूर्णमास्तिकत्वाद्वादभाकरण्यं प्रदेशी नाम भूपालो नास्तिकत्वाद्वादं परित्यज्य द्वादशव्रतधारी भावको भूत्वा भूत्वा च प्रथमकल्प सूर्याम नामा देवो बभूव ।

### (१) संवेदनी—

संवेद्यते = संसारासारताप्रदर्शनेन मोक्षामित्वात् उत्पाद्यतेऽनयेति संवेदनी ।

उक्तम्—

“यस्याः भक्षणमाश्रेय, मृक्तिवाक्यं प्रजायते ।

संवेदनी यथा मल्ली, पद् वृषान् प्रत्यबोधयत् ॥३॥”

“सम्यग्वाद का उत्कर्षं विस्तारं कर मिथ्यावाद अर्थात् मिथ्यामायता का स्मरण करने वाली विद्येयनी कहा है। जैसे-जैसी धमगने प्रदेशी राजा को मिथ्यावाद से हटाना था” ॥ २ ॥

श्री केशी धमज के धीमुत्से कल्याण-रस से परिपूर्ण नास्तिकवाद सुन कर प्रदेशी नामक राजा नास्तिकवाद त्याग कर बाह्य व्रतधारी भावक हो कर भरकर प्रथम सौधर्म कल्पमें सूर्याम नामक देव हुआ ।

### (२) संवेदनी

बोधार्थकता ससार की असारता प्रदर्शित करके मध्य धीधों में मोक्षकी अभिलाषा जागृत करती है, यह संवेदनी धर्मकहा है । कहा भी है—

“सम्यग्वादेनो उद्भवो ज्ञानाग्निने मिथ्यावाद अर्थात् मिथ्या मान्यत्वानु पञ्च कल्याणानी विहीनयो कथा छे जेनी सीते देशी अमले प्रदेशी राजने मिथ्यावादी सुद्ध कर्मा कृत्य ॥ २ ॥”

श्री देशी अमलाना धीमुत्से कल्याणसधी परिपूर्ण नास्तिकवाद सांभगीने प्रदेशी नामक राजने नास्तिकवाद त्याग कर्ये, बाह्य व्रतधारी भावक यधने भरने प्रथम सौधर्म कल्पमा सूर्याम नामक देव यथा.

### (३) संवेदनी

जो कथा ससारनी असारता ज्ञानाग्निने जन्मलुकेमं मोक्षनी अभिलाषा जन्म करे छे, ते संवेदनी धर्मकथा छे. कहु पवु छे—

मल्लीकुमारी पद् भूमिपालान् स्वस्मिन्ननुरक्तान् विज्ञाय, तेभ्यः संसारा-  
सारतां प्रदर्श्य मोक्षाभिलाषं जनयामास ।

### (४) निर्वेदनी—

निर्वेद्यते=विषयभोगेभ्यो विरज्यते श्रोताऽनयेति निर्वेदनी, उक्तञ्च—

“ यदाऽऽकर्णनमात्रेण, वैराग्यमुपजायते ।

निर्वेदनी यथा शालि,—भद्रो वीरेण बोधितः ” ॥ ४ ॥

“ जिस कथा को श्रवण करने मात्र से ही मोक्ष की आकाङ्क्षा उत्पन्न होती है, वह सवेदनी धर्मकथा है । जैसे—मल्ली नामक राजकन्याने छह राजाओं को बोध दिया ” ॥ ३ ॥

छह राजा मेरे उपर अनुरक्त हैं, यह जानकर मल्लीकुमारीने उन्हें ससारकी नि सारता समझाई और उन में मुक्ति की अभिलाषा उत्पन्न कर दी । मल्ली कुमारी का वह उपदेश सवेदनी धर्मकथा है ॥ ३ ॥

### (४) निर्वेदनी

जो कथा श्रोताओं को विषयभोगसे विरक्त बनाती है, वह निर्वेदनी धर्मकथा कहलाती है । कहा भी है —

“ जिसका श्रवण करते ही वैराग्य उत्पन्न होता है, वह निर्वेदनी धर्मकथा है । जैसे भगवान् महावीरने शालिभद्र को प्रतिबोध दिया ” ॥ ४ ॥

“ जे कथा साभणवामात्रथी ज मोक्षनी छच्छा उत्पन्न थाय छे ते सवेदनी धर्मकथा छे जेवी रीते मल्ली नामनी राजकन्याज्ये छ राजाज्योने बोध आप्यो ॥ ३ ॥ ”

छ राजा भारा उपर आसकत—प्रेमवाणा छे ज्येजु जाबुनीने मल्ली कुमारीज्ये तेज्योने स सारनी नि सारता समजवी ज्येने तेज्योभा मुक्तिनी अभिलाषा उत्पन्न करी, मल्लीकुमारीने ते उपदेश सवेदनी धर्मकथा छे

### (४) निर्वेदनी

जे कथा श्रोताज्योने विषय भोगथी विरक्त जनावे छे ते निर्वेदनी कडेवाय छे कहुं पद्य छे —

“ जेनुं श्रवण करता ज वैराग्य उत्पन्न थाय छे, ते निर्वेदनी धर्मकथा छे जेवी रीते भगवान् महावीरे शालिभद्रने प्रतिबोध आप्यो ॥ ४ ॥ ”

कमलकोमलकान्ताकारः शालिमद्रकुमारः श्रीमहावीरतीर्थेश्वरकथितपर्मदेसना  
अस्मत्समनन्तरं स्वरया वैराग्यमुपगतचारिभं प्राप । उक्तम्—

“ममस्य सर्वे क्षणमक्षुरं धूलं,  
क्लिन्ति ये धर्मकृपानुरागिन्यः ।  
विहाय ते भोगमनन्तदुःखदं,  
धरन्ति चारिप्रवने विरागिणः” ॥ ४ ॥

उत्तराध्ययनसूत्रस्यैकोनभिन्नेऽध्ययने धर्मकृपाकल्पात्—

“धर्मकृपाए णं मते ! जीवे किं धनया ? । धर्मकृपाए णं जीवे निज्जरं  
धनया । धर्मकृपाए णं पश्यन् पमायेइ । पश्यणपमानयेणं जीवे आगमेसस्स  
महापाए कम्मं निर्वाणं । ”

कमल के समान कमल और कान्तिमान शालि मद्र कुमार श्री महावीर  
महापाए को धर्मदेसना सुनते ही वैराग्य को प्राप्त हुआ, और उसने चारित्र्य धारण कर लिया ।  
कहा भी है —

“धर्मकृपा में अनुराग रखने वाले जो पुरुष संसार के मुक्त क्षणमक्षुर संग्रह केते  
हैं वे अनन्त दुःख देने वाले भोगका त्याग करके, विरागी हो कर चारित्र्यकी बगीचे में  
विहार करते हैं” ॥ १ ॥

उत्तराध्ययन सूत्र के उत्तरीसवें अध्यायन में धर्मकृपा का फल बतलाना गया है । वह  
इस भाँति है —

इमं वना नेवा इमं वने मन्तिमान् आप्तुवाणा शालिमद्रकुमार श्री महावीर  
महापाएनी धर्मदेसना सांभजतां च वैराग्यने प्राप्त वना नेवा मन्ति धारणं कर्तुं  
उक्तं पद्येः—

“धर्मकृपायां मीति मज्जवाणा ने पुरुष ससाराणा सुजने कसुसक्षर समल  
ते ते अनन्त दुःख अपयवाणा सोमने त्याग करीने वैराग्य धारण करी  
चारित्र्यकी जमीनमां विहार करे छे ॥ १ ॥”

उत्तराध्ययन सूत्रना मोजपुत्रीसमां अध्यायनमां धर्मकृपां इह जतांनु छे, ते  
आ प्रभाये छेः—

આક્ષેપણ્યાદિચતુર્વિધધર્મકથાસંચારોદ્ભાવિતાનન્દધારાતરંગસમુદ્ભસિતસ્વાન્તપ્ર-  
 ભૂતભવ્યભાવિતાત્મા ધર્મકથી જન્મજરામરણાદિભીષણપીનપાઠીનમીનમકર-  
 ગણસંક્રમણપ્રિયવિયોગાપ્રિયસંયોગવડવાનલાકુલિતાપારસંસારસાગરાત્ સ્વયં તરતિ,  
 પરાનપિ તારયતિ ।

સ ચ પ્રભૂતભવ્યાન્ પ્રવાજયન્ ભવકૂપપતતપ્રાણત્રાણસમાશ્વાસનજિનશાસન-  
 મહિમાનમુપવૃહ્યન્ સમસ્તમેવ જગત્ જિનશાસનરસિક કુર્વન્, મિથ્યાત્વમુત્થાપયન્,

“ ભગવન્ ! ધર્મકથા સે જીવ કો કયા લાભ હોતા હૈ ? ઉત્તર—ધર્મકથા સે જીવ કો  
 નિર્વાણ કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । ધર્મકથા સે જીવ પ્રવચન કી પ્રભાવના કરતા હૈ । પ્રવચન કી  
 પ્રભાવના સે આગે કે લિયે મદ્ર (શુભ) કર્મો કા બન્ધ કરતા હૈ ” ॥ ૪ ॥

આક્ષેપણી આદિ ચાર પ્રકાર કી ધર્મકથા સે ઉત્પન્ન હોને વાલી આનન્દ કી ધારાઓ  
 કી તરફો સે જિન કા અન્ત કરણ ઉદ્ધાસ કો પ્રાપ્ત હુઆ હૈ, એસે અનેક ભાવિતાત્મા ભવ્ય  
 ધર્મકથા કરને વાલે પુરુષ જન્મ જાત ઓર મરણ રૂપી મયાનક ઓર વિશાલ મગરમચ્છોસે  
 વ્યાપ્ત, એવ ઈષ્ટ-વિયોગ ઓર અનિષ્ટ-સયોગ રૂપી વડવાનલ સે આકુલ-વ્યાપ્ત અપાર  
 સસાર સાગર સે સ્વય મી પાર હોતે હૈ ઓર દૂસરો કો મી પાર કરતે હૈ ।

વહ ધર્મકથાકાર અનેકાનેક ભવ્ય જીવો કો દીક્ષિત કરતા હુઆ, સંસારરૂપી કૂપ મેં  
 પડનેવાલે પ્રાણિયો કો ત્રાણ કરને કા આશ્વાસન દેને વાલે જિનશાસન કી મહિમા વડાતા  
 હુઆ સમસ્ત જગત્ કો જિનશાસન કા રસિક-અનુરામી ઘનાતા હુઆ મિથ્યાત્વ કી ઉત્થાપના

“ ભગવન્ ! ધર્મકથાથી જીવને શું લાભ થાય છે ?

ઉત્તર—ધર્મકથાથી જીવને નિર્વાણની પ્રાપ્તિ થાય છે, ધર્મકથાથી જીવ  
 પ્રવચનની પ્રભાવના કરે છે, પ્રવચનની પ્રભાવનાથી આગળ શુભ કર્મોનો બંધ કરે છે ”

આક્ષેપણી આદિ ચાર પ્રકારની ધર્મકથાથી ઉત્પન્ન થનારા આનન્દની ધારાઓના  
 તરંગોથી જેનું અંત કરણ ઉદ્ધાસને પ્રાપ્ત થયું છે, એવા અનેક ભાવિતાત્મા ભવ્ય-  
 ધર્મકથા કરવાવાળા પુરુષ જન્મ જરા અને મરણરૂપી લયાનક અને વિશાલ મગર-  
 મચ્છોથી વ્યાપ્ત એ પ્રમાણે ઈષ્ટ-વિયોગ અને અનિષ્ટ-સયોગરૂપી વડવાનલથી  
 સહિત અપાર સસારસાગરથી પોતે પણ પાર ઉતરે છે, અને ધીબને પણ પાર  
 ઉતારે છે,

सम्पत्समुपस्थापयन्, कर्मकोटिं क्षपयति । उत्कृष्टरसायनपरिणाममसौ समेत  
चेत्, प्रैसोत्सपपचिभं तीर्षद्भरनामगोत्रं समुपार्जयति ।

अपि चासौ स्वतामकासस्वमानस्यापि जिनशासनस्य मिथ्यात्वादि  
विमिराहृतदक्षकालादिषु यथोचितमधारलक्षणाराधनतः प्रमानकपदं विभर्ति ।  
उक्तम्—

“ प्राबयणी धम्मकरी, भार्ही छद्दीसरो तवस्सी य ।

विन्जासिद्धो य कमी, अद्देव पमायगा मयिया ॥ १ ”

और सम्पत्सु को उपस्थापना करता हुआ कर्मकोटि को क्षपयता है । कृत्यचित् परिणाम में  
उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो वह त्रिकोण में पवित्र तीर्षद्भर गोत्र का भी उपार्जन करता है ।

जिन भगवान का शासन स्वतः उज्ज्वल है, तथापि जिस देशविशेष और कस  
विशेष में मिथ्यात्व का अन्वकार फैल जाता है, वहाँ भगवान के शासन का प्रचाररूप  
आराधन करके धर्मकयाकार प्रमानक पद प्राप्त करता है । क्या भी है —

“प्रमायक ऋत प्रकार के हैं — (१) प्राबयनिक, (२) धर्मकरी, (३) भार्ही,  
(४) छद्मिया का स्वामी, (५) तपस्वी, (६) विद्यावान्-रोहिणी प्रकृति जाति विद्या के  
धारक, (७) सिद्ध-वचनसिद्धि जाति विद्वियों वाक्य (८) कवि” ।

ते धर्मकया कहेनार अनेक-अनेक लब्ध लोचने दीक्षित करे छे अने ससाह  
इपी कुवार्थं पदावाणा अस्वीज्जाने रक्षय करवानु आस्थासन देवाणाम् जिनशासनने  
भक्तिभा बभारता वहा समस्त जगतने जिनशासनभा प्रीतिवाणा जनापी मिथ्यात्व  
निवारण अने सम्पत्त्वनी स्थापना करी कर्मदेहीने जवाने छे कृत्यचित् परिष्कृतभा  
उत्कृष्ट रसायन ज्ञपी लब्ध तो त्रिकोणभा पवित्र तीर्षद्भर ज्ञाननी पणु अर्पित  
करे छे

जिन जगवाननु शासन पीते उत्कृष्ट छे तो पणु ने देशविशेष अने कस  
विशेषभा मिथ्यात्वने अधकार देवाहं लब्ध छे त्वां जगवानना शासनप्रचाररूप  
आराधन करीने धर्मकयाकार ‘प्रमायक’नु पर अर्पित करे छे कसु पणु छे—

“प्रमायक ऋत प्रकारना छे (१) प्राबयनिक, (२) धर्मकयाकार (३) भार्ही,  
(४) छद्मिज्जाने पवी, (५) तपस्वी, (६) विद्यावान्-रोहिणी-प्रकृति जाति विद्याना  
धारक, (७) सिद्ध-वचनसिद्धि जाति विद्विज्जाने, (८) कवि” ॥ १ ७

अथ धर्ममहिमोच्यते—

“जन्मन्तरेऽपि सुलहा, पिउभाउसुयाड्या ।  
परन्तु सुयचारित्त, - धम्मो णो सुलहो भुवि ॥ १ ॥  
वारसंगावणे धम्म, णिच्छयव्ववहारिणो ।  
लहंते संजया भव्वा, भक्तिपण्णेण नन्नहा ॥ २ ॥

सस्कृतच्छाया—

जन्मान्तरेऽपि सुलभा, - पितृ-भ्रातृ-सुतादयः ।  
परन्तु श्रुतचारित्र, - धर्मो न सुलभो भुवि ॥ १ ॥  
द्वादशाङ्गापणे धर्म, निश्चयव्यवहारिणः ।  
लभन्ते संयता भव्या, - भक्तिपण्येन नान्यथा ॥ २ ॥  
तथा-विना सिद्धाङ्गनं भूमि, - निधानं नैव लभ्यते

धर्म-महिमा —

“पिता, भ्राता और पुत्र आदि तो जन्मान्तर में-आगामी भव में-भी सुलभ हैं किन्तु ससार में श्रुत-चारित्र धर्म सुलभ नहीं है” ॥ १ ॥

“द्वादशाङ्गीरूपी दुकान में निश्चयनय और व्यवहारनय को जानने वाले सयमी पुरुष भक्तिरूपी मूल्य चुकाकर धर्म प्राप्त कर सकते हैं, ऐसे किये विना धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती” ॥ २ ॥

धर्ममहिमा—

“पिता भाई अने पुत्र वगैरे तो आगला भवमा-हूवे पछीना भवमां पणु सुलभ छे, परन्तु स सारमा श्रुत-चारित्र धर्म सुलभ नथी” ॥ १ ॥

“द्वादशाङ्गीरूपी दुकानमा निश्चयनय अने व्यवहारनयने लणुवावाणा सयमी पुरुष भक्तिरूपी मूल्य आपीने धर्म प्राप्त करी शके छे अथवा कथा विना धर्मनी प्राप्ति थती नथी.” ॥ २ ॥

विना सिद्धिर्ज्ञानं भूमि, - गिहाण जेव सम्माइ ।  
 सुयचारित्तधम्मणेण, विन्ना णो षाणमप्यणो ॥ ३ ॥  
 अप्यनार्णं विन्ना जेव, तत्तात्तत्तविमिच्छन्तो ।  
 तं विन्ना जेव मय्याणं, भायएऽमियमावणा ॥ ४ ॥  
 विद्युद्धज्जाजसंपत्ती, गतराऽमियमावणं ।  
 विन्ना विद्युद्धज्जाज णो, स्वग्गस्सेणिरप्यई ॥ ५ ॥  
 मन्योपाएण केणापि, - स्वग्गस्सेणिविन्ना विन्ना ।  
 वितीयपायो सुक्कम्म, छाजस्स नहि सम्माइ ॥ ६ ॥

छाया—

भूतचारित्रधर्मेण, विना नो ज्ञानमात्मन ॥ ३ ॥  
 आत्मज्ञानं विना नैव, तत्त्वाऽतत्त्वविनिश्चयः ।  
 तं विना नैव मय्याणां, जायतेऽमृतमावना ॥ ४ ॥  
 विद्युद्धध्यानसंप्राप्ति, - नान्तराऽमृतमावनाम् ।  
 विना विद्युद्धध्यानं नो, सपक्कभेणिराप्यते ॥ ५ ॥  
 मन्योपायेन केनापि, सपक्कभेणिना विना ।  
 द्वितीयपादः सुक्कस्य, ध्यानस्य नहि सम्प्यते ॥ ६ ॥

सिद्धमज्ञान के अभाव में पृथ्वी के भीतर का सत्राना नहीं प्राप्त किया जा सकता इसी प्रकार भूत चारित्र के विना आत्मा को सम्ब्रह्मण नहीं होता ॥ ३ ॥

आत्मज्ञान के अभाव में तत्त्व—अतत्त्व का निश्चय नहीं हो सकता और तत्त्व अतत्त्व का निश्चय हुए विन्य मय्य जीवों को अमृतमावना नहीं हो सकती ॥ ४ ॥

अमृतमावना के अभाव में विद्युद्ध ध्यान की प्राप्ति नहीं होती और विद्युद्ध ध्यान के विना सपक्कभेणी पर व्यरोहण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

सपक्क भेणी के सिद्धम किसी अन्य उपाय से सुक्क—ध्यान का पक्कचित्तके अविचार नामक दूसरा पाया नहीं प्राप्त किया जा सकता ॥ ६ ॥

सिद्धिजन्य विना पृथ्वीनी अहरनेो अचनेो प्राप्त करी शकतेो नहीं ज्येवी क सीते भूत—आत्त्रि विना आत्मज्ञान भवु नहीं ॥ ३ ॥

आत्मज्ञानना अभावधी तत्त्व—अतत्त्वनेो निश्चय कर्ष शकतेो नहीं जनेे तत्त्व—अतत्त्वनेो निश्चय कर्षा विना सव्य ल्येनेे अमृतमावना भती नहीं ॥ ४ ॥

अमृतमावनाना अभावधी विद्युद्ध ध्याननी प्राप्ति भती नहीं; जनेे विद्युद्ध

સુક્ષ્માણસ પાયં ચ, વિતીયં પપ્પ સંજમી ।  
 કેવલ્ણાણલાહેણ, કેવલિત્તિ ણિગજ્જઈ ॥ ૭ ॥  
 અવત્થા ણહિ સેલેસી, કેવલ્ણાણમતરા ।  
 ભવઈ સમણિદસ્સ, સવ્વકમ્મવ્વઓ તઓ ॥ ૮ ॥  
 સવ્વકમ્મવ્વણ સિદ્ધી, -તઓ સિદ્ધો હિ સાસઓ ।  
 મોક્ષવટ્ઠી સુચચારિત્ત, - ધમ્મં તમ્હા સમાયરે ॥ ૯ ॥

જાયા—

શુક્લધ્યાનસ્ય પાદં ચ, દ્વિતીયં પ્રાપ્ય સંયમી ।  
 કેવલજ્ઞાનલાભેન, કેવલીતિ નિગદ્યતે ॥ ૭ ॥  
 અવસ્થા નહિ શૈલેશી, કેવલજ્ઞાનમન્તરા ।  
 ભવતિ શ્રમણેન્દ્રસ્ય, સર્વકર્મક્ષયસ્તતઃ ॥ ૮ ॥  
 સર્વકર્મક્ષયે સિદ્ધિ, - ધર્મં તસ્માત્સમાચરેત્ ।  
 મોક્ષાર્થી શ્રુતચારિત્ર, - ધર્મં તસ્માત્સમાચરેત્ ॥ ૯ ॥

સયમી પુરુષ શુક્લ ધ્યાન કા દૂસરા પાયા પ્રાપ્ત કરકે, કેવલ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરતા હૈ ઓર કેવલી કહલાતા હૈ ॥ ૭ ॥

કેવલ જ્ઞાન કે વિના શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત નહાં હોતી । શૈલેશી અવસ્થા જવ પ્રાપ્તિ હો જાતી હૈ તો મુનિગજ સમસ્ત કર્મોં કા ક્ષય કર ઢાલતા હૈ ॥ ૮ ॥

સમસ્ત કર્મોં કા ક્ષય હોને પર સિદ્ધિ પ્રાપ્ત હોતી હૈ । સિદ્ધિ લાભ હોને પર શાશ્વત સિદ્ધ હોજાતા હૈ, અત મોક્ષાર્થી પુરુષ કો શ્રુત-ચારિત્રરૂપ ધર્મ કા આચરણ કરના ચાહિયે ॥ ૯ ॥

ધ્યાન વિના ક્ષપકશ્રેણી ઉપર આરોહણ થઈ શકતુ નથી ॥ ૫ ॥

ક્ષપકશ્રેણી વિના બીજા કોઈ ઉપાયથી શુક્લ ધ્યાનને એકત્વ-વિતર્ક-અવિચાર નામક બીજા પાયે પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી ॥ ૬ ॥

સયમી પુરુષ શુક્લ ધ્યાનને બીજા પાયે પ્રાપ્ત કરીને કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે, અને કેવલી કહેવાય છે ॥ ૭ ॥

કેવલજ્ઞાન વિના શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત થતી નથી, શૈલેશી અવસ્થા ન્યારે પ્રાપ્ત થઈ નય છે, ત્યારે મુનિરાજ સકલ કર્મોંને ક્ષય કરી નાખે છે ॥ ૮ ॥

સકલ કર્મોંને ક્ષય થયા પછી સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે, સિદ્ધિ લાભ થયા પછી શાશ્વત સિદ્ધ થાય છે, એ માટે મુક્ષાર્થી પુરુષોએ શ્રુત-ચારિત્રરૂપ ધર્મનું આચરણ કરવુ જોઈએ ॥ ૯ ॥



અથ ગણિતાનુયોગઃ—

ગણિત = સંસ્થાનાં સ્થાનાનુયોગો-ગણિતાનુયોગઃ—

જીવાઽગ્રીવાદિવદ્વ્યસ્યસપર્યાંયપરિગમનં ગણિતાનુયોગસાધ્યમ્ ।

તેન બિનોક્ષપદાર્થાનાં યથાચસ્વિતં પરિગમનાત્ સમ્યચસ્વશુદ્ધિસ્વતથાચિત્તશુદ્ધિ ।

પૂર્વાનુપૂર્વ્યાદીનાં મજ્જાસાક્ષાદીનાં ચ પરિગમનયા ચિત્તસ્વૈર્યમ્, તત્તથ કપાયાનસપ્તમનમ્, તેન ચારિત્રનૈમૈત્સ્યમ્ ।

અથિ ચ ગણિતાનુયોગેન મગધતઃ કેવલજ્ઞાનાદિગુણપર્યાયાભ્યામાનન્ત્યમાયે વ્યતિ । સંસ્થાનમતિક્રાન્તાનાં તથાં સંસ્થાનુમજ્જમયતા સંસ્થાજ્ઞાનં પિના નૈવ

(૧) ગણિતાનુયોગ—

ગણિત અર્થાત્ સંસ્થાકા અનુયોગ ગણિતાનુયોગ કહાસાતા હૈ ।

બીજ પુજાક આદિ છઠ્ઠ દ્રવ્યોં કી ગણના કરને કે સ્થિત તથા દ્રવ્યોં કી પર્યાયોં કી મિત્તી કરને કે સ્થિત ગણિતાનુયોગ કી આવશ્યકતા હોતી હૈ । ગણિતાનુયોગસે બિન મગધાન્ દ્રવ્ય ઉપસ્થિત પર્યાયોં કી ટીક-ટીક ગણના હોને સે સમ્યક્ત્વ કી શુદ્ધિ હોતી હૈ, બીર સમ્યક્ત્વ કી શુદ્ધિ સે ચારિત્ર કી શુદ્ધિ હોતી હૈ ।

પૂર્વાનુપૂર્વોં પશ્ચાનુપૂર્વોં તથા અનાનુપૂર્વોં આદિ સે તથા મજ્જ-સાક્ષા કી ગણના કરનેસે ચિત્તમે સ્થિરતા આતી હૈ, બીર ચિત્તકી સ્થિરતા સે કપાયરૂપી અગ્નિ કાન્દ હોતી હૈ બીર તસસે ચારિત્ર નિર્મલ હોઠા હૈ ।

ગણિતાનુયોગ હી મગધાન કે કેવલજ્ઞાન અથિ ગુણ યથ પર્યાયોંકી અમલતા કો પ્રગટ કરતા હૈ, સંસ્થાતીત ગુણોં યથ પર્યાયોં કી સંસ્થા કા જ્ઞાન મુદ્ધિક્ષ હૈ' યદ્ વાત

(૨) અધિતાનુયોગ—

અધિત્વ જાણોત્ સંસ્થાને અનુયોગ તે અધિતાનુયોગ કહેવાય છે. છઠ્ઠ પુજાક આદિ છ દ્રવ્યોંની અણના કરવા માટે, તથા દ્રવ્યોંના પર્યાયોંની અણતરી કરવા માટે અધિતાનુયોગની આવશ્યકતા હોય છે. અધિતાનુયોગથી બિન અજવાન દ્વારા કહેલા પર્યાયોંની ઠીક ઠીક અણના અર્થ થકી હોવાથી સમ્યક્ત્વની શુદ્ધિ થાય છે અને સમ્યક્ત્વની શુદ્ધિથી ચારિત્રની શુદ્ધિ થાય છે.

પૂર્વાનુપૂર્વોં પશ્ચાનુપૂર્વોં તથા અનાનુપૂર્વોં આદિથી, અને અજબધોંની અણના કરવાથી ચિત્તમા સ્થિરતા આવે છે અને ચિત્તની સ્થિરતાથી કપાયરૂપી અગ્નિ કાન્દ થાય છે અને તેથી ચારિત્ર નિર્મલ થાય છે.

सुकज्ज्ञानस्य पायं च, वित्तीयं पप्प संजमी ।  
 केवलण्णाणलाहेण, केवलित्ति णिगज्जई ॥ ७ ॥  
 अवस्था णहि सेलेसी, केवलण्णाणमतरा ।  
 भवई समण्हिदस्स, सव्वकम्मक्खओ तओ ॥ ८ ॥  
 सव्वकम्मक्खए सिद्धी, - तओ सिद्धो हि सासओ ।  
 मोक्खवट्ठी सुयचारित्त, - धम्मं तम्हा समायरे ॥ ९ ॥  
 ज्ञाया—

शुक्रुध्यानस्य पादं च, द्वितीयं प्राप्य संयमी ।  
 केवलज्ञानलाभेन, केवलीति निगद्यते ॥ ७ ॥  
 अवस्था नहि शैलेशी, केवलज्ञानमन्तरा ।  
 भवति श्रमणेन्द्रस्य, सर्वकर्मक्षयस्ततः ॥ ८ ॥  
 सर्वकर्मक्षये सिद्धि, - धर्मं तस्मात्समाचरेत् ।  
 मोक्षार्थी श्रुतचारित्र, - धर्मं तस्मात्समाचरेत् ॥ ९ ॥

सयमी पुरुष शुक्रु ध्यान का दूसरा पाया प्राप्त करके, केवल ज्ञान प्राप्त करता है और केवली कहलाता है । ॥ ७ ॥

केवल ज्ञान के विना शैलेशी अवस्था प्राप्त नहीं होती । शैलेशी अवस्था जब प्राप्ति हो जाती है तो मुनिगज समस्त कर्मों का क्षय कर डालता है ॥ ८ ॥

समस्त कर्मों का क्षय होने पर सिद्धि प्राप्त होती है । सिद्धि लाभ होने पर शाश्वत सिद्ध होजाता है, अत मोक्षार्थी पुरुष को श्रुत-चारित्ररूप धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ९ ॥

ध्यान विना क्षपकश्रेष्ठी उपर आशैडणु थर्ध शकतु नथी ॥ ५ ॥

क्षपकश्रेष्ठी विना पीण केड उपायथी शुक्रु ध्याननो अेकत्व-वितर्क-अविचार नामक पीणे पाये प्राप्त करी शकतो नथी ॥ ६ ॥

सयमी पुरुष शुक्रु ध्याननो पीणे पाये प्राप्त करीने केवलज्ञान प्राप्त करे छे, अने केवली कहेवाय छे ॥ ७ ॥

केवलज्ञान विना शैलेशी अवस्था प्राप्त थती नथी, शैलेशी अवस्था न्यारे प्राप्त थर्ध नथ छे, त्यारे मुनिराज सकल कर्मोने क्षय करी नाछे छे. ॥ ८ ॥

सकल कर्मोने क्षय थया पछी सिद्धि प्राप्त थाय छे, सिद्धि लाल थया पछी शाश्वत सिद्ध थाय छे, अे माटे मुक्षार्थी पुरुषोअे श्रुत-चारित्ररूप धर्मनु आचरण करवु न्नेधंअे. ॥ ९ ॥

( १ ) सप्त मासविचारः

पौष-वैश्र-ज्येष्ठा-पाद-मासान् पिशाय श्रेया मासाः मक्षस्ता ।

विशेषतो मासफलम्-

- |                              |   |
|------------------------------|---|
| (१) भावणे-शुभम् ।            | (७) माध-ज्ञानवृद्धिः ।                            |
| (२) माद्रपद-शिष्यावृत्तता ।  | (८) फाल्गुने-सुख-सौभाग्य-यज्ञोद्धिः ।             |
| (३) भास्विने-सुखम् ।         | (९) चैत्रे-अल्पसुखम् ।                            |
| (४) कार्तिके-विद्यावृद्धिः । | (१०) वैशाखे-रत्नत्रयसाम ।                         |
| (५) मागशीर्षे-शुभम् ।        | (११) ज्येष्ठे-सामान्यम्, तथाप्यसत्सर्वेषु शुभम् । |
| (६) पौषे-विद्यावृद्धयभावः ।  | (१२) आषाढे-गुरुबन्धुना सह प्रेमास्पता ।           |

( १ ) मास-विचार

पौष, वैश्र, ज्येष्ठ और आषाढ मास को छोड़कर शेष महीना में दीक्षा देना प्रशस्त है।

विशेष मास-विचार

- |                                |  |
|--------------------------------|--|
| (१) अक्षय - शुभ ।              | (७) माघ - ज्ञान की वृद्धि  |
| (२) माद्रपद - शिष्या कमी ।     | (८) फाल्गुन-सुख-सौभाग्य और मरु की वृद्धि                           |
| (३) भास्विन - सुख ।            | (९) चैत्र - अल्प सुख   |
| (४) कार्तिक - विद्यावृद्धि ।   | (१०) वैशाख - रत्नत्रय का काम                                       |
| (५) मार्गशीर्ष - शुभ ।         | (११) ज्येष्ठ - साधारण यह मास दूसर नक्षत्र आदि का बल हो तो शुभ है । |
| (६) पौष-विद्यावृद्धि का अभाव । | (१२) आषाढ-गुरुमंत्रों के साथ प्रेम की कमी ।                        |

( १ ) मास-विचार-

पौष, वैश्र, ज्येष्ठ और आषाढ मासने त्यजने जाहीना जीला भदिनाज्यो दीक्षा आपका आटे उत्तम छे

विशेष मास-विचार-

- |                                |   |
|--------------------------------|---|
| (१) आपषु-शुभ ।                 | (७) माघ-ज्ञानकी वृद्धि ।  |
| (२) माद्रपद-शिष्योनी कमी ।     | (८) फाल्गुन-सुख सौभाग्य और मरुनी वृद्धि ।                         |
| (३) भास्वि-सुख ।               | (९) चैत्र-अल्प सुख ।  |
| (४) कार्तिक-विद्यावृद्धि ।     | (१०) वैशाख-रत्नत्रयको लाभ ।                                       |
| (५) मार्गशीर्ष-शुभ ।           | (११) ज्येष्ठ-साधारण आभासर्मा जीला नक्षत्र वगैरेण बल होय तो शुभ छे |
| (६) पौष-विद्यावृद्धिने अक्षय । | (१२) आषाढ-गुरुमंत्रोनी साथे प्रेमनी कमी ।                         |

विज्ञातुं शक्यते, तद्धि गणितानुयोगम्यम् । भगवद्गुणानुस्मरणेन भगवतः  
स्तुतिः संपद्यते, तथा च दर्शनशुद्धिस्तवचारित्रशुद्धिः ।

प्रत्रज्याप्रदानादयोऽपि शोभनतिथिनक्षत्रादियुक्तसमय एव विधेया इति  
तादृशसमयावबोधकतया गणितानुयोगस्थापि चरणप्राप्तिं प्रति साधनता सिद्ध्यति ।  
तथा चास्यापि फल चारित्ररक्षणमेव ।

अथ प्रसङ्गाज्ज्योतिष्कविषयः किञ्चित्प्रदर्श्यते—

तत्र पूर्वं प्रत्रज्याप्रदानसमयो निर्णीयते—

भी सख्या का ज्ञान किये विना जानी नहीं जा सकती है । भगवान के गुणों का वारवार  
स्मरण करने से भगवान की स्तुति होती है, उससे दर्शन-शुद्धि होती है, दर्शन-शुद्धि के  
होने से चारित्र की शुद्धि होती है ॥

शुभ तिथि तथा शुभ नक्षत्र से युक्त समय में ही दीक्षा आदि देना चाहिए, इस  
प्रकार के समय का बोध कराने वाला होने से गणितानुयोग भी चारित्रकी प्राप्ति का कारण  
है, ऐसा सिद्ध होता है, उससे गणितानुयोग का फल भी चारित्र की रक्षा करना ही है ।

यहां प्रसङ्ग होनेसे कुछ ज्योतिष का विषय दिखलाया जाता है—

दीक्षादानसमयका निर्णय—

गणितानुयोग न भगवानना केवलज्ञान आदि से शुद्धो से प्रभावे पर्यायेनी  
अनतता प्रगट करे छे 'संख्यातीत शुद्धो अने पर्यायेनी संख्या नष्टुवी अशक्य  
छे' ते वात पणु संख्यानु ज्ञान कर्या विना नष्टुवी शकती नथी, ते गणितानुयोग  
द्वारा नष्टुवी शक्य छे भगवानना शुद्धोनु वारवार स्मरणु करवाथी भगवाननी स्तुति  
थाय छे, अने तेथी दर्शन-शुद्धि थर्छ शकै छे, अने दर्शन विशुद्ध थवाथी चारित्रनी  
शुद्धि थाय छे

शुभ तिथि तथा शुभ नक्षत्रथी युक्त समयमा न दीक्षा आदि आपवी लेछ्छे,  
आ प्रकारना समयनु ज्ञान कराववावाणो होवाथी गणितानुयोग पणु चारित्रनी प्राप्तिनु  
कारणु छे अमे सिद्ध थाय छे तेथी गणितानुयोगनु इल पणु चारित्रनी रक्षा करवी अेन छे.  
अही प्रसंगथी थोडो ज्योतिषना विषय अताववाभां आवे छे—

दीक्षा आपवाना समयना निर्णय—

नव त्रिविध वर्जनीयाः—

(१) शुक्रा चतुर्विंशती (२) अमावास्या (३) यस्यां तिस्रो रविसंक्रमणं, सा ।  
(४) द्वितीया, (५) चतुर्थी, (६) षष्ठी, (७) अष्टमी, (८) नवमी, (९) द्वादशी ।

(४) वार-विचारः—

रवि - अशुभ - बुध - गुरु - वाराः प्रशस्ता

(५) नक्षत्र-विचार —

दीक्षायां प्रयोदश नक्षत्राणि प्रशस्तानि—(१) अश्विनी, (२) रोहिणी, (३) मृगशिरा, (४) पुष्यम्, (५) उत्तराफाल्गुनी, (६) इस्तः (७) अनुराधा, (८) ज्येष्ठा, (९) उत्तराषाढा, (१०) अभिजित्, (११) भवणम्, (१२) उत्तरमाघ पदा, (१३) रेवती ।

मी तिथियां स्थान्य हैं—

(१)—शुक्रा चतुर्विंशती, (२)—अमावास्या (३)—जिस तिथि में सूर्य-संक्रमण हो कर,  
(४)—द्वितीया (५)—चतुर्थी (६)—षष्ठी (७)—अष्टमी (८)—नवमी (९)—द्वादशी ।

(४) वार-विचार—

रवि सोम बुध गुरु, और शनिवार प्रशस्त है ।

(५) नक्षत्र-विचार—

दीक्षा के दिवस में तेरह १३ नक्षत्र प्रशस्त हैं । (१)—अश्विनी, (२)—रोहिणी, (३)—मृगशिरा, (४)—पुष्य (५)—उत्तराफाल्गुनी (६)—इस्त (७)—अनुराधा (८)—ज्येष्ठा (९)—उत्तराषाढा (१०)—अभिजित् (११)—भवण (१२)—उत्तरमाघपदा, (१३)—रेवती ।

नव तिथिभ्यो स्थान्य छ—

(१) शुक्रा चतुर्विंशती, (२) अमावास्या (३) ने तिथिभ्यां सूर्य-संक्रमण माघ  
ते, (४) द्वितीया, (५) चतुर्थी (६) षष्ठी, (७) अष्टमी (८) नवमी (९) द्वादशी  
(४) वार विचार—

रवि सोम, बुध, गुरु और शनिवार उत्तम छे

(५) नक्षत्र-विचार—

दीक्षणा दिवसभ्यां तेर नक्षत्र उत्तम छे— (१) अश्विनी, (२) रोहिणी, (३) मृगशिरा, (४) पुष्य, (५) उत्तराफाल्गुनी, (६) इस्त (७) अनुराधा (८) ज्येष्ठा (९) उत्तराषाढा, (१०) अभिजित् (११) भवण (१२) उत्तरमाघपदा, (१३) रेवती

## (२) पक्ष-विचारः—

कृष्णपक्षे-प्रतिपदा आरभ्य पञ्चमी यावत्तिथयः शुभाः । षष्ठीतः समास्य दशमी यावत्तिथयो मध्यमाः । एकादशीतः प्रारभ्यामावास्यां यावदशुभाः ।

शुक्लपक्षे तु प्रतिपत्तिथितः पञ्चमी पर्यन्तमशुभाः । षष्ठीतो दशमी यावन्मध्यमाः । एकादशीतः समास्य पूर्णिमान्तास्तिथयः शुभाः ।

## (४) तिथि-विचारः—

दीक्षायां प्रतिपत् (१), तृतीया (३), पञ्चमी (५), सप्तमी (७), एकादशी (११), त्रयोदशी (१३) च प्रशस्ता ।

## (२) पक्ष-विचारः—

कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पञ्चमी पर्यन्त तिथियाँ शुभ हैं । षष्ठी से लेकर दशमी तक की तिथिया मध्यम हैं, और एकादशीसे लेकर अमावास्या तक अशुभ तिथिया हैं ।

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लगाकर पञ्चमी तक अशुभ है, षष्ठी से दशमी तक मध्यम हैं और एकादशी से पूर्णिमा तक की तिथिया शुभ हैं ।

## (३) तिथि-विचारः—

दीक्षा के विषयमें प्रतिपदा, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी प्रशस्त हैं ।

## (२) पक्ष-विचारः—

कृष्ण पक्षमा पडवेथी पाचम सुधीनी तिथिञ्चो अशुल छे छडुथी लधने दशम सुधीनी तिथिञ्चो मध्यम छे, अने अेकादशी-अगीथारसथी लधने अमावास्या सुधीनी तिथिञ्चो अशुल छे

शुक्ल पक्षमा-पडवेथी लधने पाचम सुधीनी तिथिञ्चो अशुल छे छडुथी दशमी सुधी मध्यम छे, अने अेकादशीथी पुनम सुधीनी तिथिञ्चो शुल छे

## (३) तिथि-विचारः—

दीक्षाना विषयमा पडवे, त्रीण, पाचम, सातम, अेकादशी अने तेरस, आ तिथिञ्चो उत्तम छे

नव त्रियपत्र वर्जनीयाः—

(१) शुक्रा चतुर्दशी (२) अमावास्या (३) यस्यां त्रिपौ रवितंक्रमणं, सा ।  
(४) द्वितीया, (५) चतुर्थी, (६) पञ्ची, (७) अष्टमी, (८) नवमी, (९) द्वादशी ।

(४) चार-विचारः—

रवि - चन्द्र - बुध - गुरु - शाराः मघस्ताः

(५) नक्षत्र-विचार —

दीक्षायां त्रयोदश नक्षत्राणि मघस्तानि— (१) अश्विनी, (२) रोहिणी, (३) मृगशिरा, (४) पुष्यम्, (५) उत्तराशान्विनी, (६) इस्त (७) अनुराधा, (८) म्यघ्रा, (९) उत्तराषाढा, (१०) अभिजित्, (११) भरणी, (१२) उत्तराश्रपदा, (१३) रेवती ।

नौ त्रियियां त्याज्ये—

(१)—शुक्रा चतुर्दशी, (२)—अमावास्या (३)—जिस तिथि में सूर्य-संक्रमण हो वह,  
(४)—द्वितीया (५)—चतुर्थी (६)—पञ्ची (७)—अष्टमी (८)—नवमी (९)—द्वादशी ।

(४) चार-विचारः—

रवि सोम बुध गुरु, शौर शनिवार प्रचरत है ।

(५) नक्षत्र-विचारः—

दीक्षा के विषय में तैत्ति ११ उक्त्य प्रकाश है । (१)—अश्विनी, (२)—रोहिणी, (३)—  
मृगशिरा, (४)—पुष्य (५)—उत्तराशान्विनी (६)—इस्त (७)—अनुराधा (८)—म्यघ्रा (९)—  
उत्तराषाढा (१०)—अभिजित् (११)—भरणी, (१२)—उत्तराश्रपदा, (१३)—रेवती ।

नव त्रियियां त्याज्ये—

(१) शुक्रे चतुर्दशी, (२) अमावास्या (३) नौ त्रियिमां सूर्य-संक्रमणं याप  
ते, (४) द्वितीया, (५) चतुर्थी (६) पञ्ची, (७) अष्टमी (८) नवमी (९) द्वादशी

(४) चार विचारः—

रवि सोम, बुध, गुरु अने शनिवार उत्तम छे

(५) नक्षत्र-विचारः—

दीक्षान्ता विषयमां तैत्ति नक्षत्र उत्तम छे— (१) अश्विनी, (२) रोहिणी  
(३) मृगशिरा (४) पुष्य, (५) उत्तराशान्विनी (६) इस्त (७) अनुराधा (८)  
म्यघ्रा (९) उत्तराषाढा, (१०) अभिजित् (११) भरणी (१२) उत्तराश्रपदा, (१३) रेवती.

## (२) पक्ष-विचारः—

कृष्णपक्षे—प्रतिपदा आरभ्य पञ्चमी यावत्तिथयः शुभाः । पष्ठीतः समाह्वय दशमी यावत्तिथयो मध्यमाः । एकादशीतः आरभ्यामावास्यां यावदशुभाः ।

शुक्लपक्षे तु प्रतिपत्तिथितः पञ्चमी पर्यन्तमशुभाः । पष्ठीतो दशमी यावन्मध्यमाः । एकादशीतः समाह्वय पूर्णिमान्तास्तिथयः शुभाः ।

## (४) तिथि-विचारः—

दीक्षायां प्रतिपत् (१), तृतीया (३), पञ्चमी (५), सप्तमी (७), एकादशी (११), त्रयोदशी (१३) च प्रशस्ता ।

## (२) पक्ष-विचारः—

कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पञ्चमी पर्यन्त तिथियाँ शुभ हैं । पष्ठी से लेकर दशमी तक की तिथिया मध्यम हैं, और एकादशीसे लेकर अमावास्या तक अशुभ तिथिया हैं ।

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लगाकर पञ्चमी तक अशुभ हैं, पष्ठी से दशमी तक मध्यम हैं और एकादशी से पूर्णिमा तक की तिथिया शुभ हैं ।

## (३) तिथि-विचारः—

दीक्षा के विषयमें प्रतिपदा, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी प्रशस्त हैं ।

## (२) पक्ष-विचारः—

कृष्ण पक्षमा पडवेथी पांचम सुधीनी तिथिओ अशुभ छे छठ्ठी लठने दशम सुधीनी तिथिओ मध्यम छे, अने ओकादशी-अगीयारसथी लठने अमावास्या सुधीनी तिथिओ अशुभ छे

शुक्ल पक्षमा—पडवेथी लठने पांचम सुधीनी तिथिओ अशुभ छे छठ्ठी दशमी सुधी मध्यम छे, अने ओकादशीथी पुनम सुधीनी तिथिओ शुभ छे

## (३) तिथि-विचारः—

दीक्षाना विषयमा पडवे, त्रीन, पांचम, सातम, ओकादशी अने तेरस, अ तिथिओ उत्तम छे.



(७) ब्रह्मिणम्-यत्र त्रयो ब्रह्मस्तिष्ठन्ति साष्टम नसत्रम् ।

(६) योग-विचारः—

योगास्तु नाम्नेव ह्युमाश्रुमफलाः, यथा-विष्कम्भादिषु दैनिकयोगेषु मीत्यादयः श्रुमफलाः, विष्कम्भादयोऽश्रुमफलाः । आनन्दादिषु सांयोगिकेषु वारनक्षत्र-संयोगजनितेषु योगेषु आनन्दादयः शुभा, काष्ठदण्डादयोऽशुभा ।

(७) भय करण-विचारः—

करणानि एकादश सन्ति; यथा-(१) वक्त्रम्, (२) बालवम्, (३) कौष्ठवम्,

(७) षड्-मिथुनक्षि में तीन षड् हो ऐसा नक्षत्र ।

(६) योग-विचार—

योगों के नामसे ही शुभ अशुभ फल प्रतीत हो पाता है । जैसे-विष्कम्भ, आदि दैनिक योगों में से प्रीति आदि योग शुभफल बाँटे, और विष्कम्भ आदि योग अशुभ फल बाँटे हैं । आनन्द आदि सांयोगिक (वार नक्षत्र के संयोग से बनने वाले) योगों में से आनन्द आदि योग शुभफलदाता हैं और काष्ठदण्ड आदि अशुभफलदायक हैं ।

(७) करण-विचार

करण ११ ग्यारह होते हैं जैसे—(१) वक्त्र (२) बालव, (३) कौष्ठव,

(७) अक्षिज-नेमां तस्य षडो होव, जेवुं नक्षत्र

(६) योग-विचार—

योगेभ्य नामधी ल शुभ-अशुभ इत्यनी प्रतीति बर्ध लभ छे । नेमडेः-विष्कम्भ आदि दैनिक योगेभांसी प्रीति आदि शुभ इत्यवस्था छे अने विष्कम्भ आदि योग ते अशुभ इत्य अवपनास छे । आनन्द आदिक सांयोगिक (वार-नक्षत्रन्य संयोगधी जनवावाण) योगेभां आनन्द आदि योग शुभ इत्य देवास छे अने काष्ठदण्ड आदि अशुभ इत्य अवपनास छे ।

(७) करण विचार—

करण अत्रिचार होव छे (१) वक्त्र (२) बालव (३) कौष्ठव (४) अक्षिजोत्थन  
प्र भा-१

नक्षत्रेषु सप्त दोषाः सन्ति, यथा—

- (१) संध्यागतम्—यत्र नक्षत्रे सूर्योऽनन्तरं स्थास्यति तादृशं नक्षत्रम् । यथा हस्ते रविर्वर्तते चेत् तदा दैनिकं चित्रानक्षत्रं संध्यागतं बोध्यम् ।
- (२) रविगतम्—यत्र रविस्तिष्ठति तादृशं दैनिकं नक्षत्रं रविगतं बोध्यम् ।
- (३) दुर्गतम्—यत्रोन्मार्गगामी-वक्रो ग्रहो भवति, तादृशं नक्षत्रम् ।
- (४) सग्रहम्—यत्र क्रूरो ग्रहस्तिष्ठति, तादृशं नक्षत्रम् ।
- (५) विलम्बितम्—सूर्येण परिभ्रज्य मुक्तं नक्षत्रम् ।
- (६) राहुगतम्—यत्र चन्द्र-सूर्योपरागः सजातस्तादृशं नक्षत्रम् । ईदृशे नक्षत्रे षण्मासान् यावत् प्रव्रज्या न देया ।

नक्षत्रों में सात दोष

- (१) सन्ध्यागत—जिस नक्षत्र में सूर्य आगे जाने वाला है वह नक्षत्र । जैसे—अगर हस्त नक्षत्र में सूर्य हो तो दैनिक चित्रा नक्षत्र सन्ध्यागत कहलाता है ।
- (२) रविगत—जिस नक्षत्र में रवि हो, वह दैनिक नक्षत्र रविगत जानना चाहिए ।
- (३) दुर्गत—जिस में उन्मार्गगामी-वक्र ग्रह हो वह नक्षत्र दुर्गत कहलाता है ।
- (४) सग्रह—जिस नक्षत्र में क्रूर ग्रह हो ।
- (५) विलम्बित—सूर्य-द्वारा भोग कर छोड़ा हुआ नक्षत्र ।
- (६) राहुगत—जिस नक्षत्र में चन्द्र-ग्रहण या सूर्य-ग्रहण हुआ हो । ऐसे नक्षत्र में छह मास तक वीक्षा देना वर्जनीय है ।

नक्षत्रमा सात दोष—

- (१) संध्यागत—जो नक्षत्रमा सूर्य आगण आववावाणो छे ते नक्षत्र, जेवी रीते के हस्त नक्षत्रमा सूर्य होय तो दैनिक चित्रा नक्षत्र संध्यागत कहेवाय छे
- (२) रविगत—जो नक्षत्रमा रवि होय ते दैनिक नक्षत्र रविगत कहेवाय छे
- (३) दुर्गत—जोमा उन्मार्गगामी-वक्र-ग्रह होय ते नक्षत्र दुर्गत कहेवाय छे
- (४) सग्रह—जो नक्षत्रमा क्रूर ग्रह होय
- (५) विलम्बित—सूर्यद्वारा भोगवाणी छुट्टु करायेलु नक्षत्र
- (६) राहुगत—जो नक्षत्रमा यद्राहुग्रह अथवा सूर्यग्रहण थयु होय जेव नक्षत्रमा छ मास सुधी वीक्षा आपवी वर्जनीय छे

क्य करमा स्थिरा पण्यत्ता?, गीयमा सच करणा चरा, चचारि करमा यिरा पण्यत्ता ।” इत्यादि ।

तथ दिवाङ्मनेन तिथेः पूर्वार्द्धभागः, रात्रिङ्मनेन त्रिपल्लवराद्धभागो गम्यते ।

पक्षावसप्त करणेषु बभम्, बाह्वम्, कौलबम्, वणिजम्, एतानि पस्वारि द्रुमफलयानि ।

विष्टिकरणस्य नामान्तरं मद्रा । इयं वीक्षादौ बर्मेनीया । उक्तञ्च-

“यदि मद्राकृतं कार्यं, प्रमादेनापि सिद्धयति ।

गमा है । कहां कहा है —

“हे अन्तक ! इन म्भारह करणों में किरने करण चर और किरण करण स्थिर कर गये हैं”, हे गीतम । सप्त करण चर और चार करण स्थिर करे गये हैं ।” इत्यादि ।

यहां दिन शब्द का अर्थ है—तिथिका पूर्वार्ध भाग और रात्रि शब्द का अर्थ है— रात्रि का उत्तरार्ध भाग ।

इन म्भारह करणों में से बभ, बाह्व, कौलब, और वणिज, ये चार करण द्रुम फल दायक है ।

विष्टि करण का दूसरा नाम मद्रा है । वीक्षा आदि कार्यों में यह बर्मेनीय है । कहा भी है —

इयधी किरणुं च तथा किरणुं च —

हे अन्तक ! आ अन्तक इच्छोर्मां किरणुं किरणुं चर अने किरणुं किरणुं स्थिर किरणुं चर अन्तक ! हे गीतम । सप्त किरणुं चर अने चार किरणुं स्थिर किरणुं चर अन्तक । इत्यादि ।

आ अन्तक दिन शब्दको अर्थ है—तिथिको पूर्वार्ध भाग अने रात्रि शब्दको अर्थ है—रात्रिको उत्तरार्ध भाग ।

ये अन्तक इच्छोर्मांसी बभ, बाह्व, कौलब अने वणिज, आ चार किरणुं द्रुमफलदायक है ।

विष्टिकरणुं वीक्षुं नाम मद्रा है वीक्षा आदि कार्यों में यह बर्मेनीय है । कहा भी है —

(४) स्त्रीविलोचनम्, इदं तैतिलमिति, कोचदाहुः, (५) गगादि, इदं गरमित्या-  
हुरन्ये, (६) वणिजम्, (७) विष्टिः, (८) शकुनिः, (९) चतुष्पदं, (१०) नागम्,  
(११) किंस्तुम्, इति ।

अत्र चवादिविष्टयन्तानि सप्त करणानि चराणि, शकुन्यादीनि चत्वारि स्थिराणि  
वेदितव्यानि ।

चवादिविष्टयन्तानां सप्तानां कस्याश्चिदेकस्यां तिथौ नियमतः स्थित्यभावात्तानि  
सप्त चराणि, शकुन्यादीनां कृष्णपक्षीयचतुर्दश्यमावस्याशुक्रप्रतिपत्तिथिषु नियत-  
स्थित्या तानि चत्वारि स्थिराणि प्रोच्यन्ते । स्पष्ट चेद जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ती सप्तमवक्ष-  
स्कारे । उक्तञ्च तत्र—“एएसिणं भंते ! एकारसण्हं करणाण कइ करणा चरा ?

(४) स्त्रीविलोचन (कोई कोई इसे 'तैतिल' भी कहते हैं), (५) गगादि ('गर' नाम भी है),  
(६) वणिज, (७) विष्टि, (८) शकुनि, (९) चतुष्पद, (१०) नाग, (११) किंस्तुम् ।

इन ग्यारह करणों में अब से लेकर विष्टि तक सात करण चर हैं, और अन्त के  
शकुनि आदि चार स्थिर हैं ।

अब से लेकर विष्टि तक सात करण किसी एक तिथि में नियम से नहीं रहते इस  
कारण ये चर कहलाते हैं, शकुनि आदि अन्तिम चार करण कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी,  
अमावास्या तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि में नियम से होते हैं, अत एव ये स्थिर कहलाते  
हैं । इस विषय का जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के सातवें वक्षस्कार में स्पष्ट रूप से विवेचन किया

(कै।।। कै।।। अने 'तैतिल' पणु कडे छे ) (५) गगादि (तेनु 'गर' नाम पणु छे )  
(६) वणिज (७) विष्टि (८) शकुनि (९) चतुष्पद (१०) नाग (११) किंस्तुम्

आ अगियार करणोभा अवधी लधने विष्टि सुधी सात करणु चर छे, अने  
छेवला शकुनि आदि चार स्थिर छे

अवधी लधने विष्टि सुधीना सात करणु कै।।। अने तिथिभा नियमित रहेता  
नथी ते करणुथी तेने चर कडे छे, शकुनि आदि छेवला चार, कृष्ण पक्षनी चौदस,  
अमावास्या तथा शुक्ल पक्षनी प्रतिपदा-पडवो तिथिभा नियमित रहे छे अटवे ते  
स्थिर कडेवाय छे आ विषयतु विवेचन जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिना सातमा वक्षस्कारमा स्पष्ट

शुद्धि-चतुष्पद-नाग-किंस्तुप्रनामानि करमानि तु कृष्णचतुर्वर्ष्यमाषास्या  
शुद्धप्रतिपद्योगमाषित्वास्याख्यानि । अशुद्धिश्च द्वे करणे श्रीविलोचनगरादिसत्त्वके  
सामान्य, इति साम्प्रदायिकाः ।

यद्यु गणिविद्यामन्त्रिणैककृतचतुष्पदं नागं चेति द्वे करणे निष्क्रमणे प्रसंसन्ति,  
यथा—“ नागे चतुष्पदं याधि, सेहनिष्क्रमणं करे ” इति ।

तत्र समीचीनम्, निष्क्रमणेऽभावास्याया प्रतिपिदत्वेन नियमस्ययोग-  
माविनास्वयोः प्राज्ञस्त्याऽसंभवात् ।

शुद्धि चतुष्पद नाग और किंस्तुप्र नामक करण शुष्ण पक्षकी चतुर्वर्षी, अमावास्या,  
दृश्यपक्षकी प्रतिपदा के योगसे माहित होने के कारण त्याग्य हो जाते हैं । शेष दो करण  
एश्विनिलोचन और गदाधि नामक साधारण हैं । परम्परा को जानने वालों का यह मत है ।

गणिविद्यामन्त्रिणैककारणे वीक्षा के नियम में चतुष्पद और नाग नामक दो करण  
प्रयोज्य माने हैं उन्हां ने कहा है कि—“नागे चतुष्पदं याधि सेहनिष्क्रमणं करे” अर्थात्  
नाग और चतुष्पद नक्षत्र में निष्क्रमण करना चाहिये अर्थात् शिष्यको वीक्षा देना चाहिये,  
जबकि यह कर्म समीचीन नहीं है, कारण यह है कि निष्क्रमण में अमावास्या निषिद्ध  
मानी गई है, इसीलिये अमावास्या के योग से माहित उक्त दोनों करणों का प्रशस्त होना  
असम्भव है ।

शुद्धि, चतुष्पद, नाग अने किंस्तुप्र नामका करण शुष्ण पक्षकी चौदहवा,  
अमावास्या, शुद्ध पक्षका पञ्चम्या योगशी माहित होवानी त्याग्य जनी यह दो  
पक्षी ने करण श्रीविलोचन अने अशुद्धि नामका साधारण हैं परम्परा अनुसार  
चण्डनेय का प्रमाण मत् है ।

अद्विविद्यामन्त्रिणैककारणे वीक्षण नियममां चतुष्पद अने नाग नामका दो  
करणोंने उत्तम माना है तबे कहु है—“नागे चतुष्पदं याधि सेहनिष्क्रमणं करे”  
नाग अने चतुष्पद नक्षत्रमा निष्क्रमण करण लोके अर्थात् शिष्यने वीक्षा आपनी  
लोके, तबत्र का कर्म लक्षण नहीं, कहे जे है—निष्क्रमणमां-टीक्ष्णमां-  
अमावास्या निषिद्ध मानी है कोठवा मारे अमावास्याका योगशी माहित उपर  
होवा जने कहे उत्तम दोष ते बात असंभव है ।

प्राप्ते तु षोडशे मासे, समूलं तद्विनश्यति ॥ १ ॥” इति ।

शुक्लपक्षे भद्रा चतुर्थ्यामेकादश्यां च तिथिपरार्द्धभागस्थायिनी, अष्टम्यां पूर्णिमायां च तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी भवति, कृष्णपक्षे तु सा तृतीयायां दशम्यां च तिथिपरार्द्धभागस्थायिनी, सप्तम्यां चतुर्दश्यां च तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी भवति ।

तत्र तिथिपश्चार्द्धभागस्थायिनी भद्रा दिवसं व्याप्नोति, तथा तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी रात्रिं व्याप्नोति चेत्तदा न दोषावहा ।

भद्रायार्षिंशर्द्धटिकामानेन पश्चिमं घटिकात्रयं पुच्छमित्यभिधीयते । तद् भद्रापुच्छं शुभम् ।

“भद्रा करण में क्रिया हुआ कार्य प्रथम तो सिद्ध ही नहीं होता, कदाचित् सिद्ध भी होजाय तो सोलहवाँ महीना आने पर उसका समूल विनाश हो जाता है” ॥१॥

भद्रा शुक्लपक्ष में चौथ तथा एकादशी तिथि के उत्तरार्ध में रहती है, और अष्टमी तथा पूर्णिमा के दिन तिथि के पूर्वार्ध में रहती है ।

कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी के दिन तिथि के उत्तरार्ध में और सप्तमी एवं चतुर्दशी को तिथि के पूर्वार्ध में रहती है ।

तिथि के उत्तरार्ध में रहने वाली भद्रा दिनको व्याप्त करती हो और पूर्वार्धभाग में रहने वाली रात्रिको व्याप्त करती हो तो कोई दोष नहीं है ।

तीस घड़ीकी भद्रा की अन्तिम तीन घड़ियाँ पूछ कहलाती है । भद्राकी यह पूछ शुभ है ।

“ भद्रा करणुमा करेलु काम प्रथम तो सिद्ध थतु नथी, कदाचित् सिद्ध पणु थाय तो सोणभे मडिने आवता तेने समूण विनाश थाय छे” ॥ १ ॥

भद्रा शुक्ल पक्षमा चोथ तथा एकादशी तिथिना उत्तरार्धमा रहे छे, अने आठम तथा पूनमना द्विमे तिथिना पूर्वार्धमा रहे छे

कृष्णपक्षमा त्रीज अने दशमीना दिन तिथिना उत्तरार्धमा अने सातम तथा चौदशना दिन तिथिना पूर्वार्धमा रहे छे

तिथिना उत्तरार्धमा रहेवावाणी भद्रा द्विदसने व्याप्त करती होय, अने पूर्वार्ध लागमा रहेवावाणी रात्रीने व्याप्त करती होय तो कोई दोष नथी त्रीश घडीनी भद्रानी छेल्की त्रणु घडीओ पूछ कडेवाय छे, अने भद्रानी ते पूछ शुभ छे

चन्द्रतो स्मरतश्च सप्तमे स्थाने रश्मिद्वयमार्गवास्थान्याः, तत्र प्रयाणां सगमे दीप्तयोः प्रतिपाती भवति । यद्वा त्रिषु द्वाकन्यसमो वा तत्र स्थिति चेत्तदा इष्टीलाः शोभादिबन्धमश्च भवति । यदि सप्तमं स्थानं रिक्तं, चन्द्रश्च ग्रहान्तरवर्धितस्तदा दीप्ता शुभा । यदि चन्द्रस्य गुरु-बुधयोरन्यतरेण सगमस्तीर्णं शुभम् ।

(१०) अथ स्वरितकर्मव्यदीप्तासमयनिरूपणम् ।

(क) सिद्धच्छायात्मम् ।

चन्द्रमासे तथा स्मर से सप्तमं स्थान पर सूर्य, बुध (मङ्गल) मार्गव, (शुक्र) हो चोख्याम्ब है । अगर इन तीनों का सङ्गम हो तो दीप्ता होने वाला प्रतिपाती ( पडिपार्थ ) हो जाता है । अगर इन तीनों में से दो कम्पना कोई भी एक बड़ा हो तो दीप्ता होने वाला कुशल और शोभा आदि दुर्गुणा का चारक होता है । अगर चन्द्र दूसरे ग्रहों से वर्धित हो तो दीप्ता शुभ समझनी चाहिये । अगर गुरु और बुध में से किसी एक के साथ चन्द्रमाका सङ्गम हो तो शुभ है ।

(१०) सुरन्त दीप्ता देनेका समय—

(क) सिद्धच्छाया-मन्त्र—

त्रीन्द, उद्भ, नभमा अने अग्निआरमा स्थानमां स्थित शुके निजल डोय छे, तेधी करी शुके अस्त डोय तो पक्ष दीक्षा अक्षय करनी ते उत्तम भानवामां आव्यु छे जेवो डोय आव्युअने भव छे

अइभाधी तथा अजधी सातमा स्थानमां सुखे मजल शुके डोय तो त्वाक्य छे अथवा जे त्रयोपने सजभ डोय तो दीक्षा देनाए प्रतिपाती ( पडिपार्थ ) मर्ध अथ छे अथवा जे त्रयोभाधी से अथवा डोय पक्ष जेके त्वा डोय तो दीक्षा देवापजो प्रसीत अने शोभ आदि इष्टीवितेनो धारण करतार अने छे अथवा चन्द्र तथा अजधी सातसु स्थान आही डोय अथवा अइभा वीज अहोधी वर्धित डोय ते दीक्षा शुभ समझनी जेधजे अथवा गुरु अने बुधभाधी डोय पक्ष जेकनी साधे अइने सजभ डोय तो शुभ छे

(१०) सुरत दीक्षा आपनानो समय—

(क) सिद्धच्छाया-मन्त्र—

અથ લગ્નવિચાર:-

નિષ્ક્રમણે મિથુન-સિંહ-કન્યા-વૃશ્ચિક-ધનુ-મકર-કુમ્ભ-મીનાનિ લગ્નનિ શુમાનિ । અન્યાનિ ચત્વારિ વર્જનીયાનિ ।

(૯) ગ્રહવિચાર:-

દીક્ષાલગ્ને શનશ્ચર મધ્યમવલં, ગુરું વલીયાસં, શુક્રં વલહીનં વિધાય દીક્ષા દેયા । દ્વિતીયે, પશ્ચમે, પષ્ટે, સપ્તમે, એકાદશે સ્થાને શનિર્મધ્યમવલી ભવતિ । ત્રિકોણે કેન્દ્રે એકાદશે ચ સ્થાનેઽવસ્થિતો ગુરુર્વલીયાન્ ભવતિ । તૃતીયે, પષ્ટે, નવમે, દ્વાદશે ચ સ્થાને સ્થિતઃ શુક્રો વલહીનો ભવતિ, અત એવ શુક્રાસ્તેઽપિ દીક્ષા ગ્રાહ્યેતિ સંપ્રદાયવિદઃ ।

(૮) લગ્ન-વિચાર—

દીક્ષા અક્ષીકાર કરને મં-મિથુન, સિંહ, કન્યા, વૃશ્ચિક, ધનુ, મકર, કુમ્ભ ઓર મીન, લગ્ન શુભ હૈં । શેષ ચાર વર્જનીય હૈ ।

(૯) ગ્રહ-વિચાર—

દીક્ષાલગ્ન મેં શનૈશ્ચર મધ્યમ બલ વાલા, ગુરુ બલશાલી ઓર શુક્ર બલહીન હો તો દીક્ષા દેની ચાહિષ । દૂસરે પાંચવેં, છઠે, સાતવે ઓર ગ્યારહવેં સ્થાન મેં શનિ મધ્યમ બલ વાલા હોતા હૈ । ત્રિકોણ મેં કેન્દ્ર મેં ઓર ગ્યારવેં સ્થાન મેં રહા હુઆ ગુરુ ( બૃહસ્પતિ ) વલશાલી સમક્ષા જાતા હૈ । તીસરે, છઠે, નૌવેં ઓર ગ્યારહવેં સ્થાન મેં સ્થિત શુક્ર નિર્બલ હોતા હૈ । અત એવ શુક્ર કા અસ્ત હોને પર મી દીક્ષા ગ્રહણ કરના પ્રશસ્ત માના ગયા હૈ, એસા કઈ આચાર્યો કા કથન હૈ ।

(૮) લગ્ન-વિચાર—

દીક્ષા અગ્નીકાર કરવામા મિથુન, સિંહ, કન્યા, વૃશ્ચિક, ધનુ, મકર, કુમ્ભ અને મીન-લગ્ન શુભ છે ખાકીના ચાર ત્યાજ્ય છે

(૯) ગ્રહ-વિચાર—

દીક્ષાલગ્નમા શનૈશ્ચર મધ્યમ બળવાળો ગુરુ બલશાળી અને શુક્ર બલહીન હોય તો દીક્ષા આપવી જોઈએ, ખીન, પાચમા, છઠા, સાતમા અને અગિઆરમા સ્થાનમા શનિ મધ્યમ બળવાળો હોય છે, ત્રિકોણમા કેન્દ્રમા અને અગિઆરમા સ્થાનમા રહેલો ગુરુ ( બૃહસ્પતિ ) બળશાળી સમજવામા આવે છે.



नक्षत्राणि त्रिचिन्तारा-स्ताराभन्त्रपक्षं प्रहा ।  
दृष्टान्यपि शुभं भाष, मन्त्रे सिद्धछायया ॥ १ ॥

न त्रिचिर्न च नक्षत्र, न चारा न च चन्द्रमाः ।  
प्रहा नोपप्रहाभैव, छायाछन्नं प्रशस्तते ॥ २ ॥

न योगिनी न विष्टिष, न छूर्त्तं न च चन्द्रमाः ।  
एषा वज्रमयी सिद्धि, रमेया त्रिदशैरपि ॥ ३ ॥

“सिद्धछाया छन्न हो तो दूफ्त त्रिचि नक्षत्र, चारा, चन्द्र सवा दूफ्त प्रहा भी छुनफस्रवामक हो जाते है, जबार्त् सिद्धछायाछन्न की विचमानता में नक्षत्र भाषि का दोषा नहीं माना जाता है ॥ १ ॥

एक मात्र छाया छन्न ही उत्तम है, उसकी समानता न त्रिचि कर सकती है, न नक्षत्र कर सकता है, न चार कर सकता है, न चन्द्रमा, न प्रहा कर सकते हैं और न उपग्रह ही कर सकते हैं ॥ २ ॥

योगिनी उसके सामने कुछ नहीं है, विष्टि (मन्त्र) कोई भी नहीं है, छूर्त्त और चन्द्रमा भी उस की विचमानता में कुछ भी नहीं बिगाड सकता । सिद्धछाया छन्न एक देखी वज्रमयी सिद्धि है, जिसे देवता भी नहीं भेद सकते ॥ ३ ॥

“सिद्धछायाछन्न होय तो दूफित नक्षत्र, त्रिचि, चारा, चन्द्र, चन्द्र तथा दूफित अक्ष पक्ष शुभ अक्ष भाष छे ज्योत् सिद्धछायाछन्ननी छायाभी नक्षत्र चन्द्रिने होय मानवामां ज्यन्ते नथी ॥ १ ॥”

ज्ये भात्र छायाछन्न च उत्तम छे तेने शुभाभये त्रिचि, नक्षत्र, चारा, चन्द्रमा अक्ष जने उपग्रह होय पक्ष करी शकता नथी ॥ २ ॥

योगिनीतु तेना सभे जण नथी, विष्टितु पक्ष जण नथी, शूण जने चन्द्र पक्ष छायाछन्ननी छायाभी अक्ष प्रकारे अक्ष पक्ष जगदी शकता नथी, सिद्ध छायाछन्न ज्ये ज्येवी वज्रमयी सिद्धि छे जने देवता पक्ष सेवी शकता नथी ॥ ३ ॥”

शुभतिथिवारनक्षत्रलग्नादीनामभावे त्वरितकर्त्तव्येषु कार्येषु सिद्धच्छायालग्न-  
मुपादेयम् । यदि समतलभूमौ स्वशरीरच्छाया चन्द्र-शुक्र-शनि-वासरेषु सार्द्धाऽष्टपद-  
प्रमाणा, भौमे नवपदप्रमाणा, बुधेऽष्टपदप्रमाणा, रवावेकादशपदप्रमाणा, गुरौ सप्त-  
पदप्रमाणा भवेत्तदा सा सिद्धच्छायारूपं लग्नं प्रोच्यते । तत्र दीक्षादिशुभकार्यं  
विधेयम् । अस्मिन् सिद्धच्छायालग्ने संपाप्ते तिथिवारनक्षत्रभद्रालग्ननादिचिन्तनमनाव-  
श्यकम् । उक्तञ्च-

शुभ तिथि, वार, नक्षत्र और लग्न आदि के अभाव में तुरन्त करने योग्य कार्यों में  
सिद्धच्छायालग्न ही उपादेय है ।

समतल भूमि पर अपने शरीर की छाया सोमवार, शुक्रवार, और शनिवार, के दिन  
साढ़े आठ पैर बराबर हो, मङ्गलवार को नौ पैर बराबर हो, बुधवार को आठ पद प्रमाण हो,  
रविवार को ग्यारह पद प्रमाण हो, और गुरुवार को सात पैर छाया हो तो उसे सिद्धच्छाया  
लग्न कहते हैं, उस में दीक्षा आदि शुभ कार्य किये जा सकते हैं । यह सिद्धच्छायालग्न प्राप्त  
हो तो तिथि, वार, नक्षत्र, भद्रा और लग्न आदि का विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।  
कहा भी है —

शुभ तिथि, वार, नक्षत्र अने लग्न आदिना अभावमा तुरत करवा योग्य  
कार्योमा सिद्धछायालग्न न श्रेष्ठेषु करवा योग्य छे

समतल भूमि उपर पोताना शरीरनी छाया, सोमवार शुक्रवार अने शनिवारना  
दिवसे साडा आठ पग प्रमाणु होय, मंगलवारना दिवसे नव पग प्रमाणु होय,  
बुधवारो आठ पग प्रमाणु, रविवारो अगिआर पग, गुरुवारो सात पगला छाया  
होय तो तेने सिद्ध छायालग्न कहे छे आ लग्नमा दीक्षा आदि शुभ कार्य  
करी शक्य छे आ सिद्धछायालग्न प्राप्त होय तो तिथि, वार, नक्षत्र, भद्रा अने  
लग्न आदिना विचार करवानी आवश्यकता नथी कहु पद्य छे—

नखबभितान्तमातुरः सन् निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं श्रान्तरसार्णवं द्रव्यक्षेत्रकालमावधिर्द  
निर्धन्यप्रवचनमर्मैर्दं गुरुं दीक्षादानार्थं प्रार्थयते तदा तस्मै तदानीमेव प्रव्रज्यापदानं  
शुभम्, नहि तत्र तिथिवारनक्षत्रादीनां विचारापत्ता ।

(११) मघ केसलुञ्जनम्—

दीक्षाप्रव्रजान्तरं यदा कदापि केसलुञ्जनं कर्तुमिच्छेत्तदा छनिमङ्गल दिवसी  
स्यान्यौ, कृत्तिका, विशाखा, मघा, मरणी, एतानि चत्वारिनक्षत्राणि च वर्मेनीयानि ।

आत्मरक्षा का अन्य उपाय न देखकर एकमात्र दीक्षा को ही कारण समझने वाला हो  
केसलुञ्जन की प्रथा से चमकता हुआ मोक्षाभिलाषी शिष्य रोम-रोम में ब्रिज के आग लगी हो  
ऐसे पुरुष की मूर्ति अत्यन्त आतुर होकर तरङ्गरहित समुद्र के समान शान्त रस के सगर  
द्रव्य-क्षेत्र-काल-माव के ज्ञाता और निर्धन्य प्रवचन के मर्मज्ञ गुरुसे दीक्षा देने के लिये  
प्रार्थना करे वा उसको उही समय दीक्षा दे देना शुभ है, पेश प्रसंग पर तिथि, वार, नक्षत्र  
आदि के विचार की आवश्यकता नहीं है ।

(११) केसलोच—

दीक्षा धारण करने के पश्चात् केसलोच करने में शनिवार और मंगल वार लय्य है  
तथा कृत्तिका विशाखा मघा, और मरणी, ये वार नक्षत्र वर्मेनीय हैं ।

कई जगु छ जेवा पुरुषनी लेम आत्मरक्षाने अन्य केरि उपाय नहि देववाधी  
कोई मात्र दीक्षाने व शरवु-आश्रय समन्वावाजा, तीव्र वैशम्बनी प्रथा-तेकधी  
सम्भक्ती भोक्षाभिलाषी शिष्य शम-शमभा जेने अग्नि लागी छे, जेवा पुरुषनी  
लेम अत्यन्त आतुर अनीने तरङ्गरहित समुद्र प्रभाक्षे शान्त रसनां सागर,  
द्रव्य, क्षेत्र, काल अने ज्ञानना अत्यन्त अने निर्धन्य प्रवचनना मर्मज्ञ गुरुधी  
दीक्षा देवा माटे प्रार्थना करे तो तने तेक वचने दीक्षा आपवी शुभ छे जेवा  
प्रसंगे तिथि वार नक्षत्र आदिना विचार करवाणी नइर नथी.

(११) केसलोच

दीक्षा धारण कर्था पश्ची केसलोच करवाभा शनिवार अने मंगलवार लय्य छे  
तथा कृत्तिका, विशाखा, मघा, अने मरणी, ये वार नक्षत्र वर्मेनीय भोज्य छे.

(ख) शङ्कुच्छायालम्—

द्वादशाङ्गुलपरिमितशङ्कोच्छाया रवि-सोम-भौम-बुध-गुरु-शुक्र-शनि-वासरेषु क्रमेण विंशति-षोडश-पञ्चदश-चतुर्दश-त्रयोदश-द्वादश-द्वादशाङ्गुलपरिमिता, तथा शनिवासरे द्वादशाङ्गुलप्रमाणा चेत्तर्हि सा शङ्कुच्छायाख्यं लग्नं प्रोच्यते । तत्र दीक्षादि कार्यं शुभम् ।

(ग) अत्युत्कण्ठितयोग्यशिष्यार्थं दीक्षासमयः—

विषयाटवीदावदहनज्वालामालाकलितस्थान्तोऽनन्तजन्मजरामरणादिभयोद्विग्निः समन्ततः प्रज्वलिते सञ्चनि सुप्तमिवादीसप्रदीप्तसंसारान्तः सरन्तमात्मनं रक्षितुमुपायान्तरमनवलोक्य प्रव्रज्यामात्रशरणदर्शी तीव्रवैराग्यप्रभाभासमानः प्रतिरोमोज्ज्वलिता-

(ख) शङ्कुच्छायालम्—

बारह अङ्गुल लम्बी कीली को परछाई अगर रविवार को बीस अंगुल, सोमवार को सोलह अंगुल, मंगलवार को पन्द्रह अंगुल, बुधवार को चौदह अंगुल, गुरुवार को तेरह अंगुल, शुक्रवार को बारह अंगुल, तथा शनिवार को भी बारह अंगुल हो उसे शङ्कुच्छाया लग्न कहते हैं । इस लग्न में दीक्षा आदि कार्यं शुभ हैं ।

(ग) तीव्र उत्कण्ठा वाले दीक्षार्थी का दीक्षासमय—

विषयवासना की विषय अटवी में व्याप्त दावानल की विकट ज्वालामाला से जिसका अन्त-करण झुलस गया है, और जो अनन्त जन्म जरा मरण आदि के भय से उद्विग्न है, चारों ओर से मकान में आग लग जाने पर जिस का सर्वस्व भस्म हो गया है ऐसे पुरुष की भांति

(ख) शङ्कुच्छायालम्—

भार आगण लायी भीदीनी पडछायो रविवादे वीश आगण, सोमवादे सोण आगण, मंगणवादे पडर आगण, बुधवादे चौद आगण, गुरुवादे तेर आगण, शुक्रवादे बार आगण, तथा शनिवादे पषु भार आगण होय तो तेने शङ्कुछाया-लग्न कडे छे ते लग्नमा दीक्षा आदि कार्यं शुभ छे

(ग) तीव्र उत्कण्ठावाला दीक्षार्थी का समय—

विषयवासना की विषय अटवी (वन)मा व्याप्त दावानलानी विकट ज्वालामाला से जो भय से उद्विग्न है, चारों ओर से मकान में आग लग जाने पर जिस का सर्वस्व भस्म हो गया है ऐसे पुरुष की भांति

(१३) अथ नूतनपात्रव्यापृतिः—

गोचर्यादिनिमित्तं नूतनपात्रव्यापृतिषु, मृगशिरःपुष्याश्विनीहस्ताज्युराधा चिभारेवतीषु, सोमद्युवासरयोश्च शुभदा ।

(१४) आचार्यादिपदप्रदानसमयः—

आचार्यादिपदप्रदाने—भ्रवणं, ज्येष्ठा, पुष्यम्, अमिञ्जित्, हस्ता, अश्विनी, रोहिणी, उत्तराश्रयं, मृगशिरः, अनुराधा, रेवती, एतानि नक्षत्राणि शुभानि क्षोभनविधिवाराद्योऽपि द्रष्टव्याः ।

अथ (४) द्रव्यानुयोगः—

द्रवति—गच्छति प्राप्नोति सुखति वा तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यम् । अथवा—

(१३) नूतन पात्र का प्रयोग

गोचरी आदि के लिए नवीन पात्र का उपयोग मृगशिर, पुष्य अश्विनी, हस्त, अनुराधा, चित्रा और रेवती नक्षत्रों में, तथा सोमवार और गुरुवार के दिन करना शुभ है ।

(१४) आचार्य आदि पदवीदान का समय

आचार्य आदि पदवी देने में भ्रवण ज्येष्ठा पुष्य, अमिञ्जित्, अश्विनी, रोहिणी, उत्तराश्रय, ( उत्तराश्रय उत्तरामाश्रय उत्तराश्रयशुनी ) मृगशिर, अनुराधा और रेवती, ये नक्षत्र शुभ हैं । इस प्रसङ्ग पर शुभ तिथि और शुभ वार आदि भी देखना चाहिए ।

(४) द्रव्यानुयोग—

प्रागे की पर्याय प्राप्त करने वास्तु और पूर्व पर्यायों का त्याग करने वास्तु द्रव्य

(१३) नवा धारणा उपधेय

वेपथरी आदि भाटे नवा धारणा उपधेय भुजशीर्ष पुष्य, अश्विनी, हस्त, अनुराधा, चित्रा, जने रेवती नक्षत्रोंमें, तथा सोमवार जने शुक्रवारना दिवसे श्रवणे ते शुभ छे

(१४) आचार्य आदि पदवीदानने समय—

आचार्य आदि पदवी आपवामां भ्रवण, ज्येष्ठा, पुष्य, अमिञ्जित्, हस्त, अश्विनी रोहिणी, उत्तराश्रय ( उत्तरा-श्रय, उत्तरा-माश्रय, उत्तरा-श्रयशुनी ) मृगशिर, अनुराधा जने रेवती, ज्ये नक्षत्रों शुभ छे ज्ये प्रसङ्ग उपर शुभ तिथि जने शुभ वार ववेरे भव् जेवु ज्येष्ठा

(४) द्रव्यानुयोग—

आजगती पर्याय प्राप्त हस्तश्रय जने भ्रमनी पर्यायने त्याग करवावाप्याने

(૧૨) અથ નવદીક્ષિતસ્ય પ્રથમગોચરીવિચાર:-

પ્રથમગોચરીવિષયે તીક્ષ્ણોગ્રમિશ્રનક્ષત્રાણિ શનિમંગ્લલદિવસૌ ચ વર્જયેત્ ।

આર્દ્રા, અશ્લેષા, જ્યેષ્ઠા, મૂલમ્, એતાનિ ચત્વારિ તીક્ષ્ણનક્ષત્રાણિ । મરુગી, પૂર્વાષ્ટકમ્, મઘા, એતાનિ પશ્ચોગ્રનક્ષાણિ । કૃત્તિકા, વિશાસ્વા, ઇમે દ્વે મિશ્રનક્ષત્રે ।

રિક્તાઽમાવાસ્યાક્ષયતિથયસ્ત્યાજ્યાઃ । શનિમંગ્લલવારયોગે રિક્તાઽપિ પ્રગ્નસ્તા વિજ્ઞેયા ।

(૧૨) નવ દીક્ષિત કી પ્રથમ ગોચરી—

પહેલી વાર ગોચરી કે વિષય મે તીક્ષ્ણ ઉગ્ર ઓર મિશ્ર નક્ષત્ર એવ શનિ તથા મંગલ વાર ત્યાજ્ય હૈ ।

આર્દ્રા, અશ્લેષા, જ્યેષ્ઠા ઓર મૂલ, એ ચાર નક્ષત્ર તીક્ષ્ણ હૈ । મરુગી, પૂર્વાષ્ટક— (પૂર્વાષાઢા પૂર્વભાદ્રપદા ઓર પૂર્વાષાઢ્યુની) ઓર મઘા, એ પાંચ ઉગ્ર નક્ષત્ર હૈ । કૃત્તિકા ઓર વિશાસ્વા, એ દો નક્ષત્ર મિશ્ર કહલોતે હૈ ।

રિક્તા તિથિ, અમાવાસ્યા ઓર ક્ષય તિથિ ત્યાજ્ય હૈ, હૈં યદિ શનિ ઓર મંગલ વાર કા યોગ હો તો રિક્તા તિથિ મી પ્રગ્નસ્ત હૈ ।

(૧૨) નવદીક્ષિતની પ્રથમ ગોચરી—

પહેલીવાર ગોચરીના વિષયમા તીક્ષ્ણ, ઉગ્ર અને મિશ્ર નક્ષત્ર તથા શનિ અને મંગલવાર ત્યાજ્ય છે.

આર્દ્રા, અશ્લેષા, જ્યેષ્ઠા, અને મૂલ, આ ચાર નક્ષત્ર તીક્ષ્ણ છે, મરુગી, ત્રણ પૂર્વા (પૂર્વાષાઢા, પૂર્વાષાઢ્યુની, અને પૂર્વાષાઢ્યુની) અને મઘા એ પાંચ નક્ષત્ર ઉગ્ર નક્ષત્ર છે. કૃત્તિકા અને વિશાસ્વા, આ બે નક્ષત્ર મિશ્ર કહેવાય છે

રિક્તા તિથિ, અમાવાસ્યા અને ક્ષય તિથિ ત્યાજ્ય છે, પરંતુ જો શનિ અને મંગલવારનો યોગ હોય તો રિક્તા તિથિ પણ ઉત્તમ છે

वयः सामान्यगुणाः सन्ति । एवं गतिहेतुत्व धर्म, स्थितिहेतुत्वधर्म, अवकाश-  
दानहेतुत्वमाकाशे, वर्तनहेतुत्व फाले, रूपादिमत्त्व पुत्रले विशेषगुणाः सन्तीति  
द्रव्यलक्षणसम्बन्धः ।

कश्चिद् 'सद् द्रव्यलक्षणम्' इति सूत्रयित्वा 'उत्पादव्ययप्रौढ्ययुक्तं  
सत्' इति सूत्रेण सम्बन्धविवरणं कुर्वन् द्रव्यसामान्यलक्षणमुक्त्वा विशेष-  
विज्ञानजननाय विशेषलक्षणमबोधत्-'गुणपर्यायवद्द्रव्यम्' इति । तदुपि प्रकृत-

अस्ति च ( जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कमी बिनाश न हो ) वस्तुत्व-द्रव्यत्व  
( जिस शक्ति के निमित्त से पर्याय स्वरूप बदलती रहे ) और प्रमेयत्व-ज्ञेयत्व ( जिस शक्ति के  
निमित्त से द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय हो ) आदि सामान्य गुण हैं । इसी प्रकार  
वर्मास्तिकाय में गतिहेतुत्व ( गतिकारणता ) अधर्मास्तिकाय में स्थितिहेतुत्व ( स्थितिकारणता )  
आकाश में अवकाशदानहेतुत्व ( अवकाशदायिता ) काल में वर्तनाहेतुत्व, ( नवपुराण-  
कारणता ) आदि, और पुत्रल में रूपादिमत्त्व विशेष गुण हैं । अतः इन सब में द्रव्य के लक्षण  
की संगति होयती है ।

किसी आचार्यने 'सद् द्रव्यलक्षणम्' ऐसा सूत्र रचकर 'उत्पाद-व्यय-प्रौढ्य-युक्तं  
सत्' अर्थात् जिस में उत्पाद बिनाश और प्रौढ्य युगपत् पाये धर्म बहु सत् है, इस सूत्र  
के द्वारा सत् की व्याख्या करते हुए सामान्य द्रव्य का स्वरूप बतला कर विशेष बोध

अस्तित्व ( जे शक्तिना निमित्तशी द्रव्यने कयहेय पद्य नाश न होय ) वस्तुत्व  
द्रव्यत्व ( जे शक्तिना निमित्तशी पर्याय रूपेया बदलती रहे ) अने प्रमेयत्व-ज्ञेयत्व  
( जे शक्तिना निमित्तशी द्रव्य कोर्ष न कोर्ष ज्ञानने विषय होय ) आदि सामान्य  
गुण छे जे प्रमाद्ये धर्मास्तिकायमां अतिहेतुत्व ( अतिकारणता ) अधर्मास्तिकायमां  
स्थितिहेतुत्व ( स्थितिकारणता ) आकाशमां अवकाशदानहेतुत्व ( अवकाशदायित्व )  
कालमां वर्तनाहेतुत्व ( नवपुराणकारणता ) आदि अने पुत्रलमां रूपादिमत्त्व विशेष  
गुण छे तेथी जे सर्वांमां द्रव्यना लक्षणनी संगति भूष जय छे

कोर्ष आचार्ये " सद् द्रव्यलक्षणम् जेवुं सूत्र रथीने 'उत्पादव्ययप्रौढ्ययुक्तं  
सत्' अर्थात् जेमां उत्पाद, बिनाश अने प्रौढ्य जेक जाये जेधर्मां आवे ते "सत्"  
छे ज्य सूत्र द्वारा सत्की व्याख्या करवा भेदा सामान्य द्रव्यनु स्वरूप बतावानी

द्रव्यते = पाप्यते मुच्यते वा तैस्तैः पर्यायैरिति द्रव्यम् । द्रव्यस्य - अनुयोगः  
द्रव्यानुयोगः ।

द्रव्यानुयोगो हि द्रव्याणां यथावस्थितस्वरूपावबोधने समीचीनयुक्तिं प्रदर्शयति । तथा दर्शनस्य नैर्मल्यम् । ततश्च सम्यक् चारित्रं संपद्यते । तथा चायमपि चरणकरणानुयोग पोषयतीति बोध्यम् ।

### द्रव्यलक्षणम्—

अथ किं तावद् द्रव्यम् ? उच्यते— “गुणाश्रयो द्रव्यम्” । यथा जीवे ज्ञानदर्शनचारित्रसुखोपयोगादयो विशेषगुणा, अस्तित्व-द्रव्यत्व-ज्ञेयत्वा

कहलाता है । अथवा जो पर्यायों के द्वारा प्राप्त हो, अथवा पर्यायों से मुक्त हो उसे द्रव्य कहते हैं । ऐसे द्रव्य के अनुयोग को द्रव्यानुयोग कहते हैं ।

द्रव्यानुयोग द्रव्यों का यथार्थ स्वरूप समझाने के लिए समीचीन मार्ग प्रदर्शित करता है । उस से सम्यग्दर्शन निर्मल होता है, और सम्यग्दर्शन की निर्मलता से सम्यक् चारित्र की प्राप्ति होती है । इस प्रकार यह अनुयोग भी चरणकरणानुयोग का पोषक है ।

### द्रव्य का लक्षण—

द्रव्य किसे कहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—जो गुणों का आधार हो वह द्रव्य है, जैसे जीवन में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख और उपयोग आदि विशेष गुण हैं ।

द्रव्य कहे छे, अथवा जे पर्यायो द्वारा प्राप्त होय अथवा पर्यायोधी मुक्त होय तेने द्रव्य कहे छे अथवा द्रव्यना अनुयोगने द्रव्यानुयोग कहे छे

द्रव्यानुयोग द्रव्योना यथार्थ स्वरूपने समजववा भाटे असाअर साधो भागं प्रदर्शित करे छे, तेधी सम्यग्दर्शन निर्मल थाय छे, अने सम्यग्दर्शननी निर्मलताधी सम्यक् चारित्रनी प्राप्ति थाय छे अे प्रभाषे आ अनुयोग पद्य अरथु करणानुयोगने पोषक छे

### द्रव्युं लक्षणम्—

द्रव्य कोने कहे छे ? अे प्रश्नने उत्तर आ प्रभाषे छे—जे गुणोने आधार होय ते द्रव्य छे, जे प्रभाषे अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्र सुख अने उपयोग आदि विशेष गुण छे ।



सुखशीयादयाः, पुद्गलस्य वर्णगन्धरसस्पर्शदियो गुणाः । 'मात्र'—सुखोपादनं पर्यायेतिमसङ्गधारणाय ।

द्रव्यस्वरूपविचारेण 'गुणसमुदायो द्रव्य'—मिति प्रतीयते, यथा मूत्रस्कन्धघासापश्मादीनां समुदायो वृक्षः, तथैवास्तित्व-परिणामित्व-वस्तुत्व - ज्ञेयत्व - प्रमेयत्व - प्रदोषवत्त्वादिसामान्यगुणानां चेतन्त्व-गतिहेतुत्व-स्थितिहेतुत्वा - अकारणदानहेतुत्व - वर्णनाहेतुत्व - वर्ण - रस - गन्ध - स्पर्श-

लक्षण है जैसे-बीज के गुण-ज्ञान, दर्शन, सुस और बीज आदि हैं, तथा पुष्प के गुण वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श आदि हैं । उपर जो 'मात्र' (सिर्फ) शब्द का प्रयोग किया गया है, वह पर्याय में अतिप्रसङ्ग निवारण करते के लिए है । अर्थात् गुण केवल द्रव्य में होते हैं, पर्याय में नहीं होते ।

द्रव्य के स्वरूप पर विचार करने से प्रतीत होता है कि गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है । जैसे मूत्र, स्कन्ध घासा और प्रश्मा आदि का समूह ही वृक्ष है, उसी प्रकार अस्तित्व, परिणामित्व, वस्तुत्व ज्ञेयत्व प्रमेयत्व, प्रदोषवत्त्व आदि सामान्य गुणों का, तथा चेतना, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व अवकारणदानहेतुत्व, वर्णनाहेतुत्व वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शवत्त्व अति विशेष गुणों का समूह ही द्रव्य है । यही यह स्मरण रखना चाहिए कि-विभिन्न द्रव्यों के

संबंधों में शुद्ध वस्तुत्व से ज्ञेयत्व हीते अथवा शुद्ध-ज्ञान, दर्शन, सुख अने बीज आदि से तथा पुद्गलवत्त्व शुद्ध-वर्ण, जंध रस अने स्पर्श आदि से उपर जो 'मात्र' शब्दों प्रयोग किये से ते पर्यायमा अतिप्रसङ्ग निवारण करना भाटे से अर्थात् शुद्ध केवल द्रव्योंका होय से, पर्यायमा होय नहीं।

द्रव्यका स्वरूप पर विचार करवाही कल्याण से के सुखोपादेन समुदाय का द्रव्य से ज्ञेयत्व-मूत्र रस, घासा अने प्रश्मा आदिना समूह ते वृक्ष से ज्ञेय प्रभाव अस्तित्व, परिणामित्व वस्तुत्व, ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व, प्रदोषवत्त्व आदि सामान्य सुखोपादेन, तथा चेतना गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवकारणदानहेतुत्व, वर्णनाहेतुत्व, वर्ण रस, जंध, स्पर्शवत्त्व आदि विशेष सुखोपादेन समूह ते द्रव्य से अति जो यह प्र का ८

लक्षणे समाविष्टमेवेति गुरुतरलक्षणं नावश्यकमिति ज्ञेयम् ।

परमार्थतस्तु पर्याया न गुणतो भिन्नाः कार्यकारणयोरभेदात् । यथा कटककुण्डलादीनि कनकतो न भिन्नानि, घटशरावादीनि मृदो नातिरिक्तानि, तथा गुणजन्मनां पर्यायाणां न भेदो गुणेभ्य इति द्रव्यलक्षणे पर्यायशब्दप्रवेशो नावश्यक इत्यवसेयम् ।

### गुणलक्षणम्—

द्रव्यस्याऽऽश्रयाश्रयिभावेन नित्यसहवर्तिनो धर्मा गुणाः, ते द्रव्यस्य शक्तिविशेषाः । द्रव्यमात्राश्रितं गुणस्य लक्षणम् । यथा जीवस्य ज्ञानदर्शन-

कराने के लिये विशेष लक्षण यह बतलाया है—‘गुणपर्यायवद् द्रव्यम्’ यह लक्षण भी प्रकृत लक्षण ‘गुणाश्रयो द्रव्यम्’ में समाविष्ट है, इस लिये उनका बड़ा लक्षण करने का आवश्यकता नहीं है ।

वास्तव में तो पर्याय, गुण से भिन्न नहीं है, क्योंकि कार्य और कारण में भेद नहीं होता । जैसे—कटक, कुण्डल आदि पर्याय सुवर्ण से भिन्न नहीं है, अतः गुणों से उत्पन्न होने वाले गुणों से भिन्न नहीं हैं । ऐसी अवस्था में द्रव्य के लक्षण में पर्याय शब्द डालना आवश्यक नहीं है ।

### गुण का लक्षण—

द्रव्य के आश्रय आश्रयी रूपसे, अथवा कथञ्चित् तादात्म्यरूपसे नित्य सहवर्ती धर्म, ‘गुण’ कहलाते हैं । ‘गुण’ द्रव्य की शक्तिविशेष है । सिर्फ द्रव्याश्रित होना गुण का

विशेष बोध करावना भाटे विशेष लक्षण से अताव्यु छे के—“गुणपर्यायवद् द्रव्यम्” आ लक्षण पण प्रकृत (याव) लक्षण (गुणाश्रयो द्रव्यम्) भा समाविष्ट छे तेथी विशेष लक्षण करवानी आवश्यकता नथी

वास्तवमा तो पर्याय, शुद्धी भिन्न नथी, कारण के कार्य अने कारणमां बंध नथी, जेवी रीते कडा अने कुंडल आदि पर्याय सुवर्णथी भिन्न नथी घट अने शंकोर आदि पर्याय मृत्तिका—माटीथी भिन्न नथी, कारण के शुद्धी उत्पन्न थवा वाण पर्याय, शुद्धी भिन्न नथी, जेवी अवस्थामा द्रव्यना लक्षणमा पर्याय शब्द नाथवा ते जरूरी नथी.

### शुद्धना लक्षणम्—

द्रव्यना आश्रय—आश्रयी—रूपथी अथवा कथञ्चित् तादात्म्यरूपथी नित्य सहवर्ती धर्म शुद्ध कहेवाय छे शुद्ध से द्रव्यनी शक्तिविशेष छे मात्र द्रव्याश्रित

सुखवीर्यादयः, पुद्गलस्य वर्णगन्धरसस्पर्शादयो गुणाः । 'मात्र'-शब्दोपादानं पर्यायेतिप्रसङ्गनिवारणाय ।

द्रव्यस्वरूपविचारेण 'गुणसमुदायो द्रव्य'-मिति प्रतीयते, यथा सूक्ष्मरूपधालामधालादीनां समुदायो बुद्धिः, तथैवास्तित्व-परिणामित्व-वस्तुत्व - ज्ञेयत्व - प्रमेयत्व - प्रदेशत्ववासामान्यगुणानां चेतनत्व-गतिहेतुत्व-स्थितिहेतुत्वा - अवकाशदानहेतुत्व - वर्णनाहेतुत्व - वर्ण - रस - गन्ध - रस - स्पर्श-

लक्षण है जैसे-वीर्य के गुण-ज्ञान, वर्णन, सुख और वीर्य आदि हैं, तथा पुद्गल के गुण वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श आदि हैं । उपर जो 'मात्र' (सिर्फ) शब्द का प्रयोग किया गया है, वह पर्याय में अतिप्रसङ्ग निवारण करते के लिए है । क्योंकि गुण केवल द्रव्य में होते हैं, पर्याय में नहीं होते ।

द्रव्य के स्वरूप पर विचार करने से प्रतीत होता है कि गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है । जैसे सूक्ष्म रूप धाला और अधाला आदि का समूह ही बुद्धि है, उसी प्रकार अस्तित्व, परिणामित्व वस्तुत्व, ज्ञेयत्व प्रमेयत्व, प्रदेशत्व आदि सामान्य गुणों का, तथा चेतना, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व अवकाशदानहेतुत्व वर्णनाहेतुत्व वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शवत्त्व आदि विशेष गुणों का समूह ही द्रव्य है । यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि-विभिन्न द्रव्यों के

सुखेण ते सुखं लक्षणं च ज्ञेयं चेतो लवना सुख-ज्ञान, वर्णन, सुख ज्ञाने वीर्य आदि च तथा पुद्गलधना सुख-वर्ण, गंध, रस ज्ञाने स्पर्श आदि च उपर के 'मात्र' शब्दने प्रयोग किये च ते पर्यायमा अतिप्रसङ्ग निवारण करवा भाटे च अर्थात् सुख ज्ञेयत्व द्रव्यमा ज्ञेय च पर्यायमा ज्ञेय नहि.

द्रव्यना स्वरूप पर विचार कवाधी अनुसार च के सुखेणो समुदाय च द्रव्य च के चेतो-सूक्ष्म स्पर्श, धाला ज्ञाने अधाला आदिना समूह ते बुद्धि च के प्रमाणे अस्तित्व, परिणामित्व वस्तुत्व ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व प्रदेशत्व आदि सामान्य सुखेणो, तथा चेतना गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवकाशदानहेतुत्व, वर्णनाहेतुत्व, वर्ण, रस, गंध, स्पर्शवत्त्व आदि विशेष सुखेणो समूह ते द्रव्य च अदि के वाद प्र जा ८

वत्त्वादिविशेषगुणानां च समुदायो द्रव्यम् । एवं 'द्रव्यपर्यायस्वरूपमपी'-स्यनुपदमेव वक्ष्यते ।

### पर्यायलक्षणम्—

परियन्ति=उत्पादविनाशौ प्राप्नुवन्ति न सर्वदा तिष्ठन्तीति पर्यायाः । यद्वा-परि=सर्वथा अयन्ते=गच्छन्ति द्रव्यगुणौ समाश्रयन्तीति पर्यायाः ।

द्रव्यस्योत्पादविनाशशालिनो धर्माः पर्यायाः । पर्याया हि द्रव्यं गुणं चाश्रित्य वर्तन्ते । कालभेदादेकमेव ज्ञान जीवस्यान्यदन्यद्रूपं दधत् पर्यायशब्द-वाच्यं भवति, यथा कश्चिदष्टवर्षीयो विनयी प्रमादविकथावर्जितो बालमुनि-गुरुचरणसरोज सेवमानः पूर्वमावश्यकमात्रमधीत्य समितिगुप्तिज्ञानं संपादयति,

विशेष गुणों का समूह नहीं बन सकता है । ऐसे द्रव्य और पर्याय के विषय में भी समझना चाहिए, वह धमी आगे बतायेंगे ।

### पर्याय का लक्षण—

जिनके निरन्तर उत्पाद और व्यय होता है, जो सदैव स्थिर नहीं रहते उन्हें पर्याय कहते हैं । अथवा द्रव्य और गुण का आश्रय लेने वाले पर्याय कहलाते हैं ।

द्रव्य के उत्पाद और विनाश—शील धर्म पर्याय कहलाते हैं । पर्याय, द्रव्य में भी रहते हैं और गुण में भी रहते हैं । जीवका एक ही ज्ञानगुण काल के भेदसे भिन्न-भिन्न रूप धारण करता हुआ पर्याय कहलाता है । जैसे एक आठ वर्ष का विनयी प्रमाद और विकथा से दूर रहने वाला बाल मुनि अपने गुरु के चरण कमलों की सेवा करता हुआ

राज्यु नेधये के विभिन्न द्रव्योना विशेष गुणोना समूह धनी शकतो नथी जेवी रीते द्रव्य अने पर्यायना विषयभा पणु समज्यु नेधये विशेष आगण अतावीशु

### पर्यायनुं लक्षणम्—

जेनी अदर हुमेशा उत्पाद अने व्यय थया करे छे अने जे हुमेशा—सहाकाण स्थिर रहेतु नथी तेने पर्याय कहे छे, अथवा द्रव्य अने गुणोना आश्रय लेनार तेने पर्याय कहेवाभा आवे छे

द्रव्योना उत्पाद अने विनाश—शील धर्म ते पर्याय कहेवाय छे पर्याय, द्रव्यभा पणु रहे छे अने गुणभा पणु रहे छे एवना ओकज् ज्ञानगुण कालना नेधयी भिन्न भिन्न रूप धारण करीने पर्याय कहेवाय छे जेवी रीते के ओक आठ वर्षना विनयवंत, प्रमाद अने विकथाधी इर रहेवावाणा बालमुनि चोताना गुणना अरबु

क्रमेण हादशाङ्कतत्त्वं विज्ञाय ज्ञानभारां प्रकर्दयति । तत्र तस्य वास्तव्यमिनो ज्ञानं प्रतिक्षणं विस्मयनतामापद्यमानमपूर्वमपूर्वं नायमानं ज्ञानं पर्यायशब्दवाच्यतां यजति । एवं दर्शनचारिणादीनामपि पर्याया ज्ञातव्याः । जीवस्य मानुषत्ववाच्या दयोऽपि पर्यायाः । पुद्गलस्य तु एकगुणकास्त्वावयो पर्याया ज्ञेयाः । एवं च द्रव्यगुणाभितत्त्वं पर्यायस्य लक्षणमिति निर्धार्यते । तथा चोक्तमुत्तराध्ययने—(अ २८)

पहले—पहले आचर्यक मात्र का अध्ययन करता है, फिर समिति और गुण्टि का ज्ञान सम्पन्न करता है । तदनन्तर क्रम से द्वादशाङ्क का तत्त्व जान कर ज्ञान की भारा में वृद्धि करता है, उस बाद मुनि का ज्ञान क्षण-क्षण में विस्मयण होकर नवीन-नवीन रूपों में उत्पन्न होता हुआ 'पर्याय' शब्द द्वारा कहा जाता है । इसी प्रकार दर्शन और चारित्र आदि गुणों के पर्याय भी समस्त केना आदिप । मनुष्यता वास्तव्य आदि जीव के पर्याय हैं और एक-गुण-काश्चपन आदि पुद्गल के वर्ण-गुण के पर्याय हैं । इस प्रकार यह निश्चित होता है कि पर्याय द्रव्य और गुण दोनों में ही रहता है । उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

“गुणों का जो आश्रय हो उसे द्रव्य कहते हैं, गुण एक मात्र द्रव्य में ही रहते हैं । पर्यायों का लक्षण उभयाभित होना है, अर्थात् पर्याय, द्रव्य और गुण दोनों में ही पाये जाते हैं” ।

इममेवमिणी सेवा इत्यादि का प्रथम आचर्यक मात्रनु अध्ययन करे छे पछी समिति जने क्षुप्तिनु ज्ञान स्याद्वन करे छे आर पछी इममी काश्चांजनु तत्त्व बोधो राननी आरभां वृद्धि करे छे; ते बादमुनिनु ज्ञान क्षण-क्षणं विस्मयण-तरेद्वार जनी नवीन रूपोभा उत्पन्न बाव छे तेने 'पर्याय' शब्दो बोधोअनाभां जावे छे जे प्रभावे दर्शन जने चारित्र आदि सुबोना पर्याय पदु समस्त सेवा बोधो मनुष्यता, वास्तव्य आदि एवना पर्याय छे, जने जेकसुबुकाणपदु आदि पुद्गलना वलुसुबुने पर्याय छे आ प्रभावे आ निश्चित बाव छे इ-पर्याय, द्रव्य जने सुबु जे जन्नेभां रहे छे उत्तराध्ययनसूत्रभां कह छे—

'सुबुना जे आश्रय बोध, तेने द्रव्य कहे छे; सुबु जेक मात्र द्रव्यभां व रहे छे, जने पर्यायोनु वलुसु उभयाभित बोध छे अर्थात् पर्याय, द्र व जने सुबु जन्नेभां बोधभां जावे छे'

“गुणाणमासन्नो द्रव्यं, एगद्व्यस्सिया गुणा ।

लक्खणं पज्जवाणं तु, दुहज्जो अस्सिया भवे ॥ ६ ॥” इति ।

छाया—

“गुणानामाश्रयो द्रव्यम्, एकद्रव्याश्रिता गुणा :

लक्षणं पर्यवाणां तु, उभयोरश्रिता भवेयुः” ॥ ६ ॥ इति ।

द्रव्यलक्षणे पर्यायानुक्त्या कार्यकारणयोरभेदविवक्षया पर्यायाणां गुणेषु समावेश इति भगवदभिप्रायो गम्यते । “एकद्रव्याश्रिता गुणाः” इति, एकं=केवलं द्रव्यमाश्रित्य गुणा वर्तन्ते इत्यर्थः । अनेन गुणलक्षणमुक्तम् । ‘पर्यवाणां लक्षणं तु उभयोरश्रिता भवेयुः’ इत्यन्वयः । पर्यवः, पर्ययः, पर्यायः, इति समानार्थकाः । उभयोः=द्रव्यगुणयोरश्रिताः पर्यायाः, इति पर्यायलक्षणं बोध्यमित्यर्थः । पर्यायास्तु द्रव्यं गुणं चोभयमाश्रित्य वर्तन्ते इति भावः ।

द्रव्य के लक्षण में ‘पर्याय’ पद का समावेश न करने के कारण भगवान् का अभिप्राय यह है कि-कार्य कारण के अभेदसे गुण में ही पर्याय का समावेश हो जाता है । ‘एगद्व्यस्सिया गुणा’ इस वाक्य का अर्थ यह है कि-गुण केवल द्रव्य में ही होते हैं । इस कथनद्वारा गुण का लक्षण भी कह दिया गया है ।

पर्याय का लक्षण उभयाश्रित होना है, दोनों में अर्थात् द्रव्य में भी और गुण में भी पर्याय रहते हैं । पर्यव, पर्यय और पर्याय ये सभी समानार्थक हैं ।

द्रव्यना लक्षणमा ‘पर्याय’ पदने समावेश नहिं करवाथी भगवानने अभिप्रायं अे छे छे-कार्यं कारणना अभेदथी शुभमा अ पर्यायने समावेश अर्थ जय छे. ‘एगद्व्यस्सिया गुणा’ आ वाक्यने अर्थ अे छे छे—शुभ केवल द्रव्यमा अ डोय छे, आ कथनद्वारा शुभतु लक्षण पणु कही आणु छे

पर्यायतु लक्षण उभयाश्रित डोय छे, अनेमा अर्थात् द्रव्यमा अने शुभमां पणु पर्याय रहे छे पर्यव, पर्यय अने पर्याय शब्द समान अर्थवाणा छे.

द्रव्यविभागः—

द्रव्यं पृथिव्यम्—धर्माधर्माकारकाद्यपुद्गलजीवमेवात् । उक्तञ्च श्रीमद्गीतासूत्रे—

“इह वै संते । द्रव्या पृथक्ता ? , गोयमा ! छ द्रव्या पृथक्ता, सं जहा-  
धम्मस्त्विकाए, अधम्मस्त्विकाए, आगासस्त्विकाए, पुग्गलत्त्विकाए, जीवत्त्विकाए,  
अदासमये” ॥

उत्तराप्ययमसूत्रेऽपि—(अ २८)

“धम्मो अहम्मो आगासं, कासो पुग्गल संतथो ।  
एस सोगोचि पमत्तो, निवेहिं वरदंसिहि ॥ ७ ॥

द्रव्य क भेद—

द्रव्य छह प्रकार का है—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल  
(५) पुद्गल और (६) जीव । श्री मद्गीतासूत्र में कहा है—

“मद्गीतान् । द्रव्य कितने कहे गये हैं ? गौतम ! छह द्रव्य कहे गये हैं, वे इस  
प्रकार—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशस्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और  
अदा—समय” ।

उत्तराप्ययमसूत्र में भी कहा है—

“धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, और जीव को सर्वत्र, सबदशां विना मद्गीतान्  
ने बोधसश ही है ॥ ७ ॥

द्रव्यता के—

द्रव्यता छ प्रकार के—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काल (५)  
पुद्गल और (६) जीव । श्री मद्गीतासूत्र में कहा है—

“अत्रान्न । द्रव्य केरवा कहां के ? गौतम । छ द्रव्य केरवा के ते आ  
अत्रान्ने—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय  
अने अदा—समय, ”

उत्तराप्ययमसूत्र में भी कहा है—

“धर्म अधर्म, आकाश काल, पुद्गल और जीवने सर्वत्र सबदशां विना  
अत्रान्ने बोधसश ही है ॥ ७ ॥

ધમ્મો અહમ્મો આગાસ, દઢ્ઠં ઇક્ષિકામાહિર્યં ।  
અંગતાણિ ય દઢ્ઠ્યાણિ, કાલો પુદ્ગલ જંતનો ॥ ૮ ॥”

અત્ર કાલમાત્રં વિહાય ધર્માદયોઽસ્તિક્રાયા ડ્ઠ્ઠ્યન્તે । ‘અસ્તી’ તિ તિહન્ત-  
પ્રતિરૂપકમવ્યય પ્રદેશવાચકમ્ । પ્રદેશઃ સ્વસ્થાનાદનપાયિ નિર્વિભાગં સ્ખણ્ડમ્ ।  
ઈદં નિર્વિભાગં સ્ખણ્ડં યદા પુદ્ગલમ્પ ગલનસ્વભાવાત્તદીયસ્કન્ધદેશાભ્યામવપુત્ય-  
પૃથગ્ભૂત્વા વર્ત્તે તદા પરમાણુનામ્ના વ્યવહરિયંતે । યાવદપૃથગ્ભૂત્વા વર્ત્તે  
તાવત્તદેવ નિર્વિભાગં સ્ખણ્ડ મદંશ ઇત્યુચ્યતે । અનંતૈનાશયેન પુદ્ગલાસ્તિક્રાયસ્ય  
ચત્વારો મેદા ભગવતા કથિતાઃ—સ્કન્ધઃ, દેશઃ, મદંશઃ, પરમાણુશ્ચેતિ । ક્રાયઃ=

ધર્મ, અધર્મ ઓર આકાશ, યે તૌન દ્રવ્ય ંકુ ંકુ હૈ, કાલ, પુદ્ગલ, જીવ, અનન્ત  
અનન્ત દ્રવ્ય હૈ” ॥ ૮ ॥

કાલ કો છોડ કર શેષ પાંચ દ્રવ્ય અસ્તિક્રાય કહલાતે હૈ । ‘અસ્તિ’ યહ તિહન્તરૂપ  
પ્રતીત હોને વાલા ંકુ અવ્યય હૈ ઓર પ્રદેશ કા વાચક હૈ । જો અપને સ્થાન સે ચ્યુત ન  
હોને વાલા, અર્થાત્ જો દ્રવ્ય કે સાથ હી જુડા હુઆ નિર્વિભાગ—જિસ કા ફિર વિભાગ ન હો  
સકે વહ સ્ખણ્ડ, પ્રદેશ કહલાતા હૈ । પુદ્ગલ ગલનસ્વભાવ વાલા હૈ અત ંવ જય યહ  
નિર્વિભાગ સ્ખણ્ડ પુદ્ગલ કે સ્કન્ધ યા દેશ સે વિલુહ કર અલગ હો જાતા હૈ તય વહી સ્ખણ્ડ  
પરમાણુ કહલાતા હૈ । જવ વહી પરમાણુ પુદ્ગલ કે સ્કન્ધ યા દેશ મેં ફિર મિલજાતા હૈ તવ

ધર્મ અધર્મ અને આકાશ આ ત્રણુ દ્રવ્ય ંકુ-અંકુ છે, કાલ, પુદ્ગલ અને  
જીવ અનન્ત-અનન્ત દ્રવ્ય છે ” ॥ ૮ ॥

કાલ સિવાયના બાકીના પાંચ દ્રવ્ય અસ્તિક્રાય કહેવાય છે ‘અસ્તિ’ જે  
તિહન્ત રૂપ જણાતુ ંકુ અવ્યય છે, અને પ્રદેશનુ પાંચક છે જે પોતાના સ્થાનથી  
ચ્યુત નહિ થવા વાળા, અર્થાત્ દ્રવ્યની સાથે જ બેઠાઈ રહેલા નિર્વિભાગ-એનો ફરી  
ભાગ ન થઈ શકે તે બંડ, પ્રદેશ કહેવાય છે પુદ્ગલ ગલનસ્વભાવ વાળા છે,  
તે કારણે બ્યારે તે નિર્વિભાગ બંડ પુદ્ગલના સ્કન્ધ અથવા દેશથી છુટા થઈબય  
છે, ત્યારે તે બંડ પરમાણુ કહેવાય છે બ્યારે તે પરમાણુ પુદ્ગલના સ્કન્ધ અથવા  
દેશમાં ફરીને મળી બય છે ત્યારે તે પરમાણુના બદલે ફરી પ્રદેશ કહેવાય છે.



समूहः । अस्ति=प्रदेशानां कायः=समूहो यत्र यस्य वा स अस्तिकायाः, प्रदेशसमूहवान्, धर्मभासावस्तिकापद्येति धर्मास्तिकायाः । एवं च धर्मास्तिकायाः, अधर्मास्तिकायाः, आकाशास्तिकायाः, पुद्गलास्तिकायाः, जीवास्तिकायाः, इति नामानि सन्ति तेषाम् । कास्त्वु प्रदेशभासावस्तिकायो न भवतीत्यतः कासाः कालास्तिकाय द्वायेन न व्यनक्षियते ।

धर्मास्तिकायसङ्गमम्—

स्वभावतो गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गतिं प्रति सहकारि कारणं धर्मास्तिकायाः । जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतो गच्छन्ति, तत्रोपादानकारणस्वस्यास्तेषु परमाणु के बन्धे तत्र प्रदेश कइलने स्मता है, इसी अभिप्राय से भगवान् ने पुद्गलास्तिकाय के चार भेद कतक्य हैं (१) स्वयं (२) देश (३) प्रदेश और (४) परमाणु ।

कर्म का अर्थ है समूह । जिसमें वा जिसके प्रदेशों का समूह है वह अस्तिकाय कहलाता है । अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशों का समूहवाला । धर्मरूप अस्तिकाय धर्मास्तिकाय समझना चाहिए । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय, ये अस्तिकायों के नाम हैं । कास्त्वम्य प्रदेशों का समूहरूप न होने के कारण अस्तिकाय नहीं है अतः कास 'अस्तिकाय' नहीं कहलता है ।

धर्मास्तिकायका सङ्गम—

स्वभाव से वा प्रयोग से गतिविद्यमाने परिणत हुए जीव और पुद्गलों की गति में जो सहकारी कारण हो उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं । जीवा और पुद्गलों का गमन करना स्वभाव ही है ।

अभिप्राये ज्ञानवाने पुद्गलास्तिकायवना चार भेद कतक्या है (१) स्वयं (२) देश, (३) प्रदेश और (४) परमाणु ।

कस्येनो अर्थ है—समूह, जेमें अथवा जेनां प्रदेशेना समूह होय ते अस्तिकाय कहलवाय है, अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशेना समूह वाणा धर्मरूप अस्तिकाय धर्मास्तिकाय समझने के लिये अथवा अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय ये अस्तिकायोंना नाम से ।

कास्त्वम्य-प्रदेशेना समूहरूप नहि होवाची अस्तिकाय नहीं तेथी कस के 'कालास्तिकाय' कहलवाय नहि ।

धर्मास्तिकायसु सङ्गम—

स्वभावशी अथवा प्रयोगशी गतिविद्यमाने परिणत कस्येनो अथवा जेने पुद्गलेनी गतिमां जे सहकारी कारण होय तेने धर्मास्तिकाय कहै है अथवा जेने

ગતિ પ્રતિ, પુનસ્તસ્યામેવ ગતિ-ક્રિયાયાં ધર્માસ્તિકાયઃ સહાયરૂપં નિમિત્તકારણં ભવતિ ।

(૧) યથા સરિત્સમુદ્રાદ્યવગાહનગીલાનાં મત્સ્યાનાં સ્વત એવ જિગમિષા ગતિશ્ચ જાયતે, તત્ર તેપાં ગમનં પ્રતિ સહાયરૂપં નિમિત્તકારણં વારિ । સ્વયં તિષ્ઠતાં તુ મત્સ્યાનાં ન તદ્ પ્રેરકં ગમનાય ।

(૨) યથા વા મૃત્પરિણામભૂતસ્ય ઘટસ્ય દણ્ડો નિમિત્તકારણમ્ ।

(૩) યથા વા સ્વત એવાવગાહમાનસ્ય દ્રવ્યસ્યાવગાહનં પ્રતિ ગમનમ્, ન પુનરવગાહમાનં દ્રવ્યં વલાદવગાહયતિ તત્ ।

હસ ગમનક્રિયા મેં ઉપાદાન કારણ વહ સ્વયં હી હોતે હૈ, ધર્માસ્તિકાય સહાયકમાત્ર હોને સે નિમિત્ત કારણ હૈ ।

(૧) જૈસે—નદી અથવા સમુદ્રમેં અવગાહન કરનેવાલે મચ્છો મે ગમન કરને કી ઇચ્છા સ્વય હી ઉત્પન્ન હોતી હૈ ઓર સ્વય હી વે ગતિ કરતે હૈ, જલ ડન કી ગતિ મેં સહાયક રૂપ નિમિત્ત કારણ હોતા હૈ । હૈં, મચ્છ અગર ઠહૈરે તો જલ ડહેં ગમન કરને કે સ્થિતિ પ્રેરિત નહીં કરતા ।

(૨) અથવા જૈસે—મૃત્તિકા સે વનને વાલે ઘટે મે ડડા નિમિત્ત કારણ હોતા હૈ ।

(૩) અથવા જૈસે—સ્વય હી અવગાહન કરને વાલે દ્રવ્ય કી અવગાહના મેં આકાશ નિમિત્ત કારણ હોતા હૈ ।

પુહગલોનો ગમન કરવુ તે સ્વભાવ જ છે, એ ગમન-ક્રિયામા ઉપાદાન કારણ તે પોતે જ હોય છે, ધર્માસ્તિકાય સહાયકમાત્ર હોવાથી તે નિમિત્ત કારણ છે

(૧) જેવી રીતે નહીં અથવા સમુદ્રમા અવગાહન કરવાવાળા મચ્છોમા ગમન કરવાની પોતાની જ ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે, અને પોતે જ તે ગતિ કરે છે, પરન્તુ જલ તેની ગતિમા સહાયકરૂપ નિમિત્ત કારણ થાય છે પરન્તુ મચ્છ જો સ્થિર રહેવાની ઇચ્છા કરે તો જલ તેને ગમન કરવા માટે પ્રેરણ કરવુ નથી

(૨) અથવા જેવી રીતે—માટીથી તૈયાર થતા ઘડામાં ડંડા અને ચાક નિમિત્ત કારણ હોય છે.

(૩) અથવા જેવી રીતે—પોતે જ અવગાહન કરનારા દ્રવ્યના અવગાહનમા આકાશ નિમિત્ત કારણ હોય છે

(४) यथा वा—अलङ्कृतौ सत्यां स्वयमेव कृपिकर्मारम्भं कुर्वतां कृपोवसानां कृपिकर्मारम्भे प्रति वृष्टि सहकारि कारणं भवति ।

(५) अपरोऽपि शास्त्रीयो ह्यन्तो दृष्टियमवतरति, यथा—‘सिद्धस्वरूपोऽहम्, अनन्तसुखमामनोऽहम्’ इत्यादिभावनाया व्यवहारनयन शुद्धसिद्धस्वरूप ध्यानकर्तृणां, निश्चयनयेन निर्विकल्पध्यानपरिणामिनां स्वयं सदुपादानकारणस्वरूपानां मय्यानां स्वयमेव ज्ञायमानां सिद्धगतिं प्रति प्रेरणारहितो निष्क्रियो मूर्तिरहितोऽपि सिद्धमगवान् सहायकः सन् सहकारि कारणं भवति, तद्वदमूर्तो निष्क्रियः प्रेरणारहितश्च धर्मास्तिकायो जीवानां पुद्गलानां च गतिरूपे परिणामे सहायकः सन्निमित्तकारणं भवति ।

(४) अथवा कैसे—अन की बर्षा होने पर स्वय ही कृपिकर्म आरम्भ करने वाले किसानों के हृषिकर्म के आरम्भमें वृष्टि सहकारी कारण होती है ।

(५) एक शास्त्रीय दृष्टान्त और भी दृष्टिगोचर होता है—मे सिद्धस्वरूप हूँ, मैं अमरस सुख का भाजन हूँ । इस प्रकार की भावनापूर्वक व्यवहार नय से शुद्ध सिद्ध परमात्मा का ध्यान करने वाले को, और निश्चय नय से निर्विकल्प ध्यान में परिणत होने वालों को जो सिद्धगति की प्राप्ति होती है उस में उपादान कारण स्वयं ध्यान करने वाला मय्यात्मा है, और प्रेरणारहित निष्क्रिय तथा अमूर्तिक होते हुए भी सिद्ध मगवान् उसमें सहायक होने से निमित्त कारण हो जाते हैं । इसी प्रकार अमूर्तिक निष्क्रिय और प्रेरणारहित धर्मास्तिकाय भी जीव और पुद्गल के गतिरूप परिणाम में सहायक होता हुआ निमित्त कारण होता है ।

(४) अथवा कौन सी रीते पावली वरसवाधी जेदुत पोते अ जेतीना कामने आरल करे ते जेतीने आरल करवावाण जेदुतेना जेती कार्पना आर-कामां वृष्टि ( वरसाह ) अक्षरणी कारण होय ते

(५) जेक शास्त्रीय ह्यन्त जीवु पयु दृष्टिगोचर बाव ते —  
 “हु सिद्ध स्वरूप हू हु अनन्त सुखनु भाजन-पान हू आ प्रकृती कावनापूर्वक व्यवहार नयथी शुद्ध सिद्ध अजवान-परमात्मानु ध्यान करवावाण अने निश्चयनयथी निर्विकल्प ध्यानमां परिणत तथा वाजाने जे सिद्ध-गति प्राप्त होय ते तेमां उपादान कारण ध्यान करवावाण पोते अम्यात्मा ते अने प्रेरणारहित निष्क्रिय तथा अमूर्तिक होवा छतं पयु सिद्ध अजवान तेमा सहायक होवाधी निमित्त कारण बर्य बाव ते

जे प्रभावे अमूर्तिक निष्क्रिय अने प्रेरणारहित धर्मास्तिकाय पयु अने पुद्गलानां गतिरूप परिणाममा सहायक होवाधी निमित्त कारण ते

નનુ ધર્માસ્તિકાયસ્ય ઢણ્ડાદિવન્નિમિત્તકારણતા નોપપદ્યતે, સવ્યાપારં દિ કારણં ભવતિ, નિર્વ્યાપારસ્ય કારણત્વે યુત્તયભાવાદિતિ ચેન્ન,

ધર્માસ્તિકાયસ્ય દિ સ્વાભાવિકવ્યાપારસત્ત્વાત કારણત્વ મૂપપાદમ્ । ઉક્ત ચ ધર્માસ્તિકાયલક્ષણં ભગવતા—

“ ગઢલક્ષવળો ડ ધમ્મો ” ઢતિ,

‘ ગતિલક્ષણસ્તુ ધર્મઃ’ ઢતિ ંચ્ચાયા । (ઉત્તરાધ્યયનમ્ત્રે ૨ૢ અ.) ગતિકાર્યા-નુમેયો ધર્માસ્તિકાય ઢતિ ભાવઃ ।

ગઢ્ઢા—ધર્માસ્તિકાય ડટા આદિ કે સમાન નિમિત્ત કારણ નહા હો સકતા, ક્યોકિ વહ વ્યાપાર નહા કરતા, કાર્ય કી ઉત્પત્તિ મે વ્યાપાર કરને વાલ્ય હી કારણ હોતા હૈ । કાર્ય કી ઉત્પત્તિ મે વ્યાપાર ન કરને પર મી અગર કિસી કો કારણ માન લિયા જાય તો ંચ્ચાહે જો વસ્તુ ંચ્ચાહે જિમ કાર્ય મે કારણ હો જાયમી । ઢેસી ઢગ્ઢા મે નિયત કાર્ય—કારણ ભાવ કા અભાવ હો જાયગા ।

મમાધાન—યહ શઢ્ઢા ઢીક નહીં હૈ, ક્યોકિ યહો હેતુ અસિદ્ધ હૈ । ગતિરૂપ કાર્ય મે ધર્માસ્તિકાય વ્યાપારરહિત નહીં હૈ, કિન્તુ ધર્માસ્તિકાયકા સ્વાભાવિક વ્યાપાર વિદ્યમાન હોને કે કારણ ઉસે કારણ માનના યુક્તિસઢ્ઢત હૈ । ભગવાન્ ને ધર્માસ્તિકાયકા લક્ષણ ઢસ પ્રકાર વત્તલાયા હૈ—

“ ગઢલક્ષવળો ડ ધમ્મો ” ધર્માસ્તિકાય ગતિ લક્ષણ વાલ્ય હૈ । (ઉત્તરાધ્યયનમૂત્ર અ૦ ૨ૢ) અર્થાત્ ગતિરૂપ કાર્ય સે ધર્માસ્તિકાયકા અનુમાન હોતા હૈ ।

શઢ્ઢા—ધર્માસ્તિકાય ઢડ આદિ પ્રમાણે નિમિત્ત કારણુ થઈ શકતુ નથી, કેમકે તે વ્યાપાર કરતુ નથી, કાર્યની ઉત્પત્તિમા વ્યાપાર કરનાર જ કારણુ હોવ છે કાર્યની ઉત્પત્તિમા વ્યાપાર નહિ ડરવા છતા ય જે કોઈને કારણુ માનવામા આવશે તો ગમે તે વસ્તુ ગમે તે કાર્યમા કારણુ થઈ જશે. એવી ઢગ્ઢામા નિયત કાર્ય કારણુ ભાવનો અભાવ થઈ જશે

અમાધાન—આ શઢ્ઢા ઢીક નથી, કારણુ કે અહિ હેતુ અસિદ્ધ છે ગતિરૂપ કાર્યમા ધર્માસ્તિકાય વ્યાપારરહિત નથી, ધર્માસ્તિકાયનો સ્વાભાવિક વ્યાપાર વિદ્યમાન હોવાથી તેને કારણુ માનવુ તે યુક્તિસઢ્ઢત છે ભગવાને ધર્માસ્તિકાયનુ લક્ષણ આ પ્રમાણે ઘતાવ્યુ છે—

“ ગઢલક્ષવળો ડ ધમ્મો ” ધર્માસ્તિકાય ગતિલક્ષણુવાળુ છે (ઉત્તરાધ્યયન મૂત્ર અ૦ ૨ૢ) અર્થાત્ ગતિરૂપ કાર્યથી ધર્માસ્તિકાયનુ અનુમાન થાય છે.

अस्य-(१) अरूपित्वम्, (२) अचेतनत्वम्, (३) अक्रियत्वम्, (४) गति-  
सहायकत्वं चेति गुणा । (१) स्कन्ध, (२) देश, (३) प्रदेशः, (४) अगुण्यधुत्वं  
चेति पर्याया । अयं द्रव्यक्षेत्रकालमात्रगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा-द्रव्यत एको  
धर्मास्तिकाय, क्षेत्रतो लोकप्रमाण, कालत भाषन्तरहितः भावतो रूपरहितः-  
बन्धगन्धरसस्पर्शवर्जित इति । गुणतश्चलनस्य ।

### अधर्मास्तिकायस्वरूपम्—

स्वभावात् स्थितिपरिणतानां बीजपुद्गलानां स्थितिं प्रति सहकारि कारणत्वम्  
धर्मास्तिकायस्य सङ्गणम् ।

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) गतिसहायकत्व ये धर्मास्तिकाय  
के गुण है । (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) अगुण्यधुत्व ये उसके पर्याय  
हैं । धर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र काल मात्र और गुण इस तरह पांच धर्मों से बना जाता है ।  
भेदे-द्रव्य से धर्मास्तिकाय एक है, क्षेत्रसे लोकप्रमाण है, कालसे आदि-अन्तरहित है,  
भावसे रूपरहित है-रूप रस गन्ध स्पर्श उस में नहीं है, और गुण से चलन-गुण  
रहित है ।

### अधर्मास्तिकायका स्वरूप—

स्वभावात् स्थितिरूप परिणत रूप बीज और पुद्गलकी स्थिति में सहकारी इतना  
अधर्मास्तिकायका सङ्गण है ।

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) गतिसहायकत्व. के सर्व  
धर्मास्तिकायका लक्षण है (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) अगुण्यधुत्व, के  
तेना पर्याय है धर्मास्तिकाय-द्रव्य, क्षेत्र काल, मात्र और गुण, के पांच लक्षणों की  
बाबु शक्य है जेनी दीते-द्रव्यका धर्मास्तिकाय के है क्षेत्रकी लोकप्रमाण है  
कालकी आदि अन्त रहित है औरकी रूपादिरहित है-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श  
तेमां नहीं, और गुणकी चलन-लक्षणका है

### अधर्मास्तिकायतुं स्वरूप—

स्वभावकी स्थितिरूप परिणत भवेता लगे और पुद्गलकी स्थितिमां सहकारी  
धनुं ते अधर्मास्तिकायतुं लक्षण है.

जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतः स्वयं तिष्ठन्ति, तत्रोपादानकारणस्वरूपास्ते स्थितिं प्रति, पुनस्तस्यामेव स्थितिक्रियायामधर्मास्तिकायः सहायरूपं निमित्तकारणं भवति ।

(१) यथा—स्वय तिष्ठता पथिकानां स्थितौ छाया सहकारि कारणं भवति । अतिष्ठतस्तु स्थातुं न पुनः सा प्रेरयति ।

(२) यथा वा स्वय तिष्ठतो देवदत्तस्य स्थितिं प्रति पृथिवी सहकारि कारणं भवति । अतिष्ठन्तं तु देवदत्त न पृथिवी स्थापयति ।

(३) यथा-समितिगुप्तिधारिणो रत्नत्रयाराधिनः समरसकन्दा समाहितमतयो महात्मानो निश्चयनयेन निजात्मस्वरूप चिन्तयन्तः क्षपकश्रणिं समारुह्य समुत्पन्न-

जीव और पुद्गल जब स्वभाव से ही स्थित होते हैं, अपनी स्थिति में उपादान कारण तो स्वयं वही है, पर अधर्मास्तिकाय उस में सहायक होता है, अतः वह निमित्त कारण है ।

(१) जैसे—स्वयं ठरने वाले पथिकों की स्थिति में छाया सहकारी कारण होती है । अगर कोई न ठहरे तो वह ठहरने की प्रेरणा नहीं करती ।

(२) अथवा जैसे—स्वयं ठहरने वाले देवदत्त की स्थिति में पृथिवी सहकारी कारण है । मगर देवदत्त को न ठहरना हो तो पृथ्वी ज्वरदस्ती नहीं ठहराती ।

(३) अथवा जैसे—समिति गुप्तिके धारक, रत्नत्रय की आराधना करने वाले, समभाव के रस में निमग्न समाधियुक्त मति वाले महात्मा निश्चय नय से आत्मस्वरूपका चिन्तन करते

एव अने पुद्गल न्यारे स्वभावधी न स्थित थाय छे तो पोतानी स्थितिमा उपादान कारणु तो पोते न छे, परन्तु अधर्मास्तिकाय तेमा सहायक थाय छे, तेधी ते निमित्त कारणु छे

(१) जेवी गते-पोते उला रडेवा वाणा मुसाक्षेनी स्थितिमा छाया सहकारी कारणु डोय छे अगर कोय उला न रडे तो ते उला रडेवानी प्रेरणु नथी करती

(२) अथवा-जेवी रीते पोते न उला न रडेवा वाणा देवदत्तनी स्थितिमा पृथ्वी सहकारी कारणु छे, परन्तु जे देवदत्तने उला न रडेवु डोय तो पृथ्वी देवदत्तने षणषणशीधी उलो राणी शकती नथी

(३) अथवा-जेवी रीते समिति-गुप्तिना धारक, रत्नत्रयनी आराधना करवा-वाणा, समभावना रसमा निमग्न, समाधियुक्त मतिवाणा महात्मा निश्चयनयधी

केवलज्ञान-केवलदर्शनमृतः सन्त् सकलकर्मसयं कृत्वा, शरीरमौदारिकमिह परि-  
 त्यज्य, सिद्धिगतिनामधेय स्थानं गतास्तिष्ठन्ति तेषां निश्चयनयेन स्वतः स्विति  
 परिणतानां तत्र साधपर्यवसितां स्विति प्रति तस्स्थानं सहकारि कारण भवति । न तु  
 तद् स्थानं तानवस्थातुं प्रेरयति ।

(४) यथा व्यवहृत्स्नयन सिद्धमक्त्या स्वयं समुत्पन्नसचिकल्पध्यानास्थितानां  
 महारथनां सचिकल्पध्याने स्विति प्रति, निष्क्रियो मूर्त्तिरहितः प्रेरणारहितोऽपि  
 सिद्धमगवान् सहायः सन् सहकारि कारणं भवति । न त्वसौ तान् सदधाने स्वातु प्रेरयति ।

हुप क्षयकमेगी पर आरुह हो कर उत्पन्न केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राण करने  
 वाले हो कर समस्त कर्मों का क्षय करके औदारिक शरीर को वहीं त्याग कर सिद्धिगति  
 नामक स्थान को प्राप्त हो कर स्थिर हो जात है । निश्चयनय स स्वयं स्थिति में परिणत  
 हुए उन सिद्ध जीवों की साधि-भनन्त स्थिति में वह स्थान सहकारी कारण होता है,  
 किन्तु वह स्वयं उन्हें उत्पन्न के लिए प्रेरित नहीं करता ।

(५) अथवा जैसे-व्यवहारमग से सिद्ध भगवान की भक्तिस स्वयं उत्पन्न हुए  
 सचिकल्प ध्यान में अवस्थित महात्मा पुरुषों की सचिकल्प में जो स्थिति है, उस में अक्रिय  
 अमूर्तिक और प्रेरणारहित भी सिद्ध भगवान् सहायक होने से निमित्त कारण होते हैं किन्तु  
 वे उन्हें ध्यान में स्थित होने की प्रेरणा नहीं करते ।

अप्रभस्वरूपतु धितन करता बड़ा क्षयकमेगी पर आरुह यद्यने उत्पन्न केवलज्ञान  
 करने केवलदर्शनने धारण कस्वा बाणा यद्यने समस्त क्रमोने क्षय करीने औदारिक  
 शरीरने अदि व त्याग करीने सिद्धिगति नामना स्थानने प्राप्त यद्य स्थिर यद्य  
 अथ छे निश्चयनयधी स्वयं स्थितिमा परिणत यथेसा ते सिद्ध लोकोनी साधि  
 भनन्त स्थितिमा ते स्थान सहकारी कारण कोष छे परतु ते स्थान तेने प्रेरणा  
 भाटे प्रेरणु नहीं करतु

(४) अथवा-जैसी रीते व्यवहृत्स्नयधी सिद्ध भगवाननी भक्तिधी स्वयं उत्पन्न  
 यथेसा सचिकल्प ध्यानमा अवस्थित महात्मा पुरुषोनी सचिकल्प ध्यानमा छे स्थिति  
 छे तेषां निष्क्रय, अमूर्तिक अने प्रेरणारहित सिद्ध भगवान सहायक होनेधी  
 निमित्त कारण कोष छे-पक्ष सिद्ध भगवान तेने ध्यानमा स्थित यथानी प्रेरणा  
 कस्ता नहीं.

इदमेवाभिप्रेत्य भगवताऽभिहितम्—

“अहम्मो ठाणलक्खणो” इति ( उत्तरा. अ. २८ )

‘अधर्मः स्थानलक्षणः’ इति च्छाया । लक्ष्यते=दृश्यते परिचीयते अनेनेति लक्षण=परिचायक ज्ञापकम् । स्थानं=स्थितिरेव लक्षण=ज्ञापकं यम्याऽसाविति स्थानलक्षणः । स्थितिकार्यानुमेयोऽधर्मास्तिकाय इत्याशयः ।

अधर्मास्तिकायस्य—(१) अरूपित्वम्, (२) अचेतनत्वम्, (३) अक्रियत्वम्, (४) स्थितिसहायकत्वमिति गुणाः ।

(१) स्कन्धः, (२) देशः, (३) प्रदेशः, (४) अगुरुलघुत्व चेति पर्यायाः ।

इसी अभिप्राय से भगवान ने कहा—“अहम्मो ठाणलक्खणो” अधर्मास्तिकाय स्थिति लक्षण वाला है । (उत्तरा० अ० २८) जिस के द्वारा कोई वस्तु लखा जाय (देखी जाय) या जो, वस्तु का परिचायक (परिचय कराने वाला) हो वह लक्षण कहलाता है । स्थान अर्थात् स्थिति ही जिस का लक्षण है, अर्थात् स्थितिरूप कार्य से जिस का अनुमान होता है उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं ।

अधर्मास्तिकाय के गुण—(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व और स्थितिसहायकत्व हैं । (१) स्कन्ध, (२) देश (३) प्रदेश, और (४) अगुरुलघुत्व, अधर्मास्तिकाय के पर्याय हैं ।

એ અભિપ્રાયથી ભગવાને કહ્યું છે કે—“અહમ્મો ઠાણલક્ખણો” અધર્માસ્તિકાય સ્થિતિ લક્ષણ વાળા છે (ઉત્તરાધ્યયન અ ૨૮)

જેના દ્વારા કોઈ વસ્તુ લખી શકાય (દેખી શકાય) અથવા જે વસ્તુને પરિચય કરાવનાર હોય તે લક્ષણ કહેવાય છે સ્થાન અર્થાત્ સ્થિતિ જ જેનું લક્ષણ છે અર્થાત્ સ્થિતિરૂપ કાર્યથી જેનું અનુમાન થાય છે, તેને અધર્માસ્તિકાય કહે છે

અધર્માકાયના ગુણ—(૧) અરૂપિત્વ (૨) અચેતનત્વ (૩) અક્રિયત્વ અને (૪) સ્થિતિસહાયકત્વ છે

(૧) સ્કન્ધ, (૨) દેશ, (૩) પ્રદેશ, અને (૪) અગુરુલઘુત્વ, એ અધર્માસ્તિકાયના પર્યાય છે



अयं द्रव्यक्षेत्रकालमाद्यगुणभेदेन पञ्चधा प्रायते, यथा—अधर्मास्तिकायो द्रव्यस्य एकः, क्षेत्रतो लोकप्रमाणः, कालस्त आद्यन्तरहितः, भावतो स्परहितः—वर्ष-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति, गुणत स्थितिगुण ।

ननु धर्माधर्मसम्बन्धाभ्यां पुण्यपापरूपौ धुमाधुमफलस्यौ धर्माधर्मौ कथं नात्र शृण्वेते ? इति चेत्, उच्यते—तयोर्गुणत्वेन द्रव्यप्रकरणे समावेशासम्भवात् । किञ्च तौ धर्माधर्मौ पुण्यपापरूपौ पुद्गलत्वेनाभिमतौ पुद्गलद्रव्यान्तर्भूतौ, ततस्तयोर्न धर्माधर्मास्तिकायमभ्ये समावेशः ।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण के भेदसे पांच प्रकार से जाना जाता है । जैसे—अधर्मास्तिकाय द्रव्य से एक है, क्षेत्र से लोकप्रमाण है, काल से आदि-अन्त रहित है, भावसे अव्ययी अर्थात् रूप, रस गन्ध और स्पर्श से रहित है, और गुण से स्थितिगुण वास्तव है ।

सङ्गा—धर्म शब्द से शुभ फल देने वाले पुण्य का और अधर्म शब्द से अशुभ फल देने वाले पाप का मूल्या कर्मों नहीं किया गया ।

समाधान—पुण्य और पाप द्रव्य नहीं, गुण हैं, इसी लिये इनका द्रव्यके प्रकरण में समावेश नहीं हो सकता । मयथा पुण्य—पाप रूप धर्म और अधर्म पुद्गल हैं अतः उनका समावेश पुद्गल में ही हो जाता है । अधर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय में उन्हें गर्भित नहीं किया जा सकता ।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र काल भाव अने शुष्कता सेही प्रांच प्रकारे अधर्मी शक्य छे अथवा—अधर्मास्तिकाय द्रव्यकी क्षेत्र छे क्षेत्रकी लोकप्रमाण छे कालकी आदि-अन्त रहित छे भावकी अव्ययी अर्थात् रूप रस गन्ध अने स्पर्शकी रहित छे अने शुष्ककी स्थितिगुणवाण्य छे

शंका—धर्म शब्दकी शुभ फल व्यापवा वाण्य पुण्य अने अधर्म शब्दकी अशुभ फल व्यापवा वाण्य पापतु अक्षय या भाटे कर्वाभा व्यापतु नधी ?

समाधान—पुण्य अने पाप, द्रव्य नहीं, गुण छे अथवा भाटे द्रव्यनां प्रकरणमा तेना समावेश कर्ष शक्यो नधी अथवा पुण्य-पापरूप धर्म अने अधर्म पुद्गलरूप छे तेधी तेना समावेश पुद्गलमा न कर्ष जाय छे अधर्मास्तिकाय अने अधर्मास्तिकायमा तेना गर्भित नधी कर्षी शक्यत ।

### અધાકાશસ્વરૂપમ્—

આ-સમન્તાત્ કાશતે=અવગાહદાનેન પ્રતિભાસતે ઇત્યાકાશમ્, યદ્વા-આકાશન્તે=દીપ્યન્તે ધર્માધર્મકાલપુદ્ગલજીવાઃ સ્વસ્વરૂપેણ યત્ર તત્ ।

ધર્માધર્માદિસર્વદ્રવ્યાણામાધારતયાઽવકાશં દદાતીત્યવકાશદાયિત્વં લક્ષણમાકાશાસ્તિકાયસ્ય । અત્રાવકાશદાયિત્વં વ્યવહારનયેનોપચારિમ્ । અસ્તિકાયશબ્દઃ પ્રાગ્ વ્યાખ્યાતઃ । ઉક્તં ચોત્તરાધ્યયનમૃત્રે ( ૨૮ અધ્યયને )—

“ માયણ સન્વદન્વાણ, નહં ઓગાહલસ્વણમ્ । ” ઇતિ ।

### આકાશકા સ્વરૂપ—

‘આકાશ’ શબ્દ મે ‘આ’ ઓર ‘કાશ’ દો હિસ્સે હૈં । ‘આ’ કા અર્થ હૈ—સમી ઓર સે—સર્વત્ર, ઓર ‘કાશ’ કા અર્થ હૈ—પ્રકાશિત હોને વાલા । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ અપને અવગાહદાનનામક ગુણસે સર્વત્ર પ્રભાસિત હોતા હૈ, વહ આકાશ હૈ । અથવા જહાં ધર્મ, અધર્મ, કાલ, પુદ્ગલ ઓર જીવ અપને—અપને સ્વરૂપ સે પ્રકાશિત હોતે હૈં ઉસે આકાશ કહતે હૈ ।

ધર્મ, અધર્મ, આદિ સમસ્ત દ્રવ્યો કા આધાર હોકર જો ઉન્હે આશ્રય દેતા હૈ, વહી આકાશ હૈ । અવકાશ દેને વાલા હી આકાશ કહલાતા હૈ । યહાં ‘અવકાશ દેના’ આકાશ કા જો લક્ષણ વતલાયા ગયા હૈ, વહ વ્યવહારનયસે ઉપચરિત કથન હૈ । ‘અસ્તિકાય’ શબ્દ કી વ્યાખ્યા પહેલે હી કી જા ચુકી હૈ । ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ૦ ૨૮) મેં કહા હૈ — “માયણં સન્વદન્વાણં નહં ઓગાહલસ્વણ” ઇતિ ।

### આકાશનુ સ્વરૂપ—

‘આકાશ’ શબ્દમા ‘આ’ અને ‘કાશ’ બે ભાગ છે ‘આ’ નો અર્થ છે—ચારેય કોરથી—સર્વત્ર, અને ‘કાશ’નો અર્થ છે પ્રકાશિત થવા વાળા, તાત્પર્ય એ છે કે—પોતાના અવગાહદાન ( અવકાશ આપવો ) નામના શુભૃથી જે સર્વત્ર પ્રતિભાસિત હોય છે તે આકાશ છે, અથવા ન્યા ધર્મ, અધર્મ, કાલ, પુદ્ગલ અને છવ પોતપોતાના સ્વરૂપથી પ્રકાશિત હોય છે—પ્રતીત થાય છે તેને આકાશ કહે છે

ધર્મ, અધર્મ આદિ તમામ દ્રવ્યોનો આધાર બની જે તેને આશ્રય આપે છે તે આકાશ છે અવકાશ આપનાર જે આકાશ કહેવાય છે અવકાશ આપવો તે આકાશનુ લક્ષણ બતાવવામા આવ્યુ છે, તે વ્યવહારનયથી ઉપચારરૂપ કથન છે ‘અસ્તિકાય’ શબ્દની વ્યાખ્યા પ્રથમ જે કહી દીધી છે, ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ.૨૮)મા કહ્યુ છે કે— “માયણ સન્વદન્વાણં નહં ઓગાહલસ્વણ” ઇતિ.

‘भाजनं सर्वद्रव्याणां, नमोऽवगाहस्यणम्’ इति च्छाया ।

सर्वद्रव्याणां भाजनम् = आभारः, इति हेतुगर्भविशेषणम् । यतः सर्वद्रव्याणां भाजनम्, अतः अवगाहस्यणं नम इति भावः ।

धर्माधर्मकालानामन्तः समावेशेन नीचपुत्रलानामौपचारिकसंयोगविभागान्यां च अवगाहः । अवगाहं तद्यत्वेऽस्योपाधिभेदादवगाहस्य नानात्वेन संयोगविभागो व्यपपद्यते ।

अवगाहोऽयकाशः, स एव स्मरणं=ज्ञापकं यस्य तद् अवगाहस्यणं नमः=आकाशं कल्पते, इत्यर्थः । अवगाहदानकार्यानुमेयमाकाशमित्याशयः ।

धर्माधर्मादिद्रव्याणामाभारान्यवाऽनुपपत्तेराद्यत्रमस्तीति निःशङ्कं चिन्त-

‘आकाश’ सब द्रव्यों का आभार है । सारांश यह है कि आकाश सब द्रव्यों का आभार होनेसे अवगाह-स्मरण वाच्य है ।

‘धर्मास्तिकाम’ ‘आधर्मास्तिकाम’ और काल का आकाश में ही समावेश होने से नीच और पुत्रला के औपचारिक संयोग और विभाग के द्वारा अवगाह होता है । अवगाह होने पर देश के मध्य से अवगाह भी भिन्न हो जाता है और संयोग तथा विभाग उत्पन्न होते हैं ।

तत्पर्यं यह है कि—अवगाह वा अवकाश ही जिस का स्मरण है, अर्थात् अवगाह से जिस का अनुमान होता है वह द्रव्य आकाश है ।

आकाश न होता तो धर्म अवधर्म आदि द्रव्यों की स्थिति कहाँ होती ? अर्थात् उनका कोई आभार ही नहीं रहता अतः एव आकाश का अस्तित्व किसी प्रकार की शङ्का किये

आकाश सर्वद्रव्येभ्यो आभारः ए आकाशं ये एते आकाशं सर्वद्रव्येभ्यो आभारो होनाधी अवगाहनं तदनुपपद्यते ।

धर्मास्तिकाम अधर्मास्तिकाम अने जलने आकाशधर्म समावेश होनाधी एव अने पुत्रलानामौपचारिक संयोग अने विभाग द्वारा अवगाह वाच्य ए अवगाह यथाधी देशतः देशधी अवगाहं पद्य भिन्नं यद्यं वाच्य ए अने संयोग तथा विभाग उत्पन्न वाच्य ए

तत्पर्यं ये एते—अवगाह अवधर्मा अवकाश न वेद्यं तदनुपपद्यते अवगाहधी वेद्यं अनुमानं वाच्य ए ते द्रव्य आकाश ए अधर्मा आकाश न तो धर्म, अधधर्म आदि द्रव्येभ्यो स्थिति क्या होपा ? नेने कोई आभार

सनीयम्, इत्यपि भगवता बोधितम् । आकाशसिद्धयर्थं ' भायणं सव्वदव्वाणं'— इति, ' ओगाहलक्खणं ' इति च विशेषणद्वयमुपात्तम् ।

आकाश द्विविधम्—लोकालोकभेदात्, उक्तं च स्थानानुसूत्रे—

“ दुविहे आगासे पन्नत्ते, तंजहा—लोगागासे चेव अलोगागासे चेव ” इति ।

द्विविध आकाशः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—लोकाकाशश्चैव अलोकाकाशश्चैव, इति न्याया । धर्मादिसर्वद्रव्याणामाधारभूतमसंख्यातप्रदेशात्मरूपाकाशखण्डं लोकाकाशम् । तद्भिन्नमनन्तप्रदेशात्मरूमलोकाकाशम् ।

ननु धर्माधर्मद्रव्यस्वीकारे प्रयोजनं न किमपि पठ्यामः, जीव-पुद्गलानां गतिस्थितिकार्ययोः सहायरूपं कारणं त्वाकाशमेव स्यात् ? ।

विना विश्वास करने योग्य है, यह भी भगवान ने उक्त कथन से ध्वनित कर दिया है । आकाश की सिद्धि के लिये ' भायणं सव्वदव्वाणं ' और ' ओगाहलक्खणं ' ये दो विशेषण लगाये गये हैं ।

आकाश दो प्रकार का है—लोकाकाश, और अलोकाकाश । स्थानानुसूत्र में कहा है—  
“दुविहे आगासे पन्नत्ते तं जहा—लोगागामे चेव अलोगागासे चेव”

धर्म आदि सब द्रव्यों का आधार और असंख्यातप्रदेशरूप आकाशखण्ड, लोकाकाश कहलाता है । लोकाकाश में भिन्न अनन्तप्रदेशी अलोकाकाश है ।

शङ्का—जब कि आकाश ही जीव और पुद्गलों की गति एवं स्थिति में सहायक कारण हो सकता है तो फिर धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्यों को स्वीकार करने का कोई न रहें, अटला भाटे आकाशना अस्तित्व, ठोस जलनी पणु शका कथा वगर विश्वास करवा योग्य छे, अरे पणु लगवाने उक्त कथनथी ध्वनित कर्तुं छे. आकाशनी सिद्धि भाटे 'भायणं सव्वदव्वाणं' अने 'ओगाहलक्खणं' आ जे विशेषण लगावैला छे

आकाश जे प्रकारना छे (१) लोकाकाश अने (२) अलोकाकाश—स्थानांग सूत्रमा कहु छे—“दुविहे आगासे पन्नत्ते, तंजहा—लोगागासे चेव अलोगागासे चेव”

धर्म आदि तमाम द्रव्योंना आधार अने असंख्यातप्रदेशरूप आकाशभेद ते लोकाकाश कडेवाय छे, लोकाकाशथी भिन्न अनन्तप्रदेशी अलोकाकाश छे

शङ्का—जे के आकाश न एव अने पुद्गलानी गति अने स्थितिमा सहायक कारण थर्छ शके छे तो पछी धर्मास्तिकाय अने अधर्मास्तिकाय द्रव्योंना स्वीकार

अत्रोच्यते-परमेश्वरमेवेति द्रव्यद्वयमवश्यमङ्गीकरणीयम्, अन्यथा दोषबाहुस्यप्रसङ्गात् ।

(१) आकाशस्य गतिहेतुत्वस्वीकारे जीवपुद्गलानामलोकाकाशगमनापि ।

(२) अलोकाकाशस्यापि जीवपुद्गलपूर्वत्वे लोकात्मसंग, तथा चालोकाकाशस्य नामाऽपि वन्व्यापुत्रवदेव स्यात् ।

(३) भगवत्प्रकृतिताऽऽकाशद्वैविध्यम्यवस्थाऽपि न सिद्धयेत् ।

प्रबोक्तं दिशार्थं नही देता ।

समाधान-परमेश्वर जीव अर्थात्प्रत्येक अवश्य स्वीकार करना चाहिये। उन्हें स्वीकार न करके से बहुतेरे दोष व्यक्त हैं। वे इस प्रकार-

(१) आकाश को ही गति का कारण मान लिया जाय तो जीवा और पुद्गल का अलोकाकाश में भी गमन मानना पड़ेगा क्योंकि अलोकाकाश भी तो आसित्त्व व्यकाश ही है।

(२) अलोकाकाश अगर जीवा और पुद्गल से व्याप्त मान लिया जाय तो वह अलोकाकाश न रहकर लोकाकाश ही हो जायगा। ऐसी स्थिति में अलोकाकाश तो वन्व्यापुत्र के समान ही जायगा अर्थात् अलोकाकाश का अस्तित्व नही रहेगा।

(३) भगवान् से दो प्रकार का आकाश बतसाया है, वह व्यवस्था सङ्ग हो जायगी।

इत्यनुं केचिं पद्य प्रथेजन जेवाभा आवतु नही

समाधान-परमेश्वर होने अवश्य स्वीकार करने जेहजे, तेने स्वीकार नहिं इत्यधी जदु व दोष आवे छे ते आ प्रभावे-

(१) आकाशने व जतितु इत्यु मानी देवायां आवे तो लवे जने पुद्गलानु अलोकाकाशमां पद्य जमन मानतु पश्ये; केचिं अलोकाकाश पद्य छवटे तो आकाश व छे

(२) अथवा अलोकाकाश लवे जने पुद्गलानु व्याप्त मानी देया तो ते अलोकाकाश नहिं रहेतां लोकाकाश व र्ध जये जेनी स्थितिमा अलोकाकाश के वन्व्या पुत्रना समान र्ध जये, अर्थात् अलोकाकाशनु अस्तित्व व रहेये नहिं.

(३) भगवाने से प्रकारस्य आकाश जलान्तां छे ते व्यवस्था सङ्ग र्ध जये

(४) अपिच—सिद्धभगवान् ऊर्ध्वं गत्वा लोकाग्रेऽवस्थित इति मर्यादाऽपि खपुष्पायमानैव स्यात् ।

(५) भवन्मते गतिकारणीभूतस्याकाशस्योर्ध्वदेशं विद्यमानत्वात्तस्य (सिद्धस्य) गतेरवरोधाभावो भवेत् ।

धर्माधर्मद्रव्ययोरुकाशतः पृथक् स्वीकारे तु लोकाकाशत उर्ध्वमलोकाकाशस्य सन्वेन तत्र गतिहेतोर्धर्मस्याभावान्न गतिर्भवति । स्थितिहेतोरधर्मद्रव्यस्य लोकान्तर्वर्त्तित्वेन लोकाग्रमध्य एवोपरिभागे गतिहेतोर्धर्मद्रव्यस्य साहाय्येन गत्वा तत्रैवाधर्मद्रव्यसाहाय्येन तिष्ठति । एव च लोकाग्रे भगवानवस्थितो जले

(४) सिद्ध भगवान् उपर जाकर लोक के अग्र भाग में स्थित हो जाते हैं, यह आगम की मर्यादा भी आकाशपुष्प के समान हो जायगी ।

(५) आप के मत के अनुसार गतिका कारण आकाश है और वह ऊर्ध्व देश में लोकाकाश के अग्रभाग से भी आगे विद्यमान है, अतः सिद्धों की गति में रुकावट नहीं होगी ।

धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को आकाश से भिन्न मान लेने से लोकाकाश से उपर अलोकाकाश में गति का कारण धर्मद्रव्य नहीं है, अतः लोकाकाश से आगे गति भी नहीं होती, तथा स्थिति का कारण अधर्मद्रव्य लोक के अन्तर्गत ही है, अतः धर्मद्रव्य की सहायतासे सिद्ध जीव, लोक के अन्त तक पहुँच कर अधर्म की सहायता से वहाँ अर्थात् लोकाकाशके

(४) सिद्ध भगवान् उपर वर्धने लोकना अग्रभागमा स्थित थाय छे, ते आगमनी मर्यादा पणु आकाश-पुष्पना समान थर्ध जशे

(५) आपना मत प्रमाणे गतिनु कारणु आकाश छे अने ते उर्ध्व-उपरना देशमा लोकाकाशना अग्रभागथी पणु आगण विद्यमान-हुयात छे, तेथी सिद्धोनी गतिमा रुकावट-रोकाणु नहि थाय.

धर्म द्रव्य अने अधर्मद्रव्यने आकाशथी भिन्न मानी द्वैवाथी लोकाकाशथी उपर अलोकाकाशमा गतिनु कारणु धर्मद्रव्य नथी, तेथी लोकाकाशथी आगण गति पणु थती नथी, तथा स्थितिनु कारणु अधर्मद्रव्य लोकना अन्तर्गतज (अदरज) छे, तेथी धर्मद्रव्यनी सहायताथी सिद्ध लोकना अत सुधी पडोथीने अधर्मद्रव्यनी

कुम्भीवदिति मर्यादा सूत्रादुपपद्यते । उक्त औपपातिकसूत्रे-

“कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पडिहया ।  
कहिं बादिं पडिहया, कस्य गंतुण सिद्धा ॥ १ ॥  
अत्तोणे पडिहया सिद्धा, कोयमा य पडिहया ।  
इह बोदिं पडिहया, उत्थ गंतुण सिद्धा ॥ २ ॥” इति ।

छाया—

“कुत्र प्रतिहताः सिद्धाः, कुत्र सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ।  
कुत्र बोन्दि (धरीरं) त्यक्त्वा, कुत्र गत्वा सिद्धयति ॥ १ ॥  
अत्तोके प्रतिहताः सिद्धा, लोकाग्रे च प्रतिष्ठिताः ।  
इह बोन्दि (धरीरं) त्यक्त्वा, तत्र गत्वा सिद्धयति ॥ २ ॥ इति

अन्तर्गत ही छहर आता है । इस प्रकार पहले अग्रभाग पर छहरे हुए सुबे के समान सिद्ध भगवान् लोकाकारा क अग्रभाग पर स्थित है, यह मर्यादा स्वतः सिद्ध हो जाती है । औपपातिकसूत्र में कहा है—

सिद्ध भगवान् कहीं रुकनात है / कहीं स्थित होते है । / कहीं शरीर का त्याग करके कहीं जाकर सिद्ध होते हैं ॥ १ ॥

सिद्ध भगवान् अत्तोके मं रुक जाते हैं, लोकाग्र मं स्थित होते है । यहीं शरीर का त्याग करके कहीं जाकर सिद्ध हो जाते हैं ॥ २ ॥”

सहायताही त्यां च अत्रोत्तु लोकाकाराणा अदृश्य बोधी जगत्ते तदुपर्यं जे छे के जलना अग्रभाग उपर स्थित रहेला तुल्यवन्ती चेटे सिद्ध भगवान् लोकाकाराणा अग्रभाग उपर स्थित छे आ मर्यादा स्वतः सिद्ध बर्ध जगत्ते औपपातिक सूत्रमां पद्य कसुं छे—

“सिद्ध भगवान् कथा शिकर्यं जगत्ते ? कथा स्थित जगत्ते ? कथा शरीरने त्याग करीने, कथा जगत्ते सिद्ध जगत्ते ? ॥ १ ॥

सिद्ध भगवान् अत्तोकेमां शिकर्यं जगत्ते, लोकागा अग्रभागमां स्थित जगत्ते छे अदि शरीरने त्याग करीने त्या जगत्ते सिद्ध बर्ध जगत्ते ॥ २ ॥”

नन्वेवं धर्माधर्मद्रव्ये एव समाद्रियेताम्, किमाकाशद्रव्यावलम्बनेन, आकाश-  
कार्यावगाहसाहाय्य धर्माधर्मद्रव्याभ्यामेव सपद्येत ?, इति चेत्, उच्यते—सिद्धान्ते  
तयोर्जीवादिगतिस्थितिसाधकत्वेन सिद्धान्तितत्वाद्दवकाश दातुं तौ न प्रभवतः ।  
अन्यसाध्य कार्यमन्यो न साधयति, अन्यथाऽतिप्रसंगात् । लोकेऽपि चक्षुस्साध्य  
दर्शनकार्यं न श्रोत्र साधयति ।

ननु केवलज्ञानस्य योऽनन्ततमो भागस्तत्प्रमाणमेव नमोद्रव्यम्, तस्य  
चानन्ततमभागपरिमितं लोकाकाशम्, एतादृशेऽल्पतरुरूपे लोकाकाशे लोकाकाश-

शङ्का—यदि ऐसा हो तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य ही स्वीकार करलेने चाहिये,  
फिर आकाश की क्या आवश्यकता है / आकाश का कार्य अवगाह देना है सो वह कार्य  
धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य से ही सम्पन्न हो जायगा ।

समाधान—आगम में धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को गति और स्थिति में ही सहायक  
बतलाया है, इस लिए वह अवकाश देने में समर्थ नहीं है, और का कार्य कोई और नहीं  
कर सकता । अगर ऐसा होने लगे तो सर्वत्र गडबट हो जायगा । लोक में चक्षुका देखना  
कार्य कान नहीं कर सकता ।

शङ्का—केवल ज्ञान का जो अनन्तवाँ भाग है उसी के बगवत् आकाशद्रव्य है, और  
आकाशद्रव्य का भी अनन्तवाँ भाग लोकाकाश है तो इतने छोटे से लोकाकाश में समस्त  
लोकव्यापी और असख्यात प्रदेशवाले धर्मद्रव्य का, अधर्मद्रव्य का, अनन्तानन्त जीवों का

शङ्का—जे जे प्रमाणे छे तो धर्मद्रव्य अने अधर्मद्रव्यनो स्वीकार करी  
लेवे जेठजे, करीने आकाशनी शु आवश्यकता छे ? आकाशनु कार्य अवगाह-  
अवकाश आपवे ते छे, ते कार्य धर्मद्रव्य अने अधर्मद्रव्यथी ज ल पन्न थर्थ जथे

समाधान—आगममा धर्मद्रव्य अने अधर्मद्रव्यने गति अने स्थितिमा  
सहायक भताव्या छे, ओटला भाटे ते अवकाश आपवामा समर्थ नथी भीजनु  
कार्य कोछ भीजे नछि करी शके, जे जेभ थवा लागथे तो सर्वत्र गडगड थर्थ  
जथे. जगतमा नेत्रथी जेवानु कार्य कान करी शकता नथी

शङ्का—केवलज्ञाननो जे अनन्तमो भाग छे तेना अरागर आकाशद्रव्य छे,  
अने आकाशद्रव्यनो पछु अनन्तमो भाग लोकाकाश छे, तो जेवडा नाना सरथा  
लोकाकाशमा समस्त लोकव्यापी अने जेभज्यात प्रदेशवाला धर्मद्रव्यनो, अधर्म



व्यापिनोः प्रत्येकमसंख्यात्प्रवेशात्मकयोर्वर्मापमांस्त्रिकाययोरनन्तब्रीधानां तेभ्योऽप्यनन्तगुणपुत्रानां च कर्म समावेशः, एकस्य लोकाकाशस्य सर्वद्रव्यावकाशानां समावात्?, इति चेदुच्यते—

लोकाकाशस्यावकाशशक्तिर्नि महीयसी विस्फुणा चिन्तयितुमशक्या च, अत एव मगवता—“ मायर्षं सम्बद्ध्वामं नह ओगाइलन्स्वर्णं ” इत्युक्तम् ।

नमसोऽवकाशशक्तिं केवलालोकेनावकाशस्य सर्वद्रव्यावकाशापरत्वं मगवता प्रतिबोधितम् । महीयसी नमसोऽवकाशशक्तिं, सुकरोऽत्र सर्वद्रव्याणां समावेश इति तदाशयः ।

यथा—वतासानामशय मधुरद्रव्यं दुग्धपरिपूरितेऽपि भावने निहितं सत् और उन से भी अनन्तगुणे पुत्रकाका समावेश किस प्रकार हो सकता है? एक लोकाकाश समाप्त द्रव्यों को भगवाह दे सके, यह असम्भव है ।

समाधान—लोकाकाश की अवकाश देने की शक्ति महान् है, विस्फुग है, और अधिक्य है, इसीलिये तो मगवान् ने कहा है—“ मायर्षं सम्बद्ध्वामं नह ओगाइलन्स्वर्णं ” अवगाहलक्षण बाला आकाश सब द्रव्यों का आधार है ।

मगवान् ने अपने केन्द्रज्ञान में आकाश की अवगाहवामशक्ति को देखकर उसे सब द्रव्यों का आधार निरूपण किया है । मगवान् के कथन का अभिप्राय यही है कि आकाश की अवगाहशक्ति बहुत बड़ी है, उस में सब द्रव्यों का समावेश सरलता से हो जाता है ।

कैसे—रूप से परिपूर्ण पात्र में क्तासे डाल दिये व्यर्थ तो वे उसी में समाविष्ट हो द्रव्येणो अन्तानन्त ल्येनेणो अने तेनाथी पद्य अनन्तत्रयः पुद्गलैनेना समावेशेऽप्ये शीते कर्त्त शक्ते? अत्र द्योकाकाश समस्त द्रव्येणो अवगाह-अवकाश आधी शक्ते, अत्र अशक्यते

समाधान—दोकाकाशनी अवकाश आपनानी शक्ति भक्तान छे विस्फुक्त छे अने अचिन्त्य छे कोन्दा भाये लजवाने कहु छे—“ मायर्षं सम्बद्ध्वामं नह ओगाइलन्स्वर्णं ” अवगाहलक्षण अवगाहन-अवकाश आपनानी-शक्ति अने तेनाथी पद्य अनन्तत्रयः पुद्गलैनेना समावेशेऽप्ये शीते कर्त्त शक्ते? अत्र द्योकाकाश समस्त द्रव्येणो अवगाह-अवकाश आधी शक्ते, अत्र अशक्यते

अप्ये शीते रूपना परिपूर्ण पात्रभां पनासां नाजवानां आवे त्वां वे तेभा

तस्मिन् समाविशति । यथा वा भित्तौ शङ्कोः समावेशस्तथैवानन्तद्रव्याणां लोकाकाशे समावेश इति बोध्यम् ।

नन्वल्लोकाकाशस्य कथं सिद्धिः, नासौ हि द्रव्याणामाधारः, नाप्यवकाशदायित्वं तस्य?, इति चेत्, उच्यते—गतिस्थितिकारणयोर्धर्माधर्मयोरभावादेव तत्र विद्यमानापि द्रव्याधारताशक्तिरवकाशदानशक्तिश्च नाभिव्यक्ता भवति । तदस्वीकारे तु जीवद्रवानां कर्मनिगडविमुक्तसिद्धाना चोर्ध्वगतिविरामो न स्यात्, भगवत्प्रतिबोधितलोकालोकव्यवस्थाऽपि न तिष्ठेत्, एवं चागमयुक्तिप्रमाणाभ्यामल्लोकाकाशं सिद्धम् ।

जाते है, अथवा जैसे दीवाल में कील का समावेश हो जाता है उसी प्रकार लोकाकाश में अनन्त द्रव्यों का समावेश हो जाता है ।

शङ्का— अल्लोकाकाश की सिद्धि कैसे होती है ? न तो वह द्रव्यों का आधार है, न अवकाशदानरूप लक्षण ही उस में घटित होता है ?

समाधान—गति और स्थिति के कारण धर्म और अधर्मद्रव्य का अभाव होने के कारण ही अल्लोकाकाशकी द्रव्याधारता की शक्ति और अवकाशदानशक्ति प्रकट नहीं होती है । अगर अल्लोकाकाश न माना जाय तो जीवों और पुद्गलों की, तथा धर्मरूपी वेडी से मुक्त हुए सिद्ध जीवों की गति का अन्त हो न होगा, और भगवान् की कही हुई लोक अल्लोक की व्यवस्था भी कायम नहीं रहेगी । इस प्रकार आगम और युक्ति प्रमाणों से अल्लोकाकाश की सिद्धि होती है ।

(इधमा) समाविष्ट—अतोत्प्रोत थर्ध न्य छे, अथवा नेवी रीते हीवालमा डील—भीलीने। समावेश थर्ध न्य छे, ते प्रमाणे लोकाकाशमा अनन्त द्रव्येने। समावेश थर्ध न्य छे

शंका—अल्लोकाकाशनी सिद्धि केवी रीते होध शके ? ते द्रव्येने। आधार नहीं अने अवकाशदानरूप लक्षण तेनामा घटी शकतु नहीं

समाधान—गति अने स्थितिना कारण धर्म अने अधर्म द्रव्येने अभाव होवाना कारणे न अल्लोकाकाशनी द्रव्याधारतानी शक्ति अने अवकाशदान—शक्ति प्रकट थती नहीं अथवा अल्लोकाकाश मानवामा नहि आवे तो एवे। अने पुद्गलेनी, तथा कर्मरूपी मेडीथी मुक्त थयेला सिद्ध एवेनी गतिने। कथाय अनन्त—छेडे। न नहि आवे, अने भगवाने कहेली लोक—अल्लोकनी व्यवस्था पणु कायम नहि रहे अे प्रमाणे आगम अने युक्ति प्रमाणेथी अल्लोकाकाशनी सिद्धि थाय छे,

अन्यसकृद्रूप्यापेक्षया महत्परिमाणमाकाशस्य, अनन्तप्रदेशित्वात् ।  
तेनाकाशं महात्मन्स्वरूपम् ।

आकाशास्तिकायस्य (१)-अरूपित्वम्, (२)-अचेतनत्वम्, (३)-अक्रियत्वम्,  
(४)-अवगाह्यत्वमित्थं चेति गुणाः । (१)-स्कन्धः, (२)-देशः, (३)-प्रदेशः,  
(४)-अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-प्रदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा-द्रव्यत एक  
आकाशास्तिकायः, क्षेत्रतो लोकालोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहित, भावतो  
रूपरहितः-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति । शुद्धतोऽपकाशदायी ।

आकाश का प्रमाण अन्य सब द्रव्यों की अपेक्षा बड़ा है, क्योंकि यह अनन्तप्रदेशी  
है, अन्त आकाश महात्मन्स्वरूप है ।

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व, (३) अक्रियत्व (४) अवगाह्यत्वित्व ये  
आकाशास्तिकाय के गुण हैं । (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश तथा (४) अगुरुलघुत्व,  
उसके पर्याय हैं ।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुणके प्रदेसे आकाश द्रव्य पाँच प्रकार से जाना जाता  
है । जैसे द्रव्य से आकाशास्तिकाय एक है, क्षेत्र से लोकालोकप्रमाण है, काल से आदि-  
अन्त रहित है-भावसे अरूपी है, उस में वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श नहीं पाये जाते ।  
गुणसे अवकाश देने वाला है ।

आकाशतु परिमाणं धीमन् सव द्रव्यान्ती अपेक्षान्ने शोडु उ केभडे ते  
अनन्तप्रदेशी उ अेठवे के आकाश महात्मन्स्वरूप उ

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) अवगाह्यत्वित्व को  
आकाशास्तिकायना शुद्ध उ अने (१) स्कन्ध (२) देश, (३) प्रदेश, तथा अशुद्ध  
लघुत्व, तेना पर्याय उ

द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव अने शुद्धता सेइसी आकाश द्रव्य पाँच प्रकारकी  
अरूपी शक्य है, जेभडे-द्रव्यकी आकाशास्तिकाय अेठ उ क्षेत्रकी लोकालोकप्रमाण  
उ कालकी आदि-अन्तरहित उ भावकी अरूपी उ-तेमां वज्र, अथ, रस अने  
स्पर्श नहीं, शुद्धकी अवकाश आपनायाउ उ

## કાલનિરૂપણમ્—

તત્ર કાલશબ્દસ્ય વ્યુત્પત્તિઃ—

કલ્યતે=પરિચ્છિદ્યતે વસ્ત્વનેનેતિ કાલઃ । કરણે ઘઞ્ । ‘માસિકોઽયં વાલઃ, વાર્ષિકોઽયં વાલઃ, વાસન્તિકમિદ પુષ્પમ્ ’ ઇત્યાદિરૂપેણ વસ્તુનાં પરિચ્છેદો=નિર્ણયઃ કાલમાશ્રિત્ય ભવતિ ।

અથવા સ્વભાવતઃ પરિણમદ્વિઃ પદાર્થજાતૈઃ, કલ્યતે=ગમ્યતે=પ્રાપ્યતે નિમિત્તત્વેનાઽસૌ, ઇતિ કાલઃ । સકલવસ્તુપરિણતિહેતુઃ કાલ ઇત્યગ્રે વક્ષ્યતે ।

## કાલનિરૂપણ—

કાલ શબ્દ કી વ્યુત્પત્તિ—

જિસ કે દ્વારા વસ્તુ કલી જાય અર્થાત્ જાની જાય વહ કાલ હૈ । યહાં કરણમ્ ‘ઘઞ્’ પ્રત્યય હુઆ હૈ । યહ વાલક માસિક (એક માસકા) હૈ, યહ વાલક વાર્ષિક (વર્ષ ભરકા) હૈ, યહ ફૂલ વાસતિક (વસન્તઋતુસમ્બન્ધી હૈ, ઇસ રૂપમ્ વસ્તુઓ કા જ્ઞાન કાલ કે દ્વારા હી હોતા હૈ ।

અથવા સ્વભાવસે પરિણત હોને વાલે પદાર્થ સમૂહો દ્વારા નિમિત્ત રૂપમ્ જો પ્રાપ્ત કિયા જાય વહ કાલ કહલાતા હૈ । ‘કાલ, સમસ્ત વસ્તુઓ કે પરિણમન કા હેતુ હૈ યહ વાત આગે વતલાઈ જાયગી ।

## કાલનિરૂપણ—

કાલ શબ્દની વ્યુત્પત્તિ—

જેના દ્વારા વસ્તુ બાણી શકાય તે કાલ છે અહિ કારણમાં ‘ઘઞ્’ પ્રત્યય થયો છે “આ બાલક માસિક—એક માસનો છે, આ બાલક વાર્ષિક—એક વર્ષનો છે, આ ફૂલ વાસતિક—વસન્તઋતુસમ્બન્ધી છે” એ રૂપમાં વસ્તુઓના જ્ઞાન કાલ દ્વારા જ થાય છે

અથવા સ્વભાવથી પરિણત થવાવાળા પદાર્થસમૂહો દ્વારા નિમિત્તરૂપમાં જે પ્રાપ્ત કરી શકાય તે કાલ કહેવાય છે “કાલ સમસ્ત વસ્તુઓના પરિણમનનું કારણ છે” એ આગળ બતાવવામાં આવશે.

कालस्य सिद्धिः—

‘पदार्थाः सन्ति, मयमा पदार्था वर्तन्ते’ इति स्पन्दहारो वर्तनामूल ।  
 “अनुदासेतम ह्लादे”—रिति पाणिनिब्रह्मेण वृत्तपातोर्ध्वमस्ययः । वर्तनशीला  
 वर्तना । उत्पत्तिः, अप्रच्युतिः, विद्यमानत्वास्या वृत्तिः=क्रिया वर्तना । इयं  
 वर्तना सर्वेषु भावेषु विद्यते । वर्तना=पदार्थानां परिणामविशेषः । पदार्थानां वर्तना  
 रूप कार्ये नोपपद्यते विना कनचिभिर्मिषकारणेन, तस्मात् वर्तनारूपकार्योत्पत्तौ  
 यभिर्मिष धर्मद्रव्यमिष गतौ, स एव काल इत्युच्यते ।

काल की सिद्धि—

‘पदार्थ हैं या पदार्थ वर्त रहे हैं इस प्रकार के स्पन्दहार का कारण वर्तना है ।  
 ‘अनुदासेतम ह्लादे’ पाणिनि के इस सूत्र से ‘वृत्तु’ भाव से ‘वृष्’ प्रथम हुआ है ।  
 वर्तनशील हो उसे वर्तना कहते हैं । उत्पत्ति, अप्रच्युति और विद्यमानत्वरूप वृत्ति  
 अर्थात् क्रिया वर्तना कहलाती है । यह वर्तना सभी पदार्थों में विद्यमान है । यह पदार्थों का  
 विशेष परिणाम है । पदार्थों का वर्तनारूप काम किसी निमित्त कारण विना नहीं हो सकता  
 कत वर्तनारूप कार्यकी उत्पत्ति में जो निमित्त कारण है, वही काल-रूप है जैसे गति का  
 निमित्त कारण धर्म इन्द्र है ।

कालनी सिद्धि—

प्राथम्ये उ अथवा पदार्थे पत्त स्तेषु उ अने प्रकारान्त अवधारणु कालस्य  
 पत्तना उ अनुदासेतम ह्लादे पाणिनिना आ सूत्रधी ‘वृत्तु’ भावधी ‘वृष्’ प्रत्यय  
 धये उ अने वर्तनशील होय तेने पत्तना कहे उ उत्पत्ति अप्रच्युति, अने  
 विद्यमानत्वरूप वृत्ति अर्थात् क्रिया वर्तना कहेनाम उ वर्तना सर्व पदार्थीमां विद्यमान  
 उ ते पदार्थीनु विशेष परिणाम उ पदार्थीनु वर्तनारूप काम केरु निमित्त कारण  
 विना वर्ध शकतु नथी तेधी वर्तनारूप कार्यनी उत्पत्तिमा अने निमित्त कारण उ ते  
 काल रूप उ अनेही शीते गतिनु निमित्त कारण धर्म-रूप उ

## કાલસ્ય લક્ષણમ્—

સ્વભાવતો વિદ્યમાનાનાં પદાર્થાનાં યા વિદ્યમાનતાસ્થ્યા વર્તના, તા પ્રતિ સહકારિકારણત્વં કાલસ્ય લક્ષણમ્ ।

અનેનૈવાશયેન ભગવતાઽપ્યુક્તમ્—“વદૃણાલક્ષણો કાલો” ઇતિ, વર્તનાલક્ષણઃ કાલઃ, ઇતિ ળ્છાયા । વર્તના, લક્ષણં=કાર્યત્વેન પ્રત્યાયકં, યસ્ય સ વર્તનાલક્ષણઃ, વર્તનાકાર્યાનુમેયઃ કાલ ઇત્યર્થઃ । અત્ર વર્તનેત્યુપલક્ષણ પરિણામક્રિયા-પરત્વાપરત્વાદીનામ્ ।

પરિણામો હિ વસ્તૂનાં નોપપદ્યતે કારણ નિયામકમન્તરેણ, અન્યથા નિયામકહેત્વભાવે સર્વે ભાવા યુગપદુત્પદ્યેન્ । કિન્ચ—કારણમન્તરેણાપિ કાર્યોત્પત્તિઃ

## કાલ કા લક્ષણ—

સ્વભાવ સે વિદ્યમાન પદાર્થોં કી વિદ્યમાનતારૂપ જો વર્તના હૈ ઉસ મેં સહકારી કારણ હોના કાલ કા લક્ષણ હૈ, ઇસી અભિપ્રાય સે ભગવાન્ને મી કહા હૈ—“વદૃણાલક્ષણો કાલો” “કાલ વર્તનાલક્ષણ વાલો હૈ ।” વર્તના હૈ લક્ષણ અર્થાત્ જ્ઞાપક જિસ કા, અર્થાત્ વર્તનારૂપ કાર્ય સે જિસકા અનુમાન હોતા હૈ ઉસે કાલ કહતે હૈ । વહાં વર્તના ઉપલક્ષણ હૈ ઉસસે પરિણામ, ક્રિયા, પરત્વ, (પહેલાપન), ઓર અપરત્વ (પીછાપન) કા મી ગ્રહણ હો જાતા હૈ ।

નિયામક કારણકે અભાવ મેં પદાર્થોં કા પરિણમન નહીં હો સકતા, અગર એસા ન માના જાય તો સમી પદાર્થોં કી એક સાથ હી ઉત્પત્તિ હોને લગેગી । તથા કારણ કે વિના મી

## કાલનુ લક્ષણુ-

સ્વભાવથી વિદ્યમાન પદાર્થોંની વિદ્યમાનતારૂપ જે વર્તના છે, તેમા સહકારી કારણુ થવુ તે કાલનુ લક્ષણુ છે આ અભિપ્રાયથી ભગવાને પણ કહ્યુ છે—

“વદૃણાલક્ષણો કાલો” કાલ વર્તનાલક્ષણુ વાળો છે વર્તના છે લક્ષણુ અર્થાત્ જ્ઞાપક જેનુ, અર્થાત્ વર્તનારૂપ કાર્યથી જેનુ અનુમાન થાય છે તેને કાલ કહે છે વર્તના ઉપલક્ષણુ છે તેથી પરિણામ, ક્રિયા, પરત્વ (પહેલાપણુ) અને અપરત્વ (પાછાપણુ)નુ ગ્રહણુ થઈ જાય છે

નિયામક કારણુના અભાવમા પદાર્થનુ પરિણમન થતું નથી જે એવુ માનવામાં ન આવે તો સર્વ પદાર્થોંની એક સાથે જ ઉત્પત્તિ થઈ જશે, તથા કારણુ વિના પણ

प्रसज्येत, अपराधीनत्वात् परिष्णामानाम्, अत परिष्णामाः प्रतिनियतकालमाविन, तेषामनेकशक्तियुक्तमेकं कारणं कालास्पमित्यवश्यमङ्गीकरणीयम् ।

तास्ताम शक्तय स्वस्वकार्यकरणाय कालविशेष एव प्रवर्तन्ते, न सर्वदा, तादृशस्वभाववत्त्वात् । यथा-अङ्गुररूपेण परिणतस्य वनस्पतेर्मूल-काण्ड-त्वक्-पत्र-स्कन्ध-शस्ता-विटप-पुष्प-फलरूपा परिणामा न युगपद् भवन्ति । आसीदङ्गुरः, सप्तति स्कन्धवान्, ऐषमः पुष्पिष्यति' इति व्यवहारात् । यथा वा पुरुषस्य बाल-कुमार-युव-मध्यमाद्यवस्था-रूपाः, नव पुराण प्रकृष्टरूपाश्च परिणामा न युगपद् भवन्ति,

काय की उत्पत्ति का प्रसङ्ग उपस्थित होगा, क्योंकि परिणाम किसी कारण पर निर्भर तो हमें नहीं बिना कारण ही होगा लेकिन ऐसा नहीं होता परिणाम नियत समय पर ही होते हैं, अतः अनेक शक्तियाँ से युक्त एक काल नामक कारण अङ्गीकार करना चाहिए ।

वह अनेक शक्तियों अपना अपना कार्य करने के लिये क्रिया विशेष काल में ही उद्यत होती है, सर्वश नहीं क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है, जैसे कि-अङ्गुररूप से परिणत वनस्पति का मूल काण्ड त्वचा, पत्र, स्कन्ध, शाखा, विटप, पुष्प और फल रूप परिणमन एक साथ नहीं होते हैं । पृष्ठक अङ्गुर था, जब स्कन्धवास्य हो गया कुछ दिनों के बाद वह फूटेंगा इस प्रकार का लोकोप्यवहार प्रसिद्ध ही है । अथवा-जैसे पुरुष के वायु कुमार युवा मध्यम आदि अवस्था तथा

काय की उत्पत्तिने प्रसङ्ग उपस्थित थये. केभके परिव्याम केअं पर निवार रडेरी नकि, विना कारणे न थये, परन्तु जेवी शीते होय नकि. परिव्याम नियत समय पर न होय छे, जेटला भाटे जनेके शक्तिज्योधी युक्त जेके काल नामनु कारण अङ्गीकार करु जेधजे.

ते जनेके शक्तिज्यो पीत-पीतानु कार्य करवा भाटे केअं विशेष कालमां न उद्यत-प्रकृतित्वात् एव छे सवदा यती नथी. केभके तेनेः स्वभाव न जेवे छे जेभके-अङ्गुररूपधी परिव्यव वनस्पतितुं मूल, काण्ड-काण्डी, छात, पत्र स्कन्ध, शाखा, विटप-काण्डी, पुष्प, फलरूप परिव्यमन जेके साथे बदा नथी प्रथम अङ्गुर अतु पथी स्कन्धकाण्डी धनु जने जेटलाके दिवसे पथी ते कृत्ये जे प्रभाजे लोकव्यवहार पय प्रसिद्ध न छे अथवा जेवी शीते पुत्रुपने व्याय, कुमार युवा, मध्यम आदि अवस्था, तथा नवापयु जने अनुपपयु जने प्रकृष्ट-नाथरूप परिव्यमन जेके साथे अतु नथी जेटला भाटे समस्त परिव्यमनु निवामके निमित्त

तस्मात्सर्वेषा परिणामानां नियामक निमित्तकारण काल इति सिद्धम् । यथा कर्तरी वस्त्रकृन्तने निमित्तकारणं तथा द्रव्याणा पर्याये निमित्तकारण कालः ।

क्रिया=द्रव्यपरिणामः । तस्या अपि नियामक निमित्तकारणं कालः । यथा—‘आकाशदेशे-अङ्गुलिस्ति, आसीत्, भविष्यति च’ इत्ययं व्यवहारः काल-मवलम्ब्य संपद्यते, कालस्यासत्त्वे त्वतीत एव वर्तमानोऽनागतश्च स्यात्, क्रिया-नियामकाभावात्, एवमतीतादिविभागाभावे व्यवहारोच्छेदापत्तिः, तस्मात् “अस्ति कालः यमाश्रित्यातीतादिव्यवहाराः सुस्पष्टं प्रसिध्यन्ति” इति, मन्तव्यम् ।

नयापन, पुरानापन, और प्रनष्टरूप परिणमन एक साथ नहीं होते हे, अत एव समस्त परिणामों का नियामक निमित्त कारण काल ही सिद्ध होता है । जैसे कैंची वस्त्र काटने में निमित्त कारण होती है, उसी प्रकार द्रव्यों के परिणमन में काल निमित्त कारण होता है ।

क्रिया द्रव्य का परिणामविशेष है । उसका निमित्त कारण भी काल ही है । जैसे ‘आकाश में अगुली है, थी और होगी’ इस प्रकार का व्यवहार काल के आश्रित है । काल की सत्ता न मानी जाय तो अतीत ही वर्तमान और अनागत ( भविष्य ) हो जायगा, क्योंकि क्रिया का कोई नियामक नहीं है । इस प्रकार अतीत आदि कालों का विभाग न रहने से व्यवहार का लोप हो जायगा, अत “काल अवश्य है, जिस के सहारे अतीत आदि के व्यवहार स्पष्ट रूप से सिद्ध होते हैं” ऐसा मानना ही समुचित है ।

कारण काल न सिद्ध थाय छे जेभके कातर, वस्त्रने कापवामा निमित्त कारण थाय छे, ते प्रमाणे द्रव्योना परिणमनमा काल निमित्त कारण थाय छे.

क्रिया ये द्रव्यनु परिणाम विशेष छे तेनु निमित्त कारण पणु काल न छे जेभ ‘आकाशमा आगणी छे, हुती अने हुशे’ आ प्रकारने व्यवहार कालने आश्रित छे कालनी सत्ता न मानवामा आवे तो अतीत-भूतकाल न वर्तमान अने भविष्य काल थर्ध नशे, जेभके क्रियाने नियामक कोर्ध नथी, आ प्रमाणे अतीत भूतकाल आदि कालोने विभाग नहि रहेवाथी व्यवहारने लोप थर्ध नशे. अटला भाटे “काल अवश्य छे, जेनी सहायताथी भूतकाल आदिने व्यवहार स्पष्टरूपथी सिद्ध थाय छे” जेभ मानवु ते न योग्य छे



प्रतिदिनसमुपमयकालिकसकलषस्त्रपात्रादिप्रतिष्ठेसन, प्रत्यहोरात्रसमुपमयकालिक माषस्त्रकं, कतुष्कालिकं स्वाध्यायकरण मुनीनां कृतव्यतया मगवतोपदिष्ट, तत्र काष्ठस्यासस्ये तद्विभागप्रानामावेन यथाकालमनुष्ठानुमद्यस्य मुनिभिरिति शास्त्रानर्थव्यपमापद्येत ।

मिक्षायमकालस्वर्जनपूर्वककालानुरोधेन निष्क्रमप्रतिक्रमकृतव्यता मगवत्स्वरूपिता एहीतप्रव्रज्यानां मिश्रणां नष्टमाया स्यात् ।

प्रतिदिन दोनो बल समस्त बल पात्र आदि का प्रतिष्ठेसन करना प्रत्येक दिन और रात्रि के अन्त में आवश्यक करना चौकालीन स्वाध्याय करना मगवान्ने मुनियों का कृतव्य कृतकामा है। अगर कलत्रस्य की सण न मानी जाय तो दिन रात आदि के भेद का पता ही नहीं चलेगा और समय पर उक्त सब काय नहीं किये जा सकेंगे। इसी अवस्था में शास्त्रों का यह उपदेश निरर्थक हो जायगा।

“अकाल का आग कर के समुचित समय पर मुनियों को भिक्षा के लिए जाना और जाना चाहिए मगवान् ने मुनियों का यह कृतव्य कृतकामा है, कलत्रस्य न मानने पर यह सब कृतव्य और उक्तका उपदेश भी नष्टप्राय हो जायगा।

प्रतिदिन अन्ने वापत समस्त-तन्नाम वस्त्र, पात्र आदितु प्रतिष्ठेसन करवुं, प्रत्येक दिवस अन्ने सत्रिन्ना अन्तर्भां आपवस्त्र करवुं, चौकालीन-आशेष काल स्वाध्याय कस्ये। ते अजवाने मुनिज्जोतु कर्तव्य जताञ्चु छे अजर कालत्रव्यनी सत्ता नदि भाणे तो दिवस रात वजेरे सेइने पत्तो मजारी नदि, अने समय पर आजण इडेसां धवं कार्यो करी सत्तारी नदि जेवी अवस्थाभां शास्त्रोने जे उपदेश निरर्थक छई ज्ये।

“अकालने-त्वाज करीने धीव्य समय पर मुनिज्जोने भिक्षाने माटे जतुं-आवतुं जेष्ठजे” अजवाने मुनिज्जोतु जे कर्तव्य कर्तुं छे कालत्रव्यने नदि मानवामां आवे तो जा सर्व कर्तव्य अने तेमने उपदेश पवुं नष्टप्राय छई ज्ये।

કિન્ચ—ગ્રીષ્માદિપુ સંયતાનામતાપનાદયો ધર્માઃ ભગવદુક્તાઃ કાલસત્ત્વ  
 એવોપદ્યન્તે । અન્યથા ગ્રીષ્માદિકૃતુજ્ઞાનાભાવાદ્ ભગવદુપદિષ્ટક્રિયાહાનિઃ પ્રસજ્યેત ।

एवं च वर्तना, परिणामः, क्रियाश्च द्रव्यस्वभावाः कालमाश्रित्य भवन्तीति  
 निरूपितम् ।

પરાપરવ્યતિકરજ્ઞાનમપિ કાલેનૈવ સપદ્યતે । વિપ્રકૃષ્ટઃ કનિષ્ઠપર્યાયો મુનિઃ  
 ક્ષેત્રેણ પરોઽપિ કાલેનાપરઃ, સંનિકૃષ્ટો જ્યેષ્ઠપર્યાયો મુનિઃ ક્ષેત્રેણાપરોઽપિ

इसके अतिरिक्त ग्रीष्म आदि ऋतुओं में सावुओं के लिये भगवान्‌ने आतापना  
 आदि धर्मोंका उपदेश दिया है, काल के होने पर ही यह उपदेश बन सकता है ।  
 काल के अभाव में ग्रीष्म ऋतु का ही ज्ञान नहीं होगा और भगवान्‌ द्वारा उपदिष्ट क्रिया  
 की हानि हो जायगी ।

यहा तक यह बतलाया जा चुका कि वर्तना, परिणाम और क्रिया, जो कि द्रव्य  
 के स्वभाव हैं, काल के सहारे ही होते हैं ।

પરત્વ ઓર અપરત્વ કા મિલા—જુલા સા જ્ઞાન મી કાલ દ્વારા હી હોતા  
 है । दूरवर्ती छोटीदीक्षापर्यायवाला मुनि दूर होने के कारण क्षेत्र से पर होने  
 पर भी ( दीक्षा में छोटा होने के कारण ) काल से अपर कहलाता है । समीपवर्ती  
 है, मगर ज्येष्ठदीक्षापर्यायवाला मुनि क्षेत्र से अपर होने पर भी काल से पर  
 कहलाता है । यहाँ 'पर' भी 'अपर' हो गया है और 'अपर' भी 'पर' बना गया है ।

તે સિવાય ગ્રીષ્મ આદિ ઋતુઓમા સાધુઓ માટે ભગવાને આતાપના આદિ  
 ધર્મોના ઉપદેશ આપ્યો છે, કાલ દ્રવ્યને માનવામા આવે તો જ, અથવા કાલ દ્રવ્ય  
 હોય તો જ એ ઉપદેશ ઘટી શકે છે કાલના અભાવમા ગ્રીષ્મ ઋતુનું જ્ઞાન થશે  
 નહિ, અને ભગવાને કહેલી ક્રિયાની હાનિ થઈ જશે

અહિ સુધી બતાવી ચૂક્યા કે વર્તના, પરિણામ અને ક્રિયા, જે કે દ્રવ્યનો  
 સ્વભાવ છે, કાલની સહાયતાથી જ થાય છે

પરત્વ અને અપરત્વનું મિલા—જુલા જેવું જ્ઞાન પણ કાલદ્વારા જ  
 થાય છે. દૂરવર્તી, નાની દીક્ષા-પર્યાયવાળા મુનિ દૂર હોવાના કારણે ક્ષેત્રથી પર હોવા  
 છતાં પણ (દીક્ષામા નાના હોવાના કારણે) કાલથી અપર કહેવાય છે, સમીપવર્તી છે  
 પણ જ્યેષ્ઠ-મોટીદીક્ષાપર્યાયવાળા મુનિ ક્ષેત્રથી અપર હોવા છતાં પણ કાલથી પર કહેવાય  
 છે અહિ 'પર' પણ 'અપર' થઈ ગયો છે અને 'અપર' પણ 'પર' બની ગયો છે

कालेन पर इत्युच्यते । अत्र परस्यापरत्वम् ; अपरस्य परत्वमिति परापरव्यति  
करः X कारणं विना न संभवति, यदत्र कारणं स एव कालः ।

यौगपद्यायौगपद्यक्त्यपेनापि कास्त्रव्यस्यास्तित्वं सिध्यति । 'माभ्यां  
युगपद्भीतो हृष्टिवाद्' 'एभिस्तु मुनिभिर्युगपत् पठिता द्वादशाङ्गी' इति वाक्य  
तोऽध्ययनगतयौगपद्यायौगपद्यमसीतौ कालमन्तरेभान्यभिमितं नोपलभ्यते, यत्र  
निमित्तं स कालः ।

X 'परत्परविषयगतं व्यतिकर' ।

पर और अपरका यह व्यतिकर+ कारण के बिना संभव नहीं है, बस एव इस  
व्यतिकर में जो कारण है वस वही काल है ।

यौगपद्य (एक साथ) और अयौगपद्य (आगे-पीछे) का जो ज्ञान  
होता है उस से भी कास्त्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है । 'इन दोनों मुनियोंने  
एक साथ हृष्टिवाद् का अभ्यसन किया' और 'इन मुनियोंने बारह अक्षर एक साथ नहीं  
पढ़े—आगे पीछे पढ़े हैं'—इस वाक्य से यौगपद्य और अयौगपद्य का—एक साथ का  
और आगे पीछे का—जो ज्ञान होता है उसमें काल के अस्तित्व के सिद्धाय और कोई  
कारण नहीं पाया जाता । जो कारण है वही काल है ।

+ 'परत्परविषयगतं व्यतिकर' अर्थात् एक का विषय दूसरे में क्या जाना  
व्यतिकर कहलाता है जैसे—पर का अपर हो जाना और अपर का पर हा जाना ।

पर जाने अपरनां के व्यतिकरक कारण बिना संभव नहीं, तेषां के  
व्यतिकरनां के कारण छे अथ तेज हाण छे

यौगपद्य—जोह साथे जाने अयौगपद्य—आजण—पाछणतु के ज्ञान बाध छे,  
तेमा पद्य हावइअतु अस्तित्व सिद्ध बाध छे. "जे जने मुनियोंके जोह साथे  
हृष्टिवाइतु अभ्यसन क्यु" जने "जे मुनियोंके आर अजितु जोह साथे अभ्यसन  
क्यु" नहीं—आजण—पाछण अभ्यसन क्यु" छे" आ वाक्यधी यौगपद्य जाने  
अयौगपद्यतु—जोह साथेतु जने आजण पाछणतु के ज्ञान बाध छे तेमां हाव बिना  
जीतु हाई कारण होजातु नहीं. के कारण छे तेज हाण छे

+परत्परविषयगतं व्यतिकर" अर्थात्—जोकेना विषय जीकनां आस्थी जय  
ते व्यतिकर कहेबाध छे. जेनी शीते—परतु अपर अर्थात्पु जने अपरतु पर अर्थात्पु  
म आ.-२२

चिरक्षिप्रप्रत्ययोऽपि कालमासाद्यैव जागर्ति । यथा—‘अनेन महात्मना चिरं तपश्चरितम्, गजसुकुमालेन क्षिप्रमात्मकल्याणं कृतम्’ इत्यादिवाक्यैस्तपश्चरणकल्याणसाधनादीनां विलम्बाविलम्बप्रतीतिः कालाभावे सति नोपपद्येत ।

एष श्वोऽद्य परश्वः—इत्यादयः कालामिधायिनः शब्दाः कालाख्यमर्थं गमयन्ति । सर्वज्ञेन भगवतोच्चारितत्वादिमे शब्दा यथार्थवस्तुबोधकाः रूपशब्दवद् असमस्तपदत्वात्, शुद्धैकपदत्वाच्च प्रसिद्धं सद्भूतमर्थमावेदयन्ति कालशब्दादयः ।

वर्तनाहेतुत्वा-ऽस्तित्व-ज्ञेयत्वादिगुणाश्रयतया, अतीतानागतवर्तमानादिपर्या

जल्दी और देर का जान भी काल के कारण ही होता है, जैसे—“इस महात्मा ने चिरकाल तक तप किया, गजसुकुमाल मुनिने ग्रीत्र ही आत्मकल्याण कर लिया ।” इत्यादि वाक्यों से तपश्चरण और कल्याण—साधन आदि में विलम्ब और अविलम्ब का जान काल के अभाव में नहीं हो सकता ।

‘कल, आज, परसों’ इत्यादि कालवाचक शब्द भी कालनामक द्रव्य को प्रकट करते हैं । सर्वज्ञ भगवान् के द्वारा उच्चारण किये हुए ये काल आदि शब्द वास्तविक वस्तु के बोधक हैं, क्योंकि यह समासरहित पद हैं और शुद्ध एक पद हैं । जो पद समासरहित और शुद्ध एक पद होते हैं वे वास्तविक पदार्थ के ही बोधक होते हैं, जैसे रूप आदि ।

वर्तनाहेतुत्व, अस्तित्व, ज्ञेयत्व, आदि गुणा का आधार होने से, तथा अतीत, अनागत ( भविष्यत् ) और वर्तमान आदि पर्यायों का आश्रय होने से काल का

जल्दी—तुरत अने हीलतु ज्ञान पषु कालना कारणुथी न थाय छे जेम—“आ महात्माये लाभा समय सुधी तप कथु”, गजसुकुमाल मुनिने तुरतमा आत्मकल्याण करी लीधु ” इत्यादि वाक्योथी तपश्चरण अने कल्याणसाधन वगेरेमा विलम्ब अने अविलम्बतु ज्ञान कालना अभावमा थर्ध शकरो नहि

‘गर्ध काल, आवती काल, आज, परम दिवसे,’ इत्यादि कालवाचक शब्द पषु काल नामना द्रव्यने प्रगट करे छे, सर्वज्ञ भगवान् द्वारा कहेवाभा आवेला अे काल आदि शब्द वास्तविक वस्तुना बोधक छे, केमके अे समासरहित पद छे अने शुद्ध अेक पद छे जे पद समासरहित अने शुद्ध अेक पद होय छे, ते वास्तविक पदार्थना न् बोधक होय छे जेम रूप आदि

वर्तनाहेतुत्व, अस्तित्व, ज्ञेयत्व आदि गुणोना आधार होवाथी, तथा भूतकाल, भविष्यकाल अने वर्तमानकाल आदि पर्यायोना आश्रय होवाथी कालतु द्रव्यपषु

याधक्तया च तस्य द्रव्यत्वं सिद्धयति, तस्मात् 'पष्टं द्रव्यं कालः' इति युक्त्योप  
पर्या च सिद्धम् ।

भागमोऽप्यत्र प्रमाणमिति चक्षुरुच्चाट्य पश्य—

“कइ ण भवे ! दग्धा पण्यत्ता ?, गोयमा छ दग्धा पण्यत्ता, त जहा  
धम्मत्थिकाए, अयम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए,  
अद्दासमए,” इति ।

कति बहु भवन्त ! द्रव्याणि प्रकृतानि ?, गौतम ! पइ द्रव्याणि प्रकृतानि,  
तानि यथा-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः,  
जीवास्तिकायः, अद्दासमय । इति च्छाया ।

‘कइविहा ण भवे ! सक्खदग्धा पण्यत्ता ?, गोयमा ! छन्निहा सम्बदग्धा  
पण्यत्ता, तंजहा-धम्मत्थिकाए, जाव अद्दासमए’ इति । (मगघती पृ० २५, उ० ४)

द्रव्यम सिद्ध होता है अतएव युक्ति तथा उपपत्ति से कालनामक छटा द्रव्य  
सिद्ध हुआ ।

भांस लोख कर देलो इस विषय में भागम-प्रमाण भी विद्यमान है—

“कइ ण भवे ! दग्धा पण्यत्ता ! गोयमा ! छ दग्धा पण्यत्ता, तंजहा  
धम्मत्थिकाए, अयम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए,  
अद्दासमए ।”

सिद्ध भाय छे छोटला कारखुथी युक्ति तथा उपपत्ति (पुत्रवा-प्रमाण)भी भास  
याभनु छहु द्रव्य सिद्ध भाय छे

आम उपादीने लुब्धो अ विषयमा आमम-प्रमाण पय विद्यमान छे—

“कइ ण भवे ! दग्धा पण्यत्ता ?, गोयमा ! छ दग्धा पण्यत्ता, तंजहा  
धम्मत्थिकाए, अयम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्दासमए ।

अर्थात्- जगवन द्रव्य केटलां छे ? गौतम ! द्रव्य छ छे-धर्मास्तिकाय,  
अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय लुब्धास्तिकाय अने अद्दासमय  
अर्थात् भास

तथा— कइविहा ण भवे ! सक्खदग्धा पण्यत्ता ? गोयमा ! छन्निहा सम्बदग्धा  
पण्यत्ता, तंजहा-धम्मत्थिकाए अयम्मत्थिकाए, जाव अद्दासमए ।”

कतिविधानि खलु भदन्त ! सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम !  
षड्विधानि सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा-धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः,  
यावत्-अद्धासमयः, इति च्छाया ।

“ धम्मो अधम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं ।

अणताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो ” ॥८॥ ( उक्त० अ० २८ )

धर्मोऽधर्मः आकाशः, द्रव्यमेकैकमाख्यातम्

अनन्तानि च द्रव्याणि, कालः पुद्गला जन्तवः । इति च्छाया ।

कालस्य स्वरूपम्—

अर्धतृतीयद्वीपव्यापी, निर्विभागोऽनाद्यपर्यवसितः,

एकोवर्तमानः समयः कालपदार्थः । एकत्वादेवास्तिकायो नायम् ।

अर्थात्—‘भगवन् ! सब द्रव्य कितने हैं?’ ‘गौतम ! सब द्रव्य छह है—  
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यावत् अद्धा-समय’ ( भगवतीसूत्र श २५ उ ४ )

उत्तराध्ययन सूत्र ( अ २८ ) में भी कहा है— ‘धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य  
एक एक कहे गये हैं । काल, पुद्गल और जीव अनन्त-अनन्त है ’ इति ।

काल का स्वरूप—

समयक्षेत्रव्यापी, निर्विभाग, आद्यन्तरहित, एकप्रदेशरूप वर्तमान समय को  
‘काल’ कहते हैं । यह एक होने के कारण अस्तिकाय नहीं है ।

अर्थात्—‘भगवन् ! सर्व द्रव्य डेटला छे ? गौतम ! सर्व द्रव्य छ छे-धर्मास्तिकाय  
अधर्मास्तिकाय यावत् अद्धासमय’ ( भगवती श २५. उ ४ ) उत्तराध्ययनसूत्र  
( अ २८ ) भा पणु कलु छे-धर्म, अधर्म, अने आकाश द्रव्य अेक अेक कलु छे,  
काल, पुद्गल अने एव अनन्त-अनन्त छे

कालस्य स्वरूपम्—

समयक्षेत्र (अर्धद्वीप) व्यापी, निर्विभाग (जेना भाग न पडे तेषु), आद्यन्त-  
रहित, अेकप्रदेशरूप वर्तमान समयने काल कहे छे, आ अेक होवाना कारणथी  
‘अस्तिकाय’ नहीं.

सूर्यचन्द्रादिव्योतिष्काणां गतिमाभित्य कालविभागो भवति, गतिषु मनुष्यलोकाभ्यन्तर एव तेषाम् । दिवसरात्रिभ्योऽर्धपक्षमासशुक्लचतुर्थ्याद्युगादीनां विभागः सूर्यादिसूर्येण लोके भवति । एवमतीतवर्तमानादयो विभागाः । यस्तु संख्यातुमशक्य उपमानमात्रावगम्य कालः सोऽसंख्येयः, यथा-पद्मोपम, सागरोपम इत्यादि । असंख्येयादिकालज्ञानमपि भगवता मनुष्यलोकाभ्यन्तरोपमानमदर्शनेन प्ररूपितम् ।

सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्कां की गति का आभयण कर काल का विभाग होता है । सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्का की गति मनुष्यलोक के अन्दर में ही होती है । दिन, रात शुद्ध पक्ष मास, ऋतु, जयन वर्ष युग आदि का विभाग सूर्य आदि की गति से ही लोक में होता है । इसी प्रकार अतीत, वर्तमान आदिका विभाग भी समझना चाहिये । किसी संख्या नहीं हो सकती, जो उपमान मात्र से गम्य है, वह काल असंख्येय है, जैसे—पद्मोपम सागरोपम इत्यादि । असंख्येय आदि काल का ज्ञान भी मनुष्यलोकाभ्यन्तरोपमान का प्रदर्शन करके भगवान् ने प्ररूपित किया है, समस्त आदिका आदि सूक्ष्म काल तो सूर्यादिव्योतिष्का की गति से नहीं जाना जाता है, क्या कि वह अति सूक्ष्म है । इस लिये कालका व्यवहार समयक्षेत्र के भीतर ही होता है । समयक्षेत्र के बाहर जीवा के आयुष्य आदि की गमना मनुष्यलोकाभ्यन्तरोपमान से ही होती है ।

सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्केऽनी जतिना आभयणी कालने विभाग आद्ये उ सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्केऽनी जति मनुष्य लोकां व लोक उ दिन रात, शुद्ध, पक्ष, मास ऋतु, जयन, वर्ष युग आदिना विभाग सूर्य आदिनी जतिषी व लोकां आद्ये उ आ प्रकारे अतीत (भूतकाल) वर्तमान आदिना विभाग पद्य समञ्जस लोके, जेनी जद्यतरी न यथै शकं जे उपमान मात्रां अग्य (समल शक्य तेषु ) उ ते काल असंख्येय उ जे भडे—पद्मोपम सागरोपम इत्यादि असंख्येय आदि कालनु ज्ञान पद्य जगज्जने मनुष्यलोकाभ्यन्तरोपमाननु प्रदर्शन करी प्ररूपित भुं उ समस्त, आदिका आदि सूक्ष्म काल तो सूर्यादिव्योतिष्केऽनी जतिषां पद्य लक्ष्मी शक्य नथी, जे भडे ते अति सूक्ष्म उ अथी कालने व्यवहार समक्षेत्र-अती हीजनी आदर व भाव उ समक्षेत्रधी अदर लोकेना आयुष्य आदिनी जद्यना भाव उ ते मनुष्यलोकाभ्यन्तरोपमानधी व भाव उ जे म समल वेनु

સમયાવલિકાદિમુક્ષ્મકાલસ્તુ સૂર્યાદિજ્યોતિષ્કાળાં ગત્યા નાવગમ્યઃ, અતિમુક્ષ્મત્વાત્ । તસ્માત્ કાલવ્યવહારોઽર્ધતૃતીયદ્વીપ એવ્ । અર્ધતૃતીયદ્વીપાદ્રદિ-ર્જીવાનામાયુષ્કાદિગણના તુ મનુષ્યક્ષેત્રપ્રસિદ્ધપ્રમાણેનૈવ ભવતીતિ જ્ઞેયમ્ ।

एकोऽपि कालोऽतीतानागतपर्यायभेदैरनन्तः, अत एव भगवता—“अणताणि य द्रवाणि कालो पुगल जंतवो” इत्युपदिष्टम् । वर्तमानसमयस्य तु पर्यायत्वेऽपि नानन्त्यम्, एकरूपत्वात् ।

निश्चयनयेन तु “लोकव्यापी कालः” इत्यवसीयते, अत एव भगवता—“धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुगल जंतवो । एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं” । इत्यभिहितम् । धर्मोऽधर्म आकाशः कालः पुद्गला जन्तवः । एष लोक इति प्रज्ञप्तः, जिनर्वरदर्शिभिः । इति न्छाया ।

કાલ યથાપિ એક હી છે, તો મી વહ મૂત-ભવિષ્યત્પર્યાય ભેદ સે અનન્ત હૈ, ઇસીલિયે ભગવાને કહા છે—‘અણતાણિ ય દ્રવ્વાણિ કાલો પુગલ જંતવો’ ઇતિ ।—કાલ, પુદ્ગલ ઓર જીવ, યે સમી અનન્ત હૈ । વર્તમાન સમય પર્યાયસહિત હોતે હુણ મી અનન્ત નહીં હૈ, ક્યોકિ વહ એક હી હૈ ।

निश्चयनय से तो काल लोकव्यापी माना जाता है, अतएव भगवानने कहा है—

“धम्मो अधम्मो आगास, कालो पुगल जंतवो ।

एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं” ॥ १ ॥

જે કે કાલ એક જ છે તેા પશુ ભૂત ભવિષ્યના ભેદથી અનન્ત છે, તેથી ભગવાને કહ્યું છે—‘અણતાણિ ય દ્રવ્વાણિ કાલો પુગલ જંતવો’ ઇતિ, કાલ પુદ્ગલ અને જીવ એ ત્રણે અનન્ત છે વર્તમાન સમય પર્યાયસહિત હોવા છતાં પશુ અનન્ત નથી કેમકે તે એક જ છે

निश्चयनयથી તેા કાલ લોકવ્યાપી માનવામા આવે છે આથી ભગવાને કહ્યું છે કે—“ ધમ્મો અધમ્મો આગાસં કાલો પુગલ જંતવો ।

एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं” ॥

વરદર્શિ-લોકલોકને જોવાવાળા જિન ભગવાને ‘ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકારાસ્તિકાય, કાલ, પુદ્ગલાસ્તિકાય અને જીવાસ્તિકાય, એજ લોક છે’ એમ કહ્યું છે



एष सामान्यरूपेण प्रसिद्धो लोकाः-अनन्तरोक्तद्रव्यपदसमुदायरूप इति भाव ।

कालस्य—(१)-अरूपित्वम्, (२)-अचेतनत्वम्, (३)-अक्रियत्वम्, (४)-वर्तनाहेतुत्वं चेति गुणाः । (१)-अतीतत्वम्, अनागतत्वम्, (२)-वर्तमानत्वम्, (३)-अगुरुत्वम् चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्यसप्तकालमावगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते । यथा-द्रव्यत एकः काल क्षेत्रतः-अतीततीयद्वीपप्रमाणः, कालतः-आद्यन्तरहितः, मासतः-अरूपी-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जित इति, गुणतः-वर्तनालक्षणः, इति ।

वस्तुतः-सोकास्येक को तेस्सन्वासे त्रिन भगवानने धर्मास्तिकाय लभसास्तिकाय माकासास्तिकाय काल पुत्रस्मस्तिकाय और बीभास्तिकाय इन सबको अर्थात् इनके समुदाय को सोक कहा है ।

उपनिर्दिष्ट छ द्रव्या के समुदाय को भगवानने सामान्यतया सोक कहा है ।

काल के-अरूपित्व अचेतनत्व अक्रियत्व वर्तनाहेतुत्व ये चार गुण हैं । अतीतत्व अनगतत्व वर्तमानत्व, अगुरुत्व ये चार पर्याय हैं ।

यह काल-द्रव्य क्षेत्र काल मास और गुण के क्षेत्र से पांच प्रकार से जाना जाता है । जैसे-द्रव्य से काल एक है, क्षेत्र से समयक्षेत्रमाप्यमासा काल से आद्यन्तरहित भाव से अरूपी, अर्थात् वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित और गुण से वर्तनालक्षणवाक्य है ।

उपर द्शानेला छ द्रव्योना समुदायने लखवाने सामान्य शीते लोक इहेल छ भागना-अरूपित्व, अचेतनत्व, अक्रियत्व अने वर्तनाहेतुत्व, जे चार सुख छ जने अतीतत्व अनागतत्व वर्तमानत्व तथा अगुरुत्व जे चार पर्याय छ

आ भाग-द्रव्य क्षेत्र भाग भाव जने सुखना जेदधी पांच प्रकारे ज्ञाय छ जेमेके-द्रव्यधी भाग जेके क्षेत्रधी अतीतीय प्रमास्य भावधी आद्यन्तरहित, भावधी अरूपी-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित छ अने सुखधी वर्तनालक्षणवाक्ये छ

अथ पुद्गलास्तिकायः ।

तत्र—पुद्गलशब्दार्थः ।

पूर्यते=संहन्यते—परस्परं संयुज्य संघीभूय नूतनघनघटावदेकीभवति, गलति च=विच्छिन्नमुक्तावलीमणिवद् विकीर्णो भवति—इति पुद्गलः । पूरण—गलन—धर्म इत्यर्थः । पुद्गलश्चासावस्तिकायश्चेति पुद्गलास्तिकायः ।

पुद्गलास्तिकायस्य घटादिकार्यान्यथानुपपत्तेः प्रत्यक्षदर्शनाच्च सत्ता सिद्धैव ।

पुद्गलास्तिकाय—

‘पुद्गल’ शब्द का अर्थ—

आपस में मिलकर इकट्ठे होकर नवीन घटघटादि के रूप में जो एकमेक हो जाते हैं, और जो गल जाते हैं अर्थात् टूटी हुई मोतियों की माला की भाँति बिखर जाते हैं, वे पुद्गल कहलाते हैं । तात्पर्य यह है कि—जिसमें पूरण और गलन धर्म हों वह पुद्गल है, पुद्गलरूप अस्तिकाय ‘पुद्गलास्तिकाय’ कहलाता है ।

अगर ‘पुद्गलास्तिकाय’ न होता तो घट आदि कार्य नहीं बन सकते थे । इस कारण, तथा प्रत्यक्ष दिखाई देने के कारण भी पुद्गलास्तिकाय की सत्ता भलीभाँति सिद्ध है ।

पुद्गलास्तिकाय—

पुद्गल शब्दको अर्थ—

परस्पर भंगीने ओकत्र धर्धने नवीन घन-घटादिना रूपमा न्ने ओक-मेक धर्ध न्य छे, अने न्ने गणी न्य छे अर्थात् तुटी गओली मोतीओनी भाणा प्रभाण्णे विभाध न्य छे, ते पुद्गल कडेवाय छे तात्पर्य ओ छे के-नेमा पूरण्ण अने गालन धर्म होय ते पुद्गल छे, पुद्गलरूप अस्तिकाय ते पुद्गलास्तिकाय कडेवाय छे

अगर पुद्गलास्तिकाय न होत तो घट आदि कार्य अनि शकत नहि आ कारण्णी, तथा प्रत्यक्ष हेभी शकय छे ते कारण्णी पण्ण पुद्गलास्तिकायनी सत्ता इडी नीते सिद्ध छे.

पुद्गलसम्बन्धम्—

रूपवत्त्वं पुद्गलानां लक्षणम्, अत्र रूपं मूर्तत्ववर्णादिकम् । यद्यपि परमाणुमसृतयः सूक्ष्माः पुद्गलास्तेषां गुणाभातीन्द्रियतया नेन्द्रियैश्चान्ते तथापि वादरत्नकरूपे परिणामविशेषे तेषामेवेन्द्रियप्राप्ततया रूपवत्त्व प्रतीयते ।

अतीन्द्रिये परमाणुमसृतिपुद्गलेऽतीन्द्रिये धर्मास्तिकायादीं वैदानाम् विशेषः— धर्मास्तिकायादीनामिन्द्रियविषयत्वामावाहतीन्द्रियत्वपरूपित्वं च, परमाणुमसृतिपुद्गलानां त्वतीन्द्रियत्वेऽपि रूपित्वमिति ।

पुद्गल का लक्षणम्—

पुद्गलकोश लक्षण 'रूपवत्त्व' है । जिस में रूप, रस गन्ध और स्पर्श पाया जाय अर्थात् जो मूर्तिका हो वह पुद्गल है । यद्यपि परमाणु आदि पुद्गल बहुत सूक्ष्म हैं, और अतीन्द्रिय होने के कारण उनके गुण इन्द्रियों द्वारा नहीं ग्रहण किये जाते, तथापि जब उन पुद्गलों का वादर लक्षण के रूपमें परिणमन होता है तब वे इन्द्रियोंद्वारा प्राप्त हो जाते हैं और उनका रूपवत्त्व प्रतीत होने लगता है ।

परमाणु आदि अतीन्द्रिय पुद्गलों में और धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय द्रव्यों में इतना अन्तर है कि—धर्मास्तिकाय आदि अरूपी द्रव्य कभी इन्द्रियों के विषय नहीं होते बल्कि वे अतीन्द्रिय और अरूपी हैं किन्तु परमाणु आदि पुद्गल अतीन्द्रिय होने पर भी रूपी हैं ।

पुद्गलत्व लक्षणम्—

पुद्गलत्वोक्त लक्षण रूपवत्त्व छे; जेभा रूपं, रस, गन्ध अने स्पर्श जेवनामा आवे अर्थात् जे भूतिमान होय ते पुद्गल छे जे के परमाणु आदि पुद्गल लक्ष्ण अ सूक्ष्म छे अने अतीन्द्रिय होवना कारणे तेन लक्ष्ण अन्द्रियो द्वारा अलक्ष्ण करी सकावा नथी; तो यद्य अकारे ते पुद्गलोनु वादर लक्षणना रूपमा परिणमन लक्ष्ण छे त्पारे ते अन्द्रियो द्वारा अलक्ष्ण अर्थ जाय छे अने तेनु रूपवत्त्व प्रतीत यथा जाये छे ।

परमाणु आदि अतीन्द्रिय पुद्गलत्वोक्त अने धर्मास्तिकाय नयेरे अतीन्द्रिय द्रव्योंमा जोडल अन्तर-द्वेष्टार छे के-धर्मास्तिकाय आदि अरूपी द्रव्य अकारेय पक्ष अन्द्रियोना विषय बला नथी, तेथी ते अतीन्द्रिय अने अरूपी छे परन्तु परमाणु आदि पुद्गल अतीन्द्रिय होवा अर्थात् रूपी छे

### पुद्गलानां प्रदेशसंख्या—

परमाणुमारभ्याचित्तमहास्कन्धपर्यन्ताः पुद्गल विविधपरिणामा भवन्ति । तेषां प्रदेशाः संख्याता असंख्याता अनन्ताश्च यथासंभवं भवन्ति । तत्र—संख्यातपरमाणुसंयोगसंजातः स्कन्ध संख्यातप्रदेशी, असंख्यातपरमाणु-घटितः स्कन्धोऽसंख्यातप्रदेशी, अनन्तपरमाणुसंहतिसमुद्भूतश्च स्कन्धोऽनन्त-प्रदेशी भवति । परमाणोस्तु निरंशत्वान्नास्ति प्रदेश इति ।

### पुद्गलानां क्षेत्रस्थितिः—

परमाणौ विभागाभावादेकस्मिन्नेव प्रदेशे लोकाकाशस्य परमाणुरव-

### पुद्गलों की प्रदेशसंख्या—

परमाणुसे लेकर अचित्त महारकन्ध तक सब पुद्गल विविध परिणमन वाले होते हैं । उनके प्रदेश यथासंभव सख्यात असख्यात अथवा अनन्त होते हैं । सख्यात परमाणुओं के संयोग से बना हुआ स्कन्ध सख्यातप्रदेशी कहलाता है । असख्यात परमाणुओं से बना हुआ स्कन्ध असख्यातप्रदेशी और अनन्त परमाणुओं से निष्पन्न स्कन्ध अनन्त प्रदेशी कहलाता है । परमाणु निरंश होता है—उसके अनेक भाग नहीं हो सकते, अत एव वह अप्रदेशी है ।

### पुद्गलों की क्षेत्रस्थिति—

— परमाणु के विभाग न होने के कारण लोकाकाश के एक ही प्रदेश में उसकी

### पुद्गलोंने प्रदेशसंख्या—

परमाणुथी लधने अचित्त महास्कन्ध सुधी सर्व पुद्गल विविध परिणमनवाणा होय छे तेना प्रदेश यथासंभव संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होय छे. संख्यात परमाणुओंना संयोगथी अनेवा स्कन्ध संख्यातप्रदेशी कडेवाय छे, असंख्यात परमाणुओंथी अनेवा स्कन्ध असंख्यातप्रदेशी अने अनन्त परमाणुओंथी निष्पन्न स्कन्ध अनन्त-प्रदेशी कडेवाय छे परमाणु निरंश होय छे, तेना अनेक भाग थई शकता नथी तेथी ते अप्रदेशी छे

### पुद्गलोंने क्षेत्रस्थिति—

परमाणुभा विभाग नहि होवाना कारणे लोकाकाशना एक व प्रदेशभा तेनी

गाहते । इष्युक्तस्त्वन्वथ तस्यैकस्मिन् प्रदेशे, इष्योश्च प्रदेशयोरवगाहते । तथा  
 अ्युक्तस्त्वन्वो ङोकाकाशस्यैकस्मिन् प्रदेशे, इष्योः प्रदेशयोस्त्रियु प्रदेशेषु  
 षावगाहते । एवं चतुरणुकादीनां संख्यातप्रदेशाऽसंख्यातप्रदेशानन्तप्रदेशानां  
 स्त्वन्वानामवगाहनं लोकाकाशस्यैकप्रदेशमारम्य संख्याताऽसंख्यातप्रदेशपर्यन्तेषु  
 भवति ।

नन्वेकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽन्यपीपसि कथमनन्तप्रदेशिनः स्त्वन्वाः स्वानं  
 कम्नते, न हि कल्ले सिन्धोः समावेशं पश्यामः ?

अवगाहना होती है । इष्युक्त अर्थात् दो परमाणु बाह्य स्त्वन्व ओकाकाश के एक प्रदेश में  
 या दो प्रदेशों में अवगाहन करता है । इसी प्रकार तीन परमाणुमां बाह्य स्त्वन्व ओकाकाश  
 के एक प्रदेश में, दो प्रदेशों में अथवा तीन प्रदेशों में अवगाहन करता है । इसी मति  
 चतुरणुक ( चार अणुओं वाले ) आदि स्त्वन्वों की अवगाहना, तथा संख्यातप्रदेशी,  
 असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी एक के स्त्वन्वों की अवगाहना ओकाकाश के एक  
 प्रदेश से लेकर संख्यात तथा असंख्यात प्रदेशों में होती है ।

टीका—आकाश के एक छोटे से प्रदेश में अनन्तप्रदेशी स्त्वन्व का समावेश  
 किस प्रकार हो सकता है, गागर में सागर का समावेश होना तो कहीं दिखाई  
 नहीं देता ।

अवगाहना होय छे इष्युक्त अर्थात् ते परमाणुवाण्य रक्षे लोकाकाशना ओक  
 प्रदेशमां अथवा ते प्रदेशोमां अवगाहन करे छे ओ प्रमाद्ये त्रयु अयुज्योत्तण्य  
 रक्षे लोकाकाशना ओक प्रदेशमां, ते प्रदेशोमां अथवा त्रयु प्रदेशोमां अवगाहन  
 करे छे ओ प्रमाद्ये च चार अणुज्योत्तण्य आदि रक्षेभ्यानी अवगाहना, तथा  
 संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी अने अनन्तप्रदेशी सुधीना रक्षेभ्यानी अवगाहना  
 लोकाकाशना ओक प्रदेशवी लभने संख्यात तथा असंख्यात प्रदेशोमां होय छे

शुभा—आकाशना ओक नान्य प्रदेशमां अनन्त प्रदेशी रक्षेभ्यानी समावेश डेनी  
 रीते कथं यथे, आजरमां साजपने अन्तवेश बधेते कथं ठेकाये देण्यते नथी ?

अत्र सूक्ष्मः—पुद्गलस्य परिणमनशक्तिरेव तादृशी यतः परमसूक्ष्मस्तादृशः परिणामो जायते, येनानन्तप्रदेशिन स्फुन्धाः प्रदेशमेकं नभसः प्रविशन्ति । अथवा गगनस्य तादृशी त्रिचित्राऽवगाहदानशक्तिर्यतोऽनन्तप्रदेशिनां स्फुन्धाना तस्यैकस्मिन् प्रदेशे समावेशः सिध्यति । यथा अतिघनीभूतलोहगोलकावगाह-  
नान्निरवकाशे क्लिफाकाशदेशे भस्त्रानिलसमुद्भूताः पावकावयवाः समाविशन्ति । यदि रन्ध्ररहिताऽयोगोलक शीतलीकृतं वारि निक्षिप्यते, तदा तदयोगोलक-  
परिपूरितनिरन्तराकाशदेशे तस्मिन्नेव वारिक्रणा अव्याहृतं प्रविशन्ति ।

समाधान—पुद्गल मे परिणमनशक्ति ही ऐसी है, जिससे उसका अत्यन्त सूक्ष्म परिणमन होता है । इसी कारण अनन्तप्रदेशी स्फुन्ध भी आकाश के एक प्रदेश में समा जाते हैं । अथवा आकाश में ऐसी कुछ त्रिचित्र अवकाशदान करने की शक्ति है कि उसके कारण अनन्तप्रदेशी स्फुन्धों का भी आकाश के एक ही प्रदेश में समावेश हो जाता है । जैसे—अत्यन्त सघन लोहे के गोले के अवगाहन से निरवकाश आकाश-  
प्रदेश में धौकनी की वायु से वृद्धि पाये हुए अग्नि के अवयव प्रवेश कर जाते हैं । तात्पर्य यह है कि—लोहे का गोला बहुत ठोस होता है, वह आकाश के जिन प्रदेशों में मौजूद है, वहा जगह दिखाई नहीं देती, फिर भी धौकनी की वायु की प्रेरणासे उन्हीं आकाश प्रदेशों में अग्नि का प्रवेश हो जाता है, तत्पश्चात् छिद्ररहित उस लोहे के गोले को ठडा करने के लिये उस पर पानी डाला जाय तो जिन आकाश प्रदेशों में लोहे का गोला और पावक—अग्नि है, उन्हीं में जल के कण भी वेरोकटोक प्रवेश कर जाते हैं ।

समाधान—पुद्गलौमा परिष्मनशक्ति न् ऐवी छे नेथी तेनु अत्यन्त सूक्ष्म परिष्मन डोय छे ऐ कारले अनन्तप्रदेशी स्फुन्ध पणु आकाशना ऐक प्रदेशमां समाधि नय छे, अथवा आकाशमा ऐवी केध विचित्र अवकाशदान करवानी शक्ति छे के—ते कारणुथी अनन्तप्रदेशी स्फुन्धोना पणु आकाशना ऐक न् प्रदेशमा समावेश थधि नय छे नेभके—अत्यन्त सघन डोढाना गोणाना अवगाहनथी निरवकाश आकाश प्रदेशमा धमणुना वायुथी वृद्धि पावेला अग्निना अवयवो प्रवेश करी नय छे, तात्पर्य ऐ छे के—डोढामो गोणो भडु न् ठोस (पोलाणु विनानो) डोय छे, ते आकाशना ने प्रदेशोमा भोणुड छे, त्या न्ग्या हेभाती नथी, तो पणु धमणुना वायुनी प्रेरणाथी ते आकाश प्रदेशोमा अग्निना प्रवेश करी नय छे ते पछी छिद्ररहित ते डोढाना गोणाने ठडा करवा माटे तेना उपर पाणुी नाभवामा आवे तो ने आकाश—प्रदेशोमा डोढानो गोणो अने अग्नि छे, तेमा पाणुीना टीपा पणु शक—ठोड (अटकाव्या) विना प्रवेश करी नय छे

यथा वा एकप्रदीपममायाममेकप्रदीपमासमावेशः । यथा वा एककर्मपरि-  
मितवारद्वयकर्मपरिमितसुवर्णसमावेशो भवति ।

अनन्तप्रदेशीरूपोऽपिचमहास्फन्धः केवलिसमुद्घातवत् सकल्लोकव्यापी  
भवति । स च विस्रसागत्या प्रथमसमयेऽसंख्यातयोननविस्तरेण दम्भाकारेण  
परिणमति । द्वितीयसमये कपाटरूपेण, तृतीयसमये मन्यानरूपेण, चतुर्थसमये  
प्रतरमापूर्य सकल्लोक व्याप्नोति, पञ्चमसमये प्रतर संहरति, षष्ठसमये मन्यानं  
मनक्ति, सप्तमसमये कपाटं च, अष्टमसमये दम्भाकारं संहृत्य संवत्सः प्रतिकीर्णो  
भवति ।

अथवा—एक दीपक के प्रकाश में अनेक दीपकों का प्रकाश समा जाता है ।

अथवा एक कर्म—मास्य ( मापविशेष ) परिमित पारे में सौ कर्म परिमित होने का  
समावेश हो जाता है ।

अनन्तप्रदेशी अर्थात् महास्फन्ध केवलिसमुद्घात के समान समस्तलोक-  
व्यापी होता है । वह स्वाभाविक गति से, प्रथम समय में असंख्यातयोननविस्तृत  
दण्ड के आकार में परिणत होता है । दूसरे समय में वह कपाट के रूप में परिणत होता है,  
और तीसरे समय में मंत्रान के रूप में हो जाता है, चौथे समय में प्रतर पूर्ण करके सम्पूर्ण  
लोक में व्याप्त हो जाता है । फिर पाँचवें समय में प्रतर को सिंकोड़ता है, छठे  
समय में मंत्रान को, सातवें समय में कपाट को, और आठवें समय में दण्डकार को वह  
सिंकोड़ता है । उसके अनन्तर वह स्रष्ट स्रष्ट होकर भिल्ल जाता है ।

अथवा—अनेक दीपकना प्रकाशमा अनेक दीपकाना प्रकाश समाधि अथ च  
अथवा अनेक कर्म ( मापविशेष ) परिमित पारमा अनेकस्य कर्म परिमित सोनाने  
समावेश अर्थ अथ च ।

अनन्तप्रदेशी अर्थात् महास्फन्ध, केवलिसमुद्घातानी समान समस्तलोक  
व्यापी होता है । ते स्वाभाविक गतिसे प्रथम समयमा असंख्यातयोननविस्तृत  
दण्डना आकारमा परिवर्तित अथ च । त्रीत्य समयमा ते कपाटना रूपमा परिवर्तित  
अथ च अने त्रीत्य समयमा मन्थान ( दृष्टी वदोवधानो स्वेधे ) ना रूपमा अथ  
च अष्टम समयमा प्रतर पूर्ण करीने लोकमा व्याप्त अर्थ अथ च । इरी पाँचमा  
समयमा प्रतरने संहरति च छुः समयमा मन्थाने, सातमा समयमा कपाटने  
अने आठमा समयमा दण्डकारने च सिंकोड़े च त्वार पत्नी ते पद-पद अर्थ  
विशेष अथ च ।

### पुद्गलानामुपकारः—

शरीरवाह्यमनःप्राणादयः पुद्गलपरिणामा गमनाऽऽदान-वचन-चिन्तन-प्राणनादिभावेन जीवानुपकुर्वन्ति, अतः शरीराद्याकारेण पुद्गला जीवानामुपकार कुर्वन्ति । तत्र शरीरं पञ्चविधम्, औदारिकं, वैक्रियम्, आहारक, तैजसं, कर्मणं चेति ।

अथ जीवानां ये सुखदुःखजीवितमरणरूपाः परिणामा भवन्ति तत्र सुखादिरूपेण जीवपरिणामे निमित्तं पुद्गला इति सिद्ध जीवोपकारित्वं पुद्गलानाम् ।

### पुद्गलों का उपकार—

शरीर, वचन, मन और प्राण आदि पुद्गलों के परिणामविशेष—गमन, आदान, वचन, चिन्तन और प्राणन ( सांस लेना ) आदिरूप से जीवों का उपकार करते हैं अतः शरीर आदि के रूप में पुद्गल ही जीवों का उपकार करते हैं । इनमें शरीर पांच प्रकार का है— (१) औदारिक (२) वैक्रिय (३) आहारक (४) तैजस और (५) कर्मण ।

प्राणियों में सुख दुःख जीवन और मरण रूप जो परिणाम होते हैं, उन सब परिणामों में पुद्गल कारण है, अतः यह सिद्ध हुआ कि पुद्गल जीवों का उपकार करते हैं ।

### पुद्गलानो उपकार—

शरीर, वचन, मन अने प्राण्य आदि पुद्गलानो परिष्णामविशेष—गमन, आदान, वचन, चिन्तन अने प्राण्यन ( श्वास लेना ) आदि रूपथी लोवोनो उपकार करे छे, ओटले शरीर आदिना रूपमा पुद्गल न लोवोनो उपकार करे छे, तेमा शरीर पाच प्रकारना छे—(१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस अने (५) कर्मण्यु.

प्राण्योमा सुख, दुःख, लोवन अने भरण्यरूप ने परिष्णमन थाय छे, ते सर्व परिष्णामोमा पुद्गल कारण्यरूप छे तेथी ओ सिद्ध थाय छे के पुद्गल लोवोनो उपकार करे छे



पुद्गलानां विशेषगुणाः—

वर्णगन्धरसस्पर्शाः पुद्गलानां विशेषगुणाः सहभाविन परिणामाः ।  
 रस-वच-सौम्य-सौम्य-संस्थान-मेद-तम-छाया-ऽऽतपो-योतारिभिः  
 पर्यायैः पुद्गला लक्ष्यन्ते-ज्ञापन्ते, इत्याक्षयेन भगवता पुद्गलानां लक्षणवया  
 लक्ष्यन्त्यः प्रोक्ताः । तथाहि—

“सर्पयार उज्जोयो, पमा छायाऽऽतपुति वा

वण्णरसगणकासा, पुमालाव तु लक्ष्णं ॥१॥” (उच० अ० २८)

पुद्गलों के विशेष गुण—

वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श पुद्गलों के विशेष (असाधारण) गुण हैं—सहभावी परिणाम हैं । रस, वच सूक्ष्मता स्थूलता, संस्थान (आकार) मेद, तम, छाया आतप उषेत आदि पर्यायों के द्वारा पुद्गल लक्षा जाता है—जाना जाता है । इस आशय से भगवान् ने शब्द आदि को पुद्गलों का लक्षण कहा है, वह इस प्रकार—  
 “सर्पयार उज्जोयो, पमा-छाया-ऽऽतपुति वा, वण्णरसगणकासा, पुमालाव तु लक्ष्णं” शब्द, अक्षर उषेत प्रमा छाया आतप वर्ण, रस गन्ध और स्पर्श ये सब पुद्गलों के लक्षण हैं । गाथा में ‘छायाऽऽतपुति यैर् इति’ शब्द आदि के अर्थ में है । इस आदि शब्द से वर्ण आदि का प्रमाण हो सकता वा फिर भी उन्हें लक्षण कहने का कारण यह है कि—वे नित्य सहभावी गुण हैं ।

पुद्गलानां विशेष गुणः—

पञ्च अथ रस गन्ध स्पर्श पुद्गलैःमा विशेष (असाधारण) गुण उ—  
 सहभावी परिणाम उ शब्द, अथ सूक्ष्मता, स्थूलता संस्थान (आकार) मेद, तम, छाया आतप उषेत आदि पर्यायैः लक्ष्णी यथाव उ ते लक्षणं लक्षणं लक्षणं शब्द आदि पुद्गलैः लक्षणं उ उ ते वा प्रमाद्ये उ—  
 “सर्पयार उज्जोयो पमा-छाया-ऽऽतपुति वा वण्णरसगणकासा, पुमालाव तु लक्ष्णं” शब्द अक्षर उषेत प्रमा, छाया, आतप, वच, रस अथ गन्ध स्पर्श ये पुद्गलैः लक्षणं उ आशयैः-‘छायाऽऽतपुति’ आदि ‘इति’ शब्द आदिना अर्थमा उ ये प्रमाद्ये आदि शब्दोर्षी वचं वचैरेण लक्षणं लक्षणं उ ते वा पञ्च तेने लक्षणं लक्षणं उ उ उ ते नित्य सहभावी गुण उ,

शब्दोऽन्धकार उद्योतः प्रभा छाया आतप इति वा । वर्णरसगन्धस्पर्शाः  
पुद्गलानां तु लक्षणम् । इति च्छाया ।

“छायाऽऽतवृत्ति” इत्यत्र ‘इति’ शब्द आद्यर्थकः । तेनैव वर्णादीनां ग्रहणेऽपि  
पुनरुपादानं नित्यसहभावित्वबोधनार्थम् ।

तत्र वर्णः पञ्चधा, कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्ल-भेदात् । गन्धो  
द्विविधः-सुरभिरसुरभिश्च । रसः पञ्चविधः-तिक्त-कटु-कषाया-ऽम्ल-मधुर-भेदात् ।  
स्पर्शोऽष्टधा-कठिन-मृदु-गुरु-लघु-शीतो-ष्ण स्निग्ध-रूक्ष-भेदात् । संस्थानं  
पञ्चविधम्-वृत्त-त्र्यस्र-चतुरस्र-ऽऽयत-परिमण्डल-भेदात् ।

पुद्गलविभागः-

पुद्गलः संक्षेपतो द्विविधः-परमाणु-स्कन्धभेदात् ।

वर्ण पांच प्रकार का है-काला, नीला, लाल, पीला, और सफेद । सुगन्ध दुर्गन्ध  
के भेद से गन्ध दो प्रकार का है । रस के पांच भेद हैं--तीखा, कडुआ, कषैला, खट्टा,  
और मीठा । स्पर्श के आठ भेद हैं--कठिन, कोमल, भारी, हल्का, शीत, उष्ण, चिकना,  
और रूखा । संस्थान पांच प्रकार का है--वृत्त ( गोल ), त्र्यस्र ( तिकोना ), चतुरस्र  
( चौकोर ), षायत ( लम्बा ) और परिमण्डल-( गोल-मटोल )

पुद्गल के भेद—

संक्षेप से पुद्गल के दो भेद हैं-परमाणु और स्कन्ध ।

वर्ण पांच प्रकारना छे-काणो, लीलो, लाल, पीणो अने घोणो सुगन्ध अने  
दुर्गन्धना लेदथी गन्ध के प्रकारना छे रसना पांच लेद छे-तीणो, कडुआ, कषायेलो,  
आटो अने मीठो, स्पर्शना आठ लेद छे-कठणु, कोमल, भारी, हलको, शीत, उष्ण,  
चिकणो अने रूख संस्थान पांच प्रकारना छे-वृत्त-गोण, त्रिकोणु, चतुरकोणु,  
षायु अने गोणभटोण

पुद्गलानां भेद

संक्षेपथी पुद्गलानां के भेद छे-(१) परमाणु अने (२) स्कन्ध

परमाणुस्वरूपम्—

तत्र परमाणुस्य सकलविभागान्तर्वर्ती निरंशः परस्परसंयुक्तः, सूक्ष्मत्वादि-  
न्द्रियव्यापारातीतः, एकैकवर्ण-गन्ध-रस-विस्पर्शयुक्तः, द्रव्यशुद्धस्वभावाद्यचित्तमहा-  
स्त्वपर्यन्तानां स्थूल-सूक्ष्म-स्त्वम्भकार्याणां कारणरूपो नित्यमेति ।

उक्तञ्च भगवता भगवतीसूत्रे—(श्र २० उ० ५)—

परमाणु का स्वरूप—

परमाणु, पुत्रक का अन्तिम विभाग है। यह निरंश है। परस्पर संयुक्त है। सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रिया की उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। एक वर्ण, एक गन्ध एक रस और दो स्पर्शोपे युक्त है। द्रव्ययुक्त स्त्वभवे केकर अन्तिम महास्त्व पर्यन्त स्थूल एवं सूक्ष्म स्वरूप कर्म का कारण है और निरंश है। भगवानने भगवतीसूत्र (श्र २, उ ५) में कहा है—

प्रश्न-भगवन्! परमाणु पुत्रक कितने वर्णवास कितने गंध वास, कितने रसवास, और कितने स्पर्शवास कहा गया है ।।

उत्तर-जीतम। एक वर्णवास एक गंध वास, एक रसवास और दो स्पर्शवास कहा गया है ।

एक वर्णवास होता है दो अशब्दित कास्य अशब्दित मीस्य, अशब्दित सास्य,

परमाणु स्वरूप—

परमाणु को पुत्रकाने अन्तिम विभाग है ते निरंश (अशब्दित) है परस्पर संयुक्त है सूक्ष्म होनेवाले कारणे इन्द्रियोनी प्रवृत्ति तेभां यथं शक्यी नहीं। जोक वसु जोक जघ, जोक रस जाने के स्पर्शोपी युक्त है द्रव्ययुक्त स्त्वभवी धानि अशब्दित महास्त्व पर्यन्त स्थूल जाने सूक्ष्मस्त्वभश्य कामनु कारण है जाने नित्य है अजवाने अजवती सूत्र (श्र. २० उ ५)भां कहु है—

प्रश्न- 'अजवन्! परमाणु पुत्रक केटला वर्णवाणु केटला जघवाणु, केटला रसवाणु जाने केटला स्पर्शवाणु कहु है ।

उत्तर-जीतम। जोक वर्णवाणु जोक जघवाणु जोक रसवाणु जाने के स्पर्शवाणु कहु है ।”

“जोक वसुवाणु जोय है तो अशब्दित काणु, अशब्दित मीणु अशब्दित सास्य, अशब्दित पीणु जाने अशब्दित श्वेत जोय है। जोक जघवाणु जोय है तो अशब्दित म मा-१४

શબ્દોઽન્ધકાર ઉદ્યોતઃ પ્રમા છાયા આતપ ઇતિ વા । વર્ણરસગન્ધસ્પર્શાઃ  
પુદ્ગલાનાં તુ લક્ષણમ્ । ઇતિ ચ્છાયા ।

“છાયાઽઽત્ત્વુત્તિ” ઇત્યત્ર ‘ઇતિ’ શબ્દ આદ્યર્થકઃ । તેનૈવ વર્ણાદીનાં ગ્રહણેઽપિ  
પુનરુપાદાનં નિત્યસહભાવિત્વબોધનાર્થમ્ ।

તત્ર વર્ણઃ પશ્ચધા, કૃષ્ણ-નીલ-લોહિત-પીત-શુક્લ-ભેદાત્ । ગન્ધો  
દ્વિવિધઃ-સુરભિરસુરમિશ્ચ । રસઃ પશ્ચવિધઃ-તિક્ત-કટુ-કષાયા-ઽમ્લ-મધુર-ભેદાત્ ।  
સ્પર્શોઽષ્ટધા-કઠિન-મૃદુ-ગુરુ-લઘુ-શીતો-ઞ્ણ સ્નિગ્ધ-રૂક્ષ-ભેદાત્ । સંસ્થાનં  
પશ્ચવિધમ્-વૃત્ત-ત્ર્યસ્ર-ચતુરસ્ર-ઽઽયત-પરિમણ્ડલ-ભેદાત્ ।

પુદ્ગલવિભાગઃ-

પુદ્ગલઃ સક્ષેપતો દ્વિવિધઃ-પરમાણુ-સ્કંધભેદાત્ ।

વર્ણ પાંચ પ્રકાર કા હૈ-કાલા, નીલા, લાલ, પીલા, ઓર સફેદ । સુગન્ધ દુર્ગન્ધ  
કે મેદ સે ગન્ધ દો પ્રકાર કા હૈ । રસ કે પાચ મેદ હૈ--તીચ્ચા, કટુચ્ચા, કષૈલા, સ્વદા,  
ઓર મીઠા । સ્પર્શ કે આઠ મેદ હૈ--કઠિન, કોમલ, ભારી, હલ્કા, શીત, ઉષ્ણ, ચિકના,  
ઓર રૂચ્ચા । સસ્થાન પાંચ પ્રકાર કા હૈ--વૃત્ત ( ગોલ ), ત્ર્યસ્ર ( તિકોના ), ચતુરસ્ર  
( ચૌકોર ), ઓચત ( લમ્બા ) ઓર પરિમણ્ડલ-( ગોલ-મટોલ )

પુદ્ગલ કે મેદ-

સક્ષેપ સે પુદ્ગલ કે દો મેદ હૈ-પરમાણુ ઓર સ્કન્ધ ।

વર્ણ પાચ પ્રકારના છે-કાળો, લીલો, લાલ, પીળો અને ઘોળો સુગન્ધ અને  
દુર્ગન્ધના લેદથી ગન્ધ બે પ્રકારના છે રસના પાચ લેદ છે-તીચ્ચો, કટુચ્ચો, કષાયેલો,  
ખાટો અને મીઠો, સ્પર્શના આઠ લેદ છે-કઠણુ, કોમલ, ભારી, હલકો, શીત, ઉષ્ણ,  
ચિકણો અને રૂચ્ચ સસ્થાન પાંચ પ્રકારના છે-વૃત્ત-ગોળ, ત્રિકોણ, ચતુષ્કોણ,  
લાણુ અને ગોળમટોળ

પુદ્ગલોના લેદ

સક્ષેપથી પુદ્ગલના બે લેદ છે-(૧) પરમાણુ અને (૨) સ્કંધ

परमाणुस्वरूपम्—

सप्त परमाणुभ्यः सकलविभागान्तर्गतीं निरंशः परस्परसंयुक्तः, सूक्ष्मत्वादि-  
न्द्रियव्यापारातीत, एकैकवर्ण-गन्ध-रस-द्विस्पर्शयुक्तः, इत्युक्तस्त्वन्वाद्यचित्तमहा-  
स्त्वन्पर्यन्तानां स्पृश-सूक्ष्म-स्त्वन्कार्याणां कारणरूपो नित्यमेति ।

उक्तञ्च मगधता मगधतीसूत्रे-(श्र २० उ० ५) —

परमाणु का स्वरूप—

परमाणु, पुद्गल का अन्तिम विभाग है। यह निरंश है। परस्पर संयुक्त है। सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रिया की उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्शोत्ति युक्त है। इत्युक्त स्त्वन्वत्ते लेकर अन्तिम महास्त्वन् पर्यन्त स्पृश एवं सूक्ष्म स्वरूप कार्य का कारण है और नित्य है। मगधान्ते मगधतीसूत्र (श्र २०, उ० ५) में कहा है—

प्रश्न-मगधन् । परमाणु पुद्गल कितने वर्णवास्य कितने गंध वास्य, कितने रसवास्य, और कितने स्पर्शवास्य कहा गया है ? ।

उत्तर-नौतम । एक वर्णवास्य एक गंध वास्य, एक रसवास्य और दो स्पर्शवास्य कहा गया है ।

एक वर्णवास्य होता है तो क्वाचित् काका क्वाचित् नीलम्, क्वाचित् स्रक्,

परमाणु स्वरूप—

परमाणु जो पुद्गलके अन्तिम विभाग है तो निरंश (अशरदित) है परस्पर असंयुक्त है सूक्ष्म होनेवाला कारणे इन्द्रियेण प्रवृत्ति तेषां कर्षं शक्यती नशी, जोके वक्षु जोके जष जोके रस जने जे स्पर्शशी युक्त है, इत्युक्त स्त्वन्वत्ते वाधने अन्तिम महास्त्वन् पर्यन्त स्त्वन् जने सूक्ष्मस्त्वन्कार्यं कारणरूपो नित्यं है मगधान्ते मगधती सूत्र (श्र. २ उ० ५.) में कहु है—

प्रश्न- 'मगधन् । परमाणु पुद्गल कितने वर्णवाद्यु कितने गंधवाद्यु कितने रसवाद्यु जने कितने स्पर्शवाद्यु कहु है ?

उत्तर-नौतम । जोके वर्णवाद्यु जोके गंधवाद्यु जोके रसवाद्यु जने जे स्पर्शवाद्यु कहु है ”

“ जोके वक्षुवाद्यु होय है तो क्वाचित् काकु, क्वाचित् बीडु क्वाचित् ताड, क्वाचित् पीडु जने क्वाचित् श्वेत होय है जोके जषवाद्यु होय है तो क्वाचित्

“परमाणुयोगगले णं भंते ! कतिवन्ने, कतिगंधे, कतिरसे, कतिफासे पन्नते ?, गोयमा । एगवन्ने, एगगंधे, एगरसे, दुष्फासे पन्नते, तंजहा-जइ एगवन्ने-सिय कालए, सिय नीलए, सिय लोहिए, सिय ढालिडे, सिय सुकिल्ले । जइ एगगंधे-सिय सुग्भिगंधे, सिय दुग्भिगंधे । जइ एगरसे-सिय तित्ते सिय कडुए सिय कसाए, सिय अंविले, सिय महुरे । जइ दुष्फासे-सिय सीए य निद्वे य १, सिय सीए य लुक्खे य २, सिय उसिणे य निद्वे य ३, सिय उसिणे य लुक्खे य ४ ” इति ।

परमाणुपुद्गलः मदन्त ! कतिवर्णः, कतिगन्ध, कतिरसः, कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः ? गौतम । एकवर्णः, एकगन्धः, एकरसः, द्विस्पर्शः प्रज्ञप्तः । तद्यथा-यदि एकवर्णः-स्यात् कालकः, स्यात् नीलकः, स्यात् लोहितः, स्यात् हारिद्रः, स्यात् शुक्रः । यदि एकगन्धः-स्यात् सुरभिगन्धः, स्यात् दुरभिगन्धः, यदि एकरसः स्यात्तिक्तः स्यात् कटुकः, स्यात् कषायः, स्यात् अम्लः, स्यात् मधुरः । यदि द्विस्पर्शः-स्यात् शीतश्च स्निग्धश्च १, स्यात् शीतश्च रूक्षश्च २, स्यात् उष्णश्च स्निग्धश्च ३, स्यात् उष्णश्च रूक्षश्च ४, । इति च्छाया,

कदाचित् पीला, और कदाचित् शुक्र होता है । एक गन्धवाला होता है तो कदाचित् सुरभिगन्धवाला, कदाचित् दुरभिगन्धवाला होता है । यदि एक रसवाला होता है तो कदाचित् तिक्त, कदाचित् कटुक, कदाचित् कषायला, कदाचित् खट्टा, और कदाचित् मीठा होता है । यदि दो स्पर्शवाला होता है तो कदाचित् शीत और स्निग्ध (चिकना) १, कदाचित् शीत और रूक्ष २, कदाचित् उष्ण और स्निग्ध ३, तथा कदाचित् उष्ण और रूक्ष होता है ४ ।

सुरभिगन्ध (सारी गन्ध) वाणु अने कदाचित् दुरभिगन्धवाणु होय छे जे अेक रसवाणु होय छे तो कदाचित् तीक्ष्ण, कदाचित् कटु, कदाचित् कषायलु, कदाचित् आदु अने कदाचित् मधुर-मीठु-होय छे जे जे स्पर्शवाणु होय छे तो कदाचित् शीत अने स्निग्ध-(चिकना) १, कदाचित् शीत अने रूक्ष २, कदाचित् उष्ण अने स्निग्ध ३, तथा कदाचित् उष्ण अने रूक्ष होय छे ४ ”

असौ श्रद्धादिना स्तादिकदृष्टेय, सूच्यादिना चर्मषदमेधा, अग्निना काष्ठददाहः, इस्तादिना बस्रपात्रदद्याहम् । उक्तञ्च मगवता मगवतीसूत्रे (श्र०-२० उ० ५) —

“इव्यपरमाणु षं संते । अविहे पण्ये?, गोपमा! कउष्विहे पण्ये, समहा-अण्डेज्जे, अमेज्जे, अहज्जे, अगेज्जे ।” इति । इव्यपरमाणुः सत्त्वमन्त । कतिपिपः प्रह्वतः?, गौतम! चतुर्विपः मह्वत, तयवा-अण्डेघः, अमेघ, अदाह, अग्राहः । इति च्याया ।

यद्यपि परमाणुः पुद्गलत्वान्पूर्वस्तवाऽप्यसौ स्पष्टः कर्तुमशक्यः, आकाशप्रदेशवत्परमाणो पुद्गलपरममपन्यासरूपत्वात्, सर्वपरिमाणेभ्योऽपकृष्ट परिमाणं परमाणोरेव तस्मात्सोऽस्त्वष्ट एव ।

परमाणु शब्द के द्वारा स्ता आदि की मूर्ति छेदा नहीं जा सकता, चर्म से की तरह हुई आदि से मग नहीं जा सकता काष्ठ के समान अग्नि आदि से पक नहीं सकता और बस्र पात्र आदि फटाही की तरह हाव आदिसे पक्य नहीं जा सकता । मगवान्ने मगवतीसूत्र (श्र २० उ० ५) में कहा है—

प्रश्न-मगवन् ! इव्य परमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर-गौतम ! चार प्रकारका कहा गया है—अण्डेघ अमेघ, अग्राह और अह्वत ।

परमाणु पुद्गल होने के कारण मूर्तिक है, फिर भी उस के स्पष्ट नहीं किये जा सकते । जैसे आकाश का एक प्रदेश अथवा अशक्य है और उसका परिमाण समी

परमाणु शब्द द्वारा स्ता आदिना प्रमाणे छेदी शक्य नही, आसयानी जेम सोय वनेरेशी वींधी शक्य नही, हाफनी जेम अग्नि आदिधी आणी शक्य नही, अने पश्र पात्र आदि फटाहीनी जेम हाव वनेरेशी पक्यी शक्य नही ।

मगवाने मगवतीसूत्र-(श्र २०-उ ५) भा कहुं छे—

प्रश्न- मगवन् ! इव्य परमाणु कैटका प्रकारनु कहुं छे ?

उत्तर-गौतम ! चार प्रकारनु कहुं छे— अण्डेघ, अमेघ, अग्राह अने अह्वत ।

(छेदी शक्य नहि लेकी शक्य नहि, अणी शके नहि, अने प्रह्वत कर्ष शके नहि) ।

परमाणु पुद्गल होवाना हास्से भूतिक छे तो पश्र तेना पद-मात्र कर्ष शक्य नही जेमके आकाशने केक प्रदेश अथवा अशक्य छे अने तेनु परिमाण

स च प्रत्यक्षदृश्यैरनेकविधैर्वाद्परिणामरूपैः स्कन्धैरनुमीयते । उक्तञ्च-

“कारणमेव तदन्तं, सुहुमो णिञ्चो य होड परमाणु ।

एगरसगंधवणो, दुष्फासो कज्जलिङ्गो य ॥१॥ इति

छाया—कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः ।

एकरसगंधवर्णो, द्विस्पर्शः कार्यच्छिद्मश्च ॥१॥” इति ।

स्कन्धस्वरूप तद्भेदाश्च—

परस्परसमिलितवद्परमाणुसमुदायः स्कन्ध । स्कन्धान्तवर्ती निरशोऽवयवः  
प्रदेश इत्युच्यते ।

परिमाणोसे हीनतम है, इसी प्रकार परमाणु भी जघन्य अंशरूप है—उसके अंश नहीं हो सकते, वह अखण्ड है ।

प्रत्यक्ष से दिखाई देनेवाले अनेक प्रकार के वाद्परिणत स्कन्धों से परमाणु का अनुमान होता है । कहा भी है—

“परमाणु कारणरूप है, अन्तिम अंशरूप है, सूक्ष्म है और नित्य है । एक रसवाला, एक गंधवाला, एक वर्णवाला और दो स्पर्शवाला होता है । स्कन्धरूप कार्य देखने से उसका अनुमान होता है ।”

स्कन्ध का स्वरूप और भेद—

परस्पर मिले हुए—आपसमें बद्ध—परमाणु का समूह स्कन्ध कहलाता है । स्कन्धमें रहा हुआ निरश अवयव प्रदेश कहलाता है ।

सर्व परिमाणोधी हीनतम छे, ओ प्रमाणु परमाणु पणु जघन्य अंशरूप छे, तेना अंश-विभाज थर्क शकता नथी, ते अखण्ड छे

प्रत्यक्षधी जेवामा आवता अनेक प्रकारना आहररूप परिणत स्कन्धोधी परमाणुनु अनुमान थाय छे कह्य पणु छे—

“परमाणु कारणरूप छे, अन्तिम अंशरूप छे, सूक्ष्म छे अने नित्य छे, ओक रसवाणु छे, ओक गंधवाणु, ओक वर्णवाणु अने ओ स्पर्शवाणु होय छे. स्कन्धरूप कार्यना देखावधी तेनु अनुमान थाय छे

स्कन्धनु स्वरूप अने भेद—

परस्पर भेदना—अहर अहर बद्ध—परमाणुओना समूह ते स्कन्ध कहवाय छे. स्कन्धमा रहेले निरश अवयव ते प्रदेश कहवाय छे



यद्यपि धर्माचर्माकाशजोवा अपि पुद्गलरस्त्वन्यरूपास्तयापि स्क्न्ध रूपपुद्गलादय विज्ञापः-तेषाम्-धर्मादीनां चतुर्णां प्रवेशाः स्वस्वस्क्न्धभास स्वप्नदः पृथग् भवितुमर्हन्ति, तेषाममूर्त्तत्वात् । पुद्गलमदशास्तु स्वप्नदश्च पृथग् भवन्ति, तेषां मूर्त्तत्वात्, आच्छेपविभ्लेषार्था मूर्त्तवस्तुनि संमिलन-पृथग्भाव-शक्तेः सर्वानुभवगोचरत्वात्, अतः स्क्न्धपुद्गलानां स्थूलः सूक्ष्मो वा मागाज्वयव उच्यते । अयपीति-पृथग्भवतीत्यवयवसम्बन्धव्युत्पत्त्या यिमाज्य एवांशोऽवयवद्वयार्थे स्तस्मात्पुद्गलमददश्च एवावयव इत्युच्यते ।

यद्यपि धर्म-द्रव्य अवयव-द्रव्य आकाश और जीव भी पुद्गलके समान स्क्न्धरूप हैं, फिर भी स्क्न्धरूप पुद्गल से उनमें यह भिन्नता है-धर्म आदि चार द्रव्य अमूर्त्त हैं । पुद्गल द्रव्य के प्रदेश स्वप्नद होकर भस्मा हो जाते हैं क्योंकि पुद्गल मूर्त्त हैं । आच्छेप और विभ्लेष के द्वारा मूर्त्त वस्तु में मिलने और विलुप्तन की शक्ति है, यह बात सभी के अनुभव से सिद्ध है, अतः स्क्न्ध-पुद्गलका का स्थूल या सूक्ष्म माग अवयव कहसक्ता है, 'अयपीति' इति-अवयवः अर्थात् जो पृथक् हो सके उसे अवयव कहते हैं, इस व्युत्पत्ति के अनुसार विभक्त हो सकने योग्य अश को ही अवयव कहा जा सकता है, अतः पुद्गल का प्रदेश ही अवयव कहसक्ता है ।

जो है धर्म-द्रव्य अधर्म-द्रव्य, आकाश अने जीव पक्ष पुद्गलवत् समान स्क्न्धरूप है तो पक्ष स्क्न्धरूप पुद्गलवधी तेषां जे भिन्नता है-धर्म आदि चार द्रव्योना प्रदेश पीत-पीताना स्क्न्धधी अवयव पक्ष अवयव धर्म शक्ता नहीं हैअके धर्म आदि चार द्रव्यो अमूर्त्त है पुद्गल द्रव्यना प्रदेश अके अके धर्मने अवयव धर्म व्यय है, हैअके पुद्गल मूर्त्त है आच्छेप ( भगवु ) अने विभ्लेष ( लुटा वपु ) द्वारा मूर्त्त वस्तुमां भगवु अने लुटा धनु ते शक्ति है आ पक्ष सबने अनुभवधी सिद्ध है जेठला कारणधी स्क्न्ध पुद्गलवधु स्क्न्ध अधवा सूक्ष्म अवयव कहेवाय है अयपीति इति-अवयव अर्थात् पृथक् धर्म शके तेने अवयव कहे है जे व्युत्पत्ति प्रभाजे विभक्त वया योग्य अशने जे अवयव कहे है जे आ कारणधी पुद्गल द्रव्योना प्रदेश जे अवयव कहेवाय है

संघाताद्, भेदात्, सघातभेदाभ्यां च द्विप्रदेशिप्रभृतयः स्कन्धाः समुत्पद्यन्ते । उक्तञ्च भगवता स्थानाङ्गसूत्रे—

“दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णंति, तजहा-सयं वा पोग्गला साहन्ति, परेण वा पोग्गला साहन्ति । सयं वा पोग्गला भिज्जंति परेण वा पोग्गला भिज्जंति” इति ।

छाया—“द्वाभ्या स्थानाभ्यां पुद्गलाः संहन्यन्ते । तद्यथा—स्वयं वा पुद्गलाः संहन्यन्ते, परेण वा पुद्गलाः संहन्यन्ते । स्वयं वा पुद्गला भिद्यन्ते, परेण वा पुद्गला भिद्यन्ते । इति ।

‘स्त्रयवे’-ति स्वभावतो वा अभ्रादिष्विव संहन्यन्ते=सम्बध्यन्ते । (कमणः कर्तृत्वचिक्वायां प्रयोगोऽयम् ) परेण वा=अन्येन वा पुरुषादिना संहन्यन्ते=संहताः क्रियन्ते । (कर्मणि वाच्ये प्रयोगोऽयम्) । एवं भिद्यन्ते=विकीर्यन्ते ।

द्वयोः परमाणुोः संघाताद् द्विप्रदेशी स्कन्धः समुद्भवति । द्विप्रदेशिनः

सघात (मिलने) से, भेद (बिछुडने) से तथा सघातभेदसे द्विप्रदेशी आदि स्कन्ध उत्पन्न होते हैं ।

भगवानने स्थानाङ्गसूत्रमें कहा है—

“दो स्थानों से पुद्गल आपस में मिलते हैं, वह इस प्रकार—या तो पुद्गल स्वयं बादल आदि की तरह मिल जाते हैं, या दूसरे पुरुष आदि के द्वारा मिलाये जाते हैं, इसी प्रकार पुद्गल स्वयं अलगा हो जाते हैं, या दूसरे के द्वारा अलग किये जाते हैं ।

दो परमाणुओं के सघात से द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, द्विप्रदेशी स्कन्ध

सघात (मेलाप)थी बेह (जुड़ा पडवा)थी तथा सघात-बेहथी द्विप्रदेशी विगेरे स्कंध उत्पन्न थाय छे भगवाने स्थानाङ्गसूत्र भा कहु छे—

“ये स्थानाथी पुद्गल परस्पर भजे छे ते आ प्रभाण्णु-पुद्गल पोते न वाहण आदि प्रभाण्णु भणी नय छे, अथवा पीन पुपुष आदिना द्वारा भेणवाय छे ये प्रभाण्णु पुद्गल पोते न अगल थर्ध नय छे, अथवा तो पीनना द्वारा अलग करी शकय छे.

ये परभाण्णुना सघातथी (भणवाथी) द्विप्रदेशी स्कंध भने छे द्विप्रदेशी स्कंध

स्कन्धस्य परमात्मोभ संयागे सति त्रिप्रदेशी स्कन्धो भवति । सस्यात-  
परमाणुनां संघातात् संस्यातप्रदेशी स्कन्धा, अस्तस्यातपरमाणुनां संयोगाद्  
मसस्यातप्रदेशी स्कन्धा, अनन्तपरमाणुनां संघातात्कामातोऽनन्तप्रदेशी स्कन्धा,  
अनन्तप्रदेशिनां स्कन्धानां योगे त्वनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्धो भाषते । सस्यात-  
प्रदेश्यादिषु स्कन्धेषु संयोगपरिणामः पूर्वोक्तरीत्या भावनीयः ।

इद्यथादिक्रमेणानन्तानन्तप्रदेशिपर्यन्ता ये स्कन्धा संयोगपरिणाम-  
वास्तेभ्यः परमाणुः पृथग् भवति वेत्तदैकपरमाणुन्यूनः स्कन्धो भाषते । एवं  
द्विभक्तुःपञ्चादिपरमाणुपृथग्भावक्रमेण न्यूनान्यूनो द्विप्रदेशी स्कन्धः समुत्पद्यते ।

और एक परमाणु का संयोग होने पर त्रिप्रदेशी स्कन्ध बनता है, संघात परमाणुओं के  
संघात से सस्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है और असस्यात परमाणुओं के संयोग  
से असस्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है । अनन्त परमाणुओं के मिलने से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध  
बनता है, अनन्तप्रदेशी स्कन्धा का समाग होने पर अनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता  
है । सस्यातप्रदेशी आदि स्कन्धों में संयोगरूप परिणाम पूर्वोक्तप्रकार से समझ लेना चाहिए ।

द्रव्यशुद्ध आदि के क्रम से अनन्तानन्तप्रदेशी पर्यन्त जो स्कन्ध संयोगपरिणाम से  
बने हैं, उन में से अगर एक परमाणु अस्मा हो जाता है तो वह एक परमाणुहीन स्कन्ध रह  
जाता है । इसी प्रकार दो तीन चार पांच आदि परमाणुओं के अस्मा होने पर अन्त में  
द्विप्रदेशी स्कन्ध ही बनता है ।

जने जेक परमाणुने संयोग कवाधी त्रिप्रदेशी स्कन्ध जने छे सस्यात परमाणुज्येना  
संघातधी ( भणवाधी ) संस्यातप्रदेशी स्कन्ध जने छे जने असस्यात परमाणुज्येना  
संयोगधी असस्यातप्रदेशी स्कन्ध जने छे अनन्त परमाणुज्येना संयोगधी अनन्त  
प्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न बाव छे अनन्तप्रदेशी स्कन्धिने संयोग बाव तो अनन्तानन्त  
प्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न बाव छे संघातप्रदेशी आदि स्कन्धिनां संयोगरूप परिणाम  
पूर्वना प्रकारधी समस्त बेलु जेधजे.

अथशुद्ध आदिना कर्मधी अनन्तानन्तप्रदेशी पर्यन्त के स्कन्ध छे ते संयोग  
परिणामधी जन्वा छे तेनाधी जे जेक परमाणु अलग बर्ध बाव तो ते जेक  
परमाणुहीन स्कन्ध रही बाव छे जे प्रकल्पे जे, त्रय आर पांच आदि परमाणुज्ये  
अलग बर्ध बाव तो अन्तधां द्विप्रदेशी स्कन्ध जे जने छे

स्कन्धाद् वहिर्गतस्य परमाणोरन्येन परमाणुना सयोगे द्वयणुकस्कन्ध उत्पद्यते । एवं संयोग-विभागाभ्यामपि विविधाः स्कन्धा भवन्ति ।

### परमाणूनां बन्धस्य कारणम्—

परमाणुद्वयस्य परमाणूनां वा परस्परानुप्रवेशो न भवति, छिद्राभावात्, किन्तु तयोस्तेषां वा विस्रसागत्या परस्परं सयोगे सति स्निग्धरूक्षत्वगुण-सद्भावे परस्पर बन्धो भवति । ऐक्यपरिमाणो बन्धः । तत्रायं विशेषः—

स्कन्ध से अलग हुआ परमाणु जब दूसरे परमाणु के साथ मिलता है तो दोनों के मेलसे नवीन द्वयणुक उत्पन्न हो जाता है । इस प्रकार संयोग और विभाग के द्वारा भाँति-भाँति के स्कन्ध उत्पन्न होते ही रहते हैं ।

### परमाणुओं के बन्ध का कारण

दो या अधिक परमाणु एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि परमाणुओं में छिद्र नहीं होता, अलवत्त स्वाभाविक गति से दो या दो से अधिक परमाणुओं का परस्पर में संयोग होने पर उन में विद्यमान स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण उन का आपस में बन्ध हो जाता है । एकतारूप परिणमन को बन्ध कहते हैं । बन्ध के सम्बन्ध में इतना विशेष समझना चाहिए—

स्कन्धही अलग थथेला परमाणु न्यारे भील परमाणुनी साथे भजे छे, तेनेना भगवाथी नवीन द्वयणुक उत्पन्न थाय छे अे प्रमाणु संयोग अने विभाग द्वारा तरेहु-तरेहुना स्कन्ध उत्पन्न थया करे छे

### परमाणुओंना बन्धु कारण—

जे अथवा अधिक परमाणु अेक भीलभा प्रवेश करी शकता नथी, डेभडे परमाणुओंभा छिद्र नथी अलगत स्वाभाविक गतिथी जे अथवा जेथी अधिक परमाणुओंना परस्पर संयोग थवाथी तेभा विद्यमान स्निग्धता अने रूक्षताना गुणुना कारण तेना आपसभा बन्ध थई जय छे अेकतारूप परिणमनने बन्ध कहे छे बन्धना सम्बन्ध अेटलु विशेष समज्जु लेईअे क —

अधन्यगुणस्निग्धयोर्द्वयो, अधन्यगुणस्निग्धानां वा बहूनां परमाणुनां परस्परं बन्धो न भवति । तथा अधन्यगुणरूक्षयोः, अधन्यगुणरूक्षाणां वा परस्परं बन्धो न भवति । अधन्योऽप्यकृतसमः, गुणशब्दोऽथ संख्यार्थकः । यथा एक-गुणं, द्विगुणमित्यादिपदम्-एकसंख्यकद्विसंख्यकापर्यवोपक्रमम् । स्नेहादिगुणानां मरुर्वापकयोः श्लोकप्रसिद्धौ । यथा-पानीपादब्राह्मण स्निग्धम्, अनादुग्बाव् गर्भ्यं दुग्धम्, तत्रैव महिषोदुग्धमित्युत्तरोत्तरं स्नेहमर्क्यः ।

एषामेव पूर्वं पूर्वं स्नेहापकर्षः । तथा वैक्यगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन, द्वयोर्बहूनां परमाणुनां परस्परं बन्धो न भवति । एकगुणरूक्षस्यैकगुणरूक्षेण च

अधन्यगुण स्निग्ध दो परमाणुओ का अधन्य बहुत परमाणुओ का परस्परमें बन्ध नहीं होता । इसी प्रकार अधन्यगुण रूक्ष दो मा बहुत परमाणुओ का भी परस्पर में बन्ध नहीं होता । अधन्य का अर्थ यहाँ हीनतम समझना चाहिए । गुणशब्द यहाँ संख्या (डिग्री) का वाचक है, जैसे-एकगुण, दोगुण आदि पद एकसंख्यक द्विसंख्यक आदि अर्थ के वाचक हैं । स्निग्धता (चिकनाई) आदि गुणों की अधिकता और न्यूनता लोक में प्रसिद्ध है । जैसे पानी की अपेक्षा बकरी का रूप चिकना होता है । बकरी के दूधसे गौ का रूप अधिक चिकना होता है, और गौ के रूप की अपेक्षा भैंस का रूप अधिक चिकना होता है । इस प्रकार पानी आदिमें उत्तरोत्तर चिकनेपन की अधिकता है । इन्ही पानी आदि में पाँकेर बाला में चिकनेपनकी न्यूनता है । इस प्रकार एक गुण स्निग्ध का एक गुण स्निग्ध के साथ दो मा अधिक परमाणुओ का

अधन्य शुष्ण स्निग्ध के परमाणुओने अधन्य बहु परमाणुओने परस्पर अधन्य बन्धो नहीं अधन्यने अर्थ अर्द्ध हीनतम समजवो लेधेजे, शुष्ण शब्द अर्द्धि सञ्च (डिग्री) ने वाचक छे जेवी रीते जेठ अधन्य के अधन्य आदिपद जेठ सञ्चक द्विसंख्यक आदि अर्थनु वाचक छे स्निग्धता (चिकनाई) आदि शुष्णनी अधिकता अने न्यूनता लोकमें प्रसिद्ध छे जेठ पाणीनी अपेक्षाके बकरीनु रूप चिकनु जेठ छे बकरीना रूपकी आबनु रूप अने आबना रूपनी अपेक्षाके भैंसनु रूप बंधारे स्निग्ध (चिकनु) होय छे जे प्रभाजे पाणी आदिमा उत्तरोत्तर चिकना पाणी अधिकता छे

जे पाणी आदिमा पहेला-पहेलानामां चिकनापयानी न्यूनता छे जे प्रभाजे जेठ शुष्ण स्निग्धने जेठ शुष्ण स्निग्धनी साथे, तथा जे अधन्य अधिक परमाणुओने  
 प मा १५

स्कन्धाद् बहिर्गतस्य परमाणोरन्येन परमाणुना मयोगे द्वयणुकस्कन्ध उत्पद्यते । एव संयोग-विभागाभ्यामपि विविधाः स्कन्धा भवन्ति ।

### परमाणुनां बन्धस्य कारणम्—

परमाणुद्वयस्य परमाणुनां वा परस्परानुप्रवेशो न भवति, छिद्राभावात्, किन्तु तयोस्तेषां वा विस्रसागत्या परस्परं मयोगे सति स्निग्धरूक्षत्वगुण-सद्भावे परस्पर बन्धो भवति । ऐक्यपरिमाणो बन्धः । तत्रायं विशेषः—

स्कन्ध से अलग हुआ परमाणु जब दूसरे परमाणु के साथ मिलता है तो दोनों के मेलसे नवीन द्वयणुक उत्पन्न हो जाता है । इस प्रकार मयोग और विभाग के द्वारा भाँति-भाँति के स्कन्ध उत्पन्न होते ही रहते हैं ।

### परमाणुओं के बन्ध का कारण

दो या अधिक परमाणु एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि परमाणुओं में छिद्र नहीं होता, अलवत्त स्वाभाविक गति से दो या दो से अधिक परमाणुओं का परस्पर में संयोग होने पर उन में विद्यमान स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण उन का आपस में बन्ध हो जाता है । ऐक्यरूप परिणमन को बन्ध कहते हैं । बन्ध के सम्बन्ध में इतना विशेष समझना चाहिए—

स्कन्धर्था अलग थथेला परमाणु न्यारे भील परमाणुनी साथे भजे छे, तेनेना भणवाथी नवीन द्वयणुक उत्पन्न थाय छे अे प्रमाणु संयोग अने विभाग द्वारा तरेहु-तरेहुना स्कन्ध उत्पन्न थया करे छे

### परमाणुओंना बंधन कारण—

जे अथवा अधिक परमाणु एक भीलमा प्रवेश करी शकता नथी, डेभके परमाणुओंमा छिद्र नथी अलवत्त स्वाभाविक गतिथी जे अथवा जेथी अधिक परमाणुओंना परस्पर संयोग थवाथी तेमा विद्यमान स्निग्धता अने रूक्षताना गुणना कारणे तेना आपसमा बंध थर्थ जय छे ऐक्यरूप परिणमनने बंध कह्के छे बंधना संबंधमा अेटलु विशेष समझनु जेधजे के —

एव द्विगुणत समारम्भ यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धस्य पुद्गलस्य द्विगुणतः समारम्भ यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धेन सर्वेषु समगुणेन पुद्गलेन परस्परं बन्धा न भवति । तथा द्विगुणादिरूपस्य द्विगुणादिरूपस्य सर्वेषु समगुणेन याचनन्तगुणरूपेषु पुद्गलेन सह परस्परं बन्धो न भवति । यथा तुल्यबन्धगुणमूढयोरुभयोर्मध्ये परस्परं काऽपि कश्चिदभिहन्दु न प्रभवति ।

इत्थं च तुल्यसंख्यक स्निग्धत्वे सति स्निग्धस्य स्निग्धेन सह बन्धो न भवति, तुल्यसंख्यके रूपत्वे सति रूपस्य रूपेण सह बन्धा न भवतीति साक्षात् ।

अथ जघन्यस्निग्धस्य क्रीडशेन स्निग्धेन सह परस्पर बन्धो भवति ?

इसी प्रकार द्विगुण से केवल संख्यात असंख्यात और अनन्तगुण स्निग्ध पुराणका द्विगुण से केवल संख्यात असंख्यात और अनन्तगुण स्निग्धतावाले समगुण पुराण के साथ आपस में बन्ध नहीं होता । तथा द्विगुण आदि रूप समगुणवाले किसी भी पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है । जैसे—समान बलवाले दो मछों में से कौन किसी को पकड़ित नहीं कर सकता ।

इस प्रकार समान स्निग्धता होने पर स्निग्ध पुराणका स्निग्ध पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है और समान रूपता होने पर रूपका रूपके साथ भी बन्ध नहीं होता है ।

संका—जघन्य स्निग्ध का किस प्रकार के स्निग्ध पुराण के साथ परस्पर बन्ध होता है ?

जैसे प्रमाणा द्विगुणकी लक्ष्मी संख्यात, असंख्यात जाने अनन्तगुण स्निग्ध पुद्गलने द्विगुणकी लक्ष्मी संख्यात, असंख्यात, जाने अनन्तगुण स्निग्धतावाला समगुण पुद्गलकी साथ आपसभा लभ भवते नहीं तथा द्विगुण आदि रूप पुद्गलने द्विगुण आदि रूप समगुणवाला कोई पक्ष पुद्गलकी साथ लभ भवते नहीं । जैसा समान जगवाण के मस्तीभाषी केरु केरुने पराकृत करी शकता नहीं ।

जैसे प्रमाणा समान स्निग्धता होवा कर्ताथि, स्निग्ध पुद्गलने स्निग्ध पुद्गलकी साथ लभ भवते नहीं, जाने समान रूप होवा कर्ताथि रूपने रूपकी साथ पक्ष लभ भवते नहीं ।

शंका—जघन्य स्निग्ध पुद्गलने क्या प्रकारका स्निग्ध पुद्गलकी साथ परस्पर लभ भवते ?

द्वयोर्वहना वा परमाणुनां परस्परं बन्धो न भवतीति फलितम् ।

ननु परमाणुना सत्यपि संयोगे बन्धकाग्णीभूतस्निग्धत्ववृत्तवयोश्च सद्भावे कथं न जायते परस्परमेकत्वपरिणतिलक्षणो बन्धः ? इति ।

परमाणुस्तादृशपरिणमनशक्तेरभावात् । परिणामशक्तयश्च द्रव्याणा विचित्र-  
रूपाः क्षेत्रकालाद्यनुरोधेन प्रयोगविज्ञसापेक्षाः प्रभवन्ति । जघन्यगुणत्वेन  
दोर्वल्यादेव स्नेहो रूक्षो वा कञ्चिद् पुद्गलं परिणामयितु न समर्थः । यथा-  
तुल्यदुर्बलगुणमह्योरुभयोर्मध्ये परस्पर कोऽपि कञ्चिदभिहन्तुं न प्रभवति, तस्मान्न-  
जघन्यगुणानां परस्परं बन्धो न भवतीति सिद्धम् ।

परस्पर बन्ध नहीं होता, और एक गुण रूपका एक गुण रत्न के साथ दो या अधिक  
परमाणुओं का परस्पर बन्ध नहीं होता, यह सिद्ध हुआ ।

शंका—परमाणुओं का संयोग मौजूद होने पर भी, और बन्ध के कारणमूल  
स्निग्धत्व तथा रूक्षत्व के विद्यमान होने पर भी बन्ध—एकतारूप परिणमन क्यों नहीं होता ?

समाधान—परमाणु मे इस प्रकार के परिणमन की शक्ति का अभाव है । द्रव्यों की  
परिणमन शक्तियाँ क्षेत्र और काल के अनुरोध से प्रयत्न तथा स्वभाव की अपेक्षा रसती हुई  
नाना प्रकार की होती है । जघन्य गुणवाला होने के कारण निर्बल होने से स्निग्ध या रूक्ष  
परमाणु किसी पुद्गल को परिणत करने में समर्थ नहीं होता, जैसे समान दुर्बलतावाले दो  
मछों में से कोई किसी को पराजित नहीं कर सकता । अत एव यह सिद्ध हुआ कि जघन्य  
गुणवालों का परस्पर में बन्ध नहीं होता ।

परस्पर भेद थतो नथी, अने ऐकशुष्प इक्षनेो ऐकशुष्प इक्षनी साथे भे अथवा  
अधिक परमाणुओंको परस्पर भेद थतो नथी

शंका—परमाणुओंको संयोग मौजूद होवा छताय पणु, अने भेदना कारणमूल  
स्निग्धत्व (चिकुषुपणु) तथा इक्षत्व (दूभापणु) विद्यमान होवा छताय भेद-  
ऐकताइय परिणमन कैम थतु नथी ?

समाधान—परमाणुओंके प्रकारनी परिणमननी शक्तिने अभाव छे, द्रव्यनी  
परिणमन शक्तिओ क्षेत्र अने कालना अनुरोधथी, प्रयत्न तथा स्वभावनी अपेक्षा  
राथती थकी नाना प्रकारनी थाय छे जघन्य शुष्पवाणा होवाना कारणे, निर्बल  
होवाथी स्नेह अथवा इक्ष परमाणु केई पुद्गलने परिणत करवाना समर्थ थतु नथी  
ऐवी रीते समान दुर्बलतावाणा भे मद्धोभाथी केई केईने पराजित करी शकता  
नथी. ऐटला कारणथी सिद्ध थतु के-जघन्य शुष्पवाणाओंको परस्पर भेद थतो नथी



एवमुक्तपुत्रया द्विगुणादिस्निग्धस्य स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणस्निग्धेन सह बन्धो न भवति । द्विगुणस्निग्धस्यैकाधिकद्विगुणस्निग्ध द्विगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणस्निग्ध एकाधिकः, इति हेतुर्द्विगुणस्निग्धस्य त्रिगुणस्निग्धेन सह बन्धो न भवति । इत्थं च स्निग्धपुद्गलस्यैकाधिकगुणस्निग्धपुद्गलेन सह बन्धो न भवतीति सारः ।

द्विगुणादिस्निग्धस्य इयधिकद्विगुणस्निग्धेन बन्धो भवति । यथा द्विगुणस्निग्धस्य इयधिकचतुर्गुणस्निग्ध । त्र्यधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, चतुरधिकः

पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार द्विगुण आदि स्निग्ध का अपनी अपनी अपेक्षा से एक गुण अधिक स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता । द्विगुण स्निग्ध से एक अधिक का बन्ध है—द्विगुण स्निग्ध, त्रिगुण स्निग्ध से एक अधिक चतुर्गुण स्निग्ध सनहना चाहिये । इस रीति से अन्तः गुण स्निग्ध भी आपन से एक गुण हीन स्निग्ध की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध है । अतः द्विगुण स्निग्ध का त्रिगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता । सारांश यह है कि—स्निग्ध पुद्गल का एक गुण अधिक पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता ।

द्विगुण स्निग्ध आदि का दो गुण अधिक बर्बात् चार गुण स्निग्ध के साथ बन्ध हो जाता है, जब दो गुण स्निग्ध से दो गुण अधिक स्निग्ध का

पूर्वोक्त युक्ति प्रमाणे द्विगुण आदि स्निग्धो घात-घातानी अपेक्षाधी कोष्ठ शुद्ध अधिक स्निग्ध साथे लभ्यते नही । द्विगुण स्निग्धधी कोष्ठ अधिकने लभ्यं छे—त्रिगुण स्निग्ध अने त्रिगुण स्निग्धधी कोष्ठ अधिक चतुर्गुण स्निग्ध समकथे कोष्ठजे । जे प्रमाणे अनन्त शुद्ध स्निग्ध पक्ष घातजाधी कोष्ठ शुद्ध हीन स्निग्धनी अपेक्षाधी कोष्ठ शुद्ध अधिक स्निग्ध छे तेही द्विगुण स्निग्धो त्रिगुण स्निग्धनी साथे लभ्यते नही । सारांश जे छे छे—स्निग्ध पुद्गलने कोष्ठ शुद्ध अधिक स्निग्ध पुद्गलनी साथे लभ्यते नही ।

द्विगुण स्निग्ध आदिने जे शुद्ध अधिक बर्बात् चार शुद्ध स्निग्धनी साथे लभ्यं लभ्यं छे । जेभ-जे शुद्ध स्निग्धधी जे शुद्ध अधिक स्निग्धने लभ्यं चार

अत्रोच्यते—जघन्यस्निग्धस्य द्व्यधिकत्र्यधिकादिना स्निग्धेन वन्धो भवति, यथा एकगुणस्निग्धस्य परमाणुपुद्गलस्य त्रिगुणस्निग्धेन परमाणुपुद्गलेन सह संयोगे सति वन्धो भवति । एव एकगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणपञ्चगुणयावत्संख्यातासंख्यातानन्तगुण स्निग्धेन सह वन्धः ।

एकगुणस्निग्धस्यकाधिकगुणस्निग्धेन (द्विगुणस्निग्धेन) तु न वन्धः, द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन च स्निग्धपुद्गलस्य वन्धविधानात् । एकाधिकगुणस्निग्धस्य पुद्गलस्य प्रतिविशिष्टपरिणमनशक्तेरभावात् । एकगुणस्निग्धस्यैकाधिको द्विगुणस्निग्धः ।

**समाधान—**जघन्य स्निग्ध पुद्गल का दो गुण (डिगरी) या तीन गुण अधिक स्निग्धतावाले पुद्गल के साथ वन्ध होता है । जैसे एक गुण स्निग्धतावाले परमाणु का तीन गुण स्निग्धता वाले परमाणु के साथ संयोग होने पर वन्ध हो जाता है । इसी प्रकार एक गुण (एक अंग) स्निग्धका चार, पांच, यहाँ तक कि सख्यात, असख्यात एवं अनन्त गुण स्निग्ध के साथ वन्ध होता है ।

एक गुण स्निग्धका एक अधिक गुण स्निग्ध अर्थात् द्विगुण स्निग्ध के साथ वन्ध नहीं होता, क्योंकि दो गुण अधिक स्निग्धका स्निग्ध पुद्गल के साथ वन्ध बतलाया गया है । एक गुण अधिक स्निग्ध पुद्गल में विशेष प्रकार के परिणमन की शक्ति नहीं है । एक गुण स्निग्धतावाले की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध जहाँ कहा जाय वहाँ दो गुण स्निग्धतावाला पुद्गल समझ लेना चाहिये ।

**समाधान—**जघन्य स्निग्ध पुद्गलना जे शुष्ण (डिग्री) अथवा त्रुष्ण शुष्ण अधिक स्निग्धतावाणा पुद्गलनी साथे अथ त्रुष्ण शुष्ण (डिग्री) स्निग्धतावाणा परमाणुनो त्रुष्ण शुष्ण (डिग्री) स्निग्धतावाणा परमाणुनी साथे संयोग थई नथ तो अथ थई नथ छे तेवी रीते अथ शुष्ण (डिग्री) (अथ) स्निग्धताना चार, पांच, त्या सुधी छे सख्यात असख्यात अथ प्रमाणे अनन्त शुष्ण स्निग्धनी साथे अथ थय छे ।

अथ शुष्ण स्निग्धतानो अथ अधिक शुष्ण स्निग्ध अर्थात् द्विशुष्ण स्निग्धनी साथे अथ थतो नथी, केमके जे शुष्ण अधिक स्निग्धना स्निग्ध पुद्गलनी साथे अथ गताव्ये छे, अथ शुष्ण अधिक स्निग्ध पुद्गलमा विशेष प्रकारना परिणमननी शक्ति नथी अथ शुष्ण (डिग्री) स्निग्धतावाणानी अपेक्षा अथ शुष्ण (डिग्री) अधिक स्निग्ध न्या कडेवाय त्या जे शुष्ण (डिग्री) स्निग्धतावाणा पुद्गल समझ लेवा जेथजे ।

अधन्यगुण (एकगुण) स्निग्धस्य अजधन्यगुण (द्विगुणाद्यन्तगुणपर्यन्त) -स्निग्धस्म वा स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणरूपेण, पुनः स्वस्वापेक्षया द्वयधिक-त्रयधिक-चतुरधिकानि गुणस्यैवापि बन्धो भवति । उक्तञ्च भगवता प्रज्ञापनामूत्रे-(१३)-प्रयोदशे परिणामपदे-"बंधवपरिणामे णं मते ! कश्चिद्दे पच्यते ?, सोपमा ! दुषिद्दे पच्यते, तंजहा-गिद्धवषणपरिणामे य लुक्त्वबंधवपरिणाम य ।"

समण्डियाप बन्धो, न होइ समलुक्त्वयापनि ण होइ ।

वेमायबिद्धलुक्त्व-सणेष बधो उ संघर्षाणं ॥१॥

छया-बन्धनपरिणामो भवन्त ! कतिविधः मङ्गलः ?, गौतम !

द्विविधः मङ्गलस्तथा-स्निग्धबन्धनपरिणामश्च, स्थानबन्धनपरिणामश्च ।

समस्निग्धतायां बन्धो न भवति, समरुक्षतायामपि न भवति ।

विमात्रस्निग्धरुक्षत्वेन, बन्धस्तु स्तूपानाम् ॥ १ ॥

नहीं होता । अल्प गुण ( एकगुण ) स्निग्ध का बंधवा अधन्य गुण ( दो से ज्यादा अन्त गुण तक ) स्निग्ध का अपने से एक गुण अधिक रुक्ष के साथ बन्ध होता है । और अपने अपने से दो अधिक तीन अधिक, चार अधिक आदि रुक्ष पुत्रम के साथ भी बन्ध होता है । भगवान् ने प्रज्ञापना सूत्र के १३ वें परिणाम पदमें कहा है—

प्रश्न—"भगवान् ! बन्ध परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?"

उत्तर—गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है—(१) स्निग्धबन्धनपरिणाम और

(२) रुक्षबन्धनपरिणाम ।

समान स्निग्धता या समान रुक्षता होने पर बन्ध नहीं होता है, किन्तु विमात्र-अर्थात् अधिक का हीनके साथ और हीनका अधिक के साथ चाहे व स्निग्ध हो या रुक्ष हो बन्ध हो जाता है ॥ १ ॥

नभी अधन्य शुष्ण (कोष्ठ शुष्ण) स्निग्धेनो अथवा अजधन्य (मिथी लडने अन्त शुष्ण सुधी) स्निग्धेनो पीतानाथी कोष्ठ शुष्ण अधिक रुक्षनी साथे लध धाय छे जने पीतपीतानी के अधिक त्रयु अधिक चार अधिक आदि रुक्ष पुत्रमलनी साथे पक्ष लध धाय छे अजधने प्रज्ञापना सूत्रना १३वा पदियुम पदमां ठडेह छे—

प्रश्न—अजधनी अ धन-परिष्कार केटवा प्रकारनां कथां छे ?

उत्तर—गौतम ! के प्रकारना ठडेवा छे—(१) स्निग्धबन्धनपरिष्कार जने

(१) रुक्षबन्धनपरिष्कार.

समान स्निग्धता अथवा समान रुक्षता होय तो लध बते नहीं परतु विमात्र अर्थात् अधिकने हीननी साथे जने हीननी आधिकनी साथे बते ते स्निग्ध होय के रुक्ष होय, लध बर्ध लय छे ॥ १ ॥

पङ्गुणस्निग्धः, इत्यादि । त्रिगुणस्निग्धस्य द्व्यधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, त्र्यधिकः  
 पङ्गुणस्निग्धः, चतुरधिकः सप्तगुणस्निग्ध, इत्यादि । चतुर्गुणस्निग्धस्य द्व्यधिकः  
 पङ्गुणस्निग्धः, त्र्यधिकः सप्तगुणस्निग्धः चतुरधिकः— अष्टगुणस्निग्धः । एव  
 पञ्चगुणस्निग्धादिसंख्यातासख्यातानन्तगुणस्निग्धपर्यन्तस्य द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन  
 सह बन्धो भावनीयः ।

एवं जघन्यगुणरूक्षस्य, अजघन्यगुणरूक्षस्य च बन्धव्यवस्था वीध्या ।

विसदृशपुद्गलबन्धः—

अथ विसदृशपुद्गलयोर्बन्धे कीदृशी व्यवस्था ?

उच्यते—जघन्यगुणस्निग्धस्य, जघन्यगुणरूक्षेण सह बन्धो न भवति ।

अर्थ चार गुण स्निग्ध, तीन गुण अधिक का अर्थ पाच गुण स्निग्ध, चार गुण अधिक  
 का अर्थ छह गुण स्निग्ध, इत्यादि समझना चाहिए । चतुर्गुण स्निग्ध से द्व्यधिक—  
 पङ्गुण स्निग्ध, त्र्यधिक—सप्तगुण स्निग्ध, चतुरधिक—अष्टगुण स्निग्ध समझना चाहिए ।  
 इस प्रकार पञ्चगुण स्निग्ध आदि से सख्यात, असंख्यात अनन्त गुण स्निग्ध को दो गुण  
 अधिक स्निग्ध के साथ बन्ध होता है । इस प्रकार जघन्य गुण रूक्ष का अजघन्य गुण रूक्ष  
 के साथ बन्ध की व्यवस्था जाननी चाहिए ।

विसदृश पुद्गलों का बन्ध—

प्रश्न—विसदृश अर्थात् परस्पर विरोधी पुद्गलों के बन्ध की क्या व्यवस्था है ?

उत्तर—जघन्य गुण स्निग्ध का जघन्य गुण वाले रूक्ष पुद्गलके साथ बन्ध

शुष्ण स्निग्ध, त्रिषु शुष्ण अधिकतमो अर्थ पाच शुष्ण स्निग्ध, चार शुष्ण अधिकतमो  
 अर्थ छ शुष्ण स्निग्ध, ये प्रमाणे समञ्जसु जेष्ठये अतुशुष्ण स्निग्धेर्द्व्यधिक  
 पङ्गुण स्निग्ध, त्र्यधिक सप्तशुष्ण स्निग्ध अतुरधिक अष्टशुष्ण स्निग्ध समञ्जसु  
 जेष्ठये, ये प्रमाणे पाच शुष्ण स्निग्ध आदिर्द्वी सख्यात, असख्यात अनन्तशुष्ण  
 स्निग्धना ये शुष्ण अधिक स्निग्धनी साथे भध धाय छे ये प्रमाणे जघन्य शुष्ण  
 रूक्षनी अजघन्य शुष्ण रूक्षनी साथे भधनी व्यवस्था लक्ष्मी जेष्ठये

विसदृश पुद्गलानां भध—

प्रश्न—विसदृश अर्थात् परस्परविरोधी पुद्गलानां भधनी शु व्यवस्था छे ?

उत्तर—जघन्य शुष्ण स्निग्धना जघन्य शुष्णवाणा पुद्गलानी साथे भध यती

॥ परमाणुबन्धव्यवस्थाकोष्टकम् ॥

अधन्यगुण-( एकगुण )-स्निग्ध-  
रूपयोर्बन्धव्यवस्था ।

स्निग्धरूपसंख्या	सद्विधानाम्		विसद्विधानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रूपस्य + रूपेण सह	स्निग्धस्य + रूपेण सह
अधन्यस्य (एकगुणस्य) अधन्येन (एकगुणेन) सह	बन्धामाद्यः	बन्धामाद्यः	बन्धामाद्यः
अधन्यस्य (एकगुणेन) + एकाधिकेन (द्विगुणेन) सह	बन्धामाद्यः	बन्धो भवति	बन्धो भवति
अधन्यस्य (एकगुणस्य) + द्वयधिकादिगुणेन (त्रिगुण- चतुर्गुणतः समारभ्य यावद् अनन्तगुणेन) सह	बन्धो भवति	बन्धो भवति	बन्धो भवति

अधन्यगुण-( द्विगुणादि )-स्निग्धरूपयोर्बन्धव्यवस्था

स्निग्धरूप-संख्या	सद्विधानाम्		विसद्विधानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रूपस्य + रूपेण सह	स्निग्धस्य + रूपेण सह
द्विगुणस्य + द्विगुणेन सह	बन्धामाद्यः	बन्धामाद्यः	बन्धो भवति
द्विगुणस्य + एकाधिकेन (त्रिगुणेन) सह	बन्धामाद्यः	बन्धामाद्यः	बन्धो भवति
द्विगुणस्य + द्वयधिकादिगुणेन (चतुर्गुणतः समारभ्य यावद् अनन्तगुणेन) सह	बन्धो भवति	बन्धो भवति	बन्धो भवति

एवम् अधन्यगुण-(त्रिगुणचतुर्गुणतः समारभ्य अनन्तगुणपर्यन्त)-स्निग्धरूपयोः  
समगुणन, एकाधिकगुणेन, द्वयधिकादिगुणेन च सह बन्धव्यवस्था भावनीया ॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुयाहिण्ण,  
 लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिण्ण ।  
 णिद्धस्स लुक्खेण उवेइ बन्धो,  
 जहण्णवज्जो विसमो समो वा ॥२॥  
 (प्रज्ञा० पद-१३)

छाया—स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विकाधिकेन,  
 रूक्षस्य रूक्षेण द्विकाधिकेन ।  
 स्निग्धस्य रूक्षेण उपैति बन्धो,  
 जघन्यवर्जो विषमः समो वा ॥२॥” इति,  
 विसदृशस्य बन्धमाह—“णिद्धस्स लुक्खेण” इत्यादि ।

स्निग्धस्य रूक्षेण सह बंध उपैति=उपगतो भवति, जायत इत्यर्थः ।  
 यदि परमाणुर्जघन्यवर्जो विषमो समो वा भवेत् ॥२॥  
 परमाणूनां बन्धव्यवस्थाकोष्ठकमग्रेऽवलोकनीयम् ।

दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ स्निग्ध का बन्ध होता है । और दो गुण अधिक रूक्ष के साथ रूक्षका बन्ध होता है । अब विसदृश बन्धको कहते हैं—“णिद्धस्स लुक्खेण” इत्यादि । जघन्य गुणवाले परमाणु को छोड़कर फिर चाहे वह विषम हो या सम हो स्निग्ध का रूक्ष के साथ बन्ध होता है ।

परमाणुओं की बन्धव्यवस्था का कोष्ठक पृष्ठ १२१ देख लें ।

ये शुष्ण अधिक स्निग्ध साथे स्निग्धनो अथ थाय छे अने ये शुष्ण अधिक रूक्षनी साथे रूक्षनो अन्ध थाय छे हवे विसदृश अन्ध कडे छे—“णिद्धस्स लुक्खेण” इत्यादि जघन्य शुष्णवाणा परमाणुने छोडीने पीला गमे ते विषम होय अथवा सम होय ते स्निग्धनो रूक्षनी साथे अथ थाय छे

परमाणुओंकी अन्धव्यवस्थानु केपठक पेज १२१मा लेख देखु ।

इन्द्रियर्षचक्रम्, मनोवाक्कृत्तयबलप्रयम्, श्वासोच्छ्वासरूपः१, आयुर्भेदि१ । एते दस प्राणाः संसारिणां यथासम्बन्धं भवन्ति । नारकस्त्रियगादयः संसारिणां द्रव्यप्राणैरपि प्राचिनः । व्यपगतसमस्तकर्मसम्बन्धाः सिद्धास्तु केषमभावप्राणैरपि प्राचिनः सन्ति । भावप्राणाश्चतुर्विधा—अनन्तज्ञानम् १, अनन्तवीर्यम् २, अनन्तसुखम् ३, अनाद्यनन्तस्थितिरिच्छा ४ । तत्रानन्तज्ञानात् क्षयोपशमिकषत्रेन्द्रियाणि, अनन्तवीर्यरूपभावप्राणस्यानन्तज्ञानेन मनोवाक्कृत्तयबलप्रयम्, अनन्तसुखाच्च—श्वासोच्छ्वासरूपः प्राणः समुद्भवति, तथा अनाद्यनन्तस्थितिरूप—भावप्राणतः सादि—सान्त्वय्य आयुःप्राणो जायते । एवं द्रव्यप्राणानां कारणं भावप्राणा इत्यवचेयम् ।

दशमेव हैं—पांच इन्द्रियों, तीन बल—मनोबल, वचनबल और कृत्यबल, श्वासोच्छ्वास १ तथा आयु १ ये दस द्रव्यप्राण यथासम्बन्ध संसारी जीवों के होते हैं । नारकी स्थितच आदि संसारी जीवों में भी द्रव्यप्राण पाये जाते हैं किन्तु उन प्रकार के कर्म—संबन्ध से रहित सिद्धों में सिर्फ भावप्राण ही होते हैं । सिद्ध जीव भावप्राणों के कारण ही प्राणी कहलाते हैं ।

भाव प्राणके चार भेद हैं—अनन्तज्ञान १ अनन्तवीर्य २ अनन्तसुख ३ और अनन्तस्थिति ४ । क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली पांच इन्द्रियों अनन्त ज्ञान का विकार ( वैसाविक परिणामन ) है, मन, वचन और कृत्य—मन अनन्तवीर्यरूप भावप्राणका विकार है, श्वासोच्छ्वास अनन्तसुखरूप भावप्राणका विकार है, और सादिमान्त आयुर्रूप द्रव्यप्राण अनादि—अनन्तस्थितिरूप भावप्राणका विकार है । इस प्रकार भावप्राण द्रव्यप्राणों के कारण है ।

इस लेख में—पांच इन्द्रियों, त्रय बल अर्थात् मनोबल, वचनबल और कृत्यबल श्वासोच्छ्वास तथा आयु । यह दस द्रव्यप्राण आधातरण रीति संसारी जीवों में होते हैं । नारकी स्थितच आदि संसारी जीवों में पांच द्रव्यप्राण होना ही परन्तु सर्व भक्षरना हम—संबन्धों रहित सिद्धियों में मात्र भावप्राण ही होते हैं सिद्ध रूप भावप्राणों का कारण ही प्राणी कहलाते हैं ।

भावप्राणों का चार भेद है—अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य अनन्त सुख और अनादि अनन्त स्थिति, क्षयोपशमधी उत्पन्न तथा वाली पांच इन्द्रियों अनन्त ज्ञानके विकार ( वैसाविक परिणामन ) है, मन, वचन और कृत्यबल अनन्त वीर्यरूप भाव प्राणों का विकार है श्वासोच्छ्वास से अनन्तसुखरूप भावप्राणों का विकार है; और सादि—सान्त्वय्य आयुर्रूप द्रव्यप्राण, अनन्त स्थितिरूप भावप्राणों का विकार है ये प्राणों का कारण है, इ प्राणों का कारण है ।

અથ જીવાસ્તિકાયઃ—

જીવશબ્દાર્થઃ—

જીવતિ પ્રાણાન્ ધારયતીતિ જીવઃ । ન ચ સિદ્ધાનાં પ્રાણસમ્બન્ધા-  
ભાવાદજીવત્વાપત્તિરિતિ વાચ્યમ્ , ' પ્રાણાન્ ધારયતી '—ત્યત્ર પ્રાણસામાન્યવિવક્ષ્યા  
પઠ્ઠ્વેન્દ્રિયપ્રમૃતિદશવિધદ્રવ્યપ્રાણાનામસત્ત્વેऽપિ સિદ્ધાનાં ભાવપ્રાણસદ્ભાવેન જીવત્વ-  
સિદ્ધેરવ્યાહતત્વાત્ । પ્રતિવિશિષ્ટપ્રાણસમ્બન્ધે સતિ જીવનાઽજીવશબ્દઃ પ્રવર્તતે ।

પ્રાણા દ્વિવિધાઃ—દ્રવ્યપ્રાણાઃ, ભાવપ્રાણાશ્ચ । તત્ર દ્રવ્યપ્રાણા દશવિધાઃ

જીવાસ્તિકાય—

જીવશબ્દકા અર્થ—

જો જીતા છે અર્થાત્ પ્રાણોં કો ધારણ કરતા છે, વહ જીવ કહલાતા છે । 'સિદ્ધો  
મેં પ્રાણોં કા અભાવ હોને સે વે અજીવ હો જાયેંગે' યહ કહના ઠીક નહીં છે । 'જો  
પ્રાણોં કો ધારણ કરતા છે' ઇસ કથન મેં પ્રાણ-સામાન્ય કી વિવક્ષા કી ગઈ છે । સિદ્ધોં  
મેં યદપિ પાચ-ઇન્દ્રિય આદિ દસ પ્રકાર કે દ્રવ્યપ્રાણ નહીં છે, તથાપિ ભાવ-પ્રાણ  
પાયે જાતે છે, ઓર ઇન ભાવ-પ્રાણોં કે કારણ સિદ્ધ ભગવાન્ કા જીવન સિદ્ધ હો  
જાતા છે । વિશિષ્ટ પ્રકાર કે પ્રાણોં કા સમ્બન્ધ હોને પર જીને વાલે કો  
જીવ કહતે છે ।

પ્રાણ દો પ્રકાર કે છે—(૧) દ્રવ્યપ્રાણ ઓર (૨)—ભાવપ્રાણ । દ્રવ્યપ્રાણોં કે

જીવાસ્તિકાય—

જીવ શબ્દનો અર્થ—

જે જીવે છે અર્થાત્ પ્રાણોંને ધારણ કરે છે, તે જીવ કહેવાય છે । 'સિદ્ધોંમા  
પ્રાણોંનો અભાવ હોવાથી તે અજીવ થઈ જશે,' એમ કહેવું તે ઠીક નથી । 'જે  
પ્રાણોંને ધારણ કરે છે' એમ કહેવામા પ્રાણ-સામાન્યની વિવક્ષા કહી છે સિદ્ધોંમા  
જે કે પાચ ઇન્દ્રિયોં આદિ દસ પ્રકારના દ્રવ્ય-પ્રાણ નથી, તે પણ ભાવ-પ્રાણ  
હોય છે, અને તે ભાવ-પ્રાણોંના કારણે સિદ્ધ ભગવાનનું જીવન સિદ્ધ થાય છે  
વિશિષ્ટ પ્રકારના પ્રાણોંનો સમ્બન્ધ હોવાના કારણે જીવવા વાળાને જીવ કહે છે

પ્રાણ બે પ્રકારના છે—(૧) દ્રવ્ય-પ્રાણ અને (૨) ભાવ-પ્રાણ, દ્રવ્ય પ્રાણોંના



भवन्ति, अत एवात्मपर्यायवर्ची भाव पञ्चविधो भवति—(१) औपशमिकः, (२) क्षायिकः, (३) क्षायोपशमिकः, (४) औदयिकः, (५) पारिजामिकमेति ।

(१) औपशमिकभावः—

(१) मोहनीयकर्मणा मग्नावच्छन्नबहिस्यनुद्रेकावस्था, प्रवेशताऽप्यु-  
दयाभावश्च उपशमः । उद्रेकरूपेण प्रवेशरूपेण च द्विविधस्याप्युदयस्य यथाशक्ति  
निरोधः । इत्यम्पूतञ्चोपशमः सर्वोपशम उच्यते । उपशमेन निर्हित औपशमिकः—  
क्रोधादिकपायोदयाभावरूपोपशमस्य फलस्यो जीवस्य परमज्ञान्तावस्थात्क्षण-  
परिणामविशेष । स चात्मना शुद्धिविशेष । यथा—कतकचूर्णप्रक्षेपेण पङ्कादि-

पाप प्रकारका है—(१)—औपशमिक (२)—क्षायिक, (३)—क्षायोपशमिक (४)—औदयिक  
और (५)—पारिजामिक ।

(१) औपशमिक भावः—

रस से ईंकी हुई अग्नि के समान मोहनीय कर्म की अनुद्रेक अवस्था एवं  
प्रवेश की अपेक्षा भी उदय न होना उपशम कहलाता है । अर्थात् उद्रेकरूप से, तथा  
प्रवेशरूप से—दोनों प्रकार के उदय का यथाशक्ति रूकना उपशम है । इस प्रकार का  
उपशम सर्वोपशम कहलाता है । जो उपशम स हो उसे औपशमिक कहते हैं ।  
अर्थात् क्रोध आदि कृपाया के उदयमात्ररूप उपशम का फलरूप जीव उसका परमज्ञान्त  
अवस्थाकूप परिणाम औपशमिक कहलाता है । यह आत्मा की एक प्रकार की शुद्धि है ।  
वैसे कि—कतकचूर्ण ( निर्मलकण्ड का चूर्ण ) तथा किरकड़ी आदि का चूरा रखने से अकका

प्रकारना से (१) औपशमिक (२) क्षायिक (३) क्षायोपशमिक (४) औदयिक अने  
(५) पारिजामिक

(१) औपशमिक भावः—

राजसी शक्ति आग्नि समान मोहनीय कर्मनी अनुद्रेक अवस्था, जो  
प्रवेशनी अपेक्षा पञ्च उदय न होना उपशम कहलाता है । अर्थात् उद्रेकरूपी  
तथा प्रवेशरूपी—दोनों प्रकार के उदय का यथाशक्ति रूकना उपशम है । इस प्रकार का  
उपशम सर्वोपशम कहलाता है । जो उपशम स हो उसे औपशमिक कहते हैं ।  
अर्थात् क्रोध आदि कृपाया के उदयमात्ररूप उपशम का फलरूप जीव  
परम ज्ञान्त अवस्थाकूप परिणाम औपशमिक कहलाता है ।

जो आत्मान्ता जोके प्रकारनी शुद्धि है, जेभके कतकचूर्ण ( निर्मलकण्डचूर्ण ) तथा

अथ जीवस्य स्वरूपम्—

औपशमिकादिभाववान्, असंख्यातप्रदेशी, परिणामी, लोकाकाशव्यापी प्रदीपवत् संकोचविकासशीलः, व्यक्तिरूपेणानन्तोऽव्यण्डः, क्रियाशीलः, प्रदेश-समुदायरूपो, नित्यो, रूपरहितोऽवस्थितोऽमूर्तः सन्नपि संसारावस्थायां मूर्त इव प्रतीयमानः, ऊर्ध्वगतिशील आत्मा जीवः ।

अथ भावस्त्वद्भेदाच्च—

‘अथौपशमिकादिभाववान् जीवः’ इत्युक्तम्, तत्र कस्तावद्भावः ? श्रूयताम्—  
आत्मपर्यायाणामवस्थैव भावाः । आत्मपर्यायाश्चावस्थामेदेन विविधरूपा

जीव का स्वरूप—

औपशमिक आदि भावोंवाला, असख्यातप्रदेशी, परिणामी, प्रदीपप्रभाके समान संकोच-विकास स्वभाव वाला, व्यक्तिरूप से अनतसत्यक, क्रियाशील, प्रदेशसमुदायरूप, नित्य, अरूपी, अवस्थित, अमूर्त होने पर भी ससारी अवस्था में मूर्त जैसा प्रतीत होने वाला, ऊर्ध्वगमनस्वभाववाला आत्मा जीव कहलाता है ।

भाव और भाव के भेद—

प्रश्न—जीव का स्वरूप बतलाते हुए उसे औपशमिक आदि भावों वाला कहा है सो भाव क्या वस्तु है ?

उत्तर—सुनिये, आत्मा के पर्यायों की अवस्था ही भाव कहलाती है । आत्मा के पर्याय, अवस्थाओं के भेद से नाना प्रकार के होते हैं, अत आत्मपर्यायवर्ती भाव

एवमु स्वरूप

औपशमिक आदि भावों वाणा, असंख्यातप्रदेशी, परिणामी, प्रदीपप्रभाना समान संकोच-विकास स्वभाववाणा, व्यक्तिरूपधी अनतसत्यक, क्रियाशील, प्रदेश समुदायरूप, नित्य, अरूपी, अवस्थित, अमूर्त भावा छतय ससारी अवस्थामा मूर्त जैसा देखावावाणा, ऊर्ध्वगमन स्वभाववाणा आत्मा एव कहेवाय छे

भाव अने भावना भेद—

प्रश्न—एवमु स्वरूप अतावता थका तेने औपशमिक आदि भावोंवाणा कहेल छे, ते भाव शु वस्तु छे ?

उत्तर—साक्षणे, आत्माना पर्यायेनी अवस्था न भाव कहेवाय छे आत्माना पर्याय, अवस्थाओंना भेदधी नाना प्रकारना भाव छे, तेधी आत्मपर्यायवर्ती भाव वाय

भवन्ति, अत एवात्मपर्यायवर्ची भावः पञ्चविधो भवति—(१) औपशमिकः, (२) क्षायिकः, (३) क्षायोपशमिकः, (४) औदयिकः, (५) पारिणामिकमेति ।

(१) औपशमिकभावः—

(१) मोहनीयकर्मणो भस्मावच्छभवद्विषदजुद्रेकावस्था, प्रदेष्टतोऽप्यु-  
दयामात्रम उपशमम् । उद्रेकरूपम प्रदेष्टरूपेण च द्विविधस्याप्युदयस्य यथाशक्ति  
निरोधः । इत्यन्युत्थोपशमः सर्वोपशम उच्यते । उपशमेन निर्हित औपशमिकः-  
क्षोपादिकपायोदयामावरूपोपशमस्य फलस्यो जीवस्य परमशान्तावस्थाखल्लग-  
परिणामविशेषः । स चात्मनः शुद्धिविशेषः । यथा—कृतकषूणमक्षेपेण पङ्कादि-

पाप प्रकारका है—(१)—औपशमिक (२)—क्षायिक (३)—क्षायोपशमिक (४)—औदयिक  
और (५)—पारिणामिक ।

(१) औपशमिक भावः—

रास से ऐंकी हुई अग्नि के समान मोहनीय कर्म की अनुद्रेक अवस्था एवं  
प्रदेश की अपेक्षा भी उदय न होना उपशम कहलता है । अर्थात् उद्रेकरूप से, तथा  
प्रदेशरूप से—दोनों प्रकार के उदय का समाप्तिक रूकना उपशम है । इस प्रकार का  
उपशम सर्वोपशम कहलता है । जो उपशम से हो उसे औपशमिक कहते हैं ।  
अर्थात् क्रोध आदि कषायों के उदयमात्ररूप उपशम का फलरूप भी उद्रेक परमशान्त  
अवस्थाकूप परिणाम औपशमिक कहलता है । यह आत्मा की एक प्रकार की शुद्धि है ।  
जैसे कि—कृतकषूर्ण (निर्मलैकल का चूर्ण) तथा किरकड़ी आदि का चूरा डालने से बलका

प्रकारना से (१) औपशमिक (२) क्षायिक (३) क्षायोपशमिक (४) औदयिक अने  
(५) पारिणामिक

(१) औपशमिक भावः—

राजधी डकैला अग्नि समान शोकनीय कर्मनी अनुद्रेक अवस्था, जोव  
प्रदेशनी अपेक्षा पक्ष उदय न होय ते उपशम कहेवाय से अर्थात् उद्रेकरूपधी  
तथा प्रदेशरूपधी—अने प्रकारना उदयस्य यथाशक्ति रोकवु ते उपशम से अ  
प्रकारने उपशम सर्वोपशम कहेवाय से. जे उपशमधी होय तेने औपशमिक कहे  
से अर्थात् क्रोध आदि कषायोना उदयमात्ररूप उपशमना इकरूप रूप तेना  
परम शान्त अवस्थाकूप परिणाम औपशमिक कहेवाय से

जे आत्मान्नी जेके प्रकारनी शुद्धि से, जेभके कृतकषूण (निम बीकवण चूर्ण) तथा

મલનિચયસ્યાધોદેશે નિપાતે સતિ જલસ્ય સ્વચ્છતા । મોહનીયકર્મણ ઉપશમાદ  
યદ્ દર્શનં શ્રદ્ધાનરૂપં, ચરણં વા વિરતિરૂપં જાયતે તદપ્યૌપશમિકશબ્દેનોચ્યતે ।

(૨) ક્ષાયિકભાવ —

(૨) સકલકર્મણામત્યન્તોચ્છેદઃ ક્ષય, ક્ષયેણ નિર્વૃત્તઃ ક્ષાયિકઃ-  
અપ્રતિપાતિ-જ્ઞાનદર્શનચારિત્રલક્ષણો જીવસ્ય પરિણતિવિશેષઃ । સ ચાત્મનઃ  
પરમવિશુદ્ધિઃ । યથા-સર્વથા નિઃશેષપટ્ટાદિમલવ્યપગમે જલસ્ય પરમસ્વચ્છતા ।

કીચડ આદિ મૈલ નીચે બેઠ જાતા હૈ, ઓર જલ સ્વચ્છ હો જાતા હૈ । મોહનીય કર્મ કે  
ઉપશમ સે શ્રદ્ધાનરૂપ જો દર્શન ઉત્પન્ન હોતા હૈ યા વિરતિરૂપ જો ચારિત્ર ઉત્પન્ન હોતા હૈ  
વહ ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન ઓર ઔપશમિક ચારિત્ર કહલાતા હૈ ।

(૨) ક્ષાયિક ભાવ—

કર્મ કા અત્યન્ત ઉચ્છેદ હો જાના ક્ષય કહલાતા હૈ । ક્ષય સે હોને વાલા ભાવ  
ક્ષાયિક ભાવ હૈ । અર્થાત્ એક વાર ઉત્પન્ન હો કર ફિર નષ્ટ ન હોને વાલે જ્ઞાન, દર્શન  
ઓર ચારિત્ર રૂપ જીવ કે પરિણામ કો ક્ષાયિક ભાવ કહતે હૈ । ક્ષાયિક અવસ્થા જીવ કી  
પરમ વિશુદ્ધિ હૈ, જેસે-પૂર્ણ રૂપ સે સમસ્ત કીચડ આદિ મૈલ કે હટ જાને પર જલ કી  
પરમ સ્વચ્છતા હોતી હૈ ।

કટકડી આદિનુ ચૂર્ણુ નાખવાથી કચરો અને મેલ નીચે યેસી લાય છે, અને જલ સ્વચ્છ  
થાય છે મોહનીય કર્મના ઉપશમથી શ્રદ્ધારૂપ જે દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે અથવા  
વિરતિરૂપ જે ચારિત્ર ઉત્પન્ન થાય છે, તે ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન અને ઔપશમિક  
ચારિત્ર કહેવાય છે

(૨) ક્ષાયિક ભાવ—

કર્મના અત્યન્ત ઉચ્છેદ થઈ જવો તે ક્ષય કહેવાય છે ક્ષયથી થવાવાળો ભાવ  
ક્ષાયિક ભાવ છે અર્થાત્ એકવાર ઉત્પન્ન થઈને ફરી નાશ નહિ થવાવાળા જ્ઞાન,  
દર્શન અને ચારિત્રરૂપ જીવના પરિણામને ક્ષાયિક ભાવ કહે છે ક્ષાયિક અવસ્થા  
જીવની પરમ વિશુદ્ધિ છે જેમ-પૂર્ણરૂપથી સમસ્ત કીચડ-કાદવ આદિ મેલના ફર  
થવાથી જલની પરમ સ્વચ્છતા થાય છે

(३) क्षायोपशमिक-भावः—

(३) मिथ्यात्वमोहनीयादिकर्मणासुवीर्यस्यास्य नाश-स्य, अनुवीर्य-स्यास्य विपाकोन्मुखत्वाभावः-उपशमः, यत्र एतद्व्ययं स क्षयोपशमः, स एव क्षायोपशमिकः। अस्य भावस्य 'मिथः' इति नामान्तरम्। ईप्सुविष्यातामन्म-वदिवद्। यद् उद्यापशिकापविष्टं कर्म, तद् क्षीणम्, सतोऽवशिष्टं कर्म, उद्रेक-क्षयोमपरहितावस्यम्, इमासुमयीमवस्थामपसम्भ्य क्षायोपशमिको भावः प्रभायते।

(४) औद्ययिकभावः—

(४) कर्मविपाकाविर्भाव उद्ययः। तेन निर्हृतो भाव औद्ययिकः। स

(३) क्षायोपशमिक भावः—

मिथ्यात्वमोहनीय आदि कर्मों का उद्योग (उद्यम में जाये हुए) अंश का नाश होना क्षय है। और अनुद्योग अंश का फल देने में उन्मुख न होना उपशम है। इन्हीं दोनों अवस्थाओं को क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। इस भाव का दूसरा नाम 'मिथ्यभाव' भी है। मोहनीय नुशी हुई और उकी हुई अग्नि के समान जो कर्म उद्यापशिका में आधुके हैं उनका क्षय होना तथा शेष कर्मों का उद्रेक और क्षय-दोनों अवस्थाओं से रहित होना इन दोनों के आधार पर क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न होता है।

(४) औद्ययिक भावः—

कर्म का विपाक (फल) देना उद्यम कहलाता है। उद्यम से होनेवाला

(३) क्षायोपशमिक भावः—

मिथ्यात्व मोहनीय आदि कर्मों का उद्योग (उद्यम में जायेवा) अशून्यो नाश भवेत् ते क्षय एव अने अनुवीर्य अशून्य इव देवाभा उन्मुख-ते तपश्च नष्टि एव ते उपशम ए, ये चान्ने अवस्थाज्जोने क्षायोपशमिक भाव उद्रेक एव भावतु पीत्यु नाम मिथ्यभाव पद्यु ए मोही मोही इदी यथेदी अने इकिदी अन्वि प्रभासे ने कम उद्यापशिकां आवी कृत्या ए तेना क्षय भवेत्, तथा शेष कर्मोना उद्रेक अने क्षय, अने अवस्थाज्जोधी रहित एव आ अन्नेनां आधार उपर क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न भाव ए

(४) औद्ययिक भावः—

कर्मोना विपाक (फल) भगवु ते उद्यम कहेवाय ए उद्यमधी उत्पन्न यवावाणे भाव ते औद्ययिक ए औद्ययिक भाव आत्मान्नी भक्तिता इय ए नेभके क्षीयक-

मलनिचयस्याधोदेशे निपाते सति जलस्य स्वच्छता । मोहनीयकर्मण उपशमाद्  
यद् दर्शनं श्रद्धानरूपं, चरणं वा विरतिरूपं जायते तदप्यौपशमिकशब्देनोच्यते ।

### (२) क्षायिकभाव —

(२) सकलकर्मणामत्यन्तोच्छेदः क्षय, क्षयेण निर्वृतः क्षायिकः—  
अप्रतिपाति-ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणो जीवस्य परिणतिविशेषः । स चात्मनः  
परमविशुद्धिः । यथा—सर्वथा निःशेषपङ्कादिमलज्यपगमे जलस्य परमस्वच्छता ।

क्रीचड आदि मैल नीचे बंठ जाता है, और जल स्वच्छ हो जाता है । मोहनीय कर्म के  
उपशम से श्रद्धानरूप जो दर्शन उत्पन्न होता है या विरतिरूप जो चारित्र उत्पन्न होता है,  
वह औपशमिक सम्यग्दर्शन और औपशमिक चारित्र कहलाता है ।

### (२) क्षायिक भाव—

कर्म का अत्यन्त उच्छेद हो जाना क्षय कहलाता है । क्षय से होने वाला भाव  
क्षायिक भाव है । अर्थात् एक वार उत्पन्न हो कर फिर नष्ट न होने वाले ज्ञान, दर्शन  
और चारित्र रूप जीव के परिणाम को क्षायिक भाव कहते हैं । क्षायिक अवस्था जीव की  
परम विशुद्धि है, जैसे—पूर्ण रूप से समस्त क्रीचड आदि मैल के हट जाने पर जल की  
परम स्वच्छता होती है ।

दूटकडी आदिनु चूर्ण नाभवाथी कथरो अने मेल नीचे भेसी जाय छे, अने जल स्वच्छ  
थाय छे मोहनीय कर्मना उपशमथी श्रद्धारूप के दर्शन उत्पन्न थाय छे अथवा  
विरतिरूप के चारित्र उत्पन्न थाय छे, ते औपशमिक सम्यग्दर्शन अने औपशमिक  
चारित्र कहेवाय छे

### (२) क्षायिक भाव—

कर्मना अत्यन्त उच्छेद यथे जवो ते क्षय कहेवाय छे क्षयथी थवावाणो भाव  
क्षायिक भाव छे अर्थात् ओठवार उत्पन्न थयने इरी नाश नहि थवावाणा ज्ञान,  
दर्शन अने चारित्ररूप एवना परिशुभने क्षायिक भाव कहे छे क्षायिक अवस्था  
एवनी परम विशुद्धि छे जेम—पूर्णरूपथी समस्त क्रीचड—काइव आदि मेलना इर  
थवाथी जलनी परम स्वच्छता थाय छे

आत्मनिर्बुद्धो जीवो निर्बुद्धः स्यात् । एवं चादिमरत्नसंगः । कथमसन् आकाश-  
हृत्सुमकल्प आत्माऽऽज्यस्यां संसरे ?—दिति युक्तिविरोधः ।

न हि परिणामेन विना कश्चिद्भावो भवतीति भाषानां मध्ये परिणामस्यैव  
भाषान्यम् । आत्मनः स्वाभाविकं स्वरूपपरिणामनमेव पारिणामिको भाव उच्यते ।  
यथात्मना सत्तया स्वयमेव परिणामो भवति, स एव पारिणामिको भावः । उक्तम्—

“यः कर्ता कर्मभद्रानां, मोक्षा कर्मफलस्य च ।

संस्तुता परिनिर्वाता, स ह्यात्मा नान्यस्मत्तः ॥ १ ॥”

अष्टविधकर्मणां कर्ता, कर्मफलमोक्षा, चतुर्गविभ्रयणकर्ता, कर्मव्ययकरमेव  
मोक्षगन्ता यः, स एवात्मा, अन्यरूपो नेत्यर्थः ।

प्रकार जीवको सति (आदिबाणा) मान्ना पदेगा, परन्तु ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि—  
जो आत्मा मूतकालमें नहीं था तो आकाशपुष्पके समान भविष्यत् कालमें उसका होना  
कैसे संभव हो सकता है ? इस प्रकार युक्तिसे भी विरोध आता है ।

विना परिणाम के कोई भाव नहीं हो सकता अतः भावोंमें परिणामकी  
प्रधानता है । आत्मा का स्वाभाविक परिणाम ही ‘पारिणामिक’ भाव कहलाता है, अर्थात्  
आत्मा का जो अष्टविधपरिणामसत्ता का कारण है उसे पारिणामिक भाव समझना  
चाहिए । कहा भी है —

‘जो कर्म के फलों का कर्ता है, जो कर्मफल का मोक्षा है । सत्साराभरण  
करने वाला है, निर्बुद्धि (मोक्ष) प्राप्त करने वाला है वही आत्मा है, आत्मा का अन्य  
स्वरूप नहीं है ॥१॥

अन्यथाभावात् तदा पूर्वकालम् एव नहि कृतो ते कवे श्रेयो उ अत्र प्रकारे  
एवने आदि (आदिबाणा) मानये पश्ये परन्तु जेभ सध शके नकि, इत्यु के-ने  
एव मूतकालमां नही कृतो त्वारे तेन आकाशपुष्पणी समान भविष्यत् कालमा  
वपु केम स भवे ? जेभ युक्तिभी पक्ष विशेष आवे छे.

वजर परिणामे केरु पक्ष भाव नहीं सध शक्यते, जेटला माटे भावोमां  
परिणामनी प्रधानता छे आत्मानु स्वाभाविक परिणामन अ पारिणामिक भाव अडेवाध  
छे अर्थात् आत्मानु अष्टविधपरिणामसत्तानु जे इत्यु छे तेने पारिणामिक भाव  
समस्तु जेठजे कहुं पक्ष छे—

‘जे कर्मना बेहोनेना कर्ता छे, जे कर्मना इहनेने मोक्षता छे सत्साराभरण  
करवायेना छे निर्बुद्धि (मोक्ष) प्राप्त करवा जालो छे ते आत्मा छे आत्मानु  
नीलु वक्ष्य नही ॥१॥

चात्मनो मालिन्यम्, यथा पङ्कसंगाज्जलस्य मालिन्यं । तथा-नरकगत्यादिनाम-  
कर्मणो विपाकाविर्भावान्नरकगत्याद्याख्य औदयिको भावः । कषायमाहनीयकर्मणो  
विपाकाविर्भावश्च 'क्रोधी, -मानी' -त्यादिरौदयिको भावः । एवं सर्वत्रौदयिको  
भावः समालोचनीयः ।

#### (५) परिणामिक-भावः—

(५) परिणामन-सर्वथा-अपरित्यक्तपूर्वावस्थस्य रूपान्तरेण भवन्न-परिणामः,  
स एव पारिमाणिकः । अत्र स्वार्थे ठक् प्रत्ययः, न तु निर्वृत्त्यर्थे, जीवस्यादिमत्त्वापत्तेः ।  
यदि 'परिणामेन निर्वृत्त' इत्यर्थे पारिणामिको जीव इति मन्यते, तदा प्रागवस्था-

भाव औदयिक है । भाव आत्मा का मालिन्यरूप है, जैसे कि क्रीचड के ससर्ग से जल में  
मलिनता आ जाती है । नरकगतिनामकर्म आदि के उदय से नरक गति आदि औदयिक  
भाव कहलाते हैं । कषायमोहनीय कर्म के उदय से क्रोध, मान आदि औदयिक भाव  
होते हैं । इसी प्रकार सभी जगह औदयिक भाव का विचार कर लेना चाहिये ।

#### (५) पारिणामिक भाव—

पूर्व अवस्था का सर्वथा त्याग न कर के रूपांतर में होना परिणाम है, और वही  
पारिणामिक कहलाता है । यहा स्वार्थमें ठक् प्रत्यय हुआ है, न कि निर्वृत्ति अर्थ में, निर्वृत्ति अर्थ  
में प्रत्यय होनेसे जीवका आदिमान् होनेका प्रसङ्ग आजाता है । यदि—“परिणामेन निर्वृत्तिः  
पारिणामिकः-जीवः” अर्थात् परिणामसे होनेवाला पारिणामिक-जीव कहलाता है, ऐसी  
व्युत्पत्ति मानली जाय तो 'किसी पूर्व कालमें जीव नहीं था वह अब हुआ है' इस

काहवना ससर्गथी जलमा मलिनता आवी नय छे नरकगति नाम-कर्म आदिना  
उदयथी नरकगति आदि औदयिक भाव कडेवाय छे कषाय-मोहनीय कर्मना उदयथी  
क्रोध, मान आदि ते औदयिक भाव छे आ प्रमाणे तामाम स्थये औदयिक भावने  
विचार करी लेवे।

#### (५) पारिष्णामिक भाव—

पूर्व अवस्थानो सर्वथा त्याग नहि करता रूपांतर थवु ते परिष्णाम छे, अने  
परिष्णाम तेज पारिष्णामिक कडेवाय छे अडी स्वार्थमा ठक् प्रत्यय थयो छे परन्तु  
निर्वृत्ति अर्थमा नथी थयो निर्वृत्ति अर्थमा प्रत्यय थवाथी एवमेव आदिमान्  
(आदिवाणो) थवने प्रसङ्ग आवी नय छे जे—“परिणामेन निर्वृत्त परिणामिकः-  
जीव” अर्थात् 'परिष्णामथी थवावाणो पारिष्णामिक एव कडेवाय छे' आवी व्युत्पत्ति



इति । यदा जीव क्वचिदसमुद्घातानवस्थां प्राप्नोति, तदा समस्तलोककाकाशमेक-  
जीवस्याधारक्षेत्रं भवति । मन्त्रजीवराज्यपक्षया तु जीवानामाधारक्षेत्रं संपूर्णमित्य-  
लोककाशम् ।

लोककाशस्याऽऽवस्थातभागे जीवस्य स्वतिरित्यभाऽऽगमवचनं यथा—

“सद्गुणेनं लोयस्त असंखेज्जगद्भागो”

स्वस्थाननं लोकस्यासम्पद्यभागे । ( प्रश्ना० २ पद जीवस्थानाधिकारे )

ननु परिमाणस्य न्यूनाधिकत्वे किं कारणम् ? उच्यते—जीवस्थानादिकात्त्वो-  
न्नतानन्त्याणुप्रथयरूपेण कार्मण-शरीरेण सम्बन्धादकस्यैव जीवस्य परिमाणं  
जीव का आधारक्षेत्रं लोककाश के असंख्यातवै भाग स कर सम्पूर्ण लोककाश  
हो सकता है । जब जीव केचित्तमुद्घात करता है उस समय वही एक जीव सम्पूर्ण  
लोककाश में व्याप्त हो जाता है । समस्त जीवगति की अपेक्षा सम्पूर्ण लोककाश  
जीव का आधारक्षेत्र है ।

जीव का अवगाह लोककाश के असंख्यातवै भाग में होता है, इस  
विषय में ज्ञान का प्रमाण इस प्रकार है—

“सद्गुणेनं लोयस्त असंखेज्जगद्भागो” (प्रश्नापना २ पद जीवस्थानाधिकार)  
स्वस्थान की अपेक्षा एक क असंख्यातवै भाग में (जीव की स्थिति है) ।

प्रश्ना—जीव के परिमाण की न्यूनाधिकता का क्या कारण है ?

समाधान—अनन्तान्त परमाणुओं के प्रथयरूप कार्मण शरीर के साथ  
ज्यादे उच केचित्तमुद्घात करे है ते समय ते लोक का संपूर्ण लोककाश  
व्याप्त करे जब है समस्त अवस्थिति की अपेक्षा की संपूर्ण लोककाश लोका  
आधारक्षेत्र है

उच्यते अवगाह लोककाशानु असंख्यातभा ज्ञानभा होता है आ विषयमां  
ज्ञानमनु प्रमाण आ प्रमाण है—

“सद्गुणेनं लोयस्त असंखेज्जगद्भागो” स्वस्थान की अपेक्षा लोककाश असंख्यातभा  
ज्ञानमां (जीव की स्थिति है) प्रश्नापना २ पद जीवस्थानाधिकार)

प्रश्ना—लोककाश परिकल्पना न्यूनाधिकता का कारण है ?

समाधान—अनन्तान्त परमाणुओं के प्रथय (संभूत) रूप कार्मण शरीर

### जीवस्य स्थितिक्षेत्रम्—

लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य, समस्तलोकाकाशे जीवोऽवगाहते । जीवप्रदेशानां प्रदीपवत् संकोचविस्तारस्वभावत्वात् । आत्मनः परिमाणं न गगन-  
वन्महत्, नापि परमाणुवदणु, किन्तु मध्यमम् ।

यद्यपि प्रदेशसंख्यापेक्षया समानमेव सर्वेषामात्मनां स्वस्वपरिमाणम्, तथापि दैर्घ्य-विन्तारादि सर्वेषां विसदृशमेव । अतः प्रत्येकजीवस्याऽऽधारक्षेत्रं जघन्यतो लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य समग्रभागपर्यन्तं भवितुम-

### जीव का स्थितिक्षेत्र—

लोकाकाश के असख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकाकाश में जीव का अवगाहन हो सकता है । कारण यह है कि—जीव के प्रदेश दीपक की प्रभा के समान संकोच-विस्तार स्वभाव वाले हैं, अर्थात् कभी सिकुड़ जाते हैं और कभी फैल जाते हैं । आत्मा का परिमाण न तो आकाश के समान महान् (सर्वव्यापी) है और न परमाणु के बराबर ही है किन्तु आत्मा मध्यम परिमाण वाला है ।

प्रदेशों की सख्या की अपेक्षा समस्त आत्माओं का परिमाण बराबर है, अर्थात् सब आत्मा लोकाकाश के बराबर असख्यातप्रदेश वाले हैं किन्तु प्राप्त शरीर के अनुसार उनके विस्तार में (परिमाण में) अन्तर पड़जाता है, अतः प्रत्येक

### एवमु स्थितिक्षेत्र—

लोकाकाशना असंख्यातमा लाग्धी लधने संपूर्ण लोकाकाशमा एवमु अवगाहनं यथं शक्ये छे कारण्ये छे के—एवमा प्रदेश दीपकनी प्रलानी समान संकोच-विस्तार स्वभाववाणा छे, अर्थात् कौछ वपत सकुच्छाच्छ नय छे अने कौछ वपत ईलाच्छ नय छे आत्मानु परिमाणु आकाशप्रमाणु महान नथी अने परमाणुना भराभर पणु नथी परन्तु आत्मा मध्यम परिमाणु वाणो छे

प्रदेशोनी सञ्चानी अपेक्षाये समस्त आत्मानु परिमाणु भराभर छे अर्थात् सर्व आत्मा लोकाकाशना भराभर असंख्यात प्रदेशवाणा छे, परन्तु प्राप्त शरीरना अनुसार तेना विस्तारमा (परिमाणुमा) अन्तर पडी नय छे तेतला कारण्थी प्रत्येक एवने आधार-क्षेत्र लोकाकाशना असंख्यातमा लाग्धी लधने संपूर्ण लोक सुधी यथं शक्ये छे

इति । यदा जीवः क्वलिस्समुदातावस्थां प्राप्नोति, तदा समस्तलोकाकाशमेक-  
जीवस्यापारक्षेत्र मवति । सकलजीवराश्यपेक्षया तु जीवानामाधारक्षेत्र संपूर्णमेव  
श्लोकाकाशम् ।

श्लोकाकाशस्याऽसंख्यात्वमागे जीवस्य स्थितिरित्यत्राऽऽगमवचनं यथा—

“सद्भागेण मायस्स असखेज्जइमागे”

स्वस्थानेन लोकस्यासंख्ययमागे । (महा = पद जीवस्थानाधिकार )

ननु परिमाणस्य न्यूनाधिकत्वे किं कारणम् ? उच्यते—जीवस्थानाधिकालतो-  
ऽन्तान्ताणुप्रथयरूपेण कर्मण-शरीरेण सम्बन्धादेकस्यैव जीवस्य परिमाणं  
जीव का आधारक्षेत्र श्लोकाकाश के असंख्यात्वमें भाग स कर सम्पूर्ण श्लोकाकाश  
हो सकता है । जब जीव क्वलिस्समुदात करता है उस समय वही एक जीव सम्पूर्ण  
श्लोकाकाश में व्याप्त हो जाता है । समस्त जीवराशि की अपेक्षास सम्पूर्ण श्लोकाकाश  
जीवों का आधारक्षेत्र है ।

जीव का भवगाह श्लोकाकाश के असंख्यात्वमें भाग में होता है; इस  
विषय में आगम का प्रमाण इस प्रकार है—

“सद्भागेण मायस्स असखेज्जइमागे” (प्रज्ञापना = पद जीवस्थानाधिकार)  
स्वस्थान की अपेक्षा श्लोक क असंख्यात्वमें भाग में (जीव की स्थिति है) ।

सङ्गत-जीवों के परिमाण की न्यूनाधिकता का क्या कारण है ?

समाधान-मन्तान्त परमाणुभा के प्रथयरूप कर्मण शरीर के साथ

जब एक एक क्वलिस्समुदात करे उ ते समय ते जोक एक संपूर्ण श्लोकाकाशमा  
व्याप्त यर्ष जाव उ समस्त एवराशिनी अपेक्षाशी संपूर्ण श्लोकाकाश एवेतु  
आधारक्षेत्र उ

एवमेव अवगाह श्लोकाकाशमा असंख्यात्वमा भागमा होव उ का विषयमां  
आगमनु प्रमाण का प्रमाण उ—

सद्भागेण सोयस असखेज्जइमागे स्वस्थाननी अपेक्षा श्लोकाकाशमा असंख्यात्वमा  
भाजमां (जीवनी स्थिति उ) प्रज्ञापना २ पर जीवस्थानाधिकार )

शंका—एवेतु परिमाणनी न्यूनाधिकतातु शु कारण उ ?

समाधान—मन्तान्त परमाणुभाकेन प्रथय (संपूर्ण) रूप कर्मणु शरीर

વહનાં વા જીવાના પરિમાણં વિવિધં જાયતે । કાર્મણ-શરીરં ઠિ સર્વદાઝ્નેક-  
રૂપેણાવતિષ્ઠતે । તત્સમ્બન્ધાદૌદારિકાઘપિ શરીરં તદનુસારિ ન્યુનાધિક-  
પરિમાણભાગ્ ભવતિ ।

જીવમ્ય મૂર્તવદ્ દાસવૃદ્ધિઃ—

વસ્તુતો રૂપરઠિતોઽપિ જીવઃ શરીરસમ્બન્ધાન્ન્યૂનાધિકપરિમાણં  
દધન્મૂર્તે ઈવાપચયોપચયૌ પ્રાપ્નોતિ । ય ઠિ સ્વભાવતઃ પ્રઢીપવન્નિમિત્તમાસાઘ  
સકોચવિકાશશીલઃ સ્વાશ્રયમાત્રેઝ્વભાસતે । યથા-કલશે પ્રાસાદપ્રદેશે નિરા-

અનાદિ કાલ સે જીવ કા સમ્બન્ધ છે । ડસ સમ્બન્ધ કે કારણ ણક હી જીવ કા  
અનેક કાલો મેં, ઔર અનેક જીવા કા ણક હી કાલ મં મિન્નર પ્રકાર કા પરિમાણ  
હોતા છે । કાર્મણ શરીર સદા વિમિન્ન રૂપો મ પરિણમન કરતા રહતા છે । ડસકે સયોગ સે  
ઔદારિક આદિ શરીર મી કાર્મણ શરીર કે અનુસાર ન્યૂનાધિકપરિમાણવાલે હોતે છે ।

જીવ કી દાસ-વૃદ્ધિ—

જીવ વાસ્તવ મે અરૂપી છે, ફિર મી શરીર કે સાથ સમ્બન્ધ હોને કે કારણ  
વહ છોટે-મોટે પરિમાણ કો ધારણ કરતા છે, અત ડસ મે મૂર્ત પદાર્થ કી મૌતિ અપચય  
(દાસ) ઔર અપચય (વૃદ્ધિ) હોતા છે । સ્વભાવ સે સકોચ વિકાસવાલા જીવ નિમિત્ત  
પાકર ઢીપક કી તરહ અપને આશ્રય (શરીર) મે પ્રતિભાસિત હોતા છે । જૈસે ઘટ મેં,

સાથે અનાદિ કાલથી જીવને સખ ઘ છે, એ સખ ઘના કારણે એકજ જીવના અનેક  
કાલોમા, અને અનેક જીવોના એકજ કાલમા ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારનુ પરિમાણ થાય છે  
કાર્મણ શરીર સદાય વિભિન્ન રૂપોમા પરિણમન કરી રહે છે, તેના સયોગથી  
ઔદારિક આદિ શરીર પણ કાર્મણ શરીર પ્રમાણે ન્યૂનાધિક પરિમાણવાળા હોય છે

જીવની દાસ વૃદ્ધિ—

જીવ વાસ્તવમા અરૂપી છે, તે પણ શરીરની સાથે સખ ઘ હોવાના કારણે તે  
નાના-મોટા પરિમાણને ધારણ કરે છે, તે કારણથી તેમા મૂર્ત પદાર્થની જેમ અપચય  
(દાસ) અને અપચય (વૃદ્ધિ) થાય છે સ્વભાવથી સકોચ-વિકાસવાળો જીવ નિમિત્ત  
પ્રાપ્ત કરી ઢીપકની પ્રમાણે પોતાના આશ્રય (શરીર)મા પ્રતિભાસિત થાય છે-(દેખાય છે)

दृष्टाकाशे चावस्थितं प्रकाशपुञ्जरूपं प्रदीपः स्थाभयमात्रावमासी क्वचित् संकुचितं क्वचित् पिततथ मवति । अतः शरीरपरिमाणानुसारं परिमाणं दधान आत्मा मूर्त इव विज्ञायते । उक्तञ्च राजप्रभ्रीयसूत्रे—

“पपसी ! जहाणामय-कूटागारसत्त्वा सिया जाव गमीरा, मरु ण केई पुरिसे जोई व दीपं व” इत्यारभ्य “एवमेव पपसी ! जीवेनि अं चारिसयं पुञ्जकम्मनिबद्धं बोद्धिं विम्वत्तेइ तं असखेज्जेहिं मीवपपसेहिं सचिचं करेइ-सुद्धियं वा महात्तियं वा” इति पर्यन्तम् । सू० ८४ ॥ इति ॥

मदेक्षितं तद् यथानामकम्-कूटागारसत्त्वा स्यात् यावद् गम्भीरा अथ सन्तु कोऽपि पुरुषः न्योतिर्वा दीपं वा (इत्यारभ्य) एवमेव मदेक्षितं ! जीवोऽपि यां पारक्षिकां पूर्वकर्मनिबद्धां बोद्धिं निर्देष्टयति तामसंख्येयैर्मीवमदञ्चै सचिचं करोति सुद्धिचं वा महात्तयां वा ।” इति उच्यते ।

मदक में और सुक आकाश में रक्ता हुआ प्रकाश का पुञ्जरूप दीपक अपनी बगल पर माध्यम होता हुआ कहीं संकुचित होता है और कहीं विलुप्त होता है । इसी प्रकार कर्मों के परिमाण के अनुसार परिमाणवाला आत्मा मूर्त जैसा माध्यम होता है । राजप्रभ्रीय सूत्र में कहा है —

हे मदेक्षी राजा ! जैसे कहीं कूटागार साया हो और वह ( यावत् ) गम्भीर हो और कहीं पुरुष जोत या दीपक उस में रक्ते तो वह उसे पूर्णरूप से प्रकाशित करता है, इसी प्रकार हे मदेक्षी ! आत्मा अपने पूर्वोपार्जित कर्मों के अनुसार जैसा शरीर पाता है, उसे असंख्यात आत्मप्रदेशों से सजीव बना देता है, चाहे वह शरीर बड़ा हो चाहे क्षुण्ण (छोट) हो” ।

जैसी रीत घरमां, भद्रेतमां अने सुखका आकाशमा सजेते। प्रकाश-पुञ्जरूप दीपक पेटानी अन्धकारे देनाते बडे डोढ अन्धकारे संकुचित होय छे अने डोढ अन्धकारे विस्तृत होय छे अने प्रभावे शरीरमा परिमाण अनुसार परिमाण वाणी आत्मा मूर्त जेवा देनाय छे राजप्रभ्रीय सूत्रमां कहु छे —

“हे मदेक्षी राजा ! जैसे कहीं कूटागार साया होय ते ( यावत् ) गम्भीर होय अने कहीं पुरुष अन्धकार अथवा दीपक तेमा सजे ते ते अने पूर्णरूपसे प्रकाशित करे छे, जे प्रभावे हे मदेक्षी ! आत्मा पेटानी पूर्वोपार्जित कर्मों प्रभावे जेवु शरीर प्राप्त करे छे तेने असंख्यात आत्मप्रदेशोंसे सजीव बनावे हे छे, ते शरीर अजे ते ओठु होय अथवा नाठु होय”

## जीवस्य-ऊर्ध्वगतिः—

सकलकर्मणां क्षये सति सपदि जीवो मुक्तः सन्मूर्ध्वं गच्छति, न च 'जीवस्यामूर्तत्वाद् गतेरसंभवः' इति वाच्यम्, स्वभावत एव पुद्गलद्रव्ययद् जीवस्य गतिशीलत्वात् ।

इयान् विशेषः पुद्गलेभ्यः—पुद्गलाः स्वभावादधोगतिशीलाः, जीवास्तु स्वभावा-  
दूर्ध्वगतिशीलाः । प्रतिबंधकद्रव्यसद्भाद् ऊर्ध्वगमनस्वभावा जीवा अधस्तिर्यग् वा  
गच्छन्ति, गन्तुमक्षमा वा भवन्ति । तच्च तद्गतिप्रतिबन्धक कर्मैव । यदा सकल-

## जीव की ऊर्ध्वगति—

सकल कर्मों का क्षय होने पर तत्काल मुक्त हुआ जीव ऊपर की ओर  
गमन करता है । 'जीव अमूर्त है और इस कारण वह गति नहीं कर सकता' ऐसा  
कहना ठीक नहीं है, क्यों कि पुद्गल-द्रव्य के समान जीव स्वभाव से ही गतिशील है ।

गति के विषय में जीव और पुद्गल में इतना भेद है—पुद्गल अधोगतिशील है  
और जीव ऊर्ध्वगतिशील हैं, अर्थात् पुद्गलों का स्वभाव नीचे जाने का है और जीव का  
स्वभाव ऊपर की ओर जाने का है मगर रुकावट डालने वाले द्रव्यों के निमित्त से  
ऊर्ध्वगतिशील जीव भी नीचे की ओर अथवा तिरछा गमन करता है । या कभी गमन  
करने में असमर्थ हो जाता है । जीव की स्वाभाविक गति का प्रतिबन्धक (रुकावट  
डालने वाला) कर्म ही है । जब समस्त कर्मों का अत्यन्त उच्छेद हो जाता है और

## एवनी उर्ध्व गति—

सकल कर्मोंना क्षय तथा पछी तत्काल मुक्त थयेदो एव उपर तरङ्ग गमन  
करे छे 'एव अमूर्त छे, अने ओ कारखुधी ते गति करी शकतो नथी'—ओम  
कडेवु ते डीक नथी, केमके पुद्गलना प्रभाषे एव स्वभावथी न गतिशील छे

गतिना विषयमा एव अने पुद्गलमा अटवो लेह छे—पुद्गल अधोगतिशील  
छे, अने एव उर्ध्वगतिशील छे अर्थात् पुद्गलोनो स्वभाव नीचे नवानो छे, अने  
एवना स्वभाव उपर तरङ्ग नवानो छे परतु तेमा अतराय नाभवावाणा द्रव्योना  
निमित्तथी उर्ध्वगतिशील एव पछु नीचे तरङ्ग अथवा तिछी गमन करे छे अथवा  
कोरि वअत गमन करवामा असमर्थ थरि जाय छे एवनी स्वाभाविक गतिना  
प्रतिबन्ध (अटकायत) करनार कर्म न छे न्यारे सकल कर्मोंना अत्यन्त क्षय थरि

कर्मणामत्यन्तोच्छेदे सति कर्मसङ्ग्रामात् कर्मवचनोच्छेदाच्च नास्त्येवोर्ध्वगति-  
प्रतिबन्धकं तदा स्वस्वमावानुसारेणार्ध्वगमनावसरः सिद्धानामुपतिष्ठते ।

**जीवस्य छद्मम्—**

उपयोगवत्त्वं जीवस्य छद्मम् । उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते  
जीवोऽनेत्युपयोगः करणे चम् । बोधक्यो व्यापार उपयोगः । ज्ञानं, संवेदन,  
प्रत्ययः, इति नामान्तराणि ।

सामान्यविशेषरूपबोधद्वयदर्शनान्निवयो भवति-दिद्यते स्म जीवः  
यस्यैषी सामान्यविशेषावबोधौ, न च सादृश कश्चिदस्ति जीवो, यस्य साका-  
शमौ का संसर्ग नहीं रहता, कर्मकथन का उच्छेद होने से ऊर्ध्वगति का कोई  
प्रतिबन्धक नहीं रहता तब सिद्ध जीवों को ऊर्ध्व गमन का अवसर प्राप्त होता है ।

**जीव का छद्म—**

जीव का छद्म उपयोग है । जो जीव को वस्तु के बोध में व्यापृत करता है  
उत्सुक बनाता है उस उपयोग कहते हैं । तात्पर्य यह है कि-बोधरूप व्यापार उपयोग  
कहा जाता है । ज्ञान संवेदन प्रत्यय ये उपयोग के पर्यायवाची शब्द हैं ।

सामान्य बोध (दर्शन) और विशेष बोध (ज्ञान) अनुभवसिद्ध है । इन  
दोनों बोधों से यह निश्चय होता है कि जीव एकस्य है जिस में यह सामान्य और  
विशेष बोध पाया जाता है । ऐसा कोई जीव नहीं है जिस में सामान्य-बोध (निराकार  
बोध से ज्ञाने कर्मिणा संसर्गं लोकेते नहीं त्परे कर्मण्यननेन क्षय भवाधी उर्ध्वगति  
भवामां केल्य प्रतिबन्धक (अतस्तत्र कस्मान्) रहतेतु नहीं त्परे सिद्ध लोकेते उर्ध्व  
गमन कस्वानो अवसर प्राप्त भाव से

**एतत्तु छद्मम्—**

एतत्तु छद्मम् उपयोग से ते एतने वस्तुना बोधार्थं व्यापृत-व्यापारमुक्ता  
हरे से तात्पर्य ये से है-जीवरूप व्यापार उपयोग कहेवाच से ज्ञान, संवेदन,  
प्रत्यय, आ शय उपयोगना पर्यायवाची शब्दों से

सामान्य बोध (दर्शन) ज्ञाने विशेष बोध (ज्ञान) अनुभव सिद्ध से जो ज्ञाने  
बोधार्थी ज्ञान निश्चय भाव से है-एव अवश्य से ज्ञेयं आ सामान्य तथा  
विशेष बोध ज्ञेयार्थं ज्ञाने से ज्ञेयो केल्य एव नहीं के ज्ञेया सामान्य बोध

રાનાકારોપયોગૌ ન સ્તઃ । અત્ એવોક્તં ભગવતા—“ જીવો ઉવઓગલક્ષણો” ઇતિ ।

લક્ષ્યતે—જ્ઞાયતેઽનેનેતિ લક્ષણમ્ । ઉપયોગો લક્ષણં યસ્ય સ ઉપયોગલક્ષણઃ ।  
જ્ઞાનાવગમ્યો જીવ ઇત્યર્થઃ ।

પૃથિવીકાયાદિસર્વસંસારિજીવાનાં વૌધસ્યાનન્તતમો ભાગઃ સર્વદા પ્રકાશમાનોઽનાવૃત્તસ્તિષ્ઠત્યેવ । નહિ સકલલોકાન્તવર્તિન પુદ્ગલાઃ કર્મરૂપતયા પરિણતા અપિ કસ્યાપિ જીવસ્ય સર્વતોભાવેન જ્ઞાનમાવરીતું પ્રભવન્તિ । યથા— અતિનિવિઢઘનઘટાઽઽચ્છાદિતસ્યાપિ સૂર્યસ્ય પ્રકાશલેશઃ પ્રકાશત એવ, નચ સર્વથા ઉપયોગ) ઓર વિશેષ વૌધ ( સાકાર ઉપયોગ ) વિઢમાન ન હો, ઇસી કારણ ભગવાન્ને કહા હૈ—“જીવો ઉવઓગલક્ષણો” જીવ ઉપયોગ લક્ષણ વાલા હૈ ।

જિસ કે દ્વારા વસ્તુ લક્ષી જાય—જાની જાય વહ લક્ષણ કહલાતા હૈ । ઉપયોગ જિસ કા લક્ષણ હો ઉસે ઉપયોગલક્ષણ કહતે હૈ । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—જ્ઞાન લક્ષણ કે દ્વારા જીવ માલ્દમ હોતા હૈ ।

પૃથિવીકાય આદિ સમસ્ત સસારી જીવો કે જ્ઞાન કા અનન્તવા ભાગ સદૈવ પ્રકાશમાન ઓર આવરણરહિત વના રહતા હૈ । સમ્પૂર્ણ લોકાકાશ કે પુદ્ગલ કદાચિત્ કર્મરૂપ મેં પરિણત હો જાઈ તો મી વહ કિસી ઁક જીવ કે જ્ઞાન કો પૂર્ણરૂપ સે આવૃત નહીં કર સકતે । સૂર્ય ચાહે કિતની હી સઘન ઘનઘટા સે આચ્છાદિત ક્યો ન હો જાઈ, ઉસકા થોડા વહુત પ્રકાશ વના હી રહતા હૈ, પ્રકાશ કમી પરી તરહ

( નિરાકાર ઉપયોગ ) અને વિશેષ વૌધ ( સાકાર ઉપયોગ ) વિઢમાન ન હોય, એ કારણથી ભગવાને કહ્યુ છે કે—“ જીવો ઉવઓગલક્ષણો” એવ ઉપયોગ લક્ષણવાળો છે.

એના દ્વારા વસ્તુ લક્ષી શકાય—બાણી શકાય—તે લક્ષણ કહેવાય છે. ઉપયોગ એનુ લક્ષણ હોય, તેને “ ઉપયોગલક્ષણ” કહે છે તાત્પર્ય એ છે કે—જ્ઞાનલક્ષણ દ્વારા એ માલ્દમ પડે છે

પૃથિવીકાય આદિ તમામ સસારી એવેના જ્ઞાનેના અનન્તમે ભાગ હમેશા પ્રકાશમાન અને આવરણરહિત બની રહે છે સ પૂર્ણ લોકાકાશના પુદ્ગલો કદાચ કર્મરૂપમા પરિણત થઈ બન્ય તો પણ તે કોઈ એક એવના જ્ઞાને પૂર્ણરૂપથી આવૃત કરી ( ઢાકી ) શકે નહિ સૂર્ય ગમે તેટલી ઘનઘટા—( મેઘાડ બર )મા આચ્છાદિત થઈ બન્ય તો પણ સૂર્યનો થોડો—એજો પ્રકાશ તો બની જ રહે છે,



तिरोहितो भवति । तथा पृथिवीकायादिजीवानामुपयोगात् स्फुरत्येव सर्वदा । यदि भोक्तव्यापिनः पुद्गलाः सयीभूयापि कर्मवर्गणारूपेण सर्वतोभावेन ज्ञानं तिरोदध्नुस्तर्हि निर्जीवतापत्तिरात्मनो दुर्वारा स्यात् । तस्मात् पृथिव्यादिजीवेषु बोधांश्च स्वभावतोऽनाहृतस्तिष्ठत्यवेति सिद्धम् । उक्तं चागम—

“सम्बन्धीबाणं पि य णं अक्षरस्स अजतमागो निष्पुग्घाडिमो । जइ पुण सोऽपि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा ”

“सुद्धुवि मेहससुदप, होइ पमा चंद-धुरायं ” इति ।

छाया—सर्वजीवानामपि च सत्तु अक्षरस्यानन्वमागो नित्योद्घाटितः । यदि पुनः सोऽपि आव्रियत तर्हि सत्तु जीवः अजीवत्वं प्राप्नुयात् । “सुद्धुपि मेहससुदपे, भवति पमा चन्द्रधुरयोः” इति ।

तिरोहित नहीं हो सकता, इती प्रकार पृथिवीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों के उपयोग का जरा स्या स्फुरतमान रहता ही है । अगर भोक्तव्यापी पुद्गल इच्छे हो कर्मवर्गणा रूप परिपक्व हो कर ज्ञान को पूरी तरह आव्रियत कर रखे तो जीव अजीव का प्राय अगर ऐसा होना असम्भव है, अत एव यह सिद्ध है कि—पृथिवीकाय आदि एक इन्द्रिय बाळ जीवों में भी ज्ञान का किंचित जरा स्वभाव से अनाहृत (आवरण रहित) रहता है । अगम में भी कहा है—“सम्बन्धीबाणं पि य णं अक्षरस्स अजतमागो निष्पुग्घाडिमो, जइ पुण सोऽपि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा” “सुद्धुवि मेहससुदप होइ पमा चंदधुरायं”

प्रथम कथारथ पुद्गलपक्षे तिरोहित-आव्रियत यतो नहीं जे प्रभावे, पृथिवीकाय आदि एकेन्द्रिय लज्जना उपयोग” अथ पक्ष सदा स्फुरतमान रहे छे अजर भोक्तव्यापी पुद्गल भोक्ता यधने कर्मवर्गणारूप परिपक्व यधने ज्ञानने पूरी तरहकी आव्रियत करी नांजे (बाँधी जे) तो एव अल्प जनी अथ पक्ष जेभ जनपु असंभवित छे कोटला कारणकी जे सिद्ध छे हे—पृथिवीकाय आदि एकेन्द्रियवाला लज्जना पक्ष ज्ञानने किंचित जरा स्वभावकी अनाहृत-अवरणरहित रहे छे अत्रप्रभा पक्ष कथुं छे— सम्बन्धीबाणं पि य णं अक्षरस्स अजतमागो निष्पुग्घाडिमो । जइ पुण सोऽपि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा सुद्धुवि मेहससुदप होइ पमा चंदधुरायं

तस्माद् यश्च 'यान्त्रानुपयोगांशः सर्वसंसारिजीवेषु यथासंभवं स्वभावतोऽनावृत्तो वर्तते, तत्र सर्वतो जघन्य उपयोगांशः प्रमथसमये खल्वपर्याप्ताना सूक्ष्मनिगोदानामेव भवति । ततः परं स एवोपयोगांशः अवशिष्टैकेन्द्रिय द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियभेदाद् भिद्यमानः संभिन्नस्रोतस्त्वादिलब्धिसमूहेन च लब्धिनिमित्तकरणशरीरेन्द्रियवाङ्मनांसि समाश्रित्य प्रवर्धमानो विविधक्षायोपशमकृतवैचित्र्यवतामवग्रहादीनां भेदेन ततोऽप्यधिकतरं वर्धमानः सकलघातिकर्मक्षयं कृत्वा, सकलज्ञेयग्राहिकां परां विशुद्धिं

“सर्व जीवों के अक्षर का अनन्तवा भाग ज्ञान सदैव उघाटा (निरावरण) बना रहता है, अगर वह भी ढक जाय तो जीव अजीव हो जाय । ”

“भेदों का खूब समुदाय होने पर भी चन्द्रमा और सूर्य को प्रमा तो बनी ही रहती है । ”

उपयोग का जो सर्व जघन्य अश समस्त ससारी जीवोंमें सर्वदा अनावृत्त बना रहता है, वह जघन्य अश उत्पत्ति के प्रथम समय में वर्तमान अपर्याप्त सूक्ष्म निगोदिया जीवों में भी होता है । तत्पश्चात् वही उपयोग का अश एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भेद से भिन्न होता हुआ संभिन्नस्रोतस्त्व आदि लब्धियों के समूह से लब्धि, निमित्त, करण, शरीर, इन्द्रिय वचन और मन का आश्रय लेकर बढ़ता जाता है । यहा तक कि विविध प्रकार के क्षयोपशम की विचित्रता वाले जीवों के अवग्रह आदि के भेद से और उस से भी अधिक बढ़कर समस्त घाती कर्मों का क्षय होने पर समस्त ज्ञेय पदार्थों

“सर्व ज्ञेयाने अक्षरने अनन्तमे भाग ज्ञान सदैव उघाटु (निरावरण) रहे छे अगर ते पणु जे ढकाई नय तो ज्ञेय अज्ञेय थई नय ”

“भेदने पुण समुदाय होय तो पणु यद्र अने सूर्यनी प्रमा जनी रहे छे ”

उपयोगने जे सर्व जघन्य अश तनाम ससारी ज्ञेयाने सर्वदा अनावृत्त (उघाटा) जनी रहे छे ते सर्व जघन्य अश उत्पत्तिना प्रथम समयमा वर्तमान, अपर्याप्त सूक्ष्म निगोदना ज्ञेयाने पणु होय छे ते पछी ते उपयोगने अश एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रियना लेहथी सिन्न थईने, संभिन्नस्रोतस्त्व आदि लब्धिज्ञेयाने समूहथी, लब्धि, निमित्त, करण, शरीर, इन्द्रिय, वचन अने मनने आश्रय लईने वधते नय छे, अही सुधी के विविध प्रकारना क्षयोपशमनी विचित्रतावाणा ज्ञेयाने अवग्रह आदि लेहथी अने तेनाथी पणु अधिक वधीने समस्त घाती कर्मने

माप्य, केवलज्ञानसंज्ञां प्राप्नोति ।

जीवा द्विविधा - सिद्धा असिद्धाश्च । तत्र निर्दूताग्नेपकर्माण मिद्धा\*,  
असिद्धा\* ससारिणः । द्रव्यमापन्नन्धः ससार\* । कर्माणकसम्पन्धो द्रव्यबन्ध,  
रागद्वेषादिपरिणाममन्धो भावबन्धः । द्विविक्वन्धस्वयः संसारोऽस्ति येषां ते  
संसारिणः । ससारिणा द्विविधा प्रसत्त्वावरमदात् । तत्र पृथिव्यभूषनस्वतयः  
स्वावरा । तेजोवायुदारात्सताः । तेजोवायु गन्धैश्च त्रसो, न तु लम्ब्या । तत्रोदाराम  
तुर्विधा - द्वि-त्रि-चतुः-प्रवेन्द्रियमदात् । तत्र पञ्चन्द्रिया पुनर्द्विविधाः समनस्का  
अमनस्काश्च ।

को बान्धो योग्य विशुद्धता प्राप्त करने केवल ज्ञान सत्ता को पाता है ।

जीव दो प्रकार के है — सिद्ध जीव और असिद्ध जीव । सकल कर्मों से  
रहित जीव सिद्ध कहलाते है और ससारी जीव असिद्ध कहलाते हैं । द्रव्यबन्ध  
और भावबन्ध को संसार कहते है । भाठ कर्मोंका सम्बन्ध द्रव्यबन्ध है, और राग  
द्वेष आदि परिणामों का सम्बन्ध होना भावबन्ध है । यह दो प्रकार का बन्धन  
संसार बिग के हो के संसारी जीव कहलाते हैं । संसारी जीव त्रस और स्वावर के  
भेदसे दो प्रकार के है । पृथ्वी अथ और वनस्पति ये स्वावर हैं, तेज वायु और उद्यर जीव  
त्रस हैं । इन में तेज और वायु गतित्रस हैं अग्नि से स्वावर है ।

उद्यर के चार भेद है—ईन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चन्द्रिय । पञ्चन्द्रिय  
जीवों के संज्ञी और असंज्ञी, ये दो भेद हैं ।

सुख यथाशी समस्त ज्ञेय पदार्थोंने आलुषा योग्य विशुद्धता प्राप्त करीने केवलज्ञान  
सत्ता पाये है

एव जे प्रकारना है—सिद्ध एव अने असिद्ध एव, सकल कर्मोंशी रहित  
एव सिद्ध कहेवाय है अने ससारी एव असिद्ध कहेवाय है द्रव्यबन्ध अने  
भावबन्धने संसार कहे है अथ कर्मोंने संलभ ते द्रव्यबन्ध है अने राग-द्वेष  
आदि परिणामोंने संलभ भाव ते भावबन्ध है जे जे प्रकारना बन्धन संसार  
रने होय है ते ससारी एव कहेवाय है ससारी एव त्रस अने स्वावरा जे  
जे प्रकारना है पृथ्वी, वायु, अने वनस्पति आ त्रस स्वावर है तेज वायु  
उद्यर एव त्रस है तेषां तेज अने वायु गतित्रस है अग्निशी स्वावर है  
द्वेषना आर वेद है त्रीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चन्द्रिय पञ्चन्द्रिय  
एवोंने संज्ञी असंज्ञी जे जे भेद है

तस्माद् यश्च यावानुपयोगाशः सर्वसंसारिजीवेषु यथासंभवं स्वभावतोऽनावृतो वर्तते, तत्र सर्वतो जघन्य उपयोगाशः प्रमथसमये ग्वल्वपर्याप्ताना मृक्षमनिगोदानामेव भवति । ततः पर स एवोपयोगाशः अशिश्टैकेन्द्रिय द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियभेदाद् मिथ्यमानः संभिन्नस्रोतस्त्वादिलब्धिसमूहेन च लब्धिनिमित्तकरणशरीरेन्द्रियवाङ्मनांसि समाश्रित्य प्रवर्धमानो विविधक्षायोपशमकृतवैचित्र्यवतामवग्रहादीना भेदेन ततोऽप्यधिकतरं वर्धमानः सकलघातिर्कर्मक्षयं कृत्वा, सकलज्ञेयग्राहिका परां विशृङ्खि

“सर्व जीवों के अक्षर का अनन्तवा भाग ज्ञान सदैव उघाडा (निरावरण) बना रहता है, अगर वह भी ढक जाय तो जीव अजीव हो जाय ।”

“भेदों का खूब समुदाय होने पर भी चन्द्रमा और सूर्य को प्रभा तो बनी ही रहती है ।”

उपयोग का जो सर्व जघन्य अग समस्त ससारी जीवोंमें सर्वदा अनावृत बना रहता है, वह जघन्य अग उत्पत्ति के प्रथम समय में वर्तमान अपर्याप्त सूक्ष्म निगोदिया जीवों में भी होता है । तत्पश्चात् वही उपयोग का अग एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भेद से भिन्न होता हुआ संभिन्नस्रोतस्त्व आदि लब्धियों के समूह से लब्धि, निमित्त, करण, शरीर, इन्द्रिय वचन और मन का आश्रय लेकर बढ़ता जाता है । यहा तक कि विविध प्रकार के क्षयोपशम की विचित्रता वाले जीवों के अवग्रह आदि के भेद से और उस से भी अधिक बढ़कर समस्त घाती कर्मों का क्षय होने पर समस्त ज्ञेय पदार्थों

“सर्व जीवोंने अक्षरने अनन्तमे लाग ज्ञान सदैव उघाडु (निरावरण) रहे छे अगर ते पणु ने ढकाई जाय तो एव अएव शर्ध जाय”

“भेदने पुणु समुदाय डोय तो पणु यद्र अने सूर्यनी प्रभा बनी रहे छे”

उपयोगने ने सर्व जघन्य अश तमाम स सारी जीवोमा सर्वदा अनावृत (उघाडा), बनी रहे छे ते सर्व जघन्य अश उत्पत्तिना प्रथम समयमा वर्तमान, अपर्याप्त सूक्ष्म निगोदाना जीवोमा पणु डोय छे ते पछी ते उपयोगने अश एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रियना भेदथी सिन्न थधने, स सिन्नस्रोतस्त्व आदि लब्धिब्योना समूहथी, लब्धि, निमित्त, करण, शरीर, इन्द्रिय, वचन अने मनने आश्रय लधने वधते जाय छे, अही सुधी डे विविध प्रकारना क्षयोपशमनी विचित्रतावाला जीवोने अवग्रह आदि भेदथी अने तेनाथी पणु अधिक वधीने समस्त घाती कर्मोने

माप्य, केवलज्ञानसंज्ञां प्राप्नोति ।

जीवा द्विविधा -सिद्धा असिद्धाश्च । तत्र निर्द्वैताद्वेषकर्माणः सिद्धाः, असिद्धाः ससारिणः । द्रव्यभावबन्धः ससारः । कर्मादिक्रमसम्बन्धो द्रव्यबन्धः, रागद्वेषादिपरिणामसंबन्धो मावबन्धः । द्विविधबन्धरूपं संसारोऽस्ति येषां ते ससारिणः । ससारिणो द्विविधा प्रसव्यावरमदात् । तत्र पृथिव्यवृष्वनस्पतयः स्वावराः । तेजोनापुद्गरात्प्रसाः । तत्रोवायु गत्यैव प्रसौ न तु लभ्या । तत्रोदारात्तुर्बिधा-द्वि-त्रि-चतु -प्रवेन्द्रिययेदात् । तत्र पठ्वेन्द्रियाः पुनर्द्विविधा समनस्का बमनस्काश्च ।

को भान्ते बोधम विशुद्धता प्राप्त करक केवल ज्ञान सज्ञा को पाता है ।

जीव दो प्रकार के है —सिद्ध जीव और असिद्ध जीव । सकल कर्मों से रहित जीव सिद्ध कहलाते है और ससारी जीव असिद्ध कहलाते हैं । द्रव्यबन्ध और मावबन्ध को संसार कहते है । पाठ कर्मोंका सम्बन्ध द्रव्यबन्ध है, और राग द्वेष भादि परिणामों का सम्बन्ध होना मावबन्ध है । यह दो प्रकार का बन्धरूप ससार जिन के हो वे ससारी जीव कहलाते हैं । ससारी जीव त्रस और स्वावर के भेदसे दो प्रकार के है । पृथ्वी बल और कल्पति ये स्वावर हैं, तेज वायु और उदार जीव त्रस हैं । इन में तेज और वायु गतित्रस है अग्नि से स्वावर है ।

उदार के चार भेद है-दीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चन्द्रिय । पञ्चन्द्रिय जीवा के संज्ञी और असंज्ञी, ये दो भेद है ।

क्षय यथाशी समस्त ज्ञेय पदाधीनो ज्ञापुवा योज्य विशुद्धता प्राप्त करीने हेतवज्ञान सज्ञा पाये छे

एव जे प्रकारना छे—सिद्ध एव जने असिद्ध एव, सकल कर्मोंशी रहित एव सिद्ध कहेवाच छे जने ससारी एव असिद्ध कहेवाच छे द्रव्यबन्ध जने मावबन्धने ससार कहे छे आठ कर्मोंना सलभ ते द्रव्यबन्ध छे जने राग-द्वेष भादि परिणामोंना सलभ भाव ते मावबन्ध छे जे जे प्रकारना बन्धरूप ससार जेने ज्ञेय छे ते ससारी एव कहेवाच छे ससारी एव त्रस जने स्वावरना जेदधी जे प्रकारना छे पृथ्वी, पाथी, जने पनस्पति आ त्रसु स्वावर छे तेज वायु, उदार एव त्रस छे तमां तेज जने वायु गतित्रस छे अग्निशी स्वावर छे उदारना चार भेद छे दीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जने पञ्चन्द्रिय । पञ्चन्द्रिय एवोना स-नी असंज्ञी, जे जे भेद छे

जीवास्तिकायस्य (१)-अनन्तज्ञानम्, (२)-अनन्तदर्शनम् (३)-अनन्तसुखम्, (४)-अनन्तवीर्यं चेति गुणाः। (१)-अव्यावाधवत्त्वम्, (२)-अनवगाहवत्त्वम्, (३)-अमूर्तिकत्वम् (४)-अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते-(१)-द्रव्यतः-अनन्ता जीवाः, (२)-क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)-कालत आद्यन्तरदिताः, (४)-भावतः अरूपिणः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)-गुणतश्चेतनालक्षणा इति।

। इति जीवास्तिकाय सम्पूर्णाः-

जीवास्तिकाय के गुण ये हैं- (१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य।

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुत्व, ये जीव की पर्याय है।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पाच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है। (१) द्रव्य से-जीव अनन्त है, (२) क्षेत्र से-लोकप्रमाण है (३) काल से-आदि-अन्त रहित हैं (४) भाव से-अरूपी हैं-रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित है (५) गुण से-चेतनालक्षण हैं।

। इति जीवास्तिकाय।

जीवास्तिकायना शुषु आ छे-(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख अने (४) अनन्त वीर्यं

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व अने (४) अगुरुलघुत्व, ये जीवनी पर्याय छे

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने शुषुना लेदथी पाच प्रकारे जीवास्तिकायनु ज्ञान थाय छे (१) द्रव्यथी-जीव अनन्त छे (२) क्षेत्रथी-लोकप्रमाण (३) कालथी-आदि अनन्त रहित छे (४) भावथी-अरूपी छे-रूप-रस-गन्ध अने स्पर्शथी रहित छे (५) शुषुथी-चेतनालक्षण छे

इति जीवास्तिकाय-

अथ पद्धत्यविचार—

पट्टु द्रव्येषु वियद् द्रव्यं क्षणम्, इतरे धर्मादिय पञ्च क्षेत्रवर्तित्वात् क्षेत्रिणः। दृषकुरुधरकुरुध्रेभर्तियौगलिकैककेसस्य स्वप्नशः करणे पर्यन्ततो यस्य स्वप्नस्य पुनः जगदो न भवितुमर्हति, तादृशस्वप्नपरिमाणं यावदाकाशमभ्रं व्याप्नोति, तावति भागे वियसोऽसस्य्यातप्रदेशः, धर्मास्तिकायस्यासंख्यातपदशा, अथर्मास्तिकायस्य चा संख्यातप्रदेशः, असंख्याता निगोदानां गोलकाश्च तिष्ठन्ति।

सूच्यप्रमाणपरिमित निगोदस्वप्नेऽप्यमंख्याता भेदय सन्ति। तत्र प्रत्येकभेष्यामसस्य्याता प्रतरा, प्रतरं च प्रत्येकमसस्य्याताः गालका, गोलके

पद्धत्यविचार—

छह द्रव्या मं स आकाश द्रव्य, क्षेत्र इ और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री हैं। देव कुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रों के जुगुप्सियाके एक केश के ऐसे टुकड़े किये जाँएँ कि फिर उनका दूसरा टुकड़ा न हो सके। इन में से एक टुकड़ा कितने आकाश क्षेत्र को व्याप्त करता है उतने माग मं आकाश के असंख्यात प्रदेश होते हैं। उसी में धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, अथर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश है, और निगोद के असंख्यात गोलक विद्यमान है।

सुई की नाक बराबर निगोद के अण्ड में भी असंख्यात क्षेत्रिया विद्यमान हैं। एक २ भेगी में असंख्यात-असंख्यात प्रतर हैं एक २ प्रतर में असंख्यात गोलक ।

पद्धत्य विचार—

७ द्रव्योभा आकाश द्रव्य क्षेत्र उ अने जाहीना धर्म आदि पाचद्रव्यो क्षेत्रवर्ती होवाही क्षेत्र उ; देवकुरु अने उत्तरकुरु क्षेत्रोना जुगुप्सियाना क्षेत्र केश-पाणना क्षेत्रा टुकड़ा कस्याभा आवे के इतीने तेना चीले टुकड़ा भड शके नदि, तेभाधी क्षेत्र टुकड़ा गेटला आकाशक्षेत्रने व्याप्त करे उ तेरका अत्रभा आकाशना असंख्यात प्रदेश कडेवाय उ तेभा धर्मास्तिकायना असंख्यात प्रदेश उ अथर्मा-स्तिकायना असंख्यात प्रदेश उ अने निगोदना असंख्यात गोलक विद्यमान उ

क्षेत्रवर्ती अग्नी जरीजर निगोदना अठभा पञ्च अक्ष अक्षान अक्षीयो विद्यमान उ क्षेत्र क्षेत्र अक्षीया असंख्यात-असंख्यात-प्रतर उ क्षेत्र क्षेत्र अक्षभा

जीवास्तिकायस्य (१)-अनन्तज्ञानम्, (२)-अनन्तदर्शनम् (३)-अनन्तसुखम्, (४)-अनन्तवीर्यं चेति गुणाः। (१)-अव्यावाधवत्त्वम्, (२)-अनवगाहवत्त्वम्, (३)-अमूर्तिकत्वम् (४)-अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते-(१)-द्रव्यतः-अनन्ता जीवाः, (२)-क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)-कालत आद्यन्तरहिताः, (४)-भावतः अरूपिणः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)-गुणतश्चेतनालक्षणा इति।

। इति जीवास्तिकाय सम्पूर्णः-

जीवास्तिकाय के गुण ये हैं-(१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य।

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुत्व, ये जीव की पर्याय हैं।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पाच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है। (१) द्रव्य से-जीव अनन्त है, (२) क्षेत्र से-लोकप्रमाण हैं (३) काल से-आदि-अन्त रहित हैं (४) भाव से-अरूपी हैं-रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित हैं (५) गुण से-चेतनालक्षण हैं।

। इति जीवास्तिकाय ।

जीवास्तिकायना गुण आ छे-(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख अने (४) अनन्त वीर्य

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व अने (४) अगुरुलघुत्व, ये जीवनी पर्याय छे

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने गुणना लेहथी पाच प्रकारे जीवास्तिकायनु ज्ञान थाय छे (१) द्रव्यथी-जीव अनन्त छे (२) क्षेत्रथी-लोकप्रमाण (३) कालथी-आदि अनन्त रहित छे (४) भावथी-अरूपी छे-रूप-रस-गन्ध अने स्पर्शथी रहित छे (५) गुणथी-चेतनालक्षण छे

इति जीवास्तिकाय-



मष पद्द्रव्यविचारः—

पद्सु द्रव्येषु वियद् द्रव्यं क्षमम्, इतरे धर्माद्वयः पद्म शेषवर्तित्वात्  
 स्रविगा। द्रव्यकुत्तरकुत्तरेप्रवर्तियौगलिकैककेस्यस्य स्वप्नश्च कृष्णे पर्यन्ततो  
 यस्य स्वप्नस्य पुनः म्पन्ना न मभित्तुमईति, तादृशस्वप्नपरिमाणं यावदाकाशक्षेत्रं  
 व्याप्नोति, तावति मागे वियतोऽसम्पातप्रदेशा, धर्मास्तिकापस्यासंस्पातप्रदेशा,  
 मषमर्मास्तिकापस्य वा संस्पातप्रदेशा, असंस्पाता निगोदानां गोलकाश्च विद्यन्ति।

सूक्ष्मप्रमाणपरिमितं निगोदस्वप्नेऽप्यसंस्पाता भ्रमय सन्ति। एत  
 प्रत्येकभेष्यामसंस्पाताः प्रतरा, प्रतरं च प्रत्येकमसंस्पाता गोलका, गोलके

पद्द्रव्यविचारः—

एतद् द्रव्या में स आकाश द्रव्य, क्षेत्र ई और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य  
 क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री हैं। देव कुक और उत्तरकुक क्षेत्रों के लुगलियाके एक  
 केस के देसे दुकडे किये जाई कि फिर उनका दूसरा दुकडा न हो सके। इन में  
 से एक दुकडा अितने आकाश क्षेत्र को व्याप्त करता है उतने माग में आकाश के  
 असंस्पात प्रदेश होते है। उही में धर्मास्तिकाय के असंस्पात प्रदेश हैं, मषमर्मास्तिकाय के  
 असंस्पात प्रदेश हैं और निगोद के असंस्पात गोलक विद्यमान है।

सुई की नाक बराबर निगोद के मण्ड में भी असंस्पात भेषिया विद्यमान हैं।  
 एक २ क्षेत्री में असंस्पात-मसंस्पात प्रतर हैं एक २ प्रतर में असंस्पात २ गोलक हैं

पद्द्रव्य विचारः—

७ द्रव्योर्मा आकाश द्रव्य क्षेत्र छे जने आदीना धम आदि पाचद्रव्यो  
 क्षेत्रवर्ती होवासी क्षेत्र छे; देवकुई जने उत्तरकुई क्षेत्रोना लुगलियान्ना जेक देश-  
 पाज्जना जेवा दुकडा कस्यामा जावे के इरीने तेना वीजे दुकडे बड शके नकि,  
 तेभांभी जेक दुकडा सेटवा आकाशक्षेत्रने व्याप्त करे छे तेटवा भाजभा आकाशान्ना  
 असंस्पात प्रदेश कडेवाय छे तेभां धर्मास्तिकायन्ना असंस्पात प्रदेश छे मषमर्मा-  
 स्तिकायना असंस्पात प्रदेश छे जने निगोदना असंस्पात गोलक विद्यमान छे

सोवनी मणी लेशजरे निगोदना मर्मा पञ्च असंस्पात भेषीयो विद्यमान  
 छे जेक जेक भेषीया असंस्पात-असंस्पात-प्रतर छे. जेक जेक प्रतरभां

जीवास्तिकायस्य (१)-अनन्तज्ञानम्, (२)-अनन्तदर्शनम् (३)-अनन्तसुखम्, (४)-अनन्तवीर्यं चेति गुणाः । (१)-अव्याबाधवत्त्वम्, (२)-अनवगाहवत्त्वम्, (३)-अमूर्तिकत्वम् (४)-अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते-(१)-द्रव्यतः-अनन्ता जीवाः, (२)-क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)-कालत आद्यन्तरहिताः, (४)-भावतः अरूपिणः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)-गुणतश्चेतनालक्षणा इति ।

। इति जीवास्तिकायः सम्पूर्णः-

जीवास्तिकाय के गुण ये हैं- (१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य ।

(१) अव्याबाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुत्व, ये जीव की पर्याय हैं ।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है । (१) द्रव्य से-जीव अनन्त हैं, (२) क्षेत्र से-लोकप्रमाण हैं (३) काल से-आदि-अन्त रहित हैं (४) भाव से-अरूपी हैं-रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित है (५) गुण से-चेतनालक्षण है ।

। इति जीवास्तिकाय ।

ज्वास्तिकायना गुण आ छे-(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख अने (४) अनन्त वीर्य

(१) अव्याबाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व अने (४) अगुरुलघुत्व, ये ज्वास्ती पर्याय छे

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने गुणना लेदथी पाच प्रकारे ज्वास्तिकायनुं जान थाय छे (१) द्रव्यथी-ज्वा अनन्त छे (२) क्षेत्रथी-लोकप्रमाण (३) कालथी-आदि अनन्त रहित छे (४) भावथी-अरूपी छे-रूप-रस-गन्ध अने स्पर्शथी रहित छे (५) गुणथी-चेतनालक्षण छे

इति ज्वास्तिकाय-

यस्य पद्धत्यविचारः—

पदसु द्रव्येषु विद्यन् द्रव्यं स्रमम्, इतरे धर्मादिय पञ्च क्षेत्रवर्तित्वात् क्षेत्रियः। देवबुरुवाङ्मुक्तेष्ववर्तियोगलिकैककेशस्य स्वच्छस्य करणे पर्यन्तता यस्य स्वच्छस्य पुनः स्वच्छा न भवितुमर्हति, तादृशस्वच्छपरिमाणं भावदाकाशक्षेत्रं म्याप्नोति, तावति भागे विद्यतेऽसंख्यातप्रदेशाः, धर्मास्तिकापस्यासंख्यातप्रदेशाः, अधर्मास्तिकापस्य चा संख्यातप्रदेशाः, असंख्याता निगोदानां गोलकाश्च तिष्ठन्ति।

सूच्यग्रभागपरिमिते निगोदस्वच्छेऽप्यसंख्याताः भेषयः सन्ति। तत्र प्रत्येकक्षेत्र्यासंख्याताः प्रतराः, प्रतरे च प्रत्येकमसंख्याताः गोलकाः, गोलके

पद्धत्यविचारः—

उद्द द्रव्यां में से भाकाश द्रव्य, क्षेत्र ई और क्षेत्र धर्म आदि पाच द्रव्य क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री हैं। देव बुरु और उत्तरबुरु क्षेत्रों के जुगस्त्रिमाके एक केश के ऐसे दुक्के किये जाएँ कि फिर उनका दूसरा दुक्का न हो सके। इन में से एक दुक्का भित्तने भाकाश क्षेत्र को म्याप्त करता है उतन भाग में भाकाश के असंख्यात प्रदेश होते हैं। उसी में धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, अधर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, और निगोद के असंख्यात गोलक विद्यमान है।

सुई की नाक बराबर निगोद के स्वर में मी असंख्यात भेगिया विद्यमान हैं। एक २ देगी में असंख्यात-असंख्यात प्रतर हैं, एक २ प्रतर में असंख्यात गोलक हैं

पद्धत्य विचारः—

उ द्रव्योभां भाकाश द्रव्य क्षेत्र छ जने जाडीना धर्म आदि पाचद्रव्यो क्षेत्रवर्ती होनाभी क्षेत्र छ-देवबुरु आने उत्तरबुरु क्षेत्रोना जुगस्त्रिमाका जोठ देश-पाज्जना जेवा दुक्का करवाभा आने छे इरीने तेना वीजे दुक्कय भए शके नदि, तेभाभी जोठ दुक्का नदवा भाकाशक्षेत्रने म्याप्त करे छे तेदवा कात्रमां भाकाशना असंख्यात प्रदेश छेवच छे तेभा धर्मास्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे, अधर्मास्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे जने निगोदना असंख्यात गोलक विद्यमान छे

क्षेत्रणी जणी लक्षेणर निगोदना जडमां पज्ज असंख्यात भवुंजि विद्यमान छे जोठ जोठ क्षेत्रीया असंख्यात-असंख्यात-प्रतर छे, जोठ जोठ प्रतरमां

ष प्रत्येकमसंख्यातानि निगोदशरीराणि सन्ति । तत्र च प्रत्येकशरीरेऽनन्ता निगोदजीवाः सन्ति ।

अथ कियन्तोऽनन्ता जीवास्तत्र सन्ती?—त्युच्यते—अतीतकालोऽनन्त, तथा भविष्यत्कालोऽप्यनन्तः, वर्तमानकालश्चैकसमयमात्रः, कालत्रयस्यापि यावन्तः समयाः सन्ति, ते पुनरनन्तेन गुणिता यावन्तो भवेयुस्ततोऽप्यनन्तगुणाधिका एकस्मिन् निगोदे निगोदिका जीवाः सन्ति ।

तत्रैकजीवस्यासंख्याताः प्रदेशाः सन्ति । एकैकप्रदेशेऽनन्ताः कर्मवर्गणाः संलग्नाः । तत्रैकस्यां वर्गणायामनन्ताः परमाणुपुद्गलाः सन्ति ।

एक २ गोलक में असल्यात २ निगोदशरीर हे, और एक २ निगोदशरीर में अनन्त २ निगोदजीव है ।

शङ्का—अनन्त के अनन्त भेद होते हैं, ऐसी स्थिति में एक निगोदशरीर में कितने अनन्त जीव होते हैं ?

समाधान—अतीत काल के अनन्त समय हैं, भविष्य कालके भी अनन्त समय हैं, और वर्तमान काल एक समय मात्र है । इन तीनों कालों के जितने समय हैं उनका अनन्त से गुणाकार कर देने पर जितने समय हों उन से भी अनन्त गुणा अधिक निगोदजीव एक निगोदशरीर में होते हैं ।

एक जीव के असल्यात प्रदेश होते हैं । एक २ प्रदेश में अनन्त २ कर्मवर्गणाएँ लगी हुई हैं, और एक २ वर्गणा में अनन्त २ पुद्गलपरमाणु हैं

असंख्यात गोलक छे ओक ओक गोलकभा असंख्यात निगोद शरीर छे, अने ओक ओक निगोद शरीरभा अनन्त अनन्त निगोद छव छे

शङ्का—अनन्तना अनन्त बेद होय छे, ओवी स्थितिभा ओक निगोद शरीरभा केटला अनन्त छव होय छे ?

समाधान—अतीतकाल (भूतकाल)ना अनन्त समय छे, लविष्यकालना पण अनन्त समय छे, अने वर्तमान काल ओकसमयमात्र छे, ओ त्रल्ले कालेभा ने समय छे, तेना अनन्तथी गुणाकार करवाथी ने गुणाकार (राशि) थाय तेटला समयथी पण अनन्त गुणा अधिक निगोद छव ओक निगोद-शरीरभा होय छे

ओक छवना असंख्यात प्रदेश थाय छे ओक-ओक प्रदेशभा अनन्त-अनन्त कर्मवर्गणामे लागी छे, अने ओक-ओक वर्गणामे अनन्त अनन्त पुद्गलपरमाणु छे

परमाणुनां द्वौ भेदौ स्त-बद्धा भवद्वाच । तत्र बद्धा स्कन्धस्थाः ।  
 भवद्वाः परस्परसयुक्ताः । स्कन्धानां पुनर्द्धा भेदौ-जीवसहिताः, जीवरहिताम् ।  
 तत्र षट्-पटादिरूपा अजीवस्कन्धाः ।

अथ जीवस्कन्ध-विचारः प्रस्तूपते-

द्वयोः परमाणुः संयोगे द्विप्रदेशी स्कन्धः । प्रयत्नां परमाणुनां संयोगे  
 त्रिप्रदेशी स्कन्धः । एषमसंख्यावानां परमाणुनां संयोगावसंख्यातप्रदेशी स्कन्धो  
 जायते । एतावत्पर्यन्ता स्कन्धा जीवानां ग्राह्या न भवन्ति ।

परमाणु दो प्रकार के है- बद्ध और भवद्वा । स्कन्धरूप परमाणु बद्ध कहलते है,  
 और आपस में असयुक्त परमाणु भवद्वा कहलतात हैं ।

स्कन्ध के मी दो भेद हैं-जीवसहित और जीवरहित, इन में षट् षट्  
 आदि स्कन्ध अजीवस्कन्ध कहलते हैं ।

अथ जीवस्कन्ध का विचार करते हैं-

दो परमाणुओं का संयोग होने पर द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, और तीन  
 परमाणुओं के संयोगसे त्रिप्रदेशी स्कन्ध । इसी प्रकार असंख्यात परमाणुओं के संयोग  
 से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता है । यहाँ तक के स्कन्ध जीवा द्वारा  
 ग्रहण नहीं किये जा सकतै ।

परमाणु दो प्रकारता से-(१) बद्ध जने (२) भवद्वा स्कन्धरूप परमाणु बद्ध  
 कहलतात है जने आपसमें असयुक्त परमाणु भवद्वा कहलतात है

स्कन्धना पञ्च दो भेद है-एवसहित जने एवसहित तेम्य षट् षट् आदि  
 स्कन्ध अजीवस्कन्ध कहलतात है

दो एवस्कन्धना विचार करवामें आवे है-

दो परमाणुओंना संयोग सवाधी द्विप्रदेशी स्कन्ध जने है जने त्रय परमाणु-  
 जना संयोगधी त्रिप्रदेशी स्कन्ध जने है जने प्रमाणु असंख्यात परमाणुओंना  
 संयोगधी असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न जायत है आदि सुधीना स्कन्ध, एव्ये  
 द्वारा ग्रहण करी सकतात नहीं ।

અથ કીદશાઃ સ્કન્ધા જીવાનાં ગ્રાહ્યા ભવન્તી ?—ત્યુચ્યતે—અભવ્ય-  
રાશિશ્ચતુઃસપ્તતિતમઃ, તદ્ગતજીવાપેક્ષયાઽનન્તગુણાધિકાઃ પરમાણ્વો યદિ  
સંધીભવન્તિ તદૌદારિકશરીરગ્રાહ્યવર્ગણા ભવતિ । ઔદારિકવર્ગણાપેક્ષયા-  
ઽનન્તગુણાધિકા વૈક્રિયશરીરગ્રાહ્યવર્ગણા । તતોઽનન્તગુણાધિકાઽઠારકવર્ગણા ।  
આઠારકવર્ગણાપેક્ષયાઽનન્તગુણાધિકા તૈજસશરીરગ્રાહ્યવર્ગણા । તતોઽનન્તગુણાધિકા  
એકભાષાગ્રાહ્યવર્ગણા । એકભાષાગ્રાહ્યવર્ગણાપેક્ષયાઽનન્તગુણાધિકા એકશ્વાસોચ્છ્વાસ-  
વર્ગણા । તતોઽનન્તગુણાધિકા એકમનસો વર્ગણા । તદપેક્ષયાઽનન્તગુણાધિકા કાર્મણ-  
વર્ગણા ભવતિ । તતોઽનન્તગુણાધિકાઃ પુદ્ગલપરમાણુસ્કન્ધા જ્ઞેયાઃ । કાર્મણ

કિસ પ્રકાર કે સ્કન્ધ જીવો દ્વારા ગ્રાહ્ય હોતે હૈં ? યહ વતલાતે હૈં —અભવ્ય  
રાશિ ચોદ્દતરવીં હૈ । ડસ અભવ્ય રાશિ કે જીવોં કી અપેક્ષા અનન્ત ગુણા અધિક  
પરમાણુ યદિ ઇકદ્દે હોં તો ઔદારિકશરીરગ્રાહ્ય વર્ગણા હોતી હૈ । ઔદારિકવર્ગણાકી  
અપેક્ષા અનન્તગુણી અધિક વૈક્રિયશરીરગ્રાહ્ય વર્ગણા હોતી હૈ, ઓર ડસ સે મી  
અનન્ત ગુણી અધિક આઠારકવર્ગણા હોતી હૈ । આઠારકવર્ગણા સે અનન્તગુણી અધિક  
તૈજસશરીરગ્રાહ્ય વર્ગણા હોતી હૈ, ઓર ડસ સે મી અનન્તગુણી અધિક એકભાષાગ્રાહ્ય  
વર્ગણા હોતી હૈ । એકભાષાવર્ગણ સે મી અનન્તગુણી અધિક એક શ્વાસોચ્છ્વાસવર્ગણા  
હોતી હૈ, ઓર ડસ સે અનન્તગુણી અધિક એકમનોવર્ગણા હોતી હૈ, મનોવર્ગણા સે  
મી અનન્તગુણી અધિક કાર્મણવર્ગણા હોતી હૈ । ડસ સે મી અનન્ત ગુણા અધિક  
પુદ્ગલ પરમાણુ કે સ્કન્ધ સમક્ષને વાહિણ । ડસ પ્રકાર કાર્મણવર્ગણા કે અનન્ત પુદ્ગલ

કયા પ્રકારના સ્કન્ધ જીવોદ્વારા ગ્રહણ કરી શકાય છે ? તે જતાવે છે—અભવ્ય  
રાશિ ત્ર્યુમોતેર (૭૪) વી છે એ અભવ્ય રાશિના જીવોની અપેક્ષા અનન્ત ગુણ  
અધિક પરમાણુને એકઠા થાય તો ઔદારિક શરીર ગ્રહણ કરી શકે તેવી વર્ગણા  
હોય છે, ઔદારિક વર્ગણાની અપેક્ષા અનન્ત ગુણુ અધિક વૈક્રિયશરીરગ્રાહ્ય વર્ગણા  
હોય છે, અને તેનાથી પણ અનન્ત ગુણી અધિક એક આઠારકવર્ગણા હોય છે  
આઠારકવર્ગણાથી અનન્ત ગુણી અધિક તૈજસશરીરગ્રાહ્ય વર્ગણા હોય, તેનાથી પણ  
અનન્ત ગુણી અધિક એક ભાષાગ્રાહ્ય વર્ગણા હોય છે, અને તેનાથી અનન્તગુણી અધિક  
એક શ્વાસોચ્છ્વાસવર્ગણા હોય છે, અને તેનાથી અનન્તગુણી અધિક એક મનોવર્ગણા હોય  
છે મનોવર્ગણાથી પણ અનન્તગુણી અધિક કાર્મણવર્ગણા હોય છે તેનાથી પણ અનન્ત  
ગુણી અધિક પુદ્ગલપરમાણુના સ્કન્ધ સમક્ષને વાહિણ એ પ્રમાણુ કાર્મણવર્ગણાની

वर्गजागतानन्तपुद्गलपरमाणुघटितस्कन्धा नीवानो प्राप्ता भवन्ति ।

रागद्वेषक्याशुदप्रवृत्त्याऽऽमनः प्रतिमदेशमनन्तानन्तकर्मवर्गमा अयोगो-  
सकवद्विब्लोमीभूता सन्ति, अत एवानन्तज्ञानादयो गुणा नीवस्य विराहिता  
भवन्ति । एवं च जीवोपेक्षयाऽनन्तगुणाधिक्य पुद्गला द्वातव्याः । ते च पुद्गला  
रूपिणोऽपेक्षना सक्रियाः पूरणगलनस्वभावा वेदितव्याः ।

पद्द्रव्येषु सक्रिय-निष्क्रियविचारः—

पद्द्रव्येषु निश्चयनयेन सर्वाणि द्रव्याणि सक्रियाणि । व्यवहारनयतो  
धर्माधर्माद्यास्तदालास्यानि चत्वारि द्रव्याणि क्रियारहितानि । नीवपुद्गली सक्रियौ  
परमाणुभा स वने हुए स्कन्ध बीजो द्वारा प्रहण करन योग्य होते हैं ।

राग और द्वेषरूप अशुद्ध प्रवृत्ति के कारण आत्मा के एक एक प्रदेश में अनन्तान्त  
कर्मवर्गगारै इस प्रकार एकमेक हो रही है, जैसे सड़े का गोमूत्र और अग्नि एकमेक  
हो जात है, इसी कारण जीव के अनन्त ज्ञान अग्नि गुणू रैंक जाते है । इस प्रकार  
बीजा की अपेक्षा पुद्गल अनन्त गुणा अधिक जानत चाहिए । ये पुद्गल—रूपी, अपेक्षन,  
सक्रिय और पूरणगलनस्वभाववाक है ।

छह द्रव्यों में सक्रिय-निष्क्रियका विचार—

निश्चय नय से छह द्रव्य सक्रिय है, किन्तु व्यवहारनयते धर्मास्तिक्रिय अपर्मा  
स्तिक्रिय अकारण और काम नामक चार द्रव्य क्रिया रहित हैं जीव और पुद्गल द्रव्य सक्रिय

अनन्त पुद्गल परमाणुजोधी जनेका रक्षक लोको द्वारा भक्षण करन योग्य होव छे  
राम अने द्रव्य न्य अशुद्ध प्रवृत्तिना हास्ते आत्माना कोश-कोश प्रदेशभा  
अनन्तानत धर्मवर्गलुको को प्रभासे कोशमेक धर्म रही छे के-नेम दोदाने जेजे  
जने अग्नि कोशमेक धर्म जव छे जे करणधी लयना अनन्त ज्ञान अग्नि गुण  
रक्षार्थ जव छे जे प्रभासे लोकोनी अपेक्षा पुद्गल अनन्तगुणा अधिक व्यवस्था  
कोशमे ते पुद्गल, रूपी अधेनन सक्रिय अने पूरणगलनस्वभाववाक छे

● द्रव्योभा सक्रिय निष्क्रियता विचार—

निश्चयनय प्रभासे छ द्रव्यो सक्रिय छे परन्तु व्यवहारनयधी धर्मास्तिक्रिय  
अधर्मास्तिक्रिय अकारण अने शत नामना कर द्रव्यो विचारदिन छे लय अने

સ્તઃ । નિશ્ચયનયાદ્ ધર્માસ્તિકાયો ગતિપરિગતાના જીવપુદ્ગલાનાં ગતિ પ્રતિ સહાયદાનરૂપાં ક્રિયામ્, અધર્માસ્તિકાયઃ સ્થિતિપરિગતજીવપુદ્ગલાના સ્થિતિ પ્રતિ મહાયદાનરૂપાં ક્રિયાં ક્રુગેતિ । તથૈવાકાશોઽવગાહદાનરૂપા ક્રિયાં, કાલઃ વર્તનારૂપક્રિયાં જીવાજીવેષુ વિચલે । તથૈવ નિશ્ચયેન જીવઃ સ્વસ્વરૂપરમણરૂપાં ક્રિયાં ક્રુગેતિ । યદિ નિશ્ચયનયેન શુભાશુભરૂપવિભાવદશારમણાત્મિકા ક્રિયા કુર્યાત્તદાઽઽત્મા કદાપ્પવિચલપદ નાનુયાત્, અતઃ સ્વસ્વરૂપપરિગતિરૂપામેવ ક્રિયાં કરોતિ । નિશ્ચયનયેન પુદ્ગલોઽપ્યનાદિકાલતઃ સ્વપૂરણગલ્નરૂપાં ક્રિયાં નમાચરતિ । તસ્માદ્ નિશ્ચયનયેન સર્વાણિ દ્રવ્યાણિ મક્રિયાણીતિ જ્ઞાતવ્યમ્ ।

હૈ । નિશ્ચયનય સે ધર્માસ્તિકાય, ગતિપરિગત જીવો ઓગ પુદ્ગલો કો ગતિ મે સહાયકતા દેને કો ક્રિયા કરતા હૈ, ઓગ અધર્માસ્તિકાય સ્થિતિપરિગત જીવો ઈવ પુદ્ગલોંકો સ્થિતિ મેં સહાયતા દેનેકો ક્રિયા કરતા હૈ । ડસી પ્રકાર આકાશ-અવગાહદાનરૂપ ક્રિયા કરતા હૈ, ઓર કાલ વર્તના આદિ મેં સહાયતા પઢૈંચાતા હૈ । જીવ નિશ્ચયનય સે નિજસ્વરૂપ-રમણરૂપ ક્રિયા કરતા હૈ । અગર નિશ્ચય નય સે જીવ શુભ ઓગ અશુભ રૂપ વિભાવદશા મેં રમણ કરને કો ક્રિયા કરે તો ઉસે અવિચલ પદ કો કદાપિ પ્રાપ્તિ નહીં હો સકતી, અત ઈવ જીવ અપને સ્વભાવ મેં પરિગતિરૂપ ક્રિયા હો કરતા હૈ । નિશ્ચય નય કો અપેક્ષા પુદ્ગલ મો અનાદિ કાલ સે પૂરણ ગલ્ન રૂપ ક્રિયા કર રહા હૈ । ઈમ પ્રકાર નિશ્ચય નય સે સમી દ્રવ્ય સક્રિય હૈ ।

પુદ્ગલ દ્રવ્ય સક્રિય છે નિશ્ચયનયથી ધર્માસ્તિકાય, ગતિમા પરિણુત હવે અને પુદ્ગલોની ગતિમા સહાયતા કરવાની ક્રિયા કરે છે, અને અધર્માસ્તિકાય, સ્થિતિમા પરિણુત હવે અને પુદ્ગલોની સ્થિતિમા સહાયતા દેવાની ક્રિયા કરે છે, એ પ્રમાણે આકાશ, અવગાહદાનરૂપ ક્રિયા કરે છે, અને કાલ વર્તના આદિમા સહાયતા પહોંચાડે છે, હવ નિશ્ચયનયથી નિજસ્વરૂપ-રમણરૂપ ક્રિયા કરે છે અગર નિશ્ચયનયથી હવ શુભ અને અશુભરૂપ વિભાવદશામા રમણ કરવાની ક્રિયા કરે તો તેને અવિચલ પદની પ્રાપ્તિ કદાપિ પણ થઈ શકે નહિ, એટલા કારણથી હવ પોતાના સ્વભાવમા પરિણુતિરૂપ ક્રિયા જ કરે છે, નિશ્ચયનયની અપેક્ષા એ પુદ્ગલ પણ અનાદિ કાલથી પૂરણ-ગલનરૂપ ક્રિયા કરે છે, એ પ્રમાણે નિશ્ચયનયથી સર્વ દ્રવ્યો સક્રિય છે.



अधुना व्यवहारनयमाभित्योभ्यते—

व्यवहारतो परमाधर्माकाशकाला निष्क्रियाः, जीव-पुद्गलाश्च सक्रियाः । व्यवहारनयतो जीवो रागद्वेषरूपाभुदपरिणत्या प्रतिस्मयमनन्तपुद्गलपरमाणुस्कन्धाऽऽज्ञानक्रियां करोति । परमाणुपुद्गला अपि कर्मवर्गमारूपेण जीवस्य सर्वस्मिन् प्रवेशे संलम्ना भवन्ति, अतस्त संश्लेषक्रियां पूरजगत्सनादिक्रियां च कुर्वन्ति, तस्माद् व्यवहारनयतो जीव-पुद्गलाश्च सक्रियाः ।

पद्मन्यविषये कर्तृत्वाकर्तृत्वनिरूपणम्—

निश्चयनयन पद्मद्रव्याणि स्वस्वरूपकर्तृभिः, तस्मात्तेषां कर्तृत्वग्रुपपद्यते ।

अब व्यवहार नय की अपेक्षा से कस्त क्रिया जाता है—व्यवहारनय सं धर्म मधर्म आकारा और कास क्रियारहित है, तथा जीव और पुद्गल सक्रिय है । व्यवहार नय से जीव राग-द्वेषरूप अशुभ परिणति के द्वारा प्रति समय अनन्त पुद्गल परमाणुओं के स्कन्धा का ग्रहण करने की क्रिया करता है । परमाणु पुद्गल भी कर्मवर्गमारूप में परिणत हो कर जीव के समस्त प्रदेशों में बर होने हैं, अतः वह कल्पनरूप क्रिया करते हैं, और पूरज गत्सनादि क्रिया भी करते हैं इस प्रकार व्यवहार नय सं जीव और पुद्गल ही सक्रिय हैं ।

छह द्रव्यों का कर्तापन और अकर्तापन—

निश्चय नय सं छहों द्रव्य अपने २ स्वरूप के कर्ता हैं अतः सभी द्रव्यों में

द्वे व्यवहारनयनी अपेक्षासे कहेवामः—व्यवहारनयधी धर्म मधर्म आकारा अने कास क्रियारहित छ तथा एव अने पुद्गल सक्रिय छ व्यवहारनयधी एव राग-द्वेषरूप अशुभपरिणतिद्वारा प्रतिस्मयमनन्तपुद्गल परमाणुस्कन्धा स्तुषोने बद्धपु कर्तवानी क्रिया करे छ परमाणु पुद्गल पद्म कर्मवर्गमारूपमां परिणत यधने एवना समस्त प्रदेशोमा भद्र यध व्यव छ (सर्व प्रदेशोने योटी व्यव छ) तेरदा वारणधी ते व्यवहारनय क्रिया करे छ अने पूरज-गत्सनादि क्रिया पद्य करे छ अने प्रमात्से व्यवहारनयधी एव अने पुद्गल च सक्रिय छ

द्रव्योत्तु कर्तापद्य अने अकर्तापद्य—

निश्चयनयधी छ द्रव्यो, योतयोताना स्वरूपमा कर्ता छ तेधी सर्व द्रव्योमां

व्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्व, धर्मादिद्रव्यपञ्चकस्याकर्तृत्वमिति ।

व्यवहारनयः—

व्यवहारनयः पङ्क्तिः—शुद्धाशुद्धशुभाशुभोपचरितानुपचरितभेदात् । तत्र—

(१) शुद्धव्यवहारनयः ।

यदि जीवः कर्ममलरूपाशुद्धता व्यपनीयाऽनन्तज्ञानादिगुण पशुद्धता मुपार्जयति तर्हि प्रथमशुद्धव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं भवति । तथाहि—शुद्धव्यवहारनयेन जीवो यदा शुद्धस्वरूपार्जनाय प्रयत्नते, तदा प्रथमगुणस्थाने कर्तापि सिद्ध होता है । व्यवहारनयसे जीव कर्ता है और शेष धर्म आदि पाच द्रव्य अकर्ता हैं ।

व्यवहारनय—

व्यवहार नय छह प्रकार का है—(१) शुद्ध व्यवहारनय, (२) अशुद्ध व्यवहारनय, (३) शुभ व्यवहारनय, (४) अशुभ व्यवहारनय, (५) उपचरित व्यवहारनय और (६) अनुपचरित व्यवहारनय ।

(१) शुद्ध व्यवहारनय—

अगर जीव कर्ममलरूप अशुद्धता को हटाकर अनन्तज्ञानादिगुणरूप शुद्धता का उपार्जन करता है तो शुद्ध व्यवहारनय से जीव में कर्तृत्व होता है । वह इस प्रकार शुद्ध व्यवहार नय से जीव जब अपना शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने के लिए कर्तापि सिद्ध थाय छे व्यवहारनयथी एव कर्ता छे अने आकीना धर्मादि पाच द्रव्यो अकर्ता छे

व्यवहारनय—

व्यवहारनय छ प्रकार छे (१) शुद्ध व्यवहारनय (२) अशुद्ध व्यवहारनय, शुभ व्यवहारनय, (४) अशुभव्यवहारनय, (५) उपचरित व्यवहारनय, (६) अनुपचरित व्यवहारनय

(१) शुद्ध व्यवहारनय—

एव कर्ममलरूप अशुद्धताने हटावीने अन तज्ञानादिगुणरूप शुद्धताने उपार्जन करे छे तो शुद्ध व्यवहारनय प्रमाणे एवमा कर्तृत्व-कर्तापि सिद्ध होय छे ते आ प्रमाणे—शुद्ध व्यवहारनयथी एव पोताना शुद्ध स्वरूपने प्राप्त करवा भाटे प्रयत्न

અનન્તાતુલ્યશ્લોકપાપચતુષ્ટયં ધરપિત્વા ચતુર્થં ગુણસ્થાનં સમાસાઘ સમ્યક્સ્વર્ણું  
 સમતે । અપ્રત્યાસ્થ્યયક્રમાયષતુષ્ટયપ્તયમ દશવિરતિસ્ત્વં પશ્ચમં ગુણસ્થાનં  
 પ્રાપ્નોતિ । પ્રત્યાસ્થ્યયક્રમાયષતુષ્ટયપ્તયમ જીવસ્ય પચ્ચમગુણસ્થાનયો સર્વ  
 વિરતિરુપયોરુપલશ્ચિર્મંભતિ । યદ્યત્તમગુણસ્થાનં લમ્યતે તદા તત્ર શ્રેણિદ્વય  
 સમાસ્થત, ઉપશ્ચમશ્રેણિ ક્ષપકશ્રેણિમ્ । તત્રોપશ્ચમશ્રેણ્યાઽપ્ચમગુણસ્થાનાદકાદશ  
 ગુણસ્થાનં યાવદપ્યારાદિતિ । ક્ષપકશ્રેણ્યા ત્વચ્ચમાદારમ્ય દશમ યાવત્ સમારુ-  
 ઘેકાવશં વિહાય ટાદશ ગુણસ્થાનં સમારોદિતિ । જીવસ્તત્ર રાગદ્વેપસ્વમોહનીય

પ્રયત્ન કરતા હૈ તમ પ્રથમ ગુણસ્થાન મેં અનન્તાનુબંધી ચાર ક્રમાયોગ ક્ષય કરકે ચતુર્થ  
 ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરતા હૈ ઓર સમ્યક્ત્વ ગુણ પા છતા હૈ । ચાર અપ્રત્યાસ્થાનાવરણ  
 ક્રમાયો કા ધમ કરકે દેશવિરતિરુપ પાંચમો ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરતા હૈ, ઓર  
 પ્રત્યાસ્થાનાવરણ ક્રમાય-ચતુષ્ટય કે તમ સ જીવ કા સર્વવિરતિરુપ છઠ ઓર સત્તમે  
 ગુણસ્થાન કા પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । જીવ કો ચદિ આઠવા ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત હોતા હૈ  
 તે જોઈ સ દો શ્રેણિઓ ખાસ્મ હોતી હૈ ઓર જીવ તન મેં સ કિસી ઇક શ્રેણી પર  
 આસ્થ હોતા હૈ । દો શ્રેણિઓ હૈ-ઉપશ્ચમશ્રેણી, ઓર ક્ષપકશ્રેણી । ઉપશ્ચમશ્રેણીઆલ્પ જીવ  
 વ્યાસ્થવે ગુણસ્થાન તક જડ સક્રતા હૈ । ક્ષપકશ્રેણીઆલ્પ જીવ આટલે સ વશવે  
 ગુણસ્થાન તક પહુંચકર આરહવે કા છોડ કર સંપા આરહવે ગુણસ્થાન પર આસ્થ  
 હો જાતા હૈ । જીવ વશવે ગુણસ્થાન કે મન્ત મેં રાગદ્વેપસ્વમોહનીય કર્મ કા સમૂન નાશ કરકે

કર છે ત્યારે પ્રથમ ગુણસ્થાનમા અનન્તાનુબંધી ચાર ક્રમાયોગો ક્ષય કરીને ચતુર્થ  
 (ચોથું) ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે અને સમ્યક્ત્વ ગુણ પામી જાય છે ચાર  
 અપ્રત્યાસ્થાનાવરણ ક્રમાયોગો ક્ષય કરીને દેશવિરતિરુપ પાંચમું ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરે  
 છે અને પ્રત્યાસ્થાનાવરણ ક્રમાય-ચતુષ્ટયના ક્ષયથી જીવને સર્વવિરતિરુપ છઠું અને  
 સાતમા ગુણસ્થાનની પ્રાપ્તિ થાય છે જીવને બે આઠમું ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત થાય છે તે  
 ત્યાંથી બે શ્રેણીઓનો આરંભ થાય છે અને જીવ એ બેમાંથી કેલ્પ એક શ્રેણી પર આસ્થ  
 થાય છે એ શ્રેણી આ પ્રમાણે છે-(૧) ઉપશ્ચમશ્રેણી (૨) ક્ષપકશ્રેણી ઉપશ્ચમશ્રેણી  
 વાળા જીવ અગિઆશમાં ગુણસ્થાન સુધી પહોંચે છે ક્ષપકશ્રેણીવાળો જીવ  
 આઠમાથી દસમા ગુણસ્થાન સુધી પહોંચીને અગિઆશમાં ગુણસ્થાનને છેડીને સીધા  
 આશમાં ગુણસ્થાન પર આસ્થ થઈ જાય છે. જીવ દસમા ગુણસ્થાનના અત્તમાં

कर्म समूलमुन्मूल्य घातिकर्माणि क्षपयित्वा त्रयोदशं गुणस्थानमारोहति । त्रयोदशे गुणस्थाने निर्मलकेवलज्ञानं प्राप्नोति । तदनन्तर पञ्चलघ्नक्षरोच्चारणकालस्थितिक चतुर्दशगुणस्थानं संप्राप्य निःशेषकर्मनिचयं क्षपयित्वाऽसौ शिवपदं संप्राप्नोति ।  
। इति जीवस्य शुद्धस्वरूपनिरूपकः शुद्धव्यवहारनयः ।

(२) अशुद्धव्यवहारनयः—

अशुद्धव्यवहारनयेन रागद्वेषमिध्यात्वादयोऽनादिकालतः शत्रुरूपेण जीवे संलग्नाः सन्ति, तस्माज्जीवस्याशुद्धत्वं ज्ञेयम् । अशुद्धत्वेन च प्रतिसमय-  
और बारहवें गुणस्थान में शेष तीन घाति कर्मों का क्षय करके तेरहवें गुणस्थान में पहुँचता है । इस गुणस्थान में ( बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में ) जीव को निर्मल केवलज्ञान प्राप्त होता है । तेरहवें गुणस्थान के बाद पाच ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) उच्चारण करने में जितना समय लगता है उतने समय तक चौदहवें गुणस्थान में ठहरकर समस्त कर्मों का क्षयकर के मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

जीवके शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने वाला यह शुद्ध व्यवहारनय है ।

(२) अशुद्ध व्यवहारनय—

अशुद्ध व्यवहारनय से राग-द्वेष और मिध्यात्व आदि अनादि काल से शत्रुकी तरह जीव के साथ लगे हुए हैं, इसी कारण जीव में अशुद्धता है । इस अशुद्धता के राग-द्वेषरूप मोहनीय कर्मोंना समूहको नाश करीने अने पारमा गुणस्थानमा शेष त्रयु घातीकर्मोंना क्षय करीने तेरमा गुणस्थानमा पडोये छे अे गुणस्थानमा ( पारमा गुणस्थानना अतिम समयमा ) एवने निर्मल केवलज्ञान प्राप्त थाय छे तेरमा गुणस्थान पछी पाच ह्रस्व स्वर-(अ-इ-उ-ऋ-लृ) उच्चारण कर्ता नेट्ठो समय लागे छे, तेट्ठो समय चौदमा गुणस्थानमा थोलीने समस्त कर्मोंना क्षय करीने मोक्ष प्राप्त करी दे छे

एवना शुद्ध स्वरूपने ग्रहण करवा पाणो आ शुद्ध व्यवहार नय छे

(२) अशुद्ध व्यवहारनय—

अशुद्ध व्यवहारनयधी राग-द्वेष अने मिध्यात्व आदि अनादि-कालधी शत्रुनी माक्षक एवनी नाथे लाग्या छे, अे कारणधी एवमा अशुद्धता छे अे अशुद्धताना

मनन्तानन्तकर्मवर्गणा सत्कारूपेणावगुण्ठिता भवन्ति । एवं चाशुद्धम्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं सिध्यति ।

(३) शुभम्यवहारनयः—

शुभम्यवहारनयनात्मा शुभपरिणामतो हानशीलत्वसोमावबिनयमस्त्रियैवाहृत्यं, धमजनिर्भन्वानां प्रासुकमेष्णीयमशनपानस्वापस्वाधवस्वकम्बलप्रतिग्रहपादमोच्छन पातिहार्यपीठफलकशय्यासस्तारकौषभमैपज्यमत्तिलामस्यं सुपात्रदान, त्रिपमाण-जीवरसवरूपमयदानं, हीनहीननिःसस्वजीवानां साहाय्य, साधर्मिकनात्स्वयं, परहित चिन्तारूपां मैत्री, परदुःखनिवारणेष्वारूपां कक्षां, निःस्वार्थपरोपकारादिकां च कारुण्य प्रतिभमम अनन्तानन्त कर्मवर्गणै सत्कारूप से बद्ध होती रहती है । इस प्रकार अशुद्ध म्यवहारनय से जीव को कर्ता समझना चाहिए ।

(३) शुभ व्यवहारनय—

शुभ व्यवहारनय से आत्मा शुभपरिणामद्वारा हान शील, तप भाव बिनय, मक्ति, वैवाह्य रूप शुभक्रिया करता है भ्रमण निर्भ्रंशो को प्रासुक णवणीम-भान पान स्वाध स्वाध वस्त्र, कम्बल, पात्र, पादप्रोच्छन पहिदारी पीठ, फलक, शय्या संस्तारक, कोषध मेवत्र का सुपात्रदान देता है । मरते हुए जीव को रक्षारूप भयमदान देता है, हीन हीन और निर्बल जीवों को रक्षायता करता है । साधर्मों के प्रति वात्सल्य प्रकट करता है, परहितचिन्तनरूप मैत्री भावना दूसरों का दुःखनिवारणरूप कर्णा

कारुण्य प्रतिभमम अनन्तानन्त कर्म वर्गणां सत्कारूपयी बद्ध होती रही है यह प्रभावे अशुद्ध व्यवहारनयवी करने से ही सम्भव है।

(३) शुभ व्यवहारनय—

शुभ व्यवहारनयवी आत्मा हान शील, तप, भाव बिनय, मक्ति वैवाह्य रूप शुभ क्रिया करे है भ्रमणनिर्भ्रंशोने अशुद्ध जेपणीम-भान, पान, भाव, स्वाध वस्त्र, कम्बल पात्र पादप्रोच्छन, पहिदारी-पीठ देता शय्या, संस्तारक, कोषध, कोषध सुपात्र दान आपी है मरते हुए जीव को रक्षारूप भयमदान आपी है हीन हीन जाने निर्बल जीवोंनी सदायता करे है साधर्मता उपर वात्सल्य प्रकट करे है परहितचिन्तनरूप मैत्रीभावना, जीवना दुःखनिवारणरूप कर्णा तथा निःस्वार्थ

शुभक्रियां करोति, तेन शुभव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं जायते ।

(४) अशुभव्यवहारनयः—

अशुभव्यवहारनयेन जीवो हास्य-भय-शोक-रत्य-रति-निद्रा-प्राणातिपात-मृषावादा-ऽदत्तादान-मैथुन-परिग्रह-क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेषादिषु प्रवर्तते । विषयसुखारम्भादिरूपामशुभक्रियां च करोति तेनाऽशुभव्यवहारनयो जीवस्य कर्तृत्वं सिध्यति ।

(५) उपचरितव्यवहारनयः—

उपचरितव्यवहारनयेन जीवो निजमजरामरत्वमनन्तज्ञानदर्शनमव्यावाध-

तथा नि स्वार्थं परोपकार आदिरूप शुभक्रिया करता है, अतः शुभ व्यवहारनय से जीव का कर्तापन सिद्ध होता है ।

(४) अशुभ व्यवहारनय—

अशुभ व्यवहारनय से जीव हास्य, भय, शोक, रति, अरति, निद्रा, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, आदि अशुभ कार्यों एव भावों में प्रवृत्त होता है, तथा विषयसुख एव आरम्भ आदि रूप अशुभ क्रिया करता है, अतः अशुभव्यवहारनय से जीव कर्ता सिद्ध होता है ।

(५) उपचरित व्यवहारनय—

उपचरित व्यवहार नय से जीव अपने अजरता अमरता तथा अनन्त ज्ञान परोपकार आदिरूप शुभ क्रिया करे छे, ते डारण्यथी शुभ व्यवहारनयथी एषत् कर्तापण्य सिद्ध थाय छे

(४) अशुभ व्यवहारनय—

अशुभ व्यवहारनयथी एष हास्य, लय, शोक, रति, अरति, निद्रा, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग द्वेष आदि अशुभ कार्यों एव भावोंमा प्रवृत्त थाय छे, विषयसुख एव आरम्भ आदि अशुभ क्रिया करे छे, तेथी अशुभ व्यवहारनयथी एष कर्ता सिद्ध थाय छे

(५) उपचरित व्यवहारनय—

उपचरित व्यवहारनयथी एष पोताना अजर अमर तथा अनन्तज्ञान, दर्शन

घृतादिस्पर्श शुद्धस्पर्श विस्तृत्य पौद्गलिकविमानपरिणामेऽनन्तदुःखघनकेऽनन्ता  
 नन्दमनुभवति, मोक्षपक्षेण बाह्यवस्तुषु ममत्वभाव कुरुते । यथा-“इदं मम शुभम्,  
 इमे मम पुत्राः, इमा मम दाराः, इमे मम परिवागाः, इदं मम सर्वं धनप्रत्नादिकम्” ।  
 इत्थं विपत्तं विपर्य पीयूषं मन्यमानो विपयकृतानो क्षममाप्रसुखमनकान् बहु  
 घालदुःखदान् काममोगान् भुञ्जानो विपयपृग्गृह्णां पुनः पुनर्धाषमानो दीर्घाप्स  
 संसारे क्षणमपि विभ्रान्ति न ठमते । ममेति कुर्वन्मयं जीवः पुत्रदारादीनां सुखेन  
 सुखं, दुःखेन दुःखं मन्यमानस्तद्व्यर्थं व्यर्थमेव शोकमनुभवति, तद्वयं प्राप्ननाःकमपि कर्तुं  
 समुद्यतो भवति । अनास्मीयमपि स्वीयं मन्यमानो नानाविधपापकार्यकरणेन

वर्षक तथा अन्त्याबाधसुखरूप सुख त्वरूप को मूल कर पौद्गलिक विमान परिणाम  
 में जो अनन्त दुःखों का जनक है अनन्त आनन्द मानता है । मोह के बगीभूत हो  
 कर बाह्य वस्तुओं में ममत्व धारण करता है जैसे-“यह मेरा घर है, ये मेरे पुत्र  
 हैं, यह मेरी पत्नी है, ये मेरे कुटुम्बी हैं ये सब धन-जन वस्ति मेरे हैं” । इस  
 प्रकार के विकल्प विषयों को अमृत मानता हुआ विषयों में तन्मय हो कर, क्षण भर  
 सुख देने वाले और दीर्घकाल तक दुःख देने वाले काम-मोगों को भोगता हुआ  
 विषयों की मृगतृष्णा की तरफ बारंबार दौड़ता हुआ इस दीर्घमार्गवाले संसार में  
 क्षण भर भी विद्याम नहीं पता है । मेरे मेरे करता हुआ यह जीव पुत्र और पत्नी बगैरह के  
 सुख में सुख और दुःख में दुःख मानता हुआ स्वयं ही उन के स्थिर शोक करता है,  
 क्यों तक की उन के स्थिर प्राणों का नाश तक करन को उद्यत हो जाता है । यह

तथा अन्त्याबाध सुखरूप शुद्ध स्पर्शने भूमी अथने पौद्गलिक विमान परिणाममा  
 के अने अनन्त दुःखोने। अनन्त (अनन्त इत्यादि) छे तेषां अनन्त आनन्द माने छे,  
 मोहने परा अथने अकारणी वस्तुषुमां ममत्व धारण करे छे जेभडे-“ मम घर  
 भाइ छे, मम मास पुत्र छे मम भासी स्त्री छे मम भाइ कुटुम्ब छे मम सर्व  
 धन-जन वजरे भाइ छे जे प्रभक्षे विपर्यय-विषयोने अमृतवृष्य मानीने  
 विषयोमां तन्मय धरने क्षणमात्र मुञ्ज आस्थावाणा अने तांजा अल मुधी दुःख  
 अस्थावाणा लोभोने लोत्रवतो यडे, विषयेली भृशतृष्णु परह वारवार होइते  
 यडे मम तांजा माजवाणा संसारमां क्षण मात्र पक्ष विद्याम पाभते। नधी।  
 भारा-भास इस्ते मम एव पुत्र अने पत्नी वजेरेना मुञ्जमा मुञ्ज अने दूष्प्रभा-  
 दुःख मानते यडे तेना भाटे नक्षत्रि शोक करे छे-तथां मुधी के तेन भाटे आद्योने।  
 नाश इत्या तेयरे यथं व्यव छे मम एव परने पोतानु अमलने नाना प्रभारना

स्वात्मानं मलीनीकरोति । एवमुक्तरीत्या कर्मवशेन ममत्वपाशवद्धस्य जीवस्योप-  
चरितव्यवहारनयेन कर्तृत्वमिति ।

### (६) अनुपचरितव्यवहारनयः—

अनुपचरितव्यवहारनयेन स्वात्मनः प्रत्यक्षरूपेणात्यन्तभिन्नं शरीरमज्ञान-  
वशात् पारिणामिकभावेनात्मप्रदेशैरैक्यभावमापद्यमानमिव स्वात्मनः स्वरूपं  
मन्यमानस्तत्पुष्टिरक्षणादिहेतोरैकेन्द्रियादिसकलप्राण्युपमर्दनजनकमहारम्भमृषावादा-  
दत्तादान-मैथुन-परिग्रहादिकानि नानाविधपापकर्माणि जीवः समाचरति ।  
आत्मन स्वरूपे शरीरे च नितान्त भिन्नता वर्तते । तथाहि—आत्मा

जीव पर को स्वकीय समझ कर नाना प्रकार के पाप कार्य कर के अपने को मलीन  
बनाता है । उस प्रकार कर्मवश हो कर ममता के पाशमें जकड़ा हुआ यह जीव उप-  
चरित व्यवहारनय से कर्ता सिद्ध होता है ।

### (६) अनुपचरित व्यवहारनय—

अनुपचरित व्यवहारनय से जीव अपनी आत्मा से प्रत्यक्षत भिन्न शरीर को  
अज्ञान के वश हो कर पारिणामिक भाव से आत्मप्रदेशोंकी एकता समझ कर, और  
आत्मा का ऐसा ही स्वरूप मान कर शरीर की पुष्टता और रक्षा आदि के लिए  
एकेन्द्रिय आदि समस्त प्राणियों की हिंसा करने वाले महारम्भ, मृषावाद, अदत्तादान,  
मैथुन और परिग्रह आदि नाना प्रकार के पाप कर्मों का आचरण करता है । वस्तुत  
आत्मा के स्वरूप में और शरीर में अत्यन्त भिन्नता है, वह इस प्रकार—आत्मा चैतन्य

पापकार्य करीने चोताने मलीन बनावे छे आ प्रमाणे कर्मने वश थई ममताना  
पाशमा जकडाओवे। आ एव उपचरित व्यवहारनयथी कर्ता सिद्ध थाय छे ।

### (६) अनुपचरित व्यवहारनय—

अनुपचरित व्यवहारनयथी एव चोताना आत्माथी प्रत्यक्ष भिन्न शरीरने  
अज्ञानवश थई पारिणामिक भावथी आत्मप्रदेशेनी एकता समझने, अने आत्मानु  
एवु न स्वरूप मानिने शरीरनी पुष्टता अने रक्षा आदि भाटे एकेन्द्रिय आदि  
तमाभ प्राणीओनी हिंसा थवावाणा, महारम्भ, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, अने  
परिग्रह आदि नाना—अनेक प्रकारना पाप कर्मोनु आचरण छे छे वस्तुत आत्माना  
स्वरूपमा अने शरीरमा अत्यन्त भिन्नता छे, ते आ प्रमाणे के —आत्मा चैतन्य



કૈતન્યરૂપઃ, શરીરમિદ્ વહસ્વમ્ । આત્મા-અરૂપી, શરીરમિદ્ રૂપિ । આત્મા જ્ઞાન-  
 દર્શનમુલ્તવીર્યાદિરૂપઃ, શરીરં તુ નિઃસપ્ત્ત્વં વિવિધવ્યાધિપુક્તમ્ । આત્મા-નિત્ય  
 શાશ્વતો ધ્રુવરૂપમ્, શરીરમિદ્મનિત્યમશાશ્વતમધ્રુવમ્ । આત્મા-નિત્યાન્તનિર્મલઃ, શરીરં  
 તુ ગર્માશ્ચસ્થાનતઃ શુદ્ધધોગિતામ્પકારણતઃ, નવદ્વારવો મલનિઃશ્વરણેન વ નિવાન્તા  
 મુષિ, મલમાષ્ઠં વ ।

અર્ધમેતાદશાનિ કર્માણિ હુર્વન્તિ, સ્વનન્તવારં લભ્યં ત્યક્તં વ વ્પુ ।  
 ઈચ્છે નશ્વરે શરીરેડુરુચ્ય પુના પુનસ્તાન્યેષ પાપકર્માણિ સમાષરન્ સ્વીયમાત્માનં  
 કર્મમારાકાન્તં કરોવિ । તેન પુનઃ પુનરનાદિદુરન્તસસારમહાગર્તે પતિતઃ સ્વા

રૂપ છે, શરીર વહ છે । આત્મા અરૂપી છે, શરીર રૂપી છે । આત્મા જ્ઞાન દર્શન મુલ  
 ગૌર ગૌર્યાદિરૂપ છે, શરીર નિ સપ્ત ગૌર વિવિધ વ્યાધિયાં સ પુક છે । આત્મા નિત્ય છે,  
 શાશ્વત છે, ધ્રુવ છે, શરીર અનિત્ય અશાશ્વત ગૌર અધ્રુવ છે । આત્મા નિત્યાન્ત નિર્મલ છે,  
 શરીર ગર્માશ્ચ મેં સ્થિત હોત સ શુદ્ધ ગૌર ધોગિત સે વના હુમ્પા હોત કે કારણ, તથા  
 મેં હારો સે મલ નિક્કલને કે કારણ અવન્ત અમુષિ છે, ગૌર મલ કા પાત્ર છે । વિસ  
 શરીર કે ક્ષિપ્ત પેષ ૨ અર્ધુક કર્મ કિમે જાતે છે વહ શરીર અનન્ત વાર પાયા છે  
 ગૌર અનન્ત વાર ગોઠા છે, કેકિન સસારી ગૌર ઇસ નશ્વર શરીર મેં અનુરાગ કરકે  
 પુન પુન વહી પાપકર્મ કરતા હુમા અપને કો કર્મ કે માર સે મારી વનાતા છે । ઇસ  
 કારણ મમાદિ ગૌર દુરન્ત સસારરૂપી મહાગર્ત મેં પુન પુન પડકર અવન્ત સસાર કરન

સ્વરૂપ છે શરીર વહ છે. આત્મા અરૂપી છે શરીર રૂપી છે આત્મા જ્ઞાન, ઇશાન,  
 મુખ અને વીર્યરૂપ છે શરીર નિ.સત્વ અને વિવિધ વ્યાધિગોષ્ઠી મુક્ત છે આત્મા  
 નિત્ય છે શાશ્વત છે, ધ્રુવ છે શરીર અનિત્ય અશાશ્વત અને અધ્રુવ છે આત્મા  
 અવન્ત નિમલ છે શરીર ગર્માશ્ચમાં સ્થિત હોવાથી શુદ્ધ અને શોધિતથી (વીર્ય  
 અને વૈદ્યથી) અનેક હાવાન્ત ઠાસ્યે, તથા ૧૫ દારોથી મલ નીકળવન્ત ઠાસ્યે  
 અવન્ત અમુષિ-અપવિત્ર છે અને મલતુ પાત્ર છે જે શરીરના માટે જોવાં જોવા  
 ઉપર કહેલા તેવાં કર્મ કરવામા આવે છે તે શરીર અનતવાર પ્રાપ્ત થયુ છે અને  
 અનતવાર છેડી ઢીધુ છે પરન્તુ સસારી એવ આ નાશવત શરીરમાં અનુસન-પ્રીતિ  
 કરીને કરી-કરીને તે પાપકર્મ કરીને પોતાને કર્મના બાસ્થી બારે બતાવે છે. જે  
 કારણથી જનાદિ અને દુરન્ત-મુસ્કેલીથી ખાર પડે તેવો-સસારરૂપી મહાગર્ત-મોટો  
 ખાસો તેમા વારવાર ખરીને પોતાનો ઉદાર કરવામાં અસમર્થ બની જાય છે, પરન્તુ

त्मानमुद्धर्तुं न शक्नोति । अविज्ञाय च स्वकृतकर्मभारं दुरन्तसंसारमहागर्तपतनं च मुहुर्मुहुस्तादृशान्येव कर्माणि कुर्वन्ति ससारिणः । एवमात्मनोऽत्यन्तभिन्नं शरीरमेव स्वस्वरूपं मत्वा तत्पुष्टिरक्षणार्थं क्रियमाणया क्रियया जीवस्यानुपचरित-व्यवहारनयेन कर्तृत्वं सिध्यति । उक्तरीत्या पडविधव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं विज्ञेयम् ।

### जीवस्वरूपे सदृशाऽसदृशविचारः—

ननु—सर्वेषां जीवानां स्वरूप लक्षणं च सदृशमेव, तर्हि ससारिणो दुःखिनः, सिद्धास्तु सुखिन इति कथम् ? उच्यते—निश्चयनयेन तु सर्वे जीवाः

में असमर्थ बन जाता है, मगर संसारी जीव अपने किये कर्मों के भार को न समझ कर, तथा ससाररूपी महागर्त के पतन को न जानकर फिर-फिर वैसे ही कर्म करते लगते हैं । इस प्रकार आत्मा से भिन्न शरीर को ही अपना स्वरूप समझ कर उसके पोषण और रक्षणके लिए की जानेवाली क्रियासे जीव अनुपचरित व्यवहारनयकी अपेक्षा कर्ता सिद्ध होता है । इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से छह तरह के व्यवहारनय से जीवको कर्ता समझना चाहिए ।

### जीवके स्वरूप में सदृश-विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सब जीवोंका स्वरूप और लक्षण समान ही है तो ससारी जीव दुःखी और सिद्ध सुखी क्यों हैं ।

उत्तर—निश्चय नयसे सभी जीव सिद्धोंके समान ही हैं । उन में से जो जीव स सारी एव पोताना करेला कर्मोना लारने समञ्जतो नथी, तथा स साररूपी महागर्तमा पड्यो छे ते तेने नालुतो नथी तेथी इरी-इरी तेवा कर्मो करवा लागे छे ये प्रमाणे आत्माथी बिन्न शरीरने न पोतानु स्वरूप समञ्जने तेना पोषणु तथा रक्षणु भाटे करवामा आवती क्रियाथी एव अनुपचरित व्यवहार नयनी अपेक्षाये कर्ता सिद्ध थाय छे ये प्रमाणे पूर्वे कडेला प्रकारथी छ प्रकारना व्यवहारनयथी एवने कर्ता समञ्जो जेईये

### एवना स्वरूपमा सदृश-विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सर्व एवोनु स्वरूप अने लक्षण समान छे तो पछी संसारी एव दुःखी अने सिद्ध एव सुखी केम छे ?

उत्तर—निश्चयनयथी सर्व एवो सिद्धोनी समान छे तेमांथी न् एव तमाभ

सिद्धसदृशा एव, तत्र यः सकलं कर्म संपद्यन्ति ते सर्वे जीवाः सिद्धा भवति, तस्मात् सर्वेषामेकैव सत्त्वा विद्यते । यदि सर्वे सिद्धसदृशास्त्वर्हि कथमभ्युपगम्यैः सिद्धगतिमागमिर्न भूयत ? इति भूयताम्—

अभ्युपगम्यैः जीवानामनाद्यनन्तचिक्रणकर्मसंबन्धात्, परावर्तस्वभावाभावात् कर्मसंपणञ्चिक्रिनास्ति, मध्यानां तु तादृशचिक्रणकर्माभावात्, परावर्तस्वभावसद्भावात् वेत्तुगुरुधर्मसामग्रीसत्त्वं ज्ञानादिरत्नप्रयसमारोहणेन, गुणभेजिसमारोहणेन च सिद्धपदं लब्धुं संशयम् ।

समस्त कर्मोक्ता क्षय कर करते हैं वे सब सिद्ध कहलाते हैं । उनका मसखी स्वरूप प्रकट हो जाता है । संसारी जीव कर्म के अधीन होने के कारण दुःखी होते हैं । इस प्रकार यद्यपि प्रत्येक जीव की सत्ता प्रथक्-प्रथक् है, तथापि उा में स्वरूप की समानता है ।

प्रश्न—यदि समस्त जीव सिद्धों के समान है तो अल्पज्य जीव सिद्धगति क्यों प्राप्त नहीं करते ?

उत्तर—सुनिये अल्पज्य जीवों में अनादि अनन्त चिक्रण कर्मों के सम्बन्ध से और अपरिवर्तनशील स्वभाव के कारण कर्मों का क्षय करने की शक्ति नहीं है । मध्य जीवों के जैसे चिक्रण कर्मों के न होने से और परावर्त स्वभाव से वेब गुरु और धर्मरूप सामग्रीके भिन्न पर ज्ञानादिरत्नप्रय की आरोहणा करने से, तथा गुणधमी पर आरोहण करने से उनको सिद्धपद प्राप्त करना संशय है ।

कर्मोन्ना क्षय करी नांजे से ते सवे सिद्ध कहैवाव से तेतु असखी स्वरूप प्रश्न करी जाव से संसारी एव कर्मनि अधीन होवना आखे दुःखी होव से जो प्रभावे से के प्रत्येक एवनी सत्ता प्रथक्-प्रथक्-अर्ही अर्ही से ते पक्ष तेनाभा स्वरूपनी समानता से

प्रश्न—जो सर्व एव सिद्धोनी समान से ते अल्पज्य एव सिद्धगतिने हेम प्राप्त करी शकता नहीं ?

उत्तर—सुनिये अल्पज्य एवोभा अनदि-अनन्त चिक्रण कर्मोन्ना सज्ज होवाधी अने अपरिवर्तनशील स्वभावना आखे कर्मोन्ना क्षय करवानी शक्ति नहीं, अल्प एवोने तेना चिक्रण कर्म न होवाधी अने परावर्त-स्वभावकी देव, सुदु अने धर्मरूप सामग्रीना भणना पर, ज्ञानादि रत्नप्रयनी आरोहणा करवाधी तथा सुदु अर्ही पर आरोहण करवाधी तेजोने सिद्धपद प्राप्त करवु शक्य से

મનુષ્યમ્ભવ પ્રાપ્ય કર્માણિ ક્ષપયિત્વા જીવા મોક્ષં યાન્તિ, તદાની-  
મેવાવ્યવહારરાશિમ્મૂક્ષમનિગોદાદકામનિર્જરયા નિઃસૃત્યાઽન્યે જીવાઃ વિકાસદર્શા  
પ્રાપ્નુવન્તિ । યદિ દગ્જીવા મુક્તિં ગચ્છન્તિ તદા દગ્જી મૂક્ષમનિગોદાન્નિપ્રાન્તા  
મવન્તિ । કદાચિત્તતોઽપ્યલ્પસઘ્વયાઃ મૂક્ષમનિગોદા વહિરાયાન્તિ તદા તૈઃ  
સાર્ધમેકો દ્વાવમ્ભવ્યજીવો નિઃસરતઃ, કિન્તુ વ્યવહારાગૌ જીવાના હાસવૃદ્ધી ન  
મવતઃ । ઈદૃશા નિગોદગોલકા અસહ્યાતા લોકે સન્તિ, ઇતિ ગ્રન્થાન્તરે ।

। ડત્યવતરણા સંપૂર્ણા ।

ડત્ય મગત્ત્વરૂપિતમનુયોગચતુષ્ટયં પ્રદર્શિતમ્ । તત્ર ચરણઋણાનુયોગસ્ય  
પ્રાધાન્યાત્પ્રાથમ્યમિતિ ચ નિગદિતમ્ ।

મનુષ્ય મ્ભવ પાઠ્ઠ કર્મો કા ક્ષય કરક જીવ મોક્ષ જાતે હૈ, ડસી સમય  
અવ્યવહારરાશિ મૂક્ષ નિગોદ સે અકામનિર્જરાદ્વાગ દ્સરે જીવ નિકલ્લર વિકાસદગ્જા કો પ્રાપ્ત  
કરને હૈ । અગર દગ્જી જીવ મોક્ષ મે જાતે હૈ નો દગ્જી જીવ મૂક્ષનિગોદ સે વાહર  
નિકલ્લ વાતે હૈ । કદાચિત્ અલ્પસલ્પક મૂક્ષ નિગોદ જીવ વાહર નિકલ્લતે હૈ તો ડનકે  
સાથ ંક-દો અમ્ભ્ય જીવ વાહર આ જાતે હૈ મગર વ્યવહાર રાશિ મેં જીવો કી ઘટતી  
વદતી નહીં હોતી । ંસે નિગોદગોલક લોકમે અસલ્પાત હોતે હૈ, ંસા ગ્રન્થાન્તર મે કહા હૈ ।

ઇતિ અવતરણા સંપૂર્ણા—

ડસ પ્રકાર મગવાન્ કે દ્વાગ પ્રરૂપિત ચાર અનુયોગા કા સ્વરૂપ વતલાયા ગયા હૈ ।  
યહ કહા જા ચુકા હૈ કિ-ચરણઋણાનુયોગ પ્રધાન હોને કે કારણ ડસકા પ્રહ્ણ  
સર્વપ્રથમ કિયા ગયા હૈ ।

મનુષ્ય લવ પામીને, કમોના ક્ષય કરીને જીવ મોક્ષે જાય છે, તે અમ્ભે  
અવ્યવહાર રાશિ મૂક્ષનિગોદથી, અકામ નિર્જરાદ્વારા ળીજા જીવો નીકળીને  
વિકાસદર્શાને પ્રાપ્ત કરે છે અગર ડસ જીવ મોક્ષમા જાય છે તો ડસ જીવ મૂક્ષ  
નિગોદથી બહાર નીકળી આવે છે કદાચિત્ અલ્પસઘ્વયક મૂક્ષ નિગોદ-જીવ બહાર  
નીકળે છે તો, તેની સાથે એક-એ અલ્પ જીવ બહાર આવી જાય છે પણ વ્યવહાર  
રાશિમા જીવોનુ ઘટલુ-વધલુ થતુ નથી એ પ્રમાણે નિગોદગોલક લોકમા અસ ળ્યાત  
હોય છે આ પ્રમાણે ત્રિંશાન્તરમા કહ્યુ છે

ઇતિ અવતરણા સંપૂર્ણા—

આ પ્રમાણે લગવાન દ્વારા પ્રરૂપિત ચાર અનુયોગોનુ સ્વરૂપ બતાવવામાં  
આવ્યુ છે. એ કહી આવ્યુ છે કે ચરણ-કરણાનુયોગ પ્રધાન હોવાના કારણે તેનુ  
અહલુ સૌથી પ્રથમ કરવામા આવ્યુ છે

तथाचाराङ्गस्य द्वादशाङ्गेषु प्राथम्यम्, चरणकरणयोर्मोक्षोपायतयाऽस्याङ्गस्य मोक्षकारणाद्यवबोधकस्यैतद्विद्योचितार्थावस्थितस्येतराङ्गाभ्ययनयोम्यतात्पर्याच्च माधान्यात् ।

किञ्च-एतत्तन्प्राभ्ययनेन ज्ञान्तिपादिचरणकरणरूपो वा भ्रमणार्थो धर्मः सुविदितो भवति, आचार्यादिपदप्राप्तिकारणभूतानां स्वसमयादिपरिज्ञानादीनां सर्वेषां पर्याया माचारधारित्वमेव प्रथानमस्ति, तेन तत्प्रतिपादकस्यास्यागमस्य प्रथमाङ्गत्वं सिद्धम् ।

आचारसन्देहं चात्र पञ्चविधो ज्ञानाधारादिर्भूषते । तत्रतिपादकमङ्ग-  
माचाराङ्गम्, अस्मिन्मादिसूत्रम्-

‘सुयं मे’ इत्यादि ।

बारह बांता में आचाराङ्ग पहल अंग है, क्या कि चरण और करण मोक्ष के उपाय हैं, अतः यह अङ्ग भी मोक्ष का कारण है, आचाराङ्ग सूत्र में निरूपित धर्मका अनुष्ठान करने वाला दूसरे अङ्गके अभ्यसन की योग्यता प्राप्त करता है । इस कारण यह अङ्ग प्रथान है ।

दूसरी बात यह है कि-इस अङ्गके अभ्यसन से क्षमा भक्ति, भगवा चरण-करणरूप भ्रमणधर्मका सम्बन्ध प्रकार से ज्ञान होता है । आचार्य भक्ति पदों की प्राप्ति के कारणमूल स्वसमय का परिज्ञान भक्ति समस्त धर्मों में आचारपरित्य (समय पाठन) ही प्रथान है, अतः एक आचार का प्रतिपादक आगम ही पहला अङ्ग होना चाहिए, यह सिद्ध है ।

अतः ‘आचार’ शब्द से ज्ञानचार भक्ति पांच प्रकार का आचार समझना चाहिए । उसका प्रतिपादन करने वाला अङ्ग ‘आचाराङ्ग’ कहलाता है । इस आचाराङ्ग सूत्र का पहला सूत्र यह है-

‘सुयं मे’ इत्यादि ।

आर ज्ञानोभा आचारान्ते पठेत्तु ज्ञानं ते भवेत्तु चरणं चरणं मोक्षोपायं च तेषां आ अत्र यत्तु मोक्षोपायं चरणं च

आचारान्ते सूत्रमां निरूपितं ज्ञानं अनुष्ठानं करणारा पीत्तु ज्ञानोभा अभ्यसननी योग्यता प्राप्त करे च ते चरणवधी आ अत्र प्रथानं च

पीत्तु वातं चो चो चो-आ अत्रना अभ्यसनकी क्षमा भक्ति भगवा चरण-करणरूप भ्रमण-धर्मसं सम्बन्ध प्रकारे ज्ञान प्राप्त चो आचार्य भक्ति पदोनी प्राप्तिना चरणमूल स्वसमयसं परिज्ञान भक्ति समस्त धर्मोभा आचारपरित्य (समयमापन) प्रथानं चो चो भाटे आचारान्ते प्रतिपादन करणार आगमच पठेत्तु ज्ञानं चो चो मोक्षो, चो सिद्धं च

अर्थात् ‘आचार’ शब्दकी शानाचार भक्ति पांच प्रकारके आचार समझने योग्य है, तेनु प्रतिपादन करवावातु अत्र ‘आचाराङ्ग’ कहेवाय चो आ आचाराङ्ग सूत्रनु पठेत्तु सूत्रं चो चो-

‘सुयं मे’ इत्यादि ।

मनुष्यभवं प्राप्य कर्माणि क्षपयित्वा जीवा मोक्षं यान्ति, तदानी-  
मेवाव्यवहारराशिः सूक्ष्मनिगोदादकामनिर्जरया निःसृत्याऽन्ये जीवाः विकासदशां  
प्राप्नुवन्ति । यदि दश जीवा मुक्तिं गच्छन्ति तदा दश सूक्ष्मनिगोदात्रिंशन्तान्ता  
भवन्ति । कदाचित्ततोऽल्पसंख्यकाः सूक्ष्मनिगोदा वहिरायान्ति तदा तैः  
सार्धमेको द्वावभव्यजीवौ निःसरतः, किन्तु व्यवहारागौ जीवाना हासवृद्धी न  
भवतः । ईदृशा निगोदगोलका असख्याता लोके सन्ति, इति ग्रन्थान्तरे ।

। इत्यवतरणा संपूर्णा ।

इत्थं भगवत्प्ररूपितमनुयोगचतुष्टयं प्रदर्शितम् । तत्र चरणकरणानुयोगस्य  
प्राधान्यात्प्राथम्यमिति च निगदितम् ।

मनुष्य भव पाकर कर्मा का क्षय करक जीव मोक्ष जाते हैं, उसी समय  
अव्यवहारराशि सूक्ष्म निगोद से अकामनिर्जगद्वाग दृमरे जीव निकलकर विकासदशा को प्राप्त  
करने हैं । अगर दश जीव मोक्ष में जाते हैं तो दश जीव सूक्ष्मनिगोद से बाहर  
निकल आते हैं । कदाचित् अल्पसंख्यक सूक्ष्म निगोद जीव बाहर निकलते हैं तो उनके  
साथ एक-दो अवभव्य जीव बाहर आ जाते हैं मगर व्यवहार राशि में जीवों की घटती  
वढती नहीं होती । ऐसे निगोदगोलक लोकमे असख्यात होते हैं, ऐसा ग्रन्थान्तर में कहा है ।

इति अवतरणा संपूर्णा—

इस प्रकार भगवान् के द्वारा प्ररूपित चार अनुयोगों का स्वरूप बतलाया गया है ।  
यह कहा जा चुका है कि—चरणकरणानुयोग प्रधान होने के कारण उसका ग्रहण  
सर्वप्रथम किया गया है ।

मनुष्य भव पाभीने, कर्मोनि क्षय करीने एव मोक्षे जाय छे, ते समये  
अव्यवहार राशि सूक्ष्मनिगोदधी, अकाम निर्जराद्वाग जीव एवो नीकणीने  
विकासदशाने प्राप्त करे छे अगर इस एव मोक्षमा जाय छे तो इस एव सूक्ष्म  
निगोदधी अडार नीकणी आवे छे कदाचित् अल्पसंख्यक सूक्ष्म निगोद-एव अडार  
नीकणे छे तो, तेनी साथे ओक-ओ अवभव्य एव अडार आवी जाय छे पण व्यवहार  
राशिमा एवोतु घटवु-वधवु थतु नथी ओ प्रभाषे निगोदगोलक लोकमा असख्यात  
होय छे आ प्रभाषे अथान्तरमा कछु छे

धृति अवतरणा संपूर्णा—

आ प्रभाषे लगवान द्वारा प्ररूपित चार अनुयोगों का स्वरूप बताववाओं  
आव्यु छे ओ कही आव्यु छे के चरण-करणानुयोग प्रधान होवाना कारणे तेषु  
अडण सौधी प्रथम करवामा आव्यु छे

तथाचाराङ्गस्य द्वादशाङ्गेषु प्राथम्यम्, चरणकरणयोर्मौक्तोपायतयाऽस्याङ्गस्य  
मोक्षकारणावबोधकत्वयैतद्विधितार्यावस्थितस्मैतराङ्गाध्ययनयोग्यतालामाच्च प्राधान्यात् ।

किञ्च-एतत्त्वप्राप्त्ययनेन ज्ञानत्यादिभरणकरणरूपो वा भ्रमणानां धर्मः सुषिदितो  
मवति, आचार्यादिपदप्राप्तिकारणभूतानां स्वसमपादिपरिज्ञानादीनां सर्वेषां धर्माणां  
माचारधारित्वमेव प्रधानमस्ति, तेन तत्प्रतिपादकस्यास्यागमस्य प्रथमाङ्गत्वं सिद्धम् ।  
आचारसम्बन्धेन चात्र पञ्चविधो ज्ञानाचारादिरुच्यते । तत्प्रतिपादकस्य  
माचाराङ्गम्, अस्पेदमादिसूत्रम्-

‘सूर्य मे’ इत्यादि ।

बारह अंगों में आचाराङ्ग पहला अंग है, क्या कि भरण और करण मोक्ष के उपाय हैं,  
एत यह अङ्ग भी मोक्ष का कारण है, आचाराङ्ग सूत्र में निरूपित धर्मका अनुष्ठान करने  
वाला दूसरे अङ्गके अध्ययन की योग्यता प्राप्त करता है । इस कारण यह अङ्ग प्रधान है ।

दूसरी बात यह है कि-इस अङ्गके अध्ययन से क्षमा आदि, अथवा चरण-करणरूप  
भ्रमणधर्मका सम्बन्ध प्रकट हो जाता है । आचार्य आदि पदों की प्राप्ति के कारणमूल  
स्वसमय का परिज्ञान आदि समस्त धर्मों में आचारधारित्व (समय प्राप्त) ही प्रधान है,  
एत एव आचार का प्रतिपादक आगम ही पहला अङ्ग होना चाहिए, यह सिद्ध है ।

यहाँ ‘आचार’ शब्द से ज्ञानाचार आदि पाँच प्रकार का आचार समझना  
चाहिए । उसका प्रतिपादन करने वाला अङ्ग ‘आचाराङ्ग’ कहलाता है । इस आचाराङ्ग  
सूत्र का पहला सूत्र यह है-

‘सूर्य मे’ इत्यादि ।

बार अंगोंमें आचारांग पहले अंग है ठीक वरन् करने करण मोक्षने  
उपाय है तभी आ अंग पद्य मोक्षनु करण है

आचारांग सूत्रमा निरूपित अङ्गनु अनुष्ठान करनारा पीला अंगोंना  
अध्ययननी योग्यता प्राप्त करे है ते करणधी आ अंग प्रधान है

पीला वात जो है-आ अंगना अध्ययनधी क्षमा आदि अथवा चरण-  
करणरूप भ्रमण-धर्मनु सम्बन्ध प्रकारे ज्ञान प्राप्य है आचार्य आदि पदोंनी प्राप्तिना  
कारणमूल स्वसमयनु परिज्ञान आदि समस्त धर्मोंमें आचारधारित्व (समयप्राप्त)का  
प्रधान है जो माटे आचारनु प्रतिपादन करनार आगमका पहले अंग होय  
अस्यो जो सिद्ध है

जहाँ ‘आचार’ शब्दधी ज्ञानाचार आदि पाँच प्रकारने आचार समझने  
चाहिये, तेनु प्रतिपादन इत्याचरु अंग ‘आचाराङ्ग’ कहलाय है आ आचाराङ्ग  
सूत्रनु पहले सूत्र आ है-

सूर्य मे इत्यादि

मनुष्यभवं प्राप्य कर्माणि क्षपयित्वा जीवा मोक्षं यान्ति, तदानी-  
मेवाव्यवहारराशिसूक्ष्मनिगोदादकामनिर्जरया निःसृत्याऽन्ये जीवाः विकासदशां  
प्राप्नुवन्ति । यदि दश जीवा मुक्तिं गच्छन्ति तदा दश सूक्ष्मनिगोदान्निष्क्रान्ता  
भवन्ति । कदाचित्ततोऽल्पसंख्यकाः सूक्ष्मनिगोदा वहिरायान्ति तदा तैः  
सार्धमेको द्वावभव्यजीवौ निःसरतः, किन्तु व्यवहारागौ जीवानां हासशृद्धी न  
भवतः । ईदृशा निगोदगोलका असंख्याता लोके सन्ति, इति ग्रन्थान्तरे ।

। इत्यवतरणा सपूर्णा ।

इत्थं भगवत्प्ररूपितमनुयोगचतुष्टयं प्रदर्शितम् । तत्र चरणकरणानुयोगस्य  
प्राधान्यात्प्राथम्यमिति च निगदितम् ।

मनुष्य भव पाकर क्रमों का क्षय करके जीव मोक्ष जाते हैं, उसी समय  
अव्यवहारराशि सूक्ष्म निगोद से अकामनिर्जराद्वारा दृमरे जीव निकलकर विकासदशा को प्राप्त  
करने हैं । अगर दश जीव मोक्ष में जाते हैं तो दश जीव सूक्ष्मनिगोद से बाहर  
निकल आते हैं । कदाचित् अल्पसंख्यक सूक्ष्म निगोद जीव बाहर निकलते हैं तो उनके  
साथ एक-दो अव्यव्य जीव बाहर आ जाते हैं मगर व्यवहार राशि में जीवों की घटती  
बढती नहीं होती । ऐसे निगोदगोलक लोकमें असख्यात होते हैं, ऐसा ग्रन्थान्तर में कहा है ।

इति अवतरणा संपूर्णा—

इस प्रकार भगवान् के द्वारा प्ररूपित चार अनुयोगों का स्वरूप बतलाया गया है ।  
यह कहा जा चुका है कि—चरणकरणानुयोग प्रधान होने के कारण उसका ग्रहण  
सर्वप्रथम किया गया है ।

मनुष्य भव पाभीने, कर्मेनि क्षय करीने एव मोक्षे नय छे, ते सभये  
अव्यवहार राशि सूक्ष्मनिगोदधी, अकाम निर्जराद्वारा भीन एवे नीकणीने  
विकासदशाने प्राप्त करे छे अगर इस एव मोक्षमा नय छे तो इस एव सूक्ष्म  
निगोदधी अहार नीकणी आवे छे कदाचित् अल्पसंख्यक सूक्ष्म निगोद-एव अहार  
नीकणे छे तो, तेनी साथे अक-अे अव्यव्य एव अहार आवी नय छे पशु व्यवहार  
राशिमा एवेतु घटवु-वधवु थतु नधी अे प्रमाणे निगोदगोदक लोकमा अस अ्यात  
होय छे आ प्रमाणे अे थान्तरमा उल्लु छे

इति अवतरणा संपूर्णा—

आ प्रमाणे लगवान द्वारा प्ररूपित चार अनुयोगों का स्वरूप बताया गया  
आव्यु छे अे कही आव्यु छे के चरण-करणानुयोग प्रधान होवाना कारणे तेषु  
अहं सौधी प्रथम करवाना आव्यु छे



श्रुतं=भक्त्यविपयीकृत, मया=मासाद् भगवन्मुखात्, न तु परम्परया, यतो गणधरागामनन्तरागमो भवति । 'मया श्रुत'—मित्यनेन गुरुकुले निवसता मयेत्यर्थः श्रुतरां कथ्यते । गुरुकुलनिवासं विना हि गुरुवरणसरोवरस्पर्शपूर्वकामिवात्वनं, तन्मुत्सारविन्दपिनिःशृतवचनभरणं च नोपपद्यते ।

मगधया ~मगः=(१) - ज्ञानं=सर्वायंविषयकम्, (२) - माहात्म्यम्=भनुपममहनीयमहिमसंपन्नम्, (३)-यज्ञः=विधिधानुकम्प्रतिकूलपरीषदोपसर्गसहन समुद्रयूता कीर्तिः, यज्ञा-जगत्सममहासमुद्रया कीर्तिः, (४)-वैराग्यम्=वर्षया काम

मैने मगधान् के मुम्से साक्षात् सुना है—परम्पर से नहीं, क्योंकि गणधरो का आगम अनन्तरागम होता है । मैने सुना इस वाक्य का मैने गुरुकुल में निवास करते हुए सुना ' यह वर्ष स्वतः सिद्ध है । गुरुकुल में निवास किये बिना गुरु के वरण-कर्मोंका स्पर्श करके अभिवादन तथा उनके मुम्सारविन्द से निकलन बाध बचनों का भजन नहीं हो सकता ।

'मगधाम' शब्द में जो 'मग' शब्द है उसके अनेक अर्थ होते हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान (२) महात्म्य अर्थात् अनुपम और महान् महिमा (३) यज्ञ अर्थात् नान्य प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल परिषदों और उपसर्गों को सहन करने से फैली हुई कीर्ति अथवा जगत् की रक्षा (उदार) करने की भावना से उत्पन्न हुई कीर्ति (४) वैराग्य अर्थात् कामभोग की

से भावनाना अुलभी साक्षात् सांख्य्ये उ—परम्पराधी नहि, केभके अणुपरोना आत्म अनन्तरात्म-होय उ 'से सांख्य्ये से श्रुतवर्मा निवास कर्त्वा यज्ञ सांख्य्ये का अर्थ स्वतः सिद्ध उ श्रुतवर्मा निवास कर्त्वा विना शुकना वरष्कभक्तौने स्पश कर्त्तौने अभिवादन नमस्कार तथा तेना अुत्सार विन्दपी निकलनावाजां वचनो अवणु कर्त्त सांख्य्ये नभी.

'क्षत्रधान' शब्दार्थ से 'मग' शब्द उ तेना अनेक अर्थ साय उ ते का अर्थ—

(१) सम्पूर्ण पदार्थोंके अणुवावाणु ज्ञान, (२) माहात्म्य अर्थात् अनुपम अने महान् महिमाभी अुत्त होय (३) यज्ञ-अर्थात् नान्य प्रकारना अनुकूल अने प्रतिकूल परीषदो अने उपसर्गोने सहन करवाभी होलायी कीर्ति अथवा अजवनी रक्षा (उदार) करवाणी भावनाभी उत्पन्न कयेली कीर्ति (४) वैराग्य-

मूलम्—

सुयं मे आउस तेणं भगवया एवमक्खायं, ( सू. १ )

( छाया )

श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन भगवता एवमाख्यातम् ( सू. १ )

टीका—

‘सुयं मे’ इत्यादि । आयुष्मन् ! हे चिरजीविन् ! जम्बू ! ‘आयुष्मन्’-  
न्नितिपदं शिष्यस्य जम्बूस्वामिनः कोमलवचनामन्त्रणं विनीतताख्यापनार्थम् ।  
किञ्च—तस्याशेषश्रुतज्ञानोपदेश—श्रवण—ग्रहण—धारण—रत्नत्रयाराधन—मोक्षसाधन-  
योग्यताप्राप्त्यर्थमेतद्वचनम् । विनाऽऽयुषा श्रुतश्रवणादिमोक्षपर्यन्तसिद्धिर्न कस्यचित्तं-  
भवतीति भावः । एतद्वचनप्रभावादेव जम्बूस्वामी मोक्षपदं तस्मिन्नेव जन्मनि  
प्राप ।

मूलार्थ—‘सुयं मे’ इत्यादि, हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है । उन भगवान् ने ऐसा  
कहा है ( सू० १ )

टीकार्थ—हे आयुष्मन् ! अर्थात् हे चिरजीवी जम्बू !, ‘आयुष्मन्’ पद अपने शिष्य  
जम्बू स्वामीका कोमल वचनरूप सम्बोधन है, और विनीतता प्रकट करने के लिए है ।  
अथवा—उनके समस्त श्रुतज्ञान, उपदेश का श्रवण, ग्रहण धारण, रत्नत्रयका आराधन, तथा  
मोक्षसाधन की योग्यता की प्राप्ति के लिए इस पद का प्रयोग किया गया है । आयुके  
अभाव में श्रुतश्रवण से लेकर मोक्ष तक किसीकी भी सिद्धि नहीं हो सकती । इसी वचन  
के प्रभाव से जम्बू स्वामीने उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया था ।

‘सुयं मे’ इत्यादि .

मूलार्थ—हे आयुष्मन् ! मे साबळ्यु छे, ते लगवाने आउ कळु छे (सू-१)

टीकार्थ—हे आयुष्मन् अर्थात् हे चिरजीवी जम्बू !, ‘आयुष्मन्’ पद  
पिताना शिष्य जम्बू स्वामीनु कोमल-वचनरूप सम्बोधन छे, अने विनीतपण  
प्रकट करवा भाटे छे अथवा तेमना समस्त श्रुतज्ञान, उपदेशनु श्रवण, ग्रहण,  
धारण, रत्नत्रयनु आराधन तथा मोक्षसाधननी योग्यतानी प्राप्ति भाटे आ पढने  
प्रयोग करवामा आव्ये छे, आयुना अभावमा श्रुतना श्रवणथी लधने मोक्ष सुधी  
कोई पण सिद्धि थई शकती नथी आ वचनना प्रभावथी जम्बू स्वामीजे अ  
लवमा मोक्ष प्राप्त कथी हुतो.

भुतं=भक्तविषयीकृतं, मया=साक्षात् मगवान्स्वात्, न तु परम्परया, यतो गणधराभामन्तरागमो भवति । 'मया भुत'—मित्यमेन गुरुकुले निवासता मयेत्यर्थः सुतरां सम्यते । गुरुकुलनिवासं विना हि गुरुवरणसरोजस्पर्शपूर्वकामिवादनं, तन्मुखारविन्दविनिःसृतचषनभ्रषणं च नोपपद्यते ।

मगवया - मया = (१) - ज्ञानं - सर्वाय विषयकम्, (२) - माहात्म्यम् = मनुष्यमहनीयमहिमसंपन्नत्वम्, (३) - यज्ञः = विविधानुष्ठानप्रतिष्ठापरीपहोपसर्गसहनस्मद्भूता कीर्ति, यज्ञा-जगत्सम्पन्नासप्तत्या कीर्तिः, (४) - वैराग्यम् = सर्वाकांक्षाम

मैने भगवान् के मुखसे साक्षात् सुना है—परम्परा से नहीं क्यो कि गणधरो का आगम अनन्तरागम होता है । मैने सुना ' इस वाक्य का मैने गुरुकुल में निवास करते हुए सुना यह अर्थ स्वतः सिद्ध है । गुरुकुल में निवास किये बिना गुरु के चरण-कर्मोका स्पर्श करने अमिवादन तथा उनके मुखारविन्द से निकलने वाल बन्नों का भक्षण नहीं हो सकता ।

'मगवान्' शब्द में जो 'मग' शब्द है उसके अनेक अर्थ होते हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान (२) महात्म्य अर्थात् अनुपम और महान् महिमा (३) यज्ञ अर्थात् नाना प्रकार के अनुष्ठान और प्रतिष्ठापरीपहो और उपसर्गों को सहन करने से पैसी हुई कीर्ति अथवा काम की रक्षा (उदार) करने की भावना से उत्पन्न हुई कीर्ति (४) वैराग्य अर्थात् काममोहा की

से अजवानता सुजयी साक्षात् आज्ञायु है—परम्पराधी नदि, हेमके अक्षरैतना आज्ञम अनन्तरागम-कोय है ये आज्ञायु से शुकुलमां निवास करता रहा आज्ञायु का अर्थ स्वतः सिद्ध है शुकुलमां निवास कयो विना शुकुला वरषाभट्टोने स्पष्ट करीने अमिवादन नमस्कार तथा तेना सुजार विदधी निकलवावाजां वचनो भवषु अर्थ शकती नधी

'अजवान' शब्दों के 'मग' शब्द है तेना अनेक अर्थ वाच्य है ते का अर्थ—

(१) सम्पूर्ण पदार्थोंके अज्ञानवाशु ज्ञान, (२) माहात्म्य अर्थात् अनुपम अने महान् महिमाशी युक्त कोयु, (३) यज्ञ-अर्थात् नाना प्रकारना अनुष्ठान अने प्रतिष्ठापरीपहो अने उपसर्गोंके सहन करवाशी हेलावी शक्ति अथवा अजतनी रक्षा (उदार) करवाणी भावनाशी उत्पन्न अथेती शक्ति, (४) वैराग्य-

भोगाभिलाषराहित्यम्, यद्वा-क्रोधादिकपायनिग्रहलक्षणम्, (५)-मुक्तिः=सकल-  
कर्मक्षयलक्षणो मोक्ष, (६)-रूपम्=सकलहृदयहारिसौन्दर्यम्, (७)-वीर्यम्=अन्त-  
रायान्तजन्यमनन्तसामर्थ्यम्, (८)-श्रीः=घातिकर्मपटलविघटनजनितज्ञानदर्शन  
सुखवीर्यरूपानन्तचतुष्टयलक्ष्मीः । ( ९ ) - धर्मः-अपवर्गद्वारकपाटोद्घाटनसाधन-  
श्रुतचारित्रलक्षणः (१०)-ऐश्वर्यम्=लोकत्रयाधिपत्यम्, चाभ्यास्तीति भगवान्,  
तेन भगवता=ज्ञानादियुक्तेन, तेन तीर्थङ्करेण, वक्ष्यमाणार्थस्य तीर्थङ्करभाषितत्वान्त-  
च्छब्देनात्र तीर्थङ्करपरामर्शः । उक्तञ्च—

तनिक भी अभिलाषा न होना, अथवा क्रोध आदि कपायांका निग्रह करना, (५) मुक्ति  
समस्त कर्मोंका क्षय रूप मोक्ष, (३) रूप-सब का हृदय हृदयेवाला अनुपम सौन्दर्य  
(७) वीर्य-अन्तराय कर्मके क्षय से उत्पन्न अनन्तशक्ति, (८) श्री-घाति कर्मों के क्षय से  
उत्पन्न अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यरूप अनन्तचतुष्टय लक्ष्मी (९) धर्म-मोक्षरूपी  
द्वार के किवाड उघाडने का साधन श्रुतचारित्ररूप धर्म, (१०) ऐश्वर्य-तीन लोक का  
आधिपत्य । ये दश गुण जिम में विद्यमान हों उसे 'भगवान्' कहते हैं । ऐसे  
भगवान्ने कहा है । आगे कहा जाने वाला तत्त्व तीर्थङ्करभाषित है, अत एव 'तत्'  
शब्द से यहाँ भगवान् तीर्थङ्कर समझना चाहिए । कहाभी है—

अर्थात् कामलोगनी वरा पञ्च अलिखापा नथवी, अथवी क्रोध कपायेना निग्रह  
करवे, (५) मुक्ति-समस्त कर्मोंका क्षयरूप मोक्ष (६) रूप-सर्वना हृदयने उरी  
खेवावाणु अनुपम सौन्दर्य, (७) वीर्य-अन्तराय कर्मना क्षयथी उत्पन्न अनन्त  
शक्ति (८) श्री-घाति कर्मोंका क्षयथी उत्पन्न अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख अने  
वीर्यरूप अनन्तचतुष्टयलक्ष्मी (९) धर्म-मोक्षरूपी द्वारना कभाड उघाडवातु  
साधन श्रुत-चारित्ररूप धर्म (१०) ऐश्वर्य-त्रयु लोकतु अधिपतिपणु आ दस  
शुषु जेभा डोय तेने भगवान् कहे छे जेवा भगवाने कहु छे

आगण कहेवाशे ते तत्त्व तीर्थङ्करभाषित छे, जेटला भाटे 'तत्' शब्दथी  
तीर्थङ्कर भगवानने अर्थ अहिं समजवे लोके जे कहु पणु छे-

“अस्य मासः अरिहा, सुप्तं गन्धंति गणधरा गिडभा” इत्यादि ।

अर्थ भाषतेऽर्धं सूत्रं ग्रन्थन्ति गणधरा निष्पन्ना, इति ज्ञेया ।

मगनशीर्षङ्करोपदिष्टमर्थरूपमागमसुधादाय मेधानिनो गणधरा मूर्खरूपमागमं निषङ्गन्तीत्यर्थः ।

एष=वक्ष्यमगरीत्या आख्यात=कथितं द्वादशविधपरिपत्सु ।

मगनशीर्षङ्करकथितार्थजातमेव बाहुस्य वक्ष्यमानं वाक्यमनुवादित्वामीति वाक्यार्थः । आगमोक्तार्थस्य कल्पनिकस्याभावाद् द्रव्यार्थिकनयेनार्थस्पोऽयमाग-  
मोज्जादिरिति भावः ।

एषा परंपरा=परिपाटी वरीवर्ति सर्वेषां गणधराणां, यद् विनीतैः स्वस्वान्ते-  
षासिमिमोक्षमाग सधिनयं पृष्ठा गणधरा “सुप्तं म” इतिवाक्यं प्रथमं क्वन्ति ।  
उक्तञ्च—

“अन्त मगनस्त अर्थका निरूपणं करत हैं । और गणधर उसे मन्त्रे-मौलि  
सूत्र रूप में गूँथत है । अर्थात् मगनान् तीर्षङ्कर के द्वारा उपदिष्ट अर्थरूप आगम के  
भाषार पर कुशल गणधर मूर्खरूप आगमकी रचना करते हैं ।”

उन भगवान्ने बारह प्रकारकी परिपत् में इस प्रकार कहा है जो आगे इस सूत्र में  
निरूपण किया जायगा । आगमोक्त अर्थ कल्पनिक नहीं होता अतः द्रव्यार्थिकनय से  
अर्थरूप यह आगम बनादि है ।

सभी गणधरो की यह परंपरा-परिपाटी है कि-मपम २ विनीत शिष्या  
द्वारा विनयपूर्वक मोक्षमार्गी पूछे ज्ञान पर गणधर महाराज पढ़के-पहल ‘सुप्तं म’ यह वाक्य  
बोल्ते है । कहा भी है—

अन्त-त अत्रत अथनुं निरूपणं करे छे अने जगुधर तेने कही शीते  
सूत्र रूपमा शुद्धे छे अर्थात् अत्रवान तीर्थं करे द्वारा उपदिष्ट-उपदेशोलां अर्थरूप  
आगमना आधर पर कुशल जगुधर मूर्खरूप आगमनी रचना करे छे

ते अत्रवाने जार प्रकारनी परिपद्-सजाभां आ प्रभावे कहु छे ने आगम  
आ सूत्रमां निरूपणं करवाभां आवरी आगमोक्त-आगममां कहेते अर्थ कल्पनिक  
नथी तेथी द्रव्यार्थिक नथी अर्थरूप आ आगम अनादि छे

सर्वं जगुधरानी के परंपरा-परिपाटी छे के-पीत-पीताना विनीत शिष्ये  
द्वारा विनयपूर्वक मोक्षमाग पूछवाथी जगुधर महाराज प्रथम सुप्तं मे आ वाक्य  
बोले छे कहु पवु छे—

( द्रुतविलम्बितं छन्दः )

“ निपुणशिष्यगणैर्विनयान्वितैः—  
विमलभावयुतैः परिसेवितैः ।

गणधररखिलैः प्रथम वचः,

खलु ‘सुयं मे’ इति प्रतिभापितम् ” ॥१॥ इति ।

भगवता यदाख्यात तदाह—‘इहमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलम्

इहमेगेसि णो सण्णा भवइ, तजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दाहिणाओ वा दिशाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि । अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि ॥ मू. २ ॥

“विनय से युक्त निपुण शिष्यों द्वारा सेवित, तथा निर्मल भावों वाले सब गणधरों द्वारा अपने र शिष्यों के प्रति सर्व प्रथम सुय मे’ यह वाक्य कहा गया है ॥ १ ॥

भगवान्मने जो कहा वह कहते हैं—‘इहमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—किन्हीं २ (जीवा) को सजा नहीं होती कि—मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, या मैं दक्षिण दिशा से आया हूँ, या मैं पश्चिम दिशा से आया हूँ, अथवा मैं उत्तर दिशा से आया हूँ । अथवा मैं उर्ध्व दिशा से आया हूँ, या अघोदिशासे मैं आया हूँ, अथवा मैं दूसरी किसी दिशा या अनुदिशा (विदिशा) से आया हूँ ॥ २ ॥

“ विनयशी युक्त निपुण शिष्योऽपि सेवित तथा निर्मल भावोवाणा सर्व गणधरो द्वारा पोतपोताना शिष्यो प्रति सर्व प्रथम ‘सुयं मे’ अपि वाक्य कहेवाभा आण्यु छे ” ॥ १ ॥

मूलार्थ—‘इहमेगेसि’ इत्यादि को-को (एवो)ने सजा नहीं होती के हुं पूर्व दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हुं दक्षिण दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हुं पश्चिम दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हुं उत्तर दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हुं उर्ध्व दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हुं अघो दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हुं अन्य-णील को-को दिशाभाथी अथवा अनुदशा (विदिशा)भाथी आण्यो छु ॥ २ ॥

ध्या—

इह एकेषां नो संज्ञा भवति, तद्व्यया-पूर्वस्या वा दिशाया आगतो-  
 ऽहमस्मि, दक्षिणस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि, पश्चिमाया वा दिशाया  
 आगतोऽहमस्मि । उत्तरस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि । ऊर्ध्वाया वा दिशाया  
 आगतोऽहमस्मि, अत्रोदिशाया वा आगतोऽहमस्मि, अन्यतरस्या वा दिशाया  
 अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मि ।

‘इहमग्रेसि’ इति इह-अतुर्गतिस्सारणरूप संसार एक्यां ज्ञानावरणीयकर्मो-  
 ऽप्यक्तां संज्ञिनां जीवानां संज्ञा-स्मृतिरूपो प्रतिषिद्धयः ना भवति-न ज्ञायत ।

अन्य प्रतिषेधवाचकं शब्द विहाय ‘नो’ शब्दोपादानं विशिष्टसंज्ञा-  
 प्रतिषेधबोधनार्थम् । ‘नो’ शब्दः सर्वनिषेधवाची, दक्षनिषेधवाची च । उक्तम्—

“प्रतिषेधयति समस्त, प्रसक्तमर्थं जगति नो-शब्दः ।

स पुनस्तद्वचनो वा, तस्मादर्थान्तरं वा स्यात् ॥ १ ॥”

‘नो’ शब्दः-प्रसगादागतमर्थं संपूर्णं प्रतिषेधयति, स चार्थं प्रसक्तावयवो  
 वा स्यात् तस्मादन्यो वाऽर्थः स्यात् समपि प्रतिषेधयतीत्यर्थः ।

टीकार्थ—चार गति में भ्रमण करमरूप संसार में ज्ञानावरण कर्म के उदय  
 वाके कितनेक संज्ञी जीवों को संज्ञा भवति स्मृति गयी होती ।

निषेधवाचक इतरे शब्द को छोड़ कर यहाँ ‘नो’ शब्द का प्रयोग किया  
 गया है सो विशिष्ट संज्ञा का अभाव सूचित करने के लिए समस्त वादिए । ‘नो’  
 शब्द सर्वनिषेधवाचक भी है और दक्षनिषेधवाचक भी है । कहा भी है—

“नो शब्द प्रसक्त में आये हुए संपूर्ण अर्थ का निषेध करता है । यह अर्थ  
 पावे उन का एक अवयव हो या उस से भिन्न अर्थान्तर हो-उस का भी  
 निषेध करता है’ ॥१॥

टीकार्थ—चार गतिमां अमलु करवा रूप संसारमां ज्ञानावरण कर्मना उदय  
 वाणा केवाक सज्ञी जीवोने सज्ञा अर्थात् स्मृति नहीं रहेगी निषेध-वाचक  
 अन्य शब्दो त्वन्ते अति नो शब्दने प्रयोग कर्षो छे ते विशिष्ट संज्ञानो  
 अभाव सूचयवा भाटे समकरो ज्येष्ठको नो शब्द सर्वनिषेधवाचक पक्ष छे अने  
 दक्षनिषेधवाचक पक्ष छे कक्ष पक्ष छे—

“ नो शब्द प्रसक्तमा आवेवा संपूर्ण अर्थनो निषेध करे छे ते अर्थ  
 अमे ते तेनु ज्येष्ठ अवयव होय अथवा तेनशी किन्तु अर्थान्तर होय तेने पक्ष  
 निषेध करी दे छे’ ॥ १ ॥

(द्रुतविलम्बितं छन्दः)

“ निपुणशिष्यगणैर्विनयान्वितैः—

विमलभावयुतैः परिसेवितैः ।

गणधररखिलैः प्रथमं वचः,

खलु ‘सुयं मे’ इति प्रतिभापितम् ” ॥१॥ इति ।

भगवता यदाख्यात तदाह—‘इहमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलम्

इहमेगेसि णो सण्णा भवइ, तंजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दाहिणाओ वा दिशाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उड्डाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि । अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि ॥ सू. २ ॥

“विनय से युक्त निपुण शिष्यों द्वारा सेवित, तथा निर्मल भावों वाले सब गणधरों द्वारा अपने शिष्यों के प्रति सर्व प्रथम सुयं मे’ यह वाक्य कहा गया है ॥ १ ॥

भगवानन्ने जो कहा वह कहते हैं—‘इहमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—किन्हीं २ (जीवों) को सजा नहीं होती कि—मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, या मैं दक्षिण दिशा से आया हूँ, या मैं पश्चिम दिशा से आया हूँ, अथवा मैं उत्तर दिशा से आया हूँ । अथवा मैं उर्ध्व दिशा से आया हूँ, या अधोदिशासे मैं आया हूँ, अथवा मैं दूसरी किसी दिशा या अनुदिशा (विदिशा) से आया हूँ । ॥ २ ॥

“ विनयशी युक्त निपुण शिष्योऽप्ये सेवित तथा निर्मल भावोवाणा सर्वं गणधरे द्वारा पोतपोताना शिष्यो प्रति सर्वं प्रथमं ‘सुयं मे’ अथ वाक्य कहेवामा आण्यु छे ” ॥ १ ॥

मूलार्थ—‘इहमेगेसि’ इत्यादि को—को (एवो)ने सजा नहीं होती के हु पूर्व दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु दक्षिण दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु पश्चिम दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु उत्तर दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु उर्ध्व दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु अधो दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु अन्य-भी को दिशाभाथी अथवा अनुदिशा (विदिशा)भाथी आण्यो छु. ॥२॥



अथवा—सद्धानं सद्भा-चेतना, सा चासातवेदनीयमोहनीयकर्मोदयजन्य-  
निकारस्युक्ता आहारादिसद्भादिस्वेन व्यपदिश्यते । सा द्विधा-अनुभवसद्भा, ज्ञानसद्भा  
य । तत्रानुभवसद्भा पोद्भवविधा । तत्र मगवतीसूत्रोक्तदशविधसद्भा उपादायाधिका  
पद् संज्ञा समिक्षिताः पोद्भव मवन्ति । तत्र (१) सुखसंज्ञा, (२) दुःखसंज्ञा,  
(३) मोहसंज्ञा, (४) विचिकित्सासंज्ञा, (५) शोकसंज्ञा, (६) धर्मसंज्ञा चेति पद्  
अधिक्य चिह्नेयाः ।

(१) आहारसंज्ञा—

(१) सुखेदनीयोदयात् क्वचनआहारार्थं तथाविधपुद्गलोपादानक्रिया  
सम्बन्धे ज्ञापतेऽन्यत्प्राहारसंज्ञा । यथा—सुखेदनीयोदयसमुद्भव आहारमि-

अथवा—सद्धान-सद्भा-चेतना अर्थात् सद्भा चेतना को कहत हैं । यह जब  
असातावेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से अनित्त विकारों से युक्त होती है तब वह आहार  
अदि संज्ञा कहलाने लगती है । वह दो प्रकार की है—(१) अनुभवसद्भा और (२) ज्ञानसद्भा ।  
इन में से अनुभवसद्भा सोलह प्रकार की है । मगवतीसूत्रोक्त दश सद्भावों में  
छह सद्भाएँ मिला देन से सोलह हो जाती है । छह संज्ञाएँ ये हैं—(१) सुखसंज्ञा,  
(२) दुःखसंज्ञा (३) मोहसंज्ञा (४) विचिकित्सासंज्ञा (५) शोकसंज्ञा और (६) धर्मसंज्ञा ।

(१) आहारसंज्ञा

सुखेदनीय के उदय से क्वचनआहार अदि के स्थि योग्य पुद्गल को ग्रहण  
करने की क्रिया जिस द्वारा सम्बन्ध प्रकार से ज्ञानी जाय वह आहारसंज्ञा कहलती है ।

अथवा—सद्धानं ज्येष्ठे सद्भा ते चेतना अर्थात् चेतनाने सद्भा कहे छ ते अर्थ  
असातावेदनीय अने मोहनीय कर्मन उदयधी उत्पन्न विकारो युक्त होय छ  
तयै ते आहार अदि सद्भा कहेवाय छे ते छि प्रकारनी छे—(१) अनुभवसद्भा  
अने (२) ज्ञानसद्भा तेमां अनुभवसद्भा योग प्रकारनी छे अजपतीसूत्रोक्त दश  
सद्भावोमां छ अजपती हेवाची योग भाव छ छ सद्भावो आ छे—(१) सुखसद्भा,  
(२) दुःखसद्भा, (३) मोहसद्भा (४) विचिकित्सासद्भा (५) शोकसद्भा अने  
(६) धर्मसद्भा ।

(१) आहारसंज्ञा—

सुख (सुख) वेदनीयना उदयधी क्वचनआहार अदि भा? योग्य पुद्गलाने अदसु  
करवानी क्रिया जेता तडे सम्बन्ध प्रकारनी जलपी शक्य ते आहारसंज्ञा कहेवाय छे ।

યયા સંજ્ઞયાઽઽત્મનો ગત્યાગત્યાદિકં જીવો જાનાતિ તસ્યા ઇવ પ્રતિપેયો વિવક્ષિતઃ ।

અથ સંજ્ઞાભેદાઃ—

સંજ્ઞા ચ જીવાનાં વહુવિધા । તત્ર-દશવિધા ભગવતીસૂત્રે ( ગતરુ-૭, ઉદ્દેશ ૮ ) પ્રોક્તા—

“ કઙ્ઘ ણ મંતે ! સન્નાઓ પન્નત્તાઓ ? ગોયમા ! દસ સન્નાઓ પન્નત્તાઓ, તંજહા-(૧) આહારસન્ના, (૨) મયસન્ના, (૩) મેહુણસન્ના, (૪) પરિગ્રહસન્ના, (૫) કોઈસન્ના, (૬) માણસન્ના, (૭) માયાસન્ના, (૮) લોભસન્ના, (૯) લોગસન્ના, (૧૦) ઓહસન્ના ” ઇતિ ।

જિસ સજ્ઞા કે દ્વારા આત્મા કી ગતિ ઓગ આગતિ જીવ જાનતા હૈ, યહાં ઉસીકા નિષેધ સમજના ચાહિણ ।

સંજ્ઞા કે ભેદ—

જીવોં કી સજ્ઞા અનેક પ્રકાર કી હોતી હૈ । ભગવતીસૂત્ર ( શ૦ ૬, ૩૦ ૮, મેં દશ પ્રકાર કી સજ્ઞા કહી ગઈ હૈ, વહ ડસ પ્રકાર હૈ,—

પ્રશ્ન—ભગવાન્ ! સજ્ઞાઈં કિતની કહી ગઈ હૈં ।

ઉત્તર—ગૌતમ ! દશ સજ્ઞાઈં કહી ગઈ હૈ । વે ડસ પ્રકાર હૈ— (૧) આહાર-સજ્ઞા, (૨) મય-સજ્ઞા, (૩) મૈથુન-સજ્ઞા, (૪) પરિગ્રહ-સંજ્ઞા, (૫) ક્રોધ સજ્ઞા (૬) માન-સજ્ઞા, (૭) માયા-સજ્ઞા, (૮) લોભ-સજ્ઞા, (૯) લોક-સંજ્ઞા ઓર (૧૦) ઓધ-સજ્ઞા ।

જે સજ્ઞા દ્વારા આત્માની ગતિ અને આગતિ ઇવ જાણે છે અહિં અને નિષેધ સમજવો જોઈએ

સજ્ઞાના ભેદ—

જીવોની સજ્ઞા અનેક પ્રકારની હોય છે ભગવતી સૂત્ર ( શ ૬ ૩ ૮ )માં ડસ પ્રકારની સજ્ઞાઓ કહેવામા આવી છે. તે આ પ્રમાણે છે:—

પ્રશ્ન—ભગવાન ! સજ્ઞાઓ કેટલી કહી છે ?

ઉત્તર—ગૌતમ ! ડસ સજ્ઞાઓ કહી છે તે આ પ્રમાણે છે:—

(૧) આહાર-સજ્ઞા (૨) લય-સજ્ઞા (૩) મૈથુન-સજ્ઞા, (૪) પરિગ્રહ-સજ્ઞા (૫) ક્રોધ-સજ્ઞા (૬) માન-સજ્ઞા (૭) માયા-સજ્ઞા (૮) લોભ-સજ્ઞા (૯) લોક-સંજ્ઞા અને (૧૦) ઓધ-સજ્ઞા

(२) मयसंज्ञा-

(१) सनिमित्तमनिमित्तं वा मयमोहनीयोदयाद् मयोत्स्रान्तस्य मोहनीयान्तर्गतनोदयायरूपा नयनवदनकिङ्करोभाञ्जानिर्माणादिक्रियामङ्गला स्वात्मन परिष्कृतिमयसंज्ञा । इतिबल्लरवेन, मयनार्ताभयमीपवदर्वनादि अनित्यपुद्गला, इहलोकादिमयजनकार्यपर्यालोचनेन वा मयसंज्ञा ज्ञायते । इत्स्वस्वर्गादिमीत्या स्वावयवसंकोचनादिना रुज्ज्ब्राह्मवत्स्यादीनां मयसंज्ञा विज्ञायते ।

(३) मैयुनसंज्ञा-

(३) पुरुषवेदोदया मैयुनार्थं वनितालोकलप्रसन्नवदनसंस्वस्मितगात्र-

(२) मयसंज्ञा-

किसी कारण से या बिना ही कारण मयमोहनीय कर्म के उत्पन्न से मयगीत पुरुषकी माहके अस्तित्व नोदयायरूप नेत्रों में और मुख में विक्रम होना रोमान्न होना यदि क्रियाएँ विमङ्गल सङ्ग है, परमी आत्मा की परिणति मयसंज्ञा कहलती है, दुर्बलता से मय उत्पन्न करने वाली बात सुनने से, मयङ्कर वस्तु के देखने से, तथा इहलोके वादि में मयजनक वस्तुका विचार करने से मयसंज्ञा उत्पन्न होती है । सङ्गन्ती वादि वनस्पतियों हाथ के स्पर्श के मय से अपने अङ्गुली को सिकोड़ लेती हैं, वस्तु उन में मयसंज्ञा की विद्यमानता प्रतीत होती है ।

(३) मैयुनसंज्ञा-

पुरुषवेद-मोहनीय कर्म के उत्पन्न से मैयुन के स्मित स्त्री को देखना, प्रसन्नवदन

(१) मय संज्ञा-

इहं कारणवती अथवा विना कारणे अथ सवे, मोहनीय कर्मना उदयधी लक्षणीय पुरुषनी मोहने अतर्गत नोदयायरूप नेत्रोभा अने बहोलाभां विकार सवे, रोमान्न वदुं (इवादां वलां सवी) वजेरे किञ्चिन्ने न्तु लक्षणे से लेवी अतर्भानी परिष्कृति ते लक्षणाया इहेवाथ से इहलोकताधी लक्ष उत्पन्न कर्त्तव्याधी नत साङ्गणावाधी, लयहर वस्तु देणवाधी तथा आ लोका वजेरेभां लयजनक वस्तुने विचार कर्त्तवाधी लयसंज्ञा उत्पन्न याव से लक्षणावती (लक्षणावती) वादि वनस्पतियो कायने स्पर्श कर्त्तवाधी लय लोको देय तेम पीताना लयवदेने सहेषे से तेधी तेभा लयसंज्ञानी विद्यमानता देजाव से

(३) मैयुन संज्ञा-

पुरुषवेद-मोहनीकर्त्तना उदयधी मैयुन भागे ली तरह लेवुं लक्षणे अथ

लापरूप आत्मनः परिणामविशेषः । अभिलाषश्चात्र—‘मदर्थमीदृश वस्तु पुष्टिकं,  
यदीदं लभ्यते तदा मम हितं भविष्यती’—त्येवं विचारानुबद्धः स्वपुष्टितुष्टिकारणी-  
भूतप्रतिनियतवस्तुप्राप्त्यर्थमात्मनः परिणामः । रिक्तोदरत्वाद् भोजनीयवस्तु-  
श्रवण-दर्शन-संचिन्तनैश्चाहारसंज्ञा जायते । आहारादयः संज्ञाः एकेन्द्रियादि-  
पञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां सर्वजीवानामासंसारं भवन्ति । जलाद्याहारोपजीवनाद्  
वनस्पत्यादीनामाहारसंज्ञा विज्ञायते ।

अथवा क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाली आहार की अभिलाषारूप  
आत्मा की परिणति आहारसंज्ञा कहलाती है । यहा अभिलाषा शब्द से ‘इस प्रकार की  
वस्तु मेरे लिए पुष्टिकर है, यह वस्तु मिले तो मेरा हित होगा’ ऐसे विचार से युक्त  
अपनी पुष्टि और सन्तोष के कारणभूत पदार्थ की प्राप्ति के लिए होने वाल  
अमा का परिणाम ग्रहण करना चाहिए । खाली पेट होने पर भोज्य वस्तु के श्रवण  
दर्शन और चिन्तन से आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है । आहार आदि संज्ञाएँ एकेन्द्रिय  
से लेकर पञ्चेन्द्रियपर्यन्त सभी जीवों को होती हैं, जब तक समार का अन्त नहीं  
होता तब तक बनी रहती हैं । जल आदि आहार पर जीवित रहने के कारण वन  
स्पति आदि एकेन्द्रिय जीवों में भी आहारसंज्ञा का अस्तित्व प्रतीत होता है ।

अथवा क्षुधावेदनीय कर्मना उदयधी उत्पन्न तथा वाणी आहारनी अभिलाषा-  
इच्छि-ईच्छा इय आत्मानी परिणति ते आहारसंज्ञा उडेवाय छे, अहिं अभिलाषा  
शब्दधी ‘आ प्रकारनी वस्तु मारा माटे पुष्टि करनारी छे, आ वस्तु भणे तो  
माइ हित थशे’ अेवा विचारधी युक्त पोतानी पुष्टि अने सतोषना कारणभूत  
पदार्थनी प्राप्ति माटे विचार करनार आत्मानु परिणाम, अलक्षु करु जेधअे,  
आदी पेट डोवाना कारणे बोध्य (बोवन करना अेज्य) वस्तुना श्रवण, दर्शन  
अने चिन्तनधी आहारसंज्ञा उत्पन्न थाय छे आहार आदि संज्ञाअे अेकेन्द्रियधी  
आरानी पञ्चेन्द्रिय सुधीना सर्व एवोने डोय छे, अने ज्या सुधी संसारनी  
अत थतो नथी त्या सुधी ते संज्ञाअे रहे छे जल वगेरेना आहार पर एवित  
रडेवाना कारणे वनस्पति आदि अेकेन्द्रिय एवोभा पणु आहारसंज्ञानु अस्तित्व  
डेभाय छे

(२) मयसंज्ञा—

(२) सनिमित्तमनिमित्त वा मयमोहनीयोदयाद् मयोद्भ्रान्तस्य मोहनीयान्तर्गतनोकपायरूपा नयनवदन्विकृतरोगाच्चादिर्मांषादिक्रियासूत्रया स्वात्मन परिचयमयसंज्ञा । इतिबल्लभेन, मयवार्ताभ्रवणमीपमदर्शनादिबन्धितपुद्गला, इहलोकविमयजनकार्यपर्यालोचनेन वा मयसंज्ञा ज्ञायते । इत्यस्पर्शादिमोत्या स्वापयवसंकोचनादिना लज्जालुबन्ध्यादीनां मयसंज्ञा विज्ञायते ।

(३) मैयुनसंज्ञा—

(३) पुरुषवेदोदयान्मैयुनार्यं पणितस्तोकनप्रसन्नवदन्संस्तम्भितगात्र

(२) मयसंज्ञा—

किंती कारण से या बिना ही काग्न मयमोहनीय कर्म के उदय से मयसंज्ञा पुरुषकी मोहके अन्तर्गत मोहपायरूप नत्रा में और मुख में विक्रम होना रोमान्न होना अग्नि क्रियाए बिनाका लक्षण है, एमी अग्नि की परिणति मयसंज्ञा कहलाती है, दुःखता से मय उत्पन्न करने वाली बात सुनने से, ममद्वर वस्तु के देखने से, तथा इहलोक आदि में मयजनक वस्तुका विचार करने से मयसंज्ञा उत्पन्न होती है । अत्रकन्ती आदि वन्धनियों हाथ के स्वर्ग के मय से अपने भववर्षा को सिकोड़ लेती हैं, अतः उन में मयसंज्ञा की विद्यमानता प्रतीत होती है ।

(३) मैयुनसंज्ञा—

पुरुषवद-मोहनीय कर्म के उदय से मयुन के स्थि एरी को देखना, प्रसन्नवदन्

(१) अथ संज्ञा—

दोषं कारणवती अथवा बिना कारणे अथ यवे, मोहनीय अभन्ता उदयधी अथवा पुरुषनी मोहने अतमव नेकपायदृष नेत्रेभा अने अदोशभां विकार यवे। योर्भां अर्तुं (इ वाच उभां यवी) अत्रेरे विभाज्ये १२ उदयधे अवेपी अत्रभाणी परिचयति ते अथसंज्ञा उदयधे अथ उदयधे अथ उत्पन्न इराचनारी अत आशगवाधी, अथ अर वस्तु देखवाधी तथा आ दोष ववेरेभां अथअनक वस्तुने। विचार इरावाधी अथसंज्ञा उत्पन्न याव अ उदयधे (उदयधे) आदि वनस्पतिये। कायने अथसंज्ञा अथ कायने दोष तेम योदाना अथयवेने अदोषे अ तेधी तेभा अथसंज्ञानी विद्यमानता देजाव अ

(३) मैयुन संज्ञा—

पुरुषवेद—मोहनीयमोहनीय उदयधी मैयुन भा? श्री तदर अवेतुं दस्यु शुभ

लापरूप आत्मनः परिणामविशेषः। अभिलाषश्चात्र—‘मदर्थमीदृश वस्तु पुष्टिकरं, यदीदं लभ्यते तदा मम हितं भविष्यती’—त्येवं विचारानुवद्धः स्वपुष्टितुष्टिकारणी-भूतप्रतिनियतवस्तुप्राप्त्यर्थमात्मनः परिणामः। रिक्तोदरत्वाद् भोजनीयवस्तु-श्रवण-दर्शन-संचिन्तनैश्चाहारसज्ञा जायते। आहारादयः सज्ञाः एकेन्द्रियादि-पञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां सर्वजीवानामासंसारं भवन्ति। जलाद्याहारोपजीवनाद् वनस्पत्यादीनामाहारसज्ञा विज्ञायते।

अथवा क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाली आहार की अभिलाषारूप आत्मा की परिणति आहारसज्ञा कहलाती है। यद्वा अभिलाषा शब्द से ‘इस प्रकार की वस्तु मेरे लिए पुष्टिकर है, यह वस्तु मिले तो मेरा हित होगा’ ऐसे विचार से युक्त अपनी पुष्टि और सन्तोष के कारणभूत पदार्थ की प्राप्ति के लिए होने वाला अन्तःकरण का परिणाम ग्रहण करना चाहिए। खाली पेट होने पर भोज्य वस्तु के श्रवण दर्शन और चिन्तन से आहारसज्ञा उत्पन्न होती है। आहार आदि सज्ञाएँ एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रियपर्यन्त सभी जीवों की होती हैं, जब तक समार का अन्त नहीं होता तब तक बनी रहती है। जल आदि आहार पर जीवित रहने के कारण वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीवों में भी आहारसज्ञा का अस्तित्व प्रतीत होता है।

अथवा क्षुधावेदनीय कर्मना उदयशी उत्पन्न तथा वाणी आहारनी अभिलाषा-इच्छा-धृष्ट्या इय आत्मानि परिणति ते आहारसज्ञा कहेवाय छे, अहिं अभिलाषा शब्दशी ‘आ प्रकारनी वस्तु मारा माटे पुष्टि करनारी छे, आ वस्तु मणे तो माइ हित थशे’ जेवा विचारशी युक्त पोतानी पुष्टि अने सतोषना कारणभूत पदार्थनी प्राप्ति माटे विचार करनार आत्मानु परिणाम, अहलु करलु लोभजे, भाटी पेट होवाना कारणे लोभ्य (लोभन करवा ज्यो) वस्तुना श्रवण, दर्शन अने चिन्तनशी आहारसज्ञा उत्पन्न थाय छे आहार आदि सज्ञाओ एकेन्द्रियशी आरबीने पञ्चेन्द्रिय सुधीना सर्व एवोने होय छे, अने न्या सुधी ससारने अत थतो नथी त्या सुधी ते सज्ञाओ रहि छे जल वगेरेना आहार पर एवित रहैवाना कारणे वनस्पति आदि एकेन्द्रिय एवोमा पलु आहारसज्ञानु अस्तित्व देवाय छे

परिग्रहार्थनेन, परिग्रहचिन्तनेन, परिग्रहसंग्रहेण च परिग्रहसंज्ञा जायते ।  
 विस्वादिबनस्पतीनां स्वपत्रैः पुष्पफलाच्छादनदर्शनात् परिग्रहसंज्ञा विज्ञायते ।

(५) क्रोधसंज्ञा-

(५) क्रोधमोहनीयोदयाद् जीवस्य जात्यादिमद्वज्जित्वा कर्तव्याकर्तव्य-  
 निवेकापहारिका स्वपराप्रीतिरूपमन्वळनात्मिका विभावपरिणतिः क्रोधसंज्ञा ।

(६) मानसंज्ञा-

(६) मानमोहनीयोदयाद् अहंकाररूपा आत्मनो विभावपरिणतिर्मानसंज्ञा ।  
 देवगुरुभर्मादीनां महतामनादरणादिना मानसंज्ञा विज्ञायते ।

सचित्तामणि वस्तुओं का परिग्रह देखने से परिग्रह का विचार करने से, और परिग्रहका संग्रह करने से परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है। चिन्त (वेद) आदि वनस्पतियों अपने पत्तों से फूल फल वगैरह को रोक लेती हैं इस से उनमें परिग्रहसंज्ञा का होना प्रतीत होता है।

(५) क्रोधसंज्ञा-

क्रोधमोहनीय के उदय से जीव में अप्रतिमद आदि से उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक नष्ट कर देने वाली स्वपत्र की अप्रीतिरूप, तथा अस्वजनक्य आत्मा की विभावपरिणति क्रोधसंज्ञा कहलाती है।

(६) मानसंज्ञा-

मानमोहनीय के उदय से अहंकाररूप आत्मा की विभावपरिणति मानसंज्ञा कहलाती है। देव गुरु भर्मा आदि महानादर आदि करने से मानसंज्ञा भाव्य होती है।

कहेवाच छ सचित्तामणि वस्तुओंको परिग्रह देखावाणी, परिग्रहको विचार करवाणी अने परिग्रहको संग्रह करवाणी परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न पाव छ विस्व (पीली) आदि वनस्पतियों पौवानां पादमणी कुल-हल वजेरने लकी दे छ तेषी वनस्पतिमां परिग्रहसंज्ञा देभाव छ

(५) क्रोधसंज्ञा-

क्रोधमोहनीय कर्मानु उदयणी, अपने अप्रतिमद वजेरणी उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्यको विवेक नास करवावाणी स्व-परनी अप्रीतिरूप तथा अस्वजनक्य आत्मानी विभावपरिणति ते क्रोधसंज्ञा कहेवाच छ

(६) मानसंज्ञा-

मानमोहनीय कर्मानु उदयणी अहंकाररूप आत्मानी विभावपरिणति मानसंज्ञा कहेवाच छ देव, गुरु भर्मा आदि महानादर वजेर करवाणी मानसंज्ञा भाव्य पडे छ

शैथिल्योरुक्मपनादिक्रियारूपा आत्मनः परिणतिर्मैथुनसंज्ञा । रुधिरमांसोपचयेन, स्त्रीकथाश्रवणादिजनितमत्स्या, मैथुनचिन्तनेन च मैथुनसंज्ञा जायते । कुरुवकादिवनस्पतीनां कमनीयकामिनीभुजलतावगूहन-चरणाघात-कटाक्षविक्षेपादिभ्यः प्रसूनपल्लवादिप्रसवदर्शनान्मैथुनसंज्ञा विज्ञायते ।

### (४) परिग्रहसंज्ञा—

(४) लोभमोहनीयोदयाद् धर्मसाधनव्यतिरिक्त-सचिन्ताऽचित्तमिश्र-वस्तुपादानादिमूर्च्छारूपा आत्मनः परिणतिः परिग्रहसंज्ञा । सचिन्तादिवस्तु-

होना, शरीर का स्तम्भित हो जाना, तथा उस में गिथिलता पैदा होना उरु (बुटनके नीचेका भाग) आदि का कपना आदि क्रियारूप आत्मा की परिणति को मैथुनसंज्ञा कहते हैं । रक्त और मांस की अधिकता से, स्त्रीकथा आदि के श्रवण से उत्पन्न हुई बुद्धि से, और मैथुन का विचार करने से मैथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है । कुरुवक आदि वनस्पतियों में सुन्दरी कामिनी की मुजाओं के आलिङ्गन से, चरणाघात से, तथा कटाक्षपात आदि से फूल, पत्ता आदि उत्पन्न होते हैं, अतः वनस्पति में मैथुनसंज्ञा का अस्तित्व सिद्ध होता है ।

### (४) परिग्रहसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से धर्म के उपकरणों के अतिरिक्त दूसरे सचित्त अचित्त और मिश्र पदार्थों के ग्रहण आदि मूर्च्छारूप आत्मा की परिणति परिग्रहसंज्ञा कहलाती है ।

थपु, शरीररतु स्तम्भित थर्ष जपु, तथा तेमा शिथिलता उत्पन्न थवी, लज वगेरेतु कपु आदि क्रियाश्च आत्मानि परिवृत्तिने मैथुनसंज्ञा कहे छे रक्त (बोही) अने मांसनी अधिकताथी, स्त्रीकथा वगेरे साक्षणवाथी उत्पन्न थयेकी शुद्धिथी, अने मैथुनने विचार करवाथी मैथुनसंज्ञा उत्पन्न थाय छे कुरुवक (येक लततु वृक्ष) आदि वनस्पतिमा सुन्दरी कामिनीना हाथना आलिङ्गन थवा, अरुवाघातथी तथा कटाक्षपात आदिथी कुल, पत्ता आदि उत्पन्न थाय छे, आ करवुथी वनस्पतिमा मैथुनसंज्ञानु अस्तित्व सिद्ध थाय छे

### (४) परिग्रह संज्ञा—

लोभमोहनीयना उदयथी धर्मना उपकरणे सिवाय थीन सचित्त, अचित्त अने मिश्र पदार्थेतु अहंशु करु वगेरे मूर्च्छाश्च आत्मानि परिवृत्ति ते परिग्रहसंज्ञा



परिग्रहदर्शनेन, परिग्रहचिन्तनेन, परिग्रहसंग्रहेण च परिग्रहसंज्ञा जायते ।  
चित्तादिबनस्पतीनां स्वपत्रैः पुष्पफलाच्छादनदर्शनात् परिग्रहसंज्ञा विज्ञायते ।

(५) क्रोधसंज्ञा-

(५) क्रोधमोहनीयोदयाद् जीमस्य आत्यादिमद्वन्तिता कर्तव्याकर्तव्य-  
विवेकपहारिका स्वपराप्रोतिरूपप्रज्वसनात्मिका विभावपरिणतिः क्रोधसंज्ञा ।

(६) मानसंज्ञा-

(६) मानमोहनीयोदयाद् अंशकाररूपा आत्मना विभावपरिणतिर्मानसंज्ञा ।  
देवगुरुधर्मादीनां महतात्मनादग्नादिना मानसंज्ञा विज्ञायते ।

सच्चिन्मादि वस्तुओं का परिग्रह देखने से परिग्रह का विचार करने से और परिग्रहका संग्रह करने से परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है । चिन्म (वेद्य) आदि बनस्पतियों अपने पत्तों से फूल फल को रूढ़ को रूक देती हैं इस से उनमें परिग्रहसंज्ञा का होना प्रतीत होता है ।

(५) क्रोधसंज्ञा-

क्रोधमोहनीय के उदय से जीम में आत्मिक आदि से उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक मद्ध कर देने वाली स्वपर की अप्रोतिरूप, तथा प्रज्वलक्य आत्मा की विभावपरिणति क्रोधसंज्ञा कहलती है ।

(६) मानसंज्ञा-

मानमोहनीय के उदय से अद्वैतारूप आत्मा की विभावपरिणति मानसंज्ञा कहलती है । देव गुरु धर्म आदि बड़ाका अनावर आदि करने से मानसंज्ञा मान्य होती है ।

हठेवाय छे सच्चिन्मादि वस्तुओंको परिग्रह देखावाधी परिग्रहनेो विचार करवाधी जने परिग्रहनेो संग्रह करवाधी परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न धाम छे चित्तव (धीती) आदि वनस्पतियों पीताना पादश्री कुल-हल वनेरने धंकी दे छे तेधी वनस्पतिमां परिग्रहसंज्ञा देखाय छे

(५) क्रोधसंज्ञा-

क्रोधमोहनीय कर्तव्य उदयधी, अपने अतिमह वनेरधी उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्यको विवेक नाय करवावाणी स्व-परती अप्रोतिरूप तथा प्रज्वलक्य आत्मानो विभावपरिणति ते क्रोधसंज्ञा हठेवाय छे

(६) मानसंज्ञा-

मानमोहनीय कर्तव्य उदयधी अद्वैतारूप आत्मानो विभावपरिणति मानसंज्ञा हठेवाय छे देव, गुरु धर्म आदि मोटाओंको अनावर वनेर करवाधी मानसंज्ञा भासुम पडे छे

## (७) मायासंज्ञा—

(७) मायामोहनीयोदयात् कपटलक्षणा प्रवृत्तिर्जीवस्य विभावपरिणतिर्मायासंज्ञा । परवञ्चनेच्छया व्यामोहोत्पादकमनोवाकायव्यापारेण सा विज्ञायते ।

## (८) लोभसंज्ञा—

(८) लोभमोहनीयोदयेन सच्चिदादिवस्तुगृद्धिरूपा जीवस्य विभावपरिणतिर्लोभसंज्ञा । आरम्भपरिग्रहादिप्रवृत्त्या लोभसंज्ञा विज्ञायते ।

## (९) लोकसंज्ञा—

(९) ज्ञानावरणीयक्षयोपशमेन मोहनीयकर्मोदयेन च कुबुद्धिजनिततर्क

## (७) मायासंज्ञा—

मायामोहनीय के उदय से जीव को कपटरूप विभावपरिणति मायासंज्ञा कहलाती है । दूसरे को ठगने की इच्छा से मोहजनक मन, वचन और काय के व्यापार से उस की प्रतीति होती है ।

## (८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से सच्चित्त आदि वस्तुओं में आसक्तिरूप जीवकी विभावपरिणति लोभसंज्ञा कहलाती है । आरम्भ परिग्रह आदि की प्रवृत्ति से लोभसंज्ञा का पता चलता है ।

## (९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से और मोहनीय कर्म के उदय से कुबुद्धिजनित

## (७) मायासंज्ञा—

मायामोहनीय कर्मना उदयधी लवनी कपटरूप विभावपरिणति माया-संज्ञा कहेवाय छे भीलने ठगवानी छ्छाधी, मोहजनक मन, वचन अने कायाना व्यापारधी तेनी प्रतीति थाय छे

## (८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय कर्मना उदयधी सच्चित्त आदि वस्तुओंमां आसकितरूप लवनी विभावपरिणति ते लोभसंज्ञा कहेवाय छे आरम्भ-परिग्रह आदिनी प्रवृत्तिधी लोभसंज्ञाने पता लागे छे,

## (९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमधी अने मोहनीयकर्मना उदयधी कुबुद्धिजनित

रूपा आत्मनो विभावपरिणतिसौक्यं। यथा—“अपुत्रस्य गतिर्नास्ती”-त्यादि।

(१०) ओषसंज्ञा—

(१०) ज्ञानावरणीयान्पक्षयापक्षमसमुद्भूता, अभ्यस्तोपयोगरूपा बीजस्य परिणतिः ओषसंज्ञा। सा छादीनां प्रतानारोहणादिना ज्ञायते।

(११) सुखसंज्ञा—

(११) ससारिणां सात्वावेदनीयोद्भवात् सकलेन्द्रियाणामनुकूलतया ज्ञायमाना आत्मनः परिणतिः सुखसंज्ञा।

वर्कुरूप आत्मा की विभावपरिणति सौक्यसंज्ञा कहनाती है यथा—‘निपूत को सदति नहीं मिलती’ आदि।

(१०) ओषसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्म के अन्य क्षयोपक्षम से उत्पन्न होने वाली तथा अभ्यक्त (अप्रकट) उपयोगरूप बीज का विभावपरिणमन ओषसंज्ञा कहलाती है। छा वगैरह का संक्षेप पर बहने आदि से उसका ज्ञान होता है

(११) सुखसंज्ञा—

संसारी जीवोंको सात्वावेदनीय के उग्र से सब इन्द्रियों के अनुकूल प्रतीत होने वाली आत्मा की एक विशिष्ट परिणतिसौ सुखसंज्ञा कहते हैं।

वर्कुरूप आत्मान्नी विभावपरिवृत्ति सौक्यसंज्ञा कहेंवाय से यथा—‘अपुत्रिधाने सति भगती नशी’

(१०) ओषसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्मना अथ क्षयोपक्षमणी उपन्न बनारी अने अप्रकट उपयोग रूप एवमु विभावपरिवृत्तमने ओषसंज्ञा कहेंवाय से यथा—‘वजरेणु मक्षय उपर यक्षु वजरेणु तेनु गान क्षय से’

(११) सुखसंज्ञा—

संसारी एवेने सात्वावेदनीयना उग्रधी सब इन्द्रियोंमां अनुकूलतानु ज्ञान करवन्तरी आत्मान्नी ओष विशिष्ट परिवृत्तिने सुखसंज्ञा कहें है।

## (७) मायासंज्ञा—

(७) मायामोहनीयोदयात् कपटलक्षणा प्रवृत्तिर्जीवस्य विभावपरिणतिर्मायासंज्ञा । परवश्वनेच्छया व्यामोहोत्पादकमनोवाकायव्यापारेण सा विज्ञायते ।

## (८) लोभसंज्ञा—

(८) लोभमोहनीयोदयेन सचित्तादिवस्तुगृह्णिरूपा जीवस्य विभावपरिणतिर्लोभसंज्ञा । आरम्भपरिग्रहादिप्रवृत्त्या लोभसंज्ञा विज्ञायते ।

## (९) लोकसंज्ञा—

(९) ज्ञानावरणीयक्षयोपशमेन मोहनीयकर्मोदयेन च कुबुद्धिजनिततर्क

## (७) मायासंज्ञा—

मायामीहनीय के उदय से जीव को कपटरूप विभावपरिणति मायासंज्ञा कहलाती है । दूसरे को ठगने की इच्छा से मोहजनक मन, वचन और काय के व्यापार से उस की प्रतीति होती है ।

## (८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से सचित्त आदि वस्तुओं में आसक्तिरूप जीवकी विभावपरिणति लोभसंज्ञा कहलाती है । आरम्भ परिग्रह आदि की प्रवृत्ति से लोभसंज्ञा का पता चलता है ।

## (९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से और मोहनीय कर्म के उदय से कुबुद्धिजनित

## (७) मायासंज्ञा—

मायामोहनीय कर्मना उदयथी लुपनी कपटरूप विभावपरिणति माया-संज्ञा कहेवाय छे भीजने ठगवानी इच्छाथी, मोहजनक मन, वचन अने कायाना व्यापारथी तेनी प्रतीति थाय छे

## (८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय कर्मना उदयथी सचित्त आदि वस्तुओंमा आसक्तिरूप लुपनी विभावपरिणति ते लोभसंज्ञा कहेवाय छे आरम्भ-परिग्रह आदिनी प्रवृत्तिथी लोभसंज्ञानो पतो लागे छे

## (९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमथी अने मोहनीयकर्मना उदयथी कुबुद्धिजनित

विचिन्तित्वासाद्य । यथा दानादिधर्मस्य फलं प्रति सन्नयः । सा त्रिधा—द्वयतः, स्वतन्त्र । ' इतिवृत्तिपरिपरसहनप्रकारपर्यकेशोस्तुभ्रनादिष्वेवसहनस्य फलं भविष्यति न वे'—तिरूपा देवतः । ' परमोकादि सत्यं न वे'—तिरूपा, सर्वधर्मरूपितजीवावित्तत्वं यथार्थं न वे'—त्यादिरूपा वा सर्वतः ।

(१५) श्लोकसंज्ञा—

(१५) मोहनीयकर्मोदयादिष्टवियोगनिता विमलाप-वैमनस्वरूपा आत्मनः पस्थितिः श्लोकसंज्ञा । सा चाक्रन्दनादिना द्वायते ।

(१६) धर्मसंज्ञा—

(१६) मोहनीयस्योपपन्नमेत सर्वविरति-देशविरतिसंज्ञा कर्मसमञ्जनक-

संज्ञा कदाचन ही है। जैसे—दान धर्म आदि के फल में सदेह होना। यह सज्ञा दो प्रकार की है—देश से और सब से। बाईस परीखों के सहमे का, प्रथमर्ष पास्त्रे का केशलोच आदि केश सहेमे का फल मिलेगा या नहीं। इस प्रकार का संशय होना देवत विचिन्तित्वासंज्ञा है। 'वास्तव में परलोक है वा नहीं सर्वधर्म के द्वारा प्रकृष्टि जीव आदि तत्त्व बर्णार्थ हैं या नहीं।' इस प्रकार का संशय सर्वधर्म विचिन्तित्वासंज्ञा है।

(१५) श्लोकसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से इष्टवियोग से उत्पन्न होनेवाली विक्षय और विमनस्कतारूप आत्मा की परिणति श्लोकसंज्ञा कदाचन ही है।

(१६) धर्मसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से कर्मक्षयजनक सर्वविरति तथा देशविरति

विचिन्तित्वा संज्ञा कदाचन ही है जैसे—दान धर्म आदिना इत्यर्था सदेह यवो आ सज्ञा दो प्रकारकी होय है—(१) देशकी (२) सर्वकी। आवीश पस्थितोत्त सदन कस्य ते, प्रथमर्ष पावन कस्य ते, केशत्त बोधन कस्य वनेरे केश सदन कस्यात्त इव मज्जे के नदि। आ प्रकारनो संशय ते देशवकी विचिन्तित्वासंज्ञा है। वास्तवमें परलोक है के नदि सर्वश्रद्धास प्रकृष्टि ल्प आदि तत्त्वो यथार्थं है के नदि आ प्रकारनो संशय ते सबधकी विचिन्तित्वासंज्ञा है।

(१५) श्लोकसंज्ञा—

मोहनीय कर्मना उदयने दीप्ति, इष्टवियोगकी उत्पन्न तथा वाली विमलाप-वैमनस्कता (व्याकुल स्थिति) इय आत्मानकी परिणति श्लोकसंज्ञा कदाचन ही है।

(१६) धर्मसंज्ञा—

मोहनीयकर्मना क्षयोपशमयो कर्मक्षयजनक सर्वविरति तथा देशविरतिरूप

## (१२) दुःखसंज्ञा—

(१२) संसारिणामसातवेदनीयोदयात् सकलेन्द्रियाणा प्रतिकूलतया ज्ञायमाना विविधतापानुभवरूपा जीवस्य परिणतिर्दुःखसंज्ञा ।

## (१३) मोहसंज्ञा—

(१३) मोहनीयकर्मोदयाद् मिथ्यादर्शनरूपा ज्ञानादिगुणरोधकसकलपापस्थानहेतुरात्मनो विभावपरिणतिर्मोहसंज्ञा । कुदेवकुगुरुकुधर्मादौ प्रवृत्त्या मोहसंज्ञा विज्ञायते ।

## (१४) विचिकित्सासंज्ञा—

(१४) मोहनीयोदयाद् ज्ञानावरणीयोदयाच्च सशयरूपा जीवस्य परिणति-

## (१२) दुःखसंज्ञा—

ससारी जीवां को असातावेदनीय के उदय से सब इन्द्रियों के प्रतिकूल प्रतीत होने वाली, विविध प्रकार के सतापों का अनुभवरूप जीव की परिणति दुःखसंज्ञा कहलाती है ।

## (१३) मोहसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यादर्शनरूप, तथा ज्ञानादि गुणों का निषेध करने वाली, समस्त पापस्थानकों का कारणरूप आत्मा की विभावपरिणति मोहसंज्ञा है । कुदेव कुगुरु और कुधर्म आदि में प्रवृत्ति होने से मोहसंज्ञा का ज्ञान होता है ।

## (१४) विचिकित्सासंज्ञा—

मोहनीय और ज्ञानावरण कर्म के उदय से सशयरूप आत्मा का परिणमन विचिकित्सा-

## (१२) दुःखसंज्ञा—

ससारी लोकोने असातावेदनीयना उदयथी सर्व इन्द्रियोभा प्रतिकूलतानु भान कराववा वाणी, विविध प्रकारना सतापोना अनुभवरूप लोवनी परिणति ते दुःखसंज्ञा कहेवाय छे

## (१३) मोहसंज्ञा—

मोहनीय कर्मना उदयथी मिथ्यादर्शनरूप, तथा ज्ञानादि शुभोना निरोध करावावाणी, समस्त पापस्थानना कारणरूप आत्माना विलावपरिणति ते मोहसंज्ञा छे कुदेव, कुगुरु अने कुधर्म आदिभा प्रवृत्ति होवना कारणे मोहसंज्ञा ज्ञान थाय छे

## (१४) विचिकित्सासंज्ञा—

मोहनीय अने ज्ञानावरणीय कर्मना उदयथी सशयरूप आत्मानु परिणमन ते

(२) श्रुतज्ञानम्—

श्रुत=श्रुतिः भवन्ते ज्ञानविशेषाः । तच्च कीदृशम् ? उच्यते—श्रुतस्य भवणेन, माषपादिना वा यज्ज्ञानस्यैव सत्येव श्रुतम् ।

अथ श्रुतश्रवणेन ज्ञानं श्रूयते, ज्ञानमभेदप्रकरणान्त'पाठित्वात् । न तु श्रूयते इति व्युत्पत्त्या श्रुतश्रवणं श्रुतश्रवणम् । लब्धिरूपे मतिज्ञाने सति पश्चात्—श्रुतज्ञान-स्यैव सत्ये, न तु मतिज्ञानाभावे, अतो मतिज्ञानं कारणं श्रुतज्ञानस्य ।

ननु मतिज्ञानमथ श्रुतज्ञानं सत्येव यथा—श्रुतिमैव यतः, तन्तुरेव यतः

(२) श्रुतज्ञानम्—

श्रुति या श्रवण (सुनना), यह एक प्रकार का ज्ञान कहलाता है । शब्द के श्रवण से या माषण आदि से वाच्य—वाचकभाव सम्बन्ध के अनुसार जो पदार्थ का ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं ।

यहाँ श्रुत शब्द से ज्ञान का प्रश्न किया जाता है, क्या कि वह ज्ञान के प्रमेयों के अन्तर्गत है, किन्तु श्रूयते' इस व्युत्पत्ति से वाच्यार्थक श्रुत—शब्द नहीं है । लब्धिरूप मतिज्ञान के होने पर मात्रमें श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, मतिज्ञान के अभाव में नहीं होता, अत एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान का कारण है ।

उक्त—मतिज्ञान ही श्रुतज्ञानरूप में परिणत हो जाता है जैसे मिट्टी बटरूप में फलट जाती है, और तन्तु पर (बन्ध) रूप में परल जाते हैं वैसे श्रुति में भगवान्ने श्रुतज्ञान का प्रयुक्त प्रहण किम प्रयोजन से किया है ।

(२) श्रुतज्ञानम्—

श्रुति अथवा श्रवण—सांभगवाच्य के एक प्रकारतु ज्ञान ते श्रुत—ज्ञान कहेंवय से श्रुत—ज्ञान केतु होय से । शब्दना सांभगवाची अथवा वाच्य आदिधी, वाच्य—वाचक भाव सम्बन्ध प्रमाते ने पहायतु ज्ञान वाच्य से तेने श्रुतज्ञान कहें से ।

अदि श्रुत—शब्दधी ज्ञान श्रुत करी सकाय से केभके ते ज्ञानना प्रमेयानी अदर से परतु श्रूयते आ व्युत्पत्तिधी शब्दार्थक श्रुत—शब्द नहीं लब्धिरूप मतिज्ञान वाच्य पछी श्रुतज्ञान उत्पन्न वाच्य से मतिज्ञानना अभावमां यनु नहीं ते श्रवणधी मतिज्ञान ते श्रुतज्ञानतु कारण से ।

शे का—मतिज्ञान व श्रुतज्ञानरूपमा परिणत यर्ष वाच्य से नेभके आती बट रूपमां करी वाच्य से जने तन्तु वच्यरूपमा लब्धध वाच्य से अवी श्रुतिमा अत्रवाने श्रुतज्ञानतु अतु अदरु शे प्रयोजनधी कर्ष ?

सर्वविरतिदेशविरतिरूपाऽऽत्मनः स्वभावपरिणतिः धर्मसंज्ञा । सा जीवरक्षणादिव्यापारेण ज्ञायते ।

ज्ञानसंज्ञाभेदाः—

ज्ञानसंज्ञा तु मतिश्रुतादिभेदात् पञ्चधा—(१) मतिज्ञानं, (२) श्रुतज्ञानं, (३) अवधिज्ञानं, (४) मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, चेति ।

(१) मतिज्ञानम्—

मननं मतिरवबोधः । मतिश्चासौ ज्ञानं च मतिज्ञानम् । अत्र ज्ञानशब्दः सामान्यज्ञानवाचकः । इन्द्रिय-नोइन्द्रियजन्यं ज्ञानमतिर्ज्ञानविशेषः, अतः सामान्य-विशेषयोर्ज्ञानयोः समानाधिकरण्यम् ।

रूप आत्मा की स्वभावपरिणति को धर्मसंज्ञा कहते हैं । जीवरक्षा आदि व्यापारों से उसका ज्ञान होता है ।

ज्ञानसंज्ञा के भेद

मति, श्रुत आदिके भेद से ज्ञानसंज्ञा पाच प्रकार की है । वह इस प्रकार—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मन पर्ययज्ञान, और (५) केवलज्ञान ।

(१) मतिज्ञान

मनन करना मति है, अर्थात् बोध । मतिरूप ज्ञान मतिज्ञान कहलाता है । यहाँ ज्ञान शब्द सामान्य ज्ञान का वाचक है । 'इन्द्रिय और मनसे होनेवाला ज्ञान मति है' । ऐसा अर्थ करने से सामान्य और विशेष ज्ञानों में समानाधिकरणता हो जाती है ।

आत्मान्नी स्वभावपरिणतिने धर्मसंज्ञा कहे छे जीवरक्षा आदि व्यापारार्थी तेतु ज्ञान थाय छे

ज्ञानसंज्ञाना भेद—

मति, श्रुत आदि भेद वडे-करी ज्ञानसंज्ञा पाच प्रकारनी कही छे ते आ प्रभावे छे—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मन पर्ययज्ञान, अने (५) केवलज्ञान

(१) मतिज्ञान—

मनन करवु ते मति छे अथोत् बोध छे, मतिरूप ज्ञान ते मतिज्ञान कहेवाय छे आदि ज्ञान शब्द सामान्य ज्ञानने वाचक छे 'इन्द्रिय अने मननी उत्पन्न ज्ञान ते मति छे' अथोत् अर्थ करवाथी सामान्य अने विशेष ज्ञानोभा समानाधिकरणता (समानपक्ष) अर्थ जाय छे



तस्मिन् पक्षे-भ्रुतम्यभासवचनस्य ज्ञान भ्रुतज्ञानमिति पण्डितस्फुल्लः। आप्तो-रागादि-  
रहितः सर्वज्ञस्तस्य वचनम्-भासवचनम्। तदर्थोप्यवसायरूप ज्ञानं भ्रुतज्ञानमिति।  
अप्यवसायो निर्णयः। भ्रुतज्ञानं प्रति शब्दस्य निमित्तकारणतया शब्देऽपि भ्रुतम्यपदेशो  
भवति। ज्ञानमेदम्यवसायां तु भ्रुतशब्दः अन्वयार्थवाचीत्यवशेषम्।

(३) अवधिज्ञानम्-

अवधिज्ञानोऽवधिः शब्दार्थं, अन्वय-अर्थ विस्तृतं वस्तु पीयते-ज्ञापतेऽने-  
नेत्यपिः। अवधिभासौ तद्विज्ञानं चेति विग्रहः। विस्तृतविषयक ज्ञानमवधि-

वचन का भी ग्रहण होता है। उस पक्ष में भ्रुत का अर्थात् भासवचन का ज्ञान  
भ्रुतज्ञान है, ऐसा ब्रह्मिष्ठरूप समास होगा। भास अर्थात् रागादिके रहित सर्वज्ञ,  
उनका वचन भासवचन कहलाता है। अन्वयवसाय अर्थात् निश्चय। ऐसा अन्वयवसायरूप अर्थात्  
पर्याय का निश्चयार्थक ज्ञान भ्रुतज्ञान होता है। शब्द, भ्रुतज्ञान में निमित्त कारण है, इस  
लिये शब्द भी त कहलाता है किन्तु ज्ञान-मेदकी अवस्था में भ्रुत-शब्द अवग अर्थ का  
वाचक है।

(३) अवधिज्ञान-

‘अव’ का अर्थ है ‘अप’ अर्थात् नीचे। तात्पर्य यह है कि जो ज्ञान  
अपेक्षितता को वस्तु को विस्तार से जानता है वह अवधिज्ञान कहलाता है। अवधिरूप  
ज्ञान अवधिज्ञान है, अर्थात् विस्तृतविषयक ज्ञान। जैसे-अनुत्तरोपपत्तिक देव अवधिज्ञान

आप्तवचनतु प्रकृत्य वयं शकं छे ते पक्षमां भ्रुततु अर्थात् आप्तवचनतु ज्ञान ते  
भ्रुतज्ञान छे जे प्रभाषे ब्रह्मिष्ठरूप समास यथे। आप्त अर्थात् रागादिषी रहित,  
सर्वज्ञ, तेनु वचन ते आप्तवचन कहोवाय छे अन्वयवसाय अर्थात् निश्चय, जेवा  
अन्वयवसायरूप अर्थात् पर्यायतु निश्चयात्मक ज्ञान ते भ्रुतज्ञान कहोवाय छे शब्द,  
भ्रुतज्ञानमां कतरु छे जेदका भाटे शब्द पक्ष भ्रुत कहोवाय छे परतु ज्ञान-बोदनी  
अवस्थामां भ्रुत-शब्द सांज्ञानतु जे अर्थनि वाचक छे

(३) अवधिज्ञान-

‘अव’ नि अर्थ छे ‘अप’ अर्थात् नीचे, तात्पर्य जे छे के-जे ज्ञान अपे  
क्षितता वस्तुकोने विस्तारधी आवे छे ते अवधिज्ञान कहोवाय छे। अवधिरूप ज्ञान  
अवधिज्ञान छे अर्थात् विस्तृतविषयक ज्ञान जेभे-अनुत्तरोपपत्तिक देव अवधि

तर्हि श्रुतज्ञानस्य पृथगुपादानं भगवता किमर्थं कृतम् ? उच्यते—दृष्टान्तद्वयमिदं विषमम्, यथा घटप्रादुर्भावे पिण्डाकारा मृत्तिका प्रणश्यति, पटोत्पत्तौ सत्यां तन्तुपुञ्जश्च, तथा श्रुतज्ञाने समुपन्ने मतिज्ञान न प्रणश्यति, उक्तञ्च भगवता—

‘जत्थ मई तत्थ सुयं, जत्थ सुय तत्थ मई’ ( नन्दी )

छाया—यत्र मतिस्तत्र श्रुतं, यत्र श्रुतं तत्र मतिः ।

श्रुतस्य सद्भावे मतेर्विद्यमानता भगवताऽभिहिता, तस्मादपेक्षाकारणमेव मतिज्ञानं श्रुतज्ञानस्येति मन्तव्यम्, तथा च—मतिज्ञानपूर्वकमिन्द्रियमनोजन्ममाप्तवचनानुसारि ज्ञान श्रुतज्ञानमिति निष्कर्षः । इति ।

‘श्रूयते यत् तच्छ्रुत’—मतिव्युत्पत्त्या श्रुतशब्देनाप्तवचनमपि गृह्यते

समाधान—ये दोनो दृष्टान्त विषम हैं, जैसे—घट प्रकट होने पर पिण्डाकार मिट्टी मिट जाती है, और जैसे पदकी उत्पत्ति होने पर तन्तुओं का पुञ्ज नष्ट हो जाता है उस प्रकार श्रुतज्ञान उत्पन्न होने पर मतिज्ञान नष्ट नहीं होता । भगवानने कहा है—

“जहाँ मतिज्ञान है वहाँ श्रुतज्ञान है, जहाँ श्रुतज्ञान है वहाँ मतिज्ञान है ।” श्रुतज्ञान के सद्भाव में मतिज्ञान का अस्तित्व भगवानने बतलाया है, अत एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान का अपेक्षाकारण ही है, ऐसा मानना चाहिए । तात्पर्य यह निकलता है कि—मतिज्ञानपूर्वक इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होने वाला, तथा आप्तवाक्यका अनुसरण करने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान है ।

‘जो सुनाजाय वह श्रुत है’ इस व्युत्पत्ति के अनुसार ‘श्रुत’ शब्द से आप्त

समाधान—ये धने दृष्टान्त विषम छे, जेभके घट प्रकट थता पिंडाकार मटी मटी लय छे, जेभ वस्त्रनी उत्पत्ति थतां ततुओनो ज्यथे नाश पाये छे, ते प्रभाषे श्रुतज्ञान उत्पन्न थता मतिज्ञान नाश पायतु नथी भगवाने कहु छे के—

“न्या मतिज्ञान छे त्यां श्रुतज्ञान छे, न्या श्रुतज्ञान छे त्यां मतिज्ञान छे” श्रुतज्ञानना सद्भावमा मतिज्ञाननु अस्तित्व भगवाने थताव्यु छे जे कारखुथी मतिज्ञान, श्रुतज्ञाननु अपेक्षाकारणु ज छे जेभ मानवु जेधजे, ते तात्पर्यं जे नीकव्यु के मतिज्ञानपूर्वक, इन्द्रिय अने मनथी उत्पन्न थवावाळु, तथा आप्तवाक्यनु अनुसरणु करवावाळु ज्ञान ते श्रुतज्ञान छे

‘जे साभजवामा आवी शके ते श्रुत छे’ या व्युत्पत्ति प्रभाषे ‘श्रुत’ शब्दथी

(४) मनःपर्ययज्ञानम्—

पर्ययनं—सर्वतः परिच्छेदनम्—अस्वोपन पर्ययः । मनसः पर्ययो मन—पर्ययाः, मनोविषयकः, स चासौ ज्ञानं च मनःपर्ययज्ञानम् । यद्वा मनःपर्ययस्य ज्ञानं मनःपर्ययज्ञानम् ।

मनो द्विविधं द्रव्यमावभेदात् । तत्र द्रव्यमनो मनोवर्गणाः । संज्ञिना मनोवर्गणा पृथीवाः सत्यो मन्यमानाचिन्त्यमाना भावमनोऽभिधीयते ।

तत्रेह भावमन परिच्छेदः । भावमनसः पर्ययाच्च परेषां सार्धसृतीयस्त्रीपा—म्यन्तरवर्तिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां चिन्त्यमानविषयाभ्यवसायरूपाः । यथा—अन्यः

(४) मनापर्ययज्ञान—

पर्यय अर्थात् ज्ञानता मन को सर्वथा ज्ञानता मनःपर्ययज्ञान है, अर्थात् मनोविषयक, सम्पूर्ण ज्ञान मनःपर्ययज्ञान कहलाता है। अथवा—मनःपर्यय (मनके पर्यय) का ज्ञान मनापर्ययज्ञान कहलाता है ।

मन दो प्रकार का है—द्रव्य—मन और भाव—मन । मनोवर्गणाओं को द्रव्यमन करते हैं । संज्ञा और वायु प्रहस्र को तुर्ह मनोवर्गणार्थे च्च चिन्तन की जाती हैं वे भावमन कहलती हैं ।

मनःपर्यय ज्ञान के प्रकरण में भावमन ही किया जाता है । बहार्ह हीम के अन्तर्गत संज्ञी पञ्चेन्द्रिय बीजों के द्वारा चिन्तन किये जाने वाले विषयाभ्यवसायरूप पर्ययो को मनःपर्यय ज्ञान ज्ञानता है । जैसे—कोई दूसरा जीव ऐसा विचार कर—अहमा कैसा

(४) मनापर्यय ज्ञान—

पर्यय अर्थात् ज्ञानता, मनने ज्ञानता ते मनःपर्यय ज्ञान छे अर्थात्—मन विषयकतु संपूर्ण ज्ञान मनःपर्यय कहलाय छे अथवा मन पर्ययतु ज्ञान ते मनः—पर्ययज्ञान कहलाय छे

मन के प्रकरना छे—(१) द्रव्यमन जने (२) भावमन मनोवचनवाच्योने द्रव्य मन कहे छे जने सखी लुप द्वारा अकषु कशब्दोधी मनोवचनवाच्योनु न्यारे चिन्तन कश्वाभां जावे छे तेने भावमन कहे छे

मनापर्यय ज्ञानता प्रकरणमा भावमन च देवामा जावे छे अथी हीपना सखी पञ्चेन्द्रिय लुपे द्वारा चिन्तन कश्वाभां भावमन विषयाभ्यवसायरूप पर्ययोने अनापर्यय ज्ञान ज्ञाने छे जेमे हे—होर्ह जीवे लुप जेवे विचार करे—आत्मा देवे

ज्ञानम् । यथा—अनुत्तरोपपातिका देवा अवधिज्ञानवलेन भगवन्तमापृच्छथ जीवादि-  
तत्त्वस्वरूपं निर्धारयन्ति ।

यद्वा—‘अवधिना ज्ञानम्’ इति तृतीयासमासः । अवधिर्मर्यादा—‘रूपिद्रव्याण्येव  
विषयीकरोति नेतराणी’—तिग्यत्रस्थारूपा, तथा चायमर्थः—अरूपिद्रव्यपरिहारेण  
रूपिद्रव्यमात्रविषयकं ज्ञानमवधिज्ञानमिति ।

यद्वा—अधोऽधोऽधिकं पश्यति येन तदवधिज्ञानम् । तच्च चतुर्गतिवर्तिनां  
जीवानामिन्द्रियमनोनिरपेक्ष प्रतिविशिष्टक्षयोपशमनिमित्तकं रूपिद्रव्यसाक्षात्कार-  
जनकं भवति । एतस्य ज्ञानस्य देव—मनुष्य—तिर्यङ्—नारका अधिकारिणः ।

के बल से भगवान् से प्रश्न पूछ कर जीवादितत्त्वों का स्वरूप निश्चित कर लेते हैं ।

अथवा—अवधि के साथ जो ज्ञान हो वह अवधिज्ञान कहलाता है । अवधिका  
अर्थ है मर्यादा । अवधिज्ञान, रूपी द्रव्यों को ही जानता है, अरूपी को नहीं, वह  
व्यवस्था ही यहाँ मर्यादा समझनी चाहिए । तात्पर्य यह हुआ कि—अरूपी द्रव्यों को  
छोड़कर केवल रूपी द्रव्यों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है ।

अथवा—जिस ज्ञान के द्वारा नीचे नीचे अधिक ज्ञाना जाय वह अवधिज्ञान है ।  
यह ज्ञान चारों गतियों के जीवों को हो सकता है । यह, सिर्फ रूपी पदार्थों को साक्षात्  
जानता है, और विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होता है । देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और  
नारकी, सभी इस ज्ञान के अधिकारी हैं, अर्थात् यह चारों को हो सकता है ।

ज्ञानना अण्थी भगवानने प्रश्न पूछीने एवादि तत्त्वोना निश्चय करी ले छे अथवा-  
अवधिनी साथे जे ज्ञान थाय छे ते अवधिज्ञान कहेवाय छे अवधिना अर्थ छे  
मर्यादा अवधिज्ञान, रूपी द्रव्योने न लखे छे, अरूपी द्रव्योने लखतु नथी, आ  
व्यवस्था न अरुँ मर्यादा समझनी जेठये तात्पर्य अे थयु के अरूपी—द्रव्योने  
छेडीने देवण रूपी द्रव्योने लखुवावाणु ज्ञान ते अवधिज्ञान कहेवाय छे. अथवा  
जे ज्ञान द्वारा नीचे—नीचे विशेष लखुवामा आवे, ते अवधिज्ञान छे ते ज्ञान चार  
गतिओना एवोने थछे शके छे, मात्र रूपी पदार्थोने साक्षात् लखे छे, अने विशिष्ट  
क्षयोपशमथी उत्पन्न थाय छे, देव, मनुष्य, तिर्यञ्च अने नारकी, आ सर्व ते ज्ञानना  
अधिकारी छे, अर्थात् अे चारेथने अवधिज्ञान थछे शके छे

तथा मनःपर्ययज्ञानी कस्यचिद् भावस्य मन सर्वतोभावेन प्रत्यक्षी-  
कृत्यानुमानेन बाह्य विषयमवबुध्यत—' इदं बस्त्वनेन चिन्त्यते ' इति । बाह्यपदाय-  
चिन्तनसमये हि बाह्यपदार्थाकारसदृशाकार मनो भवति ।

इदं मनःपर्ययज्ञान रूपिविषयत्व—सायोपशमिक्त्व—प्रत्यक्षत्वादिसाम्ये-  
ऽप्यवधिज्ञानाद् भिन्नं, स्वाम्यादिभेदात् । तथाहि—अवधिज्ञानमविरतसम्पन्नप्टेरपि  
भवति, तद् द्रव्यतोऽद्वेषरूपिद्रव्यविषयं, क्षेत्रतो लोकविषयम्, कास्तोऽप्रीतानागता  
सम्प्रातोस्तर्पिष्यत्सर्पिणीविषयम्, भावतः सफस्वरूपिद्रव्येषु प्रद्विज्यमसंख्यात-  
पर्यायविषयम् ।

मनःपर्ययज्ञान तु प्रमादरहितस्याऽऽर्पाद्यन्यतमलम्बिधारिणा सयतस्य  
भवति । द्रव्यतः—सन्निपठवेन्द्रियमनोद्रव्यविषय क्षेत्र—समयक्षेत्रमात्रविषयम्

मनःपर्ययज्ञान अवधिज्ञान की तरह रूपी पदार्थों को विषय करता है,  
क्षयोपशम से उत्पन्न होता है किन्तु अवधिज्ञान से भिन्न है क्योंकि स्वामी आदिके  
भेद से दोनों में भेद है, वह इस प्रकार—अवधिज्ञान अविरतसम्पन्नप्टि को भी  
होता है, वह द्रव्यतः समस्त रूपी द्रव्यों को जानता है, क्षेत्र से समस्त लोक को जानता है,  
कास से असंख्यात मूल और भावी उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी को विषय करता है,  
भाव से समस्त रूपी द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य की असंख्यात पर्यायों को जानता है ।

मनःपर्ययज्ञान अप्रमत्त सयत को तथा आत्मव आदि किसी मन्वि के पारक  
को ही होता है । वह द्रव्य से संश्री पञ्चेन्द्रिय के मनोद्रव्य को, क्षेत्र से समयक्षेत्रमात्र को

मनःपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान प्रमाद्ये रूपी पदार्थोनि विषय करे थे—जन्ते, छे  
मनःपर्ययज्ञान क्षयोपशमभी उत्पन्न थाय छे परंतु अवधिज्ञानभी ते भिन्न छे केभके  
स्वामी आदिना जेदधी ते जनेभा क्षेत्र छे ते प्य प्रमाद्ये—अवधिज्ञान अविस्त  
सम्पन्नप्टिने पद्य थाय छे ते द्रव्यमही सर्व रूपी जन्तेने जन्ते छे क्षेत्रमही अमस्त  
बोहने जन्ते छे, भावमही अम ज्ञ्यात मूल जने भावी उत्सर्पिणी अवसर्पिणीने जन्ती  
शके छे भावधी अमस्त रूपी द्रव्योभाधी प्रत्येक द्रव्यनी अम ज्ञ्यात पर्यायोने जन्ते छे.

मनःपर्ययज्ञान अप्रमत्त अयतने (मुनिने) तद्य आत्मव आदि कोऽपि अविधना  
धारणने अ थाय छे ते द्रव्यधी सती पञ्चेन्द्रियत मनोद्रव्यने, क्षेत्रमही समयक्षेत्र

કશ્ચિદેવ ચિન્તયેત્-‘આત્મા કીદશઃ ? અરૂપી, ચેતનાસ્વભાવઃ, કર્મણાં કર્તા, તત્કલ્મ્ભોક્તા ચેત્યાદયો ચે જ્ઞાનવિશેષરૂપાસ્તસ્યાત્મનઃ. પરિણામાસ્તેષાં યદ્ જ્ઞાન તન્મનઃપર્યયજ્ઞાનમ્ ।

મનઃપર્યયજ્ઞાની ચ મનઃપર્યયાનેવ પ્રત્યક્ષીકરોતિ ન તુ વાહ્યં વસ્તુ । ન ચ- ‘મનઃપર્યયજ્ઞાનિના વાહ્યં વસ્તુ ન જ્ઞાયતે’ ઇતિ વાચ્યમ્, અનુમાનતસ્તસ્ય વાહ્યવસ્તુ- જ્ઞાનસદ્ભાવાત્ । યથા-વિશિષ્ટક્ષાયોપશમિકપ્રતિભાશાલી પ્રેક્ષાવાન્ પ્રશાન્તઃ કસ્યચિદાકારેક્ષિતાદિક વિલોક્ય તદીયમનોગતં ભાવં સામર્થ્યં ચાનુમાનતો વિજાનાતિ ।

હે ? અરૂપી, ચેતનાસ્વરૂપ, કર્મોં કા કર્તા, કર્મફલભોક્તા, ઇત્યાદિ આત્મા કે જો જ્ઞાન- વિશેષરૂપ પરિણામ છે, ઉન્હે જાનના મન પર્યયજ્ઞાન છે । મન પર્યયજ્ઞાની જીવ, મન કે પર્યાયોં કો હી પ્રત્યક્ષ કરતા છે, વાહ્ય વસ્તુ કો નહીં । પરંતુ યહ કહના ઠીક નહીં છે કિ-મન પર્યયજ્ઞાની વાહ્ય વસ્તુઓં કો જાનતા હી નહીં છે । મન પર્યયજ્ઞાની કો અનુમાન સે વાહ્ય પદાર્થોં કા જ્ઞાન હોતા છે । જેસે-વિશિષ્ટક્ષાયોપશમ- જન્ય પ્રતિભા વાલા બુદ્ધિમાન્ પુરુષ કિસી કે દ્શારે યા ચેષ્ટા કો દેસ્કર ઉસકે મનકા માવ ઓર ઉસકા સામર્થ્ય અનુમાન સે જાન લેતા છે, ઇસી પ્રકાર મનઃપર્યયજ્ઞાની દૂસરે કે ભાવરૂપ મન કો પૂર્ણતયા પ્રત્યક્ષ કરકે અનુમાન સે વાહ્ય વસ્તુ કો જાન લેતા છે કિ-‘ઇસને અમુક વસ્તુ કા વિચાર ક્રિયા છે’ । વાહ્ય પદાર્થોં કા વિચાર કરતે સમય ઉસી પદાર્થ કે આકાર કા મન હો જાતા છે ।

છે ? અરૂપી, ચેતના-સ્વરૂપ, કર્મોંનો કર્તા, કર્મફલભોક્તા, ઇત્યાદિ આત્માના જ્ઞાન વિશેષરૂપ જે પરિણામ છે, તેને જાણવા તે મન પર્યય જ્ઞાન છે

મનપર્યય જ્ઞાની જીવ મનના પર્યાયોને જે પ્રત્યક્ષ કરે છે બહારની વસ્તુઓને નહિ પરંતુ એમ કહેલુ ઠીક નથી કે-મન પર્યયજ્ઞાની બહારની વસ્તુઓને જાણતા જે નથી, મન પર્યયજ્ઞાનીઓને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓનુ જ્ઞાન હોય છે જેમકે — વિશિષ્ટક્ષયોપશમજન્ય પ્રતિભાવાળા બુદ્ધિમાન પુરુષ કોઈના ઇશારાથી અથવા ચેષ્ટાને જોઈને તેના મનનો ભાવ અને તેનુ સામર્થ્ય અનુમાનથી જાણી લે છે, એ પ્રમાણે મન પર્યયજ્ઞાની બીજાના ભાવરૂપ મનને પૂર્ણ રૂપમા પ્રત્યક્ષ કરીને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓને જાણી લે છે કે — “તેણે અમુક વસ્તુનો વિચાર કર્યો છે” બહારના પદાર્થોનો વિચાર કરવાના સમયે તેજ પદાર્થના આકારરૂપ મન થઈ જાય છે.

मतिज्ञानं चानेकविधम्, ईशादिसमात् । उक्तञ्च मगवता—

“ईशा अपोह बीमसा, ममात्मा य गवेषया ।

सभा सर्वे मई पत्ता, सर्वं आमिणिबोहियं” ॥ (नन्दी मति-  
ज्ञानगाथा २७)

छाया—ईशा, अपोह विमर्शः मार्गत्वा च गवेषया ।

सद्वा स्पृष्टिः मतिः प्रज्ञा सर्वम् आमिनिबोधिक्म् ॥

‘आमिणिबोहियं’ इत्यनेन त्रिकाशविषयकं मतिज्ञानमुच्यते तथा-चोक्तं  
मगवता—“पञ्चविहं मार्गं पण्णात् । संजहा—(१) आमिणिबोहियमार्गं, (२) सुवमार्गं,  
(३) ओहिणार्गं (४) मणपञ्जकवार्गं (५) केवलमार्गं । इति (नन्दी, १)

(१) ईशा—

ईशा-पोहादयो मतिज्ञानममेवाः । उक्त-ईशनम्-ईशा । नाममास्यादि

यहाँ मतिज्ञान का ही प्रसङ्ग है । मतिज्ञान, ईशा आदि के मंत्र से अनेक प्रकार का है ।  
मगवान्ने कहा है —

‘ईशा अपोह, विमर्श, मार्गत्वा संज्ञा, स्पृष्टि मति और प्रज्ञा, यह सब  
आमिनिबोधिक् ज्ञान (मतिज्ञान) है’ (नन्दीसूत्र मतिज्ञान गाथा २७)

आमिनिबोधिक् ज्ञान का अर्थ है—त्रिकाशविषयक मतिज्ञान । मगवान्ने  
कहा है— ‘ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) आमिनिबोधिक्ज्ञान,  
(२) सुवज्ञान, (३) अवधिज्ञान (४) मन-पर्यवज्ञान और (५) केवलज्ञान’ (नन्दी—सू १)

(१) ईशा—

इशा अपोह आदि मतिज्ञान के मंत्र हैं । नाम और ज्ञाति आदि का विशेष

मतिज्ञानने अ प्रसङ्ग से मतिज्ञान छेका आदि बोधेशी अनेक प्रकारतु से लजवाने  
छहु छे छे—ईशा, अपोह, विमर्श, मार्गत्वा, जवेपत्ता, संज्ञा, स्पृष्टि, मति, अने  
प्रज्ञा के सब आमिनिबोधिक् ज्ञान—मतिज्ञान छे (नन्दीसूत्र मतिज्ञानगाथा २७)  
आमिनिबोधिक् ज्ञानने अर्थ छे—त्रिकाशविषयक मतिज्ञान, लजवाने छहु छे छे—  
‘ज्ञान पांच प्रकारतु छे, ते आ प्रभावे (१) आमिनिबोधिक्ज्ञान (२) सुवज्ञान,  
(३) अवधिज्ञान (४) मन-पर्यवज्ञान अने केवलज्ञान (नन्दी सू १)

(१) ईशा—

छेका तथा अपोह जगेरे मतिज्ञानना सेक छे । नाम अने ज्ञाति आदिनी विशेष  
प्र भा. २४

कालतोऽतीतानागतपल्योपमासंख्यातभागविषयम्, भावतो मनोद्रव्यगतानन्तपर्याय-  
विषयकम् ।

(५) केवलज्ञानम् —

केवलम्—एकमसहायं ज्ञानावरणीयकर्मात्यन्तक्षयसमुद्भूतम्—अतीताना  
गतवर्तमानयथावस्थितसकलद्रव्यगुणपर्यायविषयकमप्रतिपाति ज्ञान केवलज्ञानम् ।  
अत्र ग्रन्थविस्तरभिया विरमामः ।

ज्ञानप्रसङ्गेन मत्यादिभेदपञ्चकं प्रदर्शितं, प्रकृते तु मतिज्ञानस्यैवाधिकारः ।

(अर्दाई द्वीप को), काल से पल्योपम के असख्यातवै भाग—भूत—भविष्यत् कालको और  
भाव से मनोद्रव्य की अनन्त पर्यायों को विषय करता है ।

(५) केवलज्ञान—

केवलज्ञान, केवल अर्थात् एक ही है । उस के साथ दूसरा ज्ञान नहीं होता ।  
वह असहाय है अर्थात् इन्द्रिय मन आदि किसी की सहायता की उसे अपेक्षा नहीं है ।  
वह ज्ञानावरण कर्म के आत्यन्तिक क्षय से उत्पन्न होता है । अतीत, अनागत, वर्तमान काल  
के समस्त द्रव्यों गुणों और पर्यायों को यथार्थरूप में जानता है, अप्रतिपाती है, अर्थात्  
एकवार उत्पन्न हो कर कभी नष्ट नहीं होता । ऐसा ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है ।  
ग्रन्थविस्तार के भय से अधिक विस्तार नहीं करते ।

ज्ञान का प्रकरण होने से मतिज्ञान आदि पांच भेद बतलाये जा चुके हैं ।

मात्रने (अर्दी द्वीपने) कालथी पदयोपमना असंख्यातभा लागे भूत-लविष्य कालने  
अने भावथी मनोद्रव्यनी अनन्त पर्यायिने लक्ष्णे छे

(५) केवलज्ञान—

केवलज्ञान, केवल अर्थात् एकल छे तेनी साथे भीष्णु ज्ञान थतु नथी, ते  
असहाय छे, अर्थात् इन्द्रिय, मन आदि कोइनी पणु सहायतानी तेने अपेक्षा नथी-  
अने ते केवलज्ञान ज्ञानावरणीय कर्मना आत्यन्तिक क्षयथी उत्पन्न थाय छे केवलज्ञान  
भूतकाल, भविष्यकाल अने वर्तमान कालना समस्त द्रव्यो, गुणो अने पर्यायिने  
यथार्थरूपथी लक्ष्णे छे ते अप्रतिपाती छे, अर्थात् एक वार उत्पन्न थधने इरी  
कोई पणु वधत नाश पावतु नथी, अणु ने ज्ञान ते केवलज्ञान कहेवाय छे  
अथविस्तारना लयथी अधिक विस्तार अडि करता नथी

ज्ञाननु प्रकरण छेवाथी मतिज्ञान आदि पांच भेदो भताव्या छे अडि



सामान्यज्ञानोत्तरं कासं विशेषनिश्चयार्थं विचारणायां मनुष्यायां तदनु-  
गुणदोषविचारणाजनितो निश्चयः, यथा—‘क्षिप्रं कमलनास्यस्पर्शः, माहोस्विदु-  
श्चङ्गमस्पर्शः ?’ इति विचारणायां ‘गुणास्त्यैवार्यं स्पर्शः, अस्यन्तहीतादिगुणवत्त्वा-  
दित्यस्यैवार्य’-मिति निश्चयोऽयं भ्रमभ्रमस्पर्शमपनुवति, तस्मादयं निश्चयोऽप्योहोऽ-  
प्नोदभवति निगद्यते ।

(३) भीमांसा—

भीमांसा—मातुमिच्छा, मातुं—बीबादिस्वरूपं दातुमिच्छा ।

(४) मार्गवा—

बीबादिपदार्थस्य यथावस्थितस्वरूपान्बोधेण मार्गवा ।

सामान्य ज्ञान के पश्चात् विशेष का निश्चय करने के लिये विचारणा प्रवृत्त  
होने पर पश्चात् गुण-दोष की विचारणा से उत्पन्न निश्चय अपेक्ष कइसता है । यथा—  
‘यह कमलनासका स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ?’ इस प्रकार की विचारणा होने पर ‘यह  
कमलनास का ही स्पर्श है, क्या कि इस में असन्त हीतलता है?’ इस प्रकार का  
निश्चय होता और यह निश्चय स्वयं का अर्थात् सर्प के स्पर्श का निराकरण करदेता है,  
अत एव यह निश्चय अपेक्ष अयाय और अपनोद मी कइसता है ।

(३) विमर्श—

बीबादि के स्वरूप का ज्ञानन की इच्छा विमर्श है ।

(४) मार्गवा—

बीबादि पदार्थों के यथावत् स्वरूप का अभिज्ञान करना मार्गवा है ।

सामान्य ज्ञान यथा पक्षी विशेषने निश्चय करवा भट्टे विचारणा वर्ता पक्षी  
तेन शुषु-दोषनी विचारणाधी उत्पन्न निश्चय तेने अपिद कडे छे जेम— आ  
कमलना नागने स्पर्श छे के अर्धने स्पर्श छे ? आ प्रकारनी विचारणा यथा पक्षी  
नक्षी इत्याया आवे के आ स्पर्श कमलना नागने अ छे कइके तेमां अत्यन्त  
शीतलता छे जे प्रकारने निश्चय धाय छे जने जे निश्चय बीबाने जशीत् सर्पने  
स्पर्शने निश्चय करी के छे तेनी कथं आ निश्चय ते अपिद, अपाय जने  
अपनोद पक्षु कडेवाय छे ।

(३) विमर्श—

एव आदिना स्वरूपने ज्ञानवानी इच्छा ते विमर्श छे

(४) मार्गवा—

एव आदि पदार्थने यथावत् स्वरूपने अभिज्ञान करवा ते मार्गवा छे

विशेषकल्पनारहितसामान्यज्ञानोत्तरं विशेषनिश्चयार्थं विचारणा-ईहा । यथा-  
स्पर्शनेन्द्रियेण स्पर्शसामान्ये ज्ञाते सति, तदनु कीदृशोऽयं स्पर्शः ? कस्याय  
स्पर्शः ? किमयं कमलनालस्पर्शः उताहो भुजङ्गमस्पर्शः? इति गाढान्धकारे चक्षुष्म-  
तोऽपि विचारणा प्रवर्तते ।

(२) अपोहः—

अपोहनम्—अपोहः निश्चयः । कोऽयमपोह ? उच्यते—मतिज्ञानस्यावग्रहादि-  
भेदचतुष्टये तृतीयभेदो योऽपायः स एवापोहशब्देनोच्यते । अवग्रहादिभेद-  
चतुष्टयं च नन्दीसूत्रे भगवतैव प्रदर्शितमस्ति ।

कल्पना से रहित सामान्यज्ञान के पश्चात् होने वाली विचारणा ईहा कहलाती है ।  
जैसे—स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा स्पर्शका सामान्य ज्ञान होने के पश्चात् गाढ अन्धकार होने  
पर चक्षुवाले को भी यह विचारणा होती है कि यह स्पर्श कैसा है ? किसका यह  
स्पर्श है ? यह कमल के नाल का स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ? इस प्रकार की  
विचारणा को ईहा कहते हैं । १।

(२) अपोह—

अपोह का अर्थ है—निश्चय । अपोह क्या है ? कहते हैं—मतिज्ञान के  
अवग्रह आदि चार भेदों में तीसरा भेद जो अपाय है उसी को यहाँ 'अपोह' शब्द  
द्वारा कहा है । अवग्रह आदि चार भेद नन्दीसूत्र में भगवान् ने कहे हैं ।

कल्पनाथी रहित, सामान्य ज्ञानकी पक्षी तथा वाणी विचारणा ने छड़ा कड़े छे, जेभडे-  
स्पर्शनेन्द्रियना द्वारा स्पर्शनु सामान्य ज्ञान तथा पक्षी गाढ अन्धकार थाय त्तारे  
नेत्रवाणाने पक्षु जे विचार थाय छे के—आ स्पर्श केवा छे ? आ केखे स्पर्श क्यो  
छे शेना स्पर्श छे ? आ कमलना नाणने स्पर्श छे के सर्पने स्पर्श छे ? आ  
प्रकारनी विचारणा तेने छड़ा कड़े छे

(२) अपोह—

अपोहने अर्थ छे निश्चय, अपोह जे शु छे ? कड़े छे के—मतिज्ञानना अवग्रह  
आदि आर लेहो पैकरीना त्रीजे लेह जे अपाय छे, तेने आदि 'अपोह' शब्दथी  
कड़ेल छे अवग्रह आदि आर लेह नदीसूत्रमा भगवाने कड़ेवा छे

सामान्यज्ञानोत्तरं कालं विशेषनिश्चयार्थं विचारणायां प्रवृत्तायां तदनु-  
 लम्बदोषविचारमात्रनितो निश्चयः, यथा-‘किमयं कमलनालस्पर्शः, आहोम्बिद्  
 मुञ्जमस्पर्शः ?’ इति विचारणायां ‘युक्तामस्यैवायं स्पर्शः, अत्यन्तशीतादिगुणवत्त्वा-  
 दित्यस्यैवायं’-मिति निश्चयोऽयं मुञ्जमस्पर्शमपनुदति, तस्मादयं निश्चयोऽप्योहोऽ-  
 पनोदयति निगद्यते ।

(३) मीमांसा—

मीमांसा-मातुमिच्छा, मातु-जीवादिस्वरूपं ज्ञातुमिच्छा ।

(४) मार्गणा—

जीवादिपदार्थस्य यथावस्थितस्वरूपान्वेषण मार्गणा ।

सामान्य ज्ञान के पश्चात् विशेष का निश्चय करने के लिए विचारणा प्रवृत्त  
 होने पर पश्चात् गुण-दोष की विचारणा से उत्पन्न निश्चय अपेक्ष कइसकता है । यथा-  
 ‘यह कमलनालका स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ?’ इस प्रकार की विचारणा होने पर ‘यह  
 कमलनाल का ही स्पर्श है, क्योंकि इस में अत्यन्त शीतलता है’ इस प्रकार का  
 निश्चय होता और यह निश्चय अन्य का अर्थात् सर्प के स्पर्श का मिश्रण करदेता है,  
 अत एव यह निश्चय अपेक्ष जपाय और अपनोत्त नो कइसकता है ।

(१) विमर्श—

जीव आदि के स्वरूप का ज्ञानम की इच्छा विमर्श है ।

(४) मार्गणा—

जीव आदि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का अन्वेषण करना मार्गणा है ।

सामान्य ज्ञान तथा पक्षी विशेषणो निश्चय करवा आटे विचारणा कता पक्षी  
 तेना गुण-दोषनी विचारणाभी रूपन्त निश्चय तेने अपेक्ष कइ उ जेम- आ  
 कमलनाल नाणने स्पर्श छे के सर्पने स्पर्श छे ? अय प्रकारनी विचारणा कया पक्षी  
 नक्षी करवाभा आवे के अय स्पर्श कमलनाल नाणने अ छे केमके तेभा अत्यन्त  
 शीतलता छे अये प्रकारने निश्चय थाय छे जने अये निश्चय जीवने अर्थात् सर्पना  
 स्पर्शने निश्चय करी के छे तेभी करे अय निश्चय ते अपेक्ष कइयाय जने  
 अपनोत्त पक्षी कइयाय छे ।

(३) विमर्श—

एव आदिना स्वरूपने ज्ञानवानी छिच्छा ते विमर्श छे

(४) मार्गणा—

एव आदि पदार्थोना यथार्थ स्वरूपने अन्वेषण करवा ते मार्गणा छे

## (५) गवेपणा-

मार्गीणानन्तरमनुपलभ्यस्य जीवादिपदार्थस्य सर्वतः परिभाजनं-निर्णयामि-  
मुखविचारपरायणता गवेपणा ।

## (६) संज्ञा—

इन्द्रियजन्यज्ञानविषयीभूतम्यार्थस्य पुनर्दर्शनेन “म एवाय”-मिति जायमानं  
ज्ञान संज्ञा । यथा-“स एवायमाहारकलङ्घिमान महात्मा, यो मया ज्ञानेन दृष्टः” ।

## (७) स्मृतिः-

अनुभूतार्थविषयक ज्ञान स्मृतिः । इदं ज्ञानमतीतविषयकं भवति ।  
अत्रोदाहारणं यथा—

## (५) गवेपणा—

मार्गीणां के पश्चात् उपलब्ध न होने वाला जीवादि पदार्थों का पूर्ण तरह विचार  
करना अर्थात् निर्णय के अभिमुख विचारपरायणता गवेपणा है ।

## (६) संज्ञा-

इन्द्रियजन्य ज्ञानके विषयभूत पदार्थ का पुनर् दर्शन होने पर 'यह वही है'  
इस प्रकार से उत्पन्न होने वाला ज्ञान संज्ञा कहलाता है । जैसे-“यह वही आहारकलङ्घि  
वाले महात्मा है जिन्हें मैंने वनमें देखा था” ।

## (७) स्मृति—

पहले अनुभव किये हुए पदार्थ को विषय करनेवाला ज्ञान स्मृति कहलाता  
है । स्मृतिज्ञान अतीतविषयक ही होता है । यहाँ एक उदाहरण है, जैसे—

## (५) गवेपणा—

मार्गीणानीं पश्ची उपलब्ध नहि यथा वाणा एवादि पदार्थानां पूर्यी रीते विचार  
करवे अर्थात् निर्णयने अभिमुख-विचार परायणताने गवेपणा कहे छे

## (६) संज्ञा—

इन्द्रियजन्य ज्ञानना विषयभूत पदार्थानु इरी दर्शनं यथा “आ तेज छे”  
अे प्रकारे उत्पन्नं यथा वाणु ज्ञान ते संज्ञा कहेवाय छे जेभ-“आ तेज आहारक-  
कलङ्घिवाणा महात्मा छे जेने मे वनमा जेया हुता”

## (७) स्मृति—

प्रथम अनुभव करेला पदार्थानां विषय करेनाइ ज्ञान स्मृति कहेवाय छे स्मृति-ज्ञान  
अतीत विषयनु ज, (नीती गयेला प्रसंगनु ज) होय छे अही अेक उदाहरणु छे, जेभके -

षेड्ड्या देवी हेमन्ते मगवत्समवसरन्तः प्रत्यागच्छन्ती मार्गे महारण्ये स्वमतिज्ञानचिन्तितं जिनकल्पितं कमपि मुनिं ध्यानावस्थामालोक्य मयस्या तददर्शनवन्वनादिकं विधाय स्वप्रासादमागता राशौ सुप्ता । निद्रावस्थायां तस्याः पाणिराव-रणवस्त्राद् बहिर्भूतः शीतेन शिथिलीबभूव । अयाञ्चौ जागरिता बह्वीभूतं स्वहस्तं विनोदय श्रीतादिपरिपहपरिगत महारण्यस्य मुनिं स्मृतपती “कर्ममहो भक्तौ मुनिरिदानीं बहिर्मावने शीतपरिभूतो भविष्यति” । इति कर्मणां महानिर्भरा महापर्यवसानं प्रकार ।

षेड्ड्या देवी हेमन्त ऋतु में मगवान् के समवसरणसे सौटती हुई, मार्ग में महा-भरण्य में अपनी प्रतिज्ञा पालने वाले किन्ही जिनकल्पी मुनि को ध्यान में स्थित देखकर, लक्ष्मिपूर्वक उन का दर्शन करके भाद्रि कर के अपने महक में बाई और रात्रि में सो गई । निद्रावस्था में उस का हाथ जोड़ने के बल से बाहर निकल गया और ठंड के कारण ठर गया । रात्री को नींद भुल गई । उसने अपने हाथ को बह्वीभूत देख कर शीत परिपहो से आकृन्त महा-भरण्यवासी मुनिका स्मरण किया । कहने लगी—बहो ! महावन में नगर के बाहर यह मुनि इस समय शीत से कैसा कर पा रहा होगा ! ऐसा सोच कर उसने कर्म की महानिर्भरा की ।

षेड्ड्या देवी हेमन्त ऋतुमा मगवानना समवसरण्युभायी पाथी हरे त्तारे भासंभां महावनमां पातानी भविता पातनाया, डोर्ध् जेक जिनकल्पी मुनिने ध्यानमा स्थित भेधने, लक्ष्मिपूर्वक तेना दशन, वदन वजेरे करीने पाताना भडेडमा आवी अने रात्रीजे मुर्ध गर्ध निद्रावस्थाभां तेने जेक हाथ जोडवाना परमाभायी जकार रही जये, अने कही डोवना कारये ते हाथ करी जये, रात्रीनी निद्रा उठी जध त्तारे तेवे पाताना हासने करी जवामी जड जेवे भेधने शीत भाद्रि परीपहोयी जाकान्त, महा-वनवासी मुनि साकरी जग्धा; अने कहेवा लागी हे-जडे । महावनमा नगर जकार ते मुनि जा समवमा शीतधी हेतुं कष्ट परमा उरी ? जेवे विचार करीने कर्मनी महानिर्भरा करी ।

## (५) गवेषणा-

मार्गणानन्तरमनुपलभ्यस्य जीवादिवदार्थस्य सर्वतः परिभाषनं-निर्णयाभि-  
मुखविचारपरायणता गवेषणा ।

## (६) सज्ञा—

इन्द्रियजन्यज्ञानविषयीभूतस्यार्थस्य पुनर्दर्शनेन “म एवाय”-मिति जायमानं  
ज्ञानं सज्ञा । यथा—“स एवायमाहारकलङ्घिमान् महात्मा, यो मया ज्ञानेन दृष्टः” ।

## (७) स्मृतिः-

अनुभूतार्थविषयकं ज्ञान स्मृतिः । इदं ज्ञानमतीतविषयकं भवति ।  
अत्रोदाहारणं यथा—

## (५) गवेषणा—

मार्गणा के पश्चात् उपलब्ध न होने वाला जीवादि पदार्थों का पूर्ण तरह विचार  
करना अर्थात् निर्णय के अभिमुख विचारपरायणता गवेषणा है ।

## (६) संज्ञा-

इन्द्रियजन्य ज्ञानके विषयभूत पदार्थ का पुन दर्शन होने पर ‘यह वही है’  
इस प्रकार से उत्पन्न होने वाला ज्ञान सज्ञा कहलाता है । जैसे—“यह वही आहारकलङ्घि  
वाले महात्मा है जिन्हे मैंने वनमें देखा था” ।

## (७) स्मृति—

पहले अनुभव किये हुए पदार्थ को विषय करनेवाला ज्ञान स्मृति कहलाता  
है । स्मृतिज्ञान अतीतविषयक ही होता है । यहा एक उदाहरण है, जैसे—

## (५) गवेषणा—

मार्गणानी यछी उपलब्ध नहि थवा वाणा एवादि पदार्थाना पूर्ण रीते विचार  
करये अर्थात् निर्णयने अभिमुख-विचार परायणताने गवेषणा कहे छे

## (६) संज्ञा—

इन्द्रियजन्य ज्ञानना विषयभूत पदार्थानु द्विरी दर्शन थता “आ तेज छे”  
ऐ प्रकारे उत्पन्न थवा वाणु ज्ञान ते सज्ञा कहेवाय छे जेम—“आ तेज आहारक-  
कलङ्घिवाणा महात्मा छे जेने मे वनमा जेया छता”

## (७) स्मृति—

प्रथम अनुभव करेला पदार्थाना विषय करनाइ ज्ञान स्मृति कहेवाय छे स्मृति-ज्ञान  
अतीत विषयनु ज, (वीती गयेला प्रस गनु ज) होय छे अही ऐक उदाहरणु छे, जेमके-

सा संज्ञा किंस्वरूपा, या न मत्स्यकेषाम् ? इत्याकाङ्क्षायामाह-“ तज्ज्ञा ” इति । सा यथा-

“पुरस्तिमाओ वा दिसाओ” इत्यारभ्य-“अहोदिसाओ वा आगओ अहमसि” इत्यन्तेमेदमुक्तं भवति-वर्तमानजन्मन माहू कर्म्या विधि ममापम्यान मासीदिति स्वगत्यागत्यवधिभिक्षिण्पूर्वादिपहूदिज्ञानं नास्ति संज्ञिनामपि क्रियतांषिद् । यथा-मणिरामदूर्णितनयनो मूर्च्छित पथि पतित स्वजनादिना समुत्पाप्य गृहमानीयते । अथ मूर्च्छापगमऽप्यसौ न खानाति-काहं पतितः ?, कपमूर्यापितः ?, केन कया रीत्याऽत्र समानीतोऽस्मी ?-ति । तद्वद् विशिष्टसंज्ञाया

वह संज्ञा किस प्रकारकी है वो किन्हीं २ चीजों को नहीं होती । इस प्रकार की ज्ञानाया होने पर कहा गया है-संज्ञा-मर्षत् वह इस प्रकार-

‘पुरस्तिमाओ वा दिसाओ’ से लेकर ‘अहोदिसाओ वा आगओ अहमसि’ तक का वाक्य यह है कि-इस वर्तमान कर्म से पहले मैं कहीं रहता था ? इस प्रकारका अपनी गति-व्यगति से कुछ छूट दिशाओं का ज्ञान किन्तुक संज्ञा चीजोंको भी नहीं होता । जैसे-मणिरा के मूढ़ से कहा हुआ मूर्च्छित और रास्ते में पड़ा हुआ पुरुष स्वयम आदि के द्वारा उठाकर पर जाया जाता है, किन्तु मूर्च्छा हट जाने पर भी उसे ज्ञान नहीं होता कि-मैं कहीं गिरा था ?, किस प्रकार उठया गया ? कौन किस प्रकार मुझे यहाँ लाया ? इसी प्रकार विशिष्ट संज्ञा के अभाव क कारण चीज

ते संज्ञा केवा प्रकृतनी छे, जे कौछ-कौछ लयेने नधी होती ? आ प्रकृत्ये लयेना यथावी ह्यु छे के-‘संज्ञा’ अर्थात् ते आ प्रकृते-

“पुरस्तिमाओ वा दिसाओ” की लाने “अहोदिसाओ वा आगओ अहमसि” मुधीनेह अर्थ छे जे है-आ वस्तुअल क पथी पड़ेवाँ ह्यु कया रूढिनेह लये, आ प्रकृत्ये पीतानी अति-अप्रतिधी मुक्त छे दिशामेनु ज्ञान डेटवाक सखी लयेने पय नधी यत् जेभ महिसना देहमी उठेवा मूर्च्छित-वेभन स्वभावमा अथवा उठेवने स्वयनद्वारा उठानीने पीताना घेर लावनाभ आवे छे परतु भूछा कनरी नया पागी पय नेने ज्ञान यत् नधी है-ह्यु कया पथी अथा लते ? केनी रीते अने उठेओ ? कौछ केनी रीते अने अदि लये ? आ प्रकृतनी विशिष्ट अस्वभाव

(८) मतिः—

वर्तमानविषयकं ज्ञान मतिः । यथा—‘ मुनिः संयमार्थं भिक्षामटति ’ ।

(९) प्रज्ञा—

विशिष्टक्षयोपशमजन्यं प्रभूतपदार्थवर्ति यथास्थितस्वरूपनिर्णयात्मकं ज्ञान प्रज्ञा ।

आभिनिवोधिकस्वरूपस्य मतिज्ञानस्य प्रभेदा उक्ताः ।

“इहैकेषां नो संज्ञा भवती”-त्यत्र सज्ञाशब्देन मतिज्ञानान्तर्गतं स्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं भगवता नोशब्दनिर्देशेन प्रतिषेधितम्, न तु सर्वविधसंज्ञारूपं सामान्यं ज्ञानम् ।

(८) मति—

वर्तमानविषयक ज्ञान मति कहलाता है । जैसे—‘ मुनि संयम पालने के अर्थ भिक्षाके लिए भ्रमण करता है । ’

(९) प्रज्ञा—

विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला और प्रभूत पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का निर्णयात्मक ज्ञान प्रज्ञा है ।

आभिनिवोधिकरूप मतिज्ञान के प्रभेद कहे गये ।

‘ कितनेक जीवोंको सज्ञा नहीं होती ’ यहाँ सज्ञा शब्द से मतिज्ञान के अन्तर्गत स्मृतिरूप विशिष्ट ज्ञान का भगवान् ने ‘नो’ शब्द का निर्देश करके निषेध किया है, किन्तु सब प्रकार की सज्ञारूप सामान्य ज्ञानका निषेध नहीं किया है ।

(८) मति—

वर्तमान विषयतु ज्ञान ते मति कहेवाय छे, जेभ ‘ मुनि संयम पालन भाटे भिक्षा लेवा भ्रमण करे छे ’

(९) प्रज्ञा—

विशिष्ट क्षयोपशमार्थी उत्पन्न थनाइ प्रभूत पदार्थोंना यथार्थ स्वरूपतु निर्णयात्मक ज्ञान ते प्रज्ञा छे

आभिनिवोधिकरूप मतिज्ञानना प्रभेद कहेवाया

‘ डेटलाठ छुवोने सज्ञा नथी थती ’ अडि सज्ञा शब्दथी मतिज्ञानना अतगत स्मृतिरूप विशिष्ट ज्ञानने भगवाने ‘नो’ शब्दने निर्देश करीने निषेध करी छे परतु सर्व प्रकारनी सज्ञारूप सामान्य ज्ञानने निषेध करी नथी



पूर्वा, दक्षिणा, पश्चिमा, उत्तरा चेति चतस्रोः दिशाः, एषानी आग्नेयी, नैऋती, वायवी चेति चतस्रो विदिशाः, आसामष्टानामन्तराणां अष्टानन्तरदिशाः, मिच्छिवा षोडश । अयोर्ध्वम्, अक्षध्वेति द्वे इति, तपोस्यैगिष्ठादक्ष । द्रव्यविशेष मज्ञापकदिक्शब्देनाप्युच्यते ।

तथा—समुष्टिमनुष्या, गर्भजकर्मभूमिमनुष्याः, गर्भजाकर्मभूमिमनुष्याः, पश्यन्नाश्रयन्तराणीमनुष्याः, इति चतुर्विधा मनुष्याः, त्रिभिन्नुःपञ्चेन्द्रियभेदेन चतुर्विधास्तिर्यग्वाः,

पृथिव्यप्तेजोवायुकायम्बान्चतुर्विधाः स्वावराः । अग्नीम-भूमीम-पर्वणीम-सकृन्वणीम-मदाञ्चतुर्विधा वनस्पतयः । इति मिच्छिवा षोडश । नरकगति-

पश्चिम, दक्षिण और उत्तर चार दिशाएँ हैं । ईशान अग्नेय मैरुव्य वायव्य ये चार विदिशाएँ हैं । इन भाटो के बीच में भाठ अगान्तर दिशाएँ हैं । ये सब मिच्छकर सोम्य होती हैं । इन में ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा शामिल कर देने से अष्टादश द्रव्य-दिशाएँ होती हैं । द्रव्यदिशाको ही प्रज्ञापकदिशा भी कहते हैं ।

तथा—समुष्टिम मनुष्य गर्भज-कर्मभूमिज मनुष्य गर्भज-अकर्मभूमिज मनुष्य, उच्यन्त अन्तराणी के मनुष्य ये चार प्रकार के मनुष्य । ईन्द्रिय त्रिन्द्रिय चतुस्रिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भेद से चार प्रकार के तिर्यग् । पृथ्वीकाय अकाय तेजस्काय और वायुकाय के भेद से चार प्रकार के स्वावर और अग्नीम भूमीम पर्वणीम तथा

दक्षिण अग्ने उत्तर आग्नेय दिशाओं से अग्नि पश्चिम नैऋत्य अग्ने वायव्य, आग्नेय विदिशाओं से आग्नेयी पश्चिमा आदि अगान्तर दिशाओं से आग्नेय भूमीने सोम दिशाओं वायु से तेज ऊर्ध्वदिशा अग्ने अधोदिशा शामिल करवायी अष्टादश दिशाओं वायु से द्रव्यदिशाने प्रज्ञापकदिशा षड् षडे से तथा-समुष्टिम मनुष्य जल व अमभूमिज मनुष्य, जल व-अकर्मभूमि व मनुष्य उपन अन्तराणीयाना मनुष्य, आग्नेय प्रकारना मनुष्य, त्रिन्द्रिय, त्रिन्द्रिय चतुस्रिन्द्रिय अग्ने पञ्चेन्द्रियना केरधी आग्नेय प्रकारना तिर्यग् पृथ्वीकाय, अकाय तेजस्काय अग्ने वायुकायना केरधी आग्नेय प्रकारना स्वावर अग्ने अग्नीम भूमीम पर्वणीम

अभानाञ्जीवः पूर्वभवं न जानाति ।

“अण्णयरीओ वा दिसाओ” इति । यावत्यो दिशः सन्ति तत्र कस्याश्चिदेकस्या दिशः समागतोऽस्मीति स्वागतवधिदिशं सामान्यरूपेणापि न जानन्ति कतिचन सजिनः, सर्वदिग्ज्ञानाभावेनान्यतरदिग्ज्ञानासभवादिति भावः ।

“अणुदिसाओ वा” इति । ईशानादयः क्रोणरूपा विदिशोऽनुदिशः । तासां मध्ये कस्याश्चिदेकस्या अनुदिशः समागतोऽस्मीति सामान्यरूपेण, तथैशान्या आग्नेय्या इत्यादि विशेषरूपेण च स्वागतवधिभूताया अनुदिशो ज्ञान न भवतीत्यभिप्रायः ।

अथ दिशः कति सन्ति ? उच्यते—संक्षेपतो द्रव्य-भाव-भेदेन दिशा द्विविधा ।

अपना पूर्व भव नहीं जानता ।

‘अण्णयरीओ वा दिसाओ’ अर्थात् जितनी दिशाएँ हैं, उनमें किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, इस प्रकार अपने आगमन की दिशा को सामान्यरूप से भी कितनेक सज़ी नहीं जानते हैं । क्यों कि सभी दिशाओं के ज्ञानके अभाव में किसी एक दिशा का ज्ञान होना असम्भव ही है । ‘अणुदिशाओ वा’ ईशान वगैरह क्रोणरूप विदिशाओं को अनुदिशा कहते हैं । उनमें से सामान्यरूप से किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, या विशेषरूप से ईशान, आग्नेय आदि विदिशा से मैं आया हूँ, ऐसा ज्ञान नहीं होता ।

प्रश्न—दिशाएँ कितनी हैं ?

उत्तर—संक्षेप से दिशा के दो भेद हैं—द्रव्य-दिशा, और भाव-दिशा । पूर्व, अभावधी एव पोताना पूर्वभावने न्नुत्तो नथी

‘अण्णयरीओ वा दिसाओ’ अर्थात् डेटली दिशाओ छे, तेभाधी डोअँ पणु ओक दिशाधी हु आओ छु आ प्रभाओ पोताना आगमननी दिशाने सामान्य रूपधी पणु डेटलाक सज़ी न्नुत्ता नथी डेभके सर्व दिशाओना ज्ञानना अभावधी डोअँ ओक दिशातु’ ज्ञान थवु ते असंभव छे ‘अणुदिसाओ वा’ ईशान वगैरे डोअँ रूप विदिशाओने अनुदिशा कहे छे तेभाधी सामान्यरूपे डोअँ पणु ओक दिशाधी हु आओ छु, अथवा विशेषरूपधी ईशान आग्नेय आदि विदिशाओधी हु आओ छु ओवु ज्ञान थतु नथी

प्रश्न—दिशाओ डेटली छे ?

उत्तर—संक्षेपधी दिशाना जे लेद छे—द्रव्यदिशा अने भावदिशा पूर्व, पश्चिम,

ी, दक्षिणा, पश्चिमा उत्तरा चेति चतस्रो दिशः, पश्चानी आग्नेयी, नैऋती, पश्ची चेति चतस्रो विदिशः, आसामष्टानामन्तराला अष्टावन्तरदिशः, मिश्रित्वा षोडश । अयोर्ध्वम्, मध्वेति द्वे इति, तयोर्मगिष्टादश । द्रव्यदिशेषां एकद्विदशस्येनाप्युच्यते ।

तथा-संमूर्च्छिममनुष्या, गर्भजकर्मभूमिमनुष्याः, गर्भजाकर्मभूमिमनुष्याः, अष्टावन्तरद्वीपमनुष्या, इति चतुर्विधा मनुष्याः, द्विभिक्षुपञ्चेन्द्रियमेदेन चतुर्विधास्तिर्यग्जाः,

पृथिव्यपृथेजोवायुकायमदाक्षतुर्विधाः स्थावराः । अग्नीज-भूमीज पर्वतीज-स्कन्धबीज-मदाक्षतुर्विधा बनस्पतयः । इति मिश्रित्वा षोडश । नरकगति

पश्चिम, दक्षिण और उत्तर चार दिशाएँ हैं । ईशान अग्नेय नैऋत, वायव्य ये चार दिशिधार्ये हैं । इन आठों के बीच में आठ अन्तर दिशाएँ हैं । ये सब मिश्रकर षोडश होती हैं । इन में ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा शामिल कर देने से अष्टादश द्रव्य-दिशाएँ होती हैं । द्रव्यदिशाको ही प्रज्ञापदिशा भी कहते हैं ।

तथा—संमूर्च्छिम मनुष्य गर्भज-कर्मभूमिज मनुष्य, गर्भज-अकर्मभूमिज मनुष्य, अष्टावन्तरद्वीपों के मनुष्य ये चार प्रकार के मनुष्य । द्विन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुस्रिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के मनु से चार प्रकार के तिर्यग्ज । पृथ्वीकाय अक्षय तेजस्काय और वायुकाय के मनु से चार प्रकार के स्थावर और अग्नीज भूमीज, पर्वतीज तथा

द्विभिक्षु अग्ने उत्तर आ आर दिशाओं से अग्नि धृष्टान्त नैऋत्य अग्ने वायव्य आ आर दिशाओं से आ अग्नी वक्ष्यमां आठ अन्तर दिशाओं से आ सप्त अग्नि सेतु दिशाओं साथ से तेज ऊर्ध्वदिशा अग्ने अधोदिशा शामिल करवाधी करके द्रव्य दिशाओं साथ से द्रव्यदिशाने प्रज्ञापदिशा पक्ष कहे से तथा-संमूर्च्छिम मनुष्य, अकर्म भूमिज मनुष्य, अकर्म भूमिज मनुष्य, अष्टावन्तरद्वीपमनुष्य आ चार प्रकारका मनुष्य, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुस्रिन्द्रिय अग्ने पञ्चेन्द्रियना सेदधी चार प्रकारका तिर्यग्ज, पृथ्वीकाय, अक्षय तेजस्काय अग्ने वायुकायना सेदधी चार प्रकारका स्थावर, अग्ने अग्नीज, भूमीज, पर्वतीज

અમાવાજ્જીવઃ પૂર્વભવં ન જાનાતિ ।

“અણયરીઓ વા ઢિસાઓ” ઇતિ । યાવત્યો દિશઃ સન્તિ તત્ર કસ્યાશ્ચિદેકસ્યા દિશઃ સમાગતોઽસ્મીતિ સ્વાગમનાપ્રધિદિશં સામાન્યરૂપેણાપિ ન જાનન્તિ કતિચન સજ્જિનઃ, સર્વદિગ્જ્ઞાનાભાવેનાન્યતરદિગ્જ્ઞાનાસંભવાદિતિ ભાવઃ ।

“અણુદિસાઓ વા” ઇતિ । ઈશાનાદયઃ કોણરૂપા વિદિશોઽનુદિશઃ । તાસાં મધ્યે કસ્યાશ્ચિદેકસ્યા અનુદિશઃ સમાગતોઽસ્મીતિ સામાન્યરૂપેણ, તથૈશાન્યા આગ્રેય્યા ઢટ્યાદિ વિશેષરૂપેણ ચ સ્વાગત્યવધિભૂતાયા અનુદિશો જ્ઞાનં ન મમતી-ત્યભિમાયઃ ।

અથ દિશઃ કતિ સન્તિ ? ઉન્યતે-સંક્ષેપતો દ્રવ્ય-ભાવ-ભેદેન દિશા દ્વિવિધા ।

અપના પૂર્વ ભવ નહીં જાનતા ।

‘અણયરીઓ વા ઢિસાઓ’ અર્થાત્ જિતનો દિશાઈ છે, ઁનમ્ કિસી મી ઁક દિશા સે મૈ આયા હ્ૈ, ઈસ પ્રકાર અપને આગમન કી દિશા કો સામાન્યરૂપ સે મી કિતનેક સજ્જી નહીં જાનતે હ્ૈ । કયો કિ સમી દિશાઓં કે જ્ઞાનકે અમાવ મે કિસી ઁક દિશા કા જ્ઞાન હોના અસમ્ભવ હી હૈ । ‘અણુદિશાઓ વા’ ઈજ્ઞાન વૈરહ કોગરૂપ વિદિશાઓં કો અનુદિશા કહતે હ્ૈ । ઁનમ્ સે સામાન્યરૂપ સે કિસી મી ઁક દિશા સે મૈ આયા હ્ૈ, યા વિશેષરૂપ સે ઈજ્ઞાન, આગ્નેય આદિ વિદિશા સે મૈ આયા હ્ૈ, ઁસા જ્ઞાન નહીં હોતા ।

પ્રશ્ન-દિશાઈ કિલતી હ્ૈ ?

ઉત્તર-સંક્ષેપ સે દિશા કે ઢો ભેદ હ્ૈ-દ્રવ્ય-દિશા, ઁર ભાવ-દિશા । પૂર્વ,

અભાવથી ઇવ ષોતાના પૂર્વભવને જાણતો નથી

‘અણયરીઓ વા ઢિસાઓ’ અર્થાત્ બેટલી દિશાઓ છે, તેમાથી ઢોઈ પણ ઁક દિશાથી હુ આંચો છુ આ પ્રમાણે ષોતાના આગમનની દિશાને સામાન્ય રૂપથી પણ કેટલાક સજ્જી જાણતા નથી કેમકે સર્વ દિશાઓના જ્ઞાનના અભાવથી ઢોઈ ઁક દિશાનુ જ્ઞાન થવુ તે અસભવ છે ‘અણુદિસાઓ વા’ ઈજ્ઞાન વગેરે ઢોણુ રૂપ વિદિશાઓને અનુદિશા કહે છે તેમાથી સામાન્યરૂપે ઢોઈ પણ ઁક દિશાથી હુ આંચો છુ, અથવા વિશેષરૂપથી ઈજ્ઞાન આગ્નેય આદિ વિદિશાઓથી હુ આંચો છુ ઁવુ જ્ઞાન થતુ નથી

પ્રશ્ન-દિશાઓ કેટલી છે ?

ઉત્તર-સંક્ષેપથી દિશાના ષે ભેદ છે.—દ્રવ્યદિશા અને ભાવદિશા પૂર્વ, પશ્ચિમ,

द्रव्यविशेषविषयकं ज्ञानं न भवत्येकेषामिति विवक्षया—“इहमेग्रेसि षो सङ्गा मवइ” इत्युक्तं मगवता । भाषाविशेषविषयकं च ज्ञानं न भवत्येकेषामिति वक्ष्यतेऽनन्तरसूत्रं एव—“एवमेग्रेसि वा वायं मवइ” इत्यादिना । ॥ सू. २ ॥

भाषाविशेषविषयकं च ज्ञानं भवति सन्निनां कियतांचिदित्याह—“एवमेग्रेसि” इत्यादि ।

मूलम् ।

एवमेग्रेसि वा वायं मवइ—अस्मि मे आया आबवाए, नस्मि म आया आबवाए, के अई आसी, के वा इमो सुए इ पन्ना मविस्सामि ॥ सू. ३ ॥

( छाया )

एवमेकेषां नो ज्ञातं भवति—अस्ति मे आत्मा औपपातिकः, नास्ति मे आत्मा औपपातिकः, कोऽहमासम्, को वा इहमस्युव इह मेत्ये मविष्यामि ? ॥ सू. ३ ॥

चित्तनेक बीजा को द्रव्यविशेषसम्बन्धी ज्ञान नहीं होता, इस कण्ठा से मगवानने कहा है कि—“इहमेग्रेसि षो सङ्गा मवइ” । भाषाविशेषविषयक ज्ञान चित्तनेको नहीं होता है, यह बात ‘एवमेग्रेसि वा वायं मवइ’ इत्यादि कण्ठे सूत्र में कही जायगी ॥ सू. २ ॥

चित्तनेक भङ्गी बीजाको भाषाविशेषविषयक ज्ञान नहीं होता यह कहने हैं—‘एवमेग्रेसि’ इत्यादि ।

मूलायं—किन्ही बीजाको यह ज्ञान नहीं होता कि—मेरा आत्मा उत्पत्तिशील है या मेरा आत्मा उत्पत्तिशील नहीं है । मैं पहले कौन या कौन मर्तों से मरकर परलोक में कौन होऊँगा ? ॥ सू. ३ ॥

हेऽब्राह्मण लोकोने द्रव्यविशेषसम्बन्धी ज्ञानं नथी चतु को कण्ठाधी मगवानने कथं से हे—“इहमेग्रेसि षो सङ्गा मवइ” भाषाविशेष विषयक ज्ञान हेऽब्राह्मण लोकोने नथी को वात एवमेग्रेसि वा वायं मवइ इत्यादि कण्ठाधी सूत्रभां कहीशु ॥ सू. २ ॥

हेऽब्राह्मण सती लोकोने भाषाविशेषविषयक ज्ञानं नथी ते कहे से—“एवमेग्रेसि” इत्यादि ।

मूलायं—कैथं कैथं लोकोने को ज्ञानं नथी हे भाषा आत्मा उत्पत्तिशील हे भाषा आत्मा उत्पत्तिशील नथी, हे प्रथम केषु कते जने कदिंथी मृत्युजाद परलोकभां हे केषु भवति ? ( हे कथां भवति ? ) ( सू. ३ )

देवगतिश्चेति द्वे । सर्वयोगेऽष्टादश भावदिशः सन्ति ।

अथ दिशां विदिशा च प्रवृत्तिः कुतः स्थानान्भवति ? उच्यते—

तिर्यग्लोकस्य मध्यभागे रत्नप्रभा भूमि, तदुपरि मध्यभागे मेरु-  
पर्वताभ्यन्तरे द्वौ लघुतरौ प्रतरौ स्तः । तदुपरि गोस्तनाकाराश्चत्वारश्चत्वारः  
प्रदेशाः सन्ति । ईदृशाष्टप्रदेशी चतुष्कोणो रुचकनामा भागोऽस्ति । तत एव दिशां  
विदिशां च प्रवृत्तिर्भवति । उक्तञ्च—

“ तिर्यग्लोकस्य मध्ये यो, रुचकोऽष्टप्रदेशकः ।

दिशामनुदिशा चैव, प्रवृत्तिर्जायते ततः ” ॥१॥

स्कन्धबीज के भेद से चार प्रकार की वनस्पति, ये सब मिलकर सोलह होते हैं ।  
तथा नरकगति और देवगति मिलकर अठारह प्रकार की भाव-दिशाएँ हैं ।

प्रश्न—दिशाओं और विदिशाओंकी प्रवृत्ति किस स्थान से होती है ?

उत्तर—तिर्यग्लोक के मध्यभाग में रत्नप्रभा भूमि है । उसके उपर मध्यभाग  
में मेरु पर्वत के अन्दर दो छोटे प्रतर हैं । उनके उपर गाय के स्तन के आकारवाले  
चार चार प्रदेश हैं । ऐसा अष्टप्रदेशी चौकोना रुचक नामक भाग है । वहाँ से दिशाओं  
और विदिशाओं की प्रवृत्ति होती है । कहा भी है—

“ तिर्छे लोक के मध्य में आठ प्रदेशवाला रुचक भाग है । उसी से सब दिशाओं  
और अनुदिशाओं की प्रवृत्ति होती है ॥ १ ॥ ”

तथा रुचकभाजना बेदधी चार प्रकारनी वनस्पति, आ सर्व भणीने सोण थाय छे,  
तथा नरकगति अने देवगति भणीने अठार प्रकारनी भाव-दिशाओ छे

प्रश्न—दिशाओ अने विदिशाओनी प्रवृत्ति कुथा स्थानथी होय छे ?

उत्तर—तिर्यग्लोकना मध्य भागमा रत्नप्रभा भूमि छे, तेना उपर मध्य  
भागमा मेरु पर्वतनी अन्दर नाना भे प्रतर छे, तेना उपर गायना स्तनना आकार  
वाला चार-चार प्रदेश छे ओयो आठप्रदेशी चार भुजावाणो रुचक नामनो भाग छे,  
तेनाथी दिशाओ अने विदिशाओनी प्रवृत्ति थाय छे कह्युं पण्य छे—

“ तिर्छां लोकना मध्यमा आठ प्रदेशवाणो रुचक भाग छे, त्याथी सर्व दिशाओ  
अने अनुदिशाओनी प्रवृत्ति थाय छे, ” ॥ १ ॥

“दोषोऽत्रवाप पञ्चसे तंजहा-देषाणां चैव षेष्टयाणं चैव” इति । (स्थानाङ्क० २ स्था० ३ उ०)

द्वयोपपातः प्राप्तः, तद्यथा-उदानां चैव नैरयिकाणां चैव । इति पञ्चया । उपपातादागत औपपातिकः । देवमवाद् नरकमवादा ममायमात्मा समागतोऽस्तीत्यर्थः । नास्ति मे आत्मा औपपातिक इति, अत्र-नठार्थस्यौपपातिकोऽन्वयः । ममात्मा-अनौपपातिकोऽस्तीत्यर्थः । समूर्धनमवाद् गममवाद् वा ममात्मा समागतोऽस्तीति साध । इममर्थं स्पष्टीकर्तुमाह-नाऽहमासम् ? इति ।

अत्र प्रसङ्गज्ञान जन्मतस्ममेवाथ निरूप्यन्त—

दो प्रकार के जीवा के उपपातकत्व कहा गया है । वह इस प्रकार-देवके और नरकाके ।” (स्था० २ उ ३)

उपपात से उत्पन्न होनेवाला औपपातिक कहन्वता है । तात्पर्य यह हुआ कि-मेरा आत्मा देवमव या नरकमव से आया है । इस प्रकार का ज्ञान ग्राही होता ।

जाति से आया उदवाप्य’ यहाँ नियम का औपपातिक के साथ अन्वय है अर्थात् मेरा आत्मा औपपातिक नहीं है, ऐसा अर्थ समझना चाहिए । तात्पर्य यह है कि-मेरा आत्मा गममव से या समूर्धनमव से आया है । नम अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कहा गया है-नै कौन वा ।

प्रसङ्ग पाकर नहीं जान और जन्मा के मेरा का निरूपण करत हैं—

ये प्रकारका अर्थोने उपपात कर्म कहेवे छे ते आ प्रमाणे—(१) देवाने अने (२) नरकीअने. (स्था ० उ ३)

उपपातको उत्पन्न धना वशात् ते औपपातिक कहेवाय छे तात्पर्य जे धनु छे -आशे आत्मा देवमव अथवा नरकमवसे आये छे ? आ प्रमाणुं जान धतुं नधी.

“जन्मि से आया उदवाप्य” अर्थात् नियमोने औपपातिकनी आशे अन्वय छे अर्थात्-आशे आत्मा औपपातिक नधी. जेवे अथ समर्थो जेछे जे ता पय जे छे ते-आशे आत्मा अर्थमवसे अथवा समूर्धनमवसे आये छे ? आ अर्थनी स्पष्टता कस्ताने आ? कहेव छे ते-“तुं केषु कते ?”

प्रसङ्ग प्राप्त कवाधी अर्थात् जन्म अने जन्मना नेदानु निरूपण करे छे-

ટીકા ।

‘એવમેગેસિ’ ઇતિ, એવં વક્ષ્યમાણપ્રકારેણ એકેપાં સંજ્ઞિનાં ક્રિય-તાંચિત્ જ્ઞાતં-જ્ઞાનમ્ આત્મનિ વિષયે વર્તમાનાતીતાનાગતજન્મવિષયકં નો ભવતિ-નો સમુત્પદ્યતે ।

કિંસ્વરૂપં જ્ઞાનં નોત્પદ્યતે તેપામ્ ? ઇતિ દર્શયતિ-અસ્તિ મે આત્મા ઔપપાતિક ઇત્યાદિ । ઔપપાતિક ઇતિ । ઉપપતનમ્-ઉપપાતઃ, પ્રાદુર્ભાવઃ= ચતુર્ગતિષુ જન્મતો જન્માન્તરે સંક્રમણમ્ । ઉપપાતે ભવઃ-ઔપપાતિકઃ । મે મમ આત્મા-ઔપપાતિકો જન્માન્તરસંક્રાન્તોઽસ્તીતિ । તથા-નાસ્તિ મે આત્મા ઔપ પાતિક ઇતિ, મમાત્મા વર્તમાનજન્મનિ કર્મક્ષયસમવાદ્ ભાવિજન્માન્તર-સમ્બન્ધરહિતોઽસ્તીતિ । इदं જ્ઞાનદ્વય વર્તમાનજન્મવિષયકમ્ ।

यद्वा - उपपातः - गर्भसंमूर्च्छनलक्षणजन्मद्वयविलक्षणो जन्मविशेषः । स च देवनारकाणां भवति । उक्तञ्च—

ટીકાર્થ—આગે કહે અનુસાર ક્રિતનેક સજી જીવોંકો અપને વિષય મેં વર્તમાન અતીત ઔર અનાગત જન્મ સમ્બન્ધી જ્ઞાન નહીં હોતા । ઉન્હે કિસ પ્રકાર કા જ્ઞાન નહીં હોતા ? ઇસ વિષય મેં કહા ગયા કિ-મેરા આત્મા ઔપપાતિક હૈ યા નહીં ? અર્થાત્ ચાર ગતિયોં મેં, એક જન્મ, સે દૂસરે જન્મ મેં ગમન કરતા હૈ યા વર્તમાન જન્મ મેં કર્મોં કા ક્ષય હોને સે ભાવી જન્મ કે સમ્બન્ધ સે રહિત હૈ ? , યે દોનો જ્ઞાન વર્તમાન જન્મસમ્બન્ધી હૈ ।

अथवा-उपपातका अर्थ है-गर्भजन्म और समूर्च्छनजन्म से विलक्षण एक तीसरे प्रकार का जन्म । वह देवों और नारकों का होता है । कहा भी है-

ટીકાર્થ—આગળ કહેવા પ્રમાણે કેટલાક સજી જીવોને પોતાના વિષયમા વર્તમાન, ભૂતકાલ, અને ભવિષ્યકાલના જન્મ સબ ધી જ્ઞાન હોતુ નથી તેને કયા પ્રકારનુ જ્ઞાન નથી હોતુ તે વિષયમા કહે છે કે -મારો આત્મા ઔપપાતિક છે કે નહિ ? અર્થાત્ ચાર ગતિઓમા એક જન્મથી બીજા જન્મમા ગમન કરે છે, અથવા વર્તમાન જન્મમા કર્મોંને ક્ષય થવાથી ભાવી જન્મના સબધથી રહિત છે ? તે બને જ્ઞાન વર્તમાનજન્મસબધી છે

अथवा उपपातनो अर्थ છે-ગર્ભજન્મ અને સમૂર્ચ્ચન જન્મથી વિલક્ષણ એક ત્રીજા પ્રકારનો જન્મ છે, તે દેવો અને નારકીજીવોને થાય છે કહ્યું છે કે.—



आध्यात्मिकपुद्गलनिमित्तकं जन्म, यथा - बीजितश्वश्रुगामादीनां शरीरेषु जायमाना कीटादयस्त्वदीपक्षीरान्तर्गतपुद्गलान् स्वशरीरतया परिभ्रमन्तो जायन्ते । पृथिव्यप्तेजोवायुमनस्पति-द्विभिक्षुरिन्द्रिय-गर्भमभ्यतिरिक्त-पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्-मनुष्यान्वा संमूर्धनजन्म भवति ।

(२) गर्भजन्म-

उत्पत्तिस्थानावस्थितानामागन्तुक्युक्तशोणितपुद्गलानां स्वशरीररूपेण परिणतिकारणं मातृसुक्ताहाररसपरिपुष्टिसापक्षं च गर्भमन्म । जरायुवानामष्टमानां पोतमानां च गर्भजन्म भवति, जरायुर्गर्भवेष्टनचर्म, तत्र जाताः जरायुजाः ।

बीजित कुत्ते और शृगाळ आदि के शरीरों में उत्पन्न होने वाले कीड़े आदि उनके शरीरके अन्तर्गत पुद्गल को अपने शरीररूप में परिणत करते हैं वह आध्यात्मिक पुद्गलनिमित्तक प्रम कइसाता है, पृथ्वीकाय अष्काय तेजस्काय, वायुकाय, मनस्पतिकाय, इन्द्रिय त्रीन्द्रिय, अतुसिन्द्रिय और गर्भज के सिवाय पञ्चेन्द्रिय तिर्यङ्को और मनुष्यों का जन्म संमूर्धन होता है ।

(२) गर्भजन्म-

उत्पत्तिस्थान में रिक्त आगन्तुक रज-बीज के पुद्गल को अपने शरीररूप में परिणत करता और माता द्वारा मोगे हुए आहार के रस से पोषण की अपेक्षा रस्नेवात्म गर्भजन्म होता है । जरायुज, जण्डक और पोतज जीवा का जन्म गमज होता है, गर्भ को छेद रस्नेवास्त्री बमके की वैली जरायु कइसाती है, उसमें उत्पन्न होने वाले

जवता कुत्ता आने शिवाज आदिना शरीरार्थ उत्पन्न यथा वाजा कीटा आदि तेनां शरीरणी अइसना पुद्गलौने पोताना शरीररूपमा परिणत करे छे ते आध्यात्मिक पुद्गलनिमित्तक जन्म छे पृथ्वीकाय अष्काय, तेजस्काय, वायुकाय, मनस्पतिकाय, इन्द्रिय त्रीन्द्रिय अतुसिन्द्रिय आने जल अ सिवाय पञ्चेन्द्रिय, तिर्यङ्को आने मनुष्यो जन्म संमूर्धन होय छे

(२) गर्भज म-

उत्पत्तिस्थानमा रिक्त, आगन्तुक रज-बीजना पुद्गलौने पोताना शरीर रूपमा परिणत करतु, आने माताके इच्छा आहारात्ता अधी पोषणणी अपेक्षा रायथा वाजां ते जल अ इडेवाय छे जरायु / जण्डक आने पोत / जवता जल अ जण्डक होय छे जलने छपटी राजनारी आमशणी वैली जरायु इडेवाय छे तेमा उत्पन्न यथा वाजा जव जरायु / इडेवाय छे मनुष्य, जाय तेस जवरी

પૂર્વભવસમ્બન્ધિ - ' સ્થૂલશરીરપરિત્યાગાનન્તરમન્તરાલગત્યા તૈજસ-કાર્મણશરીરમાત્રેણ સહાગતસ્ય જીવસ્ય નવીનભવયોગ્યસ્થૂલશરીરાર્થ પ્રથમં યોગ્યપુદ્ગલાનાં ગ્રહણં જન્મ । તત્ત્ર ત્રિવિધ-સંમૂર્છન-ગર્ભો-પપાતભેદાત્ ।

(૧) સમૂર્છનજન્મ-

માતાપિત્રોઃ સમ્બન્ધં વિનૈવોત્પત્તિસ્થાનાવસ્થિતાનામૌદારિકપુદ્ગલાનાં બાહ્યાનામાધ્યાત્મિકાના વા સ્વશરીરરૂપેણ જીવકર્તૃકં પરિણતિકરણ સંમૂર્છનમ્ । વાહ્યપુદ્ગલનિમિત્તકં જન્મ, યથા-કાષ્ઠત્વકૂપકફલાદિપૂત્પદ્યમાનાઃ કીટાદ્યો જન્તવઃ કાષ્ઠફલવર્તિનો વાહ્યપુદ્ગલાન્ સ્વશરીરરૂપેણ પરિણમયન્ત ઉત્પદ્યન્તે ।

પૂર્વભવસમ્બન્ધી સ્થૂલ શરીર કા ત્યાગ કરને કે અનન્તર વિપ્રહગતિસે તૈજસ ઔર કાર્મણ શરીર કે સાથ આયા હુઆ જીવ નવીન ભવ કે યોગ્ય સ્થૂલ શરીર કે લિષે સર્વ પ્રથમ યોગ્ય પુદ્ગલોં કો પ્રહણ કરતા હૈ, વહી જન્મ કહલયાતા હૈ ।

જન્મ તીન પ્રકારકા હૈ-સમૂર્છન, ગર્ભ, ઔર ઉપપાત ।

(૧) સમૂર્છનજન્મ-

માતા-પિતા કે સમ્બન્ધ વિના હી, ઉત્પત્તિસ્થાન મે રહે હુષ વાહ્ય યા આપ્યાત્મિક ઔદારિક પુદ્ગલોંકા અપને શરીરરૂપ સે જીવ દ્વારા પરિણત કર લેના સમૂર્છન જન્મ કહલયાતા હૈ । કાઠ, ત્વચા ઔર પકે ફલ આદિ મે ઉત્પન્ન હોને વાલે કીઠે વગરહ જન્તુ કાઠ યા ફલ આદિ કે વાહ્ય પુદ્ગલોં કો અપને શરીર કે રૂપ મે પરિણત કર લેતે હૈ । યહ વાહ્ય પુદ્ગલનિમિત્તક જન્મ હૈ,

પૂર્વભવસમ્બન્ધી સ્થૂલ શરીરનો ત્યાગ કરીને પછી વિપ્રહગતિથી તૈજસ અને કાર્મણ શરીરની સાથે આવેલો જીવ નવા ભવને યોગ્ય સ્થૂલ શરીર માટે સર્વપ્રથમ યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, તે જન્મ કહેવાય છે જન્મ ત્રણ પ્રકારના છે- (૧) સમૂર્છન (૨) ગર્ભ, અને (૩) ઉપપાત

(૧) સમૂર્છનજન્મ-

માતા-પિતાના સમ્બન્ધ વિનાજ, ઉત્પત્તિસ્થાનમા રહેલા બહારના અથવા આધ્યાત્મિક ઔદારિક પુદ્ગલોને, પોતાના શરીરરૂપથી જીવદ્વારા પરિણત કરી લેવું તે સમૂર્છન જન્મ કહેવાય છે કાષ્ઠ ત્વચા (છાલ) અને ક્ષણ આદિમા ઉત્પન્ન થવા વાળા કીડા વગેરે જન્તુ કાષ્ઠ અથવા ક્ષણ આદિમા બહારના પુદ્ગલોને પોતાના શરીરના રૂપમા પરિણત કરી લે છે તે બહારના પુદ્ગલ નિમિત્તક જન્મ છે

उपपातजन्य—

उपपातक्षेत्रप्राप्तिमात्रनिमित्तस्थानस्वित्तवैक्रियपुद्गलानां प्रथम स्वशरीररूपेण परिश्रितिकरणम् उपपातजन्यम् । यथा—देवानां नारकाणां च । तत्र देवसमुद्भवो यथा—प्रच्छन्नपटस्योपरिष्ठाद् देवदृश्यस्यापस्ताद् उभयोरन्तरालवर्तमानपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् देव उत्पद्यते । नारकोत्पत्तिर्यथा—नरकस्थितान्तिसंक्रुष्टमुल्ल-कुम्भीषु स्थितान् वैक्रियशरीरपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् नारक उत्पद्यते ।

तथा—“अहं कः—चतुर्गतिषु प्राग्जन्मनि नारको वा तिर्यग् वा मरो

उपपातजन्य—

उपपातक्षेत्र में प्राप्तिमात्र निमित्त स्थान में है ऐसे उत्पत्तिस्थान में स्थित वैक्रिय पुद्गलों का पड़े-पड़े अपने शरीररूप में परिश्रित करना उपपात-जन्य कर्मवत्ता है, देव और नारको को यह जन्म होता है। देव की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—प्रच्छन्न पटके ऊपर और देवदृश्य बलके नीचे अर्थात् दोनों के बीचमें वर्तमान पुद्गलों को वैक्रियशरीररूप ग्रहण करता हुआ देव उत्पन्न होता है। नारको की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—नरकवर्ती जन्मन्त सक्रुष्ट (सक्रुष्टे) मुल्लवाही कुम्भियां में स्थित वैक्रिय शरीरके पुद्गल को वैक्रियशरीरके रूप में ग्रहण करता हुआ नारको भी उत्पन्न होता है।

तथा— मैं कौन था ? चार गतियों में से पूर्वजन्म में मैं नारक था, तिर्यग्जन्म था,

(अ) उपपातजन्य—

उपपात क्षेत्रमा प्राप्तिमात्र केमा निमित्त उ ज्येवा ऊत्पत्तिस्थानमा स्थित वैक्रिय पुद्गलानां पड़े-पड़े पीताना शरीररूपमा परिश्रित कर्तु ते उपपातजन्य कर्मवत्ता उ, देव जने नारकीषुवोनां ज्ञा जन्म होय उ

देवनी उत्पत्ति का प्रभाव यह है—प्रच्छन्नपट-उत्तरीय बलाना उपर जने देवदृश्य बलानी नीचे, ज्येते के जनेनी बलाना वर्तमान पुद्गलानां वैक्रियशरीररूपमा ग्रहण करता बल देव उत्पन्न जाय उ नारकीषुवोनी उत्पत्ति का प्रभाव उ के—नरकवर्ती जन्मन्त सक्रुष्ट मुल्लवाही कुम्भियां में स्थित वैक्रिय शरीरका पुद्गलानां वैक्रिय शरीररूपमा ग्रहण करता बल नारकी जन्म उत्पन्न जाय उ

तथा—“हुं कौन हूँ ? चार अवस्थाओं में पूर्वजन्म में मैं नारकी हूँ, तिर्यग्जन्म

तत्र - मनुष्य - गो - महिष्य - जा - ऽविका - ऽध - खरो - ष्ट - मृग - चमर - राह -  
 गवय - सिंह - व्याघ्र - र्क्ष - द्वीपि - श्व - शृगाल - मार्जारदयो जरायुजाः । सर्प - गोधा -  
 कृकलास - गृहगोधिका - ( पत्नी ) - मत्स्य - कर्म - नक्र - शिशुमारदयः, पक्षिषु यथा -  
 लोमपक्षाः, हंस - चाप - शुक - गृध्र - श्येन - पारावत - काक - मयूर - मण्ड - चक्रादयश्चा -  
 षडजाः । पोता - ज्जाता इति पोतजाः शुद्धप्रसन्नाः, न तु जरायुजवच्चर्मा -  
 दिवेष्टिता इति यावत्, यथा - शङ्कर - वृष्टि - श्वाविल्लापक - शश - शारिका - नकुल -  
 मृषिकादयः, पक्षिषु च चर्मपक्षाः, जलूका - वल्गुलि - भारण्डपक्षि - विरालादयश्च -  
 पोतजाः ।

जीव जरायुज कहलाते हैं । मनुष्य, गौ, भेस, बकरी, मेघ, घोडा, गधा, ऊट, मृग, चमर  
 शूकर, गेह, सिंह, वाघ, रीठ, द्वीपि, कुत्ता, सियाग विलाव आदि जरायुज हैं । सर्प,  
 गोहेरा, कृकलास, छिपकली, मच्छ, कलुवा, नक्र, शिशुमार आदि, तथा पक्षियों में लोमपक्षी,  
 हंस, चाप, शुक, गृध्र, वाज, कवृतर, कौवा, मोर, मण्ड ( एक जातका पक्षी ), वगुला आदि  
 अण्डज है । जो जरायुज की मौति चमडे से लिपटे हुए उत्पन्न न हों, वे पोतज कहलाते हैं,  
 जैसे—सेही, हाथी, श्वाविल्लापक, शशक, शारिका नकुल, मृषिक आदि । पक्षियों में चर्मपक्षी,  
 जलूका ( जौक ), वल्गुली, भारण्डपक्षी विराल आदि पोतज हैं ।

घेटा, घोडा, जघेडा, जीट, भृगला, चमर ( डिमालयमा यती अेक गाय विशेष )  
 लूड, रेश, मिह, वाघ, रीछ, छीपला, कुतरा, शियाण, णिलाडा, वगेरे जरायुज  
 छे, सर्प घोयरा, कषुसला, डेढगरेडी, मच्छ, कायणा, नक ( भगर ) शिशुमार ( अेक  
 प्रकारनु जलचर प्राणी ) आदि तथा पक्षिओमा लोमपक्षी, हंस, चाप ( अेक  
 जातनु लीली पापोवाणु काभरना नेवु पणी ) शुक - ( पोपट ), गीध, आन, कपूतर,  
 कागडे, मोर, मडू ( अेक पक्षी ) अगला वगेरे अडन छे ने जरायुज प्रभाषे  
 आमडीथी विटाओला उत्पन्न न थाय ते पोतज ढडेवाय छे नेभडे-गेही - ( साहुडी )  
 हाथी, श्वाविल्लापक, शशक, शारिका, नकुल-मोणीओ, मूषिक-उदर वगेरे पक्षीओमा  
 चर्मपक्ष - ( रेवाडा वगरना आमडानी पापोवाणा ) जलूका ( जणो ) वदुली  
 ( वडवाण ) बारड-पक्षी, विराल आदि पोतज छे ।

उपपातमन्म—

उपपातक्षेत्रमाप्तिमात्रनिमित्तस्थानस्थितवैक्रियपुद्गलानां प्रथम स्वशरीररूपेण परिणतिकरणम् उपपातमन्म । यथा - देवानां नारकाणां च । तत्र देवसमुद्गावो यथा-प्रच्छदपद्मस्योपरिष्ठाद् देवदृष्यस्यापस्ताद् उभयोरन्तरास्वर्तमानपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् देव उत्पद्यते । नारकोत्पत्तिर्यथा-नारकस्थितातिसंकुटमुस-कुम्भीषु स्थितान् वैक्रियशरीरपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् नारक उत्पद्यते ।

तथा—“ यद् कः-चतुर्गणेषु माग्जन्मनि नारको वा तिर्यग् वा नरो

उपपातमन्म—

उपपातक्षेत्र में प्राप्तिमात्र निमित्त जिस में है ऐसे उत्पत्तिस्थान में स्थित वैक्रिय पुद्गलों का पकड़े-गहक अपने शरीररूप में परिणत करना उपपात-कर्म कहा जाता है, देव और नारको को यह कर्म होता है। देव की उत्पत्ति इस प्रकार होती है-प्रच्छद पटके ऊपर और देवदृष्य ब्रह्मके नीचे अर्थात् दोनों के बीचमें वर्तमान पुद्गलों को वैक्रियशरीररूप ग्रहण करता हुआ देव उत्पन्न होता है। नारको की उत्पत्ति इस प्रकार होती है-नारकवर्ती अत्यन्त संकुट ( सफेद ) मुसवाली कुम्भिया में स्थित वैक्रिय शरीरके पुद्गल को वैक्रियशरीर के रूप में ग्रहण करता हुआ नारको भी उत्पन्न होता है।

तथा—“ मै कौत धा ! चार गतिया में त पूर्वजन्म में मैं नारक वा तिर्यग् वा

(३) उपपातमन्म—

उपपात क्षेत्रमा प्राप्तिमात्र जेभा निमित्त छ जेभा उत्पत्तिस्थानमा स्थित वैक्रिय पुद्गलवोने पकड़े-पकड़े पीतान्ता शरीररूपमा परिणत कस्तु ते उपपातमन्म कहेवाय छ देव जने नारकीवोने आ ज म बोध छ

देवनी उत्पत्ति आ प्रभाजे भाय छे—प्रच्छदपट-उत्तरीय वज्रना उपर जने देवदृष्य वज्रनी नीचे, जेटले के जनेनी वज्रभा वर्तमान पुद्गलवोने वैक्रियशरीररूप रूपमा गहक करवा यहा देव उत्पन्न भाय छे नारकीवोनी उत्पत्ति आ प्रभाजे छे छे—नारकवर्ती अत्यन्त संकुट मुसवाली कुम्भियोमा स्थित वैक्रिय शरीररूप पुद्गलवोने वैक्रिय शरीररूप रूपमा गहक करवा यहा नारकी एव उत्पन्न भाय छे

तथा— तु कौन दोतो ? चार भतिज्येभाकी पूर्वजन्ममा तु नारकी दते, तिर्यग्

वा देवो वा आसम् ?” इति पूर्वजन्मस्मृतिरूपं ज्ञानं, तथा—“इतः=अस्माल्लोकात्  
च्युतः=वियुक्तः प्रेत्य=जन्मान्तरे इह चतुर्गतिरूपे संसारे को भविष्यामि ? चतु  
र्गतिषु कीदृशीं गतिं प्राप्स्यामि” इत्यागामिजन्मविषयकं निश्चयात्मकं ज्ञानं  
च न भवतीत्यर्थः । भावदिशाविषयकमपि ज्ञानं नास्ति कियताचित् संज्ञिनाम्,  
असंज्ञिनां तु जीवानां नास्त्येव दिशाज्ञानमिति का दार्वा तेषामिति भावः  
॥ सू. ३ ॥

संसारिणां स्वगत्यागतिज्ञानं न भवतीत्युक्तम्, मंप्रति तज्ज्ञानं यथा  
भवति तत् प्रदर्शयितुमाह—‘से जं पुण’ इत्यादि ।

मूलम् ।

से जं पुण जाणेज्जा, सहसम्मइयाए, परवागरणेणं अण्णेसिं अंतिए वा  
मनुष्य था या देव था ?” इस प्रकार की पूर्व जन्म की स्मृति, और “इस भव से च्युत होकर  
अगले जन्म में चार गतियों में से कौन गति पाऊँगा ?” इस प्रकार का आगामी जन्म  
सम्बन्धी निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता । कितने ही सज्जियों को भी भावदिशा-विषयक ज्ञान  
नहीं होता । असंज्ञी जीवों को तो दिशा का ज्ञान होता ही नहीं ॥ सू० ३ ॥

संसारी जीवों को अपनी गति और आगति का ज्ञान नहीं होता, यह बतलाया  
जाचुका, अब यह कथन किया जाता है कि—वह ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ?—

—‘से जं पुण’ इत्यादि ।

मूलार्थ—सहसम्मति से (परोपदेश के बिना ही सहज ज्ञानसे) पर  
की वागरणा (स्फटीकरण) से, दूसरों के समीप से छुनकर जान कि मैं पूर्व दिशा  
हुतो, मनुष्य हुतो अथवा देव हुतो ?” आ प्रभाणु आगला जन्मनी स्मृति अने  
“आ लवधी नीकणीने आगला हुवेना जन्ममा चार गतिमाथी हु कुठ गतिमा  
ज्जश अथवा हु कुठ गति पाभीश ?” आ प्रभाणु आगामी—हुवे पछी थवावाणा  
जन्म सपधी निश्चयात्मक ज्ञान थतु नथी, डेटलाक सत्तीओने (सत्तीओवेने)  
पणु भावदिशा-विषयतु ज्ञान थतु नथी असंज्ञी ओवेने दिशाओ सपधीतु ज्ञान  
थतु न नथी ॥३॥

संसारी ओवेने पोटानी गति अने आगति विषेतु ज्ञान नथी थतु, ते  
पतावी गया छीओ हुवे ते कडेवामा आवे छे के—ते ज्ञान केवी गीते थई शके छे ?—  
‘से जं पुण’ इत्यादि

मूलार्थ—सहसम्मतिथी, (गीतना उपदेश बिना पणु सहज ज्ञानथी), गीतनी  
वागरणाथी (स्फटीकरणथी), गीतनी पासेथी, सावणीने लणु के हु

सोभा, संमहा-पुरस्थिमामो वा विसामा आगमो अहमसि, जाय अम्पपरीओ  
दिसामो अणुदिसामो वा आगमो अहमसि, एवमेगेसि गायं मवह-अत्ति  
मे माया ओषवाएए, जो इमाओ दिसामो अणुदिसामो वा संखर, सम्भामो  
दिसामो सम्भामो अणुदिसामो जो आगमो अणुसखर सोऽह ॥ सू० ४ ॥

( छाया )

अथ यत् पुनर्मानियात्-सहसंमस्या, परध्याकरणेन, अन्येषामन्तिके  
वा भुत्वा, तद्यथा-पूर्वस्या दिक्षाया आगतोऽहमस्मि यावत् अन्यतरस्या दिक्षाया  
अनुदिक्षाया वा आगतोऽहमस्मि । एवमेकेनां ज्ञातं भवति-अस्ति मे आत्मा  
औपपातिकः, योऽस्या दिक्षाया अनुदिक्षाया वा अनुसंवरति, सर्वस्या दिक्षायाः  
सर्वस्या अनुदिक्षाया य आगतः अनुसंवरति सोऽहम् ॥ सू० ४ ॥

‘से ज पुम्’ इति । ‘स’ इत्यव्ययं मागधभाषायामयद्वन्द्वार्थकम् ।  
‘अव’ इति, अनेन ‘नो सभा मवह’ इति द्रव्यदिग्ज्ञानामारं ‘नो गायं  
मवह’ इति भावदिग्ज्ञानामारं च प्रदर्श्य तन्ज्ञानप्रारम्भ इति द्योत्यते ।

से छाया हूँ ( यावत् ) अन्यतर दिशा से भवना विदिशा से मैं आया हूँ । इस प्रकार  
क्रियनेक बीजा को ज्ञान होता है कि-मेरा आत्मा औपपातिक (अन्य से बना) है; जो इस  
दिशा से भवना अनुदिशा से संखर करता है, सभी विषयों से सभी अनुदिक्षाओं से आया  
हुआ जो आत्मा भ्रमण करता है, वह मैं हूँ । ( सू ४ )

टीकार्थ-भागवी माया में ‘से’ अव्यय ‘अव’ शब्द के अर्थ में है । यहाँ  
‘अव’ शब्द से यह प्रकट किया गया है कि-पढ़ने के सूत्रों में ‘नो सभा मवह’ इत्यादि  
कहकर द्रव्यदिशा के ज्ञानका निषेध करके, और ‘नो गायं मवह’ इत्यादि कह कर  
भावदिशासम्बन्धी ज्ञान का निषेध करके जब उस ज्ञान की उत्पत्ति का प्रकार  
प्रदर्शित करते हैं-

पूर्व दिशाधी आ ये ४ यावत् पीछ दिशाओधी अथवा विदिशाओधी हु आन्धी  
४ आ प्रभावे डेटवाक लोचने ज्ञान काय से है-आशा आत्मा औपपातिक (अन्य  
से बनाया) है, जो आ दिशाधी अथवा अनुदिशाधी संखर करे से सर्व दिशाओधी  
सर्व अनुदिशाओधी, आवेता जो आत्मा भ्रमण करे से ते हु ४ ( सू ४ )

टीकाथ-भाजधी भाषामा ‘से’ अव्यय अथ, सन्दन्य अर्थों में से अर्थ  
‘अथ शब्दही जो प्रकट हूँ’ से है-प्रथमना सूत्रों में ‘नो सभा मवह’ अथदि कहने  
द्रव्यदिशाया ज्ञानने निषेध करीने अने ‘नो गायं मवह-अथदि कहने भावदिशाया ज्ञान  
ज्ञानने निषेध करीने कहने से भाजधी भाषामा ‘से’ अव्यय अथ, सन्दन्य अर्थों में से अर्थ

## टीका—

यत्=यदि पुनर्जानीयात् स्वस्वगत्यागत्यादिकं कश्चित्, तत् त्रिविधेन कारणेन, तदाह—सहसंमत्येत्यादि । आत्मना सह वर्तते या सम्यग्मतिः, सा सहसंमतिः, परोदेशमन्तरेण समुत्पन्ना जातिस्मरणावधिमनः पर्ययकेवलज्ञानरूपा, तथा सहसंमत्या । तत्र जातिस्मरणवान्नियमतः संख्यातभवान् जानाति, अवधिज्ञानी संख्यातभवानसंख्यातभवान् वेत्ति, तथैव मनःपर्ययज्ञानी च । केवलज्ञानी तु नियमतोऽनन्तान् भवान् त्रिजानाति । जातिस्मरणज्ञानवानवान्तरे यद्यसंज्ञिभवं न कुर्यात्, तर्हि स्वकीयसंज्ञिपञ्चेन्द्रियभवस्योत्कृष्टतो नवशवभवान् विज्ञातुं शक्नुयात् । जातिस्मरणेन स्वकीयपूर्वभवं विज्ञातुर्दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

अगर कोई अपनी—अपनी गति और आगति को जाने तो तीन प्रकार के कारण से जान सकता है, उसी को कहते हैं—सहसंमति आदि से, आत्मा के साथ रहने वाली सम्यग्मति कहलाती है, अर्थात् परोपदेश के बिना ही उत्पन्न होनेवाली जातिस्मरण, अवधि, मन पर्यय और केवलज्ञान रूप मति सहसंमति कहलाती है, उनमें जाति स्मरणवाला नियम से संख्यात भवोंको जानता है, अवधिज्ञानी संख्यात या असंख्यात भवों को जानता है, इसी प्रकार मन पर्ययज्ञानी भी जानता है, किन्तु केवलज्ञानी नियम से अनन्त भवों को जानता है । जातिस्मरण—ज्ञानवाला बीच में यदि असंज्ञी का भव न करे तो अपने सजी-पञ्चेन्द्रिय के उत्कृष्ट नौ सौ भवों को जान सकता है । जातिस्मरण से अपना पूर्वभव जानने वाले का दृष्टान्त प्रदर्शित किया जाता है—

अथवा ठोस पोटपोतानी गति अने आगतिने ज्ञेय तो त्रय प्रकारना कारण्थी ज्ञेय शक्ये छे, तेने कहे छे—सहसंमति आदिथी, आत्मानी साथे रहैवा वाणी सम्यग् मति—पुद्धि अर्थात् परोपदेश विनाज उत्पन्न थवा वाणी जतिस्मरण्थ, अवधि, मनःपर्यय, अने केवल-ज्ञानरूप मति ते सहसंमति कहेवाय छे जति स्मरण्थ वाणी नियमथी संख्यात भवोने ज्ञेय छे अवधिज्ञानी संख्यात अथवा असंख्यात भवोने ज्ञेय छे अे प्रमाज्ञे मनःपर्ययज्ञानी पञ्च ज्ञेय छे परतु केवलज्ञानी नियमथी अनन्त भवोने ज्ञेय छे जतिस्मरण्थ ज्ञानवाणी एव वथभा जे असंज्ञीने भव न करे तो पोताना सजी पञ्चेन्द्रियना उत्कृष्ट नवसो (६००) भवोने ज्ञेय शक्ये छे जतिस्मरण्थी पोताना पूर्वभवने ज्ञेयनारातु द्रष्टात अतावे छे—



सुग्रीवनगरे बलमद्रनामा नृप भासीत् । तस्याग्रमहिषी युगानाम्नी बभूव ।  
बलमद्रवृषस्य तस्या युवा जातः । स च मातापितृभ्यां बलभी-नाम लम्बाऽपि  
लोके युगापुत्र इति नाम्ना प्रसिद्धो बभूव । अथ मातापित्रोः परमप्रियः  
कृतयौमरान्यामिषेको मुदितचिषो युगापुत्र प्रासादे दोगुन्दुगदेववत् प्रमदाभिः  
सह क्रीडतिस्म ।

स चैवं बिलसन् मभिरस्तनाजितकृष्टिमवले सर्वोपगिविदिनि प्रासाददेहे  
स्सुपविष्ट सङ्कृतस कृतुष्क-भिक-वत्सर-मार्गान् बिलोकमानः पयि श्रीमाह्वय  
युगसागरं तपोनिपमसंपमपरं संपत्तमनिमिषव्याऽप्राधीत् । तमन्वोक्ष्य सुमाप्य-

सुग्रीव नगर में बलमद्र नामक राजा था । उसकी पटरानी का नाम युगा था इस  
युगपटनी से बलमद्र को पुत्र की प्राप्ति हुई । माता-पिताने उसका नाम बलभी रक्खा, किन्तु  
वह लोक में युगापुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ वह माता-पिता का परम प्रिय था । उसका  
युवराज्य पद पर अभिषेक किया गया । वह प्रसन्न-चित्त होकर दोगुन्दुग ( विष्णुसी एक  
देवकी वासि ) देव के समान अपने महलमें क्रीडा करता था ।

एक बार युगापुत्र मणियां और रत्नां से सुशोभित कर्षवाके महल के सब  
से ऊपर के मंजिर पर बैठा था । वह कौतूहल के साथ नगर के चौपट त्रिक तथा वत्सर  
मार्गों का अवलोकन कर रहा था । तब उसे मार्ग में शीक से विभूषित गुजों के सागर  
तप नियम और संबन्ध धारण करने बाध एक मुनि दृष्टिगोचर हुए । उसने टकटकी लगाकर

सुग्रीव नगरभां बलमद्र नामनेो राजा हते। तेनी पटरानीनु नाम-युवा  
हते ते युवा राणी यही बलमद्रने पुत्रनी प्राप्ति यध माता-पिताजे तेनु नाम  
बलभी राभ्यु परतु ते लोकने विषे युगापुत्र नामबा प्रसिद्ध भये। ते माता-पिताने  
परमप्रिय हते, तेने युवराज पद पर अभिषेक कथी। पथी ते प्रसन्नचित्त यधने  
दोगुन्दुग ( विष्णुसी जेक देवनी वासि ) देव समान पोतना भवेतभां क्रीडा  
करते हते।

जेक बार युगापुत्र मणिको अने रत्नोधी-सुशोभित इर्थ-सुहर तजिवावाये  
भवेतने सौधी उपरनेो पद हते, तेना उपर धेडा हते। ते कुतूहलपूर्वक नगरन्य  
चौपट त्रिक तथा वत्सर मार्गोर्नु अवलोकन करी रह्यो हते। ते वजते जे मार्गभा  
शीकधी विभूषित, गुजेना सागर तप, नियम, संबन्ध धारण करवावाया जेक मुनि दृष्टिगोचर

वसायेन मृगापुत्रो मूर्छामवाप्य जातिस्मरणं प्राप । 'पूर्वजन्मनि प्रव्रज्यां गृहीत्वा पञ्चमहाव्रतपालनेन स्वर्गसुख लब्ध्वाऽहमिह राजकुले संजातः' इति । अनेन जातिस्मरणेन पुनरात्मकल्याणाय प्रयतते स्म ।

अवधिज्ञानिना मल्लीनाथेन भगवता ससारावस्थार्या पूर्वजन्मवृत्तान्तोऽवलोकितः । मनःपर्यय-केवलज्ञानयोस्तु दृष्टान्तौ सुप्रतीतौ ।

तथा—परव्याकरणेन—परस्तीर्थङ्करस्तस्य व्याकरण यथावस्थितार्थस्य—

उनकी ओर देखा । उन्हें देख कर मृगापुत्र को मूर्छा आ गई और जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया । उससे माझम हुआ कि—'पूर्व जन्म में दीक्षा धारण करके, पाचमहाव्रतों का पालन करके, पश्चात् स्वर्ग के सुख भोगकर मैं इस राजकुल म उ पन हुआ हूँ ।' इस जातिस्मरण से वह फिर आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो गया ।

अवधिज्ञानी भगवान् मल्लीनाथने ससार—अवस्थाम अपना पूर्व जन्म का वृत्तान्त देख लिया था । मन पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान के दृष्टान्त तो प्रसिद्ध ही हैं ।

तथा—परके व्याकरण से भी गति—आगति का ज्ञान होता है । पर का अर्थ है—तीर्थंकर । उनका व्याकरण अर्थात् पदार्थ का स्वरूप यथार्थरूप से जानकर समझकर कहना, अथवा परव्याकरण का अर्थ तीर्थंकर का प्रवचनरूप आगम समझना चाहिए ।

यथा, ते वपते मृगापुत्र एक नगरथी तेमनी सामे ज्ञेयु, अने तेने ज्ञेधने मृगापुत्रने मूर्छा आवी गध अने जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न थयु, तेनाथी मालूम पड्यु के—'हू पूर्व जन्ममा दीक्षा धारण करीने, पाच महाव्रतानु पालन करी, पछी स्वर्गना सुभो भोगवीने आ राजकुलमा उत्पन्न थयो छु' आ प्रमाळु जातिस्मरण थवाधी ते करीने आत्मकल्याणमा प्रवृत्त थध गयो ।

अवधिज्ञानी मल्लीनाथ भगवाने ससार—अवस्थामा पोताना पूर्व जन्मने वृत्तान्त ज्ञेध लीधो छतो मनःपर्ययज्ञान अने केवलज्ञानना द्रष्टात तो प्रसिद्ध न छे

तथा—परना व्याकरणथी पणु गति—आगतितु ज्ञान थाय छे परने अर्थ छे—तीर्थंकर, तेनु व्याकरण—अर्थात् पदार्थनु स्वरूप यथार्थरूपथी ज्ञाथी—समझने कडेडं, अथवा परव्याकरणने अर्थ—तीर्थंकरना प्रवचनरूप आगम समजु ज्ञेध अ

साक्षात्कारेण सम्बाध्य फयनम् , तीर्थहरप्रवचनरूप आगमो वा, तेन ।  
परम्पराकरणोदाहरणं यथा—साक्षात् भगवतो देवनाया मेघकुमारादयो जातिस्मरण  
प्राप्तवन्तः ।

तथा—अन्येषामन्तिके वा भुत्वेति, अन्येषां समीपे, भुत्वा स्वगत्या-  
गत्यादिशेषकृतद्वचनप्रवचनेन । तृतीयोदाहरणं यथा—यद् मित्रयूपाच्छ्रवस्थावस्थस्य  
मञ्जिनावमगततः समीपे तद्वचनेन जातिस्मरणमाप्तुः ।

अथात्मनि विषये यादृशं गत्यागत्यादिज्ञानं भवति, तदेव दर्शयति-  
तद्यथा—इत्यादि 'पूर्वस्या दिशाया आगतोऽहमस्मि यावद् अन्यतरस्या दिशाया  
अनुदिशाया वा आगतोऽहमस्मी'त्यनेन स्वगमनावधि-द्रव्यदिशाज्ञानं, तथा-  
परम्पराकरणका उदाहरणं जैसे—साक्षात् भगवान् श्री देशना से मेघकुमार आदिने जातिस्मरण  
प्राप्त किया था ।

तथा—दूसरा से सुनकर भी गति भागति का ज्ञान होता है । तात्पर्य यह है  
कि—मयनी गति एवं भागति समज्ञान वाला दूसरे के बचन से भी जातिस्मरण हो जाता  
है । जैसे—उह मित्र-राबामोम छत्रस्थ-अवस्था वाले भगवान् मञ्जिनाव के बचन से  
जातिस्मरण प्राप्त किया था ।

अथमा के विषय में गति-भागति का ज्ञान किस प्रकार होता है,  
उसे द्रिस्तमात है—मै पूर्व दिशा से आया हूँ ( यावत् ) अन्यतर दिग्घ से भववा  
अनुदिशा से मै आया हूँ इस कथन से अपने गमन तक श्री द्रव्य-दिशा का ज्ञान  
सूचित किया है । तथा मेघ भगमा औपचारिक है यहाँ स ककर 'अमग करता है  
परम्पराकरणका उदाहरण, जैसे—साक्षात् भगवाननी देशनाधी मेघकुमार आदिने  
जातिस्मरण प्राप्त हुआ है ।

तथा—वीथ पासेधी सांभजाने पक्ष अति-आगतितु ज्ञान याव उ डे -  
पीतानी अति अने आगति अमभववावाया वीथना बचनेधी पक्ष अतिस्मरण ज्ञान  
दर्शनाव है जैसे—उ मित्र-राबामोमे छत्रस्थ-अवस्था वाला भगवान् मञ्जिनावना  
पचनेधी अति स्मरण प्राप्त हुआ है ।

अथमाया विषयमा अति-आगतितु ज्ञान ने प्रमाप्ते होय उ तेन देजाडे  
उ- हु पूव दिशाधी आन्धो १३ ( यावत् ) अन्यतर दिशाधी अथवा अनुदिशाधी हु  
आन्धो १३ आ कथनधी पीताना अमन सुधीनी द्रव्यदिशानु ज्ञान सूचित हुआ है,

‘अस्ति मे आत्मा औपपातिकः’ इत्यारभ्य ‘अनुसंचरित सोऽहम्’ इत्यन्तेन द्रव्य-भावोभयदिशाज्ञानं भगवता प्रदर्शितम् ।

सोऽहमस्मी’त्येनेनेदमावेदितं भवति । त्रिविधान्यतमेन कारणेन ज्ञानं प्राप्तो जीवः स्वात्मस्वरूपमेवं विज्ञानाति-यद्यमात्मा सकलकर्मक्षयावधि चतुर्गति-भ्रमणकर्ता पुनरपि कस्याश्चिदेकस्यां दिशायामनुदिशायां वा गमिष्यति नास्त्यस्य गतिविरामस्तावदिति । एवमयमात्मा सर्वस्या दिशाया अनुदिशाया आगतःपुनरपि स्वकर्मवशातः सन् सर्वस्यां दिशायामनुदिशायां वा परिभ्रमिष्यति । न कदाचिदस्य विश्रान्तिच्छेशोऽपि तादृशोऽहमस्मीति ॥ सू० ४ ॥

वह मैं हूँ’ यहाँ तक द्रव्यदिशा और भावदिशा, दोनों का ज्ञान भगवान् ने प्रदर्शित किया है ।

‘वही मैं हूँ’ इस कथन से यह प्रकट होता है कि—तीन में से किसी एक कारण के द्वारा ज्ञान को प्राप्त जीव इस रूप में अपना आत्मस्वरूप जानता है, कि—यह आत्मा जब तक समस्त कर्मों का क्षय नहीं कर देता तब तक चारों गतियों में भ्रमण करता है और फिर किसी एक दिशा में या अनुदिशामें गमन करेगा परन्तु कर्मों का क्षय जब तक न हो तब तक उसकी गति का अन्त नहीं आता है । इस प्रकार यह आत्मा सब दिशाओं से और अनुदिशाओं से आया है और कर्मों के अर्पण हो कर फिर सब दिशाओं अथवा विदिशाओं में परिभ्रमण करेगा, इसे लेशमात्र भी कभी विश्राम नहीं मिल सकता, ऐसा मैं हूँ ॥ सू० ४ ॥

तथा—‘भारो आत्मा औपपातिको छे’ त्याथी लधने ‘भ्रमण करे छे’ ते हुं छु, त्या सुधी द्रव्यदिशा अने भावदिशा, अने अन्तेनु ज्ञान भगवाने प्रदर्शित कर्युं छे “ते हुं छु” या कथनथी अमे प्रकट थाय छे के अने त्रुष्ठाथी कोछि कारण द्वारा ज्ञानने पावेले। एव या रूपमा पोताना आत्मस्वरूपने लखे छे के या आत्मा न्या सुधी समस्त कर्मोने क्षय करतो नथी, त्या सुधी आरय गतियोमा भ्रमण करतो रहे छे, अने इरी कोछि दिशामा अथवा तो अनुदिशामा गमन करशे परतु न्या सुधी कर्मोने क्षय नछि होय त्या सुधी तेनी गतिने अत आवतो नथी अने प्रमाणे या आत्मा सर्व दिशाओथी अने अनुदिशाओथी आये छे अने कर्मोने आधीन थधने इरीथी सर्व दिशाओ अथवा विदिशाओमा परिभ्रमण करशे. तेने लेशमात्र पण विश्राम भली शकतो नथी अवेो हुं छु, (सू० ४)

आत्मवादिप्रकरणम्—

यस्तु द्रव्यद्विष्टु भावद्विष्टु चात्मनो गत्यागती अज्ञास्य स्वमात्मानमेव विजानासि—‘अयमात्मा असिद्धगतिमाप्तिबदुर्गतियु पूर्णमानो अन्यान्तरसंक्रान्त-  
त्रिकाश्वतीं शरीराद् मिथो नित्यपरिणासी ज्ञानसम्यक्त्वचारिभ्रमुत्तवीर्यादियुषवा-  
निति, स एवात्मवादीत्याह—‘से आयावादी’ इत्यादि ।

मूलम्—

से आयावादी, लोकावादी, कर्मावादी, किरियावादी ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स आत्मवादी, लोकावादी कर्मवादी, क्रियावादी ॥ सू० ५ ॥

आत्मवादिप्रकरणम्—

जो जीव द्रव्य द्विष्टाभा में और भावद्विष्टाभा में आत्मा का गमन-भागन जान कर अपनी आत्मा के विषय में इस प्रकार जानता है कि—बह आत्मा सिद्धगति की प्राप्तिरहित चार गतिभों में भ्रमण करता हुआ एक जन्म से दूसरे जन्म को प्रवृत्त करता है, त्रिकाश्वतीं है शरीर से मिन है, नित्यपरिणामी है और सम्यक्त्व, ज्ञान चारित्र, सुख वीर्य आदि सुखों बाधा है वही आत्मवादी है । अब इसी विषय का निरूपण किया जाता है —‘से आयावादी’ इत्यादि ।

मूलार्थ—‘से आयावादी’ इति । वही आत्मवादी है, लोकावादी है, कर्मवादी है लोकावादी है ( सू. ५ )

आत्मवादीप्रकरणम्

जे एव द्रव्यद्विष्टाभ्यां जने भावद्विष्टाभ्यां आत्मानु ज्यु—जावतु जवनि पिताना आत्माना विषयभां जे प्रमावे लोके छे तेः—आ आत्मा सिद्धगतिनी प्राप्ति विना जीव चार गतिभ्यां भ्रमणु करतो करतो जेक जन्मशी जनिने जे म प्रकृत्य करे छे त्रिकाश्वतीं छे शरीरशी मिन छे नित्यपरिणामी छे जने सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, सुख वीर्य आदि सुखों बाधा छे ते आत्मवादी छे । जने आ विषयतु निरूपण करवाभां जने छे—‘से आयावादी’ इत्यादि ।

मूलार्थ—‘से आयावादी’ इति । ते आत्मवादी छे, लोकावादी छे, कर्मवादी छे जने क्रियावादी छे । ( सू. ५ )

## टीका—

‘से आयात्रादी’ इति । सः=इत्थमात्मानं ज्ञाता, आत्मवादी=आत्मानं वदितुं शीलमस्येति विग्रहे कर्तरि णिनि, आत्मस्वरूपकथनस्वभाववाद् । अयं भावः—आत्मस्वरूप वक्तारो जगति बहवः सन्ति, परन्तु स एवात्मवादी वेदितव्यो, यः पूर्वोक्तरीतिमनुसृत्यात्मानं विजानातीति ।

आत्मस्वरूपपरिचयं विना बन्धस्वरूपं ज्ञातुमशक्यम् । तद् विना न रोचते कस्मैचिदात्मोत्कर्षकरणम्, तद्बुधिमन्तरेण च कस्यचिन्मोक्षोपाय-भूतनिश्चयव्यवहारलक्षणज्ञानक्रिययोः प्रवृत्तिर्न स्यात्, तस्मादत्रात्मज्ञानप्रसङ्गेन किञ्चिदुच्यते—

टीकार्थ—जो इस ( पूर्वोक्त ) प्रकार से आत्मा को जानता है वही आत्मवादी है अर्थात् आत्मा के स्वरूप को कहने वाला है । तात्पर्य यह है कि—आत्मा का स्वरूप कहने वाले ससार में बहुत हैं किन्तु वास्तव में सच्चा आत्मवादी वही है जो पूर्वोक्त प्रकार से आत्मा का ज्ञाता है ।

आत्मा का स्वरूप समझे विना बन्ध का स्वरूप अशक्य है । उसके अभाव में किसीको आत्मा का उत्कर्ष करना रुचिकर नहीं होता, और इस रुचि के अभाव में किसीकी निश्चय-व्यवहाररूप ज्ञान और क्रिया में—जो मोक्ष के कारण हैं—प्रवृत्ति नहीं होती, अत आत्मज्ञान का प्रसङ्ग होने से यहाँ कुछ विवेचन किया जाता है—

टीकार्थ—जो आ ( पूर्वोक्त ) प्रकारથી आत्माने लझे છે, તે આત્મવાદી છે, અર્थात्—આત્માના સ્વરૂપને કહેવા વાળા છે, તાત્પર્ય એ છે કે—આત્માનું સ્વરૂપ કહેવા વાળા સઆરમા ઘણા છે પરંતુ વાસ્તવમા સાચા આત્મવાદી તે છે કે જે પૂર્વોક્ત પ્રકારથી આત્માના જ્ઞાતા છે, અર્थाત્ પૂર્વોક્ત પ્રકારે આત્માને લજ્ઞે છે

આત્માના સ્વરૂપને સમજ્યા વિના બધું સ્વરૂપ સમજવું અશક્ય છે, તેના અભાવમા કોઈને આત્મા ઉત્કર્ષ કરવું રૂચિકર થતું નથી અને તે રૂચિના અભાવમા કોઈને નિશ્ચય-વ્યવહારરૂપ જ્ઞાન અને ક્રિયામા જે મોક્ષનું કારણ છે તેમાં પ્રવૃત્તિ થતી નથી. તે કારણથી આત્મજ્ઞાનનો પ્રસંગ હોવાથી અહિં થોડું વિવેચન કરવામા આવે છે—

आत्मशब्दार्थः—

मदति-नित्यं जानातीति आत्मा । 'अत सातत्पगमने' इत्यत्राह-  
 पातेर्गत्यर्थकत्वाद्, गत्यर्थानां च ज्ञानार्थकत्वात् स्वीकारादपमर्षो उच्यते ।  
 सिद्धसंसारिमेव न विविक्तस्यापि जीवस्य सर्वदाऽप्यवोपसद्भावात् आत्मनः कस्यां  
 चिदपस्यायामुपयोगविद्योगो न जायते । कदाचिदप्यवोपामात्रे च जीवत्वमेव  
 व्याह्रियेत । अत एव- 'जीवो उन्नमोगमनस्तनो' इत्युक्तम् (उचरा २८ अ १० श्लो )  
 यद्वा-मदति-सततं गच्छति, निरन्तरं प्राप्नोति स्वकीयान् पर्यायानिति-आत्मा ।

आत्मशब्द का अर्थ—

'मदति' इति-आत्मा अर्थात् जो नित्य जानता रहता है वह आत्मा कहलता  
 है । 'अत' शब्द सतत गमन करने के अर्थ में है और गमनार्थक सभी शब्द ज्ञानार्थक होते  
 हैं, अत उपर्युक्त अर्थ किमा गया है । क्या सिद्ध और क्या संसारी, दोनों ही प्रकार के  
 जीवों में सर्वत्र ज्ञान विद्यमान रहता है और किसी भी अवस्था में उपयोगका वियोग नहीं  
 होता । किसी समय ज्ञान का अभाव हो जाय तो जीव में जीवत्व ही नहीं रहे । इसी कारण  
 उत्तराख्यवन सूत्र ( अ. २८ श्लो १ ) में कहा है — "जीवा उन्नमोगमनस्तनो"  
 जीव उपयोग कल्प वास्त है ।

अथवा—मदति अर्थात् जो अपन पर्यायों को सतत प्राप्त होता रहता है  
 वह आत्मा है ।

आत्मा शब्दने अर्थ—

मदति इति आत्मा अर्थात् जो सतत रहते है ते आत्मा कहेवाक छे ।  
 'अत' शब्द सतत गमन कस्याता अर्थमा छे । जने अनन्तार्थक सव शब्द ज्ञानार्थक  
 पणु छेव छे ( जमन करतु जेवा अर्थवाणा तमाम शब्द ज्ञान अर्थवाणा पणु छेव  
 छे ) जे उन्नमोगी उपर कहेते अर्थ कर्षे छे तो शु सिद्ध जने संसारी जने  
 प्रकारना लोकोमा हमेशा ज्ञान विद्यमान रहे छे जने कौर्षपण अवस्थामा उपयोगने  
 वियोग कतो नही कौर्ष समय ज्ञानने अभाव अर्थ जस्य तो लोकोमा लोपव न न  
 रहे । जे उन्नमोगी उत्तराख्यवन सूत्र ( अ. २८ श्लो १० ) मां कहु छे है—  
 "जीवो उन्नमोगमनस्तनो" "एव उपयोग लक्षणवावे छे ।"

अथवा—मदति अर्थात् जो पताना पर्यायने सतत प्राप्त कतो रहे छे, ते  
 आत्मा छे ।

नन्वेवं गगनादीनामपि सततं स्वपर्यायप्राप्त्या तत्रात्मशब्दप्रयोगो दुर्वारः, कदापि पर्यायाभावे त्वपरिणामित्वेन तेषां वस्तुत्वमेव न स्यादिति चेन्नैवम्, सततस्वपर्यायप्राप्तिकर्तृत्वमिति व्युत्पत्तिनिमित्तमात्रमात्मशब्दस्य, न तु तत् प्रवृत्तिनिमित्तम् । प्रवृत्तिनिमित्तं चास्योपयोग एवेति गगनादिषु नात्मशब्दः प्रवर्तते ।

यद्वा—सततं गच्छतीत्ययमर्थोऽपि न विरुध्यते संसारदशायां कर्म-  
वशेन नानागतिषु सततगमनात्, मुक्तावस्थायामपि भूतकालिकसततगमनसद्भावात् ।

शङ्का—आकाश आदि भी अपने अपने पर्यायों को निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं तो उनके लिये भी आत्मा शब्द का प्रयोग करना अनिवार्य होगा । किसी समय उन में पर्याय का अभाव हो तो वे अपरिणामी ठहरेगे और तब उन में वस्तुत्व ही नहीं रहेगा ।

समाधान—ऐसा मत कहिए । निरन्तर अपने पर्यायों को प्राप्त करना तो आत्मा शब्द का व्युत्पत्तिनिमित्त मात्र है, वह प्रवृत्तिनिमित्त नहीं है, प्रवृत्तिनिमित्त तो उपयोग ही है, अत आकाश आदि में आत्मा शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता ।

अथवा 'निरन्तर गमन करता है' इस अर्थ का भी विरोध नहीं है, क्यों कि संसार-अवस्था में कर्म के अधीन होकर आत्मा नाना गतियों में सदैव गमन करता रहता है, मुक्त अवस्था में भी भूतकालीन सतत गमन विद्यमान है ।

शंका—आकाश आदि पक्षु पौत पौताना पर्यायाने निरन्तर प्राप्त होता रहे  
छे, तो तेने माटे पक्षु आत्मा शब्दने प्रयोग करवे अनिवार्य थसे कोष्ठ समय  
तेनाभा पर्यायाने अभाव होय तो ते अपरिणामी ठरसे त्यारे तेनाभा वस्तुत्व  
पक्षु नहिं रहे

समाधान—अथे प्रमाणे न कडे निरन्तर पौताना पर्यायाने प्राप्त करवु ते  
तो आत्म शब्दनी व्युत्पत्तिनिमित्त मात्र छे, परतु ते प्रवृत्तिनिमित्त नथी,  
प्रवृत्तिनिमित्त तो उपयोग न छे, तेथी आकाश आदिमा आत्म शब्दने प्रयोग  
थर्ध शकते नथी

अथवा—निरन्तर गमन करे छे, आ अर्थाने पक्षु विरोध नथी केभडे—संसार  
अवस्थामा कर्मना अधीन यनीने आत्मा अनेक गतिओमा उमेशा गमन करतो  
रहे छे मुक्त-अवस्थामा पक्षु भूतकालीन सतत गमन विद्यमान छे



आत्मनोऽस्तित्वसिद्धिः—

तावत् प्रत्यक्षप्रमायत एवात्मन सिद्धिरुच्यते—(१) किमयमात्मा—अस्ति नास्ति चेति संशयादिविद्वानं स्वस्वात्मनि स्वसवदनप्रत्यक्षेण सिद्धम्, स एवात्मा, संशयादिविद्वानस्यैव तदनन्यत्वेनात्मरूपत्वात् ।

(२) तथा—मात्मानमाभित्यैव सुखदुःखादयो स्वस्वशरीर एव प्रत्यक्षेण संबध्यन्ते ।

(३) यथा—कृतवानहं, करोम्यहं, करिष्याम्यहम्, इत्यादिप्रकारेण योऽयम्—अहमप्रत्ययः, एतस्मादपि प्रत्यक्ष एवायमात्मा । कथमसत्त्वात्मनि—

आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि—

सब प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण स ही आत्मा की सिद्धि कहते हैं—

(१) आत्मा है या नहीं है, इस प्रकार का संशय यदि ज्ञान अपनी अपनी अत्मा में स्वसवेदन प्रत्यक्ष से सिद्ध है। वही ज्ञान आत्मा है अर्थात् संशय यदि ज्ञान आत्मासे अभिन्न होने के कारण आत्मस्वरूप ही है।

(२) आत्मा को अभिन्न करने ही दुःख-सुख यदि अन्तर शरीर में प्रत्यक्ष से जाने जाते हैं।

(३) अथवा—मैं कर चुका, मैं करता हूँ मैं करूँगा इत्यादि रूप स जो अहमप्रत्यय होता है उससे ही आत्मा का प्रत्यक्ष होता है। आत्मा न होता तो अत्मा के विषय में अहमप्रत्यय (मैं का ज्ञान) किस प्रकार हो सकता था ? आत्मरूप विषय के

आत्माना अस्तित्वनी सिद्धि—

श्रीश्री प्रथम अत्यक्ष प्रमाणशील आत्माना सिद्धि कहे छे—(१) आत्मन छे के नहि, आ प्रमाणुं संशय यदि ज्ञान पौत पौताना आत्माना स्वसवेदन प्रत्यक्षशी सिद्ध छे ते नान आत्मा छे अर्थात् संशय यदि ज्ञान आत्माना अभिन्न होवाना कारणे आत्मस्वरूप छे ।

(२) आत्माना अभिन्नपद्यशील दुःख-सुख यदि पौत-पौताना शरीरमां अत्यक्ष अद्यनामां आवे छे ।

(३) अथवा—हुं करी चुको हुं करे छे हुं करीस, अत्यादिप्रकारेण अहमप्रत्यय बाध छे तेषी पद्य आत्मानुं प्रत्यक्षपद्यु बाध छे आत्मान न होव तो आत्माना विषयमां अहमप्रत्यय (हुं पद्यु ज्ञान) केनी रीते बर्ध शके ? आत्मरूप

अहमिति ज्ञानम् आत्मविषयकं जायते । आत्मरूपविषयाभावे विषयिणोऽनुत्थानप्रसंगात् । न च देह एवास्य ज्ञानस्य विषय इति वाच्यम् । जीवरहितेऽपि देहे तदुत्पत्तिप्रसंगात् । अस्मिन्नहम्प्रत्यय आत्मविषयके सति तु किमहस्मि नास्मीति सशयो नोपपद्यते, अहम्प्रत्ययविषयस्यात्मनः सद्भावादहमस्मीति निश्चय एव संभवति । आत्मास्तित्वसंशये तु कस्यायमहम्प्रत्ययः स्यात्?, निर्मूलत्वेन तदनुत्थानप्रसङ्गात् । यदि संशयी जीव एव नास्ति, तर्हि अस्ति नास्तीति संशयः कस्य भवतु । संशयो हि विज्ञानाख्यो गुण एव, न च गुणिनमन्तरेण गुणः सिध्यति ।

अभाव में विषयी अर्थात् ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती । शरीर ही इस ज्ञान का विषय है—अर्थात् 'अहम्' (मैं) का अर्थ आत्मा नहीं वरन् शरीर है, ऐसा कहना उचित नहीं, क्यों कि—ऐसा होता तो मृत शरीर में भी अहम्प्रत्यय होने लगता । आत्मा को विषय करनेवाले इस अहम्प्रत्यय की विद्यमानता में 'मैं हूँ या नहीं हूँ', इस प्रकार का सशय ही नहीं होता है, अहम्प्रत्यय के विषयभूत आत्मा का सद्भाव होने से 'मैं हूँ' इस प्रकार का निश्चय ही हो सकता है । आत्मा के अस्तित्व के विषय में सशय किया जाय तो प्रश्न उपस्थित होता है कि यह अहम्प्रत्यय किसे होता है । विना कारण के ही तो उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । यदि सशय करने वाला जीव ही नहीं है तो 'है या नहीं?' इस प्रकार का सशय करता कौन है? सशय एक प्रकार का ज्ञान-गुण है और गुण, गुणी के अभाव में नहीं हो सकता ।

विषयना अभावमा विषयी अर्थात् ज्ञाननी उत्पत्ति नथी थर्छ शकती शरीर न् आ ज्ञाननेो विषय छे, अर्थात् 'अहम्,' (हूँ) नेो अर्थ आत्मा नथी षट्के शरीर छे, अेभ कडेपु ते उचित नथी, केभके नेे अेभ डोय तो मृत शरीरमा अहम्प्रत्यय थर्छ शकशे आत्माने विषय करवा वाणेो आ-अहम्प्रत्ययनी विद्यमानतामा "हूँ छु के नथी" आ प्रकारनेो सशय न् थतो नथी अहम्प्रत्ययना विषयभूत आत्मानो सद्भाव डोवाथी "हूँ छु" आ प्रकारनेो निश्चय न् थर्छ शके छे आत्माना अस्तित्वना विषयमा सशय करवामा आवे तो प्रश्न उपस्थित थाय छे के आ अहम्प्रत्यय केने थाय छे? कारण विना तो तेनी उत्पत्ति थर्छ शकती नथी नेे सशय करवा वाणेो एव नथी तो "हूँ छु के नहि" अे प्रकारनेो सशय करनार केणु छे? सशय अेक प्रकारनेो ज्ञान-गुण छे, अने गुण गुणीना अभावमा थर्छ शकतो नथी

न च देहाऽत्र गुणीति बाध्यम्, देहस्य मूर्तत्वाद् नष्टत्वाच्च ज्ञानस्य चामूर्तत्वाद् बोधरूपत्वाच्च । अहं नाहं वेदिगदतो 'माता मे बन्ध्या' इत्यादिषु स्वयन्बन्ध्यावासात् ।

(४) यद्वा-आत्मा गुणी प्रत्यक्ष एव, सृष्टि-विज्ञासा-चिकीर्षा-भ्रिगमिषा-संशयाविज्ञानविशेषाणां तद्गुणानां स्वात्मनि स्वतंत्रेदनप्रत्यक्ष-मिद्वत्त्वात्, इह यस्य गुणाः प्रत्यक्षाः स प्रत्यक्षो ष्टः, यथा घटाः, प्रत्यक्षगुणआत्मा, तस्मात् प्रत्यक्षाः । यथा घटोऽपि गुणी रूपादिगुणप्रत्यक्षत्वात्वेव प्रत्यक्षाः, तथा विज्ञानादिगुणप्रत्यक्षत्वादात्मापीति ।

यहाँ वह कहना ठीक नहीं है कि- 'देह गुणी है' क्योंकि देह मूर्त है और वह है जब कि ज्ञान अमूर्त है और चेतनरूप है । मूर्त गुणी का अमूर्त गुण नहीं हो सकता और न वह का गुण चेतना हो सकता है । इस कारण 'मैं हूँ या नहीं' इस प्रकार कहने वाले को मग 'माता बन्ध्या है' ऐसा कहने वाले के समान स्वयन्बन्धाव्य दोष जाता है ।

(४) यद्वा आत्मा गुणी प्रत्यक्ष से ही सिद्ध है, क्योंकि सृष्टि, विज्ञासा, करने की इच्छा, गमन की इच्छा संशय आदि ज्ञान-जो आत्मा के गुण है-अपनी आत्मा में प्रत्यक्ष से सिद्ध है, किन्तु प्रत्यक्ष के गुण प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं वह प्रत्यक्ष भी प्रत्यक्ष माना जाता है, जैसे घट, आत्माके गुण भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं इस कारण आत्मा प्रत्यक्ष है । घट के रूप आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से ही गुणी घट का प्रत्यक्ष होना देखा जाता है, इसी प्रकार विज्ञान आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से आत्मा भी प्रत्यक्ष है ।

जहाँ देह श्रुती से ज्ञेय ठहरे तब ही नवीं शरत् के देह मूर्त से ज्ञेय नष्ट से ज्ञेयरे सम अमूर्त से ज्ञेय चेतनरूप से मूर्त श्रुतिना अमूर्त श्रुत होई शके नहिं, जने नठने श्रुत चेतन बर्ध शके नहिं, आ शरत्की कुं छ के नहिं" जे प्रभावे ठहरेवाचाने भारी माता बन्ध्या से जे प्रभावे ठहरेनास्ना जेवे स्वयन्बन्धावा नामने होय आवे से

(४) यद्वा-आत्मा श्रुती प्रत्यक्ष ही सिद्ध है केमके-सृष्टि, छायासा करवानी इच्छा, गमनकी इच्छा, संशय आदिज्ञान बनेरे जे आत्माना श्रुत से ते चेताना आत्माभां प्रत्यक्ष ही सिद्ध से, जे प्रभावेनि श्रुत प्रत्यक्ष ही प्रतीत याव से ते प्रत्यक्ष पक्ष प्रत्यक्ष गमनवाभां आवे से जेम-घट, आत्माने श्रुत प्रत्यक्ष ही प्रतीत याव से ते शरत्की आत्मा प्रत्यक्ष से घटना रूप आदि श्रुते प्रत्यक्ष होवाची व श्रुती घटनु प्रत्यक्ष होवु जेवाभां आवे से ते प्रभावे विज्ञान आदि श्रुते प्रत्यक्ष होवाची आत्मा पक्ष प्रत्यक्ष से

अहमिति ज्ञानम् आत्मविषयकं जायते । आत्मरूपविषयामावे विषयिणोऽनुत्थानप्रसंगात् । न च देह एवास्य ज्ञानस्य विषय इति वाच्यम् । जीवरहितेऽपि देहे तदुत्पत्तिप्रसंगात् । अस्मिन्नहम्प्रत्यय आत्मविषयके सति तु किमहस्मि नास्मीति संशयो नोपपद्यते, अहम्प्रत्ययविषयस्यात्मनः सद्भावादहमस्मीति निश्चय एव संभवति । आत्मास्तित्वसंशये तु कस्यायमहम्प्रत्ययः स्यात्?, निर्मूलत्वेन तदनुत्थानप्रसङ्गात् । यदि संशयी जीव एव नास्ति, तर्हि अस्ति नास्तीति संशयः कस्य भवतु । संशयो हि विज्ञानाख्यो गुण एव, न च गुणिनमन्तरेण गुणः सिध्यति ।

अभाव मे विषयी अर्थात् ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती । शरीर ही इस ज्ञान का विषय है—अर्थात् 'अहम्' ( मैं ) का अर्थ आत्मा नहीं वरन् शरीर है, ऐसा कहना उचित नहीं, क्यों कि—ऐसा होता तो मृत शरीर में भी अहम्प्रत्यय होने लगता । आत्मा को विषय करनेवाले इस अहम्प्रत्यय की विद्यमानता में 'मैं हूँ या नहीं हूँ', इस प्रकार का संशय ही नहीं होता है, अहम्प्रत्यय के विषयभूत आत्मा का सद्भाव होने से 'मैं हूँ' इस प्रकार का निश्चय ही हो सकता है । आत्मा के अस्तित्व के विषय में संशय किया जाय तो प्रश्न उपस्थित होता है कि यह अहम्प्रत्यय किसे होता है । बिना कारण के ही तो उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । यदि संशय करने वाला जीव ही नहीं है तो 'है या नहीं?' इस प्रकार का संशय करता कौन है? संशय एक प्रकार का ज्ञान—गुण है और गुण, गुणी के अभाव में नहीं हो सकता ।

विषयना अभावमा विषयी अर्थात् ज्ञाननी उत्पत्ति नथी थर्छ शकती शरीर न आ ज्ञाननो विषय छे, अर्थात् 'अहम्,' ( हुं ) नो अर्थ आत्मा नथी थड्के शरीर छे, ओम डडेपु ते उचित नथी, केमके ले ओम डोय तो मृत शरीरमा अहम्प्रत्यय थर्छ शकथे आत्माने विषय करवा वाणो आ—अहम्प्रत्ययनी विद्यमानतामा "हुं छु के नथी" आ प्रकारनो संशय न थतो नथी अहम्प्रत्ययना विषयभूत आत्मानो सद्भाव डोवाथी "हुं छु" आ प्रकारनो निश्चय न थर्छ शके छे आत्माना अस्तित्वना विषयमा संशय करवामा आवे तो प्रश्न उपस्थित थाय छे के आ अहम्प्रत्यय केने थाय छे? कारणु विना तो तेनी उत्पत्ति थर्छ शकती नथी ले संशय करवा वाणो एव नथी तो "हुं छु के नहिं" ओ प्रकारनो संशय करनार केणु छे? संशय ओक प्रकारनो ज्ञान—गुणु छे, अने गुणु गुणीना अभावमा थर्छ शकतो नथी

स्वादिशुभमात्रस्यैव प्रत्यक्षत्वात् । अन्यस्मिन् ज्ञातेऽप्यज्ञातं न भवति, यथा घटे ज्ञाते पत्रे न ज्ञायते । गुणा कदापि द्रव्याद् भिन्नत्वया सर्वा न लभन्ते, एवं द्रव्यमपि गुणेष्वपि भिन्नत्वया न सर्वा लभते । अथ गुणः, अथ गुणीति नाममात्रतो मेदसखेऽपि न तत्त्वतो मेदः । यथा-अग्निगुणी स्वकीयादुष्णत्वगुणादत्यन्तमिन्न स्यात्तर्हि दाहकार्यं कर्तुमसौ न शक्नुयात् ।

तथा-यथात्मा ज्ञानगुणादत्यन्तमिन्नो भवेत् तदा तस्य भङ्गत्वापत्तिः स्यात् । तस्माद् द्रव्यगुणयोर्मदो न कदापिदासीत्, नाप्यस्ति, न च भविष्यतीति सिद्धम् ।

तुष्यतु दुर्भेन्न्यायेन तव मते गुणेभ्यः भिन्नत्वाङ्गीकारेऽप्यात्मा प्रत्यक्षो मा भव्य का ज्ञान होने से अन्य का बोध नहीं हो जाता । जैसे-पट के धाननेसे पट माझम नहीं होता । गुण द्रव्य से भिन्न कदापि नहीं रह सकते, और द्रव्य भी गुणों से भिन्न कदापि नहीं रह सकता । यह गुण है, यह गुणी है इस प्रकारका भेद नाममात्रका है, वास्तव में गुण-गुणी में भेद नहीं है । अगर अग्नि गुणी अपने उष्णतागुण से अत्यन्त भिन्न होता तो वह दाह-कार्य ( बस्त्र का काव ) करने में असमर्थ होता ।

दूसरी बात यह है कि-आत्मा यदि अपने ज्ञानगुण से भिन्न होता तो आत्मा में बद्धता का जाती । अतः एक द्रव्य और गुण का भेद न करी जा न है, और न होगा ।

दुर्भेदसम्बन्धमात्र से, सुन्दर मत के अनुसार कदाचित् यह मान लिया जाय कि आत्मा गुणों से भिन्न है और इस कारण आत्मा का प्रत्यक्ष भव ही न हो पाय इससे प्रत्यक्ष नहीं घटता । अन्यतु ज्ञान धराधी अन्यतो बोध घटता नहीं, जैसे-वदना ज्ञानधी प माझम घटता नहीं ( परतु ज्ञान घटु नहीं ) । शुष्ण द्रव्यधी कि न कदापि रही शकते नहीं । आ शुष्ण से अने अतः शुष्णी से अने प्रकारने मेद नाममात्रने से वास्तविक रीते शुष्ण-शुष्णीभां मेद नहीं अत्र अग्नि शुष्णी घेताना उष्णताशुष्णधी अत्यन्त भिन्न वर्ध जाय तो ते दाहकार्य ( जागवानु काव ) कर्त्तामा असमर्थ वर्ध जाय से ।

धीशु बात अने से-आत्मा अने घेताना ज्ञानशुष्णधी भिन्न टोय तो आत्माभां बटन्य आधी अथ अदत्ता भाटे द्रव्य अने शुष्णने मेद केश पय बभने कतो नदि से नदि अने धरी पय नदि ।

दुर्भेदसम्बन्धमात्र धराधी तमात्र धन प्रभवे कदाचित् अत्र आनी तर्कने के आत्मा शुष्णधी भिन्न से अने तः कारणे आत्मा प्रत्यक्ष अने न जाय तो पय

न चाऽनैकान्तिकोऽयं हेतुः, यस्मादाकाशगुणः शब्दः प्रत्यक्षोऽस्ति, न पुनराकाशमिति वाच्यम्, शब्दस्याकाशगुणत्वाभावात् । शब्दो हि पुद्गलगुणः ऐन्द्रिय-कत्वाद् रूपादिवदिति ।

अस्तु, गुणाः प्रत्यक्षाः, गुणिनस्तु प्रत्यक्षत्वे किं मानम् ? उच्यते—गुणे-भ्योऽनन्यो गुणीति ज्ञानादिगुणानां प्रत्यक्षत्वादेवात्माऽपि गुणी प्रत्यक्षेण ज्ञायते । यदि गुणेभ्योऽन्यो गुणी स्यात्, तदा घटादयोपि गुणिनः प्रत्यक्षा न भवेयुः,

शङ्का—आप का दिया हुआ हेतु अनैकान्तिक है, क्यों कि आकाश के गुण शब्द का तो प्रत्यक्ष होता है किन्तु आकाश का प्रत्यक्ष नहीं होता ।

समाधान—ऐसा न कहिए, क्यों कि शब्द आकाश का गुण नहीं है । शब्द पुद्गल का गुण है, क्यों कि वह इन्द्रिय ( श्रोत्रेन्द्रिय ) का विषय है, जो इन्द्रिय का विषय होता है वह पौद्गलिक ही होता है, जैसे—रूप आदि

शङ्का—गुणों को प्रत्यक्ष मान ले किन्तु गुणों के प्रत्यक्ष होने में क्या प्रमाण है ?

समाधान—गुण और गुणी का कथञ्चित् तादात्म्य सम्बन्ध है—गुणी, गुणों से अभिन्न होता है, अत एव गुणों का प्रत्यक्ष होने से आत्मा गुणी भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होता है । अगर गुणी, गुणों से भिन्न होता तो गुणी घट आदिका भी प्रत्यक्ष न होता, क्योंकि सिर्फ रूपादि गुणों से भिन्न घट का कभी प्रत्यक्ष नहीं होता ।

शंका—आपे ने हेतु अर्हि आप्ये छे ते अनैकान्तिक छे, केमके आकाशने शुष्म शब्द ते तो प्रत्यक्ष थाय छे, परतु आकाश प्रत्यक्ष अतु नथी

समाधान—अपे प्रमाणे न कडो, केमके शब्द ते आकाशने शुष्म नथी पष्म शब्द ते पुद्गलने शुष्म छे. केमके ते इन्द्रिय ( श्रोत्रेन्द्रिय )ने विषय छे ने इन्द्रियने विषय डोय छे ते पौद्गलिक न डोय छे, नेम-रूप आदि

शंका—शुष्मने प्रत्यक्ष मानी लधअपे. परतु शुष्मिना प्रत्यक्षपणामा शु प्रमाण छे ?

समाधान—शुष्म अने शुष्मिना कथञ्चित् तादात्म्य सम्बन्ध छे—शुष्मी, शुष्मी अलिन्न डोय छे, अतएव शुष्मिना प्रत्यक्षपणायी आत्मा शुष्मी पष्म प्रत्यक्ष प्रतीत थाय छे अगर ने शुष्मी, शुष्मी अलिन्न डोय तो शुष्मी घट आदि पष्म प्रत्यक्ष थर्ष शकत नडि केमके मात्र रूपादि शुष्म प्रत्यक्ष डोय छे, रूपादि शुष्मी अलिन्न

रूपादिगुणमात्रस्यैव प्रत्यक्षत्वात् । अन्यस्मिन् ज्ञातव्यत्वात् न भवति, यथा पटे ज्ञाते पटो न ज्ञायते । गुणाः कदापि द्रव्याद् भिन्नतया सर्वा न लभन्ते, एवं द्रव्यमपि गुणेष्वो भिन्नतया न सर्वा लभते । अयं गुणः, अयं गुणीति नाममात्रतो मेदसत्त्वेऽपि न तच्छतो मेदः । यथा-अग्निगुणी स्वकीयादुष्णत्वगुणादत्यन्तभिन्नः स्यात्तर्हि दाहकार्यं कर्तुमसौ न क्षम्युयात् ।

तथा-यथास्मा ज्ञानगुणादत्यन्तभिन्ना भवेत् तदा तस्य जडत्वापत्तिः स्यात् । तस्माद् द्रव्यगुणयोर्मदो न कदापिदासीत्, नाप्यस्ति, न च भविष्यतीति सिद्धम् ।

तुभ्यत्तु दुर्जनन्यायेन तव मते गुणेष्वः भिन्नत्वाङ्गीकारेऽप्यात्मा प्रत्यक्षो मा

अथ का ज्ञान होने से अन्व का बोध नहीं हो जाता । जैसे-पट के आन्वसे पट मात्स्म्य नहीं होता । गुण द्रव्य से भिन्न कदापि नहीं रह सकता, और द्रव्य भी गुणों से भिन्न कदापि नहीं रह सकता । 'यह गुण है, यह गुणी है' इस प्रकारका मेद न्यममात्रका है वास्तव में गुण-गुणी में मेद नहीं है । अगर अग्नि गुणी अपने उष्णतागुण से अत्यन्त भिन्न होता तो वह दाह-कार्य ( बसने का कार्य ) करने में असमर्थ होता ।

दूसरी बात यह है कि-आत्मा यदि अपने ज्ञानगुण से भिन्न होता तो आत्मा में जडता या अज्ञेयता । अत एव द्रव्य और गुण का मेद न कभी या, न है, और न होगा ।

दुर्जनन्यायेन इत्येतत् के अनुसार कदाचित् यह मान किया जाय कि आत्मा गुणों से भिन्न है और इस कारण आत्मा का प्रत्यक्ष मने ही न हो

यत्तु कदाचित् प्रत्यक्ष नहीं होता । अन्वत्तु ज्ञान कदापि अन्वने ज्ञात नहीं, जेभके घटना ज्ञानधी यत् मात्स्म्य यतो नहीं ( यदन्तु ज्ञान यत्तु नहीं ), शुद्ध, द्रव्यधी कि न कदापि रहती शक्यता नहीं । आ शुद्ध छे अने आ शुद्धी छे जे प्रकारने सेद नाममात्रने छे वास्तविक रीते शुद्ध-शुद्धीमां सेद नहीं । अजर अग्नि शुद्धी पीताना उष्णताशुद्धी अत्यन्त भिन्न यत्तु ज्ञान तो ते दाहकार्य ( जाणवानु कार्य ) करवाभा असमर्थ यत्तु ज्ञान छे

जील वात जे छे के-आत्मा जे पीताना ज्ञानशुद्धी भिन्न होय तो आत्माभां जडता आवी ज्ञान कोटला भाटे द्रव्य अने शुद्धने सेद कोष पक्ष पक्षते कतो नहि, छे नहि अने यथे पक्ष नहि.

इह नसतोप न्यायधी तमात्र भव प्रभवे कदाचित् ज्ञेय भागी लभन्ते के आत्मा शुद्धधी भिन्न छे अने ते कारणे आत्मा प्रत्यक्ष कते न जाय तो पक्ष प्र वा-वेद.

भवतु, अस्तित्वं च तस्य निर्वाधमेव । ज्ञानादिगुणाः सन्ति यस्य स गुणिरूप आत्मा कथमपलप्येत ।

ननु देह एव ज्ञानादिगुणाः उपलभ्यन्ते तदाश्रयतया देह एव रूपादीना घट इव गुणी सिध्यति, न त्वात्मा । प्रयोगश्चैवम्—देहगुणा एव ज्ञानादयः, तत्रैवोपलभ्यमानत्वाद्, गौरुकुशस्थूलतादिवदिति चेन्न, ज्ञानादयो गुणा न देह-सम्बन्धिनः, अमूर्तत्वाद्, अचाक्षुपत्वाद् वा, गगनवत् । द्रव्यविग्रहितो गुणो न भवति ।

तथापि उसके अस्तित्व में कोई बाधा नहीं आती । जिस के ज्ञानादि गुण मौजूद हैं उस गुणिरूप आत्मा का अपलाप किस प्रकार किया जा सकता है ? ।

शङ्का—देह में ही ज्ञानादि गुण पाये जाते हैं, अतः इन गुणों का आधार गुणी देह ही है, जैसे—रूपादि गुणों का आधार घट है । आत्मा ज्ञानादि गुणों का आश्रयभूत गुणी नहीं है । अनुमान इस प्रकार है—ज्ञान आदि देह के गुण हैं, क्यों कि वे देह में ही उपलब्ध होते, जैसे—गौरपन, दुबलापन और स्थूलता आदि ।

समाधान—यह कहना ठीक नहीं, ज्ञान आदि गुण देह के नहीं हैं, क्यों कि वे अमूर्त हैं और अचाक्षुष ( जो आंखसे नहीं दीखता ) हैं, जो अमूर्त और अचाक्षुष होते हैं वे देहके गुण नहीं होते, जैसे आकाश ।

गुण, द्रव्य के बिना रह नहीं सकते अतः ज्ञान आदि गुणोंका आधारभूत कोई द्रव्य अवश्य होना चाहिए । ज्ञानादि गुणोंके अनुरूप जो अरूपी एव अचाक्षुष गुणी है वह देह से भिन्न आत्मा ही है ।

आत्माना अस्तित्वमा केचि प्रकारनी हरकत आवती नथी जेना ज्ञानादि शुष्ण डैयात छे, ते शुष्णीइप आत्मानो अपलाप—( छती वस्तुने नथी जेम कडेवु ते ) केम करवामा आवे ?

शङ्का—देहमा जे ज्ञानादि शुष्ण देयाय छे, ते कारवुथी जे शुष्णानो—आधार शुष्णी देह जे छे, जेम रूपादि शुष्णानो आधार घट छे आत्मा ज्ञानादि शुष्णानो आश्रयभूत शुष्णी नथी अनुमान आ प्रमाणे छे—ज्ञान आदि देहना शुष्ण छे, केमके ते देहमा जे उपलब्ध जेयाय छे, जेमके गौरापणु, दुबलापणु अने स्थूलता—अक्षपणु वगेरे

समाधान—जे प्रमाणे कडेवु ते योज्य नथी, ज्ञान आदि शुष्ण ते देहना शुष्ण नथी, केमके ते अमूर्त छे, अने अचाक्षुष छे ( जे नेत्रथी देयाता नथी ) जे अमूर्त अने अचाक्षुष होय छे ते देहना शुष्ण थर्क शकता नथी, जेम आकाश शुष्ण, द्रव्य विना रहीं शकता नथी, ते कारवुथी ज्ञान आदि शुष्णानो आधारभूत केचि द्रव्य होवुं जेधजे अटला भाटे ज्ञानादि शुष्णाने अनुरूप जे अरूपी अने अचाक्षुष शुष्णी छे, ते देहथी भिन्न आत्मा जे छे



तस्माद् ज्ञानादिगुणानामनुस्यूयो यो रूपरहितोऽवामुपम गुणी स दहाद् भिन्न  
आत्माऽस्तीति विज्ञेय ।

न च ज्ञानादयो गुणा न देहसम्बन्धिन इत्यनुमानं प्रत्यक्षवाकितम्,  
ज्ञानादिगुणानां देह एव प्रत्यक्षेण ज्ञानसम्प्राणादिति वाच्यम्, अस्य प्रत्यक्षस्या-  
नुमानवाकितत्वात् । शरीरेन्द्रियभिन्नं ज्ञानादिगुणवत्स्वमनुमानेन सिध्यति ।  
तथाहि—शरीरेन्द्रियभिन्नो ज्ञानादिगुणवान् यदुपरमेऽपि तदुपलम्भार्थानुस्मरणात् ।  
यो हि यदुपरमेऽपि यदुपलम्भपर्यमनुस्मरति, स तस्मादन्यो दृष्टा, यथा—यत्र-  
पातापनोपलम्भार्थानुस्मरतां देवदत्तः, इत्यादि । केनचित् कारणेन दृष्टिवाकित-  
विपातेऽपि पूर्वदृष्टपदार्थानुस्मरणं मन्वीर्यतो देहेन्द्रियादिभिन्न आत्मा  
गुणी सिध्यति ।

ज्ञानादि गुण देहसम्बन्धी नहीं है यह अनुमान, प्रत्यक्ष से वाकित है, क्या  
कि—प्रत्यक्षप्रमाण स व देह में ही प्रतीत होते हैं यह कबन ठीक नहीं है, क्या  
कि यह प्रत्यक्ष ही अनुमान से वाकित है । अनुमान स यह सिद्ध है कि—ज्ञान आदि  
गुणों का आचार शरीर और इन्द्रियों से कोई भिन्न पदार्थ (आत्मा) ही है । अनुमान  
इस प्रकार है—ज्ञानादि गुणों का आचार शरीर और इन्द्रियों से भिन्न है, क्यों कि  
उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है ।  
जिसके नष्ट हो जाने पर भी जिसके द्वारा जाने हुए पदार्थ का जो स्मरण करता है  
वह उस से भिन्न होता है । जैसे—पाप सिद्धक्रिया द्वारा जाने हुए पदार्थों को स्मरण  
करने वाला देवदत्त है, उसको किसी कारण से देखने की शक्ति नष्ट हो जाने पर  
भी पहले देखे हुए पदार्थ का स्मरण होता है । इस से मन्वीर्यति सिद्ध है कि—देह  
और इन्द्रिय आदि से भिन्न आत्मा ही गुणी है ।

ज्ञानादि गुण देहसम्बन्धी नहीं है इत्यनुमानं प्रत्यक्षवाकितं च  
केभ्यो प्रत्यक्ष प्रमाणाद्यैः ते देहसंज्ञं प्रतीतं वाच्यं च, तं कथं हीनं नभ्यो केभ्यो  
ते प्रत्यक्ष अनुमानाद्यैः वाकितं च अनुमानाद्यैः सिद्धं च के ज्ञान आदि गुणानामनु-  
मानवाकितं च—ज्ञानादि गुणानामनुमानवाकितं च—ज्ञानादि गुणानामनुमानवाकितं च  
प्रमाणाद्यैः—ज्ञानादि गुणानामनुमानवाकितं च—ज्ञानादि गुणानामनुमानवाकितं च  
नष्टं यथा उपाय तेन द्वारा ज्ञेयत्वात् पदार्थानु स्मरणं ज्ञेयं च ज्ञेयं नष्टं यथा पक्षी  
पक्षु, ज्ञेयं द्वारा ज्ञेयत्वात् पदार्थानु स्मरणं ज्ञेयं च ज्ञेयं नष्टं यथा पक्षी  
ज्ञेयं पाप ज्ञेयत्वात् द्वारा ज्ञेयत्वात् पदार्थानु स्मरणं ज्ञेयं च ज्ञेयं नष्टं यथा पक्षी  
तेन केभ्यो इत्यनुमानं प्रतीतं वाच्यं च, तं कथं हीनं नभ्यो केभ्यो

भवतु, अस्तित्वं च तस्य निर्वाधमेव । ज्ञानादिगुणाः सन्ति यस्य स गुणिरूप  
आत्मा कथमपलप्येत ।

ननु देह एव ज्ञानादिगुणाः उपलभ्यन्ते तदाश्रयतया देह एव  
रूपादीनां घट इव गुणी सिध्यति, न त्वात्मा । प्रयोगश्चैवम्—देहगुणा एव ज्ञानादयः,  
तत्रैवोपलभ्यमानत्वाद्, गौरकशस्थूलतादिवदिति चेन्न, ज्ञानादयो गुणा न देह-  
सम्बन्धिनः, अमूर्तत्वाद्, अचाक्षुपत्वाद् वा, गगनवत् । द्रव्यविरहितो गुणो न भवति ।

तथापि उसके अस्तित्व में कोई बाधा नहीं आती । जिस के ज्ञानादि गुण मौजूद हैं उस  
गुणीरूप आत्मा का अपलाप किस प्रकार किया जा सकता है ? ।

**शङ्का**—देह में ही ज्ञानादि गुण पाये जाते हैं, अत इन गुणों का आधार  
गुणी देह ही है, जैसे—रूपादि गुणों का आधार घट है । आत्मा ज्ञानादि गुणों का  
आश्रयभूत गुणी नहीं है । अनुमान इस प्रकार है—ज्ञान आदि देह के गुण हैं, क्यों  
कि वे देह में ही उपलब्ध होते, जैसे—गौरपन, दुबलापन और स्थूलता आदि ।

**समाधान**—यह कहना ठीक नहीं, ज्ञान आदि गुण देह के नहीं है, क्यों  
कि वे अमूर्त हैं और अचाक्षुष ( जो भाँससे नहीं दीखता ) हैं, जो अमूर्त और  
अचाक्षुष होते हैं वे देहके गुण नहीं होते, जैसे आकाश ।

गुण, द्रव्य के बिना रह नहीं सकते अत ज्ञान आदि गुणोंका आधारभूत  
कोई द्रव्य अवश्य होना चाहिए । ज्ञानादि गुणोंके अनुरूप जो अरूपी एव अचाक्षुष  
गुणी हैं वह देह से भिन्न आत्मा ही है ।

आत्माना अस्तित्वमा कैर्ध प्रकारनी उरुत आचती नथी जेना ज्ञानादि शुषु डियात  
छे, ते शुषुडिप आत्मानो अपलाप—(छती वस्तुने नथी जेम कडेवु ते) केम  
करवामा आवे ?

**शङ्का**—देहमा जे ज्ञानादि शुषु देयाय छे, ते कारवुथी जे शुषुानो—आधार  
शुषु देह जे छे, जेम इपादि शुषुने आधार घट छे आत्मा ज्ञानादि शुषुानो  
आश्रयभूत शुषु नथी अनुमान आ प्रमावु छे—ज्ञान आदि देहना शुषु छे, केमके  
ते देहमा जे उपलब्ध जेयाय छे, जेमके गौरापलु, दुबलापलु अने स्थूलता-  
—अअपलु वगेरे

**समाधान**—जे प्रमावु कडेवु ते जेज्य नथी, ज्ञान आदि शुषु ते देहना  
शुषु नथी, केमके ते अमूर्त छे, अने अचाक्षुष छे ( जे नेत्रथी देयाता नथी )  
जे अमूर्त अने अचाक्षुष होय छे ते देहना शुषु थर्ध शकता नथी, जेम आकाश.  
शुषु, द्रव्य बिना रडी शकता नथी, ते कारवुथी ज्ञान आदि शुषुाना आधारभूत  
केर्ध द्रव्य होवु जेधजे जेटला भाटे ज्ञानादि शुषुाने अनुरूप जे अरूपी अने  
अचाक्षुष शुषु छे, ते देहथी बिन्न आत्मा जे छे

सात्मकं न भवति तत्रेष्टानिष्टप्रवृत्तिनिवृत्ती न भवतः, यथा घट इति । तथा च परस्परिरे प्रवृत्तिनिवृत्ती दृश्यन्ते तस्मात् तत् सात्मकम्, इति ।

यदा-शरीरं सकर्तृकं, आदिमत्प्रतिनियताकारत्वात्, यत् पुनरकर्तृकं तद् आदिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति, यथा-अन्नपिकारः । यच्च कर्ता शरीरस्य, स आत्मा । मेवांशबनैकप्रन्तिकरत्नवारभायादिमत्प्रतिशेषणम् ।

यदा-अस्तीन्द्रियाणामपिष्ठाता-आत्मा, तत्रानुमानप्रयोगक्षत्यम्—

नहीं होता उसमें इष्ट-अनिष्ट की प्रवृत्ति-निवृत्ति भी नहीं होती, जैसे घट । दूसरे के शरीर में भी प्रवृत्ति-निवृत्ति दली जाती है अतः वह सात्मक है ।

(२) शरीर सकर्तृक (कर्ता से युक्त) है, क्यों कि यह आदिवास्तु और नियत आकार वास्तु है, जैसे घट । जो सकर्तृक नहीं होता वह अदि वास्तु और नियत आकार वास्तु नहीं होता जैसे मेधा का विकार (जनाबट) । शरीर का जो कर्ता है वही आत्मा है । यही नियत आकार वास्तु सुमेरु आदि से व्यभिचार (हेतु हो और साध्य न हो) निवारण करने के लिये 'आदि वास्तु' विशेषण रखाया गया है ।

अथवा इन्द्रियोंका अपिष्ठाता आत्मा है, इस विषय में अनुमान का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए —

(आत्माधीशुक्त) नहीं तन्मा इष्ट-अनिष्टनी प्रवृत्ति-निवृत्ति पक्ष होती नहीं, जेमहे-  
घट, जीवना शरीरमां पक्ष प्रवृत्ति-निवृत्ति जेवामां आवे छ तेषी ते सात्मक छ

(२) शरीर सकर्तृक (कर्ताधीशुक्त) छ जेमहे ते आदिवास्तु अने नियत आकार वास्तु छ; जेम घट जे सकर्तृक नहीं होवां ते आदिवाजां अने नियत आकार वाजां नहीं होवां जेम मेधानो विकार (जनाबट) शरीरना जे कर्ता छ ते आत्मा छ अर्थात् नियत आकारवाजां सुमेरु आदिधी व्यभिचार (हेतु होय अने साध्य न होय) निवारण करवा भाटे आदिवाजां 'विशेषण' बजानु छ

अथवा-इन्द्रियोना अधिष्ठाता आत्मा छ. आ विषयमां अनुमानना प्रयोग आ प्रमाद्ये करवा जेध जे-

एवं च प्रत्यक्षप्रमाणेनात्मनोऽस्तित्वं निरूपितम् ।

अथ ज्ञानादिगुणानां स्वात्मनि प्रत्यक्षतया तटनन्यभूतः स्वात्माऽपि प्रत्यक्षो भवतु, परशरीरे तु कथमात्मनोऽस्तित्वं विजानीयात् ? इति, उच्यते—यथा स्वदेहे प्रत्यक्षेणात्मा विज्ञायते, तथा परदेहेऽप्यनुमानतो विज्ञेयः ।

( १ ) परशरीरं सात्मकम् इष्टानिष्टयोः प्रवृत्तिनिवृत्तिदर्शनात्, यत्रेष्टानिष्टयोः प्रवृत्तिनिवृत्ती दृश्येते, तत् सात्मकं दृष्टं यथा—स्वशरीरम्, तथा यत्

इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्मा का अस्तित्व निरूपण किया गया ।

**अनुमान से आत्मा की सिद्धि—**

शङ्का—ज्ञान आदि गुणों का अपनी आत्मा में प्रत्यक्ष होने से उन गुणों से अलग अपनी आत्मा को प्रत्यक्ष मान लिया जाय किन्तु दूसरे के शरीर में आत्मा का अस्तित्व कैसे जान सकते हैं ?

समाधान—जैसे—अपने शरीर में प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्मा प्रतीत होता है, उसी प्रकार दूसरे के शरीर में अनुमानप्रमाण से आत्मा समझना चाहिए ।

**अनुमान प्रमाण इस प्रकार है—**

( १ ) दूसरे का शरीर सात्मक ( आत्मा से युक्त ) है, क्यों कि उस की इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट में निवृत्ति देखी जाती है । जहाँ इष्ट—अनिष्ट में प्रवृत्ति और निवृत्ति देखी जाती है, वह सात्मक होता है, जैसे—अपना शरीर । तथा जो सात्मक

स्मरण रखे छे तेथी परापर भिन्न छे के हेतु अपने इन्द्रिय आदिथी भिन्न आत्मा न शुष्ठी छे

या प्रमाणे प्रत्यक्षप्रमाण्थी आत्माना अस्तित्वतु निरूपण्थु कर्तुं छे

**अनुमानथी आत्मानी सिद्धि—**

शङ्का—ज्ञान आदि शुष्ठी पोताना आत्माना होवाथी, ते शुष्ठीथी अस्मिन् पोताना आत्माने तो प्रत्यक्ष मानी लेवामां आवे, परतु भीजना शरीरमा आत्मानु अस्तित्व केवी रीते नखी शक्य ?

समाधान—जेवी रीते पोताना शरीरमा प्रत्यक्षप्रमाण्थी आत्मा प्रतीत थाय छे ते प्रमाणे भीजना शरीरमा अनुमानप्रमाण्थी आत्मा समजये जेथे अनुमानप्रमाण्थु या प्रमाणे छे -

( १ ) भीजनु शरीर सात्मक ( आत्माथीयुक्त ) छे, केभके तेनी इष्टमा प्रवृत्ति अपने अनिष्टमा निवृत्ति लेवामा आवे छे न्या इष्ट—अनिष्टमा प्रवृत्ति—निवृत्ति लेवामा आवे छे ते सात्मक होय छे जेम पोतानु शरीर. तथा जे सात्मक

(५) यद्वा—देहादिकं विद्यमानभोक्तृकम्, भोग्यत्वात्, यथा—अमरसूत्रादिकम् । अमरसूत्रादीनां भोक्ता मनुष्योऽस्ति । यस्य च भोक्ता नास्ति तद् भोग्यमपि न भवति, यथा स्वरविषयम्, भोग्यं च शरीरादिकं, तस्माद् विद्यमानभोक्तृकम् ।

(६) यद्वा—अस्ति देहादिकं स्वामिकं, संपातरूपत्वात्, मूर्तिमत्त्वात्, ऐन्द्रियत्वात्, चाक्षुषत्वात्, यथा—गृहादिकम् । गृहादीनां स्वामिनः देवदेवादयः सन्ति । यत् पुनरस्वामिकं तत् संपातरूपं न भवति, मूर्तिमत्तं भवति, ऐन्द्रियं न भवति, चाक्षुषं च न भवति, यथा—गगनकसुमम् । देहादिकं, चास्ति संपातादिरूपम्, तस्माद् विद्यमानस्वामिकम् । यच्च देहादीनां स्वामी स चात्मेति ।

(५) अथवा—देह आदि का भोक्ता कोई भवत्य है, क्यों कि वे भोग्य हैं जो भोग्य होते हैं उन का भोक्ता भी होता है, जैसे—अन्न, वस्त्र आदि का । अन्न—वस्त्र आदि का भोक्तृ मनुष्य है । जिसका भोक्तृ नहीं होता वह भोग्य भी नहीं होता जैसे गधे का मीन । परन्तु आदि भोग्य हैं अतः उनका भोक्ता भवत्य है ।

(६) अथवा—देह आदि का कोई स्वामी है, क्यों कि वे संपातरूप हैं, मूर्तिमान् हैं, इन्द्रियों के विषय हैं और चाक्षुष हैं, पर आदि के समान । पर आदि के स्वामी देवदेव आदि हैं । जिसका कोई स्वामी नहीं होता वह संपातरूप नहीं होता मूर्तिमान् नहीं होता इन्द्रिय का विषय नहीं होता और चाक्षुष (आंख से शीघ्रन बाह्य) भी नहीं होता, जैसे—आकाशपुष्प । देह आदि संपातरूप हैं, अतः उन का स्वामी भवत्य है । देह आदि का जो स्वामी है वही आत्मा है ।

(५) अथवा—देह आदिने भोक्तृता कोई अवश्य है, केमके ते भोक्तृ है । भोक्तृ होय है तेने भोक्तृता पण बोध है केमके अन्न, वस्त्र आदिने। अन्न—वस्त्र आदिने भोक्तृता मनुष्य है केने भोक्तृता नहीं ते भोक्तृ पण नहीं, केम जपेहाना सीज शरीर आदि भोक्तृ है तेधी तेने भोक्तृता अवश्य है

(६) अथवा देह आदिने कोई स्वामी है केमके ते संपातरूप है मूर्तिमान् है ऐन्द्रियोने विषय है अने चाक्षुष है पर आदि प्रमादे, पर आदिने स्वामी देवदेव आदि है केने कोई स्वामी नहीं ते संपातरूप पण नहीं, अने ते मूर्तिमान् पण बोध नहीं ऐन्द्रियोने विषय पण बोध नहीं अने चाक्षुष (नेत्रधीनेई शक्य तेवा) पण बोध नहीं, केमके आकाशपुष्प देह आदि संपातरूप है तेधी तेने स्वामी अवश्य है, देह आदिने स्वामी है ते आत्मा है

( ૩ ) ઇન્દ્રિયં સાધિષ્ઠાત્વકં, કરણત્વાત્ , યથા ચક્રચીવરમૃત્મૃત્ત્વદ્વંડાદયઃ, અસ્તિ હિ ચક્રચીવરાદીનામધિષ્ઠાતા કુલાલઃ । યચ્ચ નિરધિષ્ઠાત્વકં તત્ કરણમપિ ન ભવતિ, યથા—આકાશમ્ , યથેન્દ્રિયાણામધિષ્ઠાતા સ આત્મેતિ ।

( ૪ ) યદ્વા—ઇન્દ્રિયવિષયયાણામાદાતા સંભવતિ, ઇન્દ્રિયવિષયયા શબ્દાદય આદાત્વસહિતાઃ આદાનાદેયભાવસદ્ભાવાત્ , સદશકલોહવત્ । યથા લોકે સદ-શકલોહાનામયસ્ફાર આદાતાઽસ્તિ । ઇન્દ્રિયવિષયયાણા આદાનાદેયભાવો વિદ્યતે, અતસ્તેષામપ્યાદાતાઽસ્તીત્યનુમીયતે । યત્ર તુ આદાતા નાસ્તિ, તન્નાદાનાદેયભાવોઽપિ ન વિદ્યતે, યથા—આકાશે ।

( ૩ ) ઇન્દ્રિયોં કિસી સધિષ્ઠાતા સે યુક્ત હૈ. ક્યોં કિ—ત્રે કરણ હૈં, જૈસે ચક્ર, ચીવર, મૃત્તિકા, સૂત ઓર ઢ્વઢ આદિ । ચક્ર, ચીવર આદિ કા અધિષ્ઠાતા કુમાર હૈ, જિસ કા કોઈ અધિષ્ઠાતા નહીં હોતા વહ કરણ મી નહીં હોતા, જૈસે—આકાશ । ઇન્દ્રિયોં કા જો અધિષ્ઠાતા હૈ, વહી આત્મા હૈ ।

( ૪ ) અથવા ઇન્દ્રિયોં કે વિષય શબ્દ આદિ આદાતાયુક્ત ( પ્રહણ કરને વાલે સે યુક્ત ) હૈ, ક્યોં કિ ઉન મે આદાન આદેયભાવ મૌજૂદ હૈ, જૈસે સડાસી ઓર લોહે મેં, તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—લોક મેં સડાસી ઓર લોહે મેં આદાન ( લેના ) આદેયભાવ ( જો લિયા જાય ) પ્રસિદ્ધ હૈ ઓર ઉન કા આદાતા હુહાર હૈ, ઇસી પ્રકાર ઇન્દ્રિયોં તથા વિષયોં કા મી આદાન—આદેયભાવ હૈ, અત ઉનકા મી કોઈ આદાતા હોના ચાહિણ । જહોં આદાતા નહીં હોતા વહોં આદાન—આદેયભાવ મી નહીં હોતા, જૈસે—આકાશ મેં ।

(૩) ઇન્દ્રિયો કોઈ પણ અધિષ્ઠાતાથી યુક્ત છે, કેમકે તે કરણ છે, જેમકે ચક્ર, ચીવર, મૃત્તિકા, સૂત અને ઢઠ આદિ ચક્ર, ચીવર વગેરેનો અધિષ્ઠાતા કુમાર છે, જેનો કોઈ અધિષ્ઠાતા હોય નહિ, તે કરણ પણ હોય નહિ, જેમકે—આકાશ ઇન્દ્રિયોનો જે અધિષ્ઠાતા છે, તે આત્મા છે

(૪) અથવા—ઇન્દ્રિયોના વિષય શબ્દ આદિ આદાનયુક્ત—(અહણ કરવાવાળા—યુક્ત) છે, કેમકે તેમા આદાન—આદેય ભાવ મોજુદ છે જેમ સાણસી અને લોહમા તાત્પર્ય એ છે કે લોહમા સાણસી અને લોહમા આદાન—આદેય ભાવ પ્રસિદ્ધ છે અને તેના આદાતા હુહાર છે, આ પ્રમાણે ઇન્દ્રિયો તથા વિષયોનો પણ આદાન—આદેય ભાવ છે તેથી તેનો પણ કોઈ આદાતા હોવો જોઈએ જ્યા આદાતા નથી, ત્યા આદાન—આદેય ભાવ પણ હોય નહિ, જેમ આકાશમા

पुत्रसंघातोपगृहत्वात्, सञ्चरीरत्वाच्च कर्षचिन्मूर्तत्वाविषमेषुक्त एवास्तीति ।

( ७ ) यद्वा—' जीव ' इति पदं सार्धकं, व्युत्पत्तिमन्वे सति असमासपदत्वाद् एकपदत्वाद् षटादिपदवत् । षटादिपदं व्युत्पत्तिमत् असमासपदमेकपदं लोके दृष्टम्, तथा च जीवपदं, तस्मात् सार्धकम् । यत्तु सार्धकं नास्ति तद् व्युत्पत्तिमत् असमासपदमेकपदं च नास्ति, यथा—स्वविषाणादिकं, द्वित्यादिकं च पदम् । जीवपदं च न तथा, तस्मात् सार्धकम् ।

यद् व्युत्पत्तिमन् भवति तदेकपदमपि सद् न सार्धकम्, यथा द्वित्यादिपदम्, इति हेतोरनेकान्तिकत्वापत्तिस्तद्धारणाय व्युत्पत्तिमन्त्रिभेदेनानुपात्तम् ।

हुए हैं, इस लिए कर्षे दोष नहीं जाता । संसारी आत्मा जाठ कर्मों के समूह से युक्त होने के कारण तथा सञ्चरीर होने के कारण मूर्तत्व भावि कर्मों से युक्त ही है ।

( ७ ) अथवा— जीव ' पद का वाच्य अन्वय है, क्योंकि यह पद व्युत्पत्ति वाक्य होते हुए समासरहित है, एक पद है, षट् भावि पदों के समान । षट् वगैरह पद व्युत्पत्तिवाक्ये असमासपद एक पद लोके में देखे जाते हैं अतः उनके वाच्य भी अन्वय हैं । जीव ' पद भी ऐसा ही है, अतः वह भी सार्धक है । जो पद सार्धक नहीं होता वह व्युत्पत्तिवाक्य असमासपद, एक पद भी नहीं होता जैसे— स्वविषाण ' पद, अथवा द्विज पद, जीव पद ऐसा नहीं है अतः वह सार्धक है ।

जो व्युत्पत्ति वाक्य नहीं होता वह एक पद होते हुए भी सार्धक नहीं होता, जैसे द्विज ' भावि पद । इस हेतु में अनेकान्तिकता निवारण करने के लिए ' व्युत्पत्ति

जीव, ज्येष्ठा आदि षोडश दोष आवेता नहीं संसारी आत्मा जाठ कर्मोंना समूहकी युक्त होवाना कारणे तथा सञ्चरीर होवाना कारणे मूर्तत्व भावि कर्मोंकी युक्तता से

( ७ ) अथवा एव परतो वाच्य अन्वय से कारणे के पद व्युत्पत्तिवाक्ये होना अर्थात् समासरहित से अर्थ पद से षट् भावि पदोंना समान. ' षट् ' से व्युत्पत्तिवाक्य असमास पद अर्थ पद लोके में अनेकान्तिकता आवे से, ते कारणकी तेनु वाच्य पद अन्वय से एव पर पद अर्थ पद से तेषी ते पद सार्धक से. जे पद सार्धक नहीं अतः ते व्युत्पत्तिवाक्य असमास पद अर्थ पद पद अर्थ नहीं अनेकान्तिकता निवारण (अपेक्षाना शीज) पर अथवा पदित्वा पर एव-पर अर्थ पद तेषी ते सार्धक से

जे व्युत्पत्तिवाक्य अर्थ पद नहीं ते अर्थ पद होवा अर्थात् पद सार्धक नहीं अतः अर्थ पदित्वा भावि पद.

आ हेतुना अनेकान्तिकता निवारण कर्त्वा आटे ' व्युत्पत्तिवाक्य विशेषण प्र भा-२२

न च—आदिमत्प्रतिनियताकारत्वादिहेतुभिः शरीरादीनां कर्त्रादय एव सिध्यन्ति, न तु प्रस्तुत आत्मेति वाच्यम् । अन्यस्येश्वरादेर्युक्त्यसहत्वेन कर्तृत्वाद्यसभयाद् देहादीना कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता, स्वामी चायमात्मैवेति निश्चयात् ।

ननु—घटादीनां कर्त्रादिरूपाः कुलाज्जदयो मूर्तिमन्तः संघातरूपा अनित्यादिस्वभावाश्च दृष्टाः, इत्यतो जीवोऽप्येतादृश एव सिध्यति, एतद्विपरीतश्चास्माकं साधनीयः, इत्येवं साध्यविरुद्धसाध्यकृतया हेतूनां विरुद्धत्वापत्तिरिति चेन्ममम्, संसारिणमात्मान साध्यितुं प्रवृत्तानामस्माकमेतदोपासंभवात् । संसारी चात्माऽष्टविधकर्म-

पूर्वोक्त—'आदिमान होते हुए नियत आकार वाले होने से' इत्यादि हेतुओं से शरीर आदि के कर्ता आदि ही सिद्ध होते हैं, प्रस्तुत आत्मा सिद्ध नहीं होता, ऐसा नहीं कहना चाहिये क्यों कि—आत्मा से भिन्न ईश्वर आदिका कर्तापन युक्तिसङ्गत नहीं ठहरता, अत देह आदिका कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता और स्वामी आत्मा ही है, ऐसा निश्चय हो जाता है ।

शङ्का—घट आदि के कर्ता कुभार वगैरह मूर्तिक, संघातरूप और अनित्य आदि स्वभाव वाले देखे जाते हैं, अत जीव भी ऐसा ही सिद्ध होता है, मगर आपको इस से विपरीत धर्मोवाला आत्मा सिद्ध करने के कारण पूर्वोक्त हेतुओं में विरुद्ध दोष आता है ।

समाधान—ऐसा मत कहो । हम संसारी आत्मा सिद्ध करने के लिए उद्यत

पूर्वोक्त—'आदिमान होवा छताय नियत आकारवाणा हुंवाथी' इत्यादि हेतुओंकी शरीर आदिना कर्ता आदि न सिद्ध होय छे प्रस्तुत आत्मा सिद्ध थतो नथी अथ नहि कडेपु जेथ अथे, केमके आत्माथी भिन्न अधिर आदितु कर्तापणु युक्ति सजत थतु नथो, तेथी हेइ आदिना कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता अने स्वामी आत्मा न छे अथ निश्चय थथ नथ छे

श. क. १—घट आदिना कर्ता कुभार वगैरे मूर्तिक, संघातरूप अने अनित्य आदि स्वभाववाणा जेवामा आवे छे, तेथी एव पणु जेवो न सिद्ध थाय छे परतु तमने तेनाथी विपरीत धर्मोवाणा आत्मा सिद्ध करवो छे, जेवी स्थितिमा साध्यथी विरुद्ध सिद्ध करवाना कारणे पूर्वोक्त हेतुओंमा विरुद्धता दोष आवे छे

समाधान—अथे प्रमाणे न कडे, अथे संसारी आत्मा सिद्ध करवा माटे तैयार थथा



मिन्ता मतीयते । प्रकृतेऽपि माषी, मूत्र, जीवः, सत्त्व, इत्यादयो जीवसम्प्रदायस्य पर्यायाः, शरीर वपुः, कायो, देहः, गात्रमित्यादयस्तु शरीरसम्प्रदायस्य पर्यायाः 'अयं जीवस्तस्मान्न इन्त्वय' इत्यनेनापि देहस्थितस्य माषिन एव हिंसा निषिध्यते ।

आज्ञागमस्तु समस्त एवात्मानं बोधयति, आत्मतत्त्वस्यैव सम्यग्दर्शनज्ञान-  
पारिभाष्य तस्य प्रवृत्तत्वात् । तथापि कानिचिदागमवचनानि प्रमाणतया प्रदर्शयामः

‘से मायानादी’ इति प्रस्तुतयेव पचनं तावद् दृश्यम् । ‘से ज पुत्र

सम्प्रदाय है, इस सिद्धि पत्रका अथ और व्याकरण का अर्थ अस्मा-मस्मा है । इसी प्रकार जीव के पर्यायवाचक प्राणी, मूत्र जीव सत्त्व आदि शब्द अस्मा हैं और देह के पर्यायवाचक शरीर, वपु, काय गात्र आदि मिश्र हैं, अत इन दोनों का अर्थ भी अस्मा होना चाहिए । यह जीव ह अस्त इनन करने योग्य नहीं है’ इस वाक्य द्वारा देह में रिक्त प्राणी की ही हिंसा का निषेध किया जाता है ।

### आगम से आत्मा की सिद्धि-

आप्त पुरुष द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण आगम आत्मा का बोधक है । आत्मतत्त्व के सम्बन्ध दर्शन ध्यान और चरित्र के सिध हो आगम की प्रवृत्ति होती है फिर भी आगम के कतिपय वाक्य प्रमाणरूप में प्रदर्शित करते हैं —

सर्वं स पश्ये-से आयावादी’, इस प्रस्तुत वाक्य को ही जीविय

प्रमाणों लक्षणा पर्यायवाचक-माषी मूत्र, जीव सत्त्व आदि शब्द अस्मा से अने देहना पर्यायवाचक-शरीर, वपु काय, गात्र आदि मिश्र से ते आटे से जनेने अर्थ पश्य अस्मा अवे ज्येष्ठम्. “आ एव से तेषी इनन करना योग्य नहीं” आ वाक्य द्वारा देहमा पश्येता माषीनी ए हिंसाने निषेध करवाया आन्वी से

### आत्ममयी आत्मानि सिद्धि-

आप्त पुरुष द्वारा प्रणीत सपुत्र आत्म आत्मतनु बोधक से आत्मतत्त्वना सम्बन्धदर्शन, ज्ञान अने आश्रित आटे ए आत्ममयी प्रवृत्ति होव से. तो पश्य आत्मना देहवाक वाक्य प्रमाणरूपमा प्रदर्शित करे से—

श्रीश्री प्रथम से आयावादी आ प्रस्तुत-वाक्य वाक्यने ए अर्थने से अं पुत्र

यच्चैकपदं नास्ति किन्तु सामासिकम्, तदपि व्युत्पत्तिमन्वे सत्यपि सार्थकं नास्ति, यथा खरविषाणादिकमिति । तत्रानैकान्तिकच्चापत्तिदोषस्तत्परिहारार्थमेकपदत्वमिति ।

ननु देह एव जीवपदस्यार्थोऽस्तु कथं पुनरात्मा विज्ञायेत । देहरूपेऽर्थे जीवशब्दप्रयोगोऽपि दृष्टः, यथा—‘अयं जीवः, तस्मान्न हन्तव्यः’ इति । अतो देह एव जीवशब्दार्थतया ग्रहीतव्यः, इति चेन्न, पर्यायशब्दभेदाद् देहजीव-शब्दयोरर्थो भिन्न एवेति बोधनात्, यथा घटाकाशयोः, तत्र—घटकुम्भकलशादयो घटशब्दस्य पर्यायाः, आकाशानभोव्योमादयस्त्वाकाशशब्दपर्यायाः, अतस्तयोरर्थे चाला’ विशेषण लगाया है । तथा जो एक पद नहीं है किन्तु समासयुक्त पद है वह व्युत्पत्तिवाला होते हुए भी सार्थक नहीं होता । जैसे खरविषाण आदि पद । इस में अनैकान्तिकता हटाने के लिए ‘एकपद’का प्रयोग किया गया है ।

शङ्का—जीव पदका अर्थ देह ही क्यों न मान लिया जाय ? आत्मा अर्थ कैसे समझा जाय ? देह के अर्थ में जीव शब्दका प्रयोग देखा भी जाता है, जैसे ‘यह जीव है, अतः हनन करने योग्य नहीं है’ । इस लिए जीव शब्द का अर्थ शरीर ही लेना चाहिए ।

समाधान—देहके और जीव के पर्यायवाची शब्द अलग अलग हैं, अतः दोनों का अर्थ अलग-अलग ही मानना चाहिए । जैसे घटके पर्यायवाची कुम्भ, कलश आदि शब्द अलग हैं, और आकाश के पर्यायवाची शब्द नभ, व्योम, गगन आदि आप्यु छे तथा जे अेक पद नथी परतु समासयुक्त पद छे ते व्युत्पत्तिवाणु छेवा छताय सार्थक थतु नथी जेभ भरविषाणु आदि पद, तेभा अनैकान्तिकता उहाववा माटे—‘अेक पद’नेा प्रयोग करेत्ता छे

शंका—‘एव’ पदनेा अर्थ देह शा माटे मानवाभा नथी आवतो ? आत्मा अर्थ केम समन्वय छे ? देहना अर्थभा एव शब्दनेा प्रयोग जेवाभा पणु आवे छे. जेभ—‘आ एव छे, तेथी उणुवा योज्य नथी’ अेटला माटे एव शब्दनेा अर्थ शरीर न लेवो जेध अे

समाधान—देह अने एवना पर्यायवाची शब्द नूहा नूहा छे तेथी अे अनेना अेध नूहा-नूहा मानवो जेध अे जेभ घटना पर्यायवाची कुल, कलश आदि शब्द अलग छे, अने आकाशना पर्यायवाची शब्द-नभ, व्योम, गगन आदि शब्द अलग छे अे कारणुथी घटनेा अर्थ अने आकाशनेा अर्थ अलग छे अे

चेतना चात्मद्रव्यादात्मगतान्यसुखादिगुणतत्त्वानपायिनो । सामेवाभिस्य ज्ञान्दरुईना-  
दिविषयापयोगानां भिन्नभिन्नसमयवर्तिनां प्रैकात्मिकः प्रवाहो भवति । तस्यामेत-  
नायाः कार्यरूपा पर्यायप्रवाहः स्वरूपेणोपयोग एव ।

उपयोगात्मकपर्यायप्रवाह इव सुखदुःखवेदनात्मकपर्यायप्रवाहस्तथा प्रवृत्त्या-  
त्मकपर्यायप्रवाहादयोऽनन्तपर्यायप्रवाहा सह-युगपत् प्रवर्तन्ते । अतश्चेतनागुण  
इवात्मनि आनन्दवीर्यप्रभृत्येकैकगुणस्वीकारणीयतयाऽनन्तगुणाः सिध्यन्ति ।

आत्मनि चेतनाऽनन्दवीर्यादिगुणानां भिन्नभिन्ना विविधपर्याया  
एकस्मिन् समय सद्युपलभ्यन्ते परन्तु एकस्य चेतनागुणस्य विविधाउपयोगपर्याया

के द्वारा आत्मा नाना प्रकार के उपयोगों के रूप में परिणत होता है किन्तु चेतना,  
आत्मद्रव्य के रूप में तथा आत्मा में रहने वाले सुख आदि गुणों के रूप में  
सदा विद्यमान रहती है—कभी नष्ट नहीं होती उस के आधार पर ज्ञान दर्शन आदि  
भिन्न भिन्न समयों में होने वाले अनेक उपयोगों का प्रवाह बहता है । उस चेतना  
का कार्यरूप पर्याय-प्रवाह स्वरूपसे उपयोग ही है ।

उपयोगात्मक पर्याय-प्रवाह के समान सुख-दुःखवेदनरूप पर्याय का  
प्रवाह है, तथा प्रवृत्त्यात्मक पर्यायप्रवाह आदि अनन्त पर्याय-प्रवाह एक साथ जारी  
रहते हैं अतः चेतनागुण के समान आत्मा में आनन्द, वीर्य आदि एक एक गुण  
स्वीकार करने योग्य होने से अनेक गुण सिद्ध होते हैं ।

आत्मा में चेतना सुख वीर्य आदि गुणों की भिन्न विविध पर्यायों एक ही  
समय में उपलब्ध होती हैं, किन्तु एक ही समय में अनेक चेतनागुणों की विविध

तथा आत्मामां रहेवचाण्य शुभ आदि सुखेना रूपमां दुःखेषां विद्यमान रहे से  
केवल वचन पक्ष नाश प्रमती नहीं, तेना आधार पर ज्ञान, दर्शन आदि भिन्न  
भिन्न समयोंमां भवावाण्य अनेक उपयोगेना प्रवाह पडैते रहे से ते चेतनामा  
कार्यरूप पर्यायप्रवाह स्वरूपेणोपयोग एव

उपयोगात्मक पर्याय-प्रवाहना समान सुख-दुःखवेदनरूप पर्यायने प्रवाह  
से तथा प्रवृत्त्यात्मक पर्याय-प्रवाह आदि अनन्त पर्यायप्रवाह अनेक साथ जारी रहे  
से तेकी चेतनागुण समान आत्मामा अनेक वीर्य आदि अनेक-अनेक सुख स्वीकार  
करना योग्य होवासी अनन्त सुख सिद्ध भाव से

आत्मामा चेतना, सुख, वीर्य आदि सुखेनी भिन्न-भिन्न विविध पर्यायों  
अनेक समयमां उपलब्ध भाव से परन्तु अनेक समयमां अनेक चेतनागुणनी

જાણેજ્જા ' ઇત્યાદિ—' સોઽહ ' ઇત્યન્તં પ્રાગ્વ્યાખ્યાતં ચ ( આચા૦ ૧ અ૦ ૧ ૩૦ ) ।  
 ' અત્થિ આયા ' ( અસ્ત્યાત્મા ) ઈતિ । ' અત્થિ જીવા ' ( સન્તિ જીવાઃ ) ઈતિ ।  
 ' એ આયા ' ( એક આત્મા ) ( સ્થા૦ ૧ સ્થા૦ ૧ ૩૦ ) ઈતિ ।

“ કઙ્કિહા ણં મતે ! દ્વવા પ્ણત્તા ? ગોયમા ! દુવિહા પ્ણત્તા, તંજહા-  
 જીવદ્વવા ય, અજીવદ્વવા ય ” ( અનુ સૂ. ૧૪૧ )

ઇત્યાદીન્યનુસન્ધેયાનિ । અન્યેઽપિ સાંખ્યાદયઃ પ્રાયશ સ્વીકુર્વન્ત્યેવ  
 શરીરાન્નિન્નતયાઽસ્ત્મનોઽસ્તિત્વમિતિ ।

### આત્મનો દ્રવ્યત્વનિરૂપણમ્—

અયમાત્મા દ્રવ્યમસ્તિ, ચેતનાધનન્તગુણવત્ત્વાત્, જ્ઞાનદર્શનલક્ષણવિવિ-  
 ધોપયોગાધનન્તપર્યાયવત્ત્વાચ્ચ । ચેતનાદ્વારેણાત્મા નાનારૂપોપયોગરૂપેણ પરિણમતે ।

‘ સે જં પુણ જાણેજ્જા ’ સે લેકર ‘ સોઽહ ’ તક પહેલે વ્યાખ્યાન ક્રિયા જા ચુકા  
 હૈ । ( ભાચા ૧ અ ૧ ૩ ) તથા ‘ અત્થિ આયા ’ ‘ અત્થિ જીવા ’ ‘ એ આયા ’  
 ( સ્થા ૧ સ્થા ૧ ૩ ) તથા ‘ કઙ્કિહા ણં મંતે દ્વવા પ્ણત્તા ? ગોયમા ! દુવિહા  
 પ્ણત્તા, તજહા-જીવદ્વવા ય અજીવદ્વવા ય, ( અનુ સૂ. ૧૪૧ ) ઇત્યાદિ અનેક  
 આગમવાક્ય સમસ્ર લેને ચાહિણ । દૂસરે સાખ્ય વગૈરહ મી પ્રાય ગરીર સે મિન્ન આત્મા  
 કા અસ્તિત્વ સ્વીકાર કરતે હૈ ।

### આત્માકા દ્રવ્યત્વનિરૂપણ—

આત્મા દ્રવ્ય હૈ, કયોં કિ વહ ચેતના આદિ અનન્ત ગુણોં સે યુક્ત હૈ  
 ઔર વહ જ્ઞાનોપયોગ તથા ઢર્ગનોપયોગ આદિ અનન્ત પર્યાયોં વાલા મી હૈ । ચેતના

જાણેજ્જા' થી લઈને 'સોઽહ' સુધી પહેલા વ્યાખ્યાન કરી દીધું છે ( અનુ ૧-અ  
 ૧-૭ ) તથા 'અત્થિ આયા' 'અત્થિ જીવા' 'એ આયા' (સ્થા ૧ સ્થા ૧ ૭) 'કઙ્કિહા ણં  
 મતે ! દ્વવા પ્ણત્તા ? ગોયમા ! દુવિહા પ્ણત્તા, તંજહા-જીવદ્વવા ય અજીવદ્વવા ય'  
 (અનુ સૂ ૧૪૧) ઇત્યાદિ અનેક આગમ-વાક્ય સમસ્ર લેવા ભેદએ ખીળ સાખ્ય  
 શાસ્ત્ર વગેરે પણ પ્રાય શરીરથી ભિન્ન આત્માના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરે છે.

### આત્માનુ દ્રવ્યત્વનિરૂપણ—

આત્મા દ્રવ્ય છે, કેમકે તે ચેતના આદિ અનન્ત ગુણોથી યુક્ત છે, અને તે  
 જ્ઞાનોપયોગ તથા ઢર્શનોપયોગ આદિ અનન્ત પર્યાયો વાળો પણ છે ચેતનાદ્વારા  
 આત્મા નાના પ્રકારના રૂપમા પરિણુત થાય છે. પરંતુ ચેતના આત્મદ્રવ્યના રૂપમા

अनन्तगुणानामस्तम्भसमुदाय एव द्रव्यम्, तथाप्यात्मनश्चेतनाऽऽनन्द-  
 चारित्र्यीर्यादयो गुणा परिमिता एव साधारणधियां छप्रस्थानां ज्ञेया भवन्ति,  
 न तु सर्वे गुणाः । इदमत्र कारणम्-विशिष्टज्ञानमन्तरेमात्मना सर्वे पर्यायप्रवाहा  
 विहातुमशक्याः भवन्ति । यो य पर्यायप्रवाहः साधारणमुद्रया हातु शक्यते  
 सम्कारणीभूतानां गुणानां व्यवहारः क्रियते, अतस्ते गुणा व्यवहार्या भवन्ति ।  
 यथा-आत्मनश्चेतनाऽऽनन्दचारित्र्यीर्यादयो गुणा व्यवहार्याः सन्ति । ज्ञेयास्तु  
 सर्वे केवलमिगम्या इति ।

त्रैकालिकानामनन्तपर्यायामाभेदैकप्रवाहस्य कारणीभूतकैस्यैकगुणोऽस्ति,  
 तादृशानन्तगुणानां समुदायो द्रव्यम् । एतदपि कथञ्चिद् भेदविवक्षया । अमेद-

अनन्त गुणो का अस्तम्भ समुदाय ही द्रव्य है फिर भी आत्मा के चेतना  
 सुप्त, चारित्र्य धर्म आदि गुण साधारणबुद्धि वाले छप्रस्था के द्वारा परिमित ही जाने  
 जाते हैं, सब गुण नहीं जाने जाते । इस का कारण यह है कि-विशिष्ट ज्ञान के बिना  
 आत्मा के समस्त पर्याय-प्रवाहों को ध्यानना अशक्य है । जो जो पर्याय-प्रवाह  
 साधारण बुद्धि के द्वारा जाना जा सकता है उसके कारणभूत गुणों का व्यवहार किया  
 जाता है, अत एव व गुण व्यवहार्य होते हैं, जैसे-आत्मा के चेतना, सुप्त चारित्र्य और  
 धर्म आदि गुण व्यवहार्य होते हैं । शेष सब केवलमिगम्य हैं ।

तीन काल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों के एक-एक प्रवाह का कारण एक-एक  
 गुण है, और ऐसे अनन्त गुणों का समुदाय द्रव्य है । यह कथन क्वचित् भेद

अनन्त बुद्धेयानां अण्ड समुदाय एव द्रव्यं च, तो पक्ष आत्माना चेतना सुप्त  
 चारित्र्य, नीच आदि अण्ड साधारण बुद्धिवाण्य छप्रस्थाद्वारा परिमित-भवेदिति च  
 लक्षणाभिं आवे च परंतु सर्वं अण्ड लक्षणाभिं आवता नधी तेषु कारणं ज्ञे च  
 हे-विशिष्ट ज्ञान बिना आत्माना नमस्त पर्याय-प्रवाहोने लक्षणा अस्तम्भ च जे जे  
 पर्याय-प्रवाह साधारण बुद्धिवाण्य द्वारा लक्षणी शक्य च तेना कारणभूत बुद्धेयानां  
 व्यवहार करवानां आवे च जे कारणधी ते अण्ड व्यवहार्य भाव च जेभ आत्माना  
 चेतना सुप्त, चारित्र्य जाने नीच आदि अण्ड व्यवहार्य भाव च जाही सब  
 केवलमिगम्य च

अण्ड हात सबधी अनन्त पर्यायाना जेक-जेक प्रवाहनु कारण जेक-जेक  
 अण्ड च जाने जेच अनन्त बुद्धेयानां समुदाय ते द्रव्यं च, अण्ड कथन क्वचित्

एकस्मिन् समये न समुपलभ्यन्ते, तथैकस्यानन्दगुणस्य वा विविधा वेदनपर्याया एकस्मिन् समये नोपलभ्यन्ते ।

प्रत्येकगुणस्यैकस्मिन् समये एक एव पर्यायः प्रकटीभवति । यथा-जलावस्थितस्यापि नरस्य शीतोष्णोपयोगौ न युगपद् भवतः । उष्णोपयोगसमये शीतोपयोगो नोपलभ्यते, शीतोपयोगसमये चोष्णोपयोगोपि नैवेति ।

आत्मा नित्यः । तस्य चेतनादिगुणा अपि नित्याः । परन्तु चेतनान्य उपयोगपर्यायो न नित्यः, सतु सदैवोत्पादविनाशशालितया व्यक्तिरूपेणानित्यः । उपयोगपर्यायप्रवाहस्तु त्रैकालिकतया नित्य इति ।

उपयोगरूप पर्याये उपलब्ध नहीं होती । उसी प्रकार एक ही समयमें अकेले आनन्दगुणकी भी विविध वेदनरूप पर्याये उपलब्ध नहीं होती ।

प्रत्येक गुण की एक समय में एक ही पर्याय प्रकट होती है, परन्तु जैसे-जल में स्थित पुरुष के शीत और उष्ण, दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते । उष्णोपयोग के समय शीतोपयोग नहीं पाया जाता, और शीतोपयोग के समय उष्णोपयोग नहीं पाया जाता ।

आत्मा नित्य है, उसके चेतना आदि गुण भी नित्य है, परन्तु चेतनान्य उपयोग-पर्याय नित्य नहीं हैं, वह सदैव उत्पन्न और विनष्ट होती रहती है, अतः व्यक्तिरूपसे अनिय है, उपयोग-पर्याय का प्रवाह त्रिकालवर्ती होनेके कारण नित्य है ।

विविध उपयोगरूप पर्याये उपलब्ध होती नहीं और प्रमाणे एक व समयमा एकदा आनन्द शुष्णनी पशु विविध वेदनरूप पर्याये उपलब्ध होती नहीं ।

प्रत्येक शुष्णनी एक समयमा एकव पर्याय प्रकट थाय छे, जेभ जलमा उल्ला रहेला पुङ्घने शीत अने उष्ण, अे भने उपयोग एक साथे थशे नछि, उष्णोपयोगना समये शीतोपयोग थशे नछि अने शीतोपयोगना समये उष्णोपयोग जल्लुशे नछी ।

आत्मा नित्य छे, तेना चेतना आदि शुष्ण पशु नित्य छे, परन्तु चेतनान्य उपयोग-पर्याय नित्य नहीं, ते हुमेशा उत्पन्न अने नाश थती रहे छे, तेथी व्यक्तिरूपथी अनित्य छे, ते पशु उपयोग-पर्यायने प्रवाह त्रिकालवर्ती होवाथी नित्य छे ।

आत्मनः स्वरूपम्—  
आत्मनः स्वरूपं तावदुच्यते—

आत्मा—(१)—जीवः (२)—नित्यः (३)—चेतनावान्, (४)—उपयोगवान्, (५)—परिणामी, (६)—प्रभुः, (७)—कर्ता, (८)—साक्षाद्मोक्षा, (९)—स्वशरीर-परिणामः, (१०)—अमूर्ता, (११)—प्रतिशरीरं भिन्नः, (१२)—पौत्रच्छिन्नकर्मस्युक्ता, (१३)—ऊर्ध्वगतिस्वीलभ ।

तथाऽऽत्मनो जीवत्वादिस्वरूपं निरूप्यते—

(१) जीवत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयमेव सत्ता-चेतन्य-ज्ञानादिरूपैः शुद्धप्राणैः, तथा

आत्मा का स्वरूप—

अब आत्मा का स्वरूप करते हैं —

आत्मा—(१)—जीव है, (२)—नित्य है, (३)—चेतनावान् है, (४)—उपयोगवान् है, (५)—परिणामी है (६)—प्रभु है (७)—कर्ता है, (८)—साक्षाद् मोक्षा है, (९)—अपने शरीर के बराबर है, (१०)—अमूर्त है, (११)—प्रत्येक शरीर से भिन्न है, (१२)—पौत्रच्छिन्न कर्मों से युक्त है, और (१३)—ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला है ।

उन में अब आत्मा क जीवत्वादि स्वरूप का निरूपण करते हैं—

(१) जीवत्व का निरूपण—

आत्मा निश्चयमेव से सत्ता चेतन्य और ज्ञान आदिरूप शुद्ध प्राणों से तथा

आत्मानु स्वरूप—

इसे आत्मानु स्वरूप करते हैं—

आत्मा—(१) जीव है (२) नित्य है, (३) चेतनावान् है (४) उपयोगवान् है (५) परिणामी है (६) प्रभु है (७) कर्ता है (८) साक्षात् मोक्षा है (९) अपने शरीर के बराबर है, (१०) अमूर्त है (११) प्रत्येक शरीर से भिन्न भिन्न है (१२) पौत्रच्छिन्न कर्मों से युक्त है (१३) ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला है

तथा आत्मानु सत्तादि स्वरूपं निरूप्यते इत्यादि—

(१) जीवत्व निरूपण—

आत्मा निश्चयमेव सत्ता, चेतन्य और ज्ञान आदिरूप शुद्ध प्राणों से तथा

દ્રવ્યોના તુ પર્યાયાઃ સ્વસ્વકારણીભૂતસ્ય ગુણસ્ય સ્વરૂપાઃ, ગુણા અપિ દ્રવ્યસ્વરૂપા इति ગુણપર્યાયાત્મકમેવ દ્રવ્યમિત્યુચ્યતે ।

દ્રવ્યેષુ સર્વે ગુણા એકરૂપા ન સન્તિ । તત્ર કતિચન સાધારણાઃ અનેક-દ્રવ્યવર્તિનઃ સર્વદ્રવ્યવર્તિનશ્ચ । યથા-અસ્તિત્વ-પ્રદેશવત્ત્વ-જ્ઞેયત્વાદયઃ સર્વદ્રવ્યવર્તિનઃ, નિષ્ક્રિયત્વાઽચેતનત્વાઽરૂપિત્વાદયોઽનેકદ્રવ્યવર્તિનઃ । કતિચિદસાધારણા ગુણા એકદ્રવ્યમાત્રવર્તિનઃ સન્તિ । યથા-આત્મનેશ્ચેતનાઽઽનન્દચારિત્રવીર્યાદયઃ । સ્વસ્વાઽસાધારણગુણાનાં તજ્જન્યપર્યાયાણાં ચાપેક્ષયા પ્રત્યેકદ્રવ્યમન્યદ્રવ્યાદ્ મિન્નમસ્તીતિ બોધ્યમ્ ।

વિવિક્ષા સે હી હૈ । અમેદ-વિવિક્ષા સે તો પર્યાયેં અપને કારણભૂત ગુણ સે અભિન્ન હૈં ઔર ગુણ, દ્રવ્ય સે અભિન્ન હૈ, અત ગુણપર્યાયરૂપ હી દ્રવ્ય કહલાતા હૈ ।

દ્રવ્ય મેં સમી ગુણ એકરૂપ નહીં હૈં । કોઈ-કોઈ ગુણ સાધારણ હૈ, અર્થાત્ સામાન્ય રૂપ સે અનેક દ્રવ્યો મેં પાચે જાતે હૈં, યા સમસ્ત દ્રવ્યો મેં પાચે જાતે હૈં । જૈસે-અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ, ઔર જ્ઞેયત્વ, યે ગુણ સમસ્ત દ્રવ્યો મેં પાચે જાતે હૈં ।

નિષ્ક્રિયત્વ, અચેતનત્વ, ઔર અરૂપિત્વ આદિ ગુણ અનેક દ્રવ્યવર્તી હૈં । કોઈ-કોઈ ગુણ અસાધારણ હૈં-સિર્ફ એક, દ્રવ્ય મેં રહતે હૈં, જૈસે-આત્મા કે ચૈતન્ય, સુખ, ચારિત્ર, વીર્ય આદિ ગુણ । અપને-અપને અસાધારણ ગુણો ઔર ગુણો સે ઉત્પન્ન પર્યાયોં કી અપેક્ષા પ્રત્યેક દ્રવ્ય દૂસરે દ્રવ્ય સે મિન્ન હૈ, ઈસા જાનના ચાહિદ્ ।

લેદવિવિક્ષાથી જ છે અલેદવિવિક્ષાથી તો પર્યાયો પોતાના કારણભૂત શુદ્ધથી અભિન્ન છે, અને શુદ્ધ દ્રવ્યથી અભિન્ન છે તેથી શુદ્ધપર્યાયરૂપજ દ્રવ્ય કહેવાય છે

દ્રવ્યમા સર્વ શુદ્ધ એકરૂપ નથી, કોઈ કોઈ શુદ્ધ સાધારણ છે, અર્થાત્-સામાન્ય રૂપથી અનેક દ્રવ્યોમા જોવામા આવે છે અથવા સમસ્ત દ્રવ્યોમા જોવામા આવે છે જેમ-અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ અને જ્ઞેયત્વ, એ શુદ્ધ સમસ્ત દ્રવ્યોમા જોવામા આવે છે નિષ્ક્રિયત્વ, અચેતનત્વ, અને અરૂપિત્વ આદિ શુદ્ધ અનેક દ્રવ્યવર્તી છે કોઈ કોઈ શુદ્ધ અસાધારણ છે-માત્ર એક દ્રવ્યમા રહે છે જેવી રીતે આત્માના ચૈતન્ય, સુખ, ચારિત્ર, વીર્ય આદિ શુદ્ધ પોત-પોતાના સાધારણ શુદ્ધો અને શુદ્ધોથી ઉત્પન્ન પર્યાયોની અપેક્ષા પ્રત્યેક દ્રવ્ય ધીજ દ્રવ્યથી મિન્ન છે, એમ સમજવુ જોઈએ.



दहन-पवन-गगनरूपप्रभृतेषु शुन्युपरि मिलितेषु चेतनालक्षण आत्मा कथं नोपलभ्यते ? ।

यद्वा-मृतशरीरे पञ्चभूतसद्भावेऽपि चेतनालक्षण आत्मा नोपलभ्यते । अतोऽप्यमात्मा जडरूपपाञ्चमौतिकदेहाद् भिन्नो निर्भीयते ।

अपरञ्च-आत्मना दृढरूपत्वस्वीकारे कृतनाशोऽकृताभ्यागमभाष्येत । कृतस्य कर्मणः फलप्राप्तिं विनैव नाशः स्यात्, अकृतस्य कर्मणः फलप्राप्तिश्च । अकृतोः फलप्राप्तिः, कृतस्य नति इयमयुक्तम् । तस्मात्-आत्मा दृशद् भिन्नो जन्मान्तरसंक्रान्तोऽपीति निश्चयम् ।

होला है तो चेतनारूप आत्मा क्या नहीं पैदा हो जाता, वही पांच भूतों का संयोग विद्यमान है और उसीसे आत्मा की उत्पत्ति मानते हो ।

अथवा-मृत शरीर में पांच भूतों का सम्मेलन होने पर भी चेतनस्वरूप आत्मा क्या उपलब्ध नहीं होता ? इस से निश्चित होता है कि आत्मा जडरूप पांच भूतों से भिन्न है और नित्य है ।

और भी आत्मा को देहरूप स्वीकार करने से कृतनाश और अकृताभ्यागम दोष की प्राप्ति होगी । किण्णं कृणु कर्म फलं दिव्यं विना ही नाशो भवत्यग, और अकृत कर्म के फल को समझना पड़ेगा । कर्म न करने वाला फल भोगे और करने वाला फल से बच जाय यह होना बातें अनुचित है, अतः अथ यह निश्चय कर लेना चाहिए कि-आत्मा शरीर से भिन्न है और जन्मान्तर में गमन करता है ।

चेतनारूप आत्मा कैसे पैदा होता नहीं ? यदि पांच भूतोंसे संयोग विद्यमान है अने तेभ्यो धी तमे ( नास्तिको ) आत्मज्जी उत्पत्ति भावो छे ?

अथवा-भूत्यु पश्चिमा शरीरभा पाञ्च भूतेषु साक्षात् होना उत्तम चेतनस्वरूप आत्मा कैसे उपलब्ध होता नहीं ? अने कारणधी निश्चय भावो छे - आत्मा जड स्वरूप पाञ्चभूतधी विद्यो छे अने नित्य छे

अने जीव्य अने पश्यो छे - आत्मज्जने देहरूप स्वीकार करवाधी कृतनाश अने अकृताभ्यागम दोषधी प्राप्ति करे, करेला कर्म इण आत्मा विना न नाश करे करे अने अकृत-नदिके करेला कर्मज्जु इण सोजवपुं पश्ये कर्म नदिके करवाचरज्जने कर्मज्जु इण सोजवपुं पदे, अने कर्म करवाचर इण सोजववाभाधी जवनी अथ आ अने वपुं अनुचित छे अने कारणे अने निश्चय करी लेवे अने अने दे आत्मा शरीरधी भिन्न छे, अने जन्मान्तर गमन करे छे

વ્યવહારનયતો યથાસંભવં ક્ષાયોપશમિકૈરિન્દ્રિયાદિદ્રવ્યપ્રાણૈશ્ચ જીવતિ, જીવિવ્યતિ, જીવિતવાંશ્ચેત્યતોજ્યમાત્મા 'જીવઃ' ઇત્યુચ્યતે ।

“અયમાત્મા ન દેહાદન્યઃ, નાપિ જન્માન્તરસંક્રાન્ત ” ઇતિ નાસ્તિકમતં નિરાકર્તુમુક્તમ્—‘અયમાત્મા જીવઃ’ ઇતિ । પૂર્વભવસંસ્કારં વિના કથમિદ મમૂત એવ વાલો માતુઃ સ્તન્યપાને પ્રવર્તતે । પ્રવૃત્તિ પ્રતિ સ્વકૃતિસાધ્યત્વસ્યેષ્ટસાધનતાજ્ઞાનસ્ય ચ કારણતયા વાલસ્ય તજ્ઞાનજનકપૂર્વભવીયસંસ્કારોઽસ્તીતિ વિજ્ઞાયતે । તસ્માદાત્મનઃ પૂર્વભવસમ્બન્ધોઽવધાર્યતે । તેન ચ દેહમિન્નત્વમપિ જ્ઞાયતે ।

અયમાત્મા યદિ પાશ્ચભૌતિકદેહરૂપઃ સ્યાત્, તર્હિ મૃન્મયમાખ્દ-સલિલ-

વ્યવહારનય સે યથાસંભવ ક્ષાયોપશમ-જન્ય ઇન્દ્રિયાદિ દ્રવ્યપ્રાણો સે જીવિત હૈ, જીવિત રહેગા ઓર જીવિત થા, ઇસ કારણ આત્મા ‘જીવ’ કહલાતા હૈ ।

“આત્મા શરીર સે ભિન્ન નહી હૈ ઓર ન એક જન્મ સે દૂસરે જન્મ મેં જાતા હૈ” નાસ્તિકો કે ઇસ મત કા નિરાકરણ કરને કે લિએ કહા ગયા હૈ કિ- “આત્મા જીવ હૈ” । પૂર્વભવ કે સસ્કાર કે વિના ઇસ ભવ મેં તત્કાલ જન્મા હુઆ શિશુ માતા કે સ્તન-પાન મેં કૈસે પ્રવૃત્ત હો સકતા હૈ ?, શિશુ કી ઇસ પ્રવૃત્તિ સે સિદ્ધ હોતા હૈ કિ ઉસ મે પૂર્વ ભવ કા સસ્કાર વિદ્યમાન હૈ । ઇસ સે નિશ્ચિત્ત હો જાતા હૈ કિ-આત્મા પૂર્વ ભવ મેં મી થા, ઓર ઇસ કારણ વહ શરીર સે ભિન્ન મી માલુમ હોતા હૈ ।

પાવ મૂતોં સે વના હુઆ શરીર હી યદિ આત્મા હૈ તો મિટ્ટી કા પાત્ર, પાની, પાવક- (અગ્નિ), પવન ઓર આકાશ રૂપ પાત્રોં મૂતોં કા ચૂલે કે ડપર જવ સયોગ

વ્યવહારનયથી યથાસંભવ ક્ષાયોપશમજન્ય ઇન્દ્રિયાદિ દ્રવ્યપ્રાણોથી જીવિત છે, જીવિત રહેશે અને જીવિત હુતો, તેથી આત્મા ‘જીવ’ કહેવાય છે “આત્મા શરીરથી ભિન્ન નથી, અને એક જન્મથી બીજા જન્મમાં જતો નથી” નાસ્તિકોને એ પ્રમાણે જે મત છે, તેનું નિરાકરણ કરવા માટે કહ્યું છે કે “આત્મા જીવ છે.” પૂર્વ ભવના સસ્કાર વિના આ ભવમાં તત્કાલ જન્મ પામેલું બાળક માતાના સ્તનપાનમાં (ધાવવામાં) પ્રવૃત્તિ કેવી રીતે કરી શકે છે ?, બાળકની આ પ્રવૃત્તિથી સિદ્ધ થાય છે કે -તેનામાં પૂર્વ ભવના સસ્કાર વિદ્યમાન છે આ કારણથી નિશ્ચય થાય છે કે આત્મા પૂર્વભવમાં પણ હુતો, અને તે કારણથી આત્મા શરીરથી ભિન્ન માલુમ પડે છે

પાત્ર મૂતોથી અનેક શરીર જ જે આત્મા છે તો માટીનું પાત્ર, પાણી, અગ્નિ, આકાશ, પવન વગેરે પાત્ર મૂતોનો ચુલા ઉપર વ્યારે સયોગ થાય છે, તો તે વખતે

यथा—जातिस्मरणशक्त्या मृगापुत्रवत् सयमी पूर्वमेव स्मरति, व्याघ्यादिकारणेन नटदृष्टिः पूर्वाभुवत् रक्तपीठादिबर्णैः, नटभयवशात् शब्दं स्मरति । यथा गेहगवाधैः पूर्वदृष्टस्य पूर्वभुवस्यान्यमानुस्मर्ता दशदशः ।

(२) नित्यत्वनिरूपणम्—

अपमात्मा नित्यत्वादमूर्त इति विज्ञायत । अमूर्तत्वान्च देहादन्य इति निश्चीयत । तथाहि—आत्माऽनुत्पत्तौ सम्पामविनाशी, तथा सर्वकालावस्थायी । तथा—आत्मा लणापक्षपापि न निरन्वयनाश्रयान् ; वस्तुत्वे सति उत्पत्तेरभावात्, ज्ञान स मृगापुत्र को पूर्व भव का स्मरण हुआ था । कर्ष—कोर्ष सयमी अपन पूर्वभव का स्मरण करता है । रोग आदि किसी कारण से भ्रिस की दृष्टि नष्ट हो गई है, यह पुरुष पहले अनुभव किंग हुए लस पील आदि रंगा का स्मरण करता है और भ्रिस का नष्ट हो गये हैं वह दन्त का स्मरण करता है । किसी पर की भ्रिकिया के द्वारा पदल देल हुए पशुओं का या सुन हुए दम्प्रा का देवदत्त का अन्यत्र स्मरण होता है, अतः पव देवदत्त भ्रिकिया से भिन्न है । उसी प्रकार आत्मा इन्द्रिया से भिन्न है ।

(२) आत्माकी नित्यता—

आत्मा नित्य हान के कारण अमूर्त प्रवृत्त होता है और अमूर्त होने के कारण वेद से भिन्न है । यह इस प्रकार—आत्मा उत्पत्तिरहित और अविनाशी तथा सर्वकाल में स्थायी है तथा आत्मा क्षण की अपेक्षा भी निरन्वय ( ममून् ) माशकान् मही है तथा कि वस्तु होने पर भी उस की उत्पत्ति मही होती, अत आत्मा । ज्ञानधी मृगापुत्रने पूर्वभवतु स्मरन्तु यमु दत्तु केअ केअ सयमीने पेतान्त पूर्व भवतु स्मरन्तु आश है शेष आदि काई शरन्तुधा लेनी दृष्टि (नेत्रभी जेवानी शक्ति) नाश पाया तज छ ते पुरूप प्रथम अनुभवक्षा लात, पीया आदि रजितु स्मरन्तु करे छ अने जेना ज्ञान नष्ट थज तथा दोष—(साजगवानी शक्ति नाश पायी होत) ते शब्दतु स्मरन्तु करे छ केअ वरनी अक्षीयेया द्वारा प्रथम जेयेक्षा पद्यधीनु अथवा तो साजनेका शब्दतु देवदत्तने अन्वय-धीन शब्दे स्मरन्तु थय छ जे शरन्तुभी देवदत्त अ क्षीयेधी भिन्न छ त प्रभाजे प्य भा छन्द्रियेधी भित छ

(२) आत्माकी नित्यता—

आत्मा नित्य होवाना शरन्तु अमूर्त छप्राय छ अने अमूर्त होवाना शरन्ते, देवधी भिन्न छे ते आ प्रभाजे—अथवा छ उत्तिरहित अने अचिन्तनी छ तथा अथ शब्दधी स्थायी छे अने लजनी अपेक्षा पव निरन्वय (अमूर्त) नाशकान् नधी,

आत्मा देहे कदाचित्तिष्ठति, कदाचिन्न तिष्ठति, अतः तस्याभावस्तत्र नियतो नास्ति । तस्माद् देहादन्य इति मन्तव्यम् । एवमनुमानप्रयोगः—

आत्मा—देहादन्यः, तद्भावेऽपि तत्र तस्यानियमेनाभावात्, उपाश्रयगतसाधु-  
श्रावकवत् । ननु देहे जीवस्य गमनागमन न दृश्यते, तथा च जीवस्य देहे सदा  
सद्भावसत्त्वेनाभावरूपो हेतुरप्रसिद्ध इति चेन्न, मृतशरीरे तस्यादर्शनात् ।

यद्वा—आत्मा देहेन्द्रियभिन्नः तद्विगमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात् ।

आत्मा शरीर में कभी रहता है, कभी नहीं रहता, अतः उसका अभाव वहाँ नियत नहीं है । अतः एव मानना चाहिए कि—आत्मा देह से भिन्न है । अनुमान का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए —

आत्मा शरीर से भिन्न है, क्यों कि देह के होने पर भी आत्मा वहाँ नियम से नहीं रहता, उपाश्रय में स्थित साधु श्रावक के समान ।

शका—शरीर में जीव का गमन और आगमन दिखाई नहीं देता अतः वह देह में सदैव विद्यमान रहता है । ऐसी अवस्था में आप का यह अभाव सिद्ध करने वाला हेतु असिद्ध है ।

समाधान—ऐसा कहना समीचीन नहीं है, क्यों कि मृत शरीर में आत्मा मालूम नहीं होता ।

अथवा—आत्मा देह और इन्द्रियों से भिन्न है, क्यों कि उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है । जैसे जातिस्मरण

आत्मा शरीरमा डोळ वण्त रडे छे, डोळ वण्त नथी रडेतो तेथी तेना अभाव त्या शोळ्ळस इपथी नथी तेथी मानवु जेधये डेः—आत्मा देहथी लिन छे. अनुमानने प्रयोग आ प्रमाणे करवे जेधये —

आत्मा शरीरथी लिन छे, केमके देह डोवा छताय आत्मा त्या नियमथी रडेतो नथी, उपाश्रयमा रडेला साधु श्रावक प्रमाणे

शंका—शरीरमा अवतु गमन-जवु, अने आगमन-आवतु ते नजरे जेवामा आवतु नथी, तेथी ते देहमा सदैव विद्यमान रडे छे जेवी अवस्थामा आपने जे अभाव सिद्ध करवानो हेतु असिद्ध छे जेम डेहेवु ते भराभर नथी, केमके मृत शरीरमा आत्मा मालूम पडतो नथी

अथवा—आत्मा देह अने इन्द्रियोथी लिन छे, डारणु डे-तेना नाश थया पथी पथु तेना द्वारा जणुवामा आवेला पदार्थनु स्मरणु थाय छे जेम जातिस्मरणु

त्वामूर्षत्वयोरात्मन्येकान्ततोऽङ्गीकारात् ।

यद्वा-आत्मा नित्यः ससारात्, त्रिकालविषयकक्रियापर्यालोचकत्वात्, 'स एव' इति प्रत्यभिज्ञावत्त्वात् । अनेन हेतुत्रयेण घणिकत्वादो निरस्तः ।

यत्तु-आत्मा एकान्तनित्यः 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इत्यादिवचनमामाभ्यात्, 'स एव भङ्गयोऽत्र' इत्यादिभ्रुतिमामाभ्याच्च, इति, क्वन्तं पुक्तम्, आत्मन एकत्वमावस्थे संसृष्ट्यादिव्यवहारोच्छ्रयापत्तिः स्यात् । अस्मात् कथञ्चिन्नित्यः कथञ्चिन्नित्य इति

में व्यभिचार की आशङ्का नहीं करना क्यों कि आत्मा में नित्यत्व और अमूर्खत्व एकान्त रूप से नहीं माना गया है ।

अथवा-आत्मा नित्य है, क्या कि वह एक गति से दूसरी गति में जाता है, क्या कि वह त्रिकालविषयक क्रियाका भाग्योन्मत्त है, और वह प्रजमिज्ञान ( वह नहीं है इस प्रकार का बोद्धरूप ज्ञान ) प्राप्त है । इन तीन हेतुओं से घणिकत्वाका निराकरण हो गया ।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इत्यादि वचन से और 'स एवः भङ्गयोऽत्र' इत्यादि भ्रुति के प्रमाण से आत्मा एकान्त नित्य सिद्ध होता है । ऐसा कहना भी युक्त नहीं है क्या कि आत्मा का एकान्त नित्य स्वभाव वास्तव मानने से संकरण ( एक कर्म से दूसरे कर्म में जाना ) आदि व्यवहारों का नाश ही जायगा । अत एव कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य आत्मा स्वीकार करना चाहिए ।

अभिवास्नी आशङ्का कस्वी नहीं है कस्वु के आत्मानां नित्यत्व अने अमूर्खत्व अेकान्तत्वरुपयां भानवाभां आन्वु नहीं ।

अथवा-आत्मा नित्य है कस्वु के ते अेक अतिथी वील अतिभां अत्य है कस्वु के-ते त्रिकालविषयक क्रियाने आशोन्मत्त ( विचार करना ) है अने ते प्रत्यभिज्ञान ( अत एव है अे प्रमाणे अेकैरूप ज्ञान ) बाणे है अत तसु हेतुअे वदे कशी अलिङ्गवात्तु निराकरण कर्ष अमु है

" नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि " इत्यादि वचनधी अने स एव भङ्गयोऽत्र इत्यादि भ्रुतिना प्रमाणधी आत्मा एकान्त नित्य सिद्ध बाय है अेव कहेवु ते पद्य बुद्धत नहीं, कस्वु के आत्माने अेकान्त नित्य स्वभाव बाणे भानवाधी अंतरसु ( अेक व अशी वील व अथ अतु ते ) आदि व्यवहाराने नाश अथ अये, अे कस्वुधी कथञ्चित् नित्य अने कथञ्चित् अनित्य आत्मा है अे प्रमाणे स्वीकार कस्वे अेकैरुपे ।

यथा गगनम् । अनुत्पत्तौ मन्व्यामविनाशित्वेन, तथा सर्वकालावम्यायित्वेन, तथा क्षणापेक्षयाऽपि निरन्वयताग्राभावसत्त्वेन चान्मनो नित्यत्व मिष्यति । देहान्मवादिना परिमितकालावस्थायित्वमात्मनो मन्व्यते, तथा क्षणिकत्वादिनापि निरन्वय-क्षणिकपरिणामप्रवाहस्य नित्यत्व स्वीक्रियते । तौ चैवविधिनित्यत्वसाधनेन निराकृतौ । शशशूद्रादावपि जन्माभावसत्त्वेन हेतौ माध्यव्याप्तिर्न स्यादतो वस्तुत्वे सतीत्युक्तम् ।

न चामूर्त्तस्य परमाणो व्यभिचार आगङ्कनीयः, आर्हतमते नित्य-

उत्पत्तिरहित और अविनाशी होने के कारण, तथा सर्वकाल में विद्यमान रहने के कारण और क्षण की अपेक्षा भी समूल नाशवान न होने के कारण आत्मा की नियता सिद्ध होती है । देह को ही आत्मा मानने वाला कड़ता है कि—आत्मा परिमित काल तक टहरता है । तथा क्षणिकवादी भी निरन्वय क्षणिक परिणाम—प्रवाह को नित्य मानता है । इस प्रकार आत्मा की नित्यता सिद्ध करके इन दोनों के मत का निराकरण किया गया है । प्रस्तुत हेतु में 'वस्तु होते हुए भी' यह विशेषण उस लिये लगाया है कि शश—विषाण आदि से व्यभिचार (हेतु हो और साध्य न हो) न हो, क्यों कि उत्पत्ति का अभाव तो उन में भी है किन्तु वस्तुत्व उन में नहीं है ।

अमूर्त्तत्व, परमाणु में नहीं है और वहाँ नित्यत्व हेतु है, इस लिये परमाणु

के भङ्गे वस्तु छत्ताय तेनी उत्पत्ति नथी डोती, जेभङ्गे आकाश. उत्पत्तिरहित अने अविनाशी डोवाना कारखे, तथा सर्वकालमा विद्यमान रहेवाना कारखे, अने क्षणकी अपेक्षाअने पणु समूणगे नाशवान नडि डोवाना कारखे आत्मानी नित्यता सिद्ध थाय छे हेडने ज आत्मा मानवावाणा कडे छे के—आत्मा परिमित काल सुधी थोले छे, तथा क्षणिकवादी पणु निरन्वय क्षणिक—परिणामप्रवाहने नित्य माने छे आ प्रभाखे आत्मानी नित्यता सिद्ध करीने अने जने (हेडवादी अने क्षणिकवादी)ना मतनु निराकरण कथुं छे प्रस्तुत हेतुमा “वस्तु डोवा छत्ताय पणु” अने विशेषण अने कारखुथी आप्युं छे के—शश—विषाण—(ससलाना शिगडा) आदिथी व्यभिचार (हेतु डोय अने साध्य न डोय) न थाय, कारखु के उत्पत्तिने अभाव तो तेमा पणु छे, परतु वस्तुत्व तेमा नथी

अमूर्त्तत्व, परमाणुमा नथी, अने त्या नित्यत्व हेतु छे, अने कारखुथी परमाणुमा

यद्वा—आत्मा नित्यः स्वकारणविभागाभावाद् आकाशवत् । आकाशस्य कारणाभावादेव कारणविभागो नास्ति । यस्तु न नित्यः, स न स्वकारणविभागाभावात्, यथा पटः । दृश्यते हि पटस्तन्तूनां विभागो भवतीति ।

किञ्च—आत्मा नित्यः कारणविनाशभावाद् आकाशवदेव । कारणभावादेव हि कारणस्य विनाशभावात्, यथा गगनमेव । यो न नित्यः, स न कारणविनाशभावात् अर्थात् कारणविनाशवानेव, यथा पटः । दृश्यते हि पटकारणीभूतस्य तन्तोर्विनाशो भवतीति । अयं आत्मा स्वकारणाभावेन कारणविनाशभावात्, तस्मात्नित्य इति । नित्यत्वाद्यममूर्तः, अमूर्तत्वाच्च क्षरीराद् भिन्न इति निश्चीयते ।

अथवा—आत्मा नित्यः है, क्योंकि उस के कारणों का विभाग नहीं है, जैसे आकाश । आकाश के कारणों का अभाव है, इसी कारण उसके कारणों का विभाग भी नहीं है । जो नित्य नहीं है, वह अपने कारणों के विभाग का अभाव आत्म में नहीं होता जैसे—पट । पट से तन्तुओं का विभाग होता दिखाई देता है ।

और भी—आत्मा नित्य है, क्योंकि उसके कारणों के विनाश का अभाव है, जैसे—आकाश । कारणों का अभाव होने से ही कारणों के विनाश का अभाव है जैसे आकाश । जो नित्य नहीं होता वह कारण-विनाशभावात् अभाव में नहीं होता, जैसे पट, देखा जाता है कि—पट के कारणभूत तन्तुओं का नाश हो जाता है । आत्मा के अभाव कारणों का अभाव है अतः वह कारणों के विनाशका अभाव आत्म है, अर्थात् आत्मा के कारण ही नहीं है तो उसके कारणों का अभाव क्या होगा ?

अथवा—आत्मा नित्य है के भेदे तेना कारणेने विभाग नथी, जेभ आकाश कारणेने कारणेने अभाव है तेथी अ तेना कारणेने विभाग पण नथी, जे नित्य नथी ते पोताना कारणेने विभाजन अभाववाणे पण नहि थाव, जेभ पट पण्ठी तनुयेने विभाग अतो जेवामां आवे है

इसी पक्ष—आत्मा नित्य है कारण के तेना कारणेने विनाशने अभाव है जेभ आकाश कारणेने अभाव होवाधी अ कारणेने विनाशने अभाव है जेभ आकाश जे नित्य नथी ते कारणविनाशभाववाणु पण नथी, जेभ पट जेवामां आवे है—पटना कारणभूत तनुयेने नाश थाव है पण आत्मना अभाव कारणेने अभाव है तेथी ते कारणेने विनाशने अभाववाणे है अर्थात् आत्माने

स्वीकर्तव्यम् । द्रव्यार्थिकनयेन नित्यः, पर्यायार्थिकनयेन-अनित्य इति । एवमनङ्गीकारे हि 'संसार'—दित्याद्युक्तहेतूनामसंगतिः स्यात् । आत्मन एकस्वभावत्वस्वीकारे स्वभावान्तरानापत्त्या वर्तमानकालिकभावातिरिक्तं भावान्तरं न लब्धुमर्हेत् । एवमनित्यत्वामूर्तत्वयोरपि स्याद्वाद आलम्बनीयः, अन्यथा व्यवहारोच्छेद-प्रसङ्गः स्यात्, एकान्तामूर्तस्य, तथैकान्ततो देहभिन्नस्य चातिपातादिप्रसंगाभावे सति हिंसादिनिवृत्तिदेशनादिपरकचरणकरणादिवोधकसकलशास्त्रानर्थक्य, तथाऽऽत्मनः संसारगतादिनुद्धारश्च स्यात् ।

आत्मा द्रव्यार्थिकनय से नित्य है और पर्यायार्थिकनय से अनित्य है । ऐसा स्वीकार न करने पर 'संसरण करने से' इत्यादि पूर्वोक्त हेतु असङ्गत हो जायेंगे । एक स्वभाव वाला आत्मा स्वीकार किया जाय तो उस में दूसरे स्वभाव की उत्पत्ति नहीं होगी, और वर्तमानकालीन भाव के अतिरिक्त दूसरा भाव कभी प्राप्त नहीं होगा । इसी प्रकार अनित्यत्व और अमूर्तत्व के विषय में भी स्याद्वादका ही आश्रय लेना चाहिए, अन्यथा व्यवहार के अभाव का प्रसङ्ग आएगा । आत्मा को एकान्त अमूर्त मानने से, तथा देह से एकान्त भिन्न मानने से उस का घात होना असंभव है, और इस दिशा में हिंसा आदि से निवृत्त होने का उपदेश देने वाले चरण—करण आदि के बोधक सब शास्त्र व्यर्थ हो जाएँगे । इस के अतिरिक्त आत्मा का संसाररूपी खड्के से कभी उद्धार भी नहीं होगा ।

आत्मा द्रव्यार्थिक नयथा नित्य छे, अने पर्यायार्थिक नयथा अनित्य छे ओ प्रमाणे स्वीकार नहिं करवाथी 'स संसरेणुं करवाथी' इत्यादि पूर्वोक्त हेतु असंगत थछ जशे ओक स्वभाववाणे आत्मा स्वीकार करवाभा आवशे तो तेभा भील स्वभावनी उत्पत्ति नहिं थाय, अने वर्तमानकालीन भाव जिना भीले भाव कोष पणु वभत प्राप्त नहिं थाय, ओ प्रमाणे अनित्यत्व अमूर्तत्वना विषयभा पणु स्याद्वादने ज आश्रय लेवे जेथजे अन्यथा व्यवहारना अभावना प्रसङ्ग आवशे आत्माने ओकान्त अमूर्त मानवाथी तथा देहथी ओकान्त भिन्न मानवाथी तेना घात थवे असंभव छे, अने ओ दशभा हिंसा आदिथी निवृत्त थवाने उपदेश देवावाणा चरण—करण आदिना बोधक तमाम शास्त्रो व्यर्थ थछ जशे ते सिवाय आत्माने संसाररूपी भाडाथी कोष वभत पणु उद्धार नहिं थाय



समात्मन्वमे तु सुखदुःखाद्य सर्वे आत्मनोऽप्रच्युतानुत्पत्तिवैक्यत्वमावतयाऽ-  
न्ययास्वरूपपरिणामासंभवाभ्योपपद्येरन्, नारकत्वादिमानो यस्य यादृशो विद्यते,  
तदन्यरूपतां नास्तीं प्रपद्येत ।

मावतोऽप्रसन्नस्यात्मन पूर्वरूपापरिस्थाने सति पुनः प्रसन्नरूपताया  
असंभवः स्यात् । इत्यतः पुनरप्रसन्नस्य कदाचित् प्रसन्नताऽपि, सा नोपपद्येत ।  
तस्मादेकान्तवार्द परिस्पृश्यामेकान्तवादः समात्मन्वनीयः ।

(३) चेतनावस्थानिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन शुद्धचेतनासहित, व्यवहारनयन च कर्मादि  
स्वीकार करने पर आत्मा अप्रच्युत अनुत्पन्न और स्थिर एकरूप तथा एक स्वभाव  
वाक्य होने के कारण और उसमें रूपान्तर होने असंभव होने से सुख दुःखादि नहीं  
होगे अतः विभिन्न अवस्थाएँ भी नहीं हो सकेंगी, फिर जो आत्मा नारकत्वादि  
विसरूप में है वह सर्वथा उसी रूप में रहेगी—एक मग से दूसरे मग में नहीं जा  
सकेगी । जो आत्मा अप्रसन्न है, मगर अप्रसन्न का भी कभी प्रसन्न होना दिखाई देता है,  
फिर ऐसा न हो सकेगा । अतः एव एकान्तवाद का स्मरण करके अनेकान्तवाद का आशय  
केना वादिष ।

(३) चेतनावस्थ—

यद् आत्मा निश्चयनय स शुद्ध चेतना से युक्त है और व्यवहारनयन स  
स्वीकार इत्यादी आत्मा अप्रच्युत अनुत्पन्न होने स्थिर ओकते । तथा ओक स्वभाव  
वाक्य होवाना कारणे तेभां रूपान्तर यत्तु असंभवित दोषाधी सुख-दुःखादि नदि  
दोष. ते कारणधी निमित्त अवस्थाओ पञ्च यत्तु शक्ये नदि. हरी ए आत्मा  
नारकत्वादि से रूपमा छे ते सबदा ते रूपमा ए रह्ये. ओटत ओक अवस्थाधी  
पीला अवस्था लक्ष शक्ये नदि. वगी ने आत्मा अप्रसन्न छे त पीतान्त्र पूर्वरूपने  
पस्तिवात्र न इहे तो तेने हरी प्रसन्नताभां अवपु ते असंभव छे परतु अप्रसन्न  
पञ्च होत वजन प्रसन्न होष ओम दोषाय छे; हरी ओम नदि यत्तु शक्ये. ओ  
कारणधी अनेकान्तवादने त्वात्र करिने अनेकान्तवादने अवश्य होवा ओर्थओ

(३) चेतनावस्थ—

आ आत्मा निश्चयनयधी शुद्ध चेतनाधी युक्त छे अने व्यवहारनयनी आ आने

પરન્ત્વેકાન્તનિત્યત્વે, એકસ્યાત્મનો નારકતિર્યદ્મનુપ્યદેવગતિપરિણામા નોપપદ્યેત્ । એકાન્તક્ષણિકત્વેઽપિ સ્વાધ્યાયાધ્યયનધ્યાનાદિપરિશ્રમપ્રત્યભિજ્ઞાન નોપપદ્યેત । તસ્માદાત્મા કથચ્ચિન્નિત્યઃ, કથચ્ચિદનિત્યઃ, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम् ।

યત્—“ દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવૈરેકાન્તેનૈવ નિત્યઃ, અવિચલિતસ્વભાવ આત્મે”-તિ વદન્તિ તત્સર્વમયુક્તમ્ । તથા સતિ સુખદુઃખસસારમોક્ષાણામનુપપત્તિરાપદ્યેત । તત્ર હિ આહ્વાદાનુભવરૂપં ક્ષણં સુખં, તાપાનુભવરૂપ દુઃખમ્, તિર્યદ્મનુપ્યનારક-દેવભવસંસરણરૂપઃ સંસારઃ, અષ્ટવિધકર્મવન્ધવિયોગો મોક્ષઃ । એકાન્તવાદ-

इस लिए आत्मा नित्य है । आत्मा नित्य होने के कारण अमूर्त है, और अमूर्त होने के कारण शरीर से भिन्न है ।

किन्तु आत्मा को एकान्त नित्य मानने पर एक ही आत्मा नरक तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिरूप नाना पर्यायों को प्राप्त नहीं होगा । और एकान्त क्षणिक मानने पर भी स्वाध्याय, अध्ययन, ध्यान आदि का परिश्रम बृथा हो जायगा, और प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो जायगा । अत एव आत्मा कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य है, ऐसा अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।

જો લોગ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ ઓર ભાવ સે આત્મા કો એકાન્ત નિત્ય અવિચલ સ્વભાવ વાલા માનતે હૈં, વહ સવ અયુક્ત હૈ । એસા માનને સે સુખ, દુઃખ, સસાર ઓર મોક્ષ નહૈં વન સકતે । આહ્વાદ કા અનુભવ કરનારૂપ ક્ષણ સુખ કહલાતા હૈ । સતાપ કા અનુભવ કરના દુઃખ હૈ । તિર્યંચ, મનુષ્ય, નારક ઓર દેવ ભવ મેં જાના સસાર હૈ । આઠ પ્રકાર કે કર્મવન્ધ કા વિયોગ હોના મોક્ષ હૈ । એકાન્તવાદ

કારણ જ નથી તે પછી તેના કારણોનો અભાવ શું થશે ? એ કારણથી આત્મા નિત્ય છે આત્મા નિત્ય હોવાના કારણે અમૂર્ત છે અને અમૂર્ત હોવાના કારણે શરીરથી ભિન્ન છે

પરંતુ આત્માને એકાન્ત નિત્ય માનવાથી એક જ આત્મા નરક, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવગતિરૂપ નાના પર્યાયને પ્રાપ્ત નહિ થાય, અને એકાન્ત ક્ષણિક માનવાથી પણ સ્વાધ્યાય, અધ્યયન, ધ્યાન આદિનો પરિશ્રમ બૃથા થઈ જશે, અને પ્રત્યભિજ્ઞાનનો અભાવ થઈ જશે, એ કારણથી આત્મા કથચિત્ નિત્ય અને કથચિત્ અનિત્ય છે એ પ્રમાણે જરૂર સ્વીકારવું જોઈએ

જે માણસો દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ અને ભાવથી આત્માને એકાન્ત નિત્ય, અવિચલ સ્વભાવ વાળો માને છે, તે સર્વ અયુક્ત છે એ પ્રમાણે માનવાથી સુખ, દુઃખ સસાર અને મોક્ષ બંની શકશે નહિ આહ્વાદનો અનુભવ કરવારૂપ ક્ષણ સુખ કહેવાય છે સતાપનો અનુભવ કરવો તે દુઃખ છે તિર્યંચ, મનુષ્ય, નારકી અને દેવભવમા જવું તે સસાર છે. આઠ પ્રકારના કર્મ બંધનો વિયોગ થયો તે મોક્ષ છે એકાન્તવાદ

अयमात्मा ज्ञानदर्शनोपयोग्यायां न भिन्न इति बोधयितुमुपयोगवानिति,  
इदं च ज्ञानात्मनोरेकान्तमद इति नैयायिकमतं निराकर्तुमुक्तम् । सर्वज्ञ  
सिद्धान्ते तु ब्रह्म बन्तुतो गुणपर्यायस्यो न भिन्नम्, अतः कथञ्चिदमेदं  
विषयतयाऽऽश्रयिमाद्यं परिकल्प्य-उपयोगवानिति निगदितम् ।

उपयोगो द्विधा-ज्ञानदर्शनमेवात् । सविकल्प उपयोग एव ज्ञानोपयोगः ।  
निर्विकल्प उपयोगो दर्शनापयोग । तत्र ज्ञानोपयोगोऽष्टविधः-मतिभ्रुतावधिमत पर्यय  
कथसतानि पञ्च सम्यग्ज्ञानानि, मति-भ्रुत-भिग-मदेन प्रीम्यज्ञानानि चेति ।  
अज्ञानान्यपि ज्ञानरूपतया ज्ञानवर्गे निक्षिप्तानि । अत्रैकमेव कवलज्ञानं सापिक्तं सर्वा-

आत्मा ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग से भिन्न नहीं है' यह बातसने के लिए उसे  
उपयोगवान कहा है । ज्ञान और आत्मा का एकान्त मद्र है' ऐसा नैयायिका का मत है ।  
इस मत का निराकरण करने के लिए यह कथन किया गया है । सर्वज्ञ के सिद्धान्त में ब्रह्म  
वास्तव में गुण और परमात्मा से भिन्न नहीं है, अतः कथञ्चिद मद्र को विवक्षा करके  
आपाराधेय भाव की कल्पना से उपयोगवान कहा है ।

उपयोग के दो मद्र हैं-ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग । सविकल्प उपयोग को  
ज्ञानोपयोग कहते हैं और निर्विकल्प उपयोग दर्शनोपयोग कहसमता है । इनमें से ज्ञानोपयोग  
आठ प्रकार का है-(१) मतिज्ञान (२) भ्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मन-पर्ययज्ञान  
(५) केवलज्ञान, (६) कुमसिज्ञान (७) कुभ्रुतज्ञान और (८) विमङ्गलज्ञान, अन्तके तीन अज्ञान  
कहसते हैं । ये निपरसिज्ञानरूप होने के कारण इन्हें ज्ञान की कोटि में रकसा है । इनमें

आत्मा ज्ञानोपयोग अने दर्शनोपयोगभी भिन्न नहीं, जो जलाववा भाटे व  
तेने उपयोगवान कही से ज्ञान अने आत्माना ज्ञेयान्त वेद से ज्ञेये नैयायिकोने  
मत से जो मततुं निराकरण करवा भाटे जो कथन करवाभां आन्वु से सर्वज्ञता  
सिद्धान्तमा ब्रह्म जो वास्तवमा शुषु अने परमेशी भिन्न नहीं तेधी कथञ्चित्  
वेदनी विवक्षा करीने आधारापिच ज्ञाननी कल्पनाभी उपयोगवान कही से.

उपयोगता से वेद से-(१) ज्ञानोपयोग अने (२) दर्शनोपयोग सविकल्प  
उपयोगने ज्ञानोपयोग कहे से अने निर्विकल्प उपयोग ते दर्शनोपयोग  
कहेवाच से तेमा ज्ञानोपयोग अष्ट प्रकारने से (१) मतिज्ञान (२) भ्रुतज्ञान,  
(३) अवधिज्ञान, (४) मनपर्ययज्ञान, (५) केवलज्ञान, तथा (६) कुमसिज्ञान,  
(७) कुभ्रुतज्ञान अने (८) विमङ्गलज्ञान. तेमा जेवटना त्रय अज्ञान कहेवाच से  
परतु विपरीतज्ञानरूप ज्ञेयाना कारणे तेने ज्ञाननी कोटिमां रकसा से ज्ञेमा ज्ञेक

પીડયત્યાત્માનમિતિ જ્ઞાનરૂપાશુદ્ધચેતનયા સહિતશ્ચેતનાવાનિત્યુચ્યતે । ચેતનાવાનિતિ કથશ્ચિદુચ્યતે; આત્મા વસ્તુતશ્ચેતનાસ્વરૂપ ઇવાસ્તિ । આત્મનો ગુણશ્ચેતનેતિ સર્વેપા મતં, તદભિપ્રાયેણ ચેતનાવાનિત્યુક્તમ્ । ચેતના દ્વિવિધા—શુદ્ધા, અશુદ્ધા ચેતિ । જ્ઞાનચેતનૈવ શુદ્ધચેતના । કર્મચેતના, તથા કર્મફલચેતના ચાશુદ્ધચેતનોચ્યતે ।

### (૪) ઉપયોગવત્ત્વનિરૂપણમ્—

અયમાત્મા નિશ્ચયનયેન કેવલજ્ઞાનકેવલદર્શનરૂપાભ્યાં શુદ્ધોપયોગાભ્યાં સહિતો વ્યવહારનયેન મતિજ્ઞાનાદુપયોગયુક્તશ્ચેત્યતોડયમુપયોગવાનિત્યુચ્યતે ।

‘આત્મા કો કર્મ પીડિત કરતે હૈ’ ઇસ પ્રકાર કે જ્ઞાનરૂપ અશુદ્ધ ચેતના સે યુક્ત હૈ અત ઇવ આત્મા ચેતનાવાન્ કહલાતા હૈ । આત્મા કો કિસી અપેક્ષા સે હી ચેતનાવાન્ કહતે હૈ, વાસ્તવ મેં તો આત્મા ચેતનારૂપ હી હૈ । ‘ચેતના આત્મા કા ગુણ હૈ’ ઇસા સવકા મત હૈ, ઇસી અભિપ્રાય સે ડસે ચેતનાવાન્ કહ દિયા હૈ । ચેતના ડા પ્રકાર કી હૈ—શુદ્ધ ચેતના ઓર અશુદ્ધ ચેતના । જ્ઞાન ચેતના હી શુદ્ધ હૈ । કર્મચેતના ઓર કર્મ-ફલચેતના અશુદ્ધ ચેતના હૈ ।

### (૪) ઉપયોગવત્ત્વ—

યહ આત્મા નિશ્ચયનય સે કેવલજ્ઞાન ઓર કેવલદર્શનરૂપ શુદ્ધ ઉપયોગોં સે યુક્ત હૈ । વ્યવહારનય સે મતિજ્ઞાન આદિ ઉપયોગોં સે યુક્ત હૈ, અત ઇવ આત્મા ઉપયોગવાન્ કહલાતા હૈ ।

કર્મો પીડિત કરે છે’ ઓ પ્રકારના જ્ઞાનરૂપ અશુદ્ધ ચેતનાથી યુક્ત છે એટલા માટે આત્મા ચેતનવાન્ કહેવાય છે આત્માને કોઈ અપેક્ષાથી જ ચેતનવાન્ કહે છે, વાસ્તવમા તો આત્મા ચેતનારૂપ જ છે ‘ચેતના આત્માનો ગુણ છે’ ઓ પ્રમાણે સર્વનો મત છે ઓ અભિપ્રાયથી તેને ચેતનાવાન્ કહી દીધો છે ચેતના ઓ પ્રકારની છે (૧) શુદ્ધ-ચેતના અને (૨) અશુદ્ધ-ચેતના જ્ઞાનચેતના જ શુદ્ધ છે, કર્મચેતના અને કર્મફલચેતના તે અશુદ્ધ-ચેતના છે

### (૪) ઉપયોગવત્ત્વ—

આ આત્મા નિશ્ચયનયથી કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનરૂપ શુદ્ધ ઉપયોગોથી યુક્ત છે વ્યવહારનયથી મતિજ્ઞાન આદિ ઉપયોગોથી યુક્ત છે ઓ કારણે આત્મા ઉપયોગવાન્ કહેવાય છે

नदस्यत्वापत्तिः । आत्मनि ज्ञानस्य नित्यानादिसम्बन्धस्वीकारेऽपि पदार्थद्वय  
रूपनायां पुनस्तत्सम्बन्धस्य समनापस्य रूपनायां महद् गौरवम्, तस्माद्  
गुणगुणिनोर्भेदस्तु तस्मात्सम्बन्धस्वीकार एवोचित्यमस्ति । यदि गुणगुणिनोरभेद  
एव समवायोऽपीत्युच्यते तर्हि नास्ति काऽपि सति । उक्तञ्च—

“ गुणपर्ययतादात्म्यः—विशिष्टं द्रव्यमुच्यते ।

उत्पत्तिमयनैयत्वं,—पर्यायास्तस्य श्लाघताः ॥ १ ॥ ” इति ।

(५) परिणामित्वनिष्पण्णम्—

अयमात्मा परिणामी । प्रतिसमयमपरापरपर्यायेषु गमनं परिणामः,

हो जायगा । आत्मा में ज्ञान का निष्प-मनादि सम्बन्ध स्वीकार किया जाय तो दो  
पदार्थ मानने पड़ेगे और उन दोनों अर्थात् आत्मा और ज्ञान को सम्बद्ध करने के लिये  
समय समवाय सम्बन्ध मानना होगा यह बड़ा गौरव होगा । अत एव गुण और गुणीका  
सात्त्विक में तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार करना ही उचित है । अगर गुण और गुणी के  
अभेद को ही समवाय सम्बन्ध कहते हो तो उसे स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है ।  
कहा भी है —

जो गुण और पर्याय के तादात्म्य से मुक्त हो वह द्रव्य कहलता है । उस द्रव्य  
को पर्याय सत्य उत्पत्ति और विनाशवासी हैं और वे अनादिप्रवाहरूप हैं ॥ १ ॥

(५) आत्मा का परिणामीपन—

आत्मा परिणामी है । प्रत्येक समय एक पर्याय को छोड़कर दूसरा पर्याय

आत्मा वह यहाँ ज्यो आत्माने विने ज्ञाने नित्य-मनादि सलध स्वीकार करवाभा  
आवे तो से पदार्थ मानवा पज्ये जने ते जने अर्थात् आत्मा जने ज्ञान ते  
जने ने अजलद करवा आगे नीले कोर्ध समवाय सलध मानवे पज्ये जने आदि  
और्य यजे ते करवाधी गुण जने गुणीना वास्तवमां तादात्म्य सलध स्वीकार  
करवे जेव उचित ऐ अववा गुण-गुणीना अवेदने ए समवाय सलध अवे तो  
तेने स्वीकार करवाभा कोर्ध प्रकारे जनि नही करु पण ऐ —

जे गुण जने पर्यायना तादात्म्यधी युक्त होत ते द्रव्य कहेवाय ऐ ते द्रव्यनी  
पर्याये सत्य उत्पत्ति जने विनाश वागी ऐ जने त अनादिप्रवाहरूप ऐ ॥१॥

(५) अद्वैतानु पत्तिवाभीपण्णम्—

आत्मा पत्तिवाभी ऐ प्रत्येक समय जेक पर्यायने जेदी नीले पर्याय धारण  
करवा ते पत्तिवाभ कहेवाय ऐ त पत्तिवाभ जेमां होत ते पत्तिवाभी कहेवाय ऐ

वरणरहितं सर्वतः शुद्धमस्ति । अन्यानि मतिज्ञानादिकानि चत्वारि ज्ञानानि क्षायो-  
पशमिकानि देशत आवरणरहितानि देशतः शुद्धानि । त्रीण्यज्ञानान्यशुद्धानि ।  
दर्शनोपयोगस्य चत्वारो भेदाः— (१) चक्षुर्दर्शनम्, (२) अचक्षुर्दर्शनम्, (३)  
अवधिदर्शनम्, (४) केवलदर्शनं च । तत्रैकं केवलदर्शनं क्षायिकं सर्वतोऽनावरणं  
सर्वतः शुद्धं च । चक्षुर्दर्शनादीनि त्रीणि क्षायोपशमिकानि देशतोऽनावरणानि  
देशतः शुद्धानि च सन्ति ।

‘ज्ञानादिगुणतः सर्वथा भिन्न आत्मे’ ति नैयायिकाद्यभिमतं तु न युक्तम्,  
ज्ञानादिगुणसम्बन्धात् प्राक् कदाचिद् ज्ञानादिगुणहीनोऽप्यासीदिति तस्य मते

एक मात्र केवलज्ञान क्षायिक है, सम्पूर्ण आवरण से रहित और पूर्ण शुद्ध है । शेष मतिज्ञान  
आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक है, देशत आवरणरहित हैं और देशत शुद्ध हैं । तीनों  
कुज्ञान अशुद्ध हैं ।

दर्शनोपयोग के चार भेद हैं—(१) चक्षुर्दर्शन, (२) अचक्षुर्दर्शन, (३) अवधिदर्शन  
और (४) केवलदर्शन । इनमें से अकेला केवलदर्शन क्षायिक है, पूर्ण रूप से आवरणरहित है  
और पूर्णरूप से शुद्ध है । चक्षुर्दर्शन आदि तीन क्षायोपशमिक हैं, देशत निरावरण  
हैं, और देशतः शुद्ध है ।

‘आत्मा ज्ञानादि गुणों से सर्वथा भिन्न है’ ऐसा नैयायिक आदि का मत युक्त  
नहीं है, क्यों कि ज्ञानादि गुणों का सम्बन्ध होने से पहले किसी समय आत्मा को  
ज्ञानादि गुणों से रहित भी मानना पड़ेगा और इस प्रकार उन के मत में आत्मा जड़  
मात्र केवलज्ञान क्षायिक है, संपूर्ण आवरणरहित रहित अने पूर्ण शुद्ध है भाकीना  
मतिज्ञान आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक है, देश तकी आवरणरहित है अने देश  
तकी शुद्ध है, त्रय कुज्ञान अशुद्ध है.

दर्शनोपयोगना चार भेद है—(१) अक्षुर्दर्शन, (२) अचक्षुर्दर्शन, (३) अवधि-  
दर्शन अने (४) केवलदर्शन । तेषां चैकं केवलदर्शन क्षायिक है पूर्णरूपधी आवरण-  
रहित है, अने पूर्णरूपधी शुद्ध है अक्षुर्दर्शन आदि त्रय क्षायोपशमिक है, देश  
तकी निरावरण है अने देश तकी शुद्ध है

“आत्मा ज्ञानादि गुणोधी सर्वथा भिन्न है” ज्येवा नैयायिक आदिना मत  
युक्त नथी—उचिन नथी, कारण के ज्ञानादि गुणोना मत धया पडेवा डोर् समय  
आत्माने ज्ञानादि गुणोधी रहित पक्ष मानवा पश्ये, अने ज्ये प्रभावे तेना मतमा

सामर्थ्याद्, तथा व्यवहारनयत संसारतत्कारणरूपाद्युदपस्थियामार्य परिणमन-  
शक्तिमत्त्वाच्च प्रसुरित्युच्यते ।

अयमात्मा मोक्षमार्गोपदेशकतया, रत्नत्रयेण मोक्षसाधकतया, सर्वज्ञत्वप्राप्ति-  
शक्तिमत्तया च प्रसुरित्युच्यते । “सर्वज्ञो नास्ति कश्चि”-इति नास्तिकमतं  
निराकर्तुं सर्वज्ञतयाऽप्यात्मन प्रसुत्वमस्तीति सवेद्यते । यथा-अन्नपटस्मलाच्छन्नं  
रविषन्त्र-ज्योतिः, सुवर्णं रजतं वा क्रमज्ञो नैसर्वं प्राप्नुवद्, सर्वपाञ्चपरस्मलादि-  
व्यपगमे सर्वतो मापनापि भुक्तिं प्राप्नोति, तथा रागद्वेषादिमिरगुद् आत्मा क्रमज्ञः  
भुक्तिं सममानः पूर्णभुक्तिमपि प्राप्नोति स एवात्मा ‘सर्वज्ञः’ इत्युच्यते ।

परिणमन-सामर्थ्यवात्त्वाद्, तथा व्यवहार नय से संसार और संसार के कारणरूप अशुद्ध  
परिणमों के स्थिर परिणत होने की शक्ति से युक्त है । इस कारण आत्मा प्रसु कहलाता है ।

यह आत्मा मोक्षमार्ग का उपदेश देने की, रत्नत्रय के द्वारा मोक्षसाधन की  
और सर्वज्ञताप्राप्ति की शक्ति से युक्त होने के कारण प्रसु है, ‘कोई सर्वज्ञ नहीं है’  
ऐसे नास्तिकमत का निराकरण करने के स्थिर सर्वज्ञरूप में ही आत्मा का प्रसुत्व स्पष्ट  
किया गया है । जैसे-मेघपटक तथा मल से आच्छादित सर्व, कर्ममा की ज्योति, सुवर्ण या  
चांदी, क्रम से निर्मल होते-होते, मलयपटक या मल के सर्वथा हट जाने पर पूर्णरूप से शुद्ध  
हो जाने हैं उसी प्रकार रागद्वेष आदि से अशुद्ध आत्मा धीरे-धीरे शुद्ध होता हुआ पूर्ण  
शुद्धता प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार पूर्ण शुद्ध आत्मा ही सर्वज्ञ कहलाता है ।

भाटे परिणमन-सामर्थ्य वाग्ये च तथा व्यवहार नयत्री संसार जने संसारना  
कारणरूप अशुद्ध परिणमो भाटे परिणत अवानी शक्तिशी युक्त च आ कारणशी  
आत्मा प्रसु कहेवाच्ये च

आ आत्मा मोक्षमार्गोपदेश देवानी रत्नत्रयना द्वारा मोक्षसाधनानी जने  
सर्वज्ञताप्राप्तिनी शक्तिशी युक्त होवानी कारणे प्रसु च । “कोई सर्वज्ञ नहीं”  
जैसे के नास्तिकमत च तेषु निराकरण कश्चा भाटे सर्वज्ञरूपमां पञ्च आत्मानु प्रसुत्व  
स्पष्टित कर्तुं च जेम-मेघसमुद्क तथा मलयी आच्छादित सर्व, कर्ममाणी ज्योति,  
सुवर्ण अथवा चांदी वजरे कर्मशी निर्मल यतां यतां मेघसमुद्क अथवा मलय  
जशी जवाशी पूर्ण शुद्ध रूपमां जवाी जय च-शुद्ध कर्म जय च, ते प्रभाजे रज-द्वेष  
आदिशी अशुद्ध आत्मा धीरे धीरे शुद्ध कर्तने पूर्ण शुद्धता प्राप्त करी ते च जे  
प्रभाजे पूर्ण शुद्ध आत्मा च सर्वज्ञ कहेवाच्ये च ।

सोऽस्यास्तीति परिणामी । अनेन 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति मतं निराकृतम् । 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति स्वीकारे पूर्वदशायां यथाविध आत्मा, तथाविध एव ज्ञानोत्पत्तिसमयेऽपि भवेत्, तदा पूर्वमविज्ञातात्मा कथं पदार्थविज्ञाता स्यात्, प्रतिनियतस्वरूपस्याप्रच्युतिरूपता कौटस्थ्यमिति स्वीकारात् । यदि तदा पदार्थ-विज्ञातृत्वं स्वीक्रियते तदा पूर्वमविज्ञातुर्विज्ञातृरूपत्वे परिणामापत्त्या तन्मते कौटस्थ्य-भङ्गः । तस्मादात्मनः परिणामित्वमवश्यं स्वीकरणीयम् ।

### (६) प्रभुत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन मोक्षतत्कारणरूपशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-

धारण करना परिणाम कहलाता है । यह परिणाम जिस में हो वह परिणामी । इस विशेषण से आत्मा की कूटस्थनित्यता का निराकरण किया गया है । आत्मा कूटस्थ नित्य है, ऐसा स्वीकार करने पर आत्मा जैसा पहले अज्ञाता था वैसा ही ज्ञान की उत्पत्ति के समय भी रहेगा । ऐसी दशा में आत्मा पहले अज्ञाता था तो बाद में पदार्थों का ज्ञाता कैसे होगा ?, क्यों कि आप के मत के अनुसार प्रतिनियत स्वरूप से च्युत न होना—जैसा का तैसा ही बना रहना—कूटस्थता है । अगर बाद में आत्मा को पदार्थों का ज्ञाता स्वीकार करते हो तो पहले जो अज्ञाता था, उस का ज्ञाता के रूप में परिणमन हो गया अतः कूटस्थनित्यता नष्ट हो गई । अतः एव आत्मा को परिणामी अवश्य मानना चाहिए । आत्मा कूटस्थ नित्य नहीं वरन् परिणामी नित्य है ।

### (६) आत्मा का प्रभुत्व—

निश्चयनय से आत्मा मोक्ष और मोक्ष के कारणरूप शुद्ध परिणामों के लिए

आ विशेषणार्थी आत्मान्नी कूटस्थनित्यतानु निराकरणं कथुं छे "आत्मा कूटस्थ नित्य छे" ज्येवे स्वीकार करवाथी आत्मा जेवे पड़ेला हुतो तेवे ज्ञाननी उत्पत्तिना समयमा पञ्चु रहेथे, ज्येवी दशामा आत्मा पड़ेला अज्ञाता हुतो तो पछी पदार्थोना ज्ञाता केवी रीते थरे ?, केमके—आपना मत प्रमाणे प्रतिनियत स्वरूपथी च्युत नहि थता जेवे छे तेवे ज्ञानी रहे ते कूटस्थता छे अगर तो पछीथी आत्माने पदार्थोना ज्ञाता स्वीकार करे छे तो प्रथम जे अज्ञाता हुतो तेनु ज्ञाताना रूपमा परिणमन थर्छ गज्जु, तेथी कूटस्थरूप नित्यता नाश पामी गछ, आ कारणार्थी आत्माने परिणामी अवश्य मानवे ज्येथे ज्ये आत्मा कूटस्थ नित्य नथी परतु परिणामी नित्य छे

### (६) आत्मानु प्रभुत्व—

निश्चय नय प्रमाणे आत्मा मोक्ष अने मोक्षना कारणरूप शुद्ध परिणामो



सामर्थात्, तथा व्यवहारनयतः संसारवत्कारणरूपाशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-  
शक्तिमत्त्वाच्च प्रसुरित्युच्यते ।

अयमात्मा मोक्षमार्गोपदेशकतया, रत्नत्रयेण मोक्षसाधकतया, सर्वज्ञत्वप्राप्ति-  
शक्तिमत्तया च प्रसुरित्युच्यते । “सर्वज्ञो नास्ति कश्चि”-इति नास्तिकमतं  
निराकर्तुं सर्वज्ञतयाऽप्यारम्भः प्रसुत्वमस्तीति संवेद्यते । यथा-अन्नपटलममलाञ्जन  
एनिषन्द्र-ज्योतिः, सुवर्णं रम्यं वा क्रमशो नैमर्थ्यं प्राप्नुवत्, सर्वथाऽन्नपटलममलादि-  
व्यपगमे सर्वतो भावेनापि शुद्धिं प्राप्नोति, तथा रागद्वेषादिमिश्रशुद्ध आत्मा क्रमशः  
शुद्धिं क्रममानः पूर्णशुद्धिमपि प्राप्नोति स एवात्मा ‘सर्वज्ञः’ इत्युच्यते ।

परिणमन-सामर्थ्यमत्स्य है, तथा व्यवहार नय से संसार और संसार के कारणरूप शुद्ध  
परिणामों के सिद्ध परिणत होने की शक्ति से युक्त है । इस कारण आत्मा प्रसु कहलता है ।

मह आत्मा मोक्षमार्ग का उपदेश देने की, रत्नत्रय के द्वारा मोक्षसाधन की  
और सर्वज्ञताप्राप्ति की शक्ति से युक्त होने के कारण प्रसु है, ‘कोई सर्वज्ञ नहीं है’  
ऐसे नास्तिकमत का निराकरण करने के सिद्ध सर्वज्ञरूप में ही आत्मा का प्रसुत्व प्रति-  
ष्ठा किया गया है । जैसे-नेत्रपटल तथा मल से आच्छादित स्वर्ण, फरमा की ज्योति सुवर्ण या  
चांदी, क्रम से निर्मल होते-होते, अन्नपटल वा मल के सर्वथा हट जाने पर पूर्णरूप से शुद्ध  
हो जाने हैं उसी प्रकार रागद्वेष आदि से अशुद्ध आत्मा धीरे-धीरे शुद्ध होता हुआ पूर्ण  
शुद्धता प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार पूर्ण शुद्ध आत्मा ही सर्वज्ञ कहलता है ।

भाटे परिष्कृत-सामर्थ्यं वागो ३ तथा व्यवहार नयधी संसार जाने संसारना  
कारणरूप अशुद्ध परिष्कृत भाटे परिष्कृत बचानी शक्तिधी युक्त ३ आ कारणधी  
आत्मा प्रसु कहलवाय ३

आ आत्मा मोक्षमार्गोपदेशकतया रत्नत्रयेण मोक्षसाधनतया जाने  
सर्वज्ञताप्राप्तिनी शक्तिधी युक्त होवाना कारणे प्रसु ३ “कोई सर्वज्ञ नहीं”  
ऐसे नास्तिकमत ३ तेज निराकरण कतवा भाटे सर्वज्ञरूपमां पक्ष आत्मानु प्रसुत्व  
प्रतिष्ठित कतु ३ क्रम-भेदसमूह तथा मगधी आच्छादित स्वर्ण, अन्नमानी ज्योति,  
सुवर्ण, अथवा चांदी वगैरे क्रमधी निर्मल कर्ता कर्ता भेदसमूह अथवा मलना  
असी ज्योती पूर्य शुद्ध रूपमां आधी अथ ३-शुद्ध कर्ष अथ ३, ते प्रभावे राज-द्वेष  
आदिधी अशुद्ध आत्मा धीरे धीरे शुद्ध कर्षि पूर्य शुद्धता प्राप्त करी ले ३ ३  
प्रभावे पूर्य शुद्ध आत्मा च संसार कहलवाय ३

किञ्च—आत्मा स्वस्य द्वितं कर्तुमन्यं नापेक्षते; स्वयमेव स्वद्वितसाधने क्षमः, अत एवात्मनः प्रभुत्वं सिध्यति, तस्मात् स्वद्वितमिच्छुना मोक्षप्राप्तिकारणी-भूते तपःसंयमाराधने प्रवर्तितव्यम् ।

### (७) कर्तृत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा—अदृष्टादिकर्मकरणात्, निश्चयनयेन शुद्धभावकर्तृत्वात्, व्यवहार-नयतो द्रव्यभावकर्मणां नो कर्मवाह्यशरीरादीनां कर्तृत्वाच्च, कर्तेत्युच्यते । आत्मै-कान्तरूपेणाऽकर्तेति सांख्यमतमपाकर्तृमुक्तम्—‘आत्मा कर्तेति’ ।

दूसरी बात यह है कि—आत्मा अपना कल्याण करने में अन्य की अपेक्षा नहीं रखता । वह स्वकीय कल्याण—साधन में स्वयं समर्थ है । इसी से आत्मा का प्रभुत्व सिद्ध होता है । अत आत्महित के अभिलाषी पुरुष को मोक्षकारणभूत तप और सयम की आराधना में प्रवृत्त होना चाहिए ।

### (७) आत्माका कर्तृत्व—

यह आत्मा अदृष्ट आदि कर्म करने से, निश्चयनय की अपेक्षा शुद्ध भावों का कर्ता होने से, तथा व्यवहारनय से द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म—वाह्यशरीर आदिका कर्ता होने से कर्ता कहलाता है,

‘आत्मा एकान्तरूप से अकर्ता है’ सांख्य के इस मत का निराकरण करने के लिए आत्मा को कर्ता विशेषण लगाया है ।

भील वात अे छे डे—आत्मा पोतानु कल्याणु करवाना भीलनी अपेक्षा राभतो नथी, ते पोताना कल्याणुसाधनमा पोते न समर्थ छे ते कारणुथी आत्मानु प्रभुत्व सिद्ध थाय छे अे कारणुथी आत्मद्वितना अलिदाषी पुङ्घोअे मोक्षना कारणुभूत तप अने सयमनी आराधनामा प्रवृत्त थलु जेध अे

### (६) आत्मानु कर्तृत्व—

आ आत्मा अदृष्ट आदि कर्म करवाथी, निश्चयनयनी अपेक्षाअे शुद्ध भावोना कर्ता होवाथी तथा व्यवहारनयथी द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म—वाह्यशरीर आदिने कर्ता होवाथी कर्ता कहेवाय छे.

“आत्मा अेकान्तरूपथी अकर्ता छे.” सांख्यना आ मतनु निराकरणु करवा माटे आत्माने कर्ता विशेषणु आभ्यु छे.

औदारिकाविश्वरीरस्य कर्वाञ्छि, आदिमत्प्रतिनियताकारित्वात्, कुम्भस्य यथा कुमालः । यद्युत्तरकर्तृकं तदादिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति, यथाऽन्नपि-कारः । यत्र क्षीरस्य कर्वा स आत्मा, इत्यत्रमात्मनः कर्तृत्वं सिध्यति । अथादि-मत्प्रविशेषमं मेवादीनुपादाय हेतोरनेकान्तिकत्वधारणाय ।

यद्वा-आत्मा कर्ता, स्वकर्मफलभोक्तृत्वात् षणिकृत्पीवसादिषत् । आत्मा स्वकृतकर्मफलभोक्ता तस्मात् कर्ता, यथा षणिकृत्पीवसाद्यपोऽकृतकर्मणा फलं न प्राप्नुवन्ति ।

इस औदारिकादि शरीर का कोई कर्ता है, क्यों कि औदारिकादि शरीर आदिमान् और प्रतिनियत आकारवाला है, जैसे-परेका कर्ता कुमार । जो वस्तु बिना कर्ता की होती है वह आदिमान् और नियत आकार वाली नहीं होती, जैसे-बादल का विकार । जो शरीर का कर्ता है, वह आत्मा है । इस प्रकार आत्मा का कर्तृत्व सिद्ध होता है । यहाँ 'आदिमत्' विशेषण से मेरु आदि से होने वाले अनेकान्तिक दोषका निवारण किया गया है, क्यों कि वे आदिमान् नहीं हैं ।

अथवा आत्मा कर्ता है, क्यों कि वह अपने कर्मों का भोक्ता है जैसे षणिकृ या किसान । आत्मा अपने कर्मों के फलका भोक्ता है इस कारण कर्ता है । जैसे-षणिकृ या किसान आदि बिना किये कर्म का फल नहीं भोगते इसी प्रकार आत्मा बिना किये कर्म का फल नहीं भोगता ।

अथ औदारिकादि शरीरस्य कर्ता कर्ता छे अरस्य के औदारिकादि शरीर, आदिमान् अपने प्रतिनियत आकार वाला छे जेभ वदने कर्ता कुमार के वस्तु कर्ता विनागी बोध छे ते आदिमान् अपने नियत आकार वाली बोध नहि, जेभ वदने विकार के शरीरस्य कर्ता छे ते आत्मा छे जे प्रकार आत्मानु कर्तृत्व सिद्ध यथ छे ज्यो 'आदिमत्' विशेषणभी मेरु आदिभी यथा बाण्य अनेकान्तिक दोषनु निवारण्य भुं छे अरस्य के ते आदिमान् नथी

अथवा-आत्मा कर्ता छे अरस्य के-ते पालना करीने बोधता छे जेभ वदिकृ अथवा जेडुव आत्मा पीवाना करीना इतने बोधता छे, ते अरस्यभी कर्ता छे जेभ वदिकृ अथवा जेडुव आदि, कम कर्मा विना कर्मनु एण बोधवता नथी ते प्रमाद्ये आत्मा कम कर्मा विना तेनु इत्य बोधवता नथी,

किञ्च-आत्मा स्वस्य हितं कर्तुमन्यं नापेक्षते; स्वयमेव स्वहितसाधने क्षमः, अत एवात्मनः प्रभुत्वं सिध्यति, तस्मात् स्वहितमिच्छुना मोक्षप्राप्तिकारणी-भूते तपःसंयमाराधने प्रवर्तितव्यम् ।

### (७) कर्तृत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा-अदृष्टादिकर्मकरणात्, निश्चयनयेन शुद्धभावकर्तृत्वात्, व्यवहार-नयतो द्रव्यभावकर्मणां नो कर्मबाह्यशरीरादीनां कर्तृत्वाच्च, कर्तेत्युच्यते । आत्मै-कान्तरूपेणाऽकर्तेति सांख्यमतमपाकर्तुमुक्तम्-‘आत्मा कर्ते’ति ।

दूसरी बात यह है कि-आत्मा अपना कल्याण करने में अन्य की अपेक्षा नहीं रखता । वह स्वकीय कल्याण-साधन में स्वयं समर्थ है । इसी से आत्मा का प्रभुत्व सिद्ध होता है । अत आत्महित के अभिलाषी पुरुष को मोक्षकारणभूत तप और संयम की आराधना में प्रवृत्त होना चाहिए ।

### (७) आत्माका कर्तृत्व-

यह आत्मा अदृष्ट आदि कर्म करने से, निश्चयनय की अपेक्षा शुद्ध भावों का कर्ता होने से, तथा व्यवहारनय से द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म-बाह्यशरीर आदिका कर्ता होने से कर्ता कहलाता है,

‘आत्मा एकान्तरूप से अकर्ता है’ सांख्य के इस मत का निराकरण करने के लिए आत्मा को कर्ता विशेषण लगाया है ।

भीष्म वात अे छे डै-आत्मा चोतानु कल्याणु करवामा भीलनी अपेक्षा राभतो नथी, ते चोताना कल्याणसाधनमा चोते न समर्थ छे ते कारणुथी आत्मानु प्रभुत्व सिद्ध थाय छे अे करणुथी आत्महितना अबिलाषी पुङ्गवाअे मोक्षना करणभूत तप अने संयमनी आराधनामा प्रवृत्त थवु जेठ अे

### (६) आत्मानु कर्तृत्व-

आ आत्मा अदृष्ट आदि कर्मो करवाथी, निश्चयनयनी अपेक्षाअे शुद्ध भावोतौ कर्ता होवाथी तथा व्यवहारनयथी द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म-बाह्यशरीर आदिनो कर्ता होवाथी कर्ता कहवाय छे.

“आत्मा अेकान्तरूपथी अकर्ता छे.” सांख्यना आ मतनु निराकरणु करवा माटे आत्माने कर्ता विशेषणु आण्यु छे

अकर्तृत्वाच्च तस्य सांसारिकविषयसुखानाममोक्षस्य च सिध्यति । प्रकृते हि कर्तृकर्मणादृष्टादिव्रजनकर्मण एव कर्तृत्वं विवक्षितम्, तेन मुक्तात्मनि नाविमसंगः । तथा च यः सांसारिकसुखदुःखाद्यनुभक्ता स एव तत्कारणीभूतकर्मणः कर्ता, अकर्तृमोक्षत्वाद्युपपत्तेः ।

(८) मोक्षस्वसिद्धिः-

अयमेवात्मा मोहोदयेन शुद्धमात्मस्वभावं विस्मृत्य परवस्तुनि मोहितः सन् रागद्वेषं करोति, रागद्वेषबन्धोऽनिर्द्धं नवनवविषयसंग्रहार्थं प्रयतमान-न्तद्वियोगे सति विन्ताभ्याङ्गुस्त्रिवेता भार्गुरौद्रघ्नान्मुपगतः स्वात्मनि कर्मरजः विषयसुख भादि के जनक कर्मों के कर्ता नहीं हैं, इस कारण वे अकर्ता हैं। और अकर्ता होने के कारण वे सांसारिक विषयसुखों के मोक्षा भी नहीं हैं। यहाँ 'कर्ता' शब्द से अदृष्ट आदि के जनक कर्मों का कर्ता ही विवक्षित है, अतः मुक्त आत्मा में अत्रि-प्रसङ्ग नहीं आता अतः एव सिद्ध हुआ कि जो सांसारिक सुख-दुःख आदि का मोक्ता होता है, वही उन के कारणभूत कर्म का कर्ता भी होता है। जो कर्ता नहीं है वह मोक्ता भी नहीं है।

(८) आत्मा का मोमर्दत्व

आत्मा मोह के उदय से शुद्ध आत्मस्वरूप को मूकफर पर-पराधी में मोहित होता हुआ राग-द्वेष करता है। राग-द्वेष के बंध हो कर रात-दिन नवीन नवीन विषयों का संग्रह करने के लिए प्रयत्नशील होता हुआ और उमङ्ग विमोह होने पर चिन्ता से म्माङ्गुलनित हो कर भार्गव्यान् और रौद्रघ्नान् को प्राप्त होता है, और इस सहायना विषय-सुख वजरेने उत्पन्न करने के लिये कर्ता नहीं, जो कारवृत्ति के आत्मा अकर्ता है अने अकर्ता होवाना कारणों से सहायना विषयसुखोना होक्या पद्य नहीं, अर्थात् 'कर्ता शब्दही अदृष्ट आदिना जनक कर्मोना कर्ता व विवक्षित है तेषी मुक्त आत्मायां अतिप्रसङ्ग आभवती नहीं, जो कारवृत्ति जेभ सिद्ध मयु के से सहायना सुख-दुःख वजरेने होक्या है ते जेना कारवृत्त कर्मोना कर्ता पद्य होव है ने कर्ता नहीं ते होक्या पद्य नहीं।

(८) आत्मा का मोमर्दत्व-

आत्मा मोहना उदयशी शुद्ध आत्मस्वरूपने कृती कर्तुनि पर-पराधीमां मोहित कर्तुनि राग-द्वेष करे है सज-द्वेषने पद्य कर्तुने सत्री अने द्विवस नवा-नवा विषयोने अशुद्ध करवा भागे प्रयत्नशील रहतेये कर्ते, अने तेने विषय कर्ता चिन्ताशी आङ्गुल-विच कर्तुने भार्गव्यान् अने रौद्रघ्नान् ने प्राप्त बाय है, अने ते कारवृत्ति पात्मान

સમુપાદત્તે । યથા કોડપ્યજ્ઞાની વ્યાધિનિદાનભૂતમપધ્યમશ્નન્નવ્વાઙ્ગિલતમપિ જ્વરાદિકં સ્વયમુત્પાદયતિ, તથાડયમાત્મા કર્મવન્ધનમવાઙ્ગચ્છન્નપ્યાર્તરૌદ્રધ્યાનવગ્રેન કર્મવન્ધન પ્રાપ્નોતિ । યથા કર્મવન્ધન સ્વયમેવાદત્તે, તથા તત્ફલમપિ ઘાઙ્ગં કિચ્ચિન્નિમિત્ત-મપેક્ષ્ય સ્વયમેવોપશુદ્ધક્ટે । એવં ચાત્મનો ભોક્તૃત્વં સિધ્યતિ । ભોક્તૃત્વાન્ચ કર્તૃ-લતમપિ તસ્ય નિર્વાઘમ્ ।

સાઁલ્યસિદ્ધાન્તે પ્રકૃતેઃ કર્તૃત્વ, ન તુ જીવસ્ય, ભોક્તૃત્વં ચાપિ જીવસ્યોપચરિતમેવ । ઢર્પણાકારાયા વુદ્ધૌ સંક્રાન્તાના સુલ્લદુઃલાદીના સ્વાત્મનિ

કારણ અપની આત્મા મેં કર્મ-રજ ઙ્કટ્ટી કર લેતા હૈ । જૈસે અજ્ઞાની મનુષ્ય રોગ કે કારણમૂત અપધ્ય કા સેવન કરતા હુઆ ન ચાહતે હુએ મી જ્વર આદિ કો ઉત્પન્ન કર લેતા હૈ, ઁસી પ્રકાર આત્મા કર્મવન્ધન કી ઙ્કચ્છ ન કર કે મી આર્ત-રૌદ્રધ્યાન કે અધીન હોકર કર્મવન્ધ કો પ્રાપ્ત હોતા હૈ । જૈસે કર્મવન્ધ કો આત્મા સ્વય પ્રહણ કરતા હૈ, ઁસી પ્રકાર કિસી ઘાઙ્ગ નિમિત્ત કી અપેક્ષા સે ઁસકા ફલ મી સ્વય હી મોગતા હૈ । હસી પ્રકાર આત્મા મેં ભોક્તાપન સિદ્ધ હોતા હૈ, ઁર ભોક્તા હોને સે ઁસ મેં કર્તાપન મી ઘિના કિસી ઘાઘા કે સિદ્ધ હો જાતા હૈ ।

સાંલ્યમત સે પ્રકૃતિ કર્તા હૈ, જીવ નહીં, ઁર ભોક્તાપન જીવ મેં ઉપચાર સે હૈ । ઢર્પણાકાર વુદ્ધિ મેં પ્રતિઘિન્નિત હોને ઘાઙ્ગે સુલ્લ-દુલ્લ આદિ કા આત્મા મેં પ્રતિઘિન્ન

આત્માને ઘિષે કર્મ-રજ ( કર્મના રજકણો ) ઁકઙ્કી કરી લે છે, જેમ અજ્ઞાની મનુષ્ય રોગના કારણભૂત અપધ્યતુ ( રોગ ઉત્પન્ન કરે તેલુ ) સેવન કરીને, ઘોતે ઙ્કચ્છતો નથી તેા પશુ જ્વર ( તાલ ) આદિને ઉત્પન્ન કરી લે છે. તે પ્રમાણે આત્મા કર્મજ ઘનની ઙ્કચ્છા નહિ કરવા છતાય પશુ આર્ત-રૌદ્ર ઘ્યાનને આધીન થઁને કર્મ જ ઘનને પ્રાપ્ત થાય છે જેવી રીતે કર્મજ ઘનને આત્મા ઘોતે જ અહણ કરે છે, તે પ્રમાણે કોઈ ઘાઘ નિમિત્તની અપેક્ષાથી તેનુ ફલ પશુ ઘોતે જ ભોગવે છે ઁ પ્રમાણે આત્મામા ભોક્તાપણુ સિદ્ધ થાય છે અને ભોક્તા હોવાથી તેમાં કોઈ પ્રકારની ઘાઘા ઘિના કર્તાપણુ પશુ સિદ્ધ થઈ જાય છે

સાંખ્યમત પ્રમાણે પ્રકૃતિ કર્તા છે, જીવ કર્તા નથી ભોક્તાપણુ તે પશુ જીવમા ઉપચારથી છે ઢર્પણાકાર બુદ્ધિમા પ્રતિઘિન્નિત ( પ્રતિઘિ અરૂપે ) થવાવાળા ( ઢેખાવવાવાળા ) સુખ-દુઃખ આદિનુ પ્રતિઘિ જ આત્મામા પડી શકતુ નથી, સ્કટિક

प्रतिबिम्बोत्पासमवात् । स्फटिकदर्पणादापि परिणामनैव प्रतिबिम्बोदय-  
समर्पनात् । तादृशपरिणामाङ्गीकारे च बीजस्य कर्तृत्वं, स्वत एव मोक्तव्यं  
च सिद्धम् ।

(९) आत्मनः स्वशरीरपरिमाणत्वम्-

अयमात्मा स्वशरीरपरिमाण । निश्चयनयेन सोकाकाशपरिमाणोऽ-  
संस्पातमदर्शी च । व्यवहारनयतः शरीरनामकर्मोदयाज्जातन सूक्ष्मशरीरेण  
सूक्ष्मशरीरण वा समानपरिमाणो भवति, तस्माद्वयं स्वशरीरपरिमाण इत्युच्यते ।

यही पद सकृत् । स्फटिक तथा दर्पण आदि में जो प्रतिबिम्ब पड़ता है सो परिणामी  
होने के कारण ही पड़ता है । स्फटिक आदि पकन्त अपरिणामी होने तो उन में  
किसी भी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता था । इस प्रकार का परिणाम स्वीकार  
कर मन पर बीज में कर्तामन सिद्ध हो वायग्य और फिर मोक्षापन भी स्वतः सिद्ध  
हो वायग्य ।

(९) आत्माका शरीरपरिमाण—

आत्मा प्राप्त शरीर के बराबर है, अर्थात् शरीर का जो परिमाण है । वही  
आत्मा का भी परिमाण है । आत्मा निश्चयनय से सोकाकाश के बराबर असंस्पात  
प्रदेशी है । व्यवहारनय से शरीरनामकर्म के उदय से प्राप्त हुए सूक्ष्म वा सूक्ष्म शरीर  
का जो परिमाण है उसी परिमाणवाला आत्मा है, अत एव आत्मा शरीर परिमाण  
कदमता है ।

तथा दर्पण आदिमा ने प्रतिबिम्ब पड़े छे ते परिणामी होयना अस्से पड़े छे  
स्फटिक आदि ने जेकान्त अपरिणामी होय तो तेमां केअ पक्ष वस्तुतः प्रतिबिम्ब  
पंथी शकत नही. आ प्रभासे परिणाम स्वीकार करी देवाधी एवमां कर्तापक्ष सिद्ध  
बर्ध लये, अने मोक्षापक्ष पक्ष स्वतः सिद्ध बर्ध लये.

(१०) आत्मानु शरीरप्रभाष—

आत्मा प्राप्त शरीरनी अशाअर छे अर्थात् शरीरनु ने परिभाष छे ते  
आत्मानु पक्ष परिभाष छे आत्मा निश्चयनयधी होआकशानी अशाअर अक्ष आतप्रदेशी  
छे अवकाशनयधी शरीर-नामकर्मना उदयधी प्राप्त बनेअ सूक्ष्म अयना सूक्ष्म  
शरीरनु ने परिभाष छे ते परिभाष पायो आत्मा छे जेटया भाटे आत्मा  
शरीरपरिभाष कहेवाय छे

આત્મા સર્વવ્યાપીતિ વેદાન્તિકાદિમતં, તથાસ્ત્મા-અણુરિતિ કસ્યચિન્મતં  
 ચ નિરાકર્તું શરીરપરિમાણ દ્યુક્તમ્ । આત્મનઃ સર્વવ્યાપિત્વે નિક્રિયતાદ્  
 ભવાન્તરસંક્રાન્તેરસંભવાપત્તિરાકાશચત્ ।

આત્મા શરીરમાત્રવ્યાપી, શરીર એ તદ્ગુણોપલબ્ધેઃ, અગ્ન્યૌષ્ણવત્,  
 અથવા ઘટાદિગુણવત્ । યથા ઘટાદેર્વર્ણાદયો ગુણા યત્રવ દેશે દૃશ્યન્તે તત્રૈવ  
 તસ્યારિતત્વં પ્રતીયતે, નાન્યત્ર । એવાત્મનોડપિ ગુણાશ્ચૈતન્યાદયો શરીર એ દૃશ્યન્તે,  
 ન વદ્ધિઃ, તસ્માદ્ દેહપ્રમાણ એવાવમાત્મેતિ । ન ચ પુષ્પાદીનાં

‘આત્મા સર્વવ્યાપક છે’ એસા વેદાન્તિક આદિ કા મત છે । કોઈ-કોઈ  
 યહ મી માનતે છે કિ-‘આત્મા અણુ-પરિમાણવાલા છે’ ઇન સવ મતો કા નિરાકરણ  
 કરને કે લિએ આત્મા કો શરીર-પરિમાણ વિશેષણ લગાયા છે । આત્મા કો સર્વવ્યાપક  
 માને તો વહ નિક્રિય ઠહેરગા ઓર ભવાન્તર મે નહીં જા સકેગા, જૈસે આકાશ ।

આત્મા શરીરમાત્રવ્યાપી છે, ક્યો કિ શરીર મેં હી ઉસકે ગુણ ઉપલબ્ધ હોતે છે,  
 જૈસે અગ્નિ કી ઉષ્ણતા અથવા ઘટ આદિ । જૈસે ઘટ આદિ કે ગુણ રૂપ  
 વગૈરહ જિસ જગહ દેલે જાતે છેં ઉસી જગહ ઉસકા અસ્તિત્વ પ્રતીત હોતા છે, અન્યત્ર  
 નહીં । ઇસ પ્રકાર આત્મા કે ગુણ ચૈતન્ય આદિ જહાં પાયે જાઈં વહીં ઉસકા અસ્તિત્વ  
 માનના ચાહિએ । આત્મા કે ગુણ શરીર મેં હી પાયે જાતે છેં અત શરીર મેં હી આત્મા  
 કા અસ્તિત્વ સ્વીકાર કરના ઉચિત છે, અત આત્મા શરીરપરિમાણ હી છે ।

‘આત્મા સર્વવ્યાપક છે’ એવો વેદાતિક આદિનો મત છે કોઈ કોઈ એમ  
 પણ માને છે કે-“આત્મા અણુ-પરિમાણવાળો છે” તે સર્વ મતોનું નિરાકરણ  
 કરવા માટે આત્માને શરીર-પરિમાણ વિશેષણ લગાડયું છે આત્માને સર્વવ્યાપક  
 માનશે તો તે નિષ્ક્રિય ઠરશે અને ભવાન્તરમા જઈ શકશે નહિ, જેમ આકાશ

આત્મા શરીરમાત્રવ્યાપી છે કારણ કે શરીરમા જ તેના ગુણ ઉપલબ્ધ થાય  
 છે જેમ અગ્નિની ઉષ્ણતા અથવા ઘટ આદિના ગુણ રૂપ વગેરે જે જગ્યામા  
 જોવામા આવે છે, તે જ જગ્યામા તેનું અસ્તિત્વ પ્રતીત થાય છે, અન્યત્ર (બીજા  
 સ્થળે) નહિ એ પ્રમાણે આત્માના ચૈતન્ય આદિ ગુણ જોવામા આવે, ત્યા જ તેનું  
 અસ્તિત્વ માનવું જોઈએ આત્માનો ગુણ શરીરમા જ જોવામા આવે છે તે કારણથી  
 શરીરમા જ આત્માના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરવો તે ઉચિત છે. તેથી આત્મા શરીર



गन्धादिगुणः पुण्याद्यस्यितिवेशादन्यथाप्युपलभ्यते, तथा च हेतोरनैकान्तिकत्वा-  
पधिरिति वाच्यम्, पुण्याद्याभितगन्धादिपुत्रस्नानां वैससिक्या प्रायोगिक्या वा  
गत्या मतिमरनेन तदुपलम्भकप्रानादिदेक्षपर्यन्तगमनोपपत्तेरिति ।

आत्मा सर्वगतो न भवति, तद्गुणस्य सर्वभानुपलभ्यमानत्वाद् । पस्य  
पस्य गुणः सर्वभानुपलभ्यमान स स सर्वगतो न भवति, यथा घटाः । अयं चात्मा  
सर्वभानुपलभ्यमानगुणवान्, तस्मात् सर्वगतो न भवतीति । व्यतिरेकमुदाहरणं  
तु व्योमादि । न चासिद्धोऽयं हेतुरिति वाच्यम्, देहव्यतिरिक्तवेषे बुद्ध्यादीनां

यह कहना ठीक नहीं है कि—'फूल जारि का गुण—गन्ध बगैरह फूल की बगह से  
इसरी बगह भी पाये जाते हैं, इस कारण आपका हेतु अनेकान्तिक है' क्यों कि गन्ध के  
आधारभूत पुत्रक त्वामाधिक गति से वा प्रकृतकन्य गति से गतिमात् होने के कारण,  
गन्ध को प्रहण करने वाले घण—देश तक जाते हैं । तात्पर्य यह है कि जहाँ फूलकी  
गन्ध है वहाँ उस गन्ध के आधारभूत गन्ध—पुत्रक भी होते हैं इस कारण हेतु में  
व्यभिचार नहीं जाता ।

आत्मा सर्वव्यापक नहीं है, क्यों कि आत्मा के गुण  
सर्वत्र नहीं पाये जाते । मिस—मिस के गुण सर्वत्र उपलब्ध नहीं  
होते, वह पदार्थ सर्वव्यापक नहीं होगा जैसे घट । आत्मा के गुण  
सर्वत्र नहीं पाये जाते, अतः वह सर्वव्यापक नहीं है । 'आकाश यहाँ व्यतिरिक्त  
उदाहरण है । 'यह हेतु असिद्ध है,' ऐसा नहीं कह सकते, क्यों कि देह से अति

परिभाष्ये उ " कूल जाडिनो भुव—अं वधेरे कुडनी जन्मा विना पील जन्माजे  
पयु जेवामा जावे छ ते आरथकी आपने हेतु अनेकान्तिक छे " जेभ कहेवु ते  
कि नहीं. आरथ के अथना आधारभूत पुत्रक स्वाभाविक अतिथी जववा  
प्रकृतकन्य अतिथी अतिमान होवाना आरथे, अथने अहयु कथा पाण्य प्राकृत्ये  
सुधी जावे छे. तात्पर्य जे छे के—जहाँ कूलनी जंभ छे त्यों ते अथना आधारभूत  
अथपुत्रक पयु होव छे आ आरथ हेतुमा व्यभिचार जावते नहीं.

आत्मा सर्वव्यापक नहीं है अने आत्मानो भुवु सवत्र जेवामा जावते नहीं,  
जेने भुवु सर्वत्र उपलब्ध अतो नहीं, ते पदार्थ सर्वव्यापक होव नकि, जेभ घट.  
आत्मानो भुवु सवत्र जेवामा जावते नहीं, जे आरथकी ते सर्वव्यापक नहीं.  
आकाश जारि व्यतिरिक्त उदाहरण छे. ते हेतु असिद्ध छे." जेभ कही सकनो

गुणानामसद्भाव इति सर्वैः स्वीकारात् । शरीरे तद्गुणसत्त्वे हेतोर्नाप्रसिद्धता, इत्थं च देहाद् वहिर्देशेऽपि आत्माऽस्तीति वादं परित्यज्य स्वदेह एवात्माऽस्तीति मन्तव्यम् ।

यद्वा—आत्मा व्यापको न भवति चेतनत्वात्, यत्तु व्यापकं तन्न चेतनम्, यथा गगनम् । चेतनं चात्मा, तस्मान्न व्यापकः । इत्थमव्यापकत्वे सिद्धे तस्य तत्रैवोपलभ्यमानगुणत्वे कायप्रमाणताऽपि सिद्धा । यत् पुनरष्टसमयसाध्य-केवलिसमुद्घातावस्थायामार्हतानामपि चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकव्यापित्वेनात्मनः

रिक्त देश में बुद्धि आदि गुणों का सदभाव नहीं है, ऐसा सभी ने स्वीकार किया है । शरीर में आत्मा के गुणों का अस्तित्व है ही, अत एव हेतु असिद्ध नहीं है । इस प्रकार शरीर से बाहर आत्मा का अस्तित्व मानना छोड़ कर स्वदेह में ही अस्तित्व मानना चाहिए

अथवा—आत्मा व्यापक नहीं है, क्या कि वह चेतन है । जो व्यापक होता है वह चेतन नहीं होता, जैसे आकाश । आत्मा चेतन है, अतः व्यापक नहीं है ।

इस से आत्मा की अव्यापकता सिद्ध हो जाने पर पूर्वोक्त हेतु से (क्यों कि शरीर में ही उस के गुण पाये जाते हैं, इस हेतु से) आत्मा की शरीरप्रमाणता भी सिद्ध हो जाती है । आठ समय में सम्पन्न होने वाले केवलिसमुद्घात की अवस्था में चौदहराजू लोक में आत्मा का व्याप्त हो जाना जो यहाँ माना है, वह

नहि कारण्य के देहर्था अतिरिक्त (देह सिवाय) देशमा भुद्धि आदि गुणाना सङ्भाव नथी अे प्रमाणे सौअे स्वीकारेणु छे शरीरमा आत्माना गुणानु अस्तित्व छे न, अे कारण्यथी हेतु असिद्ध नथी आ प्रमाणे शरीरनी षडार आत्मानु अस्तित्व माननुं त्यएने पोताना देहमा न अस्तित्व माननुं नेधअे

अथवा—आत्मा व्यापक नथी, कारण्य के ते चेतन छे ने व्यापक होय-छे ते चेतन होय नहि, नेम आकाश आत्मा चेतन छे ते कारण्यथी व्यापक नथी।

आ हेतुथी आत्मानी अव्यापकता सिद्ध थवाथी पूर्वोक्त हेतुथी (केभके शरीरमा न तेना शुषु नेवामा आवे छे अे हेतुथी) आत्मानी शरीरप्रमाणाता पणु सिद्ध थध नथ छे आठ समयमां सपन्न थवा वाणा केवलिसमुद्घातनी अवस्थामां औद राजूलोकमा आत्मानु व्याप्त थध नवानु अहि ने मान्यु छे, ते कादाचित्क

सर्वव्यापित्वात्, यत् कदाचित्कमिति न तेन व्यभिचारः ।

आत्मा श्यामाकलङ्कलमाभो न भवति, अङ्गुष्ठपर्वमात्रो वा न भवति, तावन्माभस्योपाचक्षरीरव्यापित्वात्, तिष्ठे तैस्त्वत् स्वरूपवन्तश्चरीरव्यापित्वेन योपलम्पमानगुणत्वात्, तस्मादुपाचक्षरोरे त्वरूपवन्तश्चरीरव्यापीति सिद्धम् ।

(१०) अमूर्तस्वनिरूपणम्—

आत्मा अमूर्तः, इन्द्रियैरप्राप्तत्वात्, सद्गादिभिरप्येद्यत्वात्, शुद्धादिभिरमेघ-  
त्वात्, रूपरहितत्वात्, अनाद्यमूर्तपरिणामत्वात्, नित्यत्वात् ।

कार्यात्मिक (कमी-कमी होनेवाला) है, उस से व्यभिचार नहीं आता ।

आत्मा श्यामाकलङ्कलमाभो न भवति, अङ्गुष्ठ के पर्व (पौर) के बराबर ही है, इत्यादि सा आत्मा एक साब समस्त शरीर में व्यापक नहीं हो सकता, अगर आत्मा के गुण हो संपूर्ण शरीर में उपलब्ध होते हैं, जैसे स्थलों में तेल सर्वत्र पाया जाता है अत एव सिद्ध हुआ कि आत्मा प्राप्त शरीर में व्यापकत्ववापी है ।

(१०) आत्मा का अमूर्तत्व—

आत्मा अमूर्त है, क्योंकि वह इन्द्रियों के द्वारा प्रमाण नहीं किया जाता, वह स्वतः  
व्यति से ज्ञेय नहीं हो सकता शुद्ध व्यति से ज्ञेय नहीं हो सकता वह अकाली है,  
अनादि काल से अमूर्त परिणामवाला है और वह नित्य है ।

(अध्वजित श्यामाकलङ्क) छे तेषां व्यभिचार आचरो नधी ।

आत्मा श्यामाकलङ्कलमाभो न भवति, अङ्गुष्ठ के पर्व (पौर) के बराबर ही है, इत्यादि सा आत्मा एक साब समस्त शरीर में व्यापक नहीं हो सकता, अगर आत्मा के गुण हो संपूर्ण शरीर में उपलब्ध होते हैं, जैसे स्थलों में तेल सर्वत्र पाया जाता है अत एव सिद्ध हुआ कि आत्मा प्राप्त शरीर में व्यापकत्ववापी है ।

(१०) आत्मा का अमूर्तत्व

आत्मा अमूर्त छे कारण छे ते इन्द्रियों द्वारा प्रमाण करी शकते नधी,  
अकाल (वैकाल) व्यति छे तै शकते नधी, शुद्ध व्यति से ज्ञेय शकते नधी, अनन्त  
छे, अनादि काल छे अमूर्त परिणामवाला छे अने ते नित्य छे ।

गुणानामसद्भाव इति सर्वैः स्वीकारात् । शरीरे तद्गुणसत्त्वे हेतोर्नाप्रसिद्धता, इत्थं च देहाद् वहिर्देशेऽपि आत्माऽस्तीति वादं परित्यज्य स्वदेह एवात्माऽस्तीति मन्तव्यम् ।

यद्वा—आत्मा व्यापको न भवति चेतनत्वात्, यत्तु व्यापकं तन्न चेतनम्, यथा गगनम् । चेतनं चात्मा, तस्मान्न व्यापकः । इत्थमव्यापकत्वे सिद्धे तस्य तत्रैवोपलभ्यमानगुणत्वे कायप्रमाणताऽपि सिद्धा । यत् पुनरष्टसमयसाध्य-केवलिसमुद्घातावस्थायामार्हतानामपि चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकव्यापित्वेनात्मनः

रिक्त देश में बुद्धि आदि गुणों का सद्भाव नहीं है, ऐसा सभी ने स्वीकार किया है । शरीर में आत्मा के गुणों का अस्तित्व है ही, अत एव हेतु असिद्ध नहीं है । इस प्रकार शरीर से बाहर आत्मा का अस्तित्व मानना छोड़ कर स्वदेह में ही अस्तित्व मानना चाहिए

अथवा—आत्मा व्यापक नहीं है, क्या कि वह चेतन है । जो व्यापक होता है वह चेतन नहीं होता, जैसे आकाश । आत्मा चेतन है, अतः व्यापक नहीं है ।

इस से आत्मा की अव्यापकता सिद्ध हो जाने पर पूर्वोक्त हेतु से (क्यों कि शरीर में ही उस के गुण पाये जाते हैं, इस हेतु से) आत्मा की शरीरप्रमाणता भी सिद्ध हो जाती है । आठ समय में सम्पन्न होने वाले केवलिसमुद्घात की अवस्था में चौदहराजू लोक में आत्मा का व्याप्त हो जाना जो यहाँ माना है, वह

नहि कार्ष्ण्ये के देहथी अतिरिक्त (देह सिवाय) देशभा भुद्धि आदि शुष्णानो सद्भाव नथी अे प्रभाणु सौअे स्वीकारेणु छे शरीरभा आत्माना शुष्णानु' अस्तित्व छे न, अे कार्ष्ण्यथी हेतु असिद्ध नथी आ प्रभाणु शरीरनी षडार आत्मानु अस्तित्व मानवुं त्यएने पोताना देहभांन अस्तित्व मानवुं नेधअे

अथवा—आत्मा व्यापक नथी, कार्ष्ण्ये के ते चेतन छे ने व्यापक डोय-छे ते चेतन डोय नहि, नेम आकाश आत्मा चेतन छे ते कार्ष्ण्यथी व्यापक नथी

आ हेतुथी आत्मानी अव्यापकता सिद्ध थवाथी पूर्वोक्त हेतुथी (केमके शरीरभा न तेना शुष्ण नेवामा आवे छे अे हेतुथी) आत्मानी शरीरप्रमाणता पणु सिद्ध थध नय छे आठ समयभा सम्पन्न थवा वाणा केवलिसमुद्घातनी अवस्थाभा, औद 'राजू'देहभा आत्मानु व्याप्त थध नवानु अहिं ने मान्यु छे, ते काहाचित्क,

इयं च पुच्छिका न किञ्चिदिच्छति, पुनरयं वाक् सकलेन्द्रियैर्विषय-  
सुपशुभ्य सुस्तीमषितुमिच्छति । यदि कोऽपि स्वशुभस्याप्येमावभिधावेत् तदा  
पुच्छिका पूर्ववदेषावस्थिता भविष्यति, बलस्तु स्वामिधावनितदुत्सादुद्दिश्य  
प्लायिष्यते । अतो वाक्ः कमपि पुशुधितं बालमुपकरिष्यति मोक्षनीयवस्तु-  
प्रदानेन, कमपि बान्यं बालं चपेटादिप्रहारेण क्रन्दयिष्यति । पुच्छिका तु  
हितमहितं वाऽपि किञ्चिन्नैव कर्तुं प्रमरिष्यति । यदि मिष्टान्नाय बालं माहृतो  
मवेत् तदानीं सस्वरमागतो बालो मोक्षं प्रवर्तेत्, तज्जन्यसुखाद्युमवोऽपि तस्य  
वायेत् । पुच्छिका तु नागमिष्यति न किञ्चिद् मोक्ष्यते, का वार्ता सुखानुभवस्य ? ।

यह पुच्छी कुछ भी इच्छा नहीं करती मगर वाक्क सभी इन्द्रियों के विषयों का  
भोग करके सुखी होने की इच्छा करता है । अगर कोई तस्वार उठकर इन्हें मारने  
वाले तो पुच्छी क्यों की क्यों खड़ी रहेगी मगर वाक्क तस्वार के अघात के दुःख  
से उद्विग्न हो कर या अघात की आशङ्का से भगा जायगा । वह वाक्क किसी  
मुखे वाक्क को मोक्ष देकर उसका उपकार भी करेगा और किसी वाक्क को अप्पह  
जादि मारकर स्वप्न मगर पुच्छी किसीका हित या अहित करने में समर्थ नहीं  
है । अगर वाक्क को मिठाई खाने के लिये बुझवा जाय तो उसी समय अप्पकर वह  
मिठाई पर दूट पड़ेगा और उसे मिठाई खाने के सुख का अनुभव भी होगा ।  
पुच्छी न मिठाई के लिये अप्पगी न स्वापगी, सुख का अनुभव करने की तो बात  
ही अस्म्य रही । अत एव यह निश्चय होता है कि वाक्क में जीव का लक्षण ज्ञान

या पुच्छी हितं पशु उच्छिन्ना करती नहीं, परंतु जाणक सर्व उच्छिन्नेना  
विषयेना बोध करीने सुखी वदानी उच्छिन्ना करे छे अथवा केछं उद्वार उच्छिन्ने  
तेने भावना होठे तो पुच्छी तो केम छे तेम त्यां उच्छी रहेरी परंतु जाणक  
उद्वार भावना दुःखभी उच्छिन्न-विद्यतुर जनीने अथवा तो भावनायी आशङ्कायी  
थायी जरी ।

जे जाणक केछं बुद्धा जाणनेने बोधन आधीने तेने उपकार पशु करीने अने  
केछं जाणनेने अपह जादि मारीने तेने शवस्यरी, परंतु पुच्छी केछंतु हित छे  
अथवा अहित हस्या समर्थ नहीं, अथवा जाणनेने मिच्छं जाया भाटे आकावनायां  
जाये तो तेव समर्थे आधीने मिच्छं पर त्ही पक्षी अने तेने मिच्छं जायनेने  
सुखनेने अनुभव पशु करी, पुच्छी मिच्छं भाटे जायरी नहीं अने जाये पशु नहीं  
तो सुखना अनुभवनी तो बात व बुद्धी रही, जे हास्युधी निश्चय थाव छे छे

અનેન—“આત્મા નાતીન્દ્રિયો નાપિ જડાદ્ મિન્નઃ” ઇતિ નાસ્તિકમતં નિરસ્તમ્ ।

નન્વમૂર્તોઽયમાત્મા નેત્રાદિભિરિન્દ્રિયૈસ્તુ ન વિજ્ઞેયસ્તર્હિ કથમિમં જનો જાનીયાત્—‘અસ્ત્યત્રાત્મે’—તિ ।

શ્રૂયતામ્—કસ્યચિત્ સમક્ષમષ્ટવર્ષીયો વાલસ્તિષ્ઠતિ; તત્સમાનાકૃતિ-મૃન્મયી પુત્તલિકાઽપિ તિષ્ઠતિ । તત્રાસૌ દ્રષ્ટા પશ્યતિ—હ્યં પુત્તલિકા ચક્ષુર્ગ્રાણ-કર્ણયુક્તાઽપિ દ્રષ્ટું ગ્રાતું શ્રોતું વા ન શક્નોતિ, પુનરયં વાલશ્ચક્ષુર્મ્યાં પશ્યતિ, પુષ્પમાગ્રાતિ, કસ્યચિદ્વાપિતં શૃણોતિ ચ ।

હસ કથન સે નાસ્તિક કે હસ મત કા નિરાકરણ હો ગયા કિ—‘આત્મા ન અતોન્દ્રિય હૈ ઓર ન જડ સે મિન્ન હૈ’ ।

શંકા—આત્મા અમૂર્ત હૈ, નેત્ર આદિ ઇન્દ્રિયો સે જાના નહીં જા સકતા તો મનુષ્ય કૈસે સમજે કિ આત્મા કા અસ્તિત્વ હૈ ? ।

સમાધાન—સુનિયે । માન લીજિએ કિસી કે સામને આઠ વર્ષ કા વાલક સ્વદા હૈ, ડસી કે સમાન આકૃતિવાલી મિટ્ટી કી ઇક પુતલી મી રક્લી હૈ । ડોનો કો ડેરખને વાલ ડેરખતા હૈ કિ—યહ પુતલી નેત્ર, નાક ઓર કાન સે યુક્ત તો હૈ કિન્તુ ડેરખને મેં સૂઘને મેં ઓર સુનને મેં સમર્થ નહીં હૈ, ઓર યહ વાલક આંચો સે ડેરખતા હૈ, ફૂલ સૂઘતા હૈ, ઓર કિસી કા માષણ સુનતા હૈ ।

આ કથનથી નાસ્તિકના એ મતનું નિરાકરણ થઈ ગયું કે “આત્મા અતોન્દ્રિય નથી, અને જડથી મિન્ન નથી”

શંકા—આત્મા અમૂર્ત છે, નેત્ર આદિ ઇન્દ્રિયોથી જાણી શકાતો નથી, તો પછી માણસો કેવી રીતે સમજી શકશે કે આત્માનું અસ્તિત્વ છે

સમાધાન—સાબળો ? માની લો કે કોઈ (માણસ)ના સામે એક આઠ વર્ષનો બાળક ઉભો છે તેની બાબુમા તેના જેવી સમાન આકૃતિવાલી માટીની એક પુતળી પણ રાખી છે આ બન્નેને જોવાવાળા બુવે છે કે—આ પુતળી નેત્ર, નાક, કાનથી યુક્ત તો છે, પરંતુ જોવામા, સુઘવામા અને સાબળવામા સમર્થ નથી. અને આ બાળક નેત્રથી બુવે છે, ફૂલ સૂઘે છે અને કોઈનું ભાષણ સાબળે છે.

(११) आत्मनः प्रतिशरीरं भिन्नत्वम्—

आत्मा-प्रतिशरीरं भिन्नः । एकस्यैवात्मनः प्रतिशरीरसत्त्वे तु अन्ममरणबन्ध-  
मोक्षव्यवस्था नोपपद्यते । अन्यो आत्मा, अन्यो मृतः । अन्यो बन्धः, अन्यस्तु मुक्त  
इति व्यवस्था कथमुपपद्येत, तस्मात् प्रतिशरीरं भिन्न इति सिद्धम् । तथा चानन्त्या  
आत्मान इति मन्तव्यम् । अनेनाज्ञैतन्वादो निराकृतः ।

(१२) आत्मनः पौद्गलिककर्मसंयुक्तम्—

अथ आत्मा—पौद्गलिककर्मसंयुक्तः । निश्चयनयन कर्मरहितोऽपि व्यवहार-  
नयतोऽनादिकास्ततः पौद्गलिककर्मसंबन्धोऽस्ति, तस्मात्प्यं पौद्गलिककर्मसंयुक्त  
इति कथ्यते ।

(११) आत्मा का प्रतिशरीरभिन्नत्व—

आत्मा अस्मा-अस्मा शरीरां में अस्मा-अस्मा है । समस्त शरीरो में  
एक ही आत्मा का अस्तित्व माना क्या तो क्या, मरण बन्ध और मोक्ष  
की व्यवस्था नहीं हो सकेगी । अर्थात् कोई जनमा कोई मरा, कोई बन्ध हुआ  
और कोई मुक्त हुआ, ऐसी व्यवस्था कैसे बन सकेगी ? अत आत्मा प्रत्येक  
शरीर में अस्मा ही सिद्ध होता है । आचार्य अन्तः हैं; ऐसा मानना चाहिए ।  
इस से अज्ञैतवाद का निराकरण हो गया ।

(१२) आत्मा का पौद्गलिक कर्मसंयोग—

यह आत्मा पौद्गलिक कर्मों से संयुक्त है । निश्चयनयन से कर्मरहित होने पर  
भी व्यवहारनयनकी अपेक्षा अनादिकास्ततः से पौद्गलिक कर्मों के साथ आत्मा

(११) आत्मानु प्रतिशरीरभिन्नत्व

आत्मा अस्मा-अस्मा शरीरिमां अस्मा-अस्मा छे समस्त शरीरिमां जेक व आत्मानु  
अस्तित्व मानवामां आवे ते अस्मा, अस्तु अथ अने भिक्षणी व्यवस्था अर्थ शक्ये  
नहीं । अर्थात्, कोठतु अस्मा, कोठतु अस्तु, कोठ अथ अने कोठ सुकत माय  
जेवी व्यवस्था जेनी शक्ये अनी शक्ये । आ आस्तुमी 'आत्मा प्रत्येक शरीरिमां अस्मा  
छे' जेव सिद्ध अथ छे आत्मा अन्त छे जेव मानु जेकजे, आधी अज्ञैतवादानु  
निराकरण अर्थ अथु

(१२) आत्मानो पौद्गलिक कर्मसंयोग

आ आत्मा पौद्गलिक कर्मिणी संयुक्त (कर्मों साथे जोड़ाजोड़ा) छे निश्चय  
नयनी कर्मरहित जेवा छताय पद्य व्यवहारनयनी अपेक्षा अनादिकास्ततः पौद्गलिक

तथा चार्यं निश्चयः—वाले जीवलक्षणस्य ज्ञानस्य सद्भावाद् बालशरीरे जीवोऽस्तीति । एवमन्यत्रापि सजीवशरीरे जीवस्य सत्ता निश्चेतुं शक्यते । वस्तुतोऽयमात्मैव कर्ता भोक्ता नानाविधशुभपरिणतिकर्ता चेति । अयमात्मा संसारावस्थार्या स्वज्ञानवशेन दुःखमर्जयति । उक्तञ्च—

“संसारे पर्यटन् जन्तु,—बहुयोनिसमाकुले,  
शारीरं मानसं दुःखं, प्राप्नोति वत दारुणम् ॥१॥  
आर्तध्यानरतो मूढो, न करोत्यात्मनो हितम्,  
तेनासौ मुमहत् क्लेशं, परत्रेह च गच्छति” ॥२॥

विद्यमान है, इस लिए उस में जीव है । इसी प्रकार अन्यत्र भी सजीव शरीर में जीव की सत्ता का निश्चय किया जा सकता है । वास्तव में यही आत्मा कर्ता, भोक्ता और नाना प्रकार की शुभ और अशुभ परिणतियों का कर्ता है । आत्मा संसार-अवस्था में अपने अज्ञान के आधीन हो कर दुःख उपार्जन करता है, कहा भी है :—

“नाना प्रकार की योनियों से युक्त इस संसार में भ्रमण करता हुआ जीव अनेक और भयानक शारीरिक एवं मानसिक दुःख प्राप्त करता है ॥ १ ॥

आर्तध्यान और रौद्रध्यान में लीन रहने वाला मूढ जीव आत्मा का हित नहीं करता । इसी कारण वह इस लोक और पर लोक में महान् क्लेश पाता है” ॥२॥

पालकमा एवमु लक्ष्ण—जे ज्ञान ते विद्यमान छे, ते कारखुधी तेमा एव छे जे प्रमाहे अन्यत्र पणु सएव शरीरमा एवनी सत्तानो निश्चय करी शक्य छे वास्तवमा आ आत्मा कर्ता, बोधता अने नाना प्रकारनी शुभ अने अशुभ परिणतिअनो कर्ता छे आत्मा संसार अवस्थामा पोताना अज्ञानने आधीन धरने दुःख उपार्जन करे छे कहु पणु छे के —

“नाना प्रकारनी योनियोधी युक्त आ संसारमा भ्रमणु करतो थके एव अनेक भयानक शारीरिक अने मानसिक दुःख प्राप्त करे छे ॥१॥

आर्तध्यान अने रौद्रध्यानमा लीन रहेवा वाणो मूढ एव आत्मानु हित करतो नथी. आ कारखुधी ते आ लोक अने परलोकमा महान् क्लेश पावे छे. ॥२॥



कर्मबन्धापेक्षयाऽऽत्मना सह पुद्गलस्यैक्यरूपः संबन्धः, परन्तु स्मृणा-  
 पेक्षया द्वयोर्मिन्नता प्रतीयते । तस्मादात्मन एकत्वेनाऽमूर्तत्वं नास्ति । इदमत्र  
 तत्त्वम्-बन्धस्तु वस्तुता पुद्गलस्य पुद्गलन सह भवति; यथा पृथक् पृथक् पुद्गला  
 स्थस्तिगुणाभ्यां परस्परं बन्ध प्राप्नुवन्ति तद्वत्-आत्मना सह पूर्वप्रदेः कर्मपुद्गले  
 सह नूतनकर्मपुद्गला निबन्धते । आत्मनोऽसंख्यातप्रदेशेषु कर्मपुद्गलानामवगाहनं  
 भवति । आत्मन एकैकप्रदेशेऽनन्तकर्मपुद्गलास्तिष्ठन्ति । आत्मप्रदेशानां कर्मपुद्गलानां  
 पैक्षेत्रोऽवगाहनरूप एव बन्धः । ईदृशोऽयं बन्धो नास्ति ।

कर्मबन्ध की अपेक्षा आत्मा के साथ पुद्गल का एकत्व-रूप-सम्बन्ध है किन्तु स्मरणों  
 से होता मिम-मिम प्रतीत होते हैं इस लिए आत्मा में एकत्व अमूर्तता नहीं है । तात्पर्य  
 यह है कि-वास्तव में पुद्गलका बन्ध तो पुद्गल के साथ ही होता है, जैसे पृथक् पृथक् पुद्गल  
 रूपा और स्तिग्धता गुणों के कारण परस्पर बंध हो जाते हैं, इस प्रकार आत्मा के साथ  
 पहले से जैसे हुए कर्मपुद्गल के साथ नवीन कर्मपुद्गलों का बन्ध होता है, इन पुद्गलों  
 की अवगाहना आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में होती है । आत्मा के एक-एक प्रदेश में  
 अनन्त पुद्गल रहते हैं । आत्मप्रदेशों का और कर्म-पुद्गलों का बन्ध पैक्षेत्रावगाहन  
 रूप ही है, जैसे एक पुद्गल दूसरे पुद्गल के साथ स्तिग्धता और स्मृता गुण के कारण  
 मित्र कर स्तब्ध बन जाता है वैसे आत्मा और पुद्गल का बन्ध नहीं होता । कर्म

कर्म अथवा अपेक्षा आत्मा की साथ पुद्गलको ज्येष्ठत्वरूप संबंध से परन्तु  
 स्मरणों से होने किन्तु किन्तु प्रतीत साथ से जो अवगाही ज्येष्ठत्व अमूर्तता नहीं.  
 तात्पर्य जो से है-वास्तवमें पुद्गलको अपेक्षा तो पुद्गलकी साथ ही साथ से.  
 पृथक्-पृथक् पुद्गल इक्षता होने स्तिग्धता शब्दों का कारण परस्पर बंध बंध बंध  
 से जो प्रमात्रे आत्मा की साथ प्रथमही बंध बंधेला (आत्माने प्रथम घाटेला)  
 कर्मपुद्गलकी साथ नहीं कर्मपुद्गलको अपेक्षा साथ से. तो पुद्गलकी अवगाहना  
 आत्माने अवगाहना प्रदेशों में साथ से आत्माने ज्येष्ठ ज्येष्ठ प्रदेशों में अनन्त पुद्गल  
 रहे से आत्माने प्रदेशों में कर्मपुद्गलको अपेक्षा ज्येष्ठत्वरूपरूप रूप ही से सेनी  
 रीते ज्येष्ठ पुद्गल कीवल पुद्गलकी साथ स्तिग्धता होने इक्षता शब्दों का कारण  
 मणीने स्तब्ध अथवा से तैनी रीते आत्मा में पुद्गलको अपेक्षा बंधेता नहीं.  
 कर्मपुद्गलकी अवगाहना आत्मा की साथ ही प्रमात्रे अनादिकालकी अथवा आने से  
 प्र मा-३५

આત્મનો મિથ્યાત્વેન સહાનાદિઃ સમ્વન્ધઃ । અનાદિમિથ્યાત્વજનિત-  
વિભાવપરિણામરૂપરાગદ્વેષપરિણત્યાઽઽત્મા સંતપ્તાયોગોલક ઇવ સલિલં સર્વતોભાવેન  
જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મદલ સમાકૃપ્ય સ્વસ્મિન્ સંયોજયતિ । તતોઽસૌ વદ્ધિનાઽયોગાલક  
ઇવ, નીરેણ ક્ષીરમિવ તેન કર્મદલેનૈક્યભાવં પ્રાપ્ય મૂર્ત ઇવ ભવતિ, અત એવ  
નિશ્ચયનયેનાઽમૂર્તોઽપિ વ્યવહારનયેનાત્મા મૂર્ત ઇત્યુચ્યતે । કર્મસમ્વન્ધોઽયમાત્મનો  
વ્યવહારનયત એવ ।

કા સયોગ છે । અત એવ ઉસે પૌદ્ગલિક કર્મો સે સયુક્ત કહતે હૈ । મિથ્યાત્વ  
કે સાથ આત્મા કા અનાદિ સમ્વન્ધ છે । અનાદિકાલીનમિથ્યાત્વજનિત  
વિભાવ-પરિણતિરૂપ રાગ-દ્વેષ સે આત્મા અપને સમસ્ત પ્રદેશો સે જ્ઞાનાવરણ ળાદિ  
કે કર્મદલિકો કો ઉસી પ્રકાર પ્રહણ કરતા છે, જૈસે સૂચ તપા હુઆ લોહે કા  
ગોલા જલ કો પ્રહણ કરતા છે । અત જૈસે અગ્નિ ળૌર લોહગોલક એકમેક  
સે હો જાને હૈ, ળૌર દૂધ-પાની એક-મેક હોયા હુઆ પ્રતીત હોતા છે, ળસી  
પ્રકાર કર્મદલિકો કે સાથ આત્મા એકમેક હોકર મૂર્ત-સા હો જાતા છે । ળસ  
પ્રકાર નિશ્ચયનય સે અમૂર્ત હોને પર મી વ્યવહારનય સે આત્મા મૂર્ત છે । આત્મા  
ળૌર કર્મ કા વહ સમ્વન્ધ વ્યવહારનય સે હી સમજના ળાહિએ ।

કર્મોની સાથે આત્માનો સયોગ છે એ કારણથી તેને પૌદ્ગલિક કર્મોથી સયુક્ત  
કહે છે

મિથ્યાત્વની સાથે આત્માનો અનાદિ સબધ છે અનાદિકાલીન મિથ્યાત્વથી  
ઉત્પન્ન વિભાવ-પરિણતિરૂપ રાગ-દ્વેષથી આત્મા પોતાના સમસ્ત પ્રદેશોથી જ્ઞાનાવરણ  
આદિના કર્મદળોને એવી રીતે ગ્રહણ કરે છે કે જેવી રીતે ખૂબ તપેલા લોહાને  
ગોળો જલનુ ગ્રહણ કરે છે એટલે કે જેમ અગ્નિ અને લોહાનો ગોળો એકમેક  
થઈ બાય છે, અને દૂધ-પાણી એકમેક થયેલા પ્રતીત થાય છે. તે પ્રમાણે કર્મ-  
દલિકોની સાથે આત્મા એક-મેક થઈને મૂર્ત જેવો થઈ બાય છે આ પ્રમાણે  
નિશ્ચયનયથી અમૂર્ત હોવા છતાય પણ વ્યવહારનયથી આત્મા મૂર્ત છે આત્મા  
અને કર્મનો આ સબધ વ્યવહારનયથી જ સમજવો જોઈએ

स्वप्नात् पुरातना पुद्गलाः स्रान्ति नूतनास्तु तत्रागत्य मिस्रन्ति, तथाऽनयो-  
 स्रैप्रस-कार्मण-शरीरयोः स्वरूपं न कदाचिद् विनश्यति, परन्तु तत्रत्याः  
 पुरातनाः कर्मपुद्गलाः स्वस्वरूपमज्ञानपुरस्सरं स्वावस्थितिसमयं समाप्याप-  
 गच्छन्ति, नूतनाः पुनः कर्मपुद्गला आत्मप्रदेशेषु भिस्त्विवा संभवा मयन्ति ।  
 एषाम्मात्मप्रदेशैः सहामादिकास्तः प्रनाहरूपोऽप्य समायातः कर्मणां सम्बन्धः ।

अथ च कर्मसम्बन्धस्तदेव विनश्यत्यति, यदाऽप्यमात्मा मुक्तिं लभेत् । आम्नां  
 तैमसकर्मणश्शरीरान्मा विभोग एव मुक्तिरन्वये । यथनादिकास्तः कर्मण-  
 शरीरं संसारिणो न स्यात् तदा कदाचिदपि नवीनकर्मवर्गोपागमिर्नवो न  
 सवेत् । कर्मवर्गशरीरान्मावादेव सिद्धानां कर्मवर्गोपापरिपूर्णेऽपि सिद्धये  
 कर्मवन्धो न मयति ।

किं भी उस स्वप्न से पुराने पुद्गल स्थिरते रहते हैं और नवीन पुद्गल आकर उसमें मिस्र जाते  
 हैं इसी प्रकार तैमस और कर्मण शरीर का स्वरूप कभी नष्ट नहीं होता, किन्तु उसमें के  
 पुराने कर्म-पुद्गल अपना-अपना फल देकर, अपनी स्थिति का काळ समाप्त करके हट जाते  
 हैं और नवीन पुद्गल अज्ञानप्रदेशों में भिस्त्वन बह हो जाते हैं । इस प्रकार आत्मप्रदेशों के साथ  
 कर्मों का सम्बन्ध अनादिकाळ से प्रवाहरूप में बल आता है ।

यह कर्म-सम्बन्ध उसी समय नष्ट होगा, जब अत्मा मुक्त हो जायगा । तैमस और  
 कर्मण शरीर से सर्वथा विभोग हो जाना ही अत्मा की मुक्ति है । संसारी जीव के साथ  
 अनादि काळ से कर्मण शरीर का सम्बन्ध न होता तो नवीन कर्मवर्गोपागमा का सम्बन्ध  
 कभी न होता । कबहि सिद्धयेन कर्मवर्गोपागमा से मरा हुआ है, किं भी सिद्धों में कर्मण  
 शरीर न होने से उन्हें कर्मवन्ध नहीं होता ।

विद्यमान रहे छे तो पक्ष ते कथभांभी पुराण्य पुद्गल परतां रहे छे. अने  
 नवीन पुद्गल आतीने तेभां भणी व्य छे जे प्रभावे तेव्य अने कर्मण  
 शरीरु स्वक्ष के। वजत भव नाश वत नवी, परतु तेभा पुसण्य कर्मपुद्गल  
 पित-पितातु ह्य आतीने पीतानी स्थितिने समय समाप्त करीने कही जाय छे  
 अने नवीन पुद्गल आत्मप्रदेशोभां भणीने वद कथ जाय छे. जे प्रभावे आत्म  
 प्रदेशोनी साथे कर्मोनी सवध अनादि कालभी प्रवाहरूपभां आब्ये. आवे छे.

अथ कर्म-सवध ते कर्मने नाश कथे के अथै आत्मा मुक्त कथ करी  
 तेव्य अने कर्मण शरीरनी सर्वथा विभोग कथ अवे तेव आत्मानी मुक्ति छे  
 संसारी जीवनी साथे अनादि कालभी कर्मण शरीरने सवध जे न छेत् तो  
 नवीन कर्मवर्गोपागमोने सवध पक्ष के। वजत नही बने, जे के सिद्धयेन

यथा—पुद्गलस्य पुद्गलेन सह स्निग्धरूक्षगुणसद्भावे सति स्कन्धभावरूपो बन्धो भवति । कर्मपुद्गलानामवगाहनाऽऽत्मना सहेत्यमनादिकालतः प्रवृत्ता, यत्—एकपिण्डरूप कर्मणशरीरमेव संजायते । तच्च शरीरमात्मनः प्रदेशमेकमपि न मुञ्चति । आत्मनः सर्वप्रदेशमभिव्याप्य तिले तैलमिव कर्मणशरीरं तिष्ठति, किन्तु—अक्षर—स्यानन्ततमो भागो वर्तते एव, मेघपटलाच्छादितसूर्यरश्मिवत् । इदं कर्मणं शरीरं तैजसं चेति द्वयं शरीरमतिसूक्ष्मं सदाऽऽत्मना सह वर्तते । यत्र सूक्ष्मशरीरे स्थूलशरीरे वाऽयमात्मा गच्छति तत्रमाणो भवन् संकुचितो विस्तृतो वा भवति । तदानीमिदं द्वयं शरीरमपि सूक्ष्मस्थूलशरीरानुसारेण संकुचितं विस्तृतं वा भवति ।

यथा—अकृत्रिमपर्वतादौ स्कन्धरचना विद्यमानैव, तथापि तस्मात्

पुद्गलों की अवगाहना आत्मा के साथ इस प्रकार अनादिकाल से चली आती है कि एक पिण्डरूप कर्मण शरीर ही उत्पन्न होता है । यह कर्मण शरीर आत्मा के एक भी प्रदेशको नहीं छोड़ता । आत्मा के समस्त प्रदेशों को व्याप्त करके, तिल में तेल की तरह कर्मण शरीर रहता है, किन्तु जान का अनन्तवाँ भाग बादलों से आच्छादित सूर्य की प्रभा के समान खुला रहता ही है ।

यह कर्मण शरीर और तैजस शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है और आत्मा के साथ सदैव रहते हैं । जिस सूक्ष्म या स्थूल शरीर में आत्मा जाता है उसी शरीरप्रमाण संकुचित या विस्तृत हो जाता है, और उस समय ये दोनों शरीर भी सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीर के अनुसार संकुचित अथवा विस्तृत हो जाते हैं ।

जैसे अकृत्रिम पर्वत आदि में स्कन्ध की रचना तो ज्यों की त्यों विद्यमान रहती है

के अेकपिण्डरूप कर्मण शरीर जे उत्पन्न थाय छे ते कर्मण शरीर आत्माना अेक पणु प्रदेशने छाऽतो नथी आत्माना तमाभ प्रदेशाने व्याप्त ( आरेय तरक्ष धरायेदुं ) करीने तलभा तेल रहे छे ते प्रभाणु कर्मण शरीर रहे छे

परतु ज्ञानने अनंतमो भाग, वाहणाज्योथी ढकाज्येदी सूर्यनी प्रभा प्रभाणु पुद्गलो रहे जे छे ? ते कर्मण शरीर अने तैजस शरीर अत्यन्त सूक्ष्म छे अने आत्माना साथे ते हमेशा रहे छे जे सूक्ष्म के स्थूल शरीरमा आत्मा जाय छे ते शरीर प्रभाणु संकुचित अथवा विस्तृत थर्ध जाय छे अने ते समय आ जन्ने शरीर पणु सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीरना अनुसारे संकुचित अथवा विस्तृत थर्ध जाय छे.

जेवी रीते अकृत्रिम पर्वत आदिना स्कन्धनी रचना तो जेवी छे तेवी जे

लोकवादिप्रकरणम्-

यः पुनरेवं रूपमात्मानं सर्वथा विज्ञायात्मस्वरूपनिरूपणपरः स एव वस्तुतो लोकवादीत्याह- 'लोकवादी' इति । लोक्यते सर्ववैरिति लोक- पद्विनिर्वाचनरूपः । अत्र लोकशब्देन पद्विनिर्वाचनो गृह्यते, भगवताऽऽत्मज्ञान- मेव पुरस्कृत्य लोकवादिप्रतिषेधनात् । यः पद्विनिर्वाचनरूपं लोकं विद्वानासि स एव लोकवादी-लोकस्वरूपकवनस्वभाववान्, न तु पद्विनिर्वाचनमिह इत्यर्थः ।

पद्विनिर्वाचनपरस्यैवात्मस्वरूपं प्रकटीभवति । तत्र पद्विनि-

लोकवादिप्रकरणम्-

जो इस प्रकार आत्मा के स्वरूप को जान कर आत्मा के निरूपण में तत्पर होता है वही वास्तव में लोकवादी है ।

सर्वज्ञों द्वारा जो लोक वाच्य-मवलोकन किया गया वह लोक है, अर्थात् पद्विनिर्वाचन को लोक कहते हैं । लोक 'शब्द' से यहाँ पद्विनिर्वाचन का ही ग्रहण किया गया है क्योंकि भगवान् ने आत्मज्ञान को ही भागे रसकर लोकवादी का कवन किया है । जो पद्विनिर्वाचनरूप लोक को जानता है वही लोकवादी है, अर्थात् लोक के स्वरूप का कवन करने वाला है, किन्तु पद्विनिर्वाचन से अनभिज्ञ नहीं ।

पद्विनिर्वाचन की रक्षा करने से ही आत्मा का स्वरूप प्रकट होता है । पद्विनि-

लोकवादीप्रकरणम्

जो आत्मा प्रमाद्ये आत्मज्ञान स्वरूपने बाधुी करीने आत्माना निरूपणमा तत्पर थाव से ते वास्तविक होते लोकवादी से

सर्वज्ञों द्वारा जो लोकवाच्य-मवलोकन किया गया-अर्थात् सर्वज्ञों ने जो लोक शब्द से लोक है, अर्थात् पद्विनिर्वाचनने लोक शब्द से लोक 'शब्द' शब्दधी पद्विनिर्वाचनरूप का कवन किया है । अतएव लोकवादी का कवन करने वाला है, किन्तु पद्विनिर्वाचनरूप लोकने अनभिज्ञ से ते लोकवादी से अर्थात् लोकना स्वरूपने कवन करवा पण्डा से पद्विनिर्वाचनधी अनभिज्ञ होय ते नहीं ।

पद्विनिर्वाचनकी रक्षा करवाधी न आत्माना स्वरूप प्रकट थाव से पद्वि-

## (૧૩) આત્મન ઝર્ધ્વગતિસ્વભાવત્વમ્—

અયમાત્મા—ઝર્ધ્વગતિશીલઃ, અગુરુલઘુત્વાત્ । યદ્યેવં તર્હિ કથમધો ગચ્છતિ ? । અલાભુર્યથા સ્વભાવત્ ઝર્ધ્વગમનશીલોપિ મૃલ્લેપાજ્જલેઽધો ગચ્છતિ; તદપગમાદ્ઝર્ધ્વમાજલાન્તાદ્ ગચ્છતિ, એવમાત્માપિ કર્મલેપાદધો ગચ્છતિ તદપગમાદ્ઝર્ધ્વમાલોન્કાન્તાદ્ ગચ્છતિ । યથા વા—એરુડવીજમપિ બન્ધનમુક્તં સદ્ઝર્ધ્વ ગચ્છતિ ।

## (૧૩) આત્માકા ઝર્ધ્વગતિસ્વભાવ—

યહ આત્મા ઝર્ધ્વગમન સ્વભાવ વાલા હૈ, ક્યોં કિ વહ અગુરુલઘુ હૈ । પ્રશ્ન કિયા જા સકતા હૈ કિ અગર એસી વાત હૈ તો આત્મા અધોગમન ક્યોં કરતા હૈ ? ઇસ પ્રશ્ન કા ઉત્તર યહ હૈ કિ જૈસે પાની મેં ડપર કી ઓર ગમન કરને કા તૂવેકા સ્વભાવ હૈ, ફિર મી મિટ્ટી કા લેપ કર દેને સે વહ અધોગમન કરતા હૈ ઓર લેપ હટ જાને પર જલ કી સતહ તક ડપર કી ઓર ડટતા હૈ । ઇસી પ્રકાર આત્મા કર્મલેપ કે કારણ નીચે જાતા હૈ ઓર કર્મલેપ હટ જાને સે લોક કે અગ્રભાગ તક ડપર કી ઓર જાતા હૈ । અથવા જૈસે—એરુડ કા વીજ બન્ધન સે મુક્ત હોકર ડપર જાતા હૈ ડસી પ્રકાર આત્મા મી કર્મબન્ધન કા નાશ હોને પર ડપર જાતા હૈ ।

કાર્મણુવર્ગણુઓથી ભરેલો છે, તો પણ સિદ્ધોમા કાર્મણુ શરીર નહિ હોવાથી તેને કર્મબંધ થતો નથી

## (૧૩) આત્માનો ઝર્ધ્વગતિસ્વભાવ—

આ આત્મા ઝર્ધ્વ-ગતિ-ગમન-સ્વભાવ વાળો છે, કારણ કે તે અગુરુ-લઘુ છે તો પ્રશ્ન કરી શકાય છે કે અગર જો એ પ્રમાણુ છે તો આત્મા અધોગમન કેમ કરે છે ? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કે—તુબડાનો સ્વભાવ જેમ પાણીમા ઉપરની તરફ આવવાનો છે તો પણ તેને માટીનો લેપ કરી દેવાથી તે પાણીમા નીચે જાય છે અને માટીનો લેપ દૂર થતા જલની સપાટી સુધી ઉપરના ભાગમા આવે છે એ પ્રમાણુ આત્મા કર્મલેપના કારણુ નીચે જાય છે, અને કર્મલેપ દૂર થવાથી લોકના અગ્રભાગ સુધી ઉપરના ભાગમા જાય છે અથવા જેવી રીતે ચોરડાનું પીજ બંધનથી મુક્ત થતા ઉપર જાય છે તે પ્રમાણુ આત્મા પણ કર્મબંધન નાશ થતા ઉપર જાય છે

अत्र पञ्च स्यान्तरा एकस्यमेति मिलित्वा प जीवनिष्काया मवन्ति  
एषां प्रत्येकं मेदान् प्रदर्शयामः-

(१) पृथिवीकायमेदाः-

पृथिवीकायस्तावदुच्यते-पृथिव्येष कायो यस्य स पृथिवीकायः।  
पृथिवीकायादय पञ्च स्थावरनामकर्त्रोदयात् समुत्पन्नास्तस्मादिमे स्थावरा इति  
कथ्यन्ते। पृथिवीकायोऽनेकविधा, शुद्धपृथिवीकर्करा-वायुकादिमेदात्। तत्र  
कर्करादिमेदरहिता मृत्तिकास्था, तथा गोमयकचवरादिरहिता वा पृथिवी-

पांच स्थावर और एक प्रस मिलकर पृथिवीकाय हैं। इन सबके  
मेद मिलजाते हैं—

(१) पृथिवीकाय के मेद—

पृथिवी ही भिन्न का धरती हो, वह पृथ्वीकाय कहलाता है। पृथ्वीकाय आदि पांचों  
स्थावरनामकर्त्रों के उदय से उत्पन्न होने के कारण स्थावर कहलाते हैं। पृथिवीकाय  
अनेक प्रकार का है—शुद्ध पृथिवी, शर्करा वायु आदि। उनमें शर्करा आदि  
मेदों से रहित मृत्तिकास्था तथा गोबर या कचरा आदि से रहित पृथिवी शुद्धपृथिवी  
कहलाती है। फलर के छोटे-छोटे लम्बों से मिली हुई मृत्तिका शर्करा पृथिवी है।

छे, अतुल्य आदि पञ्चैन्द्रिय छे

पांच स्थावर जने जेक प्रस भण्णिने पञ्चैन्द्रियिकाय छे जे तभमना सेहो  
ज्जावे छे—

(१) पृथिवीकायना सेह—

पृथिवी जेसु शरीर जेसु, ते पृथिवीकाय कहवाय छे। पृथ्वीकाय आदि पञ्चस्य  
स्थावरनामकर्त्रोना उदयशी उत्पन्न होवाना कारणे स्थावर कहवाय छे। पृथ्वीकाय अनेक  
प्रकारे छे शुद्धपृथ्वी, शर्करा, वायु (रेती) आदि तेभां शर्करा आदि सेहोकी रहित  
मृत्तिकास्था, अने जालु अत्रर कचरा आदिशी रहित पृथ्वी शुद्धपृथ्वी कहवाय छे।  
पञ्चवना नाना-नाना ककलकोशी भजेही माटी ते शर्करा पृथिवी छे। वायु (रेती)

નિકાયજ્ઞાન વિના તદ્રક્ષણં ન સંભવતિ । અતઃ પઢ્જીવનિકાયસ્વરૂપં નિરૂપ્યતે—

જીવાસ્તાવત્ સંક્ષેપતો દ્વિવિધાઃ—સિદ્ધા અસિદ્ધાશ્ચેતિ । તત્ર મુક્તિ પ્રાપ્તાઃ સિદ્ધાઃ, સંસારિણોઽસિદ્ધાઃ । સંસારિણઃ પુનર્દ્વિવિધાઃ—ત્રસ—સ્થાવરભેદાત્ । તત્ર પૃથિવ્યપ્તેજોવાયુવનસ્પતયઃ સ્થાવરાઃ । ત્રસાશ્ચતુર્વિધાઃ—દ્વીન્દ્રિય—ત્રીન્દ્રિય—ચતુરિન્દ્રિય—પञ્ચેન્દ્રિયભેદાત્ । તત્રેન્દ્રિયાણિ પञ્ચ શ્રોત્ર—ચક્ષુ—ઘ્રાણ—રસન—સ્પર્શનાભ્યાનિ । પૃથિવીકાયોઽપ્કાયસ્તેજસ્કાયો વાયુકાયો વનસ્પતિકાયશ્ચેતિ પञ્ચવિધા જીવા એકેન્દ્રિયાઃ । કૃમ્યાદયો દ્વીન્દ્રિયાઃ, । પિપીલિકાદયસ્ત્રીન્દ્રિયાઃ, ભ્રમરાદયશ્ચતુરિન્દ્રિયાઃ । મનુષ્યાદયઃપञ્ચેન્દ્રિયાઃ ।

નિકાય કી રક્ષા ઉસકે જ્ઞાન કે અભાવ મેં નહીં હો સકતી, અતઃ પઢ્જીવનિકાય કે સ્વરૂપ કા નિરૂપણ ક્રિયા જાતા હૈ—

સંક્ષેપ મેં જીવોં કે દો ભેદ હૈં—સિદ્ધ જીવ ઓર અસિદ્ધ જીવ । મુક્ત જીવ સિદ્ધ કહલતે હૈં ઓર સસારી જીવ અસિદ્ધ કહલતે હૈં । સસારી જીવ મી દો પ્રકાર કે હૈં—ત્રસ ઓર સ્થાવર । પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, ઓર વનસ્પતિકાય સ્થાવર હૈં । ત્રસ જીવ ચાર પ્રકાર કે હૈં—દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય ઓર પञ્ચેન્દ્રિય । શ્રોત્ર, ચક્ષુ, ઘ્રાણ (નાક), રસના ઓર સ્પર્શન, યે પાચ હિન્દ્રિયાં હૈં । પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય ઓર વનસ્પતિકાય, યે પાચ સ્થાવર જીવ એકેન્દ્રિય હૈં । કૃમિ આદિ દ્વીન્દ્રિય હૈં । પિપીલિકા (ચિડટી) આદિ ત્રીન્દ્રિય હૈં । મૈરા આદિ ચૌહિન્દ્રિય હૈં । મનુષ્ય આદિ પञ્ચેન્દ્રિય હૈં ।

જીવનિકાયની રક્ષા તેના જ્ઞાનના અભાવમા થઈ શકતી નથી, તે કારણથી પઢ્જીવનિકાયના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરવામા આવે છે —

સંક્ષેપમા જીવના બે ભેદ છે—(૧) સિદ્ધજીવ અને (૨) અસિદ્ધજીવ મુક્તજીવ તે સિદ્ધ કહેવાય છે અને અસિદ્ધ તે સસારી જીવ કહેવાય છે સસારી જીવ પણ બે પ્રકારના છે (૧) ત્રસ અને (૨) સ્થાવર પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, અને વનસ્પતિકાય તે સ્થાવર છે ત્રસ જીવ ચાર પ્રકારના છે દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પञ્ચેન્દ્રિય શ્રોત્ર (કાન) ચક્ષુ (નેત્ર), ઘ્રાણ (નાક), રસના (જીભ), અને સ્પર્શન (આમડી), આ પાચ હિન્દ્રિયો છે પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય અને વનસ્પતિકાય, આ પાચ સ્થાવરજીવ એકેન્દ્રિય છે, કૃમિ આદિ દ્વીન્દ્રિય છે કીડી આદિ ત્રીન્દ્રિય છે, ભમરા વગેરે ચૌહિન્દ્રિય



उक्तवायारपृथिवीकायानां यमैको बीमस्तत्र नियमतोऽवस्थाताः पृथिवीकाया  
बीमा सन्ति । स्थानमप्येषां पृथिवी-पाताल-भवन-नरक-प्रस्तर-विमानादिकं  
ज्ञेयम् । सूक्ष्मपृथिवीकायबीमास्तु सर्वलोकाभ्यापितः । तमयेषां भेदप्रमेदाः  
सर्वज्ञस्मीतादागमादवगन्तव्याः ।

(२) अप्कायभेदाः—

अप्कायान्नेकविधः—अवस्थाय - मिहिका - करक-हरतनु - सुद-शीतो-व्य-  
सार-ज्जल-रुक्म-क्षीरोदक-घृतोदकादिभेदात् । एको यथाप्कायस्तत्रासेस्याता  
अप्कायाः सन्ति । वायराप्कायानां समुद्र-इन्द्र-नदी-वापी-कूपादि स्थानम् ।  
सूक्ष्माप्कायस्तु सर्वलोकाभ्यापकः । अस्यापि भेदप्रमेदा आमतता विज्ञेयाः ।

उक्त वायार पृथिवीकाय आदि का जहाँ एक बीम है वहाँ नियम से असेस्यात पृथिवीकाय  
के बीम हैं । पृथिवी, पाताल, भवन, नरक-प्रस्तर, विमान आदि इनके स्थान हैं ।  
सूक्ष्म पृथिवीकाय के बीम समस्त लोक में व्याप्त हैं । दोनों के भेद-प्रमेद सर्वज्ञोक्त आगम  
से समझ लेने चाहिये ।

(२) अप्काय के भेद—

अप्काय अनेक प्रकार का है—मोक्ष, मिहिका, ओसे, हरतनु, सुदबल, शीतज्जल,  
उष्णज्जल धार अम्क उदणज्जल (आरा पानी) क्षीरोदक, नीर घृतोदक आदि । जहाँ एक अप्काय  
है वहाँ अर्भकपात अप्काय हैं । वायार अ-कायका स्थान समुद्र, सम्राज नदी, वापडी,  
कूपादि हैं और सूक्ष्म अप्काय समस्त लोक में व्याप्त है । इसके भी भेद-प्रमेद  
आगम से समझना चाहिये ।

उपर उक्तेका वायार पृथिवीकाय आदिना जनां भेद एव ए त्वां नियमधी  
असंभ्यात पृथिवीकाय एव ए पृथिवी, पाताल, भवन, नरक-प्रस्तर, विमान आदि  
तेना स्थान ए सुक्ष्म पृथिवी कायना एव समस्त लोकभां व्याप्त ए जे अनेना  
भेद-प्रमेद अज्ञेयना आत्ममधी समस्त तेना जेठजे.

(२) अप्कायना भेद—

अप्कायना अनेक प्रकार से—मोक्ष मिहिका (निहार) ओणी, हरतनु-  
(पृथ्वीने सेधीने तुलना अत्रात्रा नयेरे उपर उक्तेना पानी) सुद अल  
(अवरिक्षणी पठेसु अथवा नदीनु पानी) शीतज्जल, उष्णज्जल (स्वभावधी अरभ  
पानीनु कुठेतु पानी) आहु अल, आहु अल, क्षीरोदक अने घृतोदक आदि, (सवयु,  
वायु क्षीर, धीमुस अने पुष्करवर समुद्रनां पानी) जनां लोक अप्काय ए त्वां  
असंभ्यात अप्काय ए वायार अप्कायना स्थान समुद्र, सम्राज नदी वापडी, कूपा  
आदि ए अने सुक्ष्म अप्काय असस्त लोकभां व्याप्त ए तेना भेद-प्रमेद पण  
आत्ममधी समस्त जेठजे.

शुद्धपृथिवी । अश्मलघुखण्डमिश्रिता मृत्तिका-शर्करापृथिवी । बालुकाव्यतिमिश्रा मृत्तिका-बालुकापृथिवी । एवं बहुविधाः पृथिवीकायाः, तथाहि-

उपल - शिला - लवणो-षर - लोह - त्रपु - ताम्र - सीसक - रजत-सुवर्ण हरिताल-  
हिङ्गुलक-मनःशिला-सस्यकाञ्जन-प्रवाला-भ्रकपटला-भ्रवालुका-गोमेद-रुचका-ङ्क-  
स्फटिक - लोहिताक्ष - मरकत-मसारगल्ल-भुजगे-न्द्रनील-गोपीचन्दन-गैरिक - हंसगर्भ-  
पुलक-सौगन्धिक-चन्द्रकान्त-सूर्यकान्त-वैदूर्य-जलकान्तादयः सर्वे वादरपृथिवीकाय-  
मेदाः । एते च शुद्धपृथिव्यादयः स्वस्वनिस्थिता एव चेतनावन्तः । गोमय-  
कचवरादिरूपशस्त्रोपहता रविवह्नितापरुपशस्त्रोपहताश्च गतचेतना भवन्ति ।

बाह्य मिली मृत्तिका बालुका पृथिवी कहलाती है । इस प्रकार पृथिवीकाय के अनेक भेद हैं, वे इस प्रकार .—

पत्थर, शिला, नमक, उषर, लोहा, रांगा, तांबा, शीशा, चांदी, सोना, हडताल, हिंगल, मैनसिल, सस्यकाजन, मूगा, अभ्रक अभ्रवालुका गोमेद, रुचक, अङ्क, स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजग, इन्द्रनील, गोपीचन्दन, गेरू, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रकान्त सूर्यकान्त, वैदूर्य, जलकान्त, आदि वादर पृथिवीकाय के भेद हैं । वे शुद्ध पृथिवी आदि जब अपनी खान में स्थित होते हैं तभी सचेतन होते हैं । गोबर, कचरा आदि शस्त्रों से उपहत होकर या सूर्य की घूप और अग्नि के तापरूप शस्त्र से अचेतन हो जाते हैं ।

भणेली भाटी बालुकापृथिवी ढहेवाय छे ये प्रभाण्णे पृथिवी कायना अनेक लेह छे

पत्थर, शिला, भीडु, उषर-आरो, लोडु, रांगो, (कलध), त्राणु, सीसु, आदी, सोनु, डडताल, डिंगलो, मनशिल, सुरभो, भूगा-परवाणा, अम्रक, अम्रवालुका, गोमेद, रूचक, अङ्क, स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजग, इन्द्रनील, गोपीचन्दन, गेरू, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, वैदूर्य, जलकान्त आदि वादरपृथिवीकायना लेह छे (आ भर वादर पृथिवीकाय छे) ये शुद्ध पृथिवी आदि न्यारे चोतानी आषुभा स्थित होय छे, त्यारे ते सचेतन होय छे आषु-कचरो आदि शस्त्रोधी उपहत (डष्टाओला) थधने, अथवा तो सूर्य अने अग्निना तापरूप शस्त्रोधी अचेतन थध जाय छे

इमौ तेजस्काम-वायुकायो गतिस्वभावतया प्रसावपि निगद्येते ।

(५) वनस्पतिक्रयमेदाः—

वनस्पतिकार्योऽनेकविध - श्लेष्म - पित्त - हरिद्रा - अर्धक - मूत्रक - सूत - सुरज - फलाण्ड - कृन्तन - कन्ददिमेदात् । इमे वनस्पतिकार्याः साधारणा सच्यन्ते । तस्यगुणगुणमलवाद्य प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते । साधारणवनस्पतिकार्यस्यैकस्मिन्

इनके मेद-प्रमेद पूर्ववत् भागमें से जानने चाहिए । तेजस्काम और वायुकाय गतिशील होने के कारण तब भी बड़े होते हैं ।

(५) वनस्पतिक्रय के मेद-

वनस्पतिक्रय अनेक प्रकार का है । जैसे-श्लेष्म, पित्त हरिद्रा, ( हस्ती ), अर्धक ( पदरस ) मूत्रक, अर्धक ( बाण्ड ) सुरज प्याज कृन्तन, और अन्य आदि । ये वनस्पतियों साधारण कहलती हैं । तथा सूत, गुच्छ गुण्ड कन्दा आदि प्रत्येकशरीर कहलती हैं । साधारण वनस्पतिक्रय के एक शरीर में अनन्त बीज होते हैं । इनका

तेजा श्लेष्म-प्रमेद पूरा प्रमाण में आजभरि सुभल देवा लेईये तेजस्काम और वायुकाय गतिशील होवना कश्चे तब तब कहेवाम आये छे

(५) वनस्पतिक्रय के मेद—

वनस्पति क्रय अनेक प्रकार छे जैसे-श्लेष्म, पित्त हरिद्रा आदि मूत्रक आदि सुरज, कुजनी, कससु और कन्द आदि. या वनस्पतियों साधारण कहेवाम छे ( जेना मतलब लवे होय तेने साधारण कहे छे ) तथा सूत, ( राजपती सूतमा प्रसिदा तबु बोरो पाडेया छे ) (१) कृन्तन ( कन्दु ) भी फटे मतलब लवेवाणां जाडे, (२) कन्दानी माकड़ असभ्य लवेवाणां जाडे, (३) अने तन्द-तमात बनेर प्रमाण सभ्यात लवेवाणां जाडे ) सुत सुत ( नवभारतिका जर्द नरेर ) तथा आदि प्रकार शरीर कहेवाम छे साधारण वनस्पति क्रयना जेक शरीरमा अनन्त लव होय छे तेनु स्थान धनोदधि आदि छे. सूत वनस्पतिक्रय सब बीज-व्यापी छे

## (३) तेजस्कायभेदाः—

तेजस्कायोऽनेकविधः—अङ्गारार्चिरलातशुद्धाग्न्यादिभेदात् । इमे तेजस्काया जीवा वादराः । यत्रैकस्तेजस्कायस्तत्राऽसंख्यातास्तेजस्कायाः सन्ति । तेषां स्थानं सार्धत्तृतीयद्वीपरूपसमयक्षेत्रमेव, न ततो बहिः । सूक्ष्मास्तु सर्वलोकव्यापिनः । एषां भेद-प्रभेदाः पूर्ववद् विज्ञेयाः

## (४) वायुकायभेदाः—

वायुकायः पौरस्त्य-पाश्चात्याद्युत्कलिमण्डलिकादिभेदादनेकविधः । वादर वायुकायानां स्थानं घनवात-तनुवात-तद्वलयाधोलोकपातालमवनादिकम् । सूक्ष्मा वायुकाया सर्वलोकव्यापिनः । एषा भेदप्रभेदाः पूर्ववद् वेदितव्याः ।

## (३) तेजस्काय के भेद-

तेजस्काय अनेक प्रकार का है, जैसे—अगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध-अग्नि आदि । जहाँ एक वादर तेजस्काय का जीव होता है वहाँ असंख्यात तेजस्काय होते हैं । इन का स्थान अर्द्धद्वीपरूप समय क्षेत्र ही है, उस से बाहर ये नहीं होते । सूक्ष्म तेजस्काय के जीव लोकव्यापी हैं । इन के भी भेद-प्रभेद आगम से समझने चाहिए ।

## (४) वायुकाय के भेद-

वायु के भी पूर्वा और पश्चिमी आदि के भेद से और उत्कलिक मण्डलिक आदि के भेद से अनेक प्रकार हैं । घनवात, तनुवात, वलय, अधोलोक और पाताल, मवन आदि वादर वायुकाय के स्थान हैं । सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी है ।

## (३) तेजस्कायना भेद-

तेजस्काय अनेक प्रकारना छे, जेभ के अगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध अग्नि, आदि, ज्या अेक वादर तेजस्कायना छुव होय छे त्या असंख्यात तेजस्काय होय छे तेनु स्थान अर्द्धद्वीपरूप समयक्षेत्र न छे, तेनाथी अह्वार ते नथी सूक्ष्म तेजस्कायना छुव लोकव्यापी छे तेना पणु भेद-प्रभेद आगमथी ज्ञानी देवा नेछंअे

## (४) वायुकायना भेद-

वायुकाय पणु पूर्व अने पश्चिम आदिना लेदथी, अने उत्कलिक (जेभ समुद्रमा कल्बोलो) मण्डलिक, (मूणमाथी जे गोण इरतो वातो होय ते वायु) आदि लेदथी अनेक प्रकारना छे, घनवात, तनुवात, वलय, अधोलोक, अने पाताल, मवन आदि वादर वायुकायना स्थान छे, अने सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी छे,

पुष्यपुष्यवृत्तजोरापुवनस्वतय सर्वे म्याररा ण्य । एवं च प्रग पदविष  
तजस्काय-वापुसाय-शीन्द्रिय-शीन्द्रिय-पतुरिन्द्रिय-पठयेन्द्रिय-भदान् । एष  
तेजस्कायो वापुसायथ वागुक्त ।

शीन्द्रियादिषु पतुरिषेषु प्रमतीषु शीन्द्रियाणापदस्य ते—

( १ ) शीन्द्रिय—

श्रीरक्षापट्टिना—कृमय, कृम्यादिना नीलद्रुप्रभृतय, गोमया-  
दिना—गन्दीलकादय, अफजा—नक्षत्रान्दिनाम्बुप्रमतीकानमृत्तया शीन्द्रिया ।  
गनन कृम्या प्रिया ट इन्द्रिय आदि में य दोना पाद जाती है । अफजा नाम द्रव्यो-  
दपरूप मन्त्रि की भन्ना प्रकी, अर् मेव वायु और वनस्पति य मय भन्ना है ।  
इस प्रकार प्रमतीषु १२ प्रकार क है—तेजस्काय वापुसाय शीन्द्रिय, पठिय पतुरिन्द्रिय  
और पठयेन्द्रिय । इन में से तेजस्काय और वापुसाय का वर्जन पहल किया जा चुका है ।

इति च आदि पर प्रकार क प्रमतीषु में से प्रथम इन्द्रिय का स्वरूप वर्णन है—

( १ ) शीन्द्रिय—

प्रमतीषु प्रमतीषु आदि में उच्यते इति वाक्ये इति एव आदि में उच्यते  
एव च नीलद्रु प्रभृते तेषु में उच्यते इति च सिद्धेयं नीलद्रु च में उच्यते  
इति च उच्यते इति च उच्यते इति च उच्यते । इन क स्थान को सम्यक् व वा  
अथ उ उच्यते अथ उच्यते अथ उच्यते अथ उच्यते अथ उच्यते अथ उच्यते  
अथ उ उच्यते अथ उच्यते अथ उच्यते अथ उच्यते अथ उच्यते अथ उच्यते  
शीन्द्रिय शीन्द्रिय पतुरिन्द्रिय अने पठयेन्द्रिय आभाषी तजस्काय अने वापुसाय  
वर्जन क वा उच्यते अथ उ

इति च आदि पर प्रकार क प्रमतीषु में से प्रथम इन्द्रिय का स्वरूप वर्णन है—

( १ ) इन्द्रिय—

इति च आदि पर प्रकार क प्रमतीषु में से प्रथम इन्द्रिय का स्वरूप वर्णन है—

इमे स्पर्शन-रसनोमयेन्द्रियाः द्वीन्द्रिया जीवा असंख्याताः ।

( २ ) त्रीन्द्रियाः—

त्रीन्द्रियाः पिपीलिकादयः—पिपीलिका—रोहिणिका—कुन्धु—यूक—लिख—मत्कुण-  
मत्कोटक—शुलशुल—गोपदिका—खजूरा—कर्णशूलादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन-रसन-  
घ्राणेन्द्रियाः । त्रीन्द्रिया असंख्याताः ।

( ३ ) चतुरिन्द्रियाः—

चतुरिन्द्रियाः भ्रमरादयः—भ्रमर—वटर—मक्षिका—दंश—मशक—वृश्चिक—कीट-  
कसारी—पतङ्गादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-रिन्द्रियाः । चतुरि-  
न्द्रिया अपि असंख्याताः ।

इन्द्रिया होती है । द्वीन्द्रिय जीव असख्यात हैं ।

( २ ) त्रीन्द्रिय—

पिपीलिका ( कीडी ), रोहिणिका, कुन्धुवा, जू, लीख, खटमल, मकोडा, शुलशुल,  
गोपदिका, खजूरा, कर्णशूल, आदि त्रीन्द्रिय जीव प्रसिद्ध हैं । इनके स्पर्शन रसना और घ्राण,  
ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं । त्रीन्द्रिय जीव असख्यात है ।

( ३ ) चतुरिन्द्रिय—

भ्रमर, वटर, मक्खी, डास, मच्छर, विच्छू, कीट, पतङ्ग, कसारी, आदि  
चौइन्द्रिय जीव प्रसिद्ध हैं । इनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, और चक्षु, ये चार इन्द्रियाँ  
होती हैं । ये जीव असख्यात है ।

રસના એ બે ઇન્દ્રિયો વાળા જીવો અસખ્યાત છે

( ૨ ) ત્રીન્દ્રિય—

કીડી, રોહિણિકા, કુન્ધુવા, જૂ, લીખ, માકડ, મકોડા, શુલશુલ, ગોપદિકા,  
કાનખજૂરા, કર્ણશૂલ આદિ ત્રીન્દ્રિય જીવ પ્રસિદ્ધ છે તેને સ્પર્શન, રસના, અને  
ઘ્રાણ આ ત્રણ ઇન્દ્રિયો હોય છે ત્રીન્દ્રિય જીવ અસખ્યાત છે

( ૩ ) ચતુરિન્દ્રિય—

ભ્રમરા, વટર, માખી, ડાસ, મચ્છર, વીછી, કીટ, પતંગ, કસારી આદિ ચાર  
ઇન્દ્રિયવાળા જીવ પ્રસિદ્ધ છે તેમને સ્પર્શન રસના, ઘ્રાણ અને નેત્ર આ ચાર  
ઇન્દ્રિયો હોય છે એ જીવ અસખ્યાત છે

(४) पञ्चेन्द्रियनीषा—

पञ्चेन्द्रियनीषाभ्युर्धा—नारक-तिर्यक्-मनुष्य-देव-मेदात्, नारकाः सप्त-विधाः, सप्तनरकेषु समुद्रमवात् । रसन(१)-दार्कणा(२)-बालुका(३)-पङ्क(४)-भूम(५)-तमो(६)-महातमो(७)-नाम्यः सप्त पृथिव्यस्तत्र सप्त नरकभूमयः, तत्र ये निवसन्ति ते नारकाः सप्तविधा इति । नारकतिर्यक्मनुष्यदेवानां स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति ।

पञ्चेन्द्रिय-तिर्यक्त्रो द्विविधाः— गर्भज-संमूर्च्छिममेदात् । तत्र-गर्भना-पञ्चपा-ब्रह्मचर-स्यञ्चर-लेचरो-र-परिसर्प-भुजपरिमर्षमेदात् । संमूर्च्छिमा अपि

(४) पञ्चेन्द्रियनीष-

पञ्चेन्द्रिय नीष चार प्रकार के हैं—(१) नारक, (२) तिर्यक्, (३) मनुष्य, और (४) देव ।

नारक सात प्रकार के हैं क्यों कि सात नरक में उमड़ी उभरती होती है । (१) रत्नप्रमा (२) दार्कणाप्रमा (३) बालुकाप्रमा (४) पङ्कप्रमा (५) भूमप्रमा, (६) तम-प्रमा और (७) तमस्तम-प्रमा नामक सात पृथिवी हैं । वहाँ सात नरकभूमियाँ हैं । इन भूमियों में निवास करने वाले नारकी भी सात प्रकार के कहलाते हैं । नारक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् मनुष्य और देवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र य पांच इन्द्रियाँ होती हैं ।

पञ्चेन्द्रिय नियन्त्रण के प्रकार के हैं—गमन और संमूर्च्छिम । इन में गमन के पांच भेद हैं—(१) ब्रह्मचर, (२) स्यञ्चर (३) लेचर, (४) उर-परिसर्प और (५) भुजपरिसर्प ।

(४) पञ्चेन्द्रिय—

पञ्च इन्द्रियो नाम्ना एव चार प्रकारान्ता उ—(१) नारकी, (२) तिर्यक्, (३) मनुष्य, अने (४) देव नारकीना सात प्रकार के कारण के सात नरकेभ्यां लेनी उत्पत्ति होय उ (१) रत्नप्रमा, (२) दार्कणाप्रमा (३) बालुकाप्रमा, (४) पङ्कप्रमा, (५) भूमप्रमा (६) तमप्रमा अने (७) तमस्तमः—प्रमा नामनी सात पृथिवी उ त्वा सात नरकभूमियो उ ते नरकभूमियोभां निवास करवा चान्ना नारकी पञ्च सात प्रकारान्ता उदेवाय उ नारकी, पञ्चेन्द्रिय-तिर्यक्, मनुष्य अने देवाने स्वयान रसना घ्राण चक्षु अने श्रोत्र या पांच इन्द्रियो होय उ

पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् से प्रकारान्ता उ—(१) गमन (२) संमूर्च्छिम तेषां प्रकाशना पांच भेद उ—(१) ब्रह्मचर (२) स्यञ्चर, (३) लेचर, (४) उर-परिसर्प, अने

पञ्चधा—जलचर(१)—स्थलचर(२)—खेचरो(३)—रःपरिसर्प(४)—भुजपरि-  
जलचरा मत्स्यमकरादयः, स्थलचरा गोमहिष्यादयः, खेचराः  
उरःपरिसर्पाः सर्पादयः, भुजपरिसर्पाः गोधादयः ।

मनुष्या द्विविधाः—कर्मभूमिजाः, अकर्मभूमिजाः । यत्र जात  
सिध्यन्ति; बुध्यन्ते, परिनिर्वाण्ति; सर्वदुःखानामन्त्रं कुर्वन्ति सा कर्मभूमि  
संसारान्तप्राप्तिकारकस्य रत्नत्रयरूपमोक्षमार्गस्य विज्ञातारः कर्तार उ  
भगवन्तस्तीर्थङ्करा अवतरन्ति । ते च स्वयं संसारार्णवं तरन्ति, परान्  
तारयन्ति । अर्धतृतीयद्वीपाभ्यन्तरे कर्मभूमयः पञ्चदशक्षेत्ररूपा भवति

समूच्छिम के भी पाच भेद हैं—(१) जलचर, (२) स्थलचर, (३) खेचर, (४)  
परिसर्प और (५) भुजपरिसर्प । मच्छ, मकर, आदि जल के जीव जलचर कहलाते हैं ।  
मैंस आदि स्थलचर कहलाते हैं । मयूर आदि खेचर कहलाते हैं । सर्प आदि उर-प  
और गुहेरा ( गोह ) आदि भुजपरिसर्प कहलाते हैं ।

मनुष्य दो प्रकार के हैं—कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज । जहाँ उत्पन्न ह  
जीव सिद्ध बुद्ध होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं और सब दुखों का अन्त करते  
उसे कर्मभूमि कहते हैं । संसार का अन्त करने वाले, रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग के ज्ञात  
कर्ता और उपदेशक तीर्थङ्कर भगवान् कर्मभूमि में ही उत्पन्न होते हैं । वे स्वयं ससा  
समुद्र तरते हैं और दूसरे भव्य जीवों को भी तारते हैं । अर्द्ध द्वीप में पञ्चदश कर्म-  
भूमियाँ हैं—पाँच भरत क्षेत्र में, पाँच पेरवत क्षेत्र में, और पाँच महाविदेह में । पाँच

(५) भुजपरिसर्प मच्छ, मकर (मगर) आदि जलना लव जलचर ढडेवाय छे,  
गाय, लेम आदि स्थलचर ढडेवाय छे मयूर (भार) आदि खेचर ढडेवाय छे  
सर्प आदि उरपरिसर्प, अने घोयरा आदि भुजपरिसर्प छे

मनुष्य के प्रकारना छे—(१) कर्मभूमिज, (२) अकर्मभूमिज, अथा उत्पन्न  
थअने लव सिद्ध बुद्ध होय छे, निर्वाण प्राप्त करे छे, अने सर्व दुखोना अत  
उरे छे तेने कर्मभूमि ढडे छे संसारो अत करवावाणा, रत्नत्रयत्रूप मोक्षमार्गना  
ज्ञाता कर्ता, अने उपदेशक तीर्थंकर भगवान् कर्मभूमिमा ल उत्पन्न थाय छे ते  
स्वयं संसार समुद्रने तरे छे अने जीव लव्य लवोने पक्ष तारे छे अर्द्ध  
द्वीपमा पदर कर्मभूमियो छे—पाय भरतक्षेत्रमा, पाय पेरवत क्षेत्रमा, अने



मरुतानि, पठपैरक्तानि, पञ्च महाविदेहाः । तत्र पठवसु महाविदेहेषु पठव देव-  
 कुरुक्षेत्राणि पठवोत्तरकुरुक्षेत्राणि मन्तर्गतानि; तानि विहाय पञ्च महाविदेहा  
 कर्मभूमयो भवन्ति । एषु पञ्चदशसु क्षेत्रेषु ज्ञाता एव ज्ञानावरणीयादिसकल-  
 कर्मवस्करेभ्यः संसारमहास्ये परिमुक्ता मोक्षधामामिधावन्ति । एतत्पञ्चदश-  
 व्यतिरिक्तेषु क्षेत्रेषु जन्म प्राप्ताः पुनः सम्यग्दर्शनज्ञानधारिभस्त्रजपमोक्षमार्ग  
 लभ्युं न प्रभवन्ति ।

यहो मम्मप्राणिनः ! स्वनिः पसाय शीघ्र प्रयतन्ताम्, अनन्तकास्ता  
 पद्मीवनिकायानां भवस्थिति-कायस्थितिषु-अनन्तजन्म-जरा-मरणाद्यनन्तदुःखमनु-  
 भूय पूर्वपुण्योदयेन दुर्लभमिदं मनुष्यजन्म कर्मभूमौ लभ्यम् । देशविरति-सर्वविरति-  
 महाविदेहो में पांच देवकुट्ट और पांच उत्तरकुट्ट क्षेत्र भी अन्तर्गत हैं, उन्हें छोड़कर  
 पांच महाविदेह कर्मभूमि हैं । इन पञ्चह कर्मभूमिमें उत्पन्न होने वाले मनुष्य ही  
 ज्ञानावरणीय आदि समस्त कर्मरूपी चोरो से संसाररूपी महा अप्यो में छूटकर मोक्षधाम  
 पते हैं । इन पञ्चह क्षेत्रों से भिन्न क्षेत्रों में जन्म लेने वाले, सम्यग्, दर्शन, ज्ञान, पारिव्र-  
 त्तरूप मोक्षमार्ग प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते ।

यहो मम्म बीभो ! अपने श्रेय (कल्याण) के लिए शीघ्र प्रयत्न करो । जनादि  
 काल से पद्मीवनिकाय की भवस्थिति और कायस्थिति में अनन्त जन्म, जरा, मरण  
 आदि का दुःख भोगकर पूर्वपुण्य के उदय से कर्मभूमि में दुर्लभ मनुष्य भव सिद्ध है ।  
 देशविरति और सर्वविरतिके रूप मुखा से परिपूर्ण मनुष्यासु रूप कटोरको

पांच महाविदेहोभां पांच देवकुट्ट, अने उत्तरकुट्ट क्षेत्र पक्ष अन्तर्गत  
 छे. तेन छोडीने पांच महाविदेह कर्मभूमि छे आ पहर कर्मभूमिभां उत्पन्न भवा  
 वाणा मनुष्य अ ज्ञानावरणीय आदि तन्मम कर्मभूमि मोक्षधी सहायधी महा-  
 अप्यमभांभी छुटीने मोक्षधाम जय छे आ पहर क्षेत्रोधी भिन्न क्षेत्रोभां जन्म  
 लेबावाज्ज सम्भज्जान, ज्ञान, आदिन स्वल्प मोक्षभाज्जने प्राप्त करवा सम्भय दत्ता नथी.

यहो मम्म लोको ! पीतानां कल्याण आटे शीघ्र-वृद्धी प्रयत्न करो ।  
 जनादि कालधी पद्मीवनिकायानी भवस्थिति अने कायस्थितिभां अनन्त अ म, जरा,  
 मरण आदिनु दुःख भोगवीने पूर्वपुण्यना उदयधी कर्मभूमिभां दुर्लभ मनुष्य  
 भव मन्थे छे. देशविरति अने सर्वविरतिश्च अभूतधी परिपूर्णा मनुष्यासुश्च आ

પીયૂષપૂર્ણમેતન્મનુબ્યાયુઃકટોરક મૃત્યુરપદર્તુ પુરોઽવતિષ્ઠતે । તદત્ર વિરતિસુધાસ્વાદ-  
સુખવશ્ચિતા ભવન્તો મા ભવન્તુ ।

અકર્મભૂમયઃ કથ્યન્તે—

પશ્ચ હૈમવતાનિ, પશ્ચ હરિવર્ષાણિ, પશ્ચ રમ્યકવર્ષાણિ, પશ્ચૈરણ્યવતવર્ષાણિ,  
પશ્ચ દેવકુરવઃ પશ્ચોત્તરકુરવઃ, ઇતિ ત્રિંશત્, ષટ્પશ્ચાશદન્તરદ્વીપાઃ । અન્તરદ્વીપા  
અપિ યુગલક્ષેત્રત્વાદકર્મભૂમયો ભવન્તિ । એતાઃ સર્વા અકર્મભૂમયઃ,  
તીર્થદ્વરજન્માદિરહિતત્વાત્ ।

જમ્બૂદ્વીપે ભરતક્ષેત્રમર્યાદાકારકહિમવત્પર્વતસ્ય પૂર્વપશ્ચિમાન્તભાગદ્વયાત્  
વક્રાકારે દ્વે દ્વે દંષ્ટ્રે નિઃસૃતે સ્તઃ । એવમ્ એરવતક્ષેત્રમર્યાદાકારકશિખરિ-  
છીનને કે ઊંચ મૃત્યુ સામને સ્થા છે, અત આપ વિરતિરૂપી સુધા કે આસ્વાદ કે સુખ સે  
વશ્ચિત મત રહો ।

અકર્મભૂમિકા કથન—

પાંચ હૈમવત, પાંચ હરિવર્ષ, પાંચ રમ્યકવર્ષ, પાંચ એરણ્યવત, પાંચ દેવકુર  
ઔર પાંચ ઉત્તરકુર, યે ત્રીસ, ઔર છપન અન્તર દ્વીપ, યે સવ અકર્મભૂમિ હૈં । અન્તરદ્વીપ  
મી યુગલિયાક્ષેત્ર હોને કે કારણ અકર્મભૂમિ હી હૈં । ઇન મેં કમી મી તીર્થકર કા  
જન્મ આદિ નહીં હોતા ।

જમ્બૂદ્વીપ મેં ભરત ક્ષેત્ર કી મર્યાદા કરને વાલે હિમવત્પર્વત કે પૂર્વભાગ ઔર  
પશ્ચિમભાગ સે વક્ર આકાર કી દો-દો ઢાઢાઈ નિકલી હૈં । ઇસી પ્રકાર એરવત ક્ષેત્ર કી  
મર્યાદા કરને વાલે શિખરિપર્વત કે પૂર્વ ઔર પશ્ચિમ ભાગો સે દો દો વક્રાકાર ઢાઢાઈ  
કટોરાને છીનવી લેવા માટે મૃત્યુ સામેજ ઉલેલો છે. એ કારણથી તમે વિરતિરૂપી  
અમૃતના સ્વાદના સુખથી વંચિત રહેશો નહિ

અકર્મભૂમિત્વ કથન—

પાંચ હૈમવત, પાંચ હરિવર્ષ, પાંચ રમ્યક વર્ષ, પાંચ એરણ્યવત, પાંચ  
દેવકુર, અને પાંચ ઉત્તરકુર, આ ત્રીસ, અને છપન અન્તરદ્વીપ, આ સર્વ અકર્મ-  
ભૂમિ છે અતર દ્વીપ પણ ભુગળીયા ક્ષેત્ર હોવાના કારણે અકર્મભૂમિ જ છે, તેમા  
કોઈ પણ સ્થળે તીર્થકરનો જન્મ આદિ થતો નથી.

જમ્બૂદ્વીપમાં ભરત ક્ષેત્રની મર્યાદા કરવાવાળા હિમવત પર્વતના પૂર્વભાગ અને  
પશ્ચિમ ભાગથી વક્ર આકારની બે-બે ઢાઢો નીકળી છે એ પ્રકારે એરવત ક્ષેત્રની  
મર્યાદા કરવાવાળા શિખરી પર્વતના પૂર્વ અને પશ્ચિમ ભાગથી બે-બે વક્રાકાર  
ઢાઢો નીકળી છે

पर्यंतस्य पूर्व-पश्चिमान्तभागद्वयाद् वक्राकारे द्वे द्वे दृष्टे निःश्रुते स्तः । अप्यासु  
 इन्द्रासूर्यमार्गे सप्त सप्तान्तरद्वीपाः सन्ति । एवं पर्यन्तान्तरद्वीपा भवन्ति ।  
 अन्तरद्वीपजा अप्यकर्मभूमिजाः । तत्रोभयेषां मनुष्यामाहुः चारादिषु संमूर्च्छिमा  
 मनुष्या उभयविधासु भूमिषु जायते ।

तत्र गर्भजा मनुष्या एकोत्तरशतम् (१०१), पर्याप्तपर्याप्तमेदाद्  
 द्वयधिकशतशतम् (२०२), संमूर्च्छिममनुष्या अपर्याप्तमात्रतया-एकोत्तरशतशतमेव  
 (१०१), सर्वेषु संमिलितेषु त्र्युत्तरशतत्रयं (३०३) मनुष्याणां मेदाः भवन्ति ।  
 देवनिर्णयः-

देवामनुर्विधाः-मवनपति-१-अन्तर-२-ज्योतिष्क-३-वैमानिक-४-मेदात् ।

निकृष्टी है । इन आठ शब्दों पर सात-सात अन्तरद्वीप हैं । इस प्रकार छपन अन्तरद्वीप  
 हैं । अन्तरद्वीप (अन्तरद्वीप में उत्पन्न हुए) और भी अकर्मभूमि (अकर्मभूमि में उत्पन्न हुए)  
 कहलते हैं । इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के मूल आदि में, दोनों भूमियों में संमूर्च्छिम  
 मनुष्य उत्पन्न होते हैं ।

गर्भज मनुष्य एक सौ एक (१०१) प्रकार के हैं । इनके प्रजांस और अपर्याप्त  
 मेव करने से दो सौ दो (२ २) मेव होते हैं । संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त ही होते हैं,  
 अतः उनके एक सौ एक (१ १) मेव मिला देने से मनुष्यों के कुल मेव तीन सौ तीन  
 (३०३) हो जाते हैं ।

देवनिर्णय-

देव चार प्रकार के हैं-(१)मवनपति (२) अन्तर (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक ।

आ आठ शब्दों पर सात-सात अन्तरद्वीप हैं आ अष्टाद्वे उत्पन्न अन्तरद्वीप हैं  
 अन्तरद्वीप (अन्तरद्वीप में उत्पन्न बनाया) एवं यत् अकर्मभूमि (अकर्म  
 भूमि में उत्पन्न बनाया) कहेबाध है आ जने प्रकारना मनुष्योना मज आदिमां  
 जे जने भूमिजोनां संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न जाय है

जर्भज मनुष्य जोकसो जोक (१०१) प्रकारना है तेना पर्याप्त करने अपर्याप्त  
 सेव करवाधी जसो वि (२०२) सेव बाध है संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त के जोय  
 है ते करवाधी तेना जोकसो जोक (१०१) सेव तेमा मजववाधी मनुष्योना कुल त्रयसो  
 त्रय (३०३) सेव बाध है

देवनिर्णय-

देव चार प्रकारना है-(१) मवनपति, (२) अन्तर, (३) ज्योतिष्क जने  
 (४) वैमानिक

## (१) भवनपतिदेवभेदाः—

तत्र भवनपतयो दशविधाः—(१) असुरकुमाराः, (२) नागकुमाराः, (३) सुवर्णकुमारा, (४) विद्युत्कुमाराः, (५) अग्निकुमाराः, (६) द्वीपकुमाराः, (७) उदधिकुमाराः, (८) दिशाकुमाराः, (९) वायुकुमाराः, (१०) स्तनितकुमाराश्च । कुमार इव सुकुमारा मनोहरा मृदुमधुरललितगतयः कुमारवदभिव्यक्तरागाः केलिविलोलितचेतसः कुमारवच्चोद्धतरूपवेपभापाभरणप्रहरणावरणयानवाहनाश्चेत्यतः 'कुमारा' इत्युच्यन्ते । जम्बूद्वीपे सुमेरुपर्वतस्याधस्तादक्षिणोत्तरभागयोस्तिर्यग्-भागेऽनेककोटिकोटिलक्षयोजनं यावद् भवनपतयो निवसन्ति ।

## (१) भवनपतिदेव—

भवनपति देव दश प्रकार के हैं—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) वायुकुमार और (१०) स्तनितकुमार ।

कुमार के समान सुकुमार, मनोहर, मृदु, मधुर, ललित गतिवाले, कुमार के समान राग व्यक्त करने वाले, क्रोडा में चित्त लगाने वाले, कुमार के समान ही उद्धत रूप, वेष, भाषा, आभूषण, आयुध, यान, वाहन आदि धारण करने वाले होने से ये देव, कुमार कहलाते हैं । जम्बू द्वीप में सुमेरु पर्वत के नीचे दक्षिण भाग और उत्तर भाग के तिरछे भाग में अनेक कोडा-कोडी लाख योजन तक भवनपति देव निवास करते हैं ।

## (१) भवनपतिदेव—

भवनपति देव दस प्रकारना छे—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्ण-कुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार (९) वायुकुमार, अने (१०) स्तनितकुमार

कुमार प्रभाषे, सुकुमार, मनोहर, मृदु, मधुर, ललितगतिवाणा, कुमारना समान राग व्यक्त करवा वाणा, क्रीडाभा चित्त लगाववा वाणा, कुमारना प्रभाषे उद्धत-रूप, वेष, भाषा आभूषण, आयुध, यान, वाहन आदि धारण करवा वाणा होवाथी ते देव, कुमार कहेवाय छे जम्बूद्वीपमा सुमेरु पर्वतनी नीचे दक्षिणभाग अने उत्तर भागना तिछां भागमा अनेक कोडा-कोडी लाख योजन सुधी भवनपति देव निवास करे छे

तत्र यवोऽसुरकुमारा आवासेषु, तथा कदाचिद् भवनेषु च निवसन्ति ।  
 तथा नागकुमारादयः सर्वे प्रायशो भवनेष्वेव प्रतिवसन्ति । रत्नप्रमापृष्ठी-  
 पिण्डार्धमभक्षेकैकसहस्रयोजनं विहायैकसप्तसप्ततिसहस्रयोजनानि तु रत्न-  
 प्रमातोऽभस्तामयतिसहस्रयोजनपरिमाणमाग एव भवन्ति, तत्र भवनानि दक्षिणा  
 पूर्वादिपृष्ठीनां चमरेन्द्रादीनाम्, उधरार्धाधिपतीनां बलीन्द्रादीनाम् । महामण्डप  
 पदावासाः, भवनानि नगरसदृशानि भवन्ति, परन्तु तानि भवनानि बहिर्द्वेषानि,  
 अभ्यन्तरे समचतुष्कोट्यानि, तस्यमागं तु पुष्करकर्मिकावद् भवन्ति । अम्ब्यादयः  
 परमाधार्मिका अपि असुरकुमारजातीयाः पञ्चदश सन्ति-१ अम्ब्या २ अम्बरीष-

यहाँ बहुत से असुरकुमार आवासों में और कभी-कभी भवनों में निवास करते हैं ।  
 नागकुमार सब प्राय भवनों में ही रहते हैं । रत्नप्रमा पृष्ठी के पिण्ड से ऊपर और  
 नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर एक लाख अठारह हजार योजन परिमाण में अम्ब  
 माग में सभी ऋण्ड असुरकुमार देवों के आवास हैं, किन्तु भवन रत्नप्रमा पृष्ठी के  
 नीचे कम्बे हजार योजन परिमित माग में ही हैं । यहाँ दक्षिणाधार्मिपति चमरेन्द्र आदि के  
 और उधरार्धधिपति बलीन्द्र आदि के भवन हैं । महामण्डप के समान आवास हैं ।  
 नगर के समान भवन हैं, किन्तु वे बाहर गोष्मकार और भीतर समचतुष्कोण हैं । उनका  
 तस्यमाग कर्मक की कर्मिका के समान होता है । अम्ब आदि पन्द्रह परमाधार्मिक भी  
 असुरकुमार आदि के हैं । उनके नाम-(१) अम्ब (२) अम्बरीष, (३) स्वाम (४) शम्भ,

त्यां यथा अम्बु र कुमापो, आवासेषां अने केळ केळ वभवत लवनेषां निवास  
 करे छे नागकुमार सब प्राय लवनेषां निवास करे छे छे रत्नप्रमा पृष्ठीना पिण्डी  
 उपर अने नीचे ब्लेक-ब्लेक दवर भोजन छेदीने, ब्लेक लाख अठारोतेर दवर भोजन  
 परिमाणमां अम्बमाजमां सब लवनां अम्बुरकुमार देवोना आवास छे परन्तु  
 लवनां रत्नप्रमा पृष्ठीनी नीचे (६००००) नेतुं दवर भोजन परिमित आजमां छे  
 छे त्यां दक्षिणाधार्मिपति चमरेन्द्र आदिना अने उधरार्धधिपति बलीन्द्र आदिना  
 लवन छे महामण्डपनी समान आवास छे नगरना समान लवन छे परन्तु ते  
 लवने लदारधी गोष्मकार अने लदारधी समचतुष्कोण छे तेने तणीअने आज  
 कर्मकनी कर्मिकासमान होय छे अम्ब आदि पदर परमाधार्मिक पद्य अम्बुरकुमार  
 आदिना छे तेनाना नाम लेभके-(१) अम्ब, (२) अम्बरीष, (३) स्वाम (४)

૩શ્યામ૪શ્વલ૫રુદ્ર૬વૈરુદ્ર૭કાલ૮મહાકાલ૯અસિપત્ર૧૦ધનુઃ૧૧કુમ્ભ૧૨વાલુક૧૩  
વૈતરણી૧૪ચરસ્વર૧૫મહાધોષ-ભેદાત્ ।

### (૨) વ્યન્તરદેવાઃ—

રત્નપ્રમાકાણ્ડસ્ય સદ્સ્યયોજનપરિમાણયુક્તસ્યાધસ્તાદેકશતયોજનમૂર્ધ્વં ચ તથૈકશતયોજનં વિહાયાષ્ટશતયોજનપરિમાણયુક્તરત્નપ્રમાકાણ્ડે વ્યન્તરદેવાના-મસંખ્યાતાનિ નગરાણિ સન્તિ । તથૈવ ભવનાનિ તેષામાવાસાશ્ચ સન્તિ । તત્ર બાલવત્ સ્વેચ્છયા શક્રાદિદેવેન્દ્રાણ્યા વા ચક્રવર્ત્યાદિપુરુષાણ્યા વા પ્રાયેણા-નિયતગતિપ્રચારા ભવન્તિ । મનુષ્યાનપિ કેચિદ્ મૃત્યવદુપચરન્તિ । વિવિધેષુ ચ શૈલકન્દરાન્તરવનવિવરાદિષુ પ્રતિવસન્તિ; અતો વ્યન્તરા इत्युच्यन्ते ।

(૫) રુદ્ર, (૬) વૈરુદ્ર, (૭) કાલ, (૮) મહાકાલ, (૯) અસિપત્ર, (૧૦) ધનુષ, (૧૧) કુમ્ભ, (૧૨) વાલુક, (૧૩) વૈતરણી, (૧૪) ચરસ્વર, (૧૫) મહાધોષ ।

### (૨) વ્યન્તર દેવ-

૬૫ હજાર યોજન પરિમાણ વાલે રત્નપ્રમાકાણ્ડ કે નીચે ઓર ૬૦ યોજન ઊપર તથા ૬૦ યોજન ઓડકર આઠ ૬૦ યોજન પરિમાણ યુક્ત રત્નપ્રમાકાણ્ડ મેં વ્યન્તર દેવોં કે અસંખ્યાત નગર હેં । ડસી પ્રકાર ભવન ઓર ડનકે આવાસ હેં । વાલકોં કે સમાન અપની ઇચ્છાસે, શક્ર આદિ દેવોં કી આજ્ઞા સે, યા ચક્રવર્તી આદિ કી આજ્ઞાસે પ્રાય અનિયતગતિ વાલે હોતે હેં । યે દેવ કિન્હી-કિન્હી મનુષ્યોં કી ડાસ કે સમાન સેવા કરતે હેં । યે વિવિધ પ્રકાર કે પર્વતોં કી ગુફાઓં મેં ઓર વનવિવર આદિ મેં નિવાસ કરતે હેં અત ઇન્હેં વ્યન્તર કહતે હેં ।

શબલ, (૫) રુદ્ર, (૬) વૈરુદ્ર, (૭) કાલ, (૮) મહાકાલ, (૯) અસિપત્ર, (૧૦) ધનુષ, (૧૧) કુલ, (૧૨) વાલુક, (૧૩) વૈતરણી, (૧૪) ચરસ્વર, (૧૫) મહાધોષ.

### (૨) વ્યન્તરદેવ—

એક હજાર યોજન પરિમાણવાળા રત્નપ્રમાકાણ્ડની નીચે અને એકસો યોજન ઉપર તથા એકસો યોજન ઓડીને આઠસો યોજન પરિમાણયુક્ત રત્નપ્રમાકાણ્ડમાં વ્યન્તર દેવોના અસંખ્યાત નગર છે તે પ્રમાણે ભવન અને તેના આવાસો છે બાળકોની જેમ પોતાની ઇચ્છાથી, ઇદ્ર આદિ દેવોની આજ્ઞાથી અથવા ચક્રવર્તી આદિની આજ્ઞાથી પ્રાય અનિયત ગતિવાળા હોય છે. આ દેવ કોઈ કોઈ મનુષ્યની ઢાસની સમાન સેવા કરે છે તે વિવિધ પ્રકારના પર્વતોની ગુફાઓમાં અને વન-ગુફાઓ આદિમાં નિવાસ કરે છે.

व्यन्तरा पोषणविधाः- १ पिशाच-२ मूत-३ मक्ष-४ राक्षस-५ किन्नर  
 ६ किंपुरुष ७ महीरग-८ गन्धर्वा-९ प्रजासिक्त-१० पञ्चप्रजासिक्त-११ ऋषिवादिक्त १२ मूत-  
 वादिक्त-१३ कन्दित-१४ महाकन्दित १५ कृष्णाण्ड-१६ परतंग मेदात् । ( स्या  
 स्या २ उ ३ )

भृमका अपि व्यन्तरदेवा दस्य सन्ति । यथा-(१) अन्नभृमका  
 (२) पानभृमका, (३) वस्त्रभृमका, (४) लपनभृमका, (५) शयनभृमका,  
 (६) पुष्पभृमका, (७) फलभृमका, (८) पुष्पफलभृमका, (९) विद्याभृमका,  
 (१०) अन्यक्तभृमका ।

(६) ज्योतिष्कदेवाः-

ज्योतीषि-प्रमापुत्रस्वरूपाणि समुज्ज्वलानि विमानानि, तत्र मवाः

व्यन्तर देव सोमह हैं-(१) पिशाच (२) मूत (३) मक्ष (४) राक्षस (५) किन्नर,  
 (६) किंपुरुष (७) महीरग, (८) गन्धर्व (९) अन्नप्रजासिक्त, (१०) पञ्चप्रजासिक्त, (११)  
 ऋषिवादिक्त, (१२) मूतवादिक्त, (१३) कन्दित (१४) महाकन्दित, (१५) कृष्णाण्ड और  
 (१६) परतंग ( स्या स्या २ उ ३ )

भृमका व्यन्तर देव भी दस प्रकार के हैं । जैसे—

(१) अन्नभृमका, (२) पानभृमका, (३) वस्त्रभृमका (४) शयनभृमका (५) शयनभृमका,  
 (६) पुष्पभृमका (७) फलभृमका, (८) पुष्पफलभृमका, (९) विद्याभृमका और (१०) अन्यक्त-  
 भृमका ।

(३) ज्योतिष्क देव

प्रमा के पुत्र के समान अत्यन्त उज्ज्वल विमानों में उड़ने वाले

व्यन्तर देव सोमह छे (१) पिशाच, (२) मूत (३) मक्ष, (४) राक्षस (५)  
 किन्नर, (६) किंपुरुष, (७) महीरग, (८) गन्धर्व (९) अन्नप्रजासिक्त, (१०) पञ्चप्रजासिक्त,  
 (११) ऋषिवादिक्त (१२) मूतवादिक्त (१३) कन्दित, (१४) महाकन्दित, (१५)  
 कृष्णाण्ड और (१६) परतंग ( स्या.. स्या २ उ. ३ )

भृमका व्यन्तर देव पञ्च दस प्रकारना छे जेम-(१) अन्नभृमका (२)  
 पान भृमका (३) वस्त्रभृमका (४) लपनभृमका (५) शयनभृमका (६) पुष्प भृमका  
 (७) फलभृमका (८) पुष्पफलभृमका (९) विद्याभृमका और (१०) अन्यक्तभृमका  
 (३) ज्योतिष्कदेवा—

प्रमाना पुत्र समान अत्यन्त उज्ज्वल विमानोंमें उड़ने वाले देव

ज्योतिष्काः । ज्योतिष्कदेवास्तिर्यग्लोके ज्योतिःप्रकाशं कुर्वन्ति । ज्योतिष्कदेवाः पञ्चविधाः—(१) चन्द्र—(२) सूर्य—(३) ग्रह—(४) नक्षत्र—(५) तारा—भेदात् । इमे पञ्च समयक्षेत्रान्तर्वर्तिनश्चरस्वभावाः सन्ति । अपरे पञ्च चन्द्रादयः समयक्षेत्राद् बहिः स्थिरा एव तिष्ठन्ति ।

### (४) वैमानिकदेवाः—

ऊर्ध्वलोके विमानेषु वसन्तीति वैमानिकाः । यद्वा—विशेषेण मानयन्ति=विशंति यत्र विशिष्टसुकृतिन इति विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः । यद्वा—वि=विशिष्टं मानं=ज्ञान यत्र, समदर्शितया, अन्यदेवापेक्षया च हेयोपादेयज्ञान-विशिष्टा भवन्ति यत्र तानि विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः ।

देव ज्योतिष्क कहलाते हैं । ज्योतिष्क देव मध्यम लोक में प्रकाश करते हैं । ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के हैं—

१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, और ५ तारागण । ये पांचों समयक्षेत्र (अठ्ठाई द्वीप) में चलते हैं और समयक्षेत्र से बाहर स्थिर स्वभाव वाले हैं ।

### (४) वैमानिक देव—

ऊर्ध्व लोक में विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं । अथवा जहां विशिष्ट पुण्यात्मा प्रवेश करते हैं उन्हें विमान कहते हैं, और विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं । अथवा समदर्शी होने के कारण जहां विशिष्ट ज्ञान हो, या अन्य देवों की अपेक्षा जहां हेय उपादेय का विशिष्ट ज्ञान हो, वे विमान हैं और उन में होने वाले वैमानिक हैं ।

ज्योतिष्क छडेवाय छे ज्योतिष्क देव मध्य लोकमा प्रकाश करे छे ज्योतिष्क देव पांच प्रकारमा छे (१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र अने (५) तारागणु आ पाय समयक्षेत्र (अठ्ठाईद्वीप)मा यादे छे अने समयक्षेत्रनी षडार स्थिर स्वभाववाणा छे

### (४) वैमानिक देव—

ऊर्ध्वलोकमा विमानोमा वास करवा वाणा वैमानिक छडेवाय छे, अथवा न्या विशिष्ट पुण्यात्मा प्रवेश करे छे तेने विमान छडे छे अने विमानोमा वास करवा वाणा वैमानिक छडेवाय छे, अथवा—समदर्शी छेवाणा करणु न्या विशिष्ट ज्ञान होय, अथवा अन्य देवोनी अपेक्षाअ, न्या हेय—उपादेयनु विशिष्ट ज्ञान होय ते विमान छे, अने तेमां थवा वाणा वैमानिक छे



वैमानिकदेवानां द्वौ मेदी-कल्पोपपन्नाः कल्पतीताम् । कल्पाः=आचारः  
 स वेहेन्द्रसामानिकप्रायश्चित्तादिव्यवहाररूपस्तमुपगताः कल्पोपपन्नाः=सौभर्मादि  
 देवलोकोत्पन्ना वैमानिका देवाः । यद्वा-कल्पयु सौभर्मादिषु उपपन्नाः सौभर्मादि  
 देवलोकोत्पन्ना वैमानिकदेवाः कल्पोपपन्नाः । यद्वा-कल्पेन=नियमेन इन्द्रसामा  
 निकादिस्वामिसेवकादिमापकर्मर्यादयोपपन्नाः=युक्ताः=कल्पोपपन्ना ।

१ इन्द्र- २ सामानिक - ३ प्रायश्चित्त - ४ लोकपाल - ५ पारिषदा - ६ नीका -  
 ७ अमरक - ८ ५५ भियोगिक - ९ मकीर्णाः, किञ्चिद्विकार १० स्वस्वमर्यादापालकतया  
 कल्पोपपन्ना इत्युच्यन्ते । तत्रेन्द्राः - सामानिकादिदेवानामधिपतयः ।  
 इन्द्रसमानाः-सामानिकाः । मन्त्रिपुरोहितस्पानीयास्त्रायश्चित्ताः । सीमारक्षका

वैमानिक देव दो प्रकार के हैं-कल्पोपपन्न और कल्पतीत । कल्प का अर्थ  
 है-आचार । यहाँ इन्द्र, सामानिक प्रायश्चित्त आदि का व्यवहार कल्प माना गया है,  
 और यह कल्प जिन में पावा पाप के कल्पोपपन्न कहलाते हैं । सौभर्म आदि देवलोको  
 में निवास करने वाले वैमानिक देव कल्पोपपन्न हैं । अथवा कल्प से अर्थात् नियम से  
 अर्थात् इन्द्र, सामानिक आदि, या स्वामी-सेवक आदिमापकर्मर्यादा से युक्त देव  
 कल्पोपपन्न कहलाते हैं ।

इन्द्र, सामानिक, प्रायश्चित्त, लोकपाल, पारिषदा आनीक, अमरक,  
 कामिमेय प्रकीर्णक और किञ्चिद्विक ये दश अपनी-अपनी मर्यादा का पालन  
 करते हुए कल्पोपपन्न कहलाते हैं ।

सामानिक आदि देवा के अधिपति इन्द्र कहलाते हैं । इन्द्र के समान

वैमानिक देव दो प्रकारके हैं-(१) कल्पोपपन्न अने (२) कल्पतीत । कल्पोप  
 पन्न है-आचार, आदि इन्द्र सामानिक प्रायश्चित्त आदिनि व्यवहार कल्प माने  
 हैं अने जो कल्प नेनामों नेनामों आवे हैं ते कल्पोपपन्न कहेंवाय हैं । सौभर्म  
 आदि देवलोकोमें निवास करनेवाला वैमानिक देव कल्पोपपन्न हैं अथवा कल्पो  
 पन्ना नियमधी अधीत इन्द्र सामानिक आदि, अथवा स्वामी-सेवक आदि  
 मापकर्म मर्यादाधी युक्त देव कल्पोपपन्न कहेंवाय हैं ।

इन्द्र सामानिक, प्रायश्चित्त, लोकपाल, पारिषदा, आनीक, अमरक आदियोग्य,  
 प्रकीर्णक अने किञ्चिद्विक पित-पितानी मर्यादा पालन कल्या यदा कल्पोपपन्न  
 कहेंवाय हैं ।

सामानिक आदि देवाना अधिपति इन्द्र कहेंवाय हैं । इन्द्रना समान सामानिक

लोकपालाः । मित्रस्थानीयाः पारिषदाः । सैनिकाः सेनाधिपतिरूपाश्च-आनीकाः ।  
इन्द्रशरीररक्षाकारका आत्मरक्षकाः । दासस्थानीयाः सेवका आभियोग्याः ।  
नागरिक-पौरजनसमानाः प्रकीर्णकाः । अन्त्यजसमानाः कल्विपिकाः । सौधर्मादि-  
द्वादशकल्पेषु दशविधा इन्द्रसामानिकादयो देवाः भवन्ति । व्यन्तरज्योतिष्कदेवेषु  
त्रायस्त्रिंश लोकपालाश्च न भवन्ति ।

कल्पोपपन्नदेवानां निवासस्थानानि द्वादश सन्ति-१सौधर्म-२शान-३सन-  
त्कुमार-४माहेन्द्र-५ ब्रह्मलोक-६लान्तक-७महाशुक्र-८सहस्रार-९ऽऽनत १०प्राणत-  
११ऽऽरणा-१२ऽऽच्युताः । इमे द्वादश देवलोकः कल्पविमानानि । तत्र सौधर्मस्य  
सामानिक होते है । मन्त्री और पुरोहित जसे त्रायस्त्रिंश देव हैं । सीमा की रक्षा करने वाले  
लोकपाल हैं । मित्र के समान पारिषद हैं । सैनिक और सेनाधिपतिरूप आनीक हैं । इन्द्र  
के शरीर की रक्षा करने वाले आत्मरक्षक कहलाते हैं । नागरिक-पौरजनके समान प्रकीर्णक  
देव हैं । दास के समान देव आभियोगिक कहलाते हैं, और अन्त्यजों के समान कल्विपिक  
हैं । ये इन्द्र सामानिक आदि दशप्रकारके देव सौधर्म आदि सभी कल्पों में होते हैं । व्यतरों  
और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नहीं होते ।

कल्पोपपन्न देवों के निवासस्थान बारह हैं—

१ सौधर्म, २ पेशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लान्तक,  
७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ आनत, १० प्राणत, ११ आरण, १२ अच्युत । ये  
बारह देवलोक कल्पविमान हैं । सौधर्म कल्प की बराबरी पर पेशान कल्प है । पेशान

डोय छे मन्त्री अने पुरोहित जेवा त्रायस्त्रिंश देव छे सीमाना रक्षा करनारा ते लोकपाल छे  
मित्रानी समान पारिषद छे, सैनिक अने सेनाधिपतिरूप आनीक छे इन्द्रना शरीरनी  
रक्षा करवावाणा आत्मरक्षक कहेवाय छे नागरिक-पौरजननी समान प्रकीर्णक देव छे,  
दासना समान सेवक देव आभियोगिक कहेवाय छे, अन्त्यजनी समान कल्विपिक छे,  
आ इन्द्र, सामानिक आदि देव साधर्म आदि सर्व कल्पोभा डोय छे व्यतरा  
अने ज्योतिष्क देवोभा त्रायस्त्रिंश अने लोकपाल डोता नथी

कल्पोपपन्न देवाना निवासस्थान आर छे (१) सौधर्म, (२) अशान (३)  
सनत्कुमार (४) माहेन्द्र (५) ब्रह्मलोक (६) लान्तक, (७) महाशुक्र, (८) सहस्रार,  
(९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण, (१२) अच्युत

आ आर देवलोक कल्प विमान छे सौधर्म कल्पनी बराबरी पर अशान कल्प छे

कल्पस्य समानदेशे ऐशानः कल्पः । <sup>१</sup>श्चानस्योपरि सनत्कुमारः कल्पः । सनत्कुमार  
स्योपरि माहेन्द्रः कल्पः । एवमुपर्युपरि सर्वे कल्पाः सन्ति ।

त्रय्योत्तिष्ठलोकवृद्धम सस्यात्तयोमनकोटिकोटियुमार्गमास्य रूपलक्षित्वा  
शिष्यमागे गगनप्रदेशे सौषर्मकल्पस्तद्वैशानकल्पश्चाऽस्ति । सौषर्मकल्पः पूर्व  
पश्चिमदीर्घः, उत्तरदक्षिणविस्तीर्णोऽर्धचन्द्राकारः सूर्यवद्भास्वरः, आयामविक्रमाभ्यां  
परिषेपतमार्जसंस्थेययोमनकोटिकोटयः, सर्वरत्नमयः लोकान्तविस्तारोऽस्ति ।  
त्रय मध्यमागे सर्वरत्नमयाशोक-सप्तपर्ण-चम्पका-ऽऽन्न - सौषर्माशतंशकसुशोभितः  
शक्रावासः । तत्र सुषर्मा नाम शक्रस्य देवेन्द्रस्य समा तस्मिन् कल्पेऽस्तीति  
सौषर्म कल्प ।

के ऊपर सनत्कुमार कल्प है । सनत्कुमार के ऊपर माहेन्द्र कल्प है । इसीप्रकार ऊपर-ऊपर  
सभी कल्प समझने चाहिए ।

त्रयोत्तिष्ठ मण्डल से ऊपर अर्धमात कोडाकोडी योजन ऊपर जाकर मेरु से उपलक्षित  
दक्षिण भाग में आकाश-प्रदेश में सौषर्मकल्प और ऐशान कल्प हैं । सौषर्मकल्प पूर्व पश्चिम  
में लम्बा उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण और अर्धचन्द्र के आकार का है । सूर्य के समान चमक-  
दार, लम्बाई चौड़ाई और परिधि से अक्षमात कोडाकोडी योजन सर्वरत्नमय और लोक के  
अक्षतक विस्तृत है । उसका मध्य भाग में सर्वरत्नमय अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक, आम्र, एवं  
सौषर्मशतशक से शोभित शक्र का आवास है । शक्र देवेन्द्र की सुषर्मानामक समा जिस  
कल्प में हो वह सौषर्मकल्प कहलाता है ।

वैशानना उपर सनत्कुमार कल्प उ सनत्कुमारना उपर माहेन्द्र कल्प छे जे  
प्रमाणे उपर उपर तमाम कल्प समझना जेथिजे.

त्रयोत्तिष्ठमण्डली उपर असभ्यात कोडा-कोडी योजन उपर अर्धमे श्रेष्ठी  
उपलक्षित दक्षिण भागमा आकाश-प्रदेशमा सौषर्मकल्प जने वैशान कल्प उ सौषर्मकल्प  
पूर्व पश्चिममा लम्बा उत्तर-दक्षिणमा विस्तीर्ण जने अर्धचन्द्राकारे उ सूर्यना समान  
चमकदार लम्बाई चौड़ाई जने परिधिषी असभ्यात कोडाकोडी योजन, सप्तपर्णमय  
उ, जने कोडना अत सुषी विस्तृत छे तेना मध्य भागमा सप्त रत्नमय अशोक  
सप्तपर्ण चम्पक आम्र जेव सौषर्माशतसुषी शोभित छेतेना आवास छे शक्र  
देवेन्द्रनी सुषर्मा नामनी समा जे कल्पमा कोष, ते सौषर्म कल्प कहलवत छे.

तथैशानकल्पोऽप्यर्धचन्द्राकारोऽस्ति । उभौ मिलितौ पूर्णचन्द्रकारेणा-  
वस्थितौ स्तः ततोऽसंख्यातयोजनकोटिकोटिपूपरि समानप्रदेशे सनत्कुमार-  
माहेन्द्रौ कल्पौ वर्तेते । अर्धचन्द्राकार इव सनत्कुमारस्तथैव माहेन्द्रोऽपि ।  
उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्रसदृशाकारेण स्तः । ततोऽसंख्यातयोजनकोटिकोटियुपरि  
ब्रह्मलोकः पूर्णचन्द्राकारोऽस्ति । एवमेव लान्तक-महाशुक-सहरास्नास्तावत्ताव-  
द्योजनोर्ध्वमुपर्युपरि प्रत्येकं पूर्णचन्द्राकाराः सन्ति ततोऽप्यसंख्यातयोजनकोटि-  
कोटियुपरि समानगगनप्रदेशे आनत-प्राणतलोकौ प्रत्येकमर्धचन्द्राकारौ  
स्तः । उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्राकारेण भवतः । ततोऽप्यसंख्यातयोजनकोटि  
कोटियुपरि-आरणाच्युतलोकौ प्रत्येकमर्धचन्द्राकारौ स्तः । उभौ मिलित्वा  
पूर्णचन्द्राकारं भजतः ।

ऐशानकल्प भी अर्धचन्द्राकार है । दोनों कल्प मिलकर पूर्ण चन्द्रमा के समान हैं ।  
इन से असख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर समान देश में सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प हैं ।  
सनत्कुमार कल्प अर्धचन्द्राकार है और माहेन्द्र कल्प भी इसी प्रकार का है । दोनों मिलकर  
पूर्णचन्द्रमा के सदृश आकार वाले हैं । इन से असख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर ब्रह्मलोक  
पूर्णचन्द्राकार है । इसी प्रकार लान्तक, महाशुक, और सहस्रार उतने-उतने योजन ऊपर-ऊपर  
प्रत्येक पूर्णचन्द्रमा के समान अवस्थित हैं । उन से असख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर  
आकाश प्रदेश में आनत और प्राणत बराबरी पर प्रत्येक अर्धचन्द्राकार है । ये दोनों मिलकर  
पूर्णचन्द्रके आकार के हो जाते हैं । उन से असख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर आरण और  
अच्युत लोक प्रत्येक अर्धचन्द्राकार है । ये दोनों मिलकर पूर्णचन्द्र के आकार के जैसे  
हो जाते हैं ।

ऐशान कल्प पशु अर्धचन्द्राकार छे भन्ने कल्पो भणीने पूर्ण चन्द्रमानी समान  
छे. तेनाथी अस ज्यात कोडा-कोडी योजन उपर समान देशमा सनत्कुमार अने माहेन्द्र  
कल्प छे सनत्कुमार कल्प अर्धचन्द्राकार छे अने माहेन्द्र कल्प पशु अे प्रकारना छे  
भन्ने भणीने पूर्णचन्द्रमानी परापर आकारवाणा छे तेनाथी अस ज्यात कोडा-कोडी  
योजन उपर ब्रह्मलोक पूर्णचन्द्राकार छे अे प्रमाणे लान्तक, महाशुक अने सहस्रार तेटला-  
तेटला योजन उपर-उपर प्रत्येक, पूर्णचन्द्रमासमान अवस्थित छे तेथी अस ज्यात  
कोडा-कोडी योजन उपर आकाशप्रदेशमा आनत अने प्राणत पराबरी पर प्रत्येक  
अर्धचन्द्राकार छे अे भन्ने कल्पो भणीने पूर्ण चन्द्रमानी आकारना थर्छ नथ छे.  
तेथी अस ज्यात कोडा-कोडी योजन उपर आरण अने अच्युत लोक प्रत्येक अर्ध  
चन्द्राकार छे अे भन्ने भणीने पशु पूर्णचन्द्राकार जेवा थर्छ नथ छे.

इत्युक्त्यनिवासिनाभिन्नाणां नामानि यथा-सौवर्भक्यस्य शक्रः १, ऐशानस्य ऐशानः २, सन्तकुमारस्य सन्तकुमारः ३, माहेन्द्रस्य माहेन्द्रः ४, ब्रह्मलोकस्य ब्रह्मेन्द्रः ५, सन्तकस्य-सन्तकः ६, महाशुकस्य महाशुकः ७, सरस्वारस्य सरस्वारः ८, आनत-प्राणतयोः कन्ययोः एक-एव प्राणतनामा सुरपति ९, भारवाच्युतयोरपि तयैवैकोऽप्युतनामा देवराजोऽस्ति १० ।

एषु नव लोकांतिकाः सारस्वता १-ऽऽदित्य २-वह्नि ३-वरुण ४-गर्दतोय ५-तृपिता ६-ऽभ्याबाषा ७-ऽऽग्नेय ८-रिष्ट ९-नामान सन्ति । ब्रह्मलोके लोकांतिका निवसन्ति । ईशानकोणे सारस्वताः १, पूर्वस्यामादित्याः २, आग्नेयकोणे बह्वयः ३, दक्षिणस्यां वरुणाः ४, नैऋत्ये गर्दतोयाः ५, पश्चिमायां तृपिताः ६, वायव्यकोणे-ऽभ्याबाषाः ७, उत्तरस्याम् अग्निबा (आग्नेयाः) ८, मध्ये रिष्टाः ९ निवसन्ति ।

बारह कन्यवासी इन्द्रो के नाम इस प्रकार हैं-सौवर्भ कन्य का शक्र १, ऐशान का ईशान २, सन्तकुमार का सन्तकुमार ३ माहेन्द्र का माहेन्द्र ४, ब्रह्मलोक का ब्रह्मेन्द्र ५, सन्तक का सन्तक ६, महाशुक का महाशुक ७, सरस्वार का सरस्वार ८ और आनत-प्राणत कन्यो का एक प्राणतनामक इन्द्र है ९ । भारण और अप्सुत कन्या का अप्सुत नामक एक ही इन्द्र है ।

इन में नौ लोकान्तिक देव हैं-(१) सारस्वत (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण (५) गर्दतोय, (६) तृपित, (७) अभ्याबाष (८) आग्नेय और, (९) रिष्ट । ये लोकान्तिक देव ब्रह्मलोके में निवास करते हैं । ईशान कोण में सारस्वत, पूर्व में आदित्य आग्नेय कोण में वह्नि, दक्षिण में वरुण, नैऋत्य में गर्दतोय, पश्चिम में तृपित वायव्य में अभ्याबाष उत्तर में अग्निबा (आग्नेय) और मध्य में रिष्ट निवास करते हैं ।

बारह कन्यवासी इन्द्रोना नामो न्य प्रभावे छे-सौवर्भकन्यना शक्रः (१) ऐशानना ऐशान (२) सन्तकुमारना सन्तकुमार (३) माहेन्द्रना माहेन्द्र, (४) ब्रह्मलोकना ब्रह्मेन्द्र, (५) सन्तकना सन्तक (६) महाशुकना महाशुक (७) सरस्वारना सरस्वार अने आनत-प्राणत कन्योना जेक प्राणत नामना इन्द्र छे आरुण अने अप्सुत कन्योना अप्सुत नामना जेक इन्द्र छे (१०) तेमां नव लोकान्तिक देव छे-(१) सारस्वत, (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण (५) गर्दतोय, (६) तृपित, (७) अभ्याबाष (८) आग्नेय, अने (९) रिष्ट अ लोकान्तिक देव ब्रह्मलोकमां निवास करे छे ऐशानकोणमां सारस्वत, पूर्वमां आदित्य, आग्नेयकोणमां वह्नि, दक्षिणमां वरुण, नैऋत्यमां गर्दतोय पश्चिममां तृपित, वायव्यमां अभ्याबाष, उत्तरमां अग्निबा (आग्नेय) अने मध्यमां रिष्ट निवास करे छे ।

## કલ્પાતીતા:—

કલ્પમતીતા:—અતિક્રાન્તા: કલ્પાતીતા: । સૌધર્માદિદ્વાદશકલ્પવહિર્મૂતા: સ્વામિસેવકાદ્યાચારવર્જિતા:, સ્વાતન્વ્યાદહમિન્દ્રનામ્ના પ્રસિદ્ધા:, મદ્રાદિનવગ્રૈવેયક-વિમાન-વિજયાદિપञ्ચાનુત્તરવિમાનાધિગાસિનો દેવા: કલ્પાતીતા: ।

સૌધર્માદિદ્વાદશકલ્પતથ્થોર્ધ્વમસંખ્યાતયોજનકોટિકોટિપૂપરિ નવગ્રૈવેય-કાનિ વિમાનાન્યુપર્યુપરિ સન્તિ । પુરુષાકારલોકસ્ય ગ્રીવાસ્થાનીયતયા વિમાનાનિ ગ્રૈવેયકાન્યુચ્યન્તે । તદ્વાસિનો દેવા અપિ ગ્રૈવેયકા ઉચ્યન્તે । સર્વોપરિતનગ્રૈવેયક-વિમાનાદૂર્ધ્વમસંખ્યાતયોજનકોટિકોટ્યુપરિ પञ्ચાનુત્તરવિમાનાનિ સન્તિ । તત્રૈકં મધ્યભાગે, ચતુર્દિશુ ચત્વારિ । અનુત્તરવિમાનગાસિનો દેવા અનુત્તરા ઉચ્યન્તે ।

## કલ્પાતીત—

જો દેવ કલ્પ સે પરે હૈ વે કલ્પાતીત કહલાતે હૈ, અર્થાત્ સૌધર્મ આદિ કલ્પા સે વાહર, સ્વામી, સેવક આદિ મર્યાદા સે રહિત—સ્વતત્ર હોને કે કારણ અહમિન્દ્ર નામ સે પ્રસિદ્ધ મદ્ર આદિ નૌ ગ્રૈવેયકો મેં તથા વિજય આદિ પાચ અનુત્તર વિમાનો મેં નિવાસ કરને વાલે દેવ કલ્પાતીત કહલાતે હૈં ।

સૌધર્મ આદિ વારહ કલ્પો સે ડપર અસલ્યાત કોડાકોડી યોજન જાકર નૌ ગ્રૈવેયક વિમાન ઇક દૂસરે કે ડપર અવસ્થિત હૈં । પુરુષાકાર લોક કી ગ્રીવા કે સ્થાન પર જો વિમાન હૈં, વે ગ્રૈવેયક વિમાન કહલાતે હૈ । સવ સે ડપર કે ગ્રૈવેયક વિમાન સે ડપર અસલ્યાત કોડાકોડી યોજન જાકર પાચ અનુત્તર વિમાન હૈં । ડન મેં સે ઇક મધ્ય ભાગ મેં હૈ ઓર ચાર ચારોં દિગાઓં મેં હૈં । અનુત્તરવિમાનવાસી દેવ અનુત્તર કહલાતે હૈં ।

## કલ્પાતીત—

જે દેવો કલ્પથી બહાર છે તે કલ્પાતીત કહેવાય છે અર્થાત્ સૌધર્મ આદિ કલ્પોથી બહાર સ્વામી-સેવક આદિ મર્યાદાથી રહિત, સ્વતત્ર હોવાના કારણે અહમિન્દ્ર નામથી પ્રસિદ્ધ છે મદ્ર આદિ નવગ્રૈવેયકમા, તથા વિજય આદિ પાચ અનુત્તર વિમાનોમા નિવાસ કરવા વાળા દેવ તે કલ્પાતીત કહેવાય છે

સૌધર્મ આદિ બાર કલ્પોથી ઉપર અસલ્યાત કોડા-કોડી યોજન જઈને નવ ગ્રૈવેયક વિમાન એક બીબની ઉપર અવસ્થિત છે પુરુષાકાર લોકની ગ્રીવા (ડોક) ના સ્થાન પર જે વિમાન છે તે ગ્રૈવેયક વિમાન કહેવાય છે

સૌથી ઉપરના ગ્રૈવેયક વિમાન ઉપર અસલ્યાત કોડા-કોડી યોજન જઈને પાચ અનુત્તર વિમાન છે તેમાથી એક મધ્ય ભાગમા છે, ચાર ચારેય દિશાઓમા છે અનુત્તરવિમાનવાસી દેવ અનુત્તર કહેવાય છે

नखैवेयकनामानि यथा - १ मद्र - २ सुमद्र - ३ सुमात - ४ सुमानस - ५ सुदर्शन - ६ प्रियदर्शना - ७ अमोघ - ८ सुप्रतिमद्र - ९ यशोधराणि ।

पञ्चानुचरविमानानि यथा - १ विमय - २ वैजयन्त - ३ जयन्ता - ४ अपरामित - ५ सर्वावसिद्धास्थानि । अविद्यमानानुचर-सुकृष्ट विमानादि येभ्यस्तान्यनुचराणि । तानि च विमानानि-अनुचरविमानानि ।

तीर्थङ्करादीनां समवसरणादौ कल्पोपपन्नदेवा गमनागमनं कुर्वन्ति । कल्पातीतदेवास्तु स्वस्थानादन्यत्र न गच्छन्ति ।

### पञ्चजीवनिकायभेद-संकलनम्

पञ्चजीवनिकायानां त्रिपटुचरपञ्चसतानि (५६३) भेदाः । तयारि पृथिव्यप्तेजोवायुकायानां प्रत्येकं वातर-सूक्ष्म-भेदात् द्विविधोऽप्युच्यते । तेषां

नौ प्रैवेयको के नाम-(१) मद्र (२) सुमद्र, (३) सुमात (४) सुमानस (५) सुदर्शन, (६) प्रियदर्शन (७) अमोघ (८) सुप्रतिमद्र, और (९) यशोधर हैं ।

पांच अनुचर विमान-(१) विमय (२) वैजयन्त (३) जयन्त (४) अपरामित और (५) सर्वावसिद्ध । किन्तु से ऊपर अर्थात् उत्कृष्ट और कोई विमान नहीं वे अनुचर विमान कह सकते हैं । तीर्थङ्कर आदि के समवसरण आदि में कल्पोपपन्न देव गमनागमन करते हैं । कल्पातीत देव अपने स्थान से अन्य जगह नहीं जाते ।

### पञ्चजीवनिकाय के भेदों का संकलन-

पञ्चजीवनिकायां के कुल पांचसौ त्रैसठ (५६३) भेद हैं । वे इस प्रकार हैं- पृथिवी, अप, तेज, और वायुकाय के वातर और सूक्ष्म के भेद से आठ भेद हुए ।

नखैवेयकना नाम-(१) मद्र, (२) सुमद्र, (३) सुमात, (४) सुमानस (५) सुदर्शन, (६) प्रियदर्शन, (७) अमोघ, (८) सुप्रतिमद्र और (९) यशोधर हैं ।

पांच अनुचर विमान-(१) विमय (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपरामित और (५) सर्वावसिद्ध । तन्वी उत्तर अर्थात् उत्कृष्ट कोई विमान न होय ते अनुचर विमान कहेंवाय छे तीर्थङ्कर आदिना समवसरण आदिमें कल्पोपपन्न देव गमनागमन करे छे कल्पातीत देव पातन्य स्थानथी अन्य जगह न जाय नथी ।

### पञ्चजीवनिकायना करानो भोग

पञ्चजीवनिकायना कुल पांचसौ त्रैसठ (५६३) भेद छे ते अ प्रकार छे- पृथ्वी, अप, तेज और वायुकाय, तेना वातर और सूक्ष्मना भेदथी आठ भेद अथ ।

पर्याप्तापर्याप्तभेदाद् द्वैविध्ये षोडश (१६) भेदाः । वनस्पतिकायस्य सूक्ष्म-  
साधारणप्रत्येकभेदात् त्रैविध्यम्, त्रिविधस्य वनस्पतिकायस्य पर्याप्तापर्याप्त-  
भेदेन प्रत्येक द्वैविध्ये तस्य षड् भेदाः, इत्थं (२२) द्वाविंशतिर्भेदाः स्याव-  
पञ्चकस्यैकेन्द्रियजीवस्य भवन्ति ।

द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाणां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन प्रत्येकं द्वैविध्ये  
षड् भेदाः । सर्वसकलनयाऽष्टाविंशति (२८) भेदाः ।

तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाः-जलचर-स्थलचर-खेचरो-रःपरिसर्पभुजपरिसर्प-भेदात्-  
पञ्चविधाः । तेषां पञ्चानां संश्लेषसंज्ञिभेदेन द्वैविध्ये दश भेदाः । तेषां पर्याप्ता-  
पर्याप्तभेदेन विंशति(२०)भेदाः । पूर्वोक्ताष्टाविंशतिसकलनतोऽष्टचत्वारिंशद्  
(४८) भेदास्तिरश्चाम् ।

इन आठों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से सोलह भेद होते हैं । वनस्पतिकाय-सूक्ष्म,  
साधारण और प्रत्येक के भेद से तीन प्रकार का है । इन तीनों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद  
करने से छह भेद हुए । इस प्रकार पांच एकेन्द्रिय स्थावर जीवों के बाईस (२२)भेद हैं ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त भेद से छह भेद । सबको  
जोड़ देने पर अट्ठाईस (२८) भेद हुए ।

तिर्यक् पञ्चेन्द्रिय-जलचर, स्थलचर, खेचर, उर परिसर्प और भुजपरिसर्प के भेद से  
पांच प्रकार के हैं । पांचों के सज़ी, असज़ी के भेद से दश हुए, इन के पर्याप्त, अपर्याप्त भेद  
करने से बीस (२०) भेद हुए । इन बीस में पूर्वोक्त अट्ठाईस और मिलाने से तिर्यक्को के  
अड़तालीस (४८) भेद होते हैं ।

ते आठना पर्याप्त अने अपर्याप्तना बेदथी सोण बेद थाय छे वनस्पतिठाय सूक्ष्म,  
साधारण अने प्रत्येकना बेदथी त्रणु प्रकारना छे ओ त्रणुना पर्याप्त अने अपर्याप्त  
बेद करवाथी छ बेद थया आ प्रमाणे पाय ओकेन्द्रिय स्थावर लवोना भावीस बेद छे

गेधेन्द्रिय, त्रणु-धेन्द्रिय अने चौधेन्द्रियना पर्याप्त अपर्याप्तना बेदथी छ बेद  
थया ते सर्वने ओक करवाथी अठ्ठावीस (२८) बेद थया

तिर्यक् पञ्चेन्द्रिय-जलचर, स्थलचर, खेचर, उर परिसर्प अने भुजपरिसर्पना  
बेदथी पांच प्रकारना छे ते पांचना सज़ी अने असज़ीना बेदथी दस थया, तेना  
पर्याप्त अने अपर्याप्त बेद करवाथी बीस (२०) बेद थया, ते बीसना पूर्वोक्त अठ्ठावीस  
जोड़वाथी तिर्यक्कोना अड़तालीस (४८) बेद थाय छे



रत्नप्रसादयः सप्त नरकस्युमयः । तत्र महा नारकाः सप्तविधाः, तेषां पर्याप्तपार्याप्तमेवेन द्वैविध्ये चतुर्दश भेदाः

मनुष्याणां व्युत्तरशतत्रय (३०३) भेदाः पूर्वमेव तत्प्रकरणे सुस्पष्टं कथिताः ।

देवानामष्टनवस्युत्तरशत (१९८) भेदाः । तत्र भवनपतीनां दश भेदाः अष्टाङ्गमारादयः । परमाधार्मिकाः पञ्चदश । एव (२५) पञ्चविंशतिभेदाः । भ्यन्तराणां पञ्चविंशतिभेदाः । तत्र पिशाचादयः षोडश, अमरदंमकादयो दश (२६) । ज्योतिष्कानां दश भेदाः । तत्र चन्द्रादयः पञ्च । तेषां पञ्चानां धर-स्फिरमेवेन द्वैविध्ये दश भेदाः (१०) सन्ति । वैमानिकानामष्टविंशद् भेदाः । तत्र सुभर्मादयो द्वादश, सारस्वतादयो नव, किञ्चिपिकादयः, प्रैवेयकाः-मद्रादयो

रत्नप्रसा आदि सात नरकस्युमियों में सात प्रकार के नारकी हैं । उनके पर्याप्त, अपर्याप्त भेद करने से चौदह भेद होते हैं ।

मनुष्यों के तीसती तीन (३०३) भेद पहले स्पष्ट करे जा चुके हैं ।

देवों के एकतीस भूतानुके (१९८) भेद हैं । वे इस प्रकार-भवनपतियों के अमर कुमार आदि दस परमाधार्मिक पन्द्रह, सब पञ्चस (२५) भेद हुए । भ्यन्तरी के छबीस भेद हैं-सोडह पिशाच आदि और दस अमरदंमक आदि (२६) । चन्द्रमा आदि पाँच के धर और अजर भेद होने से ज्योतिष्क देवों के दश (१०) भेद हैं । वैमानिक के अठतीस भेद हैं-सुभर्म आदि बारह सारस्वत आदि नौ किञ्चिपिक आदि तीन, मद्र आदि प्रैवेयक नौ विजय आदि पाँच अनुत्तर विमान (३८) । इन सब का योग करने से

रत्नप्रसा आदि सात नरकस्युमियों में सात प्रकार के नारकी हैं । तेना पर्याप्त जाने अपर्याप्त भेद करवायी जोह भेद थाव है ।

मनुष्योना त्रयसोत्रत्रय (३०३) भेद प्रथम स्पष्ट कही गइया छीजे । देवोना छेकसी आठसु (१९८) भेद छे । भवनपतियोना अमुरकुमार आदि इस परमाधार्मी पदर, सब पञ्चस भेद भवा भ्यन्तराणा छबीस भेद छे-सोण पिशाच आदि, जाने इस अमलसु अक-आदि पन्द्रमा आदि पाबना धर जाने अजर भेद होवायी ज्योतिष्क देवोना दश (१०) भेद छे वैमानिक देवोना आठतीस (३८) भेद छे-सुभर्म आदि बार सारस्वत आदि नव, किञ्चिपिक आदि त्रय अद्र आदि प्रैवेयक नव, विजय आदि पाँच अनुत्तर विमान, आ सबने जेह म भा-३८

नव, विजयादयः पञ्चानुत्तरविमानाः (३८) । सर्वेषां संकलनेन (९९) नव-  
नवतिभेदाः । तेषां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्वैविध्ये सत्यष्टनवत्युत्तरशतं (१९८) भेदाः  
देवानां भवन्ति । इत्थं सकलभेदसकलनया षड्जीवनिकायानां त्रिपष्ट्युत्तर-  
पञ्चशतानि (५६३) भेदाः सन्ति ।

### जीवानां संख्या—

जीवा अनन्ताः सन्ति । तथाहि—

- |  |                                    |
|--|------------------------------------|
| (१) संज्ञिनो मनुष्याः संख्याताः ।        | (२) असंज्ञिनो मनुष्या असंख्याताः । |
| (३) नारकिणोऽप्यसंख्याताः ।               | (४) देवाः संख्याताः ।              |
| (५) तिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रिया असंख्याताः । | (६) द्वीन्द्रिया असंख्याताः ।      |
| (७) त्रीन्द्रिया असंख्याताः ।            | (८) चतुरिन्द्रिया असंख्याताः ।     |

निन्यानवे (९९) भेद होते हैं, और इन के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से एकसौ अट्ठानवे  
(१९८) भेद देवों के हैं । इस प्रकार सब भेदों का जोड़ करने से पांचसौ त्रेसठ (५६३)  
षड्जीवनिकाय के भेद होते हैं ।

### जीवों की संख्या—

जीव अनन्त हैं । वे इस प्रकार—

- |                                     |                              |
|-------------------------------------|------------------------------|
| (१) सज्ञी मनुष्य संख्यात ।          | (२) असज्ञी मनुष्य असंख्यात । |
| (३) नारकी असख्यात ।                 | (४) देव असख्यात ।            |
| (५) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय असख्यात । | (६) द्वीन्द्रिय असख्यात ।    |
| (७) त्रीन्द्रिय असख्यात ।           | (८) चतुरिन्द्रिय असख्यात ।   |

करवाथी नवाष्टु (६६) वेद थाय छे अने तेना पर्याप्त अपर्याप्त वेद करवाथी अेकसो  
अठ्ठाष्टु (१६८) वेद देवाना छे आ प्रभाष्टु उपर छेला सर्व वेदाने अेकठा करवाथी  
पांचसो त्रेसठ (५६३) षड्जीवनिकायना वेद थाय छे.

### जिवानी संख्या—

जिव अनन्त छे, ते आ प्रकारे छे —

- |                                       |                                |
|---------------------------------------|--------------------------------|
| (१) संज्ञी मनुष्य संख्यात छे          | (२) असज्ञी मनुष्य असंख्यात छे. |
| (३) नारकी असंख्यात छे                 | (४) देव असंख्यात छे            |
| (५) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय असंख्यात छे | (६) द्विन्द्रिय असंख्यात छे.   |
| (७) त्रीन्द्रिय असंख्यात छे           | (८) चतुरिन्द्रिय असंख्यात छे.  |

- (९) पृथिवीकाया असंख्याताः । (१०) अपृष्ठाया असंख्याताः ।  
 (११) तेजस्काया असंख्याताः । (१२) वायुकाया असंख्याताः ।  
 (१३) प्रत्येक जनस्यतिक्राया अपृष्ठायाः । (१४) तदपेक्षया सिद्धजीवा अनन्ताः ।  
 (१५) तेभ्योऽपि कन्दमूलादिरूपा (१६) सूक्ष्मनिगोदजीवाः  
 वादरनिगोदजीवा अनन्तगुणा । सर्वतोऽनन्तगुणाः ।

कर्मवादिमकरणम्—

यः पुनरेवं पृथ्वीवनिक्रायस्वरूपनिरूपणपरः स एव लोकवादी वस्तुतः कर्मवादीत्याह—'कर्मवादी' इति । कर्म=ज्ञानावरणीयादि, तद् वदितुं क्षीरमस्येति कर्मवादी—कर्मस्वरूपकथनशीलः । पृथ्वीवनिक्रायतत्त्वज्ञः सल्ल लोकवादी ज्ञाना

- (९) पृथ्वीकाय असंख्यात । (१०) अपृष्ठाया असंख्यात । —  
 (११) तेजस्काय असंख्यात । (१२) वायुकाय असंख्यात ।  
 (१३) प्रत्येकजनस्यतिक्राय असंख्यात । (१४) इह से सिद्ध जीव अनन्त—  
 (१५) वादरनिगोदजीव कन्दमूल आदि सिद्धा से (१६) सूक्ष्म निगोदजीव सब से  
 भी अनन्तगुणा । अनन्त गुणा ।

कर्मवादिमकरणम्—

जो इस प्रकार पृथ्वीवनिक्राय का स्वरूप निरूपण करने वाला है, वही लोकवादी वास्तव में कर्मवादी है । ज्ञानावरण आदि कर्मों का कथन करना जिस का लक्ष्य हो, वह कर्मवादी है । पृथ्वीवनिक्राय का सत्य समझने वाला लोकवादी ज्ञानावरण

- (९) पृथ्वीकाय असंख्यात छे । (१०) अपृष्ठाया असंख्यात छे  
 (११) तेजस्काय असंख्यात छे । (१२) वायुकाय असंख्यात छे  
 (१३) प्रत्येकजनस्यतिक्राय असंख्यात छे । (१४) तेनाभी सिद्धलव अनन्त छे  
 (१५) वादर निगोद लव कन्दमूल आदि (१६) सूक्ष्म निगोद लव शीवी  
 सिद्धीभी पद्य अनन्त छे अनन्तगुणा छे ।

कर्मवादीप्रश्नम्—

ये आ प्रभावे पृथ्वीवनिक्रायत्या स्वरूपं निरूपय कर्मावाद्या छे ते लोकवादी वास्तविक रीते कर्मवादी छे । ज्ञानावरण आदि कर्मों का कथन करण ते जेना स्वरूप होय, ते कर्मवादी छे पृथ्वीवनिक्राय तत्त्वने समञ्जसगुणा लोकवादी ज्ञानावरण

વરણીયાદ્યષ્ટવિધકર્મૈવ નરકાદિચતુર્ગતિભ્રમણકારણતયા વિજાનાતિ । જ્ઞાના-  
વરણીયાદિકર્મવન્ધાદેવ હિ જીવાશ્ચતુર્વિધાસુ ગતિષુ પરિભ્રમન્તઃ સમ્યગ્જ્ઞાનચારિત્ર-  
પ્રાપ્તિમન્તરેણ સંસારદાવાગ્નિપતિતમાત્માનં સમુદ્ધર્તુ ન પ્રભવન્તિ । એવં કર્મવન્ધવેદી  
મગ્યઃ કર્મવાદી બોદ્ધવ્ય ઇત્યર્થઃ ।

### (૧) કર્મસ્વરૂપમ્—

અત્ર કર્મપ્રસન્નેન તત્સ્વરૂપં નિરૂપ્યતે—

જીવેન મિથ્યાત્વાદિદેતુભિઃ ક્રિયતે યત્, તત્ત્વ કર્મ । યથા તપ્તાયો-  
ગોલકઃ સલિલે નિક્ષિપ્તઃ સન્ સર્વતઃ સલિલમાકર્ષતિ તથાઽનાદિમિથ્યાત્વા-

આદિ આઠ કર્મોં કો હી નરક આદિ ચાર ગતિયોં મેં ભ્રમણ કા કારણ જાનતા હૈ ।  
જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોં કે વન્ધ કે કારણ હી જીવ ચાર ગતિયોં મેં પરિભ્રમણ કરતે  
હુણ સમ્યજ્ઞાન ઓર ચારિત્ર કી પ્રાપ્તિ કે વિના સસારરૂપી દાવાનલ મેં પડે હુણ આત્મા  
કા ઉદ્ધાર કરને મેં સમર્થ નહીં હોતે । હિસ પ્રકાર કર્મવન્ધ કે વેત્તા ( જાનનેવાલે ) મગ્યજીવ  
કર્મવાદી કહલતે હૈ ।

### (૧) કર્મકા સ્વરૂપ—

કર્મ કા પ્રસન્ન હોને સે ઉસકે સ્વરૂપ કા નિરૂપણ કરતે હૈ:—

જીવ કે દ્વારા મિથ્યાત્વ આદિ કારણોં સે જો ક્રિયાજાય વહ કર્મ હૈ । જૈસે-  
તપા હુઆ લોહે કા ગોલા જલ મેં ડાલ દિયા જાય તો વહ સમી તરફ સે જલ કો  
સૂંચતા હૈ, ઉસી પ્રકાર અનાદિકાલીન મિથ્યાત્વ આદિ કારણોં સે આત્મા નિરન્તર

આદિ આઠ કર્મોંનેજ નરક આદિ ચાર ગતિઓંમા ભ્રમણતુ કારણ બન્યુ છે જ્ઞાનાવરણીય આદિ  
કર્મોંના બંધના કારણથીજ એવ ચાર ગતિઓંમા પરિભ્રમણ કરતો થકો સમ્યજ્ઞાન અને  
ચારિત્રની પ્રાપ્તિ વિના સસારરૂપી દાવાનલમા પડેલા આત્માને ઉદ્ધાર કરવામા  
સમર્થ થતો નથી, આ પ્રકારે કર્મબંધને બળુનાર બગ્યજીવ કર્મવાદી કહેવાય છે.

### (૧) કર્મતુ સ્વરૂપ—

કર્મનો પ્રસંગ હોવાથી તેના સ્વરૂપતુ નિરૂપણ કરે છે.—

એવદ્વારા મિથ્યાત્વઆદિ કારણોથી જે કરવામા આવે તે કર્મ છે જેવી  
રીતે અગ્નિથી તપાવેલો હોદાનો ગોળો પાણીમા નાખવામા આવે તો તે ચારેય  
તરફથી પાણીને ખેંચે છે, તે પ્રમાણે અનાદિકાલીન મિથ્યાત્વ આદિ કારણોથી આત્મા

દિદેતુમિર્નિરત્તરમપમાત્મા રાગદ્વેષપરિણત્યા સ્વસ્મિન્ સકલમદેહેષુ કર્મવર્ગના  
સ્વ્યં પુણ્યઠ સમાર્પણ્ સ્ત્રીરનીરન્યાયેન તાવાત્મ્યસમાપર્ણં કરોતિ તદેવ કર્મોન્યસે ।

(૨) કર્મવઃ સિદ્ધિઃ—

આત્મસ્વર્ભેષ સર્વેપામાત્મનામેકરૂપરથેડપિ દેવનારકમનુષ્યતિર્યગાદિ  
સ્વ્યં સુસ્તિ-દુઃસ્તિ-સપ્ન-નિર્પન-સુરૂપ-કુરૂપ-સમ્ભ-ડવલ-નીરોગ-સરોગાદિસ્વ્યં વા  
પદ્ વૈચિત્ર્યં તન્ન નિર્દેતુર્કં મક્તિમદ્દતિ, સદા મવાઝમાશ્વરોપમસગાત્ ।  
નિર્દેતુક્ત્વે વેવનારકાદિમવઃ શ્વાશ્વતિકઃ સ્યાત્, તથા દેવનારકાદિમવા

રાગદ્વેષરૂપ પરિણામો છે જાને સમસ્ત આત્મપ્રદેશો મેં કર્મવર્ગના કે પુત્રઓ કો સ્ત્રીચતા હૈ  
બૌર ધીર-નીર કો સદ્ સદ્વૃપ બના છેતા હૈ ઝઠ્ઠી કો કર્મ કરીતે હૈ ।

(૨) કર્મકી સિદ્ધિ—

સર્વ આત્માઓ મેં અપ્રકલ્પ સમાન હોમે પર મી કોર્કે દેવ હૈ, કોર્કે નારક  
કોર્કે મનુષ્ય હૈ, કોર્કે તિર્યક કોર્કે સુસ્તી હૈ, કોર્કે દુઃસ્તી, કોર્કે સપ્ન, કોર્કે નિર્પન,  
કોર્કે સુરૂપ કોર્કે કુરૂપ, કોર્કે સમ્ભ, કોર્કે નિર્લસ, કોર્કે રોગી હૈ, કોર્કે નીરોગી હૈ,  
સદ્ સર્વ વિચિત્રતા નિષ્કારણ નહીં હો સકતી, અગર ઇસકા કોર્કે કારણ ન હોતા તો  
યા તો યદ્ વિચિત્રતા હોતી હી નહીં, અગર હોતી મી તો સર્વેવ કે સ્થિર હોતી । નિષ્કારણ  
હી દેવગતિ યા નરકગતિ હોતી તો વદ્ નિષ્ક હોતી । તથા દેવ નરક જાદિ મવદ્

નિરત્તર રાગદ્વેષરૂપ પરિણામોથી પોતાના સમસ્ત આત્મપ્રદેશોમાં કર્મવજબ્યાના પુદ્  
બદોને જોય છે અને ધીર-નીર પ્રમાણે તારૂપ જનાથી લે છે, તેને કમ કહે છે

(૨) કર્મની સિદ્ધિ—

સર્વ આત્માઓમાં આત્મત્વ સમાન હોવા છતાંય પણ કોઈ દેવ છે કોઈ નારકી,  
કોઈ મનુષ્ય છે, કોઈ તિર્યક કોઈ સુખી છે કોઈ દુઃખી છે કોઈ ધનવાન છે કોઈ  
નિર્પન છે, કોઈ સ્વરૂપવાન છે કોઈ કુરૂપ છે કોઈ સમ્ભ છે કોઈ નિલસ છે કોઈ  
રોગી છે કોઈ નિરોગી છે. આ સર્વ વિચિત્રતા કોઈ કારણ વિના કોઈ શકે નહીં. તેનું  
કોઈ કારણ ન હોય તો આવી વિચિત્રતા પણ હોય નહીં અને હોય તો જી તે હમિયાં  
ખાટે શકી શકતે. કોઈ પણ કારણ વિના દેવગતિ અથવા નરકગતિ હોય તો તે નિત્ય  
હોય, તથા દેવ અને નારક જાદિ જાવને અભાર પણ નિત્ય હોત. જો પ્રમાણે

भावोऽपि शाश्वतिकः स्यात्, एवं यः सुखी, तस्य सर्वदा सुखमेव स्यात्, यश्च दुःखी, तस्य सर्वदा दुःखमेव स्यात्—सर्वदा सुखाभावस्तस्य स्यात् ।

अत एव—“नित्यं सत्त्वं वा हेतोरन्यानपेक्षणात्” इत्याहुः । सहेतु-कत्वस्वीकारे च य एवास्य हेतुः स एवास्माकं कर्मेति । उक्तञ्च—

“आत्मत्वेन विशिष्टस्य, वैचित्र्यं तस्य यद्वशात् ।

नरादिरूप तच्चित्रमदृष्टं कर्मसञ्ज्ञितम्” ॥ १ ॥

अभाव ही शाश्वतिक होता । इसी प्रकार जो सुखी है वह सदा के लिए सुखी होता । जो दुःखी है उसे सदैव दुःख ही होता—उस के लिए सदैव सुख का अभाव होता । इसी लिए कहा गया है कि—“जो वस्तु किसी कारणकी अपेक्षा नहीं रखती वह, या तो आकाश की भाँति सदैव विद्यमान रहती अथवा खरविषाण की तरह कदापि नहीं होती ।” अगर इस विचित्रता का जो कारण है उसी कारण को हम कर्म कहते हैं । कहा भी है—

“आत्मत्व की समानता होने पर भी जिस कारण से मनुष्यादिरूप विचित्रता होती है वही अदृष्ट है । उसी को कर्म कहते हैं, वह नाना प्रकार का है ॥ १ ॥”

जे सुभी छे ते उमेशा भाटे सुभीज्ज होत अने जे दु भी छे ते उमेशा दु भीज्ज रडेत्, तेने उमेशा भाटे सुभने अभाव रडेत् जे कारणुथी कहु छे जे—“जे वस्तु कौं कारणुनी अपेक्षा राखती नथी ते आकाश प्रभाणु सदैव विद्यमान रहे छे, अथवा भर-विषाणु (गधेडाना शिंजडा)नी प्रभाणु कदापि होय नही” अगर आ विचित्रताउ कौं कारणु मानवामा आवे तो ते कारणुने अने कर्म कहीअे छीअे, कहुं छे—

“आत्मत्व—(आत्मापणु)नी समानता होवा छता पणु जे कारणुथी मनुष्या-दिरूप विचित्रता होय छे—देखाय छे. ते अदृष्ट छे तेने कर्म कहे छे अने ते नाना प्रकारता छे—अर्थात् धणु प्रकारता छे” ॥ १ ॥

एतत् कर्म पुद्गलस्वरूपं, नामूर्तमस्ति, अमूर्तस्य हि कर्मणः सकाशात्  
आत्मनामनुग्रहोपपादासम्भात्, गगनादिवत् । उक्तम्—

“तुस्यमतापोघमसाहसानी,  
केचिह्यमन्त निप्रकार्यसिद्धिम् ।  
परे न तां मिथ । निगद्यतां मे,  
कर्मास्ति हिस्वा यदि कोऽपि हेतुः ? ॥१॥”

अपरम्—

“निवध्य मासात्पथ गर्भमध्ये,  
बहुमकारैः कल्लादिमायैः ।  
उद्धर्ष्य निष्काशयते सविष्माः,  
को गर्भसुः कर्म विहाय पूर्वम् ?” इति ।

यह कर्म पुद्गलस्वरूप है, अमूर्त नहीं । अगर कर्म अमूर्त माना जाय तो उस से आत्मा का अनुग्रह और उपपत्त होना असंभव है, जैसे आकाश से नहीं होता । कहा भी है—

“समान प्रताप, उद्यम और साहस वालों में से कोई कोई अपना कार्य सिद्ध करलेते हैं और दूसरे नहीं करपाते । मित्र ! कर्म के सिवाय इस का और कोई कारण हो तो कहे । क्योंकि कर्म ही इस का एकमात्र कारण है” ॥ १ ॥  
और भी कहा है—

“गर्भ में जी महीने तक कल्ल आदि अनेक रूपों में बदलकर माता के गर्भ से पूर्वकर्म के सिवाय और कोन बाहर निकलता है ?” ॥ १ ॥

ये कर्म पुद्गलस्वरूप से अमूर्त नहीं, अथवा कर्मों से अमूर्त अन्वयार्थ आये तो तेनाथी आत्माने अत्युत्तम अने उपपात्त भवेत् असंभव है, जेभ आकाशाधी भवेत् नथी इह पद्युं—

‘समान पलकम्, उद्यम, अने साहसवागी व्यक्तिज्येभामां कौर्ष-कौर्ष पौत्तानुं कश्च सिद्ध करी लेते— अने कौर्ष कौर्ष नथी करी शकती मित्र ! अथ व्यापत्तमा कर्म चिन्ता जीत्यु कौर्ष कारण होय तो कहे ? अथवा कर्मों को अनु कोय मात्र कारण है” ॥१॥  
जीत्यु पद्युं इह्युं—“जर्भामां नथ मास सुधी कल्ल (अन्तु प्रथम स्वर्ग्यु) आदि अनेक रूपों में वृद्धि घटनीने आत्मानु अलभायी रूपकम सिवाय जीत्यु कौर्ष लक्षार कहेते ?” ॥१॥

ननु यथा कर्म विनाऽपि विचित्रा अभ्रादिविकारा दृश्यन्ते तथा संसारिणां सुखदुःखादिभावेन वैचित्र्यं यदि विनाऽपि कर्म भवेत्, तर्हि का हानिः ? इति चेत्, उच्यते—

अभ्रविकारा गन्धर्वनगरशक्रधनुरादयो गृहमाकारवृक्षरक्तनीलपीतादिभावेन वैचित्र्यं विभ्रति तत्र विस्रसापरिणतेन्द्रधनुरादिपुद्गलपरिणामवैचित्र्यं दृश्यते, तदपेक्षया विशिष्ट परिणामवैचित्र्यं प्रायेण चित्रन्यस्तानां चित्रकरादिशिल्पपरिगृहीतानां लेप्यकाष्ठकर्मानुगतपुद्गलानामुपलभ्यते, तर्हि जीवपरिगृहीतानामान्तरकर्मपुद्गलानां सुखदुःखादिनानारूपतया कथं न विशिष्टतरं परिणामवैचित्र्यं संभवेत् ? ।

शङ्का—जैसे कर्म के बिना भी भौतिक-भौतिके मेघ आदि के विकार देखे जाते हैं, उसी प्रकार कर्म के अभाव में भी ससारी जीवों में सुख-दुःख आदि की विचित्रता हो तो क्या हानि है ? ।

समाधान—मेघविकार-गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त, नील, पीत, आदि रूप में विचित्रता धारण करते हैं वहाँ स्वभाव से परिणत इन्द्रधनुष आदि, पुद्गल के परिणामों की विचित्रता देखी जाती है, लेकिन चित्रकार आदि किसी शिल्पी के द्वारा गृहीत चित्र में अङ्कित, लेप्य काष्ठ आदि पुद्गलों में उस से भी अधिक विशिष्टता दिखाई देती है तो फिर जीवद्वारा ग्रहण किये हुए आन्तरिक कर्मपुद्गलों की सुख-दुःख आदि नाना रूपों में परिणमन की विशिष्टतर विचित्रता क्यों न होगी ? ।

शङ्का—जैसी रीते कर्म विना पशु-सात-सातना मेघ आदिना विकारो जेवामा आवे छे, ते प्रमाणे कर्मना अभावमां पशु ससारी एवामा सुख-दुःख आदिनी विचित्रता होय छे अथ मानवामां शुं हानि छे ?

समाधान—मेघविकार-गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त, नील, पीत आदि रूपमा विचित्रता धारण करे छे त्यां स्वभावथी परिणत इन्द्रधनुष आदि पुद्गलाना परिणामोनी विचित्रता जेवामा आवे छे परन्तु चित्रकार आदि कौं शिल्पीद्वारा गृहीत चित्रमा अङ्कित, लेप्य, काष्ठ आदि पुद्गलो मा तेनाथी पशु अधिक विशिष्टता जेवामा आवे छे तो पशु एवद्वारा ग्रहण करेला आन्तरिक कर्मपुद्गलोनी सुख-दुःख आदि नाना (बूझा-बूझा) रूपमा परिणमननी विशिष्टतर विचित्रता केम न होय ?



ननु अन्धादिस्तु कर्मपुत्रलानां विचित्रपरिणतिस्वीकारे बाह्यमिदं शरीर मेव सुखदुःखादिनानारूपतया विचित्रपरिणामं करोतीत्येव मन्थर्या, किं पुनस्तद्व्यपेक्षित्यपेक्षित्यस्य कर्मणः परिकल्पनया, स्वभावात् एव सर्वस्यापि पुद्गलपरिणाम वैचित्र्यस्य सिद्धत्वादिति चेत्, अपभेदि—

अन्धादिषु शरीरस्य सुखदुःखादिविचित्रपरिणामाङ्गीकारे यदि परिशेष मपि, तर्हि कर्मापि ननु तदुरेव, सेयं कर्मतदनुत्पद्युते विचित्रपरिणाममित्यपेक्षे । धीमेव सहाविसंश्लिष्टत्वात्तीन्द्रियत्वात्वाभ्यन्तरं सूक्ष्मं च कर्मणं शरीरम्, औदारिकं तु बाह्य स्थूलमित्येतावानेव द्वयोः शरीरयोर्विभेदो दृश्यते ।

शुद्धा-अन्ध-मेघ आदि के समान कर्मपुत्रलों का विचित्र परिणमन स्वीकार करते हो तो यह क्यों नहीं मान लेते कि बाह्य शरीर ही सुख-दुःख आदि नाना रूपों में विचित्र परिणमन करता है, कर्म को इस विचित्रता का कारण मानने से क्या काम है ?, पुत्रलों की सारी विचित्रता स्वभाव से ही सिद्ध है ।

समाधान-अन्ध आदि के समान शरीर का ही सुख-दुःख आदि विचित्र परिणमन अङ्गीकार करने में व्यप को संतोष मिळता है तो कर्म भी तो शरीर ही है, और वही कर्मशरीर विचित्र परिणमन करता है, ऐसा समझ लीजिए । धीमे के साथ पलित सम्बन्ध होने के कारण और अतीन्द्रिय होने के कारण कर्मशरीर आभ्यन्तर और सूक्ष्म कहलाता है, तथा औदारिक शरीर बाह्य और स्थूल है । वस इतना ही दोनों शरीरों में अन्तर है ।

शुद्धा-अन्ध (मिथ) आदिना समान कर्मपुत्रलौतु विचित्र परिणमन स्वीकार करे तो पक्षी 'बाह्य शरीर व सुख-दुःख आदि नाना रूपेषु विचित्र परिणमन करे' जेव श्रु आटे मानता नही ? कर्मने जे विचित्रतातुं कारण मानवाधी शुद्धातुं ? पुत्रलौतनी परिणमनी तमाय विचित्रता स्वभावधीव सिद्धे छे

समाधान-मेघ आदितु समान शरीरतु पक्ष सुख दुःख आदि विचित्र परिणमन अङ्गीकार करवाभां आपने सतीव भये छे तो कर्म ते शरीरतु छे, अने ते कर्म-शरीर विचित्र परिणमन करे छे जे प्रमाये समस्त रूपे लुचनी साथे घनिष्ठ सम्बन्ध होवाना कारणे अने अतीन्द्रिय होवाना कारणे कर्म-शरीर आभ्यन्तर अने सूक्ष्म कहेवाव छे तथा औदारिक शरीर बाह्य अने स्थूल छे जे तद्वत् ए जे जे शरीरभां अन्तर छे

ननु यथा कर्म विनाऽपि विचित्रा अभ्रादिविकारा दृश्यन्ते तथा संसारिणां सुखदुःखादिभावेन वैचित्र्यं यदि विनाऽपि कर्म भवेत्, तर्हि का हानिः ? इति चेत्, उच्यते—

अभ्रविकारा गन्धर्वनगरशक्रधनुरादयो गृहप्राकारवृक्षरक्तनीलपीतादिभावेन वैचित्र्यं विभ्रति तत्र विस्त्रसापरिणतेन्द्रधनुरादिपुद्गलपरिणामवैचित्र्यं दृश्यते, तदपेक्षया विशिष्ट परिणामवैचित्र्यं प्रायेण चित्रन्यस्तानां चित्रकरादिशिल्पपरिगृहीतानां लेप्यकाष्ठकर्मानुगतपुद्गलानामुपलभ्यते, तर्हि जीवपरिगृहीतानामान्तरकर्मपुद्गलानां सुखदुःखादिनानारूपतया कथं न विशिष्टतरं परिणामवैचित्र्यं संभवेत् ? ।

**शङ्का**—जैसे कर्म के विना भी भौतिक-भौतिके मेघ आदि के विकार देखे जाते हैं उसी प्रकार कर्म के अभाव में भी ससारी जीवों में सुख-दुःख आदि की विचित्रता हो तो क्या हानि है ? ।

**समाधान**—मेघविकार-गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त, नील, पीत, आदि रूप में विचित्रता धारण करते हैं वहाँ स्वभाव से परिणत इन्द्रधनुष आदि, पुद्गल के परिणामों की विचित्रता देखी जाती है, लेकिन चित्रकार आदि किसी शिल्पी के द्वारा गृहीत चित्र में अङ्कित, लेप्य काष्ठ आदि पुद्गलों में उस से भी अधिक विशिष्टता दिखाई देती है तो फिर जीवद्वारा ग्रहण किये हुए आन्तरिक कर्मपुद्गलों की सुख-दुःख आदि नाना रूपों में परिणमन की विशिष्टतर विचित्रता क्यों न होगी ? ।

**शङ्का**—जैसी रीते कर्म विना पशु भात-भातना मेघ आदिना विकारो जेवामां आवे छे, ते प्रमाहे कर्मना अभावमा पशु ससारी जेवामां सुख-दुःख आदिनी विचित्रता डोय छे जेभ मानवामा शुं हानि छे ?

**समाधान**—मेघविकार-गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त नील, पीत आदि रूपमा विचित्रता धारण करे छे त्या स्वभावथी परिणत इन्द्रधनुष आदि पुद्गलना परिणामोनी विचित्रता जेवामां आवे छे परन्तु चित्रकार आदि कौं शिल्पीद्वारा गृहीत चित्रमा अङ्कित, लेप्य, काष्ठ आदि पुद्गलो मा तेनाथी पशु अधिक विशिष्टता जेवामा आवे छे तो पशु जेवद्वारा ग्रहण करेला आन्तरिक कर्मपुद्गलोनी सुख-दुःख आदि नाना (गूहा-गूहा) रूपमा परिणमननी विशिष्टतर विचित्रता केम न डोय ?

, ननु अन्नादिवत् कर्मपुद्गलानां विचित्रपरिणमिस्वीकारे बाह्यमिदं शरीर  
मेव सुखदुःखादिनानारूपतया विचित्रपरिणामं करोतीत्येव मन्यतां, किं पुनस्तद्  
वैचित्र्यहेतुयुतस्य कर्मणः परिकल्पनया, स्वभावात् एव सर्वस्यापि पुद्गलपरिणाम  
वैचित्र्यस्य सिद्धत्वादिति चेत्, भवधेहि—

अन्नादेरिव शरीरस्य सुखदुःखादिविचित्रपरिणामास्वीकारे यदि परितोष-  
मेपि, तर्हि कर्मापि ननु तदुरेव, सेयं कर्मतदनुस्तनुते विचित्रपरिणाममित्येवेहि ।  
धीवेन सहातिसंक्रिष्टत्वावतीन्द्रियत्वावागम्यन्तरं सूक्ष्मं च कर्मैव शरीरम्,  
भौतिकं तु मात्तं स्पृशमित्येतावानेव द्वयोः शरीरयोर्भिन्नेषु इत्यते ।

शुद्धा—अत्र—मेव वादि के समान कर्मपुद्गलों का विचित्र परिणमन स्वीकार करते  
हो तो यह क्यों नहीं मान लेते कि बाह्य शरीर ही सुख—दुःख वादि गूना रूपों में विचित्र  
परिणमन करता है, कम को इस विचित्रता का कारण मानते से क्या काम है, पुद्गलों की  
सारी विचित्रता स्वभाव से ही सिद्ध है ।

समाधान—अत्र वादि के समान शरीर का ही सुख—दुःख वादि विचित्र  
परिणमन स्वीकार करने में आप को अंतोष मिल्ता है तो कर्म भी तो शरीर ही है,  
और यही कर्मशरीर विचित्र परिणमन करता है, ऐसा समझ लीजिए । जीव के साथ  
बन्धित सम्बन्ध होने के कारण और अतीन्द्रिय होने के कारण कर्मशरीर आगम्यन्तर  
और सूक्ष्म प्रकृतता है, तथा भौतिक शरीर बाह्य और स्पृश है । वस इतना ही दोनों  
शरीरों में अन्तर है ।

शुद्धा—अत्र (मेव) वादिना समान कर्मपुद्गलौतु विचित्र परिणमन स्वीकार  
करे छे तो पछी, 'बाह्य शरीर च सुख—दुःख वादि गूना इधमिदं विचित्र परिणमन  
करे छे' अत्र शुद्धा भावता नहीं ? कर्मने के विचित्रतातु करतु भागवाधी शु  
दास छे ? पुद्गलौनी परिणमननी तमाम विचित्रता स्वभावधीच सिद्ध छे

समाधान—मेव वादिना समान शरीरतु पक्ष सुख दुःख वादि विचित्र परिणमन  
अस्वीकार इत्थाम् आपने अतोष भजे छे तो कर्म ते शरीरच छे अने ते कर्म—शरीर  
विचित्र परिणमन करे छे, अत्र प्रभक्षे समल्ल व्यो. एवनी साथे बन्धित सम्बन्ध होवाना  
कारण अने अतीन्द्रिय होवाना कारणे कर्म—शरीर आगम्यन्तर अने सुख इहेवाच छे  
तथा भौतिक शरीर बाह्य अने—स्पृश छे. अटहुं च अत्र शरीरभा अन्तर छे.

ननु बाह्यशरीरस्य स्थूलत्वात् प्रत्यक्षदृष्टत्वाच्चाभ्रादिसादृश्येन बाह्य-  
शरीरस्यैव सुखदुःखादिविचित्रपरिणामोऽस्तु किं पुनरप्रत्यक्षभूतस्य कर्मरू-  
पातीन्द्रियशरीरस्य कल्पनेन, कर्मणशरीरानङ्गीकारे यदि कोऽपि दोष आप-  
तति, ततोऽर्थापत्तेरेव कर्मवैचित्र्यमङ्गीकरिष्यामः ? इति । अत्रोच्यते—

मरणसमये प्रत्यक्षदृष्टबाह्यस्थूलशरीराद् विमुक्तस्य जीवस्य भवान्त-  
रीयबाह्यस्थूलशरीरग्रहणे कारणभूतं सूक्ष्म कर्मणशरीरं विनाऽग्रिमदेहग्रहणा-  
भावरूपो दोषः समापद्यते, ततश्च देहान्तरग्रहणानुपपत्तेर्मरणानन्तरं सर्वस्यापि  
जीवस्य शरीराभावात् संसारोच्छेदः स्यात् । न च दृश्यते संसारसमुच्छेदः ।

शङ्का—बाह्य शरीर स्थूल है और प्रत्यक्ष दिखाई देता है, अत एव बाह्य  
शरीर के साथ ही अब्र आदि की समानता है, ऐसी स्थिति में बाह्य शरीर का ही सुख  
दुःख आदिरूप परिणमन मानना चाहिए । कभी प्रत्यक्ष दिखाई न देने वाले कर्मरूप  
अतीन्द्रिय शरीर की कल्पना करने का कष्ट क्यों उठाते हैं ? हाँ !, कर्मणशरीर को स्वीकार  
न करने से अगर कोई दाष आया तो फिर अर्थापत्ति प्रमाण से ही कर्म की विचित्रता  
स्वीकार कर लेंगे ? ।

समाधान—मृत्यु के समय प्रत्यक्ष देखने वाले बाह्य स्थूल शरीर को ग्रहण  
करने का कारणभूत सूक्ष्म शरीर न हो तो जीव आगामी शरीर को ग्रहण ही नहीं कर  
सकेगा । सूक्ष्म शरीर न मानने से यह दोष आता है । जीव अगर अगले शरीर को ग्रहण  
न करे तो मृत्यु के पश्चात् अशरीर होने के कारण सभी जीव मुक्त हो जाएँगे, और

शंका—बाह्य शरीर स्थूल छे अने प्रत्यक्ष देखाय छे, अे कारणुधी बाह्य शरीरनी  
साथेन मेध आदिनी समानता छे अेवी स्थितिमा बाह्य शरीरनुन सुख-दुःख  
आदि रुप परिणुमन मानी लेवुं नोछे अे केछि वपत प्रत्यक्ष नहि देखाता अेवा  
कर्मरुप अतीन्द्रिय शरीरनी कल्पना करवानु कष्ट सा भाटे उठावे छे ? हाँ । कर्मणु  
शरीरने स्वीकार नहि करवाथी नो केछि दोष आवशे तो पछी अर्थापत्ति प्रमाणुधीन  
कर्मनी विचित्रता स्वीकारी लछुं

समाधान—मृत्युना समये प्रत्यक्ष देखातां बाह्य स्थूल शरीरथी एव अलग यथ  
नथ छे आगता अवमा बाह्य स्थूल शरीरने अछुणु करवाना कारणुभूत सूक्ष्म शरीर  
नहि होय तो एव आगामी शरीरने अछुणु करी शकथे नहि सूक्ष्म शरीर नहि  
मानवाथी आ दोष आवे छे एव नो मृत्यु पछी भीन शरीरने अछुणु न करे तो मृत्यु  
पछी अशरीर होवाने कारणे सर्व एवे मुक्त यथ नथे अने संसार अथ यथ नथे ।

शरीरान्तरग्रहण वा निष्कारणं न सम्भवति । तस्मात् । स्थूलशरीकारणमूर्त सूक्ष्म-  
कार्मणशरीरमस्तीत्यवश्यमङ्गीकर्तव्यम् ।

ननु कर्मरहित शुद्धजीवो नानाविधशरीरादीनां कर्ताऽस्तु, तपेश्वरः,  
स्वभावो यदृच्छा वा विविधशरीरादिकं करोतीत्येष मन्वते, किं कर्मकल्पनेन ?  
अत्रोच्यते—

अयं जीवेश्वरादिरकर्मा न शरीरसुखदुःखादीनां कर्ता, उपकरणामावात्,  
वृष्ठापुपकरणरहितकुम्भकारवत् । कर्म विनाजन्मदुपकरणं शरीराधारम्मकं  
जीवेश्वरादीनां न सम्भवति, गर्माद्यवस्थास्वन्योपकरणसंभवात्, कर्म विना  
शुक्रशोणितादिग्रहणस्याप्यनुपपत्तेः ।

संसार मिट जायगा, मगर संसार का मिटना दिखाई नहीं देता, और बिना कारण के  
शरीर का ग्रहण नहीं हो सकता, भव एव स्थूल शरीर का कारण सूक्ष्म कार्मणशरीर का  
अस्तित्व अङ्गीकार करना चाहिए ।

शुद्ध-कर्मरहित शुद्ध जीव को नाना प्रकार के शरीरों का कर्ता मान लिया जाय,  
या ईश्वर; स्वभाव अथवा यदृच्छा को कर्ता स्वीकार कर लिया जाय, कर्म की कल्पना  
से क्या साम है ? ।

समाधान-कर्मरहित जीव या ईश्वर आदि, शरीर, सुख-दुःख आदि का कर्ता  
नहीं है, क्योंकि उसके पास उपकरण नहीं हैं वृष्ट आदि उपकरणों से रहित कुमार  
के समान । कर्म के सिवाय, शरीर आदि रचने में ईश्वर आदि को और कोई भी उपकरण  
नहीं हो सकता । कर्म के अतिरिक्त और कोई उपकरण न होने के कारण गर्म आदि अवस्थाओं  
में शुक्र शोणित आदिका ग्रहण भी नहीं हो सकता ।

परन्तु संसार जगत् अथवा तत्सु जीवार्थं आवतुं नशी, जने कारणे विना शरीरतु अदृश्य  
कोई शक्ति नहीं जे कारणधी वस्तु शरीरतु कारणे उत्पन्न-कारण शरीरतु अस्तित्वतु  
अधीकार करवे। कोईके।

शुद्ध-कर्मरहित शुद्ध जीवने नाना प्रकारना शरीरिना कर्ता भानी कोईके, अथवा  
ईश्वर स्वभाव वा यदृच्छा जे कर्ता भानी कोईके तो पक्षी कर्मनी कल्पना करवाधी शुद्धता ? ।

समाधान-कर्मरहित जीव अथवा तो ईश्वर आदि शरीर सुख, दुःखना कर्ता नहीं।  
कारण के तनी पास उपकरण- ( सुख साधन ) नहीं, इह आदि प्रधान साधने विनाने  
जेम कुमार, ते प्रभावे, कर्म विना शरीर आदि रचनामां ईश्वर वनेरने नीलु कोई  
पक्ष उपकरणे कोई शक्ति कर्मना विना नीलु कोई प्रधान साधन नहि दोषाने  
कारणे जे अति अपरधामेमां शुद्ध शक्ति वनेरने अदृश्य पक्ष कोई शक्ति नहीं।

यद्वा—अकर्मा शरीरादिकं नारभते, निश्चेष्टत्वात्, अमूर्तत्वात्, आकाशवत् । तथा—एकत्वात् एकपरमाणुवत् ।

यदि शरीरवानीश्वरः करोति विविधशरीरादिकमित्युच्यते तदाऽनवस्था-  
दोषः समापद्यते । तथाहि—शरीरस्येश्वरस्य जगद्भैचित्र्यकर्तृत्वस्वीकारे स्वशरीर-  
कर्तृत्वमकर्मणस्तस्येश्वरस्य न संभवति, निरूपकरणत्वात्, दण्डादिरहितकुम्भकारवत् ।  
अथान्यः कोऽपीश्वरस्तदीयशरीरकरणाय प्रवर्तते ततः सोऽपि शरीरवान् अशरीरो  
वा ? यद्यशरीरस्तर्हि नासौ शरीरकर्ता निरूपकरणत्वात् । शरीरवांश्चेत्—तर्हि

अथवा—जो कर्मरहित है वह शरीर आदि का उत्पादक नहीं हो सकता, क्यों कि वह चेष्टारहित है, अथवा अमूर्त है । जो चेष्टाहीन या अमूर्त होता है वह शरीर आदि का जनक नहीं होता, जैसे आकाश । तथा वह एक होने के कारण भी शरीर आदिका जनक नहीं हो सकता, जैसे एक परमाणु ।

कदाचित् यह कहा जाय कि सशरीर ईश्वर विविध शरीर आदिका कर्ता है तो अनवस्था दोष आता है । वह इस प्रकार—जब सशरीर ईश्वर जगत् की विचित्रता का कारण है तो वह बिना शरीर के अपना शरीर भी नहीं बना सकेगा, क्यों कि वह उपकरणहीन है, दण्डआदि से रहित कुमार के समान । अब यह कहा जाय कि कोई दूसरा ईश्वर, पहले ईश्वर का शरीर बनाने के लिए प्रवृत्त होता है तो उसके विषय में भी वही प्रश्न उपस्थित होता है कि—वह सशरीर है अथवा अशरीर है ? अगर वह अशरीर है तो उपकरणहीन होने के कारण शरीर का कर्ता

अथवा—जे कर्मरहित छे ते शरीर आदिना उत्पादक थर्छ शकै नहि, अरबु के ते चेष्टारहित छे अथवा अमूर्त छे जे चेष्टाहीन अथवा अमूर्त होय छे, ते शरीर आदिना उत्पन्न करनार होय नहि जेवी रीते—आकाश, तथा ते अेक होवाना अरबु पषु शरीर आदिना उन्न करनार होय नहि. जेवी रीते अेक परमाणु.

कदाचित् अेभ कडेवामा आवे के—सशरीर ईश्वर विविध शरीर आदिना कर्ता छे तो अनवस्था दोष आवे छे ते आ प्रमाणु के—अन्यारे सशरीर ईश्वर जगतनी विचित्रतातुं अरबु छे तो ते, शरीर बिना पोतानु शरीर पषु भनापी शकशे नही, अरबु के ते उपकरणहीन छे, जेभ हउ आदिथी रहित कुलार डवे जे अेभ कडेवामा आवे के कोर्छ भीजे ईश्वर प्रथमना ईश्वरनु शरीर भनाववामा प्रवृत्त थाय छे, तो ते विषयमा पषु अे प्रश्न उलो थाय छे के—ते सशरीर छे अथवा अशरीर छे ? अगर जे अशरीर छे तो उपकरणहीन

तच्छरीरारम्भेऽपि तुल्यता प्रथमस्य । सोऽप्यकर्मा निजशरीरं नारभते निरुपकरण  
 स्यात् । यदि तच्छरीरकर्ताऽप्यः कोऽपि, तर्हि सोऽपि शरीरवान् अशरीरो वा ?  
 इत्थं चानपस्वा । अनिष्टं च सर्वमेतत् । तस्मात्पेश्रो देहादीनां कर्ता, किन्तु  
 कर्मसाहितो जीव एव स्वकीयं देहादिकं करोति ।

किञ्च—ईश्वरस्य देहादिकरणं मिथ्ययोजनमिति तदोन्मत्ततुरपथा स्यात् ।  
 सप्रयोजनकर्तृत्वे तु तस्यानीश्वरत्वप्रसङ्गः । किञ्चानादिशुद्धस्य तत्त्वेश्वरस्य  
 देहादिकरणेच्छा नोपपद्यते, इच्छाया रागरूपत्वात् ।

नहीं हो सकता । अगर सशरीर है तो उसका शरीर बनाने वाला कोई तैसरा ईश्वर मानना  
 पड़ेगा । वह तैसरा ईश्वर भी अशरीर है या सशरीर है ?, इत्यादि विकल्प फिर उपस्थित  
 होनेके कारण अन्वयवा दोष जाता है ।

यह सब अनीश्वर नहीं है । अतः देह आदिका कर्ता ईश्वर नहीं हो सकता, बल्कि  
 कर्मसाहित जीव ही अपने शरीर आदि का कर्ता है ।

इसरी बात यह है कि ईश्वर, बिना किसी प्रयोजन के ही अगर शरीर आदि की  
 रचना करता है तो वह उन्मत्त के समान होगा । अगर उसका कोई प्रयोजन है तो वह  
 ईश्वर नहीं रहेगा ।

एक बात और—जनादि काल से हुए ईश्वर की देह आदि रचने में इच्छा  
 ही नहीं हो सकती, क्योंकि इच्छा एक प्रकार का राग है और रागी ईश्वर नहीं हो सकता ।

जोवाना आरम्भे शरीरकर्ता बर्ह शकतो नथी अजर सशरीर उ तो तेतु शरीर जना  
 नवावाणेन केरि त्रीजे अधिर मानवे पक्षी ते त्रीजे अधिर पक्षु सशरीर उ अथवा  
 सशरीर उ ? अत्रादि विकल्प हरिने उपस्थित जोवाना आरम्भे अन्वयवा दोष आवे  
 उ ते सब अनीश्वर नथी, ते आरम्भुभी देह आदिना कर्ता अधिर बर्ह शकता नथी,  
 परन्तु कर्मसाहित एवमेव जोवाना शरीर आदिना कर्ता उ ।

जीव वात को उ के-अधिर केरि प्रयोजन बिना जो शरीर आदिनी रचना  
 करे उ तो ते उ-अतानी समान जगुथी अथवा तो तेने केरि प्रयोजन उ तो ते  
 अधिर नहीं रहे, जेके जीव वात को उ के-जनादि कालभी शुद्ध अधिरनी, देह  
 आदि रचनाभा अधिजन रहेती नथी, आरम्भु के अधिर जेके प्रसारणे राज उ अने  
 राजी अधिर बर्ह शकता नथी ।

नापि स्वभावो देहादीना कर्ता भवितुमर्हति । स स्वभावः । विशेषो वा ? अकारणता वा ? वस्तुधर्मो वा ? तत्र न तावद् वस्तुविशेषो वस्तुविशेषरूपत्वे प्रमाणाभावात् । प्रमाणरहितस्यापि वस्तुत्वस्वीकारे कथं नाङ्गीकरोपि ? त्वन्मते कर्मणोऽपि प्रमाणरहितत्वात् ।

किञ्च-वस्तुविशेषरूपः स स्वभावो मूर्त्तौ वा स्यादमूर्त्तौ । मूर्त्तस्तर्हि स्वभाव इति नामान्तरेण कर्मैव सिध्यति । यदि पुनरमूर्त्तस्तर्हि स्वभावो देहादीनां कर्ता भवितुमर्हति, अमूर्त्तत्वात् निरूपकरणत्वाच्च, न

स्वभाव भी देह आदि का कर्ता नहीं हो सकता । आखिर स्वभाव क्या है ? स्वभाव कोई वस्तु है ? अथवा कोई भी कारण न होना स्वभाव किसी वस्तु का धर्म है ? । स्वभाव कोई वस्तु तो है नहीं, क्यों कि उसे वस्तु कोई प्रमाण नहीं है । प्रमाण के अभावमें भी स्वभाव को वस्तु मान । तो कर्म मानने में क्या आपत्ति है ? तुम्हारे मत के अनुसार कर्म मानने प्रमाण नहीं है ।

स्वभाव अगर कोई वस्तु है तो वह मूर्त्त है या अमूर्त्त ? अगर तो स्वभाव और कर्म एक ही वस्तु है । आप कर्म को ही से कहते हैं तो कह लीजिये । स्वभाव को अमूर्त्त मानते हैं तो वह आदिका कर्ता नहीं हो सकता, क्यों कि वह अमूर्त्त है और उपकरण है, जैसे आकाश । मूर्त्त शरीर का अनुरूप कारण मूर्त्त ही होना चाहि

स्वभाव पशु देह आदिना कर्ता थर्ह शकतो नथी छेवट स्वभावने अर्थ थु । स्वभाव कोर्ह वस्तु छे ? अथवा कोर्हपशु कारणु नही छेवट ते स्वभाव छे ? अथवा वस्तुने धर्म छे ? स्वभाव कोर्ह वस्तु तो छे नही, कारणु के तेने वस्तु मानवाम प्रमाणु नथी, प्रमाणुना अलावमा पशु स्वभावने वस्तु मानी छेवाम आवे तो मानवाम थु आपत्ति छे ? तमारा मत प्रमाणु कर्म मानवाम पशु कोर्ह प्रमाणु ।

स्वभाव अगर कोर्ह पशु वस्तु छे तो ते मूर्त्त छे अथवा अमूर्त्त छे ? जे ते छे तो स्वभाव अने कर्म अेकण वस्तु छे, तमे कर्मनेज स्वभाव-शब्दथी कडो छे थुगीथी कडो जे स्वभावने अमूर्त्त मानथो तो ते देह आदिना कर्ता थर्ह शकथे न कारणु के ते अमूर्त्त छे अने उपकरणु (प्रधान साधने) रहित छे जेवी ।



मूर्तस्य शरीरादिकार्यस्यानुरूपं कारणं मूर्तमेव समवति, यथा घृत्पिण्डो घटस्य ।

अकारणत्वरूपः स्वभावः ? इति चेत्, एव सति शरीरादिक्रमकारण-  
मेवेत्युच्यते, इत्ययमर्थः स्यात्, तथा सति कारणामावस्य समानत्वादेकस्मिन्नेव  
समये सकलशरीरोत्पत्तिप्रसंगः ।

यदि स्वभावो वस्तुधर्म इत्युच्यते, तथापि यदि विज्ञानादिब्रह्मात्मनो  
धर्मस्त्वर्हि नासौ स्वभावः शरीरकारण भवितुमर्हति, अमूर्तत्वात्, आकाशवदित्युक्त  
मागेव । यदि स स्वभावो मूर्तवस्तुधर्मस्त्वर्हि सिद्धसाधनम्, कर्मापि पुत्ररूप  
मवेति पर्यं ब्रूमः । तस्मात् कर्मैव जगद्वैविध्यकारणमिति सिद्धम् ।

घटे घट का कारण मिट्टी का पिण्ड है ।

अगर कोई भी कारण न होना ही स्वभाव है तो इसका धर्म यह हुआ कि शरीर  
आदि निष्कारण ही उत्पन्न हो जाते हैं । अगर निष्कारण ही शरीर को उत्पत्ति होती है तो  
किर सत्त्व के समस्त शरीर एक साथ क्यों नहीं हो जाते ? ।

स्वभाव किसी वस्तु का धर्म है, यह कहना भी युक्तिसंगत नहीं है ।  
अगर यह ज्ञान आदि के समान आत्मा का धर्म है तो आकाश की तरह अमूर्त होने के  
कारण शरीर का कर्ता नहीं हो सकता यह पहले ही कहा जा चुका है । स्वभाव  
अगर किसी मूल वस्तु का धर्म है तो यह हमें भी इष्ट है, क्यों कि हमारे कबलानुसार  
कर्म भी पुत्ररूप का क्रमवाची धर्म है, अत एव यह सिद्ध हुआ कि कर्म ही अकारण की  
विविधता का कारण है ।

मूल शरीरतु अनुरूप कारणं मूर्तमेव तेषु जेष्ठमे, जेम वस्तु कारणं मातीना पिंडे

अथवा जेष्ठं कारणं न जेम जेठो व स्वभाव उ तो तेना अथ जे घटे  
के शरीर आदि निष्कारणत्वं उत्पत्त घटं जेम उ अने निष्कारणत्वं शरीरनी उत्पत्ति  
अथ उ तो यही सत्त्वत्वात् समस्त शरीर जेठ साथे जेम वधं नहीं कर्ता ?

‘स्वभाव जेष्ठ वस्तुने धर्म उ जे प्रभावे जेष्ठे ते वस्तु बुद्धिसत्त्वत नधी  
अथवा तो ते ज्ञान आदिना समान आत्माने धर्म उ तो आकाशानी भाहक अमूर्त  
होवाना कारणे शरीरना कर्ता वधं शक्ये नही, आ कर्तव्य प्रथमधीन कही जाची  
उ. स्वभाव जे जेष्ठ मूर्त वस्तुने धर्म उ तो ते वात अभावे वस्तु भान्य उ  
कारण के अभावा जेठो प्रभावे कर्म वस्तु पुत्ररूपत्वं उ, जे माटे जेम सिद्ध वस्तु  
के कर्म व जगतनी विविधता कारण उ

## (૩) કર્મણો મૂર્તત્વમ્—

નન્વતીન્દ્રિયસ્ય કાર્મણશરીરસ્ય મૂર્તત્વે કિં માનમ્ ? અત્રોચ્યતે—  
શરીરાદિકાર્યદર્શનાત્ત્કારણમૂત્તં કર્મ સિધ્યતિ ચેત્ તર્હિ કાર્યાનુરૂપમેવ  
કારણં ભવિતુમર્હતીતિ શરીરાદિકાર્યાણાં મૂર્તત્વાત્ત્કારણં કર્માપિ મૂર્તમેવ । યથા  
મૂર્તસ્ય ઘટાદિકાર્યસ્ય કારણં પરમાણુપુદ્ગલાસ્તે મૂર્તા એવ સન્તિ । યચ્ચ પુનરમૂર્ત  
કાર્યં તસ્ય કારણમપિ—અમૂર્તમ્ , યથા જ્ઞાનસ્યાત્મેતિ ।

નન્નુ સુખદુઃખાદયોઽપિ કર્મણઃ કાર્યં તર્હિ તેપામમૂર્તત્વાત્ કર્મણોઽ  
મૂર્તત્વમપિ પ્રાપ્નોતિ, નહિ મૂર્તાદમૂર્તોત્પત્તિઃ સંભવતિ, યથા પુદ્ગલાદ્ જ્ઞાનપર્યાયઃ,

## (૩) કર્મ કા મૂર્તપન—

શંકા—અતીન્દ્રિય કાર્મણ શરીર કે મૂર્ત હોને મેં ક્યા પ્રમાણ હૈ ?

સમાધાન—શરીર આદિ કાર્યો કે દેખને સે અનેકે કારણમૂત્ત કર્મ કી સિદ્ધિ હોતી  
હૈ, ઓર કારણ, કાર્ય કે અનુરૂપ હી હોતા હૈ, અત્ એવ જવ શરીર આદિ કાર્ય મૂર્ત હૈં તો  
અન કા કારણ કર્મ મી મૂર્ત હી હોના ચાહિયે । જૈસે મૂર્ત ઘટ આદિ કાર્યો કે કારણમૂત્ત  
પુદ્ગલ પરમાણુ મી મૂર્ત હી હૈ, જો કાર્ય અમૂર્ત હોતા હૈ, અસકા કારણ મી અમૂર્ત હી હોતા હૈ,  
જૈસે જ્ઞાન કા કારણ આત્મા ।

શંકા—સુખ ઓર દુઃખ આદિ કા કારણ મી કર્મ હૈ, ઓર સુખ  
દુઃખ આદિ અમૂર્ત હૈં, અત્ અન કા કારણ કર્મ અમૂર્ત મી હોના ચાહિયે । મૂર્ત સે  
અમૂર્ત કી ઉત્પત્તિ નહી હો સકતી, જૈસે પુદ્ગલ સે જ્ઞાનપર્યાય કી ઉત્પત્તિ નહીં હો

## (૩) કર્મણું મૂર્તપણું—

શંકા—અતીન્દ્રિય કાર્મણુ શરીરમાં મૂર્તપણુ હોવામાં શું પ્રમાણુ છે ?

સમાધાન—શરીર આદિ કાર્યોના દેખવાથી તેના કારણમૂત્ત કર્મની સિદ્ધિ થાય  
છે, અને કારણુ, કાર્યના અનુરૂપજ હોય છે એ કારણુથી ન્યારે શરીર આદિ કાર્ય  
મૂર્ત છે, તો તેનું કારણુ કર્મ પણ મૂર્તજ હોવું જોઈએ જેવી રીતે મૂર્ત ઘટ આદિ  
કાર્યોના કારણુમૂત્ત પુદ્ગલપરમાણુ પણ મૂર્ત છે એ કાર્ય અમૂર્ત હોય છે તેનું કારણુ  
પણ અમૂર્ત જ હોય છે, જેમકે જ્ઞાનનું કારણુ આત્મા

શંકા—સુખ અને દુઃખ આદિનું કારણુ કર્મ છે, અને સુખ દુઃખ આદિ અમૂર્ત  
છે, તેથી તેનું કારણુ કર્મ પણ અમૂર્તજ હોવું જોઈએ. મૂર્તથી અમૂર્તની ઉત્પત્તિ થઈ  
શકતી નથી, જેવી રીતે પુદ્ગલથી જ્ઞાનપર્યાયની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી, અને એકજ

नाप्येकस्यैव कर्मणो मूर्तसममूर्तत्वं च युज्यते, निरुद्धत्वादिति चेत् ? उच्यते—

अत्र कारणसम्बन्धेनोपादानकारणं परिगृह्यते; न तु निमित्तकारणम्, सुखदुःखादीनां निमित्तकारणमेव कर्म, यथाऽऽप्तपानादयो विपादया वा सुख दुःखादीनां निमित्तकारणमस्ति । उपदानकारणं तु वेपामात्मैव सुखदुःखादीना-  
मात्मकत्वव्यतिरिक्तं नास्ति दोषलोच्योऽपि ।

(४) जीवकर्मणो सम्बन्धः ।

अतु कर्म मूर्तमस्तीत्युक्तं परन्तु मूर्तस्य कर्मणोऽमूर्तेन जीवेन सा-  
क्य संयोगसम्बन्धः सम्बन्धः ? इति चेन्नैकम्, यथा मूर्तस्य घटस्यामूर्तेन गगनेन  
संयोगसम्बन्धः सम्बन्धस्तथाऽत्रापि जीवकर्मणोः सम्बन्धोऽस्तीति । उक्तम्—

सकृत् । और एक ही कम मूर्त भी हो और अमूर्त भी हो, यह कैसे हो सकता है ? ये दोनों धर्म विरोधी हैं एक साथ नहीं रह सकते ।

समाधान—यहाँ कारण-शब्द से उपदान कारण ग्रहण किया गया है, निमित्त  
कारण नहीं । कर्म सुख-दुःख के प्रति निमित्त कारण ही है, जैसे जन्म, पान, विष आदि  
सुख-दुःख के निमित्त कारण हैं । सुख दुःख का उपदान कारण तो आत्मा ही है, क्यों  
कि वे आत्मा के धर्म हैं, अतः यहाँ दोष का भेग भी नहीं है ।

(४) जीव और कम का सम्बन्ध—

सङ्का—आपने कर्म को मूर्त सिद्ध किया मगर मूर्त कर्म का अमूर्त जीव के साथ  
सम्बन्ध किस प्रकार हो सकता है ? ।

समाधान—ऐसा न कहिए । जैसे मूर्त घट का अमूर्त आकाश के साथ संयोग-  
सम्बन्ध है, उसी प्रकार जीव और कम का भी सम्बन्ध है । कहा भी है —

कर्म मूर्तं पक्ष कोषं जने अमूर्तं पक्ष कोषं, जे देवी रीते कोर्षं शक्ये ? आ जन्ने  
धर्मं विशधी छे तेधी जेक जन्माजे रही शक्यता नहीं ।

समाधान—नहिं कारण-शब्दोपादान कारण अक्षय्य इत्यादि आने से, निमित्त  
कारण नहिं । कर्म सुख-दुःख यवामां निमित्त कारण छे जेवी रीते जल फल, पान,  
विष आदि सुख-दुःखना निमित्त कारण छे परन्तु सुख-दुःखनु उपदान कारण तो  
आत्मा छे, कारण के ते आत्माने धर्म छे तेधी तेमां बेश पक्ष दोष नहीं ।

(४) एव जने कर्मना सम्बन्ध—

श. का—आपि कर्मने मूर्त छे जेभ सिद्ध कर्तुं तो पक्ष मूर्त कर्मना अमूर्त  
एवनी साथे सम्बन्ध देवी रीते कोर्षं शक्ये छे ?

समाधान—आ प्रभावे नहिं कहे ? जेभ मूर्त बटने अमूर्त आकारानी साथे  
स योगसम्बन्ध छे ते प्रभावे एव जने कर्मना पक्ष सम्बन्ध छे कहु पक्ष छे—

“ यथा ह्यरूपमाकाशं, रूपिद्रव्यादिभाजनम् ।

तथा ह्यरूप आत्मापि, रूपिकर्मादिभाजनम् ॥१॥ ”

यथा वा - अमूर्तयाऽऽकुञ्चनादिक्रियया सह मूर्तद्रव्यस्याद्गुल्वादेः सम्बन्धस्तथाऽत्रापि जीवकर्मणोः सम्बन्ध इति बोध्यम् ।

यद्वा-यथा बाह्यशरीरमिदं जीवेन सह सम्बद्धं प्रत्यक्षदृष्टमेवास्ति, एवं भवान्तरं गच्छता जीवेन सह कर्मणशरीरं सम्बद्धमेवेति ।

यदि बाह्यशरीरस्य जीवेन सह सम्बन्धे धर्माधर्मयोः कारणात्ऽस्ती-त्युच्यते तर्हि तावपि धर्माधर्मौ मूर्तौ स्याताममूर्तौ वा ? । यदि मूर्तौ तर्हि

“ जैसे अरूपी आकाश रूपी द्रव्य आदि का आधार है, उसी प्रकार अरूपी आत्मा कर्मों का आधार है ” ॥ १ ॥

अथवा जैसे-आकुञ्चन ( सिकोडना ) आदि अमूर्त क्रिया के साथ अंगुली आदि मूर्त द्रव्य का सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार यहाँ जीव और कर्म का सम्बन्ध समझ लेना चाहिए ।

अथवा जैसे बाह्य शरीरका जीव के साथ सम्बन्ध है, वह प्रत्यक्ष सिद्ध है, उसी प्रकार भवान्तर में जाते जीव के साथ कर्मण शरीर का सम्बन्ध है ।

अगर कहा जाय कि जीव के साथ बाह्य शरीर का सम्बन्ध होने में धर्म और अधर्म कारण है तो प्रश्न खड़ा होता है कि-धर्म अधर्म मूर्त हैं या अमूर्त हैं ?

“ जेवी रीते अरूपी आकाश, रूपी द्रव्य आदिने आधार छे ते प्रमाणे अरूपी आत्मा, रूपी कर्मोने आधार छे ” ॥१॥

अथवा-जेवी रीते-स डोयवुं आदि अमूर्त क्रियानी साथे आगदी आदि मूर्त द्रव्यने सम्बन्ध छे ते प्रमाणे एव अने कर्मोने सम्बन्ध समथु लेवेो नोथअ.

अथवा जेवी रीते आ बाह्य शरीर एवनी साथे सम्बन्ध छे ते प्रत्यक्षथी सिद्ध छे. ते प्रमाणे भवान्तरमा जाता एवनी साथे कर्मणु शरीरने सम्बन्ध छे

अथवा तो ज्येम् कडेवासां आवे के एवनी साथे बाह्य शरीरने सम्बन्ध होवामा धर्म अने अधर्म कारण छे तो प्रश्न उठेो थाय छे. के-धर्म अधर्म मूर्त छे के अमूर्त छे ? नो ते मूर्त छे ज्येम् कडेो तो अमूर्त एवनी साथे तेने सम्बन्ध केवी रीते थयो ?

तयोरप्यमूर्तेन जीवेन कथं सम्बन्धः ? यदि कथञ्चित् सम्बन्धस्तर्हि कर्मणोऽपि जीवेन सह सम्बन्धः कृतो न स्यात् । यद्यमूर्तो धर्माधर्मौ तर्हि धात्रेण स्पृश-  
शरीरेण मूर्तेन सह तयोः कथं सम्बन्धः ? तस्मत्ते ह्युर्तामूर्तयोः सम्बन्धासम्भवात् ।  
यद्यमूर्तयोरपि धर्माधर्मयोर्धातुशरीरेण मूर्तेन सह सम्बन्धोऽङ्गीक्रियते तर्हि  
जीवेन सह कर्मणः सम्बन्धे कथं दोषः ? ।

नन्वमूर्तस्य जीवस्य मूर्तेन कर्मणा कथं सुखदुःखाद्यनुग्रहोपघातौ  
स्याताम्, न ह्यमूर्तस्याकाशस्य मूर्तेः अकचन्दनाग्निज्वालादिभिरनुग्रहोपघातौ जायेते ? ।

अगर वे मूर्त हैं तो अमूर्त जीव के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हुआ ? अगर किसी प्रकार उनका  
सम्बन्ध हो गया तो कर्म का सम्बन्ध क्यों नहीं हो सकता ? । अगर धर्म अधर्म अमूर्त हैं  
तो बाह्य स्पृश और मूर्त शरीर के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हो गया ? आपके मत से  
मूर्त और अमूर्त का तो सम्बन्ध हो नहीं सकता । अगर अमूर्त धर्म अधर्म का मूर्त शरीर के  
साथ सम्बन्ध होना स्वीकार करते हो तो जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध मानने में  
क्या दोष है ? ।

सङ्गा—अमूर्त जीव का मूर्त कर्म के द्वारा सुख दुःख आदिरूप अनुग्रह और उपघात  
कैसे हो सकता है, मूर्त मात्स्य चन्दन अग्नि ज्वाला आदि से अमूर्त आकाश का अनुग्रह  
और उपघात नहीं होता ?

अथवा कौन प्रकार के तेने सम्बन्ध बर्ध जये तो कर्मने सम्बन्ध का भङ्गे नहीं बर्ध  
शके ? अत्र धर्म अधर्म अमूर्त छे तो बाह्य स्पृश जने मूर्त शरीरनी साथे तेने  
सम्बन्ध देवी शीते बर्ध जये ? आपना मत प्रमाणे तो मूर्त जने अमूर्तने सम्बन्ध-  
ब छेर्ध शके नहीं, परन्तु जे अमूर्त धर्म-अधर्मने मूर्त शरीरनी साथे सम्बन्ध  
बवे ते स्वीकार करता हो तो अजनी साथे कर्मने सम्बन्ध मानवार्थ होय छे ?

शंका—अमूर्त अपने, मूर्त कर्मद्वारा सुख-दुःख आदिरूप अनुग्रह जने  
उपघात बर्ध शीते बर्ध शके ? मूर्त मात्स्य चन्दन, अग्नि, ज्वाला आदिसी अमूर्त  
आकाशने अनुग्रह जने उपघात बर्ध शकते नहीं.

शृणु—यथामदिरापानैर्विपपिपीलिकादिभिर्भक्षितैर्मूर्तानामपिधृतिस्मृति—मेघा-  
दीनामात्मगुणानामुपघातो जायते, “मेघां पिपीलिका हन्ति” इत्यादि-  
वचनात्, तथा पयःशर्कराघृतादिमिश्रानुग्रहः क्रियते तथैवामूर्तस्यात्मनो मूर्तेन  
कर्मणाऽनुग्रहोपघातो जायेते। इदं च जीवस्यामूर्तत्वमङ्गीकृत्य समाहितम्,  
न ह्येकान्तरूपेणाऽमूर्त एवात्मा किन्तु बह्वययोगोलकृत् क्षीरनीरवच कर्मणशरीरा  
मेदरूपता प्राप्तः कथञ्चित्मूर्तोऽपीति। तस्य मूर्तेन कर्मणानुग्रहोपघातो भवत  
एव। आकाशस्य तु तौ न भवतः, तस्यैकान्तरूपेणामूर्तत्वादचेतनत्वाच्च।

समाधान—सुनिये जैसे—मदिरा का पान करने से, विषमक्षण से और कीड़ी  
आदि के खाये जाने से अमूर्त धैर्य, स्मृति और बुद्धि आदि आत्मिक गुणों का उपघात  
होता है, “मेघां पिपीलिका हन्ति” इत्यादि वचन से, तथा दूध, शर्करा और घृत  
आदि से अनुग्रह होता है, उसी प्रकार अमूर्त आत्मा का मूर्त कर्म द्वारा अनुग्रह और  
उपघात होता है। जीव को अमूर्त अङ्गीकार करके यह समाधान किया है, किन्तु जीव  
एकान्तरूप से अमूर्त नहीं है। क्षीर—नीर को तरह अथवा अग्नि और लोहे के गोले की  
तरह आत्मा कर्मणशरीर से कथञ्चित् अभिन्न है, अत एव मूर्त भी है। कर्म-  
लिप्त आत्मा मूर्त होने के कारण मूर्ते कर्मों से उसका अनुग्रह और उपघात होता ही है।  
हैं। आकाश का अनुग्रह और उपघात नहीं होता, क्यों कि वह एकान्तत अमूर्त और  
अचेतन है।

समाधान—सालणो! जेम मदिरातु पान करवाथी, विषमक्षणुथी, अथवा कीडी  
आदि घेटमा भाई जवामां आववाथी अमूर्त धैर्यं, अने बुद्धि आदि आध्यात्मिक  
शुद्धानो उपघात थाय छे “मेघा पिपीलिका हन्ति” इत्यादि वचनेथी, तथा दूध,  
साकर अने घी आदिथी अनुग्रह थाय छे, ते प्रमाणे अमूर्त आत्मानो मूर्त कर्म  
अनुग्रह अने उपघात थाय छे

एवने अमूर्त अङ्गीकार करीने आ समाधान कर्तुं छे, परन्तु एव ऐकान्तथी  
अमूर्त नथी क्षीर—नीरनी प्रमाणे अथवा अग्नि अने लोहाना गोणानी भाइक  
आत्मा कर्मणशरीरथी कथञ्चित् अभिन्न छे आ कारणुथी मूर्त पणु छे कर्मलिप्त  
आत्मा मूर्त होवाना कारणे मूर्त कर्मोथी तेनो अनुग्रह अने उपघात थायज छे.  
हा। आकाशने अनुग्रह अने उपघात थतो नथी, कारणे के ते ऐकान्तथी अमूर्त  
अने अचेतन छे.

(૫) કર્મણોઽનાદિત્વમ્—

મનાદિ' કર્મણઃ પ્રવાહઃ । શરીરકર્મણોઃ પરસ્પરં કાર્યકારણ માણાત્, ધીમાદુરુત્ । યથા ધીમાદુરુતો જાયત, અદુરાદપિ ક્રમેણ ધીમ્નુપજાયતે । एष शरीरात् कर्म जायते कर्मवस्तु शरीरमित्यथ पुनः पुनरपि परस्परमनादिकास्तः कार्यकारणभाषसम्प्रापोऽस्ति । इह ययो परस्परं कार्यकारणभाषस्तयोरनादि प्रवाहो दृश्यते यथा धीमादुરुतयोः, यथा वा कुकुटाण्डयोः, तथा शरीरकर्मणो- रनादिप्रवाह इति ।

(૫) કર્મો કા અનાદિપત્ન—

કર્મો કો પરસ્પર અનાદિકાલીન છે, જ્યાં કિ શરીર ઓર કર્મ કા પરસ્પર કાર્ય-કારણમાત્ર છે, એવે ધીમ્નુ ઓર અદુરુ કા । તાત્પર્ય હે કિ એવે ધીમ્નુ સે અદુરુ ઉત્પન્ન હોજા હ, ઓર અદુરુ સે કર્મણઃ ધીમ્નુ કો ઉત્પત્તિ હોતી છે, હસી પ્રકાર શરીર સે કર્મ ઓર કર્મ સે શરીર ઉત્પન્ન હોજા હે । યહ પારસ્પરિક કાર્યકારણમાત્ર અનાદિ કાલ સે વજ્ર માણા હે । કિન લો પદ્યલો મે પરસ્પર કાર્ય-કારણમાત્ર હોજા હે ઊનકા પ્રવાહ અનાદિકાલીન દેખા માણા છે, એવે પૂર્વોક્ત ધીમ્નુ ઓર અદુરુ કા અથવા મુર્ગી ઓર બગ્ડે કા । હસ પ્રકાર શરીર ઓર કર્મ કા પ્રવાહ અનાદિકાલીન હે ।

(૫) કર્મોનુ અનાદિત્વમ્—

કર્મોની પરપરા અનાદિકાલીન છે કારણ કે-શરીર અને કર્મોની પરસ્પર કાર્ય કારણમાત્ર છે, એવી રીતે ધીમ્નુ અને અદુરુનો. તાત્પર્ય એ છે કે-એવી રીતે ધીમ્નુની અદુરુ ઉત્પન્ન થાય છે અને અદુરુથી કર્મણઃ (કર્મ-કર્મ) ધીમ્નુની ઉત્પત્તિ થાય છે તે પ્રમાણે શરીરથી કર્મ અને કર્મથી શરીર ઉત્પન્ન થાય છે આ પરસ્પરનો કાર્ય-કારણ માત્ર અનાદિ કાલીની વ્યાખ્યા આવે છે 7 એ પદ્યલોમા પરસ્પર કાર્ય-કારણમાત્ર હોય છે તેનો પ્રવાહ અનાદિકાલીન બેવામાં આવે છે એવી રીતે પૂર્વ કહેલ ધીમ્નુ અને અદુરુનો, અથવા અરથી અને ઉલનો એ પ્રમાણે શરીર અને કર્મોની પ્રવાહ અનાદિકાલીન છે

## (६) अकर्मवादिमतनिराकरणम्—

यः पुनरदृष्टं कर्म नास्तीति मन्यते स च नास्तिकः प्रष्टव्यः—अयम-  
दृष्टाभावः किम् अप्रत्यक्षत्वात्, विचाराक्षमत्वात्, साधकाभावाद् वा मन्यसे ?

अप्रत्यक्षत्वान्नादृष्टाभावः सिध्यति, यतस्तत्र यदप्रत्यक्षं तन्नास्तीति  
स्वीकारे त्वदीयपितामहादेरप्यभावः स्यात्, तस्य त्वज्जन्मतः पूर्वमेवातीतत्वेन  
तवाप्रत्यक्षत्वात्। तथा च भवन्मते पितामहादेरतीतकालिकसत्ताया अभावेन  
भवतोऽपि सत्ता कथमुपपद्येत ? ।

## (६) अकर्मवादी के मत का निराकरण—

जो नास्तिक यह मानता है कि—अदृष्ट कर्म का सद्भाव नहीं है  
उससे पूछना चाहिए कि—तुम अदृष्ट के अभाव को क्यों मानते हो ? प्रत्यक्ष न होने से,  
विचार को सहन न करने से अर्थात् विचारके योग्य नहीं होने से, या साधक प्रमाणों  
का अभाव होने से अदृष्ट का अभाव कहते हो ?

प्रत्यक्ष न होने मात्र से अदृष्ट का अभाव सिद्ध नहीं हो सकता। जो  
तुम्हें प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता वह होता ही नहीं है, ऐसा मान लिया जाय तो  
तुम्हारे पितामह आदि का भी अभाव हो जायगा। वह तुम्हारे जन्म से पहले  
ही गुजर चुके हैं, अतः तुम्हें प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दे सकते। ऐसी अवस्था में  
तुम्हारे पितामह आदि की भूतकालीन सत्ता का अभाव होजाने के कारण तुम्हारी सत्ता भी  
खतरे में पड़ जायगी।

## (६) अकर्मवादीना मतनु निराकरणम्—

जो नास्तिक अब्बु माने छे के—अदृष्ट कर्मनो सद्भाव (अस्तित्व) नथी, तेमने  
पूछवुं जेथ अब्बु के—तमे अदृष्टनो अभाव शा भाटे माने छे ? प्रत्यक्ष नही होवाथी, विचारने  
सहन नही करवाथी अथोत्—विचारवायोग्य नहि होवाथी, अथवा साधक प्रमाणनो  
अभाव होवाथी अदृष्टनो अभाव कडो छे ?

प्रत्यक्ष नही होवा मात्रथी अदृष्टनो अभाव सिद्ध थथ शकतो नथी, जे वस्तु  
तमने प्रत्यक्ष जेवामा न आवे ते वस्तु होयज नही, जे प्रमाणे जे मानी जेशे  
तो तमारा पितामह (आपनो आप) आदिनो अभाव थथ जेशे, कारण के ते तमारा  
जन्मता पडेदाज गुजरी गया छे तेथी तमने ते प्रत्यक्ष जेवामा आवता नथी,  
जेवी अवस्थासा तमारा पितामह आदिनी भूतकालीन सत्तानो अभाव थथ जवाथी  
तमारी सत्ता पथु अतरामा (भयमा) पडी जेशे.



अथ सर्वप्रमातृणां यदप्रत्यक्षं तन्मास्तीत्यपि न संभवति । यतः सर्वं मतीन्द्रियं वस्तु सर्वप्रमातृणां प्रत्यक्षं न भवति, तादृशज्ञानक्षत्तरमावात् । अस्मा मिसु समस्तमावावमासन्भास्करः सर्वज्ञः स्वीक्रियते ।

विचाराऽभमत्वमपि न युक्तं, कर्कश(दुर्धर्य)वर्कैस्त्वर्क्यमानस्य कर्म्याः सन्नावर्तमवात् ।

सायकामावादपि नादृष्टामावा, पूर्वोक्तागमात्तुमानयोस्तत्साधकयोः सत्त्वात् । यथा च-शुभः पुण्यस्य, अशुभः पापस्यत्पागम । शुभयोगः पुण्यस्य, अशुभयोगः पापस्य कारणमित्यर्थः ।

अथ कहा जाय कि एक-दो के अप्रत्यक्ष होने से किसीका अभाव नहीं होता वस्तु जो वस्तु सभी के अप्रत्यक्ष है, उसका अभाव होता है । यह कबन भी ठीक नहीं है, क्योंकि सब मतीन्द्रिय वस्तुएँ सब प्रमातृओं के प्रत्यक्ष नहीं होतीं, इसका कारण विशिष्ट ज्ञानशक्ति का अभाव है । मगर हम अंग ता समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने में सर्व के समान सर्वज्ञ स्वीकार करते हैं ।

अदृष्ट, विचार को सहन नहीं करता अर्थात् विचारने के योग्य नहीं है, यह कबन भी युक्त नहीं, कठोर सफ़ा विचार करने से कर्म का अस्तित्व सिद्ध हो ही जाता है ।

सायक प्रमाणों का अभाव होने से कर्म का अभाव बचसाना भी ठीक नहीं, क्योंकि पूर्वोक्त आगम और अनुमान प्रमाण उसका सत्त्वाव सिद्ध करते हैं । 'शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य' यह आगमप्रमाण है । अर्थात् शुभयोग पुण्य का और अशुभ योग पाप का कारण होता है ।

अथवा ठहरेणो के को-मिना अप्रत्यक्ष होवाधी ठाईनेो अभाव बतेो नहीं परन्तु ने वस्तु सर्वने अप्रत्यक्ष छे तेनेो अभाव होय छे कोम ठहरेणु ते पक्ष डीठ नहीं, अरवु के सव' मतीन्द्रिय वस्तुमेो प्रमातृमेोने प्रत्यक्ष भती नहीं तेनु अरवु विशिष्ट ज्ञानशक्तिनेो अभाव छे अथवा अमे तो समस्त पदार्थनेो प्रकाशित करवना सर्वनेो समान सर्वज्ञनेो स्वीकार करीये छीजे ।

अदृष्ट विचारने सहन करवा नहीं अर्थात् विचारवा योग्य नहीं, कोम ठहरेणु ते पक्ष युक्त नहीं, कठिन तर्कें आश विचार करवाधी कर्मनु अस्तित्व सिद्ध यथ न अर्थ छे ।

सायक प्रमाणोंको अभाव होवाधी कर्मनेो अभाव अत्पाववेो ते पक्ष डीठ नहीं, अरवु के पूर्वोक्त आगम अने अनुमान प्रत्यक्ष तेनेो सद्भाव (अस्तित्व-होवापत्) सिद्ध करे छे । शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य' को आगमप्रमाण छे, अर्थात् शुभ योग पुण्य अशुभ योग पापनु अरवु होय छे ।

कार्यविशेषेण कारणस्यानुमानं भवति यथा कार्यविशेषः सकारणकः,  
कार्यत्वात्, कुम्भवत् । उक्तञ्च—

“ तुल्याकृत्योश्च यमयो,—दृश्यते महदन्तरम् ।

चारित्र-वीर्य-विज्ञान,—वैराग्या-रोग्य-संपदाम् ” ॥१॥ इति ।

अदृष्टरूपकारणमन्तरेणेद महदन्तरं न सम्भवति, तस्मादवश्यं स्वी-  
करणीयं कर्म ।

### (७) बन्धस्वरूपनिरूपणम्—

अत्र बन्धशब्देन भावबन्धो गृह्यते, न तु निगडादिवन्धरूपो द्रव्यबन्धः ।  
बन्धनं बन्धः । कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धानामात्मप्रदेशानां च परस्परं क्षीर-

कार्यविशेष से कारण का अनुमान होता है । जैसे—इस कार्य का कोई कारण है  
क्यों कि कार्य है, जैसे—घट, कहा भी है—

“समान आकृति वाले यमल (जोड़ली सन्तान) में चारित्र, वीर्य, विज्ञान, वैराग्य,  
और सम्पत्ति का महान् अन्तर दिखाई देता है ” ॥ १ ॥

अदृष्टरूप कारण के बिना यह महान् अन्तर नहीं हो सकता, अत एव कर्म अवश्य  
स्वीकार करना चाहिए ।

### (७) बन्ध के स्वरूपका निरूपणम्—

बन्ध-शब्द से यहाँ भावबन्ध का ग्रहण करना चाहिए । वेडी आदि द्रव्यबन्धका  
नहीं । कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्धों का और आत्मप्रदेशों का आपस में दूष

कार्य-विशेषधी कारणनु अनुमान थाय छे जेवी रीते आ कार्यनु कोछि कारण  
छे, कारण के कार्य छे, जेवी रीते घट. कहु पणु छे—

‘समान आकृति वाणा यमल-जोड़ली सन्तानमा चारित्र, वीर्य, विज्ञान, वैराग्य,  
आशाग्य अने सम्पत्तिनु महान् अन्तर जेवामा आवे छे ” ॥१॥

अदृष्टरूप कारण बिना आ महान् अन्त कोछि शके नहि, जे कारणधी कर्मनो  
अवश्य स्वीकार करी लेवे जेछे

### (७) अधस्वरूपनु निरूपणम्—

अध-शब्दधी अहि भाव-अधनु अहणु करवु जेछे, जेडी आदि द्रव्यअधनु  
नहि, कर्मवर्गणाने योग्य पुद्गलस्कन्धोनो अने आत्म-प्रदेशोनो परस्पर दूष अने

नीरवत् सम्बन्धो वाचः । यद्वा-वप्यते-अस्वातन्त्र्यमापद्यते आत्मा येन, सम्बन्धः ।  
 वा नावरणीयाद्यष्टविधकर्मपुद्गलानामवस्थानं हि क्षीयन्त्याऽनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्य-  
 स्मृत्यामर्ष्यमतिबन्धकतया स्वातन्त्र्यविधातकं भवति ।

यद्यपि निश्चयनयेन रागद्वेषरहितोऽप्यमात्मा, तथाप्यसौ व्यवहारमयेन  
 रागद्वेषरूपमात्रकर्मणां ज्ञानावरणीयादिद्रव्यकर्मणां च कर्ता भवति । आत्मसंलग्न  
 धीरावगाहनक्षेत्रास्थितकर्मवर्णायोग्यपुद्गलस्वरूपाः स्वकीयोपादानकारणवृत्तयेव  
 कर्मरूपामवस्थां प्राप्नुवन्ति । ते च कर्मपुद्गला आत्मप्रदेशैः सह परस्पर  
 एकक्षेत्रावगाहरूपं बन्धं धीरनीरवत् प्राप्नोति । यथा समुद्गीयमानानि रज्ज्वांसि

बौर पानी की तरह सम्बन्ध हो जाना बन्ध है । अरुमा-बौर किस के द्वारा बौपा  
 वाय-पराधीन किया वाय वह बन्ध है । ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की स्थिति,  
 धीर के अन्त ज्ञान दर्शन सुख और वीर्यरूप सामर्थ्य में बाधक होने के कारण  
 स्वतन्त्रता का घात करने वाली है ।

यद्यपि निश्चयनय से आत्मा राग-द्वेष से रहित है, किन्तु व्यवहारम से  
 राग-द्वेषरूप मात्रकर्मों का तथा ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मों का कर्ता है । जिस आकाश-  
 क्षेत्र में आत्मा से संबद्ध शरीर है, इसी आकाशक्षेत्र में स्थित कर्मवर्णा के योग्य  
 पुद्गलस्वरूप, अपनी उपादानकारण-शक्ति से ही कर्मरूप अवस्था को प्राप्त करते हैं । वे  
 कर्मपुद्गल आत्मप्रदेशों के साथ परस्पर एकक्षेत्रावगाहरूप बन्ध को धीर-नीर की नाई  
 प्राप्त करते हैं । जैसे-उड़ती हुई रज रेश से निकले घड़े आदि पर चिपक जाती है,

पाष्णीनी प्रभाक्षे सख्ये च अधो ज्योते ते अधो छे आत्मा-एव जेना दास अधोर्ध  
 वाय-पराधीन अधो अधो ते अधो छे ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की स्थिति, एवना  
 अन्त ज्ञान, दर्शन सुख जने वीर्यरूप सामर्थ्यमां बाधक होवना कारणे स्वत  
 त्ताने घात करवा वाली छे.

जे के निश्चयनयधी आत्मा राग-द्वेषधी रहित छे परन्तु व्यवहारमधी राग-  
 द्वेषरूप मात्रकर्मों, तथा ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मों का कर्ता छे जे आकाशक्षेत्रमां  
 आत्माधी संबद्ध शरीर छे ते आकाशक्षेत्रमां स्थित (रहैछे) कर्म-वर्णाना योग्य  
 पुद्गलस्वरूप उपादान कारण-शक्तिधी जे कर्मरूप अवस्था प्राप्त करे छे  
 ते कर्मपुद्गल आत्मप्रदेशेनी साथ परस्पर एकक्षेत्रावगाहरूप बन्धने धीर-नीरना  
 नाय प्रभाक्षे प्राप्त थाव छे जेनी रीते उड़ती रज रेश तेकरा चिपका घड़ा आदिने

તૈલસ્નિગ્ધે ઘટાદૌ સંશ્લિષ્ટાનિ ભવન્તિ, તથા રાગદ્વેષરૂપતૈલસ્નિગ્ધમલિનાત્મ-  
પ્રદેશેષુ કર્મવર્ગણાયોગ્યપુદ્ગલાઃ સ્વકીયોપાદાનશક્ત્યા જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મરૂપા-  
મવસ્થાં પ્રાપ્ય સંશ્લિષ્ટા ભવન્તિ ।

પરમાણુરૂપા દ્વિપ્રદેશિપશ્ચૃતિરકંઠ્યરૂપાશ્ચ પુદ્ગલા ઔદારિક-વૈક્રિયા-  
-ઽઽહારક-તૈજસ-ભાષા-શ્વાસોચ્છ્વાસ-મનઃ-કાર્મણ-મેદાદપ્ટવિધાઃ । તત્ર કર્મ-  
વર્ગણાપુદ્ગલા અપિ સમસ્તલોકં વ્યાપ્ય વર્તન્તે, યત્ર સંસારિણાં શરીરાણિ  
સન્તિ, તત્રાપિ તદ્વદ્ધિશ્ચાપિ સર્વત્ર તે વર્તન્તે, તત્ર કર્મયોગ્યપુદ્ગલા આત્મના પરિ-  
ગૃહીતાઃ કર્મરૂપેણ પરિણતા ભવન્તિ ।

રાગદ્વેષપરિણત્યાઽઽર્દ્રીકૃતસ્યાત્મનો મનોવાક્યકાયરૂપકરણસાહાય્યેન

उसीप्रकार राग-द्वेषरूपी तेल से चिकने मलिन आत्मप्रदेशों में, कर्मवर्गणा के योग्य  
पुद्गल, अपनी-अपनी उपादानशक्ति से ज्ञानावरण आदि कर्म-रूप अवस्था को प्राप्त कर के  
चिपक जाते हैं ।

પરમાણુરૂપ ઔર દ્વિપ્રદેશી વૌરહ સ્કન્ધરૂપ પુદ્ગલ ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક,  
તૈજસ, ભાષા, શ્વાસોચ્છ્વાસ, મન ઔર કાર્મણ કે મેદ સે આઠ પ્રકાર કે હોતે હૈં । ઇન મેં  
સે કાર્મણવર્ગણા કે પુદ્ગલ મી સમ્પૂર્ણ લોક મેં વ્યાપ્ત હૈ । જહાં સસારી જીવોં કે શરીર હૈ,  
વહા મી હૈ, ઔર વાહર મી સર્વત્ર હૈ । યે કર્મયોગ્ય પુદ્ગલ આત્માદ્વારા જવ ગ્રહણ ક્રિયે જાતે  
હૈ તવ કર્મરૂપ મે પરિણત હો જાતે હૈ ।

રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણતિ સે યુક્ત આત્મા કા, મન, વચન, કાય, કી સહાયતા સે

ચોટી બંધ છે, તે પ્રમાણે રાગ-દ્વેષ રૂપી તેલથી ચિકણા અને મલિન આત્મપ્રદેશોમા  
કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલ પોત-પોતાની ઉપાદાનશક્તિથી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ-રૂપ  
અવસ્થા પ્રાપ્ત કરીને ચોટી બંધ છે

પરમાણુરૂપ અને દ્વિ-પ્રદેશી વગેરે સ્કન્ધરૂપ પુદ્ગલ ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક  
તૈજસ, ભાષા, શ્વાસોચ્છ્વાસ, મન અને કાર્મણના લેહથી આઠ પ્રકારના હોય છે તેમાંથી  
કાર્મણવર્ગણાના પુદ્ગલ પણ સંપૂર્ણ થોડકમા વ્યાપ્ત છે ન્યા સસારી જીવોના શરીર  
છે ત્યા પણ છે અને બહાર સર્વત્ર પણ છે તે કર્મયોગ્ય પુદ્ગલ આત્માદ્વારા  
ન્યારે ગ્રહણ કરવામા આવે છે ત્યારે તે કર્મરૂપમા પરિણત થઈ બંધ છે

રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણતિયુક્ત આત્માની મન, વચન અને કાયની સહાયતાથી

वीर्यगुणपरिणामात्मिका शुमान्नुमक्रिया भवति । इयं क्रिया चात्मनः प्रदेशानां परिस्पन्दः, कम्पनं, व्यापारो, योग इति बोध्यते । इयमेव मनोवाक्काययोग इति च कथ्यते । इयमात्मनो ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मसम्बन्धरूपं बन्धे हेतुव ।

आत्मन शुमान्नुमक्रियायां सत्यामात्मसङ्गनानादिकार्षणशरीरेषा र्माज्जन्तानन्तप्रदेशिस्त्वरूपांश्चतुःस्पर्शान् कर्मयोग्यपुद्गलानादाय कार्षणशरीर तया परिभ्रमयति । आत्मसंस्पर्शनं यदमादि कार्षणशरीरं, तदि आत्मैक्यात् कर्म योग्यपुद्गलानां प्रारब्धे स्वाधीनकरणे स्वस्मिन्नेकत्वपरिणामकरणे च समर्थं भवति । अनादिकार्षणशरीरसम्बन्धादेव संसारी जीवो मूर्तोऽस्ति । मूर्तत्वादेव च तस्य पौद्गलिककर्मसम्बन्धो भवति ।

वीर्यगुण के परिणामरूप शुमान्नुम क्रिया होती है । इस क्रिया को अत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन, कम्पन व्यापार या योग कहते हैं । यही मन वचन और काय का योग कहलाता है । यही क्रिया ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के बन्ध का कारण है ।

आत्मा को बन्ध शुभ या अशुभ क्रिया होती है तो आत्मा के साथ पहले से बंध हुए कार्षणशरीर के द्वारा आत्मा अन्तानन्तप्रदेशी-स्वरूपको चोत्सर्षी कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण कर के कार्षणशरीर के रूप में परिणत करता है । अत्मा से सम्बद्ध अनादिकालीन कार्षणशरीर अत्मा के साथ एकमेक होने के कारण कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण करने में, अपने अधीन करने में और अपने साथ एकमेक करने में समर्थ होता है । अनादिकालीन कार्षण शरीर के सम्बन्ध से ही संसारी जीव मूर्त है, और मूर्त होने के कारण ही उसका पौद्गलिक कर्मों के साथ सम्बन्ध होता है ।

वीर्यशुभ्रान् परिस्पन्दरूपं शुभ्रान्शुभ्र क्रिया वाच्ये ते द्विषाने आत्मान्ना प्रदेशान् परिस्पन्दनं, कम्पनं, व्यापारं व्यथनां योगं कहेते आत्मा मन वचन अने कायाने योगं कहेवाच्ये ते आ क्रिया ज्ञानावरणं आदि आठ कर्मोना जन्तुं कारणं ते

आत्मान्नी अन्तरे शुभ्र व्यथना अशुभ्र क्रिया वाच्ये ते आत्मान्नी साथे प्रहेलाशी व्यथिता कामव्यथरीरद्वारा आत्मा अन्तानन्तप्रदेशी-स्वरूपं, चोत्सर्षी कर्मयोग्य पुद्गलौने प्रहेल्य करीने कामव्यथरीरना इयमां परिणत करे ते आत्माशी सज्जद अनादिकालीन कार्षणशरीर आत्मान्नी साथे ऐक्यिक होवना कारणे कर्मयोग्य पुद्गलौने प्रहेल्य इत्यामां पिताना अधीन इत्यामां अने पितान्नी साथे ऐक्यिक करी देवामां समर्थं वाच्ये ते अनादिकालीन कामव्यथरीरना सज्जदशी च संसारी एव मूर्त होवना कारणे च तेना पौद्गलिक कर्मोनी साथे सम्बन्ध वाच्ये ते ।

યથા દીપક ઝમ્મગુણયોગાદ્ વર્તિદ્વારા તૈલમાદાય જ્વાલારૂપેણ પરિણમ-  
યતિ તથા રાગદ્વેષોષ્મગુણસમ્વન્ધાન્મનોવાગાદિયોગવર્ત્યાઽઽત્મદીપઃ કર્મયોગ્યપુદ્ગલ-  
સ્કન્ધતૈલમાદાય કર્મજ્વાલારૂપેણ પરિણતં કરોતિ । મનોવાગાદિરૂપકરણસંયોગાદા-  
ત્મનો વીર્યપરિણામો ભવતિ, અતો મનોવાગાદિવ્યાપારો યોગશબ્દેનોચ્યતે । યથા મૃન્મય-  
વટસ્યાગ્નિસંયોગાદ્ રક્તત્વાદિપરિણતિર્ઘટસ્યૈવ ભવતિ તથા મનોવાગાદિસંયોગાદ્  
શુભાશુભક્રિયારૂપા વીર્યપરિણતિરાત્મન એવ ભવતિ, ન તુ પુદ્ગલરૂપમનોવાગાદેઃ ।

યથા ચ તૈલાભ્યક્તે શરીરે જલાદેં વલ્લે વા ધૂલિરાશ્લિષ્ટા ભવતિ, તથા

જેસે—દીપક ઝમ્માગુણ કે કારણ વત્તીદ્વારા તૈલ ગ્રહણ કર કે જ્વાલા કે રૂપ મેં  
પરિણત કરતા હૈ, ઉસી પ્રકાર રાગ—દ્વેષ રૂપ ઝમ્માગુણકે સમ્વન્ધ સે મન, વચન આદિ યોગો  
કી વત્તી દ્વારા આત્મરૂપી દીપક કર્મયોગ્યપુદ્ગલસ્કન્ધરૂપ તૈલ કો ગ્રહણ કર કે કર્મરૂપ  
જ્વાલા મેં પરિણત કર લેતા હૈ । મન, વચન ઓર કાયરૂપ કરણ કે દ્વારા આત્મા કા વીર્ય-  
રૂપ પરિણમન હોતા હૈ । ઈસીલિએ મન, વચન, આદિ કા વ્યાપાર યોગ કહલાતા હૈ । જેસે  
—અગ્નિ કે સયોગ સે મિટ્ટી કે ઘડે કી લઠાઈ આદિરૂપ પરિણતિ હોતી હૈ, ઓર વહ ઘડે કી  
હી કહલાતી હૈ, ઉસીપ્રકાર મન, વચન આદિ કે સયોગ સે શુભા—શુભક્રિયારૂપ વીર્ય કી  
પરિણતિ આત્મા કી હી હોતી હૈ, પુદ્ગલરૂપ મન, વચન આદિ કી નહી ।

જેસે તૈલ સે લિપ્ત શરીર પર યા મીંગે હુએ વલ્લ પર ધૂલ લગ જાતી હૈ,

જેવી રીતે દીપક ઝમ્માશુભના કારણે ખત્તીદ્વારા તેલને ગ્રહણ કરીને જ્વાળાના  
રૂપમા પરિણત કરે છે તે પ્રમાણે રાગ—દ્વેષરૂપ ઝમ્માશુભના સમ્વન્ધથી મન  
વચન આદિ યોગોની ખત્તી દ્વારા આત્મારૂપી દીપક કર્મયોગ્ય—પુદ્ગલસ્કન્ધરૂપ  
તેલને ગ્રહણ કરીને કર્મરૂપ જ્વાલામા પરિણત કરી લે છે મન, વચન અને  
કાયારૂપ કરણદ્વારા આત્માને વીર્યરૂપ પરિણમન થાય છે, એ કારણથી મન, વચન  
આદિનો વ્યાપાર યોગ કહેવાય છે જેવી રીતે અગ્નિના સ યોગથી માટીના ઘડાની જ  
લાલી (સાતાશપણ) રૂપ પરિણતિ થાય છે, અને તે ઘડાની જ કહેવાય છે. તે પ્રમાણે  
મન, વચન આદિના સ યોગથી શુભા—શુભક્રિયારૂપ વીર્યની પરિણતિ આત્માની જ  
થાય છે પુદ્ગલરૂપ મન, વચન આદિની નહિ

જેવી રીતે તેલથી લિપ્ત શરીર પર, અથવા ભિન્નએલા વલ્લ પર  
ધૂળ લાગી નય છે. તે પ્રમાણે રાગ—દ્વેષરૂપી તેલથી યુક્ત આત્માના કાર્મણશરીરરૂપ

रागादिरूपवैश्याभ्यस्तस्यात्मनः कर्मणश्चरीरपरिणामो नवीनकर्मप्रवेशे योग्यतां  
संपादयति । आत्मश्चरीरयोरेक्ये सति सम्यग्ज्ञानामावरूपानामोग्दीर्यतः  
कर्मबन्धो भवति । इत्थं कर्मवर्गायोग्यपुद्गलानां ज्ञानावरणीयादिकर्मवत्तया  
परिणतानां सकृपायस्यात्मनः सकृत्प्रदेशेषु सोऽस्तीमाधो बन्ध इति बोध्यम् ।

(८) बन्धकारणनिरूपणम्—

बन्धस्य पञ्च साधारणकारणानि सिध्यात्वाऽविरति प्रमाद-रूपाय-योग-  
भेदात् ।

तत्रातएवे तस्मात्प्रवृत्तयोरूपो विपरीतावधानो मोहकर्मोदयजनित आत्म-  
परिणामो सिध्यात्तम् । यद्वा-कुदेव-कुगुरु-कुधर्मोऽपिठविरूपमत्स्वायम्भदानं

उसी प्रकार राग-द्वेषरूपी तेषु से मुक्त आत्मा का कर्मणश्चरीररूप परिणाम नवीन कर्मों को  
ग्रहण करने में योग्य हो जाता है । आत्मा और शरीर के एकमेक होने पर सम्यग्ज्ञान के  
अभावरूप अज्ञानोत्पत्ति से कर्मबन्ध होता है । इस प्रकार ज्ञानावरण अर्थात् कर्मरूप में  
परिणत कर्मणश्चरीरानों के योग्य पुद्गल का कृपायमुक्त-मरणा के समस्त प्रदेशों में एकमेक हो  
जाना बन्ध है ।

(९) बन्धके कारण-

बन्ध के साधारण कारण पाँच हैं—(१) सिध्यात्वा, (२) अविरति, (३) प्रमाद,  
(४) कषाय, और (५) योग ।

अतएव को तत्र समस्तमेक मोहनीयकर्मबन्ध विपरीतज्ञानरूप आत्मपरिणाम  
को सिध्यात्वा कहते हैं, अथवा कुदेव कुगुरु और कुधर्म में कृषिकरूप अतएव का

परिणाम नवीन कर्मों अर्थात् कर्मवर्गा योग्य पुद्गल अथवा तेषु आत्मा होने शरीराना  
को एकमेक अथवा अज्ञानोत्पत्ति अभावरूप अज्ञानोत्पत्ति वीर्यशील अभाव अथवा अथ

के प्रभावों ज्ञानावरण अर्थात् कर्मरूपों परिलुप्त कामजुवज्जुना योग्य  
पुद्गलानां कृपायमुक्त आत्मानां समस्त प्रदेशों में एकमेक अथवा अथवा तेषु अथवा

(८) अथवा कारण-

अथवा साधारण कारण पाँच हैं—(१) सिध्यात्वा, (२) अविरति, (३) प्रमाद,  
(४) कषाय और (५) योग

अतएवने तत्र समस्तमेक मोहनीयकर्मबन्ध विपरीतज्ञानरूप आत्म  
परिणामने सिध्यात्वा कहते हैं अथवा कुदेव कुगुरु और कुधर्मों अर्थात् कृषिकरूप अतएवनी

मिथ्यात्वम् १ । सावध्ययोगेषु प्रवृत्तिरविरतिः २ । सदुपयोगाभावः प्रमादः, मोक्षमार्गं प्रति शैथिल्यं वा प्रमाद ३ । कप्यते=पुनःपुनर्मर्जन्ममरणादिक्लेशोऽनुभूयते येन स कपायः, मोहनीयरुमोदयजनित आत्मपरिणतिविशेषः, यद्वा—कप्यते यत्र शारीररुमानसिकदुःखैः, स कपः—संसारः, तस्य आयः—प्राप्तिकारण कपायः=क्रोधादि ४ । युज्यते—आत्माऽनेनेति योगः=मनोवाक्कायव्यापाररूपः ५ । उक्तञ्च—

“पञ्च आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा—मिच्छत्तं १, अविरई २, पमाया ३, कसाया ४, जोगा ५” । (समत्रा० समवाय ५) ‘आसवदारा’ इति—आश्रवो बन्धकारणम् ।

श्रद्धान मिथ्यात्व कहलता है ? । सावध्य योगों में प्रवृत्ति करना अविरति है २ । सम्यक् उपयोग (यतना) का अभाव प्रमाद कहलता है, या मोक्षमार्ग के विषय में शिथिलता होना प्रमाद है ३ । जिस के द्वारा आत्मा कपा जाय अर्थात् वारवार जन्म—मरण का क्लेश भोगा जाय उसे कपाय कहते हैं । कपाय, मोहकर्म से उत्पन्न आत्मा की एक परिणति है । अथवा - जहाँ शारीरिक एवं मानसिक दुःखों से जीव कपा जाय (युक्त हो) उसे कप अर्थात् संसार कहते हैं और उस कप (संसार) की आय प्राप्ति जिस से हो वह कपाय कहलता है ४ । जिस से आत्मा व्याप्त हो, ऐसा मन, वचन और काय का व्यापार योग कहलता है ५ । कहा है—

“पञ्च आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कसाया, जोगा” । (समवायाङ्ग, समवाय ५) यहाँ ‘आसवदारा’ का अर्थ है—आश्रव के द्वार अर्थात् बन्धके कारण ।

श्रद्धा तेने मिथ्यात्व कडे छे (१) सावध्य योगोभा प्रवृत्ति करवी ते अविरति छे (२) सम्यक् उपयोगनो अभाव ते प्रमाद कडेवाय छे, अथवा मोक्षमार्गना विषयभा शिथिलता थवी ते प्रमाद छे (३) जेना द्वारा आत्मा कपाय अर्थात् वारवार जन्म मरणनो क्लेश भोगववाय तेने कपाय कडे छे कपाय, मोह कर्माथी उत्पन्न आत्मानी अेक परिणुति छे अथवा—ज्या शारीरिक अने मानसिक दुःखोथी एव कपाय अर्थात् पीडाय तेने कप अर्थात् संसार कडे छे, अने ते संसारनी आय—प्राप्ति जेनाथी डाय ते कपाय कडेवाय छे (४) जेनाथी आत्मा व्याप्त डाय जेवा मन, वचन अने कायाना व्यापार ते योग कडेवाय छे (५), कहुं छे के —

“पञ्च आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा—मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कसाया जोगा” (समवायाङ्ग, समवाय ५, ) अर्हि “आसवदारा” नो अर्थ अे छे के—आश्रवना द्वार, अर्थात् बंधना कारण



एषु पञ्चसु कारणेषु कषायः प्रथमम् । स च क्रोधमानमायालोभ-  
मेदास्तुर्विधः । कर्तृविधोऽप्ययं कषायो रागद्वेषान्तर्गत एवास्ति । उक्तम्—

“दोहि ठाणेहि पावकम्मा बंधति, संजहा-रागेण य, दोसेण य । रागे  
दुषिहे पण्णत्ते, संजहा-माया य सोमे य । दोसे दुषिहे पण्णत्ते, संजहा-कोहे य  
माणे य” (स्या० स्थान २ उ०)

अन्यस्तुर्विधं—प्रकृति-स्थित्य-अनुमान-प्रदेशमेदात् । उक्तम्—

“पउच्चिहे बंधे पण्णत्ते, संजहा-पगइधवे१, ठिइधवे२, अणुमावबंधे३,  
पएसबंधे४ ।” (समयापाह समवायध)

इन पांच कारणों में कषाय प्रथम है । क्रोध, मान, माया और लोभ के  
मेदसे यह चार प्रकार का है । कषाय के ये चारों मेद राग और द्वेष में ही वर्णित हो  
जाते हैं । कहा भी है—

“दो स्थानों से पाप कर्मों का कष होता है । वह इस प्रकार—राग से  
और द्वेष से । राग दो प्रकार का है—माया और लोभ । द्वेष भी दो प्रकार का है—क्रोध  
और मान” । (स्या० स्थान २ उ २)

कष चार प्रकार का है—(१) प्रकृति-कष, (२) स्थिति-कष, (३) अनुमान-कष,  
और (४) प्रदेश-कष । कहा भी है—

“कष चार प्रकार का कहा गया है वह इस प्रकार—(१) प्रकृति-कष, (२)  
स्थिति-कष (३) अनुमान-कष (४) प्रदेश-कष” । (सम स ४)

आ धाव्य कर्तव्योर्मा कषाय प्रधाने छे—शुच्ये छे क्रोध भज्ये, माया कर्ने  
दोषना दोषधी ते धार प्रकान्य छे, कषायना ते धार य दोष सज्ज-कर्ने द्वेषमा  
समाधि कष छे कर्णु छे केः—

ये स्थानोधी पापकर्मोनि लभ धार छे ते आ प्रभावे छे—सज्जधी कर्ने  
द्वेषधी धार ये प्रकान्यो छे—माया कर्ने दोष द्वेष पक्ष ये प्रकान्यो छे—क्रोध कर्ने  
मान” (स्या० स्थान २-ठि २)

लभ धार प्रकान्यो छे—(१) प्रकृति-लभ (२) स्थिति-लभ, (३) अनुमान-लभ  
(४) प्रदेश-लभ कर्णु पक्ष छे—

लभ धार प्रकान्यो छे (१) प्रकृति-लभ, (२) स्थिति-लभ, (३) अनुमान-लभ,  
(४) प्रदेश-लभ” (सम० सू ४)

तत्र प्रकृतिः—स्वभावः । आत्मपरिगृहीतकर्मपुद्गलानां तच्छक्तिरूपेण परिण-  
मनम् । यथा निम्बस्य तित्तलम्, गुडस्य मधुरत्वम् । प्रकृतिर्द्विविधा—मूलप्रकृतिः,  
उत्तरप्रकृतिश्च । मूलरूपः कर्मणः स्वभावो मूलप्रकृतिः । मूलप्रकृतिरष्टधा—ज्ञाना-  
वरणीय १—दर्शनावरणीय २—वेदनीय ३—मोहनीया ४—ऽऽयुष्य ५—नाम ६—गोत्रा ७—  
न्तराय ८—भेदात् । उक्तञ्च—

“ अट्ट कम्मपगडीओ पणत्ताओ, तंजहा-णाणावरणिज्जं १, दंसणावरणिज्जं २,  
वेयणिज्जं ३ मोहणिज्जं ४, आउय ५, नाम ६, गोयं ७, अतराह्यं ८ ” । ( प्रज्ञापना०  
पद-२१ उ. १ सू. २८८ )

प्रकृति अर्थात् स्वभाव । आत्मा के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मपुद्गलों में अमुक-  
अमुक प्रकार की शक्ति (स्वभाव) उत्पन्न हो जाना प्रकृतिबन्ध है । जैसे—नीम में कटुकता  
और गुड में मधुरता होती है ।

प्रकृति दो प्रकार की है—मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृति । कर्म का मूल स्वभाव  
मूलप्रकृति कहलाती है । मूलप्रकृति के आठ भेद हैं—(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय,  
(३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, और (८) अन्तराय ।  
कहा भी है—

“ आठ कर्मप्रकृतियां हैं, वे इस प्रकार—(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय,  
(३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयुष्य, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अन्तराय । ”  
( प्रज्ञा पद २१ उ १ सू २८८ )

प्रकृति अर्थात् स्वभाव,—आत्माद्वारा ग्रहण कियेला कर्मपुद्गलओमा अमुक-  
अमुक प्रकारनी शक्ति (स्वभाव) नु उत्पन्न थछ जनु ते प्रकृतिबन्ध छे जेवी रीते  
लीअडामा कडवाश अने गोणमा मधुरता होय छे

प्रकृति जे प्रकारनी छे— (१) मूलप्रकृति अने (२) उत्तरप्रकृति कर्मना मूल  
स्वभाव ते मूलप्रकृति कडेवाय छे ते मूल प्रकृतिना आठ भेद छे— (१) ज्ञानावरणीय,  
(२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र  
अने (८) अन्तराय कहुं छे के—

“ आठ कर्मप्रकृतियो छे, ते आ प्रमाणे—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय,  
मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अन्तराय ” ( प्रज्ञा पद २१ उ. १ सू. २८८ )

ज्ञानावरणीयं कर्म, जीवस्य ज्ञानगुणमाहणोति१ । दर्शनावरणीयं कर्म दर्शनगुणसू२ । वेदनीयकर्म जीवस्याभ्यासाभ्यगुण संरुपादि३ । मोहनीयकर्म जीवस्याविरतिं तत्स्थानमिच्छति च जनयति४ । मायुष्यकर्म जीवस्यामर्त्यं प्रतिहन्ति५ । नामकर्म जीवस्याऽमूर्तत्व प्रतिबध्नाति६ । गोत्रकर्म तस्यागुरुत्वाद्गुणं भ्याहन्ति७ । अन्तरायकर्म जीवस्यानन्तवीर्यगुणं स्मदि८ ।

यथा—गणादिमसितवृत्ताद्यो दुग्धरूपेण परिणता भवन्ति, माधुर्ये-  
स्वभावः सौम्यं जायते, स चैतावत्कालपर्यन्तस्यापीव स्थितिसमयमर्थादाऽपि  
जायते माधुर्यं तीक्ष्णमन्दमाणादिभिःश्रेयोऽपि भवति, तस्य दुग्धस्य पौष्टिक-

(१) ज्ञानावरणीय कर्म जीव के ज्ञानगुणको रोकता है, (२) दर्शनावरणीयकर्म दर्शनगुणको, (३) वेदनीयकर्म जीव के अभ्यासाभ्यगुण को रोकता है और (४) मोहनीय-  
कर्म जीव में अविरति और तत्त्व के प्रति मरुति उत्पन्न करता है। (५) मायुष्यकर्म जीव को  
अमर्त्या को रोकता है और (६) नामकर्म जीव के अमूर्तत्व गुण को रोकता है।  
(७) गोत्रकर्म अगुरु-रूपत्व गुण को मट्ट करता है और (८) अन्तरायकर्म जीव के अन्त-  
वीर्य का नाश करता है।

जैसे गायशारा साये हुए दूध जाति दूध रूप में परिणत होते हैं, और  
उन में मधुरता का स्वभाव भी साथ ही उत्पन्न हो जाता है। उस में अम्लक काल्पयन्त  
उत्पत्ते की स्थिति-मर्वादा पक्ष उत्पन्न हो जाती है, और मधुरता में तीक्ष्णता या मन्दता की  
विशेषता भी आजाती है। उस दूध का पौष्टिक परिणाम भी साथ ही उत्पन्न होता है।

(१) ज्ञानावरणीय कर्म अपनी ज्ञान-शुद्धि रोकता है, (२) दर्शनावरणीय  
कर्म दर्शनशुद्धि रोकता है (३) वेदनीय कर्म अपनी अभ्यासाभ्यगुण, शक्ति रोकता  
है (४) मोहनीय कर्म जीवमें अविरति होने तथाप्रति मरुति उत्पन्न करते हैं।  
(५) मायुष्य कर्म अपनी अमर्त्याने रोकता है (६) नाम-कर्म अपनी अमूर्तत्व शुद्धि  
रोकता है (७) गोत्र-कर्म अगुरुत्वात् शुद्धिने नाश करे है और (८) अन्तराय कर्म  
अपनी अन्तवीर्यने नाश करे है।

जैसी शीते जाये जापिहूँ वायु आदि रूप रूपमें परिणत जायते हैं और तैसी  
मधुरताको स्वभाव पक्ष साथ ही उत्पन्न जायते हैं तैसी अम्लककाल्पयन्त स्थिति  
रहेवाणी स्थिति-मर्वादा पक्ष उत्पन्न करे जायते हैं और मधुरतामें तीक्ष्णता अथवा  
मन्दताकी विशेषता पक्ष जाणी जायते हैं ते इसमें पौष्टिक परिणाम पक्ष साथ ही

परिणामश्चापि सहैव प्रादुर्भवति तथा जीवेन परिगृहीतानां कर्मवर्गणायोग्य-  
पुद्गलानां कर्मरूपेण परिणमने चतुर्विधा अंशा सहैव भवन्ति । त एवांशाः  
बन्धभेदाः प्रकृत्यादयः सन्ति ।

कणिकागुडघृतकटुकादिद्रव्याणामौषधमोदकरूपेण परिणमने सहैवा-  
नेकाकारपरिणामो भवति । यथा मोदको हि कश्चिद् वातपित्तहरणशीलः, कश्चिद्  
बुद्धिवर्धनः, कश्चित् संमोहकारी, कश्चिन्मारकः, इत्यनेकाकारेण परिणमते  
जीवसंयोगात्, तथा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानामात्मसम्बन्धात्कर्मरूपेण परिणामे  
कश्चित्कर्मपुद्गलः ज्ञानमावृणोति, कश्चिदर्शनमावृणोति; अपरः सुखदुःखानुभवं जनयती  
त्यादि योजनीयम् ।

इस प्रकार जीव द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मवर्गणा के योग्यपुद्गलका कर्मरूप परिणमन  
होने पर चार प्रकार के अंश उन में साथ ही उत्पन्न होते हैं । वही अंश बन्ध के प्रकृति  
आदि भेद कहलाते हैं ।

आटा, गुड, घी और कटुक आदि द्रव्यों से बने हुए लड्डू में एक साथ अनेक  
प्रकार के परिणमन होते हैं । कोई लड्डू वात-पित्त का नाशक होता है, कोई बुद्धिवर्धक  
होता है, कोई सम्मोहजनक होता है, और कोई घातक होता है, इस प्रकार जीव के संयोग से  
लड्डू अनेक आकारों में परिणत होता है । इसी प्रकार कर्मवर्गणा-योग्य पुद्गलों का आत्मा के  
निमित्त से कर्मरूप परिणमन होने पर कोई कर्म, ज्ञान को आच्छादित करता है, कोई  
दर्शनको कोई कर्म, सुख-दुःख का अनुभव कराता है । इत्यादि सब घटा लेना चाहिए ।

ઉત્પન્ન થાય છે એ પ્રમાણે જીવદ્વારા શ્રદ્ધ કરેલા કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલોતુ  
કર્મરૂપ પરિણમન થવાની સાથે ચાર પ્રકારના અંશ તેમા સાથે જ ઉત્પન્ન થાય છે  
તે અંશ, બંધના પ્રકૃતિ આદિ ભેદ કહેવાય છે

હોટ, ગોળ, ઘી અને કટુક આદિ દ્રવ્યો નાંખીને બનાવેલા લાડુમા એક સાથે  
અનેક પ્રકારતુ પરિણમન થાય છે, કોઈ લાડુ વાત-પિત્તનો નાશ કરનાર હોય છે કોઈ  
બુદ્ધિપૂર્વક હોય છે કોઈ સમોહ ઉત્પન્ન કરનાર હોય છે અને કોઈ ઘાતક હોય  
છે એ પ્રમાણે જીવના સંયોગથી લાડુ અનેક આકારોમા પરિણત થાય છે તે  
પ્રમાણે કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલોતુ આત્માના નિમિત્તથી કર્મરૂપ પરિણમન થાય ત્યારે  
કોઈ કર્મ જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરે છે કોઈ દર્શનને, કોઈ કર્મ સુખ-દુઃખનો અનુભવ  
કરાવે છે એ પ્રમાણે સર્વ બાબતમા ઘટાવી લેવું જોઈએ.

यथा वा—चातुर्हास्त्रिभ्यनिर्मितो मोदकः प्रकृत्या चातं हरति, पित्तोपशम-  
कद्रभ्यनिर्मितो मोदकः प्रकृत्या पित्तं नाशयति, कफापहारकद्रभ्यनिर्मितः कफं  
हरति । इत्येवं मोदकस्य नानाविधा प्रकृतिः । तस्यैव मोदकस्य स्थितिस्तु  
कस्यचिदेकदिनव्यापिनी, अपरस्य दिनद्वयस्यापिनी, अन्यस्य कस्यचिन्मासादि  
काल व्याप्य स्थितिर्भवति, एव परं लघुन्मोदकस्य विनाशात् । एवं मोदकस्यालु  
मात्रो मधुरकटुकपापादिक्रमः । रसस्तीव्रमन्दभावेन कस्यचिन्मोदकस्यैकागुणः,  
कस्यचित् द्विगुणः, कस्यचित् त्रिगुणो भवति । प्रदेशोऽपि मोदकस्य कस्यचिदेक-  
कर्षमितः, कस्यचित् द्विकर्षपरिमितः, कस्यचित्त्रिकर्षपरिमितो भवति ।

अथवा वैधे—वातहारक द्रव्यो से बना मोदक स्वभाव से वात का नाश करता है,  
पित्तका नाश करने वाले द्रव्यो से बना मोदक पित्तका नाश करता है, कफकारी द्रव्यो से बना  
मोदक कफको हर करता है, इस प्रकार मोदक को प्रकृति नाना प्रकार की है । कोई मोदक  
एकदिन तक ही ठहर सकता है, कोई दो दिन तक और कोई महिने भरतक ठहर सकता है,  
उसके पश्चात् मोदक में बह शक्ति नहीं रहती है । इसी प्रकार किसी मोदक का मधुर या  
कटुक रस तीन होता है किसी का मन्द होता है, किसी मोदक में एकगुण रस होता है,  
किसी में द्विगुण और किसी में तीन गुणा किसी मोदक का प्रदेशसमूह एक कर्ष  
परिमित होता है, किसीका दो कर्ष परिमित होता है, और किसीका तीन कर्ष परिमित  
होता है ।

अथवा—येन वायुनाशक द्रव्येण च अनेका वायु स्वभावधी वायुने नाश करे छे  
पित्तने शान्त करवा पाणा द्रव्येण च अनेका वायु पित्तने नाश करे छे, करे नाश करनात्  
द्रव्येण च अनेका वायु कर्षने हर करे छे जे प्रभावे वायुनी भृति क्षय—क्षय प्रभावेण  
छे, केछ वायु जेक दिनस सुधी रही शके छे केछ जे दिनस अने केछ महिना सुधी  
रही शके छे, ते पही वायुमां ते प्रथमना जेनी शक्ति रहेली नथी, जे प्रभावे केछ  
वायुने मधुर अथवा कटुक रस तीन होय छे केछने मर होय छे केछ वायुमां जेक  
शुष्क रस होय छे, केछमा द्विशुष्क अने केछमां त्रशु शुष्क रस होय छे केछ वायुना  
प्रदेशसमूह जेक कर्ष (जे तोला) परिमित होय छे केछमां जे कर्ष (चार तोला)  
परिमित होय छे, अने केछमा त्रशु कर्ष (७ तोला) परिमित होय छे

एवं कर्मणोऽपि कस्यचिद् ज्ञानावरणस्वभावा प्रकृतिः, अपरस्य दर्शना-  
वरणरूपा, कस्यचित् सम्यग्दर्शनादिविघातस्वभावा ।

कर्मणः स्थितिश्च कस्यचित् त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीरूपा, अपरस्य  
कस्यचित् कर्मणः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटीरूपेत्यादि । रसस्तु कस्यचित्  
कर्मणस्तीव्रः, कस्यचित्तीव्रतरः, कस्यचित्तीव्रतमः, कस्यचिन्मन्दः, कस्यचिन्म-  
न्दतर इत्यादि बोध्यम् ।

(१) प्रकृतिबन्धः—

॥ अष्टविध-मूलप्रकृतिबन्ध-लक्षणम्—

(१) ज्ञानस्य ( विशेषबोधस्य ) आवरणं कर्म ज्ञानावरणीयम् ।

इसी प्रकार किसी कर्म की ज्ञानको आच्छादित करने की प्रकृति है, किसीका दर्शन  
को ढँकने की है, किसी की सुख-दुःख का अनुभव कराने की प्रकृति है, और किसी की  
सम्यग्दर्शन का घात करने की है । किसी कर्म की तीस कोडाकोडी सागरोपमकी स्थिति है,  
किसी की सत्तर (७०) कोडाकोडी सागरोपम की है ।

इसी प्रकार किसी कर्म का रस तीव्र है, किसी का तीव्रतर है, किसी का तीव्रतम है ।  
किसी का रस मन्द है, किसी का मन्दतर है । इत्यादि समझ लेना चाहिए ।

(१) प्रकृतिबन्ध

(१) ज्ञान अर्थात् विशेष धर्मों के बाधको आच्छादित करने वाला कर्म ज्ञानावरण  
कहलाता है ।

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મની જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરવાની પ્રકૃતિ છે, કોઈની દર્શનને  
ઢાકી દેવાની છે, કોઈની સુખ-દુઃખનો અનુભવ કરાવવાની પ્રકૃતિ છે, અને કોઈની  
સમ્યગ્દર્શનનો ઘાત કરવાની પ્રકૃતિ છે.

કોઈ કર્મની ત્રીસ કોડાકોડી સાગરોપમની સ્થિતિ છે કોઈની સીતેર (૭૦)  
કોડાકોડી સાગરોપમની છે.

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મનો રસ તીવ્ર છે કોઈનો તીવ્રતર છે, અને કોઈનો  
તીવ્રતમ છે. કોઈનો રસ મદ છે, કોઈનો મદતર છે ઇત્યાદિ સમજ લેવું જોઈએ

(૧) પ્રકૃતિબંધ

(૧) જ્ઞાન અર્થાત્ વિશેષ ધર્મોના બાધને જે આચ્છાદિત કરવાવાળું કર્મ તે જ્ઞાના  
વરણીય કહેવાય છે

- (२) दर्शनस्य (सामान्यबोधस्य) आधरक कर्म दर्शनान्तरणीयम् ।
- (३) सुस्तदुःस्तानुमपननकं कर्म वेदनीयम् ।
- (४) मदिरापन्मोहननकं कर्म मोहनीयम् ।
- (५) मयभारणकारण कर्म आयुष्कम् ।
- (६) विशिष्टगतिव्याप्त्यादिप्राप्तिकारणं कर्म नाम ।
- (७) उत्कर्षापकर्षप्राप्तिकारणं कर्म गोत्रम् ।
- (८) दानलाभादिनिपातकं कर्म अन्तराय ।

मूलरूपं कर्मणः स्वभावोऽप्यनिव इति मूलमकृषिरष्टविधा संक्षेपतः कथिता । अष्टानां मूलप्रकृतीनां प्रत्येकमवान्तरमेव पञ्चोत्तरमकृषिः । सा च

(२) दर्शन अर्थात् सामान्य बोधको अर्थप्रदित करने वाला कर्म दर्शनान्तरण है ।

(३) सुस्त-दुःस्तका वेदन करने वाला कर्म वेदनीय कहलाता है ।

(४) मदिरा के समान मोह उत्पन्न करने वाला कर्म मोहनीय कहलाता है ।

(५) मयभारण का कारण कर्म आयुष्क कहलाता है ।

(६) विशेष प्रकार की गति, जाति आदि की प्राप्ति का कारण नामकर्म है ।

(७) उत्कर्ष और अपकर्ष की प्राप्ति का कारण गोत्रकर्म कहलाता है ।

(८) दान लाभ आदि में विघ्न उत्पन्न करने वाला अन्तराय कर्म कहलाता है ।

कर्म का मूल स्वभाव आठ प्रकार का ही है, जब आठ प्रकृतियों का संक्षिप्त कथन किया गया है इन आठ प्रकृतियों के अन्तर्गत मनुष्य को उत्तर-प्रकृति कहते हैं ।

(१) ध्यान अर्थात् सामान्य बोधने के अर्थप्रदित करनेवाला कर्म ते ध्यानान्तरण के

(३) सुस्त-दुःस्तानु वेदन करनेवाला कर्म ते वेदनीयकर्म कहेंवाय के

(४) मदिराना समान मोह उत्पन्न करनेवाला कर्म ते मोहनीय कहेंवाय के

(५) मय-भारण करनेवाले के कारण कर्म ते आयुष्क कहेंवाय के

(६) विशेष प्रकार की गति-जाति आदि की प्राप्ति करनेवाले के नामकर्म कहेंवाय के

(७) उत्कर्ष और अपकर्ष की प्राप्ति करनेवाले के गोत्रकर्म कहेंवाय के

(८) दान-लाभ आदि में विघ्न उत्पन्न करनेवाले के अन्तराय कर्म कहेंवाय के

कर्मों में मूल स्वभाव आठ प्रकार के हैं। तभी आठ प्रकृतियों का संक्षिप्त कथन किया है। इन आठ प्रकृतियों के अन्तर्गत मनुष्य को उत्तर-प्रकृति कहते हैं। अतः प्रकृति

વિસ્તરતો જિજ્ઞાસુનાં બોધાય શાસ્ત્રે નિર્દિષ્ટા । જ્ઞાનાવરણીયાદિમૂલમકૃતી-  
નામષ્ટાનામવાન્તરમેદા યથાક્રમમ્—(૧) પञ्च, (૨) નવ, (૩) દ્વૌ, (૪) અષ્ટાવિંશતિઃ,  
(૫) ચત્વારઃ, (૬) દ્વિચત્વારિંશત્, (૭) દ્વૌ, (૮) પञ्ચ સન્તિ । एतत्सर्वमागमतोज्ज  
વગન્તવ્યમ્ ।

### (૨) સ્થિતિવન્ધઃ—

આત્મસંલગ્નનાં કર્મપુદ્ગલાનાં યયા જઘન્યમધ્યમોત્કૃષ્ટકાલમર્યા-  
દયાઽઽત્મપ્રદેશેષ્વવસ્થ્યાનં સા કાલમર્યાદા સ્થિતિવન્ધઃ । કિञ્ચ—અધ્યસાયવિશેષ-  
ગૃહીતસ્ય કર્મદલિકસ્ય સ્થિતિકાલનિયમનં સ્થિતિવન્ધઃ ।

વેદનીયકર્મણો જઘન્યસ્થિતિર્દ્વાદશમુહૂર્તપ્રમાણા । નામ—ગોત્રકર્મણો-

વિસ્તાર સે જિજ્ઞાસુ પરુષો કી જાનકારી કે લિપ્ જાલ્લ મેં વર્ણન કિયા ગયા હૈ । જ્ઞાનાવરણીય  
આદિ મૂલ પ્રકૃતિયોં કે અવાન્તર મેદોં કી સલ્યા ક્રમ સે પાંચ, નૌ, દો, અઠાઈસ, ચાર,  
ચયાલીસ, દો ઝૌરે પાંચ હૈ । ઇન સબકો આગમ સે સમજ્જ લેના ચાહિપ્ ।

### (૨) સ્થિતિવન્ધ

આત્મા કે સાથ લગે હુપ કર્મપુદ્ગલ જિસ જઘન્ય મધ્યમ યા ઉત્કૃષ્ટ કાલમર્યાદા સે  
આત્મપ્રદેશોં મેં સ્થિર હૈ, ડસ કાલમર્યાદાકો સ્થિતિવન્ધ કહતે હૈ । અથવા યોં કહિપ્ કિ-  
અધ્યવસાયવિશેષ દ્વારા પ્રહણ કિપ્ હુપ કર્મદલિયોં કે આત્મા મેં ઠહરને કે કાલસમ્બન્ધી નિયમન  
કો સ્થિતિવન્ધ કહતે હૈ ।

વેદનીય કર્મ કી જઘન્ય સ્થિતિ બારહ મુહૂર્ત કી, તથા નામ ઝૌર ગોત્રકર્મ કી

બલ્ધવા માટે શાસ્ત્રમા વિસ્તારથી વર્ણનકરવામા આવ્યુ છે જ્ઞાનાવરણીય આદિ મૂલ  
પ્રકૃતિના અવાન્તર લેટોની સખ્યા કમથી—પાચ, નૌ, ડે, અઠાવીસ, ચાર, બેતાલીસ,  
બે, અને પાચ છે, આ સર્વને આગમથી સમજ્જ લેવુ બેઈએ

### (૨) સ્થિતિવન્ધ

આત્માની સાથે લાગેલા કર્મપુદ્ગલ જે જઘન્ય, મધ્યમ, અને ઉત્કૃષ્ટ કાલ  
મર્યાદાથી આત્મપ્રદેશોમા સ્થિતિ છે, તે કાલમર્યાદાને સ્થિતિવન્ધ કહે છે અથવા એમ  
કહીએ કે—અધ્યવસાયવિશેષદ્વારા અહલ્ય કરેલા કર્મદલિકોને આત્મામા ટકી શકવાના  
કાલસમ્બન્ધી નિયમનને સ્થિતિવન્ધ કહે છે

વેદનીય કર્મની જઘન્ય સ્થિતિ બાર મુહૂર્તની, તથા નામ અને ગોત્ર કર્મની



नैपुण्य स्थितिरष्टमुहूर्तप्रमाणा । ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय मोहनीया-अपुण्या-  
अन्तरायकर्मणां नैपुण्यस्थितिरन्तमुहूर्तप्रमाणा ।

ज्ञानावरणीय - दर्शनावरणीय - वेदनीयाऽ - न्तरायकर्मणां सुकृष्टस्थिति  
त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः, मोहनीयकर्मणः सप्ततिसागरोपमकोटीकोटयः  
स्थितिरुच्छ्रष्टा । नाम-गोत्र-कर्मणोर्बिम्बतिसागरोपमकोटीकोटयः स्थितिरुच्छ्रष्टा ।  
अपुण्यकर्मणामपि त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा स्थितिरुच्छ्रष्टा । मन्थमा स्थितिरुच्छ्रष्टा  
सम्प्राप्तप्रकारा, कपायपरिणामतारतम्येन तस्या भसंस्मात्तमेदात् ।

आठ मुहूर्त की है, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु और अन्तराय कर्म की  
नैपुण्य स्थिति अन्तमुहूर्त की है ।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, और अन्तराय कर्मों की उच्छ्रष्ट स्थिति तीस  
कोटि-कोटि सागरोपम की मोहनीय कर्म की सत्तर कोटि-कोटि सागरोपम की, नाम और  
गोत्र कर्म की बीस कोटि-कोटि सागरोपम की है । अपुण्य कर्म की तीस सागरोपम की  
है । मन्थम स्थिति भसंस्मात् प्रकार की है, कपायरूप परिणामों की हीनता और अपिकृता  
के कारण उसके भसक्य प्रकार होते हैं ।

स्थितिकथन कोष्टक टीका के अनुसार पृष्ठ ३३६ से समझ लेना चाहिए ।

आठ मुहूर्तनी छे । ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु अने अन्तराय  
कर्मनी नैपुण्य स्थिति अन्तमुहूर्तनी छे ।

ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, वेदनीय, अने अन्तराय कर्मोंनी उच्छ्रष्ट स्थिति तीस  
कोटि-कोटि सागरोपमनी मोहनीय कर्मोंनी सत्तर (७०) कोटि-कोटि सागरोपमनी  
नाम अने गोत्र कर्मोंनी बीस कोटि-कोटि सागरोपमनी, अपुण्य कर्मोंनी तीस  
सागरोपमनी छे मन्थम स्थिति भसंस्मात् प्रकारनी छे । कपायरूप परिणामोंनी  
हीनता अने अपिकृतता कारणे तेना भसक्य प्रकार था छे ।

स्थितिबंधु कोष्टक टीका अनुसार पृष्ठ ३३६ की समझ लेने लेंगे ।

## स्थितिवन्ध-कोष्टकम् ।

कर्मणां नाम	उत्कृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उत्कृष्टः अवाधा- कालः	जघन्यः अवाधा- कालः	उत्कृष्टः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)	जघन्यः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)
(१) ज्ञाना- वरणीय- कर्मणः	३० त्रिंशत्साग- रोपमकोटी- कोटयः	अन्तर्मुहूर्त्तः	३००० त्रिसहस्र- वर्षाणि	अन्तर्मुहूर्त्तः	३००० त्रिसहस्रवर्षो- न- त्रिंशत्साग- रोपमकोटी- कोटयः	अन्तर्मुहूर्त्त- न्यूनोऽन्त- र्मुहूर्त्तः
(२) दर्शना- वरणीय- कर्मणः	"	"	"	"	"	"
(३) वेदनीय- कर्मणः	"	द्वादश १२ मुहूर्त्ताः	"	"	"	अन्तर्मुहूर्त्त- न्यूना एकादश ११ मुहूर्त्ताः
(४) अन्तराय- कर्मणः	"	अन्तर्मुहूर्त्तः	"	"	"	अन्तर्मुहूर्त्त- न्यूनोऽन्त- र्मुहूर्त्तः
(५) मोहनीय- कर्मणः	७० सप्ततिसाग- रोपमकोटी- कोटयः	"	७००० सप्तसहस्र- वर्षाणि	"	सप्तसहस्र- वर्षोऽसप्तति- सागरोपम- कोटीकोटयः ।	"

कर्मणां नाम	उत्कृष्टा स्थितिः	जपन्या स्थितिः	उत्कृष्टा अभाषा कालः	जपन्या अभाषा कालः	उत्कृष्टः भाषाकालः (कर्मनिषेधः)	जपन्या भाषाकालः (कर्मनिषेधः)
(६) नाम कर्मणः	२० विंशति सागरोपम- कोटीकोट्याः	अष्टौ सूहर्षाः	२००० द्विसहस्र- र्षाणि	"	२००० द्विसहस्रर्षेण विंशतिसाग- रोपमकोटी- कोटयः	अन्तर्मुहूर्त्त- न्यूनाः सप्त सूहर्षाः
(७) गोत्र- कर्मणः	"	"	"	"	"	"
(८) भाष्य कर्मणः	पूर्वकोटि त्रि- मागाधिक्रा- नि ३३ प्रय- त्नस्ताराग- रोपमाणि ।	अन्त- र्मुहूर्त्तः	पूर्वकोटि त्रिमागाः	"	पूर्वकोटि त्रिमागोन्त- प्रयत्निसप्त सागरोपमाणि	अन्तर्मुहूर्त्त- न्यूनोऽन्त- र्मुहूर्त्तः

पूर्वकोटिप्रिमाग-३३ असाणि, ३३ सहस्राणि; ३ अतानि, ३३ पूर्षाणि,  
२३ असाणि, ५२ सहस्रकोटिर्षाणि । अन्तर्मुहूर्त्तस्यासंख्यमेदाः सन्ति, तेनान्त-  
र्मुहूर्त्तरूपाया जपन्यस्वितेरन्तर्मुहूर्त्त एवाभाषाकालः, तथाऽन्तर्मुहूर्त्तन्यूनोऽन्तर्मु-  
हूर्त्तश्च भाषाकाल इति विज्ञेयम् ।

वरणीयाद्यष्टविधमूलप्रकृतिष्वेव प्रवर्तते, नत्तरप्रकृतिषु । कस्यापि मूल-  
प्रकृतिरूपकर्मबन्धस्य काचिदुत्तरप्रकृतिस्तदीयेतरोत्तरप्रकृतिरूपेण विपरिणता  
भवति, कर्मपुद्गलस्य तादृशपरिणमनसामर्थ्यात् । तत्र प्राक्तनोत्तरप्रकृतिगतानु-  
भावः परिवर्तितोत्तरप्रकृतिस्वभावानुरूपं तीव्रं मन्दं वा फलं प्रदत्ते ।

यथा—मतिज्ञानावरणीयं यदा श्रुतज्ञानावरणीयादिसजातीयोत्तर-  
प्रकृतिरूपं प्राप्नोति तदा मतिज्ञानावरणीयानुभावोऽपि श्रुतज्ञानावरणीयादिस्वभा-  
वानुरूपमेव श्रुतज्ञानादीनामावरणं विधत्ते ।

उत्तरप्रकृतिषु कतिचित् सजातीया अपि प्रकृतयो नान्यरूपेण परिणता  
भवन्ति । यथा—दर्शनमोहचारित्रमोहरूपेण न परिणमति; तथा चारित्रमोहोऽपि न  
यह नियम नहीं है । किसी भी मूलप्रकृति की कोई उत्तरप्रकृति उसी मूलप्रकृति  
की किसी दूसरी उत्तरप्रकृति के रूप में भी परिणत हो सकती है, क्यों कि कर्मपुद्गल  
में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति विद्यमान है । वहाँ पहले वाली उत्तरप्रकृति में  
रहा हुआ अनुभाव बदली हुई उत्तरप्रकृति के स्वभाव के अनुसार तीव्र या मन्द फल  
देता है ।

जैसे—मतिज्ञानावरणीय जब श्रुतज्ञानावरणीयसजातीय उत्तरप्रकृति के रूप में पलटता  
है तब मतिज्ञानावरणीय का अनुभाव भी श्रुतज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार श्रुतज्ञान  
का आवरण करता है ।

उत्तरप्रकृतियों में कुछ ऐसी भी प्रकृतियाँ हैं जो सजातीय होते हुए भी  
अन्यरूप में पलटती नहीं हैं, जैसे—दर्शनमोहनीय, कर्मी चारित्रमोहनीय के रूप में नहीं

आ नियम नहीं है। के।ध पक्ष मूलप्रकृतिनी के।ध उत्तरप्रकृति ते मूलप्रकृतिनी के।ध  
पील उत्तर प्रकृतिना इपमा पक्ष परिषुत धर् शके छे, कारखुके कर्मपुद्गलमा ओ प्रभावे  
परिषुभननी शक्ति विद्यमान छे त्या प्रथम वाणी उत्तरप्रकृतिमा रहेले। अनुभाव  
अदली गयेली उत्तर प्रकृतिना स्वभाव अनुसार तीव्र अथवा मन्द फल आपे छे.

जेम—मतिज्ञानावरणीय न्यारे श्रुतज्ञानावरणीय—सजातीय उत्तर प्रकृतिना  
रूपमा पलटाय छे, त्यारे मतिज्ञानावरणीयना अनुभाव पक्ष श्रुतज्ञानावरणीयना स्वभाव  
प्रभावे श्रुतज्ञाननु आवरणु करे छे

उत्तरप्रकृतिओमा केटलीक ओवी पक्ष प्रकृतिओ छे के जे सजातीय होवा छताय  
पक्ष अन्यइपमा पलटती नहीं। जेवी रीते—दर्शनमोहनीय के।ध वपत चारित्रमोहनीयना

दर्शनमोहरूपेण, एवं यथा नारकायुष्य तिर्यगायुष्यरूपेण न परिणमति तथा तदा युष्यमपि न पुनरन्यायुष्यरूपेण ।

एतत्सर्वं प्रकृतिबन्धविवये परिवर्तनं यथा भवति तथाऽप्यवसाय-  
सामर्थ्यात् स्थितिरसमेतपि परिवर्तनं भवति । तीव्रादिर्मन्दादिभावेन परिण-  
मति, मन्दादिरपि तीव्रादिभावेन परिणमति । एषमुत्कृष्टा स्थितिर्बन्धनरूपेण  
परिणमति, बध्न्या चोत्कृष्टरूपेण ।

अनुभावात्तुत्तारं तीव्रं मन्दं वा यस्य कर्मणः फलमनुभूतं भवति चेत्  
तदा एतत्कर्मप्रदेशा आत्मप्रदेशेभ्योऽप्यमता भवन्ति, न पुनस्ते कर्मपुष्पाः संसृज्ना  
भवन्ति ।

बदला, और चारिमोहनीय दर्शनमोहनीय के रूप में नहीं पकड़ता । उसी प्रकार  
नरकायु कमी तिर्यंवायु के रूप में नहीं पकड़ती और तिर्यंवायु किसी अन्य वायुके रूप  
में नहीं बदलती ।

यह सब परिवर्तन जैसे प्रकृतिबन्ध के बन्धन में होता है उसी प्रकार  
बन्धनसाय की शक्ति से स्थिति और रस में भी होता है । कमी तीव्र रस मन्द रस के  
रूप में बदल जाता है, और कमी मन्द रस, तीव्र रस के रूप में परिवर्तित हो जाता  
है । इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति बध्नरूप में और बध्न स्थिति उत्कृष्टरूप में  
बदल जाती है ।

अनुभाव के अनुसार जिस कर्म का तीव्र या मन्द फल योग किया जाता है,  
उस कर्म के प्रदेश आत्मप्रदेशों से हट जाते हैं—फिर वे अज्ञान के साम नहीं  
जो रहते हैं ।

इपभां जडताती नधी जने आस्त्रिमोहनीय दर्शनमोहनीयता इपभां जडताती नधी-  
जे प्रभावे नरकायु ठोर्धवजत पखु तिर्यंवा आमुना इपभां पकड़तुं नधी, जने तीव्रंवायु  
पीवठ ठोर्ध आमुना इपभां पकड़तुं नधी.

आ तमम परिवचन जेनी रीते प्रकृतिबधना विषयभा धाम छे ते प्रभावे  
बन्धनसायनी शक्तिपी स्थिति जने रसभा पखु धाम छे—इकारेक तीव्ररस मन्दरसना  
इपभां जडताठ जाय छे, जने इकारेक मन्दरस, तीव्ररसना इपभां परिवर्तित कर्ध जाय  
छे. जे प्रभावे उत्कृष्ट स्थिति बध्न इपभां जने बध्न स्थिति उत्कृष्ट इपभां  
जडताठ जाय छे.

अनुभावप्रभावे ठोर्ध कर्मतुं तीव्र अथवा मड इव योगनी लेवाम तो ते कर्मना  
प्रदेश आत्मप्रदेशीकी हटी जाय छे—पछी ते अज्ञानी कर्म जायेला रहेला नधी.

## (૩) અનુભાવવન્ધઃ ।

કર્મપુદ્ગલાનામેવ શુભોઽશુભો વા ઘાત્યઘાતી વા યો રસો વિપાકઃ સોઽનુભાવવન્ધઃ । કર્મણાં વિશિષ્ટો વિવિધો વા પાકો વિપાકઃ । કર્મવન્ધસ્ય ફલં વિપાકસ્તસ્યોદયોઽનુભાવ ઇતિ વોધ્યમ્ । કિન્ચ-કર્મણા વિવિધફલદાનશક્તિ-વિપાકઃ સોઽનુભાવઃ ।

વન્ધકારણસ્ય કપાયપરિણામસ્ય તીવ્રમન્દભાવાનુસારેણ પ્રત્યેકકર્મણિ તીવ્રમન્દફલદાનશક્તિઃ પ્રાદુર્ભવતિ । ઇદં ચ ફલોત્પાદનસામર્થ્યમ્-અનુભવઃ, તત્તત્ફલાનુભવનં ચૈતિ ।

## (૩) અનુભાવવન્ધ—

કર્મપુદ્ગલોં કા શુભ યા અશુભ અથવા ઘાતી યા અઘાતી રૂપ જો રસ હૈ વહી અનુભાવ ફહલતા હૈ । ગૃહીત કર્મપુદ્ગલોં મેં યહ રસ ઉત્પન્ન હો જાના અનુભાવ યા અનુભાગ વન્ધ હૈ । કર્મોં કા વિશિષ્ટ યા વિવિધ પ્રકાર કા પાક વિપાક કહલાતા હૈ । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ-કર્મ કા ફલ વિપાક હૈ, ઓર ઉસકા ઉદય અનુભાવ કહા જાતા હૈ । અથવા કર્મોં કી ભૌતિ-ભૌતિકી ફલ દેને કી શક્તિ કો વિપાક કહતે હેં, ઓર વહી અનુભાવ હૈ, ઓર તત્તત્ફલ કા અનુભવ મી અનુભાવ હૈ ।

વન્ધ કે કારણ કષાયરૂપ પરિણામ કી તીવ્રતા ઓર મન્દતા કે અનુસાર પ્રત્યેક કર્મ મે તીવ્ર યા મન્દ ફલ દેને કી શક્તિ ઉત્પન્ન હો જાતી હૈ, ઇસ ફલ કો ઉત્પન્ન કરને કા સામર્થ્ય અનુભાવ હૈ ।

## (૩) અનુભાવબંધ—

કર્મપુદ્ગલોના શુભ અથવા અશુભ, અથવા-ઘાતી કે અઘાતીરૂપ જે રસ છે તે અનુભાવ કહેવાય છે ગૃહીત કર્મપુદ્ગલોનાં એ રસનું ઉત્પન્ન થવું તે અનુભાવ, અથવા અનુભાગ બંધ છે કર્મોનાં વિશિષ્ટ અથવા વિવિધ પ્રકારનાં પાક તે વિપાક કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે-કર્મનું ફલ તે વિપાક છે, અને તેનો ઉદય તે અનુભાવ કહેવાય છે અથવા કર્મોની તરેહ-તરેહની રૂપ દેવાની શક્તિ તેને વિપાક કહે છે અને તેજ અનુભાવ છે અને તે તે રૂપને અનુભવ પણ અનુભાવ છે \* ।

બંધના કારણ કષાયરૂપ પરિણામની તીવ્રતા અને મન્દતાના પ્રમાણે પ્રત્યેક કર્મોના તીવ્ર અથવા મદ ફલ દેવાની શક્તિ ઉત્પન્ન થઈ જાય છે, તે રૂપને ઉત્પન્ન કરવાનું સામર્થ્ય તે અનુભાવ છે ।

\* “અણુભાગે, અણુભાવે, વિવાગે, રસે-તિ એગદ્વા” અનુભાગોઽનુભાવો, વિપાકો રસ, ઇત્યેકાર્થિકા । અનુભાગ, અનુભાવ, વિપાક અને રસ એ બધા એકાર્થક છે.

कर्मणः फलप्रदानशक्तिरूपोऽयमनुभावो यत्कर्मनिष्ठस्तत्कर्मस्वभावानुसारं फलं प्रयच्छति, न स्वल्पकर्मस्वभावानुसारम् । यथा-ज्ञानावरणीयकर्मणोऽनुभाव-स्तत्कर्मस्वभावानुरूपं ज्ञानावरणमेव तीव्रं मन्दं वा फलं स्मृत्पादयति, न तु दर्शनावरणीय-वेदनीयादि-कर्मप्रकृत्यनुसारं दर्शनावरणं सुखदुःखानुभववदिरूपं फलम् । एव दर्शनावरणीयकर्मणोऽनुभावापस्तीव्रमन्दादिरूपेण दर्शनावरणमेव फलं ददाति, न तु ज्ञानावरणादिरूपमन्यकर्मप्रकृत्यनुसारम् ।

अनुभावबन्धस्य चायं कर्मप्रकृत्यनुरूपेणैव फलदाननियमोऽपि ज्ञाना-

कर्म का फलदान-शक्तिरूप अनुभाव जिस कर्म में रहता है वह कर्म अपने स्वभाव के अनुसार ही फल देता है-बुरे कर्म के स्वभाव के अनुसार नहीं । जैसे ज्ञानावरणीय कर्म का अनुभाव ज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार ही होता है अर्थात् वह तीव्र या मन्द रूप में ज्ञान का आच्छादन ही करता है । उस से दर्शनावरणीय या वेदनीय कर्म की प्रकृति के अनुसार दर्शन का आवरण अथवा सुख-दुःख का देवन नहीं होता । इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म का अनुभाव तीव्र या मन्द रूप में दर्शन का आवरण करना ही है, ज्ञान का आवरण करना या अन्य कर्मप्रकृति के अनुसार फल देना नहीं ।

अनुभावबन्ध का अपनी कर्मप्रकृति के अनुसार फल देने का यह नियम ज्ञानावरणीय आदि आठ मूलप्रकृतियों में ही समूह होता है, उत्तरप्रकृतियों के लिए

कर्मों का इतना शक्तिरूप अनुभाव जो कर्मों में रहे, तो कर्मों के स्वभाव के अनुसार प्रभावेण ही फल कापे है और कर्मों के स्वभाव प्रभावेण नहीं, जैसी रीति के-ज्ञानावरणीय कर्मों का अनुभाव ज्ञानावरणीयता स्वभावता प्रभावेण होता है अर्थात्-ते तीव्र अथवा मद्धर्मों ज्ञानरूप आच्छादन करे है तेनाही दर्शनावरणीय अथवा वेदनीय कर्मों की प्रकृति अनुसार दर्शनरूप आवरण अथवा सुख-दुःखरूप देवन धरु नहीं, जो प्रभावेण दर्शनावरणीय कर्मों का अनुभाव तीव्र अथवा मद्धर्मों दर्शनरूप आवरण धरुं तेव है परन्तु ज्ञानरूप आवरण धरुं अथवा अन्य कर्मप्रकृति अनुसार ही कापुं ते नहीं.

अनुभाव अर्थात् ज्ञानावरणीय कर्मप्रकृति का अनुभाव ही कापवाने का नियम ज्ञानावरणीय आदि आठ मूलप्रकृतियों का ही धरुं काप है, परन्तु उत्तर प्रकृतियों कापे

वरणीयाद्यष्टविधमूलप्रकृतिष्वेव प्रवर्तते, नतूत्तरप्रकृतिषु । कस्यापि मूल-  
प्रकृतिरूपकर्मबन्धस्य काचिदुत्तरप्रकृतिस्तदीयेत्तरोत्तरप्रकृतिरूपेण विपरिणता  
भवति, कर्मपुद्गलस्य तादृशपरिणमनसामर्थ्यात् । तत्र प्राक्तनोत्तरप्रकृतिगतानु-  
भावः परिवर्तितोत्तरप्रकृतिस्वभावानुरूपं तीव्रं मन्दं वा फलं प्रदत्ते ।

यथा—मतिज्ञानावरणीयं यदा श्रुतज्ञानावरणीयादिसजातीयोत्तर-  
प्रकृतिरूपं प्राप्नोति तदा मतिज्ञानावरणीयानुभावोऽपि श्रुतज्ञानावरणीयादिस्वभा-  
वानुरूपमेव श्रुतज्ञानादीनामावरणं विधत्ते ।

उत्तरप्रकृतिषु कतिचित् सजातीया अपि प्रकृतयो नान्यरूपेण परिणता  
भवन्ति । यथा—दर्शनमोहश्चारित्रमोहरूपेण न परिणमति; तथा चारित्रमोहोऽपि न

यह नियम नहीं है । किसी भी मूलप्रकृति की कोई उत्तरप्रकृति उसी मूलप्रकृति  
की किसी दूसरी उत्तरप्रकृति के रूप में भी परिणत हो सकती है, क्यों कि कर्मपुद्गल  
में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति विद्यमान है । वहाँ पहले वाली उत्तरप्रकृति में  
रहा हुआ अनुभाव बदली हुई उत्तरप्रकृति के स्वभाव के अनुसार तीव्र या मन्द फल  
देता है ।

जैसे—मतिज्ञानावरणीय जब श्रुतज्ञानावरणीयसजातीय उत्तरप्रकृति के रूप में पलटता  
है तब मतिज्ञानावरणीय का अनुभाव भी श्रुतज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार श्रुतज्ञान  
का आवरण करता है ।

उत्तरप्रकृतियों में कुछ ऐसी भी प्रकृतियाँ हैं जो सजातीय होते हुए भी  
अन्यरूप में पलटती नहीं हैं, जैसे—दर्शनमोहनीय, कभी चारित्रमोहनीय के रूप में नहीं

आ नियम नहीं है । कोई पक्ष मूलप्रकृतिनी कोई उत्तरप्रकृति ते मूलप्रकृतिनी कोई  
भील उत्तर प्रकृतिना रूपमा पक्ष परिणत थई शक्ये छे, कारणके कर्मपुद्गलमा ये प्रभाषे  
परिणमननी शक्ति विद्यमान छे त्या प्रथम वाणी उत्तरप्रकृतिमा रहेले अनुभाव  
पदली गयेली उत्तर प्रकृतिना स्वभाव अनुसार तीव्र अथवा मन्द फल आपे छे

जैसे—मतिज्ञानावरणीय न्यारे श्रुतज्ञानावरणीय—सजातीय उत्तर प्रकृतिना  
रूपमा पलटाय छे, त्यारे मतिज्ञानावरणीयना अनुभाव पक्ष श्रुतज्ञानावरणीयना स्वभाव  
प्रभाषे श्रुतज्ञाननु आवरण करे छे

उत्तरप्रकृतिआमा डेटलीक्येवी पक्ष प्रकृतिआ छे के जे सजातीय होवा छताय  
पक्ष अन्यरूपमा पलटती नहीं. जेवी रीते—दर्शनमोहनीय कोई वअत चारित्रमोहनीयना



दर्शनमोहरूपेण, एवं यथा नारकायुष्य तिर्यगायुष्यरूपेण न परिष्मति तथा उदा  
युष्यमपि न पुनरन्यायुष्यरूपेण ।

एतत्सर्वं प्रकृतिबन्धविषये परिवर्तनं यथा भवति तथाऽध्यवसाय-  
सामर्थ्यात् स्थितिरसयोपि परिवर्तनं भवति । तीव्रादिर्मन्दादिभावेन परिष्म-  
मति, मन्दादिरपि धीमादिभावेन परिष्मति । एवमुत्कृष्टा स्थितिर्बन्धनरूपेण  
परिष्मति, जघन्या चोत्कृष्टरूपेण ।

अनुभाषानुसारं तीव्रं मन्दं वा यस्य कर्मण्य फलमनुभूयते भवति चेद्  
तदा तत्कर्मप्रवेशा आत्मप्रदेशेभ्योऽप्यमता भवन्ति, न पुनस्त्वे कर्मपुद्गलाः संसन्ना  
भवन्ति ।

ब्रह्मवा और चारित्र्यमोहनीय दर्शनमोहनीय के रूप में नहीं पकड़ता । उसी प्रकार  
नरकायु कमी तिर्यचायु के रूप में नहीं पकड़ती और तिर्यचायु किसी अन्य आयुके रूप  
में नहीं बदलती ।

इस सब परिवर्तन जैसे प्रकृतिबन्ध के निबन्ध में होता है उसी प्रकार  
अध्यवसाय की शक्ति से स्थिति और रस में भी होता है । कमी तीव्र रस, मंद रस के  
रूप में बदल जाता है, और कमी मन्द रस, तीव्र रस के रूप में परिवर्तित हो जाता  
है । इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति जघन्यरूप में और जघन्य स्थिति उत्कृष्टरूप में  
बदल जाती है ।

अनुमान के अनुसार जिस कर्म का तीव्र या मन्द फल भोग लिया जाता है,  
उस कर्म के प्रदेश आत्मप्रदेशों से हट जाते हैं—किर के जगत्मा के साथ नहीं  
रहते हैं ।

इयमां जडवाती नधी, जने अद्वित्यमोहनीय दर्शनमोहनीयता इयमां जडवाती नधी  
जे प्रभावे नरकायु कोर्षवजत पक्ष तिर्य्य आयुना इयमां पकटातु नधी, जने तीर्थायु  
जीव्य कोर्ष आयुना इयमां पकटातु नधी ।

आ तन्मम परिवर्तन जेनी रीते प्रकृतिजयता निबन्धमा बाध छे ते प्रभावे  
अध्यवसायनी शक्तिभी स्थिति जने रसमा पक्ष बाध छे—ठकारेठ तीव्ररस मंदरसना  
इयमां जडवाती बन्ध छे जने ठकारेठ मंदरस, तीव्ररसना इयमां परिवर्तित बर्ष बन्ध  
छे जे प्रभावे उत्कृष्ट स्थिति जघन्य इयमां जने जघन्य स्थिति उत्कृष्ट इयमां  
परबर्ष बाध छे ।

अनुमानप्रभावे कोर्ष कर्मतु तीव्र जयता मंद इस सोजनी लेकय तो ते कर्मना  
प्रदेश आत्मप्रदेशीको कटी बन्ध छे—पछी ते अत्रभागी खाये लावेला रहेला नधी ।

इदमत्र तत्रम्-कर्मणां फल विविधं भवति । कर्मैव मूलप्रकृतिः । सर्वासां-  
मूलप्रकृतीनां फलविविधत्व तथाऽन्यथा चेति प्रकारद्वयेन भवति ।

येनाध्यवसायप्रकारेण यादृक्स्वभावं कर्म वदं, तत् तथा=तेनैव प्रकारेण  
अन्यथा च=प्रकारान्तरेणापि विपच्यते=तस्य विपाको भवति । स च तीव्र-  
मन्दाद्यवस्थाभेदेन शुभस्तथाऽशुभोऽपि । तत्र कदाचिच्छुभमप्यशुभरसतयाऽनु-  
भूतये कर्म, अशुभं च शुभरसतयेति बोध्यम् ।

सकपायजीवेन मनोवागादिद्वारेण क्रियाविशेषस्य कर्ता भिन्नभिन्नस्वभा-  
वानां कर्मपुद्गलानां स्वभावानुसारं तत्तत्परिमाणविभागेन सम्बन्धः प्रदेशबन्धः ।

तात्पर्यं यह है कि कर्मों का फल विविध प्रकार का होता है । कर्म ही मूल  
प्रकृति है । समस्त मूलप्रकृतियों का फल उसी रूप में या अन्यथा रूप में दो प्रकार  
से होता है ।

जिस प्रकार के अध्यवसाय से जिस स्वभाव वाला कर्म बँधा है वह उसी रूप में  
या अन्यथा रूप में फल देता है । वह फल तीव्र या मन्द अवस्था—मेद से शुभ भी होता है  
और अशुभ भी होता है । कमी शुभ भी अशुभ रस के रूप में और कमी अशुभ शुभ रस के  
रूप में भोगा जाता है ।

#### (४) प्रदेशबन्ध—

मन वचन आदि के द्वारा क्रियाविशेष करने वाले कपाययुक्त जीव के साथ भिन्न-भिन्न  
स्वभाव वाले कर्मपुद्गलों का स्वभाव के अनुसार अमुक-अमुक परिमाण विभाग के साथ  
सम्बन्ध होना प्रदेशबन्ध है ।

तात्पर्यं ये छे के - कर्मोना इल विविध प्रकारना डोय छे कर्मैव मूलप्रकृति  
छे तमाभ मूणप्रकृतिओनु इल ते इपमा अथवा पीलइपमा, ओम जे प्रकारथी डोय छे

जे प्रकारना अध्यवसायथी जे स्वभाववाणा कर्म पाध्या छे ते ओज इपमा  
अथवा पील इपमा इल आपे छे ते इल तीव्र अथवा मद अवस्था—लेदथी शुल  
पणु डोय छे, अने अशुल पणु डोय छे, केरि वजत शुल पणु अशुल रसना इपमा  
अने केरि वजत अशुल ते शुल रसना इपमा लोगववामा आवे छे

#### (४) प्रदेशबन्ध—

मन, वचन आदि द्वारा क्रिया-विशेष करवा वाणा कपाययुक्त जीवनी साथे भिन्न-  
भिन्न स्वभाव वाणा कर्मपुद्गलानां स्वभाव अनुसार अमुक-अमुक परिमाणविभागनी  
साथे सम्बन्ध थये ते प्रदेशबन्ध छे

(१) ज्ञानावरणीयादिकर्मणां कारणीभूताः, (२) सर्वदिस्यबन्धिताः,  
 (३) तीव्रमन्दादिभेदाद् मनोवाङ्मयादिक्रियाविशेषसंयोगात् कर्मवर्गभायोभ्याः  
 पुद्गलाः सर्वात्मप्रदेशेषु भेदा भवन्ति । (४) औदारिक-वैकिया-आहारक-  
 तंत्रस-भाषा-शास्त्रोक्त-मनोवर्गभा-पेक्षयाऽपि सूक्ष्मपरिणतिरूप्या एव कर्मवर्गणा  
 योभ्याः भेदाः भवन्ति, न तु बाधराः । (५) तत्रापि च एव पुद्गला भेदा भवन्ति  
 ये सन्तु यत्राकाशे जीवोऽवगाहस्तत्रैव वर्तमानाः, न तु तद्वह्निःक्षेत्रवर्तिन ।

(६) तथाविधा अपि पुद्गलाः स्थिता एव भेदा भवन्ति, न तु गतिपरिणताः,  
 भवन्ति तस्मात्स्वेन वन्दानर्हत्वात् । (७) असंख्यातप्रदेशिनो जीवस्यैकैकः

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के कारणभूत (२) समस्त दिशाओं में स्थित,  
 (३) तीव्र मन्द आदि के भेद से मन, वचन और काम की क्रियाविशेष के संयोग से  
 कर्मवर्गों के योग्य पुद्गल समस्त आत्मप्रदेशों में बँट हो जाते हैं । (४) औदारिक  
 वैकिय आहारक, तंत्रस भाषा शास्त्रोक्त और मनोवर्गणा की अपेक्षा भी सूक्ष्म  
 परिणतिरूप कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल ही बँटते हैं, बाध नहीं बँटते । (५) उन में  
 भी वही पुद्गल बँटते हैं जो एकजोनावगाह हैं, अर्थात् जिन आकाशप्रदेशों में जीव है  
 उन्हीं आकाशप्रदेशों में स्थित हो बाहर के क्षेत्र में अगवाहन करने वाले नहीं बँटते ।  
 (६) एसे पुद्गल भी स्थित ही बँटते हैं पकने-फिरते हुए पुद्गल नहीं बँटते पकित  
 एवमाव बाध होने के कारण वे कर्म के योग्य नहीं हैं, (७) असंख्यातप्रदेशी जीव का

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का कारणभूत (२) समस्त दिशाओं में स्थित, (३)  
 तीव्र, मन्द आदिना भेदशी मन, वचन करने कायानी क्रिया-विशेषना संयोगशी कर्मवर्गणा  
 योग्य पुद्गल समस्त आत्मप्रदेशों में बँट जाते हैं (४) औदारिक वैकिय, आहारक  
 तंत्रस भाषा, शास्त्रोक्त और मनोवर्गणा की अपेक्षा भी सूक्ष्म परिणतिरूप कर्म  
 वर्गणा योग्य पुद्गल ही बँटते हैं, बाध नहीं बँटते, (५) जेभं पद्य ते पुद्गल अपि  
 छे तेने जे छे क्षेत्रावगाह होय अर्थात्-जे आकाशप्रदेशों में एव छे तेव आकाशप्रदेशों में  
 स्थित होय, बाह्य क्षेत्र में अगवाहन करवावणा न जाया नबी, (६) जेवा पुद्गल  
 पद्य जे स्थिर होय ते न जाय छे पद्य आहत्य इत्थां पुद्गल न जाया नबी कारण छे  
 अहित स्वभाववाग्य होवना कारणे ते न जाने योग्य नबी, (७) असंख्यात प्रदेशी एवने

प्रदेशोऽनन्तैर्ज्ञानावरणीयकर्मस्कन्धैर्वद्धः । एवमनन्तैर्दर्शनावरणीयादिकर्मस्कन्धैर्वद्धः ।  
(८) तत्र ते स्कन्धा अपि प्रत्येकमनन्तानन्तप्रदेशिनः सन्ति । इति प्रदेशबन्धेऽष्ट  
हेतवः ।

### पुण्यपापकर्मनिरूपणम्—

ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं पौद्गलिक कर्म प्रत्येकं द्विविधम्—पुण्यपापभेदात् ।  
शुभकर्म—पुण्यम् । अशुभं कर्म—पापम् । ननु विनाऽपि पुण्यपापाभ्यां स्वभावत  
एव जगद्वैचित्र्यं जायते किं पुनस्तत्कल्पनया ? उच्यते—शृणु—स्वभावादेव हि  
त्रयो विकल्पाः समुत्पद्यन्ते यथा—(१) स्वभावः किं वस्तुरूपः ? (२) कारणाभावो

एक—एक प्रदेश अनन्त ज्ञानावरणीय आदि कर्मस्कन्धों के साथ बधता है, उसी प्रकार  
अनन्तदर्शनावरणीय आदि कर्मस्कन्धों के साथ भी बधता है । (८) कर्म के वे स्कन्ध भी  
अनन्तानन्तप्रदेशी होते हैं । प्रदेशबन्ध में ये आठ हेतु हैं ।

### पुण्यकर्म और पापकर्म—

ज्ञानावरणीय आदि प्रत्येक पौद्गलिक कर्म दो—दो प्रकार का है, पुण्यरूप और  
पापरूप । शुभ कर्म पुण्य और अशुभ पाप कहलाता है ।

शङ्का—पुण्य और पाप के विना ही स्वभावसे जगत् की विचित्रता हो सकती है, फिर  
पुण्य पाप की कल्पना करने से क्या लाभ है ? ।

समाधान—स्वभाववाद में तीन विकल्प हो सकते हैं, जैसे स्वभाव कोई  
वस्तु है ?, या कारण का अभाव ही स्वभाव कहलाता है ?, अथवा स्वभाव किसी

એક એક પ્રદેશ અનન્ત જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મસ્કંધોની સાથે પણ બધાય છે એ  
પ્રમાણે દર્શનાવરણીય આદિ કર્મસ્કંધોની સાથે પણ બધાય છે (૮) કર્મના તે સ્કંધ  
પણ અનન્તાનન્તપ્રદેશી હોય છે પ્રદેશ બધમા આ આઠ હેતુ છે.

### પુણ્યકર્મ અને પાપકર્મ—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રત્યેક પૌદ્ગલિક કર્મ બે—બે પ્રકારના છે—(૧) પુણ્યરૂપ અને  
(૨) પાપરૂપ શુભ કર્મ—પુણ્ય અને અશુભ કર્મ પાપ કહેવાય છે

શંકા—પુણ્ય અને પાપ વિનાજ, સ્વભાવથી જગતની વિચિત્રતા હોઈ શકે છે,  
તો પછી પુણ્ય પાપની કલ્પના કરવાથી શું લાભ છે ?

સમાધાન—સ્વભાવવાદમાં ત્રણ વિકલ્પ (તર્ક—વિતર્ક) થઈ શકે છે, જેમકે સ્વભાવ  
શું કોઈ વસ્તુ છે ? અથવા કારણનો અભાવજ સ્વભાવ કહેવાય છે ? અથવા સ્વભાવ કોઈ

वा स्वभावः ? अथवा (३) स्वभावः कोऽपि वस्तुकर्मः ? । इति विकल्पप्रयगत-  
दोषार्था कथन पूर्व कृतमासीदतो विरम्यते, तस्मात् पुण्यपापे कर्मणी पौद्गलिके  
विद्येते, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम् ।

पुण्यपापसङ्गावे युक्तीस्तान्त् मदर्शयामः—

पुण्यपापे द्वे अपि भिन्ने स्वतन्त्रे स्ताः, तत्कार्यभूतयोः सुखदुःखयो-  
पीगपयेनानुसंधामावात्, अतोऽनेनैव मिश्रकार्यदर्शनेन तत्कारणभूतयोः  
पुण्यपापयोर्मिश्रताऽनुमीयते । जीवकर्मणोः परिणामरूपे पुण्यपापे कारणतः  
कार्यतमानुमीयेते ।

दानादिक्रियाणां हिंसादिक्रियाणां च कारणरूपत्वात् तत्कार्यरूपपुण्य

कस्तु का कर्म है ? इन तीनों विकल्पों में जाने बाधे दोषों का कथन पहले किया था चुका  
है अत एव यहाँ पुनरुक्ति नहीं की जाती । अत एव पुण्य और पाप को पौद्गलिक कर्म ही  
स्वीकार करना चाहिए ।

पुण्य और पाप के सङ्गाव में युक्तियाँ विलोकाते हैं—

पुण्य और पाप दोनों भिन्न और स्वतन्त्र हैं, क्योंकि उनका फल सुख और दुःख  
एक साथ नहीं होगा जाता । कार्य को यह मिश्रता देखने से उनके कारणभूत पुण्य और  
पाप की मिश्रता का अनुमान होता है । जीव और कर्म के परिणामरूप पुण्य और पाप का  
अनुमान कारण से और कार्य से होता है ।

दानादि क्रियाएँ और हिंसा आदि क्रियाएँ कारण हैं, अत एव उनका कर्म

वस्तुने प्रथम छ ? का त्रयेण विकल्पेभ्यो आववापण्य रोपेनु कथन प्रथम कृती सूक्त्या  
जीवे, अदत्ता आशुषी आदि पुनरुक्ति करता नहीं, जे भाटे पुरुष जने पापने  
पौद्गलिक कर्मण स्वीकार करवे, जेहिजे.

पुरुष जने पापना सहजावभां युक्तिज्जा जतावे छ —

पुरुष जने पाप जने बूझा जने स्वतन्त्र छ आशुष के तेनु इण सुज जने  
इण जेके साथे रोगजनवभां आवतुं नहीं, कल्पनी का निजत्वा जेवाणी तेना आशुषभूत  
पुरुष जने पापनी निजत्वानु अनुमान बाप छ एव जने कर्मना परिष्काररूप पुरुष  
जने पापनु अनुमान आशुषी जने कार्यधी वस्तु छ

इत आदि किञ्चो जने हिंसा आदि क्रियाज्जा आशुष छ ते भाटे तेनु काप

पापात्मको जीवकर्मपरिणामोऽस्ति । यथा—कृप्यादिक्रियाणां शालि-यव-गोधूमादिकं नियमेन फलं भवति । इदमनुमान कारणतो भवति ।

एवं कार्यतोऽपि कारणस्यानुमानं भवति । यथा—अस्ति शरीरादीनां कारणं, तेषां कार्यरूपत्वात् । यथा—घटस्य मृदण्डचक्रादिसामग्रीसहितः कुम्भकारः कारणम् ।

न च, दृष्ट एव मातापितादिकः शरीरादीनां कारणमस्तु, इति वाच्यम्, दृष्टकारणस्य समानत्वेऽपि सुरूपकुरूपादिभावेन शरीरादीना वैचित्र्यदर्शनात्तस्य

भी अवश्य होना चाहिए, और वही कार्य जीव और कर्म का परिणामरूप पुण्य और पाप है । जैसे कृषि आदि क्रियाओं का शालि, जौ, गेहूँ आदि फल नियम से होता है । यह कारण से अनुमान है ।

इसी प्रकार कार्य से भी कारण का अनुमान होता है, जैसे शरीर आदि का कारण अवश्य है, क्यों कि वह कार्य है, जैसे घटका कारण मिट्टी, दण्ड, चक्र आदि सामग्री से युक्त कुम्भकार होता है ।

शुद्धा-शरीर आदि का कारण प्रत्यक्ष से प्रतीत होने वाले माता-पिता आदि ही मानना चाहिए ।

**समाधान-**दिरखाई देने वाले कारण की समानता होने पर भी शरीर में सुरूपता कुरूपता आदि की विचित्रता देखी जाती है, अतः उन्हें कारण नहीं माना जा सकता,

पण्य अवश्य होना चाहिये, अने ते कार्य एव अने कर्मना परिष्णामरूप पुण्य अने पाप छे जेवी रीते जेती आदि क्रियाओमा शालि-डागर, जव, घट आदि इह नियमथी थाय छे आ कारणथी अनुमान छे

आ प्रमाणे कार्यथी पण्य कारणनु अनुमान थाय छे जेभ शरीर आदिनु कारण जइर छे, कारण छे ते कार्य छे, जेवी रीते घटनु कारण भाटी, दण्ड, चक्र-आकणो, आदि सामग्रीथी युक्त कुम्भकार होय छे

शुद्धा-शरीर आदिनु कारण प्रत्यक्षथी जण्यता माता-पिता आदि मानवा जेधये

**समाधान-**देखावाणा कारणनी समानता होवा छताय पण्य शरीरमा सुरूपता कुरूपता आदिनी विचित्रता जेवामा आवे छे, तेथी तेभने कारण मानी शक्य नहि

तस्कारगत्वासिद्धे । तद्वैचित्र्यस्य षाष्ट्यकर्मारब्धहेतुं विनाऽऽभावात् । शुभ शरीरस्तीनां पुण्यकार्यत्वात्, अशुभशरीरादीनां पापकार्यत्वाच्च पुण्यपापभेदेन तस्य कर्मणो द्वैविध्यं सिद्धम् ।

पुण्यं पार्यं चेति द्वे कर्मणो भिन्ने स्वतन्त्ररूपे स्तः, इत्यभागमोऽपि प्रमाणम् । उक्तञ्च स्वानाङ्गसूत्र-“एणे पुण्ये । एणे पावे” इति । एवमेव समवायाङ्गोऽपि ।

सर्वपातिप्रकृतयः—

(१) केवलज्ञानावरणीयम् । (२) केवलदर्शनावरणीयम् । (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा, (५) प्रवला, (६) प्रवलाप्रवला, (७) स्थानर्द्धिः, (८-११) अनन्तानुबन्धिकपायघतुष्यम्, (१२-१५) अप्रत्यास्थानकपायघतुष्यम्,

एव विचित्रता अदृष्ट कारण-कर्म के बिना नहीं हो सकती, शुभ शरीर आदि पुण्य का कर्म है और अशुभ शरीर आदि पाप का कर्म है । अतः पुण्य और पाप के मेल से कर्म दो प्रकार का सिद्ध होता है ।

पुण्यकर्म और पापकर्म दोनों स्वतन्त्र-भिन्न हैं, इस विषय में आगम भी प्रमाण है । स्वानाङ्ग सूत्र में कहा है- पुण्य एक है पाप एक है । इसी प्रकार समवायाङ्गसूत्र में भी कहा है ।

सर्वपाती प्रकृतियाँ—

(१) केवलज्ञानावरणीय, (२) केवलदर्शनावरणीय, (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा (५) प्रवला (६) प्रवलाप्रवला (७) स्थानर्द्धिः, (८-११) अनन्तानुबन्धी-कोष मान, माया कोष (१२-१५) अप्रत्यास्थानावरण-कोष मान, माया कोष (१६-१९) प्रत्यास्थाना

एव विचित्रता अदृष्ट कारण-अनन्ता बिना नहीं हो सके नहि शुभ शरीर आदि पुण्यनु कर्म से अने अशुभ शरीर आदि पापनु कर्म से ते अदृष्टभी पुण्य अने पापनु दोहो कर्म से प्रकाशनां सिद्ध भाव से

पुण्यकर्म अने पापकर्म अने स्वतन्त्र-भिन्न से आ विषयमां आत्म पक्ष अदृष्ट से, स्वानाङ्ग सूत्रमा कहुं से- पुण्य जोक से, पाप जोक से ” अने ए अभावे समवायाङ्ग-सूत्रमां पक्ष कहुं से

सर्वपाती प्रकृतियाँ—

(१) केवलज्ञानावरणीय (२) केवलदर्शनावरणीय, (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा (५) प्रवला, (६) प्रवलाप्रवला, (७) स्थानर्द्धिः (८-११) अनन्तानुबन्धी-कोष, मान, माया, कोष, (१२-१५) अप्रत्यास्थानावरण-कोष, मान, माया, कोष, (१६-१९) प्रत्यास्थानावरण

(१६-१९) प्रत्याख्यानकपायचतुष्टयम्, (२०) मिथ्यात्वं च, एता विंशतिः प्रकृतयः सर्वघातिन्यः ।

समस्तावरणक्षयादाविभूतं सकलद्रव्यपर्यायग्राहि केवलज्ञानं, तदाच्छादनकृत् केवलज्ञानावरणीयम् । इदं हि केवलज्ञानोपघातेन सर्वमेव द्रव्यपर्यायज्ञानं प्रतिहन्ति, तस्मात् सर्वघातीत्युच्यते ।

ननु—सर्वजीवानां केवलज्ञानस्यानन्तभागोऽनादृत एवावतिष्ठते, तस्याप्यावरणे तु जीवस्याजीवत्वमापद्येत तर्हि कथं केवलज्ञानावरणीयस्य सर्वघातित्वसंभवः ? इति चेत्, उच्यते—

यथा घनीभूतघनपटलेन सूर्यचन्द्रमसोर्वहुतरप्रभासमावरणे सर्वाऽपि प्रभा

वरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व । ये वीस प्रकृतियाँ सर्वघाती हैं ।

केवलज्ञान समस्त आवरणों के क्षय से प्रकट होने वाला तथा समस्त द्रव्यों और पर्यायों को ग्रहण करने वाला है । इसे आच्छादित करने वाला कर्म केवलज्ञानावरणीय कहलाता है । यह कर्म केवलज्ञान का घात करके समस्त द्रव्य पर्यायों के ज्ञान का घात करता है, अत एव यह सर्वघाती कहलाता है ।

शुद्धा—सब जीवों के केवलज्ञान का अनन्तवाँ भाग प्रकट रहता है, अगर उतना भी प्रकट न रहे तो जीव अजीव हो जायगा । ऐसी स्थिति में केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती कैसे हो सकता है ?

समाधान—जैसे अत्यन्त सघन मेघपटल के द्वारा सूर्य या चन्द्रमा की बहुत सी प्रभा छिप जाने के कारण लोक में कहा जाता है कि सूर्य—चन्द्र की सारी प्रभा छिप

—क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व आ वीस प्रकृतिओ सर्वघाती छे

केवलज्ञान समस्त आवरणोना क्षयथी प्रकट थवावाणु, तथा समस्त द्रव्यो आने पर्यायोने ग्रहण करवा वाणु छे, तेने आच्छादित करवावाणु कर्म केवलज्ञानावरणीय कडेवाय छे अे कर्म केवल ज्ञाननो घात करीने समस्त द्रव्य—पर्यायोना ज्ञाननो घात करे छे अेटला भाटे ते सर्वघाती कडेवाय छे

शुद्धा—सर्व जीवोने केवलज्ञाननो अनन्तमो भाग प्रकट रहे छे पणु जे अेटला पणु प्रकट न रहे तो जीव, अजीव थई जशे आवी स्थितिमा केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती केवी रीते थई शके छे ?

समाधान—जेवी रीते अत्यन्त, सघन मेघपटल (घनघोर वादल) द्वारा सूर्य अथवा चन्द्रमानी धरणीपरी प्रभा—काति ढंकाई जवाथी लोकमा कडेवाय छे के सूर्य—चन्द्रनी



तयोराहतेति लोकाव्यवहारस्तु जीवस्य सर्वज्ञानावरणं केवलज्ञानावरणीयप्रकृत्या क्रियते, इति व्यपदिश्यते ।

मतिज्ञानादिविषयान् भयान् न जानाति जीवस्तत्र मतिज्ञानावरणीयादि प्रकृत्युदय एव मतिज्ञानादिक्रमावृणोति, न तु केवलज्ञानावरणीयोदयस्तत्र कारणं मक्तीति बोध्यम् । एवं कवचदर्शनस्यानन्तमागोऽप्यनाहत एव, तथापि मेघवृष्ट्यानुसारेणावरणव्यवहारमादाय केवलदर्शनावरणीयस्य सर्वपातित्वमुपपद्यते । तथापि वस्तुदर्शनावरणीयादिप्रकृत्युदयादयः जीवमस्तुदर्शनादिविषयानयान् ज्ञातुं न शक्नोति, न तु केवलदर्शनावरणीयोदयस्तत्र कारणमिति बोध्यम् ।

गर्भ । इसी प्रकार 'केवलज्ञानावरण प्रकृति जीव के समस्त ज्ञानका आवरण करती है' ऐसा कहा जाता है ।

जीव मतिज्ञान के विषयमूल पदार्थों को नहीं जानता, इस में मतिज्ञानावरणीय प्रकृति का उदय ही कारण है, वही मतिज्ञान को रोक्ता है । इस में केवलज्ञानावरणीय का उदय कारण नहीं है । इसी प्रकार केवलदर्शन का अन्तर्गो भाग उपाद्य रहता है । वही भी मेघ के वृष्टान्त के अनुसार आवरण का व्यवहार समस्त कर केवलदर्शनावरणीय को सर्वपाती प्रकृति समझना चाहिए । यहाँ भी वस्तुदर्शन आदि के विषयमूल पदार्थों को जीव वस्तुदर्शनावरणीय आदि के उदय से ही नहीं जानता । वही केवलदर्शनावरणीय कारण नहीं समझना चाहिए ।

तत्रात्र कति-प्रकाश उच्यते जे प्रभावे देवज्ञानवरण प्रकृति एवम् समस्त ज्ञानं आवरणं करे छ जेम् उच्यते छ

एव मतिज्ञानना विषयस्त पदार्थानि ज्ञायते नशी; तेभ्य मतिज्ञानावरणीय प्रकृति-कर्मिणो उदयश्च कारणम् इति तेभ्य मतिज्ञानने शक्ते छ जेभां देवज्ञानावरणीयने उदय कारणं इय नशी जे प्रभावे देवज्ञानने ज्ञानन्तमे भाज उच्यते शक्ते छ. त्यां पञ्च भेवना एतन्त प्रभावे आवरणने व्यवहार समस्त कर्मिणे देवदर्शनावरणीयने सर्वपाती प्रकृति समस्तु जेधंजे, जकां पञ्च वस्तुदर्शन आदिना विषयस्तु पदार्थानि एव वस्तुदर्शनावरणीय आदिना उदयभी ज्ञायते नशी, त्यां देवदर्शनावरणीय कारणं नहि समस्तु जेधंजे.

ननु केवलज्ञानावरणीयस्य केवलदर्शनावरणीयस्य च क्षये सत्यपि मतिज्ञानादीनां चक्षुर्दर्शनादीनां च विषया ज्ञातुमशक्याः स्युः, तेषां केवलज्ञानावरणीय-केवलदर्शनावरणीय-प्रकृत्योर्विषयाभावात्, मतिज्ञानावरणीयादीनां च क्षयाभावात्ताभिर्मतिज्ञानादीना समावृतत्वादिति चेत् ? उच्यते—

केवलज्ञानलाभे शेषावबोधलाभस्य तदन्तर्गतत्वात् । यथा—ग्रामलाभे क्षेत्रलाभो ग्रामलाभान्तर्भूत एव भवति ।

निद्रादिपञ्चक्रमपि सकलपदार्थावबोधं प्रतिहन्तीति सर्वघाति भवति । यदि पुनः स्वापदशायामपि किञ्चिद् ज्ञानमस्तीति संभाव्यते, तर्हि तत्रापि जलधरदृष्टान्तमाश्रित्य समाधेयम् ।

शङ्का—केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय का क्षय होने पर भी मतिज्ञान आदि और चक्षुर्दर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों का जानना अशक्य होना चाहिए, क्यों कि वे केवलज्ञानावरणीय, और केवलदर्शनावरणीय प्रकृतियों के विषय नहीं हैं, और मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों का क्षय नहीं हुआ है, उन्हीं से मतिज्ञान आदि आवृत होते हैं ।

समाधान—केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर शेष ज्ञानों की प्राप्ति उसी में अन्तर्गत हो जाती है । जैसे ग्राम मिलने पर खेत आप ही मिल जाता है ।

निद्रा आदि पाच प्रकृतियों भी सकल पदार्थों के ज्ञान का घात करती हैं, अत एव सर्वघाती हैं । अगर निद्रा—अवस्था में भी किञ्चित् ज्ञान की समावना की जा सकती है तो वहाँ भी मेघ का दृष्टान्त लेकर समाधान करना चाहिए ।

श ३—केवलज्ञानावरणीय अने केवलदर्शनावरणीयनो क्षय थवा छताय पषु मतिज्ञान आदि अने चक्षुर्दर्शन आदिना विषयभूत पदार्थोनि ननुषु ते अशक्य छेउ न्नेध अे,कारणु के ते केवलज्ञानावरणीय अने केवलदर्शनावरणीय प्रकृतियोनो विषय नथी अने मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियोनो क्षय थयो नथी, तेनाथी मतिज्ञान आदि आवृत थाय छे.

समाधान—केवल ज्ञानकी प्राप्ति थवाथी शेष ज्ञानोनी प्राप्ति तेमा अन्तर्गत थध न्थ छे नेथी रीते गाम भणवाथी जेतरे पोतेन भली न्थ छे

निद्रा आदि पाच प्रकृतियो पषु तमाम पदार्थोना ज्ञानोना घात करे छे, अे माटे ते सर्वघाती छे अथवा निद्रा अवस्थाभा पषु किञ्चित् ज्ञानकी सलावना कराय छे. तो त्या पषु मेघनु दृष्टान्त लधने समाधान करी लेवु न्नेध अे

अनन्तानुबन्ध्यादयो द्वादश कृपायाः प्रत्येक यथाकर्म सम्यक्त्वं दशविरति  
 पारित्रं सर्वविरतिचारित्रं च सर्वमेव प्रन्ति, तस्मादेते द्वादश कृपायाः सर्वपाविन  
 इत्युच्यन्ते । तेषां प्रबलोदयेऽपि कुलाचारप्रभृतिकारणवशादशुद्धाहारदिविरमण  
 दर्शनात् सर्वपावित्वं न संभवतीति नाशङ्कनीयम्, नवीनजनपटादृष्टान्ता  
 भ्रयणेन तस्यापि समाधेयत्वात् । मिथ्यात्वं तु सम्यक्त्वं तत्त्वार्थभेदानरूप  
 सर्वमपि प्रतिवन्ति, तस्मात् सर्वपातीत्युच्यते । यदि मिथ्यात्वस्य प्रबलोदयेऽपि  
 मनुष्यपश्चादिविस्तुमिपयक सम्यक्त्वमस्ति, कथं तर्हि सर्वपावित्वं मिथ्यात्वस्यति  
 संभाव्यते, तदाऽप्राप्युक्तजलदाफलीदृष्टान्तः सरणीकरणीयः ।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कृपाय क्रमशः सम्यक्त्व का देशविरति का और  
 सर्वविरतिका पूर्णरूप से प्राप्त करते हैं, अतः ये बारह कृपाम भी सर्वपाती कहलाते हैं । यह  
 शङ्का नहीं करनी चाहिए कि—इन कृपाओं का प्रबल उदय होने पर भी कुलाचार आदि  
 कारणों से बहुत आहार आदि का त्याग देना जाता है अत एव इन्हें सर्वपाती नहीं कहा  
 जा सकता, क्यों कि नवीन मेघपटाका दृष्टान्त केवल इस शङ्का का भी समाधान किया जा  
 सकता है ।

मिथ्यात्व प्रकृति तो तत्त्वार्थभेदानरूप सम्यक्त्व का पूर्णरूप से प्राप्त करती  
 ही है, अतः यह सर्वपाती है । यदि मिथ्यात्व का प्रबल उदय होने पर भी मनुष्य  
 पशु आदि वस्तुओं सम्यक्नी सम्यक्त्व रहता है तो मिथ्यात्व को सर्वपाती कैसे कहा  
 जा सकता है ? इस शङ्का के समाधान के लिए भी उक्त मेघपटल के ही दृष्टान्त का भाग्य  
 केन चाहिए ।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कृपाय क्रमशः सम्यक्त्वने देशविरतिने अने सर्व  
 विरतिने पूर्णरूपसे प्राप्त करे छे, तेही के बारह कृपाय पण सर्वपाती कहैवण छे कोही  
 शङ्का नहि करी कोछे के—के कृपायेना प्रबल उदय वजते पण कुलाचार आदि  
 कारणोभी मनुष्य आहार आदिने त्याग जेवामा आवे छे ते भए तेने सर्वपाती कही  
 शङ्को नहि; कारण के नवीन मेघपटल दृष्टान्त लछिने जा शङ्का समाधान करी शक्य छे

मिथ्यात्व प्रकृति तो तत्त्वार्थभेदानरूप सम्यक्त्वने पूर्णरूपसे प्राप्त करे छे  
 तेही ते सर्वपाती छे के मिथ्यात्वने प्रबल उदय होव ते वजते पण—मनुष्य, पशु आदि  
 वस्तुओंसभोभी सम्यक्त्व रहे छे तो मिथ्यात्वने सब पाती केही रीते कही शक्यो । के  
 शङ्का समाधान भाटे पण अजण कहैव मेघपटलने दृष्टान्तने आशय देवो कोछे

देशघातिप्रकृतयः—

अथ देशघातिप्रकृतयः कथ्यन्ते— (१) मतिज्ञानावरणीयम्, (२) श्रुतज्ञानावरणीयम्, (३) अवधिज्ञानावरणीयम्, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीयम्, एतानि चत्वारि ज्ञानावरणीयानि ४ । (१) चक्षुर्दर्शनावरणीयम्, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीयम्, (३) अवधिदर्शनावरणीयम्, इति त्रीणि दर्शनावरणीयानि ७ । सज्वलनरूपाः क्रोधमानमायालोभाश्चत्वारः कषायाः ११ । हास्य-रत्य-रति-भय-शोक-जुगुप्सा-स्त्रीवेद-पुवेद-नपुसकवेदभेदतो नवसंख्यका नोकषायाः २० । तथा दान-लाम-भोगो-पभोग-वीर्यभेदात् पञ्चविंशतिः २५ प्रकृतयो देशघातिन्यः सन्ति । मतिज्ञानावरणीयादिचतुष्टयी प्रकृतिः केवलज्ञानावरणीयावृत्त दैशिकं ज्ञान हन्ति, तस्माद्देशघातिनीयमुच्यते ।

देशघाती प्रकृतियों—

अब देशघाती प्रकृतियों का कथन किया जाता है—(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीय, ये चार ज्ञानावरणीय ४ । तथा (१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, ये तीन दर्शनावरणीय ७ । तथा सज्वलन-क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार कषाय ११ । हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद के भेद से नौ नोकषाय २० । तथा दानान्तराय, लामान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय, ये पांच अन्तराय २५ । सब मिलकर पच्चीस देशघाती प्रकृतियाँ हैं ।

मतिज्ञानावरणीय आदि चार प्रकृतियों केवलज्ञानावरणीयद्वारा आवृत्त एक देश ज्ञानका घात करती हैं, अत एव उन्हें देशघाती प्रकृतियाँ कहते हैं,

देशघाती प्रकृतियों—

इसे देशघाती प्रकृतियों का कथन-निर्णय-करना आये छे—(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीय, आ चार ज्ञानावरणीय छे ४, तथा (१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, आ त्रिषु दर्शनावरणीय, ७, तथा सज्वलन-क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार कषाय, ११, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद ना लेहथी नव नोकषाय, २०, तथा दानान्तराय, लामान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, अने वीर्यान्तराय आ पांच अन्तराय २५, अर्धी मणीने पच्चीस देशघाती प्रकृतियों छे । मतिज्ञानावरणीय आदि चार प्रकृतियों केवलज्ञानावरणीयद्वारा आवृत्त एक देश ज्ञानको घात करे छे, तेहला भाटे तेने देशघाती प्रकृति कडे छे ।

मतिज्ञानादिविषयाणामयानामवयोषो यत्र भवति, तत्र मतिज्ञानापर  
पीयादिवत्तुष्टयप्रकृत्युदयादेव । यत्र मतिज्ञानादिविषयाणामनन्तपर्यायानां ज्ञानं  
न भवति तत्र केवलज्ञानापरणीयप्रकृत्युदयादेव ।

अधुर्दर्शनापरणीयादिप्रयी प्रकृतिः केवलदर्शनापरणीयानादृतं केवल-  
दर्शनैकदेशं ज्ञानं इतीति दृष्टवाचित्स्व सिद्धम् । अधुरादिदर्शनविषयभूतानाम  
यानां दर्शनं यत्र भवति, तत्र अधुरादिदर्शनापरणीयप्रकृत्युदयादेव; यत्र  
द्विषयभूतामनन्तराणान् न पश्यति, तत्र केवलदर्शनापरणीयोदयादेव ।

तथा—सम्बन्धनाभत्वारः कषामास्तथा नव नोकषायाम लम्बस्म

मतिज्ञान आदि के विषयभूत पदार्थों का जो ज्ञान नहीं होता सो मतिज्ञाना  
परणीय आदि प्रकृतियों के उदय से ही समझना चाहिए । और जो पदार्थ मतिज्ञान  
आदि के विषय नहीं हैं, उनके ज्ञानका समाप्त केवलज्ञानापरणीय प्रकृति के उदय से  
होता है ।

अधुर्दर्शनापरणीय आदि तीन प्रकृतियों केवलदर्शनापरणीयद्वारा अनादृत केवलदर्शन  
के एकदेश ज्ञानका प्राप्त करती हैं, अतः वे देशवादी हैं । अधुर्दर्शन आदि के विषयभूत  
पदार्थों का जो ज्ञान नहीं होता सो अधुर्दर्शनापरणीय आदि प्रकृतियों के उदय से समझना  
चाहिए और केवलदर्शन के विषयभूत अनन्त गुणों के ज्ञानका जो समाप्त होता है सो  
केवलदर्शनापरणीय के उदय से ही समझना चाहिए ।

चार सम्बन्धन कषाम और नौ नोकषाय प्राप्त हुए चारित्र के एक देश का

मतिज्ञान आदिना विषयभूत पदार्थों के ज्ञान वस्तु नहीं ते मतिज्ञानापरणीय  
आदि प्रकृतियोंना उदयशील समस्त वेतु जेधजे. अने ने पदार्थ मतिज्ञानादिना  
विषय नहीं तेना ज्ञानने अभाव देवतज्ञानापरणीय प्रकृतिना उदयशील होय से.

अधुर्दर्शनापरणीय आदि त्रय प्रकृतियों देवतदर्शनापरणीय द्वारा अनादृत  
देवतदर्शनना जेधजे ज्ञानने प्राप्त करे से जो अरुणशी ते देशवादी से अधुर्दर्शन  
आदिना विषयभूत पदार्थों के ज्ञान वस्तु नहीं ते अधुर्दर्शनापरणीय आदि प्रकृतियोंना  
उदयशील समस्त वेधजे अने देवतदर्शनना विषयभूत अनन्त सुखेना ज्ञानने के  
अभाव जाय से ते देवतदर्शनापरणीयना उदयशील समस्त वेधजे.

चार सम्बन्धन कषाम अने नव नोकषाय प्राप्त कियेला आदिना जेध देशनेना  
म जा-४५.

अवधारणा, अर्थात् अर्थ को निर्धारित करने के लिये प्रयत्न करने को कहते हैं।

अवधारणा अर्थात् अर्थ को निर्धारित करने के लिये प्रयत्न करने को कहते हैं।

अवधारणा अर्थात् अर्थ को निर्धारित करने के लिये प्रयत्न करने को कहते हैं।

अवधारणा अर्थात् अर्थ को निर्धारित करने के लिये प्रयत्न करने को कहते हैं।

अवधारणा अर्थात् अर्थ को निर्धारित करने के लिये प्रयत्न करने को कहते हैं।

अवधारणा अर्थात् अर्थ को निर्धारित करने के लिये प्रयत्न करने को कहते हैं।

अवधारणा अर्थात् अर्थ को निर्धारित करने के लिये प्रयत्न करने को कहते हैं।

अवधारणा अर्थात् अर्थ को निर्धारित करने के लिये प्रयत्न करने को कहते हैं।

अवधारणा अर्थात् अर्थ को निर्धारित करने के लिये प्रयत्न करने को कहते हैं।

शोभ्यताया ममापादशक्त्यानुष्ठानत्वादिति मन्तव्यम् ।

वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि सर्वं वीर्यं न इन्तीति देशघातिन्येव । तथाहि सूक्ष्मनिगोदजीवात् प्रभृति मासीगमोहनीयजीवं वीर्यान्तरायस्य क्षयोपसम-  
विशेषाद् वीर्यं कस्यचिद्दत्तं, कस्यचिद् बहु, कस्यचिद् बहुतरं, कस्यचिद् बहुतरं  
मवति, वीर्यान्तरायकर्मणोऽभ्युदये सूक्ष्मनिगोदस्यापि आहारपरिष्मनकर्मदक्षिण  
ब्रह्मगत्यन्तरगमनादिक निघते । एतच्च वीर्यं विना न संभवति । तस्माद्देशत  
एव वीर्यं वीर्यान्तरायप्रकृत्या इत्येते, न तु सर्वतः । यदि पुनरियं सर्वघातिनी

प्रश्न और धारण करने की योग्यता न होने के कारण अशक्त्यानुष्ठान से समस्त्य चाहिये ।

वीर्यान्तराय प्रकृति भी समस्त वीर्य का घात नहीं करती बतः देशघाती है ।  
सूक्ष्म निगोदिका जीव से लेकर कीणमोह-गुणस्थान पर्यन्त के जीवों में वीर्यान्तराय के  
क्षयोपसम से किसी जीव में अल्प वीर्य (शक्ति) होता है, किसी में बहुत वीर्य होता  
है, किसी में बहुत अधिक वीर्य होता है और किसी में अत्यन्त अधिक वीर्य होता  
है । वीर्यान्तराय कर्मका उदय होने पर भी सूक्ष्म निगोद का जीव आहार का परिष्मन  
करता है, कर्मवस्तुओं को प्रश्न करता है और दूसरी गति में पाता है । ये सब  
कर्म वीर्य के विना नहीं हो सकते । इस से यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय कर्म वीर्य  
को एकदेश से ही घात करता है, सर्वदेश से नहीं । अगर यह प्रकृति सर्वघाती मानी जाय  
तो ऐसे सर्वघाती सिध्दाय के उदय में सम्भवतः अशक्त्यानुष्ठान नहीं होता, और

धारण शक्त्यापी योग्यता नहि होवाना कारणे अशक्त्यानुष्ठानयी समस्तु नोभजे.

वीर्यान्तराय प्रकृति पक्ष समस्त वीर्यनि घात करती नहीं, तेही ते देशघाती से  
सूक्ष्मनिगोदिका एवमी अल्प वीर्यमोहसुखस्थान सुधीना एवोभां वीर्यान्तरायना क्षयोप  
समधी केहि एवमां अल्पवीर्यं (शारी शक्ति) होय ते केहि एवमां बहु वीर्यं होय ते,  
केहि एवमां बहुत अधिक वीर्यं होय ते, अने केहिमां अत्यन्त अधिक वीर्यं होय ते  
वीर्यान्तराय कर्मनि उदय होय त्परे पक्ष सूक्ष्म निगोदिका एव आहारानु परिष्मन करे  
ते, कर्मवस्तुकेने अक्षय करे ते अने जीए अतिमां जाय ते आ तमम कर्म वीर्यं विना  
यहि शक नही, तेही अे सिद्ध यक्षु हे - वीर्यान्तराय कर्म वीर्यना अेके देशनेए घात  
करे ते सर्वदेशने नही. अथवा तो अ प्रकृतिने सर्वघाती मानवामां आने तो अेवी रीते  
सर्वघाती सिध्दायना उदयमां सम्भवतः अशक्त्यानुष्ठान नेशमात्र पक्ष होय नही, अने अेभ

## उत्तरप्रकृतिसंख्या—

ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकशतं १४८ भवन्ति । तथाहि—

(१) ज्ञानावरणीयस्य—मति—श्रुता—ऽवधि—मनःपर्यय—केवलज्ञानावरणीय—भेदात् पञ्च ।

(२) दर्शनावरणीयस्य—चक्षुर्दर्शना—ऽचक्षुर्दर्शना—ऽवधिदर्शन—केवलदर्शनावरणीयानि चत्वारि, तथा—निन्द्रा—निद्रानिद्रा—प्रचला—प्रचलाप्रचला—स्त्यानर्द्धिभेदात् पञ्च मिलित्वा नव भवन्ति ।

(३) वेदनीयस्य शाताशतभेदेन द्वौ भेदौ स्तः ।

## उत्तरप्रकृतियोंकी संख्या—

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों की संख्याएँ ( मध्यमविवक्षा से ) १४८ हैं । वे इस प्रकार—

(१) ज्ञानावरणीय की पांच—(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मन पर्ययज्ञानावरणीय, (५) केवलज्ञानावरणीय ।

(२) दर्शनावरणीय की नौ—(१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, (४) केवलदर्शनावरणीय, तथा (५) निद्रा, (६) निद्रानिद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचला-प्रचला, (९) स्त्यानर्द्धि, ये पांच निद्राएँ मिलकर कुल नौ प्रकृतियाँ हैं ।

(३) वेदनीय की दो—सातावेदनीय और असातावेदनीय ।

## उत्तरप्रकृतिओंकी संख्या—

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मोंकी उत्तरप्रकृतिओंकी संख्या (मध्यम विवक्षाधी) अष्टसोने अठतालीस (१४८) छे ते आ प्रमाणे—

(१) ज्ञानावरणीयनी पांच — (१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मन पर्ययज्ञानावरणीय, (५) केवलज्ञानावरणीय

(२) दर्शनावरणीयनी नव छे (१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, (४) केवलदर्शनावरणीय, तथा (५) निद्रा, (६) निद्रा-निद्रा (७) प्रचला, (८) प्रचला-प्रचला, (९) स्त्यानर्द्धि, आ पांच निद्राओं मणीने कुल नव प्रकृतिओ थाय छे

(३) वेदनीयनी छे (१) सातावेदनीय अने असातावेदनीय.



(४) मोहनीयस्व-अष्टाविंशतिर्मेदा भवन्ति । तथाहि-सम्यक्स्वमोहनीय-  
मिथ्यास्वमोहनीय-मिश्रमोहनीय-मेदेन त्रीणि दर्शनमोहनीयानि । पञ्चविंशति  
चारित्रमोहनीयानि मिलित्वाऽष्टाविंशतिः । चारित्रमोहनीयरय पञ्चविंशति  
र्मेदाः, यथा - कषायमोहनीय १ - नोकषायमोहनीय २ - मेदेन चारित्रमोहनीय  
द्विविधम् । तत्र कषायमोहनीयरय षोडश मेदा भवन्ति, यथा-अनन्तानुबन्धी  
क्रोधो मानो, माया, शोभः ४, अनन्त-संसारो नारक तिर्यग्-मनुष्य-देव  
अन्त-वरा-मरण परम्परासङ्घः, तदनुबन्धादन तालुबन्धिनः क्रोधमानमायाशोभा-  
स्वप्नारः कषायाः ४ । तत्र क्रोधः-कृत्याकृत्यविभेकोन्मूलकाऽसमात्म्य भास्व  
परिणामः । मानो-गर्वाः, माया-घाठघम्, शोभो-गुण्णता । अनन्तानुबन्धि-

(४) मोहनीय की अष्टाविंश-सम्यक्स्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और मिथ्यास्वमोहनीय,  
ये तीन दर्शनमोहनीय की, तथा पञ्चीस चारित्रमोहनीय की कुल अष्टाविंश प्रकृतिमें हैं ।  
चारित्रमोहनीय की पञ्चीस प्रकृतिमें इस प्रकार हैं-चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं-कषायचारित्र  
मोहनीय, और नोकषायचारित्रमोहनीय । कषायचारित्रमोहनीय के सोलह भेद हैं, जैसे-अनन्तानुबन्धी  
क्रोध मान माया, शोभ । नो कषाय, नारक, तिर्यक, मनुष्य और देवगति में अन्त वरा-मरण-  
रूप अनन्त संसार का अनुबंध करे, वह अनन्तानुबन्धी है । उस के चार भेद हैं-क्रोध,  
मान, माया और शोभ । कर्तव्य-अकर्तव्य के विभेद को गह कर देने वाला अक्षमाकूप अक्षमा  
का परिणाम क्रोध कहलाता है । गर्वको मान कहते हैं । माया का अर्थ कपट है । गुञ्जिभाव  
(सख्य) शोभ कहलाता है । अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्क में क्रोध को पर्वत की राशि

(४) मोहनीयकर्मनी अष्टाविंश छे (१) सम्यक्स्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, अने  
मिथ्यास्वमोहनीय, आ त्रय दर्शनमोहनीयनी, तथा पञ्चीस चारित्रमोहनीयनी, जो  
प्रभाषे कुल अष्टाविंश प्रकृतिजो छे । चारित्रमोहनीयनी पञ्चीस प्रकृतिजो आ प्रभाषे छे-  
चारित्रमोहनीयना के सेह छे (१) कषायचारित्रमोहनीय अने (२) नोकषायचारित्रमोहनीय,  
कषायचारित्रमोहनीयना शोभ सेह छे जेसके-अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, दोष  
के कषाय नारक तिर्यक, मनुष्य, अने देवजतिमां अन्त, वरा, भक्षकूप अनन्त  
संसारना अनुबन्ध करे ते अनन्तानुबन्धी छे तेना पार सेह छे, क्रोध, मान, माया  
अने दोष, कर्तव्य-अकर्तव्यना विवेकना नाश करवाण्य अक्षमाकूप अक्षमानो  
परिणाम ते क्रोध कहवाय छे गर्वने मान कहे छे । मायानो अर्थ कपट छे । गुञ्जि ते  
दोष कहवाय छे अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्कमां क्रोधने पर्वतनी राशिनु (पर्वत कषायधी

स्यात् तदा सर्वघातिनो मिथ्यात्वस्य कषायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसंयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुणं नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम् ।

अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति । तथाहि—प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१—उद्ध्वंसा२—ऽऽतपो३—उद्योता४—ऽगुरुलघु५—तीर्थकर६—निर्माणो७—उपघात८—रूपा अष्टौ सन्ति । (१) औदारिकं, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कार्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३ । षट् संस्थानानि६ । षट् संहन-

जैसे बारह कषायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर लेशमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अतः यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है ।

अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ हैं, वे इस प्रकार—(१) पराघात, (२) उद्ध्वंसा, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियाँ अघाती हैं ८ । औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कार्मण शरीर, ये पाच शरीर अघाती प्रकृतियाँ हैं १३ । तीन उपाङ्ग १६, छह संस्थान २२,

आर कषायानो उदय तथा समये देवविरति अने सर्वविरति अष्टदेशधी पञ्च डोय नही, ते प्रमाणे वीर्यान्तराय कर्मनो उदय तथा लेशमात्र पञ्च वीर्यगुण प्रकट थवो नही लेईये, परन्तु अने प्रमाणे थतु नहीं, अने कारणधी सिद्ध थतु के—वीर्यान्तराय प्रकृति पञ्च देशघातीये छे

अघाती प्रकृतिओ—

अघाती प्रकृतिओ पचोत्तर (७५) छे ते आ प्रमाणे छे—(१) पराघात, (२) उद्ध्वंसा, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, आ आठ प्रत्येक प्रकृतिओ अघाती छे (१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस अने (५) कार्मण शरीर, आ पाच शरीर अघाती प्रकृतिओ छे, (१३) त्रिषु उपाङ्ग, (१६) छह संस्थान, (२२) छह संहनन, (२८) पाच लतिओ, (३३) आर गति, ३७ छे विडोये

नानि६ । पञ्च जातयः५ । चतस्रो गतयः४ । द्वे स्वगतीर । चतस्रः आजु  
 पूर्ण्यः४ । आर्युपि चत्वारि४ । प्रसदस्रकम्१० । स्यावरदस्रकम्१० । उन्नैर्गोश्रम्१ ।  
 नीचैर्गोश्रम्१ । सातवेदनीयम्१ । असातवेदनीयम्१ । वर्ष-गन्ध-रस-स्पर्शाग्न्या  
 अतस्रः प्रकृतयः४ । ७५ ॥

एताः प्रकृतयः क्वपि ज्ञानादिगुणं न इन्दीत्यघातिन्य उच्यते ।  
 इमा सर्वघातिप्रकृतिभिः सह वेद्यमाना स्वयमघातिन्योऽपि सर्वघातिकर  
 प्रदर्शयन्ति । वेद्यघातिप्रकृतिभिः सह पुनर्वेद्यमानाः स्वयमघातिन्योऽपि वेद्यघातिरसं  
 दर्शयन्ति । यथा-स्वयमघोरशौरैः सह वर्धमानशौर इवावभासते उच्यते ।

एह सहनन२८ पांच जालिर्गो३३, चार गतिर्गो३७ दो विहायोगतिर्गो३९, चार  
 आजुर्गो४३, चार अजु४७, प्रसदशक५७ स्वावरदशक६७ उन्नगोत्र६८ नीनगोत्र६९  
 सातावेदनीय७०, असातावेदनीय७१ तथा वर्ण रस, गन्ध, और स्पर्शनामक चार  
 प्रकृतिर्गो७५ ।

य प्रकृतिर्गो ज्ञान अग्नि किसी गुणका घात करती हैं । इसी क्रिये ये अघाती  
 करती हैं । जब इनका सर्वघाती प्रकृतियों के साथ वेदन होता है तब य स्वयं अघाती  
 होते हुए भी सर्वघाती रसका प्रकट करती हैं, और देशघाती प्रकृतियों  
 के साथ इनका वेदन हो तो स्वयं अघाती होने पर भी देशघाती रस को प्रकट करती हैं ।  
 जैसे कोई पुरुष जोर म हो किन्तु जोरों के साथ हो तो वह भी जोर वैसा ही प्रतीत होगा है ।  
 यही हाल इन अघाती प्रकृतियों का है ।

अति, (३६) आर अनुपूर्वी, (४७) अर आजु, (४७) प्रसदशक, (५७) स्यावरदशक,  
 (६७) उन्नगोत्र, (६८) नीनगोत्र, (६९) सातावेदनीय, (७०) असातावेदनीय, (७१)  
 तथा वर्ण रस, गन्ध, अग्ने स्पृश नामनी आर प्रकृतिजो (७५)।

आ प्रकृतिजो ज्ञान अग्नि कोई श्रुतियों वात करती नबो अटला भाटे तेने  
 अघाती प्रकृति जोडे से परन्तु सर्वघाती प्रकृतिजोनी साथे अघारे तेनु वेदन भाव से  
 तो घाते अघाती होना उताव पद्य जो सघातीनु इन प्रदर्शित करे से अजवा  
 देशघाती प्रकृतिजोनी साथे तेनु वेदन होय तो घाते अघाती होना उताव पद्य  
 देशघाती रसने प्रकट करे से अघोरी सेते कोई पुरुष जोर न होय परन्तु जोरोंनी साथे होय  
 तो ते पद्य जोर अघोरी से उताव से जो प्रभावेन आ अघाती प्रकृतिजो बिरे सभजनु

स्यात् तदा सर्वघातिनो मिथ्यात्वस्य कपायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुण नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम् ।

### अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति । तथाहि—प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१-उर्ध्वासार२-ऽऽतपो३-उद्योता४-अगुरुलघु५-तीर्थकर६-निर्माणो७-पघात८-रूपा अष्टौ सन्ति । (१) औदारिक, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कार्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३ । षट् सस्थानानि६ । षट् संहन-

जैसे बारह कषायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर लेखमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अतः यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है ।

### अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ हैं, वे इस प्रकार—(१) पराघात, (२) उर्ध्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियाँ अघाती हैं ८ । औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कार्मण शरीर, ये पाच शरीर अघाती प्रकृतियाँ हैं १३ । तीन उपाङ्ग १६, छह संस्थान २२,

पार कषायोऽनो उदय तथा समये देवविरति अने सर्वविरति अकडदेशथी पञ्च छेय नही, ते प्रमाणे वीर्यान्तराय कर्मनो उदय तथा देशमात्र पञ्च वीर्यगुण प्रगट थयो नही लेखे, परन्तु अे प्रमाणे थतु नथी, अे कारणथी सिद्ध थयु के-वीर्यान्तराय प्रकृति पञ्च देशघातीञ्छे

### अघाती प्रकृतिभ्यो—

अघाती प्रकृतिभ्यो पचोत्तर (७५) छे ते आ प्रमाणे छे—(१) पराघात, (२) उर्ध्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, आ आठ प्रत्येक प्रकृतिभ्यो अघाती छे (१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस अने (५) कार्मण शरीर, आ पाच शरीर अघाती प्रकृतिभ्यो छे, (१३) त्रय उपाङ्ग, (१६) छह संस्थान, (२२) छह संहनन, (२८) पाच वृत्तिभ्यो, (३३) चार गति, ३७ वे विधायो

नानिद । पञ्च भासयः५ । षतस्रो गतयः४ । द्वे स्वगतीर । षतस्रः आनु  
पूर्व्यः४ । आर्युपि षत्वारि४ । त्रसदशकम्१० । स्वावरदशकम्१० । उन्वैर्गोत्रम्१ ।  
नीचैर्गोत्रम्१ । सातवेदनीयम्१ । असातवेदनीयम्१ । वर्ष-गन्ध-रस-स्पर्शाख्या  
षतस्रः प्रकृत्याः४ । ७५ ॥

एताः प्रकृतय कमपि ज्ञानादिरूपं न इन्तीत्यघातिन्य उच्यते ।  
इमा सर्वघातिप्रकृतिभिः सह वेद्यमाना स्वयमघातिन्योऽपि सर्वघातिफलं  
प्रदर्शयन्ति । देशघातिप्रकृतिभिः सह पुनर्वेद्यमाना स्वयमघातिन्योऽपि देशघातिरसं  
दर्शयन्ति । यथा-स्वयमचौरघोरैः सह वर्तमानधीर इषावभासते तद्वत् ।

एह सहननर८ पांशु वासिर्मा३२, चार गसिर्मा३७ दो विद्यायोगसिर्मा३९ चार  
आनुपूर्वी३३, चार आमु३७, त्रसदशक५७ स्वावरदशक६७ उन्वैर्गोत्र६८ नीचगोत्र६९  
सातावेदनीय७०, असातावेदनीय७१, तथा वर्ष, रस, गन्ध, और स्पर्शनामक चार  
प्रकृतिर्मा७५ ।

ये प्रकृतिर्मा ज्ञान आदि किसी गुणका घात नहीं करती हैं । इसी लिये ये अघाती  
कहलती हैं । जब इनका सर्वघाती प्रकृतियों के साथ वेदन होता है तब ये स्वयं अघाती  
होने हुए भी सर्वघाती रसको प्रकट करती हैं, और देशघाती प्रकृतियों  
के साथ इनका वेदन हो तो स्वयं अघाती होने पर भी देशघाती रस को प्रकट करती हैं ।  
ऐसे कोई पुरुष चार न हो किन्तु चेतो के साथ हो तो वह भी चोर वैसा ही प्रतीत होता है ।  
यही हाल इन अघाती प्रकृतियों का है ।

अति, (३६) चार अनुपूर्वी, (४३) चार आमु, (४७) त्रसदशक, (५७) स्वावरदशक,  
(६७) उन्वैर्गोत्र, (६८) नीचगोत्र, (६९) सातावेदनीय, (७०) असातावेदनीय, (७१)  
तथा वर्ष, रस, गन्ध और स्पर्श नामकी चार प्रकृतियों (७५)

आ प्रकृतियों सह आदि कोई क्षुब्धने घात करती नहीं कोटवा भाटे तेने  
अघाती प्रकृति कहे छे, परन्तु सर्वघाती प्रकृतियोंनी साथे अघाते तेनु वेदन साथ छे  
ते पाते अघाती होना छत्यां पक्ष के सघातीनुं इण प्रदर्शित करे छे अथवा  
देशघाती प्रकृतियोंनी साथे तेनु वेदन होय तो पाते अघाती होना छत्यां पक्ष  
देशघाती रसने प्रकट करे छे. ऐनी रीते कोई पुरुष चार न होय परन्तु चेतनी साथे होय  
तो ते पक्ष चार अघाते अ होनाय छे. के प्रभक्षेअ आ अघाती प्रकृतियों बिचे समबन्ध

स्यात् तदा सर्ववातिनो मिथ्यात्वस्य कषायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसंयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुणं नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम् ।

अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति । तथाहि—प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१-उर्ध्वासार-२-२२-तपो३-द्योता४-अगुरुलघु५-तीर्थकर६-निर्माणो७-पघात८-रूपा अष्टौ सन्ति । (१) औदारिकं, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कार्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३ । षट् संस्थानानि६ । षट् संहन-

जैसे बारह कषायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर देशमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अतः यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है ।

अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ हैं, वे इस प्रकार—(१) पराघात, (२) उर्ध्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियां अघाती हैं ८ । औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कार्मण शरीर, ये पांच शरीर अघाती प्रकृतियाँ हैं १३ । तीन उपाङ्ग १६, छह संस्थान २२,

आर कषायोनो उदय तथा समये देवविरति अने सर्वविरति अेकदेशथी पषु डोय नही, ते प्रभाषे वीर्यान्तराय कर्मनो उदय तथा देशमात्र पषु वीर्यगुणु प्रगट थवेो नही जेधअे, परन्तु अे प्रभाषे थतु नथी, अे कारणुथी सिद्ध थयु डे-वीर्यान्तराय प्रकृति पषु देशघातीञ्छे

अघाती प्रकृतिओ—

अघाती प्रकृतिओ पचोतेर (७५) छे ते आ प्रभाषे छे—(१) पराघात, (२) उर्ध्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, आ आठ प्रत्येक प्रकृतिओ अघाती छे (१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस अने (५) कार्मणु शरीर, आ पाच शरीर अघाती प्रकृतिओ छे, (१३) त्रषु उपाङ्ग, (१६) छह संस्थान, (२२) छह संहनन, (२८) पाच वृत्तिओ, (३३) आर गति, ३७ जे विडायो

(४) मोहनीयस्य-अष्टाविंशतिर्मेदा मवन्ति । तथाहि-सम्यक्स्यमोहनीय-  
 मिथ्यात्वमोहनीय-मिथ्यमोहनीय-मेदेन त्रीणि दर्शनमोहनीयानि । पञ्चविंशति  
 चारित्रमोहनीयानि मित्रिस्ताऽष्टाविंशतिः । चारित्रमोहनीयस्य पञ्चविंशति  
 मेदाः, यथा - कषायमोहनीयः - नोकषायमोहनीयः-मेदेन चारित्रमोहनीय  
 द्विविधम् । तत्र कषायमोहनीयस्य षोडश मेदा मवन्ति, यथा-अनन्तानुबन्धी  
 क्रोधो मानो, माया, श्लेमः ४, अनन्तः=ससारो नारक तिर्यक्-मनुष्य-देव  
 अन्त-वरा-मरण परस्परालक्षणः, तदनुबन्धादन-तानुबन्धिनः क्रोधमानमायाश्लेमा-  
 मत्पारः कषायाः ४ । तत्र क्रोध-कृत्याकृत्यविवेको मूलकाऽसमारूप आरम्भ-  
 परिणामः । मानो-गर्भः, माया-घाठयम्, लोभो-गृह्णता । अनन्तानुबन्धि-

(४) मोहनीय की अष्टाविंश-सम्यक्स्यमोहनीय मिथ्यमोहनीय और मिथ्यात्वमोहनीय,  
 ये तीन दर्शनमोहनीय की, तथा पञ्चीस चारित्रमोहनीय की कुछ अष्टाविंश प्रकृतियाँ हैं ।  
 चारित्रमोहनीय की पञ्चीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं-कषायचरित्र  
 मोहनीय, और नोकषायचरित्रमोहनीय । कषायचरित्रमोहनीय के सोडह भेद हैं, जैसे-अनन्तानुबन्धी  
 क्रोध मान माया, श्लेम । नोकषाय, नारक, तिर्यक, मनुष्य और देवगति में अन्त-वरा-मरण  
 रूप अनन्त संसार का अनुबन्ध करे, वह अनन्तानुबन्धी है । उस के चार भेद हैं-क्रोध,  
 मान, माया और श्लेम । कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट कर देने वाला अक्षमारूप आत्मा  
 का परिणाम क्रोध कहलता है । गर्भको मान कहते हैं । माया का अर्थ कपट है । गृहिमाण  
 (अलक्ष) श्लेम कहलाता है । अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्टय में क्रोध को पर्वत की राशि

(४) मोहनीयकर्मनी अष्टावीस छे । (१) सम्यक्स्यमोहनीय, मिथ्यमोहनीय, अने  
 मिथ्यात्वमोहनीय, आ त्रय दर्शनमोहनीयनी, तथा पञ्चीस चारित्रमोहनीयनी, जे  
 प्रभावे कुछ अष्टावीस प्रकृतियो छे । चारित्रमोहनीयनी पञ्चीस प्रकृतियो आ प्रभावे छे-  
 चारित्रमोहनीयना जे सेह छे (१) कषायचरित्रमोहनीय अने (२) नोकषायचरित्रमोहनीय,  
 कषायचरित्रमोहनीयना सोल सेह छे जेसहे-अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया दोल  
 जे कषाय नारक तिर्यक, मनुष्य, अने देवगतिमां अन्त, अन्त, मरणरूप अनन्त  
 संसारने अनुबन्ध करे ते अनन्तानुबन्धी छे तेना चार सेह छे क्रोध, मान, माया  
 अने दोल, अन्त-अकर्तव्यनी विवेकने नष्ट करवाण्य अक्षमारूप अक्षमाने  
 चरित्राम ते क्रोध कहेवाय छे गर्भने मान कहे छे । मायाने अर्थ कपट छे । अलक्ष ते  
 दोल कहेवाय छे अनन्तानुबन्धी कषायचतुष्टयमां क्रोधने पर्वतनी राशिनु (पर्वत कषायानी

### ઉત્તરપ્રકૃતિસંખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીયાઘટવિધકર્મણામુત્તરપ્રકૃતિસંખ્યા અઘૃત્ત્વારિંશદધિકશતં ૧૪૮  
ભવન્તિ । તથાહિ—

(૧) જ્ઞાનાવરણીયસ્ય—મતિ—શ્રુતા—ઽવધિ—મનઃપર્યય—કેવલજ્ઞાનાવરણીય—  
ભેદાત્ પશ્ચ ।

(૨) દર્શનાવરણીયસ્ય—ચક્ષુર્દર્શના—ઽચક્ષુર્દર્શના—ઽવધિદર્શન—કેવલદર્શનાવર-  
ણીયાનિ ચત્વારિ, તથા—નિન્દ્રા—નિદ્રાનિદ્રા—પ્રચલા—પ્રચલાપ્રચલા—સ્ત્યાનર્દ્ધિભેદાત્  
પશ્ચ મિલિત્વા નવ ભવન્તિ ।

(૩) વેદનીયસ્ય શાતાશ્વાતભેદેન દ્વૌ ભેદૌ સ્તઃ ।

### ઉત્તરપ્રકૃતિયોંકી સંખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોંકી ઉત્તર પ્રકૃતિયોંકી સંખ્યાઈ (મધ્યમવિવક્ષા સે )  
૧૪૮ હૈં । વે હસ પ્રકાર—

(૧) જ્ઞાનાવરણીય કોં પાંચ—(૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩)  
અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મન પર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) કેવલજ્ઞાનાવરણીય ।

(૨) દર્શનાવરણીય કોં નૌ—(૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય,  
(૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રાનિદ્રા,  
(૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા-પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનર્દ્ધિ, યે પાંચ નિદ્રાઈ મિલકર કુલ નૌ  
પ્રકૃતિયૌં હૈં ।

(૩) વેદનીય કોં દો—સાતાવેદનીય ઓર અસાતાવેદનીય ।

### ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સંખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોંકી ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સંખ્યા (મધ્યમ વિવક્ષાથી)  
એકસોને અડતાલીસ (૧૪૮) છે તે આ પ્રમાણે—

(૧) જ્ઞાનાવરણીયની પાચ — (૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય,  
(૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મન પર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) કેવલજ્ઞાનાવરણીય

(૨) દર્શનાવરણીયની નવ છે (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય,  
(૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રા-નિદ્રા  
(૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા-પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનર્દ્ધિ, આ પાચ નિદ્રાઓ મળીને કુલ  
નવ પ્રકૃતિઓ થાય છે.

(૩) વેદનીયની યે (૧) સાતાવેદનીય અને અસાતાવેદનીય.



प्रत्याख्यानावरणीयत्व = अप्रत्याख्यानावरणीयम् । यद्वा-अल्पार्थो नञ्, अल्पं प्रत्याख्यानम् = अप्रत्याख्यानम्, तस्यावरणीयमिति । अल्पं = देशविरतिरूपं प्रत्याख्यानं स्माहणोति कृपायक्तुष्टयम्, तस्मात्प्रत्याख्यानावरणीयमित्युच्यते । य कृपायाः स्वल्पं देशविरतिरूपमाहणोति स सर्वविरतिरूपं प्रत्याख्यानमाहणो स्पेवेति नात्र चिप्रम् । यत्कर्मोदयादाभिर्भूताः कृपायाः केवलं विरतिमात्रमाह्वयन्ति ते स्वप्रत्याख्यानावरणीयाः कृपायाः ।

एवं प्रत्याख्यानावरणीयकृपायाः क्रोधादयमत्वारः । अत्र प्रत्याख्यान-  
 क्षमेन सर्वविरतिपरिग्रहः । य पुनः कृपायाः सर्वविरतिमेव प्रतिबन्धन्ति, न  
 तु देशविरतिं ते प्रत्याख्यानावरणीया इति ।

कहलता है । जबका 'नञ्' अल्प-अर्थ में है, जबकि अप्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कहलता है, उसका अवरणीय अप्रत्याख्यानावरणीय है । यह कृपायक्तुष्टय अप्रत्याख्यान देशविरतिरूप प्रत्याख्यान को आहत करता है, इस कारण यह अप्रत्याख्यानावरणीय कहलता है । जो कृपाय स्वल्प देशविरति को भी नहीं होने देता वह सर्वविरति को न होने दे, इस में आश्चर्य ही क्या है ? । बिस कर्म के उदय से आनिर्भूत कृपाय केवल विरतिमात्र को रोकते हैं, वे अप्रत्याख्यानावरणीय कहलते हैं ।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार प्रत्याख्यानावरणीय हैं । महा प्रत्याख्यान शब्द से सर्वविरति का म्हाण किया गया है । जो कृपाय सिर्फ सर्वविरति का ही पास करते हैं, देशविरति का नहीं वे प्रत्याख्यानावरणीय कहलते हैं ।

अप्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कहेवाय छे तेनु आवरणीय अप्रत्याख्यानावरणीय छे अत्र कृपायक्तुष्टय अप्रत्याख्यान देशविरतिरूप प्रत्याख्यानने आवृत करे छे (कौंटी रे छे) जे कृपायकी जे अप्रत्याख्यानावरणीय कहेवाय छे जे कृपाय स्वल्प देश-  
 विरतिने पक्ष यवा देवा नहीं, ते सर्वविरतिने नहि यवावे, जेभां आनिर्भूत छे ?  
 जे कर्मना उदयशी आनिर्भूत (उत्पन्न यवेला) कृपाय केवल विरतिमात्रने यवे छे,  
 ते अप्रत्याख्यानावरणीय कहेवाय छे

आ प्रभावे क्रोध आदि चार प्रत्याख्यानावरणीय छे, जदि प्रत्याख्यान शब्दकी सर्वविरतिनु अक्षय कर्तुं छे जे कृपाय, मात्र सर्वविरतिने पास करे छे, देशविरतिने नहीं, ते प्रत्याख्यानावरणीय कहेवाय छे

કપાયચતુષ્ટયે ક્રોધસ્ય પર્વતરાજિઃ, માનસ્ય શૈલસ્તમ્ભઃ, માયાયાઃ-વંશમૂલ,  
લોભસ્ય-કૃમિજરાગઃ, ઉદાહરણમ્ ।

एवमप्रत्याख्यानानावरणीयकपायाः क्रोधादयश्चत्वारः४ । तत्र प्रत्याख्यानं  
द्विविधम् - देशविरति-सर्वविरति-भेदात् । प्रत्याख्यानमित्यत्र प्रतिशब्दः । प्रति-  
पेधवाची, प्रतिपेधस्याख्यानं=प्रकाशनम्-प्रत्याख्यानम् । 'सर्वान् प्राणिनो  
न हन्मि यावज्जीवम्' इत्यादि भावतः स्वाचार्यादि समीपे  
प्रकाशनमित्यर्थः । प्रत्याख्यानस्यावरणीयम् प्रत्याख्यानानावरणीयम्, न  
प्रत्याख्यानानावरणीयम् = अप्रत्याख्यानानावरणीयम् । अत्रोपमार्थो 'नञ्' - शब्दः ।

(पर्वत फटने से उत्पन्न हुई दरार,) का, मान को शैलस्तम्भका, मायाको वांसकी जड़का  
और लोभको किरमिची रगका उदाहरण दिया गया है ।

इसी प्रकार अप्रत्याख्यानानावरण के क्रोध आदि चार भेद हैं । प्रत्याख्यान दो  
प्रकारका है-देशविरति और सर्वविरति । 'प्रत्याख्यान' शब्द में 'प्रति' उपसर्ग निषेध-  
वाचक है, अर्थात् प्रतिपेध का प्रकाश करना प्रत्याख्यान है, अर्थात् "मैं जीवनपर्यन्त किसी भी  
प्राणीकी हिंसा नहीं करूँगा" इत्यादि प्रकार से भावपूर्वक अपने आचार्य आदि के समक्ष प्रकाशित  
करना प्रत्याख्यान है । प्रत्याख्यान का आवरणीय प्रत्याख्यानानावरणीय कहलाता है । जो  
प्रत्याख्यानानावरणीय न हो वह अप्रत्याख्यानानावरणीय है । यहाँ 'नञ्' शब्द उपमा के अर्थ  
में है, अर्थात् जो कपाय प्रत्याख्यानानावरणीय के समान हो वह अप्रत्याख्यानानावरणीय

ઉત્પન્ન થયેલી કાટ-ચીર) માનને શૈલસ્તભનુ, માયાને વાસની જડનુ અને લોભને  
કિરમીચ રંગનુ ઉદાહરણ આપ્યુ છે

આ પ્રમાણે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણના ક્રોધ આદિ ચાર ભેદ છે પ્રત્યાખ્યાન બે  
પ્રકારના છે-દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિ 'પ્રત્યાખ્યાન' શબ્દમાં 'પ્રતિ' ઉપસર્ગ નિષેધ-  
વાચક છે અર્થાત્ પ્રતિપેધનો પ્રકાશ કરવો તે પ્રત્યાખ્યાન છે અર્થાત્ "હું જીવન સુધી  
કોઈ પણ પ્રાણીની હિંસા કરીશ નહીં" ઇત્યાદિ પ્રકારે ભાવપૂર્વક પોતાના આચાર્ય આદિના  
સમક્ષ પ્રકાશિત કરવું તે પ્રત્યાખ્યાન છે પ્રત્યાખ્યાન નો આવરણીય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય  
કહેવાય છે જે પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય ન હોય તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય છે અર્થે 'નજ્'   
શબ્દ ઉપમાના અર્થમાં છે અર્થાત્—જે કપાય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયની સમાન હોય તે  
અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે અથવા 'નજ્' અદપ-થોડું—એવા અર્થમાં છે અર્થાત્

प्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्टयं क्रोधस्य-बालुकाराजि, मानस्य-  
काष्ठस्तम्भः, मायाया-गच्छद्बलीषद्वैभूत्रिका, लोमस्य-सठञ्जनरागः ।

संस्मृत्तकषायचतुष्टये क्रोधस्य-सस्फिराजि, मानस्य-सृष्टस्तम्भः,  
मायाया-रथकारतसितकाष्ठसंभ्रितत्वक्, लोमस्य-रश्मिराग इति ।

नोकषायमोहनीयस्य नव मेदाः सन्ति-हास्यं, रतिः, अरति, शोकः,  
मयं, सुगुप्सा, पुरुषवेदः, स्त्रीवेदः, नपुंसकवेद इति २५ ।

(५) आयुष्यकर्म चतुर्विधम्-नारक-तैर्यग्-मानुष-देवायुर्मैदात् । यस्यो  
पयात् प्रायेण्यप्रकृतिविशेषानुशायीभूत आत्मा नारकादिभावेन जीवति, यस्य च

प्रत्याख्यानावरणीय कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण बालू में  
सींची हुई सफ़ीर है । मान का उदाहरण काष्ठ का स्तम्भ है । माया का उदाहरण चमटे हुए  
कैस के मूत्र की टेढ़ी-मेढ़ी सफ़ीर है और लोम का उदाहरण सठन-राग है ।

संस्मृत्त कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण बल में बनाई हुई  
सफ़ीर है । मान का उदाहरण तिनके का स्तम्भ है । माया का उदाहरण बर्तई द्वारा छीले हुए  
काष्ठ का शिखर है, और लोम का उदाहरण हलदी का रंग है ।

नोकषाय मोहनीय के नौ मेद हैं-हास्य रति, अरति, शोक, मय, सुगुप्सा, पुरुषवेद,  
स्त्रीवेद और नपुंसकवेद २५ ।

(५) आयुष्य कर्म के चार मेद हैं-नरकायु, त्रियंवायु, मनुष्यायु और देवायु ।  
विश्व कर्म के उदय से प्रायेण्यप्रकृतिविशेषानुशायी अर्थात् विश्व कर्म के उदय से  
उस-उस गतियोग्य प्रकृतिविशेष में स्थित आत्मा नारक आदि के रूप में जीता है

प्रत्याख्यानावरणीय कषायनी चौकड़ीनु उदाहरण-क्रोधनु उदाहरण-रेवीमां करेवी  
वीटी छे भाननु उदाहरण-काष्ठेना धासले छे भाषानु उदाहरण-चमटेना जगदीभाननु  
भूतनी बांकी-वूडी वीटी छे अने लेलनु उदाहरण-सठन-राग छे

संस्मृत्त कषायनी चौकड़ीना उदाहरण-क्रोधनु उदाहरण-बाण्णीमां करेवी वीटी  
छे भाननु उदाहरण तमजलाने धालले छे भाषानु उदाहरण चमटे द्वारा (सुत्वार  
द्वारा) छिजेला काष्ठानी जल छे अने लेलनु उदाहरण-हलदीने रंग छे

नोकषायमोहनीयना नव वेद छे-हास्य, रति अरति, शोक, मय, सुगुप्सा,  
पुरुषवेद, स्त्रीवेद, अने नपुंसकवेद २५ ।

(५) आयुष्य-कर्मना चार वेद छे-नरकायु, त्रियंवायु, मनुष्यायु अने देवायु  
ये कर्मना प्रायेण्यप्रकृतिविशेषानुशायी, अर्थात् ये कर्मना उदयमां ते-ते अतिरेण्य  
प्रकृतिविशेषमां स्थित आत्मा नारकी आदिना रूपमां लेवे छे, अने लेना हवथी भरवु

प्रत्याख्यानस्य देशविरतिसर्वविरतिरूपस्य परिणामद्वयस्योत्पत्तेर्विधा-  
तकत्वात् प्रत्याख्यानावरणीया उच्यन्ते, न तु विद्यमानस्य प्रत्याख्यानस्य  
विधातकतयेति तच्चम् ।

एवं संज्वलनकषायाः क्रोधादयश्चत्वारः ४ । समस्तसावधयोगविरतं  
संयमरतमाप यतिं दुःसहपरिपहसपाते सज्वलयन्ति=मालिन्यमापादयन्ति - इति  
संज्वलनाः । (१६) ।

अप्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्टये दृष्टान्ता उच्यन्ते—क्रोधस्य-  
तडागभूमिराजिः, मानस्यास्थिरस्तम्भः, मायायाः मेपशृङ्गः, लोभस्य कर्दमरागः ।

देशविरति और सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान की उत्पत्ति का घातक होने से इसे प्रत्या-  
ख्यानावरणीय कहते हैं, पहले से विद्यमान प्रत्याख्यान का घातक होने से नहीं ।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार सज्वलन कषाय है । सब प्रकार के सावध योग से  
निवृत्त सयम में लीन मुनि को दु सह परीषह उपस्थित होने पर जलाने वाला अर्थात् मलिनता  
उत्पन्न करने वाला कषाय सज्वलन कहलाता है ।

अप्रत्याख्यानावरणीयकषायचौकड़ी के दृष्टान्त बतलाते हैं—क्रोध का दृष्टान्त तडाग-  
भूमिराजि है, अर्थात् तालाब की भूमि फटने से उत्पन्न होनेवाली दरार के समान यह क्रोध  
होता है । मान का उदाहरण हड्डीका स्तम्भ है । मायाका उदाहरण मेढाका सींग है और  
लोभ का दृष्टान्त गाड़ी का बॉगन (गाड़ी के पैये में दिये हुए तेल का कीटा) है ।

देशविरति अने सर्वविरतिरूप प्रत्याख्याननी उत्पत्तिनु घातक होवाथी तेने  
प्रत्याख्यानावरणीय कहे छे, पड़ेवाथी विद्यमान प्रत्याख्याननु घातक होवाथी नहि.

अे प्रभाले क्रोध आदि चार सज्वलन कषाय छे, सर्व प्रकारना सावध योगथी  
निवृत्त, सयममा लीन मुनिने दुस्सह परीषह आवी प्राप्त यता जलाववावाणा अर्थात्  
मलिनता उत्पन्न करवावाणा कषाय सज्वलन कहेवाय छे

अप्रत्याख्यानावरणीय-कषाय-चौकड़ीनु दृष्टान्त बतावे छे—क्रोधनु दृष्टान्त तलावनी  
भूमिराजि छे. अर्थात् तलावनी भूमि शटवाथी उत्पन्न थयेली शट-थीरना समान  
अे क्रोध होय छे. माननु उदाहरण हड्डिकाने स्तम्भ छे. मायानु उदाहरण घेताना सींग  
छे, अने लोभनु दृष्टान्त गाड़ीनी भण्णी (गाड़ीनां पैयांमा अचायेला तेलनु क्रीट) छे

प्रत्याख्यानावरणीयकषायपक्षुष्टये क्रोपस्य-वायुकाराणि, मानस्य-  
काष्ठस्त्वम्मा, मायाया-गच्छत्बलीवर्दमूर्त्रिका, लोमस्य-स्रग्जनरागः ।

संखलनकषायपक्षुष्टये क्रोपस्य-सम्भिराणि, मानस्य-रूपस्त्वम्मा,  
मायाया-रथकारसश्लिष्ठाधसंबन्धितस्वक, लोमस्य-इन्द्रियाराग इति ।

नोकषायमोहनीयस्य नम मेदाः सन्ति-हास्य, रतिः, अरति, शोकः,  
मयं, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेदः, नपुंसकवेद इति २५ ।

(५) आयुष्यकर्म चतुर्विधम्-नारक-वैर्याग्-मानुष-देवायुर्मेदात् । यस्यो  
दयात् प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुयायीभूत आत्मा नारकादिभावेन जीवति, यस्य च

प्रत्याख्यानावरणीय कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोप का उदाहरण वायु में  
सीधी हुई अक्षर है । मान का उदाहरण काठका संमा है । माया का उदाहरण पक्षु  
के मूत्र की टेढ़ी-मेढ़ी सड़ी है और क्रोप का उदाहरण संखन-राग है ।

संखलन कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोप का उदाहरण लज में कर्पाई हुई  
अक्षर है । मानका उदाहरण तिनके का स्तम्भ है । माया का उदाहरण बर्तई हाथ छोड़े हुए  
काठका भिस्मक है, और क्रोप का उदाहरण हथड़ी का रंग है ।

नोकषाय मोहनीय के नौ भेद हैं-हास्य, रति अरति, शोक, मय, जुगुप्सा, पुरुषवेद,  
स्त्रीवेद और नपुंसकवेद २५ ।

(५) आयुष्य कर्म के चार भेद हैं-नरकायु, त्रिविधायु, मनुष्यायु और देवायु ।  
जिस कर्म के उदय से प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुयायी अर्थात् जिस कर्म के उदय से  
उस-उस गतिबोध प्रकृतिविशेष में स्थित आत्मा नारक आदि के रूप में जीता है

प्रत्याख्यानावरणीय कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोप का उदाहरण वायु में  
सीधी छे । मानका उदाहरण काठका संमा है । माया का उदाहरण पक्षु का मूत्र की  
टेढ़ी-मेढ़ी सड़ी है और क्रोप का उदाहरण संखन-राग है ।

संखलन कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोप का उदाहरण लज में कर्पाई हुई  
अक्षर है । मानका उदाहरण तिनके का स्तम्भ है । माया का उदाहरण बर्तई हाथ  
छोड़े हुए काठका भिस्मक है, और क्रोप का उदाहरण हथड़ी का रंग है ।

नोकषाय मोहनीय के नौ भेद हैं-हास्य, रति अरति, शोक, मय, जुगुप्सा,  
पुरुषवेद, स्त्रीवेद, और नपुंसकवेद २५ ।

(५) आयुष्य-कर्म के चार भेद हैं-नरकायु, त्रिविधायु, मनुष्यायु और देवायु ।  
जो कर्म के उदय से प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुयायी, अर्थात् जो कर्म के उदय से उचित  
प्रकृतिविशेष में स्थित आत्मा नारक आदि के रूप में जीता है, और जो कर्म के उदय से

ક્ષયાન્મૃત ઉચ્યતે, તદાયુઃ । યદ્વા-આનીયન્તે શેષમકૃતયઃ ઉપભોગાય જીવેન યસ્મિન્, તદાયુઃ । યથા-કાંસ્યાદિપાત્રે શાલ્યોદનવ્યઙ્જનાદયો ભોક્ત્રા ભોક્તુ-માનીયન્તે, તદ્વત્ ।

(૬) નમયતિ=પ્રાપયતિ નારકાદિસંજ્ઞાં જીવમિતિ નામ । નામકર્મ-ગહ્વિનવતિર્ભેદાઃ ભવન્તિ ।

તત્ર મૂલભેદાઃ દ્વિચત્વારિંશત્ । તથાહિ—

(૧) ગત્તિનામ, (૨) જાત્તિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અદ્જોપાદ્જનામ, (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સંઘાતનામ, (૮) સંસ્થાનનામ, (૯) સંહનનામ, (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શ-

ઔર જિસ કે ક્ષય સે મર જાતા હૈ, ઉસે આયુકર્મ કહતે હૈં । અથવા જિસ મેં જીવ ભોગને કે લિષ અન્ય પ્રકૃતિયોં કો લાતા હૈ વહ આયુ હૈ, જૈસે કાસે આદિ કે માજન મેં ઠાવલ, ઓદન, વ્યજન આદિ વસ્તુએં ભોગને વાલા પુરુષ લાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર શેષ પ્રકૃતિયોં આયુ મેં ભોગી જાતી હૈં ।

(૬) નામ-કર્મ કે તેરાનવે (૧૩) ભેદ-જો કર્મ જીવ કો નારક આદિ સજ્ઞાઓં કા પાત્ર વનાતા હૈ, વહ નામકર્મ કહલાતા હૈ । ઉસકે તેરાનવે ભેદ હૈં । ઉન મેં મી મૂલ ભેદ વચાલીસ હૈં, વે ઇસ પ્રકાર—(૧) ગત્તિનામ, (૨) જાત્તિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અદ્જોપાદ્જ-નામ, (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સઘાતનામ, (૮) સસ્થાનનામ, (૯) સહનનામ (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શનામ, (૧૪) આનુપૂર્વાનામ,

પામે છે, તેને આયુકર્મ કહે છે અથવા જેમા જીવ અન્ય પ્રકૃતિઓને ભોગવવા માટે લાવે છે તે આયુ છે જેમ કે કાસા આદિના વાસણુમા ચોખા, ભાત, વ્યજન (શાક) આદિ વસ્તુઓ ભોગવવાવાળા પુરુષ લાવે છે તે પ્રમાણે શેષ-પ્રકૃતિઓ આયુમા ભોગવાય છે.

(૬) નામકર્મના ત્રાણુ (૯૩) ભેદ છે જે કર્મ જીવને નારકી આદિ સજ્ઞાઓતુ પાત્ર બનાવે છે, તે નામકર્મ કહેવાય છે, તેના ત્રાણુ (૯૩) ભેદ છે તેમા પશુ મૂલ ભેદ છે તાલીસ છે તે આ પ્રમાણે—(૧) ગત્તિનામ, (૨) જાત્તિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અગોપાગ-નામ, (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સઘાતનામ, (૮) સસ્થાનનામ, (૯) સહનનામ, (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શનામ, (૧૪) આનુપૂર્વાનામ, (૧૫)

नाम, (१४) आनुपूर्वीनाम, (१५) अगुस्त्वनाम, (१६) उपधातनाम, (१७) परधातनाम, (१८) आत्मनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विद्यायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम, (२४) प्रसनाम, (२५) स्थावरनाम, (२६) सुमगनाम, (२७) दुर्ममनाम, (२८) सुस्वनाम, (२९) दुस्वनाम, (३०) शुमनाम, (३१) अशुमनाम, (३२) सुमनाम, (३३) बाधनाम, (३४) पर्याप्तनाम (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७) अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यज्ञोनाम, (४१) अयज्ञोनाम, (४२) तीर्थानुनाम ।

पठे मूलशेषः पिण्डप्रकृतिनाम्नापि कथ्यन्ते । अत्र गत्यादिषु पूर्वपिण्डप्रकृतीनामुपरप्रकृतयः— पञ्चपष्टिः (६५) ।

(१५) अगुस्त्वनाम, (१६) उपधातनाम, (१७) परधातनाम, (१८) आत्मनाम (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विद्यायोगतिनाम (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम, (२४) प्रसनाम, (२५) स्थावरनाम (२६) सुमगनाम (२७) दुर्ममनाम, (२८) सुस्वनाम (२९) दुस्वनाम, (३०) शुमनाम, (३१) अशुमनाम, (३२) सुमनाम, (३३) बाधनाम, (३४) पर्याप्तनाम (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७) अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम (३९) अनादेयनाम, (४०) यज्ञोनाम, (४१) अयज्ञोनाम, और (४२) तीर्थानुनाम—कर्म ।

इन ब्याख्यीस प्रकृतियों में बिन प्रकृतियों के अन्तर में हैं, उन्हें पिण्ड प्रकृति कहते हैं । गति अदि पौष्टिक पिण्डप्रकृति हैं और उनके पँसठ (६५) में होते हैं ।

अगुस्त्वनाम, (१६) उपधातनाम, (१७) परधातनाम, (१८) आत्मनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्वासनाम, (२१) विद्यायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम, (२४) प्रसनाम, (२५) स्थावरनाम, (२६) सुमगनाम, (२७) दुर्ममनाम, (२८) सुस्वनाम, (२९) दुस्वनाम (३०) शुमनाम, (३१) अशुमनाम, (३२) सुमनाम, (३३) बाधनाम, (३४) पर्याप्तनाम, (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७) अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यज्ञोनाम, (४१) अयज्ञोनाम, (४२) तीर्थानुनाम—कर्म

आ मे तादीस प्रकृतियों में ७ प्रकृतियों अन्तर में से ७ तेने पिण्डप्रकृति में से ७ प्रति आदि और पिण्डप्रकृतियों ७ अने/पाँसठ (६५) तेने से से ७

[१] गतिनाम्नः पिण्डप्रकृतेश्चत्वारो भेदाः— नरकगतिनाम, तिर्यग्गतिनाम, मनुष्यगतिनाम, देवगतिनाम च ।

[२] जातिनाम्नो भेदाः पञ्च— एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम, पञ्चेन्द्रियजातिनाम ।

[३] शरीरनाम पञ्चविधम्—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कर्मणशरीरनाम ।

[४] अद्भान्युपाङ्गानि च यस्य कर्मण उदयाद्भवन्ति, तदद्भोपाङ्गनामकर्म । तत् त्रिविधम्—औदारिक—वैक्रियका—ऽऽहारक—भेदात् । तत्राद्भान्यष्टौ—उरः, शिरः,

[१] गतिनामकर्म के चार भेद—नरकगतिनामकर्म, तिर्यग्गतिनामकर्म, मनुष्यगतिनामकर्म और देवगतिनामकर्म ।

[२] जातिनामकर्म के पाच भेद हैं—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम और पञ्चेन्द्रियजातिनाम—कर्म ।

[३] शरीरनामकर्म के पाच भेद हैं—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम और कर्मणशरीरनाम—कर्म ।

[४] जिस कर्म के उदय से अङ्ग और उपाङ्ग होते हैं वह अद्भोपाङ्गशरीरनामकर्म कहलाता है । उसके तीन भेद हैं औदारिक—अद्भोपाङ्ग, वैक्रिय—अद्भोपाङ्ग और आहारक अद्भोपाङ्ग । इन में अङ्ग आठ होते हैं—छाती, शिर, पीठ, पेट, दो हाथ और दो पैर । वन्दना करने में पाच अङ्ग प्रशस्त माने जाते हैं—दो पैर, दो हाथ, और शिर । यहाँ

(१) गतिनामकर्मना चार भेद—नरकगतिनामकर्म, तिर्यग्गतिनामकर्म, मनुष्यगतिनामकर्म અને देवगतिनाम—कर्म ।

(२) जातिनामकर्मना पाच भेद छे—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रियजातिनाम, चतुरिन्द्रियजातिनाम, અને पञ्चेन्द्रियजातिनाम—कर्म ।

(३) शरीरनामकर्मना पाच भेद छे—औदारिकशरीरनाम, वैक्रियशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, અને कर्मणशरीरनाम—कर्म ।

जे कर्मना उदयशी अग અને उपाग थाय छे ते अगोपागशरीरनामकर्म कहेवाय छे तेना त्रयु भेद छे औदारिकअगोपाग, वैक्रियअगोपाग અને आहारकअगोपाग तेमा अग आठ डोय छे—छाती, शिर, पीठ, पेट जे हाथ અને जे पग वन्दना करवाभा पाय अग प्रशस्त मान्या छे जे पग जे हाथ અને शिर—माथु । यहाँ



पृष्ठम्, उदरं, कर्तौ, पादौ च । बन्दने तु पञ्चाङ्गान्येव प्रशस्तानि— द्वौ चरणौ, द्वौ कर्तौ, शिरभेति । एतत् चर्यावित्पनेन भातुनी सुष्ठेते । एतानि पञ्चाङ्गानि मृमा शारोप्य बन्दनं पञ्चाङ्गबन्दनम् । अष्टानामङ्गानामेकैकस्योपाङ्गमनेकप्रकारम्, एतद् द्विरोङ्गस्योपाङ्गनामानि— यथा— मस्तिष्क— कपाल— कृकाटिका— घञ्— ललाट— ताड— कपोल— हनु— चिबुक— दक्षिणौ— वट— भू— नयन— कर्म— नासादीनि । एतद् मस्तिष्कं द्विरोङ्गस्यारम्भकोऽवयवः ।

ननु मस्तिष्कं बाहुविशेषो न त्वङ्गं नाप्युपाङ्गम् ? इति चेत्, उच्यते— कपालादिषु द्विरोङ्गस्यारम्भकत्वान्मस्तिष्कमप्युपाङ्गं शिरसोऽङ्गान्तम्याम् ।

स्वावरपञ्चके सूरभ्रमृवीन्यङ्गानि न सन्ति ।

पैरो का अमिप्राय पुटन्य समन्वय चादिप । इन पांशो अङ्गो को मूमि पर टिका कर बन्दन करना पञ्चाङ्गबन्दन है । इन आठों अङ्गों में से प्रत्येक अङ्ग के अनेक उपाङ्ग हैं । उन में से शिरअङ्ग के उपाङ्ग इस प्रकार हैं— मस्तिष्क, कपाल, कृकाटिका, घञ्ज, ललाट, ताड, कपोल, हनु, दाही, चिबुक (ठोड़ी) दांत थोठ मौह, नेत्र कान, नाक, आदि । मस्तिष्क, शिररूप अङ्ग का आरम्भक अवयव है ।

मस्तिष्क एक प्रकार की बाहु है, अङ्ग नहीं है और न उपाङ्ग ही है' इसका समाधान यह है कि— कपाल आदि के समान शिररूप अङ्गका आरम्भक होने के कारण मस्तिष्क शिर का उपाङ्ग ही है ।

पांच स्थावरों में छाटी आदि अङ्ग नहीं होते ।

यनेन अविप्रथम पुटलु समन्वयु बोधये. न्य पांच अङ्गोने अविप्रथ अङ्गोने बन्दना करवी ते चर्यां बन्दना छे. न्य आठे अविप्रथो प्रत्येक अङ्गना अनेक उपाङ्ग छे तेभांशी शिर-अङ्गना उपाङ्ग न्य प्रभावे छे— मस्तिष्क कपाल, कृकाटिका (श्रीवाने उन्नत देह) शय (कर्मसमीपतु अस्ति) ललाट ताड, जाह, दाही, चिबुक (दहपवी पथेने छाल् अये) दात, थोठ, मौह, नेत्र, कान, नाक आदि. मस्तिष्क शिररूप अङ्गनु आरम्भक अवयव छे

मस्तिष्क अनेक प्रकारनी बाहु छे, अङ्ग नहीं अने प्रयोज पद्य नहीं तेनु समाधान अे छे— कपाल आदि प्रभावे शिररूप अङ्गनु आरम्भक बन्दनना कारणे मस्तिष्क शिरनु उपाङ्ग छे

पांच स्थावरोंमें छाटी आदि अङ्ग नहीं

(५) शरीरनामकर्मोदयाद् गृहीतेषु गृह्यमाणेषु वा तद्योग्यपुद्गलेष्वात्म-  
प्रदेशस्थितेषु शरीराकारेण परिणामितेष्वपि जतुकाष्ठवत् परस्परमवियोगलक्षणं  
वन्धननाम । यदीदं न स्यात् ततो बालुकापुस्पवद् विवटितानि शरीराणि स्युः ।  
वन्धननाम पञ्चधा—औदारिकादिभेदात् ।

(६) काष्ठपिण्डमृत्पिण्डाद्यःपिण्डवत् वद्धानामपि पुद्गलानां संघातविशेष-  
जनकं संघातनाम । यदि-संघातनामरूपः-कर्मभेदो न स्यात्तर्हि पुरुषयोपिद्-  
गवादिरूपनानाशरीरभेदो न स्यात् । संघातविशेषजनकाऽन्यकर्मविशेषाभावात् ।

[५] शरीरनामकर्म के उदय से ग्रहण किये हुए या ग्रहण किये जाते हुए आत्म-  
प्रदेशों में स्थित और शरीर के आकार परिणत किये हुए शरीर के योग्य-पुद्गलों में लक्ष  
और लकड़ी के समान परस्पर अवियोग होना वन्धननामकर्म है, अगर वन्धननामकर्म न  
होता तो बालू से बनाये हुए पुरुष के समान विखर जाता । औदारिक आदि के भेद से  
वन्धन के भी पांच भेद हैं ।

[६] काष्ठपिण्ड, मृत्पिण्ड या लोह के पिण्ड के समान बद्ध पुद्गलों में भी एक  
विशेष प्रकार का संघात (घनिष्ठता) उत्पन्न करने वाला कर्म संघातनामकर्म कहलाता  
है, और संघातनामकर्म न होता तो पुरुष स्त्री गो आदिरूप भेद शरीर में न होता,  
क्यों कि संघातविशेष उत्पन्न करने वाला अन्य कर्म ही नहीं है । कार्य, कारण जैसा

(५)-शरीरनामकर्मना-उदयधी-अदृश्य करेला-अथवा-अदृश्य-करवाभा-आवता  
आत्मप्रदेशोभा स्थित अने शरीरना आकारे परिणत करेला शरीरना ज्यैष्ठ्य पुद्गलौभा  
लाभ अने लकडीना समान अवियोग होवुं ते अ धननामकर्म छे अथवा अ धननाम  
कर्म न होत तो रेतीधी अनावेला पुद्गली-समान विचेराछ जात. औदारिक आदिना  
वेदधी अ धनना पद्य पात्र वेद छे

(६) काष्ठपिण्ड, मृत्पिण्ड, अथवा लोहाना पिण्ड समान बद्ध पुद्गलौभा पद्य  
श्रेष्ठ विशेष प्रकारना संघात (घनिष्ठता) उत्पन्न करवावाणा कर्म ते संघात-  
नामकर्म कहेवाय छे अथवा संघातनामकर्म न होय तो पुद्ग, स्त्री, गाय आदि  
रूपवेद शरीरभा होय नहि करवुके संघात-विशेष उत्पन्न करवावाणा अन्य कर्म नथी

धारगानुस्यं हि कार्यं दृष्टम् । संघातविशेषादेव हि विभागेन पुरुपादिशरीरस्यपदेशी भवति । संघातनाम पञ्चधा-औदारिकादिभेदात् ।

[७] पच्यमानेषु शरीरयोग्यपुद्गलेषु यस्य कर्मण उदयात् आकाश-विशेषो भवति तत् संस्थाननाम । एतच्च पञ्चविधम्-(१) समचतुरस्रनाम-(२) न्यग्रोपपरिमण्डलनाम-(३) सादिनाम-(४) कुम्भनाम-(५) वामननाम-(६) हुण्डनाममेवात् ।

[८] सहननाम-अस्त्रां पच्यविशेषः । एष पञ्चविधम्-(१) वज्रर्मनाराचनाम, (२) अर्धवज्रर्मनाराचनाम, (३) नाराचनाम, (४) अर्धनाराचनाम, (५) कीलिकानाम, (६) सेवार्थनाम च ।

ही होता है । संघात की मित्रता के कारण ही शरीरों में जी, पुरुष आदिका भेद-स्यन्धार होता है । औदारिक आदि के भेद से संघात भी पांच प्रकार का है ।

[७] जबि जाते हुए शरीरयोग्य पुद्गल में किस कर्म के उदय से आकाश-विशेष बनता है उसे संस्थाननामकर्म कहते हैं । संस्थान छह प्रकारका है—

(१) समचतुरस्र-संस्थान, (२) न्यग्रोपपरिमण्डल-संस्थान, (३) सादि-संस्थान, (४) कुम्भक-संस्थान (५) वामन-संस्थान, (६) हुण्डक-संस्थान ।

[८] अस्त्रियों के पच्यविशेष को सहननामकर्म कहते हैं । उसके छह भेद हैं—(१) वज्रर्मनाराच-संहनन (२) अर्धवज्रर्मनाराच-सहनन (३) नाराच-संहनन (४) अर्धनाराच-संहनन, (५) कीलिका-सहनन और (६) सेवार्थ-सहनन ।

कर्म कास्य चेत्तत्रोद्योय छे संघातनी निन्ताना कारयेत् शरीरिभां जी, पुरुष आदिना सेद-स्यन्धार डोय छे औदारिक आदिना सेदभी संघात पच्य पांच प्रकारना छे

(७) जधाता शरीरयोग्य पुद्गलौर्मा के कर्मना उदयधी आकृतिविशेष जने छे तेने संस्थाननामकर्म कहे छे संस्थान छ प्रकारना छे—(१) समचतुरस्र-संस्थान, (२) न्यग्रोपपरिमण्डल-संस्थान, (३) सादि-संस्थान, (४) कुम्भक-संस्थान, (५) वामन-संस्थान (६) हुण्डक-संस्थान

(८) अस्त्रियोना जधविशेषने सहननामकर्म कहे छे तेना छ सेद छे—(१) वज्रर्मनाराचसहनन, (२) अर्धवज्रर्मनाराचसहनन, (३) नाराचसहनन, (४) अर्धनाराचसहनन, (५) कीलिकासहनन जने (६) सेवार्थसहनन

(૯) ઔદારિકાદિષુ શરીરેષુ यस્ય કર્મણ ઉદયાત્ કર્કશાદિઃ સ્પર્શ-વિશેષો જાયતે, તત્ સ્પર્શનામ । સ્પર્શનામાષ્ટયા-કર્કશ-મૃદુ-ગુરુ-લઘુ-સ્નિગ્ધ-રુક્ષ-શીતો-ઘ્નાનામભેદાત્ ।

(૧૦) રસનામ પશ્ચવિધમ્-તિક્ત-કટુ-કપાયા-ઝલ્-મધુરભેદાત્ । લવણો મધુરાન્તર્ગત ઇતિ કેચિત્ ।

(૧૧) શરીરવિપય સૌરમં દુર્ગન્ધિત્વં ચ यस્ય કર્મણો વિપાકાન્નિર્વર્તતે, તદ્ ગન્ધનામ । ગન્ધનામ દ્વિવિધમ્-સુગન્ધ-દુર્ગન્ધભેદાત્ ।

(૧૨) યસ્યોદયાચ્છરીરેષુ કૃષ્ણાદિપશ્ચવિધવર્ણનિષ્પત્તિર્ભવતિ તદ્ વર્ણનામ, તત્ પશ્ચવિધમ્-કૃષ્ણ-નીલ-લોહિત-પીત-શુક્લભેદાત્ । સર્વાણિ ચૈતાનિ સ્પર્શના-માદીનિ વર્ણનામાન્તાનિ શરીરવર્તિષુ પુદ્ગલેષુ પરિણતાનિ ભવન્તિ ।

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરો મેં જિસ કર્મ કે ઉદય સે કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન હોતા હૈ ઉસે સ્પર્શનામકર્મ કહતે હૈં । સ્પર્શનામકર્મ આઠ પ્રકાર કા હૈ-કઠોર, કોમલ, ભારી, હલ્કા, ચિકના, રુસ્તા, શીત, ઔર ઉષ્ણ ।

(૧૦) રસનામકર્મ પાંચ પ્રકાર કા હૈ-તીલા, કડુવા, કસૈલા, સ્વદા ઔર મીઠા । કિસી કે મત સે લવણ મધુર રસ કે અન્તર્ગત હૈ ।

(૧૧) જિસ કર્મ કે ઉદય સે શરીર મેં સુગન્ધ યા દુર્ગન્ધ ઉત્પન્ન હોતી હૈ ઉસે ગન્ધ-નામકર્મ કહતે હૈં । ઉસકે દો ભેદ હૈં-સુગન્ધનામ ઔર દુર્ગન્ધનામ ।

(૧૨) જિસ કર્મ કે ઉદય સે શરીરો મેં કૃષ્ણ આદિ પાંચ વર્ણો કી ઉત્પત્તિ હોતી હૈ, વહ વર્ણનામકર્મ હૈ । ઇસ કે પાંચ ભેદ હૈં-કૃષ્ણ, નીલ, રક્ત, પીત ઔર શુક્લ, સ્પર્શ સે લેકર વર્ણ તક યે સબ, શરીરવર્તી પુદ્ગલો મેં હી પરિણત હોતે હૈં ।

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરોમા જે કર્મના ઉદયથી કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન થાય છે તેને સ્પર્શનામકર્મ કહે છે સ્પર્શનામકર્મના આઠ પ્રકારના છે-કઠોર, કોમલ, ભારી, હલકો, ચિકણો રૂખો, શીત અને ઉષ્ણ.

(૧૦) રસનામકર્મ પાંચ પ્રકારે છે-તીજો, કડવો, કસાએલો, ખાટો અને મીઠો કેટલાકના મતથી લવણ મધુર રસની અન્તર્ગત છે

(૧૧) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા સુગંધ અથવા દુર્ગંધ ઉત્પન્ન થાય છે. તેને ગંધનામકર્મ કહે છે તેના બે ભેદ છે-સુગંધનામ અને દુર્ગંધનામ

(૧૨) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા કૃષ્ણ આદિ પાંચ વર્ણોની ઉત્પત્તિ થાય છે તે વર્ણનામકર્મ કહેવાય છે તેના પાંચ ભેદ છે-કાળો, નીલો, રાતો, પીળો અને ઘોળો સ્પર્શથી લઇને વર્ણ સુધી એ બધાય શરીરવર્તી પુદ્ગલોમાજ પરિણત થાય છે

(१३) नारकादिगतिं गन्तुरन्तर्गतौ पर्वमानस्य तदभिमुखमानुष्यां  
[वच्छेदक्रमेण] तद्यत्प्रापणसमर्थात्पुर्वीनाम । गत्यन्तरं गन्तव्यो जीवस्य यत्कर्मोदपाद्  
विशेषेण तद्वतमानुष्यं स्यात्, तदपि-आनुपूर्वीशब्दवाच्यं भवति । यथा-बारिवेगो  
बलीवर्द्धादिः, यथा वा नस्योतस्य बलीवर्द्धस्य नासारज्यां प्रतिबद्धा रज्जुः, तथाऽऽनु-  
पूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकत्वयोपग्रहस्वरूपम् ।

अन्तर्गतिश्च यावन्मनुष्यो नरकादिवाच्यमुत्पत्तिस्थानं न प्राप्नोति ताव-  
त्काष्ठीकी गतिः । सा त्रिषिपा-श्रज्जी, यत्र च । तत्र यदा श्रज्ज्या समय

(११) नरक आदि गति में जाने वाला जीव-जो कि अन्तर्गति (विग्रहगति) में  
सर्वमान है, उसको उस नरक आदि गतियों की ओर अभिमुख करके आनुपूर्वी से अर्थात्  
उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुचाने में जो कर्म समर्थ होता है, उस कर्म को  
आनुपूर्वीकर्म कहते हैं । यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि-  
गत्यन्तर में अर्थात् हुए जीव को जिस कर्म के उदय होने पर उस गति में उस उस स्थान  
के क्रम से जाना होता है, इस लिये उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं । जैसे एकद्वार  
प्रवाह केकरो अपनी ओर सींच देता है । मज्जा जैसे गाड़ीवान केकरो नाच पकड़ कर  
अपनी ओर मोड़ देता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म-जोवने जिस गतिकी कर्म बाधा है उस  
गति में उसको पहुँचा देता है, इस लिये वह गति में पहुँचाने के लिये सरासरी है ।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोड़कर नरक आदि किसी गति में  
नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् जीवकी गतिकी अन्तर्गति-विग्रहगति-कहते हैं ।  
वह दो प्रकार की है-सरस और कक । जीव जब एकसमयप्रमाणवाली सरस (सीधी)

(१३) नरक आदि जतिमां ल्यावाणा एव नो हे-अन्तर्गति (विग्रहजति)मां  
पर्वमानं छे तेने ते नरक आदि जतिकोनी तरक अभिमुख करीने आनुपूर्वीकी अर्थात्  
ते ते स्थानना कर्मणी ते ते जतिकोमां पडोवाडवामां ने कर्म समर्थ होय छे ते कर्मने आनु  
पूर्वी कर्म कहे छे जे हे आनुपूर्वी शब्दने अर्थ ते ते स्थानने कर्म, जेवे छे ते  
पक्ष अत्य-तरमां अते एवने ने कर्मने उदय भवाणी ते जतिमां ते ते स्थानना  
कर्मणी अनु होय छे आठवा भाटे ते कर्मने आनुपूर्वी कहे छे जेम पाणीने प्रवाह  
जारीवाने पीतानी तरक जेभी ते छे, जखवा जेम आदीबायां जजरीवाने तेनी नाच चकरीने  
पीतानी आनु मीठी ते छे तेव प्रभावे आनुपूर्वीकर्म-एव ने अतिनु कर्म लांधु  
छे ते जतिमां तेने पडोवाडी हे छे भाटे ते जतिमां पडोवाडवाने भाटे सदायक छे  
ज्यां मुभी मनुष्य पीतानी मनुष्यजतिने मुझिने नरक आदि जीव जतिमां नभी  
पडोवाये । त्वां मुभीनी अर्थात् पक्षी जतिने अन्तर्गति-विग्रहजति कहे छे, ते छे  
प्रभरनी होय छे-सरस जने पक. एव ज्यारै जेकसमयप्रमाणवाली सरस (सीधी) जतिभी

(૯) ઔદારિકાદિષુ શરીરેષુ યસ્ય કર્મણ ઉદયાત્ કર્કશાદિઃ સ્પર્શ-વિશેષો જાયતે, તત્ સ્પર્શનામ । સ્પર્શનામાષ્ટયા-કર્કશ-મૃદુ-ગુરુ-લઘુ-સ્નિગ્ધ-રુક્ષ-શીતો-ષ્ણનામભેદાત્ ।

(૧૦) રસનામ પञ્ચવિધમ્-તિક્ત-કટુ-કપાયા-ઞ્મલ-મધુરભેદાત્ । લવણો મધુરાન્તર્ગત ઇતિ કેચિત્ ।

(૧૧) શરીરવિપયં સૌરમં દુર્ગન્ધિત્વં ચ યસ્ય કર્મણો વિપાકાન્નિર્વર્તે, તદ્ ગન્ધનામ । ગન્ધનામ દ્વિવિધમ્-સુગન્ધ-દુર્ગન્ધભેદાત્ ।

(૧૨) યસ્યોદયાઞ્છરીરેષુ કૃષ્ણાદિપञ્ચવિધવર્ણનિષ્પત્તિર્ભવતિ તદ્ વર્ણનામ, તત્ પञ્ચવિધમ્-કૃષ્ણ-નીલ-લોહિત-પીત-શુક્લભેદાત્ । સર્વાણિ ચૈતાનિ સ્પર્શના-માદીનિ વર્ણનામાન્તાનિ શરીરવર્તિષુ પુદ્ગલેષુ પરિણતાનિ ભવન્તિ ।

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરો મેં જિસ કર્મ કે ઉદય સે કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન હોતા હૈ ઉસે સ્પર્શનામકર્મ કહતે હૈં । સ્પર્શનામકર્મ આઠ પ્રકાર કા હૈ-કઠોર, કોમલ, ભારી, હલ્કા, ચિકના, રુસ્વા, ગીત, ઔર ઉષ્ણ ।

(૧૦) રસનામકર્મ પાચ પ્રકાર કા હૈ-તીચ્છા, કડુવા, કસૈલા, સ્વદા ઔર મીઠા । કિસી કે મત સે લવણ મધુર રસ કે અન્તર્ગત હૈ ।

(૧૧) જિસ કર્મ કે ઉદય સે શરીર મેં સુગન્ધ યા દુર્ગન્ધ ઉત્પન્ન હોતી હૈ ઉસે ગન્ધનામકર્મ કહતે હૈં । ઉસકે દો ભેદ હૈં-સુગન્ધનામ ઔર દુર્ગન્ધનામ ।

(૧૨) જિસ કર્મ કે ઉદય સે શરીરો મેં કૃષ્ણ આદિ પાંચ વર્ણો કી ઉત્પત્તિ હોતી હૈ, વહ વર્ણનામકર્મ હૈ । હસ કે પાંચ ભેદ હૈં-કૃષ્ણ, નીલ, રક્ત, પીત ઔર શુક્લ, સ્પર્શ સે લેકર વર્ણ તક યે સવ, શરીરવર્તી પુદ્ગલો મેં હી પરિણત હોતે હૈં ।

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરોમા બે કર્મના ઉદયથી કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન થાય છે તેને સ્પર્શનામકર્મ કહે છે સ્પર્શનામકર્મના આઠ પ્રકારના છે-કઠોર, કોમલ, ભારી, હલકો, ચિકણો રૂખો, શીત અને ઉષ્ણ.

(૧૦) રસનામકર્મ પાચ પ્રકારે છે-તીચ્છો, કડવો, કસાએલો, ખાટો અને મીઠો ક્રેટલાકના મતથી લવણ મધુર રસની અન્તર્ગત છે

(૧૧) બે કર્મના ઉદયથી શરીરમા સુગન્ધ અથવા દુર્ગન્ધ ઉત્પન્ન થાય છે. તેને ગન્ધનામકર્મ કહે છે તેના બે ભેદ છે-સુગન્ધનામ અને દુર્ગન્ધનામ

(૧૨) બે કર્મના ઉદયથી શરીરમા કૃષ્ણ આદિ પાચ વર્ણોની ઉત્પત્તિ થાય છે તે વર્ણનામકર્મ કહેવાય છે તેના પાચ ભેદ છે-કાળો, નીલો, રાતો, પીળો અને ઘેળો. સ્પર્શથી લઇને વર્ણ સુધી એ અધાય શરીરવર્તી પુદ્ગલોમાજ પરિણત થાય છે.

(११) नारकादिगतिं गन्तुरन्तर्गतौ पर्वमानस्य तदभिमुखमानुपूर्व्या [तच्छेषकमेव] तत्तत्प्रापणसमर्पमानुपूर्वीनाम । अस्पन्तरे गच्छतो जीवस्य यत्कर्मोदपक्ष विक्षेपेन तद्गमनानुगुण्यं स्यात्, तदपि—आनुपूर्वीशब्दशान्त्यं भवति । यथा—शारिवेगो बलीश्वरिः, यथा वा नस्योतस्य बलीश्वरस्य नासारब्ध्यां प्रतिपदा रज्जुः, तथाऽऽनुपूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकतयोपग्रहस्वरूपम् ।

अन्तर्गतिश्च पापन्मनुष्यो नरकादिष्वान्यमृत्युत्तिष्ठान न मामोति तान् स्थानिकी गतिः । सा द्विषिषा—शुद्धी, यथा च । तत्र यदा श्रुत्या समप-

(११) नरक आदि गति में जाने वाला जीव—जो कि अन्तर्गति (निष्कृजति) में वर्तमान है, उसके उस नरक आदि गतियों की ओर अभिमुख करने आनुपूर्वी से अर्थात् उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुँचाने में जो कर्म समर्प होता है, उस कर्म को आनुपूर्वीकर्म कहते हैं । यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि—गत्यन्तर में जाते हुए जीव को जिस कर्म के उद्भव होने पर उस गति में उस उस स्थान के क्रम से जाना होता है, इस क्रिये उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं । जैसे एकका प्रवाह बैलको अपनी ओर सींच करता है । अथवा जैसे गाड़ीमान बैलको नाब पकड़ कर अपनी ओर मोड़ केता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म—जीवने जिस गतिकी कर्म बाँपा है उस गति में उसको पहुँचा देता है, इस क्रिये वह गति में पहुँचाने के क्रिये सहायक है ।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोड़कर नरक आदि किसी गति में नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् जीवकी गतिकी अन्तर्गति—निष्कृजति—कहते हैं । वह जो प्रकार की है—सख और बुरा । जीव जब एकसमयप्रमाणवासी सख (सीधी)

(१३) नरक आदि अतिमां अप्पावाणा एव जे हे—अन्तर्गति (निष्कृजति)मां वर्तमान छे तेने ते नरक आदि अतिजोनी तरक आदिमुप उरिने आनुपूर्वीची अर्थात् ते ते स्थानना कर्मची ते ते अतिजोमां पडोवाडवाभां जे कर्म समर्प होव छे ते कर्मने आनुपूर्वी कर्म कहे छे जे हे आनुपूर्वी शब्दने अर्थ ते ते स्थानने कर्म, जेवे छे ते पक्ष अन्तर्गतमां जते एवने जे कर्मने उद्भव वनाची ते अतिमां ते ते स्थानना कर्मची अर्थ होव छे, आदिक्य भाटे ते कर्मने आनुपूर्वी कहे छे जे म पक्षीने प्रवाह जगदीवाने पितानी तरक जेची ते छे, अथवा जे म आदीवाणे जगदीवाने तेनी नाब पकडीने पितानी आनु श्राद्धी ते छे ते म प्रभावे आनुपूर्वीकर्म—एव जे अतिनु कर्म जांधु छे ते अतिमां तेने पडोवाडी ते छे भाटे ते अतिमां पडोवाडवाने भाटे सहायक छे जे म सुधी मनुष्य पितानी मनुष्यगतिने भुजिने नरक आदि जीव अतिमां नशी पडोवाणे त्मां सुधीनी अर्थात् बबडी अतिने अन्तर्गति—निष्कृजति कहे छे, ते छे प्रकृतनी होव छे—सख जने पक्ष एव अथवा जे कसमयप्रमाणवाणी सख (सीधी) अतिची

(९) औदारिकादिषु शरीरेषु यस्य कर्मण उदयात् कर्कशादिः स्पर्श-  
विशेषो जायते, तत् स्पर्शनाम । स्पर्शनामाष्टया-कर्कश-मृदु-गुरु-लघु-स्निग्ध-  
रूक्ष-शीतो-ष्णनामभेदात् ।

(१०) रसनाम पञ्चविधम्-तिक्त-कटु-कपाया-ज्वल-मधुरभेदात् । लवणो  
मधुरान्तर्गत इति केचित् ।

(११) शरीरविषयं सौरभं दुर्गन्धित्वं च यस्य कर्मणो विपाकान्निर्वर्तते, तद्  
गन्धनाम । गन्धनाम द्विविधम्-सुगन्ध-दुर्गन्धभेदात् ।

(१२) यस्योदयाच्छरीरेषु कृष्णादिपञ्चविधवर्णनिष्पत्तिर्भवति तद् वर्णनाम,  
तत् पञ्चविधम्-कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्लभेदात् । सर्वाणि चैतानि स्पर्शना-  
मादीनि वर्णनामान्तानि शरीरवर्तिषु पुद्गलेषु परिणतानि भवन्ति ।

(९) औदारिक आदि शरीरों में जिस कर्म के उदय से कठोर आदि स्पर्श उत्पन्न  
होता है उसे स्पर्शनामकर्म कहते हैं । स्पर्शनामकर्म आठ प्रकार का है-कठोर, कोमल, भारी,  
हल्का, चिकना, रूखा, शीत, और उष्ण ।

(१०) रसनामकर्म पांच प्रकार का है-तीखा, कड़वा, कसैला, खट्टा और मीठा ।  
किसी के मत से लवण मधुर रस के अन्तर्गत है ।

(११) जिस कर्म के उदय से शरीर में सुगन्ध या दुर्गन्ध उत्पन्न होती है उसे गन्ध-  
नामकर्म कहते हैं । उसके दो भेद हैं-सुगन्धनाम और दुर्गन्धनाम ।

(१२) जिस कर्म के उदय से शरीरों में कृष्ण आदि पांच वर्णों की उत्पत्ति होती है,  
वह वर्णनामकर्म है । इस के पांच भेद हैं-कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल, स्पर्श से लेकर  
वर्ण तक ये सब, शरीरवर्तियों पुद्गलों में ही परिणत होते हैं ।

(९) औदारिक आदि शरीरोंमा जे कर्मना उदयथी कठोर आदि स्पर्श उत्पन्न  
थाय छे तेने स्पर्शनामकर्म कडे छे स्पर्शनामकर्मना आठ प्रकारना छे-कठोर, कोमल,  
भारी, हलका, चिकना, रूखा, शीत अने उष्ण.

(१०) रसनामकर्म पांच प्रकारे छे-तीखा, कड़वा, कसैला, मीठा अने मीठा  
केटलाकना मतथी लवण मधुर रसनी अन्तर्गत छे

(११) जे कर्मना उदयथी शरीरमा सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध उत्पन्न थाय छे,  
तेने गन्धनामकर्म कडे छे तेना जे दो भेद छे-सुगन्धनाम अने दुर्गन्धनाम

(१२) जे कर्मना उदयथी शरीरमा कृष्ण आदि पांच वर्णोंनी उत्पत्ति थाय छे ते  
वर्णनामकर्म कडेवाय छे तेना पांच भेद छे-कृष्ण, नीला, रक्ता, पीला अने धोला.  
स्पर्शथी लवण मधुर सुधी अने अधाय शरीरवर्तियों पुद्गलोंमा परिणत थाय छे.



(१३) नारकादिगति गन्तुरन्तर्गतौ बर्तमानस्य तदभिमुखस्मानुपूर्व्या [तत्पक्षक्रमेण] तत्पक्षपक्षसमर्पमानुपूर्वीनाम् । गत्यन्तरं गन्तव्यो जीवस्य यत्कर्मादिसात् विद्यमेव तद्गमनानुगुण्यं स्यात्, तदपि-आनुपूर्वीशब्दवाच्यं भवति । यथा-चारिवेगो बलीश्वरः, यथा वा नस्योतस्य बलीश्वरस्य नासारज्ज्वा प्रतिबद्धा रज्जुः, तथाऽऽनुपूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकतयोपग्रहस्वरूपम् ।

अन्तर्गतिषु पावनमनुष्यो नरकादिवाच्यमुत्पत्तिस्थानं न प्राप्नोति ताप-  
त्पक्षिकी गतिः । सा द्विविधा-ऋज्वी, वक्रा च । तत्र यदा ऋज्व्या समस

(११) नरक आदि गति में जाने वाला जीव-जो कि अन्तर्गति (विग्रहगति) में वर्तमान है, उसको उन नरक आदि गतियों की ओर अभिमुख करके आनुपूर्वी से अर्थात् उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुँचाने में जो कर्म समर्थ होता है, उस कर्म को आनुपूर्वीकर्म कहते हैं । यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि-  
अन्तर में जाते हुए जीव को जिस कर्म के उदय होने पर उस गति में उस उस स्थान के क्रम से जाना होता है, इस स्थिति उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं । जैसे एकका प्रवाह केन्द्रको अपनी ओर सींच देता है । अथवा जैसे गाड़ीमान केन्द्रको नाथ पकड़ कर अपनी ओर मोड़ देता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म-जैसेके जिस गतिकी कर्म बाधा है उस गति में उसको पहुँचा देता है, इस स्थिति वह गति में पहुँचाने के स्थिति सहायक है ।

अब एक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोड़कर नरक आदि किसी गति में नहीं पहुँचा है, तब एक की अर्थात् बीपकी गतिको अन्तर्गति-विग्रहगति-कहते हैं । वह दो प्रकार की है-सरल और वक्र । जीव अब एकसमसप्रमाणवासी सरल (सीधी)

(१३) नरक आदि अतिमां अन्तर्गता एव जे हे-अन्तर्गति (विग्रहगति)मां वर्तमानं छे तेने ते नरक आदि अतिमोनी तरक अकिमुत्र कहीने आनुपूर्वीकी अर्थात् ते ते स्थानना कर्मकी ते ते अतिमांमां पडोआवधानां के कर्म समर्थ होय छे ते कर्मने आनुपूर्वी कर्म कहे छे जे हे आनुपूर्वी शब्दने अर्थ ते ते स्थानने कर्म, जेवो छे ते पक्ष अन्तर्गतां जते एवने के कर्मने उदय वनाशी ते अतिमां ते ते स्थानना कर्मकी अनु होय छे आदला भाटे ते कर्मने आनुपूर्वी कहे छे जेअ अक्षीने प्रवाह जगदीवाने पीतानी तरक जे वी हे छे, अथवा जेअ आदीवाणे जगदीवाने तेनी नाथ पकडीने पीतानी जालु मोडी हे छे तेअ प्रभावे आनुपूर्वीकर्म-एव जे अतिमां कर्म आंधु छे ते अतिमां तेने पडोआदी हे छे भाटे ते अतिमां पडोआवधाने भाटे कदायक छे

ज्यां सुधी मनुष्य पीतानी मनुष्यगतिने भुझीने नरक आदि जीव अतिमां नशी पडोआये त्वां सुधीनी अर्थात् पक्षकी अतिने अन्तर्गति-विग्रहगति कहे छे ते जे अक्षीने होय छे-सरल जने वक्र । एव अथवा जेअसमसप्रमाणवाणी सरल (सीधी) गतिभी

પ્રમાણયા ગચ્છતિ, તદાઽઽયુષ્યકર્મણૈવાત્પત્તિસ્થાનં પ્રાપ્નોતિ । તત્રાનુપુર્વીનામ્નઃ કશ્ચિદુપયોગો ન ભવતિ । વક્રગત્યા પુનઃ પ્રવૃત્તઃ કૂર્પર—(વક્રાકારસ્થાવયવ)-લાઙ્ગલ—ગોમૂત્રિકાલક્ષણયા દ્વિત્રિચતુઃસમયમાનયા વક્રારમ્ભકાલે પુસ્કૃત-માયુરાદત્તે, તદૈવ ચાનુપૂર્વીનામાપ્યુદેતિ ।

નનુ ચ યથૈવ ઋજ્વ્યાં ગતૌ વિનાઽઽનુપૂર્વીનામકર્મણા ગતિં પ્રાપ્નોતિ, તદ્વદ્ વક્રગત્યામપિ કસ્માન્ન ? ઇતિ ચેત્, ઉચ્યતે—ઋજ્વ્યાં—પૂર્વાયુષ્કર્મવ્યાપારેણૈવ ગચ્છતિ, યત્ર તત્ પૂર્વાયુષ્કર્મ ક્ષીણં, તત્ર તસ્યાધ્વયષ્ટિસ્થાનીયસ્યાનુપૂર્વીનામકર્મણ ઉદયો ભવતિ ।

ગતિ સે જાતા હૈ તવ આયુ કર્મ કે દ્વારા હી ઉત્પત્તિસ્થાન કો પ્રાપ્ત કર લેતા હૈ, વહા આનુપૂર્વીનામકર્મ કા કોઈ ઉપયોગ નહીં હોતા । જવ જીવ કૂર્પર (રથ કા ટેઢા અવયવ) હલ યા ગોમૂત્રિકા સરીક્ષી ઓર દો તીન યા ચાર સમયવાલી વક્ર ગતિ સે જાતા હૈ તવ મોઢકે આરમ્ભ—સમય મેં આગે કી આયુ પ્રહણ કરતા હૈ, ઉસી સમય આનુપૂર્વી કર્મકા ઉદય હોતા હૈ ।

શક્ષ્ણા—જૈસે સરલગતિ મેં આનુપૂર્વીકર્મ કે વિના હી ગતિ પ્રાપ્ત કરતા હૈ, ઉસી પ્રકાર વક્ર ગતિ મેં મી ક્યોં નહીં ગતિ કરતા ? ।

સમાધાન—સરલ ગતિ મેં પહેલે કે આયુકર્મ કે વ્યાપાર સે હી જીવ ગતિ કરતા હૈ । જહાં વહ આયુ ક્ષીણ હો જાતી હૈ વહાં માર્ગયષ્ટિ કે સમાન આનુપૂર્વીનામકર્મ કા ઉદય હોતા હૈ ।

બય છે, ત્યારે આયુકર્મદ્વારાજ ઉત્પત્તિ સ્થાનને પ્રાપ્ત કરી લે છે ત્યા આનુપૂર્વી નામકર્મને કાઈ ઉપયોગ થતો નથી બ્યારે જીવ કૂર્પર (રથને વાંકો એક ભાગ) હલ અથવા ગોમૂત્રિકા સરખી અને છે, ત્રણ અથવા ચાર સમયવાળી વક્રગતિથી બય છે ત્યારે વળવાના આરભ સમયમા આગળની આયુ ગ્રહણ કરે છે તે સમય આનુપૂર્વી કર્મને ઉદય થાય છે

શંકા—જેમ સરલગતિમા આનુપૂર્વીકર્મ વિનાજ ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે તે પ્રમાણે વક્રગતિમા ગતિ શા માટે કરતા નથી ?

સમાધાન—સરલગતિમા પ્રથમના આયુકર્મના વ્યાપારથીજ જીવ ગતિ કરે છે બ્યારે તે આયુ ક્ષીણ થઈ બય છે ત્યા માર્ગયષ્ટિ-માર્ગની લાકડી-ના સમાન આનુપૂર્વી નામકર્મને ઉદય થાય છે.

आनुपूर्वीनाम चतुर्विधम्—नरकागत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, देवगत्यानुपूर्वीनाम च ।

(१४) लज्जि—शिक्षि—प्रत्ययस्याकाशगमनस्य जनकं नाम विहायोगतिः सामान्य गमनरूपा गतिरपि विहायोगति रित्युच्यते न तु केवलाकाशगमनरूपेति । सा विद्या—शुभा—शुभमेवात् । तत्र—इस गम—इषादीनां शुभा । तद्भ्रमृगालादीनाम् अशुभा । तत्र—लज्जि—इषादीनां इत्येत्यस्यपिनाभाभिनी । शिक्षया अदिः, शिक्षिदिः, सम्भ्या शिक्षदृषां च तपस्विनां, शिक्षदृषां प्रकचनमभीयानानां विद्यायास्पर्शनमभावात् वा आकाशगमनस्य जनकं विहायोगतिनामकर्म ।

आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकार का है—नरकगत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, और देवगत्यानुपूर्वीनाम ।

(१४) लज्जि एवं शिक्षाशिक्षिकारणक आकाशगमन उत्पन्न करने वाला कर्म विहायोगतिनामकर्म कहलाता है । यह सामान्य गमनरूप गति भी विहायोगति कहलाती है, नहीं कि मात्र आकाशगमनरूप । इस के दो भेद हैं—शुभ और अशुभ । इस, गम, इषम आदि की गति के समान शुभविहायोगति है और ऊंट सिंघार आदि की गतिके अनुसार अशुभविहायोगति है । देव के रूप में उत्पन्न होने के साथ ही उत्पन्न होने वाली लज्जि देवों को प्राप्त होती है । शिक्षा से प्राप्त होने वाली ऋषि शिक्षा—ऋषि कहलाती है । लज्जि एवं शिक्षा—ऋषि से तपस्वियों का आकाशगमन होता है । प्रकचन का अर्थजन करने वालों का विद्या आदि के आकर्षण के प्रभाव से या शिक्षाशिक्षि से जो आकाशगमन होता है वह विहायोगति है ।

आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकार का है—नरकगत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, और देवगत्यानुपूर्वीनाम ।

(१४) लज्जि एवं शिक्षा—ऋषिकारणक आकाशगमन उत्पन्न करनेवाला कर्म विहायोगतिनामकर्म कहलाता है । सामान्य गमनरूप गति चतुर्विहायोगति कहलाता है । इसका आकाशगमनरूप गति नहीं तेना के दो भेद हैं—शुभ और अशुभ । इस, गम, इषम नीचेइसी गति समान शुभविहायोगति है और ऊंट सिंघार नीचेइसी गतिके अनुसार अशुभविहायोगति है । देवता इषमां उत्पन्न होनेवाली शश्वज उत्पन्न होनेवाली लज्जि देवों को प्राप्त वाच से शिक्षाशी प्राप्त होनेवाली ऋषि शिक्षाशिक्षि कहलाता है । लज्जि एवं शिक्षाशिक्षि से तपस्वियों का आकाशगमन होता है । प्रकचन का अर्थजन करनेवालों का विद्या आदिना आकर्षण प्रभावशी अथवा शिक्षाशिक्षि से जो आकाशगमन वाच से ते विहायोगति है ।

(७) गोत्रकर्म द्विविधम्—उच्चनीचभेदात् । तत्र उच्चगोत्रं—देश-जाति-कुल-स्थान-मान-सत्कारै-श्वर्याद्युत्कर्षजनकम् । तद्विपरीतं नीचगोत्रम्—अनार्यदेश-चाण्डालादिजातिदास्य-निर्वर्तकम् ।

(८) अन्तरायकर्म-पञ्चविधम्—दान-लाभ-भोगो-पभोग-वीर्यान्तरायभेदात् ।

एवं च सर्वसंकलनेनाष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकैकशत (१४८) भवन्ति ।

कर्मक्षयविचारः—

ज्ञानक्रियाभ्यां कर्मक्षयो भवति । उक्तपङ्जीवनिकायानां यथार्थ-

(७) गोत्रकर्म दो प्रकार का है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र से देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न होता है । नीचगोत्र इस से विपरीत है । इस से अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासता उत्पन्न होती है ।

(८) अन्तराय कर्म के पांच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय ।

इस प्रकार सबका योग करने पर आठों कर्मों की उत्तरप्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस (१४८) होती हैं ।

कर्मक्षय का विचार

ज्ञान और क्रिया से कर्मों का क्षय होता है । पूर्वोक्त पङ्जीवनिकाय के वास्तविक

(७) गोत्रकर्म के प्रकार दो हैं—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र की देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न थाय है नीच गोत्र के तर्फी विपरीत है तर्फी अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासपण्य वगैरे उत्पन्न थाय है

अन्तरायकर्मना पांच भेद है—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।

आ प्रमाणे सर्वना योग करता आठ कर्मोनी उत्तरप्रकृतियो अठसो अड़तालीस (१४८) थाय है

कर्मक्षयना विचार—

ज्ञान और क्रिया की कर्मोना क्षय थाय है । पूर्वोक्त पङ्जीवनिकाय के वास्तविक

स्वरूपस्य विस्तरेण संक्षेपेण वा अन्वयोपो ज्ञानम् । गुणिसमितिस्मारापन्नपूर्वकं  
शास्त्रविधिना तपःसंयमाभरणं क्रिया ।

अष्टकर्मणां मम्मसात्कथं तपः । तस्यानङ्गनादयो द्वादश मेदाः ।  
सावद्य क्रियाः सम्यक् परित्यज्य निरवयवक्रियास्तु महत्तिः संयमः । तस्य पृथिवीकाय  
संयमादयः सप्तदश मेदाः ।

उक्तपद्विनीचनिकायस्वरूपं सम्यग विज्ञाय संयमपूर्वकतपश्चरणेनाभित्तकर्म  
मवेशामाद्यः, पूर्वोपहितकर्मपरिसंयम महति । तत्रैव क्रमः—

अष्टमगुणस्थानादात्मा सप्तकमेणि समारोहति । असौ सप्तको मर्म  
बद्धं गुणस्थानं समाह्वय द्वादशं गुणस्थानमारोहति । तत्र शुद्धस्थानस्य द्वितीय

स्वरूप का विस्तारपूर्वक या संक्षिप्त बोध-ज्ञान कहलाता है । गुणिसमिति का व्यापन  
करते हुए शास्त्रोक्त विधि के साथ तप और संयम का आराधन करमा क्रिया है ।

अष्ट कर्मों का मम्म करता तप है । तप के अनशन आदि बारह मेद हैं ।  
सावद्य क्रियामों का सम्यक् प्रकार से परित्याग करके निरवयव क्रियामों में महत्ति करना  
संयम है । पृथ्वीकायसंयम अग्नि के मेद से यह सत्तर (१७) प्रकार का है ।

उक्त पद्विनीचनिकाय का स्वरूप समीचीन प्रकार से जानकर संयमपूर्वक तप का  
आचरण करने से मर्मी कर्मों का अपना एक बाता है और पृष्ठ के संक्षिप्त कर्मों का क्षय  
होता है । कर्मक्षय का क्रम यह है—

आत्मा आठवें गुणस्थान से सप्तकमेणी पर आकृष्ट होता है । यह सप्तक  
आत्मा नौवें दशवें गुणस्थानों पर आकृष्ट हो कर बाहरवें गुणस्थान पर पहुँचता है ।

स्वप्नो विस्तारपूर्वक अथवा संक्षिप्त बोध से ज्ञान कहेवाक्य है गुणिसमितिनी  
व्यापन करता शास्त्रोक्त विधि प्रभावे तप करने अथवा व्यापन करने से क्रिया  
है आठ कर्मों में जाणी नाजवा से तप है तपना अनशन आदि बार सेठ है सावद्य  
क्रियाओंसे अथवा प्रकार परित्याग करीने निरवयव क्रियाओंमें प्रवृत्ति करनी से संयम है  
पृथ्वीकायसंयम अग्नि सेठ से सत्तर (१७) प्रकारसे है आठ कहेवा पद्विनीचनिकायना  
स्वप्नो सारी सेठे जाणीने अथवापूर्वक तपना आचरण करवाणी नवीन कर्मोंनु व्यापन  
शक्य अथ है अने पठेवाना संक्षिप्त कर्मोंना क्षय वाक्य है कर्मक्षयने कर्म सेठे-  
आत्मा आठवें गुणस्थाननी सप्तकमेणीपर आकृष्ट वाक्य है अथ सप्तक आत्मा  
नववें, दशवा सुषुस्थाने पर आकृष्ट यथेने आठवा सुषुस्थान पर अष्ट पठेवाक्य है ।

(७) गोत्रकर्म द्विविधम्—उच्चनीचभेदात् । तत्रउच्चगोत्रं—देश—जाति—कुल—स्थान—मान—सत्कारै—श्रयार्थद्युत्कर्षजनकम् । तद्विपरीतं नीचगोत्रम्—अनार्यदेश—चाण्डालादिजातिदास्य—निर्वर्तकम् ।

(८) अन्तरायकर्म-पञ्चविधम्—दान-लाभ-भोगो-पभोग-वीर्यान्तरायभेदात् ।

एवं च सर्वसंकलनेनाष्टविधकर्मणापुत्ररप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकैकशतं (१४८) भवन्ति ।

कर्मक्षयविचारः—

ज्ञानक्रियाभ्या कर्मक्षयो भवति । उक्तपङ्जीवनिकायाना यथार्थ-

(७) गोत्रकर्म दो प्रकार का है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र से देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न होता है । नीचगोत्र इस से विपरीत है । इस से अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासता उत्पन्न होती है ।

(८) अन्तराय कर्म के पांच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय ।

इस प्रकार सबका योग करने पर आठों कर्मों की उत्तरप्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस (१४८) होती हैं ।

कर्मक्षय का विचार

ज्ञान और क्रिया से कर्मों का क्षय होता है । पूर्वोक्त पङ्जीवनिकाय के वास्तविक

(७) गोत्रकर्म दो प्रकार का है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र से देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न था है नीच गोत्र से तेनाथी विपरीत है तेनाथी अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति से दासपण्य वगैरे उत्पन्न था है

अन्तरायकर्मना पांच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।

आ प्रमाणे सर्वना योग करता आठ कर्मोंनी उत्तरप्रकृतियों अठसो अड़तालीस (१४८) था है

कर्मक्षयना विचार—

ज्ञान और क्रियाथी कर्मोंना क्षय था है । पूर्वोक्त पङ्जीवनिकायना वास्तविक

एवमात्मप्रदक्षेभ्यः सफलकर्मत्वानुपगमे सत्पूर्वगमनस्वभावतयाऽऽस्ता साधन-  
न्तमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेयं स्वानं प्राप्नोति । ज्ञानक्रियाभ्यामेवं सफलकर्मव्य-  
क्तमो मोक्षो भवतीति सिद्धम् ।

केचित्तु-सम्यग्ज्ञानं यथार्थक्रियकृतया परमव्यवहारेण मिथ्याज्ञानं  
निवर्तयति । मिथ्याज्ञाने निवृत्ते एतत् मिथ्याज्ञानमूला रागाद्यौ न समुत्पद्यते ।  
कारणभावे कार्यस्यानुत्पत्त्यात् । रागाद्यभावे च उत्कलभूता मनोवाङ्मय-  
प्रवृत्तिर्न भवति । प्रवृत्त्यभावे च पुण्यपापयोरनुत्पत्तिः । आरम्भकार्ययोश्च

आत्मप्रदेशो से समस्त कर्मों के इटवाने पर ऊर्ध्वगतिशील होने के कारण आत्मा  
सादि-अनन्त पुनरागमनरहित सिद्धिगतिमानक स्वान को प्राप्त करता है । अत एव सिद्ध  
हुवा कि ज्ञान और क्रिया से सफल कर्मोंका अक्षरूप मोक्ष प्राप्त होता है ।

कुछ लोगों का कथन यह है कि-सम्यग्ज्ञान यथार्थ फलान को विवश करता  
है अतः वह बन्धान है और बन्धान होने के कारण मिथ्याज्ञान को दूर करता है ।  
मिथ्याज्ञान जब इट जाता है तो उसके कारण उत्पन्न होने वाले रागादि की उत्पत्ति नहीं  
होती क्योंकि कारण के अभाव में फल उत्पन्न नहीं होता । इस प्रकार रागादि  
का अभाव होने पर उस से होने वाली मन चक्षु और काय की प्रवृत्ति रुक जाती है ।  
प्रवृत्ति के रुक जाने से पुण्यकर्म और पापकर्म की उत्पत्ति नहीं होती । अतः का कर्म

आत्मप्रदेशीयों समस्त कर्मों दूर तथा पछी ऊर्ध्वगतिशील होवना आरम्भ  
आत्मा सादि-अनन्त, पुनरागमनरहित सिद्धिगतिमानक स्वानने प्राप्त करे  
से अंतर्दोषों को सिद्ध शत्रु के ज्ञान अने क्रियाशील सफल कर्मोंका अक्षरूप मोक्षने  
प्राप्त करे ।

हेतुका कारणसेतु कहेतु को से से-सम्यग्ज्ञान यथार्थ फलानों विवश करे  
से जो आरम्भों से अणवान से अने अणवान होवाना आरम्भ मिथ्याज्ञानने दूर करे से  
मिथ्याज्ञान अन्धरे दूर बर्ध अक्ष से तो तेना आरम्भ उत्पन्न तथावाण्य राज-आदिनी  
उत्पत्ति नहीं, हेतुके आरम्भना अणवानों अक्ष उत्पन्न शत्रु नहीं, का प्रकृति-सम्यग्ज्ञानने  
अणवान यथाशी तेनाशी कवा वाणी अने, अक्ष अने आधानी प्रवृत्ति अन्धी अक्ष से  
प्रवृत्तिना अन्धीवाणी पुण्यकर्म अने पाप कर्मोंनी उत्पत्ति नहीं, अतः अर्थ आरम्भ  
य आ-७८

पादे प्रथमं मोहनीयं कर्म क्षपयति । तदनु ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीया-अन्तराय-कर्माणि युगपदेव क्षपयित्वा द्वादशगुणस्थानान्ते त्रयोदशगुणस्थानादौ सर्वद्रव्य-पर्यायविषयं पारमैश्वर्यमनन्तं केवलं ज्ञानदर्शनं प्राप्य शुद्धो बुद्धः सर्वज्ञः सर्वदर्शी जिनः केवली भवति । ततः सयोगिकेवली प्रतनु-शुभ-चतुष्कर्मावशेषः, आयु-कर्मसंस्कारवशाद् भव्यजनबोधनाय भूमण्डले विहरति, विविधं कर्मरजो भव्यानां हरति च ।

असौ तत्पश्चाद् अयोगिकेवली भूत्वा चतुर्दशगुणस्थाने-आयुष्यकर्मपरिसमाप्तौ सत्यां, वेदनीय-नाम-गोत्रकर्माणि क्षपयति । एवं मूलप्रकृतिवाच्यमष्टविधं ज्ञाना-वरणीयादिसकलकर्म क्षीयते ।

वहँ शुक्ल ध्यान के द्वितीय पाये में सर्व प्रथम मोहनीय कर्म का क्षय करता है । तत्पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों को एक ही साथ क्षय करके तारहवें गुणस्थान के अन्त में और तेरहवें गुणस्थान की आदि में समस्त द्रव्य पर्याय को विषय करने वाला परम ऐश्वर्य को प्राप्त होने योग्य अनन्त केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करके शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जिन और केवली हो जाता है । फिर वह सयोगी केवली चार हल्के अघातिया कर्म शेष रहने पर आयुर्कर्म के संस्कार वश हो कर भव्य जीवों को बोध देने के लिए भूमण्डल में विहार करते हैं ।

तत्पश्चात् अयोगी केवली हो कर चौदहवें गुणस्थान में आयुर्कर्म की समाप्ति होने पर वेदनीय नाम आयु गोत्र कर्मों का क्षय करते हैं । इस प्रकार मूलप्रकृति कहलाने वाले आठों ही कर्मों का क्षय हो जाता है ।

त्या शुक्ल ध्यानना णीज पायाभा सर्वप्रथम मोहनीय कर्मोना क्षय करे छे ते पछी ज्ञानावरण, दर्शनावरण अने अतराय कर्मोना ओकी साथे क्षय करीने, भारमा शुष्क-स्थानना अतमा अने तेरमा शुष्कस्थाननी आदिमा समस्त द्रव्य-पर्यायने विषय करवावाणा परम ऐश्वर्यने प्राप्त थवा योग्य अनन्त केवलज्ञान अने केवलदर्शन प्राप्त करीने शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जिन अने केवली थई जाय छे पछी ते सयोगी केवली चार डलका अघातिया कर्म भाकी रहेवा पर आयुर्कर्मना संस्कारवश थईने अव्यञ्चनेने बोध आपवा भाटे पृथ्वीमा विहार करे छे

ते पछी अयोगी केवली थईने चौदहा शुष्कस्थानमा आयुर्कर्मनी समाप्ति थवा पछी वेदनीय, नाम अने गोत्रकर्मोना क्षय करे छे आ प्रमाणे मूलप्रकृति कहेवाता आठ कर्मोना क्षय थई जाय छे ।



एवमात्मप्रवेशेभ्यः सकलकर्मणामपगमे सत्यूर्ध्वगमनस्वभावतयाऽऽत्मा साधन-  
न्तमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेय स्थानं प्राप्नोति । ज्ञानक्रियाम्यामेवं सकलकर्मस्य  
लक्षणो मोक्षो भवतीति सिद्धम् ।

केचित्तु—सम्पदाज्ञानं पदार्थविषयकतया ब्रह्मपरत्वेन मिथ्याज्ञानं  
निर्घर्षयति । मिथ्याज्ञाने निरूपे सति मिथ्याज्ञानमूला रागादयो न समुत्पद्यन्ते ।  
कारणमाभावे कार्यस्यानुत्पादात् । रागाद्यभावे च तत्फलमूला मनोवाङ्मय-  
प्रवृत्तिर्न भवति । प्रवृत्त्यभावे च पुण्यपापयोरनुत्पत्तिः । आरम्भकार्ययोग्य

आत्मप्रवेशो से समस्त कर्मों के इटवाने पर ऊर्ध्वगतिशौक होने के कारण आत्मा  
सादि—अनन्त पुनरागमनरहित सिद्धिगतिनामक स्थान को प्राप्त करता है । मत एव सिद्ध  
हुमा कि ज्ञान और क्रिया से सकल कर्मोंका क्षयरूप मोक्ष प्राप्त होता है ।

कुछ लोगों का कथन यह है कि—सम्पदाज्ञान पदार्थ पदार्थ को विषय करता  
है, मत यह ब्रह्मान् है, और ब्रह्मान् होने के कारण मिथ्याज्ञान को दूर करता है ।  
मिथ्याज्ञान जब इट जाता है तो उसके कारण उत्पन्न होने वाले रागादि की उत्पत्ति नहीं  
होती, क्यों कि कारण के अभाव में फल उत्पन्न नहीं होता । इस प्रकार रागादि  
का अभाव होने पर उस से होने वाली मग बचन और क्रय की प्रवृत्ति रुक जाती है ।  
प्रवृत्ति के रुक जाने से पुण्यकर्म और पापकर्म की उत्पत्ति नहीं होती । अिन का क्रय

आत्मप्रवेशो से समस्त कर्मों दूर तथा पछी उर्ध्वगतिशौक होनेना कारणे  
आत्मा सादि—अनन्त, पुनरागमनरहित सिद्धिगति नाभना स्थानने प्राप्त करे  
छे, जेटवे जे सिद्ध यत्तु के ज्ञान जने क्रियाशी सकल कर्मोंना क्षयरूप मोक्षने  
प्राप्त भाय छे.

केटवाक भावसेतु कहेवुं जे छे हे—सम्पदाज्ञान पदार्थ पदार्थने विषय करे  
छे जे ब्रह्मशी ते जगवान छे, जने जगवान होनेना कारणे मिथ्याज्ञानने दूर करे छे  
मिथ्याज्ञान न्भावे दूर बरुं नय छे तो तेना कारणे उत्पन्न भवनाणा राग—आदिनी  
उत्पत्ति भती नथी, केभडे कारणे जगवानभां भाय उत्पन्न यत्तु नथी, आ प्रकारे—सम्पदाज्ञाने  
अभाव भवाथी तेनाथी अवा बाव्णी भन, वचन जने कथानी प्रवृत्ति अटकी नय छे  
प्रवृत्तिना अटकावथी पुण्यकर्म जने पाप कर्मनी उत्पत्ति भती नथी, जेतु कार्य आरज  
म आ—४८

પુણ્યપાપકર્મણોરુપભોગાદેવ પ્રક્ષયો ભવતિ; સચ્ચિત્તરુપયોસ્તુ પુણ્યપાપકર્મણોમ્તત્ત્વ-  
જ્ઞાનાદેવ પ્રક્ષયઃ । એવં કર્મક્ષયો ભવતિ । ઉક્તઞ્ચ—

“ જ્ઞાનાગ્નિઃ સર્વકર્માગ્નિ, ભસ્મસાત્ કુરુતે તથા ” । ડત્તિ । તથા “ નાશ્ચુક્તં  
ક્ષીયતે કર્મ, કલ્પકોટિશતૈરપિ ” ઇતિ ચ ।

કેચિન્ન—સંચિતકર્મણામપિ પ્રક્ષયો ભોગાદેવ ભાવતીત્યુક્તં તપ્રાનુમાનં  
પ્રમાણં ચ પ્રદર્શિતમ્ । તથાહિ—પૂર્વકર્માણ્યુપભોગાદેવ ક્ષીયન્તે, કર્મત્વાત્ । યત્ યત્  
કર્મ તત્ તત્ ઉપભોગાદેવ ક્ષીયતે, યથા—આરબ્ધશરીરં કર્મ, તથા ચૈતત્ કર્મ, તસ્મા-  
દુપભોગાદેવ ક્ષીયતે ।

ન ચોપભોગાત્ કર્મપ્રક્ષયસ્વીકારે કર્માન્તરસ્થાવશ્યમ્ભાવાત્ સંસારાનુચ્છેદઃ  
ઇતિ વાચ્યમ્,

આરબ્ધ હો ચુકા હૈ, એસે પાપ—પુણ્ય કા, ઉપભોગ સે ક્ષય હોતા હૈ ઓર સચ્ચિત પુણ્ય—પાપ  
કા, તત્વજ્ઞાન સે । ઇસ પ્રકાર સમસ્ત કર્મો કા ક્ષય હો જાતા હૈ । કહા મી હૈ—

“ જ્ઞાનરૂપી અગ્નિ સમસ્ત કર્મો કો મસ્મ કર ડાલતી હૈ ” । તથા—“ કરોડો સૈકડો  
કલ્પો મેં મી કર્મ કા ભોગે વિના ક્ષય નહીં હોતા ” ।

કિસી કા કહના હૈ કિ—સચ્ચિત કર્મો કા ક્ષય મી ભોગ સે હી હો જાતા હૈ । ઇસ  
વિષય મેં અનુમાન પ્રમાણ મી દિયા ગયા હૈ । વહ ઇસ પ્રકાર હૈ—પૂર્વસચ્ચિત કર્મ ઉપભોગ  
સે હી ક્ષીણ હોતા હૈ, ક્યો કિ વહ કર્મ હૈ । જો જો કર્મ હોતા હૈ વહ વહ ઉપભોગ સે હી  
ક્ષીણ હોતા હૈ, જૈસે આરબ્ધ શરીરકર્મ । સચ્ચિતકર્મ મી કર્મ હૈં અત વે મી ઉપભોગ સે હી  
ક્ષીણ હોતે હૈં ।

ઉપભોગ સે કર્મો કા ક્ષય સ્વીકાર કિયા જાય તો નવીન કર્મો કી ઉત્પત્તિ અવશ્ય  
હોગી ઓર ફલત્ જન્મ—મરણ કા કમી નાશ નહીં હોગા । એસી આશાક્રા કરના  
ઉચિત નહીં હૈ ।

થઈ ચૂકયુ છે, એવા પાપ—પુણ્યને ઉપભોગથી ક્ષય છે, અને સચ્ચિત પુણ્ય—પાપને  
તત્વજ્ઞાનથી ક્ષય થાય છે આ પ્રકારે સમસ્ત કર્મોને ક્ષય થઈ નય છે કહ્યું પણ  
છે કે—“ જ્ઞાનરૂપી અગ્નિ સમસ્ત કર્મોને ખાળી નાખે છે ” તથા “ કરોડો સૈકડો  
કલ્પોમા પણ કર્મ ભોગવ્યા વિના ક્ષય થતા નથી ”

કેટલાક કહે છે કે—સચ્ચિત કર્મોને ક્ષય પણ ભોગથીજ થઈ નય છે આ  
વિષયમા અનુમાન પ્રમાણ પણ આપવામા આવ્યું છે તે આ પ્રમાણે છે—પૂર્વસ-  
ચ્ચિતકર્મ ઉપભોગથીજ ક્ષીણ થાય છે, કારણ કે તે કર્મ છે, જે જે કર્મ હોય છે તે  
તે ઉપભોગથીજ ક્ષીણ થાય છે, જેવી રીતે આરબ્ધ શરીરકર્મ સચ્ચિત કર્મ પણ કર્મ  
છે, એ કારણથી તે પણ ઉપભોગથી જ ક્ષીણ થાય છે

ઉપભોગથી કર્મોને ક્ષય સ્વીકાર કરવામા આવે તો, નવીન કર્મોની ઉત્પત્તિ અવશ્ય  
થશે અને ફલત્ જન્મ મરણને ક્યારેય નાશ નહિ થાય, આવી શકા કરવી તે ઉચિત નથી.

समाधिबलेनोत्पन्नतत्त्वज्ञानस्य जन्मस्य कर्मज्ञानसामर्थ्याच्छुभमोगार्थमश्लेष शरीररूपस्याधाश्लेषमोगादेव पूर्वकर्मस्य, पुनस्तस्य तत्त्वज्ञानिनो मिथ्याज्ञानाभावात्तद्वनितसंस्कारस्याप्यभावेन कर्मान्तरानुत्पत्तिश्च । तथा चोपमोगादेव सत्कर्मस्यपस्वीकारेऽपि नास्ति कोऽपि दोषलेख इति ।

न च पुण्यपापकर्मजोर्बन्धान्तरशरीरोत्पादने सङ्कारि कारणं मिथ्या ज्ञानमनितसंस्कारोऽस्ति; तस्याभावादेव तत्त्वज्ञानिनां विद्यमाने अपि कर्मबीजं न जन्मान्तरशरीराण्युत्पादयता, अतस्तेषां कर्मसत्त्वेऽपि न काऽपि हानिरिति वाच्यम् ।

समाधि के बल से उत्पन्न तत्त्वज्ञान वाले पुरुष के कर्मज्ञान के सामर्थ्य से कर्म का उपभोग करने के लिए अश्लेष शरीर उत्पन्न करके अश्लेष मोग से ही पूर्वकर्म का क्षय हो जाता है । उस तत्त्वज्ञानी पुरुष में मिथ्याज्ञान नहीं होता और मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने वाला संस्कार भी नहीं होता । इस कारण नवीन कर्म की उत्पत्ति भी नहीं होती । ऐसी स्थिति में उपभोग से ही समस्त कर्मों का क्षय मान लेने में लेक्ष्यमात्र भी दोष नहीं है ।

मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने वाले संस्कार जन्मान्तर के शरीर की उत्पत्ति में सङ्कारी कारण होता है । वह संस्कार तत्त्वज्ञानी में नहीं रहता । उस का अभाव हो जाने पर पुण्य-पाप कर्म मझे ही विद्यमान रहें मगर वे शरीर उत्पन्न नहीं कर सकते । अत एव उन में कर्म का सङ्भाव होने पर भी कोई हानि नहीं होती । यह सब कथन सत्य नहीं है ।

समाधिना जन्मि उत्पन्न तत्त्वज्ञान बाणा पुत्रुभनां कर्मज्ञाननां सामर्थ्यांशी कर्मिना उपभोग करवा भाटे अश्लेष शरीर उत्पन्न करीने अश्लेष मोगादीव पूर्वकर्मिना क्षय घटि जाय छे ते तत्त्वज्ञानी पुत्रुभनां मिथ्याज्ञान नशी अने मिथ्याज्ञानशी उत्पन्न कवाबाणा संस्कार पक्ष नशी. आ शास्त्रुभी नवीन कर्मिनी उत्पत्ति पक्ष बती नशी जेनी स्थितिमां उपभोगादीव अमस्त कर्मिना क्षय भानी देवानां देश भात्र पक्ष होय नशी

मिथ्याज्ञानशी उत्पन्न कवाबाणा संस्कार जन्मान्तरना शरीरिनी उत्पत्तिमां सङ्कारी शास्त्रु जाय छे ते संस्कार तत्त्वज्ञानीमां रहेवा नशी. तेना जन्मप कर्ष कवादी, पुण्य-पापकर्म अदीने विद्यमान रहे. अस्तु ते शरीर उत्पन्न करी सकतां नशी, अतएव भाटे तेमां कर्मिना सङ्भाव होवा उत्पत्ति पक्ष देई प्रकारे हानि बती नशी आ सर्व कथन सार्था नशी.

जन्यपदार्थस्य नित्यत्वापत्तिः स्यादित्येव महान् दोषः समापद्येत ।  
 तथाहि—पुण्यपापरूपकर्मणोः स्वफलानुत्पादनेन तत्सत्तास्वीकारे कार्यरूपयोरपि  
 तयोर्नित्यत्वप्रसङ्गः । किञ्च—भविष्यत्काले पुण्यपापकर्मणोरनुत्पत्तिस्वीकारे तत्त्व-  
 ज्ञानिनां प्रत्यवायपरिहारार्थं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं कथमुपपद्येत ? इति वदन्ति ।  
 अत्रोच्यते—

यत्तु—उक्तम्—आरब्धकार्ययोः पुण्यापुण्यकर्मणोरुपभोगात् प्रक्षयः संचित-  
 योश्च तयोः प्रक्षयस्तत्त्वज्ञानादित्यादि, तदपि न संगतम् । तथाहि—उपभोगात्  
 कर्मप्रक्षये तदुपभोगकालेऽभिलाषपूर्वकमनोवाक्कायव्यापारस्यापरकर्मकारणस्य

सब से पहले महान् हानि तो यही है कि जन्य पदार्थ (काय) भी नित्य हो  
 जायगा । वह इस प्रकार—पुण्य—पाप रूप कर्मों के फल को उत्पन्न न कर के सत्ता स्वीकार  
 की गई है, सो कार्यरूप होने पर भी उन में नित्यता का प्रसङ्ग आता है । दूसरी बात यह  
 है कि—आगामी काल में पुण्य—पाप की उत्पत्ति न स्वीकार करने पर तत्त्वज्ञानियों के लिए,  
 प्रत्यवाय (दोष) का परिहार करने के लिए नित्य—नैमित्तिक अनुष्ठान करना किस प्रकार  
 संगत होगा । ऐसा इन का कथन है,

इस पर विचार किया जाता है—

कार्यरूप में परिणत पुण्य और पाप कर्मों का उपभोग से क्षय होता है और  
 संचित कर्मों का तत्त्वज्ञान से, इत्यादि कथन भी संगत नहीं है । उपभोग से कर्मों का  
 क्षय मानने पर कर्मों का उपभोग करते समय इच्छापूर्वक मन वचन और कायाका व्यापार

सौथी प्रथम महान् हानि तो ऐं० छे के जन्य पदार्थ (कार्य) यत्तु नित्य  
 थर्त्तु ज्ये ते आ प्रभाञ्जे—पुण्यपापरूप कर्मोना क्षणे उत्पन्न न करता नित्यतानो  
 स्वीकार करवाभा आञ्जे छे ते कार्यरूप होवा छताय यत्तु तेभा नित्यतानो प्रसंग  
 आवे छे भील्ल वात ज्ये छे के—आगामी कालभा पुण्यपापनी उत्पत्ति नहि  
 स्वीकारवाथी तत्त्वज्ञानीञ्जे भाटे प्रत्यवाय (दोष) नो परिहार करवा भाटे नित्य-  
 नैमित्तिक अनुष्ठान करवुं ते केवी रीते संगत थशे आ प्रभाञ्जे तेभनु कथन छे.

तेना पर विचार करवाभा आवे छे —

कार्यरूपभा परिणत पुण्य अने पाप कर्मोना उपभोगथी क्षय थाय छे. अने  
 संचित कर्मोना तत्त्वज्ञानथी धत्यादि कथन यत्तु संगत नथी उपभोगथी कर्मोना क्षय  
 मानवाथी, कर्मोना उपभोग करवा सभये इच्छापूर्वक मन, वचन अने कायानो व्यापार

संभवात् पुनः मन्त्रतरपुण्यपापकर्मसङ्घाते क्यमात्यन्तिक कर्मक्षयः स्यात् ।

नहि केवलस्य सम्यग्ज्ञानस्य आगामिकर्मानुत्पत्तिसामर्थ्यं विद्यते, किन्तु पारित्रसहितस्यैव सम्यग्ज्ञानस्य संक्षितकर्मक्षये आगामिकर्मानुत्पत्तौ च सामर्थ्यं समाप्यते । सम्यग्ज्ञानेन हि मिथ्याज्ञानस्य निवृत्तिः । तत्रैव रागद्वेषाद्यभावेन हिंसादिपापक्रियान्निवृत्तिरूपपारित्रसहयोगाद् नवीनकर्मानुत्पत्तिर्मवसि । तद्वत् संक्षित कर्मक्षयोऽपि पारिभसहकृतसम्यग्ज्ञानादप्य मवसि । यद्योपवर्तमानमात्रेण नाममात्रेण वा न ध्याधि निवर्तयति, किन्तु तत्सबनादिक्रियापरिणत्यैव, तत्रत् पारिभसहितसम्यग्ज्ञानेनैव कर्मक्षयः ।

होगा, जोर यह व्यापार नवीन कर्मवन्ध का कारण है, इस सिद्धि फिर बहुत से पुण्यकर्म जोर पापकर्म संक्षित हो जायेंगे । ऐसी दशा में व्यापन्तिक कर्मक्षय किस प्रकार होगा ?

केवल सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ नहीं है । हाँ पारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संक्षित कर्मों के क्षय में और आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ हो सकता है । सम्यग्ज्ञान से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होती है । फिर राग-द्वेष आदि का अभाव हो जाने से हिंसादि पाप क्रिया की निवृत्तिरूप पारित्र की सहायता से नवीन कर्मों की उत्पत्ति रुकती है । इसी प्रकार संक्षित कर्मों का क्षय भी पारित्र से कुछ सम्यग्ज्ञान से ही होता है । जैसे—जोपधि अज्ञानमात्र से या नाम लेने मात्रसे ध्याधि को दूर नहीं करती किन्तु सेवन करने से ही दूर करती है, उसी प्रकार पारित्रकुल सम्यग्ज्ञान से ही कर्मों का क्षय होता है ।

कथे, जने ते व्यापार नवीन कर्मवन्धु ठारवु छे जे भाटे इरी बखुंज पुपव-पाप कर्म संक्षित कर्म कथे जेवी प्रमाणां व्यापन्तिक कर्मक्षय देवी रीते कथे ?

केवल सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मों की उत्पत्तिने रोकना समर्थ नहीं है । पारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संक्षित कर्मों का क्षय में आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकना समर्थ हो सके छे सम्यग्ज्ञानकी मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति साथ छे । पत्ती राग-द्वेष वजरेना अभाव कर्म कथाकी हिंसादि पापक्रियानी निवृत्तिरूप पारित्रकी सहायताकी नवीन कर्मों की उत्पत्ति रुकके छे जे प्रमाणां संक्षित कर्मों का क्षय पवु पारित्रकी कुछ सम्यग्ज्ञानकी साथ छे । जेवी रीते जोपधन्य ज्ञानमात्रकी अथवा जोपधनुं नाम लेबाकी ध्याधि दूर कवी नहीं, परन्तु सेवन करबाकी व दूर बाव छे । ते प्रमाणां पारित्रकुल सम्यग्ज्ञानकी कर्मों का क्षय साथ छे ।

યથા—ઉષ્ણસ્પર્શસ્યાગામિશીતસ્પર્શાનુત્પાદનસામર્થ્યં પૂર્વકાલિકશીતત્પર્શધ્વં-  
સેડપિ ચ સામર્થ્યં લોકે દૃષ્ટમ્, તદ્ધચારિત્રસહિતસમ્યગ્જ્ઞાનસ્યાપિ સકલ-  
કર્મક્ષયસામર્થ્યં ભવતિ ।

ઇદમત્રાવધેયમ્—સમ્યગ્જ્ઞાનં તદેવાસ્તિ, યત્ સ્વલ્પ પરિણામિજીવાજીવાદિવિ-  
ષયકમ્, ન ત્વેકાન્તતોડપરિણામિકૂટસ્થનિત્યાત્માદિવિષયકમ્, તસ્ય વિપરીતાર્થવિષય-  
કતયા મિથ્યાત્વરૂપત્વાત્ । યદિ પુનઃ સ્વરૂપચારિત્રસહિતસમ્યગ્જ્ઞાનસ્યાગ્નિરૂપત્વં  
સ્વીકૃત્ય નિઃશેષકર્મક્ષયસામર્થ્યમ્ડૂગીક્રિયતે, “યથૈધાંસિ સમિદ્ધોડગ્નિઃ” ઇત્યાદિ-  
વચનેન તર્હિ મન્મતસિદ્ધિ એવાર્થસ્તેન સાધિત ઇતિ ।

જૈસે ઉષ્ણ સ્પર્શ, આગામી શીતસ્પર્શ કી ઉત્પત્તિ કો રોકતા હૈં ઓર પૂર્વ કાલીન  
શીતસ્પર્શ કા નાશ કરને મેં મી સમર્થ હોતા હૈ, યહ વાત લોક મેં દેસ્વી જાતી હૈ । ઊસી  
પ્રકાર ચારિત્રસહિત સમ્યગ્જ્ઞાન મી સમસ્ત કર્મોં કૈ ક્ષય મેં સમર્થ હોતા હૈ ।

સારાશ યહ હૈ કિ—સમ્યગ્જ્ઞાન વહી હૈ જો જીવ—અજીવ આદિ કો પરિણામી  
જાનતા હૈ । આત્મા આદિ કો એકાન્તઅપરિણામી, કૂટસ્થ નિત્ય સમજને વાલા જ્ઞાન  
સમ્યગ્જ્ઞાન નહીં હૈ । યહ જ્ઞાન વિપરીત વસ્તુ કા વોધક હોને સે મિથ્યા હૈ । હાં, અગર  
સ્વરૂપ ચારિત્ર સે યુક્ત સમ્યગ્જ્ઞાન કો અગ્નિ કૈ સમાન માન કર ઊસકો સબ કર્મોં કૈ  
ક્ષય કા કારણ માનતે હો, જૈસા કિ કહા હૈ— “વઢી હુઈ અગ્નિ ઇન્ધન કો મસ્મ  
કરતી હૈ” યહ તો હમોરે હી મત કા સમર્થન કિયા ગયા હૈ, અર્થાત્ યહ કથન હમેં મી  
દૃષ્ટ હી હૈ ।

જેવી રીતે ઉષ્ણસ્પર્શ, આગામી શીતસ્પર્શની ઉત્પત્તિને રોકે છે, અને પૂર્વ  
કાલીન શીતસ્પર્શનો નાશ કરવામા પણ સમર્થ થાય છે. આ વાત લોકમા જોવામા  
આવે છે, તે પ્રમાણે ચારિત્રસહિત સમ્યગ્જ્ઞાન પણ સમસ્ત કર્મોના ક્ષય માટે સમર્થ  
થાય છે

સારાશ એ છે કે—સમ્યગ્જ્ઞાન તેજ છે કે જે—જીવ—અજીવ આદિને પરિણામી  
બાણે છે આત્મા આદિને એકાન્ત અપરિણામી, કૂટસ્થ, નિત્ય સમજવાવાળું જ્ઞાન તે  
સમ્યગ્જ્ઞાન નથી. તે જ્ઞાન વિપરીત વસ્તુનું બોધક હોવાથી મિથ્યા છે હા. અગર  
સ્વરૂપ ચારિત્રથી યુક્ત સમ્યગ્જ્ઞાનને અગ્નિસમાન માનીને તેને સર્વ કર્મોના ક્ષયનું  
કારણ માનો છો, જેવી રીતે કહ્યું છે કે—“જેમ વધેલી અગ્નિ લાકડાને બાળી નાખે  
છે.” એ તો અમારાજ મતનું સમર્થન કર્યું છે, અર્થાત્ તે કથન તો અમારે પણ ઇષ્ટ છે.

इति संक्षेपतः कर्मवादिप्रकरणं वर्णितम् । विस्तरस्तु यथास्तत्र  
मदगन्तव्यम् ।

॥ अथ क्रियावादिप्रकरणम् ॥

यः पुनरेव कर्मबन्धवेदी मग्नः कर्मस्वरूपनिरूपणपरः स एव कर्मवादी  
वस्तुतः क्रियावादीत्याह—'क्रियावादी' इति । कर्मणं क्रिया । क्रियते जीवेन इति  
वा क्रिया । कर्मबन्धनिरूपणना घेष्टा । यथा ममोवाङ्कायसम्बन्धिनी यथासंभवं  
योगं ठप्स्यते । अथवा—पुनक्ति जीवो यं वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं  
पर्यायं स योगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं मनोयुक्तात्ममवेशगतवीर्यपरिणमनं  
मनोयोगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं वाक्संयुक्तात्ममवेशगतवीर्यपरिणमनं

इस प्रकार संक्षेप में कर्मवादी के प्रकरण का वर्णन किया गया है । अधिक विवरण  
एतहीं से समझ लेना चाहिए ।

क्रियावादी का प्रकरण ।

जो मग्न जीव इस प्रकार कर्मबन्ध का शरणा है, और कर्म के स्वरूप का निरूपण  
करने वाला है वही कर्मवादी सन्धा क्रियावादी है ।

कल्या क्रिया है । अथवा जीव के द्वारा जो जो कार्य वह क्रिया है । कर्मबन्ध  
का कारण वेदा क्रिया है । मन, वचन काय सम्बन्धी यह क्रिया यथासम्भव योग  
कहावती है । अथवा जिस के द्वारा जीव वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से जनित  
पर्याय से युक्त बनता है, उसको योग कहते हैं । वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से जनित  
मन-युक्त आत्मप्रदेशों में रहे हुए वीर्य का परिणमन मनोयोग कहावता है । वीर्यान्तराय  
के क्षयोपशम से जनित वक्ष्ययुक्त आत्मप्रदेशों में रहे हुए वीर्य का परिणमन वचनयोग

या प्रमाद्ये संशेषमां कर्मवादीनां प्रकरणं वर्णनं कर्त्वात्मा आन्तुं छे, अधिक  
विवरणं यथाशोधी धमलु वैवु लेखंजे.

क्रियावादीतु प्रकरणं.

ये कर्म एव या प्रमाद्ये कर्मण्यन्ता शरणा छे अने कर्मना स्वरूपं निरूपणं  
कर्त्वावाणा छे, तेन कर्मवादी आत्मा क्रियावादी छे

कस्यु ते क्रिया छे अथवा एव द्वारा ने कर्त्वायां आवे ते क्रिया छे कर्मण्यन्तु  
कारणं वेदा, क्रिया छे मन, वचन, काय संबन्धी जे क्रिया यथासम्भव योग कहेवाय छे  
अथवा लेना द्वारा एव वीर्यान्तराय-कर्मना क्षयोपशमधी उत्पन्न पर्याययुक्त अने  
छे, तेने धाम कहे छे वीर्यान्तरायना क्षयोपशमधी उत्पन्न, मनयुक्त आत्म-  
प्रदेशीमां रहेवा वीर्यना परिणमन ते मनोयोग कहेवाय छे वीर्यान्तरायना क्षयोपशमधी

વાગ્યોગઃ । વીર્યાન્તરાયક્ષયોપશમજનિતં કાયયુક્તાત્મપ્રદેશગતવીર્યપરિણમનં  
કાયયોગઃ । સા ચ ક્રિયા સકલકર્મવન્ધસ્ય કારણમ્, અતઃ કર્મવાદી ભવ્યઃ  
ક્રિયાં સકલકર્મકારણસ્વરૂપતયાઽઽત્મપરિણતિરૂપત્વેન ચ વિજાનાતિ, તસ્માત્  
સકલકર્મવન્ધકારણમાત્મપરિણતિરૂપા ચ ક્રિયેતિ વેદિતા, ક્રિયાવાદી-ક્રિયાસ્વરૂપ-  
કથનસ્વભાવો વેદિતવ્ય ઇત્યર્થઃ ।

ક્રિયા કર્મણઃ કારણમિતિ ભગવતા ભગવતીસૂત્રે નિગદિતમ્, તથાહિ—

“મંડિઅપુત્તા ! જાવં ચ ણં સે જીવે સયા સમિયં એયહ, વેયહ, ચલહ,  
ફંદહ, ઘટ્ટહ, ખુન્મહ, ઉદીરહ, ત તં ભાવં પરિણમહ, તાવં ચ ણં સે જીવે આરંમહ  
સારંમહ સમારંમહ, આરંમે વટ્ટહ સારંમે વટ્ટહ, સમારંમે વટ્ટહ, આરંમમાણે સારંમમાણે  
સમારંમમાણે આરંમે વટ્ટમાણે સારંમે વટ્ટમાણે સમારંમે વટ્ટમાણે વહૂણં પાણાણ  
ભૂયાણં જીવાણં સત્તાણં દુક્વાવણયાએ, સોયાવણયાએ, શૂરાવણયાએ, તિપ્પાવણયાએ,  
પરિયાવણયાએ વટ્ટહ, સે તેણઠ્ઠેણ મંડિઅપુત્તા ! એવં વુચ્છહ—જાવ ચ ણં સે જીવે  
સયા સમિય એયહ જાવ પરિણમહ, તાવં ચ ણં તસ્સ જીવસ્સ અંતે અંતકિરિયા ન  
ભવહ” (ભગવતી ૩. શત ૩૭.)

કહલાતા હૈ । વીર્યાન્તરાય કે ક્ષયોપશમ સે જનિત, કાયયુક્ત આત્મપ્રદેશો મેં રહે હુએ વીર્ય  
કા પરિણમન કાયયોગ કહલાતા હૈ । યહ ક્રિયા સકલ કર્મવન્ધ કા કારણ હૈ, ઇસ લિએ  
ભવ્ય પુરુષ ક્રિયા કો સવ કર્મોં કા કારણ ઓર આત્મા કી પરિણતિરૂપ સમજતા હૈ, અત  
“ક્રિયા, સમસ્ત કર્મોં કા કારણ ઓર આત્મા કી પરિણતિરૂપ હૈ” ઇસ પ્રકાર જાનને વાલેકો  
ક્રિયાવાદિક્રિયા કે સ્વરૂપ કા કથન કરને વાલા સમજના ચાહિએ ।

ક્રિયા, કર્મ કા કારણ હૈ, યહ બાત ભગવાન્ ને ભગવતીસૂત્ર મેં કહી હૈ, વહ  
ઇસ પ્રકાર —

ઉત્પન્ન, વચન-યુક્ત આત્મપ્રદેશોમા રહેલા વીર્યના પરિણમન કાયયોગ કહેવાય છે  
આ ક્રિયા સકલ કર્મવન્ધનુ કારણુ છે એટલા માટે ભવ્ય પુરુષ ક્રિયાને સર્વ કર્મોંનું  
કારણુ અને આત્માની પરિણતિરૂપ સમજે છે તે કારણથી “ક્રિયા સમસ્ત કર્મોંનું  
કારણુ અને આત્માની પરિણતિરૂપ છે” આ પ્રમાણે બાહ્યવાવાળાને ક્રિયાવાદી-ક્રિયાના  
સ્વરૂપનુ કથન કરવા વાળા સમજવા જોઈએ

ક્રિયા એ કર્મનુ કારણુ છે, એ વાત ભગવાને ભગવતીસૂત્રમા કહી છે, તે આ  
પ્રમાણે છે—



छाया-मण्डितपुत्र ! यावच्च स्तु स जीवः सदा समित एवते व्यनते चरति  
 स्पन्दते पठते धूम्यति उदीरयते सं त मां परिणमति, तावच्च स्तु स जीव आरमते  
 संरमते समारमते, आरमते वर्तते सरमते वर्तते समारमते वर्तते, आरममाणः,  
 संरममाणः समारममाणः । आरमते वर्तमानः, संरमते वर्तमानः समारमते  
 वर्तमानो बहूनां मात्मानां भूतानां जीवानां सत्त्वानां, दुःस्वापनतया शोचापनतया  
 श्रापनतया तेषापनतया पिष्टापनतया परितापनतया वर्तत स्तु तेनार्येन मण्डितपुत्र !  
 एषम् उच्यते-यावच्च स्तु स जीवः सदा समित एवते यावत् परिणमति, तावच्च  
 स्तु तस्य जीवस्य भन्ते अन्तक्रिया न भवति ।

भाषार्थः—

मनोवाङ्मययोगसहितस्य जीवस्य सर्वदा क्रियापरिणत्या कम्पन-  
 स्थानान्तरगमन-किञ्चिच्चलन-सर्वदिग्गमन-पृथिव्यादिसोम्य-बलात्कारपूर्वकप्रेरणो-  
 त्सेपया-पक्षेपया-सङ्कुञ्चन-प्रसारणादिपरिणामं प्राप्तस्य पृथिव्यादिजीवानामुप-  
 द्रवकरणेन वा, विनासकम्पनेन वा, परितापनेन वा, मरणसङ्घटनदुःख-  
 प्रापण्यया वा, मियत्रियोगादिदुःखप्रापण्यया वा, शोकप्रापण्यया वा, शोकाधिक्यजन्य-

“मन वचन और काययोग से सहित जीव सदा क्रियारूप परिणति से कम्पन  
 विविध कम्पन, एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन, किञ्चित् चलना सब दिशाओं में  
 गमन करना, पृथ्वी आदि को कुम्प करना बलात्कार से प्रेरित करना ऊपर उठाना,  
 नीचे करना, सिकोडना, फैलना इत्यादि परिणामों को प्राप्त होता है । इस परिणाम के  
 कारण जीव को पृथिवीकाय आदि के जीवों को उपद्रव करने से, पातका संकल्प करने से,  
 परिताप पहुँचाने से मृत्युरूप दुःख पहुँचाने से इत्यविशेषात् व्यदि का कष्ट पहुँचाने से शोक

मन, वचन जने काययोगशी सहित एव सदा क्रियारूप परिवृत्तिशी कचन,  
 विविध कचन, जेक स्थानशी जीवत स्थानपर गमन, किञ्चित् चालतु, सब दिशाओभा  
 गमन करतु, पृथ्वी आदिने कुम्प करतु, बलात्कारशी प्रेरित करतु, उपर उग्रवतु, नीचे  
 करतु, सिकोडतु, फैलतु, इत्यादि परिणामोने प्राप्त काय से आ परिव्याभनत करतु  
 एवने पृथ्वीकाय आदिना एवोने उपद्रव करवाशी घातने स पक्ष करवाशी, परिताप  
 पडोवाकरवाशी, मृत्युरूप दुःख पडोवाकरवाशी, शोकाशी अधिक्याशी भवावाशी शरीरनी

शरीरपीडोत्पादनया वा, अज्ञानादिप्रापणया वा, शरीरपीडोत्पादनया वा,  
 अज्ञानादिप्रापणया वा, शरीरपीडोत्पादनया वा, अज्ञानादिप्रापणया वा, मुक्तिर्न भवतीत्यर्थः । एवम्भूतस्य जीवस्य  
 अज्ञानादिप्रापणया वा, शरीरपीडोत्पादनया वा, अज्ञानादिप्रापणया वा, विरामो न संभवतीति भावः ।

विश्वामित्रेण पञ्चविंशतिभेदा इति स्थानाङ्गसूत्रे (स्था २ उ. १ । स्था. ३ उ. ३)

कृतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातः—

प्राणातिपातं कृत्वा जीवः सप्ताष्टौ वा ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि वध्नाति ।  
 तथाप्युक्ते सप्त कर्माणि, आयुर्धन्वाभावे सप्त कर्माणि वध्नाति ।

तत्र जीवः कृतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातं निष्पादयति ? उच्यते— कदाचित्  
 तिष्ठतिः क्रियाभिः, कदाचिन्वत्सृष्टिः क्रियाभिः, कदाचित्, पञ्चभिः क्रियाभिः ।

प्राणातिपात से शरीर की शक्तिता से, होने वाली शरीर की जीर्णता पहुँचाने से, अश्रुपात आदि  
 कर्माणि से, शरीर में पीडा उत्पन्न करने से, ग्लानि उत्पन्न करने से समस्त कर्मों का क्षयरूप  
 मोक्ष प्राप्त नहीं होता । तात्पर्य यह है कि—इस प्रकार के जीव के चार गति के दु खों से  
 परिपूर्ण संसाररूपी विकट अटवी में भ्रमण करने का अन्त नहीं आता । ”

क्रिया के पञ्चस भेद स्थानाङ्गसूत्र में कहे हैं । (स्था २ उ १, स्था ३ उ ३)

प्राणातिपात कितनी क्रियाओं से होता है ? ।

प्राणातिपात करता हुआ जीव ज्ञानावरणीय आदि सात या आठ कर्मों का  
 वध करता है । प्राण का वध हो तो आठ कर्मों का अन्यथा सात कर्मों का वध  
 करता है ।

जीव कितनी क्रियाओं से प्राणातिपात करता है । इस का उत्तर  
 यह है—प्राणातिपात तीन क्रियाओं से, कदाचित् चार क्रियाओं से, कदाचित् पांच क्रियाओं से ।

ज्याँता पडोँगाडवाथी, आसु पडाववाथी, शरीरमा पीडा उत्पन्न करवाथी, ग्लानि  
 उत्पन्न करवाथी समस्तकर्मोना क्षयर्ष मोक्ष प्राप्त थतो नथी तात्पर्य अ्ये छे के —  
 प्राणातिपात करने आरगतिना दु मोथी परिपूरुँ ससारर्षपी विकट अटवी (वन)मा  
 भ्रमण करवाने अत आवतो नथी

क्रियाना पञ्चस भेद स्थानाङ्ग सूत्रमा क्ख्या छे (स्था २-उ-१ स्था ३-उ)

प्राणातिपात क्रेटवी क्रियाओथी थाथ छे ?

प्राणातिपात करनार एव ज्ञानावरणीय आदि सात अथवा आठ कर्मोना वध  
 करे छे. आयुने वध डोय तो आठ कर्मोना—अन्यथा सात कर्मोना वध करे छे

एव क्रेटवी क्रियाओथी प्राणातिपात करी शक्रे छे ? तेना उत्तर अ्ये छे  
 के—कदाचित् त्रषु क्रियाओथी, कदाचित् आर क्रियाओथी, कदाचित् पांच क्रियाओथी.

तत्र—कायिक्याधिकारभिकीमादेपिकीभिः क्रियामिस्रिक्रियो बीबः कर्माणि  
 यन्नाति । कायिकीनाम—इस्तपादादिभ्यापारभम् । अधिकारिणी—स्वर्गातीरूपीकरणा  
 दिक्म् । मादेपिकी—‘एनं मारयामी—स्यशुभमनःसंप्रभारभमिति ।

प्राणातिपातं कर्तुंभीषस्य चतुष्क्रियता—कायिक्याधिकारिणीमादेपिकी  
 पारितापनिकीभिस्तसुभिः क्रियामिर्मवति । तत्र—पारितापनिकीनाम—स्वर्गादिभातेन  
 पीडाकरभम् । पञ्चक्रियता तदा मवति यदा प्राणातिपातक्रियाऽपि पञ्चमी  
 मवति । प्राणातिपातक्रियानाम—जीविताद् व्यपरोपणम् । उक्करीत्या ज्ञानावरणी

कर्मिकी, आधिकारिणी और प्रादेपिकी, इन तीन क्रियाओं का एक होकर बीब कर्मकच  
 करता है । हाथ—पैर आदि का छिलना उठाना कौरह कायिकि ' क्रिया है । तलवार को  
 तीक्ष्ण करना कौरह 'आधिकारिणी' क्रिया है । 'इसे मारुगा' इस प्रकार मन में अशुभ  
 विचार करना प्रादेपिकी ' क्रिया है ।

प्राणातिपात करने का एक बीब चार क्रिया का एक होता है—कर्मिकी, आधिकारिणी,  
 प्रादेपिकी और पारितापनिकी, ये चार क्रियाएँ उस कर्माती हैं । तलवार आदिका आघात  
 कर के पीछे पहुँचाना 'पारितापनिकी' क्रिया है । जब प्राणातिपात क्रिया भी बीब  
 कर शक्या है तब उसे पाँच क्रियाएँ कर्माती हैं । किसी प्राणी को बीबन से विपुल  
 कर देना 'प्राणातिपातिका' क्रिया है । इस प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों के कारणमूत

कर्मिकी आधिकारिणी और प्रादेपिकी, आ चतु क्रियाओंवाला कर्मने एव कर्मकच  
 करे छे हाथ—पैर आदिने कटावपु—इश्वपु चजेरे कर्मिकी क्रिया छे । तलवार चजेरेने  
 तीक्ष्ण करवी विजेरे आधिकारिणी क्रिया छे जेने भारीश आ अकारने भनभा  
 अशुभ विचार करवे ते प्रादेपिकी क्रिया छे

प्राणातिपात करवावाण एव चार क्रियावाण होय छे—कर्मिकी, आधिकारिणी  
 प्रादेपिकी जेने पारितापनिकी, आ चार क्रियाओ तेने लाये छे तलवार आदिने  
 आघात करीने पीछे पहुँचाववी ते पारितापनिकी क्रिया छे अथै प्राणातिपात क्रिया  
 चतु एव करी नाजे छे तथै तेने पाँच क्रियाओ लाये छे हाथ अशुभने एवनपी  
 विपुल (अ.इ.) करी देवु ते प्राणातिपातिका क्रिया छे आ अभावे ज्ञानावरणीय आदि

शरीरजीर्णताप्रापणया वा, अश्रुपातादिप्रापणया वा, शरीरपीडोत्पादनया वा, ग्लानिजननेन वा सकलकर्मक्षयात्मिका मुक्तिर्न भवतीत्यर्थः । एवम्भूतस्य जीवस्य चतुर्गतिकदुःखमयसंसारदुस्तरमहारण्यपरिभ्रमणाद् विरामो न संभवतीति भावः ।

क्रियायाः पञ्चविंशतिर्भेदा इति स्थानाङ्गसूत्रे (स्था २ उ. १ । स्था. ३ उ. ३)

कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातः—

प्राणातिपातं कुर्वन् जीवः सप्ताष्टौ वा ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि वध्नाति । तत्रायुर्बन्धे सत्यष्टौ कर्माणि, आयुर्बन्धाभावे सप्त कर्माणि वध्नाति ।

तत्र जीवः कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातं निष्पादयति ? उच्यते— कदाचित् तिसृभिः क्रियाभिः, कदाचिच्चतसृभिः क्रियाभिः, कदाचित्, पञ्चभिः क्रियाभिः ।

पहुँचाने से शोक की अधिकता से, होने वाली शरीर की जीर्णता पहुँचाने से, अश्रुपात आदि करवाने से, शरीर में पीडा उत्पन्न करने से, ग्लानि उत्पन्न करने से समस्त कर्मों का क्षयरूप मोक्ष प्राप्त नहीं होता । तात्पर्य यह है कि—इस प्रकार के जीव के चार गति के दुःखों से परिपूर्ण संसाररूपी विकट अटवी में भ्रमण करने का अन्त नहीं आता । ”

क्रिया के पच्चीस भेद स्थानाङ्गसूत्र में कहे हैं । (स्था २ उ १, स्था ३ उ. ३)

प्राणातिपात कितनी क्रियाओं से होता है ? ।

प्राणातिपात करता हुआ जीव ज्ञानावरणीय आदि सात या आठ कर्मों का बन्ध करता है । आयु का बन्ध हो तो आठ कर्मों का अन्यथा सात कर्मों का बन्ध करता है ।

जीव कितनी क्रियाओं से प्राणातिपात करता है । इस का उत्तर यह है—कदाचित् तीन क्रियाओं से, कदाचित् चार क्रियाओं से, कदाचित् पांच क्रियाओं से ।

लघुता पडोत्पादवाथी, आंसु पडाववाथी, शरीरमा पीडा उत्पन्न करवाथी, ग्लानि उत्पन्न करवाथी समस्तकर्मोना क्षयरूप मोक्ष प्राप्त थतो नथी तात्पर्यं ये छे के— आ प्रभाण्णे लवनो आरगतिना दु ज्योथी परिपूष् ससाररूपी विकट अटवी (वन)मा भ्रमणु करवानो अत आवतो नथी

क्रियाना पच्चीस भेद स्थानाङ्ग सूत्रमा कक्षा छे (स्था २-७-१ स्था. ३-३)

प्राणातिपात डेटली क्रियाओथी थाय छे ?

प्राणातिपात करनार एव ज्ञानावरणीय आदि सात अथवा आठ कर्मोना भंध करे छे आयुनो भध डोय तो आठ कर्मोना—अन्यथा सात कर्मोना भध करे छे

एव डेटली क्रियाओथी प्राणातिपात करी शके छे ? तेनो उत्तर ये छे के—कदाचित् त्रयु क्रियाओथी, कदाचित् आर क्रियाओथी, कदाचित् पांच क्रियाओथी.

बदे सति तु मृगे तस्य लुम्बकस्य पारितापनिकी, पारितापनप्रयोजना क्रिया भवति।  
पाठिते च सति मारुतरूपा प्राणातिपातक्रिया ।

पूर्व क्रियया ज्ञानावरणीयादिक कर्म जन्यते । तत्तत्कर्मफलानुमपनरूपा वेदना  
च तत्सम्भावेण भवति । उक्तम्—

“पुष्पं मते ! किरिया पच्छा वयणा ? पुष्पं वेयमा तच्छा किरिया ?  
मंडिमपुष्पा ! पुष्पं किरिया पच्छा वेयमा, नो पुष्प वेयमा, पच्छा किरिया ” ।

( मग ३ ष ३ उ )

छाया-पूर्व भवन्त ! क्रिया पश्चाद् वेदना ? पूर्व वेदना पश्चात् क्रिया ?  
मोक्षमिद्वत्पुत्र । पूर्व क्रिया पश्चाद् वेदना, नो पूर्व वेदना पश्चात् क्रिया ॥

**कुशुलादौ लोहसुत्तिपतः क्रिया-**

सोहं लोहप्रतापनार्थे कुशुले लोहमेन संदक्षनेनोत्तिपत् मक्षिपत् वा  
प्राग्निपिकी क्रिया क्मती है । मृग के रैष जाने पर शिकारी को पारितापनिकी क्रिया  
क्मती है । मृग का पात करने पर हिंसारूप प्राणातिपातिकी क्रिया होती है ।

पहले क्रिया से ज्ञानावरण जन्मि कर्मों का बंध होता है और उस का फल  
मोक्षान्तरूप वेदना बाद में ही होती है । कहा भी है—

“ हे मगन् ! पहले क्रिया और फिर वेदना होती है । पश्चात् पहले वेदना और  
पश्चात् क्रिया होती है । हे मण्डितपुत्र ! पहले क्रिया पश्चात् वेदना होती है । पहले वेदना  
और पश्चात् क्रिया नहीं होती ” ( मगवती. श ३ उ १ )

**कुशुल आदि में सोहा डालने वाले को क्रिया-**

तपाय के लिए कुशुल (मृष) में सोहे को संहासी से जोहा डालने वाले को

क्रिया बाध से भूज उपर उवावणा द्वेषी प्राग्निपिकी क्रिया जाने से भूजना लक्ष्मी  
लक्ष्मी शिकारीने पारितापनिकी क्रिया जाने से भूजनेो पात करवायी हिंसारूप  
प्राणातिपातिकी क्रिया बाध से

प्रथम क्रियाधी ज्ञानावरण् ज्यदि कश्चिन्ना लक्ष बाध, उ जने तेनु इण सोअववा  
इय वेदना पछीधीन बाध से कहु उ ठे—

“ हे लजवन् ! पहले क्रिया जने पछी वेदना बाध से ? केपडेबां वेदना जने  
पछीधी क्रिया बाध से ? हे मण्डितपुत्र ! पहले क्रिया, जने पछीधी वेदना बाध से  
पछेती वेदना जने पछीधी क्रिया पची नथी. ” ( लज. श. ३ उ ३ )

**भूज आदिमां सोह नाभनास्ने क्रिया-**

तपायच भाटे भूजमां, सोहानी क्षाव्शीधी सोह नाभनाचागने कश्चिधी बाधने

યાદિકર્મણાં કારણીભૂતસ્ય પ્રાણાતિપાતસ્ય નિષ્પત્તિસ્ત્રિક્રિયતયા, ચતુષ્ક્રિયતયા  
પશ્ચક્રિયતયા વા ત્રિધા ભવતિ । એવં ચતુર્વિંશતિદણ્ડકેષુ વિજ્ઞેયમ્ ।

### મૃગવધોદ્યતસ્ય ક્રિયા—

મૃગવધોદ્યતો લુબ્ધકઃ સ્વલુ વનપર્વતજલાશયાદિષુ મૃગવધાર્થં ગત્વા  
મૃગપ્રહણાય ગર્તાદિકં તવન્વનાર્થં ચ પાશં રચયતિ, તદા મૃગવધાર્થં ગમનગર્ત-  
પાશાદિકરણાત્ તસ્ય કાયિક્યાદિકાઃ ક્રિયા ભવન્તિ । તન્ન ગમનધાવન-  
પ્રહણાદિના ગમનાદિકાયચેષ્ટારૂપા કાયિકી, ગર્તપાશાદિરૂપેણાધિકરણેન નિર્વૃત્તા  
ક્રિયા આધિકરણિકી, યથ મૃગેષુ પ્રદેષસ્તેન નિર્વૃત્તા પ્રાદેષિકી ક્રિયા ભવતિ ।

પ્રાણાતિપાત કી નિષ્પત્તિ કહીં તીન, ચાર તથા કહીં પાંચ ક્રિયાઓં સે, એસે તીન પ્રકાર સે  
હોતી હૈ । ચૌવીસોં દણ્ડકોં મેં ઇસી પ્રકાર સમજના ચાહિણ ।

### મૃગવધ મેં ઉદ્યતકો ક્રિયા—

મૃગ મારને કે લિણ ઉદ્યત હુઆ શિકારી વન પર્વત ઓર જલાગય આદિ મેં  
મૃગકા વધ કરને કે લિણ જાકર મૃગ પકડને કે લિણ સ્વહ્ડા બનાતા હૈ ઓર ઉસે  
બાંધને કે લિણ જાલ રચતા હૈ । ઉસ સમય મૃગવધ કે લિણ ગમન કરને સે, તથા  
સ્વહ્ડા ઇવ પાશ તૈયાર કરને સે, ઉસે કાયિકી આદિ ક્રિયાઈ લગતી હૈ । જાના દૌડના,  
પકડના આદિ સે કાયિકચેષ્ટારૂપ કાયિકી ક્રિયા લગતી હૈ । સ્વહ્ડા ઓર જાલરૂપ  
અધિકરણોં કે કારણ આધિકરણિકી ક્રિયા હોતી હૈ, મૃગ પર હોને વાલે દેષ કે કારણ

કર્મોના કારણભૂત પ્રાણાતિપાતની ઉત્પત્તિ કોઈ સ્થળે ત્રણ, કોઈ ઠેકાણે ચાર તથા  
કોઈ ઠેકાણે પાચ ક્રિયાઓથી એવા ત્રણ પ્રકારથી હોય છે એવીશય હૃડકોમાં આ  
પ્રમાણે સમજવું બેઈએ

### મૃગવધમાં તૈયાર થનારને ક્રિયા—

મૃગને મારવા માટે તૈયાર થયેલો શિકારી વન, પર્વત અને જલાશય આદિમાં  
મૃગને વધ કરવા માટે જઈને મૃગ પકડવા માટે ખાડો ખનાવે છે, અને તેને બાંધવા  
માટે બલ રચે છે તે સમયે મૃગના વધ માટે ગમન કરવાથી, તથા ખાડો અને પાશ  
તૈયાર કરવાથી તેને કાયિકી આદિ ક્રિયાઓ લાગે છે. જુ, દોડવું, પકડવું આદિથી કાયિક  
ચેષ્ટારૂપ કાયિકી ક્રિયા લાગે છે ખાડો અને બલરૂપ અધિકરણોના કારણે આધિકરણિકી

पयति, स्थानतः स्थानान्तरं नयति, नीविताद् व्यपरोयपति । तत्र कायिक्यादि प्राणातिपातिकीपर्यन्तामिः पञ्चमिः क्रियामिः स्पृष्टो भवति ।

वृष्टिज्ञानाय इस्तादिक प्रसारयतः क्रिया—

रात्रौ निविहान्स्कारे बहुदर्शनाभावे सति वृष्टिं चिन्तितुमाकांक्षे यः स्वसु इस्त पाद वा बाहु वा ऊर्ध्वं वा यावत्काल प्रसारयेत् संकोचयेत् तावत्कालम् एवासौ कायिक्यादिप्राणातिपातिकीपर्यन्तामिः पञ्चमिः क्रियामिः स्पृष्टो भवति ।

करता है, पूरी तरह परिष्ठापना करता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर लेजाता है, बीजन से प्युत करता है, ऐसा करने में वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । अर्थात् पांचों ही क्रियाएँ उसे लगती हैं ।

वृष्टिज्ञान के लिए हाथ आदि फैलाने वाले को क्रियाएँ—

रात्रि के समय घोर अन्धकार में—बहुवर्षेण का अभाव होने पर, वर्षा आने के लिए आकाश में जो हाथ पैर, बाहु, या ऊर्ध्व जब तक प्रसारता है, सिकोटा है, तब तक ही वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचक्रियाओं से स्पृष्ट होता है ।

पूरी रीते भस्तिपाना करे छे, ओठ स्थानधी पीठ स्थानमां लार्ध जग छे लुपनधी म्युत (विमुक्त) करे छे कोवी रीते करवाभां ते कबिकी आदि प्राणातिपातिकी सुधीनी पञ्चम क्रियाओंधी स्पृष्ट याव छे ज्योत् तेने पञ्चम क्रियाओं लाये छे

वृष्टिज्ञान माटे हाथ आदि फैलाववा वाजाने क्रियाओं—

रात्रिना घोर अन्धकारमां, बहुदर्शनने अभाव कोवाधी बरसाड आवे छे ते नदि । जे लघुवा आटे, आकाशमां ले हाथ, पंज पाहु अथवा उर्ध्व ज्वां सुधी प्रसारे छे, सहाये छे, तां सुधी ते कबिकी आदि प्राणातिपातिकी सुधीनी पञ्च क्रियाओं तेने स्पर्शे छे.

कायिक्यादि-प्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति । एवं लोहेन फालपरशुकुटारकुदालदात्रादिनिर्माणे लोहकारादीना पञ्चक्रियत्वं भवति, अविरतिसद्भावात् । एवं घनोपरि स्थापनेन कुट्टनेन भस्त्रया ध्मापनेन विध्यापनेन प्रज्वलितेन शैत्यकरणार्थं जले तप्तलोहप्रक्षेपेण प्रत्येकतत्त्वद्व्यापारे पञ्चभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

### धनुषा विध्यतः क्रिया-

धनुर्धरः शरैर्व्यापादयन् यावत् धनुर्गृह्णाति, यनुः प्रसारयति, कर्ण-पर्यन्तमाकर्षति, वर्तुलीकरोति, वाणं संयोजयति, ऊर्ध्वं प्रक्षिपति, स्वाभिमुख-मागच्छतो इन्ति, अन्योन्यगात्रं सहतीकरोति, मनाक् स्पृशति, समन्ततः परिता-

कायिकी से प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांच क्रियाओं का स्पर्श होता है । इसी प्रकार लोहे से फाल, फरसा, कुल्हाडा, कुदाल, दातला आदि के बनाने में छहार वगैरह को पांच क्रियाएँ लगती हैं, क्यों कि उस में अविरति मौजूद है । इसी प्रकार घन के ऊपर रखने में, कूटने में, घौकने में, आग बुझाने में, प्रज्वलित करने में, ठंडा करनेके लिए जल में लोहा डालने में, इस प्रत्येक में पांच २ क्रियाएँ लगती हैं ।

### धनुष से वेधने में क्रिया-

धनुर्धारी पुरुष वाण से मारता हुआ जब तक धनुष ग्रहण करता है, धनुष फैलाता है, कानपर्यन्त खींचता है, गोल करता है, उस में वाण जोड़ता है, ऊपर फेंकता है, अपने सामने आते को मारता है, शरीर को सिकोड़ता है, जरा-सा स्पर्श

प्राणुतिपात सुधीनी पाय क्रियाभ्योना स्पर्शं थाय छे अे प्रभाषे लोहाना शल-  
हणनी डोस, इरसी, कुवाडा, डोहाली, दातला आदि अनाववाभा लुडार वगेरेने पाय  
क्रियाभ्यो लागे छे, डारषु डे तेभा अविरति हुअर छे आ अकारे धनुने उपर  
राअवाभा, कूटवाभां धोडनीथी धोडवाभा, अग्नि अुआवाभा, प्रज्वलित करवाभा अने  
डोडुं डडुं करवा भाटे पाषुभा नाअवाभा. आ प्रत्येक कार्यभा पाय क्रियाभ्यो लागे छे

### धनुषथी विधवाभा क्रिया-

धनुष धारषु करनार पुश्च आषुथी मारतो न्यासुधी धनुष अडषु करे छे,  
धनुष इलावे छे, डान सुधी जेचे छे, गोण करे छे, तेभा आषु जेठे छे, उपर डेडे छे,  
पोताना सामे आवनारने मारे छे, शरीरने स डोचे छे, थोडो अेवे स्पर्श करे छे,



पयति, स्थानतः स्थानान्तरं नयति, नीयिताद् व्यपरोपयति । तत्र कायिक्यादि प्राणातिपातिकीपर्यन्तामिः पञ्चमिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

वृष्टिज्ञानाय इत्यादिक मसारयतः क्रिया—

राशौ निषिद्धान्कारे चतुर्दशनामावे सति वृष्टिं पिशातुमाकाशे पः सत्तु इत्त पाद वा बाहु वा ऊरुं वा पास्तकाल मसारयेत् संकोचयेत् तावत्काष्ठ एवासी कायिक्यादिप्राणातिपातिकीपर्यन्तामिः पञ्चमिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

करता है, पूरी तरह परित्यापना करता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है, जीवन से म्युत करता है, ऐसा करने में वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । अर्थात् पांचों ही क्रियाएँ उसे लगती हैं ।

वृष्टिज्ञान के लिए हाथ आदि फैलाने वाले क्रियाएँ—

राशि के समान गोर अन्धकार में—चतुर्दशनाम का समाव होने पर, वर्षा जानने के लिए आकाश में जो हाथ फैर, बाहु, या ऊरु धर तक पसारता है, सिफोड्डा है, तब तक ही वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांचक्रियाओं से स्पृष्ट होता है ।

पूरी रीते परित्यापना करे छे जेठ स्थानधी धीन स्थानभां लक्ष अथ छे लवनधी म्युत (विमुक्त) करे छे जेवी रीते करणभां ते अगिकी आदि प्राणातिपातिकी मुभीनी पशिय क्रियाजोधी स्पृष्ट बाव छे अर्थात् तेने पशिय क्रियाजो आवे छे

वृष्टिज्ञान आदि द्वारा आदि फैलाने वा जाने क्रियाओं—

राशिना गोर अंधकारभां चतुर्दशनामो अवान कोनाधी वरसाह आवे छे के नदि । जे अवाना आदि, आकाशभां जे हाथ पज, बाहु अथवा उरु अथ मुभी प्रसार छे, सदावे छे त्या मुभी ते अगिकी आदि प्राणातिपातिकी मुभीनी अथ क्रियाजो तेने स्पृष्ट छे

॥ તાલમારુદ્ય તત્કલ પાતયતઃ ક્રિયા ॥

તાલવૃક્ષમારુદ્ય તત્કલ પાતયન્નપિ તાવત્કાલત એવ પશ્ચન્નિઃ કાયિકયાદિ-  
ક્રિયામિઃ સ્પૃષ્ટો ભવતિ ।

અષ્ટાદશ પાપસ્થાનાનિ—

(૧) પ્રાણાતિપાતઃ—

જીવાનાં પ્રાણાતિપાતાધ્યવસાયેન પ્રાણાતિપાતક્રિયા ભવતિ । હિંસાપરિણામ-  
કાલ એવ પ્રાણાતિપાતક્રિયા ભવતિ । પ્રાણાતિપાતાદીનામધ્યવસાયમાત્રાદપિ જ્ઞાના-  
વરણીયાદિ કર્મ જન્યતે । ઉક્તશ્ચ—

“ પરિણામિયં પમાણં ણિચ્છયમવલંબમાણાણં ” ઇતિ ।

તાલવૃક્ષ પર ચઢ કર ફલ ગિરાનેવાલે કો ક્રિયાઈ—

તાલ વૃક્ષ પર ચઢ કર ઉસ કે ફલ ગિરાતા હુઆ તવ તક કાયિકી આદિ પાંચ  
ક્રિયાઓ સે સ્પૃષ્ટ હોતા હૈ ।

અઠારહ પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોં કા પ્રાણાતિપાત કરને કે અધ્યવસાય સે પ્રાણાતિપાતક્રિયા હોતી હૈ । હિંસા-  
રૂપ પરિણામ કે સમય હી પ્રાણાતિપાતક્રિયા હોતી હૈ । પ્રાણાતિપાત કા અધ્યવસાય હોને  
માત્ર સે મી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન હોતે હૈ । કહા મી હૈ—

“ પરિણામિયં પમાણં ણિચ્છયમવલંબમાણાણં ”

અર્થાત્ પ્રાણાતિપાત કરને કા નિશ્ચય કરને વાલે કા પરિણામ હી કર્મવન્ધ કા કારણહૈ

તાલવૃક્ષપર અઢીને ફલ પાડનારની ક્રિયાઓ—

તાલવૃક્ષ પર અઢીને તેના ફળ પાડે છે ત્યા સુધી કાયિકી આદિ પાંચ ક્રિયાઓનો  
સ્પર્શ કરે છે

અઠાર પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોના પ્રાણાતિપાત કરવાના અધ્યવસાયથી પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે હિંસા-  
રૂપ પરિણામના સમયેજ પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે પ્રાણાતિપાતનો અધ્યવસાય થવા  
માત્રથી પણ જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે કહ્યું છે કે—

“ પરિણામિય પમાણ ણિચ્છયમવલંબમાણાણ ”

અર્થાત્—પ્રાણાતિપાત કરવાનો નિશ્ચય કરવાવાળાના પરિણામજ કર્મવન્ધ ધનુ કારણ છે.

इयं च प्राणातिपातक्रिया पशुजीवनिष्कायविषये भवति । यथा-रम्भादौ सर्पादिबुद्ध्या मारणाभ्यवसायोऽपि जीवविषयक एव । तत्र हि-‘सर्वोऽयं’ मितिबुद्ध्या मारणाभ्यवसायो जायते, तस्मात् रज्जुं प्रति सर्पवपमावयुक्तः सर्पवपमन्यया प्राणातिपातक्रियया स्पृष्टो भवति । अजीवविषयको मारणाभ्यवसायस्तु नैव संभवति, यथा रज्जुं रज्जुत्वेन विज्ञाय न कश्चिद्रज्जुविषये मारणाभ्यवसायं करोति तस्मात् पशुसु जीवनिष्कायेष्वेव प्राणातिपातक्रिया प्रवर्तते, न त्वजीवविषय इति । उक्तञ्च—

“कश्चि एव मते । जीवाभं प्राणात्पातं क्रियया कश्चि । । गोयमा एतु जीवनिष्कायसु” इति

मह प्राणतिपात क्रिया पशुजीवनिष्काय के विषय में होती है । रस्ती आदि में सर्प आदि की भावना से मारने का अभ्यवसाय होना भी जीवविषयक ही अभ्यवसाय है । वहाँ ‘यह सर्प है’ इस प्रकार की भावना से मारने का अभ्यवसाय होता है, अत एव वहाँ रस्ती में सर्प के बचके भाव से कुछ पुरुष सर्पवपमन्य प्राणातिपात क्रिया से स्पृष्ट होता है । अजीवविषयक मारने का अभ्यवसाय तो हो ही नहीं सकता है—रस्ती को रस्ती समझ कर कोई रस्ती में मारने की भावना नहीं करता अतः पशुजीवनिष्कायो में ही प्राणातिपातिकी क्रिया प्रवृत्त होती है, अत्रोप में नहीं । कहा भी है—

“भवन् । किन् में जीवो को प्राणातिपातिकी क्रिया होती है ! गौठम ! एत जीवनिष्कायो में” ।

अ प्राणातिपात क्रिया पशुजीवनिष्कायना विषयमा जायते । दोरदां अदिभिं सर्पआदिनी भावनाथी भावनाया अभ्यवसाय सयेते ते पशु जीवविषयक अभ्यवसाय उ त्वां आ सर्प उ’ आ प्रकारनी भावनाथी भावनाया अभ्यवसाय जायते । अत एव आरम्भादौ सर्पनाथी भावनाया पशु सर्पवपमन्य प्राणातिपात क्रियाने स्पृष्टे । अजीवविषयक मारणाया अभ्यवसाय ते सर्प सत्त्वा नथी—रस्तीने रस्ती (दोरी) समझने केरु रस्ती-दोरीभां मारणाया भावना कस्या नथी ते अते पशुजीवनी जायोभां प्राणातिपातनी क्रिया प्रवृत्त होयते । अत एव नदि । कहुं पशु उ—

“भवन् । येषां अयेने प्राणातिपातिकी क्रिया जायते । जीवमा । एत जीवनिष्कायोमां ।

॥ તાલમાસ્ય તત્કલ પાતયતઃ ક્રિયા ॥

તાલવૃક્ષમાસ્ય તત્કલં પાતયન્નપિ તાવત્કાલત્ એવ પશ્ચમિઃ કાયિક્વાદિ-  
ક્રિયામિઃ સ્પૃષ્ટો ભવતિ ।

અષ્ટાદશ પાપસ્થાનાનિ—

(૧) પ્રાણાતિપાતઃ—

જીવાનાં પ્રાણાતિપાતાધ્યવસાયેન પ્રાણાતિપાતક્રિયા ભવતિ । હિંસાપરિણામ-  
કાલ એવ પ્રાણાતિપાતક્રિયા ભવતિ । પ્રાણાતિપાતાદીનામધ્યવસાયમાત્રાદપિ જ્ઞાના-  
વરણીયાદિ કર્મ જન્યતે । ઉક્તશ્ચ—

“ પરિણામિયં પમાણં ણિચ્છયમવલંબમાણાણં ” ઇતિ ।

તાલવૃક્ષ પર ચઢ કર ફલ ગિરાનેવાલે કો ક્રિયાઈ—

તાલ વૃક્ષ પર ચઢ કર ઉસ કે ફલ ગિરાતા હુઆ તવ તક કાયિકી આદિ પાંચ  
ક્રિયાઓં સે સ્પૃષ્ટ હોતા હૈ ।

અઠારહ પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોં કા પ્રાણાતિપાત કરને કે અધ્યવસાય સે પ્રાણાતિપાતક્રિયા હોતી હૈ । હિંસા-  
રૂપ પરિણામ કે સમય હી પ્રાણાતિપાતક્રિયા હોતી હૈ । પ્રાણાતિપાત કા અધ્યવસાય હોને  
માત્ર સે મી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન હોતે હૈ । કહા મી હૈ—

“ પરિણામિયં પમાણં ણિચ્છયમવલંબમાણાણં ”

અર્થાત્ પ્રાણાતિપાત કરને કા નિશ્ચય કરને વાલે કા પરિણામ હી કર્મવન્ધ કા કારણહૈ

તાલવૃક્ષપર ચઢીને ફલ પાડનારની ક્રિયાઓ—

તાલવૃક્ષ પર ચઢીને તેના ફળ પાડે છે ત્યા સુધી કાયિકી આદિ પાંચ ક્રિયાઓનો  
સ્પર્શ કરે છે

અઠાર પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોના પ્રાણાતિપાત કરવાના અધ્યવસાયથી પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે હિંસા-  
રૂપ પરિણામના સમયેજ પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે પ્રાણાતિપાતનો અધ્યવસાય થવા  
માત્રથી પણ જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે કહ્યું છે કે—

“ પરિણામિય પમાણ ણિચ્છયમવલંબમાણાણ ”

અર્થાત્-પ્રાણાતિપાત કરવાનો નિશ્ચય કરવાવાળાના પરિણામજ કર્મજ ધનુ કારણ છે

गतरूपेषु रूपसहगतेषु स्वभादिषु विषयेषु भवति, न तु सकलवस्तुविषये ।  
 सकलवस्तु—

“ कस्मिंश्च भेदे । जीवात्म्यं मेदुष्येण किरिया कन्मद् ? । गोपना ! रूपेषु  
 वा रूपसहगपसु वा दम्बेषु ” इति ( मग १ अ ६ उ )

(५) परिग्रहः—

परिग्रहः—स्वस्वामिभावेन मूर्च्छा । स च प्राणिनामधिकशोभात् समस्त-  
 वस्तुविषये प्रादुर्भवति ।

कृत्याकृत्यविवेकोन्मुखोऽज्ञमा रूप आत्मपरिग्रामः क्रोधः ६ । मानो=  
 गर्वः ७ । माया=बाह्यम् ८ । सोमो=मृच्छुता ९ । रागः=भीतिरासक्तिर्वा १० ।

मी सब वस्तुओं में नहीं होता । विप्र, कप्य, या काष्ठ आदि में अधिकृत क्रिये जाने वाले  
 रूपों में या जी आदि में ही मेषुन का सम्भवताम होता है । कहा मी है—

“ मगन् । किं विषय में जीव मेषुन क्रिया करते हैं ? गौतम ! रूपों में और  
 रूप-सुख विषयों ( विषयों आदि ) में । ( मग १, उ. ६ )

(५) परिग्रहः—

“ यह वस्तु मेरी है मैं इसका स्वामी हूँ ” इस प्रकार की मूर्च्छा को परिग्रह  
 करते हैं । प्राणियों में क्रम की अधिकता होने के कारण सभी वस्तुओं में मूर्च्छा हो  
 सकती है ।

कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट करने वाला अज्ञानमा रूप अज्ञान का परिग्राम  
 (६) क्रोध कहलता है । गर्व को (७) मान और कपट को (८) माया करते हैं ।

पक्ष सर्व वस्तुओंमें नहीं, विप्र दोष अथवा काष्ठ आदिमां वितस्वामां आवेत्वा  
 इषिमां अथवा स्त्री आदिभाव मेषुनने। अथवसाव साव उ कर्तुं पक्ष उ :—

“ मगन् । क्या विषयमां एव मेषुन क्रिया करे उ ?

गौतम ! रूपिमां अने इत्युक्त विषयो ( विषयो आदि ) मां ( मग ०१ उ-१-७ )

(५) परिग्रहः—

“ यह वस्तु भारी है—तु तेने भविके छ ” आ प्रशरणी भूछनि परिग्रह  
 कहे छे मक्षीमेमां दोषानी अधिकता दोषान्ता काश्चे सर्व वस्तुओंमां मूर्च्छा दोष छे  
 कर्तव्य-अकर्तव्यना विवेकने नाथ कश्चात्पण, अथमातेप अथमां परिग्राम ते  
 दोष होवाव छे (१) मग ने मान (७) अने कपटने भाषा कहे छे (८). यदि ते

## (२) मृषावादः—

सतोऽपलापोऽसतश्च प्ररूपणं मृषावादः । स सर्वद्रव्यपर्यायविशेषये भवति ।

## (३) अदत्तादानम्—

अदत्तस्य=देवगुर्वादिभिरननुज्ञातस्यादानं=ग्रहणम्=अदत्तादानम्, यद् वस्तु ग्रहीतुं धारयितुं वा शक्यते, तद्वस्तुमात्रत्रिपयकमादानं भवति, न तु तदन्यवस्तु-विषयकम्, उक्तञ्च—

“कम्हि णं भंते ! जीवाणं अदिन्नादाणेणं किरिया कज्जड ? । गोयमा महणधारणिज्जसु दब्बेसु” । इति (भग० १ श. ६ उ.)

## (४) मैथुनम्—

स्त्रीपुंसयोः कर्म-मैथुनम् । मैथुनाध्यवसायोऽपि चित्रलेप्यकाष्ठादिकर्म-

## (२) मृषावाद—

सत् का अपलाप करना और असत् का प्ररूपण करना मृषावाद है । मृषावाद समस्त द्रव्यों और पर्यायों के विषय में होता है ।

## (३) अदत्तादान—

अदत्त अर्थात् देव एव गुरु आदि द्वारा जिस की आज्ञा प्राप्त न हुई हो उसको ग्रहण करना अदत्तादान है । जो वस्तु ग्रहण की जा सकती है या धारण की जा सकती है उसी वस्तु का आदान हो सकता है, अन्य वस्तु का नहीं । कहा मी है—

“भगवन् ! किस वस्तु में अदत्तादान के द्वारा क्रिया की जाती है ? गौतम ! ग्रहण करने और धारण करने योग्य द्रव्यों में (भग., श १, उ ६)

## (४) मैथुन—

मैथुन अर्थात् स्त्री और पुरुष का कार्य मैथुन कहलाता है । मैथुन का अध्यवसाय

## मृषावाद—

सत्-ने जोड़ु कहेवुं अने असत्-ने सायु कही तेनुं प्ररूपणुं करवुं ते मृषा वाद-स भस्त द्रव्यो अने पर्यायोना विषयोभा थाय छे.

## (३) अदत्तादान—

अदत्त अर्थात् देव-गुरु आदिद्वारा जेनी आज्ञा भणी न होय, तेवी वस्तुने अदत्त करवी ते अदत्तादान छे जे वस्तु अदत्त करी शकय छे, अथवा धारण करी शकय छे ते वस्तुनु आदान थई शके छे जीणु वस्तुनु नहि कहु पणु छे—

भगवन् ! कछ वस्तुमा अदत्तादान द्वारा क्रिया थई शके छे ? गौतम ! अदत्त करवा अने धारणकरवा योग्य द्रव्योभा.” (भाग १ श ६ उ. ६)

## (४) मैथुन—

मैथुन अर्थात् स्त्री अने पुरुषनु कार्य मैथुन कहेवाय छे, मैथुनना अध्यवसाय

मत्स्वेषु रूपसङ्गतोयु स्यादियु विषयेषु भवति, न तु सकम्बस्तुविषये ।  
उक्तम्—

“कम्भिर्वा मते ! जीवान् मेहुषेण किरिया कम्भः ? । गोवमा ! स्वेषु  
वा स्वसङ्गापसु वा दम्बेसु” इति ( मम १ उ १ उ )

(५) परिग्रहः—

परिग्रहः—स्वस्वामिभावेन मूर्च्छा । स च प्राणिनामधिक्येनात् समस्त-  
वस्तुविषये प्रादुर्भवति ।

कृत्याकृत्यविशेषोन्मुखोऽस्यमारूप आत्मपरिणामः क्रोधः ६ । मानो=  
गर्भः ७ । माया=शठपम् ८ । लोभो=गुञ्जुता ९ ? । राग=वीथिरासक्तिर्वा १ ।

भी सब वस्तुओं में नही होता । चित्र, केम्प, या काष्ठ आदि में अधिकृत किये जाने वाले  
रूपों में या जी आदि में ही मैथुन का अभ्यवसाय होता है । कहा भी है—

“भगवन् ! किञ्च विषय में जीव मैथुन किया करते हैं ? गौतम ! रूपों में और  
रूप-युक्त विषयों (स्त्रियों आदि) में । ( मम १ उ १ उ )

(५) परिग्रहः—

‘यद् वस्तु मेरी है मैं इसका स्वामी हूँ’ इस प्रकार की मूर्च्छा को परिग्रह  
कहते हैं । प्राणियों में क्रम की अधिकता होने के कारण सभी वस्तुओं में मूर्च्छा हो  
सकती है ।

कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट करने वाला अक्षमरूप भ्रमा का परिणाम  
(१) क्रोध कहलाता है । गर्भ को (७) मान और कपट को (८) माया कहते हैं ।

पञ्च सर्व वस्तुजोभां नधी चित्र तेष्व् अथवा शठ आदिमां चित्तस्वामां अथवा  
इषिमां अथवा जी आदिमां च मैथुनो अथवासाय याव उ कसु पञ्च उ ।—

“लजवन् ! क्या विषयमा एव मैथुन किया करे उ ?

गौतम ! रूपोंमां अने इपयुक्त विषयो (स्त्रियो आदि)मां ( मम ०१ उ १-१-७ )

(५) परिग्रहः—

“यद् वस्तु भारी उ-कु तेने भवति उ आ प्रकारनी भूषिने परिग्रह  
कहे उ मूर्च्छाजोभां दोषानी अधिकता दोषान् कारणे सर्व वस्तुजोभां भूषो दोष उ  
उक्तम्—अकर्तव्यना विवेकने नाथ कस्यवाणा, अक्षमारूप अरभायुं परिक्रम ते  
दोष कहेवाय उ (१), गर्भ ने भान (७), अने कपटने अया कहे उ (८), अदि ते

द्वेष=अप्रीतिः ११ । कलहो=विरोधः १२ । अभ्याख्यानम्=असदोपारोपणम् १३ ।  
 पैशुन्यं=कर्णान्तिकादीं परोक्षे विद्यमानस्याविद्यमानस्य वा दोषस्योद्घाटनम् १४ ।  
 परपरिवादः=प्रभूतजनसमक्षं परदोषप्रकाशनम् १५ । रत्यरतिः=विषयेष्वनुरागो  
 रतिः, धर्मेऽनभिरुचिररतिः, रतिसहिता-अरतिः रत्यरतिः, इदमेक पापस्थानम् १६ ।  
 मायामृषा=मायासहितो मृषावादः, इदमप्येकं पापस्थानम् १७ । मिथ्यादर्शन-  
 शल्यम्=मिथ्यादर्शनं मिथ्यात्वं तदेव शल्यमिव विविधव्यधाजनकत्वात् मिथ्या-

गृह्ण- (९) लोभ है, प्रीति या आसक्ति (१०) राग हैं, और अप्रीति को (११) द्वेष  
 कहते हैं, (१२) कलह अर्थात् विरोध । (१३) अभ्याख्यान अर्थात् किसी को झूठा  
 दोष लगाना । चुगली वगैरह को (१४) पैशुन्य कहते हैं, अर्थात् विद्यमान या अविद्य-  
 मान दोष को पीठ पीछे प्रकाशित करना । बहुत से लोगों के समक्ष दूसरे के दोष  
 प्रकाशित करना (१५) परपरिवाद है । विषयों में अनुराग होना रति और धर्म में  
 अनुराग न होना अरति है, रतिसहित अरति को (१६) रत्यरति कहते हैं । यह एक  
 पापस्थानक है । माया से युक्त मृषावाद (१७) मायामृषा कहलाता है, यह भी  
 एक पापस्थानक है । शल्य के समान विविध प्रकार की व्यथाएँ उत्पन्न करने वाला  
 मिथ्यात्व (१८) मिथ्यादर्शनशल्य कहलाता है, अर्थात् कुदेव कुगुरु और कुधर्म को

बोला छे (९). प्रीति अथवा आसक्ति ते राग छे (१०) अने अप्रीतिने द्वेष कहे छे  
 (११). कलह अर्थात् विरोध (१२) अभ्याख्यान अर्थात् कोठना पर जुठो आरोप भूकवो  
 ते (१३) चुगली वगैरेने पैशुन्य कहे छे, अर्थात् विद्यमान अथवा अविद्यमान दोषोने  
 पाछगथी प्रकाशित करवा (१४). धर्या दोकोना समक्ष भीलना होषो प्रकाशित करवा  
 ते परपरिवाद छे (१५) विषयोभा अनुराग थवो ते रति छे, अने धर्मभा अनुराग  
 नहि थवो ते अरति छे, रतिसहित अरतिने रत्यरति कहे छे आ पषु अेक पाप  
 स्थानक छे (१६) मायाधी युक्त मृषावाद ते मायामृषा कहेवाय छे ते पषु अेक  
 पापस्थानक छे (१७) शल्यनी प्रभावे विविध प्रकारनी पीडाओ उत्पन्न करवावाजा  
 मिथ्यात्व मिथ्यादर्शनशल्य कहेवाय छे, अर्थात् कुदेव कुगुरु अने कुधर्मने सुदेव



दर्शनस्यम्—सुदेव—सुगुरु—सुधर्मेषु सुदेवादिषु द्विः १८। एतान्यष्टादश पापस्थानानि।  
एताभिः क्रियामिर्जाय कर्म बन्धाति ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियायादिप्रकरणम् ॥

क्रिया क्रियात्मनः परिणामः। तेन क्रियावत्त्वं कर्तृत्वं चात्मनः सिध्यति।  
तत्तच्छास्त्रिक्रियासम्बन्धादात्मनस्त्रिकाश्रयवर्तित्वं च सिन्धुतीत्याशयेनाह “अकरिस्सं”  
इत्यादि।

॥ सूत्रम् ॥

अकरिस्सं अज्ञं, कारवेसुं अज्ञं, करभो यावि समशुन्ने भविस्सामि। एयावंति  
सन्धावंति छागंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति ॥ सू. ६ ॥

सुदेव सुगुरु और सुधर्म समस्तना सिध्यादर्शनस्य है। ये अष्टादश पापस्थानक हैं।  
इन अष्टादश प्राणतिपात आदि क्रियाओं से जीव को कर्मों का बन्ध होता है। ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियानादिप्रकरणम् ॥

क्रिया आत्मा का एक परिणाम है। उस से आत्मा का क्रियावत्त्व या कर्तृत्व  
सिद्ध होता है, और अमुक-अमुक-आश्रित क्रियाओं के सम्बन्ध से यह भी सिद्ध होता है  
कि—“आत्मा त्रिकाश्रयी है” यह बात जब बतलाई जाती है—‘अकरिस्सं अज्ञं’  
इत्यादि।

सुत्तार्य—मैंने क्रिया या मैं करता हूँ और करने वाले को मैं अनुमोदना करूँगा।  
यह सब लोक में कर्मसमाप्त्य ज्ञानने चाहिए। सू. ६ ॥

सुशुभ्रं जने सुधर्मं समञ्जसा ते सिध्यादर्शनस्यम् छे (१८). आ अकार पाप स्थानक  
छे आ अकार प्राणतिपात आदि क्रियाओंकी लयने कर्मोना अथ भाव छे (सू. ५)  
इति क्रियायादिप्रकरणम्

क्रिया आत्मनः एक परिणाम छे तेनाथी आत्मनः क्रियावत्त्व अथवा कर्तृत्व  
सिद्ध भाव छे, जने अमुक-अमुक-आश्रित क्रियाओंना सब धर्मो के पद्य सिद्ध भाव छे  
हे—आत्मा त्रिकाश्रयी छे. ते गत कने अत्यवधामा जाने छे—अकरिस्सं अज्ञं इत्यादि  
भूलाश्रय—मे इयुं मे कसञ्चु जने कल्याणायने मे अनुमोदना आत्मु  
अथ अर्थ बोद्धमा कर्म-सम्पन्न अथवा जेधजे. (सू. ६)

॥ છાયા ॥

અકાર્પં ચાહં, કારયામિ ચાહ, કુર્વંતશ્ચાપિ સમનુજ્ઞો ભવિષ્યામિ । एतावन्तः  
सर्वे लोके कर्मसमारंभाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥सू. ६॥

॥ ટીકા ॥

‘અકાર્પં ચાહમ્’ ઇતિ । અત્ર ‘વ’-શબ્દોપાદાનેન ભૂતકાલિકારિતાનુ-  
મોદિતક્રિયાદ્વયસ્યાપિ ગ્રહણમ્, તેન-(૧) અહમકાર્પમ્ (૨) અહમચીકરમ્ (૩) અહં  
કુર્વંતમન્યમન્વમ્સુદમ્, ઇતિ ભેદત્રયં ભવતિ । ‘કારયામિ ચાહમ્’ ઇતિ, અત્ર  
‘વ’-શબ્દેન વર્તમાનકાલિકકૃતાનુમોદિતક્રિયાદ્વયસ્યાપિ ગ્રહણમ્, । તેન-(૧)  
અહં કારયામિ, (૨) અહં કરોમિ, (૨) અહમનુમોદયામિ, ઇતિ ભેદત્રયં ભવતિ ।

ટીકાર્થ—‘અકરિસ્સ ચહં’ યહાં જો ‘વ’ કા પ્રયોગ ક્રિયા હૈ, ઉસ સે યહ અર્થ  
સમજના યાહિયે કિ—“મૈને અનુમોદન ક્રિયા થા ।” ઇસ પ્રકાર મૈને ક્રિયા, કરવાયા ઓર  
અનુમોદન ક્રિયા, ત્રીન ભેદોં કા કથન હુવા હૈ ।

‘કારવેસું ચહં’ યહાં મી ‘વ’ પદ સે દો ક્રિયાઓં કા ગ્રહણ હોતા હૈ, અતઃ  
મૈ કરાતા હું, મૈ કરતા હું, ઓર મૈ અનુમોદન કરતા હું, ઇન ત્રીન ભેદોં કા કથન  
સમજના યાહિયે ।

“કરઓ યાવિ સમણુને ભવિસ્સામિ” યહાં મી ‘વ’ પદ સે ભવિષ્યકાલીન  
કરને ઓર કરાને કા અર્થ લેના યાહિયે, અત કરને વાલે કા મૈ અનુમોદન કરુગા, મૈ  
સ્વય કરુગા ઓર મૈ કરાજ્ઞા । યે ક્રિયા કે ત્રીન ભેદ સમજ લેને યાહિયે ।

ટીકાર્થ—‘અકરિસ્સં ચહં’ અહિં જે ‘વ’ નો પ્રયોગ કર્યો છે, તેથી એ  
અર્થ સમજવો જોઈએ કે—‘મે કરાવ્યું હતું’ આ પ્રમાણે ‘મે’ કર્યું, કરાવ્યું,  
અને મે અનુમોદન આપ્યું, આ ત્રણ લેહોનું કથન સમજવું જોઈએ

‘કારવેસુ ચહં’ અહિં પણ ‘વ’ પદથી જે ક્રિયાઓનું ગ્રહણ થાય છે. તેથી ‘મે’  
કર્યું, મે કરાવ્યું, અને મે અનુમોદન આપ્યું’ આ ત્રણ લેહોનું કથન સમજવું જોઈએ.

‘કરઓ યાવિ સમણુને ભવિસ્સામિ’ અહિં પણ ‘વ’ પદથી ભવિષ્યકાલીન કરીશ  
અને કરાવીશ. તે અર્થ લેવો જોઈએ. એ કારણથી ‘કરવાવાળાને હું અનુમોદન  
કરીશ, હું સ્વયં કરીશ અને હું કરાવીશ’ એ ક્રિયાના ત્રણ લેહ સમજ લેવા જોઈએ.

कुर्वन्वापि समनुद्धो मविष्यामि, इति । अप्यापि 'अ'-शब्दोपादानेन मविष्य-  
त्कालिककृतकारितक्रियाद्वयस्यापि प्रथमम् । 'समनुद्धः' इत्यस्य समनुद्धाता अनुमो-  
दयितेत्यर्थः । तथा अ-(१) अहमन्यस्य कुर्वतोऽनुमोदयिता मविष्यामि, (२)  
स्वयमहं करिष्यामि, (३) अहं करयिष्यामि, इति मेदव्यय क्रियायाः भवति ।  
कुर्वन्वापीत्यत्र 'अपि'-शब्दोपादानेन साक्षात् नाना क्रियाणां मनोवाक्यमेवेन  
सप्तविधतिर्महा भवन्ति ।

आत्मवाचकमहमिति पदं पुरस्कृत्य 'अकार्षम्' इत्यादिद्विधापदोपादानात्  
"सर्वाः क्रिया आत्मपरिचामरूपाः" इति बोधितम् । एतेन "आत्मा निष्क्रियः"  
इति सांख्यार्थमिदं निराकृतम् ।

'यापि' शब्द में जो 'अपि' पद है, उस से यह समझना चाहिए कि—इन नौ क्रियाओं  
के मन बचन और कामके भेद से सचाईस भेद हो जाते हैं । अर्थात् पूर्वोक्त नौ क्रियाएँ  
मन से की जाती हैं बचन से की जाती हैं, और काम से भी की जाती हैं, अतः उनके  
सचाईस भेद हो जाते हैं ।

आत्मा के वाचक अहम् (मैं) पदको प्रधान करके 'अकार्षम्' इत्यादि क्रियापदों  
का प्रयोजन करने से यह सूक्ति किया गया है कि—ये सब क्रियाएँ आत्मा का ही परिणाम  
हैं । इस सूचना से आत्माको निष्क्रिय मानने वाले सांख्य आदि मतों का निराकरण हो  
गया है ।

'यापि' शब्दमात्र से 'अपि' पद से तेषां ज्ञेयत्वमु ज्ञेयत्वे से ज्ञेयत्व  
द्विधाज्ञेयत्व भवति, बचन ज्ञेयत्व ज्ञेयत्वात् तेषां सत्तावीश भवति अतः अर्थात् पूर्वोक्त  
नव द्विधाज्ञेयत्व भवति तेषां सत्तावीश भवति अतः अर्थात् पूर्वोक्त  
तेषां तेषां सत्तावीश ज्ञेयत्व भवति अतः

आत्मानेन वाचक अहम् ई-पदने प्रधान स्थानीने अकार्षम् अति द्विधा-  
पदोना अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात्  
परिचाम अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात्  
निराकृतम् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात् अर्थात्

॥ છાયા ॥

અકાર્પં ચાહં, કારયામિ ચાહં, કુર્વંતશ્ચાપિ સમનુજ્ઞો ભવિષ્યામિ । एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारंभाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥सू. ६॥

॥ ટીકા ॥

‘અકાર્પં ચાહમ્’ ઇતિ । અત્ર ‘ચ’-શબ્દોપાદાનેન ભૂતકાલિકકારિતાનુ-  
મોદિતક્રિયાદ્વયસ્યાપિ ગ્રહણમ્, તેન-(૧) અહમકાર્પમ્ (૨) અહમચીકરમ્ (૩) અહં  
કુર્વંતમન્યમન્વમ્મુદમ્, ઇતિ ભેદત્રયં ભવતિ । ‘કારયામિ ચાહમ્’ ઇતિ, અત્ર  
‘ચ’-શબ્દેન વર્તમાનકાલિકૃતાનુમોદિતક્રિયાદ્વયસ્યાપિ ગ્રહણમ્, । તેન-(૧)  
અહં કારયામિ, (૨) અહં કરોમિ, (૨) અહમનુમોદયામિ, ઇતિ ભેદત્રયં ભવતિ ।

ટીકાર્થ-‘અકરિસ્સ ચડહં’ યહોં જો ‘ચ’ કા પ્રયોગ ક્રિયા હૈ, ઉસ સે યહ અર્થ  
સમજના ચાહિષ ક્રિ-“મૈને અનુમોદન ક્રિયા થા ।” ઇસ પ્રકાર મૈને ક્રિયા, કરવાયા ઓર  
અનુમોદન ક્રિયા, ત્રીન ભેદોં કા કથન હુઆ હૈ ।

‘કારવેસું ચડહં’ યહોં મી ‘ચ’ પદ સે દો ક્રિયાઓં કા ગ્રહણ હોતા હૈ, અતઃ  
મૈં કરાતા હૂં, મૈં કરતા હૂં, ઓર મૈં અનુમોદન કરતા હૂં, ઇન ત્રીન ભેદોં કા કથન  
સમજના ચાહિષ ।

“કરઓ યાવિ સમણુને ભવિસ્સામિ” યહોં મી ‘ચ’ પદ સે ભવિષ્યકાલીન  
કરને ઓર કરાને કા અર્થ લેના ચાહિષ, અતઃ કરને વાલે કા મૈં અનુમોદન કરુગા, મૈં  
સ્વય કરુગા ઓર મૈં કરાઝગા । યે ક્રિયા કે ત્રીન ભેદ સમજ લેને ચાહિષ ।

ટીકાર્થ-‘અકરિસ્સ ચડહં’ અહિં ને ‘ચ’ નો પ્રયોગ કર્યો છે, તેથી એ  
અર્થ સમજવો જોઈએ કે-‘મે કરાવ્યું હતું’ આ પ્રમાણે ‘મે’ કર્યું, કરાવ્યું,  
અને મે અનુમોદન આપ્યું, આ ત્રણ બેદોં કથન સમજવું જોઈએ

‘કારવેસું ચડહં’ અહિં પણ ‘ચ’ પદથી જે ક્રિયાઓંનું ગ્રહણ થાય છે તેથી ‘મે’  
કર્યું, મે કરાવ્યું, અને મે અનુમોદન આપ્યું’ આ ત્રણ બેદોં કથન સમજવું જોઈએ.

‘કરઓ યાવિ સમણુને ભવિસ્સામિ’ અહિં પણ ‘ચ’ પદથી ભવિષ્યકાલીન કરીશ  
અને કરાવીશ. તે અર્થ લેવો જોઈએ એ કારણથી ‘કરવાવાળાને હું અનુમોદન  
કરીશ, હું સ્વયં કરીશ અને હું કરાવીશ’ એ ક્રિયાના ત્રણ બેદ સમજ લેવા જોઈએ.

मविष्यामीति चिन्तान्तेन कोटरस्यपङ्क्तिना मरुतुम इव सततोऽस्मीति भाषा ।

लोकैः=जिनशासनै, सर्वे कर्मसमारम्भाः=कर्मोपि ज्ञानावरणीयादीनि समारम्भे ननयन्ति ये क्रियाविशेषास्ते कर्मसमारम्भाः । एतावन्त एव, नातोऽपिका इत्यर्थः, परिज्ञातव्या भवन्ति-परिज्ञापिपयीकृत्य ज्ञेया ज्ञेयाश्च भवन्तीत्यर्थः । परिज्ञा दि द्विविधा-ज्ञपरिज्ञा, प्रत्याख्यानपरिज्ञा च । तत्र ज्ञपरिज्ञाया सप्तविंशतिमङ्गल्पाः कर्मसमारम्भाः क्रियाविशेषाः विज्ञेयाः । प्रत्याख्यानपरिज्ञाया च सर्वे कर्मसमारम्भाः क्रियाविशेषाः कर्मबन्धाहेतवः प्रत्याख्यातव्या इति भाषा ॥ सू० ६ ॥

बाणी से बर्बरित हो जाता है । जब मैं तु समझ सतार से किस प्रकार झुटकार पाऊँगा ? इस तरह की चिन्तारूपी जग्नि से मैं ऐसा संतप्त हूँ जैसे 'कोटरस्थ जग्नि से बाणों वृक्ष भीतर ही भीतर मरम्भ हो जाता है ।

“लोक में जहाँ जिनशासन में रहने ही ज्ञानावरणीय जगत् कर्मों को उत्पन्न करने वाले कर्मसमारम्भ हैं, इन से न्यून या अधिक नहीं” । यह परिज्ञा विषय करने योग्य है, जहाँ परिज्ञा से ही ये सब ज्ञेय और ज्ञेय होते हैं । परिज्ञा दो प्रकारकी है- ज्ञ-परिज्ञा और प्रत्याख्यान-परिज्ञा । इन में से सत्कर्तव्य संज्ञा रूप कर्मसमारम्भ (क्रियाविशेष) ज्ञपरिज्ञा से जानने चाहिए, और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से कर्म के कारण समस्त कर्मसमारम्भों का त्याग करना चाहिए ॥ सू. ६ ॥

व्याजोऽपि जग्निरित इति भाषा ॥ एवं तु ज्जग्निश्च स सावधी सुदृश्या देवी रीते पश्यीत ? व्या-प्रभावे चिन्ताक्षयी-जग्निश्च-तु-ज्जग्नि-संतप्त तु-के-ज्जग्नि-कोटरस्थ (कठनी जज्जोत्तमां स्तेतु) जग्निश्च एषं वृक्ष मरुतुम इव सततोऽस्मीति भाषा ॥

दोहों जहाँ जिनशासनमें ज्ञानावरणीय जगत् कर्मोंने उत्पन्न करवावाजा झुटकार कर्मसमारम्भ है, तेनाधी ज्जग्नि के बंधारे नहीं, ज्ञा परिज्ञा विषय इत्या ज्ञेय है जहाँतु परिज्ञाधीन ज्ञा-जग्नि ज्ञेय ज्ञेय ज्ञेय भाषा है परिज्ञा से प्रभारनी है (१) ज्ञ-परिज्ञा ज्ञेय (२) प्रत्याख्यान-परिज्ञा, तेनाधी-सत्कर्तव्य ज्ञ-परिज्ञा कर्म समारम्भ (क्रिया-विशेष) ज्ञ-परिज्ञाधी ज्ञेय ज्ञेय ज्ञेय, ज्ञेय प्रत्याख्यान-परिज्ञाधी कर्मोनु सततोऽस्मीति कर्मसमारम्भोना त्याग करवे ज्ञेय ज्ञेय. (सू० ६)

एकस्य चात्मनस्त्रिकालवर्तितत्क्रियासम्बन्धेन क्षणिकवादोऽपि निरस्तः । किञ्च-  
आत्मपरिणतिरूपा क्रियां कुर्वन्नात्मा स्वस्य त्रिकालस्थायित्वं मतिज्ञानमात्रेण  
जानातीति भगवता बोधितम् । तेनात्मनि विषये प्रत्यभिज्ञाऽप्येवं प्रादुर्भूति-

येन मया मृगतृष्णाम्भसा मृगवद् विविधविषयैराकृष्टेन गर्ते मृग-  
मृगवन्मोहगर्ते निपतितेन सुखलिप्सयाऽऽरम्भपरिग्रहरूपसावधक्रियापरायणतया  
वृथायुः क्षपितम्,

स एवाहं सप्रति वातैर्गिरिशिखरद्रुम इव जन्मजरामरणाधिव्याधि-  
विविधदुःखसंपृक्ततुच्छसुखभोगैर्जर्जरीकृतः कथमस्माद् दुःखजालससारान्मुक्तो

एक ही आत्माका त्रिकालवर्ती अमुक-अमुक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध दिखलानेसे  
क्षणिकवाद का भी खण्डन किया गया है । भगवान्ने यह भी प्रकट कर दिया है  
कि-अपनी परिणतिरूप क्रियाएँ करता हुआ आत्मा मतिज्ञान से ही यह जान लेता है कि-  
यह ( आत्मा ) त्रिकालवर्ती है । इससे आत्मा के विषयमें इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान  
उत्पन्न होता है—

“जैसे मृगतृष्णा में फँसकर मूढ मृग कष्ट पाता है उसी प्रकार भँति-भँति  
के विषयों से आकृष्ट हो कर मोहरूपी गडहे में गिर कर सुख की लालसा से जिसने  
आरम्भ-परिग्रह-रूप सावध क्रियामें उद्यत हो कर वृथा आयु गँवाई थी वही मैं आज  
जन्म, जरा, मरण, आधि, व्याधि वगैरह विविध प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण और तुच्छ  
इन्द्रिय-भोगोद्धार ऐसा जर्जरित कर दिया गया हूँ, जैसे पर्वत के उपर का पेट

येकज आत्मानु त्रिकालवर्ती अमुक-अमुक क्रियाओंनी साथे सधध देभाड  
वाथी क्षणिकवादतुं पद्य अंडन करवामा आंयु छे भगवाने ये पद्य प्रगट करी  
दीधु छे के-चेतानी परिणतिरूप क्रियाओं करतो आत्मा मतिज्ञानथीज ये लक्ष्मी ले  
छे के-ते त्रिकालवर्ती छे ये डारणुथी आत्माना विषयमा आ प्रकारनु प्रत्यभिज्ञान  
उत्पन्न थाय छे

जेम मृगतृष्णामा इसाधने मूढ मृग कष्ट पाये छे ते प्रभाणु जत-जतना  
विषयोथी आकृष्ट थधने-ये याधने मोहर्पी आडामा पडी जधने सुभनी लालसाथी जे  
आरल परिग्रहर्प सावध क्रियामा उद्यमी थधने वृथा आयु शुभांयु डतुं, ते हुं आने  
जन्म-जरा-मरण-आधि-व्याधि वगेरे विविध प्रकारना हुं जोथी परिपूर्ण अने तुच्छ  
इन्द्रियभोगो द्वारा येवे जर्जरित करवामा आंयो छु के जेम-पर्वत उपरनु आड

कृतं कर्म=कर्मकारणीभूतक्रियास्वरूपं येन, सोऽपरिहातकर्मा । अज्ञानापरित्यक्त  
 ज्ञानापरणीयात्पटविषकर्मबन्धकारणभूतक्रियास्वरूप इत्यर्थः । यावदयं जीवः क्रिया-  
 स्वरूपं न जानाति, नापि यावत् कर्मबन्धनिबन्धनक्रियाः परित्यजति, ताम्बु द्रव्य  
 मासोमयविषां दिष्टं परिभ्रमतीति भावः ॥ सू० ७ ॥

उक्तार्थमेव स्पष्टयति—'अनेकरूपाओ' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

अनेकरूपाओ जीवीओ संवेद्य, विस्वरूपे फासे पडिसंवेद्य ॥ सू० ८ ॥

छाया—

अनेकरूपा यानीः संपद्यति, विस्वरूपात् स्वर्णान् प्रति संवेदयति ॥ सू० ८ ॥

॥ टीका ॥

अपरिहातकर्मा जीवः अनेकरूपा=विषिधाः योनीः=आधिनामुत्पत्ति  
 स्वानानि, संपद्यति=प्राप्नोति । अममात्मा पूर्वमव नाशानन्तरं क्षीरान्तरप्रक्षेप

अपरिहातकर्मा कहते हैं । आशय यह है कि—संसारी जीव जबतक कर्मरूप की कारणभूत  
 क्रियामो को जान नहीं लेता और त्याग नहीं देता, तबतक वह द्रव्यमायकम होने प्रकार  
 को विषयमो में परिभ्रमन करता रहता है । ॥ सू. ७ ॥

इसी अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हैं— अनेकरूपाओ इत्यादि ।

मूलार्थ—(अपरिहातकर्मा जीव) अनेकरूप योनियों को प्राप्त होता है और नया  
 प्रकार की यातनाओं को भोगता है ॥ ८ ॥

टीकार्थ—अपरिहातकर्मा जीव विविध प्रकार की योनियों को सर्वात् जीवों के  
 उत्पत्तिस्थानों को प्राप्त करता है । पूर्वमव का अन्त होने के अनन्तर जीव नवीन परीत

को छे डेः—संसारी एव अर्थात् सुधी कर्मलक्षणी कारणभूत क्रियामोने जाली लेता नहीं  
 जाने त्यज देता नहीं त्या सुधी ते द्रव्य-मायकम जन्मे प्रकृती विद्याओभा परि  
 भ्रमण करते रहे थे (सू० ७).

ये अर्थने इसी अर्थके स्पष्ट करे थे— अनेकरूपाओ " इत्यादि.

मूलार्थः—(अपरिहातकर्मा जीव) अनेकरूप योनियोंने प्राप्त थाव थे जने  
 नया प्रकारनी यातनाओने भोगते थे. ( ८ )

टीकार्थः—अपरिहातकर्मा जीव विविध प्रकारनी योनियोंने सर्वात्-एवोना  
 उत्पत्तिस्थानेने प्राप्त करे थे. पूर्वमवने अन्त भवा अनन्तर एव नवीन शरीर भ्रमण

॥ મૂલમ્ ॥

અપરિણાયકમ્મા સ્વલુ અયં પુરિસે જો ઇયાઓ દિસાઓ અણુદિસાઓ અણુસંચરહ, સન્વાઓ દિસાઓ સન્વાઓ અણુદિસાઓ સાહેહ ॥ સૂ. ૭ ॥

છાયા—

અપરિજ્ઞાતકર્મા સ્વલુ અયં પુરુષઃ યઃ ઇમા દિશા અનુદિશા વા અનુસંચરતિ, સર્વા દિશાઃ સર્વા અનુદિશાઃ સહૈતિ ॥ સૂ. ૭ ॥

ટીકા—

‘અપરિણાયકમ્મા’ ઇત્યાદિ । યઃ ઇમા દિશા અનુદિશા અનુસંચરતિ-કર્મપરતન્નઃ સંશ્રતુર્ગતિકસંસારં પ્રાપ્ય દિક્ષુ વિદિક્ષુ ચ પરિભ્રમતિ । તથા-સર્વા-દિશા અનુદિશાઃ સહૈતિ । ઇહ સર્વશબ્દેન દ્રવ્યમાવોભયવિધદિશો ગ્રહણમ્ । દ્રવ્યમાવદિશઃ સહ=જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મભિઃ સાકમ્ એતિ=ગચ્છતિ પ્રાપ્નોતીત્યઃ । યત્તચ્છદ્યોર્નિત્પસાકાહ્નતયાઞ્ચ યચ્છવ્દેન સ ઇતિ પરામૃશ્યતે । સઃ અયં પુરુષઃ=જીવઃ સ્વલુ=નિશ્ચયેન અપરિજ્ઞાતકર્મા અસ્તીતિ શેષઃ । ન પરિજ્ઞાતં=પરિજ્ઞાવિષયી-

મૂલાર્થ—અપરિજ્ઞાતકર્મા યહ પુરુષ ઇન દિશાઓ ઓર વિદિશાઓ મેં પરિભ્રમણ કરતા હૈ ઓર સર્વ દિશાઓ એવ અનુદિશાઓ કો પ્રાપ્ત હોતા હૈ ॥ સૂ. ૭ ॥

ટીકાર્થ—કર્મ સે પરતન્ન જીવ ચાર ગતિરૂપ સસાર કો પ્રાપ્ત હોકર દિશાઓ મેં ઓર વિદિશાઓ મેં પરિભ્રમણ કરતા હૈ । તથા સમસ્ત દિશાઓ ઓર અનુદિશાઓ કો પ્રાપ્ત હોતા હૈ, અર્થાત્ દ્રવ્ય-દિશાઓ એવ માવ-દિશાઓ (જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મો) કે સાથ પ્રાપ્ત હોતા હૈ । વહ જીવ નિશ્ચયપૂર્વક અપરિજ્ઞાતકર્મા હૈ । કર્મ કી કારણમૂલ ક્રિયાઓ કા સ્વરૂપ જિસને ન જાના હો વહ અપરિજ્ઞાતકર્મા કહલાતા હૈ । અથવા જિસને જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મો કી કારણમૂલ ક્રિયાઓ કા ત્યાગ ન ક્રિયા હો ઉસે મી

મૂલાર્થ—અપરિજ્ઞાત કર્મા આ પુરુષ આ દિશાઓ અને વિદિશાઓમાં પરિભ્રમણ કરે છે, અને સર્વ દિશાઓ એવ અનુદિશાઓને પ્રાપ્ત થાય છે. (૭)

ટીકાર્થ—કર્મથી પરતન્ન જીવ ચાર ગતિરૂપ સસારને પ્રાપ્ત થઈને દિશાઓમાં અને વિદિશાઓમાં પરિભ્રમણ કરે છે, તથા સમસ્ત દિશાઓ અને અનુદિશાઓને પ્રાપ્ત થાય છે અર્થાત્ દ્રવ્યદિશાઓ અને ભાવદિશાઓની સાથે પ્રાપ્ત થાય છે તે જીવ નિશ્ચયપૂર્વક અપરિજ્ઞાતકર્મા છે; કર્મની કારણમૂલ ક્રિયાઓના સ્વરૂપને જે બહુતા નથી તે અપરિજ્ઞાતકર્મા કહેવાય છે. અથવા જેને જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોની કારણમૂલ ક્રિયાઓનો ત્યાગ ન કર્યો હોય તેને પણ અપરિજ્ઞાતકર્મા કહે છે, આશય



कृतं कर्म—कर्मकारणीभूतक्रियास्वरूपं येन, सोऽपरिज्ञातकर्मा । अज्ञातापरित्यक्त  
 ज्ञानावरणीयाघटविषकर्मबन्धकारणभूतक्रियास्वरूप इत्यर्थः । यावद्दयं जीवः क्रिया-  
 स्वरूपं न जानाति, नापि यावत् कर्मबन्धनिबन्धनक्रियाः परित्यजति, तावत् द्रव्य  
 माद्योमयविषां विश्वं परिभ्रमसीति भावः ॥ सू० ७ ॥

उक्तार्थमेव स्पष्टयति—'अज्ञेयकृत्वायो.' इत्यादि ।

॥ सूत्रम् ॥

अज्ञेयकृत्वायो बोणीयो संवेद, विरूपरूपे फास पडिसंवेद्य ॥ सू० ८ ॥

छाया—

अज्ञेयकृत्वा यानीः संभवति, विरूपरूपात् स्वर्गान् प्रविसंवेद्यति ॥ सू० ८ ॥

॥ टीका ॥

अपरिज्ञातकर्मा बीजः अज्ञेयकृत्वा=विविधाः योनीः=आश्रितान्मुत्पत्ति  
 स्थानानि, संभवति=प्राप्नोति । अयमात्मा पूर्वमव नाज्ञानन्तरं क्षीरान्तरग्रहणाय

अपरिज्ञातकर्मा कहते हैं । आद्यम यह है कि—संसारी जीव स्वतन्त्र कर्मबन्ध की कारणभूत  
 क्रियाओं को ध्यान नहीं करता और त्याग नहीं देता, तबतक वह द्रव्यमायारूप दोनों प्रकार  
 की विश्वभोगों में परिभ्रमण करता रहता है । ॥ सू. ७ ॥

इसी कर्म को और अधिक स्पष्ट करते हैं— अज्ञेयकृत्वायो इत्यादि ।

सूत्रार्थः—(अपरिज्ञातकर्मा बीज) अज्ञेयकृत्वा योनिमां को प्राप्त होता है और नाना  
 प्रकार की पातनाओं को भोगता है ॥ ८ ॥

टीकार्थः—अपरिज्ञातकर्मा बीज विविध प्रकार की योनियों को भर्वात् जीवों के  
 उत्पत्तिस्थानों को प्राप्त करता है । पूर्वमव का अन्त होने के अनन्तर जीव नवीन शरीर

को ले ले—संसारी जीव नाना सुधी कर्मोंकी अपनी अस्वभाव क्रियाओंके जाली देता नहीं  
 जाने तथा देता नहीं तथा सुधी वे द्रव्य-मायारूप अज्ञेय प्रकृति की विश्वभोगों में परि-  
 भ्रमण करते रहे थे । (सू० ७)।

वे कहते हैं श्री आदि १४ सू ७—'अज्ञेयकृत्वायो' इत्यादि

सूत्रार्थः—(अपरिज्ञातकर्मा बीज) अज्ञेयकृत्वा योनिमां को प्राप्त भाव से जाने  
 नाना प्रकार की पातनाओं को भोगता है । (८)

टीकार्थः—अपरिज्ञातकर्मा बीज विविध प्रकार की योनिमां अर्थात्-उपेय  
 उत्पत्तिस्थानोंके प्राप्त करे थे । पूर्वमवने अन्त दवा अनन्तर जीव नवीन शरीर ग्रहण

शरीरान्तरप्राप्तिस्थाने यान् पुद्गलान् गृह्णाति तान् बाह्यपुद्गलान् कर्मणेन सह तप्तायःपिण्डजलग्रहणवत् मिश्रयति यस्मिन् स्थाने, तत् स्थानं योनिः । प्रादुर्भावमात्रं शरीरिणां जन्म, इति योनि-जन्मनोर्भेदः । सा त्रयविधा । (१) सचित्ता, (२) अचित्ता, (३) सचित्ताचित्ता, (४) शीता, (५) उष्णा, (६) शीतोष्णा, (७) संवृता, (८) विवृता, (९) सवृतविवृता । उक्तञ्च—

“कद्विहाणं भंते ! जोणी पणत्ता ? गोयमा ! तिविहा जोणी पणत्ता, तंजहा-सीया जोणी, उंसिणा जोणी, सीआसिणा जोणी । तिविहा जोणी पणत्ता, तंजहा-सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसिया जोणी ।

ग्रहण करने के लिए नवीन शरीर की प्राप्ति के स्थान पर जिन बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, उन्हें जिस जगह पर कर्मणशरीर के साथ तपे लोहे के गोले और जलके समान एकमेक करता है, वह स्थान योनि कहलाता है । जीवों का प्रादुर्भाव होना जन्म है । यह योनि और जन्म में अन्तर है । जन्म का आधार योनि है, अतः योनि और जन्म में आधारिधेयभाव-सम्बन्ध है । योनि के नौ भेद हैं—(१) सचित्ता, (२) अचित्ता, (३) सचित्ताचित्ता, (४) शीता, (५) उष्णा, (६) शीतोष्णा, (७) संवृता, (८) विवृता और (९) सवृत-विवृता । कहा भी है—

“भगवन् ! योनि कितन प्रकार की कही गई है ? गौतम ! तीन प्रकार की योनि कही गई है । वह इस प्रकार—शीतयोनि, उष्णयोनि और शीतोष्णयोनि । तथा तीन प्रकार की योनि कही है । वह इस प्रकार—सचित्तयोनि, अचित्तयोनि और मिश्रयोनि ।

हरवा माटे नवीन शरीरनी प्राप्तिना स्थान पर जे बाह्य पुद्गलाने अडधु करे छे । तेने जे जन्मा पर कर्मणुशरीरनी साथे तपेवा दोढाने जोणे अने जलनी समान ओकमेक करे छे ते स्थान योनि कहवाय छे लोवेना प्रादुर्भाव थवे ते जन्म छे योनि अने जन्ममा ओज अन्तर छे, जन्मना आधार योनि छे, तेथी योनि अने जन्ममा आधार-आधेय भाव सम्बन्ध छे योनिना नव भेद छे—(१) सचित्ता (२) अचित्ता (३) सचित्ताचित्ता (४) शीता (५) उष्ण (६) शीतोष्ण (७) संवृता (८) विवृता अने (९) सवृत-विवृता कहु पणु छे—

“भगवन् ! योनि केटला प्रकारनी कही छे ? गौतम ! त्रय प्रकारनी योनि कही छे ते आ प्रमाळु छे—शीतयोनि, उष्णयोनि, अने शीतोष्णयोनि । तथा त्रय प्रकारनी योनि कही छे ते आ प्रमाळु छे—सचित्तयोनि, अचित्तयोनि अने मिश्रयोनि । इरी पणु त्रय

सिद्धिवा बोधी पण्णाया, संवहा-संवुहा बोधी, विपदा बोधी, संवुदविपदा बोधी" । (प्रज्ञा, योनिपद ९)

जीवप्रदेशैरभिष्टिता योनिः सचिचा, जीवप्रदेशैरसचिष्टिता योनिरचिचा । कचिदंशे जीवप्रदेशैरभिष्टिता, कचिदनभिष्टिता सा सचिचाऽचिचा । यत्र जीवस्पर्शः सा धीवा । यत्रोष्णस्पर्शः सा योनिरुष्णा । यत्र कचिदंशे जीवस्पर्शः, कचिदुष्णस्पर्शः सा धीतोष्णा । अमकटिवा संवुहा । प्रकटिवा विवुहा । यत्र कचिदंशे प्रकटिवा, कचिदप्रकटिवाः सा संवुतविवुहा योनिः ।

कस्य जीवस्य का योनिर्मन्वरी ?-स्युच्यते-देवनारकाणामचिचा योनिः । देवानां मच्छुद्रपददेवदूष्यान्तरालं योनिः, तत्र जीवप्रदेशवर्जितम् । नाराकानां तु

किं भी तीन तरह की योनि कही है । वह इस प्रकार-संवृतयोनि विवृतयोनि और संवृत-विवृतयोनि । (प्रज्ञा योनिपद ९)

जीवप्रदेशों से अभिष्टित योनि सचिच कहलाती है और जो जीवप्रदेशों से अभिष्टित न हो वह अचिच कहलाती है । जो योनि कही जीवप्रदेशों से अभिष्टित है और कही अभिष्टित न हो वह मित्र योनि है । वहाँ शीत स्पर्श हो वह शीतयोनि, वहाँ उष्ण स्पर्श हो वह उष्णयोनि और जिस में कही शीत और कही उष्ण स्पर्श हो वह शीतोष्णयोनि है । अमकट योनि संवृत कहलाती है । प्रकट को विवृत कहते हैं और जो कही अमकट और कही प्रकट हो वह संवृतविवृतयोनि है ।

किस जीव की कौन-सी योनि होती है ? वह बताते हैं-देव और नारक जीवों की अचिच योनि होती है । देवों की योनि मच्छुद्रपद और देवदूष्य के बीच में होती है,

प्रकारणी योनि इती उ ते न्य प्रभाये उः-संवृतयोनि, विवृतयोनि अने संवृत-विवृतयोनि" (प्रज्ञा, योनिपद ६)

एवप्रदेशोषी अभिष्टित योनि सचिच इहेवाय उ अने ने एवप्रदेशोषी अभिष्टित न होय ते अचिच इहेवाय उ ने योनि कौण स्थये एवप्रदेशोषी अभिष्टित होय अने कौण स्थये अभिष्टित न होय ते मित्रयोनि इहेवाय उ न्यां शीत स्पर्श होय ते शीतयोनि, न्यां उष्णस्पर्श होय ते उष्णयोनि, अने नेमां उष्ण शीत अने इत्सं उष्ण स्पर्श होय ते शीतोष्ण योनि उ । अमकट योनि संवृत इहेवाय उ अने प्रकट योनिने विवृत इहे उ, अने ने इत्सं प्रकट अने इत्सं अमकट होय ते संवृत-विवृत योनि उ

इया एवणी कथं योनि उ ? ते बतावे उ-देव-नारकी एवोनी अचिचयोनि होय उ देवोनी योनि मच्छुद्रपद अने देवदूष्यता पत्रमां होय उ अने ते एव

વજ્રમયવાતાયનકલ્પાઃ કુમ્ભયો યોનયઃ, તા અપિ જીવપ્રદેશરહિતાઃ । યે ગર્ભ-  
જાસ્તિર્યશ્ચો મનુષ્યાસ્તેપાં મિશ્રાસચિત્તાચિત્તરૂપા યોનિઃ । સ્થાવરપૃથ્વ  
કસ્ય વિકલેન્દ્રિયત્રયસ્ય અગર્ભજપૃથ્વેન્દ્રિયતિરશ્વાં સંમૂર્છિમમનુષ્યાણાં ચ ત્રિવિધા  
સચિત્તા ઽઅચિત્તા, સચિત્તાચિત્તા ચ ।

ગર્ભજમનુષ્યતિરશ્વાં દેવાનાં ચ શીતોષ્ણા યોનિઃ । તેજસ્કાયસ્ય ઉષ્ણા ।  
સ્થાવરચતુષ્ટયસ્ય વિકલેન્દ્રિયત્રયસ્ય અગર્ભજપૃથ્વેન્દ્રિયતિરશ્વાં સંમૂર્છિમમનુષ્યાણાં  
નારકાણાં ચ ત્રિવિધાં શીતા, ઉષ્ણા, શીતોષ્ણા ચ યોનિઃ ।

નારકાણાં દેવાનામેકેન્દ્રિયાણાં ચ સંવૃતા યોનિઃ । ગર્ભજાનાં  
પૃથ્વેન્દ્રિયતિરશ્વાં મનુષ્યાણાં ચ સંવૃતવિવૃતા યોનિઃ । વિકલેન્દ્રિયત્રયસ્ય

ઔર વહ જીવપ્રદેશો સે રહિત હૈ । નારકોં કી યોનિ વજ્રમય વાતાયન કે સમાન કુમ્ભિયોં હૈ ।  
વે મી જીવપ્રદેશો સે રહિત હૈં । ગર્ભજ તિર્યંચો ઔર મનુષ્યોં કી મિશ્ર (સચિત્તાચિત) યોનિ  
હોતી હૈ । પાંચ સ્થવરોં કી, ત્રીન વિકલેન્દ્રિયોં કી, અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચો કી તથા  
સમૂર્છિમ મનુષ્યોં કી યોનિ ત્રીનોં પ્રકાર કી (સચિત, અચિત ઔર મિશ્ર) હોતી હૈ ।

ગર્ભજ—મનુષ્યો, તિર્યંચો ઔર દેવોં કી શીતોષ્ણ યોનિ હોતી હૈ । તેજસ્કાય કી  
ઉષ્ણ યોનિ હૈ । ચાર સ્થાવરોં કી, ત્રીન વિકલેન્દ્રિયોં કી, અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચો કી  
સમૂર્છિમ મનુષ્યોં કી ઔર નારકોં કી ત્રીનોં પ્રકાર કી (શીત ઉષ્ણ ઔર મિશ્ર) યોનિ  
હોતી હૈ ।

નારકોં દેવોં ઔર એકેન્દ્રિયોં કી સંવૃત યોનિ હૈ । ગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચો  
ઔર મનુષ્યોં કી સંવૃતવિવૃત યોનિ હોતી હૈ । ત્રીન વિકલેન્દ્રિયોં કી, અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય

પ્રદેશોથી રહિત છે. નારકીઓની યોનિ વજ્રમય વાતાયન (બારી)ની સમાન કુમ્ભીઓ  
એ તે પણ સ્વપ્રદેશોથી રહિત છે

ગર્ભજ તિર્યંચો અને મનુષ્યોની મિશ્ર (સચિત્તાચિત) યોનિ હોય છે. પાચ  
સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની, અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચોની તથા સમૂર્છિમ  
મનુષ્યોની યોનિ ત્રણ પ્રકારની (સચિત, અચિત અને મિશ્ર) હોય છે

ગર્ભજ મનુષ્યો, તિર્યંચો અને દેવોની શીતોષ્ણ યોનિ હોય છે. તેજસ્કાયની  
ઉષ્ણયોનિ છે આર સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની, અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચોની  
સમૂર્છિમ મનુષ્યોની અને નારકોની ત્રણ પ્રકારની (શીત, ઉષ્ણ અને મિશ્ર) યોનિ હોય છે

નારકી, દેવો, અને એકેન્દ્રિયોની સંવૃત યોનિ છે ગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય તિર્યંચો  
અને મનુષ્યોની સંવૃત-વિવૃત યોનિ હોય છે. ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની અગર્ભજ પૃથ્વેન્દ્રિય

अगर्भप्रपञ्चेन्द्रियतिरसां संमूर्च्छिममनुष्याणां च विवृता योनिः ।

यद्वा—चतुरशीतिस्त्रयस्रमेवेनामेकरूपा योनयः सन्ति, तथा हि—पृथिव्यप्तेजो-  
वायूनां प्रत्येकं सप्त सप्त सप्तानि २८, प्रत्येकजनस्पतीनां दश सप्तानि ३८,  
साधारणजनस्पतीनां चतुर्दश सप्तानि, ५२, विकलेन्द्रियजनस्य प्रत्येकं द्वे द्वे स्रसे,  
इति तेषां बहु सप्तानि ५८, देव-नारक-पञ्चेन्द्रियतिरसां प्रत्येकं चत्वारि सप्तानि इति  
तेषां द्वादश सप्तानि ७०, मनुष्याणां चतुर्दश सप्तानि ८४ । एवं सर्वस्रस्रसे  
चतुरशीतिस्त्रयस्रानि जीवानां योनयो भवन्ति ।

अनेकविधयोनिप्राप्तौ सत्यामपरिह्रातकर्मां शीघ्र कर्मफलं यथाऽनु-  
भवति तत् प्रवक्ष्यति—'विस्मरूपान् प्रतिर्ववेदयति' इति, विस्म=दुःख-

तिर्वचो की और संमूर्च्छिम मनुष्यों की विवृतयोनि होती है ।

अन्धा-योनियों के चौरसी अस्र भेद भी हैं । वे इस प्रकार हैं—पृथ्वीकाय,  
अपकाय, तेजकाय, और वायुकाय, की सात-सात अस्र योनियाँ हैं २८, प्रत्येक जनस्पति  
की दश अस्र ३८, साधारण जनस्पति की चौर सात ५२, तीन विकलेन्द्रि की प्रत्येक  
की दो-दो अस्र अर्थात् विकलेन्द्रिय की कुल कुल अस्र ५८, देवों नारकों और पञ्चेन्द्रिय  
तिर्वचों में प्रत्येक की चार-चार अस्र, कुल चारह अस्र ७०, मनुष्यों की चौरह अस्र ८४,  
इस प्रकार कुल चौरसी अस्र बीसयोनियाँ हैं ।

अनेक प्रकार की योनियाँ प्राप्त होने पर अपरिह्रातकर्मां शीघ्र किस प्रकार  
कर्मफल भोगता है, सो बतलाने हैं—दुःखजनक होने के कारण इन्द्रियों के अनेक विधियों

तिर्वचोनी अने संमूर्च्छिम मनुष्योनी विवृत योनि बोध छे

अन्धा-योनियोना चौरसी बाण सेह पक्ष छे, ते आ प्रभासे छे—पृथ्वीकाय,  
अपकाय, तेजकाय, अने वायुकायनी सात-सात बाण योनियो छे (२८), प्रत्येक  
जनस्पतिनी दशबाण (३८) अथवा स्रस्र जनस्पतिनी चौरबाण (५२) बहु विकलेन्द्रियनी  
प्रत्येकनी द्वे द्वे बाण, अर्थात् विकलेन्द्रियनी कुल छे बाण (५८), देवो नारकीयो,  
अने पञ्चेन्द्रिय तिर्वचोनी प्रत्येकनी चार-चार बाण, अर्थात् अने चार बाण  
(७०) मनुष्योनी चौर बाण (८४) आ प्रभासे कुल चौरसी बाण अथयोनि छे ।

अनेक प्रकारनी योनियो प्राप्त बना ज्वाय अपरिह्रातकर्मां शीघ्र भेनी रीते  
कर्मफल भोगने छे ? ते ज्वाये छे—दुःख जनक कारण बोधाना कारणे अन्धियोना अनेक-

वज्रमयवातायनकल्पाः कुम्भयो योनयः, ता अपि जीवप्रदेशरहित  
जास्तिर्यञ्चो मनुष्यास्तेषां मिश्रासचित्ताचित्तरूपा योनिः ।  
कस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्वां समूर्च्छिममनुष्याण  
सचित्ता अचित्ता, सचित्ताचित्ता च ।

गभजमनुष्यतिरश्वां देवानां च शीतोष्णा योनिः । तेजस्का  
स्थावरचतुष्टयस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्वां सं  
नारकाणां च त्रिविधा शीता, उष्णा, शीतोष्णा च योनिः ।

नारकाणां देवानामेकेन्द्रियाणां च संवृता योनिः  
पञ्चेन्द्रियतिरश्वां मनुष्याणां च संवृतविवृता योनिः ।

और वह जीवप्रदेशों से रहित है । नारकों की योनि वज्रमय वातायन के  
के भी जीवप्रदेशों से रहित हैं । गर्भज तिर्यंचो और मनुष्यों की मिश्र  
होती है । पांच स्थवरों की, तीन विकलेन्द्रियों की, अगर्भज पञ्चेन्द्रि  
समूर्च्छिम मनुष्यों की योनि तीनों प्रकार की (सचित्त, अचित्त और मि  
गर्भज—मनुष्यों, तिर्यंचो और देवों की शीतोष्ण योनि ह  
उष्ण योनि है । चार स्थावरों की, तीन विकलेन्द्रियों की, आगर्भज  
समूर्च्छिम मनुष्यों की और नारकों की तीनों प्रकार की (शीत उ  
होती है ।

नारकों देवों और एकेन्द्रियों की संवृत योनि है । ग  
और मनुष्यों की संवृतविवृत योनि होती है । तीन विकलेन्द्रियों

प्रदेशोत्थी रहित छे नारकीयोनी योनि वज्रमय वातायन (१  
छे ते पञ्च एवप्रदेशोत्थी रहित छे

गर्भज तिर्यंचो अने मनुष्योनी मिश्र (सचित्ताचित्ति-  
स्थावरोनी, त्रय विकलेन्द्रियोनी, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय  
मनुष्योनी योनि त्रयेय प्रकारनी (सचित्त, अचित्त अने

गर्भज मनुष्यो, तिर्यंचो अने देवोनी शीतोष्ण  
उष्णयोनि छे. चार स्थावरोनी, त्रय विकलेन्द्रियोनी, अ  
समूर्च्छिम मनुष्योनी अने नारकोनी त्रयेय प्रकारनी (शीत,

नारकी, देवो, अने एकेन्द्रियोनी संवृत योनि  
अने मनुष्योनी संवृत-विवृत योनि होय छे. त्रय विः

यादुमवति । एवं ह्यपरिहया विज्ञाप प्रत्याख्यानपरिहया सावयक्रिया परित्याग्येति मयमता घोषितमिति । इदं च ज्ञानं सहस्रम्भत्या (अवधि-मनापर्यय-केवलज्ञानैर्जाति-सूत्रा वा ) मतिज्ञानेन वा भवति, तस्मात्त्रिभयव्ययद्वारस्वरूपसंयममार्गं प्रवृत्तिरेक-जीवस्य द्वितकारिणी, अन्त्यैव हि परमपदं मोक्षो लभ्यते ॥ सू० ९ ॥

ननु तर्हि दुःखफलेषु तेषु क्रियाविशेषेषु किमर्थं मवर्त्तते जीव ? इत्याशङ्क्य-यामाह—' इमस्स चैव ' इत्यादि ।

मूलम्—इमस्स चैव जीवियस्स परिवंदनमापणपूज्याय चाइमरणमोपयाय दुस्सपडिमायहेठे ॥ सू० १० ॥

छाया—अस्म चैव जीवितस्य परिकन्दन-मानन-पूजनाय-आविमरणमोष-नाय दुस्सपडिमायहेठम् ॥ सू० १० ॥

कलक प्रकार की दुस्सह मातनाप मोगता है, इस प्रकार उपरिहया से जानकर प्रत्याख्यान-परिहया से सावय क्रिया त्यागने योग्य है । इस प्रकार मयमानने उपदेश दिया है । यह बोध-अवधि, मन-पर्यय, केवलज्ञान और आक्षिप्तरूप से होता है, या मतिज्ञान से होता है । इस क्रिये त्रिभयव्ययद्वाररूप संयममार्ग में प्रवृत्ति करना ही जीव के सिद्ध द्वितकर है और स्त्री से परमपद-मोक्ष प्राप्त होता है ॥ सू० ९ ॥

अगर सावय क्रियाएँ दुःख का कारण है तो उन में जीव प्रवृत्ति क्यों करता है ? इस आशङ्क्य का समाधान करते हैं—' इमस्स चैव ' इत्यादि ।

मूलार्थ—इस जीवन के सिद्ध, परिकन्दन, मानन और पूजन के सिद्ध, कर्म मरण से मुक्त होने के सिद्ध, दुस्स हर करने के सिद्ध, (जीव पापक्रिया में प्रवृत्त होता है) ॥ सू. १ ॥

सावय व्यापार करतो एव स सासर्मा परिश्रमवु करे छे अने नरक निषेध आदिनी अनेके प्रकारनी कद्वि पातनाजो बोधवे छे. आ प्रभाषे स-परिहयाधी अक्षीने प्रत्या-ख्यान-परिहयाधी सावय क्रिया त्याज्या बोध्य छे, आ प्रभाषे सजगने उपदेश आजे छे. आ बोध-अवधि, अन्त्यपर्यय, केवलज्ञान अथवा अवतिमरणवुधी बाय छे अथवा तो भविज्ञानधी बाय छे जे आटे निश्चय-अवधारस्वरूप संयममार्गमां प्रवृत्ति करनी जेव एवने आटे द्वितकर छे अने जेनाधी परमपद मोक्ष बाय छे (सू० ९)

वे के सावय क्रियाजो दुःखजुं हारवु छे तो तेमां एव प्रवृत्ति या आटे करे छे ? जे सज्ञान समाधान करे छे— इमस्स चैव अन्वदि

मूलार्थ—आ एवने आटे, परिकन्दन, मानन, अने पूजन आटे, अ म भरणधी सुखा तथा आटे, दुःख हर करवा आटे (एव पापक्रियामां प्रवृत्त बाय छे) (१०)

हेतुत्वादशोभनं रूप=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः=अनिष्टाः, तान्, स्पर्शान्= इन्द्रियाणां विषयैः सह सम्बन्धाः स्पर्शाः, तान् प्रतिसंवेदयति=पुनः पुनरनुभवति । अनिष्टविषयसंयोगैः पुनः पुनर्दुःखमेव प्राप्नोतीत्यर्थः ।

यद्वा—विरूपं=विभिन्नरूपं विभिन्नात्मकं रूपं=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः=नानाविधस्वरूपाः, तान् स्पर्शान्=दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयति । लक्षणया कार्य-कारणयोरभेदाद्वा स्पर्शजन्या अपि दुःखसंपाताः स्पर्शा इति व्यपदिश्यन्ते । अत्र स्पर्शानित्युपलक्षणं, तेन मानसानामपीष्टवियोगादिजन्यदुःखसंपातानां संग्रहः ।

यद्वा—स्पर्शान्=स्पर्शनेन्द्रियवेद्यान् दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयतीत्यर्थः ।

को भोगता है । इस प्रकार अनिष्ट विषयों का संयोग होने के कारण वह जीव पुन-पुन दुःख ही अनुभव करता है ।

अथवा—विरूप अर्थात् भिन्न-भिन्न स्वरूपवाले—नानाप्रकार के दुःखजनक स्पर्शों का संवेदन करता है । लक्षणावृत्ति से, अथवा कार्य-कारण के अभेद की विवक्षा से स्पर्शजन्य दुःख भी स्पर्श ही कहलाते हैं । यहाँ स्पर्श उपलक्षण मात्र है, उस से इष्टवियोग आदि मानसिक दुःखों का भी ग्रहण सम्भवा चाहिए ।

अथवा—स्पर्श का अर्थ है—स्पर्शनेन्द्रियविषयभूत दुःख । जीव उन्हें भोगता है । तात्पर्य यह है कि—जीव अपरिज्ञातपापकर्मा होकर—निरोध आदि ज्ञाना

इ प्रकारक विषयेने भोगवे छे, अे प्रभावे अनिष्ट विषयेना संयोग होवाना कारणे ते एव कुरी-कुरी दुःखनेअ अनुभव करे छे

अथवा—विरूप अर्थात् भिन्न-भिन्न स्वरूपवाला नाना प्रकारता दुःखजनक स्पर्शानु संवेदन करे छे लक्षणावृत्तिथी, अथवा कार्यकारणना अवेदनी, विवक्षाथी स्पर्शजन्य दुःख पण स्पर्शक कडेवाय छे अहि स्पर्श उपलक्षण मात्र छे, तेमां इष्टवियोग आदि मानसिक दुःखानु अकष्य पण समए देवुं जेठ अे

अथवा—स्पर्शने अर्थ छे—स्पर्शनेन्द्रियविषयभूत दुःख एव—तेने भोगवे छे तात्पर्य अे छे छे—एव अपरिज्ञातपापकर्मा धरने नरक-निरोध आदि अनेक योनिओमा



अपरिष्ठातकर्मवया नरकनिगोद्गाथनेकविषयोनीः संप्राप्य सर्वे जीवाः विविचकर्मो  
वयात् स्वकर्मफलं नानाविधं दुःखमेवानुभवन्तीति भाव ॥ ८ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी बन्धुस्वामिने भगवद-‘कृपे’-इत्यादि ।

मूमम्—

कृपे स्वतु भगवत्या परिष्ठा पवेइया ॥ सू० ९ ॥

छाया—

वत्र स्वतु भगवत्या परिष्ठा प्रवेदिता ॥ सू० ९ ॥

टीका—

हे बन्धु ! अपरिष्ठातकर्मा जीवो विमानपरिष्ठात कर्त्तुं नानाविध  
योनिषु पुनः पुनर्दुःखमेव समते । तत्र-अपरिष्ठातकर्मणो जीवस्य कृतकारि  
वानुमोदितादिषेदेनोक्तसप्तविधसिद्धिरूपसावयवक्रियासुष्ठानामरकनिगोद्गादिनामभि  
षयानिषु पुनः पुनर्दुःखानुभवविषये भगवता भीमहावीरस्वामिना परिष्ठा

योगियों में उत्पन्न होकर विचित्र कर्मों के उद्वेग से अपने-अपने कर्मों का नामविध दुःख-  
रूप फल अनुभव करते हैं ॥ सू. ८ ॥

सुधर्मा स्वामी बन्धु स्वामी से कहते हैं-‘कृपे स्वतु श्यामि ।

मूममर्थ-भगवान् ने परिष्ठा का उपदेश दिया है ॥ सू. ९ ॥

टीकार्थ- हे बन्धु ! अपरिष्ठातपापकर्मा जीव विमान परिष्ठात पारम्य करता  
हुआ नाना प्रकार की योगियों में बारबार दुःख पाता है । अपरिष्ठातपापकर्मा जीव के  
इस कसित अनुभवेन्य कसि के फेद से सप्ताईस भगवत् सावयवक्रिया के अनुष्ठान से  
नरक निगोद् गादि नाना प्रकार की योगियों में पुनः पुनः दुःखानुभव करने के विषयमें

कृपे स्वतु ने विचित्रकर्मिना अथवी पित्त-पेत्ताना कर्मिन्त जनेक भूताना इत्यत्र  
इत्येना अनुभव करे ॥ (सू० ८)

सुधर्मा स्वामी बन्धु स्वामीने कहे छे- कृपे स्वतु इत्यादि.

मूममर्थ-भगवाने परिष्ठाने उपदेश आप्ये ॥ (९)

टीकार्थ- हे बन्धु ! अपरिष्ठातपापकर्मा जीव विचित्र परिष्ठात पारम्य करता  
हुआ नाना प्रकारकी योगियोंमें बारबार दुःख पाता है । अपरिष्ठात-पापकर्मा जीवना  
इसी कसित जने अनुभवेन्य कसिना ओइवी अथवीय अ लक्ष्म सावयव क्रियाना अनुष्ठानकी  
नरक-निगोद् गादि नाना प्रकारकी योगियोंमें पुनः पुनः दुःखानुभव इत्येना विषयमें

खलु प्रवेदिता । तत्तद्दुःखकारणकर्मबन्धसमुच्छेदार्यं जीवने परिज्ञास्वयं शरणी-  
 करणीयेति भगवता प्रबोधितमिति भावः परिज्ञा=सम्यगवबोधः । परिज्ञा  
 द्विविधा ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदात् । 'सावधव्यापारेण कर्मबन्धो भवती'ति ज्ञानं  
 ज्ञ-परिज्ञा । कर्मबन्धकारणस्य सावधव्यापारस्य परित्यागः प्रत्याख्यान-परिज्ञा ।  
 अत्रेदमवगन्तव्यम्-अतीतकाले मनसा वाचा कायेन च मया सावध-  
 क्रिया कृता, कारिता, अनुमोदिता च, तथा वर्तमानकाले सावधक्रियां करोमि,  
 कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यमनुमोदयामि । एवं यदि भविष्यत्कालेऽपि सावधक्रियां  
 करिष्यामि, कारयिष्यामि करिष्यमाणमन्यमनुमोदयिष्यामि । इत्थमनेकविधसा-  
 वधव्यापारं कुर्वन् जीवः संसारे परिभ्रमति, नरकनिगोदाद्यनेकविधदुःसहयातनां

भगवान् महावीर स्वामीने परिज्ञा की प्ररूपणा की है । दु खों के कारणभूत कर्मों के  
 बन्ध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञा का शरण अवश्य ग्रहण करना चाहिए,  
 ऐसा भगवान् ने कहा है । परिज्ञा का अर्थ है-सम्यग्ज्ञान । परिज्ञा दो प्रकार की है-  
 ज्ञ-परिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा । सावध व्यापार से कर्मबन्ध होता है 'ऐसा जानना  
 ज्ञ-परिज्ञा है । और कर्म बन्ध के कारण सावध व्यापारों का परित्याग कर देना प्रत्याख्यान  
 परिज्ञा है । यहाँ यह समझना चाहिए कि-भूतकाल में मैंने मन, वचन, काय से सावध क्रिया  
 की, कराई और उस की अनुमोदना की, तथा वर्तमान काल में सावध क्रिया करता हूँ, कराता  
 हूँ और दूसरे करने वाले का अनुमोदन करता हूँ, इसी प्रकार भविष्यकाल में भी सावध  
 क्रिया करूँगा, कराऊँगा, और दूसरे का अनुमोदन करूँगा । इस प्रकार भौति-भौति का  
 सावध व्यापार करता हुआ जीव संसार में परिभ्रमण करता है और नरक निगोद आदि की

भगवान् महावीर स्वामीने परिज्ञानी प्ररूपणु करी छे । दु खोना कारणभूत कर्मोना  
 बंधनो नाश करवा भाटे लवने परिज्ञानु शरषु अवश्य अहलु करवुं लेधे छे, छे  
 प्रभाषे भगवाने कहु छे परिज्ञानो अर्थ छे सम्यग्ज्ञान परिज्ञा छे प्रकारनी छे-  
 (१) ज्ञ-परिज्ञा अने (२) प्रत्याख्यान-परिज्ञा 'सावध व्यापारथी कर्मबंध थाय छे'  
 आ प्रकारे समजवुं ते ज्ञ-परिज्ञा छे, अने कर्मबंधना कारणथी सावध व्यापारोना  
 त्याग करी देवो ते प्रत्याख्यान-परिज्ञा छे अहिं आ प्रभाषे समजवुं लेधे छे के-  
 भूतकालमा मे मन, वचन, कायाथी सावध क्रिया करी छे, करावी छे अने तेने  
 अनुमोदन आष्यु छे तथा वर्तमान कालमा सावध क्रिया करे छु, करावु छु, अने  
 पीलु करवावाणाने अनुमोदन आषुं छु आ प्रभाषे भविष्यकालमा पषु सावध क्रिया  
 करीश । करावीश अने पीलने अनुमोदन आषीश आ प्रभाषे अनेके तरेडना लुहा-लुहा

प्राप्तमवति । एवं ज्ञपरिग्रहा विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिग्रहा सावधक्रिया परिस्थान्येति मगदता बोधितमिति । इदं च द्वानं सहसम्मस्या (अवि-भनःपर्यय-केवसज्ञानैर्जाति स्यात्वा वा ) मतिज्ञानेन वा भवति, तस्माच्चिद्वयव्यवहारस्वरूपसंयममार्गे प्रवृत्तिरेव जीवस्य हितकारिणी, अनयैव हि परमपद मोक्षो लभ्यते ॥ सू० ९ ॥

ननु तर्हि दुःखफलेषु तेषु क्रियाविशेषेषु किमर्थं प्रवर्तते जीव ? इत्याशङ्कामाहा- 'इमस्स वैव' इत्यादि ।

मूक्य-इमस्स वैव जीवियस्स परिवर्तनमात्रणपूर्यमाण आहमरणमोक्षमाह दुःखसंप्रतिपाद्यहेतुं ॥ सू० १० ॥

छाया-अस्य वैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय-आदिमरणमोक्षनाय दुःखसंप्रतिपाद्यहेतुम् ॥ सू० १० ॥

अन्य प्रकार की दुःखसह यातनाय योग्यता है, इस प्रकार ज्ञपरिग्रहा से ज्ञानकर प्रत्याख्यान-परिग्रहा से सावध क्रिया (त्यागने योग्य) है । इस प्रकार मगदताने उपदेश दिया है । यह बोध-अवि, मन-पर्यय केवलज्ञान और आतिस्मरण से होता है, वा मतिज्ञान से होता है । इस क्रिये निश्चयमव्यवहाररूप संयममार्ग में प्रवृत्ति करता ही जीव के किये हितकर है और इसी से परमपद-मोक्ष प्राप्त होता है ॥ सू० ९ ॥

अगर सावध क्रियार्थे दुःख का कारण है तो उन में जीव प्रवृत्ति क्यों करता है ? इस आशङ्का का समाधान करते हैं- 'इमस्स वैव' इत्यादि ।

पूर्यमाण-इस जीवण के किये, परिवन्दन, मानन और पूजन के किये, अन्व मरण से मुक्त होने के किये, दुःख दूर करने के किये, (जीव पापकृत्या में प्रवृत्त होता है) ॥ सू. १ ॥

सावध व्यापार करते हैं उन च सारमां परिग्रहणं करे से जने नरक निवेदं आदिनी अन्येक प्रकारनी क्विं यातनायो बोधये से वा प्रभावे स-परिग्रहाधी ज्ञानीने प्रत्याख्यान-परिग्रहाधी सावध क्रिया त्यागना योग्य से वा प्रभावे अजयने उपदेशे व्याप्ये से

वा बोध-अवि, मन-पर्यय, केवलज्ञान अथवा आतिस्मरणाधी वाय से अथवा तो मतिज्ञानधी वाय से जे भाटे निश्चय-अव्यवहाररूप संयममार्गमां प्रवृत्ति करणी जेव अपने भाटे हितकर से जने जेताधी परमपद मोक्ष वाय से (सू० ९)

वे के सावध क्रियायो दुःखानुं शरण्य से तो तेमां एव प्रवृत्ति या भाटे करे से ? जे शकानुं समाधान करे से- इमस्स वैव इत्यादि

मूक्यार्थ-वा एवजने भाटे, परिवन्दन, मानन, जने पूजन भाटे, अ म मरणधी मुक्त बना भाटे, दुःख दूरकरण भाटे (एव पापकृत्यामां प्रवृत्त वाय से) (१०)

टीका—‘अस्य’ इति-अस्य=प्रत्यक्षमनुभूयमानस्य वारितरङ्गवच्चञ्चलतरस्य, सन्ध्यारागवच्चरितभङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य चिरसुखार्थमपरिज्ञातकर्मा जीवः कर्मबन्धहेतुभूतेषु क्रियाविशेषेषु प्रवर्त्तते । यथा-जीवनार्थं लावकतिचिरादिपक्षिणाम्, अजमेपमृगमृगराजादिपशूना वधरूपघोरकर्मसमाचरणम् । तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय, तत्र-परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा-स्वख्यातिप्राप्त्यर्थं सापराध-निरपराध-प्राणिना हिंसनम् । माननम्=अभ्युत्थानासनदानादिरूपः सत्कारः, स्वाहा-स्वीकारो वा, तदर्थम्, यथा-माननार्थं परेषां हिंसनादिकरणम् । पूजनम्-रत्नवस्त्रादि-पुरस्कारः, प्रतिमादीना पूजाप्रतिष्ठादि च, तदर्थं, प्राण्युपमर्दनरूपहिंसादिसावध-

टीकार्थ-प्रत्यक्ष अनुभव किये जाने वाले, जलकी तरङ्ग के समान अतिशय चंचल, सन्ध्या की लालिमा के समान भङ्गुर-जीवन के चिरकालीन सुख के लिए अपरिज्ञातकर्मा जीव कर्मबन्ध की कारणभूत क्रियाओं में प्रवृत्त होता है । जैसे-जीवित रहने के लिए, लांवा, तीतर आदि पक्षियों का और बकरा, मेढा, हिरन एवं सिंह आदि पशुओं का वधरूप घोर पापकर्म का आचरण करना ।

तथा परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए जीव पापकर्म करता है । ‘परिवन्दन’ का अर्थ है प्रशंसा । प्रशंसा के लिए सापराध और निरपराध प्राणियों का घात किया जाता है । उठकर खड़ा होना, आसन देना आदि सत्कार, अथवा अपनी आज्ञा स्वीकार कराना ‘मानन’ कहलाता है, इस के लिए भी दूसरा की हिंसा की जाती है । रत्नों और वस्त्रों आदि का पुरस्कार ‘पूजन’ कहलाता है, और प्रतिमा आदि की पूजा-

टीकार्थ-प्रत्यक्ष अनुभव करवाना आवेला बलना तर गोनी समान अतिशय चंचल, सन्ध्यानी लालाश (रातापष्ठा)नी समान लशुर लुवनना लाभा समयना सुभ माटे अपरिज्ञातकर्मा लुव कर्मबन्धनी डारलुभूत क्रियाओंमा प्रवृत्त थाय छे जेवी रीते लुवित रहेवा माटे लावा तेतर, आदि पक्षीओना अने बकरा, मेढा, हिरन ओ प्रभाछे सिंह आदि पशुओना वधरूप घोर पापकर्मनु आचरण करवुं

तथा परिवन्दन, मानन अने पूजन माटे पण लुव पाप कर्म करे छे ‘परिवन्दन’ने अर्थ छे-प्रशंसा, प्रशंसा माटे अपराधवाणा अने अपराध विनाना प्राणीओना घात करवाना आवे छे उठीने उसा थर्ध लुव आसन आपु लुव आदि सत्कार अथवा पोतानी, आज्ञा स्वीकार करावनी ते ‘मानन’ कहेवाय छे, ते माटे पण लुवनी हिंसा करवाना आवे छे रत्न अने वस्त्रो आदिना पुरस्कार ते पूजन कहेवाय छे, अने प्रतिमा-

क्रियां करोति । जातिमरणमोचनाय=जातिर्मन्य, तदर्थं भवान्तरसुखपाप्त्यर्थं  
 सन्पापात्तादिकं समाधरति । मरणार्थम्=मरणं यथा पित्रादीनां संनार्तं, तदर्थं  
 पित्रदानादिक्रियासु प्रवर्तते । यदा मरणं=वधस्तदर्थं, वधं निमित्तीकृत्य वैरिनि  
 योपनार्थम् । यदा-मरणार्थं=मृत्युनिवृत्त्यर्थं मिथ्यात्वमुद्धया देवीपूजादौ  
 बलिदानादिकरणम् । मोचनम्=आत्मन कर्मसन्धापगमस्तदर्थं विपरीतमत्या  
 पञ्चाश्रितापादौ माय्युपमर्दनकर्मणि प्रवर्तते । तथा दुःखमतिपातहेतुं=दुःखानां  
 प्रतिपातो=विष्यंसस्तस्य हेतुं क्रियाविशेषं हिंसादिकं करोति, यथा-व्याधि

प्रतिष्ठा कौरव मो 'पूजन' है उसके लिये मी मनुष्य प्राणियों का उपमर्दनरूप हिंसा कौरव  
 साक्ष्य क्रियार्थ करता है ।

। कर्म और मरण से छुटकारा पाने के लिये साक्ष्य क्रियार्थ की जाती है ।  
 जाति -कर्म के लिये जैसे भागामी भव मं मुक्त प्राप्त करने के उद्देश से भीम  
 सपापात-(कर्मि तथा पाणीमें पड़कर अपना ऊपरसे गिरकर मरना) जाति का  
 आश्रण करता है । मरण-पिता जाति का मरण होने पर उसके लिये पिंडदान जाति  
 क्रियात्मा में प्रवृत्त होता है । अपना-मृत्यु को निमित्त बनाकर वैर का प्रतिशोध (बदला) देने  
 के लिये पाप करता है । अपना मृत्यु गळने की मिथ्याबुद्धि से देवी कौरव के लिये बलिदान  
 जाति करता है । तथा 'मोचन के लिये कर्मसन्धापना कर्मसन्धा हटाने के लिये विपरीतमति हो  
 कर पंचाश्रिताप जातिरूप प्राणि हिंसा में प्रवृत्त होता है । तथा 'दुःखमतिपातहेतुं' दुःखों  
 को निवारण करने के लिये हिंसा जाति पाप करता है । जैसे रोग मिटाने की बुद्धि से मांस

(भूति) जातिनी पूजा-प्रतिष्ठा वजरे पक्ष 'पूजन' से तेना माटे पक्ष लव प्राणिज्जोतु  
 उपमर्दनरूप हिंसा वजरे सावध क्रियाजो करे छे

७ म जने भरखुषी छुटवा माटे पक्ष सावध क्रियाजो करवाभा आवे छे जाति-७ म  
 माटे, ७म जाजाभी भवभां मुज प्राप्त करवाना उद्देशधी लव ल पापात (जाति के पापीभां  
 पक्षीने भरखु उषिधी पक्षतुं मुहंतु) जातिनु जाअरखु करे छे 'भरखु पिता जातिना भरखु  
 प्रयजे तेना माटे पिंडदान जाति क्रियाजोभां प्रवृत्त वाय छे अपना मृत्यु निवारखु माटे  
 मिथ्याबुद्धिधी देवी वजरेने बलिदान जाति आपनां, तथा मोचन माटे कर्मसन्धा पोताना  
 कर्मसन्धे दूर करवा माटे विपरीत मतिधी पञ्चाश्रिताप जातिरूप हिंसाभा प्रवृत्त वाय छे  
 तथा 'दुःखमतिपातहेतु' -दुःखोतु निवारखु करवा माटे हिंसाजाति, पाप करे छे जेभ शक

विध्वंसनबुद्ध्या मासं भक्षयति, मदिरादिकं पिवति, वनस्पतिमूलत्वक्पत्रनिर्वासादि-  
शतपाकसहस्रपाकादितैलार्थं ब्रह्मिवनस्पत्याधारम्भं करोति । अत्र कारितानुमोदि-  
भूतभविष्यत्कालादिभेदेन कर्मसमारम्भरूपाः क्रियाविशेषा अन्येऽप्यवगन्तव्याः ।

एवमपरिज्ञातकर्मतया संसारिणो जीवाः कर्मसमारम्भरूपैः क्रियाविशेषैः  
संसारे सर्वदिक्षु परिभ्रमन्तो विविधयोनिषु दुःखमेव प्राप्नुवन्तीति विज्ञाय भव्यैः  
कर्मसमारम्भरूपा सकलसावध्यक्रियाविशेषास्त्याज्या इति भावः ॥ सू. १० ॥

कर्मसमारम्भरूपान् क्रियाविशेषान् अनुस्मारयितुं प्रागुक्तमपि पुनः कथयति-  
' एयावन्ति ' इत्यादि ।

खाता है, मदिरा आदि का पान करता है, वनस्पति की जड़, छाल, पत्ता, रस कौरह  
निकालता है, शतपाक एव सहस्रपाक आदि तैलों के लिए अग्नि और वनस्पति आदि का  
आरम्भ करता है । यहाँ कराना और अनुमोदन करना तथा भूत, भविष्य काल आदि के  
भेद से कर्मसमारम्भरूप अन्य क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिए ।

इस प्रकार अपरिज्ञातपापकर्मा होने के कारण ससारी जीव कर्मसमारम्भरूप क्रियाओं  
द्वारा संसार में समस्त दिशाओं में भ्रमण करते हुए नाज्ञा योनियों में दुःख का ही अनुभव  
करते हैं । ऐसा समझकर भव्य जीवों को पापकर्मजनक सावध्य क्रियाओं का त्याग करना  
चाहिए ॥ सू० १० ॥

कर्मसमारम्भरूप क्रियाविशेषों का स्मरण कराने के लिए पूर्वोक्त अर्थ को फिर कहते  
हैं—“ एयावन्ति. ” इत्यादि ।

मटाड़वानी शुद्धिधी मास भाय छे, मदिरा वगेरेनुं पान करे छे, वनस्पतिना मूल, छाल,  
पादका रस वगेरे काठे छे शतपाक, सहस्रपाक आदि तैला भाटे अग्नि अने वनस्पति  
आदिने आरंभ करे छे अर्द्ध करावतु अने अनुमोदन आपु, तथा भूत भविष्य  
काल आदि ना लेदधी कर्मसमारंभ अथ अन्य क्रियाओ पक्ष समल लेवी लेदथे.

आ प्रमाणे अपरिज्ञातपापकर्मा होवाना कारणे, ससारी एव कर्मसमारंभरूप  
क्रियाओद्वारा संसारमा, समस्त दिशाओमा भ्रमण करतो अनेक योनियोमा दुःख  
नोण अनुभव करे छे आ प्रमाणे समलने भव्य एवोको पापकर्मजनक सावध्य  
क्रियाओना त्याग करवो लेदथे (सू० १०)

कर्मसमारंभरूप क्रियाविशेषोनु स्मरण करववा भाटे पूर्वोक्त अर्थने करी  
छे छे—' एयावन्ति ' इत्यादि.

मृतम्—एषां वृत्ति सञ्चारवृत्ति लोकांसि कर्मसमारम्भा परिजायिष्या  
वर्षति ॥ सू ११ ॥

छाया—एषां वृत्तः सर्वे लोके कर्मसमारम्भाः परिजायिष्या वर्षति ॥ सू ११ ॥

टीका—‘एषां वृत्तः’ इति—लोके—जिनशास्त्रने कर्मसमारम्भाः—कर्मवन्धहेतवः  
क्रियाविशेषाः सर्वे एषां वृत्तः । कृतकारित्वानुमोदितमेवेन त्रिविधानां कर्मसमार  
म्भाणां प्रत्येकमतीतवर्षमानानागतत्रयमेवेन नवविधानां पुनर्भवोपाश्रयमेवेन  
प्रत्येकं त्रैविध्ये सति सप्तविंशतिर्भङ्गा भवन्तीति रीत्या पूर्वकवित्तसप्तविंशति  
सङ्ख्यन्तः, न तु त्रैविध्योपिका इत्यर्थः । एते च कर्मसमारम्भाः परिजायिष्या भवन्ति,  
एतत्परिज्ञानार्थं यत्नो विधेय इत्यर्थः । ज्ञातं सति पुन पुनरस्यानुस्मरणं करणीयं, न  
त्वन ममाहः कार्य इति भावः ॥ सू ११ ॥

कर्मसमारम्भपरिज्ञानस्य फलमाह—‘अस्सेते’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जिनशास्त्रन में इतने कर्मसमारम्भ जानने योग्य हैं ॥ सू ११ ॥

टीका—जिनशास्त्रन में कर्मवन्ध के कारण इतने ही हैं । जन्त, कास्ति, और जन्तु  
मेंदित के भेद से तीन प्रकार के कर्मसमारम्भोका अतीत वर्तमान और भविष्य काल के  
साथ गुणाकार करने पर नौ भेद होते हैं । ये नौ भेद मन, बन्धन, कर्म के भेदसे सत्ताईस  
सङ्ख्य हो जाते हैं । इस प्रकार सत्ताईस तरह के कर्मसमारम्भ जानने चाहिए, इनसे न  
कर्म है और न अधिक है । उन्हें जानने के लिए यत्न करना चाहिए । जान देने के पश्चात्  
उन्का बार—बार स्मरण करना चाहिए । इस विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिए ॥ ११ ॥

कर्मसमारम्भ के ज्ञानका फल कह्यते हैं— अस्सेते’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जिनशास्त्रनमें ज्ञातवा कर्मसमारम्भ लक्ष्यवा योग्य है (११)

टीका—जिनशास्त्रनमें कर्मवन्ध जन्तुकारण ज्ञातवा है इत्यु कल्पयु जने जन्तु  
मोदन ज्ञापयु ज्ञा लोदधी त्रय प्रकाशना कर्मसमारम्भोने सत्ताईस, वर्तमान जने भविष्य  
हादनी जाये लुकाकार इत्याधी नव लोद भाष्य है ज्ञा नव लोद मन बन्धन, हावाना लोदधी  
सत्तावीस ल जन्तुप अर्थ लक्ष्य है जने प्रभावे सत्तावीस तरेदना कर्मसमारम्भोने लक्ष्यवा लोदधने  
जनेनाधी जोलभ नधी जने अधिक पद्य नधी । तेने लक्ष्यवा भाटे यत्न करवे लोदधने । लक्ष्यवा  
पधी तेनु बार बार स्मरण इत्यु लोदधने । ज्ञा विषयमें प्रमाद नहि करवे लोदधने (११)

कर्मसमारम्भजानना ज्ञानवत् इत्यु ज्ञाते है— अस्सेते धर्मादि

विध्वंसनबुद्ध्या मांसं भक्षयति, मदिरादिकं पिवति, वनस्पतिमूलत्वरूपन्ननिर्पासादि-  
शतपाकसहस्रपाकादितैलार्थं वह्निवनस्पत्याधारम्भ करोति । अत्र कारितानुमोदित-  
भूतभविष्यत्कालादिभेदेन कर्मसमारम्भरूपाः क्रियाविशेषा अन्येऽप्यवगन्तव्याः ।

एवमपरिज्ञातकर्मवया ससारिणो जीवाः कर्मसमारम्भरूपैः क्रियाविशेषैः  
संसारं सर्वदिक्षु परिभ्रमन्तो विविधयोनिषु दुःखमेव प्राप्नुवन्तीति विज्ञाय भव्यैः  
कर्मसमारम्भरूपा सकलसावधक्रियाविशेषास्त्याज्या इति भावः ॥ सू. १० ॥

कर्मसमारम्भरूपान् क्रियाविशेषान् अनुस्मारयितुं प्रागुक्तमपि पुनः कथयति-  
' एयावति ' इत्यादि ।

खाता है, मदिरा आदि का पान करता है, वनस्पति की जड़, छाल, पत्ता, रस वगैरह  
निकालता है, शतपाक एव सहस्रपाक आदि तैलों के लिए अग्नि और वनस्पति आदि का  
आरम्भ करता है । यहाँ कराना और अनुमोदन करना तथा भूत, भविष्य काल आदि के  
भेद से कर्मसमारम्भरूप अन्य क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिए ।

इस प्रकार अपरिज्ञातपापकर्मा होने के कारण ससारी जीव कर्मसमारम्भरूप क्रियाओं  
द्वारा संसार में समस्त दिशाओं में भ्रमण करते हुए नाना योनियों में दुःख का ही अनुभव  
करते हैं । ऐसा समझकर भव्य जीवों को पापकर्मजनक सावध क्रियाओं का त्याग करना  
चाहिए ॥ सू० १० ॥

कर्मसमारम्भरूप क्रियाविशेषों का स्मरण कराने के लिए पूर्वोक्त अर्थ को फिर कहते  
हैं—“ एयावति, ” इत्यादि ।

भटाडवानी युद्धिथी भास भाय छे, मदिरा वगेरेतुं पान करे छे, वनस्पतिना मूल, छाल,  
पादका रस वगेरे कडे छे शतपाक, सहस्रपाक आदि तेली भाटे अग्नि अने वनस्पति  
आदिने आरंभ करे छे अहिं करावतु अने अनुमोदन आपतुं, तथा भूत भविष्य  
काल आदि ना लेदथी कर्मसमारंभरूप अन्य क्रियाओ पद्य समल लेवी लेध अे.

आ प्रभाछे अपरिज्ञातपापकर्मा डोवाना कारछे, ससारी एव कर्मसमारंभरूप  
क्रियाओद्वारा संसारमा, समस्त दिशाओमा भ्रमण करतो अनेक योनियोमा दुःख  
नोअ अनुभव करे छे आ प्रभाछे समलने अव्य एवोअे पापकर्मजनक सावध  
क्रियाओनो त्याग करवो लेध अे (सू० १०)

कर्मसमारंभरूप क्रियाविशेषानुं स्मरण करववा भाटे पूर्वोक्त अर्थने करी  
छे छे —‘ एयावति ’ इत्यादि



सकामान्मया साक्षात् भुतं त्वं ब्रवीमि=कथयामि न तु स्वयुद्धिपरिकल्पितम् । यतः स्वयुद्धया कथने भुतज्ञानस्याभिनयो भवति, किञ्च-उपस्थानां ह्यप्योप्यपूर्णा भवन्ति तस्मात् यथाभगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपविशामीत्यर्थः । अथ सत्प्रवृत्तगाया-  
“सुम्णामस्त भविष्यो, परिहरणिजो सुहारिलासीहिं ।

छउमत्याम् दिङ्ही, पुण्या भव्यि-च इत्य इत्या ॥ १ ॥ ” इति ।

सावयक्रियायाः पञ्जीवनिकायं प्रति अक्षयदुपघातकतया सावयक्रिया-  
स्वरूपबोधकस्य प्रथमाध्ययनस्य अक्षयपरिहाराभ्यपदेशः ॥ सू १२ ॥

प्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

मुनिका विभरना को तीर्थकर भगवान् महावीर के समिकट मैने साक्षात् सुना है वही 'ब्रवीमि' = मैं कहता हूँ अपनी बुद्धिसे कल्पित नहीं कहता । अपनी बुद्धिसे-तीर्थकरकी वाणी की अपेक्षा न रखते हुए कथन करने से अज्ञान का अविनय होता है । दूसरी बात यह है कि अक्षय की दृष्टि भी अपूर्ण होती है, अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ही मैं तुम से कहता हूँ । यहाँ यह सद्प्रवृत्तगाथा है—

'सुक्त के अविश्रामी मम्मो को अज्ञान के अविनय का त्याग करना चाहिए अक्षयों की दृष्टि पूर्ण नहीं होती, ऐसा यहाँ 'इति' शब्द से सूचित किया गया है" ॥ १ ॥

सावय क्रिया पञ्जीवनिकाय के लिए शक्त के समान घातक है, अतः सावय क्रियाके स्वरूपके बोधक इस प्रथम अध्ययन का शक्तपरिहारा नाम हुआ है ॥ सू. १२ ॥

प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

विश्वरूप को तीर्थकर भगवान् महावीर चासे भी साक्षात् सुनायुं से तेज 'ब्रवीमि' = मैं कहूँ तु तु पीतानी बुद्धिभी कल्पित कहेंतो नहीं, पीतानी बुद्धिभी— तीर्थकरकी वाणीकी अपेक्षा नहीं रखीने कहीजे तो अज्ञानने अविनय साथ से नील बात को से है—अक्षयकी दृष्टि पूरा अपूर्ण होय से ते अक्षयकी भगवान् द्वारा प्रतिपादन करकेहुं तत्त्व हूँ तमने कहूँ तु अहिं या सद्प्रवृत्तगाथा से—

मुजना अविश्रामी मम्मोके अज्ञानने अविनयने त्याग करने लोछजे अक्षयकी दृष्टि पूरा होय नहीं, जो प्रमाद्ये 'इति' शब्दकी सूचना करवानां जानी से." (७) सावय क्रिया पञ्जीवनिकाय भाटे शक्त (कधीअर) समान घातक से जो अक्षयकी सावय क्रियाना स्वरूपने बोध करानेवाँ या प्रथम-अध्ययन से, तेनु शक्तपरिहारांम पश्युं से.

नामक प्रथम अध्ययनने प्रथम उद्देश

स पूर्युं (१-१)

मूलम्—जस्सेते लोगंसि कम्मसमारंभा परिणायाम् भवन्ति से ह्मु णिणी  
परिणायकम्मि—त्तिवेमि ॥ सू० १२ ॥

छाया—यस्य एते लोके कर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः  
परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १२ ॥

टीका—‘यस्य’ इति—लोके यस्य=भव्यजीवस्य एते=प्रागुक्ताः कर्मसमारम्भाः=  
ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मणः समुत्पादकाः, सावद्यक्रियाविशेषा इत्यर्थः परिज्ञाता  
भवन्ति=‘ एते हिंसादयः सप्तविंशतिभद्रवन्तः सावद्यक्रियाविशेषा आत्मनः कर्मबन्धे  
हेतवो भवन्ति ’ इत्येवं ज्ञपरिज्ञया ज्ञाता भवन्ति स परिज्ञातकर्मा=ज्ञपरिज्ञया  
कर्मबन्धनिबन्धनत्वेन विज्ञाय, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्तसकलसावद्यक्रियाविशेषो  
निश्चयेन मुनिः=सर्वसावद्यक्रियोपरतिप्रतिज्ञावान् भवतीत्यर्थः ।

इति=आत्मतन्वस्वरूपनिरूपणं, कर्मबन्धहेतुभूतसकलसावद्यक्रियास्वरूपप्रदर्शनं,  
सावद्यक्रियानिर्घृत्तिपुरस्सर मुनेर्विहरण चेति यत् तीर्थङ्करस्य भगवतो महावीरस्य

मूलार्थ—लोक में जो कर्मसमारम्भ जान लेता है, वह मुनि निश्चय से परिज्ञातकर्मा  
है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० १२ ॥

टीकार्थ—लोक में जिस भव्य को पूर्वोक्त कर्मसमारम्भ अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि  
आठ कर्मों के उत्पादक सावद्यव्यापार ज्ञात हो जाते हैं, अर्थात् जो पूर्वोक्त सत्ताईस भगो  
वाले हिंसादिक क्रियाविशेषों को अपने कर्मबन्धों का कारण समझ लेता है, वह परिज्ञात-कर्मा  
है । जो ज्ञ-परिज्ञा से कर्मबन्ध का कारण समझ कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से सम्पूर्ण सावद्य क्रिया-  
ओंका त्याग करता है वह निश्चय से परिज्ञातकर्मा मुनि है ।

‘त्ति वेमि’ इति=इस प्रकार का आत्मा के स्वरूप का निरूपण, कर्मबन्ध के  
कारणभूत समस्त सावद्य व्यापारों के स्वरूप का प्रदर्शन, और सावद्य क्रिया की निर्घृत्तिपूर्वक

मूलार्थ—लोकमा जे कर्मसमारंभे जाने लएता है, ते मुनि निश्चयथी परिज्ञात-  
कर्मा छे जे प्रमाणे ह्मु कहुं छु. (सू० १२)

टीकार्थ—लोकमा जे लव्य लवने पूर्वोक्त कर्मसमारंभ अर्थात् ज्ञानावरणीय  
आदि आठ कर्मोना उत्पादक सावद्य व्यापार लख्यवामा आधी लय छे अर्थात् जे पूर्व  
कहेला सतावीस लजोवाणा हिंसादिक्रियाविशेषोने चोताना कर्मभ धनुं कारखु समल छे छे  
ते परिज्ञातकर्मा छे जे ज्ञ-परिज्ञाथी कर्मभ धनुं कारखु समलने प्रत्याख्यान-परि-  
ज्ञाथी सम्भूणुं सावद्य क्रियाओने त्याग करे छे ते निश्चयथी परिज्ञातकर्मा मुनि छे

त्ति वेमि—इति=आ प्रमाणे आत्माना स्वरूपनुं निरूपण, कर्मबन्धना कारखुभूत  
समस्त सावद्य व्यापारोना स्वरूपनुं-प्रदर्शन, अने सावद्य क्रियाणी निर्घृत्तिपूर्वक मुनिघृ

सकाशान्मया साक्षात् भुव तद् ब्रवीमि=कथयामि न तु स्वबुद्धिपरिकल्पितम् । यतः  
स्वबुद्ध्या कवने भुतज्ञानस्याविमयो भवति, किञ्च-उपस्थानां दृष्ट्योप्यपूर्णा भवन्ति  
तस्मात् यथाभगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः । अत्र सद्ब्रह्मगाया-  
“सुम्नानास्त अविण्मो, परिहरणिञ्जो मुहारितासीहि ।

छठमस्यानं दिष्टी, पुष्पा नत्वि च सूत्र्य इग्ना ॥ १ ॥” इति ।

सावयक्रियाया पञ्जीवनिकार्यं प्रति अस्त्रबुधपाठकत्वया सावयक्रिया-  
स्वरूपबोधकस्य प्रथमाध्ययनस्य अस्त्रपरिक्षा व्यपदेशः ॥ सू १२ ॥

प्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १-१ ॥

मुनिः किञ्चिन्मा बो तीर्षकर भगवान् महावीर के समिच्छत मैने साक्षात् सुना है यही  
'ब्रवीमि'=मैं कहता हूँ अपनी बुद्धिसे कल्पित नहीं कहता । अपनी बुद्धिसे-तीर्षकरकी  
बाणी की अपेक्षा न रखते हुए कवन करने से भुतज्ञान का अविनय होता है । दूसरी बात  
यह है कि उपस्थ की दृष्टि भी अपूर्ण होती है, अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ही मैं  
तुम से कहता हूँ । यही यह सद्ब्रह्मगाथा है—

सुस के अमिच्छापी मन्मो को भुतज्ञान के अविनय का त्याग करना चाहिए उपस्थी  
की दृष्टि पूर्ण नहीं होती, ऐसा यही इति शब्द से सूचित किया गया है ॥ १ ॥

सावय क्रिया पञ्जीवनिकार्य के लिए शस्त्र के समान बातक है, अतः सावय  
क्रियाके स्वरूपके बोधक इस प्रथम अध्ययन का शस्त्रपरिक्षा नाम हुआ है ॥ सू. १२ ॥

प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

निम्नरुद्धं ने तीर्षकर भगवान् महावीर पासे मे साक्षात् संनिष्ठुं उ तेव  
'ब्रवीमि'=तुं हतुं छु येतानी बुद्धिभी कल्पित कहेंतो नहीं येतानी बुद्धिभी—  
तीर्षकरनी बाणीनी अपेक्षा नहीं बाणीने कहीजे तो भुतज्ञानने अविनय बाध छे,  
नीछ बात के छे छे—उपस्थनी दृष्टि पक्ष अपूर्ण सोध छे, ते अरबुधी भगवान्  
द्वारा प्रतिपादन कसजेतुं तत्त्व हूँ तमने हतुं छु अदि न्ना सप्रकमाया छे—

“सुम्नाना अमिच्छापी अन्मोजे भुतज्ञानना अविनयने त्याग करवे सोधजे,  
उपस्थानी दृष्टि पूर्य सोध नही, जे प्रभवेतुं इति शब्दधी सूच्यत करवामां आवी छे。” (७)

सावय क्रिया पञ्जीवनिकार्य आटे शस्त्र (कधीआर) समान बातक छे जे अरबुधी  
सावय क्रियाना स्वरूपने सोध करवनाई न्ना प्रथम-अध्ययन छे तेतुं शस्त्रपरिक्षांनि  
पक्षु छे

नामके प्रथम अध्ययनने प्रथम उद्देश

स पूर्य ( १-१ )

अथ प्रथमाध्ययनस्य

द्वितीयोद्देशः ।

प्रथमोद्देशे सामान्यरूपेणात्मनः स्वरूपं निरूपितम्, तस्यैव विशेषरूपेण बोधनाय द्वितीयोद्देशः प्रारभ्यते, तस्येदमादिमुत्रम्—‘अद्वे’ इत्यादि ।

तथा—इह ‘पूर्वभवस्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं न भवति केषाञ्चि’—दिति प्रथमोद्देशे निगदितम्, अथ तत् कथं न भवतीति जिज्ञासायामुच्यते—‘अद्वे’ इत्यादि ।

प्रथम 'अध्ययनका

द्वितीय उद्देश ॥

पहले उद्देश में सामान्यरूपसे आत्मा के स्वरूप का निरूपण किया गया है । अब विशेषरूप से आत्मा का स्वरूप समझाने के उद्देश्य से दूसरा उद्देश आरम्भ किया जाता है, उसका यह आदिसूत्र है—‘अद्वे’ इत्यादि ।

तथा—पहले उद्देशमें बतलाया गया था कि—किन्हीं—किन्हीं जीवों को पूर्व भव का स्मरणरूप विशिष्ट ज्ञान नहीं होता । वह ज्ञान क्यों नहीं होता ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—‘अद्वे’ इत्यादि ।

पहले अध्ययनना - भीजे उद्देश

पहले उद्देशमा सामान्यरूपेणात्मना स्वरूपं निरूपयित्वा करवामा आभ्युद्ये इति विशेषरूपेणात्मना स्वरूपं समभवाना उद्देशे भीजे उद्देशेना आरम्भ करवामा आवे छे, तेनू आ आदिसूत्र छे—‘अद्वे’ इत्यादि

तथा—पहले उद्देशमा बतलावामा आभ्युद्ये छे इ—इहा—इहा इतिने पूर्व-भवना स्मरणरूप विशिष्ट-उत्तम असाधारण ज्ञान यतु नथी ते ज्ञान केम यतु नथी ? अथी अज्ञासा यवाथी छे छे—‘अद्वे’ इत्यादि.

तथा-अपमात्वा परिज्ञातकर्मवत्या सकलज्ञानप्रक्रियानिष्ठतः सन् भूमि  
 र्मेकतीक्ष्णपदिष्टम्, अथ यः पुनरपरिज्ञातकर्मां स खलु कीदृशो भवतीत्याकाङ्क्षा  
 यामार-‘अद्वे’ इत्यादि ।

अद्वे सोऽपरिज्ञापणे दुस्तंबोद्वे अविज्ञानप्र, अस्मिन् सोऽपव्यरिपे तस्य तस्य  
 पुत्रो पास, आतुरा अस्मिन् परिवासेति ॥ सू १ ॥

छाया—

कार्तः लोकः परिदूनः ( पस्त्रीप्यः ) दुःसंबोधः अनिज्ञानकः अस्मिन् लोके  
 मध्यविते तम तम पृषक् पश्य, आतुरा अस्मिन् परिवापयन्ति ॥ सू १ ॥

तथा-यह कहा था कि आत्मा कर्मों का स्वरूप समझ कर, और समस्त  
 समस्त व्यापारी से विरत हो कर मुनि हो जाता है, मगर किसने कर्मों का स्वरूप नहीं  
 समझा है उस आत्मा की कैसी स्थिति होती है ? ऐसी विद्यासा होने पर करते हैं-  
 ‘अद्वे’ इत्यादि ।

मूलार्थ—( कर्मकथ का स्वरूप न समझने वाला ) कार्त लोक परिधीर्ण है-असमर्थ  
 है, जोष पाने में अशक्त है, अज्ञान है, इस लोक में व्यवहित है, पृषक्-पृषक् जीवों को  
 देखो । के आतुर-अज्ञानी-होकर जीवोंको परिवाप पहुँचाते हैं ॥ १ ॥

तथा-जो प्रभुको कही बुझया लीजो डे आत्मा कर्मोंका स्वरूपने समझने जाने  
 समस्त सावध व्यापारीकी विरत (इश) बर्धने मुनि बर्ध अथ छे पशु जेजो कर्मोंका  
 स्वरूपने समझना नहीं ते आत्मान्नी स्थिति डेनी बाध छे ? जेनी लज्ञासा मयाधी  
 कडे छे:-‘अद्वे’ इत्यादि ।

मूलार्थ—(कर्मोंका स्वरूपने नहीं समझयावाला) कार्तलोक परिधीर्ण छे  
 असमर्थ छे जोष पाववार्मा अशक्त छे अज्ञान छे, आ लोकां दुःखी छे अथा-अथा  
 लोकोने लुजो ते आतुर-अज्ञानी बर्धने लोकोने परिवाप पहुँचाडे छे (१)

## टीका-

लोकः=पृथिव्यादिपञ्चजीवनिकायः खलु ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्ध-  
हेतुभूतसावद्यक्रियाविशेषस्वरूपानवबोधेन आर्तः=विषयसुखतृष्णाव्याकुलो भवति ।  
अत एव परिद्वन्द्वः=शारीरमानसाविदुःखानलसंतप्तः । यद्वा-परिजीर्णः=क्षायोपशमिक-  
भावाभावेन मोक्षमार्गप्रवृत्तावक्षमः, अत एव-दुःसबोधः=ब्रह्मदत्तचरणकरण-  
शिक्षां ग्रहीतुमसमर्थः, अत एव अविज्ञानकः=सम्यग्ज्ञानरहितो भवति, अत एव  
पूर्वभवस्मृतिरूपमपि विशिष्टं ज्ञानं न भवतीति भावः । 'पश्य' इति पदेन शिष्येति  
संबोधनपदस्याध्याहारः—हे शिष्य ! प्रव्यथिते=पूर्वोपार्जितकर्मोदयेन क्षुधा-

टीकार्थ—लोक अर्थात् पृथिवीकाय आदि छह प्रकार के जीव, ज्ञाना-  
वरण आदि आठ प्रकार के कर्मों के बन्धके कारणभूत सावद्य व्यापारों का स्वरूप न  
समझकर आर्त होते हैं—विषयसुख की तृष्णा से व्याकुल होते हैं । अतएव वे शारीरिक और  
मानसिक दुःखों की आग से सतत हैं । अथवा क्षायोपशमिक भावों के अभाव के कारण  
मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं कर सकते । इसी कारण वे ब्रह्मदत्त की तरह चरण और  
कारण की शिक्षा लेने में भी असमर्थ हैं । ऐसे जीव अविज्ञानक अर्थात् सम्यग्ज्ञान  
से रहित होते हैं, इसी कारण उन्हें पूर्व भव की स्मृतिरूप विशिष्ट ( जातिस्मरण ) ज्ञान  
भी नहीं होता ।

'पश्य' ( देखो ) इस पद के द्वारा शिष्य के संबोधन का अध्याहार किया  
गया है । हे शिष्य ! पूर्वोपार्जित कर्मों के उदय से मूख, व्यास, त्रास, इष्टवियोग,

टीकार्थ—लोक अर्थात् पृथ्वीकाय आदि छ प्रकारना एवसमूह ज्ञानावरण  
आदि आठ प्रकारना कर्मोना बधना कारणे सावद्य व्यापारोना स्वइपने नहि समझे  
आर्त थाय छे विषय सुभनी तृष्णाथी व्याकुल थाय छे, ते कारणथी ते शारीरि  
अने मानसिक दुःखोनी आगथी सतत-भूतपेला छे अथवा क्षायोपशमिक लावोना  
अभावना कारणे मोक्षमार्गमा प्रवृत्ति करी शकता नथी छे कारणथी ते ब्रह्मदत्तनी  
पेठे चरण अने कारणनी शिक्षा लेवामा पण असमर्थ छे, एवा एव अविज्ञान  
अर्थात् सम्यग्ज्ञानथी रहित होय छे आ कारणथी तेने पूर्वभवनी स्मृतिरूप विशिष्ट  
( जातिस्मरण ) ज्ञान पण थतु नथी

'पश्य' ( देखो-जुवो ) आ पदथी 'शिष्यना स'  
आन्धुं छे, हे शिष्य ! पूर्वोपार्जित कर्मोना उदयथी

अध्याहार  
त्रास, "

पिपासा-त्रास-प्रियविभोगा-ऽऽधि-व्याधि-परिपीडित, अस्मिन् लोके तत्र-तत्र=सर्वे प्राणिषु पृथक्=प्रत्येकं पश्य । आसुराः=विषयसुखतृष्णाव्याकुला भ्रान्तिनः अस्मिन् लोके परितापयन्ति=पृथिव्यादिजीवान् परिपीडयन्ति, इति पश्येत्पर्यः ।

यद्वा-लोकः-पृथ्वीवनिकायः, आर्तः=परिपीडितः अस्तीति शेष । कुतः कारणाद् आर्तः ? इत्यत आह-'परिजुग्णे' इति । यतः परिजीर्णं=मोक्ष मार्गमनुत्पातयतः । क्व परिजीर्णः ? इत्यत आह-'दुस्संबोधे' इति, यतो दुःसंबोधे ब्रह्मदत्तवचनमकरजक्षिणां प्रहीतुमसमर्थः । दुःसंबोधः कुतोऽस्ती ?-त्यत आह-यतः=अविज्ञानक-विज्ञानरहितः, पूर्वमवार्णितपोस्तरहिंसादिदुरितकर्म

मानसिक पीडा, शारीरिक पीडा आदि से पीडित इस लोक में जहाँ पृथक्-पृथक् प्राणियों को देखो । वे विषयसुख के लिए व्याकुल एवं शानहीन हो कर सत्कार में सत्ताप मोमा रहे हैं । वे पृथिवीकाय आदि जीवों को पीडा पहुंचाते हैं ( यह देखो ) ।

अथवा-पृथ्वीवनिकायरूप यह लोक आर्त है-पीडा मुग्त रहा है । यह किस कारण से आर्त है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि-यह परिजीर्ण अर्थात् मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने में असमर्थ है । यह परिजीर्ण क्यों है ? इस का समाधान यह है कि-यह दुःसंबोध है अर्थात् ब्रह्मदत्त की भक्ति चरण-चरण की शिक्षा ग्रहण करने में अशक्त है । यह दुःसंबोध क्यों है ? इस का कारण यह है कि-यह शानहीन है अर्थात् पूर्वमव में उपासित किय हुए पारस्तर हिंसा आदि पापकर्मोंके बरा हो कर एवं अशक्त

मानसिक पीडा शारीरिक पीडा, आदिभी पीडित आ लोकमें ज्यों-त्यों व्याकुल-व्याकुल प्राणीजोने लुग्ये, ते विषयसुख भाटे व्याकुल ज्येव शानहीन बर्तने सत्कारमा सत्ताप सोअवी रथा छे ते पृथिवीकाय आदि लोकेन पीडा पहुँचाटे छे ते लुग्ये ।

अथवा पृथ्वीवनिकायरूप आ लोक आर्त छे-पीडा लोगवी रथा छे ते शुं कारणवी आर्त छे ? आ प्रश्नो उत्तर जे छे के-ते परिजुग्ण अर्थात् मोक्ष मार्गमा प्रवृत्ति करवने असमर्थ छे ते परिजुग्ण था भाटे छे ? तेनु समाधान जे छे के-ते दुःसंबोध छे अर्थात् ब्रह्मदत्तनी अभावे अरण्य-करणवी शिक्षा प्रदण करवाभा असक्त छे ते दुःसंबोध था भाटे छे ? तेनु कारण जे छे के-ते शानहीन छे अर्थात् पूर्व मवमा उपासित करेवा पारस्तर हिंसा आदि पापकर्मोने बरा बर्तने जेभ-जे अभावे

વશતઃ પ્રગાઢમિથ્યાત્વમોહનીયોદયાત્ પ્રગાઢમોહાક્રાન્ત ઇત્યર્થઃ । एवं स्वकर्मवशतः परिपीडितमपि नितान्तदयनीयमपि रागद्वेषमोहान्धाः परितापयन्तीत्याह-अस्मिन् लोके' इत्यादि । अस्य व्याख्या पूर्ववत् बोध्या ।

‘પશ્ય’ ઇતિ પદેન ભાગવતા માં સંવોધ્ય યથોપદિષ્ટં તથા કથયામીતિ જન્મ્સ્વામિનં શ્રીસુધર્મા સ્વામી પ્રતિવોધયતિ ।

‘પ્રવ્યથિતે’ ઇતિ વિશેષણપદં ચ સ્વસ્વકર્મણૈવ નાનાવિધવેદના-સમન્વિતાનામપિ પૃથિવ્યાદિષદ્જીવનિકાયાનાં પરિપીડને વિપયસુખતૃષ્ણાક્રાન્તાના-

ગાઢે મિથ્યાત્વમોહનીય કે ઉદય સે મોહયુક્ત છે । ઇસ પ્રકાર અપને કર્મો સે પીડિત ઓર અત્યન્ત દયનીય પૃથ્વીકાય આદિ જીવોં કો રાગ-દ્વેષ ઓર મોહ સે અન્વે પુરુષ પીડા પહુચાતે હૈં । ‘અસ્મિન્ લોકે’-(ઇસ લોક મેં) ઇત્યાદિ કી વ્યાખ્યા પહેલે કે સમાન સમજ્ઞ લેના યાહિય

‘પશ્ય’ (દેલો) ઇસ પદ સે શ્રીસુધર્મા સ્વામી જન્મ્સ્વામી સે કહતે હૈ કિ-મુષ્ણે સવોધન કરકે ભગવાન્ ને જૈસા ઉપદેશ દિયા હૈ વૈસા હી મૈં કહતા હૈં ।

‘પ્રવ્યથિતે’ પદ સે યહ સૂચિત ક્રિયા ગયા હૈ કિ-વેચારે ષટ્કાય કે જીવ અપને-અપને કર્મોં કે કારણ નાના પ્રકાર કી વેદનાઈં ભોગ હી રહે હૈં, ઇસ પર મી વિષય-સુખ કે લોહપ લોગ ઉન્હેં ઓર સતાતે હૈં । ઉન્હેં દુ સ્ત્રી દેલ કર મી ઇન્કે

અત્યન્ત ગાઢા મિથ્યાત્વમોહનીયના ઉદયથી મોહયુક્ત છે એ પ્રકારે પોતાના કર્મોથી પીડિત અને અત્યન્ત દયાપાત્ર પૃથ્વીકાય આદિ જીવોને રાગ-દ્વેષ અને મોહથી અધ થયેલ પુરુષ પીડા પહોચાડે છે ‘અસ્મિન્ લોકે’ (આ લોકમાં) ઇત્યાદિની વ્યાખ્યા પ્રથમ પ્રમાણે સમજી લેવી જોઈએ

‘પશ્ય’ (જુઓ) આ પદથી શ્રી સુધર્મા સ્વામી જન્મ્સ્વામીને કહે છે કે- અને સવોધન કરીને ભગવાને જેવો ઉપદેશ આપ્યો છે તેવોજ હું કહું છું

‘પ્રવ્યથિતે’ પદથી એ સૂચિત કરવામાં આવે છે કે-બિચારા ષટ્કાયના જીવ પોત-પોતાના કર્મોના કારણે નાના પ્રકારની વેદનાઓ ભોગવીજ રહ્યા છે તે ઉપરાંત પણ વિષય-સુખના લોહપ માણસો તેને વધારે સતાવે છે. તેને હું ખી જોઈને પણ



मातुरामां हृदयं मनागपि न प्रवृत्तिः प्रस्युत भृगान् बुभ्रिस्रिष्याद्य इव ते पृथिव्यादि प्राणिगणं प्रभिनन्ति, इति ससृचयति ॥ सू १ ॥

एष पृथ्वीजनिकायरूपे लोके माचम्यात् पृथिवीकायस्यापि कारमाह- ' सति पाप्मा ' इत्यादि ।

सूत्रम्—

सति पाप्मा पुढो सिया सन्प्रमाणा पुढो पाप्त । अमगारा-सि एगे पश्यमाणा जमिणं विरुक्त्वेषैर्हि सत्येर्हि पुढविकम्मसमारमेणं पुढविसस्यं समारममाणा अन्वे अवेगरूपे पाप्मे विहिंसत् ॥ सू २ ॥

छाया—

सन्ति प्राणाः पृथक् भिताः सन्प्रमानाः पृथक् पश्य । अमगाराः स्म इति एके पश्यमानाः, यदिर्दं विरुक्त्वेषैः सन्तैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीकर्म समारम्भमाया अन्यान् अनेकरूपान् प्रत्यान् विहिंसन्ति ॥ २ ॥

मम में दवा नहीं जाती, प्रस्युत नूला बाप जैसे सुगों को मारता है उसी प्रकार विष-लोचम छोटा उन जीवों को हिंसा करते हैं ॥ सू. १ ॥

पृथ्वीजनिकायरूप लोके में पृथ्वीकाय पश्य है, अतः पृथ्वीकाय का अपि कार करते हैं- ' सति पाप्मा ' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—पृथ्वी में अन्तः-अन्तः प्राणी हैं । पृथ्वीकाय के भारम की निवृत्ति करने वाले ( सुनियों ) को पृथक् समस्तो । हम जनगार हैं ' इस प्रकार करनेवाले प्रत्यक्षिणी माना प्रकार के पृथ्वीजातों से पृथ्वीकर्म का समारम्भ करके पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हुए अनेक प्रकार के अन्य प्राणियों को भी हिंसा करते हैं ॥ सू २ ॥

तेना मनभां दवा आवती नधी, परस्युत नून्यो पाव वेम भुजोते भारे उ, ते प्रभावे विष-लाक्ष्य दोह ते लोवोनी हिंसा करे उ (१)

पृथ्वीजनिकायरूप लोके में पृथ्वीकाय पश्य है, अतः पृथ्वीकाय का अपि कार करते हैं- ' सति पाप्मा ' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—पृथ्वी में अन्तः-अन्तः प्राणी हैं । पृथ्वीकाय का भारम की निवृत्ति करवायाणा ( सुनियों ) ने नूला अन्ते परस्युत अने अन्तः-सामु सुनि लीजे, ' अ प्रभावे दोहवायाण प्रभावेणी (विष भारण करनारा) ना-अन्तः-सामु सुनोकी पृथ्वी कर्मना समारम्भ करीने पृथ्वीकाय का अपि कार करता था अनेक प्रकारका अन्य प्राणियों की पश्य हिंसा करे उ (२)

## ટીકા—

પ્રાણાઃ=પ્રાણાઃ સન્તિ યેષામિત્યર્થઃચત્યયઃ, પ્રાણિન ઇત્યર્થઃ । પૃથક્=ભિન્નભિન્નતયા શ્રિતાઃ=સ્વસ્વશરીરાધિષ્ઠિતાઃ સન્તિ । યદ્વા-શ્રિતાઃ-પૃથિવ્યાશ્રિતાઃ=અઙ્ગુલાસંખ્યાતભાગપ્રમાણસ્વશરીરાવગાહિનઃ પૃથિવ્યામવસ્થિતાઃ પૃથિવીકાયિકાઃ, પ્રાણાઃ=જીવાઃ, પૃથક્=પૃથક્ભાવેન સન્તિ, ઇતિ વક્ત્ય । ઇદમુક્તં ભવતિ-પૃથિવ્યા એકદેવતારૂપત્વં મન્યમાના ભ્રાન્તાઃ, વસ્તુવસ્તુ પ્રત્યેકશરીરરૂપાણામસંખ્યાત-પૃથિવીકાયિકજીવાનાં સમુદાયઃ પૃથિવી । एवं च पृथिवी सचित्ताऽनेकजीवाधि-ष्ठीता चेति ।

અથ દ્વારપ્રદર્શનેન વસ્તુસ્વરૂપં સમ્યગ્ નિર્ણયતે તસ્માદ્ દ્વારણિ

ટીકાર્થ—પ્રાણ કા અર્થ હૈ પ્રાણી । પ્રાણી પૃથક્-પૃથક્ આશ્રિત હૈ અર્થાત્ અલગ-અલગ પ્રાણી અપને-અપને શરીર મેં રહતે હૈ । અથવા 'શ્રિત' કા અર્થ હૈ-પૃથ્વી મેં આશ્રિત । અગુલ કે અસહ્યાતવે ભાગ અવગાહના વાલે જીવ પૃથ્વી-આશ્રિત હૈ, એસે પૃથ્વીકાય કે જીવ પૃથક્-પૃથક્ હૈ । યહ દેસો । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ પૃથ્વી કો એક હી દેવતા માનને વાલે લોગ ભ્રમ મેં હૈ । વાસ્તવ મેં પૃથ્વી પ્રત્યેક શરીર વાલે અસહ્યાત પૃથ્વીકાયિક જીવો કા પિંડ હૈ । ઇસી પ્રકાર પૃથ્વી સચિત્ત હૈ ઓર અનેક જીવો સે અધિષ્ઠિત હૈ ।

દ્વારોં કે પ્રદર્શન સે વસ્તુ કા સ્વરૂપ સ્પષ્ટ હો જાતા હૈ, અત યહાં દ્વાર

ટીકાર્થ—પ્રાણનો અર્થ પ્રાણી છે પ્રાણી પૃથક્-પૃથક્ આશ્રિત છે, અર્થાત્ અલગ-અલગ પ્રાણી પોત-પોતાના શરીરમાં રહે છે અથવા 'શ્રિત'નો અર્થ છે 'પૃથ્વીમાં આશ્રિત' આગલના અસખ્યાતમાં ભાગની અવગાહનાવાળા એ એવ પૃથ્વી-આશ્રિત છે એવા પૃથ્વીકાયના એવ જૂદા-જૂદા છે તે જુઓ

તાત્પર્ય એ છે કે —પૃથ્વીને એક જ દેવતા માનવાવાળા લોક ભ્રમમાં છે વાસ્તવિક રીતે તો પૃથ્વી પ્રત્યેક શરીરવાળા અસખ્યાત પૃથ્વીકાયિક જીવોનો પિંડ છે આ પ્રમાણે પૃથ્વી સચિત્ત છે, અને અનેક જીવોથી અધિષ્ઠિત છે

દ્વારોના પ્રદર્શનથી વસ્તુનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ થઈ જાય છે, એટલે અહિં દ્વાર ખતા

प्रदर्शयते—(१) लक्षण, (२) प्ररूपणा, (३) परिमाणं, (४) वष, (५) शक्य, (६) उपमोग, (७) वेदना, (८) निवृत्तिरूप्यष्टौ । उक्तम्—

“सम्परण १ प्ररूपणा २ स्वरु, परिमाण ३ वह ४ तद्देन सत्यं ५ व । उपमोग ६ वेयणावि ७ य, निवृत्ती ८ अद्द वाराई ॥ १ ॥”

(१) स्मरणद्वारम्—

ननु पृथिवी सचेतनाऽस्तीत्यत्र किं प्रमाणम् ? उच्यते—अनुमानमेव तावत्प्रथमं गृह्यते । पृथिवी सचेतना तद्विच्छिन्नशरीरोपलब्धे, गवाणादिवत् ।

प्रमाणे जाते हैं—(१) लक्षण (२) प्ररूपणां (३) परिमाण (४) वष (५) शक्य, (६) उपमोग (७) वेदना और (८) निवृत्ति । ये आठ द्वार हैं । कदा मी है—

“सम्परण १ प्ररूपणा २ स्वरु परिमाणं ३ वह ४ तद्देन सत्यं ५ । उपमोग ६ वेयणावि ७ य, निवृत्ती ८ अद्द वाराई ॥ १ ॥” इति ।

लक्षण, प्ररूपणा परिमाण, वष, शक्य उपमोग वेदना और निवृत्ति, ये आठ द्वार करे गये है । ॥ १ ॥

सङ्गा—पृथ्वी सजीव है इस विषयमें क्या प्रमाण है ?

समाधान—पहले अनुमान प्रमाण ही मीत्रिये—पृथ्वी सचेतन है, क्या कि उसमें चेतना से विच्छिन्न शरीर की उपलब्धि होती है गाय और भ्रू के समान ।

क्यामां जाते थे हैं—(१) लक्षण, (२) प्ररूपणा (३) परिमाण, (४) वष (५) शक्य, (६) उपमोग (७) वेदना जाने (८) निवृत्ति, आ आठ द्वार थे अद्द पलु थे हैं—

“सम्परण १ प्ररूपणा २ स्वरु परिमाण ३ वह ४ तद्देन सत्यं ५ । उपमोग ६ वेयणावि ७ य निवृत्ती ८ अद्द वाराई ॥ १ ॥” इति ।

“लक्षण, प्ररूपणा परिमाण, वष शक्य, उपमोग वेदना जाने निवृत्ति आ आठ द्वार अद्द थे. (१)

(१) लक्षणद्वारम्—

सङ्गा—पृथ्वी सजीव है जो विषयमां मु प्रमाण है ?

समाधान—प्रथम अनुमान प्रमाणने लक्ष्ये—पृथ्वी सचेतन है कारण है वेमां चेतनासे विच्छिन्न शरीरकी उपलब्धि थाक है गाय जाने कर्करी प्रमाण

## ટીકા—

પ્રાણાઃ=પ્રાણાઃ સન્તિ યેષામિત્યર્થઃચત્યયઃ, પ્રાણિનિ ઇત્યર્થઃ । પૃથક્=મિન્નમિન્નતયા ત્રિતાઃ=સ્વસ્વશરીરાધિષ્ઠિતાઃ સન્તિ । યદ્વા-ત્રિતાઃ-પૃથિવ્યાત્રિતાઃ=અઙ્ગુલાસંખ્યાતમાગપ્રમાણસ્વશરીરાવગાહિનઃ પૃથિવ્યામવસ્થિતાઃ પૃથિવીકાયિકાઃ, પ્રાણાઃ=જીવાઃ, પૃથક્=પૃથક્માવેન સન્તિ, ઇતિ વચ્ચ । ઇદમુક્તં ભવતિ-પૃથિવ્યા એકદેવતારૂપત્વં મન્યમાના મ્રાન્તાઃ, વસ્તુતસ્તુ પ્રત્યેકશરીરરૂપાણામસંખ્યાત-પૃથિવીકાયિકજીવાનાં સમુદાયઃ પૃથિવી । એવં ચ પૃથિવી સચિત્તાઽનેકજીવાધિષ્ઠિતા ચેતિ ।

અથ દ્વારપ્રદર્શનેન વસ્તુસ્વરૂપં સમ્યગ્ નિર્ણયતે તસ્માદ્ દ્વારણિ

ટીકાર્થ—પ્રાણ કા અર્થ હૈ પ્રાણી । પ્રાણી પૃથક્-પૃથક્ આશ્રિત હૈ અર્થાત્ અલગ-અલગ પ્રાણી અપને-અપને શરીર મેં રહતે હૈ । અથવા 'શ્રિત' કા અર્થ હૈ-પૃથ્વી મેં આશ્રિત । અગુલ કે અસંખ્યાતવે માગ અવગાહના વાલે જીવ પૃથ્વી-આશ્રિત હૈ, એસે પૃથ્વીકાય કે જીવ પૃથક્-પૃથક્ હૈ । યહ દેખો । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ પૃથ્વી કો એક હી દેવતા માનને વાલે લોગ ભ્રમ મેં હૈ । વાસ્તવ મેં પૃથ્વી પ્રત્યેક શરીર વાલે અસંખ્યાત પૃથ્વીકાયિક જીવો કા પિંડ હૈ । ઇસી પ્રકાર પૃથ્વી સચિત્ત હૈ ઓર અનેક જીવો સે અધિષ્ઠિત હૈ ।

દ્વારોં કે પ્રદર્શન સે વસ્તુ કા સ્વરૂપ સ્પષ્ટ હો જાતા હૈ, અત યહાં દ્વાર

ટીકાર્થ—પ્રાણુનો અર્થ પ્રાણી છે પ્રાણી પૃથક્-પૃથક્ આશ્રિત છે, અર્થાત્ અલગ-અલગ પ્રાણી પોત-પોતાના શરીરમાં રહે છે અથવા 'શ્રિત'નો અર્થ છે 'પૃથ્વીમાં આશ્રિત' આગલના અસંખ્યાતમા ભાગની અવગાહનાવાળા એ એવ પૃથ્વી-આશ્રિત છે એવા પૃથ્વીકાયના એવ જુદા-જુદા છે તે જુઓ

તાત્પર્ય એ છે કે —પૃથ્વીને એકજ દેવતા માનવાવાળા લોક ભ્રમમાં છે વાસ્તવિક રીતે તો પૃથ્વી પ્રત્યેક શરીરવાળા અસંખ્યાત પૃથ્વીકાયિક જીવોનો પિંડ છે આ પ્રમાણે પૃથ્વી સચિત્ત છે, અને અનેક જીવોથી અધિષ્ઠિત છે

દ્વારોના પ્રદર્શનથી વસ્તુનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ થઈ જાય છે, એટલે અહિં દ્વારણા

कापोतवैजसलेश्याभ्युत्थयं, मूत्रमपृथिवीकायस्याचलेश्याप्रयम् । तथा—आहारादि  
सञ्ज्ञा अपि । तथा—वेदनारूपायमारभान्तिकसमुद्रावाऽसत्किञ्चन, नपुंसकवेदः । पर्याप्ति-  
भ्युत्थम् । तथा पृथिवीकायजीवा निरन्तरं सततमुद्भूयन्ति निम्नवन्ति च ।  
पञ्चपयोगादिभासोऽस्तीति ज्ञान्तजीवसङ्गण समन्वितत्वान्मनुष्यवत्पृथिवीसचिदाऽस्तीति  
सिद्धम् ।

ननु—उपयोगादीनि क्षीयसङ्गणानि पृथिवीकायजीवेषु कथिभ्योपलभ्यन्ते, तथा  
सचि—अस्तित्वेनैव उपयोगादिजीवसङ्गणनं कथं पृथिव्याः सचिचत्वं साध्यते ? ।

उच्यते—पृथिवीकायजीवेषुमासन्तुमुष्यक्तान्युपयोगसङ्गणानि, अव्यक्तानि

सूत्रं पृथ्वीकाम में जादि की तीन केस्यार्थ हैं । आहार जादि संज्ञार्थ भी उसमें है ।

पृथ्वी में वेदना कथाय और मारणान्तिक समुद्रात हैं असंज्ञीय है, नपुंसक वेद है  
और चार पर्याप्तियाँ भी हैं पृथ्वीकाम के जीव निरन्तर भासोऽस्तीति कहे रहते हैं । इस प्रकार  
उपयोग से समाकर भासोऽस्तीति पर्यन्त जीव के सङ्गणों से मुक्त होने के कारण पृथ्वी मनुष्य  
के समान सचिच है, यह बात सिद्ध हुई ।

सङ्गत—जीव के सङ्गण उपयोग वगैरह पृथ्वीकाम के जीवों में कहीं भी उपलब्ध नहीं  
होते । ऐसी स्थिति में वहाँ उपयोग जादि जीव के सङ्गणों का होना असिद्ध है । असिद्ध  
कथन से पृथ्वी की सचिचता किस प्रकार सिद्ध हो सकती है ?

समाधान—पृथ्वीकाम के जीवों में कहींभीति व्यक्त उपयोग जादि सङ्गण मके

सूत्रमपृथ्वीकामां जादिनी तस्य वेद्याज्जे छे आहार जादि संज्ञायां पञ्च तेषां छे

पृथ्वीमां वेदना कथाय अने मारणान्तिकसमुद्रात छे अथ गीपञ्च छे नपुंसक  
वेद छे अने चार पर्याप्तियां पञ्च छे पृथ्वीकामना एव निरन्तर भासोऽस्तीति वेदा  
सके छे आ प्रमाद्ये उपयोगजीव छेने भासोऽस्तीति पर्यन्त एवना लक्ष्योऽस्तीति मुक्त  
केवाही पृथ्वी मनुष्य प्रमाद्ये सचिच छे ते बात सिद्ध अर्थ.

शंका—एतन्मु लक्षण उपयोग वगैरह पृथिवीकामना एवमां केषु स्थाने उप-  
लब्ध कता नहीं. केवी स्थितिमां ज्यां उपयोग जादि एवना लक्ष्योऽस्तीति वेदा  
नहीं नहीं के असिद्ध कथनही पृथ्वीनी सचिचता केवी बात सिद्ध अर्थ अर्थ छे ?

समाधान—पृथिवीकामना एवमां सारी रीते (१५७) अक्त उपयोग जादि

किञ्च—जीवस्य यानि लक्षणानि तानि पृथिवीकायस्य सन्ति, केवलमत्रस्त्यानर्दिना-  
मदर्शनावरणकर्मोदयाद्दुपयोगशक्तिर्ज्ञानदर्शनरूपा नास्ति व्यक्ता इत्यव्यक्तरूपेणोपयोगो  
वर्त्तते । तथौदारिक-तन्मिश्र-कर्मणशरीरात्मरुः काययोगो वृद्धयष्टिवत् तस्यालम्बनाय  
वर्त्तते । तथा मानसिकचिन्ताविशेषवत्सूक्ष्मा आत्मपरिणामविशेषरूपा अव्यवसाया-  
स्तत्र सन्ति । तथा साकारोपयोगान्तर्गतमतिश्रुतरूपमज्ञानद्वयं च तत्रास्ति ।  
तथा स्पर्शनेन्द्रियमात्रस्य सद्भावादचक्षुर्दर्शनं च । तथा सेवार्त्तसहननं, चन्द्रमसूर-  
संस्थानं वास्ति । तथा—मिथ्यात्वादिसद्भावादष्टविधकर्मबन्धोऽपि । कृष्णनील-

दूसरी बात यह है कि—जीव के जो लक्षण हैं वे सब पृथ्वी में पाये जाते हैं । हां,  
पृथ्वीकाय में स्त्यानर्दिनामक दर्शनावरण कर्म के उदय से ज्ञान—दर्शनरूप उपयोगशक्ति  
प्रकटरूप में नहीं है । पृथ्वी में अव्यक्तरूप से उपयोग रहता है ।

तथा औदारिक औदारिकमिश्र और कर्मण शरीररूप काययोग वृद्धपुरुष की लकड़ीके  
समान उस के आलम्बन के लिए विद्यमान है । पृथ्वी में आत्मा के परिणाम मानसिकचिन्ता-  
रूप अव्यवसाय भी मौजूद है ।

पृथ्वी में साकार—उपयोग के अन्तर्गत मति और श्रुत—अज्ञान भी पाये  
जाते हैं । अकेली स्पर्शनेन्द्रिय होने से अचक्षुदर्शन भी है । और सेवार्त्त सहनन,  
एव चन्द्रमसूर संस्थान भी है । मिथ्यात्व आदि कारण विद्यमान होने से आठ प्रकारका  
कर्मबन्ध होता है । कृष्ण, नील, कापोत और तैजस ये चार देख्याएँ भी पृथ्वीकाय में हैं ।

धील वात आ छे के—लवना ने लक्षण छे ते सर्व पृथ्वीमा लेवाभा आवे छे.  
डा पृथ्वीकायमा स्त्यानर्दिनामक दर्शनावरणकर्मना उदयथी ज्ञान—दर्शनरूप उप-  
योगशक्ति प्रकट रूपमा नथी पृथ्वीमा अव्यक्त रूपमा उपयोग रहे छे

तथा—औदारिक औदारिकमिश्र अने कर्मण शरीररूप काययोग वृद्धपुरुषकी  
लाकड़ी समान तेना आलम्बन भाटे विद्यमान छे. पृथ्वीमा आत्माना परिणाम,  
मानसिकचिन्तारूप अव्यवसाय पण मौजूद छे

पृथ्वीमा साकार उपयोगना अन्तर्गत मति अने श्रुत अज्ञान पण लेवाभा  
आवे छे अकेली स्पर्शनेन्द्रिय होवाथी अचक्षुदर्शन पण छे अने सेवार्त्त सहनन,  
अे प्रमाणे चन्द्र—मसूर संस्थान पण छे

मिथ्यात्व आदि कारण विद्यमान होवाथी आठ प्रकारना कर्मबन्ध पण थाय छे  
कृष्ण, नील, कापोत, अने तैजस आ चार देख्यायो पण पृथ्वीकायमा छे.

एवं च मनुष्यवद् व्रजस्थानमरणस्यस्य चेतनात्मकस्य पृथिवीकायेऽपि सत्त्वात् ।

यथा—पृथिवी सजीवा, दैनिकधर्मण्योपचयसंवर्धनात्, चरमवत्त्वत्, तद्यथा—चरमवत्त्वत् धृष्यते पुष्यति च, तद्वत् पृथिव्यपि प्रत्यहं धृष्यते, उपधीयते च; तस्मात्तस्याः समीपत्वम् ।

अथवा—विद्रुमपापाणिरूपा पृथिवी सचेतना, काठिन्ये सत्यपि हृदयादि दर्शनात्, शरीरस्थिताभ्यादिवत् । तद्यथा—शरीरस्थितमस्यादिक कमठपृष्ठकठिन सदापि चित्तवदनुभूयमानमुपचयं च गच्छत् संदृश्यते । एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः

इस प्रकार मनुष्य के समान पाप का मरना भी चेतना का एक स्वरूप है, और वह पृथ्वी कावर्गे विद्यमान है ।

अथवा—पृथ्वी सजीव है, क्योंकि उस में प्रतिदिन चिसना और उपचय होना देखा जाता है, पैर के तल की तरह । तात्पर्य यह है कि—जैसे पैर का तल्लग घिसता है और फिर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पृथिवी भी प्रतिदिन घिसती है और मर जाती है । अतः पृथिवी भी सजीव है ।

अथवा—मृगा, पापाण आदि रूप पृथ्वी सजीव है, क्योंकि उसमें कठिनता होने पर भी बृद्धि आदि देसी जाती है, जैसे शरीर को हड्डी आदि । तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर को हड्डी आदि कस्तुरी की पीठ की माँति फूटते होने पर भी सचित मांसम होती है और उपचय को प्राप्त होती हुई दिखाई देती है, इसी प्रकार मृगा—शिल्प

ते प्रमाद्ये मनुष्यत्वं समानं वास्तुं कश्चिं चतुं ते पक्ष्णे चेतनानुं तद्वत्त्वं च जने ते पृथ्वीकायर्मा विद्यमानं च

अथवा—पृथिवी सत्य है, शरद्व के तेम प्रतिदिन बजातुं जने वधतुं ते जेवाभां आवे च पञ्चना तणीजानी प्रमाद्ये तात्पर्यं जे च के-जेम पञ्चना तणी जने वाज वसत्य च जने हरी पाज पुष्ट वधं जय च ते प्रमाद्ये पृथिवी पक्ष् प्रतिदिन वसत्य च जने हरी पाणी कश्चिं जय च तेभी पृथिवी पक्ष् सत्य च

अथवा—मुंग (परवाण) पापाण आदि रूप पृथ्वी सत्य है किमके-तेम कठिनता होवा उत्तमं पक्ष् वृद्धि वजे जेवाभां आवे च जेवी शीते शरीरत्वा दाढकां आदि तात्पर्यं जे च के-जेवी शीते शरीरत्वा दाढकां आदि कठिनता पीठ जेवा कठोर होवा उत्तमं पक्ष् सचित मांसम चडे च, जने वृद्धिने प्राप्त वत्ता होवा तेम देवाय च, ते

તુ તત્ર સન્ત્યેવ, યથા—કસ્યચિન્મનુષ્યસ્ય અત્યુત્કટમદિરાતિપાનજનિત-  
પિત્તોદયમૂર્છિતસ્ય ચેતનાયા અવ્યક્તત્વેઽપિ ન તસ્યાચિત્તરૂપતા ત્રિજ્ઞાયતે, એવં  
પૃથિવીકાયજીવેષ્વવ્યક્તચેતના સંભવતિ ।

ન ચાવ્યક્તચેતનાઽભિવ્યજ્ઞકમુચ્છવાસાદિકં મદ્યમૂર્છિતમનુષ્યસ્ય સચિત્ત-  
ત્વમાવેદયતિ, ઇહ તુ ન કિચ્ચિચ્ચેતનાલક્ષણં લક્ષ્યત ઇતિ વાચ્યમ્ ।

યથા મનુષ્યશરીરે ક્ષતસ્થાન માંસાદિરિક્તમપિ પશ્ચાત્ક્ષતાદિનિવૃત્તૌ સ્વય  
ન્નિયતે, તથૈવ સ્વનિતં સ્વનિભૂમ્યાદિક સજાતીયાવયવૈર્નિયમાણ દૃશ્યતે ।

હી ન હો, મગર અવ્યક્તરૂપ મેં તો વિદ્યમાન હૈ હી । જૈસે કોઈ મનુષ્ય સ્વૂં નસૈલી મદિરાકા  
ઢાંટકર પાન કર લે ઓર પિત્ત કે પ્રકોપ સે મૂર્છિત હો જાય તો ઉસકો મી ચેતના અવ્યક્ત  
હો જાતી હૈ, ફિર મી ઉસે અચિત્ત (અચેતન) નહીં કહા જા સકતા । ઇસી પ્રકાર પૃથ્વીકાય  
કે જીવો મેં અવ્યક્ત ચેતના હૈ ।

શક્ષા—અવ્યક્ત ચેતના કે વોધક ઉચ્છ્વાસ વગેરહ મદ્યમૂર્છિત મનુષ્ય કી સચિત્તતા  
કો પ્રકટ કરતે હૈ, મગર યહાં ( પૃથ્વીમેં ) તો ચેતના કા કોઈ મી લક્ષણ નહીં દિસાઈ દેતા ।  
એસી સ્થિતિ મેં પૃથ્વી કી સચેતનતા કિસ પ્રકાર માની જાય ?

સમાધાન—જૈસે—મનુષ્ય કે શરીર મેં ઘાવ હો જાતા હૈ તો ઉસ સ્થાન  
મેં માસ આદિ નહીં રહતા । પશ્ચાત્ ઘાવ મિટ જાને પર વહ મર જાતા હૈ । ઇસી પ્રકાર  
સોદી હુઈ સ્વાન આદિ કી ભૂમિ અપને સજાતીય અવયવો સે મરજાતી દિસાઈ દેતી હૈ ।

લક્ષણુ ભલે ન હોય, પરન્તુ અવ્યક્ત રૂપમા તો વિદ્યમાન છેજ જેમ કોઈ મનુષ્ય  
ખૂબ પેટભરીને ઘણા નીસાવાળી મદિરાનુ પાન કરી લે અને પિત્તના પ્રકોપથી  
મૂર્છિત થઈ જાય તો તેની પણ ચેતના અવ્યક્ત થઈ જાય છે, એટલે તેને  
અચિત્ત કહી શકતા નથી એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયના જીવોમા અવ્યક્ત ચેતના છે

શક્ષા—અવ્યક્ત ચેતનાના ઘોષક તરીકે ઉચ્છ્વાસ વગેરે મનુષ્યની સચિત્તતાને  
પ્રગટ કરે છે પરન્તુ અહિં (પૃથ્વીમા) તો ચેતનાનુ કોઈ પણ લક્ષણુ જેવામા આવતું  
નથી એવી સ્થિતિમા પૃથ્વીની સચેતનતા કેવી રીતે માની શકાય ?

સમાધાન—જેવી રીતે મનુષ્યના શરીરમા ઘાવ-હાડો જખમ થઈ જાય છે તો  
તે સ્થાનમા માસ આદિ રહેતુ નથી પાછળથી ઘાવ રૂઝાઈ જતા તે માસથી ભરાઈ જાય  
છે. એ પ્રમાણે ખોદેલી ખાણની ભૂમિ પોતાના સજાતીય અવયવોથી ભરાઈ જાય છે.



एवं च मनुष्यवत् कर्मस्थानमरुतस्य चेतनात्मणस्य पृथिवीकायेऽपि सत्त्वात् ।

यद्वा—पृथिवी सजीवा, दैनिकवर्षणोपचयसंदर्शनात्, चरणतन्वत्, तद्यथा—चरणतलं घृष्यते पुष्पति च, तद्वत् पृथिव्यापि प्रत्याहं घृष्यते, उपशीयते च; तस्मात्तस्याः समीपत्वम् ।

अथवा—विद्रुमपापाग्निरूपा पृथिवी सचेतना, काठिन्ये सस्यपि वृद्ध्यादि दर्शनात्, शरीरस्थित्वास्थ्यादिवत् । तद्यथा—शरीरस्थितमस्थ्यादिकं कमठपृष्ठकठिनं सस्यपि चित्तवद्वत्तुभूयमानस्तुपपर्यं च गच्छत् संदृश्यत । एवं विद्रुमश्लिषाद्यात्मिकायाः

इस प्रकार मनुष्य के समान धातु का मरना भी चेतना का एक स्मरण है, और वह पृथ्वी कायमें विद्यमान है ।

अथवा—पृथ्वी सजीव है क्योंकि उसमें प्रतिदिन विसर्ग और उपचय होना देखा जाता है, पैर के तल की तरह । तात्पर्य यह है कि—जैसे पैर का तन्मात्र विसर्ग है और फिर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पृथिवी भी प्रतिदिन विसर्ग है और मर जाती है । अतः पृथिवी भी सजीव है ।

अथवा—मृगा पापाग्न आदि रूप पृथ्वी सजीव है, क्योंकि उसमें कठिनता होने पर भी वृद्धि आदि देखी जाती है, जैसे शरीर की हड्डी आदि । तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर की हड्डी आदि कस्तुर की पीठ की माँति कठोर होने पर भी सन्निक मांसम होती है और उपचय को प्राप्त होती हुई बिसर्ग देती है, इसी प्रकार मृग—शिला

ते प्रमाद्ये मनुष्यना समान धातु अशकं चतुं ते पद्य अत्र चेतनानु लक्षणं च अने ते पृथ्वीकायमां विद्यमानं च

अथवा—पृथिवी सत्यं च आरभ्य ते तेभ्य प्रतिदिनं प्रसातुं अने वधतुं ते नेवाभां आवे च पत्रना तणीजानी प्रमाद्ये तात्पर्यं चे च इ—नेभ्य पत्रना तणी अनेभाज प्रसाद्ये च अने इरी पाद्य पुष्ट अर्धं अयं च ते प्रमाद्ये पृथिवी पद्य प्रतिदिनं प्रसाद्ये च अने इरी फली जराधं अयं च तेभी पृथिवी पद्य सत्यं चे

अथवा—मृगा (पशुपत्या) पापाग्न आदि रूप पृथ्वी सत्यं च इमके—तेभ्य कठिनता होना कर्ताय पद्य वृद्धि वजरे नेवाभां आवे च, नेवी रीते शरीरना कर्ताय आदि तात्पर्यं चे च इ—नेवी रीते शरीरना कर्ताय आदि कर्तायानी पीठ नेवा कर्ताय होना कर्ताय पद्य सन्निक मांसम पदे च, अने वृद्धिने प्राप्त अत्वा होना तेभ्य देभाय च ते

પૃથિવ્યાઃ કાઠિન્યે સત્યપિ વૃદ્ધયાદિક પ્રત્યક્ષં દૃશ્યતે તસ્માત્તમ્યાઃ સચેતનત્વમ્ ।

અથ ચ-વિદ્રુમાઘાત્મિકા પૃથિવી સચિત્તા, છેદાદૌ તત્ત્વજાતીયઘાતુત્પત્તિ-દર્શનાત્, અર્શોઽકુરવત્ । તથાથા-અર્શસોઽકુરે છિન્નેઽપિ પુનસ્તત્સમાન ઇવાકુરઃ પ્રાદુર્ભવતિ, એવં વિદ્રુમશિલાઘાત્મિકાયાઃ પૃથિવ્યાઃ સ્વન્યાદૌ છેદેઽપિ તત્સજાતીય-ઘાતુભિસ્તદ્વિક્તભાગઃ પરિપૂર્યતે, તસ્માત્ સિદ્ધં પૃથિવ્યાઃ સચિત્તત્વમ્ ।

કિંચ - યથા સાસ્નાત્રિપાળાઘવ્યવસઘાતાનાં ગોમહિષ્યાત્રિશરીરાણાં છિન્ન-ભિન્નો-ત્ક્ષિપ્ત-સ્પૃષ્ટ-દૃષ્ટ-દ્રવ્યત્વેન જીવશરીરત્વ, તથૈવ પૃથિવ્યાદીના પ્રત્યક્ષરૂપં

આદિરૂપ પૃથ્વી મેં, કઠિનતા હોને પર વૃદ્ધિ આદિ પ્રત્યક્ષ દિશ્વાઈ દેતા હૈ । ઇસ કારણ પૃથિવી સચિત્ત હૈ ।

અથવા-મૂંગા આદિ પૃથ્વી સચિત્ત હૈ, ક્યોં કિ ઉસકા છેદન હોને પર વહા ઉસી કો સજાતીય ઘાતુ ઉત્પન્ન હોતી હૈ, અર્શ (મરસા) કે અકુર કે સમાન, જૈસે અર્શ કે અકુર ઇકવાર કાટ દેને પર મી ફિર વહોં ઉસી જાતિ કે અકુર ઉત્પન્ન હો જાતે હૈ, ઉસી પ્રકાર મૂંગા-ગિલા આદિ રૂપ પૃથિવી કા સ્વાન આદિ મેં છેદન કર દેને પર મી ઉસી કી સજાતીય ઘાતુઓં સે ચહ્ ખાલી સ્થાન ભર જાતા હૈ, અત પૃથિવી કો સચિત્તતા સિદ્ધ હુઈ ।

ઔર મી લીજિઇ-જૈસે સાસ્ના (ગાયકે ગલે મેં લટકને વાલી ચમડી) સીગ આદિ અવ્યવોં કા સમુદાયરૂપ ગાય, મૈસ આદિ કે શરીર છિન્ન, મિન્ન, ઉત્ક્ષિપ્ત, સ્પૃષ્ટ, દૃષ્ટ ઔર દ્રવ્યત્વ કે કારણ જીવ કે શરીર હૈં, ઇસી પ્રકાર પૃથિવી આદિ મેં પ્રત્યક્ષ સે

પ્રમાણે મૂંગા (પરવાળા) શિલા આદિ રૂપ પૃથ્વીમા કઠિનતા હોવા છતાય પણ વૃદ્ધિ આદિ પ્રત્યક્ષ જ્ઞેવામા આવે છે, આ કારણથી પૃથ્વી સચિત્ત છે

અથવા-મૂંગા (પરવાળા) આદિ પૃથ્વી સચિત્ત છે કેમકે-તેનુ છેદન થવાથી ત્યાં તેની સજાતીય ઘાતુ, ઉત્પન્ન થાય છે, અર્શ (મરસા)ના અકુર પ્રમાણે, જ્ઞેમ અર્શના અકુર એકવાર કાપી નાખવા છતાય પણ ફરીથી ત્યાં તે જાતિનો અકુર ઉત્પન્ન થાય છે, તે પ્રમાણે મૂંગા-શિલા આદિરૂપ પૃથિવિનુ ખાણુ આદિમા છેદન કરી દેવા છતાય પણ તેની સજાતીય ઘાતુઓથી તે ખાલી સ્થાન ભરાઈ જાય છે, તે કારણથી પૃથ્વીની સચિત્તતા સિદ્ધ થઈ

ખીનુ પણ પ્રમાણુ લઈએ, જ્ઞેમ સાસ્ના (ગાયના ગળામા લટકવાવાળી ચામડી) સીગ આદિ અવ્યવોના સમુદાયરૂપ-ગાય, મૈસ આદિના શરીર છિન્ન, ભિન્ન, ઉત્ક્ષિપ્ત, સ્પૃષ્ટ, દૃષ્ટ, અને દ્રવ્યત્વના કારણથી જીવનુ શરીર છે, તે પ્રમાણે પૃથ્વી આદિમા પ્રત્યક્ષ

छिन्नत्वादिकमपसपितु न क्षम्यते, तस्मात्पृथिव्यादीनामपि जीवशरीरत्वं सिद्धयति । जीवशरीरत्वेन निरूपितत्वात् पृथिव्यादीनामपि करधरणसंपादानामिव कटाचिद्यैतन्न्यं सिद्धयति, ननु सर्वथा श्वाश्रितिकनिर्मावत्त्वं तेषां संभवति, कदाचिद्विचित्रत्वमपि पद्मोपहस्तत्वादेव भवति करधरणादिबहिः ।

पृथिव्याः सचिन्तत्वेऽनेकजीवाधिष्ठितत्वे भागमोऽपि प्रमाणम् । तथाहि—  
 “पृथ्वी विचित्रतमकत्वाया अप्येगजीवां पुडोसत्ता, अमस्य सत्यपरिचरण” (दश ४ अ)

पृथिवी विचित्रती=सजीवा=आख्याता=सगता कथिता अनेकजीवा=

विसर्ग देने वाली छिन्नता आदि का अपवाद नहीं किया या सकता अतः पृथिवी आदि जीव के शरीर हैं, इस प्रकारका निरूपण करने से हाथ पैर की तरह उन में भी किसी समय चैतन्य का अस्तित्व सिद्ध होता है, उनकी सदैव और सर्वथा निर्मावता सिद्ध नहीं हो सकती । पृथिवी आदि कदाचित् निर्माव होती है तो उसका कारण शक्त का उपपन्न है । शक्त के प्रयोग से जैसे हाथ-पैर आदि अवयव निर्माव हो जाते हैं उसी प्रकार पृथ्वी भी निर्माव हो जाती है ।

पृथ्वी सचित है और अनेक जीवों से अधिष्ठित है, इस विषय में भागमप्रमाण भी है यह इस प्रकार— पृथ्वी सचित कही गई है उसमें अनेक जीव हैं और उस सब की सत्ता एक-पक्ष है,—वाक्यपरिणत पृथ्वी को छोड़कर ” ( दश ४ अ )

अर्थात्—पृथ्वी सजीव है, ऐसा सगवाने कहा है । उस में अनेक ऐकेन्द्रिय जीव हैं ।

हेनाथ भावे तेवी छिन्नता आदिना अपवाद (छटी वस्तु देवाय ते ना कहेवी के नहीं देवाती) कही शक्यो नहि, जे माटे पृथ्वी आदि पक्ष लवतु शरीर सिद्ध बाव छे पृथ्वी आदि लवतां शरीर छे. जे प्रकारनु निरूपण कत्वाभी काय-पजनी प्रभावे तेमां पक्ष हेअ सभ्य यैतन्न्यनु अस्तित्व सिद्ध बाव छे तेनी कथियां अने सर्वथा निर्मावता सिद्ध कर्त्त शक्यो नही पृथ्वी आदि कदाचित् निर्माव होय छे तो तेनु करण सज्जनो उपपात छे (कथिन्तरभी कथानु-जोवानु ते छे) शक्यता प्रयोजनी जेभ काय-पज अवयव निर्माव कर्त्त जाय छे ते प्रभावे पृथ्वी पक्ष निर्माव कर्त्त जाय छे.

पृथ्वी सचित छे अने अनेक लोकोषी अधिष्ठित छे आ विषयमां आजभ प्रमाय पक्ष छे ते आ प्रभावे—

पृथ्वी सचित कहेवामां आनी छे तेमां अनेक लव छे अने ते सवनी सत्ता पृथक्-पृथक् छे, सत्यपरिणत पृथ्वीने जलने. (श्रवैकालिक ४-अ)

अर्थात्—पृथ्वी सलव छे, जेनुं लजवाने कर्त्तु छे. तेमां अनेक ऐकेन्द्रिय लव छे

પૃથિવ્યાઃ કાઠિન્યે સત્યપિ વૃદ્ધ્યાદિક પ્રત્યક્ષ દૃશ્યતે તસ્માત્તમ્યાઃ સચેતનત્વમ્ ।

અથ ચ-વિદ્રુમાઘાત્મિકા પૃથિવી સચિત્તા, છેદાદૌ તત્મજાતીય યાતૃત્વત્તિ-દર્શનાત્, અર્શોઽકુરવત્ । તથાથા-અર્ગસોઽકુરે છિન્નેઽપિ પુનસ્તત્સમાન એવાકુરઃ પ્રાદુર્ભવતિ, એવં વિદ્રુમશિલાઘાત્મિકાયાઃ પૃથિવ્યાઃ સ્વન્યાદૌ છેદેઽપિ તત્સજાતીય ધાતુભિસ્તદ્વિક્રમભાગઃ પરિપૂર્યતે, તસ્માત્ સિદ્ધં પૃથિવ્યાઃ સચિત્તત્વમ્ ।

કિંચ - યથા સાસ્નાત્રિપાળાઘવ્યવસઘાતાના ગોમહિપ્યાદિગરીરાણાં છિન્ન-મિન્નો-ત્ક્ષિપ્ત-સ્પૃષ્ટ-દૃષ્ટ-દ્રવ્યત્વેન જીવશરીરત્વ, તથૈવ પૃથિવ્યાદીના પ્રત્યક્ષદૃષ્ટં

આદિરૂપ પૃથ્વી મેં, કઠિનતા હોને પર વૃદ્ધિ આદિ પ્રત્યક્ષ દિશ્વાઈ દેતા હૈં । ઇસ કારણ પૃથિવી સચિત્ત હૈ ।

અથવા-મૂગા આદિ પૃથ્વી સચિત્ત હૈ, ક્યોં કિં ઉસકા છેદન હોને પર વહાં ઉસી કોં સજાતીય ધાતુ ઉત્પન્ન હોતી હૈ, અર્ગ (મસ્સા) કે અકુર કે સમાન, જૈસે અર્ગ કે અકુર એકવાર કાટ દેને પર મીં ફિર વહોં ઉસી જાતિ કે અકુર ઉત્પન્ન હો જાતે હૈ, ઉસી પ્રકાર મૂગા-શિલા આદિ રૂપ પૃથિવી કા સ્વાન આદિ મેં છેદન કર દેને પર મીં ઉસી કોં સજાતીય ધાતુઓં સે યહ સ્વાલી સ્થાન ભર જાતા હૈ, અત્ પૃથિવી કો સચિત્તા સિદ્ધ હુઈ ।

ઔર મીં લીજિઈ-જૈસે સાસ્ના (ગાયકે ગલે મેં લટકને વાલી ચમડી) સીંગ આદિ અવયવોં કા સમુદાયરૂપ ગાય, મૈસ આદિ કે શરીર છિન્ન, મિન્ન, ઉત્ક્ષિપ્ત, સ્પૃષ્ટ, દૃષ્ટ ઔર દ્રવ્યત્વ કે કારણ જીવ કે શરીર હૈં, ઇસી પ્રકાર પૃથિવી આદિ મેં પ્રત્યક્ષ સે

પ્રમાણે મૂગા (પરવાળા) શિલા આદિ રૂપ પૃથ્વીમા કઠિનતા હોવા છતાંય પણ વૃદ્ધિ આદિ પ્રત્યક્ષ ભેવામા આવે છે, આ કારણથી પૃથ્વી સચિત્ત છે

અથવા-મૂગા (પરવાળા) આદિ પૃથ્વી સચિત્ત છે કેમકે-તેનુ છેદન થવાથી ત્યાં તેની સજાતીય ધાતુ, ઉત્પન્ન થાય છે, અર્શ (મસ્સા)ના અકુર પ્રમાણે, જેમ અર્શના અકુર એકવાર કાપી નાંખવા છતાંય પણ ફરીથી ત્યાં તે ભતિનેા અકુર ઉત્પન્ન થાય છે, તે પ્રમાણે મૂગા-શિલા આદિરૂપ પૃથ્વિનુ ખાણુ આદિમા છેદન કરી દેવા છતાંય પણ તેની સજાતીય ધાતુઓથી તે ખાલી સ્થાન ભરાઈ જાય છે, તે કારણથી પૃથ્વીની સચિત્તા સિદ્ધ થઈ

ખીણુ પણ પ્રમાણુ લઈએ, જેમ સાસ્ના (ગાયના ગળામા લટકવાવાળી ચામડી) સીંગ આદિ અવયવોના સમુદાયરૂપ-ગાય, ભેસ આદિના શરીર છિન્ન, સિન્ન, ઉત્ક્ષિપ્ત, સ્પૃષ્ટ, દૃષ્ટ, અને દ્રવ્યત્વના કારણથી જીવનુ શરીર છે, તે પ્રમાણે પૃથ્વી આદિમા પ્રત્યક્ષ

मेदात् । तत्र द्रव्यशक्तं स्वकायपरकायतदुमयसङ्गणम् । तत्र स्वकायशक्तं पृथिव्या-  
पृथिव्येव यथा-कृष्णमृत्तिकायाः शुक्लमृत्तिकेत्यादि । परकायशक्तं जलाग्निगोमय  
परणमृत्तिकादि । उमयकायशक्तं जलादिमिश्रमृत्तिका । एवं च अत्रपरिणताया  
पृथिव्या अविचलतया न तत्रोच्चारमङ्गणादिक्रियया घृतीनामर्हिसाप्रतस्ततिः ।

(२) प्ररूपणाद्वातम्-

पृथिवीजीवा द्वित्रिधाः सूक्ष्मपादरमेदात् । सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्मा,  
वाटरनामकर्मोदयाद् वादरा, न तु वाटरनामकर्मवापेक्षिकं सूक्ष्मत्वं वादरस्य च ।

के स्थि शक्त है । शक्त के दो भेद हैं-द्रव्यशक्त और भावशक्त । स्वकाय परकाय और  
उमयकायरूप द्रव्य-शक्त है । पृथ्वी का शक्त पृथ्वी-स्वकायशक्त है जैसे काली मिट्टी का  
शक्त सफेद मिट्टी है । परकायशक्त जैसे-कल, जग्नि गोबर परण (पग) शकट (गड़दी)  
का पैया आदि । कल आदि से मिली हुई मृत्तिका उमयकायशक्त है । इन प्रकार शक्त से  
परिणत पृथ्वी अविचल हो जाती है, अत एव उस पर मल-मूत्र आदि त्यागने वाले मुनियों  
के अर्हिसम्पत्त में कोई खलि नहीं पहुँचती ।

(२) प्ररूपणा-द्वात-

पृथ्वी के सूक्ष्म और वादर के भेदसे दो प्रकार हैं । सूक्ष्मनामकर्म के उदय से सूक्ष्म  
और वादरनामकर्म के उदय से वादर होते हैं । यहाँ सूक्ष्मता और वादरता केर और स्पष्टके  
की तरह सापेक्ष नहीं समझनी चाहिए ।

शक्तता के दो भेद हैं द्रव्यशक्त और भावशक्त, स्वकाय, परकाय और उमयकायरूप  
द्रव्यशक्त से पृथ्वीनु शक्त पृथ्वी स्वकाय-शक्त से जेम हाथी माटीनु शक्त सफेद  
माटी से परकाय-शक्त जेमके कल, जग्नि जख, पग माटीनु शक्त आदि कल-  
पथी आदिथी भवेली माटी उमयकाय-शक्त से आ प्रभाक्षे शक्तथी परिणत पृथ्वी  
अविचल शक्त अथ से अदरता माटे तेना पर भण-भूवादि त्याग करवावणा मुनि  
कीना अर्हिसम्पत्तमा ठेअ कानि पडोवती नथी ।

(२) प्ररूपणाद्वात-

पृथ्वीकायना अथ सूक्ष्म और वादरना दोदधी के प्रकारना से सूक्ष्मनामकर्मना  
उदयथी सूक्ष्म और वादरनामकर्मना उदयथी वादर अथ से अर्हिसूक्ष्मता और  
वादरता केर और अविचलनी प्रभाक्षे सापेक्ष समन्वयी नहि अर्थके

अनेके=वहवो जीवा एकेन्द्रिया यस्यां सा तथोक्ता, पृथक्सत्त्वा=पृथक् पृथग्भूता अङ्गलासख्येयभागमात्रशरीरावगाहनामाश्रित्य विभिन्नरूपेण स्थिताः सत्त्वाः=स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा यस्या सा तथोक्ता 'आख्याता' इति पृथक्त्वेन संबन्धः ।

ननु तर्हि तथाभूतायां सचित्तायां पृथिव्या गमनागमनादिक्रियां कुर्वतां सयतानामर्हिसात्रतस्य संरक्षणं कथं भवति प्रत्युतावश्यकरणीयोच्चार-प्रस्रवणादिक्रियया हिंसत्र भवति, तस्मादर्हिसात्रतपालनं चन्ध्यापुत्रपालनवद-संभवम् ?—इत्यत आह—'अन्नत्थ सत्यपरिणयण' इति, शस्त्रपरिणयताया अन्यत्र, शस्त्रपरिणयता पृथिवीं वर्जयित्वाऽन्या पृथिवी सजीवा । शस्यते=हिंस्यते प्राणिगणोऽनेनेति शब्दं । यद् यस्य विनाशकारणं तत्तस्य शस्त्रमित्यर्थः । तत् द्विविधं द्रव्यभाव-

वे सव जीव अगुल के असल्यातवें भागकी शरीर—अवगाहनावाले भिन्न-भिन्न रूप में स्थित है । यहाँ सत्व का अर्थ एकेन्द्रिय जीव समझना चाहिए ।

शङ्का—पृथ्वी अगर सचित्त है तो सचित्त पृथ्वी पर गमन—आगमन आदि क्रिया करने वाले साधुओं का अर्हिसात्र कैसे स्थिर रह सकता है ? प्रत्युत मल—मूत्र आदि का त्याग अनिवार्य है और इस से हिंसा होना भी अनिवार्य है । एसी स्थिति में अर्हिसा का पालन करना चन्ध्या—पुत्र का पालन करने के समान असंभव है ।

समाधान—शास्त्र में कहा है—'अन्नत्थ सत्यपरिणयणं' अर्थात् शस्त्र-परिणय पृथ्वी को छोड़कर दूसरी पृथ्वी सचित्त है । जिस के द्वारा प्राणिगण का हनन हो उसे शस्त्र कहते हैं । तात्पर्य यह है कि जो जिस के विनाश का कारण है, वह उस-  
ते सर्व एव अशुलना अस्त्रप्यातमा लागनी शरीर—अवगाहनावाणा भिन्न-भिन्न रूपमा स्थित छे अर्हि सत्त्वानो अर्थ अकेन्द्रिय एव समजवो जेधं अे ।

शङ्का—पृथिवी अगर सचित्त छे तो सचित्त पृथ्वी पर जवा आववानी क्रिया करवावाणा साधुओंनु अर्हिसात्र स्थिर देवी रीते रहूँ सके छे ? उल्लु मल-मूत्र आदिना त्याग अनिवार्य छे, तेथी हिंसा थवी पणु अनिवार्य छे अेवी स्थितिमा अर्हिसात्रु पालन करवुं ते वध्यापुत्रना पालन करवा समान असंभव छे

समाधान—शास्त्रमा कहु छे के—'अन्नत्थ सत्यपरिणयण' अर्थात् शस्त्र-परिणय पृथ्वीने त्यलु गीलु पृथ्वी सचित्त छे जेना द्वारा प्राणिगणुनु हनन (नाश) थाय तेने शस्त्र कहे छे. तात्पर्य अे छे के—जे जेना विनाशनु कारणु छे ते तेना माटे शस्त्र छे

मेवात् । तत्र द्रव्यशक्तं स्वकायपरकायतदुभयसङ्गणम् । तत्र स्वकायशक्तं पृथिव्याः पृथिव्येषु पचा-कृणासृत्तिकायाः शुक्रसृत्तिकेत्यादि । परकायशक्तं जलाम्बिगोमय चरणसकृत्पक्कादि । उभयकायशक्तं जलादिमिश्रसृत्तिका । एष च अस्त्रपरिभतायाः पृथिव्या अक्षिततया न तत्रोच्चारमस्रवणादिक्रियया धुनीनामहिसामतस्तति ।

(१) प्ररूपवाद्धारम्-

पृथिवीजीना द्विविधाः सूक्ष्मबादरमेवात् । सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्माः, बादरनामकर्मोदयाद् बादराः, न तु बादरामलकत्वदापेक्षिकं सूक्ष्मत्वं बादरत्वं च ।

के रूप शक्त है । शक्त के दो भेद हैं—द्रव्यशक्त और भावशक्त । स्वकाय परकाय और उभयकायरूप द्रव्य-शक्त है । पृथ्वी का शक्त पृथ्वी-स्वकायशक्त है जैसे कासी मिट्टी का शक्त सफेद मिट्टी है । परकायशक्त जैसे—जल, जग्जि, गोबर, चरण (पग) शकट (गाड़ी) का पैसा आदि । अल आदि से मिली हुई सृत्तिका उभयकायशक्त है । इस प्रकार शक्त से परिणत पृथ्वी अक्षित हो जाती है, जत एव उस पर मक-मूत्र आदि त्यागने वाले मुनिबों के अहिसंस्त में कर्म कति नहीं पहुँचती ।

(२) प्ररूपणा-द्धार-

पृथ्वी के सूक्ष्म और बादर के भेदसे दो प्रकार हैं । सूक्ष्मनामकर्म के उदय से सूक्ष्म और बादरनामकर्म के उदय से बादर होते हैं । यहाँ सूक्ष्मता और बादरता वेर और भावके को तरह सापेक्ष नहीं समझनी चाहिए ।

शक्तना से वेद से द्रव्यशक्त जने भावशक्त, स्वकाय परकाय जने उभयकायरूप द्रव्यशक्त से पृथ्वीनु शक्त पृथ्वी स्वकाय-शक्त से जेभ कासी भरीनु शक्त सफेद माटी से परकाय-शक्त जेभके जल, जग्जि जल, पत्र पानीनु आदि आदि जल-पानी आदिभी भरीली माटी उभयकाय-शक्त से आ प्रभवे शक्तभी परिणत पृथ्वी अक्षित कर्म भाव से अहिसा माटे तेना पर मक-मूत्रादि त्याग करवावणा मुनि-जोना अहिसंस्तमां देह कानि पहुँचती नहीं.

(३) प्ररूपणाद्धार-

पृथ्वीकायना एव सूक्ष्म जने बादरना सेदधी से प्रारणा से सूक्ष्मनामकर्मना उदयधी सूक्ष्म जने बादरनामकर्मना उदयधी बादर भाव से अहिसा सूक्ष्मता जने बादरता वेर जने अक्षितानी प्रभवे सापेक्ष समझनी नहि वेहजे.

तत्र सूक्ष्माः द्विविधाः—पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, ते कज्जलकूपिकावत् सर्वलोक-  
व्यापिनः ।

वादरा अपि द्विधा—पर्याप्तापर्याप्तभेदात् । तत्र वादराः पर्याप्ता  
अपर्याप्ताश्च लोकस्यैकदेशे पृथिव्यष्टकाधोऽधःपाताल—भवन—नकरप्रस्तारादौ  
सन्ति । ते द्विविधाः श्लक्ष्ण—खरभेदात् । तत्र श्लक्ष्णा वादरपृथिवी सप्तधाकृष्ण-  
नील—लोहित—पीत—शुक्ल—पाण्डु—पनकभेदात् । खरवादरपृथिव्यास्तु चत्वारिंशद् (४०)  
भेदाः, तथाहि—

- (१) शुद्धपृथिवी, (२) शर्करापृथिवी, (३) बालुकापृथिवी, (४) उपलः, (५) शिला,  
(६) लवणः, (७) ऊषः (८) अयः, (९) ताम्रः, (१०) त्रपुः, (११) सीसकम्, (१२) रूप्यम्,  
(१३) सुवर्णम्, (१४) वज्रः, (१५) हरितालः (१६) हिङ्गुलकः, (१७) मनःशिला,

सूक्ष्म जीव भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । ये जीव काजल की कुप्पी के समान  
सम्पूर्ण लोक में भरे हुए हैं ।

वादर भी पर्याप्त और अपर्याप्त—दो प्रकार के है । ये जीव लोक के एक देश में  
हैं । इन के दो भेद हैं—श्लक्ष्ण और खर । श्लक्ष्णवादरपृथ्वी के सात भेद हैं—कृष्ण नील  
लोहित (लाल) पीत शुक्ल पाण्डु और पनक खरवादर पृथ्वी के चालीस भेद हैं, वे इस  
प्रकार—

- (१) शुद्ध—पृथिवी, (२) शर्करा—पृथिवी, (३) बालुका—पृथिवी, (४) उपल,  
(५) शिला, (६) लवण—नमक, (७) ऊष—क्षार, (८) लोहा, (९) तांबा, (१०) रागा,  
(११) सीसा, (१२) चादी, (१३) सोना, (१४) वज्र, (१५) हरिताल, (१६) हींगुल,

सूक्ष्म एव येषु ये प्रकारना छे पर्याप्त अने अपर्याप्त—एव काजलानी कुप्पीनी  
समान संपूर्ण लोकमा भरेला छे

आदर येषु पर्याप्त अने अपर्याप्त अने ये प्रकारना छे ये एव लोकना  
अेक देशमा छे तेना ये भेद छे श्लक्ष्ण अने खर, श्लक्ष्ण आदर पृथ्वीना सात  
भेद छे कृष्ण, नील, लोहित (लाल) पीत, शुक्ल, पाण्डु अने पनक खर—आदर  
पृथ्वीना चालीस भेद छे—ते आ प्रमाणे छे—

- (१) शुद्ध पृथिवी, (२) शर्करा पृथिवी, (३) बालुका पृथिवी, (४) उपल, (५)  
शिला, (६) लवण—नमक, (७) ऊष—क्षार, (८) लोहा, (९) तांबा, (१०) रागा—इलाय, (११)  
सीसा, (१२) चादी, (१३) सोना, (१४) वज्र, (१५) हरिताल, (१६) हींगुल,



(१८) घृत्यकः-पारद, स्वनामस्पातो रत्नविशेष, (१९) अञ्जनं, (२०) प्रवालम्, (२१) अन्नपटलम्, (२२) अन्नबालुका (अन्नकचूर्णम्), (२३) गोमेदकः, (२४) रुचक, (२५) अक्रु, (२६) स्फटिकः, (२७) लोहिताक्ष, (२८) मरकतः, (२९) मसारगुह्य, (३०) मुजमोचक, (३१) इन्द्रनीलः, (३२) चन्दनम्, (३३) गेरिकम्, (३४) हंसगर्भ, (३५) पुलक, (३६) सौगन्धिकः, (३७) चन्द्रप्रभा, (३८) वैदूर्यम्, (३९) मलकान्तः, (४०) सूर्यकान्तः। एते च शुद्धपृथिव्यादयः पृथिवीकायिकाः स्नाकरादौ सचिप्ता भवन्ति।

गोमय-कचपर-सचितपापादिसंपर्कात्तु गतवेतना अपि भवन्ति। बादरपृथिव्या यत्रैको जीवस्तत्राजसंख्यातैर्नियमतो माष्यम्।

एवमप्येवोपायुप्रत्येकवनस्पतिष्वपि विज्ञेयम्। निगोदे तु यत्रैको

(१७) मैनसिल (१८) घृत्यक-पारा अन्नबा रत्नविशेष, (१९) अञ्जन, (२०) प्रवाल (२१) अन्नपटल, (२२) अन्नबालुका (अन्नकचूर्णम्), (२३) गोमेद, (२४) रुचक, (२५) अक्रु, (२६) स्फटिक, (२७) लोहिताक्ष, (२८) मरकत, (२९) मसारगुह्य, (३०) मुजमोचक, (३१) इन्द्रनील, (३२) चन्दन (३३) गेरू, (३४) हंसगर्भ, (३५) पुलक, (३६) सौगन्धिक, (३७) चन्द्रप्रभा-चन्द्रकान्त, (३८) वैदूर्य, (३९) मलकान्त, (४०) सूर्यकान्त। ये शुद्ध पृथिवी अदि वास्मैस क्व अपि नाकर (सान) में रहते हैं तो सचित होते हैं। गाकर कचरा सूर्य की रूप अदि के संपर्क से अचेतन हो जाते हैं। वहाँ बादरपृथ्वीकाय का एक जीव होता है वहाँ असंख्यात जीव नियम से होते हैं।

इसी प्रकार जप, तेष वायु, और प्रत्येकवनस्पति में भी समझना चाहिये।

(१७) मन्शील, (१८) पारै, (१९) सुरभे, (२०) इचक, (२१) अक-रत्न, (२२) अटिक, (२३) लोहिताक्ष, (२४) मरकत, (२५) मसारगुह्य, (२६) मुजमोचक (२७) इन्द्रनील, (२८) चन्दन, (२९) गेरू, (३०) हंसगर्भ (३१) पुलक (३२) सौगन्धिक (३३) चन्द्रप्रभा-चन्द्रकान्त, (३४) वैदूर्य (३५) मलकान्त, (३६) सूर्यकान्त। आ शुद्ध पृथ्वी अदि वासीस अकारे चेतनां अकार-आयुर्मां रहे छे तो सचित होय छे अक, कचरा, सूर्यने तर्को। वनेरेन सपक भी ते अचेतन अर्थ होय छे। अर्थात् बादर पृथ्वीकायने अके छेय होय छे त्यां असंख्यात एव नियमशी होय छे।

ये प्रकार जप, तेष, वायु अने प्रत्येकवनस्पतिमां पद्य समजतुं लेखिजे।

નિગોદજીવસ્તત્ર નિયમતોઽનન્તાઃ ।

વાદરાણાં સૂક્ષ્માણા ચ પૃથિવીકાયાનાભેતે વક્ષ્યમાણા ભેદાઃ સન્તિ, તત્રોભયોઃ પર્યાપ્તાપર્યાપ્તભેદઃ પ્રાગુક્તઃ, અન્યે ભેદા ઉચ્યન્તે—શરીરત્રયા—ઽગ્નુલા-સંખ્યેયભાગશરીર—સેવાર્ત્તસંહનન—મસૂરચન્દ્રસંસ્થાન—કષાયચતુષ્ક—સઙ્ગાચતુષ્કા-ઽઽઘ્નલેશ્યાત્રય—સ્પર્શનેન્દ્રિય—વેદનાકષાયમારણાન્તિકસમુદ્ધાતા—ઽસઙ્ગિજ્ઞત્વ—નપુંસક-વેદ—પર્યાપ્તિચતુષ્ટય—મિથ્યાદર્શના—ઽચક્ષુદર્શના—ઽજ્ઞાન—કાયયોગ—સાકારાનાકારો-પયોગાઽઽહારાદિપ્રમૃતયઃ । તત્ર વિશેષસ્તુ વાદરપૃથિવીકાયાનાં લેશ્યા આઘાશ્ચતસઃ, શેષં સર્વં સમાનમ્ । અસંખ્યેયાશ્ચ પ્રત્યેકમુભયે ।

નિગોદ મેં જહાં એક જીવ હોતા હૈ વહાં નિયમ સે અનન્ત જીવ હોતે હૈ ।

વાદર ઓર સૂક્ષ્મ પૃથિવીકાયોં કે ભેદ ઇસ પ્રકાર હૈ—દોનોં કે પર્યાપ્ત ઓર અપર્યાપ્ત ભેદ પહેલે કહે જા ચુકે હૈ । અબ અન્ય ભેદ કહતે હૈ—ત્રીન શરીર, અંગુલકા અસંખ્યાતવા ભાગ શરીર, સેવાર્ત્ત સહનન, મસૂરચન્દ્રસંસ્થાન, ચાર કષાય, ચાર સજ્ઞાઈ, પ્રારભ કી ત્રીન લેશ્યાઈ, સ્પર્શનેન્દ્રિય, વેદના કષાય ઓર મારણાન્તિક સમુદ્ધાત, અસજ્ઞીપન, નપુસકવેદ, ચાર પર્યાપ્તિયોં, મિથ્યાદર્શન, અચક્ષુદર્શન ત્રીન અજ્ઞાન, કાયયોગ, સાકાર તથા અનાકાર ઉપયોગ, આહાર આદિ । ઇન મેં વિશેષતા ઇતની હી હૈ કિ વાદરપૃથિવી-કાય મેં પહેલે કી ચાર લેશ્યાઈ હોતી હૈ । શેષ સબ બોલ સમાન હૈ । દોનોં હી અસંખ્યાત-અસંખ્યાત હૈ ।

નિગોદમા ન્યા એક ભવ હોય છે ત્યા નિયમથી અનન્ત ભવ હોય છે

વાદર અને સૂક્ષ્મ પૃથિવીકાયોના ભેદ આ પ્રમાણે છે—અન્નેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત બેઉ ભેદ પ્રથમ કહેવામા આવ્યા છે હવે બીજા ભેદ કહે છે—ત્રણ શરીર, અંગુલના અસંખ્યાતમા ભાગ શરીર, સેવાર્ત્ત સહનન, મસૂર-ચન્દ્ર સંસ્થાન, ચાર કષાય, ચાર સજ્ઞાઓ, પ્રારભની ત્રણ લેશ્યાઓ, સ્પર્શ ઇન્દ્રિય, વેદના કષાય, અને મારણાન્તિક સમુદ્ધાત, અસજ્ઞીપણ, નપુસકવેદ, ચાર પર્યાપ્તિઓ, મિથ્યાદર્શન, અચક્ષુદર્શન, ત્રણ અજ્ઞાન, કાયયોગ, સાકાર તથા અનાકાર ઉપયોગ, આહાર આદિ. તેમા વિશેષતા એટલી જ છે કે—વાદર પૃથિવીકાયમા પ્રથમની ચાર લેશ્યાઓ હોય છે, બાકી તમામ બોલ સમાન છે અને જ અસંખ્યાત—અસંખ્યાત છે

(३) परिमाणद्वारम्—

बाह्यपर्याप्ताः पृथिवीकायस्वीयाः सर्वतः स्तोकाः । तद्वपेक्षया बाह्यपर्याप्ताः  
असंख्येयगुणाः । तद्वपेक्षया सूक्ष्माऽपर्याप्ता असंख्येयगुणाः । तद्वपेक्षया सूक्ष्मपर्याप्ता  
असंख्येयगुणाः । यदि अकारिषान्यकणप्रमाणपृथिव्यंशामया जीवा एकैकं बहिर्निगम्य  
पृथक्-पृथक् कपोतमिदं कायं ह्युस्तर्हि तेषां सप्तयोजनप्रमाणमम्बूद्वीपे समावेशोऽपि  
न संभवति ।

ननु अकारिषान्यकणमात्रे पृथिव्यंशे क्यमिपन्तो जीवास्तिष्ठन्ति ?  
इति चेत् उच्यते—यथा सहस्रापिर्समिभगनिष्पत्सहस्रपाकृतैस्स्यास्पीमसि

(३) परिमाणद्वारम्—

पर्याप्त बाह्य पृथ्वीकाय के बीच सब से जोड़े हैं । उन की अपेक्षा बाह्य अपर्याप्त  
असंख्यात गुण अधिक है । उन से सूक्ष्म अपर्याप्त असंख्येय गुण है । उन से सूक्ष्म पर्याप्त  
असंख्यात गुण है । अगर अकार नामक धान्य के कण के बराबर ध्वी के अंश में गहने  
वाले बीच एक-एक करके बाहर निकल जाएँ और वे सब अपना शरीर क्यूतर के  
शरीर के बराबर बनाएँ तो एक सप्त योजन विस्तार वाले अम्बूद्वीप में उनका समावेश  
नहीं हो सकता ।

अतः—अकार के एक होने के बराबर पृथिवी के अंश में इतने अधिक बीच  
किस प्रकार रह सकते हैं ?

समाधान—जैसे हजार जीवों के समिभग से बने हुए सहस्र-पाक ठीक के

(३) परिमाणद्वारम्—

पर्याप्त बाह्य पृथ्वीकायना एव सौधी योऽा से तेनी अपेक्षा बाह्य अपर्याप्त  
असंख्यात जया अधिक से तेनाभी सूक्ष्म अपर्याप्त असंख्यात जया से तेनाभी  
सूक्ष्म पर्याप्त असंख्यात जया से । अगर अकार नामका धान्यना ठाणुनी अशाणर  
पृथ्वीमा रहेवावाणा एव जेक-जेक अंशने अकार निकसे अने ते सब पीत्वातु शरीर  
क्यूतर-पाएवानां शरीर अशाणर अनाभी तीजे तो जेक बाभ योवतना विस्तारवाणा  
अणु द्वीपमा तेना समावेश अर्थ शके नहिं ।

शङ्क—अकारना जेक ठाणुनी अशाणर पृथ्वीमा जेटका अधिक एव तेनी  
रीते रही शके से ?

समाधान—जेवी रीते अकार अपेक्षाना समिभगवी जनेवा सहस्र-पाक तेना

निगोदजीवस्तत्र नियमतोऽनन्ताः ।

वादराणा सूक्ष्माणां च पृथिवीकायानाभेते वक्ष्यमाणा भेदाः सन्ति, तत्रोभयोः पर्याप्तापर्याप्तभेदः प्रागुक्तः, अन्ये भेदा उच्यन्ते—शरीरत्रया—ऽगुला-संख्येयभागशरीर—सेवार्त्तसहनन—मसूरचन्द्रसंस्थान—कषायचतुष्क—सञ्ज्ञाचतुष्का—ऽऽद्यलेश्यात्रय—स्पर्शनेन्द्रिय—वेदनाकषायमारणान्तिकसमुद्घाता—ऽऽसञ्ज्ञित्व—नपुंसक-वेद—पर्याप्तिचतुष्टय—मिथ्यादर्शना—ऽचक्षुदर्शना—ऽज्ञान—काययोग—साकारानाकारो-पयोगाऽऽहारादिप्रभृतयः । तत्र विशेषस्तु वादरपृथिवीकायानां लेश्या आघाथतसः, शेषं सर्वं समानम् । असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये ।

निगोद में जहाँ एक जीव होता है वहाँ नियम से अनन्त जीव होते हैं ।

वादर और सूक्ष्म पृथिवीकायों के भेद इस प्रकार हैं—दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद पहले कहे जा चुके हैं । अब अन्य भेद कहते हैं—तीन शरीर, अगुलका असंख्यातवा भाग शरीर, सेवार्त्त सहनन, मसूरचन्द्रसंस्थान, चार कषाय, चार सञ्ज्ञाएँ, प्रारम्भ की तीन लेश्याएँ, स्पर्शनेन्द्रिय, वेदना कषाय और मारणान्तिक समुद्घात, असञ्ज्ञीपन, नपुंसकवेद, चार पर्याप्तिर्यो, मिथ्यादर्शन, अचक्षुदर्शन तीन अज्ञान, काययोग, साकार तथा अनाकार उपयोग, आहार आदि । इन में विशेषता इतनी ही है कि वादरपृथिवी-काय में पहले की चार लेश्याएँ होती हैं । शेष सब बोल समान हैं । दोनों ही असंख्यात-असंख्यात हैं ।

निगोदमा न्या अेक एव डोय छे त्या नियमथी अनन्त एव डोय छे

आदर अने सूक्ष्म पृथिवीकायाना लेद आ प्रभाषे छे—अन्नेना पर्याप्त अने अपर्याप्त जेठ लेद प्रथम डडेवामा आव्या छे डवे षीन लेद डडे छे—त्रयु शरीर, अगुलना असंख्यातमा भाग शरीर, सेवार्त्त सहनन, मसूर-चन्द्र संस्थान, चार कषाय, चार सञ्ज्ञाओ, प्रारम्भनी त्रयु लेश्याओ, स्पर्श इन्द्रिय, वेदना कषाय, अने मारणान्तिक समुद्घात, असञ्ज्ञीपण, नपुंसकवेद, चार पर्याप्तिओ, मिथ्यादर्शन, अचक्षुदर्शन, त्रयु अज्ञान, काययोग, साकार तथा अनाकार उपयोग, आहार आदि तेमा विशेषता अेटली न छे डे—आदर पृथिवीकायमा प्रथमनी चार लेश्याओ डोय छे, आकी तमाम जेठ समान छे अन्ने न असंख्यात—असंख्यात छे

य पृथिवीकायद्विसायां लज्जमानास्ते-अनगारा, ये तु तत्र प्रवृत्तास्ते द्रव्यसिद्धिः, इति बोधयितुमाह- 'लज्जमाना' इत्यादि ।

एके-अन्ये, लज्जमानाः=पृथिवीकायस्वारम्भे परमकरस्यया द्रवितद्दयतया सक्रोधमापद्यमाना पृथक्=केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽपि-मनःपर्यय-केचिन्, केचित् परोक्षज्ञानिनो भाषितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति, पृथक्-पश्य ।

इमे सूक्ष्मादरपृथिवीकायारम्भकरभे मीतासस्ता उद्भिन्नास्त्रिकरणत्रियोगैः पृथिवीकायारम्भपस्तियागिनो विद्यते तानवलोक्येत्यर्थः ।

एके पुनः=अन्ये तु- 'वयमगारा साधवः स्मः' इति सामिमानं मरदमानाः वयमेव पृथिवीकायमीषरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति ध्येयं

जो पुरुष पृथिवीकाय की हिंसा से बिरह होते हैं, वेही अनगार हैं । जो उस हिंसा में प्रवृत्त हैं, वे द्रव्यसिद्धी हैं । यह बतलान के लिय कहते हैं- 'लज्जमाना' इत्यादि ।

कोई-कोई पुरुष पृथिवीकाय के आरम्भ में अत्यन्त करुणाशील होने के कारण, प्रवृत्त हवन वाले होने से सक्रोध-वृत्ति करते हैं, उन में से कोई-कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी मन पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी, तथा कोई परोक्षज्ञानी भाषितहमा अनगार हैं, इस प्रकार पृथक्-पृथक्भाव से देखो । अर्थात् उन पुरुषों को देखो जो सूक्ष्म और वातर पृथ्वीकाय का आरम्भ करने में लग्न करते हैं व्रत होते हैं और तीनकरण, तीनयोग से पृथिवीकाय के आरम्भ के त्यागी हैं ।

और कोई-कोई हम साधु हैं । ऐसा अभिमान के साथ कहते हुए 'हम ही पृथिवीकाय की रक्षा में तत्पर हैं और महाव्रतधारी हैं' । इस प्रकार क्या प्रकाश

ये पुरुष पृथिवीकायकी द्विसाधी विरत-निवृत्त साथ से तेज आवृत्तार से मुनि से वे द्विसाधी प्रवृत्त से ते द्रव्यसिद्धी से ते जतापवा भाटे हठे से- 'लज्जमाना' इत्यादि ।

केच-केच पुरुष पृथिवीकायका आरम्भमां अत्यन्त करुणाशील होयाना कारणे प्रवृत्त दृढवचना होयाना अक्रोध-वृत्ति करे से तेमांकी केच-केच प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी अने केवलज्ञानी अने केच परोक्षज्ञानी भाषितात्मा अनगार से पृथक्=पृथक्प्रवृत्तधी लुब्धे । अर्थात् ते पुरुषेऽने लुब्धे के से सूक्ष्म अने वातर पृथ्वीकायका आरम्भ करवाना लज्ज करे से-शरभाय से-नाय पश्ये से अने तज करण तज भोजनी पृथ्वीकायका आरम्भना त्यागी से

अने केच-केच अमे साधु धीमे अथ अभिमाननी साथ हठे से के-अमे तज पृथ्वीकायकी रक्षाभां तत्पर धीमे, अने महाव्रतधारी धीमे । अथ प्रभावे पृथक्-

સૂચ્યગ્રલગ્નવિન્દુમાત્રેऽપિ સહસ્રૌપધિસમાવેશસ્તથૈવ પૃથિવીકાયજીવાસ્તાવન્માત્રે પૃથિવ્યંશે તિષ્ઠન્તીતિ । યથા વા સહસ્રૌપધિસંમિશ્રણે કૃતે ચૂર્ણીકૃત્ય પરિપિષ્ય ચ્વસચ્ચસક્રણપ્રમાણગુટિકા ક્રિયતે, તત્ર પ્રત્યેકગુટિકાયાં સહસ્રૌપધિસમાવેશો દૃશ્યતે, તદ્વજ્જવારીધાન્યકળમાત્રેઽલ્પીયસિ પૃથિવ્યંશે પૃથિવીકાયજીવાસ્તિષ્ઠન્તીતિ નૈતચ્ચિત્રમ્ ।

યદિ લોકાકાશસ્ય પ્રત્યેકપ્રદેશે, એકૈકઃ પૃથિવીકાયજીવઃ સ્થાપ્યતે તદા અસંખ્યાતા લોકા પૂરિતા ભવેયુઃ । પૃથિવીકાયજીવાનાં પરિમાણં તાવદસ્તિ, યદિ લોકા અસંખ્યાતા ભવેયુઃ, તેપામસંખ્યાતલોકાના યાવન્તઃ પ્રદેશાઃ ભવેયુસ્તાવન્તઃ પૃથિવીકાયજીવાઃ સન્તીતિ વોધ્યમ્ ।

છોટે સે, સૂઈ કો નોક પર લગે હુએ એક બૂંદ મેં મી હજાર ઔષધોં કા સમાવેશ હો જાતા હૈ, ઇસી પ્રકાર જવાર કે એક દાને કે બરાબર પૃથ્વી કે અશ મેં ઇતને જીવ રહતે હૈં । અથવા જૈસે એક હજાર ઔષધોં કો મિલા દિયા જાય ઔર ઉનકા ચૂર્ણ બના લિયા જાય, ચ્વ પીસા જાય ઔર ઉસસે ચ્વસચ્ચસ કે દાને કે બરાબર ગોલી બના લી જાય તો ઉસ પ્રત્યેક ગોલી મેં હજાર ઔષધિયોં કા સમાવેશ જાન પડતા હૈ । ઇસ પ્રકાર જવાર બરાબર પૃથ્વી કે અશ મેં અગર ઇતને જીવ રહતે હૈં તો ઇસમેં આશ્ચર્ય કી કૌન સી વાત હૈ ?

અગર લોકાકાશ કે એક-એક પ્રદેશ મેં, એક-એક જીવ સ્થાપિત ક્રિયા જાય તો અસંખ્યાત લોક ભરજાઈં । પૃથિવીકાય કે જીવોં કા પરિમાણ ઇતના હૈ કિ-યદિ લોક અસંખ્યાત હોં ઔર ઉન અસંખ્યાત લોકોં કે જિતને પ્રદેશ હોં, ઉતને હી પૃથિવીકાય જીવ હૈં, એસા સમજ લેના ચાહિએ ।

નાના એવા સોઈની અણી પર લાગેલા એક ટીપામા પણ હબર ઔષધોના સમાવેશ થઈ જાય છે એ પ્રમાણે જુવારના એક દાણુની બરાબર પૃથ્વીમા એટલા જીવ રહે છે અથવા જેવી રીતે-એક હબર ઔષધોને મેળવવામા આવે અને તેનું ચૂર્ણ બનાવી લેવાય, અને તેને ખૂબ વાટવામા આવે અને તેમાથી ખસ-ખસના દાણુ બરાબર ગોળી બનાવવામા આવે તો પ્રત્યેક ગોળીમા હબર ઔષધીઓનો સમાવેશ થયેલા છે, એમ જાણી શકાય છે એ પ્રમાણે જુવાર બરાબર પૃથ્વીમા એટલા જીવ રહે છે તો તેમા આશ્ચર્યની વાત શુ હોઈ શકે ?

અથવા લોકાકાશના એક એક પ્રદેશમા, એક-એક જીવ સ્થાપિત કરવામા આવે તો અસંખ્યાત લોક ભરાઈ જાય પૃથિવીકાયના જીવોનું પરિણામ એટલું છે-જે લોક અસંખ્યાત હોય અને તે અસંખ્યાત લોકના જેટલા પ્રદેશો હોય એટલા જ પૃથિવીકાય જીવ છે. એમ સમજ લેવું જોઈએ

य पृथिवीकायद्विसायां लज्जमानास्ते-जनगाराः, ये तु सप्त पद्मवासे  
द्रव्यसिद्धिः, इति बोधयितुमाह- 'लज्जमानाः' इत्यादि ।

एके=अन्ये, लज्जमानाः=पृथिवीकायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितद्दयतया  
सकोषमापद्यमाना पृथक्=केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽथपि-मनःपर्यय-केवलिनः, केचित्  
परोक्षज्ञानिनो भाषितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति, पृथक्-पश्य ।

इमे सूक्ष्मवाद्दरपृथिवीकायारम्भकरणे भीतास्तस्मा उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैः  
पृथिवीकायारम्भपस्त्यागिनो विद्यन्ते तानक्लोकयेत्यर्थ ।

एके पुनः=अन्ये तु- 'वयमगाराः सावधः स्मः' इति सामिमानं  
प्रवदमानाः वयमेव पृथिवीकायमीषकरणपराः महाव्रतधारिणः' इति व्यर्थ

जो पुरुष पृथिवीकाय की हिंसा से विरत होते हैं, वेही जनगार हैं । जो उस हिंसा में  
प्रवृत्त हैं, वे द्रव्यसिद्धि हैं । यह बात करने के लिए कहते हैं- 'लज्जमाना' इत्यादि ।

कोई-कोई पुरुष पृथिवीकाय के आरम्भ में अत्यन्त करुणशील होने के कारण, द्रवित  
करव वाके होने से, सकोष-वृत्ति करते हैं, उन में से कोई-कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात्  
अभिविज्ञानी मन पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी, तथा कोई परोक्षज्ञानी भाषितात्मा अनगार हैं इस  
प्रकार पृथक्-पृथक्भाव से देखो । अर्थात् उन पुरुषों को देखो जो सूक्ष्म और वाद्दर पृथिवीकाय  
का आरम्भ करने में लज्जा करते हैं, प्रवृत्त होते हैं और तीनकरण तीनयोग से पृथिवीकाय  
के आरम्भ के त्यागी हैं ।

और कोई-कोई हम साधु हैं । ऐसा समिमान के साथ कहते हुए 'इम ही  
पृथिवीकाय की रक्षा में उत्तर हैं और महाव्रतधारी हैं' । इस प्रकार वृथा प्रमाण

ये पुरुष पृथिवीकायकी द्विसाधी विस्त-निवृत्त वाच्य छ तेन अप्यत्रार छ मुनि  
छे. ये द्विसाधां प्रवृत्त छ ते द्रव्यसिद्धि छ ते जताववा भाटे हडे छे- 'लज्जमाना' इत्यादि

कोई-कोई पुरुष पृथिवीकायका आरम्भमें अत्यन्त करुणशील होवना कारणे  
द्रवित हृदयवाणा होवामी अकोष-वृत्ति करे छ तेमांसी कोष-कोष प्रत्यक्षज्ञानी  
अर्थात् अवधिज्ञानी, मनपर्ययज्ञानी अने केवलज्ञानी अने कोई परोक्षज्ञानी अथि  
वात्मा अज्ञानार छे पृथक्=पृथक्भावधी लुब्धे अर्थात् ते पुरुषोने लुब्धे के ने सूक्ष्म  
अने वाद्दर पृथिवीकायने आरम्भ करवामां लज्जा करे छे-परभाव छे-वास्य जमि छे  
अने तज्ज करव तज्ज योत्रधी पृथिवीकायका आरम्भना त्यागी छे

अने कोष-कोष 'अथे साधु छीजे ज्येथ अभिमाननी साथे हडे छे छे- अथि  
तज्ज पृथिवीकायकी रक्षामां उत्तर छीजे अने महाव्रतधारी छीजे. आ प्रभावे वृथा-

सर्वारम्भपरित्यागिनः षट्कायरक्षका अनगाराः (साधवः) स्मः' इति वदन्तो दण्डि-  
शाक्यवादयः सन्ति । तत्र केचिद्देहशुद्धयर्थं मृत्तिकास्नानाग्निनो भवन्ति । केचित्स्वनिवासाय  
गृहादिनिर्माणकरणं कुदालखनित्रादिभिः पृथिवीकायमुपमर्दयन्ति । केचित् सोद-  
पूर्त्यर्थं कृष्यादिकर्म कुर्वन्ति । केचिच्च देवकुलाद्यर्थं सावद्यमुपदिशन्ति । पार्थिवी-  
देव-गुर्वादि-प्रतिमानिर्माणे जीर्णोद्धारकरणे च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्रारो  
भवतीति मन्यन्ते, वदन्ति च—

“जिणभवणकारणविही, सुद्धा भूमी दलं च कट्ठाई । भियगाणइसंघाण,  
सासयवुद्धी य जयणाय ॥९॥ एयस्स फलं भणियं, इय आणाकारिणो उ सहुँस्स ।

और परिग्रह के त्यागी हैं, षट्काय के रक्षक साधु हैं' । इस प्रकार कहने वाले दण्डी शाक्य  
आदि हैं । इन में कोई-कोई तो शरीर की शुद्धि के लिए मिट्टी से स्नान करते हैं । कोई  
अपने रहने के लिए मकान आदि बनाने में कुदाल खनित्र (कुस) आदि खोदने के साधनों  
द्वारा पृथ्वीकाय का उपमर्दन करते हैं । कोई-कोई अपना पेट भरने के उद्देश्य से खेती आदि  
करते हैं । कोई देवकुल आदि के लिए सावद्य उपदेश देते हैं—देव गुरु आदि की पार्थिव  
प्रतिमा निर्माण कराने से और जीर्णोद्धार कराने से भवसागर से आत्मा का तरना होता है,  
ऐसा मानते हैं और कहते हैं कि—

“जिनभवन बनाने की विधि इस प्रकार है—“शुद्ध भूमि, शुद्ध ईर्ष्य,  
पत्थर, काष्ठ आदि होना, कार्य करने वाले कारीगरों को प्रसन्न रखना, अपने परिणाम  
उत्तरोत्तर चढते हुए रखकर यतनापूर्वक कार्य कराना” इत्यादि । भगवान की आज्ञाके

छीये सर्व आरभ अने परिग्रहना त्यागी छीये, षट्कायना रक्षक साधु छीये' आ  
प्रमाणे कडेवावाणा ढडी शाक्य आदि छे तेमा कोछ-कोछ तो शरीरनी शुद्धि भाटे  
भाटीथी स्नान करे छे कोछ पोताने रडेवा भाटे मकान आदि अनाववाभा कोटाणी,  
कोस आदि जोहवाना साधनेा द्वारा पृथ्वीकायनु उपमर्दन करे छे, कोछ-कोछ पोतानु  
चेट सरवाना उदेशथी जेती करे छे, कोछ देवकुण आदिने भाटे सावद्य उपदेश  
करे छे—देव, शुद्ध आदिनी पार्थिव प्रतिमा निर्माण करवावाभा अने लोडोद्धार कर  
वाभा भवसागरथी आत्मा तरी शके छे, जेबुं मान छे अने कडे छे के—

“जिनभदिर अनाववानी विधि आ प्रमाणे छे:-शुद्ध भूमि, शुद्ध धटो, पत्थर,  
काष्ठ आदि जेधये काम करवावाणा कारीगराने प्रसन्न राखवा, पोतानां परिष्काम उत्तरोत्तर  
अढता राखाने यतनापूर्वक कार्य करबुं” इत्यादि भगवाननी आज्ञाना आराधक श्रावकने



चित्रं सुहायुषवर्षं, निन्नायं च निर्भिदेहि ॥ ४४ ॥ ( पञ्चाशक टीका ७ वि )

“ निममबभाई जे उदरंति मचीइ सडियपडियाइ ।

ते उदरंति अयं भीमाओ भवसमुद्राओ ॥ ” ( धर्मसंग्रहटीका २ अधि )

छाया—“ जिनमबनकारणविधि — दृष्ट्या भूमिर्वलं च काष्ठादि ।

भुक्तकान्तिसम्भानं स्वास्यपद्विभ्र (सामनास्यपद्विः) यतना च ॥

एतस्य फलं भवितं, इत्याहाकारिणस्तु भ्रातृस्य ।

चित्रं सुहायुषवर्षं, निर्वाणान्त जिनेत्रे ( मणितम् ) ॥ ४४ ॥

जिनमबनानि ये उदरन्ति मक्त्या स्रटितपतितानि ।

ते उदरन्त्यात्मानं भीमाइ भवसमुद्रात् ” इति च ॥

तथैव शास्त्रनिषिद्धे पूजाप्रतिष्ठादिसाधनकार्ये प्रवृत्त्या द्रव्यसिद्धिनोऽपि स्वात्मानं मुनिमेव मन्यते । ये पृथिवीश्वरं प्रयुक्तानाः पद्मोषनिकाय

भारतक भाषक को मगवान् ने इस का फल इस प्रकार बताया है—‘उसको अनेकानेक सुखां का अनुभव होता है और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है’ । ( पञ्चाशकटीका ७ वि )

“ जो पुरुष जो जिनमबनों का मकिते उदर करते हैं वे भीम भक्तसार से अपनी आत्मा को उरते हैं ” । ( धर्मसंग्रहटीका २ अधि )

इसी प्रकार दण्डलिखित पूजा प्रतिष्ठा आदि साधन कार्यों में प्रवृत्ति करके द्रव्यसिद्धि भी आपने आप को मुनि मानते हैं । कारण है कि—जो लोक पृथिवी-शक्त का प्रयोग करके पद्मोषनिकारूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, और मगवानका नाम लेकर स्वयं खोटी प्रकृष्टा करते हैं अतः वे द्रव्य

सम्पन्नाने तेषु इह आ प्रभावे जतायु उ—तेने अनेकानेक सुभोने अनुजम याव उ; अने परम्पराभी मोक्षनी प्राप्ति याव उ. ” ( पञ्चाशकटीका ७ वि )

“ जो पुरुष लक्ष्मण यथेष्ट जिनमद्वि तेने अडितधी उदर कथवे उ ते भवान् भवसागरभी चेताना आत्माने वारे उ ” ( धर्मसंग्रहटीका २ अधि )

आज प्रभावे शास्त्रनिषिद्ध पूजा, प्रतिष्ठा आदि साधन कार्यों में प्रवृत्ति करीने द्रव्यसिद्धि भी पक्ष चेतने चेताने मुनि माने उ आशय जे उ है—जो लोक पृथिवीशक्तने प्रयोग करीने पद्मोषनिकारूप समस्त लोकनी हिंसा करे उ अने मगवाननु नाम धरने चेतने जोड़ी प्रकृष्टा करे उ अतः ते द्रव्यसिद्धि उ, आत्मा

प्रलयन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति तान् पृथक्=पृथग्भावेन पश्य ।

(४) वधद्वार, (५) शस्त्रद्वारं च ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति—

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः शस्त्रैः=लोटापापाणादिभिः स्वकायरूपैः, अग्न्यादिभिः=परकायरूपै हलकुट्टालखनित्रादिभिस्तदुभयरूपैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण=पृथिव्याः कर्मसमारम्भः—पृथिवीकर्मसमारम्भः पृथिवी-माश्रित्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धनिबन्धनसावद्यव्यापारः, तेन इम=पृथिवीकायं विहिंसन्ति । पृथिवीकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु पद्मजीवनिकाय-

करते हुए द्रव्यलिङ्गी हैं उन्हें पृथक् देखो ।

(४) वध और (५) शस्त्रद्वार

अपने आप को अनगार समझने वाले ये द्रव्यलिङ्गी साधु के गुणों में तनिकभी प्रवृत्त नहीं होते, और न गृहस्थों के किसी कार्य का त्याग करते हैं, यह बात बतलाते हैं—

ये द्रव्यलिङ्गी लोग विभिन्न प्रकार के मिट्टी, पत्थर आदि स्वकाय-शस्त्रों से अग्नि आदि परकाय-शस्त्रों से, हल, कुट्टाल आदि खोदने के साधनरूप उभयकाय शस्त्रों से पृथिवीकर्मसमारम्भ करते हैं, अर्थात् पृथिवी के निमित्त से ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मबन्ध का कारण सावध व्यापार करते हैं, और उस से पृथिवीकाय को हिंसा करते हैं । पृथिवीकाय की हिंसा में प्रवृत्त होने वाला पुरुष छहों जीवनिकायों

मिथ्या प्रलाप करनारा द्रव्यलिङ्गी छे तेने जूहा जूहा भावथी ज्युओ

(४) वध અને (५) शस्त्र द्वार—

पोतेજ પોતાને અણગાર-સાધુ સમજવાવાળા એ દ્રવ્યલિંગી, સાધુના ગુણોમા જરા પણ પ્રવૃત્ત થતા નથી અને ગૃહસ્થોના કોઈ કાર્યનો ત્યાગ કરતા નથી. એ વાત બતાવે છે —

એ દ્રવ્યલિંગી લોક જૂહા-જૂહા પ્રકારની માટી, પથ્થર આદિ સ્વકાય શસ્ત્રોથી અગ્નિ આદિ પરકાય શસ્ત્રોથી હળ, કૌદાળી આદિ ખોદવાના સાધનરૂપ ઉભયકાય શસ્ત્રોથી પૃથ્વીકર્મસમારમ્ભ કરે છે. અર્થાત્ પૃથ્વીના નિમિત્તથી જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ પ્રકારના કર્મબન્ધના કારણ સાવધ વ્યાપાર કરે છે, અને તેથી પૃથ્વીકાયની હિંસા કરે છે પૃથ્વીકાયની હિંસામા પ્રવૃત્ત થવાવાળા પુરૂષ છઠ્ઠવનિકાયોની હિંસા કરે છે.

रूपं श्लोकं सर्वमेव विदिसन्तीत्याह—'पृथ्वीसत्त्वं' इत्यादि ।

पृथिवीक्षेत्रम्=पृथिव्युपमर्षकं क्षेत्रम्, क्षयते=विस्फुटते अनेनेति क्षयम्, तद् द्विविधं-द्रव्य-भाव-मेदात् । तत्र द्रव्यक्षेत्रं=स्वकायपरकायतदुभयक्षेत्रम् । भावक्षेत्रं=दुष्पयुक्तमनोभाकायक्षेत्रम्, समारमणाः=पृथिवीकार्यं प्रति म्यापातयन्तः, अन्यान् पृथिवीकायमिमान् अनेकरूपान् अपूकायदीन् स्थावरान्, हीन्द्रियादीन् त्रसांश्च विदिसन्ति ।

(६) उपमोगद्वारम्-

अगतिं सक्तु बहवो द्रव्यलिङ्गिनो विदन्ते, यथा—'वयं पञ्चमहाव्रतधारीभः

की हिंसा करता है, यह बतलाने के लिये कहते हैं—'पृथ्वीसत्त्वं' इत्यादि ।

पृथिवीकायका अर्थ है—पृथिवीकाय की हिंसा करनेवाला शक्त । जिस से हिंसा हो वह शक्त कहलाता है । शक्त दो प्रकार का है—(१) द्रव्यशक्त और (२) भावशक्त । स्वकाय, परकाय और उभय-स्वपर-कायरूपसे द्रव्यशक्त तीन प्रकार का है । मन, वचन और क्रमका दुष्प्रयोग करना भावशक्त है ।

पृथ्वीकाय का आरंभ करनेवाले, पृथिवीकाय से मिलन अनेक अपूकाय आदि स्थावर जीवों की, तथा हीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की भी हिंसा करते हैं ।

(६) उपमोगद्वारम्-

सत्तर में बहुत से द्रव्यलिङ्गी हैं । जैसे— हम पञ्चमहाव्रतधारी हैं, सब आरंभ

के जलापवा भाटे कहे थे :- पृथ्वीसत्त्वं इत्यादि ।

पृथ्वीकायनेता अर्थ है—पृथ्वीकायनी हिंसा करनेवाला शक्तो जेनाची हिंसा अर्थ शक्ते ते शक्त कहेवाय छे शक्त ये प्रकारना छे (१) द्रव्य शक्त अने (२) भाव-शक्त-स्वकाय, परकाय, अने उभय-स्व-परकायरूप द्रव्यशक्त त्रय प्रकारना छे मन, वचन अने क्रमना दुष्प्रयोग करवा ते भावशक्त छे ।

पृथ्वीकायनेता आरंभ करनेवाला पृथ्वीकायनी मिलन अनेक अपूकाय आदि स्थावर जीवोनी तथा हीन्द्रिय आदि त्रस जीवोनी यद्य हिंसा करे छे ।

(६) उपमोगद्वारम्-

स आरंभं सज्जानं द्रव्यलिङ्गी साधु छे जेची रीते " अग्नि पञ्चमहाव्रतधारी

સર્વાસ્મપરિત્યાગિનઃ षट्कायरक्षका अनगाराः (साधवः) स्मः' इति वदन्तो दण्डि-  
शाक्यादयः सन्ति । तत्र केचिद्देहशुद्धयर्थं मृत्तिकास्नायिनो भवन्ति । केचित्स्वनिवासार्थं  
गृहादिनिर्माणकरणं कुदालखनित्रादिभिः पृथिवीकायमुपमर्दयन्ति । केचित् स्वोदर-  
पूर्यर्थं कृष्यादिकर्म कुर्वन्ति । केचिच्च देवकुलाद्यर्थं सावद्यमुपदिशन्ति. पार्थिवी-  
देव-गुर्वादि-प्रतिमानिर्माणे जीर्णोद्धारकरणे च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्धारो  
भवतीति मन्यन्ते, वदन्ति च—

“ जिनभवनकारणविही, सुद्धा भूमी दलं च कट्टाई । भियगाणइसंघाणं,  
सासयवुद्धी य जयणा य ॥९॥ एयस्स फलं भणियं, इय आणाकारिणो उ सद्धेस्स ।

और परिग्रह के त्यागी हैं, षट्काय के रक्षक साधु हैं' । इस प्रकार कहने वाले दण्डी शाक्य  
आदि हैं । इन में कोई-कोई तो शरीर की शुद्धि के लिए मिट्टी से स्नान करते हैं । कोई  
अपने रहने के लिए मकान आदि बनाने में कुदाल खनित्र (कुस) आदि खोदने के साधनों  
द्वारा पृथ्वीकाय का उपमर्दन करते हैं । कोई-कोई अपना पेट भरने के उद्देश्य से खेती आदि  
करते हैं । कोई देवकुल आदि के लिए सावध उपदेश देते हैं—देव गुरु आदि की पार्थिव  
प्रतिमा निर्माण कराने से और जीर्णोद्धार कराने से भवसागर से आत्मा का तरना होता है,  
ऐसा मानते हैं और कहते हैं कि—

“ जिनभवन बनाने की विधि इस प्रकार है—“ शुद्ध भूमि, शुद्ध ईंटें,  
पत्थर, काष्ठ आदि होना, कार्य करने वाले कारीगरों को प्रसन्न रखना, अपने परिणाम  
उत्तरोत्तर चढते हुए रखकर यतनापूर्वक कार्य कराना ” इत्यादि । भगवान की आज्ञाके

છીએ સર્વ આરભ અને પરિગ્રહના ત્યાગી છીએ, ષટ્કાયના રક્ષક સાધુ છીએ' આ  
પ્રમાણે કહેવાવાળા દડી શાક્ય આદિ છે તેમા કોઈ-કોઈ તો શરીરની શુદ્ધિ માટે  
માટીથી સ્નાન કરે છે કોઈ પોતાને રહેવા માટે મકાન આદિ બનાવવામા કોઠાળી,  
કોસ આદિ ખોદવાના સાધનો દ્વારા પૃથ્વીકાયનુ ઉપમર્દન કરે છે, કોઈ-કોઈ પોતાનું  
પેટ ભરવાના ઉદ્દેશથી ખેતી કરે છે, કોઈ દેવકુળ આદિને માટે સાવધ ઉપદેશ  
કરે છે-દેવ, ગુરૂ આદિની પાર્થિવ પ્રતિમા નિર્માણ કરાવવામા અને જીર્ણોદ્ધાર કરા  
વામા ભવસાગરથી આત્મા તરી શકે છે, એવું માન છે અને કહે છે કે —

“ જિનમદિર બનાવવાની વિધિ આ પ્રમાણે છે :-શુદ્ધ ભૂમિ, શુદ્ધ ઇંટો, પથ્થર,  
કાષ્ટ આદિ જોઈએ કામ કરવાવાળા કારીગરોને પ્રસન્ન રાખવા, પોતાના પરિણામ ઉત્તરોત્તર  
અઢતા રાખીને યતનાપૂર્વક કાર્ય કરવું ” ઇત્યાદિ ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક શ્રાવકને

विषं सुहासुबंधं, निम्बामं त मिषिदेहि ॥ ४४ ॥ ( पञ्चासक टीका ७ वि )

“ मिणमवणां जे उदरति मचीइ सडियपडियाइ ।

से उदरति अप्पं, सीमाजो मवसमुद्राजो ॥ ” ( धर्मसंग्रहटीका २ अधि )

छाया—“ जिनमवन्नकारणविधि — श्लुष्या भूमिर्दलं च काष्ठादि ।

सूतकान्तिसन्धानं स्वाश्रयवृद्धिष (शोमनाश्रयवृद्धिः) पतना च ॥

एतस्य फल मभित, इत्याहाकारिणस्तु भ्रातृस्य ।

विप्र सुस्वानुबंधं, निर्वाणान्तं जिनैर्नैः ( मणितम् ) ॥ ४४ ॥

जिनमवनानि ये उदरन्ति मक्या अटिसपतितानि ।

ते उदरस्यास्मानं सीमाद् मवसमुद्रात् ” इति च ॥

तथैव शास्त्रनिषिद्धे पूजाप्रतिष्ठादिसावयकार्ये प्रवृत्त्या द्रव्यलिङ्गिनोऽपि स्वास्मानं मुनिमेष मन्यन्ते । ये पथिवीसूत्रं मयुजानाः पद्मोवनिक्रम

आरापक आरक को भगवान् ने इस का फल इस प्रकार बताया है—‘उसको क्लेशकानेक सुखों का अनुभव होता है और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है’ । ( पञ्चासकटीका ७ वि )

जो पुरुष भीमं जिनमवनो का मकिले उदार करते हैं वे भीम मवसागर से अपनी आत्मा को तारते हैं । ( धर्मसंग्रहटीका २ अधि )

इसी प्रकार शास्त्रनिषिद्ध पूजा प्रतिष्ठा आदि सावय कार्यों में प्रवृत्ति करके द्रव्यलिङ्गी भी अपने आप का मुनि मानते हैं । आशय है कि—जो लोक पृथिवी-राज्य का प्रयोग करके पद्मोवनिक्रमरूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, और भगवानका नाम लेकर स्वयं मोटी प्रकृपणा करते हैं अतः वे द्रव्य

अवधाने तेन इह वा प्रभावे अत्यन्तु उ—तेने अनेकानेक सुभोने अतुल्य भाव छे, अने परम्पराशी भोक्तनी अश्वि भाव छे ” ( पञ्चासकटीका ७ वि )

“ ने पुरुष एषु बंधेत्तुं जिनमविर तेने अश्विभी उदार कशवे छे ते अदान अवसागरशी योत्तान्ना आत्माने तारे छे ” ( धर्मसंग्रहटीका २ अधि )

आज प्रभावे शास्त्रनिषिद्ध पूजा, प्रतिष्ठा आदि सावय कार्यों में प्रवृत्ति करके द्रव्यलिङ्गी पक्ष घाने योत्ताने मुनि माने छे आशय अरे छे ई—ने लोक पृथिवीराज्यने प्रयोग करके पद्मोवनिक्रमरूप समस्त लोक की हिंसा करे छे अने अवधानतुल्य अर्थने पाते मोटी प्रकृपणा करे छे अरे ते द्रव्यलिङ्गी छे अथा

રૂપં લોકં સર્વમેવ વિદ્ધિસન્તિ તે દ્રવ્યલિંગિનો નાનગારા ઇતિ ભાવઃ, ઉક્તञ्च-

“ સાવજ્ઞા કિરિયા જેસિ, સાવજ્ઞા દેસણા તહા ।

મમંતિ દીહસંસારે, તે સવ્વે દવ્વલિંગિણો ॥ ૧ ઇતિ ॥ સૂ. ૨ ॥

એવં શાક્યાદીનાં પૃથિવીકાયોપમર્દકત્વેન દ્રવ્યલિંગિત્વં પ્રતિવોધિતં ભગવતેતિ જમ્બૂસ્વામિનં સુધર્મા સ્વામી કથયતિ—‘ તત્થે ’—ત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

તત્થે રહ્ણુઃ ભગવયા પરિણ્ણા પવેહ્ણા, ઇમસ્સ ચેવ જીવિયસ્સ પરિવંદણ-  
માણ્ણ-પૂય્ણાણ જાહ્મરણમોય્ણાણ, દુક્કવપહિઘાયહેઉં, સે સયમેવ પુઢવિ-  
સત્થં સમારંભહ્ણ, અણ્ણોહિં વા પુઢવિસત્થં સમારંભાવેહ્ણ, અણ્ણે વા પુઢવિસત્થં

લિંગી હૈં—સવ્વે અનગાર નહીં હૈં । કહા મી હૈ—

“ જિન કી ક્રિયા સાવધ હૈ ઓર જિનકા ઉપદેશ સાવધ હૈ, વે ટીર્ધ સસારમેં પરિભ્રમણ કરતે હૈ । उन सबको द्रव्यलिंगी जानना चाहिए ” ॥ સૂ. ૨ ॥

ઇસ પ્રકાર પૃથિવીકાય કા ઉપમર્દન કરને વાલે હોને સે શાક્ય આદિ કો ભગવાન્ ને દ્રવ્યલિંગી કહા હૈ । યહ વાત સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામી સે કહતે હૈ—‘ તત્થે રહ્ણુ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—ભગવાન્ ને પરિજ્ઞા કા ઉપદેશ દિયા હૈ । ઇસી જીવન કે લિપ્-  
વન્દના, માન ઓર પૂજન કે લિપ્, જન્મ ઓર મરણ સે મુક્ત હોને કે લિપ્, દુ સ્વ કા નાશ  
કરને કે લિપ્ વહ સ્વય હી પૃથિવીકાય કા આરમ કરતા હૈ, દૂસરો સે પૃથિવીકાયકા  
આરમ્ભ કરાતા હૈ, ઓર પૃથિવીકાયકા આરમ કરને વાલે દૂસરો કા અનુમોદન કરતા હૈ ।

અણ્ણગાર—સાધુ નથી કહ્ણુ છે કે —

“ જેની ક્રિયા સાવધ છે, અને જેનો ઉપદેશ સાવધ છે, તે ટીર્ધ સસારમા પરિભ્રમણ કરે છે. તે સર્વને દ્રવ્યલિંગી જાણવા જોઇએ ” (સૂ. ૨)

એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયનુ ઉપમર્દન—નાશ કરવાવાળા હોવાથી શાક્ય આદિને ભગવાને દ્રવ્યલિંગી કહ્યા છે આ વાત સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે—‘ તત્થે ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાનો ઉપદેશ આપ્યો છે, આ જીવનને માટે, વદના,  
માન અને પૂજન માટે, જન્મ અને મરણથી મુક્ત હોવાના માટે, દુ ખનો નાશ કરવા  
માટે તે પોતે જ પૃથ્વીકાયનો આરભ કરે છે, બીજાથી પૃથિવીકાયનો આરભ કરાવે  
છે, અને પૃથ્વીકાયનો આરભ કરનાર બીજાને અનુમોદન આપે છે. તે આરભ તેના

समारम्भे समणुजाणः । त से अहियाप, तं से अपोहीप ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र स्वस्तु मगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य  
परिबन्धन-मानन-पूजनाय, भाति-मरण-मोक्षनाय दुःस्वप्रतिपातहेतुं, स स्वयमेव  
पृथिवीक्षस्त्रं समारम्भे, अन्यैर्वा पृथिवीक्षस्त्रं समारम्भयति, अन्पान् वा  
पृथिवीक्षस्त्रं समारम्भमाणान् समनुनानाति । तत् तस्य अहिताय, तत् तस्य  
अपौषये ॥ सू ३ ॥

टीका—

तत्र=पृथिवीकायसमारम्भे मगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यग्बोधः  
स्वस्तु प्रवेदिता=प्रबोधिता । कर्मबन्धसमुन्नेदार्थं जीवेन परिज्ञाञ्जस्यं क्षरणीकरणी  
येति मगवता प्रबोधितमिति भावः । परिज्ञा द्विविधा, इ-प्रत्याख्यान-वेदात् ।  
'सावयव्यापार एव कर्मबन्धस्य कारण-मिति ज्ञानं-इ-परिज्ञा, तद्व्यापारपरित्याग'  
-प्रत्याख्यानपरिज्ञा ।

यह अर्थ उक्त अहित के लिए और उसको अपोषि के लिए है ॥ सू. ३ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय के समारम्भ के विषय में मगवान् श्री महावीर स्वामीने  
सम्यग्बोधरूप परिज्ञा का सदुपदेश दिया है । सात्पर्य यह है कि-कर्मबन्ध को नष्ट  
करने के लिए जीव को यह परिज्ञा अस्तव ही स्वीकार करनी चाहिए, ऐसा मगवान्ने  
कहा है । परिज्ञा दो प्रकार की है—इ-परिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा । सावयव व्यापार  
से ही कर्मबन्ध का कारण होता है' ऐसा जानना इ-परिज्ञा है, और सावयवव्यापार का त्याग  
करना प्रत्याख्यान-परिज्ञा है ।

अहित भाटे अने ते तेनी जगिधि भाटे छे (३)

टीका—पृथिवीकायस्य समारम्भस्य निबन्धनं कर्मबन्धं श्री महावीर स्वामीने  
सम्यग्बोधरूप परिज्ञानेन सदुपदेशेन व्याख्याते । सात्पर्यं यत् यत् इ-कर्मबन्धने नाश  
करने भाटे छे ते परिज्ञा अवरुधक स्वीकार करनी जेहि छे, जे प्रमाणे कर्मबन्धने  
हेतु छे परिज्ञा जे प्रकार्णी छे इ-परिज्ञा, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञा । सावयव व्यापारस्य  
कर्मबन्धुं कारणं भाव छे जे प्रमाणे अस्तु ते इ-परिज्ञा छे अने सावयव  
व्यापारने त्याग करवे ते प्रत्याख्यान-परिज्ञा छे ।

जीवः कस्मै प्रयोजनाय पृथिवीकायं प्रति सावद्यव्यापारं करोती ?-त्याह-  
 'इमस्स चेवे'-त्यादि । अस्यैव विद्युत्ताविलासवत्क्षणभङ्गस्य जीवितस्य जीवन-  
 स्वार्थे चिरसुखार्थ, प्रासादसदनादिरचनार्थ, गमना-गमना-वस्थानो-पवेशन-पार्श्व-  
 परिवर्तन-पुत्तलिकाप्रतिमादिकरणो-चारप्रसवणादिकरणो-पकरणदिग्रहणनिक्षेपणा-  
 ऽऽलेपन-प्रहरण-भूपण-क्रय-विक्रय-कृषिकरण-भाण्डादिनिर्माणाद्यर्थमित्यर्थः । तथा  
 परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशसा, तदर्थं यथा \*आश्चर्यगृहादि

जीव किस प्रयोजनके लिये पृथिवीकाय के विषय में सावद्य व्यापार करता है ? तो  
 बतलाते है—

विजली की चमक के समान इस क्षणविनम्र जीवन के चिरकालीन सुख के उद्देश  
 से महल, मकान आदि का निर्माण कराने के लिए, अथवा गमन, आगमन, अवस्थान  
 (स्थित रहना), उपवेशन (बैठना), पार्श्व-परिवर्तन (पसवाडा बदलना), पुतली बनाना,  
 प्रतिमा बनाना, मल-मूत्र त्यागना, उपकरण आदि ग्रहण करना, रखना, लेपकरना, प्रहण  
 करना, सजाना, खरीदना, बेचना, खेती करना, तथा वर्तन आदि बनाना, इत्यादि  
 कार्यों के लिए सावद्य व्यापार किया जाता है ।

इस के अतिरिक्त परिवन्दन मानन और पूजन के लिए भी सावद्य व्यापार  
 किया जाता है । परिवन्दन अर्थात् प्रशसा के लिए, जैसे आश्चर्यगृह (आजायव घर)

एव कथा प्रयोजन भाटे पृथ्वीकायना विषयमा सावद्य व्यापार करे छे ? ते  
 अतावे छे —

विजलीना चमकाशानी समान आ क्षणवशुर एवतना चिरकालीन (लाभा  
 समय सुधी) सुभना उद्देशशी, मडेव मकान आदि अनाववाने भाटे, अथवा गमन,  
 आगमन, अवस्थान, (स्थित रहेवुं) उपवेशन, (भिसवु) पार्श्व-परिवर्तन, (पडभा-  
 अदलवा) पुतली अनाववी, प्रतिमा अनाववी, मल-मूत्र त्याग करवा, उपकरण आदि  
 अडवुं करवुं, राखवुं, लेप करवा, अडरवुं करवुं, सजववुं, अरीदवुं, बेचवुं, खेती  
 करवी तथा वासवुं अनाववा, इत्यादि कार्योंने भाटे सावद्य व्यापार करवामा आवे छे

ते सिवाय परिवन्दन मानन अने पूजन भाटे पण सावद्य व्यापार करवामा आवे छे  
 परिवन्दन अर्थात् प्रशसा भाटे जेम आश्चर्यगृह-(अजयव घर) आदि अनाववामा

\* आश्चर्यगृहम्-‘म्युन्नियम’ ‘अजायवघर’ इति भाषाप्रसिद्धम् ।



करणे, माननं=जनसत्कार, तदर्थ, यथा-कीर्तिस्तम्भादिकरणे पूजनं=बखरस्तादि-  
पुरस्कारलामस्तदर्थ, यथा-शिरिपना रामदेवप्रतिमादिरचने । आतिमरणमोक्ष  
नाय-मातिः=मन्त्र, तदर्थ भवान्तरसुगन्धात्पर्यं देवकुलादिकरणे, मरण=  
मरणं येषां जातं तदर्थं मृतपित्रादिस्मरणार्थमित्यर्थः, यथा स्तूपपैत्यादि-  
करणे, मोक्षनं=मुक्तिस्तदर्थ, यथा-देवमथनप्रतिमादिकरणे । यथा आतिमरण  
मोक्षनाय=मन्त्रमरणविमुक्तये । तथा दुःखमतिपातहतं=दुःखविघ्नसार्थ, यथा

आदि बनवानेसे प्रशंसा होती है । मानन बर्खा बन्ताद्वारा मित्रने बखर सत्कार । उष सत्कार  
के लिए कीर्तिस्तम्भ ( मेमोरियल ) आदि बनवाकर समारम्भ करते हैं । पूजन का अर्थ है-  
बखर या रत्न आदि का पुरस्कार पाना । जैसे मिन्नी स्त्रेण पुरस्कार पाने के उद्देश्य से राजा  
या देवता की प्रतिमा बनाते हैं ।

अन्त, मरण और मुक्ति के लिए भी पृथ्वीकायका समारम्भ किया जाता है । अन्त  
के लिए जैसे भवान्तर में सुख पाने के लिए देवकुल आदि का निर्माण करने में और मृत्यु  
के लिए जैसे मृत पिता आदि का स्मारक ( स्तूप-शिर ) बनवाने में, और मोक्षन के अर्थ  
मुक्ति के लिए देवमथन एवं उनकी प्रतिमा बनवाने में, जबवा अन्त-मरण-  
मोक्षन का अर्थ है-अन्त और मरणसे मुक्त होना, उष के लिए पृथ्वीकाय का  
समारम्भ करते हैं ।

तथा दुःखका नाश करने के लिए भी पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं, जैसे

आरभ्य हरे उ मानन अर्थात् जनता द्वारा भजवावाणे सत्कार, ते अक्षर भाटे-  
कीर्तिस्तम्भ ( मेमोरियल ) आदि बनवाने समारम्भ हरे उ पूजनने अर्थ उ-वख  
अथवा रत्न आदिने पुरस्कार प्राप्त करवाते ते भाटे शिरिपिना रामदेवतादी  
प्रतिमा बनाववाभा समारम्भ हरे उ

अन्त भरजु मोक्षन ( मुक्ति ) भाटे पञ्च पृथ्वीकायने समारम्भ करवाभा आवे  
उ अन्तना भाटे लेभ बनवा-वर्षाभा सुख प्राप्त करवा भाटे देवकुल आदिना निर्माण  
करवावाभा, अने मृत्यु भाटे लेभ मृत पिता आदिनि स्मारक स्तूप-शिर बनाववाभा,  
मोक्षन अर्थात् मुक्तिने भाटे देवमथन अथवा तेनी प्रतिमा बनाववाभा, अथवा अन्त-  
मरण-मोक्षनने अर्थ उ-अन्त अने मरणसे मुक्त बनने भाटे पृथ्वीकायने समारम्भ हरे उ

तथा दुःखने नाश करवा भाटे पञ्च पृथ्वीकायने समारम्भ हरे उ लेभ-मोक्षन

ગ્રીષ્મતાપાદિનિવારણાર્થ, સ્વચક્રપરચક્રમયનિવૃત્ત્યે ચ ભૂમિગૃહમાકારાદિરચને ।  
 સઃ=જીવનપરિવન્દનમાનનપૂજનાદ્યર્થે જનઃ સયમેવ પૃથિવીશ્ચ  
 સમારમ્ભતે=પૃથિવ્યુપમર્દક દ્રવ્યભાવશ્ચ વ્યાપારયતિ । અન્યૈર્ના પૃથિવીશ્ચ  
 સમારમ્ભયતિ=અધોજયતિ પૃથિવીશ્ચ સમારમમાણાન્ અન્યાન્ સમનુજાનાતિ=  
 અનુમોદયતિ ।

एममतीतानागताभ्यां, तथा मनोवाक्यैश्च पृथिवीशस्त्रसमारम्भ-  
 भेदा अवगन्तव्याः ।

(૭) वेदनाद्वारम्—

पृथिवीशस्त्रं समारममाणः किं फल प्राप्नोतीत्याह—‘त से अहियाए’ इत्यादि ।

ગ્રીષ્મ કે તાપ સે વચને કે લિપ, અથવા સ્વચક્ર ઓર પરચક્ર કે મયકી નિવૃત્તિ, કે લિપ,  
 મોહરા યા ચહારદીવારી ( પ્રકોટા ) વનવાના । ઇસ પ્રકાર જીવન પરિવન્દન માનન ઓર પૂજન  
 આદિ કે લિપ મનુષ્ય સ્વય હી પૃથ્વીશસ્ત્રકા સમારમ્ભ કરતા હૈ અર્થાત્ પૃથિવી કા ઘાત કરને  
 વાલે દ્રવ્ય ઓર ભાવશસ્ત્ર કા વ્યાપાર કરતા હૈ ઓર પૃથિવીશસ્ત્ર કા પ્રયોગ કરને કરાનેવાલે  
 દૂસરો કા અનુમોદન કરતા હૈ ।

इस प्रकार अतीत और अनागत से तथा मन, वचन और कायसे पृथिवीशस्त्र के  
 आरम्भ के भेद समझलेने चाहिए

(૭) वेदनाद्वार-

पृथिवीशस्त्र का आरम्भ करनेवाला क्या फल पाता है ? सो कहते हैं—‘त से  
 अहियाए’ इत्यादि ।

તાપથી અથવા માટે અથવા સ્વચક્ર અને પરચક્રના ભયની નિવૃત્તિ માટે લોચરા  
 અથવા કોટ બનાવવા

આ પ્રમાણે ઇવન, પરિવદન, માનન, અને પૂજન આદિ માટે મનુષ્ય પોતેજ  
 પૃથ્વી-શસ્ત્રનો સમારભ કરે છે અર્થાત્ પૃથ્વીનો ઘાત કરવાવાળા દ્રવ્ય અને ભાવ  
 શસ્ત્રના વ્યાપાર કરે છે તથા ધીજન પાસે પૃથ્વીશસ્ત્રનો વ્યાપાર કરાવે છે અને  
 પૃથ્વીશસ્ત્રનો પ્રયોગ કરવાવાળા ધીજને અનુમોદન આપે છે

આ પ્રમાણે અતીત અને અનાગત (ભૂત-ભવિષ્ય)થી તથા મન, વચન અને  
 કાયાથી પૃથ્વીશસ્ત્રના આરભના ભેદોને સમજ લેવા જોઈએ

(૭) वेदनाद्वार-

पृथिवीशस्त्रનો આરભ કરવાવાળા શું ફળ પામે છે ? તે કહે છે—‘ત સે અહિયાए’  
 ઇત્યાદિ.

तत्-पृथिवीकायसमारम्भे तस्य=पृथिवीस्य समारम्भात् तस्य  
 वायु=मकल्याणाय भवतीति श्लेषः । तत्-तदेव च पृथिवीकायसमारम्भमेव च  
 तस्य पृथिवीस्य समारम्भात् तस्य भवोषमे=सम्यक्प्रसादात्, जिनधर्मप्राप्त्यभावात्  
 च भवति । पृथिवीकायसमारम्भे हि कृतकारिणानुमोदितमेवेन विधिं,  
 तस्मात्तीव्रवर्तमानानागतमेवेन प्रत्येक वैश्वे मया भवति नभविष्यापि  
 पृथिवीकायसमारम्भस्य मनोवाक्ययोगमेवेन प्रत्येक वैश्वे सप्तविंशति  
 मैत्रा भवन्ति । एवंविधपृथिवीकायसमारम्भप्रवृत्तः सन्तु पदकापारम्भसंपातमन्य-  
 घोरतरपुरितार्जनेन दुरन्तससारदावानसञ्जामन्तपातं प्राप्यान्तन्तरकनिगोडादि  
 दुःखमनुभवन् न कदाचित्कस्यापि शान्तसुखमद् मोक्षमाग प्राप्नोतीति भावः ॥३॥

यह पृथिवीकाय का आरंभ करने वाले के अहित के लिए और भवोषि के  
 लिए होता है । अर्थात् आरंभ करने से सम्यक् और जिनधर्म की प्राप्ति नहीं होती है ।

पृथिवीकाय का आरंभ-करना कराया, और अनुमोदन के सेव से तीन प्रकार का  
 है । इन तीनों में से के अतीव बलवान और बलागत के सेव से तीन-तीन सेव करने पर  
 आरंभ नौ प्रकार होता है । इन नौ में से का मन, बलन और काम से गुणाकार कर देने  
 पर सत्तास सेव हो जाते हैं ।

इस प्रकार के पृथिवीकाय के आरंभ में प्रवृत्त पुरुष छोटे कार्यों का आरंभ करता  
 है और अत्यन्त घोर पाप उपादन करके दुरन्त ससाररूपी दावानसकी आकाशों में पड़कर  
 नरक निगोद आदि के दुःख मोक्षों हुआ न कभी कस्यापि की प्राप्ति करता है और न  
 शान्त सुख देनेवाले मोक्षमाग को पाता है ॥ ३ ॥

ते पृथ्वीकायने आरंभ-करवावाजाना अहित भाटे जाने अयोधिने भाटे श्लेष  
 के अर्थात्-आरंभ-करवावी सम्भूतप जाने जिनधर्मनी प्राप्ति नहीं।

पृथ्वीकायने आरंभ-करवावे, करवावे जाने करवावाजाने अनुमोदन आपवे।  
 पवेरेना सेवशी त्रय प्रकारने छे जे त्रयेव सेदोना भूतकाण, कनिष्ठाकाण जाने नर  
 मानकाणना सेवशी त्रय त्रय सेव करवावी आरंभ नव प्रकारने छे जे नव सेदोने  
 मन, बलन जाने काम, जे त्रयशी शुद्धव बटे करी सत्तावीश सेव करी जाय छे

जो प्रमाद्ये पृथ्वीकायना समारंभमां प्रवृत्त पुरुष छे कोनेने आरंभ करे छे  
 जाने अत्यन्त घोर पाप उपादन करीने दुरन्तससाररूपी दावानसनी क्वालाकोमां  
 पडीने, नरक-निगोद आदिनां दुःख मोक्षतां कोरि बलवत् पद कस्यापि प्राप्ति करी  
 सकत नहीं जाने शान्त सुख देवावाणा मोक्षमार्गने पद प्राप्त सता नहीं। (३)

(૮) નિવૃત્તિદ્વારમ્

येन तु तीर्थकरादीनां समीपे पृथिवीकायजीवस्वरूप ज्ञातं स एवं विजानाती-  
त्याह—‘से त संवुज्झमाणे ’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

સે તં સંવુજ્ઝમાણે આયાણીય સમુદ્વાય સોઝા સ્વલુ મગવઓ અળગારાણં અતિએ । ઇહમેગે સિણાયં મવડ-એસ સ્વલુ ગંથે, એસ સ્વલુ મોહે, એસ સ્વલુ મારે, એસ સ્વલુ ણરણ, ઇચ્છત્યં, ગદ્દિએ લોણ્ જમિણં ચિસ્વસ્વેર્હિ સત્થેર્હિ પુઠ્ઠવિકમ્મસમારંમેણં પુઠ્ઠવિસત્થ સમારંમમાણે અણ્ણે અણેગસ્વે પાણે વિર્હિસડ ॥ સુ. ૪ ॥

छाया—

स तत् संवुध्यमान आदानीय समुत्याय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणा-  
मन्तिके इहैकेपां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः,  
एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण  
पृथिवीशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्रणान् विर्हिसति ॥ सू. ४ ॥

(૯) નિવૃત્તિદ્વાર-

जिसने तीर्थकर आदिके समीप में पृथिवीकाय के जीवों का स्वरूप जान लिया है,  
वह इस प्रकार जानता है—‘से तं’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो पुरुष तीर्थकर भगवान् के अथवा अनगारों के निकट उपदेश सुनकर  
समझता है और उपादेश ( चारित्र ) को अङ्गीकार करके विचरता है उसे ज्ञात हो जाता है कि  
पृथिवीकायका यह आरभ ग्रथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है । इस में आसक्त  
पृथ्वीशस्त्र का आरभ, करने वाला लोक तरह-तरह के शस्त्रों से पृथ्वीकायका आरभ करके  
अन्य अनेक प्रकार के प्राणीकी हिंसा करता है ॥ सू. ४ ॥

(૯) નિવૃત્તિદ્વાર

જેણે તીર્થ કર આદિના સમીપમા પૃથ્વીકાયના જીવોનું સ્વરૂપ જાણી લીધું છે,  
તે આ પ્રમાણે જાણે છે—‘સે તં ’ ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—જે પુરુષ તીર્થ કર ભગવાનની અથવા અજ્ઞાતોની સમીપ ઉપદેશ  
સાભળીને સમજે છે, અને ઉપાદેશ (ચારિત્ર)ને અંગીકાર કરીને વિચરે છે, તેને માલુમ  
પડે છે કે—પૃથ્વીકાયનો આરભ એ અથ છે, એ મોહ છે, એ માર છે, એ નરક છે,  
એમા આસક્ત પૃથ્વીશસ્ત્રનો આરભ કરવાવાળા જાત-જાતના શસ્ત્રથી પૃથ્વીકાયનો  
આરભ કરીને અન્ય અનેક પ્રકારના પ્રાણીઓની હિંસા કરે છે (૪)

॥ टीका ॥

यः खलु भगवतः=श्रीरघुकरस्य, अनगारागाम्=उद्गीयभ्रमणनिर्भन्वानाम्,  
 मन्तिके=समीपे, भ्रुत्वा=उपदेशं निश्चय्य, आशानीयम्, उपादेय सर्वसाधयोग-  
 परित्यागरूप चारित्र्यं समुत्पाप=भङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=पृथिवीकायसमारम्भम्  
 संबुध्यमानः=अहिताबोधिमनस्कत्वेन विज्ञात्वा मञ्जरीति ।

स हि एवं चिन्तयति-इह मनुष्यलोके एकेषां=भ्रमणनिर्भन्वोपदेशसमाप्त  
 सम्पन्नबोधवैराग्याभामास्मारिणामेष ज्ञातं=विदित ममति । किं ज्ञातं मन्वी ?-  
 त्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु गंधे' इत्यादि ।

एषः पृथिवीसमारम्भः खलु=निश्चयेन मन्यः=ग्रह्यते=बध्यतेऽनेनेति  
 ग्रन्थः=अष्टविधकर्मग्रन्थः । कारणे कार्योपचारात् पृथिवीसमारम्भस्य

टीकार्थं—जो भगवान् श्रीरघु के या उनके निर्गम भ्रमण के समीप उपदेश  
 सुनकर उपादेय को अर्थात् सर्वसाधयोग के त्यागरूप चारित्र्य को भङ्गीकार करके विचरता  
 है वह पृथ्वीकायके समारम्भ को अद्विष्टकर और अवोधिबन्ध समझता है ।

वह इस प्रकार विचार करता है—इस मनुष्य लोक में भ्रमण निर्भन्व्या के उपदेश  
 से किन्हीं सम्पन्नज्ञान और वैराग्य हो गया है उस अर्थात् पुरुषा को ही ज्ञात होता है ।  
 उन्हें क्या ज्ञात होता है ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं—'एष खलु गंधे'  
 इत्यादि ।

वह पृथ्वीकाय का समारम्भ निश्चय ही प्रथम है अर्थात् आठ प्रकार के कर्मोका प्रथ  
 म है । कारण में कार्यका उपचार करके पृथिवीकाय के समारम्भ को यही ग्रन्थ कहा है ।

टीकार्थं—जो भगवान् श्रीरघुकरस्य अथवा तेना निर्भन्व्य भ्रमणोन्नी समीप  
 उपदेश सुनणी उपदेशने अर्थात् सर्वसाधयोगना त्यागरूप चारित्र्यने भङ्गीकार  
 करिनि विचरे छे, ते पृथ्वीकायना समारम्भने अद्विष्टकर अने अवोधिबन्ध समझे छे

तेना प्रमाद्ये विचार करे छे हे-अथ मनुष्य लोकमें भ्रमण निर्भन्वीना उपदेशशी  
 लेने सम्पन्नज्ञान अने वैराग्य वर्ध जये छे ते आत्माधीं पुरुषोने अ लक्ष्यार्थों होय छे

ते शु लक्ष्यार्थों होय छे ? जेनी सहा यतां कहे छे—'एष खलु गंधे' इत्यादि  
 आ पृथ्वीकायने समारम्भ निश्चय्य प्रथम छे । अर्थात् आठ प्रकारना कर्मोने अथ छे आठव्या  
 कर्मोने उपचार करिने पृथ्वीकायना समारम्भने अद्विष्ट कर कयो छे आशय जे छे—

ગ્રન્થરૂપત્વમ્, એવમગ્રેડપિ વોધ્યમ્ । તથા-એવ એવ પૃથિવીસમારમ્ભઃ મોહઃ=વિપર્યાસઃ,  
વિપરીતજ્ઞાનરૂપઃ । તથા-એવ એવ મારઃ=મરણમ્ નિગોદાદિમરણરૂપઃ । તથા-એવ  
સ્વલુ નરકઃ=નારકજીવાનાં દશવિધયાતનાસ્થાનમ્ । હત્યર્થમ્=એતદર્થ કર્મવન્ધ-મોહ  
-મરણ-નરકરૂપં ઘોરં દુઃસ્વકલં પ્રાપ્ય પુનઃ પુનરેતદર્થમેવ લોકઃ=અજ્ઞાનવશવર્તી  
જીવઃ ગૃદ્ધઃ=લિપ્સુરસ્તિ । યદ્વા ગૃદ્ધઃ=વિષયમોગાસક્તઃ લોકઃ=સંસારી જીવઃ હત્યર્થ  
=એતદર્થમેવ-કર્મવન્ધમોહમરણનરકાર્થમેવ પ્રવર્તેતે ।

યદ્યપિ-વિષયમોગાસક્તો લોકઃ શરીરાદિપરિપોષણાર્થ પરિવન્દનમાનન-  
પૂજનાર્થ જાતિમરણમોચનાર્થ દુઃસ્વપ્રતિઘાતાર્થ ચ પૃથિવીશસ્ત્રસમારમ્ભં કરોતિ

આશય યહ હૈ કિ આરમ્ભ-ગ્રન્થ (બધ) કા કારણ હોને સે ગ્રન્થ કહા ગયા હૈ । હસી પ્રકાર  
કા ઉપચાર આગે કે કથન મેં મી સમજ્ઞ લેના ચાહિદ્ ।

યહ પૃથિવીકાયસમારમ્ભ મોહ અર્થાત્ વિપર્યાસ હૈ-વિપરીત જ્ઞાનરૂપ હૈ, તથા યહી  
આરમ્ભ, નિગોદ આદિ મરણરૂપ હૈ । તથા યહી આરમ્ભ નરક હૈ અર્થાત્ નારકી જીવોં કે  
લિદ્ દશ પ્રકાર કી ક્ષેત્ર વેદનાઓં કા સ્થાન હૈ । હસ સમારમ્ભ કે કારણ કર્મબધ, મોહ, મરણ  
એવ નરકરૂપ ઘોર દુઃસ્વમય ફલ પ્રાપ્તકર કે મી અજ્ઞાની લોગ વાર-વાર હસી કી ઈચ્છા કરતે  
હૈ । અથવા સસારી જીવ વિષયમોગોં મેં આસક્ત હોતા હૈ અર્થાત્ કર્મવન્ધ, મોહ, મરણ ઓર નરક  
કે લિદ્ હી અજ્ઞાની જીવ પ્રવૃત્તિ કરતે હૈ ।

વિષયમોગોં મેં આસક્ત જીવ યદ્યપિ શરીર આદિ કો પુષ્ટ કરને કે લિદ્  
પરિવન્દન, માનન ઓર પૂજન કે લિદ્, જન્મ મરણ સે મુક્ત હોને કે લિદ્, દુઃસ્વ કા

આરભ-અથ (બધ)નુ કારણ હોવાથી ગ્રન્થ કહ્યો છે, આ પ્રમાણેનો ઉપચાર આગળના  
કથનમા પણ સમજી લેવો જોઈએ

આ પૃથ્વીકાય-સમારભ મોહ અર્થાત્ વિપર્યાસ છે, વિપરીતજ્ઞાનરૂપ છે, તથા  
એ આરભ નિગોદ આદિ મરણરૂપ છે તથા એ આરભ નરક છે અર્થાત્ નારકીના  
જીવો માટે હસ પ્રકારની ક્ષેત્ર વેદનાઓંનુ સ્થાન છે આ સમારભના કારણે કર્મબધ,  
મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની લોક  
વારવાર તેની ઈચ્છા કરે છે અથવા સસારી જીવ વિષયમોગોમાં આસક્ત થાય છે,  
અર્થાત્ કર્મબધ, મોહ, મરણ અને નરકના માટેજ અજ્ઞાની જીવ તેમા પ્રવૃત્તિ કરે છે

વિષયમોગોમા આસક્ત જીવ હજી પણ શરીર આદિને પુષ્ટ કરવા માટે પરિવન્દન,  
માનન, અને પૂજનને માટે, જન્મ મરણથી મુક્ત થવા માટે દુઃખનો નાશ કરવા માટે,

तथापि तत्फलं कर्मबन्धमोहमरणनरकरूपमेव लभन्ते, अतः पृथिवीकर्मसमारम्भस्य तदेव फलं भवतीति भावः । इत्यर्थमिति प्रयोगस्तु यथा—अयं संसारी लोको ज्ञायते मरणायैव, ध्रियते च जननायैव, इति, एतत् ।

श्लोकं पुनः पुनः कर्मबन्धमोहमेव लिप्सुरस्ति, तदर्थमेव प्रवर्तते वा, इति प्रतिज्ञायां हेतुमाह—'अमिषं' इत्यादि ।

यत्=यस्मात्=विरूपरूपैः = नानाविधैः शब्द = स्वकायपरकायतदुभयरूपैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण=पृथिव्युपमर्दकसावधस्यापारकरोमेव, यद्वा—पृथिवीकायमुद्दि-  
र्याद्येविकर्मसमुत्पादकसावधस्यापारोमेव, इमं = पृथिवीकार्यं विहितस्ति,

विनाश करने के लिए, पृथिवीशब्द का आरंभ करता है तथापि इस आरंभ का फल उसे कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक के रूप में ही मिलता है । अतः एक व्यक्त्य यह है कि—कोई किसी भी अमिषता से पृथिवीकायका आरंभ करे मगर फल तो वही कर्म-  
बन्ध आदि ही होगा । (इत्यत्र) इस का प्रयोग यह मतज्ञान के लिए किया गया है—एक संसारी जीव उत्पन्न होता है मरण के लिए और मरता है जन्मन के लिए, इसी प्रकार यह प्रयोग है ।

श्लोक बारम्बार कर्मबन्ध आदि के लिए ही अमिषता ही है, अथवा—कर्मबन्ध के लिए ही प्रवृत्ति करता है । इस प्रतिज्ञा में हेतु कहते हैं—'अमिषं' इत्यादि ।

बिना कारण से गूढ (आसक्त) श्लोक नाना प्रकार के शक्तों से—स्वकाय परकाय और उभयकायरूप शक्तों से—पृथिवीकाय का समारंभ करके अर्थात् पृथिवीकाय की हिंसा करने वाला सावध व्यापार करके, अथवा पृथिवीकाय का निमित्त से आठों कर्म—जनक सावध

पृथ्वीकायने आरंभ करे छे तो पशु ते आरंभनु ह्य तेने कर्मलभ मोह मरण जने नरकना इवमांश भवे छे जे भाटे आशय जे छे के—कोई कर्म पशु जनि सावधी पृथ्वीकायने आरंभ करे परन्तु ह्य तो ते कर्मलभ अहित करे ।

'इत्यत्र जेने प्रयोग जे जतावना भाटे, कर्मो छे के ज्ञा संसारी एव उत्पन्न यद्य छे मरवाने भाटे जने मरे छे ते ज भ वेना भाटे, ज्ञा प्रमाद्ये जे प्रथम छे

तोके बारम्बार कर्मलभ आदि भाटे अमिषतापी छे अथवा कर्मलभ भाटे प्रवृत्ति करे छे । ज्ञा प्रतिज्ञायां हेतु कहे छे—अमिषं इत्यादि

जे आरंभधी गूढ आसक्त तोके नाना प्रकारना शक्तोभी—स्वकाय, परकाय जने उभयकाय रूप शक्तोभी—पृथ्वीकायने समारंभ करीने अर्थात् पृथ्वीकायनी हिंसा इत्याद्याना सावध व्यापार करीने अथवा पृथ्वीकायना निमित्तभी आठ कर्मोने उत्पन्न करनार सावध व्यापारधी

छिनत्ति, भिनत्ति, प्राणरहितं करोति गृद्धो लोक इत्यादि । तथा पृथिवीशस्त्र= पृथिव्युपमर्दकं शस्त्र स्वकायपरकायतदुभयरूपं समारभमाण=व्यापारयन् अन्यान्= अपृकायादीन् अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावराश्च, प्राणान्=प्राणिनो विहितस्ति । पृथिवीकार्यहिंसया पृथिवीवनिकायरूपं लोक सर्वमेव प्रणिहन्तीति घोरतरं दुरितं कुर्वन् पुनः पुनः कर्मबन्धादिनरकान्तं प्राप्यापि तदर्थमेव प्रवर्तते न पुनर्मोक्षायैति भावः ॥ सू. ४ ॥

ननु पृथिवीकायजीवानां श्रोत्रनेत्रघ्राणरसनेन्द्रियाणि न सन्ति, नापि मनस्तेपा, कथं तर्हि दुःखवेदना संभवति ? ततश्च पृथिवीकायसमारम्भिणा

व्यापार से इस पृथिवीकाय का हनन करता है, छेदन करता है, भेदन करता है, उसे प्राणहीन बनाता है । तथा पृथिवीकाय के स्वकाय, परकाय, और उभयकायरूप शस्त्रों का उपयोग करता हुआ अपृकाय आदि अनेक त्रस स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है ।

तात्पर्य यह है कि—पृथिवीकाय की हिंसा के द्वारा समस्त पृथिवीवनिकायरूप लोक की हिंसा करता है । इस प्रकार अत्यन्त घोर पाप करता हुआ वारवार कर्मबन्ध करता है और यहाँ तक कि नरक को प्राप्त करके भी नरक के लिए ही प्रवृत्ति करता है, मोक्ष के लिए नहीं ॥ सू. ४ ॥

पृथिवीकाय के जीवों में श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना—इन्द्रिय और मन नहीं है, फिर उन्हें दुःख का अनुभव कैसे हो सकता है ? और ऐसी अवस्था में पृथिवीकाय का आरम्भ करनेवालों को कर्मबन्ध क्यों होता है ? इस शका का समाधान

आ पृथिवीकायनेना घातं करोति छेदनं करोति वेदनं करोति, तेने प्राणुहीनं भवति । तथा पृथिवीकायना स्वकाय, परकाय अने उभयकायरूप शस्त्रेणो उपयोगं करोति यथा अपृकाय आदि अनेक त्रस—स्थावर प्राणियोंकी हिंसा करोति ।

तात्पर्य ये छेदके—पृथिवीकायनी हिंसा द्वारा समस्त पृथिवीवनिकायरूप लोककी हिंसा करोति । आ प्रमाद्ये अत्यन्त घोर पाप करीने वारवार कर्मबन्ध करोति । अने त्या सुधी के नरकने प्राप्त करीने पणु नरक भाटे न प्रवृत्ति करोति, मोक्ष भाटे करता नहीं (४)

पृथिवीकायना लोभेना श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना—इन्द्रिय अने मन नहीं, तो पछी तेने हुअने अनुभव केवी रीते थर शकसे ? अने केवी अवस्थाया पृथिवीकायनेना आरम्भ करवावाजाने कर्मबन्ध केम थर शकसे ? आ शकायुं



कथं कर्मबन्धः ? इति मित्रासायामाह—' से वेमि ' इत्यादि ।

( मूलम् )

से वेमि-अप्येगे अषमम्मे, अप्येगे अषमम्मे, अप्येगे पायमम्मे, अप्येगे पायमम्मे अप्येगे गुफमम्मेर, अप्येगे खंषमम्मेर, अप्येगे ज्ञाणुमम्मेर, अप्येगे उरुमम्मेर, अप्येगे कडिमम्मेर, अप्येगे णामिमम्मेर, अप्येगे उपरमम्मेर, अप्येगे पासमम्मेर, अप्येगे पिडिमम्मेर, अप्येगे उरमम्मेर, अप्येगे डिययमम्मेर, अप्येगे यषमम्मेर अप्येगे खंषमम्मेर, अप्येगे बाहुमम्मेर, अप्येगे इत्यमम्मेर, अप्येगे अणुसिमम्मेर, अप्येगे बहमम्मेर, अप्येगे गीबामम्मेर, अप्येगे ह्युयमम्मेर, अप्येगे होट्टमम्मेर, अप्येगे दंतमम्मेर, अप्येगे जीहमम्मेर, अप्येगे ताष्टमम्मेर, अप्येगे गल्लमम्मेर, अप्येगे गीहमम्मेर, अप्येगे कल्लमम्मेर, अप्येगे णासमम्मेर, अप्येगे अष्टिमम्मेर, अप्येगे मसुहमम्मेर, अप्येगे णिडालमम्मेर, अप्येगे सीसमम्मे, अप्येगे संपमारए अप्येगे उरुए ॥ सू ५ ॥

( छाया )

अथ धीपीमि-अप्येकः अन्यमामिन्धात् अप्येकः अन्यमाच्छिन्धात् । अप्येकः पादमामिन्धात्, अप्येकः पादमाच्छिन्धात् । अप्येकः गुत्फमामिन्धात्, अप्येकः पङ्कामामिन्धात्, अप्येकः जानु आमिन्धात्, अप्येकः उरु आमिन्धात्, अप्येकः कटिमामिन्धात्, अप्येकः नामिमामिन्धात्, अप्येकः उदरमामिन्धात्, अप्येकः पार्श्वमामिन्धात्, अप्येकः पृष्ठिमामिन्धात्, अप्येकः उर आमिन्धात्, अप्येकः

कर्म के लिए सूत्र कहते हैं— से वेमि इत्यादि ।

मूसार्य-नी कदवा हैं-कोई कदवे को मेदे कोई कदवे को उदे कोई पैर को मेदे कोई पैर को उदे कोई गुत्फ को मेदे उदे, कोई लिण्ठी को मेदे उदे कोई जुटने को मेदे उदे कोई बांध को मेदे उदे कोई कमर को मेदे उदे, कोई मामि को मेदे उदे, कोई पेट को मेदे उदे कोई पसबाहे को मेदे उदे कोई पीठ को मेदे उदे कोई छाती

समाधान इत्या आटे सूत्र बदे छे— से वेमि इत्यादि ।

भूषार्थ—कुं कुं छे कोरु आमिन्धाने सेहन करे कोरु आमिन्धाने सेहन करे, कोरु पजनने कोरु कोरु पजनने छेरे कोरु अक्- (पुं०)ने सेरे छेरे कोरु पीडने सेरे, छेरे कोरु पुं० टबने सेरे छेरे कोरु अ मने सेरे छेरे कोरु अ मने सेरे छेरे कोरु अ नाकि (पुं०)ने सेरे छेरे, कोरु पटने सेरे छेरे कोरु आ सजीवने सेरे छेरे कोरु पीडने सेरे-छेरे, कोरु अतीने सेरे छेरे कोरु

पृथिव्यादीनामव्यक्तैष घोरतरवेदना मस्तीति मगस्ता केवलासोकेन साक्षात्कृत्य मवेदितम् ।

अभैवान्ममपि दृष्टान्तमाह—“अप्येगे संपमारय अप्येग उद्वप” इति । एकः कश्चित् यथा सर्वोदयवयुक्तं कश्चित्माणिनं संपमारयेत्=तीव्रदोषावेक्षेन अज्ञादिप्रहारेण वेदारादित्यरुणां मूर्छामापादयेत् तथा एकः कश्चित् मूर्छापन्नं उद्वपयेत्=प्रायेष्यो व्यपरोपयेत्, तस्य मूर्च्छाविक्षेन व्यक्त-वेदनाया अमावेऽपि अव्यक्ता घोरतरवेदना जायत एव, तथा पृथिवीजीवतामव्यक्ता घोरतरवेदना मस्तयेव ॥ सू ५ ॥

इत्य पृथिवीकायस्य जीवत्वं अज्ञादापातेन वेदनां च प्रदर्श्य, अधुना

उसी प्रकार प्रगाढ मोह अज्ञान वाले स्यान्दिं आदि कर्म के उदय से अप्रकट चेतना वाले पृथ्वीकाय आदि जीवों को अप्रकट किन्तु अत्यन्त दारुण वेदना होती है । यह बात मगवान् ने केवलज्ञान से साक्षात् व्यनकर प्रकट की है ।

इसी विषय में एक दृष्टान्त और करते हैं—‘अप्येगे’ इत्यादि । जैसे—कोई पुरुष, सभी अवयवों से युक्त किसी प्राणी को तीव्र रूप के व्यपेश के बंध हो कर शक्त आदि का प्रहार कर के चेष्टारहित-मूर्च्छित कर देता है, तथा कोई उस मूर्च्छित पुरुष को प्राणहीन करता है तो कल्पि उस मूर्च्छित में व्यक्त वेदना नहीं है फिर भी अव्यक्त अत्यन्त घोर वेदना होती ही है, इसी प्रकार पृथिवीकाय में घोर अव्यक्त वेदना होती है ॥ सू. ६ ॥

इस प्रकार पृथिवीकाय की सन्निरता और शक्त आदि के आघात से होने वाली

(६) मोह अज्ञानवाला स्यान्दिं आदि कर्मना उदयशी अप्रकट चेतनावाला पृथ्वी काय आदि लोकेने अप्रकट परन्तु अत्यन्त दारुण वेदना प्राप्त है, आ बात मगवाने केवल ज्ञानशी साक्षात् आधीने प्रकट करी है

आ विषयगतं ज्ञेयं जीवु दृष्टान्तं कहे छे—‘अप्येगे’ इत्यादि, जेभे डोर्ध पुरुष, यत् अवयवोशी युक्त डोर्ध आधीने तीव्र रूपशी आवेशने पर बर्ध शक्त आदिना प्रहार करीने चेष्टारहित-मूर्च्छित करी नाछे छे तथा डोर्ध ते मूर्च्छित पुरुषने प्राणहीन करे छे ते मूर्च्छितभां अव्यक्त वेदना नहीं तो पद्य अव्यक्त (अधी-जोर्ध शकाय नकि तेवी रीते) अत्यन्त घोर वेदना प्राप्त छे जे प्रमाद्ये पृथ्वीकायभां पद्य घोर वेदना प्राप्त छे ॥ पा ॥

आ प्रमाद्ये पृथ्वीकायनी सन्निरता जने शक्त आदिना आघातशी अघातशी

हृदयमाभिन्ध्यात्, अप्येकः स्तनमाभिन्ध्यात्, अप्येकः स्कन्धमाभिन्ध्यात्, अप्येकः  
 बाहुमाभिन्ध्यात्, अप्येकः हस्तमाभिन्ध्यात्, अप्येकः अङ्गुलिमाभिन्ध्यात्, अप्येकः  
 नखमाभिन्ध्यात्, अप्येकः ग्रीवामाभिन्ध्यात्, अप्येकः हनु आभिन्ध्यात्, अप्येकः  
 ओष्ठमाभिन्ध्यात्, अप्येकः दन्तमाभिन्ध्यात्, अप्येकः जिह्वामाभिन्ध्यात्, अप्येकः  
 तालु आभिन्ध्यात्, अप्येकः गलमाभिन्ध्यात्, अप्येकः गण्डमाभिन्ध्यात्, अप्येकः  
 कर्णमाभिन्ध्यात्; अप्येकः नासामाभिन्ध्यात्, अप्येकः अक्षि आभिन्ध्यात्, अप्येकः  
 भ्रुवमाभिन्ध्यात्, अप्येकः ललाटमाभिन्ध्यात्, अप्येकः शीर्षमाभिन्ध्यात्, अप्येकः  
 सप्रमारयेत्, अप्येकः उपद्रावयेत् ॥ सू ५ ॥

को भेदे छेदे, कोई हृदय को भेदे छेदे, कोई स्तन को भेदे छेदे, कोई कन्धे को  
 भेदे छेदे, कोई बाहु को भेदे छेदे, कोई हाथ को भेदे छेदे, कोई उगली को भेदे  
 छेदे, कोई नख को भेदे छेदे, कोई गर्दन को भेदे छेदे, कोई हनु (डाढी-ठोडी) को  
 भेदे छेदे, कोई होठ को भेदे छेदे, कोई दांत को भेदे छेदे, कोई जीभ को भेदे,  
 छेदे, कोई तालु को भेदे छेदे, कोई गले को भेदे छेदे, कोई गडस्थल (कनपटी) को  
 भेदे छेदे, कोई कान को भेदे छेदे, कोई नाकको भेदे छेदे, कोई आख को भेदे छेदे,  
 कोई भौह को भेदे छेदे, कोई ललाट को भेदे छेदे, कोई सिरको भेदे छेदे, कोई मारकर  
 बेहोश कर दे, या कोई मार ही डाले, इस प्रकार इन्द्रियबलहीन होने पर भी उसे वेदना का  
 अनुभव होता ही है ॥ सू ५ ॥

हृदयने बेदे छेदे, कोर्ध स्तनने बेदे छेदे, कोर्ध क्वाधने बेदे-छेदे, कोर्ध बाहूने बेदे छेदे, कोर्ध  
 बाधने बेदे छेदे, कोर्ध आगलीने बेदे-छेदे, कोर्ध नभने बेदे छेदे, कोर्ध गर्दनने बेदे छेदे,  
 कोर्ध डाढीने बेदे-छेदे, कोर्ध डोढने छेदे बेदे, कोर्ध हातने बेदे छेदे, कोर्ध ललने बेदे छेदे,  
 कोर्ध तालु-(ताणवा) ने बेदे-छेदे, कोर्ध गजाने बेदे-छेदे, कोर्ध गडस्थल (लभष्ठा)  
 कानपटीने बेदे-छेदे, कोर्ध कानने बेदे-छेदे, कोर्ध नाकने बेदे-छेदे, कोर्ध आभने  
 बेदे-छेदे, कोर्ध आभरने बेदे-छेदे, कोर्ध ललाटने बेदे-छेदे, कोर्ध शिरने बेदे-छेदे,  
 कोर्ध भारीने बेहोश करी दे, अथवा कोर्ध भारीज नापे, आ प्रभावे इन्द्रियबलहीन  
 होवा छता पण तेने वेदनाने अनुभव थाय छे (५)

॥ टीका ॥

'से वेमि' इत्यादि । अथेति प्रतिपादयमात्मघोतनाय । अथीति=पृथिवी  
 कायस्य वेदनाविषये कथयामि । यथा-एकः=कश्चित् अन्य-अन्माप आमिन्वात्,  
 तथा एकः=अपरा कश्चित् अन्यमपि आच्छिन्वात् ।

अथ अन्नमित्युपसृष्टं यधिरमूक्यस्तुममृतीनाम् । यः स्वच्छ अन्मान्धो अन्नमधिरो  
 अन्नमूको अन्नमप्युर्गुगापुत्रवत्करषणाद्यवयवविभागरहितः पूर्वमवाजितान्नुमकर्मो  
 दयात् स्वहितप्राप्त्यहितपरिहारासमोऽतिवयनीयवशात्पुण्यः ।

एषविषमन्मान्वादिकं कश्चित् कठोरहृदयो निर्देयतयाऽतिनिश्चितमृच्छादिना भिनविषेत्,  
 सुतीक्ष्णपरशुङ्गठारादिना छिनत्ति येत्तदाऽसौ स्वाङ्ग मेदजम्भेद्वनसमयेमेदकं छेदकं न

टीकार्थ- 'अथ' शब्द नया वाक्य आरंभ करने को प्रकट करता है- 'करता हूँ'  
 अर्थात् पृथिवीकाय को वेदना के विषय में करता हूँ । जैसे- कोई पुरुष अथे अर्थात् जन्म से  
 अथे को मेद छेदे । वहाँ 'अथ' पद उपसृष्ट है, उस से बहिरा, मृगा, कंगडा, आदि भी  
 मृग्य कर लेना चाहिए ।

जो जीव मृगाश्लेष्क को तरह अमान्य है, जन्म से बहिरा है, जन्म से  
 मृगा है, जन्म से कंगडा है, हाथ-जौर आदि विभिन्न अवयवों का जिस के शरीर में  
 मेद नहीं है, और जो पूर्वजन्म के बहुत कर्मों के उदय से अपने हित को प्राप्ति तथा  
 अहित के परिहार में असमर्थ है, अत्यन्त वयनीय वय को प्राप्त है, इस प्रकार के  
 अमान्य शरीर को कोई कठोर हृदयवाला पुरुष निर्देय हो कर अयोस के साथ बहुत  
 ठीके भाँके शरीर से मेदता है, अत्यन्त ठीके फरसी कुत्तर अग्नि से लेता है,

टीकार्थ- 'अथ' शब्द ननु वाक्य आरंभ करता है अथ 'हृदुं छे' अर्थात्  
 पृथ्वीकायनी वेदनाया विषयमां हृदुं छे-अथे हार्थ अनुष्य अन्य अर्थात्-अन्मथी  
 अथने (आंध्रगे। छे तेने) सेदे सेदे. अदि 'अथ'पद ते उपसृष्टयु छे तेनाथी  
 लहेरा भूज, लयदा अदि पयु अहृदुं करी लेना लेथेजे.

अथे अन्नममृतीनाम् अर्थक अन्मांथ छे (अन्मथी आंध्रगे। छे) अन्मथी,  
 लहेरा छे अन्मथीअ भूजे छे अन्मथी लयदे छे हाथ-पज अदि विभिन्न अवयवोना  
 केना शरीरमां सेद नथी, अने ते पूर्वजन्मअशुका कर्मोना उदयनी पात्तना हितनी भासि  
 तथा अहितना परिहारमां अथमर्थे छे अत्यन्त उदायाय-वस्थाने अथ छे आ प्रअस्त  
 अ मांथ वयेधने हार्थ हठार हृदयवाणा पुरुष निर्देय अर्थने आयेशनी साथे अनुष्य तीक्ष्ण  
 वादा अवैरधी सेदे छे (विषे छे) अत्यन्त तीक्ष्ण आरवाणी हृदधी, कुत्तर अदिथी

पश्यति न, शृणोति, नाप्युच्चैः क्रन्दति, तावता तस्याऽजीवत्वं वेदनाया अभावो वा निश्चेतु वक्तुं वा न शक्यते, एवं पृथिवी सचेतना वेदनासहिता चेति निश्चीयते । जात्यन्धवधिरमूकपङ्गवादिगुणयुक्तपुरुषवत्, मृगापुत्रवत्, इत्यर्थः ।

यद्वा पञ्चेन्द्रियाणां सुव्यक्तचेतनानां पादगुल्फजङ्घाजानूस्कटि-  
नाभ्युदरपार्श्वपृष्ठोरोहृदयस्तनस्कन्धबाहुहस्ताङ्गुलिनखग्रीवाहन्वोष्ठदन्तजिह्वाताल-  
गलगण्डकर्णनासाक्षिभ्रूललाटमस्तकादिषु भिद्यमानेषु छिद्यमानेषु वा यथा घोरतर-  
वेदना जायते तथा प्रगाढमोहाज्ञानवतां स्त्यानद्धर्मादिकर्मोदयाद् अव्यक्तचेतनानां

मेदन-छेदन के समय, अपने अग के मेदने-छेदने वाले को न देखता है, न सुनता है, न उची आवाज से चिह्लाता है, इतने मात्र से उस में अजीवपना या वेदना का अभाव निश्चित नहीं किया जा सकता, और नहीं कहा जाता । इसी प्रकार पृथिवी सचेतन है और उसे वेदना भी होती है, यह बात निश्चित हो जाती है । अर्थात् जैसे मृगालोढक की तरह बहिरै, मृगे, लंगड़े आदि पुरुष को वेदना होती है, उसी प्रकार पृथिवीकाय को भी वेदना होती है ।

अथवा स्पष्ट चेतना वाले पञ्चेन्द्रिय जीवों के पैर, गुल्फ, जांघ, जानु, उरू, कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु, हाथ, अंगुली, नख, ग्रीवा, दाढ़ी, होठ, दात, जीभ, तालु, गला, कनपटी, कान नाक आँसू, भौह, ललाट, मस्तक आदि के भिदने-छिदने पर जैसे अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न होती है

छेदे छे, तो बेहिन-छेदनना समये पोताना अंगानुं बेहन-छेहन करनारने ते हेभतो नथी, सासणतो नथी, उ च्या अवाञ्जथी शोर-अडेर करी शकतो नथी अेटलाभात्रथी तेमा अलवपण्ण अथवा वेदनाना अभाव निश्चित करी शकतो नथी, तेम डडेवातु पण्ण नथी अे प्रमाणे पृथ्वी सचेतन छे अने तेने वेदना पण्ण थाय छे अे वात निश्चित थर्ध नय छे. अर्थात् जेवी रीते मृगालोढीया प्रमाणे-अडेर, मृगा, लंगडा आदि पुश्धने वेदना थाय छे, ते प्रमाणे पृथ्वीकायने पण्ण वेदना थाय छे

अथवा-स्पष्ट चेतनावाणा जन्मान्ध आदि पञ्चेन्द्रिय एवोना पग, हाँथ, नख, नानु, उरू, कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु, हाथ, आंगुली, नख, ग्रीवा दाढ़ी, होठ, दात, ललाट, तालु, गला, कनपटी, कान, नाक, आँसू, कमर, ललाट, मस्तक आदिना बेहवा-छेदवाथी जेभ अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न थाय छे, तेम प्रगाढ

पृथिव्यादीनामव्यक्तैश्च घोरतरवेदना भवतीति मगधता कैक्लासोकेन साक्षात्कृत्य भवेद्विदम् ।

अथैवान्यमपि दृष्टान्तमाह—“अप्येग संपमारए अप्येगे उडवप्” इति । एकः कश्चित् यथा सर्वावयवयुक्त कश्चित्प्राणिन संपमारयेत्—तीव्रद्वेषावेष्टेन शक्तादिप्रहारेण घोरारहित्यरूपां मूर्च्छामापादयत् तथा एक कश्चित् मूर्च्छापन्नं उद्भूतयेत्—प्राणेष्वो व्यपरोपयेत्, तस्य मूर्च्छाविक्षेपेण व्यक्त—वेदनाया अभावेऽपि अव्यक्ता घोरतरवेदना जायते एव, तथा पृथिवीजीवानामव्यक्ता घोरतरवेदना भवत्येव ॥ सू ५ ॥

इत्य पृथिवीकायस्य जीवत्वं शक्ताद्याघातन वेदनां च प्रदर्श्य, अधुना

उसी प्रकार प्रगाढ मोह अज्ञान बाळे स्यात्सिद्धि आदि क्रम के उदय से अप्रकट चेतना बाळे पृथ्वीकाय आदि जीवों को अप्रकट किन्तु अव्यक्त दारुण वेदना होती है । यह बात मगधान् ने कैक्लासज्ञान से साक्षात् जानकर प्रकट की है ।

इसी विषय में एक दृष्टान्त और कहते हैं—‘अप्येगे इत्यादि । जैसे—कोई पुरुष, सभी अवयवों से युक्त किसी प्राणी को तीव्र द्वेष के आवेश के बराब हो कर शस्त्र आदि का प्रहार कर के घोरारहित—मूर्च्छित कर देता है, तथा कोई उस मूर्च्छित पुरुष को प्राणहीन करता है तो यद्यपि उस मूर्च्छित में बिल्कुल वेदना नहीं है फिर भी अप्रकट अव्यक्त घोर वेदना होती ही है, इसी प्रकार पृथिवीकाय में घोर अव्यक्त वेदना होती है ॥ सू. ५ ॥

इस प्रकार पृथिवीकाय की सञ्चितता और शस्त्र आदि के आघात से होम वाली

(६६) श्रेष्ठ अज्ञानवाणा स्थानसिद्धि आदि कर्मना उडवधी अप्रकट चेतनावाना पृथ्वी काय आदि लोकोने अप्रकट परन्तु अव्यक्त दारुण वेदना जायते आ बात अज्ञानाने केवल ज्ञानशी साक्षात् आक्षीने प्रकट करी छे

आ विषयमा ज्येष्ठ जीवु दृष्टान्त कहे छे—‘अप्येगे इत्यादि ज्येष्ठ श्रेष्ठ पुरुष, सर्व अवयववाली युक्त कर्म अक्षीने तीव्र द्वेषधी आवेशाने वध शस्त्र आदिना प्रहार करीने शक्तासिद्धि—मूर्च्छित करी जाये छे, तथा कर्मते मूर्च्छित पुरुषने प्राणहीन करे छे ते मूर्च्छितमां अव्यक्त वेदना नथी, तो पण अव्यक्त (अक्षी—ज्येष्ठ शक्याय नहि तेनी सीते) अव्यक्त घोर वेदना जाय छे, ज्येष्ठ प्रमाक्षे पृथ्वीकायमां पण घोर वेदना जाय छे ॥ ५ ॥

आ प्रमाक्षे पृथ्वीकायनी सञ्चितता जने शस्त्र आदिना आघातधी शक्यायनी

पश्यति न, शृणोति, नाप्युच्चैः क्रन्दति, तावता तस्याऽजीवत्वं वेदनाया अभावो वा निश्चेतुं शक्यं वा न शक्यते, एवं पृथिवी सचेतना वेदनासहिता चेति निश्चीयते । जात्यन्धवधिरमूकपङ्खादिगुणयुक्तपुरुषवत्, मृगापुत्रवत्, इत्यर्थः ।

यद्वा पञ्चेन्द्रियाणां सुव्यक्तचेतनानां पादगुल्फजङ्घानूलकटि-  
नाभ्युदरपार्श्वपृष्ठोरोहृदयस्तनस्कन्धबाहुहस्ताङ्गुलिनखग्रीवाहनोष्ठदन्तजिह्वातालु-  
गलगण्डकर्णनासाक्षिभ्रूललाटमस्तकादिषु भिद्यमानेषु छिद्यमानेषु वा यथा घोरतर-  
वेदना जायते तथा प्रगाढमोहाज्ञानवतां स्त्यानद्धर्षादिकर्मोदयाद् अव्यक्तचेतनानां

भेदन-छेदन के समय, अपने अंग के भेदने-छेदने वाले को न देखता है, न सुनता है, न उची आवाज से चिन्ता है, इतने मात्र से उस में अजीवपना या वेदना का अभाव निश्चित नहीं किया जा सकता, और नहीं कहा जाता । इसी प्रकार पृथिवी सचेतन है और उसे वेदना भी होती है, यह बात निश्चित हो जाती है । अर्थात् जैसे मृगालोढक की तरह बहिर, मृगे, लंगड़े आदि पुरुष को वेदना होती है, उसी प्रकार पृथिवीकाय को भी वेदना होती है ।

अथवा स्पष्ट चेतना वाले पञ्चेन्द्रिय जीवों के पैर, गुल्फ, जांघ, जानु, उरू, कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु, हाथ, अंगुली, नख, ग्रीवा, दाढ़ी, होठ, दात, जीभ, तालु, गला, कनपटी, कान नाक आँख, भौह, ललाट, मस्तक आदि के भिदने-छिदने पर जैसे अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न होती है

छेदे छे, तो भेदन-छेदनना समये पोताना अंगानुं भेदन-छेदन करनारने ते दृश्यते नथी, साक्षणतो नथी, उवा अवाज्थी शोर-अडोर करी शकतो नथी अटलाभानथी तेमा अश्रवण्य अथवा वेदनानो अभाव निश्चित करी शकतो नथी, तेम कडेवातु पणु नथी अे प्रमाणे पृथ्वी सचेतन छे अने तेने वेदना पणु थाय छे अे वात निश्चित थर्ष जाय छे. अर्थात् जेवी रीते मृगालोढीया प्रमाणे-अडेर, मृगा, लंगडा आदि पुरुषने वेदना थाय छे, ते प्रमाणे पृथ्वीकायने पणु वेदना थाय छे

अथवा-स्पष्ट चेतनावाणा जन्मान्ध आदि पञ्चेन्द्रिय एवेना पग, हाँथ, जाँघ, जानु, उरू, कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु, हाथ, आंगुली, नख, ग्रीवा दाढ़ी, होठ, दात, जीभ, तालु, गला, कनपटी, कान, नाक, आँख, लभर, ललाट, मस्तक आदिना भेदना-छेदनाथी जेभ अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न थाय छे, तेम प्रगाढ

मोक्षमार्गतो ह्यसमाप्ततो मवतीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

(८) विद्वच्छिद्वारम्-

पृथिवीकायसमारम्भपरिज्ञाने हि परिज्ञातकर्मा मुनिर्मस्वीत्याह-‘एत्य’ इत्यादि ।

॥ सू० ७ ॥

एत्य सत्य असमारंभमाप्तस्त इत्येते आरंभा परिष्णाया मवति । तं परिष्णाप येहती नैव सत्यं पुढबिसत्य समारंभेज्जा, गेवणोहिं पुढबिसत्यं समारंभावेज्जा, गेवण्ये पुढबिसत्यं समारंभेते समपुजापेज्जा । जस्सेते पुढबिक्कम्मसमारंभा परिष्णाया मवति से इ मुनी परिष्णापकम्मे-चिचेमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इय सत्यपरिष्णाप बीओ उरेसो समपो ॥ १-२ ॥

॥ चाया ॥

अत्र अस्मत्समारंभमाप्तस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता मवन्ति । तत् परिष्णाप येषां नैव स्वयं पृथिवीकस्य समारंभेत्, नैषान्यैः पृथिवीकस्य समारंभयेत् नैषान्यात् पृथिवीकस्य समारंभत् समनुजानीयात्, यस्येते पृथिवीकर्मसमारम्भाः परिज्ञाता मवन्ति स एव मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति धर्षीमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इति अस्त्वपरिष्णाया द्वितीय उरेसः समाप्तः ॥ १ । २ ॥

यद् धारिकरूप मोक्षमार्गं से ह्य ही रहता है ॥ सू० ६ ॥

पृथिवीकाय के समारम्भ का परिज्ञान होने पर ही परिज्ञातकर्मा मुनि होता है, इस बात को कहते हैं- ‘एत्य’ इत्यादि ।

मूळार्थ- पृथिवीकाय में अस्व का आरंभ न करने वाले को यह आरंभ प्राप्त होता है । उन्हें जान कर बुद्धिमान् पुरुष न त्वयं पृथिवीकाय के अस्व का आरंभ करे, न दूसरों से पृथ्वीकाय के अस्वका आरंभ करावे और न पृथ्वीकाय का आरंभ करने वाले दूसरों को अनुमोदना करे । इन पृथिवीकर्मसमारम्भों को जानने वाला ही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ७ ॥

अथमुं कश्चि उ अभावात् नदि केवाभी ते अस्विकरूप आवाभावात् ही इत्येते ॥ ६ ॥

पृथिवीकायना समारंभुं परिज्ञान केवाभी अ परिज्ञातकर्मो मुनि केव उ, आ पाव अत्तावे उ- एत्य’ इत्यादि ।

मूळार्थ- पृथ्वीकायना शक्यते अस्व नदि कश्चावाप्यने आ अस्व अनी अस्व केव उ, तेने अस्वीने अस्वमान् पुद्गल पाते पृथ्वीकायना शक्यते अस्व कश्चि अस्वी, अस्वी अस्से पक्षु पृथ्वीकायना शक्यते अस्व कश्चि अस्व नदी, अने पृथ्वीकायना अस्व कश्चि अस्वीने अस्वमान् अस्व नदी, अने पृथ्वीकर्म-समारंभोने अस्वमान् अस्व मुनि उ, ते परिज्ञातकर्मो उ, अने अस्वो हं हं उ (७)



तत्समारम्भे कर्मबन्धो भवतीत्याह—‘एत्थ’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति ॥ सू. ६ ॥

॥ छाया ॥

अत्र शस्त्रं समारंभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति ॥ सू. ६ ॥

॥ टीका ॥

अत्र=पृथिवीकाये शस्त्रं=स्वकायपरकायतदुभयरूपं द्रव्यशस्त्रं,

दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपं भावशस्त्रं वा समारंभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते=  
प्रागुक्ताः सप्तविंशतिभङ्गरूपाः, आरम्भाः=खननकृष्यादिरूपाः सावधव्यापाराः,  
अपरिज्ञाता भवन्ति=कर्मबन्धहेतुत्वेन परिज्ञाता न भवन्ति, पृथिवीशस्त्रं  
समारंभमाणः खननादिसावधव्यापारस्य कर्मबन्धकारणतामविज्ञाय चारित्ररूप-

वेदना प्रदर्शित कर के यह बताते हैं कि—पृथिवीकाय का आरंभ करने में कर्म का बंध होता है—‘एत्थ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथिवीकाय का आरंभ करने वाले को यह (पूर्वोक्त) आरंभ ज्ञात नहीं होता है ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय में स्वकाय परकाय और उभयकायरूप द्रव्यशस्त्र का, तथा मन वचन कायका दुष्प्रणिधानरूप भावशस्त्र का व्यापार करने वाले को ज्ञात नहीं होता कि—पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकार का खनन एव कृषि आदिरूप सावध व्यापार कर्मबंध के कारण हैं । तात्पर्य यह है कि—जो पुरुष पृथिवीकाय का आरंभ करता है, उसे यह मादम नहीं होता कि—यह सावध व्यापार कर्मबंध का कारण है, यह मादम न होने के कारण

वेदना अतावीने डवे अे अतावे छे के—पृथ्वीकायने आरंभ करवाभा कर्मने अंध थाय छे—‘एत्थ’ इत्यादि

मूलार्थ—पृथ्वीकायने आरंभ करवावाणाने आ (पूर्वोक्त) आरंभ ज्ञान डोतुं नथी. (६)

टीकार्थ—पृथ्वीकायभा स्वकाय, परकाय अने उभयकायइय द्रव्यशस्त्रने तथा मन, वचन, कायाता दुष्प्रणिधान (अराध भाव)रूप भावशस्त्रने व्यापार करवावाणाने अणर नथी डोती के—पूर्वोक्त (पूर्वे कडेला) सत्तावीस प्रकारना अनन (जेडवु) अे प्रभाअे कृषि—अेती आदिइय सावध—व्यापार कर्मबंधनु कारखु छे तात्पर्य अे छे के—अे पुइय पृथ्वीकायने आरंभ करे छे, तेने अे मादम नथी के—आ सावध व्यापार कर्म

समारंभान् विज्ञाय सर्वान् परित्यजेत् ।

एवं यस्य एते पृथिवीकर्मसमारम्भाः पृथिवीविषया स्तननकृष्यादिस्थाः सावकक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति—इतिपरिज्ञया कर्मबन्धहेतुत्वेन विज्ञाताः, तथा कस्याक्यान्परिज्ञया परित्यक्ता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा=विदितपरित्यक्त सकलसावकक्रियाविशेषाः मुनिर्मवति, न न्यपरो द्रव्यविज्ञोत्पर्यः । इति प्रथमि=पया मग्नया कथितं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ७ ॥

॥ इति श्रद्धापरिज्ञाप्यने द्वितीय उच्छेदः समाप्तः ॥ १-२ ॥

पृथ्वीकर्मसमारंभ को जानकर सबका त्याग करना चाहिए ।

इस प्रकार जो पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी सेवाएँ जानता है, और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उन का त्याग कर देता है वही परिज्ञातकर्मा और सकल सावक क्रियाओं को जानने वाला पुरुष मुनि कहलाता है, सिर्फ द्रव्यविज्ञानी मुनि नहीं कहलाता । 'विश्वेमि' मग्नयान् ऐसा कहा है वैसे ही मैं करता हूँ ॥ ७ ॥

भाषारसंग-सूत्र की भाषारचिन्तामणि-टीका के हिन्दी-अनुवादा में  
श्रद्धापरिज्ञानामक प्रथम अध्यायनका द्वितीय उच्छेद  
समाप्त ॥ १-२ ॥

वेदों की अन्वेषण प्रशंसना पृथ्वीकायना समारंभने आधी करीने सबने त्याग करवे अर्थसे।

आ प्रभाषे ने पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी सेवाएँ, जेहनुं आदि सावक व्यापारने संप्रतिज्ञाधी कर्मजहेतु कारण समने छे जने प्रत्याख्यानपरिज्ञाधी लेने त्याग करी दे छे ते परित्यक्तकर्मा जने सकलसावकक्रियाओंने अनुपवापाया पुरुष मुनि कहैवाच छे, मात्र द्रव्यविज्ञानी मुनि कहैवाच नथी, जजवाने जेतुं कहुं छे जेतुं न हूँ कहुं छे ॥७॥

भाषारसंग सूत्र की भाषारचिन्तामणि टीका अनुवादा में  
श्रद्धापरिज्ञानामक प्रथम अध्यायन की द्वितीय उच्छेद  
समाप्त अथ ॥ १-२ ॥

## टीका—

अत्र=पृथिवीकाये शस्त्रं=स्वकायपरकायादिकम् असमारभमाणस्य=अव्या-  
पारयत इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावद्यक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति ।  
ज्ञपरिज्ञया सर्वान् पृथिवीकायसमारम्भान् कर्मवन्धहेतुत्वेन अनन्तनरकनिगोदादि-  
दुःखजनकत्वेन च परिज्ञाय चारित्ररूपमोक्षमार्गे प्रवर्तत इति भावः ।  
उपसंहारमाह—

तत्=पृथिवीकायसमारम्भण परिज्ञाय=वन्धहेतुत्वेनावबुध्य मेधावी=  
सदसद्विवेकी पृथिवीशस्त्रं द्रव्यभावरूपं स्वयं नैव समारभते अपि च-अन्यैरपि  
पृथिवीशस्त्रं नैव समारम्भयति, पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् नैव समनु-  
जानाति । एवं मनोवाक्कायभेदेनातीतानागतवर्तमानकालभेदेन च पृथिवीकाय-

टीकार्थ—पृथिवीकाय मे स्वकाय परकाय आदि शस्त्रों का आरभ न करने  
वाले को यह पूर्वोक्त सावद्यव्यापाररूप आरभ जात होता है । इन आरभों को जानने वाला  
अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से पृथिवीकायसवधी आरभों को कर्मवध का कारण तथा अनन्त नरक  
निगोद के दुःखों का कारण जानकर चारित्ररूप मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होता है । उपसंहार  
करते हैं—

पृथ्वीकाय के आरभ को वधका कारण जानकर बुद्धिमान् सत् असत् का भेद  
समझने वाला, द्रव्य-भावरूप पृथ्वीशस्त्रका स्वयं व्यापार नहीं करता, दूसरे से व्यापार  
नहीं कराता और व्यापार करने वाले को अनुमोदना भी नहीं करता । इसी प्रकार मन,  
वचन, काय के भेद से और अतीत, अनागत, वर्तमान काल के भेद से सत्ताईस प्रकार के

टीकार्थ—पृथ्वीकायमा स्वकाय परकाय आदि शस्त्रोंने आरभ नहि करवावाणाने  
ओ पूर्वोक्त सावद्य व्यापाररूप आरभनी अन्तर डोय छे, ते आरभोने ज्ञाणवावाणा अर्थात्  
ज्ञपरिज्ञाथी पृथ्वीकायसम्बन्धी आरभोने कर्मवधनु डारणु, तथा अनन्त नरक निगोदना  
दुःखोनु डारणु ज्ञाणीने चारित्ररूप मोक्षमार्गमा प्रवृत्त थाय छे. हवे उपसंहार करे छे—

पृथ्वीकायना आरभने अन्तर डारणु ज्ञाणीने बुद्धिमान् सत्-असत्ना लेकने  
ज्ञाणवा-समजवावाणा, द्रव्यभावरूप पृथ्वीशस्त्रने पोते व्यापार करता नथी, जीज  
पासे व्यापार करावता नथी, अने व्यापार करवावाणाने अनुमोदन पणु करता नथी  
आ प्रभाणु मन, वचन, कायाना लेकथी, अने भूतकाण, लविष्यकाण, वर्तमानकाणना

सर्वविरतिरूपं पदं माप्नो मुनि पृथिवीकायादिसूक्ष्मजीवसमारम्भनिवृत्त्यादि कर्तव्यतायामन्वीयोऽपि प्रमादघातं स्वस्ननं समुपेक्षते चेत् तर्हि पुनस्तत्राधिकतरं स्वस्ननं कर्तुं न शक्यते, तथाविधनियमाजुसारिणी हि मनोवृत्तिः, अतः स्ननमपि समयतः स्वस्ननं यथा न भवेत् तथा प्रयत्नित्थं मुनिभिः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

केनचिद् बाल्यावस्थायामन्यस्य कपर्दिकामात्र स्तेयकृत्याऽपहृत्य स्मामुखे निहितम् । माता उदयलोक्य दृष्ट्वा सती तस्मै मयुरं वस्तु ददौ । अथ पुनः पुनः स्तेयकर्मणि प्रवृत्तः स्वमातृहस्तात् पारितोषिकं प्राप्ता क्रमेण

योग्यता विसमते है—सर्वविरतिरूप पदको प्राप्त मुनि पृथिवीकाय आदि छोटे-छोटे जीवों के धारण का त्याग करने में यदि प्रमाद के कारण बोध से भी स्वस्नन की उपेक्षा करता है तो फिर और अधिक स्वस्नन करने में भी संकोच नहीं करता । मनोवृत्ति का ऐसा ही निबन्ध है कि—जिरी सो गिरती ही जाती है अत एव मुनियों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि, जिस से समय में तनिक भी स्वस्नन न हो ।

इस निबन्ध में दृष्टान्त करते हैं—

किसी बालकने अपनी बाल्यावस्था में एक छोटी पुराकर अपनी माता के पास रख दी । माता उसे देखकर हर्षित हुई और उसने इनाम के तौर पर बालक को मीठी चीज दी । इस के बाद वह बारबार चोरी करने लगा और अपनी माता के हाथ से पारितोषिक प्राप्त करने लगा । धीरे-धीरे वह ताम्रपण (सबि का सिक्का) कार्वाण

बतावे छे—सर्वविरतिरूप पदने पायेला मुनि पृथ्वीकाय आदि नाना-नाना लोकोना आरब्धने त्याग करवायां जे प्रमादना कारणे भौटां पक्ष स्ननन (जुदी)नी उपेक्षा करे छे, तो हरिने नधारे स्ननन करवायां पक्ष अहित्य करता नथी, मनोवृत्तिने जेवेलो निबन्ध छे ते—नीके पदना पछी नधारे नीके पछी अथ छे जे कारणेही मुनिजोको जेवो प्रयत्न करवे जेधजे ते—जेनाही समयमां भौडु पक्ष स्ननन नथी होय.

अथ निबन्धमां दृष्टान्त कहे छे—

कैध जणके पीतानी जाल्यावस्थां जेक छोटी चोरीने पीतानी आतानी पासै राखी दीधी; माता तेने जेधने सल बर्ध कने तेने इनाम आपवाना उजबी जालकने भीदी वस्तु आपी. त्जार पछी ते जालक बारबार चोरी करवा लायेला कने पीतानी माता पासैबी (आताना हाथबी) इनाम भेजववा ला ये. धीरे धीरे ते ताम्रपण—तांबाना

## અથ તૃતીયોદેશઃ ।

દ્વિતીયોદેશે પૃથિવ્યાઃ સચિત્તત્વં તત્ર પૃથક્પૃથગનેકપૃથિવીકાયજીવાશ્રિતત્વં  
 ચ પ્રસાધિતમ્, તસ્ય હિંસયા કર્મબન્ધો ભવતીત્યુક્તમ્, અન્તતશ્ચ પૃથિવીકાયજીવ-  
 હિંસાનિવૃત્ત્યા મુનિર્ભવતીતિ સિદ્ધાન્તિતમ્ । ઇદાનીમપાં સચિત્તત્વમનેકાપ્કાયજીવા-  
 શ્રિતત્વ વોધયતા ભગવતાઽપ્કાયહિંસયા ષટ્કાયજીવહિંસાસંપાતાત્ કર્મબન્ધો ભવતિ,  
 તથાઽપ્કાયહિંસાનિવૃત્ત્યા ચ મુનિત્વં લ્ભ્યત ઇતિ વોધયિતુ તૃતીયોદેશઃ પ્રારમ્બ્યતે-  
 'સે વેમિ' ઇત્યાદિ ।

અપ્કાયજીવસ્વરૂપવિચારણાયાં પ્રથમમનગારસ્ય યોગ્યતા દર્શયતિ-

## ત્રીસરા ઉદ્દેશ

દ્વિતીય ઉદ્દેશક મેં પૃથિવી કી સચિત્તતા સિદ્ધ કી ઓર પૃથિવી મેં પૃથક્-  
 પૃથક્ અનેક પૃથિવીકાય કે જીવોં કા રહના સિદ્ધ કિયા । યહ મી વતલાયા જા સુકા હૈ  
 કિ-ઊન જીવોં કી હિંસા કરને સે કર્મ કા બધ હોતા હૈ । અન્ત મેં યહ મી પ્રમાણિત  
 કિયા હૈ કિ-પૃથ્વીકાય કે જીવોં કી હિંસા કા ત્યાગ કરને સે મુનિ હોતા હૈ । અબ  
 યહ વતલાતે હૈ કિ-અપ્કાય સચિત્ત હૈ, અનેક અપ્કાય કે જીવોં સે આશ્રિત હૈ ઓર  
 અપ્કાય કી હિંસા સે ષટ્કાય કે જીવોં કી હિંસા હોતી હૈ ઓર અપ્કાય કી હિંસા કા  
 ત્યાગ કરને વાલા મુનિપન પાતા હૈ । યહ સબ વતલાને કે લિપ્ ત્રીસરા ઉદ્દેશ આરમ કિયા  
 જાતા હૈ-'સે વેમિ' ઇત્યાદિ ।

અપ્કાય કે જીવોં કે સ્વરૂપ કા વિચાર કરતે હુપ્ સર્વ પ્રથમ અનગાર કી

## ત્રીજો ઉદ્દેશક-

ખીજા ઉદ્દેશકમાં પૃથ્વીની સચિત્તા સિદ્ધ કરી છે અને પૃથ્વીમા જુદા-જુદા  
 અનેક પૃથ્વીકાયના જીવો રહે છે તે સિદ્ધ કર્યું છે એ પણ ખતાવવામા આવ્યું છે કે તે  
 જીવોની હિંસા કરવાથી કર્મનો બધ થાય છે અન્તમા એ પણ પ્રમાણિત કર્યું કે  
 પૃથ્વીકાયના જીવોની હિંસાને ત્યાગ કરવાથી મુનિ થાય છે હવે તે ખતાવે છે કે-અપ્કાય  
 સચિત્ત છે, અનેક અપ્કાયના જીવોથી આશ્રિત છે, અને અપ્કાયની હિંસાથી ષટ્કાયના  
 જીવોની હિંસા થાય છે, અને અપ્કાયની હિંસાને ત્યાગ કરવાવાળા મુનિપણને પામે છે.  
 એ સર્વ ખતાવવા માટે ત્રીજા ઉદ્દેશકનો આરભ કરવામા આવે છે -'સેવેમિ' ઇત્યાદિ

અપ્કાયના જીવોના સ્વરૂપનો વિચાર કરતા થકા સૌથી પ્રથમ અજીગારની યોગ્યતા

सद्योस्तरदुःसमदधुलारोपणफलपदात्री प्राणापहनीं, न तु मवान् । इत्युक्त्वा सर्वं पूर्ववत् रात्रे विज्ञापयामास । ततः स्फुटस्त्वैयकर्मणो विपाकं श्छारोपेण पोरतरवेदनां प्राप्नुवन्तु । तस्मात् स्वल्पोऽपि दोषो महाजन्याय मवतीति विज्ञायात्मार्षिर्भिर्भुनिभिः संयमतः स्वल्पमपि स्वस्ननं यथा न भवत् तथा वर्तितव्यम् ।

तपःसंयमे कदापिदाकस्मिन्स्वस्ननसंपातस्वन्य एव, स्वस्ननोपेक्षण-मप्यन्यदेव, यथा स्वस्ननोपेक्षया पुनरुपरोचरस्वस्ननद्वया साधुत्वमेव नश्यतीति विहितस्य जागरुकाः साधवो मधनबागन्तुकस्वस्ननपरंपराविरहिताः पूर्वज्ञातस्वस्नन-

पोर-महाराज ! इसी के कारण मुझे घोर दुःस देने वाली श्छी पर चढ़ना पड़ रहा है, यही मेरा प्राण लेने वाली है, आप नहीं । यह कह कर पोरले अपना सम्पूर्ण पूर्व-वृत्त रात्र को सुन्य दिया ।

उपमात् अपने किये वीर्य कर्म का पोरवेदनारूप फल-शुद्धी पर चढ़नेरूप-को मारता हुआ वह पोर मर गया ।

एत एव बोध-सा मी दोष महान् कर्तव्य का कारण बन जाता है, ऐसा समझकर व्याममन्याग के अग्निवाणी मुनियों को ऐसा प्रकल करना चाहिए कि जिस से संयम में तनिक भी स्वस्नन न हो ।

तप और संयम में कदाचित् अकरणात् स्वस्नना की बात दूसरी है किन्तु स्वस्नन की उपेक्षा करना और बात है, उस का कारण यह है कि स्वस्नना की उपेक्षा करने से उचरोचर स्वस्नना बढ़ती ही जाती जाती है, ऐसा विचार करके सर्वैव सावधान

बोले-महाराज ! जो भावाना करते हैं और जो इतना व्यापवावाणी शुद्धी उपर चढ़वानुं साथ से जो मारे प्रकल देववाणी से व्याप नहीं आ प्रभावे कहीने और पीतानी आजगनी संयुक्त कहीनेत शब्दने स भगवती, ते पही पीतानुं करके मारीनुं कर्मनुं पोरवेदनाइव इह-शुद्धी पर चढ़वानुं ते बोधवतो कहे ते और भरषु कभ्ये-

कोटवे के-बोले पक्ष दोष महान् जन्यनुं करषु जनी व्यव से जो प्रभावे समलने अप्रमकस्यावता अभिवाणी मुनियेको जेवे प्रकल करवे कोषको के जेनाही सवभर्मा हेतुं क पक्ष स्वस्नन न साथ-

तप करने सवभर्मा कोष वधत अकरमात् स्वस्नननी बात बूझी है, पक्ष स्वस्नननी उपेक्षा करनी ते जीला बात से तेनुं करषु जो है-स्वस्नननी उपेक्षा करवाओ उचरोचर स्वस्नन (मूल) वधनुं व साथ से जेवे विचार करीने सर्वैव-कथिया सावधान रहेवावाण

ताम्रपण-कार्पाण-रूप्यक - दीनार-रत्न - स्पर्ण-मणि- माणिक्यादिहरणप्रवीणः  
 कस्यचिन्नुपस्य कोशागार प्रविष्टः । ततः प्रचण्डभुजदण्डकैस्तद्रक्षकैः सघोषणं धृतो  
 राजान्तिकं समानीतः । तदपराधं विज्ञाय क्रोधाविष्टेन राज्ञा समादिष्टम्-अयं चौरः  
 शूले समारोप्यताम्, इति ।

असौ पृष्ठश्च राज्ञा-तव काचिदिच्छा वर्तते? चेद् ब्रूहि । चौरैरोक्तम्-  
 राजन् ! स्वमातुर्मिलनं प्रार्थयेः । अथ नृपाज्ञया तज्जननी तत्रागत्य मिलिता ।  
 स चौरस्तत्र राज्ञः समक्षमेव सवेगमुत्थाय सत्वरं मातुर्नासिकां दन्तैश्चिच्छेद ।  
 ततोऽसौ राज्ञा पृष्ठः-त्वया कथमेवं दुश्चरितमाचरितम् ? । चौरौज्वदत्-इयमेव ममै-

(चौबन्नी) रुपया, दीनार (सुवर्ण-मुहर), रत्न, सुवर्ण, मणि, माणिक आदि चुराने में भी  
 प्रवीण हो गया । वह किसी राजा के खजाने में घुसा । खजाने के बलवान् पहरेदारों ने उसे  
 पकड़ लिया और राजा के सामने पेश किया । राजा उसका अपराध सुनकर क्रोधित हुआ,  
 उसने आज्ञा दी-‘इस चोर को शूली पर चढ़ा दो’ ।

राजाने उस से पूछा-अगर तुम्हारी कोई इच्छा हो तो कहो ।

चोरने कहा-‘महाराज ! मैं अपनी माता से मिलने की प्रार्थना करता हूँ ।

राजा की आज्ञा से चोर की माता वहाँ आकर मिली । चोरने राजा के सामने ही वेग  
 के साथ उठ कर जल्दी से अपनी माता की नाक दाँतों से काटली । यह देखकर राजाने  
 पूछा-अरे ! तूने यह दुष्कर्म क्यों किया ?

सिद्धा, चार आनी, इपिआ, सोना भडोर, रत्न, सोनुं, मष्ति, भाषुक् आदि चोरवाभा  
 पणु प्रवीणु थर्ध गथे ( डेटडोड सभय जता ) ते डेड रानना भननाभा धुसी  
 गथे भननाना भडवान् पहरेदारो रक्षकेअे तेने पकडी वीधो अने राननी सामे-  
 डानर कथे रान तेने अपराध साबणीने डोधायमान थया, अने आज्ञा आपी डे  
 अे चोरने शूली पर चढानी धी ।

रानअे तेने पूछथुं डे तारी डार्ध धअ्छा डोय तो डडो

चोरे डडु-‘मडारान् ! हुं भारी भाताने भगवानी प्रार्थना करू छु.’

राननी आज्ञाथी चोरनी माता त्या आगण आवी अने चोरने भणी, चोरे  
 रानना सामेण वेगथी अेकडभ डडीने जल्दीथी पोतानी मातानु नाक पोताना  
 हांतथी डधी वीधु ते नेधने रानअे पूछथु-अरे ! ते’ आवुं डुडकभं शा भाटे कथुं ?

भुवं तत् कथयामि । स पृथिवीकथयस्त्रुमसमारममाणः परिहातपृथिवीकर्म  
 समारम्भो यथा संपूर्णोऽनगारो भवति, अपिच-यथाऽनगारो न भवति,  
 तद् द्वयमपि ब्रवीमि, वक्ष्यति च- 'अनगारामोचि एगे पत्रयमाणा' इत्यादि ।  
 सावयक्रियाया गृहाभयत्वाद् गृहपरित्याग एव मुनित्वे प्रमानकारणमिति बोधनाय  
 साध्यादिसम्बन्धं परित्यज्य 'अनगार'-सम्बन्धोपादानम् । कथं सर्वथाऽनगारो भवति ?  
 इत्याकाङ्क्षायामार-

'उज्जुकटे' इति, ऋजुकृत', भर्जयति सान्त्यादिगुणानिति ऋजुः ।  
 यद्वा-भर्जयति-सकलमाभिगणहितं दयास्वभावमिति ऋजुः । यदिवा-भर्जयति=  
 यथावस्यिहात्मस्वस्वर्पं प्रापयतीति ऋजुः । यद्वा-भर्जयति=मापयति दानवतिर्कं

प्रकार पूर्ण अनगार होता है, और किस प्रकार पूर्ण अनगार नहीं होता, य दोनों बातें मैं  
 कहता हूँ-अनगारा मोचि एगे पत्रयमाणा' इत्यादि सूत्र में आगे कहा जायगा ।

गृह में सावयक्रिया अनर्थ होती है, अत एव गृह का त्याग करना ही मुनिपद  
 का प्रधान कारण है । यह बात प्रकट करने के लिए साधुवाचक अन्य शब्द जोड़कर  
 यहाँ अनगार शब्द का प्रयोग किया है । पूरा अनगार किस प्रकार बनता है, उसी आकांक्षा  
 होने पर कहने हैं- 'उज्जुकटे' इति ।

उज्जुकटे का संस्कृत रूप है 'ऋजुकृतः' । समा आदि गुणों को उपास्य  
 करने वाला ऋजु कहलाता है । जबवा समस्त प्राणियों के हितरूप दया को उपास्य  
 करने वाला ऋजु कहलाता है । जबवा आत्मा को अपने असली स्वरूप पर पहुँचाने

असुखापाणा पुरुष, ने प्रभासे पूरा अज्जुत्तर बाध से जाने से प्रभासे 'पूर्व' अज्जु  
 धार नहीं यदा, ते जाने वाते कुं कहुं छ - अनगारा मोचि एगे पत्रयमाणा इत्यादि  
 सूत्रमां व्याजण कहेवाभां आवरी ।

परमा सावयक्रिया अनर्थ बाध से ज्येत्वा भटे करने त्याग करने तेव मुनि  
 पदुति प्रधान कारण छ जे बात प्रकट करवा भटे साधुवाचक अन्य शब्द लखने  
 अदि 'अनगार शब्दने प्रयोग कथी छ पूरा अज्जुत्तर देनी रीति जाने छ, जेनी  
 इच्छा बवायो कहे छ- उज्जुकटे इति ।

'उज्जुकटे' तु संभूत इय ऋजुकृत ' शब्द छ सम आदि श्लोको उपास्य  
 करवावाजा ऋजु (सरह-सिधा) कहेवाय छ जबवा समस्त प्राणीजोना हितरूप बधाने  
 उपास्य करवावाजा ऋजु कहेवाय छ । जबवा आत्माने अथक स्वरूप सुधी पहुँचवा



दोषमपनेतुं शक्नुवन्ति । तदेव विशदयन् सुधर्मा स्वामी प्राह—‘से वेमि’ इत्यादि ।  
द्वितीयोद्देशसमाप्तौ “जस्सेते पुढविकम्पसमारंभा परिण्णाय्या भवंति से हु  
मुणी परिण्णायकम्मा” इत्युक्तम् । अधुना तु—न च तावतैव सर्वथा मुनिर्भवितुमर्हति ।  
यथा भवति तथा दर्शयितुं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह—‘से वेमि’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

से वेमि—से जहावि अणगारे उज्जुकुडे नियागपडिवण्णे अमाय कुच्चमाणे  
वियाहिए ॥ सू० १ ॥

॥ छाया ॥

तद् ब्रवीमि स यथापि अनगार ऋजुकृतः नियागप्रतिपन्नः अमायां कुर्वाणो  
व्याख्यातः ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

‘से वेमि’ इत्यादि । तद् ब्रवीमि यदन्यच्च भगवदन्तिके मया

रहने वाले साधु नयी—नयी होने वाली स्खलना के दोषों से बच सकते हैं । यही बात स्पष्ट  
करते हुए सुधर्मा स्वामी आगे कहते हैं—‘से वेमि’ इत्यादि ।

मूलार्थ ( भगवान् के मुखारविन्द से जो सुना है, ) सो कहता हूँ—ऋजुकृत  
मोक्षमार्ग मे प्राप्त और माया न करने वाला अनगार कहा गया है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—भगवान् के समीप और भी जो सुना है वह कहता हूँ । पृथ्वीकाय के  
विषय में शस्त्र का आरंभ न करने वाला पृथ्वीकाय के आरंभ को जानने वाला पुरुष जिस

साधु—नवी नवी थवावाणी स्खलना दोषोथी भयी शके छे, ये वात स्पष्ट करीने  
सुधर्मा स्वामी आगण कहे छे—‘से वेमि’ इत्यादि

भीन उद्देशकनी समाप्तिमा कहुँ इतु के—जे पुरष पृथ्वीकायना आरंभने  
नक्षुनि तेना त्युग करी आये छे, ते मुनि छे अहिं ये अताववामा आवे छे के—  
आटेतु करवा मात्रथी जे केछ पूरी रीते मुनि थछ शकता नथी, मुनि थवाने भाटे भीछ  
—जे जे वातोनी (नक्षुवानो) आवश्यकता छे, तेने सुधर्मा स्वामि कहे छे—‘से वेमि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—(भगवानना मुखारविन्दी जे सामज्यु छे) ते कहुँ छु—  
ऋजुकृत, मोक्षमार्गमा प्राप्त अने माया नहिं करवावाणा अणुगार कहे छे (१)

टीकार्थ—भगवाननी पासोथी भीनु पषु जे सामज्यु छे, ते कहुँ छु—  
पृथ्वीकायना विषयमा शस्त्रने आरंभ नहिं करवावाणा, पृथ्वीकायना आरंभने

तथा नियागप्रतिपन्नाः, नि-निश्चयेन यत्कति-सम्यग्गमनं कुर्वन्ति यत्र स  
 नियागः=मोक्षमार्गं ज्ञानक्रियासहस्रम् । यथा-नि-निश्चयेन यत्कति-ददाति सिद्धि  
 गतिमिति नियागः=ज्ञानत्यादिदशविधो यतिधर्मः, तं प्रतिपन्नः=प्राप्तः ।

तथा 'अमायां कूर्पाणः' माया=वीर्याचारसंगोपनं परब्रह्मणं वा, न माया  
 अमाया, तां कूर्पाणः अनंगारो व्याख्यातः=मगवता द्रष्टव्यः ।

अयं मातः-न केवलं पृथिवीसहस्रसमारम्भमात्रनिवृत्त्याऽनंगारो भवति  
 किन्तु या सत्त्व पृथिवीसहस्रसमारम्भनिवृत्तः परिहातसकलसापद्यकर्मा निरव-

भव 'नियागप्रतिपन्न' शब्दका अर्थ करते हैं । 'नि' अर्थात् निश्चय से 'याग'  
 अर्थात् सम्यक् गमन अर्थात् किया जाता है उसे 'नियाग' या मोक्षमार्ग कहते हैं । ज्ञान और  
 क्रिया मोक्ष का मार्ग है ।

अथवा 'नि' अर्थात् निश्चय से 'याग' अर्थात् सिद्धिगति देने वाला क्या  
 अथवा इस प्रकार का यतिधर्म 'नियाग' कहलाता है, ऐसे नियाग को जो प्राप्त हो चुका  
 हो वह नियागप्रतिपन्न है ।

तथा माया अर्थात् वीर्याचर का गोपन करना या दूसरे को गेह्य देना  
 माया है । इस माया का सेवन न करने वाला जो बड़ी अनंगार है, ऐसा मगवान् मे  
 कहा है ।

तत्पर्यं यह है कि-केवल पृथ्वीसहस्र के कारण का त्याग कर देने मात्र से  
 ही कोई अनंगार नहीं हो जाता बल्कि जो पृथ्वीसहस्र के कारण का त्याग कर के सकल

इसे 'नियागप्रतिपन्न' शब्दने अर्थ करे छे. 'नि' अर्थात् निश्चयसे 'याग'  
 अर्थात् सम्यक्गमन अर्थात् करवाया जावे छे तेने नियाग अथवा मोक्षमार्ग कहे छे  
 ज्ञान अने क्रिया मोक्षने मार्ग छे अथवा 'नि' अर्थात् निश्चयसे 'याग' अर्थात्  
 सिद्धिगति प्राप्तवावाला अथवा जाति इस प्रकारने यतिधर्म 'नियाग' कहेवाय छे.  
 जेवा नियागने के प्राप्त यत् कृपा छे ते विद्याप्रतिपन्न छे तथा माया अर्थात्  
 वीर्याचरनु गेह्यन करतु अथवा जीवने मोक्ष देवा ते माया छे ते मायातु सेवन  
 नहि करवावाला के होय ते अंगार छे जे प्रमाद्ये जन्माने कसु छे.

तदर्थं जे छे के-केवल पृथ्वीसहस्रना कारणने त्याग करी देवा मात्रसेय होय  
 अंगार बला नहीं परन्तु जे पृथ्वीसहस्रना कारणने त्याग करिनि, सकल साधन अभिनि

શિવસ્થાનમિતિ - ઋજુઃ = વિપમભાવરહિત્વાદ્ દુષ્પ્રણિહિતમનોવાકાયનિરોધરૂપઃ સયમઃ, સ કૃતઃ=અનુષ્ઠિતો યેન સ ઋજુકૃતઃ-મનોવાકાયજન્યસકલસાવધ-ક્રિયાનિવૃત્ત ઇત્યર્થઃ ।

યદ્વા-સંપૂર્ણસંવરસ્વરૂપસંયમેન સંયમિના મોક્ષસ્થાનગમનાર્થ ઋજુગતિઃ પ્રાપ્યતે, તત્ર ઋજુગતેઃ કારણં સંયમ ઇતિ કારણે કાર્યોપચારાત્સપ્તદશવિધ-સંયમોઽપિ ઋજુરિત્યુચ્યતે, સ કૃતઃ=સમાચરિતો યેનાસૌ ઋજુકૃતઃ કૃતસંપૂર્ણ-સંયમાનુષ્ઠાન ઇત્યર્થઃ ।

વાળા ઋજુ કહલતા હૈ । અથવા આત્મા કો શાશ્વત મોક્ષસ્થાન પર પહુંચાને વાળા ઋજુ કહલતા હૈ । અથવા ઋજુ કા અર્થ હૈ-સયમ । મન, વચન, કાય કે સ્વોટે વ્યાપાર કો રોકનારૂપ સયમ હૈ । જિસ ને ઇસા વ્યાપાર રોક દિયા હૈ વહ ઋજુકૃત કહલતા હૈ । અર્થાત્ જો મન, વચન ઓર કાય સે હોને વાલી સમસ્ત સાવધ ક્રિયાઓ સે નિવૃત્ત હો ગયા હો વહ 'ઋજુકૃત' હૈ ।

અથવા—સમ્પૂર્ણસવરૂપ સયમ કે દ્વારા સયમી મોક્ષ મેં ગમન કરને કે લિષ્ઠ ઋજુગતિ પ્રાપ્તિ કરતા હૈ । ઇસ ઋજુગતિ કા કારણ સયમ હૈ । અતઃ કારણ મેં કાર્ય કા ઉપચાર કરને સે સત્રહ પ્રકાર કા સયમ મી 'ઋજુ' કહલતા હૈ । ડસ 'ઋજુ' અર્થાત્ સયમ કા જિસને આચરણ કિયા હો વહ 'ઋજુકૃત' કહલતા હૈ । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ પૂર્ણ સયમ કા અનુષ્ઠાન કરને વાળા ઋજુકૃત હૈ ।

વાળા ઋજુ કહેવાય છે. અથવા આત્માને શાશ્વત મોક્ષસ્થાન પર પહોંચાડવાવાળા ઋજુ કહેવાય છે. અથવા ઋજુનો અર્થ છે સયમ-મન, વચન અને કાયના ધોટા વ્યાપારને રોકવા રૂપ સયમ છે. જેણે એવો વ્યાપાર રોકી આપ્યો છે તે 'ઋજુકૃત' કહેવાય છે. અર્થાત્ જે મન, વચન અને કાયથી થવાવાળી સમસ્ત સાવધ ક્રિયા-ઓથી નિવૃત્ત થઈ ગયા હોય તે ઋજુકૃત છે

અથવા—સ પૂર્ણસવરૂપ સયમદ્વારા સયમી મોક્ષમા ગમન કરવા માટે ઋજુગતિ પ્રાપ્ત કરે છે તે ઋજુગતિનું કારણ સયમ છે તેથી કારણમા કાર્યને ઉપચાર કરવાથી સત્તર (૧૭) પ્રકારનો સયમ પણ 'ઋજુ' કહેવાય છે તે ઋજુ અર્થાત્ સયમનું જેણે આચરણ કર્યું છે તે 'ઋજુકૃત' કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે પૂર્ણ-સયમનું અનુષ્ઠાન કરવાવાળા ઋજુકૃત છે.

“किमार्थो मार्गोऽस्ति न वा” इति सर्वात्मविषयिका शब्दा सर्वशक्त, तथा-  
 “किमप्रायादयो जीवाः मन्ति न वा” इति देशशब्दा ।

केवलालोकित्त विरोधय मगधता विशिष्य प्रवचने कथितत्वात् अप्रायादयोः  
 सन्ति जीवाः, इति पूर्वा कोटिः, चेतनास्वात्मलक्षणस्य सुस्पष्टमनुपलब्धेर्न सन्ति  
 अप्रायादयो जीवाः, इत्युच्यते कोटिः प्रादुर्भवति । पूर्वसयोगं=भाषाविनिर्णयसम्बन्धं,  
 पनचान्यस्वभवादिसम्बन्धं वा ।

शुद्धपक्षधनम्-तेन पश्चात्संयोगमपि अत्रादिकृतं विहाय=परित्यज्य  
 निष्कान्तः=अनगारो भावः, तां शब्दात् अत्रापलब्धेरेव निरतिचारं रक्षेदित्यर्थः ।

और (२) देशशब्दा । अर्थात् मगवान द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तव में मोक्षमार्ग है  
 या नहीं ? परी-शब्दा सर्वशब्दा है । अप्राय आदि के भाव हैं या नहीं ? यह देश  
 शब्दा है ।

मगवान्ने केवल ज्ञान से देखकर प्रवचन में अप्राय आदि के जीवों का  
 अस्तित्व प्रकट किया है, यह शब्दा की पूर्वकोटि है । भाषा का चेतनालक्षण स्पष्ट  
 रूप से नहीं पाया जाता, अत एव अप्राय आदि अशुद्ध हैं, यह शब्दा की दूसरी कोटि है ।

माता, पिता आदि का संबंध तथा पत्नी, भ्रातृ, स्वजन आदि का संबंध पूर्वसयोग ।  
 कथयता है । उपलक्षण से सास-ससुर आदि का संबंध पश्चात्सयोग कहलता है । इन दोनों  
 संयोगों को त्याग कर के जिस शब्दा के साथ अनगार हुआ है उसी शब्दा का पासन करे  
 अर्थात् उस को निरतिचार रखा करे ।

अने (२) देशशब्दा । अर्थात् मगवान द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तविक हीते मोक्ष  
 मार्ग है के नहीं ? आ प्रकटनी शब्दा से सर्वशब्दा से अप्राय आदिना लक्षण  
 है के नहीं ? आ देशशब्दा से

मगवाने केवलज्ञान बडे जोडने प्रवचनमां अप्राय आदिना लक्षण अस्तित्व  
 प्रकट कर्तुं से आ शब्दानी पूर्वकोटि से आभातु चेतनालक्षण स्पष्टपक्षी जेवामां  
 आभातु नहीं तेषी अप्राय आदि अलक्षण से आ शब्दानी लीला केटि से

माता-पिता आदिना सलक्ष तथा पत्नी, भ्रातृ स्वजन आदिना सलक्ष पूर्व  
 संयोग कहेवाय से, उपलक्षणपक्षी सासु, सासुर आदिना सलक्ष पश्चात्सयोग  
 कहेवाय से आ जन्ने संबागने त्याग करीने के शब्दाधी अपुत्रार शब्दा से ते  
 अर्थात् पासन करे अर्थात् तेनी निरतिचार (विना अतिचार) रखा करे

શેષસંયમાનુષ્ઠાનપ્રવૃત્તઃ સમાશ્રિતમોક્ષમાર્ગઃ કર્પૂરસ્વળવદન્તર્વહિરેકરૂપતયા  
સ્વવીર્યસંગોપન-પરવશ્ચનલક્ષણમાયાચારરહિતો ભવતિ સ एव वस्तुतोऽनगारो  
बोद्धव्य इति ॥ सू० १ ॥

ઉત્તરૂપસ્યાનગારસ્ય કર્તવ્યમાહ—‘જાણ’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

જાણ સદ્ધાણ નિક્સંતો તમેવ અણુપાલિજ્જા વિજહિત્તા વિસોત્તિયં  
પુવ્વસંજોગં ॥ સૂ૦ ૨ ॥

॥ છાયા ॥

યયા શ્રદ્ધયા નિષ્ક્રાન્તસ્તામેવાનુપાલયેત્ વિસ્ત્રોતસિકાં પૂર્વ-  
સંયોગમ્ ॥ ૨ ॥

॥ ટીકા ॥

યયા શ્રદ્ધયા વિસ્ત્રોતસિકાં=શક્કાં, સર્વશક્કાં દેશશક્કાં ચેત્યર્થઃ ।

સાવધ કાર્યોં કા જ્ઞાતા હોતા હૈ ઓર પૂર્ણ સયમ કૈ અનુષ્ઠાન મૈં પ્રવૃત્ત હો તથા મોક્ષમાર્ગ કા  
આશ્રય લેતા હૈ । કપૂર કૈ ટુકડે કી મૈંતિ મીતર-બાહર ઇક્સા ઉજ્જ્વલ હોને કૈ કારણ  
અપની શક્તિ કા ગોપન નહીં કરતા ઓર ઢૂસરોં કો ધોંખા નહીં દેતા અર્થાત્ માયાચાર સે  
રહિત હોતા હૈ, ડસી કો વાસ્તવ મૈં અનગાર સમક્ષના ચાહિય ॥ સૂ ૧ ॥

ઉક્ત પ્રકાર કૈ અનગાર કા કર્તવ્ય વતલાતે હૈં—‘જાણ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—શક્કા કાહ્લક્ષા આદિ કા ત્યાગ કર કૈ ઓર પૂર્વકાલીક સયોગોં કા ત્યાગ  
કર કૈ જિસ શ્રદ્ધા કૈ સાથ નિકલ હૈ, ડસી શ્રદ્ધા કા નિરન્તર પાલન કરે ॥ સૂ ૨ ॥

ટીકાર્થ—‘વિસ્ત્રોતસિકા’ કા અર્થ હૈ શક્કા, શક્કા ડો પ્રકાર કી હૈં (૧) સર્વશક્કા

જ્ઞાતા-બુદ્ધિનાર થાય છે અને પૂર્ણ સયમના અનુષ્ઠાનમા પ્રવૃત્ત થાય છે, તથા મોક્ષ  
માર્ગનો આશ્રય લે છે કપૂરના ટુકડાની માફક અદર અને બહાર એકબી પ્રકારે ઉજ્જ્વલ  
હોવાના કારણે પોતાની શક્તિનું ગોપન કરતો નથી અને બીબને ઢગો દેતો નથી અર્થાત્  
માયાચારથી રહિત હોય છે, તેને વાસ્તવિક રીતે અણુગાર સમજવો જોઈએ (સૂ ૧)

ઉપર કહ્યા તેવા અણુગારનું કર્તવ્ય બતાવે છે—‘જાણ’ ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—શક્કા, કાંક્ષા વગેરેનો ત્યાગ કરીને અને પૂર્વ કાલના સયોગોનો  
ત્યાગ કરીને જે શ્રદ્ધાથી નિકળ્યા છે, તે શ્રદ્ધાનું નિરન્તર પાલન કરવું (સૂ ૨)

ટીકાર્થ—‘વિસ્ત્રોતસિકા’નો અર્થ છે શક્કા, શક્કા બે પ્રકારની છે—(૧) સર્વશક્કા

अस्या लक्षणं तु अमसंवेगनिर्वेदानुकम्पाऽऽस्त्विक्यानां प्रादुर्भावः । तत्र पीत-  
रागप्रपीतप्रवचनतस्वामिनिवेष्टवक्षेनाऽनन्तानुबन्धिक्यायाणामनुदयः अम इत्युच्यते ।  
यद्वा विपयासक्तिनिवृत्तिः अमः ।

तथा संवेगाभिनप्रवचनानुसारेण नरकादिगतियु ननाविषदुःसापक्षो  
क्यानाम्पम्, यथा स्वकृतकर्मोदयान्तरकेषु-अप्रमन्यपीतोऽप्यादिदशनिवेदनासरन,  
परमाध्यामिकवेवकृष्ट परस्परोदीरितं चेति त्रिविधं दुःख, तथा तिर्यग्-ताडन-  
तर्जना-सुत्विषासा-पारवश्य-भारारोपजाघनेकविध दुःखं, मनुष्येषु-दार्द्रिय-

अम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और अस्त्विक्य का प्रकट हो जाना अद्वा का चिह्न है ।

वीरराजद्वारा प्ररूपित प्रवचन के अन्त में गाड़ी प्रीति होने से अनन्तानुबन्धी कवियों  
का (कोष, मान, माया, स्नेह का) उदय न होना अम कहलता है । अद्वा विषयो के  
प्रति आसक्ति इट जाना अम' है ।

जिन समाप्त के वचन के अनुसार नरक आदि गतियों में नाना प्रकार के दुःखों  
को जानकर उन से भयभीत होना 'संवेग' है । जैसे—“अपने किये कर्मों के  
उदय से नरकों में क्षेत्रक्य शीत-उष्ण (सर्दी-गर्मी) आदि दश प्रकार की वेदना,  
परमाध्यामी देवों द्वारा दीवामे वाली वेदना और परस्पर नारकी जीवों द्वारा होने वाली  
वेदना नरक में यह तीन तरह की वेदना है । त्रिविधों में ताडना, तर्जना, मूल,  
ज्यास, परपीनता बोझा होना आदि अनेक प्रकार की वेदना है । मनुष्यों में दार्द्रिता,  
ज्यास, परपीनता बोझा होना आदि अनेक प्रकार की वेदना है । मनुष्यों में दार्द्रिता,

अम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और अस्त्विक्य जैसे प्रकट शब्द जन्म से  
अद्वा का चिह्न है

वीरराजद्वारा प्ररूपित प्रवचननां तत्त्वोभां अद्वा प्रीति अथापी अनन्तानु  
बन्धी कवियोंना (कोष मान, माया बोझना) उदय याव नकि ते अम कहेवाव  
है । अद्वा विषयो प्रति आसक्ति इट जाना अम' है ।

जिन अजयानना वचन-अनुसार नरक आदि जतिज्योभा नाना प्रकारना दुःखोने  
अपनी ने तेनापी अमपीत यदु ते 'संवेग' है स्नेहके- पीताना करेतां कर्मोना उदयपी  
नरकोभां क्षेत्रक्य शीत-उष्ण (सर्दी-अरमी) आदि दश प्रकारनी वेदना परमाध्यामी देवों  
द्वारा से जाय है ते वेदना, अने परस्पर नारकी लोभे द्वारा बनारी वेदना नरकभां अ  
प्रमाक्षे त्रय प्रकारनी वेदना है तिर्यग्-ताडना, तर्जना (भारदु-परशुदु) मूल तरस,  
परापीनता, बोझा इष्टना आदि अनेक प्रकारनी वेदना है । मनुष्योभां दार्द्रिता, इर्ष्या,

નતુ કા નામ શ્રદ્ધા, યયા વિનાઽનગારત્વં નોપલભ્યતે ? ઉચ્યતે—જીવાદિતત્ત્વેષુ શ્રદ્ધાનં, રુચિઃ, અભિપ્રીતિઃ, સમ્યગ્દર્શન શ્રદ્ધા, 'एतत्तत्त्वमेवमेवे'-ત્યવધારણમ્, "તમેવ સત્ત્વં નીસકં જં જિણેહિં પવેહ્ય" ઇતિ વચનાનુસ્મરણેન જગદેકવન્ધુના વીતરાગેણ ભગવતા યથા કથિતં તથૈવેદં જીવાદિતત્ત્વં સત્યમિતિ નિશ્ચય ઇતિ યાવત્ ।

યદ્વા મિથ્યાત્વમોહનીયકર્મણ ઉપશમાત્ ક્ષયોપશમાત્ ક્ષયાદ્વા આત્મનોઽપૂર્વા જ્ઞાનાવસ્થા જાયતે, આચિલસલિલસ્ય કતકફલચૂર્ણસંયોગાત્સ્વચ્છતાવત્ સૈવ શ્રદ્ધા ।

શઙ્કા—યહ શ્રદ્ધા કૌન—સી હૈ જિસ કે વિના સાધુપન નહી રહ સકતા ?

સમાધાન—જીવાદિ તત્ત્વો પર શ્રદ્ધા કરના, રુચિ હોના, અભિપ્રીતિ હોના, યહ સમ્ય-દર્શન—શ્રદ્ધા હૈ । 'यह तत्त्व ऐसा ही है' ઇસ પ્રકાર પક્કા નિશ્ચય કરના શ્રદ્ધા હૈ । 'जिन भगवान् ने जो कहा है वही सत्य और सदेह-रहित है' ઇસ વચન કે બનુસાર યહ નિશ્ચય કરના કિ જગત કે અદ્વિતીય વન્ધુ વીતરાગ ભગવાન્ ને જૈસા નિરૂપણ ક્રિયા હૈ, ઊસી પ્રકાર જીવાદિતત્ત્વ સત્ય હૈ । યહ શ્રદ્ધા કા સ્વરૂપ હૈ ।

અથવા—મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મ કે ઉપશમ સે, ક્ષયોપશમ સે અથવા ક્ષય સે આત્મા કી એક અપૂર્વ જ્ઞાનાવસ્થા ઉત્પન્ન હોતી હૈ । જૈસે—મલિન જલ મેં કતકફલ કા ચૂર્ણ ઢાલને સે જલ સ્વચ્છ હો જાતા હૈ । એસી સ્વચ્છ-નિર્મલ આત્મદશા શ્રદ્ધા કહલાતી હૈ ।

શંકા—તે શ્રદ્ધા કેવી છે, કે જેના વિના સાધુપણ રહી શકે નહિ ?

સમાધાન—જીવાદિ તત્ત્વો પર શ્રદ્ધા કરવી, રુચિ થવી, અભિપ્રીતિ થવી, તે સમ્યગ્દર્શન શ્રદ્ધા છે, "આ તત્ત્વ આપુંજ છે" એ પ્રમાણે પાકો નિશ્ચય કરવો તે શ્રદ્ધા છે "जिन भगवान् ने जो कहे છે તે સત્ય અને સંદેહરહિત છે" એ વચન પ્રમાણે એ નિશ્ચય કરવો કે જગતના અજ્ઞેઠ બન્ધુ વીતરાગ ભગવાને જેવું નિરૂપણ કર્યું છે, તે પ્રમાણે જીવાદિ તત્ત્વ સત્ય છે આ શ્રદ્ધાનું સ્વરૂપ છે

અથવા—મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના ઉપશમથી, ક્ષયોપશમથી, અથવા ક્ષયથી આત્માની એક અપૂર્વ જ્ઞાનાવસ્થા ઉત્પન્ન થાય છે જેમ મલીન પાણીમા કતકફળ-નિર્મળીકૃણતુ ચૂર્ણ નાખવાથી જલ સ્વચ્છ થઈ બચ છે એવી સ્વચ્છ-નિર્મલ આત્મદશા શ્રદ્ધા કહેવાય છે.

काममोगाध्यवसायः स्वच्छ दुरन्तोऽनन्तदुःखफलदम्, परलोकेऽप्यतिकटुको नरकादि  
मन्मफलमदः, इत्यतो न किञ्चित्प्रयोजनमनेन काममोगाध्यवसायेन, परित्याज्य  
एवायमतिप्रयत्नेन' इत्येवंप्रकारं आरम्भपरिणामो निर्वेदः ।

उक्तं च निर्वेदस्वरूपं तत्फलं च, तथाहि—

“निष्प्रेषणं संते! जीवे किं ज्ञणयइ? निष्प्रेषणं दिव्यमाणुसतेरिच्छिणसु  
काममोगेसु निष्प्रेष्यं ह्यवसागच्छइ। सम्भविसणसु विरज्जइ। सन्नविसणसु विरज्जमाय  
आरंभपरिष्वायं करेइ। आरम्भपरिष्वायं करेमाणे संसारममं वोच्छिइइ, सिद्धिममं  
पडिक्खे य इणइ।” (उत्तरा० अ २९)

आसक्ति न होया 'निर्वेद' है। काममोगसम्बन्धी अध्यावसाय इस लोके में अत्यन्त दुःख-  
दुःखक है, और परलोके में भी अत्यन्त कटुक नरक आदिरूप फल देने वाला है, अत एव  
काममोगसंबन्धी अध्यावसाय से मुझे क्या केन-देन है। इसे खूब परिश्रम कर के त्याग ही  
देना चाहिये'। इस प्रकार का आरम्भ परिणाम 'निर्वेद' कहलाता है। निर्वेद का स्वरूप  
और फल इस प्रकार कहा गया है—

“भगवन्! निर्वेद से जीव को क्या काम होता है? निर्वेद से जीव को देवता मनुष्य  
और सिद्धि संकषी काम मोगो में शीघ्र ही निरक्ति उत्पन्न होती है। सब विषया से जीव  
निरक्त होकर आरम्भ का परिष्कार करता है। आरम्भ का परिष्कार करता हुआ संसारमार्ग  
को त्यागता है और मोक्षमार्ग को आत्मिकर करता है” —(उत्तरा अ २९)

विषयोर्मां आसक्तिं याव नहि ते निर्वेदो काममोगसम्बन्धी अध्यावसाय आ लोकाभां  
अत्यन्त दुःखदायक है अने परलोकाभां यत्तु अत्यन्त कटुक नरकजति आदि रूप इण  
देवायमां छे जेट्ठा माटे काममोगसम्बन्धी अध्यावसायधी आरे शुं देवा देवा छे  
तेने खूब परिश्रम करीने त्यल देवा जेठेज्जे. आ प्रकालुं आत्मिक परिष्कार ते  
निर्वेद इहेवाय छे. निर्वेदनुं स्वरूप अने इस का प्रकारं इणु छे—

“भगवन्! निर्वेदधी एवने शुं लाल याव छे?

निर्वेदधी एवने देवता, मनुष्य अने विषयसम्बन्धी काममोगोर्मां शीघ्र  
निरक्ति उत्पन्न याव छे सब विषयोधी एव निरक्त भई जाव छे सब विषयोधी  
निरक्त भईने आरम्भने परिष्कार करतो वहे। संसारमार्गने त्यल दे छे अने  
मोक्षमार्गने आजीकार करे छे” (उत्तरा० अ २६)



जीवो जनयति । तथा च नरकादिभवेषु घोरतरवहुतराशातवेदनामवलोक्य तद्भयान्मोक्षमार्गं शरणीकृत्य मोक्षाभिलाषरूपं संवेगं शीघ्रं प्राप्नोति । अनन्तानुवन्धिकषायान् क्षपयति, नवीनं कर्म न वध्नाति, तेन मिथ्यात्वं क्षपयित्वा क्षायिकशुद्धसम्यक्त्वं निरतिचारेण पालयति । एवमतिनिर्मलया सम्यक्त्वविशुद्ध्या कश्चिद्भव्यजीवस्तेनैव भवग्रहणेन सिद्धिं प्राप्नोति । एकः पुनः सम्यक्त्वस्य निर्मलया विशुद्ध्या तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति । मिथ्यात्वमोहनीयकर्मणो निरवशेषक्षयात् शुद्धक्षायिकसम्यक्त्ववान् भवत्रयमध्ये मोक्षं प्राप्नोत्येवेत्यर्थः ।

तथा निवेदः—अर्हतवचनाभिनिवेशात्सर्वविषयेषु—अनासक्तिः, 'इह—अलोके

श्रद्धा उत्पन्न होती है । उस श्रद्धा से नरक आदि गतियों में घोर और बहु असाता की वेदना देखकर तथा उस वेदना के भय से मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर मोक्षाभिलाषा—रूपी संवेग को शीघ्र ही स्वीकार कर लेता है । वह अनन्तानुवन्धी कषायों का क्षय करता है और नवीन कर्म के बध को रोक देता है । मिथ्यात्व का क्षय कर के शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व का निरति-चार पालन करता है । इस प्रकार अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धि के कारण कोई—कोई भव्य जीव उसी भव में मुक्त हो जाता है, और कोई—कोई तीसरे भव का उल्लघन नहीं करता अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से शुद्धक्षायिकसम्यक्त्वी जीव तीन भवों में अवश्य मोक्ष पाता है ।

अर्हन्त भगवान् के प्रवचन में प्रगाढ प्रीति होने के कारण सब इन्द्रिय-विषयों में

श्रद्धा उत्पन्न थाय छे, अे श्रद्धाथी नरक आदि गतिओमा घोर अने षहुळ असा तानी वेदना लेछने तथा अे वेदनाना भयथी मोक्षमार्गने आश्रय लछने मोक्षा भिलाषाअपी संवेगने शीघ्रळ स्वीकार करी ले छे ते अनन्तानुवन्धी कषायेओ क्षय करे छे अने नवीन कर्मना षधने रोक दे छे मिथ्यात्वने क्षय करीने शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वनु निरतिचार पालन करे छे आ प्रभाळ् अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धिना कारण् कोछ—कोछ लव्य एव अेळ लवमा मुक्ता थछ लय छे, अने कोछ—कोछ त्रीण भवषु उल्लघन करता नथी अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना स पूरुक्षयथी शुद्धक्षायिक-सम्यक्त्वी एव त्रषु लवोमा अवश्य मोक्षने प्राप्त करे छे

॥ प्रवचनमा प्रगाढ-संलग्न प्रीति डोवाना कारण् सर्व इन्द्रियोना

“संवेगेन मते । जीवे किं जगद्य ? संवेगेन भणुत्तरं धम्मसद्वं जगद्य ।  
 अणुत्तराय धम्मसद्वाय संवेगं ह्य्यमागच्छ । अणुताणुवधिकोइमाधमायलोमे स्ववे ।  
 नवं च कम्म न वपय । तप्पन्नहर्यं च णं मिच्छच्चवितोहिं काउज्ज दंसणाराए मय ।  
 दंसवविसोहीए य णं विसुद्धाय अत्वेगएय तेवेव भवमाहण्येण सिन्नाइ । विसोहीए य  
 णं विसुद्धाय तन्वं पुणो भवमाहण नाइकम्म ॥ ” (उत्तरा० अ० २९)

छया—“संवेगेन मद्दन्त । जीवः । क्व जगद्यति ? संवेगेन अनुत्तरं धर्मभद्रां  
 जनयति । अनुत्तरया धर्मभद्रया संवेगो ह्य्यमागच्छति, अन्तानुवन्धि-क्रोपमान  
 मायालोमान् सपयति, नवं च कर्म न वधाति, तत्प्रत्ययिकां च स्वसु मिष्यास्वविशोधिं  
 कृत्वा दर्शनाराधको भवति, दर्शनविशोष्या च स्वसु विशुद्धया अप्यककस्तनैव मय-  
 प्रहण्येण सिद्धयति । विशोष्या च स्वसु विशुद्धया तृतीयपुनर्मयप्रहण नातिक्रामति ॥ ”

सुदेव-सुगुरु-सुधर्मेषु निश्चलानुरागरूपेण संवेगेन उत्कृष्टतमां धर्मधदां

“मगवान् । संवेग से जीव को क्या काम होता है !

संवेग से सर्वश्रेष्ठ धर्मभद्रा उत्पन्न होती है, और धर्मधदा से संवेग क्षीय उत्पन्न हो  
 जाता है । अन्तानुवन्धी क्रोध मान माया और छेद का वह छय करता है । नवीन कर्मों  
 का रूप नहीं करता और इन कारणों से मिष्यास्व की विद्युत्ति कर के जीव दर्शन का  
 अग्रवक होता है । दर्शनविशुद्धता कर्तव्यता से कोई-कोई जीव उसी मय में स्थित हो जाता है,  
 कर्मर कोई उसी मय में मोक्ष न जाने तो तीसरे मय का उत्सर्जन नहीं करता, जर्मात् तीसरे  
 मय में वह अवश्य मोक्ष जाता है । — (उत्तराध्ययन अ. २९)

“ सुदेव सुगुरु और सुधर्म में निश्चल अनुरागरूप संवेग से जीव को सर्वश्रेष्ठ

“जगवन् सवेजधी एवने शुं ताज याव उ ?” सवेजधी सर्वश्रेष्ठ धर्मभद्रा  
 उत्पन्न याव उ अने धर्मभद्राधी सवेज शीम उत्पन्न याव उ अन्तानुवन्धी क्रोध  
 मान, माया अने दोषाने ते छय करे उ नवीन कर्मोने जय करतो नधी, अने के  
 दर्शनधी मिष्यास्वनी विशुद्धि करीने एव दर्शनने आराधक याव उ । दर्शनविशुद्धता वधी  
 जयाधी कोर्-कोर् के लयमां सिद्ध वधि जय उ, कोर् के लयमां भासे न लय तो त्रीज  
 लयन्तु उत्पन्न करवा नधी, अर्थात् त्रीज लयमां ते अवश्य भासे लय उ ” (उत्तरा० अ. २६)

सुदेव, सुगुरु अने सुधर्ममा निश्चल अनुरागरूप सवेजधी एवने सर्वश्रेष्ठ

दौर्भाग्य-जन्म-जरा-मरण-रोग-शोक-सन्तापादि, देवेषु-ईर्ष्या-विषाद-परमेष्य-त्वादिदुःखं जीवा अनुभवन्ति, तस्माद्-‘यथा ममेदृशं दुःखं न स्यात् तथा यत्नं करोमि’ इत्याकारक आत्मिकपरिणामः संवेगः ।

यद्वा-सुदेव-सुगुरु-सुधर्मेषु निश्चलोऽनुरागः संवेगः । उक्तञ्च—

“तथ्ये धर्मे ध्वस्तहिंसापबन्धे, देवे रागद्वेषमोहादिमुक्ते ।

साधौ सर्वग्रन्थसन्दर्भहीने, सवेगोऽसौ निश्चलो योऽनुरागः ॥ १ ॥ ” इति ।

आगमोऽप्यत्रार्थे प्रमाणम्—

जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, सताप आदि की वेदना है । देवों में ईर्ष्या, विषाद, आज्ञा-पालन आदि के दुःख हैं । जीव इन दुःखों का अनुभव करते हैं, अत एव मैं ऐसा प्रयत्न करूँ कि—जिस से मुझे इस प्रकार के दुःख न भुगतने पड़े ” । इस प्रकार का आत्मा का परिणाम ‘संवेग’ कहलाता है ।

अथवा सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में अचल अनुराग होना ‘संवेग’ कहलाता है । कहा भी है—

“हिंसा आदि की परम्परा से रहित सच्चे धर्म में, राग द्वेष और मोह आदि से रहित देव में, तथा सब प्रकार के परिग्रह से रहित गुरु-साधु में निश्चल अनुराग होना संवेग है” ॥ १ ॥

इस विषय में आगम प्रमाण भी है—

जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, सन्ताप आदिनी वेदना छे देवोभां ईर्ष्या, विषाद, (शोक) आज्ञापालन आदिना दुःखो छे एव आ दुःखोना अनुभव करे छे. ते कारण्युथी दुःखो प्रयत्न करे के-येथी भने आ प्रकारनु दुःख भोगववुं पडे नहि.” आ प्रकारनुं आत्मानु परिणाम ते संवेग कहवाय छे

अथवा सुदेव, सुगुरु अने सुधर्मभा अचल अनुराग-प्रीति थवे ते संवेग कहवाय छे कहुं पद्य छे के—

“हिंसा आदिनी परम्पराथी रहित साध्या धर्मभा, राग द्वेष अने मोह आदिथी रहित देवभा, तथा सर्व प्रकारना परिग्रहथी रहित गुरु-साधुभा निश्चल अनुराग थवे ते संवेग छे” ॥ १ ॥

आ विषयभा आगम प्रमाण पद्य छे.—

काममोगाध्यवसायः स्वच्छ दुरन्तोऽनन्तदुःखफलदश्च, परलोकेऽप्यतिक्रुद्धो नरकादि  
जन्मफलप्रदः, इत्यतो न किञ्चित्प्रयोजनमनेन काममोगाध्यवसायेन, परित्याज्य  
पदायमतिप्रयत्नेन ' इत्येवंरूप आत्मकपरिणामो निर्वेदः ।

उक्तं च निर्वेदस्वरूपं तत्फलं च, तयाहि—

“ निष्प्रेषण मते! जीवे किं ब्रह्मयद् ? निष्प्रेषणं दिव्यमाधुसतेरिच्छिप्यसु  
काममोगेसु निष्प्रेयं इवमागच्छद् । सत्त्वविसृष्टसु विरज्जद् । सम्बविसृष्टसु विरज्जमाणे  
आरंभपरिष्वायं करेद् । आरम्भपरिष्वायं करेमाणे संसारमार्गं बोद्धिदद्, सिद्धिमार्गं  
पठिक्त्वे य इयद् । ” (उत्तरा० अ २९)

आसक्ति न होना निर्वेद' है । 'काममोगात्सम्बन्धी अध्यवसाय इत लोक में ब्रह्मन्त दुःख  
दायक है, और परलोक में भी ब्रह्मन्त कटुक नरक आविरूप फल देने वाला है, अत एव  
काममोगात्संबन्धी अध्यवसाय से मुझे क्या केन-देन है । इसे खूब परिश्रम कर के त्याग ही  
देना चाहिए' । इस प्रकार का आत्मिक परिणाम 'निर्वेद' कहलाता है । निर्वेद का स्वरूप  
और फल इस प्रकार कहा गया है:—

“ भगवन् ! निर्वेद से जीव को क्या लाभ होता है ! निर्वेद से जीव को देवता मनुष्य  
और त्रिषध सर्वधी काम मोगो में शीघ्र ही निरक्ति उत्पन्न होती है । सब निपया से जीव  
निरक्त होकर आरम्भ का परित्याग करता है । आरम्भ का परित्याग करता हुआ संसारमार्ग  
को त्यागता है और मोक्षमार्ग को बंगीकर करता है ” ।—(उत्तरा अ २९)

विषयोर्मा आसक्ति वाच नक्ति ते निर्वेद छे. काममोगात्सम्बन्धी अध्यवसाय आ लोकां  
अनन्त दुःखदायक छे अने परलोकार्मा पक्ष आत्सन्त कटुक नरकागति आदि रूप हूण  
देवाकाया छे कोटला भागे काममोगात्सम्बन्धी अध्यवसायधी भाए शुं देवा देवा छे  
तेने भूय परिश्रम करीने त्वल देवा कोर्छे आ प्रकास्तु आत्मिक परिष्वाय ते  
निवेद कहैवाय छे. निर्वेदनु स्वरूप अने हल आ प्रकारे कहु छे—

“ भगवन् ! निवेदधी लवने शुं त्वल वाच छे ?

निर्वेदधी लवने देवता, मनुष्य अने त्रिषोऽसम्बन्धी काममोगोर्मा शीघ्र  
निरक्ति उत्पन्न वाच छे सर्वविषयोधी लव निरक्त वर्ध जाव छे अर्वा विषयोधी  
निरक्त वर्धने आरम्भने परित्याग करतो वडे। संसारमार्गने त्वल दे छे अने  
मोक्षमार्गने आजीकार करे छे ” (उत्तरा० अ० २६)

जीवो जनयति । तथा च नरकादिभवेषु घोरतरबहुतराशातवेदनामवलोक्य तद्भयान्मोक्षमार्गं शरणीकृत्य मोक्षाभिलाषरूपं संवेगं शीघ्रं प्राप्नोति । अनन्तानुबन्धिकषायान् क्षपयति, नवीनं कर्म न बध्नाति, तेन मिथ्यात्वं क्षपयित्वा क्षायिकशुद्धसम्यक्त्वं निरतिचारेण पालयति । एवमतिनिर्मलया सम्यक्त्वविशुद्ध्या कश्चिद्भव्यजीवस्तेनैव भवग्रहणेन सिद्धिं प्राप्नोति । एकः पुनः सम्यक्त्वस्य निर्मलया विशुद्ध्या तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति । मिथ्यात्वमोहनीयकर्मणो निरवशेषक्षयात् शुद्धक्षायिकसम्यक्त्ववान् भवत्रयमध्ये मोक्षं प्राप्नोत्येवेत्यर्थः ।

तथा निवेदः—आर्हतवचनाभिनिवेशात्सर्वविषयेषु—अनासक्तिः, 'इह—अलोके

श्रद्धा उत्पन्न होती है । उस श्रद्धा से नरक आदि गतियों में घोर और बहु असाता की वेदना देखकर तथा उस वेदना के भय से मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर मोक्षाभिलाषा—रूपी संवेग को शीघ्र ही स्वीकार कर लेता है । वह अनन्तानुबन्धी कषायों का क्षय करता है और नवीन कर्म के बध को रोक देता है । मिथ्यात्व का क्षय कर के शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व का निरति-चार पालन करता है । इस प्रकार अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धि के कारण कोई—कोई भव्य जीव उसी भव में मुक्त हो जाता है, और कोई—कोई तीसरे भव का उल्लघन नहीं करता अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से शुद्धक्षायिकसम्यक्त्वी जीव तीन भवों में अवश्य मोक्ष पाता है ।

अर्हन्त भगवान् के प्रवचन में प्रगाढ प्रीति होने के कारण सब इन्द्रिय-विषयों में

श्रद्धा उत्पन्न थाय छे, अे श्रद्धाथी नरक आदि गतिओमा घोर अने बहुअसा तानी वेदना ओछने तथा अे वेदनाना लयथी मोक्षमार्गना आश्रय लछने मोक्षा भिलाषाथी संवेगने शीघ्रअे स्वीकार करी ले छे ते अनन्तानुबन्धी कषायोनो क्षय करे छे अने नवीन कर्मना बधने रोक दी दे छे मिथ्यात्वना क्षय करीने शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वनु निरतिचार पालन करे छे आ प्रभाञ्जे अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धिना कारणे कोइ—कोइ लव्य एव अेअे लवमा मुक्त थछे लय छे, अने कोइ—कोइ तीअे लवनु उल्लघन करता नथी अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना स पूञ्जेक्षयथी शुद्धक्षायिक-सम्यक्त्वी एव त्रञ्जे लवोमा अवश्य मोक्षने प्राप्त करे छे

अर्हुत भगवानना प्रवचनमा प्रगाढ—सअेअेअे प्रीति होवना कारणे सर्व इन्द्रियोनो

मार्यमाग्राणिनां प्रागसंस्कृतान्मोचन च ।

आस्तिक्यम्—अग्निप्रणीतागमात्नुसारेण 'अस्ति जीवादिपदार्थसार्थ' इति मतिर्यस्य स आस्तिक्यम्, तस्य भावः आस्तिक्यम् । 'मिनेन्द्रप्रबचनोपदिष्टा जीवपरसोकादयः सर्वेऽतीन्द्रियाः पदार्थाः सन्ति' इत्येवंरूप आत्मपरिणामः ।

एभिः समसवेगादिभिर्मिथ्यानां भद्राऽवमुच्यते ।

। मिथ्यादृष्टेरपि भद्रामापि -

भद्रा निसर्गादपिगमाद्वा जायते । उक्तम्—

"सम्बद्धस्ये दुबिहे पणत्ते तंभद्रा-निसर्गसम्भारस्ये येन अपिगम

संस्कृत से लुप्ताना-अनुकम्पा है ।

'आस्तिक्यम्'— 'अग्निप्रणीत आगम के अनुसार जीवादि पदार्थों का अस्तित्व है " । एसी "असि की मति हो कर 'आस्तिक्य' है । आस्तिक्यपन को 'आस्तिक्य' कहते हैं । अग्निप्रबचन में उपदिष्ट जीव परस्मैक आदि सभी अतीन्द्रिय पदार्थ हैं " इस प्रकार का आत्म-परिणाम 'आस्तिक्य' है ।

इन नाम संवेग आदि से सम्बन्ध का पता लगाता है ।

मिथ्यादृष्टि को यद्दामापि

कित ? (स्वभाव) से अथवा अपिगम ( किसी के द्वारा सुनने आदि) से यद्वा उपपन्न होती है । यद्वा नही है—

"सम्बद्धजन दो प्रकार का यद्वा गवा है-निसर्ग-सम्बन्धजन और अपिगम

संस्कृत से लुप्ताना ते अनुकम्पा है

आस्तिक्यम्— 'अग्निप्रणीत आगम अनुसार जीवादि पदार्थों का अस्तित्व है " अथवा अग्नि मति है ते आस्तिक्य है । आस्तिक्यपणने आस्तिक्य' कहे है अग्नि प्रबचन में उपदिष्ट जीव परस्मैक आदि सर्व अतीन्द्रिय पदार्थ है आ प्रकारनां आत्मपरिणाम ते आस्तिक्य है

आ शम्, अवेन, आदिधी लभ्येना सम्बद्धजनो पते जाते है.

मिथ्यादृष्टिने यद्दानी प्रापि

निसर्ग (स्वभाव) थी अथवा अपिगम (किसी के द्वारा सुनने आदि) थी भद्रा उपपन्न भाष है कस्य पण है है-

'सम्बद्धजन दो प्रकारनु कहे है-निसर्ग-सम्बद्धजन अने (२) अपिगम

‘कदाऽहं संसारं परित्यजेयम् ?’ इत्येवंरूपेण निर्वेदेन दिव्यमानुषतंत्रश्रेणु कामभोगेषु निर्वेदम्=अनासक्ति जीवः शीघ्रं प्राप्नोति । इममेवार्थं स्पष्टयति—सर्वविषयेषु विरज्यते—‘अलमेतैरनर्थहेतुभूतैर्विषयैः’ इत्येवंरूपं वैराग्यं प्राप्नोति । वैराग्यं प्राप्तश्च सावधव्यापारं परित्यजति । तत्परित्यागं कुर्वन् संसारमार्गं=मिथ्यात्वाविरतिप्रभृतिरूपं व्यवच्छिन्नन्ति, संसारमार्गव्यवच्छेदे च जीवः सिद्धिमार्गं=सम्यग्दर्शनादिरूपं प्राप्नोतीत्यर्थः ।

अनुकम्पा—अनु=अनुकूलं कम्पनं=रक्षणचेष्टाकरणमनुकम्पा=जिनप्रवचनानुसारेणजीवानामुपरि कारुण्यं, प्राणातिपाताकरणं, परदुःखनिवारण, म्रियमाण-

‘कव मै संसार का त्याग करूँ ?’ इस प्रकार के निर्वेद से जीव को देव मनुष्य और तिर्यक सबधी काम भोगों में अनासक्ति प्राप्त होती है । इसी विषय को स्पष्ट करते हैं कि—जीव सब विषयों से विरक्त हो जाता है, अर्थात् ‘इन अनर्थ के कारणभूत विषयों से बस करो !’ इस प्रकार का वैराग्य पाता है । वैराग्य पाकर जीव सावध व्यापार का त्याग कर देता है । सावध व्यापारका त्याग करता हुआ मिथ्यात्व अविरति आदि संसारमार्ग को छोड़ता है और संसारमार्ग का त्याग कर के सम्यग्दर्शन आदिरूप मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लेता है ।

‘अनु’ अर्थात् अनुकूल ‘कम्पन’ अर्थात् रक्षा करने की चेष्टा करना—अनुकम्पा है । अर्थात् जिन भगवान् के उपदेश के अनुसार जीवों पर करुणाभाव होना, किसी के प्राणों का वियोग न करना, दूसरों का दुःख दूर करना, मरते हुए और मारे जाते हुए प्राणियों को प्राण

‘हु कथारे संसारने त्याग करे ?’ आ प्रकारना निर्वेदधी लवने देव, मनुष्य अने तिर्यक सम्बन्धी कामलोगोभा अनासक्ति प्राप्त थाय छे, ते विषयने स्पष्ट करे छे के—लव सर्व विषयोधी विरक्त थय लय छे अर्थात् आ अनर्थना कारणभूत विषयोधी बस करे ?’ आ प्रकारने वैराग्य पाये छे वैराग्य पाभीने लव सावध व्यापारने त्याग करी दे छे सावध व्यापारने त्याग करतो थके मिथ्यात्व, अविरति आदि संसारमार्गने छोडे छे, अने संसारमार्गने त्याग करीने सम्यग्दर्शन आदि रूप मोक्षमार्गने प्राप्त करी ले छे.

अनु अर्थात् अनुकूल, कम्पन अर्थात् रक्षा करवानी चेष्टा करवी ते अनुकम्पा छे अर्थात्—जिन भगवानना उपदेश प्रभाषे लवे पर कर्षणाभाव थवे, कोठना प्राणोने वियोग करवे नहि, पीलना हु भ हर करवा, मरता अने मरता प्राणीअने प्राण-

अपन्यतोऽन्तर्गृह्यम्, स उत्कर्षतो देवोनार्दपुद्गलपरावर्तं स्थित्वा पुनः सम्पत्तं प्राप्स्यति, स सादिमिध्याहृष्टिर्मवति ।

**यथाप्रवृत्तिकरणम्—**

एवमुपनिषत्स्य मिध्याहृष्टेर्जीवस्य परिणामरूपाभ्यवसायः पूर्वं त्रयन्य शुभपरिणाममङ्गीकृत्य परः परः शुभपरिणामः परिणामविशेष इत्युच्यते । स एव परिणामविशेषो 'यथाप्रवृत्तिकरण'—मित्युच्यते ।

यथाप्रवृत्तिकरण—मित्यस्य सन्दर्भस्त्वेवम्—यथा=येन अनादिसंसिद्ध प्रकारेण प्रवृत्तिर्यस्य तत् यथाप्रवृत्तिः, क्रियते कर्मसंपन्नमननेति कर्म=जीवस्य शुभपरिणामः, यथाप्रवृत्ति च तत्करणं च यथाप्रवृत्तिकरणं कर्मसंपन्नकारणस्या

वाच में अन्तानुबन्धी कथाय के उदय से फिर मिध्याह्न या गया किन्तु वह मिध्याह्न अथवा अन्तर्गृह्य तक और उज्ज्वल देशोत्त अर्द्धपुद्गलपरावर्तन तक रहता है वह भी सादिमिध्याहृष्टि है ।

**यथाप्रवृत्तिकरण—**

इस प्रकार दोनो प्रकार के मिध्याहृष्टि जीवों का अभ्यवसाय पहले के अथवा शुभ परिणाम से केन्द्र उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहलता है । उसी परिणामविशेष को 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहते हैं ।

'यथाप्रवृत्तिकरण' का अर्थ है—'यथा' अर्थात् अनादि कार्मिकरूप से जिस की प्रवृत्ति हो वह यथाप्रवृत्ति कहलाता है । जिस से कर्मों का अर्थ किया जाता है, जीव के उस शुभ परिणाम को 'करण' कहते हैं । यथाप्रवृत्ति-

अन्तानुबन्धी कथायना उदयशी द्वितीया मिध्याह्न आवी अमु यत्न ते मिध्याह्न अथवा अन्तर्गृह्य सुधी अने उत्तुह देशोत्त अर्द्ध पुद्गलपरावर्तन सुधी रहे थे ते एव सादिमिध्याहृष्टि थे.

**यथाप्रवृत्तिकरणम्—**

या प्रकारानु अनु मिध्याहृष्टि एवेता अभ्यवसाय रहेताना अथवा शुभ परिणामशी अर्धने उत्तरोत्तर बढ़ता शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहलाता है ते परिणाम विशेषने यथाप्रवृत्तिकरण कहते हैं 'यथाप्रवृत्तिकरण' ने शब्दात् या प्रकारे है— यथा अर्थात् अनादि कार्मिकरूपशी अनी 'प्रवृत्ति' अर्थात् 'यथाप्रवृत्ति' कहलाता है अन्तर्गृह्य अथवा अथवा अर्थात् अने एवना ते शुभ परिणामने 'करण' कहते हैं.



પરિપાકવશેન શુભપરિણામરૂપાઽધ્યવસાયા ભવન્તિ, તેયાં મ્યાનાનિ મન્દ-મધ્ય-  
તીવ્રાણિ ભવન્તિ । તત્ર જઘન્યશુભપરિણામસ્ય સ્થાનં વિશુદ્ધં, તસ્માદુત્કૃષ્ટસ્ય  
વિશુદ્ધતરં, તતોઽપ્યુત્કૃષ્ટશુભપરિણામસ્ય વિશુદ્ધતમં સ્થાનં પ્રાપ્નુવતો જીવસ્ય  
વર્ધમાનશુભપરિણત્યા તાદૃકપરિણામવિશેષો જાયતે, યેન તીર્થક્ક્રાદ્યુપદેશ  
મન્તરેણ સ્વત એવ જીવસ્ય કર્મોપશમાદિભ્યઃ શ્રદ્ધોત્પદ્યતે । તત્રાયં ક્રમઃ—

શ્રદ્ધાપ્રાપ્તયેઽધિકારી દ્વિવિધો ભવતિ, અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિઃ, સાદિ-  
મિથ્યાદૃષ્ટિશ્ચ । યઃ પૂર્વં કદાપિ સમ્યક્ત્વં ન લબ્ધવાન્ સોઽનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિઃ ।  
યશ્ચ ભવ્યઃ પૂર્વં સમ્યક્ત્વં પ્રાપ્ય પશ્ચાદનન્તાનુવન્ધિકપાયોદયાદુપજાતમિથ્યાત્વઃ

અનાદિકાલ સે મિથ્યાદૃષ્ટિ હોને પર મી અમુક પ્રકાર કી ભવસ્થિતિ કા પરિપાક હોને સે ઉસકે  
શુભપરિણામરૂપ અધ્યવસાય ઉત્પન્ન હોતે હૈં । ઉન અધ્યવસાયોં કે સ્થાન મન્દ, મધ્યમ  
ઔર તીવ્ર હોતે હૈં । ઇન મેં જઘન્ય શુભ પરિણામ કા સ્થાન વિશુદ્ધ હૈ, ઉસ સે  
ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધતર હૈ । ઔર ઉસસે મી ઉત્કૃષ્ટ શુભપરિણામ વિશુદ્ધતમ હૈ । ઇન સ્થાનોં  
કો પ્રાપ્ત જીવ કે વઢતે હુએ શુભ પરિણામોં સે એક એસા પરિણામ ઉત્પન્ન હોતા હૈ, જિસ કે  
દ્વારા તીર્થકર આદિ કે ઉપદેશ કે વિના હી સ્વયમેવ જીવ કો કર્મોં કા ઉપશમ આદિ હોને સે  
શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન હો જાતી હૈ ।

કમ ઇસ પ્રકાર હૈ—

દો પ્રકાર કે જીવ શ્રદ્ધા પાને કે અધિકારી હૈ—(૧) અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ  
ઔર (૨) સાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ । જિસ જીવને પહેલે કમી સમ્યક્ત્વ નહીં પાયા વહ  
અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ કહલાતા હૈ । જિસ ભવ્ય જીવને પહેલે સમ્યક્ત્વ પાયા કિન્તુ

થકો ભવ્ય એવ જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપયોગસ્વભાવવાળા હોવાના કારણે અનાદિ કાલથી  
મિથ્યાદૃષ્ટિ હોવા છતાય પણ અમુક પ્રકારની ભવસ્થિતિને પરિપાક હોવાથી તેને શુભ પરિ-  
ણામરૂપ અધ્યવસાય ઉત્પન્ન થાય છે તે અધ્યવસાયોના સ્થાન મદ, મધ્યમ અને તીવ્ર હોય  
છે તેમા જઘન્ય શુભ પરિણામનુ સ્થાન વિશુદ્ધ છે, તેનાથી ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધતર છે, અને એનાથી  
પણ ઉત્કૃષ્ટ શુભ પરિણામ વિશુદ્ધતમ છે આ સ્થાનોને પ્રાપ્ત એવના વધતા ગયેલા શુભ  
પરિણામોમાથી એક એવું પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે કે જેના દ્વારા તીર્થકર આદિના  
ઉપદેશ વિનાજ સ્વયમેવ, એવને કર્મોંનો ઉપશમ આદિ થવાથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે

કમ આ પ્રકારે છે—

જે પ્રકારના એવ શ્રદ્ધા પ્રાપ્ત કરવાની અધિકારી છે (૧) અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ  
અને (૨) સાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ જે એવે પહેલા ક્યારેય સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યું નથી તે અનાદિ  
મિથ્યાદૃષ્ટિ કહેવાય છે. જે ભવ્ય એવે પહેલા સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યું હતું પરન્તુ પછીથી

तथाऽपि अन्वितिकरूपं परिणामो निसर्गो सम्यक्त्वाकारेण वर्तते पूर्वापि स्वामपनुपावस्यान्तरमाप्तिः परिणामः, परिणामि जीवद्रव्यं तु ध्रुवमेव । परिणामोऽप्यत्र वैसक्तिक एव, अन्धेन्द्रधनुरादिनदिति परिणामः स्वभाव इति भाष्यम् ।

ननु भद्रा निसर्गतः कथमुत्पद्यते ? उच्यते—कर्मजोऽनादित्वात्पूर्वकर्मो दमेन यद्यदन्यत्कर्म ज्ञानावरणीयादिकं स्वेनैव कृष्टं तदपि कर्मण्यन्तरिण ससैव कथ्यते कर्मत्वादियानीतनकर्मवत् । पञ्चविधपूर्वगृहीतकर्मणः फलमुपसृष्टज्ञानस्य मध्यमीवस्य ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावतयाऽनादिमिथ्याहृदरेपि तादृशमनस्त्विति

मेद नही देखा जाता । जैसे परिणामन, अनेक प्रकार का होने पर भी परिणामी—अन्वयि इत्य एक होने से उस में सर्वथा मेद नही होता । उसी प्रकार महीं अन्वितिकरूपक परिणाम निसर्गसम्यक्त्व के रूप में परिणत हो जाता है—उसकी पूर्व—अवस्था मिटकर नवीन अवस्था उत्पन्न हो जाती है, फिर भी परिणामी—जीवद्रव्य—म्या का आ ध्रुव बना रहता है । परिणाम भी महीं वैसक्तिक (स्वामाधिक) सम्य भाषिपु, मेव तथा इन्द्रधनुष की तरह, अत्र एव परिणाम का कार्य—स्वभाव है ।

सङ्गा—मद्य स्वभाव (निसर्ग) से किस प्रकार उत्पन्न होती हैं । ।

समाधान—अन्वदि काश से ह्यो हुए पूर्वकर्मों के उदय से ज्ञानावरणीय भादि जो-जो कर्म जीवन क्रिय हैं, वे सब कर्मण शरीर के साथ ही बंधते हैं, क्योंकि वे कर्म हैं, वर्तमानकालीन कर्मों के समान । इस प्रकार के पड़ेते ग्रहण किये हुए कर्मों का फल योगते हुए मध्य जीव ज्ञानदर्शनरूप उपयोगस्वभावलाभा होने के कारण

वाच्यतां हेतुं सर्वथा खेद भेवाभा आपते । नही केम—परिवृत्तन अनेक प्रकारतां होवा छत्वाय पञ्च परिवृत्तामी—अन्वयिद्रव्य अनेक होवाशी तेभा सर्वथा खेद यतो नही ते प्रभावे अदि अन्वितिकरूपक परिणाम निसर्गसम्यक्त्वत्वा इभमां परिवृत्त यद्य अन्व उ—तेनी पूव अवस्था मदीने नवीन अवस्था उत्पन्न यद्य अन्व उ पञ्च परिवृत्तामी—अन्वयिद्रव्य—केम उ तेम ध्रुव जन्ती रहे उ परिवृत्त पञ्च अदि वैसक्तिक (स्वामाधिक) हेतुं नोद्धने, मेव तथा इन्द्रधनुषनी सादृक अने प्रभावे परिवृत्तभने अर्था स्वभाव उ

शुभा—भद्रा स्वभाव (निसर्ग)भी क्या प्रकारे उत्पन्न भाव से ?

समाधान—अन्वदि काणधी बावेलां पूव कर्मोना उदयशी ज्ञानावरणीय भादि के-के कर्म अवे कर्मां उ ते सब काम लु शरीरनी सादृक नभाय उ-केमहे ते कर्म उ, वर्तमानकालीन कर्मोनी समान अन्व प्रकारतां पड़ेलां अद्वय करेला कर्मोनु इव योगयतो

सम्मर्दसणे चैय" (स्थानाङ्ग० स्था. २ उ. १ )

तत्र निसर्गः, परिणामः, स्वभावः, इत्येकार्थकाः ।

अपूर्वकरणानन्तरं यद् भवत्यनिवृत्तिकरणं तन्निसर्ग इति कथ्यते । निवृज्यते कार्योत्पत्तौ सत्यामिति निसर्गः, कार्ये समुत्पन्ने सति कारणस्य न किञ्चित् प्रयोजनं भवति, उत्पन्ने सम्पक्त्वे प्रयोजनाभावादनिवृत्तिकरण परित्यज्यते । न चात्यन्तं परित्यागन्तस्येप्यते यतस्तदेव कारणं तेनाकारेण परिणतम्, यथा—उत्थितोऽपि पुरुषः पुरुष एव, आसीनो शयितो वा पुरुषः पुरुष एव, अवस्थामात्रभेदादवस्थावतो भेदः कापि न दृश्यते । तत्र—परिणामस्यानेकरूपत्वेऽपि परिणामिनोऽन्वयिद्रव्यस्य न तत्त्वात् सर्वथा भेदः,

सम्यग्दर्शन" । (स्थानाङ्ग स्था २ उ १ )

निसर्ग, परिणाम, या स्वभाव, ये सब पर्यायवाचक हैं ।

अपूर्वकरण के पश्चात् होने वाला अनिवृत्तिकरण 'निसर्ग' कहलाता है । कार्य की उत्पत्ति हो जाने पर जो त्याग दिया जाता है वह 'निसर्ग' है । कार्य की उत्पत्ति हो जाने के बाद कारण का कोई प्रयोजन नहीं रहता, क्यों कि सम्यक्त्व उत्पन्न होने पर प्रयोजन नहीं रहने से अनिवृत्तिकरण त्याग दिया जाता है, मगर उस का अत्यन्त परित्याग नहीं किया जाता, क्यों कि वही कारण उस आकार में—कार्यरूप में—परिणत हो जाता है । जैसे—खड़ा हुआ पुरुष—पुरुष ही है । बैठा हुआ या सोया हुआ पुरुष भी पुरुष ही है । अवस्थाओं में भेद होनेमात्र से अवस्थावाले में कहीं सर्वथा

सम्यग्दर्शन" (स्थानाङ्ग० स्था २ उ. १)

निसर्ग, परिणाम अथवा तो स्वभाव, या सर्व पर्यायवाचक शब्दों से अपूर्व करणही पछी थवावाणा अनिवृत्तिकरण निसर्ग कहेवाय से कार्यनी उत्पत्ति थर्जवा पछी जे त्यल देवाभा आवे से ते निसर्ग से कार्यनी उत्पत्ति थर्जया पछी करणुं कर्ध प्रयोजन रहेतुं नथी केमके—सम्यक्त्व उत्पन्न होवा छताय पछु प्रयोजन नहि रहेवाथी अनिवृत्तिकरण त्यागी देवाभा आवे से अर्थात् प्रयोजन नहि रहेवाथी अनिवृत्तिकरणो त्याग करवाभा आवे से परन्तु तेनो अत्यन्त परित्याग करवाभा आवतो नथी, करणुं के ते करणुं तेवा आकारमा—कार्यरूपमा—परिणत थर्ज जय से जेम ठेके रहेले। पुर्ष, पुर्षज से, ठेकेले अथवा सुतेले। पुर्ष पछु पुर्षज से, अवस्थाओमा लेद थवा मात्रथी अवस्था-

तथा चापि अनिष्टचिह्नरूपपरिणामो निस्सर्गः सम्पत्त्वाकारेण वर्तते पूर्वापि स्वामपनुधावस्थान्तरप्राप्तिः परिणामः, परिणामि जीवद्रव्यं तु ध्रुवमेव । परिणामोऽप्यथ वैज्ञानिक एव, अत्रेन्द्रधनुरादिवदिति परिणामः स्वभाव इति वाच्यम् ।

ननु भद्रा निस्सर्गतः कथमुत्पद्यते ? उच्यते—कर्मजोऽनादिस्वात्पूर्वकर्मो ह्येव यद्यदन्यत्कर्म ज्ञानावरणीयादिकं स्वैर्नैव कृतं तदपि कर्मजसरीरणे सदैव वस्यते कर्मस्वादिदानींतनकर्मवत् । परं विषयपूर्वगृहीतकर्मणः फलमुपसृष्टज्ञानस्य मय्यमीवस्य ज्ञानदर्शनीययोगस्वभावतयाऽनादिमिथ्याहृष्टेरपि सादृश्यमवस्थिति

मेंद नहीं देखा जाता । जैसे परिणामन, अनेक प्रकार का होने पर भी परिणामी—अन्वयि इत्य एक होने से उस में सर्वथा मेंद नहीं होता । उसी प्रकार यहाँ अनिष्टचिह्नरूपपरिणाम निस्सर्गसम्पत्त्व के रूप में परिणत हो जाता है—उसकी पूर्व—स्वरूपा मिटकर नवीन स्वरूपा उत्पन्न हो जाती है, फिर भी परिणामी—जीवद्रव्य—ज्यों का ओं ध्रुव बना रहता है । परिणाम भी यहाँ वैज्ञानिक (स्वामाधिक) केना चाहिए, मेघ तथा इन्द्रधनुष की तरह, जस एव परिणाम का अर्थ—स्वभाव है ।

सङ्गा—अथ, स्वभाव (निस्सर्ग) से किस प्रकार उत्पन्न होती हैं । ।

समाधान—अनादि काल से स्रो हुए पूर्वकर्मों के उदय से ज्ञानावरणीय आदि जो-जो कर्म जीवने किये हैं, वे सब कर्मण सरीर के साथ ही पड़ते हैं क्योंकि वे कम हैं, वर्तमानकालीन कर्मों के समान । इस प्रकार के पड़ेके प्रहण किय हुए कर्मों का फल मोगते हुए मय्य जीव ज्ञानदर्शनरूप उपयोगस्वभावबाला होने के कारण

वाण्यमां डेअं सवैया जेठ जेवाभां आवतो नधी जेभ—परिणामन अनेक प्रकारनां डेवा उवांय पक्ष परिणामी—अन्वयिद्रव्य जेठ डेवाधी तेभां सवैया जेठ यतो नधी ते प्रभावे अदि अनिवृत्तिःश्वरूप परिणाम निस्सर्गसम्पत्त्वना इपभां परिणत यध अथ छे—तेनी पूव अवस्था भट्टीने नवीन अवस्था उत्पन्न यध अथ छे पक्ष परिणामी—उपद्रव्य—जेभ छे तेभ म्रव जग्री रहे छे परिणाम पक्ष अदि वैज्ञानिक (स्वामाधिक) देवु जेधजे, श्रेय तथा इन्द्रधनुषनी भाइके जे प्रभावे परिणामने अर्थ स्वभाव छे

शंका—अर्था स्वभाव (निस्सर्ग)भी क्या प्रकारे उत्पन्न मात्र छे ?

समाधान—अनादि कालधी लाजेलीं पूव कर्मिना उत्पन्नी ज्ञानावरणीय आदि जो-जो कर्म लवे कर्षीं छे ते सब कामज सरीरनी साथेज अभाव छे केभके ते कर्म छे वर्तमानकालीन कर्मिनी समान. ज्य प्रकारनां पड़ेलां अद्वय इरेला कर्मिनु इत शोचते

परिपाकवशेन शुभपरिणामरूपाऽध्यवसाया भवन्ति, तेषां स्थानानि मन्द-मध्य-तीव्राणि भवन्ति । तत्र जघन्यशुभपरिणामस्य स्थानं विशुद्धं, तस्मादुत्कृष्टस्य विशुद्धतरं, ततोऽप्युत्कृष्टशुभपरिणामस्य विशुद्धतमं स्थानं प्राप्नुवतो जीवस्य वर्धमानशुभपरिणत्या तादृक्परिणामविशेषो जायते, येन तीर्थङ्कराद्युपदेश-मन्तरेण स्वत एव जीवस्य कर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धोत्पद्यते । तत्रायं क्रमः—

श्रद्धाप्राप्तयेऽधिकारी द्विविधो भवति, अनादिमिथ्यादृष्टिः, सादि-मिथ्यादृष्टिश्च । यः पूर्वं कदापि सम्यक्तवं न लब्धवान् सोऽनादिमिथ्यादृष्टिः । यश्च भव्यः पूर्वं सम्यक्तवं प्राप्य पश्चादनन्तानुबन्धिकपायोदयादुपजातमिथ्यात्वः

अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि होने पर भी अमुक प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से उसके शुभपरिणामरूप अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं । उन अध्यवसायों के स्थान मन्द, मध्यम और तीव्र होते हैं । इन में जघन्य शुभ परिणाम का स्थान विशुद्ध है, उस से उत्कृष्ट विशुद्धतर है । और उससे भी उत्कृष्ट शुभपरिणाम विशुद्धतम है । इन स्थानों को प्राप्त जीव के बढ़ते हुए शुभ परिणामों से एक ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है, जिस के द्वारा तीर्थकर आदि के उपदेश के बिना ही स्वयमेव जीव को कर्मों का उपशम आदि होने से श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है ।

### क्रम इस प्रकार है—

दो प्रकार के जीव श्रद्धा पाने के अधिकारी हैं—(१) अनादिमिथ्यादृष्टि और (२) सादिमिथ्यादृष्टि । जिस जीवने पहले कभी सम्यक्त्व नहीं पाया वह अनादिमिथ्यादृष्टि कहलाता है । जिस भव्य जीवने पहले सम्यक्त्व पाया किन्तु

थके। लव्य एव ज्ञान-दर्शनरूप उपयोगस्वभाववाणां होवानां कारणे अनादि कालधी मिथ्यादृष्टि होवा छताय पञ्च अमुक प्रकारनी लवस्थितिने परिपाक होवाथी तेने शुभ परिष्णामरूप अध्यवसाय उत्पन्न थाय छे ते अध्यवसायोना स्थान म द, मध्यम अने तीव्र होय छे तेमा जघन्य शुभ परिष्णामनु स्थान विशुद्ध छे, तेनाथी उत्कृष्ट विशुद्धतर छे, अने अनाथी पञ्च उत्कृष्ट शुभ परिष्णाम विशुद्धतम छे आ स्थानेने प्राप्त एवना वधता गयेला शुभ परिष्णामोमाथी ओक ओतुं परिष्णाम उत्पन्न थाय छे के जेना द्वारा तीर्थकर आदिना उपदेश विनाज स्वयमेव, एवने कर्मोना उपशम आदि थवाथी श्रद्धा उत्पन्न थई जाय छे.

क्रम आ प्रकारे छे—

जे प्रकारना एव श्रद्धा प्राप्त करवानी अधिकारी छे (१) अनादिमिथ्यादृष्टि अने (२) सादिमिथ्यादृष्टि जे एवे पड़ेला कारणेय सम्यक्त्व प्राप्त कर्युं नथी ते अनादि मिथ्यादृष्टि कहेवाय छे. जे लव्य एवे पड़ेला सम्यक्त्व प्राप्त कर्युं हत परन्त पछीथी

अप्यन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, स उत्कर्षतो देशोनार्द्धपुद्गलपरिवर्तं स्वित्वा पुनः सम्यक्त्वं प्राप्स्यति, स सादिमिध्याहृष्टिर्भवति ।

**यथाप्रवृत्तिकरणम्-**

एवमुपयविषयस्य मिध्याहृष्टेर्जीवस्य परिणामरूपाभ्यवसाया पूर्वं अपन्य ह्युमपरिणाममज्ञीकृतस्य परा परा ह्युमपरिणामः परिणामविज्ञेय इत्युच्यते । स एव परिणामविज्ञेयो 'यथाप्रवृत्तिकरण' - मित्युच्यते ।

यथाप्रवृत्तिकरण-मित्यस्य अर्थस्त्येवम्-यथा=येन अनादिर्सिद्ध प्रकारेण प्रवृत्तिर्यस्य तत् यथाप्रवृत्तिः, क्रियते कर्मसंपन्नमनेनेति कर्मसंजीवस्य ह्युमपरिणामः, यथाप्रवृत्ति य उत्कर्षं य यथाप्रवृत्तिकरणं कर्मसंपन्नकारणस्या

वाक्ये नान्तानुष्ठी कथाय के उदय से फिर मिष्यत्व वा गमा किन्तु यह मिष्यत्व अपन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन तक रहता है यह भी सादिमिध्याहृष्टि है ।

**यथाप्रवृत्तिकर्म-**

इस प्रकार दोनो प्रकार के मिष्याहृष्टि जीवों का अभ्यवसान पहले के अपन्य ह्युम परिणाम से केकर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए ह्युम परिणाम, परिणामविरोध कहलाता है । उसी परिणामविरोध को 'यथाप्रवृत्तिकर्म' कहते हैं ।

'यथाप्रवृत्तिकर्म' का शाब्दिक इस प्रकार है- 'यथा' अर्थात् अनादि कालीनरूप से जिस की प्रवृत्ति हो वह यथाप्रवृत्ति कहलाता है । जिस से कर्मों का एव किया जाता है, जीव के उस ह्युम परिणाम को 'कर्म' कहते हैं । यथाप्रवृत्ति

अनन्तानुष्ठी कथायना उदयधी इसीधी मिष्यात्व ज्ञापी जसु पक्षु ते मिष्यात्व अपन्य अन्तर्मुहूर्त्त सुधी अने उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गलपरिवर्तन सुधी रहे थे ते एव सादिमिध्याहृष्टि छे

**यथाप्रवृत्तिकर्म-**

या प्रवृत्त्या जने मिष्याहृष्टि एवेना अभ्यवसाय रहेताना अपन्य ह्युम परिणामधी लक्षणे उत्तरोत्तर बध्त्वा ह्युम परिणाम, परिणामविरोध कहेवाय छे ते परिणामविरोधने यथाप्रवृत्तिकर्म कहे छे. 'यथाप्रवृत्तिकर्म' नो अन्वयस्य का प्रकार छे- यथा अर्थात् अनादि कालीनरूपधी वेनी 'प्रवृत्ति' काल ते 'यथाप्रवृत्ति' कहेवाय छे अन्वधी इतिमेव एव इत्यात्मा जाने छे एवेना ते ह्युम परिणामने 'कर्म' कहे छे.

परिपाकवशेन शुभपरिणामरूपाऽध्यवसाया भवन्ति, तेषां स्थानानि मन्द-मध्य-तीव्राणि भवन्ति । तत्र जघन्यशुभपरिणामस्य स्थान विशुद्धं, तस्मादुत्कृष्टस्य विशुद्धतरं, ततोऽप्युत्कृष्टशुभपरिणामस्य विशुद्धतमं स्थानं प्राप्नुवतो जीवस्य वर्धमानशुभपरिणत्या तादृक्परिणामविशेषो जायते, येन तीर्थङ्कराद्युपदेश-मन्तरेण स्वत एव जीवस्य कर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धोत्पद्यते । तत्रायं क्रमः—

श्रद्धाप्राप्तयेऽधिकारी द्विविधो भवति, अनादिमिथ्यादृष्टिः, सादि-मिथ्यादृष्टिश्च । यः पूर्वं कदापि सम्यक्त्वं न लब्धवान् सोऽनादिमिथ्यादृष्टिः । यश्च भव्यः पूर्वं सम्यक्त्वं प्राप्य पश्चादनन्तानुबन्धिकपायोदयादुपजातमिथ्यात्वः

अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि होने पर भी अमुक प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से उसके शुभपरिणामरूप अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं । उन अध्यवसायों के स्थान मन्द, मध्यम और तीव्र होते हैं । इन में जघन्य शुभ परिणाम का स्थान विशुद्ध है, उस से उत्कृष्ट विशुद्धतर है । और उससे भी उत्कृष्ट शुभपरिणाम विशुद्धतम है । इन स्थानों को प्राप्त जीव के बढ़ते हुए शुभ परिणामों से एक ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है, जिस के द्वारा तीर्थकर आदि के उपदेश के बिना ही स्वयमेव जीव को कर्मों का उपशम आदि होने से श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है ।

क्रम इस प्रकार है—

दो प्रकार के जीव श्रद्धा पाने के अधिकारी हैं—(१) अनादिमिथ्यादृष्टि और (२) सादिमिथ्यादृष्टि । जिस जीवने पहले कभी सम्यक्त्व नहीं पाया वह अनादिमिथ्यादृष्टि कहलाता है । जिस भव्य जीवने पहले सम्यक्त्व पाया किन्तु

थके। लव्य एव ज्ञान-दर्शनरूप उपयोगस्वभाववाणा होवाना कारणे अनादि षाडथी मिथ्यादृष्टि होवा छताय पक्ष अमुक प्रकारनी भवस्थितिना परिपाक होवाथी तेने शुभ परि-ष्ठाभरूप अध्यवसाय उत्पन्न थाय छे ते अध्यवसायेना स्थान म द, मध्यम अने तीव्र होय छे तेभा जघन्य शुभ परिष्ठाभनु स्थान विशुद्ध छे, तेनाथी उत्कृष्ट विशुद्धतर छे, अने अनाथी पक्ष उत्कृष्ट शुभ परिष्ठाभ विशुद्धतम छे आ स्थानोने प्राप्त एवना वधता गयेला शुभ परिष्ठाभोभाथी अेक अेवु परिष्ठाभ उत्पन्न थाय छे के नेना द्वारा तीर्थ कर आदिना उपदेश विना ज स्वयमेव, एवने कर्मोना उपशम आदि थवाथी श्रद्धा उत्पन्न थर्ष नाय छे

क्रम आ प्रकारे छे—

जे प्रकारना एव श्रद्धा प्राप्त करवानी अधिकारी छे (१) अनादिमिथ्यादृष्टि अने (२) सादिमिथ्यादृष्टि जे एवे पड़ेला क्यारेय सम्यक्त्व प्राप्त कथुं नथी ते अनादि मिथ्यादृष्टि कहेवाय छे. जे लव्य एवे पड़ेला सम्यक्त्व प्राप्त कथुं छर्तुं परन्तु पछीथी

अपत्यतोऽन्तर्गृह्यते, स तत्कर्तृवो वैश्वानार्दपुत्रस्यपरावर्त्तं स्थित्वा पुनः सम्यक्तर्षं प्राप्स्यति, स साविमिष्यादृष्टिर्भवति ।

**यथाप्रवृत्तिकरणम्-**

एष शुभयविषयस्य मिष्यादृष्टेर्जीवस्य परिणामरूपाध्यस्ताया पूर्वं अपत्य शुभपरिणामप्रवृत्तस्य परं परः शुभपरिणामः परिणामविशेष इत्युच्यते । स एष परिणामविशेषो 'यथाप्रवृत्तिकस्य'-मित्युच्यते ।

यथाप्रवृत्तिकरण-मित्यस्य अर्थस्त्वेवम्-यथा=येन अनादिसिद्ध प्रकारेण प्रवृत्तिर्यस्य तत् यथाप्रवृत्ति, क्रियते कर्मसंपन्नमनेनेति कर्म=जीवस्य शुभपरिणामः, यथाप्रवृत्ति च तत्करणं च यथाप्रवृत्तिकरणं कर्मसंपन्नकारणस्या

पक्ष में अन्तर्गतनुष्ठी कथाय के उद्यम से फिर मिष्यात्व आ गया किन्तु वह मिष्यात्व अन्तर्गृह्यते तक और ऊपर वैश्वानार्दपुत्रस्यपरावर्त्तं तक रहता है वह भी साविमिष्यादृष्टि है ।

**यथाप्रवृत्तिकर्म-**

इस प्रकार दोनों प्रकार के मिष्यादृष्टि जीवों का अभ्यवसाय पहले के अन्त्य शुभ परिणाम से केन्द्र उत्तरतर बढ़ते हुए शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहलाता है । अर्थात् परिणामविशेष को 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहते हैं ।

'यथाप्रवृत्तिकरण' का अर्थ इस प्रकार है-'यथा' अर्थात् अनादि कालीनरूप से जिस की प्रवृत्ति हो वह यथाप्रवृत्ति कहलाता है । जिस से कर्मों का अर्थ किया जाता है, जीव के उस शुभ परिणाम को 'कर्म' कहते हैं । यथाप्रवृत्ति

अन्तर्गतनुष्ठी कथायना उद्यमशी इतीथी मिष्यात्व आपी ननु पक्षु ते मिष्यात्व अपत्य अन्तर्गृह्यते सुधी अने उत्तुष्ट वैश्वानार्द पुत्रस्यपरावर्त्तन सुधी रहे छे ते एष साविमिष्यादृष्टि छे ।

**यथाप्रवृत्तिकर्म-**

अप्रवृत्त्या अन्ते मिष्यादृष्टि एवेना अभ्यवसाय पक्षेवाना अपत्य शुभ परिणामशी अर्धने उत्तरोत्तर वधता शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहेवास छे ते परिणामविशेषने यथाप्रवृत्तिकरण कहे छे । 'यथाप्रवृत्तिकर्म' ना अर्थ छे-यथा अर्थात् अनादि कालीनरूपशी अनी 'प्रवृत्ति' अर्थ ते 'यथाप्रवृत्ति' कहेवास छे अनापी अर्थेना अर्थ अर्थाना आवे छे एवना ते शुभ परिणामने 'कर्म' कहे छे ।



अध्यवसायमात्रस्य सर्वदैव भावादुदयावलिकाप्रविष्टानां कर्मणा सर्वदैव क्षपणात् ।

यथाप्रवृत्तिकरणं भव्यस्याभव्यस्य च भवति । वक्ष्यमाणमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणं च भव्यस्यैव भवति, न त्वभव्यस्य ।

मिथ्यात्ववशादनन्तान् पुद्गलपरावर्तान् अनन्तदुःखान्यनुभूय कथमपि तादृशभवस्थितिपरिपाकवशाद् गिरिणदीप्रवहदुद्धर्त्तितापवर्त्तितपापाणवर्त्तुलावस्थावदनाभोगनिर्वर्त्तितेन यथाप्रवृत्तिकरणेन विशुद्धपरिणामविशेषरूपेणायुष्यकर्म वर्गयित्वा ज्ञानावरणीयादिकर्माणि सर्वाण्यपि पल्योपमासंख्येयभागन्यूनैक-

रूप करण यथाप्रवृत्तिकरण कहलाता है । कर्मक्षय का कारणभूत अध्यवसाय सर्वदैव बना रहता है, क्यों कि उदयावलिका में आए हुए कर्मों का सदा क्षय होता रहता है ।

यथाप्रवृत्तिकरण भव्य जीव को भी होता है और अभव्य जीव को भी होता है, किन्तु आगे कहे जाने वाले अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण भव्य जीव को ही होते हैं, अभव्य जीव को नहीं ।

मिथ्यात्व के वश होकर अनन्त पुद्गलपरावर्तनों तक अनन्त दुःखों को भोगने के पश्चात् किसी भी तरह उस प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से पहाड़ी नदी के प्रवाह में बहने वाला, लुढ़क (गुडक)ने वाला, घिसने वाला पाषाण जैसे गोलमटोल बन जाता है, उसी प्रकार अनजान में ही यथाप्रवृत्तिकरणरूप विशुद्ध परिणाम के कारण आयुकर्म को छोड़कर ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म पल्योपम के असह्यातवे भाग कम

यथाप्रवृत्तिरूप करण ते 'यथाप्रवृत्तिकरण' कडेवाय छे कर्मक्षयना कारणभूत अध्यवसाय दुःशशा भनी रडे छे, केमके-उदयावलिकामा आवेला कर्मोना दुःशशा क्षय थया करे छे

यथाप्रवृत्तिकरण भव्य एवने पणु थाय छे, अने अभव्य एवने पणु थाय छे, परन्तु आगण कडेवामा आवशे ते अपूर्वकरण अने अनिवृत्तिकरण भव्य एवने न थाय छे, अभव्य एवने थता नथी

मिथ्यात्वने वश थथने अनन्त पुद्गलपरावर्तनो सुधी अनन्त दुःखोने लोणव्या पधी केथ पणु प्रकारे आ प्रकारनी लवस्थितिने परिपाक थवार्थी प्रहाडी नहीना प्रवाहमां वडेवावाणो-गभउवावाणो, घसातो नतो पथर नैवी रीते गोल-मटोल भनी नथ छे, अे प्रमाणे अनन्यता पणु यथाप्रवृत्तिकरणरूप विशुद्ध परिणामना कारणे आयुकर्मने लणुने भीन ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म पल्योपमना असह्यातमा भाग-अोधिं

सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानि करोति । उक्तञ्च—

“अंतिमकोटाकोटीए होइ सम्पासि कम्मपगम्भीणं ।  
पण्डियामसत्तमागे लीये सेसे इक्क गंठी ॥ १ ॥”

उत्प्राय क्रमो विज्ञेयः—ज्ञानावरणीय—दर्शनावरणीय—वेदनीया—अन्तरायकर्म-  
चतुष्टयस्य चिह्नत्सागरोपमकोटीकोटय उक्तुष्टा स्थितिः । नामगोत्रयोर्विश्रुति  
सागरोपमकोटीकोटयः, मोहनीयस्य सप्ततिसागरोपमकोटीकोटय उक्तुष्टा स्थितिः ।  
तत्र पञ्चाप्रवृत्तिकरणेन जीव उक्तुष्टां स्थितिं प्राप्तयम् सावर्ती स्थितिं प्रापयति, येन  
समानरूपेण सप्तानां कर्मणां पर्योपमासंख्येयमागन्यूनैकसागरोपमकोटीकोटीस्थिति

एक कोटाकोटी सागरोपम की स्थिति में जाये जाते हैं । कहा भी है—

‘समस्त कर्म प्रकृतियों का कर्म के असंख्यातवें भाग कम कोटाकोटी की  
स्थितियाही होती हैं, तब प्रथि होती है” ॥ १ ॥

क्रम इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय वेदनीय और अन्तराय, इन  
चार कर्मों की उक्तुष्ट स्थिति तीस-तीसकोटा-कोटी सागरोपम की है । नाम और  
गोत्रकी बीस-बीस कोटाकोटी सागरोपम की है, और मोहनीय कर्म की उक्तुष्ट स्थिति  
स्थिर (७) कोटाकोटी सागरोपम की है । पञ्चाप्रवृत्तिकरण के द्वारा बीस  
इस सारी उक्तुष्ट स्थिति को पटाकर इतनी कम कर डालता है कि सातों  
कर्मों की स्थिति समानरूप से पर्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम कोटाकोटी

ज्येष्ठ कोटा-कोटी साजशेषमनी स्थितिभां भावयामां आवे छे कसु पयु छे

समस्त कर्मप्रकृतियों का कर्म पर्ययना असंख्यातवें भाग ज्येष्ठ कोटा-ज्येष्ठ  
कोटा-कोटीनी स्थितियाणी केव छे आवे प्रथि जाय छे” ॥१॥

क्रम का प्रभाव है—ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय का  
चार कर्मोंनी उक्तुष्ट स्थिति तीस-तीस कोटा-कोटी साजशेषमनी छे नाम करने गोत्रनी  
बीस बीस कोटा-कोटी साजशेषमनी छे और मोहनीय कर्मनी उक्तुष्ट स्थिति स्थितेर (७०)  
कोटा-कोटी साजशेषमनी छे पञ्चाप्रवृत्तिकरणद्वारा एव तन्नाम उक्तुष्ट स्थितिने ज्येष्ठ  
कोटीने-ज्येष्ठकी ज्येष्ठकी करी नाजे छे के-साते कर्मोंनी स्थिति समानरूपकी पर्योपमना  
असंख्यातवें भाग ज्येष्ठ ज्येष्ठ साजशेषम कोटा-कोटीनी जाही रहती जय छे ज्येष्ठ

સ્વશિષ્ટા ભવતિ । અત્રાન્તરે ચ યથાપ્રવૃત્તિકરણેન કર્મનિર્જરાં કુર્વતો જીવસ્ય યાવત્ પૂર્વકર્મણો નિર્જરા ન ભવતિ તાવત્ સ્થીયમાનં તીવ્રરાગદ્વેષપરિણામરૂપં કર્મ, ગ્રન્થિ-સાદૃશ્યાદ્ ગ્રન્થિરિત્યુચ્યતે ॥

યથા કાષ્ઠવિશેષસ્ય અતિકઠોરનિવિહાતિશુષ્કઘનગૂઢગ્રન્થિર્દુર્ભેદસ્તથા તીવ્રરાગદ્વેષપરિણામરૂપઃ કર્મવિશેષોઽપિ દુર્ભેદો ભવતિ તસ્માદ્ ગ્રન્થિશબ્દેન વ્યવહીયતે ।

અભવ્યા અપિ યથાપ્રવૃત્તિકરણવલેન કર્મ ક્ષયયિત્વાઽનન્તવારમેતદ્ગ્રન્થિ-પર્યન્તમાગચ્છન્તિ । કશ્ચિદ્ ગ્રન્થિસ્થાન પ્રાપ્ય તસ્માદધઃ પતતિ । કશ્ચિત્ત્રૈવ ગ્રન્થિસ્થાને સ્થિતસ્તિષ્ઠતિ, ન તસ્માદગ્રે પ્રવર્તતે ।

કી વાકી રહ જાતી હૈ । હસી વીચ—યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મો કી નિર્જરા કરતે હુણ જીવ કે જિતને કર્મો કી નિર્જરા નહીં હોતી અર્થાત્ જો કર્મ શેષ રહ જાતે હૈ, વેતીવ રાગ દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મ, ગ્રન્થિ કે સમાન હોને કે કારણ ગ્રન્થિ ( ગાંઠ ) કહલાતી હૈ ।

જૈસે—કાઠવિશેષ કી અત્યન્ત કઠિન ઘની ઓર ઇકદમ સૂચી મીતરી ગાંઠ દુર્ભેદ હોતી હૈ, ઉસો પ્રકાર રાગ-દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મવિશેષ મી દુર્ભેદ હોતા હૈ, અત ઇવ વહ કર્મ, ગ્રન્થિ કહલાતી હૈ ।

અભવ્ય જીવ મી યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મ કા ક્ષય કર કે અનન્ત વાર ગ્રન્થિ પર્યન્ત આ પહુંચતે હૈ, કોઈ-કોઈ ગ્રન્થિસ્થાન કો પ્રાપ્ત કર કે ફિર નીચે ગિર જાતા હૈ । કોઈ-કોઈ ગ્રન્થિસ્થાન પર હી ઠહર જાતા હૈ, ઇાગે નહીં વઢતા હૈ ।

વચ્ચમાં—યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મોની નિર્જરા કરતા થકા છવના બેટલા કર્મોની નિર્જરા નથી થતી અર્થાત્ જે કર્મ શેષ રહી જાય છે તે તીવ્ર રાગ-દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મ, ગ્રન્થિના સમાન હોવાના કારણે ગ્રન્થિ (ગાંઠ) કહેવાય છે

જેવી રીતે કાષ્ઠ (લાકડા) વિશેષની અત્યન્ત કઠિન, મજબુત અને એકદમ સૂકી અદરની ગાંઠ દુર્ભેદ હોય છે, એ પ્રમાણે રાગ-દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મવિશેષ પણ દુર્ભેદ હોય છે. એટલા માટે તે કર્મ, ગ્રન્થિ કહેવાય છે

અભવ્ય છવ પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મનો ક્ષય કરીને અનન્તવાર ગ્રન્થિ સુધી પહોંચે છે કોઈ કોઈ ગ્રન્થિ સ્થાનને પ્રાપ્ત થઈને પાછા નીચે પડી જાય છે કોઈ-કોઈ ગ્રન્થિ સ્થાન ઉપરજ રહી જાય છે આગળ વધી શકતા નથી

अमध्योऽपि कश्चिद् यथाप्रवृत्तिकरणेन प्रन्विपर्यन्त समागत्य तीर्थपुरातिष्ठय  
 र्क्षेनेन लम्बिधारिमाधितात्ममहात्मनो महिमापलोकनेन, प्रयोजनान्तरेण वा  
 मर्त्तमानः सुप्रार्थतदुमयभक्षणपठनरूप श्रुतसामायिकं छमते, न त्वन्यदपूर्व  
 करवादिक्म् ।

॥ अपूर्वकरणम्—

तदनन्तरं कश्चिदेव मध्यमीष आसन्नसिद्धिसुखत्वाद्दुदितमश्रुदुर्निवारवीर्य-  
 मसरोऽतिनिश्चितकृष्टारेणैव यथाप्रवृत्तिकरणापेक्षया विशुद्धतरणाभूतपूर्वश्रुमा-  
 प्यवसायविशेषरूपेणापूर्वकरणेन प्राप्युक्त दुर्मेघ कर्मप्रन्वि भिनत्ति ।

कई समय मी यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा प्रन्वि सक आकर तीर्थकर मगवान्  
 क्त नस्त्रिधाय देसकर, लम्बिधारी माधितात्मा महात्मा की महिमा देसकर, जयवा किस्ती  
 मय्य प्रयोजन से प्रवृत्ति करता हुआ सूत्र, कर्म और तदुमय आत्म का भ्रमण या  
 पठनरूप श्रुतसामायिक को प्राप्त कर छता है, मगर वह अपूर्वकरण आदि को नहीं  
 प सकता ।

अपूर्वकरण—

तदनन्तरं मोक्षसुख समीप होने के कारण मिस में प्रश्रु और दुर्निवार शक्ति उत्पन्न  
 हो गई है ऐसा कई समय भी है बहुत तीसे दुःखदो के समान यथाप्रवृत्ति—करण की  
 अपेक्षा अधिक विशुद्ध और पहले कमी मी प्राप्त न होने वाले शुभमप्यवसायरूप  
 अपूर्वकरण के द्वारा उस दुर्मेघ कर्मप्रन्वि को लेता है ।

कई समय पक्ष यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा प्रकी सुधी आधीने तीर्थकर मगवान्ना  
 अतिशयने कोधने, लम्बिधारी भाधितात्मा महात्मानो महिमा कोधने, जयवा डेअ  
 मय्य प्रयोजनभी प्रवृत्ति करते कडे सूत्र कर्म जने तदुलभ आत्मना अपय  
 जयवा पठनरूप श्रुत—सामायिकने प्राप्त करी से छ पसन्तु ते अपूर्वकरण आदिने  
 प्राप्त करी शकते नही

अपूर्वकरण—

त्यार पक्षी मोक्षसुख समीप होवाना कश्चे लेनामां महान जने डेअभी  
 निवारी शक्य नहि तेनी शक्ति उत्पन्न कर्छ अर्छ से जेवो डेअ समय उपर नहुन  
 तीया कृष्णमा समान यथाप्रवृत्तिकरणनी अपेक्षा आधिक विशुद्ध जने पहलेवा डेअ वजत  
 पक्ष प्राप्त नहि कथेवा शुभ—अप्यवसायरूप अपूर्वकरण द्वारा जे दुर्मेघ कर्मप्रन्विने कोरे छ

अस्मिन् ग्रन्थिभेदे मनःक्षोभपरिश्रमादिविघ्नाः भवन्ति । यथा विद्यासाधकस्य विद्याधिष्ठातृदेवताकृतोपसर्गैर्भनःक्षोभो भवति, यथा घोरमहासमरगतमुभटस्य दुर्धर्ष-वहुतरशत्रुगणपराजयकरणात्परिश्रमो भवति, यथा च महासमुद्रादिभ्यो नौकादितारणे नाविकस्य परिश्रमो भवति तथा मचुरदुर्जयकर्मशत्रुसंघातपराजये परिश्रमोऽतिसयेन जायते । वज्राशमवद्दुर्भेद्योऽयं कर्मग्रन्थिः । अपूर्वकरणवज्रमूच्याश्रयमन्तरेणास्य भेदो दुष्करः ।

अपूर्वकरणवज्रमूच्या सकृद् ग्रन्थिभेदे कृते सति लब्धविशुद्धतमश्रद्धा-

ग्रन्थिभेदन करने में मानसिक क्षोभ तथा परिश्रम आदि अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं । जैसे विद्या की साधना करने वाले को विद्या की अधिष्ठात्री देवता के द्वारा किये जाने वाले विघ्नों से मन में क्षोभ होता है, और घनघोर महायुद्ध में गये हुए योद्धा को बहु-सख्यक और दुर्जय शत्रुओं के दल पर विजय प्राप्त करने में परिश्रम करना पड़ता है, अथवा जैसे किसी महासमुद्र से जहाज वगैरह को पार लगाने में नाविक को परिश्रम करना पड़ता है, उसी प्रकार बहुत-से दुर्जय कर्मशत्रुओं के दल को पराजित करने में अत्यन्त परिश्रम करना पड़ता है । यह कर्मग्रन्थि वज्र की तरह बड़ी कठिनाई से भेदी जाती है । अपूर्वकरणरूपी वज्र की सुई का सहारा लिये विना उस का भेदन होना अशक्य है ।

अपूर्वकरण की वज्रमय सुई से एक बार कर्मग्रन्थि का भेदन हो जाने पर

अधिभेदन करवाभा मानसिक क्षोभ तथा परिश्रम आदि अनेक विघ्न उपस्थित थाय छे जेभ विद्यानी साधना करवावाणाने विद्यानी अधिष्ठात्री देवताद्वारा थवावाणा विघ्नाथी मनभा क्षोभ थाय छे, अने घनघोर म्हायुद्धभा गयेला थोधाने धर्षण सभ्यावाणा अने दुर्जय शत्रुयोना दण उपर विजय भेगववाभा जेभ परिश्रम करवेो पडे छे अथवा—जेवी रीते डोछ म्हासमुद्रभाथी वडाळु वगेरेने पार लछ जवाभा नाविकाने परिश्रम करवेो पडे छे, जे प्रमाणे अहुण दुर्जय कर्मशत्रुयोना दणने पराजय करवाभा अत्यन्त परिश्रम करवेो पडे छे

आ कर्मग्रन्थि वज्रभा जेवी म्हाडडिनताथी बेदी शक्य छे अपूर्वकरण र्पी वज्रनी सोयनी सहाय लीधा विना तेनु भेदन थनु अशक्य छे

अपूर्वकरणनी वज्रमय सोयथी जेकवार कर्मग्रन्थिनु भेदन थछ जवा पछी

सामर्थ्यान्न पुनर्ग्रन्थिबन्धनं भवति, यथा जाठवेद्यो मणिः कथञ्चिद्रज्जमा परिपूरितेऽपि रत्ने न पूर्वावस्थां प्राप्नोति, तत्रैव सम्पृष्टसम्यक्चो श्रीवः कथञ्चित्सम्यक्त्वापगमे पश्चात्परागद्वेषपरिणाममाप्तावपि न पुनर्ग्रन्थिरूपेण कर्म बध्नाति ।

यथा भन्मान्मस्य कथञ्चिदभ्युप्राप्तौ सत्यां यथावस्थितपदार्थसाध्याधि सोक्तमेव, यथा च महाभ्यापिननितदुरन्तघोरवेदनासमाक्रान्तस्य तद्व्याभ्यपगमे महान् ममोदो जायते तथा भ्रम्यस्थानिद्विकरणावसन्न वीतरागोपदिष्ट

धीन को यदा की अत्यन्त विग्रह शक्ति प्राप्त हो जाती है, जब एक फिर कमी प्रकियेय नहीं होता । किसी मणि में एक बार छेद कर दिया जाय और कालान्तर में उस में बूट भर जाय तो भी वह छेद पड़े की भाँति नहीं होता । इसी प्रकार एकबार सम्पत्त्व प्राप्त कर केने वाला धीन सम्पत्त्व के नष्ट हो जाने पर भी बाद में तीव्र राम-द्वेषरूप परिणामों की प्राप्ति होने पर भी प्रवि के रूप में कर्मों का बध नहीं करता ।

जैसे कर्म से बंधे को किसी उपाय से बाल मिलने पर पदावों का असली स्वरूप देखकर अत्यन्त हर्ष होता है, जबवा जैसे किसी महान् रोम से होने वाली घोर वेदना से पीड़ित पुरुष के रोम हट जाने पर महान् हर्ष होता है, उसी प्रकार सम्य-धीन को अनिद्विकरण-के कर्म से महान् वीतराग द्वारा कथित बधार्थ

उपने महानी अत्यन्त विग्रह शक्ति प्राप्त कर्म व्यक्त से अत्यन्त आटे हरी केरि वगत अधिलक्ष बने नही, केरि भक्तिमा अके वपत छिद्र-सम्पत्त्व यदथा पछी महान्तवर्मा ते छिद्रमा कदाच पूज कस्यैक जाय ते पक्ष ते छेद प्रथम प्रभावे बने नही, आ प्रकार अकेवार सम्पत्त्व प्राप्त ठरी देवावाज्य एव, सम्यक्त्वने नाश बवा छर्ता पक्ष पछीभी वीर राज-द्वेष रूप परिणामोनी प्राप्ति बवा छर्ताव पक्ष अधिना इषमा कमेनिा लक्ष करता नही.

जैसी शीते ज-मही आधजने केरिपक्ष उपायभी नेत्र भणी लतां पदावोना अक्षही स्वकृपने केरिने अत्यत कर्म यथ से अथवा जेम केरि महान् राजभी बवा यणी महाराज वेदनाभी पीडित पुरुषने राज निवास्य बर्ष लतां तेने महान् कर्म बध के जे प्रभावे लक्ष एवने अनिद्विकरणना जगधी, जत्रवान वीतरागद्वारा कथित

यथावस्थितवस्तुतत्त्वाऽभिरुच्या श्रद्धयाऽभूतपूर्वो विषयवैरस्यपुरस्कृतः प्रमोदः प्रादुर्भवति ।

### ॥ अनिवृत्तिकरणम्—

ततश्च प्रथिभेदोत्तरकालमेव ततो विशुद्धतमं शुभाध्यवसायविशेषमनिवृत्तिकरणं प्राप्नोति, येन तावन्न निवर्त्तते जीवः सम्यक्त्व न लभते यावदित्यनिवृत्तिकरणमुच्यते । अनिवृत्तिकरणवलेन जीवः सम्यग्दर्शन लभते । तदेव नैसर्गिकी श्रद्धोच्यते ।

ननु प्रागुक्तं 'मिथ्यात्वमोहनीयकर्मापशमादिभ्यः श्रद्धा जायते' पुनरुच्यते 'निसर्गादधिगमाद्वा श्रद्धा जायते' तदसगतम् ।

वस्तुस्वरूप के प्रति रूचिरूप श्रद्धा से विषयवैराग्यपूर्वक एक ऐसा आनन्द उत्पन्न होता है जिस का पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था ।

### अनिवृत्तिकरण—

प्रथिभेद के अनन्तर काल में अत्यन्त विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है । वही अनिवृत्तिकरण कहलाता है । यह परिणाम प्राप्त होने पर जीव सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना नहीं छौटता, इसी कारण इसे 'अनिवृत्तिकरण' कहते हैं । अनिवृत्तिकरण के द्वारा जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है । उसी को नैसर्गिक श्रद्धा कहते हैं ।

शुद्धा—पहले कहा था कि—'मिथ्यात्वमोहनीयकर्म के उपशम आदि से श्रद्धा उत्पन्न होती है' और बाद में कहते हैं कि—'निसर्ग से, अथवा अधिगम से श्रद्धा उत्पन्न होती है' । यह कथन परस्पर असगत है ?

यथार्थवस्तुस्वरूपणी इच्छिश्य श्रद्धाथी विषयवैराग्यपूर्वक श्रेष्ठ श्रेयो आनन्द उत्पन्न थाय छे के-नेना पडेला कोर्ध वभत अनुभव थयो नथी

### अनिवृत्तिकरण—

अथिलेदना अनन्तर (तरतना) काणमा अत्यन्त विशुद्ध परिष्णाम उत्पन्न थाय छे ते 'अनिवृत्तिकरण' कडेवाय छे आ परिष्णाम प्राप्त थया पछी एव सम्यक्त्व प्राप्त कया बिना पाछे नथी इरते। तेथीञ्च अने अनिवृत्तिकरण कडे छे, अनिवृत्तिकरण एव द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त करे छे तेनेञ्च नैसर्गिक (स्वाभाविक) श्रद्धा कडे छे

शुद्धा—पडेला कड्डु डुतु के—'मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना उपशम आदिथी श्रद्धा उत्पन्न थाय छे' अने पछी कडेला छे के—'निसर्ग अथवा अधिगमथी श्रद्धा उत्पन्न थाय छे, अने कथन परस्पर असगत छे,

अप्रोच्यते—स एव श्रयापन्नमादिर्निसर्गाभिगमाद्वा जायते, तथा च भद्राया अपि तद्वदयं कारण सिद्धपत्तीति न दोषः ।

स्तु सम्यक्त्वगुणरहितेनैव जीवेन द्राघीयसी कर्मस्थितिर्ग्रन्थिभेदा त्पूर्वे ययामवृत्तिकरणेन यया क्षपिता तथा तदवशिष्टमपि कर्मग्रन्थि ययामवृत्तिकरणेनैव मिनचु, ततो मोक्षमप्यवशेष प्राप्नोतु किं पुनरपूर्वकरणसम्बन्धेन ? अत्रोच्यते-महाविद्यासाधनवदेतद् द्रष्टव्यम् । यया महाविद्याया साधने पूर्वं स्वल्प एव परिश्रमो भवति, तस्मिन्निर्माप्तिसमयं तु सा विद्या तद्विद्याभिष्टावदेस्ताकृत

समाधान—सिद्ध्यात्ममोहनीय कर्म का श्रयोपसम आदि, निसर्ग से अथवा अस्मिन्म से होता है ऐसी स्थिति में यह दोना कारण भद्रा के ही हैं अतः कोई दोष नहीं है ।

सङ्ग—जीव में सम्यक्त्व न होने पर भी जैसे उतनी बड़ी भारी कर्मस्थितिको प्रथिमेद से पहले ही ययामवृत्तिकरण के द्वारा तारा टाकने इसी प्रकार क्षेत्र स्थिति भी ययामवृत्तिकरण के द्वारा ही तारा के और मोक्ष भी इसी प्रकार प्राप्त करके फिर अर्पूर्वकरण का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता है ?

समाधान—महाविद्या की साधना की तरह ही यहाँ समझना चाहिए । जैसे महाविद्या की साधना में पहले थोड़ा-सा श्रम होता है किन्तु जब उस का सिद्धि का समय नजदीक आता है तो यह विद्याभिष्टात्री देवताद्वारा किये जानेवाले नान्य प्रकार क उपसर्गों द्वारा विजयुक्त हो जाता है और प्रायः अश्रम कष्टसाध्य बन जाती है,

समाधान—सिद्ध्यात्ममोहनीय कर्मना श्रयोपसम आदि, निसर्गशी अथवा अस्मिन्मशी धार्य छे, जेवी स्थितिमां आ अन्ने करखे अक्षान्त्व छे तेभी कर्म दोष नहीं

शङ्का—एवने सम्भूत्व न होय तो पक्ष जेवी रीते जेवही महाभारी कर्म स्थितिने अक्षिसेइया पड़ेता अथवा ययामवृत्तिकरणना द्वारा अथवा नाजे छे ते प्रभासु क्षेत्र स्थिति पक्ष अथवा ययामवृत्तिकरणद्वारा अथवा नाजे अने मोक्ष पक्ष आ प्रभासु प्राप्त करी तीजे तो पछी अपूर्वकरणे आश्रय देवानी तु आवश्यक्ता छे ।

समाधान—महाविद्यानी साधना प्रभासु अर्थात् समस्त क्षेत्र जेवने जेव महाविद्यानी साधनामा पड़ेतां सोरो जेवो श्रम श्रम छे, परन्तु अथारे तेनी सिद्धिने श्रम नलक्ष आवे छे त्वारे ते विद्यानी अभिष्टात्रीदेवताद्वारा करवामां आवता नान्य महाशना उपसर्गे द्वारा विजयुक्त यक्ष अथ छे अने यक्ष करीने अश्रम कष्टसाध्य



વિવિધોપસર્ગેઃ સવિઘ્ના કષ્ટતરસાધ્યા ચ પ્રાયશો ભવતિ, તદ્વદ્ ગ્રન્થિભેદો મનઃ-  
ક્ષોભાદિવિવિધોપસર્ગેઃ, પરમવીર્યાવિષ્કારપૂર્વકઃકષ્ટતરસાધ્યત્વેન ચ સવિઘ્નોઽતિદુષ્કરશ્ચ,  
તસ્માત્ કેવલં યથાપ્રવૃત્તિકરણેન ગ્રન્થિભેદો ન ભવિતુમર્હતિ, અત એવા પૂર્વકરણમાવ-  
શ્યકમિતિ । इत्थं चापूर्वकरणेन ग्रन्थिभेद विधायाऽनिवृत्ति-करणेन श्रद्धा लभ्यते ।

### ॥ અધિગમશ્રદ્ધા—

येन प्रकारेण निसर्गतः श्रद्धा जायते स कथितः, अधुना-अधिगमश्रद्धा  
व्याख्यायते-अधि=अधिकृत्य तीर्थङ्कराद्युपदेश निमित्तीकृत्य गमः=ज्ञानं यद्भवति  
सोऽधिगमः, वीतरागोपदेशश्रवणाद् वीतरागप्राणीतागमार्थपर्यालोचनाद्वा यथाव-

इसी प्रकार ग्रन्थिभेद भी मन-क्षाम आदि अनेक उपसर्गों के कारण विघ्नयुक्त हो जाता  
है और ग्रन्थिभेद के करने में बड़ी शक्ति की आवश्यकता होती है, अत एव अकेले  
यथाप्रवृत्तिकरण से ग्रन्थिभेद नहीं हो सकता, उस के लिए अपूर्वकरण की आवश्यकता  
होती है । इस प्रकार अपूर्वकरण-द्वारा ग्रन्थिभेद करने पर अनिवृत्तिकरण-द्वारा श्रद्धा प्राप्त  
की जाती है ।

### अधिगमश्रद्धा—

जिस प्रकार निसर्ग से श्रद्धा उत्पन्न होती है वह प्रकार कहा जा चुका ।  
अब अधिगमश्रद्धा की व्याख्या की जाती है—तीर्थङ्कर आदि के उपदेश के निमित्त से  
होने वाला ज्ञान अधिगम कहलाता है । वीतराग भगवान् का उपदेश सुनने से

ખની બન્ય છે, એ પ્રમાણે અથિલેદ પશુ મન ક્ષોભ આદિ અનેક ઉપસર્ગોના કારણે  
વિઘ્નયુક્ત થઈ બન્ય છે, અને તે ગ્રન્થિભેદના કરવામા ભારે શક્તિની આવશ્યકતા  
હોય છે, એટલા માટે એકલા યથાપ્રવૃત્તિકરણથી અથિલેદ થતો નથી, તેને માટે  
અપૂર્વકરણની આવશ્યકતા રહે છે, એ પ્રમાણે અપૂર્વકરણ-દ્વારા અથિલેદ કરવાથી  
અનિવૃત્તિકરણ-દ્વારા શ્રદ્ધા પ્રાપ્ત કરવામા આવે છે

### અધિગમશ્રદ્ધા—

એ પ્રમાણે નિસર્ગથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે તે પ્રકાર કહેવામા આવી ગયો છે  
હવે અધિગમશ્રદ્ધાની વ્યાખ્યા કરવામા આવે છે—તીર્થ કર આદિના ઉપદેશના નિમિત્તથી  
થવાવાળું જ્ઞાન તે અધિગમ કહેવાય છે વીતરાગ ભગવાનનો ઉપદેશ સાંભળવાથી, અથવા

स्वितपदार्थनिर्णयो जायते सोऽधिगमः, तस्माद्दुपसमादिद्वारेण तत्पार्याभिरुचिर्जायते सा-अधिगमभद्रा ।

अद्यात्समवेगाद्यं प्रादुर्भवन्ति, ततश्च राज्यादिविभव पुत्रदारादिक स्वजनं सर्वं परिष्यामदुःखपदं विपत्परिस्वयय सबसुखसारपूर्तं नित्यं ध्रुव शान्तिर्क मोक्षसुखं प्राप्तुकामः प्रवर्जितो भवति ।

संयमभेजिमाप्तिकाले या महद्दपरिणामपारा वर्तते तां सर्वेषां रक्षेत् तु ह्यस्येदिति माध्वः । अद्यायाः परमदुर्भस्त्वात्, ज्ञानचारित्रकारणस्य मोक्षस्यादि

व्यवस्था बीतराग द्वारा निरूपित अगम के अर्थ का विचार करने से पदार्थों का अभाव निर्णय होता है । उस निर्णय को अधिगम कहते हैं । उस अधिगम से सिप्पत्त्व मोक्षनीय का क्षय, उपसम आदि होने पर तत्त्वार्थ की जो इति होती है, वह अधिगम भद्रा है ।

अद्या से शम संवेग आदि उत्पन्न होते हैं, अत एव "राज्य आदि वैभव तथा पुत्र, पत्नी आदि समस्त आत्मीयजन अन्त में दुःखदायक हैं" ऐसा ज्ञान कर, और विप के समान उन का परिषयाग कर के सब सुखों में उत्तम, नित्य, ध्रुव, शान्तिक मोक्ष-सुख को इच्छवास्य वह सम्पत्ति पुरुष वीक्षित हो जाता है ।

तात्पर्य यह है कि-संयमप्राप्ति के समय परिणामों की जो बड़ी हुई धारा थी उस की सब प्रकार से रक्षा करना चाहिए, उसे घटने नहीं देना चाहिए । अतः परम दुर्भस्म है, और ज्ञान एवं चारित्र का कारण होने से मोक्ष का अय्य कारण है, अत एव

वीतरागद्वारा निरूपित आत्मभवा अर्थो विचार इत्यादी पदार्थानि यथाशं निरूप्य यथा ये ते निरूप्यते अधिगम इहे ये ते अधिगमशी मिच्छत्त्वमोक्षनीयानां क्षय-उपसम आदि यथा पथी तत्त्वार्थानी ने इति भाव ये ते अधिगमभद्रा ये

अद्याधी शम, सर्वत्र आदि उत्पन्न भाव ये अदृष्टा माटे 'राज्य आदि वैभव तथा पुत्र, पत्नी वनेरे समस्त आत्मीयजन अन्तर्मां दुःखदायक ये.' अतः प्रभावे अद्याने विपत्नी समान तेने त्याज्य इतीने सर्वसुखोभां उत्तम, नित्य, ध्रुव शान्तिक मोक्ष सुखानी इच्छावस्य सम्पत्ति पुरुष वीक्षित यथं भाव ये

तात्पर्यं अये ये इ-संयमनी प्राप्तिना समये परिष्कारिणी ने वधती वती धारा वती तेनु सव प्रभावेरी रक्षयु इत्यं अर्थजे. तेने घट्वा देवी अर्थजे नहि. अद्या परम दुर्भस्म ये अने ज्ञान, जेवी रीते आदिनु इत्यु देवाधी मोक्षनु सुख इत्यु ये अदृष्टा माटे

कारणत्वाच्च श्रद्धां न परित्यजेत् । यथा—कथञ्चित्मात्स्यस्यापि सयमस्य श्रद्धापूर्वकरत्नणे यावज्जीवं सावधानो भवेदिति सूत्राशयः ॥ सू० २ ॥

शिष्यश्रद्धादृढीकरणाय 'परिशीलितमार्गोऽनुगम्यते' इति लोकरीत्या 'पूर्व-महापुरुषाचरितोऽयं मार्गः' इत्याशयेन कथयति—

यद्वा 'पूर्वमहापुरुषतीर्थङ्कर-गणधरादिभिरप्याचरितोऽयं मार्गः' इति प्रदर्शनाय शिष्यचेतसि श्रद्धातिरेको यथा स्यात्तथा सूत्रकारः स्वयमाह—'पणया' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

पणया वीरा महावीहिं ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

प्रणता वीरा महावीथिम् ॥ सू० ३ ॥

श्रद्धा का त्याग नहीं करना चाहिए, आशय यह है कि—बड़ी कठिनाई से प्राप्त होने वाले सयम की श्रद्धापूर्वक रक्षा करने में जीवनभर सावधान रहना चाहिए ॥ सू० २ ॥

'चले मार्ग पर चला जाता है' इस लोकव्यवहार के अनुसार शिष्य की श्रद्धा मजबूत करनेके लिए 'यह मार्ग पूर्वकालीन महापुरुषों द्वारा आचरित है' इस आशयसे कहते हैं—

अथवा—'पूर्वकाल के तीर्थङ्कर गणधर आदिने भी इसी मार्ग का अवलम्बन किया है' यह बतलाते हुए शिष्य के चित्त की श्रद्धा बढ़ाने के लिए कहते हैं— 'पणया' इत्यादि ।

मूलार्थ—वीर पुरुष महामार्ग को प्राप्त हुए ॥ सू० ३ ॥

श्रद्धानो त्याग करवो नोछो नछि, आशय ओ छे के—महान कठिनाईथी प्राप्त थवावाणा सयमनी श्रद्धापूर्वक रक्षा करवाभा लवनना छेदला रक्षाय सुधी सावधान रहडुं नोछो (सू० २)

"आलता मार्ग पर थलावाय छे" आ लोकव्यवहार प्रमाणे शिष्यनी श्रद्धा मज्जुत करवा भाटे—'आ मार्ग पूर्वकालीन महापुरुषोओ आचरण करेल छे' आ आशयथी कडे छे—

अथवा पूर्व कालना तीर्थंकर गणधर आदि सौओ आ मार्गनु अवलम्बन (आश्रय) कयुं ओ अताववा भाटे शिष्यना चित्तनी श्रद्धाने वधारवा भाटे कडे छे— 'पणया' इत्यादि

मूलार्थ—वीर पुरुष महामार्गने प्राप्त थया—(वीर पुरुषे महामार्गने प्राप्त कथी) (सू० ३)

॥ टीका ॥

वीराः=परीयहीयसर्गकपायादिरूपजुक्त्रियिनो मानवीराः सयमानुष्ठाने वीय  
न्तः सर्वोत्कृष्टा इति यावत्

महती चासौ वीधिः महावीथिः=सम्पन्नानादिलक्षणो महामार्गः, महा-  
पुरुषसेवितत्वात्, तां महावीथिम् प्रवृत्ताः=माताः कठिनतरतपासंयमाराधनेन  
प्राप्तवन्त इत्यर्थः, अपमेव मार्गो मोक्षावाप्तिकरोऽप्येवमिसेवितत्वात् ।  
तीर्थहरादिमहापुरुषा अपि मार्गमिममनुष्ठीकृतवन्त इति चिन्तनीयतया शिष्याणां  
महापूर्वकमवृत्तिर्यथा स्यादिति भावः ।

यथा रामानो विपक्षपक्षदक्षनाय वीररत्नेन प्रसिद्धा भवन्ति, एषमेव

टीकार्थ—परीय, उपसर्ग, कपाय आदिरूप शत्रुओं को बीतेबाळे संयम के  
आचरण में पराक्रम करनेवाले सर्वोत्कृष्ट मानवीर यहाँ 'वीर' शब्द से प्रहण किये गये हैं ।

सम्पन्नान् आदि मोक्ष का महामार्ग 'महावीथि' कहलता है, क्यों कि महापुरुषोंने  
उस का सेवन किया है । मानवीर इस महामार्ग को प्राप्त हुए हैं । अस्मत् कठोर तप  
और संयम का आराधन करना ही इस मार्ग को प्राप्त करना है । यही मार्ग मोक्ष की प्राप्ति  
करने वाला है, क्यों कि समस्त मुनियोंने इसी का सेवन किया है । तीर्थहर आदि महापुरुषोंने  
भी इसी मार्ग का आश्रय लिया है, अत एव विश्वसनीय समस्त कर शिष्यगण की भी इसी  
में प्रवृत्ति होती चाहिए ।

'वीर' शब्द से यह प्रकट किया गया है कि—जैसे राजा लोग अपने शत्रुओं का

टीकार्थ—परीयर्ग उपसर्ग कपाय वगैरे शत्रुओंने उत्तवाचण, सवभन्त  
प्राप्तवन्त पराक्रम करवावाण सर्वोत्कृष्ट मानवीर आदि 'वीर' शब्द वदे प्रहण  
करवाया अस्या उ

सम्पन्नान् आदि मोक्षने भाग ते 'महावीथि' कहेवाक्य छे कारण के महा-  
पुरुषोंने तेनु सेवन कयुं छे मानवीर आ महाभाजने प्राप्त कया छे अस्मत् कठोर  
तप अने सवभन्त आश्रयन करयुं के अ आ भाजने प्राप्त करवे ते छे आ भाजने  
मोक्षनी प्राप्ति करवावाणे छे, कारण के समस्त मुनियोंके के भाजने सेवन कयुं  
छे, तीर्थहर आदि महापुरुषोंने पण आ भाजने आश्रय लीथि छे कोऽथ भादे आ  
भाजने विश्वासपात्र समस्तने शिष्यमण्डली पण आ भाजना प्रवृत्ति कयी केछे के

वीर शब्द के प्रकट करवाया अस्या उ के—जैसे राजा लोग अपने शत्रुओंने

પરિપહારિરૂપશત્રુવિજયેન સંયમિનોઽપિ મોક્ષમાર્ગં લઘ્વા લોકોત્તરવીરા ભવન્તિ,  
ઇતિ વીરપદેન વ્યજ્યતે, ઇતિ સૂત્રાશયઃ ॥ સૂ. ૩ ॥

કશ્ચિન્મન્દધીઃ શિષ્યોઽનેકદૃષ્ટાન્તૈર્વોધ્યમાનોઽપિ અપ્કાયાદિજીવેષુ ન શ્રદ-  
ધાતીતિ તમુદ્દિશ્ય કથયત્તિ—હે શિષ્ય ! તવ મત્તિર્યદ્યપ્યપ્કાયજીવવિષયે ન  
પરિસ્ફુરતિ, તદ્વિષયે વિશેષજ્ઞાનાભાવાત્, તથાપિ ભગવદાજ્ઞયા શ્રદ્ધા નિતરાં  
વિધેયેત્યાશયેનાહ—‘લોગં ચ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

લોગં ચ આણાં અભિસમેચ્ચા અકુતોભયં ॥ સૂ. ૪ ॥

છાયા—

લોકં ચાજ્ઞયાઽભિસમેત્ય અકુતોભયમ્ ॥ સૂ. ૪ ॥

લલન કરકે વીર પદવી પાતે હૈં, ઁસી પ્રકાર પરીપહ આદિ શત્રુઓ કો જીતને સે સયમી  
મોક્ષમાર્ગ પ્રાપ્ત કર કે લોકોત્તર વીર કહલાતે હૈં ॥ સૂ. ૩ ॥

કોઈ મન્દબુદ્ધિવાલા શિષ્ય અનેક દૃષ્ટાન્તો સે સમજાને પર મી અપ્કાય  
આદિ કે જીવો પર શ્રદ્ધા નહીં કરતા તો ઁસે લક્ષ્ય કર કે કહતે હૈં—હે શિષ્ય ! ઁથપિ  
લુન્હારી બુદ્ધિ અપ્કાય કે જીવો કે વિષય મેં નહીં ઁડીતી, ક્યોં કિ લુન્હેં ઁસ વિષય કા  
વિશેષ જ્ઞાન નહીં હૈ, ફિર મી ભગવાન્ કી આજ્ઞા સે અવશ્ય હી શ્રદ્ધા રલ્કની ઁહિણ. ઁસ  
આશય સે કહતે હૈં—‘ લોગ ચ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—ભગવાન્ કી આજ્ઞા સે ( અપ્કાયરૂપ ) લોક કો સમ્યક્ પ્રકાર સે જાનકર  
સયમ કા પાલન કરના ઁહિણ ॥ સૂ. ૪ ॥

નાશ કરીને વીર પદવી પ્રાપ્ત કરે છે, તે પ્રમાણે પરીપહ આદિ શત્રુઓને હતવાથી  
સયમી પણ મોક્ષમાર્ગ પ્રાપ્ત કરીને લોકોત્તર વીર કહેવાય છે ( સૂ. ૩ )

કોઈ મદ્યબુદ્ધિવાળા શિષ્ય અનેક દૃષ્ટાન્તોથી સમજાવ્યા છતાં પણ અપ્કાય  
આદિના જીવો પર શ્રદ્ધા નથી કરતા તો તેને લક્ષ્યરૂપ રાખીને કહે છે કે—હે શિષ્ય !  
હજી સુધી તમારી બુદ્ધિ અપ્કાયના જીવો વિષયમાં ઠોડતી નથી (કામ કરતી નથી)  
કારણ કે તમને આ વિષયનું વિશેષ જ્ઞાન નથી તો પછી ભગવાનની આજ્ઞાથી અવશ્યજ  
શ્રદ્ધા રાખવી જોઈએ એ આશયથી કહે છે—‘ લોગ ચ ’ ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—ભગવાનની આજ્ઞાથી (અપ્કાયરૂપ) લોકને સમ્યક્ પ્રકારથી જાણીને  
સયમનું પાલન કરવું જોઈએ ( સૂ. ૪ )

टीका—

अत्र सोऽङ्गस्येन प्रकरणवशादप्कायलोक एव सूचते, समप्काय-लोकं, 'य'-स्येनान्यौषाप्कायाभितान्, आह्वया=तीर्षङ्करवचनेन, अमिसमेस्य=आमिसस्येन सम्पक् ज्ञात्वा 'अप्कायादपो जीवाः सन्ती-स्येवमयस्येस्येषां, अङ्गतोमयम्=नास्ति कुतश्चित्केनापि प्रकारेण प्राणिनां मयं यस्मात्सोऽङ्गतोमयम्=संपमस्तम् अतुपालयेत् इत्यन्वया । सर्वेषां जीवाभिरक्षरूपसयमातुपालने सावधानतया यत्नं कार्यं इत्यर्थः ।

यद्वाऽङ्गतोमयोऽप्कायलोको, यतोऽसौ न कुतश्चिदन्यस्माद्गमिष्यति, स्वीयमरणादिमयात् सर्वः प्राधिगणः लिप्तो भवति । 'सर्वे जीवा नि

टीकार्थ—मूल सूत्र में लिखे हुए 'लोक' शब्द से, प्रकरण के कारण यहाँ अप्काय-लोक ही समझना चाहिए । 'य' शब्द से अप्काय के भाष्य रहे हुए अन्य जीवों का प्रहण करना चाहिए । इस प्रकार अप्काय और अप्काय के अभिन्न रहनेवाके अन्य जीवों को तिर्षङ्कर भगवान् की आज्ञा से सम्पक् प्रकार अन्तर बर्षात् 'अप्काय आदि जीव है' ऐसा समझ कर सबम का पालन करना चाहिए । 'अङ्गतोमय' अर्थात् जिस से किसी भी प्राणि को किसी प्रकार का मय न हो ऐसा सबम । सर्वेषां जीवरक्षारूप सबम के पालने में सावधान होकर यत्न करना चाहिए ।

अथवा—'अङ्गतोमय' का अर्थ है—अप्कायलोक, क्योंकि कि वह दूसरे से मय की इच्छा नहीं करता । सभी प्राणी अपनी मृत्यु आदि के मय से लिप्त होते हैं ।

टीकार्थ—मूलसूत्रार्थ आपेक्षा लोक शब्दकी प्रकरणवशादपेक्षा अप्काय-लोक समर्थनु लोके 'य' शब्दकी अप्कायना आशये रहेवा अन्य लोकेनु अङ्गस्येन लोके के प्रभावे अप्काय अने अप्कायना अभिन्न रहेवावाला अन्य लोकेने तीर्षङ्कर भगवान्की आज्ञाकी, सम्पक् प्रकारे अङ्गी करीने अर्थात् अप्काय आदि अन्य से के प्रभावे समलने सबमनु पालन करनु लोकेने अङ्गतोमय अर्थात् केना बडे केअपय प्राणीने केअ प्रकारने मय न होय केवे सबम, सर्वेषां अन्य रक्षारूप सबमना पालनमा सावधान बधने यत्न करवे लोकेने

अथवा 'अङ्गतोमय'ने अर्थ है—अप्कायलोक कारण के ते जीवाना तत्त्वकी लक्ष्णी प्रमाण इत्या नभी; सर्वे प्राणी पीताना मृत्यु आदिना लक्ष्णी भिन्न-द्वारा भाव से

इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं' इति वचनात् । तमप्कायलोकं समनुपालयेदिति सम्बन्धः । संयमी सर्वप्राणिगणपरिपालक एव सन् नान्यस्मै भयमुत्पादयति, 'मिती मे सव्वभूएसु' इति वचनेन तस्य सर्वैः सह मैत्रीसद्भावात्, अतोऽसौ संयमी न तेभ्यो भयं जनयति, कस्मैचिदपि भयं केनापि नोत्पादयति, प्रत्युत सर्वप्राणिगणं परिरक्षतीति भावः ।

यद्यपि छद्मस्थैः प्राणिभिः सर्वद्रव्यपर्यायज्ञानाभावाद्बुद्धिसंस्कारराहित्येनाप्कायजीवस्याव्यक्तचेतनया च 'आपो जीवाः सन्ती'—त्यपरोक्षत्वेन कदाचिदपि ज्ञातुं न शक्यते, तथापि सकलतीर्थोद्धारधुरीण—तीर्थङ्कर—वचनप्रामाण्यादवश्य

आगम में कहा है—'सभी जीव जीवित रहना चाहते हैं मरना नहीं चाहते ।' उस अप्कायलोक का पालन करे अर्थात् रक्षण करे । सयमी पुरुष समस्त प्राणियों का रक्षक होता है । वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न नहीं करता । " मेरा सब प्राणियों पर मैत्रीभाव है " इस वचन के अनुसार उस की प्राणीमात्र पर मित्रता की भावना होती है । इस कारण सयमी उन्हें भय उत्पन्न नहीं करता, किसी को भी किसी द्वारा भय उत्पन्न नहीं कराता, बल्कि वह सब प्राणियों की रक्षा करता है ।

यद्यपि छद्मस्थ जीवों को समस्त द्रव्यों का ज्ञान नहीं होता इस कारण, तथा बुद्धि, संस्कार से रहित होने के कारण अप्काय के जीवों में अव्यक्त चेतना होने से, तथा 'जल जीव है' यह बात प्रत्यक्ष न होने से कभी इन्द्रियों द्वारा जानी नहीं जा सकती, फिर भी सम्पूर्ण तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ तीर्थङ्कर के वचनों को प्रमाण

आगममा पष्णु क्खु छे के—“सर्वं एव एवता रडेवानी धम्मं करे छे, भरवानी धम्मं करता नथी” ते अप्कायलोक्कु पालन करे अर्थात् रक्षा करे सयमी पुष्प समस्त प्राणीओना रक्षक थाय छे ते कोर्ध पष्णु प्राणीने भय उत्पन्न करता नथी 'सर्वं प्राणीओ पर मारे मैत्रीभाव छे' आ वचन प्रमाणे तेनी सर्वं प्राणीमात्र पर मित्रतानी भावना होय छे, ते कारणथी सयमी ते एवोने भय उत्पन्न करता नथी, कोर्धने पष्णु कोर्धथी भय उत्पन्न करावता नथी, परतु ते सर्वं प्राणीओनी रक्षा करे छे

जे के छद्मस्थ एवोने समस्त द्रव्यों अने पर्यायेतु ज्ञान नथी, ते कारणथी तथा बुद्धि, संस्कारथी रहित होवाथी अप्कायना एवोमा अव्यक्त चेतना होवाथी, तथा 'जल एव छे' ओ वात प्रत्यक्ष नहि होवाथी इन्द्रियोंद्वारा कोर्ध वभत जलुवामा आवती नथी तो पष्णु स पूर्ण तीर्थने उद्धार करवामा समर्थ तीर्थकरना वचनेने प्रमाण

विशासो विवेकः । अवध्याविप्रत्यक्षज्ञानिनोऽपि पूर्वं मगवदाज्ञायां भद्रावन्त सन्त  
 एवाऽप्यावधीवान् विज्ञाय प्रत्यक्षज्ञानिनः संभाताः, अतः संप्रमिमिरमस्यमर्कायादि  
 वीवरज्ञायां साक्षानैमैत्रित्यमिति परमार्थः ॥ सू० ४ ॥

अर्थायलोकं मगवदाज्ञया विज्ञाय संप्रमिना यत् कर्तव्यं, तत् कथयति- 'से  
 वेमि' इत्यादि ।

मूलम्—

से वेमि-एव सयं लोमं अस्माइक्सिन्ना, एव अत्तार्णं अस्माइक्सिन्ना,  
 जे लोयं अस्माइक्सिन्ना से अत्तार्णं अस्माइक्सिन्ना, जे अत्तार्णं अस्माइक्सिन्ना, से लोयं  
 अस्माइक्सिन्ना ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स मग्नीमि नैव स्वयं लोकमस्याख्यात्, नैवात्माननमस्याख्यात्, या लोक  
 मस्याख्याति, स आत्मानमस्याख्याति, य आत्मानमस्याख्याति, स लोकमस्या  
 ख्याति ॥ सू० ५ ॥

मन्त्र अस्मय विवास करना चाहिए । अवधिज्ञानी यदि प्रत्यक्षज्ञानी भी पहले मगवान्  
 की आज्ञा पर मद्रा रहते हुए अर्थाय के बीना को जान कर प्रत्यक्षज्ञानी हुए, अतः संसारी  
 बनो को अर्थाय यदि के बीसों की रक्षा में सावधान होना चाहिए ॥ सू० ४ ॥

मगवान् की आज्ञा से अर्थायलोक को जान कर संसारी को जो करना चाहिये वह  
 प्रगट करते हैं— 'से वेमि' इत्यादि ।

मूलार्थ—इह मै च्छता हूँ-स्वयं अर्थायलोक का अर्थज्ञान न कर  
 आत्मा का अर्थज्ञान न करे, जो लोक का अर्थज्ञान करता है वह आत्मा का अर्थज्ञान करता है,  
 और जो आत्मा का अर्थज्ञान करता है वह लोक का अर्थज्ञान करता है ॥ सू० ५ ॥

आत्मीने अवश्य विश्वास करेवे लेछजे. अवधि यदि प्रत्यक्ष ज्ञानी एवं प्रथम अत्रवाननी  
 आज्ञा पर मद्रा आत्मीने अप्रकायना लोयेने लक्ष्मी करीने प्रत्यक्षज्ञानी तथा, जे माटे  
 संसारी पुरुषो जे अर्थाय आदिना लोयेनी रक्षायां सावधान रहवुं लेछजे. (सू० ४)  
 अत्रवाननी आज्ञाधी अप्रकायबोहने लक्ष्मीने संसारीनुं जे कर्तव्य छे ते प्रथम  
 करे छे— से वेमि इत्यादि.

मूलार्थ—ते हूँ हनुं छे-पैते अप्रकाय बोहने अप्रकाय-दिव्य छतां नधी  
 रहवुं ते) न करे आत्माने अप्रकाय करे नहि. जे बोहने अप्रकाय करे छे ते आत्माने  
 अप्रकाय करे छे. जने जे आत्माने अप्रकाय करे छे ते बोहने अप्रकाय करे छे (सू० ५)



## टीका—

सोऽहं=भगवद्वचनेन ज्ञातापक्कायस्वरूपः, ब्रवीमि=यथा भगवतः सकाशान्मया श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः । लोकम्=अपक्कायलोकं, नैव स्वयम् अभ्याख्यात्=‘आपो जीवा न सन्ती’-त्येव नापलपेदित्यर्थः । अभ्याख्यानं नामासदभियोगः, यथा कश्चिदचौरमुद्दिश्य वदति-चोरोऽयमिति । अत्र तु-‘घृततैलादिवज्जीवानामुपकरणमात्रं जलं, न तु तद् जीवो भवितुमर्हति, जीवोपकरणत्वात्’ एतत्कथनमेवासदभियोगः, यतो हि तुरगादीनां जीवानामपि जीवोपकरणत्वेन दृष्टत्वादुक्तरीत्या जलस्य जीवत्वं नापलपितुं शक्यते ।

नन्वजीवानामपि जीवत्वारोपणमेवाभ्याख्यानं कृतो न भवति ? मैवम्,

टीकार्थ—भगवान् के वचनों के अनुसार अपक्काय का स्वरूप जानने वाला मैं कहता हूँ, अर्थात् मैंने भगवान् के समीप जैसा जाना है वैसा ही कहता हूँ—स्वय अपक्कायरूप लोक का अपलाप न करे अर्थात् ऐसा न कहे कि-‘जल जीव नहीं है’ ।

असत् आरोप को अभ्याख्यान कहते हैं, जैसे अचौर को चौर कहना । यहाँ “घी तेल आदि के समान जल, जीवों का उपकरणमात्र ही हो सकता है, वह स्वय जीव नहीं है, क्योंकि जीव का उपकरण है” । इस प्रकार का कथन ही असत्-अभियोग है । क्यों कि घोडा वगैरेह जीव भी जीवोपकरण के रूप में देखे जाते हैं, अत जल के जीवपन का अपलाव नहीं किया जा सकता ।

शंका—अजीव जल में जीवत्व का आरोप करना ही अभ्याख्यान क्यों न समझा जाय ?

टीकार्थ—लज्जानना वचने प्रभाषे अपक्कायनु स्वरूप जलवावाणे हुं कहुं छु, अर्थात् मे लज्जाननी पासेथी जेहुं साभाळ्यु छे तेवु ज कहुं छु—पोते अपक्काय रुप बोक्कने अपलाप करे नहि, अर्थात् जेवु कडे नहि के—‘जल जव नथी’ असत् आरोपने अभ्याख्यान कडे छे, जेभके अचौरने चौर कडेवो अहि “घी तेल आदि प्रभाषे जल जे जेवोनुं उपकरणमात्रज छोडि शके छे, ते स्वय जव नथी, कारणु के-” ते जवनु उपकरणु छे, आ प्रकारनु कडेहुंज-असत् (मिथ्या) अभियोग छे, कारणुके घोडा वगैरे जव पणु जेवोपकरणना रूपमा जेवामा आवे छे तेथी जलनु जवपणुं अपलाप करी शक्य नहि

शंका—अजव पाषीमा जवपणुानो आरोप करवो तेज अभ्याख्यान शा भाटे नहि समजवुं ?

अनुमानागमाभ्यां जीवलक्षणरूपापसम्भवात्तौ जीवत्वनिश्चयान्तरम् ।

यद्यप्यण्कायश्लोकस्याभ्यास्यानं कुर्यात्, तथास्मिनोऽपि क्षरीराधिष्ठातृत्वात्तस्याभ्यास्यानं तेन कर्तव्यं स्यात्, न च तत् समवर्तीत्यस्य आह-नवमात्मानमभ्यास्यात्पि । आत्मा हि क्षरीराधिष्ठाता प्रत्यक्षभूतवसनावानिति नापहोतुं शक्यः, तस्मादात्मा नास्तीत्येवमात्मानं नापहोतव्यं ।

यः सत्त्व मन्धीः लोकात्=अण्कायश्लोकम् अभ्यास्यात्पि=अपहोति, स प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्निरूपितमात्मानमभ्यास्यात्पि । यच्चात्मानमभ्यास्यात्पि-‘आत्मा नास्तीति यद्वा-‘अहं नास्मीति, स महामूढः लोकात्=अण्कायश्लोकम्

समाधान-येसा मत कहो । अनुमान और अज्ञानप्रमाण से तथा जीव के लक्षणों के संबन्ध से एक को जीव निरूपण किया गया है ।

यदि अण्काय श्लोक का अभ्यास्यान किया जाय तो शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का भी अभ्यास्यान करना होना स्मर यह समझ नहीं है यही बात कहते हैं-आत्मा का अभ्यास्यान न करे । आत्मा शरीर का अधिष्ठाता है और प्रत्यक्ष वतना वाला है, अतः उस का अपहण नहीं किया जा सकता । अत एव ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का अपहण न करे ।

जो मन्धुदि अण्कायश्लोक का निषेध करता है वह प्रत्यक्ष अदि प्रमाणों से सिद्ध आत्मा का अपहण करता है । और जो ‘आत्मा नहीं है जगत्वा’ में नहीं है’ इस तरह आत्मा का अपहण करता है वह महामूढ मनुष्य अपने अज्ञान के बल से

समाधान-आ प्रमाणों कहो नकि अनुमान अने अज्ञान प्रमाणों तथा लक्षणों के द्वारा अण्कायश्लोक निरूपण कर्तुं छे जे अण्कायश्लोक अनुमान अभ्यास्यान करवाना जावे तो शरीरना अधिष्ठाता आत्मानु पक्ष अभ्यास्यान करव पारी, परन्तु ते सत्य नही, जे बात कहो छे-

आत्मानु अभ्यास्यान करयो नकि, आत्मा शरीरना अधिष्ठाता छे अने प्रत्यक्ष वतनावण छे तेही तेने अपहण करी शक्यो नकि, जेटका भाटे आत्मा नही जे प्रमाणे अपहण करयो नकि ।

जे मन्धुदिना अण्कायश्लोकना निषेध करे छे ते अण्काय अदि-प्रमाणों से सिद्ध-आत्मानो अपहण करे छे अने जे ‘आत्मा नहीं’ जगत्वा ‘हुं नहीं जे प्रमाणे आत्मानो अपहण करे छे ते महामूढ मनुष्य पितानु अज्ञानता अण्काय

## ટીકા—

સોઽહં=ભગવદ્વચનેન જ્ઞાતાપ્કાયસ્વરૂપઃ, વ્રવીમિ=યથા ભગવતઃ સકાશાન્મયા શ્રુત તથા કથયામીત્યર્થઃ । લોકમ્=અપ્કાયલોકં, નૈવ સ્વયમ્ અભ્યાખ્યાત્=‘આપો જીવા ન સન્તી’-ત્યેવ નાપલપેદિત્યર્થઃ । અભ્યાખ્યાનં નામાસદ્ભિયોગઃ, યથા કશ્ચિદ્ચૌરમુદ્દિશ્ય વદતિ-ચોરોઽયમિતિ । અત્ર તુ-‘ઘૃતૈલાદિવજ્જીવાનામુપકરણમાત્રં જલ, ન તુ તદ્ જીવો ભવિતુમર્હતિ, જીવોપકરણત્વાત્’ એતત્કથનમેવાસદ્ભિયોગઃ, યતો હિ તુમ્ગાદીનાં જીવાનામપિ જીવોપકરણત્વેન દૃષ્ટત્વાદુક્તરીત્યા જલસ્ય જીવ-ત્વં નાપલપિત્તું શક્યતે ।

નન્વજીવાનામપાં જીવત્વારોપણમેવાભ્યાખ્યાનં કુતો ન ભવતિ ? મૈવમ્,

ટીકાર્થ—ભગવાન્ કે વચનોં કે અનુસાર અપ્કાય કા સ્વરૂપ જાનને વાલા મૈં કહતા હૂં, અર્થાત્ મૈને ભગવાન્ કે સમીપ જૈસા જાના હૈ વૈસા હી કહતા હૂં—સ્વય અપ્કાયરૂપ લોક કા અપલાપ ન કરે અર્થાત્ ઁસા ન કહે કિ—‘જલ જીવ નહીં હૈ’ ।

અસત્ આરોપ કો અભ્યાખ્યાન કહતે હૂં, જૈસે અચૌર કો ચૌર કહના । યહાં “ ઘી તેલ આદિ કે સમાન જલ, જીવોં કા ઉપકરણમાત્ર હી હો સકતા હૈ, વહ સ્વય જીવ નહીં હૈ, ક્યોંકિ જીવ કા ઉપકરણ હૈ” । ઁસ પ્રકાર કા કથન હી અસત્-અભિયોગ હૈ । ક્યોં કિ ઘોઢા વગૈરહ જીવ મી જીવોપકરણ કે રૂપ મૈં દેલે જાતે હૂં, અત જલ કે જીવપન કા અપલાવ નહીં કિયા જા સકતા ।

શંકા—અજીવ જલ મૈં જીવત્વ કા આરોપ કરના હી અભ્યાખ્યાન ક્યોં ન સમજા જાય ?

ટીકાર્થ—લગવાનના વચ્ચેના પ્રમાણે અપ્કાયનુ સ્વરૂપ બહુવાવાળો હુ ઠહું છુ, અર્થાત્ મે લગવાનની પાસેથી જેવુ સાબળ્યુ છે તેવુ જ ઠહું છુ—પોતે અપકાય રૂપ લોકને અપલાપ કરે નહિ, અર્થાત્ એવુ કહે નહિ કે—‘જલ જીવ નથી’ અસત્ આરોપને અભ્યાખ્યાન કહે છે, જેમકે અચૌરને ચૌર કહેવો અહિં “ ઘી તેલ આદિ પ્રમાણે જલ એ જીવોનુ ઉપકરણમાત્ર જ હોઈ શકે છે, તે સ્વય જીવ નથી, કારણ કે—” તે જીવનુ ઉપકરણ છે, આ પ્રકારનુ કહેવુંજ-અસત્ (મિથ્યા) અભિયોગ છે, કારણકે ઘોઢા વગેરે જીવ પણ જીવોપકરણના રૂપમા જેવામા આવે છે તેથી જલનુ જીવપણું અપલાપ કરી શકાય નહિ

શંકા—અજીવ પાણીમા જીવપણુનો આરોપ કરવો તેજ અભ્યાખ્યાન શા માટે નહિ સમજવું ?

अनुमानागमाभ्यां बीजलक्षणद्वारापसम्भवाद्यापि जीवत्वनिरूपणात् ।

यद्यप्यण्कायलोकस्याभ्यास्यान कृपौत्, तर्हि त्मनोऽपि क्षीराधिष्ठातुरभ्यास्यानं तेन कर्तव्यं स्यात्, न च तत् समवतीत्यत आह—नैवमात्मानमभ्यास्यादिति । आत्मा हि क्षीराधिष्ठाता प्रत्यक्षयूतधतनावानिति नापहोतुं शक्यः, तस्मादात्मा मास्तीत्येवमात्मानं नापहोतुमित्यर्थः ।

याः स्वतः मन्दधीः लोकम्=अण्कायलोकम् अभ्यास्याति=अपहोति, स प्रत्यक्षादिप्रमाणैरनिरूपितमात्मानमभ्यास्याति । यथात्मानमभ्यास्याति—‘आत्मा मास्ती’ति यद्वा—‘अहं नास्मी’ति, स महामूढः लोकम्=अण्कायलोकम्

समाधान—देसा मत कहो । अनुमान और आगमप्रमाण से तथा जीव के लक्षणों के संबंध से यह जो जीव निरूपण किया गया है ।

यदि अण्काय लोक का अभ्यासयाम किया जाय तो शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का भी अभ्यासयान करना होगा मगर वह संभव नहीं है यही बात कहते हैं—आत्मा का अभ्यासयान न करे । आत्मा शरीर का अधिष्ठाता है और प्रत्यक्ष चेतना वास है अतः उस का अपहोप नहीं किया जा सकता । अत एव ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का अपहोप न करे ।

जो मन्दबुद्धि अण्कायलोक का निवेश करता है वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणां से सिद्ध आत्मा का अपहोप करता है । और जो ‘आत्मा नहीं है अथवा मैं नहीं हूँ’ इस तरह आत्मा का अपहोप करता है वह महामूढ मनुष्य अपने अज्ञान के बल से

समाधान—आ प्रभावे कहे नदि, अनुमान अने आगम प्रमाणधी तथा एतना लक्षणोना सबधधी अतनु एवपक्षु निरूपणु कर्तुं छे जे अण्काय-लोकतु अभ्यासयान करवाभा आवे तो शरीरना अधिष्ठाता आत्मातु पक्षु अभ्यासयान कर्तु पधी परन्तु ते संभव नधी जे बात कहे छे—

आत्मानु अभ्यासयान करयो नदि, आत्मा शरीरने अधिष्ठाता छे अने प्रत्यक्ष चेतनावाला छे तेधी तेने अपहोप करी शकयो नदि, अतः आटे आत्मा नधी जे प्रभावे अपहोप करयो नदि ।

जे मूढ बुद्धिवाला अण्कायलोकने निवेश करे छे ते प्रत्यक्ष आदि-प्रमाणाधी सिद्ध-आत्माने अपहोप करे छे अने जे “आत्मा नहीं” अथवा “दु नहीं जे प्रभावे आत्माने अपहोप करे छे ते महामूढ मनुष्य चेतनना अज्ञानना अर्थात्

स्वाज्ञानबलाद्भ्याख्याति । करचरणमुखाद्यवयवमहितशरीराधिष्ठाता मृव्यक्तोपयोगादिलक्षणः स्वात्माऽपि येनाभ्याख्यातस्तस्याव्यक्तोपयोगादिलक्षणस्यापूकायस्याभ्याख्यानां किं नु नाम दुष्करम् ? ॥ सू० ५ ॥

अपूकायलोऽस्याभ्याख्याने बहुदोषापातो भवतीति पर्यालोच्यानगारा अपूकाय नोपमर्दयन्ति । दण्डिशाक्यादयस्तु नानगारा भवितुमर्हन्ति, तेषामपूकायोपमर्दकत्वादित्याह—‘लज्जमाणा’ इत्यादि ।

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मो—त्ति एगे पवयमाणा जमिणं

अपूकाय का अपलाप करता है । जिस ने हाथ, पैर, मुख आदि अवयवों से युक्त शरीर के अधिष्ठाता, तथा अत्यन्त स्पष्ट उपयोग आदि लक्षणों वाले आत्मा का ही अपलाप कर दिया तो उस के लिए अस्पष्ट उपयोग आदि लक्षणों वाले अपूकाय का अपलाप करना कुछ भी कठिन नहीं है ॥ सू० ५ ॥

अपूकाय का अपलाप करने से बहुत से दोष आते हैं, ऐसा विचार कर अनगार अपूकाय की विराधना नहीं करते । दण्डी और शाक्य आदि, अनगार नहीं हो सकते, क्यों कि वे अपूकाय की विराधना करते हैं । यह बात इस सूत्र में बतलाते हैं—‘लज्जमाणा’ इत्यादि ।

मूलार्थ—अपूकाय की हिंसासे सकोच करने वालों को अलग समझो, और ‘हम अनगार हैं’ ऐसा कहने वालों को अलग समझो । जो नाना प्रकार के ग़लों से

अपूकायने अपलाप करे छे जेणे छ्वाथ, पण, मुभ आदि अवयवोथी युक्त, शरीरना अधिष्ठाता, तथा अत्यन्त स्पष्ट उपयोग आदि लक्षणोवाणा आत्मानो अपलाप करी दीथो, तेने माटे अस्पष्ट उपयोग आदि लक्षणोवाणा अपूकायने अपलाप करवो ते कांछि कठिन नथी ( सू० ५ )

अपूकायने अपलाप करवाथी घण्णो दोष आवे छे, जेवो विचार करीने अणुगार अपूकायनी विराधना करता नथी, दंडी अने शाक्य आदि, अणुगारो थर्ध शकता नथी कारणे तेजो अपूकायनी विराधना करे छे ते वात आगणना सूत्रभाषतावे छे—‘लज्जमाणा’ इत्यादि

मूलार्थ—अपूकायनी हिंसानो सकोच करवावाणाने जूहा जणो अने “अभे अणुगार छीजे” जे प्रमाणे कडेवावाणाने पणु जूहा जणो जे नाना प्रकारना शस्त्रोथी

बिह्वरुवेहिं सस्वेहिं उदयकर्मसमारम्भेण उदयसत्यं समारम्भाणा अण्णे अण्णेगस्वे पापे विरिसति ॥ सू० ६ ॥

छाया—

सम्प्रमानाः पूयक पश्य, अनमाराः स्म इति एके प्रचक्षमानाः यदिर्म विल्य रूपैः ससैः उदकर्मसमारम्भेण, उदकससै समारम्भाणा अन्यान् मनेकरूपान् प्राणान् विरिसन्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

एके=मन्ये सम्प्रमानाः=अण्कायस्वारम्भे परमकल्याणाय इति उदयतया संकोचमापद्यमाना, पूयक=विमिमाः, केचित् प्रस्पृष्टशानिनोऽप्यभियन्-पर्ययकेषु स्त्रिणः, केचित् परोक्षशानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति पश्य । इमे सूक्ष्मबाहाराण्कायारम्भकरूपे मीतास्तुता उदिग्नास्त्रिकरणत्रियोगैरण्कायारम्भपरित्यागिनो विघ्नते तानवसोऽयस्पर्षः ।

अण्काय का अण्गम करते हैं वे अण्काय के शक्तों का आरंभ करने वाले अनेक प्राणियों के प्राणा का हनन करते हैं ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—तीन कल्याण से प्रसिद्ध उदयवाके कोई-कोई (अनगार) अण्काय के आरंभ में संकोच करते हैं—अण्काय का आरंभ नहीं करते वे विमिन्न हैं—कोई अवधिकानी कोई मन-पर्ययशान्ती और कोई परोक्षशान्ती भावितारमा अनगार हैं, उन्हें देखो । ये सूक्ष्म बाह्य अण्काय का आरंभ करने में मीत हैं प्रसू हैं उदिग्ना हैं, और तीन कारण तीन योग से अण्काय के आरंभ के त्वागी हैं, उन्हें देखो ।

अण्कायने आरभ करे छे; ते अण्कायना संस्तेने आरभ करवावाला अनेक प्राणी जेना प्राणोना नाश करे छे (सू. ५)

टीकार्थ—तीन कल्याणी प्रसिद्ध उदयवाणा डेअ-डेअ अण्काय आरभमां अण्काय करे छे—अण्कायने आरभ करता नहीं ते अण्काय छे डेअ अण्कायने, डेअ अण्कायनेशान्ती अने डेअ परोक्षशान्ती भावितात्मा अण्काय छे तेने जेजे—ते सूक्ष्म अने बाह्य अण्कायने आरभ करवावांलय पात्रिका छे प्रसिद्ध छे उदिग्ना छे अने त्रय करण त्रय योगी अण्कायना आरभना ज्ञानी छे तेने जेजे.

एके=पुनरन्ये तु वयमनगाराः=साधवः स्मः, इति सामिमान प्रवदमानाः  
'वयमेव अप्कायजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति व्यर्थं प्रल्पन्तो द्रव्यलिङ्गिनः  
सन्ति तान् पृथक्=पृथग्भावेन पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते,  
नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः, द्रव्यभावरूपैः जस्रैः ।  
तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकाय-परकाय-तदुभयरूपम् । स्वकायशस्त्रं-तडागाद्युदकस्य कूपा-  
द्युदकम् । कूपाद्युदकस्य तडागाद्युदकं च । परकायशस्त्रं द्राक्षा-शाक-तण्डुल-पिष्ट-

और कोई-कोई लोग 'हम साधु हैं' इस प्रकार अभिमान के साथ कहते हुए—  
अर्थात् 'हम ही अप्काय के रक्षक और महाव्रतधारी हैं' इस प्रकार वृथा प्रलाप करते  
हुए द्रव्यलिङ्गी हैं, उन्हें अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी, अनगार के गुणों में तनिक भी  
प्रवृत्ति नहीं करते, और न गृहस्थ के किसी कार्य का त्याग करते हैं । यही बात आगे बतलाते  
हैं—'जमिणं.' इत्यादि ।

वे नाना प्रकार के शस्त्रों से जलका आरम्भ करते हैं । शस्त्र अनेक प्रकार के हैं,  
उन में से द्रव्यशस्त्र-स्वकाय, परकाय और उभयकाररूप है । तालाव का जल, कूप का  
जल परस्पर स्वकायशस्त्र है । इसी प्रकार कूप आदि के जल का शस्त्र-तालाव आदिका  
जल है यह स्वकायशस्त्र है । दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, चना, वाल आदि परकाय

अने कोई-कोई लोक "अमे साधु छीये" आ प्रभाषे अविमान साथे कहेता  
अर्थात् 'अमे' अप्कायना रक्षक अने महाव्रत धारण करवावाणा छीये' आ  
प्रभाषे वृथा प्रलाप करता थका द्रव्यलिङ्गी छे तेने बूझा जाये।

अणुगार होवानु अविमान करवावाणा अमे द्रव्यलिङ्गी साथे अणुगारना शुद्धिमां  
जरापणु प्रवृत्ति करता नथी, अने गृहस्थना कोईपणु कार्येना त्याग करता नथी,  
ते वात आगण भतावे छे—'जमिणं' इत्यादि

ते नाना प्रकारना शस्त्रोथी जलने आरम्भ करे छे शस्त्रो अनेक प्रकारना छे,  
तेमांथी द्रव्यशस्त्र-स्वकाय, परकाय अने उभयकाय-रूप छे तलावनु पाणी,  
कुवानु पाणी, परस्पर स्वकायशस्त्र छे अमे प्रभाषे कुवा वगेरेना जलनु शस्त्र  
तलाव आदिनु जल छे, ते पणु स्वकायशस्त्र छे. द्राक्ष, चावल, लोट,

वाली-व्याक-व्याकिकम् । तदुभयसत्त्वं-एतिकादिभिर्भं जसम् । भावसत्त्वम्=अपः  
 प्रति मनोवाक्यायानां रूपमिदितत्त्वम् । एतैः अत्रै उदककर्मसमारम्भेण=उदयकस्य  
 कर्मसमारम्भः उदककर्मसमारम्भः=उदकमाभित्य ज्ञानावरणीयाद्यद्यविषकर्मवन्व  
 निबन्धनसाधयभ्यापारस्तेन, इमम्=अफ्कार्यं विहितसन्ति ।

अफ्कार्यसिंसायां मूढताः खलु पशुजीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहितसन्ती  
 त्याह-‘ उदकसत्त्वं ’-मित्यादि, उदकसत्त्वम्=उदकोपमर्दकं सत्त्वं, अस्पष्टे=हिंस्यते  
 मनेनेति अर्थः, तत् पूर्वोक्तप्रकारं द्रव्यमायमेदमिन्नं समारम्भमाणाः=उदककार्यं प्रति  
 भ्यापारपन्ता, अन्यान्=अफ्कार्यमिन्नान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन्—स्वावरात्,  
 दीन्द्रियादीन् प्रसांभ विहितसन्ति ।

सत्त्व है । मिथी आदि से मिले हुए वह उभयकारण है । अत्र के विषय में मन, चक्षु  
 और श्रवणका इष्ट प्रयोग करना भावशास्त्र है । इन शक्तियों से अस्पर्श का समारम्भ कर के  
 अर्थात् अत्र के आरम्भद्वारा ज्ञानावरणीय आदि अष्ट प्रकार के कर्मों के बंध कारणमूल साधन  
 भ्यापार कर के अस्पर्श की हिंसा करते हैं ।

वो अस्पर्श की हिंसा में प्रवृत्त होते हैं व अस्पर्शरूप समस्त लोक की हिंसा करते  
 हैं यह वक्तव्यते हैं-‘ उदयसत्त्वं ’ इत्यादि ।

मिथ से द्वारा हिंसा की धाम उसे शक करते हैं । शक का प्रकार के हैं-  
 द्रव्यशक और भावशक । मिथ से अस्पर्श की हिंसा हो यह अस्पर्शकारण है । अस्पर्श  
 शक का अस्पर्श के विषय में प्रयोग करने वाले अस्पर्श से मित्त अनेक पृथ्वीकाय आदि  
 स्वाद्यों की, तथा दीन्द्रिय आदि त्रस धीमा की हिंसा करते हैं ।

शक, अशक, वाह आदि परकायशक से भायी आदिभी भयेतु अत्र उल्लेखप्रयत्न से  
 अनेक विषयमां मत चक्षु अने अश्याने इष्ट प्रयोग करने के भावशक से अने  
 शक्येही अशक्येही समारम्भ करीने, अर्थात् अनेक आरम्भद्वारा ज्ञानावरणीय आदि  
 अष्ट प्रकारान् अश्याने अनेक कारणमूल साधन भ्यापार करीने अलक्षणी हिंसा करे से

अलक्षणी हिंसामां से प्रवृत्त भाव से ते अस्पर्शरूप समस्त लोक की हिंसा  
 करे से अने अतावे से-‘ अयसत्त्वं ’ इत्यादि जेना द्वारा हिंसा करी शक्य तेने  
 शक करे से शक से प्रकारान् से—(१) द्रव्यशक अने (२) भावशक अनेकी  
 अफ्कार्य की हिंसा भाव से अफ्कार्यशक से अफ्कार्यशकने अफ्कार्य विषयमां प्रयोग  
 करवाया अफ्कार्यधी मित्त अनेक पृथ्वीकाय आदि अशावरणी दीन्द्रिय दिनेरे वस  
 अश्याने हिंसा करे से



जगति खलु बहवो द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा—‘वयं पञ्चगहाव्रतधारिणः सर्वारम्भपरित्यागिनः षट्कायरक्षका अनगाराः स्मः’ इति वदन्तो दण्डिशान्क्यादयः सन्ति । तत्र केचिद्देहशुद्धये बहूदकस्नानिभ्यो भवन्ति । केचित्स्वनिवासर्थं गृहादिनिर्माणकरणे मृत्तिकापाषाणचूर्णादिषु निक्षेपणेनाप्यायमुपमर्दयन्ति । केचित् स्वोदर-पूर्त्यर्थं कृष्यादिषु जलसेचनं कुर्वन्ति । केचित् देवकुलाद्यर्थं सावधमुपदिशन्ति, पार्थिवीं देवगुर्वादिप्रतिमामनेकघटजलैः स्नपयन्ति । ते हि सविधिजिनपूजायां, प्रतिमाप्रतिष्ठापने बहुविधसच्चित्तजलैः प्रतिमास्नपने च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्रारो भवतीति मन्यन्ते, उपदिशन्ति च—

ससार में बहुतसे द्रव्यलिङ्गी हैं । जैसे—‘हम पञ्चमहाव्रतधारी, सब आरम्भ के त्यागी, और षट्काय के रक्षक अनगार हैं’ ऐसा कहने वाले दण्डी तथा शाक्य आदि हैं । इन में कोई—कोई देह की शुद्धि के लिए बहुत—से जल से स्नान करने वाले हैं । कोई अपने रहने के वास्ते मकान आदि बनाने के लिए मिट्टी ककर और चूने वगैरह में मिलाकर जलकाय की हिंसा करते हैं । कोई अपना पेट भरने लिए कृषि (खेती) में जल सींचते हैं । कोई देवकुलादिके लिये सावध उपदेश करते हैं । कोई देव एव गुरु की पार्थिव प्रतिमा को बहुत से—घड़े पानी से स्नान कराते हैं । वे विधिपूर्वक जिनपूजा में और प्रतिमा की प्रतिष्ठा में बहुत प्रकार के सच्चित्त जल से प्रतिमा के स्नान में, महाभयकर भवसागर से आत्मा का उद्धार होना मानते हैं और उपदेश देते हैं—

संसारमा षड् सञ्चामा द्रव्यलिङ्गी छे जेम के—‘अमे पञ्चमहाव्रतधारी, सर्व प्रकारना आरब्धना त्यागी अने षट्कायना रक्षक अणुगार छीये’ आ प्रभाषे कहेवावाणा इ डी तथा शाक्य आदिछे, तेमाथी केटलाक तो देहनी शुद्धि माटे धरुवा जलथी स्नान करवावाणा छीये छे केटलाक तो पोताने रहेवा माटे मकान आदि बनानेवा माटे माटी काकर अने चुना वगेरेमा भेजनीने जलकायनी हिंसा करे छे. केछ—केछ पोतानु पेट भरवा माटे जेतीमा जल सींचे छे केछ देवकुल वगेरे माटे सावधने उपदेश आपे छे, अने केछ देव अने शुर्नी पार्थिव प्रतिमाने धरुवा ज—धडा पाणीथी स्नान करावे छे ते विधिपूर्वक जिनपूजा अने प्रतिष्ठासा धरुवां ज प्रकारना सच्चित्त जलथी प्रतिमाने स्नान करावामा महाभयकर भवसागरथी आत्माने उद्धार थाय छे, अबुं माने छे. अने उपदेश आपे छे.—

“सम्पद् आस्योचिते काळे, संज्ञाप्य च मिनाम् क्रमात् ।  
पुष्पाहारस्तुतिमिष, पूजयेदिति तद्विधिः” ॥ १ ॥ (धर्मसंग्रहः)

“कुसुमस्यपुष्पेहि, वीजपत्रासेहि सुन्दरफलेहि ।  
पूजा पयसस्त्रिणेहि, श्लुषिहा तस्य कायम्वा” ॥ १ ॥

(दर्शनहृदिः सटीका १ तत्त्व)

छाया—“कुसुमाद्यतपुष्पै-दीपकवासैः सुन्दरफलेः ।

पूजा घृतसस्त्रिणे, -एतद्विधा तस्य कर्तव्या ॥ १ ॥” इति ।

“विहिता उ कीरमाणा, सम्ब विषय फलवर्ग मवे चेद्वा ।

श्रवणेभ्या वि किं पुन, भिणपूया उमयलोगदिया” ॥ १ ॥

(पञ्चाशक ४ विष)

छाया—विधिना तु क्रियमाणा, सर्वां चैन फलवती भवेत्केवा ।

श्रवणैकिकाऽपि किं पुन, -मिनपूजा-उमयलोकहिता ॥ १ ॥ इति ॥

तत्रैव पूजामतिष्ठादियु अकारयोपमर्दनरूपे शास्त्रनिषिद्धे सावधकार्ये महत्स्याऽपि

द्रव्यसिद्धिर्नो दण्डिनः क्षात्र्यादयश्च स्वात्मानमनगारमेव मन्यन्ते ।

“उचित फल में सम्पद् प्रकार से स्नान कर के और क्रम से विनप्रतिमा को स्नान कर के पुष्प, आहार और स्तुतिसे पूजा करे । यह पूजा की विधि है” । (धर्मसंग्रह)

“विधिपूर्वक की हुई समस्त इस श्लोकसंदर्भों चन्द्रार्थें भी सफल होती है तो त्रिनेन्द्र मन्वान की पूजा का तो कहना ही क्या है, अर्थात् यह दोनों श्लोकों में द्वािकारी है” ।

(पठणाशक ४ विष)

इसी प्रकार पूजा प्रतिष्ठा आदि अकार्य की हिसारूप शास्त्रनिषिद्ध सावध कार्य में प्रवृत्ति करके भी द्रव्यसिद्धी बड़ी शक्य आदि अपने आप को अनगार ही मानते हैं ।

उचित कालमें सम्पद्प्रकारशी स्नान करीने जाने कभशी विनप्रतिमाने स्नान करानी, पुष्प आहार जाने स्तुतिशी पूजा करे आ प्रभाक्षे पूजनी विधि ३ (धर्मसंग्रह)

“विधिपूर्वक कस्यामं आवेती योऽसलधो कभस्त येषाम्ना (किंवाको) क्यु सङ्ग याव ३ तो त्रिनेन्द्र कभवाननी पूजयु तो कहेयु ७ १ ? आ तो कने योऽमं द्वितमरी ३ ॥ १ ॥ (पञ्चाशक-४-विष)

जे प्रभाक्षे पूजा प्रतिष्ठा आदि अकार्यनी हिसारूप शास्त्रनिषिद्ध सावध कार्यमं प्रवृत्ति करीने क्यु द्रव्यसिद्धी बड़ी, शक्य आदि पोत-पोताने क्युमारक भाने ३

ये उदरशस्त्रं प्रयुज्जानाः पद्मजीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ति, ते द्रव्य-  
लिङ्गिनो नरकनिगोदादिनानाविधदुःखज्वालमालाकुले दीर्घसंसारे परिभ्रमन्ति,  
उक्तञ्च—

“ सावज्जपूयकारी, सावज्जं उवदिसति जे अण्ण ।

आउक्कायवहाओ, भमंति ते दीहसंसारे ॥ १ ॥ ” ॥ सू० ६ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह ‘ तत्थ ’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलુ ભગવયા પરિણા પવેડયા । ઇમસ્સ જેવ  
જીવિયસ્સ પરિવંદળ-માણણ-પૂયણાણ જાઇમરણમોયણાણ દુક્કવપહિઘાયહેઉં સે

જો લોગ જલશસ્ત્ર કા પ્રયોગ કરતે હુણ ઘટકાય કે સમસ્ત જીવોં કી વિરાધના કરતે  
હેં વે દ્રવ્યલિંગી નરક આદિ કે નાના પ્રકારકે દુ ળોં કી જ્વાલાઓં કે સમૂહ સે વ્યાપ્ત લખ્તે  
સસાર મેં ચારોં ઓર ચક્કર લગાતે હેં । કહા મી હે—

“ જો પુરુષ જ્ઞાનરહિત હોકર સાવધ કા ઉપદેશ દેતે હેં વે, ઓર સાવધ પૂજા કરને  
વાલે હેં વે અપ્કાય કી હિંસા સે દીર્ઘ સંસાર મેં ભ્રમણ કરતે હે ” ॥ સૂ. ૬ ॥

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામી સે કહતે હેં—‘ તત્થ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—ભગવાન ને પરિજ્ઞા કા પ્રતિબોધ દિયા હે । જો ઇસ જીવન કે સુલ  
કે લિણ અપની વન્દના, માનના, પૂજા, જન્મ-મરણ સે છુટકારા, તથા દુ ળોં કા નાશ

જે લોક જલશસ્ત્રને પ્રયોગ કરીને ઘટકાયના તમામ જીવોની વિરાધના કરે છે  
તે દ્રવ્યલિંગી, નરક નિગોદ આદિના નાના પ્રકારના દુ ખોની જ્વાલાઓના સમૂહથી  
વ્યાપ્ત લાખા સસારમા ચારેય તરફ ચક્કર લગાવે છે. કહ્યું છે કે.—

“ જે પુરુષ જ્ઞાનરહિત થઈને સાવધને ઉપદેશ આપે છે તે, અને સાવધ  
પૂજા કરવાવાળા દીર્ઘ-લાખા સસારમા ભ્રમણ કરે છે. ” ॥ ૧ ॥ ( સૂ. ૬ )

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે—‘ તત્થ ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાનો બોધ આપ્યો છે જે આ જીવનના સુખ માટે  
ચોતાની વદના, માન્યતા, પૂજા, જન્મ-મરણથી મુક્તિ તથા દુ ખોના નિવારણ માટે; તે

समयेष उदयसत्यं समारम्भ, अण्वेर्हि उदयसत्यं समारम्भेऽप्येव, अण्वे वा उदयसत्यं समारम्भे समनुमानम्, तं से अहियाप तं से अबोधीप ॥ सू. ७ ॥

छाया—

तत्र स्वतः मगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव भीषितस्य परिषन्दन-मानन-  
पूजनाय आतिमरभमोक्षनाय दुःस्वप्रतिघातहेतुं स स्वयमेवोदकशस्त्रं समारम्भे, अन्यै-  
रुदकशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा उदकशस्त्रं समारम्भयान् समनुजानाति,  
तत्स्याहिताय तत्स्याबोधये ॥ सू. ७ ॥

टीका—

तत्र=अण्कायसमारम्भे मगवता=भीमहावीरेष परिज्ञा=सम्यग्बोधः स्वतः  
प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मवन्तसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाश्रयं शरणीकरणीयेति  
मगवता प्रतिबोधितमिति भावः । इ-प्रत्याहवान्त-मेदात् परिज्ञाया द्वैविध्यं, द्विविधा  
यास्तस्या लक्षणं च प्रागभिहितम् ।

करने के निमित्त वह स्वयं ही उदकशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से उदकशस्त्र का आरंभ  
कराता है, और उदकशस्त्र का आरंभ करने वालों की अनुमोचना करता है । वह उस के  
अहित के लिए है, वह उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—अण्काय के समारम्भ के निमित्त मैं मगवान् श्री महावीरे सम्यग् बोध का  
उपदेश दिया है । मगवान्ने कहा है कि-कर्मवन्त का मारा करने के लिए जीव को परिज्ञा  
का आश्रय आवश्यक होगा चाहिए । इपरिज्ञा और प्रत्याहवानपरिज्ञा इस प्रकार परिज्ञा के दो  
भेद हैं । दोनों के लक्षण पहले ही कह चुके हैं ।

प्रायः अण्कायसमारम्भे, अण्वेर्हि उदयसत्यं समारम्भेऽप्येव, अण्वे वा उदयसत्यं  
समारम्भे समनुमानम्, तं से अहियाप तं से अबोधीप ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—अण्कायसमारम्भे मगवान् भीमहावीरे सम्यग् बोध का  
उपदेश दिया है । मगवान्ने कहा है कि-कर्मवन्त का मारा करने के लिए जीव को परिज्ञा  
का आश्रय आवश्यक होगा चाहिए । इपरिज्ञा और प्रत्याहवानपरिज्ञा, इस प्रकार  
परिज्ञा के दो भेद हैं । दोनों के लक्षण पहले ही कह चुके हैं ।

## उपभोगद्वारम्—

जीवः कस्मै प्रयोजनायापकायजीवं प्रति सावद्यव्यापारं करोती ?—त्याह—  
 'अस्य चैवे'—त्यादि । अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य जीवनस्यार्थे—सुखार्थं स्नान-पान-  
 -धावन-सेक-यानपात्रो-द्वय-गमनागमनाद्यर्थम्, तथा परिवन्दन-मानन-पूजनाय-  
 परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा-जलयन्त्रण शीकरवृष्ट्यादौ, 'फुहारा' इति भाषायाम् ।  
 माननं=जन्सत्कारः, तदर्थं, यथा-मलापकर्षस्नानवस्त्रमलापकर्षणादौ । पूजनं=वस्त्ररत्ना-  
 दिपुरस्कारलाभरतदर्थं, यथा-देवप्रतिमादिस्नपनपूजनादौ । जातिमरणमोचनाय तीर्थ-  
 स्नानादौः । दुःखप्रतिघातहेतु=रोगादिशमनार्थं स्नानपानादौ, स स्वयमेवोदकशस्त्रं  
 समारभते=व्यापारयति । अन्यैर्वा उदकशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति । अन्यान्

## उपभोगद्वारम्—

जीव किस प्रयोजन से अप्काय के जीवों के प्रति सावद्य व्यापार करता है ? इस का उत्तर कहते हैं—इसी क्षणभङ्गुर जीवन के सुख के लिए, अर्थात् स्नान, पान, धोना, सींचना, जहाज, नौका का गमनागमन, इत्यादि के लिए । प्रशंसाके लिए, जैसे—जल से फौहारा चलाने आदि में, लोगों से सत्कार पाने के लिए, जैसे—स्नान और वस्त्र आदि का मूल दूर करने आदि में, पूजा अर्थात् वस्त्र, रत्न आदि का पुरस्कार पाने के लिए, जैसे देवप्रतिमा आदि के स्नपन और पूजन आदि में, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए तीर्थस्नान आदि में । दुःखों का निरोध करने के हेतु, अर्थात् रोग आदि को शान्त करने लिए स्नान-पान आदि में वह स्वयं अप्काय के विराधक द्रव्य और भावशस्त्र का आरम्भ करता

## उपभोगद्वारम्—

एव क्वा प्रयोजनार्थी अप्कायना एवे। प्रति सावद्य व्यापार करे छे ? तेने। उत्तर छे छे छे—आ क्षणभ गुर एवनना सुभ भाटे, अर्थात्, स्नान, पान धोवुं, पाणी सींचवुं, वडाणु आगणोटमां वुं आवुं, इत्यादि भाटे प्रशसाने भाटे, जेभके—नणभाथी कुवारा यदा ववा आदिमा, लोकेशी सत्कार पाभवा भाटे जेभके—स्नान करवामा अने वस्त्र वगेरेने। मेल हूर करवामा, पूजा अर्थात् वस्त्र, रत्न, आदिनो पुरस्कार भेणववा भाटे, जेभ-हेवप्रतिमा आदिना स्नान अने पूजन वगेरेमा, जन्म-मरणार्थी मुक्त थवा भाटे, जेभ-तीर्थस्नान आदिमा, दु जोने। निरोध करवाना हेतुथी, अर्थात्-रोग वगेरेनी शान्ति भाटे स्नान-पान वगेरेमां ते पोते अप्कायना विराधक द्रव्य अने भाव शस्त्रने। आर का करे छे, जीव पासे अप्कायशस्त्रने।

वा उदकश्लेष्मा समारममाणान् समनुमानाति—अनुमोदयति । तत्—अण्कायसमारम्भणं तस्य—अण्कायसमारम्भणं कुर्वतः कारयितुस्तुमोदयितुश्च अहिताय मयति, तथा तत् तस्य अयोधये—द्विजधर्ममाप्स्यमावाय मयति ॥ सू० ७ ॥

येन तु तीर्थं कृतादीनां समीपे अण्कायजीवस्वरूपं ज्ञातं स एवं विज्ञान्यतीत्याह—  
'से तं संयुज्जमाणे' इत्यादि ।

मूत्रम्—

से त संयुज्जमाणे आयाणीयं समुद्राय सोषा मग्नजो जाणगोरार्थं वा अंतिय, समेगैस्त्रिं गाय मयि—एस स्तु गंधे, एस स्तु मोहे, एस स्तु मारे, एस स्तु गरए, इत्थं गदिए सोए जमिणं विन्धरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारम्भेणं उदपसत्थं समारममाणे अण्ये अण्येगरूवे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ८ ॥

है दूसरो से अण्कायजो का समारम करवाता है और अण्कायजो का धारम करने वाले दूसरो का अनुमोदन करता है । यह अण्काय का धारम धारम करने वाले, करने वाले और अनुमोदन करने वाले के अहित के लिये होता है और अयोधि—विजधर्म की अग्रप्ति के लिये होता है । सू. ७ ॥

जिसने तीर्थकर अग्नि के सन्निकट अण्काय के धर्मो का स्वरूप जान लिया है, वह इस प्रकार जानता है—'से तं' इत्यादि ।

मूलार्थ—मग्नान और अनगरो से सुनकर अण्काय का स्वरूप जानता हुआ जीव अहित अग्निकर करके कर्षे—कर्षे इस प्रकार जानता है—यह मंत्र है यह मोह है, यह मार (मृत्यु) है, यह नरक है । गृह पुरुष नाना प्रकार के शक्तो से अण्काय का धारम करके अण्काय का समारम करता हुआ अण्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है । सू. ८ ॥

धमारण कसवे छे अने अण्कायशक्तेनो धारण करवावाणने अनुमोदन आपे छे ते अण्कायने धारण करवावने कसवनारने अने करवावाणने अनुमोदन आपवावाणने जे सीने माटे अहित करवाव छे अने अयोधि—विजधर्मनी अग्रप्ति माटे कोथ छे (सू. ७)

जेजे तीर्थकर अहिता समीपया अण्कायना लोवतुं स्वरूप जानी वीपु छे ते आ प्रभावे जेजे छे— से तं इत्यादि ।

मूलार्थ—जवन अथवा अनुग्रहो पायेधी सलभनी अण्कायना स्वरूपने अनुमाना लवे अहित अग्निकर करीने कर्ष—कर्ष आ प्रभावे जेजे छे—आ धार छे, आ मोह छे आ मृत्यु छे आ नरक छे अथ पुरुष नाना प्रकारनी (अनेक प्रकारनी) शक्तये लवने धारण करीने, अण्कायने धारण करता यहा जीव अनेक प्रकारना प्राणियोनी हिंसा करे छे (सू. ८)

### ઉપભોગદ્વારમ્—

જીવઃ કસ્મૈ પ્રયોજનાયાપ્કાયજીવં પ્રતિ સાવઘવ્યાપારં કરોતી ?—ત્યાહ—  
‘અસ્ય ચૈવે’—ત્યાદિ । અસ્યૈવ ક્ષણમહુગુરસ્ય જીવિતસ્ય જીવનસ્યાર્થે—સુસ્વાર્થ સ્નાન-પાન  
-ધાવન-સેક-યાનપાત્રો-હુપ-ગમનાગમનાઘર્થમ્, તથા પરિવન્દન-માનન-પૂજનાપ-  
પરિવન્દનં=પ્રશંસા, તદર્થ, યથા-જલચન્ન્રણ શીકરવૃષ્ટ્યાદૌ, ‘ફુહારા’ ઇતિ માપાયમ્ ।  
માનનં=જનસત્કારઃ, તદર્થ, યથા-મલાપકર્ષસ્નાનવસ્ત્રમલાપકર્ષણાદૌ । પૂજન=વહ્નસ્ના-  
દિપુરસ્કારલાભરતદર્થ, યથા-દેવપ્રતિમાદિસ્નપનપૂજનાદૌ । જાતિમરણમોચનાય તીર્થ-  
સ્નાનાદૌઃ । દુઃસ્વપ્રતિઘાતહેતુ=રોગાદિશ્મનાર્થ સ્નાનપાનાદૌ, સ સ્વયમેવોદકશશ્ચં  
સમારમ્ભતે=વ્યાપારયતિ । અન્યૈર્વા ઉદકશશ્ચં સમારમ્ભયતિ=ઉદ્યોજયતિ । અન્યાન્

### ઉપભોગદ્વાર—

જીવ કિસ પ્રયોજન સે અપ્કાય કે જીવોં કે પ્રતિ સાવઘ વ્યાપાર કરતા હૈ ? હસ કા  
ઉત્તર કહતે હૈ—હસી ક્ષણમહુગુર જીવન કે સુખ કે લિપ, અર્થાત્ સ્નાન, પાન, ઘોના, સૌંચના,  
જહાજ, નૌકા કા ગમનાગમન, ઇત્યાદિ કે લિપ । પ્રશંસાકે લિપ, જૈસે—જલ સે ફૌહારા  
ચલને આદિ મેં, લોગોં સે સત્કાર પાને કે લિપ, જૈસે—સ્નાન ઓર વસ્ત્ર આદિ કા મૈલ દૂર  
કરને આદિ મેં, પૂજા અર્થાત્ વસ્ત્ર, રત્ન આદિ કા પુરસ્કાર પાને કે લિપ, જૈસે દેવપ્રતિમા  
આદિ કે સ્નપન ઓર પૂજન આદિ મેં, જન્મ મરણ સે મુક્ત હોને કે લિપ તીર્થસ્નાન આદિ  
મેં । દુઃસ્વોં કા નિરોધ કરને કે હૈતુ, અર્થાત્ રોગ આદિ કો શાન્ત કરને લિપ  
સ્નાન—પાન આદિ મેં વહ સ્વયં અપ્કાય કે વિરાઘક દ્રવ્ય ઓર ભાવશશ્ચ કા આરમ કરતા

### ઉપભોગદ્વાર—

શ્વ કયા પ્રયોજનથી અપ્કાયના શ્વો પ્રતિ સાવઘ વ્યાપાર કરે છે ? તેનો ઉત્તર  
કહે છે કે—આ ક્ષણભુગુર શ્વનના સુખ માટે, અર્થાત્, સ્નાન, પાન ઘોડું, પાણી સીંચવું,  
વહાણુ આગળોટમાં જવું આવવું, ઇત્યાદિ માટે પ્રશંસાને માટે, જેમકે—નળમાથી કુવારા ચલા  
વવા આદિમા, લોકોથી સત્કાર પામવા માટે જેમકે—સ્નાન કરવામા અને વસ્ત્ર વગેરેનો મેલ  
દૂર કરવામા, પૂજા અર્થાત્ વસ્ત્ર, રત્ન, આદિનો પુરસ્કાર મેળવવા માટે, જેમ-દેવપ્રતિમા આદિના  
સ્નાન અને પૂજન વગેરેમા, જન્મ-મરણથી મુક્ત થવા માટે, જેમ—તીર્થસ્નાન આદિમા,  
દુ ખોનો નિરોધ કરવાના હેતુથી, અર્થાત્—રોગ વગેરેની શાન્તિ માટે સ્નાન—પાન વગેરેમાં તે  
પોતે અપ્કાયના વિરાઘક દ્રવ્ય અને ભાવશશ્ચનો આરમ કરે છે, ખીલ પાસે અપ્કાયશશ્ચનો

एषः=उदकश्चक्षुसमारम्भः स्वल्पु=निबन्धेन, ग्रन्थः=ग्रन्थयते=बन्धयतञ्जेनेति ग्रन्थः  
 अष्टविषकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारादुदकश्चक्षुसमारम्भस्य ग्रन्थरूपत्वम्, एगमप्रेऽपि  
 बोध्यम् । तथा एष उदकश्चक्षुसमारम्भः मोहः=विपर्ययात् विपरीतज्ञानरूपः । तथा  
 एष एव मारः=मरणं निगोदादिमस्तरूपः । तथा एष स्वल्पु नरका=नारकजीवानां  
 दशविभयातनास्थानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं योर दुःख-  
 फलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमव लोकः=प्रज्ञानवस्तुपती जीवः गूढः=सिन्धुरस्ति । यदा-  
 गूढः=विषयमोगासक्तः, लोकः संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमव=कर्मबन्ध-माह-  
 मरण-नरकार्यमेव, प्रवर्तते ।

यिस के द्वारा गूया काय-बांया काय यह प्रबंध कहलता है । यह उदकशक्षु का  
 समारंभ मन्व है, अर्थात् आठ कर्मों का बंध है । यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके  
 उदकशक्षु के समारंभ को प्रबंध कहा है । वास्तव में यह प्रबंध (कर्मबंध) का कारण है ।  
 भागे भी इसी प्रकार समझना चाहिये ।

यह चक्षुस का समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान है । तथा यह मार-निगोद  
 अग्नि के मरणरूप है । यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को होनवासी दस प्रकार की  
 वेदवृक्षों का स्थान है । कर्मबंध मोह, मरण, और नरकरूप योर दुःखरूप फल को प्राप्त  
 कर के भी अज्ञानी ज्येग फिर इसी के सिद्ध गूढ होते हैं । अथवा गूढ अर्थात् मोगा  
 में आसक्त, संसारी जीव इसी के सिद्ध अर्थात् कर्मबंध मोह, मरण तथा नरक के सिद्ध ही  
 प्रवृत्ति करते हैं ।

तेना द्वारा बूधी शक्य-अधी शक्य ते अथ कहेवाय छ ज्ये उदक-चक्षु  
 शक्येना समारंभ अथ छ अर्थात् आठ कर्मोना अथ छ अर्थात् कारणार्थ अर्थात् उपचार  
 अर्थात् उदकशक्षुना समारंभने अथ कर्मो छ वास्तविक रीते ते अथ (कर्मबंध)नु कारण  
 छ आशय पक्ष आ प्रभवे समर्थु ज्येधजे.

अ चक्षुसशक्येना समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान छ, तथा आ मार-निगोद  
 अग्नेना मरणरूप छ आ नरक छ-अर्थात् नारकी जीवोने मयावाणी दस प्रकारकी  
 वेदनाकोषु स्थान छ कर्मबंध मोह मरण अने नरक रूप योदुःखरूप इतने अथ  
 अर्थात् पक्ष अज्ञानी बोक इरीने तेना आटे बूद-आसक्त काय छ अथवा गूढ  
 अर्थात् मोयोर्मा आसक्त संसारी एव ज्ये आटे अर्थात् कर्मबंध, मोह मरण  
 तथा नरक आटे अ प्रवृत्ति करे छ



छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीय समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वाऽन्तिके, इहेकेपां, ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः यदिमं विरूपस्पैः शत्रैस्त्वकर्मसमारम्भेण, उदकशस्त्र समारममाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विद्धिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम्, अन्तिके=समीपे, श्रुत्वा=उपदेश निशम्य, आदानीयम्=उपादेयं, सर्वसावधयोगपरित्यागरूपं चारित्रं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्—अपकायसमारम्भणं, संबुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता भवति ॥

स हि—एवं विचारयति इह=मनुष्यलोके, एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजात-सम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—‘एष खलु ग्रन्थः’ इत्यादि ।

टीकार्थ—जा पुरुष तीर्थंकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थों के समीप उपदेश सुनकर सर्वसावध व्यापार का त्यागरूप चारित्र अगीकार करके विचरता है, वह अपकाय के आरम को समझता है—उसे अहितकर और अवोधिजनक जानता है । वह इस प्रकार विचार करता है—इस मनुष्य लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करनेवाले किन्हीं आत्मार्थियों को ही विदित होता है कि—‘यह ग्रंथ है’ इत्यादि ।

टीकार्थ—जे पुरुष तीर्थंकर भगवान तथा तेना अनुयायी श्रमणनिर्ग्रन्थीना समीप उपदेश सालीने सर्व सावधव्यापारना त्यागरूप चारित्र अगीकार करीने विचरे छे, ते अपकायना आरम लेने समझे छे—तेने अहितकर अने अवोधिजनक जान्छे छे, ते आ प्रमाद्ये विचार करे छे छे—आ मनुष्य लोकमा श्रमण-निर्ग्रन्थीना उपदेशशी सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य प्राप्त करवावाणा केहि पक्ष आत्मार्थीयोना जान्छुवामा होय छे छे—आ अथ छे इत्यादि

एषः=उदकस्रसमारम्भः स्तु=निश्चयन, ग्रन्थः=ग्रन्थते=वक्ष्यतेऽनेनेति ग्रन्थ' अष्टविषकर्मवच' । कारणे कार्योपचारादुदकस्रसमारम्भस्य ग्रन्थरूपत्वम्, एगमश्रेऽपि बोध्यम् । तथा एषः उदकस्रसमारम्भः मोहः=विपर्ययाः विपरीतज्ञानरूपः । तथा एष एव मारः=मरणं निगोवादिमरणरूपः । तथा एष स्वस्त्य नरकः=नारकजीवानां दशविषयातनास्थानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोर दुःख-फलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृह्य=विप्युरस्ति । यद्वा-गृह्य=विषयमोगासक्तः, लोकः संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकार्थमेव, प्रवर्तते ।

बिस के द्वारा गुणा चाय-बांधा जाय यह प्रबंध कहलता है । यह उदकस्र का समारंभ प्रबंध है, अर्थात् आठ कर्मों का बंध है । यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके उदकस्र के समारंभ को प्रबंध कहा है । वास्तव में यह प्रबंध (कर्मबन्ध) का कारण है । भागे गौ इसी प्रकार समझना चाहिए ।

यह उदकस्र का समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान है । तथा यह मार-निगोव आदि के मरणरूप है । यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को होनेवाली दस प्रकार की वेदनाओं का स्थान है । कर्मबन्ध मोह, मरण, और नरकरूप घोर दुःखरूप फल को प्राप्त कर के गौ अज्ञानी स्मैग फिर इसी के लिए गृह्य होते हैं । अथवा गृह्य अर्थात् मोगों में आसक्त संसारी जीव इसी के लिए, अर्थात् कर्मबन्ध, मोह, मरण तथा नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

नेना द्वारा जूधी शक्याय-जांधी शक्याय ते अथ उदोवाथ छे जे उदक-अथ शक्येना समारंभ अथ छे अर्थात् आठ कर्मोना अथ छे अर्थात् आठवुमां कर्मोना उपचार करीने उदकस्रसना समारंभने अथ उदो छे अथविकि रीति ते अथ (कर्मबन्ध)नुं आठवु छे आठवण पद्य आ प्रभावे समबन्धुं जेधजे.

आ अथशक्येना समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान छे तथा आ मार-निगोव वनेना मरणरूप छे आ नरक छे अर्थात् नारकी जीवोने बंधावाणी दस प्रकारनी वेदनाओनुं स्थान छे कर्मबन्ध, मोह मरण जने नरक रूप घोरदुःखरूप कलने प्राप्त करीने पद्य अज्ञानी लोक करीने तेना भाटे गृह्य-आसक्त जाय छे अथवा गृह्य अर्थात् मोगोमां आसक्त संसारी एव जे भाटे अर्थात् कर्मबन्ध, मोह, मरण तथा नरक भाटे व प्रवृत्ति करे छे

यद्यपि विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं चापकायशस्त्रसमारम्भं करोति, तथापि तत्फलं ग्रन्थ-मोह-मरण-नरकरूपमेव लभते, अत उदककर्मसमारम्भस्य तदेव फलं भवतीति भावः ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव लिप्सुरस्ति, तदर्थमेव च प्रवर्तते, इति यदुक्तं तत्र हेतुमाह— 'यदिमम्.' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, गृहो लोकः, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=स्वकाय-परकायतदुभयरूपैः, उदककर्मसमारम्भेण=अपकायमुद्दिश्याष्टविधकर्मसमुत्पादक-सावधव्यापारेण, इमम्=अपकाय, बिहिनस्ति=पाणरहित करोति । तथा-उदक-

तात्पर्यं यह है कि विषयभोगों में आसक्त जीव, शरीर आदि का पोषण करने के लिए, वन्दन-मान-पूजन के लिए, जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए तथा दुःखों का नाश करने के लिए, अपकाय के शस्त्र का आरम्भ करता है मगर उस का फल-ग्रन्थ, मोह, मरण और नरक-रूप ही पाता है । अत एव जलकर्मसमारम्भ का वही फल होता है ।

लोक बार-बार कर्मबन्ध आदि के लिए ही इच्छुक होता है, और उसी के लिए प्रवृत्ति करता है, यह बात पहले कही है । यहाँ उस का कारण बतलाते हैं—

क्यों कि गृहजन नाना प्रकार के स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप शस्त्रों से, उदककर्म के आरम्भद्वारा, अपकायसबधी अष्टकर्म-जनक सावधव्यापारद्वारा अपकाय की हिंसा करता है । तथा जलकाय के विराधक स्वकाय, परकाय और

तात्पर्यं ये छे के-विषयभोगोभा आसक्त एव शरीर-आदिना पोषणु करवा भाटे वन्दन, मान, पूजा भाटे, जन्म मरणुथी मुक्त थवा भाटे तथा हु ज्योना नाश करवा भाटे अप्कायना शस्त्रना आरल करे छे, परन्तु तेनु क्षण थथ, मोह, मरणु अने नरक रूपु पावे छे, ये भाटे जलकर्मसमारम्भनु इल तेजु होय छे

लोक बार-बार कर्मबन्ध वगेरे भाटे धरुवा करवा होय छे, अने ते भाटे प्रवृत्ति करे छे ये वात प्रथम कही छे अर्हि तेनु कारणु यतावे छे केमके-गृह भाषुस नाना प्रकारना स्वकाय, परकाय अने उभयकाय रूपु शस्त्रोथी उदककर्मना आरलद्वारा अप्कायना सभधी आठ कर्मजनक सावधव्यापारद्वारा अप्कायनी हिंसा करे छे तथा

कृतम्-अण्कायमर्दकं कृतं स्वकायपरकायतदुमयस्य, समारममाणः-व्यापास्यन्  
अप्यान्-इयिवोकापादीन्, अनेकरूपान्-वसान् स्यात्परं च प्राणान्-प्राणिनी  
बिहितस्ति ।

अण्कायसिषया पद्मजीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव मणिहन्तीति पोरत्तरं दुरितं  
हृन् पुनः पुनः ग्रन्थादिनरकान्तं प्राप्यापि उद्वर्षमेव प्रवर्षते न पुनर्मोक्षायेति  
मात्र ॥ सू० ८ ॥

पुनरपि सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह- 'से वेमि' इत्यादि ।

॥ मूस्म ॥

से वेमि संधि पाषा उद्वनिस्सिषया जीवा अणेगे ॥ सू० ९ ॥

॥ छाया ॥

स ब्रवीमि सन्ति प्राणा उद्वनिभिवा जीवा अनेके ॥ सू० ९ ॥

उमयकम रूप शब्दों का आरंभ करता हुआ अन्यकाम-स्वावर और प्रस जीवा को भी हिंसा  
करता है, वह अण्कायकी हिंसाद्वारा पद्मजीवनिकायरूप समस्त लोक को हिंसा करता है,  
एत अन्त पोर पाप करता हुआ पुन पुन प्रस से केकर नरक लक के दुष्कलको पाकरके भी  
उक्तों के स्त्रिय प्रवृत्ति करता है-मोक्ष के स्त्रिय नहीं ॥ सू० ८ ॥

सुधर्मा स्वामी फिर जम्बू स्वामी से कहते हैं- 'से वेमि' इत्यादि ।

मूक्षार्थ- मैं कहता हूँ अण्काय के आभित प्राणी हैं और अन्य अनेक (दीन्द्रिय  
आदि) जीव भी हैं ॥ सू० ९ ॥

अण्कायनी विदायक स्वकाय, परकाय अने उलयकाय रूप शस्त्रोना आरंभ करीने  
अण्काय-स्वावर अने प्रस लोचनी पक्षु दिशा करे छे ते अण्कायनी दिशाद्वारा  
पद्मजीवनिकारूप समस्त लोकनी दिशा करे छे तेभी अन्त्यन्त पोर पाप करता बडा  
हरी हरी अक्ष (कर्मलक्ष)भी लक्षने नरक सुधीना माक्ष-दुष्कलकारक इजने यामीने  
पक्षु ते भटे प्रवृत्ति करे छे मोक्ष भटे करता नबी. (सू० ८)

सुधर्मा स्वामी हरीभी जम्बू स्वामीने बडे छे- 'से वेमि' इत्यादि

मूक्षार्थ- हूँ बडे छे-अण्कायना आभित प्राणी छे अने अन्य अनेके (दीन्द्रिय  
आदि) जीव पक्षु छे. (सू० ९)

## ટીકા—

સઃ=વિજ્ઞાતાપ્કાયસ્વરૂપોઽહં વ્રત્તીમિ=યથા સાક્ષાદ્ ભગવતઃ સકાશાન્મયા શ્રુતં તથા કથયામીત્યર્થઃ । ઉદકનિશ્રિતાઃ જલરૂપ કાયમાશ્રિત્ય વર્તમાનાઃ અપ્કાયિકા इत्यર્થઃ પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃ સન્તિ । તથાઽનેકે=દ્વીન્દ્રિયાદયઃ નાનાવિધાઃ જીવા નીલઙ્ગુ-પૂતરક-મત્સ્યાદયઃ ઉદકનિશ્રિતા=ઉદકાવસ્થિતાઃ સન્તિ । દેહલી-દીપન્યાયેનોદકનિશ્રિતા इत्यस्योभयत्रान्वय , अनेनोदकं सचित्तमनेकजीवाधिष्ठितं चेति प्रतिबोधितम् ।

ટીકાર્થ—અપ્કાય કે સ્વરૂપ કા જ્ઞાતા મેં કહતા હૂં । જૈસા કિ ભગવાન્ સે મૈને યુના હૈ કિ—અપ્કાય કો આશ્રિત કરકે રહે હુએ અપ્કાયિક પ્રાણી હૂં, તથા અનેક દ્વીન્દ્રિય આદિ નાના પ્રકાર કે જીવ નીલંગુ, પૂતરક, મત્સ્ય આદિ મી જલ મેં રહે હુએ હૂં । ઉદકનિશ્રિતાઃ—‘જલકાય કે આશ્રિત’ યહ પદ દેહલી—દીપકન્યાય સે દોનોં ઓર જોડ લેના યાદિએ । યહાં ઇતના સમજ લેના આવશ્યક હૈ કિ—જલકાય કે જીવોં કા શરીર જલ હી હૈ, જવ કિ જલ મેં રહને બાલે ત્રસ આદિ જીવોં કા શરીર મિલ્લ હોતા હૈ, ફિરમી વે જલ હી મેં રહતે હૂં ઓર જલ કી વિરાધના કરનેસે યુન ત્રસ આદિ જીવોં કી મી વિરાધના હોતી હૈ । જહાં જલકાય હૈ વહાં સમી કાય કે જીવ હોતે હૂં ।

ટીકાર્થ—અપ્કાયના સ્વરૂપને બાણુનાર હુ કહુ છુ જેવી રીતે કે મે ભગવાન પાસેથી સાભળ્યુ છે કે—અપ્કાયને આશ્રિત—આશ્રય કરીને રહેલા અપ્કાયના જીવો છે તથા અનેક દ્વીન્દ્રિય આદિ નાના પ્રકારના જીવ નીલંગુ પૂતરક, મત્સ્ય આદિ પણ જલમા રહેલા છે ‘ઉદકનિશ્રિતા’ ‘જલકાયને આશ્રિત’ આ પદ દેહલી—દીપક—ન્યાયથી બન્ને બાણુ બેડી લેવુ બેધએ

અહિં એટલુ સમજુ લેવુ આવશ્યક છે કે—જલકાયના—જીવોના શરીર જલજ છે ન્યારે કે જલમા રહેવાવાળા ત્રસ આદિ જીવોના શરીર લિપ્ત—બૂદ્ધા હોય છે તેા પણ તે જલમાજ રહે છે, અને જલની વિરાધના કરવાથી તે ત્રસ આદિ જીવોની પણ વિરાધના થાય છે ન્યા જલકાય છે ત્યા તમામ કાયના જીવ હોય છે

अण्कायस्य लक्षणद्वारम्—

ननु कं संचितमस्तीत्यत्र किं प्रमाणम् ? उच्यते—आपः संचिताः, सञ्ज्ञानुपहत-  
त्वे सति ब्रह्मत्वात्, इति शरीरोपादानमूलकलम्बत् । पञ्चन्मादौ दोषकारत्वात् सञ्ज्ञानुप-  
हतत्वविशेषोपादानम् । कल्लसम्बद्धग्रहणेन सप्तदिवसमात्रवर्तिनो ब्रह्मणम्, तत्र  
शमष्टमदिवसादौ तदेवार्धुवाद्यवस्थामापद्यते ।

किञ्च—आप सञ्चीपाः, अनुपहतप्रवृत्त्वात्, अण्कमभ्यस्वितकलम्बत् ।

किञ्च—आपो जीवशरीराणि, छेद्यत्वात्, मेघत्वात्, इक्षुत्वात्, करधरमादि  
समुपायवत् ।

अण्कायका सङ्ख्यद्वार

शंका—ब्रह्म संचित है इस विषय में क्या प्रमाण है ?

समाधान—ब्रह्म संचित है, क्योंकि कि शक्त के उपघात के बिना ही वह  
रव (तरस) है, जैसे—हाथी के शरीर का उपादान कल्ल । यहाँ मूत्र आदि से  
अभिचार इत्यादि के किए 'शक्त के उपघात के बिना' यह विशेषण समझा गया है ।  
'कल्ल' शब्द के अर्थ करने से सिर्फ सात दिन का गर्मांतरावस्थित शुक्रशोणितमिश्रित  
द्रव्यार्थ केन्द्र आदि । आठवें दिन से उफकी गर्भुद आदि अवस्थाएं हो जाती हैं—अर्थात्  
रव गरा होने लगता है ।

और भी—ब्रह्म सञ्चीप है, क्योंकि वह अनुपहत रव है, जैसे अग्नि का रस ।

और भी—ब्रह्म, जीव का शरीर है, क्योंकि उसका छेदन—मेघन किया जाता है और  
रव है, हाथ का आदि के समूह की तरह ।

अण्कायस्य सङ्ख्यद्वार—

शंका—ब्रह्म-शक्ति संचित है के विषयमां शु प्रमाण है ?

समाधान—ब्रह्म संचित है इसके शक्त का उपघात बिना के तब से  
जैसी रीति काशीना शरीरनु उपादान "कल्ल" अर्द्ध मूल आदिभी अभिचार उपादान  
मां शक्त का उपघात बिना के निरीपण ललाटु है "कल्ल" शब्दना प्रदण्ड कर  
शक्ति मात्र सात दिवसना उपादानमां रहेवे। शुक्रशोणित-मिश्रित द्रव्यार्थ समुच्चये  
केन्द्रके आठवा दिवसशी तेनी गर्भुद आदि अवस्थाओं पर अण्क के अर्धेन ते शक्त  
रवा लगे है ।

जीनु पण-ब्रह्म संचित है इसके ते अनुपहत रव है जैसा उपादाने रव ।

जीनु पण ब्रह्म-रव-शरीर है, इसके-तेनु छेदन-मेघन करी शक्ति है अने  
रव है, हाथ-पत्र आदिना समूह प्रमाणे ।

મસ્તીતિ ભગવતા કેવલાર્જોકેન ત્રિજ્ઞાયાનગારેભ્યઃ સયમરક્ષણાર્થમુદકં જીવત્વેન પ્રતિવોધિતમિત્યર્થઃ । 'ચ'—શબ્દાત્ તદાશ્રિતા અન્યે દ્વીન્દ્રિયાદયોઽપિ જીવા વ્યાખ્યાતા ઇતિ વોધિતમ્ । યો વિન્દુમાત્રોદરુવિરાધકઃ, સ પદ્જીવનિકાય-વિરાધકો ભવતીતિ વર્તુલાર્થઃ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

### શસ્ત્રદ્વારમ્—

નત્રુ યદિ જીવપિન્ડભૂતમુદક ભગવતા પ્રોક્ત તર્હિ ઉદરુસેવિના મુનીનામયશ્ચ પ્રાણાત્પિપાતદોષસમ્પાતઃ, તેન કથં સયમઃ સંયમિના સંપદ્યતે ? ઉચ્યતે—

સચિત્તાચિત્તમિશ્રભેદેન ત્રિવિધમુદકમ્ । તત્ર સચિત્ત-નદીકૂપતટાગાદિ-

પિન્ડ હૈ, ઇસ પ્રકાર ભગવાન્ ને કેવલજ્ઞાન સે જ્ઞાનકર સાધુઓં કે સયમ કી રક્ષા કે લિખ જલ કો જીવ બતલાયા હૈ । સૂત્ર મેં દિયે હુગ 'ચ' શબ્દ સે યહ પ્રકટ કિયા ગયા હૈ કિ જલ કે આશ્રિત દૂસરે દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવ મી હૈ । સક્ષેપ મેં તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—જો પુરુષ ઇક વિન્દુ જલ કી વિરાધના કરતા હૈ વહ પટ્કાય કે જીવોં કા વિરાધક હૈ ॥ સૂ ૧૦ ॥

### શસ્ત્રદ્વાર—

શંકા—યદિ જલ જીવોં કા પિન્ડ હૈ, ઇસા ભગવાન્ને કહા હૈ તો જલકા સેવન કરને વાલે મુનિયોં કો હિંસા કા દોષ લગતા હૈ । ઇસી સ્થિતિ મેં સાધુઓં કા સયમ કિસ પ્રકાર કાયમ રહ સકતા હૈ ?

સમાધાન—જલ ત્રીન પ્રકાર કા હૈ—(૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત ઓર (૩) મિશ્ર

ભગવાને કેવલજ્ઞાનથી જાણી કરીને સાધુઓના સયમની રક્ષા માટે જલને જીવ તરીકે બતાવ્યું છે સૂત્રમાં આપેલા 'ચ' શબ્દથી એ પ્રગટ કરવામાં આવ્યું છે કે-જલના આશ્રિત બીજા દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવ પણ છે સક્ષેપમાં તાત્પર્ય એ છે કે-જે પુરુષ એક ટીપા જલની વિરાધના કરે છે તે પટ્કાયના જીવોનો વિરાધક છે (સૂ ૧૦)

### શસ્ત્રદ્વાર—

શંકા—જો જલ જીવોનો પિન્ડ છે એ પ્રમાણે ભગવાને કહ્યું છે તો જલનું સેવન કરવાવાળા મુનિઓને હિંસાદોષ લાગે છે એવી સ્થિતિમાં સાધુઓનો સયમ કાયમ કેવી રીતે રહી શકે છે ?

સમાધાન—જલ ત્રણ પ્રકારનું છે (૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્ર

अस्मि । यिभं सधित्वाधिवसंमिभित् । एतद् इयं आग्राहम् । अचिचं द्विविधं  
 स्वभावता, अस्त्रसंपर्कतश्च । स्वभावतोऽचिचं अलं केवळि-मनःपर्ययाज्वधि-भुत  
 ज्ञानिनस्तन्जानाना अपि न सेवन्ते, मनस्वत्यादोपमसङ्गात्, व्यवहारानुद्वेय ।  
 असिद्धं च यत् कदापिस्वभावतोऽचिचमलपरिपूर्णं इदं, स्वभावतोऽचिवीभूतं तिस्रविकं  
 च इष्ट्वा व्यवहारानुद्वेयत्वात्पिपासासुभापरिपीडितानामपि साधूनां पामार्थं भक्षणार्थं  
 च तत्रानुज्ञा न कृता मगवतेति । यत्तु अस्त्रसंपर्कादचिचं मलं तत् साधूनामुपभोगाय  
 ज्ञान, तेन समयनिर्वाहो भवति । किं तच्छब्दम् ? इत्याह-‘सत्यं’ इत्यादि ।

नदी, रूप तास्मव आदि का अल सचित, और अचित मिल कर मिश्र  
 करवाता है । यह दोनों प्रकार का अल साधु के लिये अग्रह है । अचित अल दो  
 प्रकार का है-स्वभाव से अचित और शक्त के संयोग से अचित । स्वभाव से अचित  
 अल को केवळी, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी, तथा अतज्ञानी, मानते हैं मगर उस का  
 सेवन नहीं करते । सेवन करने से मनस्वत्या दोष भ्रष्टा है और व्यवहार अनुद्वेय हो  
 जाता है । यह बात प्रसिद्ध है कि-कदाचित् स्वभाव से अचित अल से मग हुआ  
 व्यसन तथा स्वभाव से अचित सिद्ध आदि को देखकर व्यवहार में अनुद्वेय होने के  
 कारण व्यास और मूल से पीडित साधुओं को भी पीने-सोने की आज्ञा मगवान्ते नहीं  
 दी है । जो अल शक्त के संयोग से अचित हो गया हो वही साधुओं के लिये, प्राय  
 होता है । ऐसा करने से ही समय का पाकन होता है । यह शक्त क्या है, यह बलवान  
 के लिये कहते हैं-‘सत्यं’ इत्यादि ।

नदी, मुवा तगाव आदिनु अल सचित छे सचित अचित अन्ने प्रकारनु कोषु धयेहुं अल  
 मिश्रणहोवाम छे. अल अन्ने प्रकारना अल साधुज्यो माटे अग्रह छे अचित अल जे प्रकारनु  
 छे. (१) स्वभावधी अचित अने (२) शक्तना संयोगधी अचित स्वभावधी अचित अलने  
 केवळी, मनःपर्ययज्ञानी, अवधितानी तथा अतज्ञानी आद्ये छे परतु तेनु सेवन इस्ता  
 नहीं-सेवन इरवाधी मनस्वत्या दोष आवे छे अने व्यवहार अनुद्वेय वर्ध भव छे जे बात  
 प्रसिद्ध छे छे-कदाचित् स्वभावधी अचित अलधी अरेहुं तगाव तथा स्वभावधी अचित  
 तल आदिने जोधने व्यवहारमां अनुद्वेय होवना आद्ये तरस अने भूजधी पीडित  
 साधुज्योने पञ्च पीवा-जावानी आज्ञा भजवने जापी नहीं जे अल शक्तना संयोगधी  
 अचित वर्ध जनु होव ते अल साधुज्यो माटे अग्रह होव छे जे अग्रह्ये इरवाधील  
 संवभुं पावन भव छे ते शक्त शु छे जे अवाकवा माटे अरे छे-‘सत्यं’ इत्यादि



પૃથિવીકાયવદ્ અસંલ્લેયાશ્ચ પ્રત્યેન્મુખ્યે । કેવલ શરીરસંસ્થાન સ્તિબુકવિન્દુ-  
સસ્થિતમેવ ।

### પરિમાણદ્વારમ્—

યે વાદરપર્યાપ્તા અપ્કાયાઃ, તે સંવર્તિતલોકપ્રતરાસંલ્લેયભાગ  
પ્રદેશરાશિપરિમાણાઃ, યે તુ વાદરા અપર્યાપ્તાઃ, તથા સૂક્ષ્માઃ પર્યાપ્તા અપર્યાપ્તાશ્ચ  
રાશયસ્તે પૃથક્-પૃથગસંલ્લેયલોકાકાશપ્રદેશરાશિપરિમાણાઃ મન્તિ । અયમત્ર  
વિશેષઃ—વાદરપર્યાપ્તેભ્યઃ પૃથિવીકાયેભ્યો વાદરપર્યાપ્તા અપ્કાયા અસંલ્લેયગુણાઃ,  
વાદરેભ્યોઽપર્યાપ્તેભ્યઃ પૃથિવીકાયેભ્યો વાદરા અપર્યાપ્તા અપ્કાયા અસંલ્લેય-  
ગુણાઃ । સૂક્ષ્માપર્યાપ્તપૃથિવીકાયેભ્ય મંદ્રક્ષ્મા અપર્યાપ્તા અપ્કાયા વિશેષાધિકાઃ,

પૃથ્વીકાય કે સમાન પ્રત્યેક પ્રકાર કે જીવ અસલ્યાત હૈ । અલવત્તા દન કે શરીર કા  
આકાર સ્તિબુકવિન્દુ (બુદ-બુદ) કે સમાન હૈ ।

### પરિમાણદ્વાર—

વાદર પર્યાપ્ત અપ્કાય કે જીવ સવર્તિત લોકપ્રતર કે અસલ્લેયભાગ પ્રદેશો કે  
વરાવર હૈ, વાદર અપર્યાપ્ત તથા સૂક્ષ્મ પ્રર્યાપ્ત ઓર અપર્યાપ્ત રાશિઓ અલગ અલગ  
અસલ્યાત લોકાકાશ કે પ્રદેશ કે વરાવર હૈ । યહાં ઇતની વિશેષતા સમજની ઓહિય  
કિ—વાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાય કી અપેક્ષા વાદર પર્યાપ્ત અપ્કાય અસલ્યાતગુણા હૈ, ઓર  
વાદર અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાય કી અપેક્ષા વાદર અપર્યાપ્ત અપ્કાય કે જીવ અસલ્યાતગુણા હૈ ।  
સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાય કે જીવોં સે સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત અપ્કાયિક જીવ વિશેષ અધિક હૈ

પૃથ્વીકાયની પ્રમાણુ પ્રત્યેક પ્રકારના ઇવ અસ ખ્યાત છે અલખત તેના શરીરના  
આકાર સ્તિબુકવિન્દુ-બુદ-બુદના પ્રમાણુ છે

### પરિમાણુદ્વાર—

બાદર પર્યાપ્ત અપ્કાયના ઇવ સવર્તિત લોકપ્રતરના અસ ખ્યેય ભાગ પ્રદેશોના  
બરાબર છે બાદર અપર્યાપ્ત તથા સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત રાશિઓ અલગ-અલગ  
અસ ખ્યાત લોકાકાશના પ્રદેશોની બરાબર છે અહિં એટલી વિશેષતા સમજવી જોઈએ કે-  
બાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયની અપેક્ષા બાદર પર્યાપ્ત અપ્કાય અસ ખ્યાત ગુણુ છે, અને  
બાદર અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયની અપેક્ષા બાદર અપર્યાપ્ત અપ્કાયના ઇવ અસ ખ્યાત ગુણુ છે  
સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના ઇવેથી સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત અપ્કાયિક ઇવ વિશેષ અધિક છે

सूक्ष्म-पर्याप्त-पृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्ता अण्काया विशेषाधिकः ॥ सू० ९ ॥  
 भीसुधर्मा स्वामी अम्भूस्वामिनमामत्र्य कवयति- 'इहं च' -स्यादि ।

सूक्ष्म्—

इहं च स्तु मो ! अनगाराणं उदर्यं जीवा वियाहिया सू० ॥ १० ॥

छाया—

इह च स्तु मोः ! अनगाराणासुवर्कं जीवा व्याख्याताः ॥ सू० १० ॥

टीका—

'मो' इति परस्परालापविषयकामन्त्रये, तेन मो=हेनम्भू !  
 इह=मिनशासने स्तु=निश्चयन अनगाराणां=द्रव्यभावगृहहरहितानां मुनीनां मति  
 बोधनायेति शेषः, उदर्यं जीवा व्याख्याताः' इति, उदक जीवपिण्डमूल-

तथा सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय की अण्काया सूक्ष्म पर्याप्त अण्काय के बीच विशेष  
 अधिक है ॥ सू. ९ ॥

श्री सुधर्मा स्वामी अम्भू स्वामी को संबोधन करके कहते हैं—'इहं च' इत्यादि ।

मूलार्थ—हे शिष्य ! मिन शासन में अनगारों के लिए यह व्याख्या की गई है  
 कि—स्तु बीच है ॥ सू. १० ॥

टीकार्थ—मो शब्द संबोधन के लिए है । इस का तात्पर्य यह हुआ कि—हे  
 अम्भू ! इस मिन शासन में निश्चय से अनगारा अर्थात् द्रव्य और भाव गृह स रहित  
 मुनियों के बोध के लिए स्तु बीच है यह व्याख्यान किया गया है । स्तु जीवा का

तथा सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकायनी अण्काया सूक्ष्म पर्याप्त अण्कायना एव विशेष  
 अधिक है. (सू. ९)

श्री सुधर्मा स्वामी अम्भू स्वामीने संबोधन करीने कहे थे— इह च इत्यादि

मूलार्थ—हे शिष्य ! मिनशासनमें अणुप्रदेशों में भाटे का व्याख्या करवाया  
 गया है कि—स्तु एव है (सू. १०)

टीकार्थ—'मो' शब्द संबोधन भाटे है तेषु तात्पर्य को यद्यु है—हे अम्भू ! स्तु  
 मिनशासनमें निश्चयसे अणुप्रदेशों अर्थात् द्रव्य एवं भाव गृहही रहित मुनियों का बोध  
 भाटे 'स्तु एव है' का व्याख्यान करवाया गया है कि—स्तु एव है, अर्थोनाहित है, जो प्रभावे

पृथिवीकायवद् असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये । केवल शरीरसंस्थान स्तिबुकविन्दु-  
सस्थितमेव ।

### परिमाणद्वारम्—

ये वादरपर्याप्ता अप्कायाः, ते संवर्णितलोकप्रतराऽमन्वयेयभाग  
प्रदेशराशिपरिमाणाः, ये तु वादरा अपर्याप्ताः, तथा सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च  
राशयस्ते पृथक्-पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति । अयमत्र  
विशेषः—वादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरपर्याप्ता अप्काया असंख्येयगुणाः,  
वादरेभ्योऽपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरा अपर्याप्ता अप्काया असंख्येय-  
गुणाः । सूक्ष्मापर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः,

पृथ्वीकाय के समान प्रत्येक प्रकार के जीव असल्यात हैं । अलवत्ता इन के शरीर का  
आकार स्तिबुकविन्दु (बुद-बुद) के समान है ।

### परिमाणद्वार—

वादर पर्याप्त अप्काय के जीव संवर्णित लोकप्रतर के असख्येयभाग प्रदेशों के  
चराचर हैं, वादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त राशियाँ अलग अलग  
असख्यात लोकाकाश के प्रदेश के चराचर हैं । यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए  
कि—वादर पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा वादर पर्याप्त अप्काय असख्यातगुणा हैं, और  
वादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा वादर अपर्याप्त अप्काय के जीव असख्यातगुणा हैं ।  
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं

पृथ्वीकायनी प्रमाणे प्रत्येक प्रकारना एव असख्यात छे अलवत्ता तेना शरीरना  
आकार स्तिबुकविन्दु-बुद-बुदना प्रमाणे छे

### परिमाणद्वार—

भादर पर्याप्त अप्कायना एव संवर्णित लोकप्रतरना असख्येय भाग प्रदेशोना  
भराभर छे भादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त अने अपर्याप्त राशियो अलग-अलग  
असख्यात लोकाकाशना प्रदेशोनी भराभर छे अहिं अटली विशेषता समन्वी लोको अ-  
भादर पर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा भादर पर्याप्त अप्काय असख्यात गुणा छे, अने  
भादर अपर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा भादर अपर्याप्त अप्कायना एव असख्यात गुणा छे  
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायना एवोथी सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक एव विशेष अधिक छे

सूत्र-पर्याप्त-पृथिवीकायेभ्यः सूत्रपर्याप्ता अण्काया विश्लेषापिकाः ॥ सू० ९ ॥  
भीसुपर्मा स्वामी अण्मुस्वामिनमामन्व्य कथयति- 'ईं च' -त्यादि ।

मूस्म्—

ईं च स्तु मो ! अनगाराणं अयं जीवा वियाहिया सू० ॥ १० ॥

छाया—

इ च स्तु मो ! अनगाराणाद्दकं जीवा व्याख्याता ॥ सू० १० ॥

टीका—

'मोः' इति परस्परालापविषयकामन्त्रणे, तेन मोः=हेनम्युः ।  
इ=जिनशासने स्तु=निश्चयेन अनगाराणां=द्रव्यभावगृहहरहितानां मुनीनां प्रति-  
बोधनायेति शेषः, उदकं जीवा व्याख्याता ' इति, उदकं नीचपिण्डभूत

उवा सूत्र पर्याप्त पृथिवीकाय की अपेक्षा सूत्र पर्याप्त अण्काय के बीच विशेष  
अधिक है ॥ सू. ९ ॥

भी सुपर्मा स्वामी अण्मु स्वामी को संबोधन करके कहते हैं- 'ईं च' इत्यादि ।

मूस्वार्थ—हे शिष्य ! जिन शासन में अनगारों के लिए यह व्याख्या की गई है  
कि-उदक जीव है ॥ सू. १० ॥

टीका— 'मो' शब्द संबोधन के लिए है । इस का उत्तर यह हुआ कि-हे  
अण् ! इस जिन शासन में निश्चय से अनगारों अर्थात् द्रव्य और मात्र गृह से रहित  
मुनियों के बीच के लिए 'उदक जीव है' यह व्याख्यान किया गया है । अतः, जीवा का

उवा सूत्र पर्याप्त पृथिवीकाय की अपेक्षा सूत्र पर्याप्त अण्कायना एवं विशेष  
अधिक है (सू. ९)

भी सुपर्मा स्वामी अण्मु स्वामीने संबोधन करीने कहे है- 'ईं च' इत्यादि ।

मूस्वार्थ—हे शिष्य ! जिनशासनमें अणुकारोंने भाटे का व्याख्या करवाया  
आयी है कि उदक जीव है (सू. १०)

टीका— 'मो' शब्द संबोधन भाटे है तेषु उत्तर यह हुआ कि-हे अण् ! जिन  
जिनशासनमें निश्चयसे अणुकारोंने अर्थात् द्रव्य जने मात्र गृहसे रहित मुनियोंना बीच  
भाटे 'उदक जीव है' का व्याख्यान करवाया आया है उदक, लोचनेपिठ है, जो प्रभावे



- (१) उत्स्वेद्यम्=पिष्टसंमृष्टपिठरादिप्रक्षालनजलम् । (२) संस्वेद्यम्=ससेकिम वा=उत्कालिततिलधावनजलं, उत्कालितपत्रश्याकादिधावनजल वा ।  
 (३) तन्दुलोदकम्=तन्दुलधावनजलम् । (४) तिलोदकम्=तिलधावनजलम् ।  
 (५) तुषोदकम्=त्रीद्विधावनजलम् । (६) यवोदकम्=यवधान्यभालनजलम् ।  
 (७) आचामकम्=अवश्रामणजल 'औसामण' इति भाषाप्रसिद्धम् । (८) सौवीरम्=आरनाल, तक्रपात्रधावनजल, तक्रोपरिष्ठान्निस्तारितजलं वा 'आछ' इति भाषायाम् ।  
 (९) आम्रफलादिधावनजलम् । (१०) आम्रातरूपानकम्=आम्रातकधाननजलम् ।  
 आम्रातरूपमिति 'अम्वाडी' इति भाषाप्रसिद्धम् । (११) कपित्थपानकम्=कपित्थं='कविठ' इति भाषायां, तस्य धावनजलम् । (१२) मातुलिङ्गम् 'विजोरा'

इस प्रकार का अचित्त जल इसी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में 'पानैषणा' प्रकरण में इक्कीस प्रकार का भगवान् ने साधुओं के लिए ग्राह्य कहा है । वह इस प्रकार -

(१) उत्सेद्य-आटेका मिला हुआ पीठर (कथोटी) आदिका धोवन ।

(२) सस्वेद्य (ससेकिम) उकाले हुए तिलोंका धोवन या उकाले हुए पत्तों के शाक का धोवन ।

(३) चावलों का धोवन, (४) तिलों का धोवन, (५) धान्यका धोवन, (६) जौ का धोवन (७) ओसामण, (८) आरनाल, छाछ के वर्तनों का धोवन, अथवा छाछ के उपर का नितारा पानी जिसे 'आछ' भी कहते हैं ।

(९) आम आदि फलों का धोवन (१०) अम्वाडी का धोवन (११) कविठ (कैथ) का धोवन (१२) विजौरे का धोवन (१३) दास का धोवन (१४) दाडिम (अनार)

आवा प्रकारनु अचित्त जल आ सूत्रना भील श्रुतस्कन्धना पानैषणा-प्रकरणम् अकथीथ प्रकारनु भगवाने साधुओ भाटे ग्राह्य कहु छे, ते आ प्रभाणे छे -

(१) उत्स्वेद्य-बोटा भणेतु, कथरोटा आदित्तु धोवणु

(२) सस्वेद्य-उकालेला तलनु धोवणु, अथवा उकालेला पत्तावाणा शाकनु धोवणु

(३) ओआनु धोवणु (४) तलनु धोवणु (५) धान्यनु धोवणु (६) जवतु धोवणु (७) ओसामणु (८) आरनाल-छासना वासणोतु धोवणु, अथवा छासनी उपर नीतरेल पाणी नेने 'आछ' पणु कडे छे

(९) आआ-आअ आदि क्षणोनु धोवणु (१०) अम्वाडीनु धोवणु (११) कविठनु धोवणु (१२) विजोरेनु धोवणु (१३) दासनु धोवणु (१४) दाडिमनु धोवणु (१५)

इति मापायां, तस्य पानकं=वाचनजलम् । (१३) द्राक्षापानकम्=द्राक्षावाचनजलम् ।  
 (१४) दाडिमपानकम्=दाडिमवाचनजलम् । (१५) सूर्जपानकम्=सूर्जवाचन-  
 जलम् । (१६) नासिकेल्यानकम्=नासिकेलवाचनजलम् । (१७) करीरपानकम्=  
 करीरवाचनजलम् । (१८) कोष्पानकम्=वदरवाचनजलम् । (१९) धामसकपानकम्=  
 धामसकवाचनजलम् । (२०) चित्रपानकम्=चित्रा-अम्लिका-इमली' इति मापायां,  
 तस्या पानकं=वाचनजलम् । (२१) शुद्धविकृतम्=अन्युत्पत्तिसामुह्यं बलं च ।

इह श्लेषद्वाराणि पृथिविकायवद् विज्ञेयानि ।

वै तु साक्यद्वयः सञ्चित्पाकायोपमोगिनः सन्ति तेषु साक्यपादयः  
 श्लेषमोमार्गम् 'भापो वीबा न सन्ति' इति प्रतिपादयन्ति, दण्डिनस्तु जलं  
 सञ्चितं मन्यमाना अपि मोहप्रमादबलतः स्वार्थमुत्कासयन्ति, परस्परदिशन्ति, च,  
 यथा शिद्वस्तुत्कासनीयं जलम्, इत्युपदिश्यापायसमारम्भं कारयन्तो न  
 केवलमपायं विहिंसन्ति, किन्तु सदाभितानन्वानपि द्वीन्द्रियान् विरापयन्ति ।

श बोधन (१५) सनूर का बोधन (१६) मारियस का बोधन (१७) कैर का बोधन  
 (१८) वेर का बोधन (१९) बाँबके का बोधन (२०) इमली का बोधन (२१) जलिन से  
 उकास हुआ गर्म जल ।

शो शाक्य आदि सञ्चित अणुकाय का सेवन करते हैं, उन में से शाक्य आदि  
 अपने उपयोग के लिए 'जल सञ्चित नहीं है' इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं ।  
 यही लोक जल को सञ्चित मान कर के भी मोह और प्रमाद के बरा हो कर अपने क्रिय  
 यन्ती गरम करवाते हैं और दूसरा को उकासने का उपदेश देते हैं कि-जल तीन  
 तरह, उकासना चाहिये । अर्थात् तीन उकासके पानी होना चाहिये  
 इस प्रकार उपदेश देकर अणुकाय का समारम्भ करते हुए न केवल अणुकाय की  
 दिशा करते हैं अपि तु जल में रहने वाले द्वीन्द्रिय आदि की भी विरायना करत हैं ।

पौष, (१६) नासिकेलतु पौष (१७) हेरतु पौष (१८) गोरातु पौष (१९)  
 आंजानतु पौष (२) आंजानीतु पौष (२१) अग्निशी उकासेतु जलम् अल

ये शाक्य आदि सञ्चितअणुकायतु सेवन करे छ तेमांशी शाक्य आदि  
 पिताना उपबोजन भाटे अल सञ्चित नहीं के प्रकाशनी प्ररूपणा करे छ इती अलने  
 सञ्चित आनीने पयु भाड अने प्रभाड वश सध पिताना भाटे पायुी जलम् करावे  
 छ अने जीवने पायुी जलम् करवाने उपदेश आपे छ के-अल तसु उठ-उकाणा  
 आपीने उकाजेतु कोर्छके, का प्रभावे उपदेश आपीने अणुकायनेः समारम्भ करवा  
 यथा देवज अणुकायनी अ हिंसा करे छ अनेतुं नही परन्तु अलभां श्लेषावत्या द्वीन्द्रिय  
 सञ्चिनी पयु विरायना करे छे ।

मूलम्—

सत्थं चेत्य अणुवीइ पास, पुहो सत्थं पवेइयं ॥ सू० ११ ॥

छाया—

शस्त्रं चात्र अनुविचिन्त्य पश्य, पृथक् शस्त्रं प्रवेदितम् ॥ ११ ॥

टीका—

अस्मिन् प्रस्तुतेऽपकाये शस्त्रं-शस्यते=हिंस्यते प्राणी येन तच्छस्त्रम् अनुविचिन्त्य  
 = 'इदमपकायस्य शस्त्रम्' इति विचार्य, पश्य=हे शिष्य ! ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य ।  
 शस्त्रम्=उपमर्दकं प्रस्तुतत्वादपकायस्य पृथक्=विभिन्नरूपं स्वकायपरकायोभयकाय-  
 भेदात् त्रिविधमित्यर्थः प्रवेदितं=प्रतिबोधितं भगवतेतिशेषः । तत्र स्वकायशस्त्रं  
 नद्याद्युदकानां कूपाद्युदकम् । कूपाद्युदकानां नद्याद्युदकं च । स्वकायशस्त्रपरिणतं  
 जलं साधूनामग्राह्यं व्यवहाराशुद्धेः । उभयकायशस्त्रं कूपादिजलस्योष्णजलं मृत्तिकादि-

मूलार्थ—अपकाय के विषय में, हे शिष्य ! शस्त्र का विचार करो । अपकाय के  
 शस्त्र पृथक्-पृथक् समझाये गये हैं ॥ सू० ११ ॥

टीकार्थ—जिस के द्वारा हिंसा हो वह शस्त्र कहलाता है, हे शिष्य !  
 अपकाय के विषय में 'यह अपकाय का शस्त्र है' इस प्रकार विचार करो अपकाय के  
 शस्त्र स्वकाय, परकाय और उभयकाय के भेद से नाना प्रकार के भगवान् ने बतलाये हैं ।  
 कुएँका जल नदी के जल के लिए स्वकायशस्त्र है, इसी प्रकार नदी आदि का जल  
 कुँए के जल के लिए स्वकायशस्त्र है । स्वकायशस्त्र से परिणत जल साधुओं के लिए  
 ग्राह्य नहीं होता, क्योंकि वह व्यवहार में अशुद्ध है । उभयकायशस्त्र है—कुँए आदि के

भूलाार्थ—अपकायना विषयमा हे शिष्य ! शस्त्रेणो विचार करो. अपकायना  
 शस्त्रं शुद्धा शुद्धा समन्वयां छे (सू० ११)

टीकार्थ—जेना द्वारा हिंसा थई शस्त्रे ते शस्त्रं कडेवाय छे, हे शिष्य ! अपकायना  
 विषयमा 'आ अपकायनु शस्त्रं छे' अये प्रमाहे विचार करो अपकायना शस्त्रं स्वकाय, परकाय,  
 अने उभयकायना लेदधी नाना प्रकारना भगवाने भताव्या छे कुवानु जल, नदी आदिना  
 जल माटे स्वकायशस्त्रं छे अये प्रमाहे नदी आदिनु जल कुवाना जल माटे स्वकायशस्त्रं  
 छे. स्वकायशस्त्रेथी परिष्कृत जल साधुओ माटे ग्राह्य रहेतुं नथी, कारणु के ते व्यवहारमा  
 अशुद्ध छे. उभयकायशस्त्रं छे कुवा आदिना जल माटे गरम जल, अथवा माटी वगैरेथी

मिन्नकं च । समयकायसङ्गपरिणतमपि न ग्राह्यम्, तत्र मिन्नसङ्कासङ्गात् ।  
 परकायसङ्गपरिणतमेव जल मुनीनां ग्राह्यम् परकायसङ्ग भाषा-सृष्टिका-  
 द्रासा-शाक-सम्बुल-पिष्ट-दासी-वर्णादिकम् । परकायसङ्गपरिणत-वर्णादीनां  
 पूर्वावस्थावैलक्षण्यापन्नम् । तत्र वज्रतो घृतरत्नादिस्य, गन्धतस्तचन्द्रस्तुसम्बन्धि  
 गन्धवत्त्वम्, रसतस्तचन्द्रस्तुसम्बन्धितिककडुकपायादिरसवत्त्वम् । स्पर्शतः  
 स्निग्धवत्त्वादिरूपम् । तदेवभूतमपिचं असम्भयंवाइस्य द्वितीयभूतस्त्वन्वे  
 पानैयभायामेकविसृष्टिविधे मुनीनां ग्राह्यत्वेन वक्ष्यते भगवता । तथाहि—

जल के स्त्रिय गम जल अथवा मिट्टी आदि से मिला हुआ जल । समयकायसङ्ग से परिणत  
 जल भी साधुओं के स्त्रिय ग्राह्य नहीं है, क्यों कि उस में मिन्न (सञ्चित) की शक्ति  
 रहती है । मुनीनां के स्त्रिय परकायसङ्गपरिणत जल ही ग्रहण करने योग्य है । अर्थाप का  
 परकायसङ्ग-जल, मिट्टी, दाल, शाक, चावल, आटा, दाल, और चना आदि हैं ।

जल को अर्थाप जल, रस गंध आदि वस्तुमाना परकायसङ्ग से जल के परिणत (सञ्चित)  
 हो जाने की प्रमाण है । जल से जल का घृतर आदि हो जाना, गंध से उस में मिली हुई  
 वस्तुओं की गंध जाने समाना इसी प्रकार जल में मिली हुई वस्तुओं का हीन्मा कडवा  
 कसेम आदि रस का स्वाद या जाना और स्पर्श से जल का रुग्ण चिकना आदि हो जाना  
 जल के सञ्चित होने के लक्षण हैं ।

भवेत्तु जल उलकाय शस्त्रधी परिणत जल पक्ष साधुजो भाटे शब्दा नधी केभडे-  
 तेभा मिन्न (सञ्चित)नी शब्दा रहे छे मुनीजो भाटे परकायसङ्गपरिणत जल  
 अर्थाप ठरवा योग्य छे अर्थापनु परकायसङ्ग, जमि भाटी द्रास शब्द भावत  
 दोट दाल अने जल आदि छे ।

पदेता इस्ता केनां वरुं रस जल आदि जलसङ्ग जल ते परकायसङ्गधी  
 जल परिणत (सञ्चित) यथं जलानी के निशानी अर्थात् ज्ञेयभाव्य छे

वस्तुधी जलनु घृतर आदि यथं जलुं, जलधी तेभां भवेत्ती वस्तुजोनी जल  
 अथवी, जे प्रभावे जलभां भवेत्ती वस्तुजोना तीजा, कडवा कसेम आदि रसने  
 स्वाद आनी जलो अने स्पर्शधी जलनु रुग्ण चिकन आदि यथं जलुं जे जल  
 सञ्चित होवाना लक्षण छे



- (१) उत्स्वेद्यम्=पिष्टसंमृष्टपिठरादिप्रक्षालनजलम् । (२) संस्वेद्यम्=ससेकिमं वा=उत्कालिततिलधावनजलं, उत्कालितपत्रशाकादिधावनजल वा ।  
 (३) तन्दुलोदकम्=तन्दुलधावनजलम् । (४) तिलोदकम्=तिलधावनजलम् ।  
 (५) तुपोदकम्=व्रीहिधावनजलम् । (६) यवोदकम्=यवधान्यक्षालनजलम् ।  
 (७) आचामकम्=अवश्रामणजलं 'औसामण' इति भाषाप्रसिद्धम् । (८) सौवीरम्=आरनाल, तक्रपात्रधावनजलं, तक्रोपरिष्ठान्निस्तारितजल वा 'आंछ' इति भाषायाम् ।  
 (९) आम्रफलादिधावनजलम् । (१०) आम्रातकपानकम्=आम्रातकधावनजलम् ।  
 आम्रातकमिति 'अम्बाडी' इति भाषाप्रसिद्धम् । (११) कपित्थपानकम्=कपित्थं='कविठ' इति भाषायां, तस्य धावनजलम् । (१२) मातुलिङ्गम् 'विजोरा'

इस प्रकार का अचित्त जल इसी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में 'पानैषणा' प्रकरण में इक्कीस प्रकार का भगवान् ने साधुओं के लिए ग्राह्य कहा है । वह इस प्रकार —

(१) उत्सेद्य—आटेका मिला हुआ पीठर (कथोटी) आदिका धोवन ।

(२) सस्वेद्य (ससेकिम) उकाळे हुए तिलोंका धोवन या उकाळे हुए पत्तों के शाक का धोवन ।

(३) चावलों का धोवन, (४) तिलों का धोवन, (५) धान्यका धोवन, (६) जौ का धोवन (७) ओसामण, (८) आरनाल, छाछ के वर्तनों का धोवन, अथवा छाछ के उपर का नितारा पानी जिसे 'आंछ' भी कहते हैं ।

(९) आम आदि फलों का धोवन (१०) अम्बाडी का धोवन (११) कविठ (कैथ) का धोवन (१२) विजौरे का धोवन (१३) दाख का धोवन (१४) दाडिम (अनार)

आवा प्रधारनु अचित्त जल आ सूत्रना पीण श्रुतस्कन्धना पानैषणा—प्रकरणम्  
 अष्टवीश प्रकारनु लगवाने साधुओं आटे आद्य ठह्यु छे, ते आ प्रभाष्ये छे —

(१) उत्स्वेद्य—खोट भणेतुं, कथरोट आदिनु धोवणु

(२) सस्वेद्य—उकाळेवा तलनु धोवणु, अथवा उकाळेवा पत्तावाणां शाकनु धोवणु

(३) आचामनु धोवणु (४) तलनु धोवणु (५) धान्यनु धोवणु (६) ज्वनु धोवणु (७) ओसामणु (८) आरनाल—छासना वासणेतुं धोवणु, अथवा छासनी उपर नीतरेल पाणी जेने 'आछ' पणु ठडे छे

(९) आम—आम्र आदि इणेतु धोवणु (१०) अम्बाडीनु धोवणु (११) कविठ धोवणु (१२) विजोरेनु धोवणु (१३) दाखनु धोवणु (१४) दाडिमनु धोवणु (१५)

इति मापायां, तस्य पानकं=पावनजलम् । (१३) द्राक्षापानकम्=द्राक्षाघावनमलम् ।  
 (१४) दाडिमपानकम्=दाडिघावनमलम् । (१५) सज्जरपानकम्=सज्जराघावन-  
 मलम् । (१६) नासिकेलपानकम्=नासिकेलघावनजलम् । (१७) करीरपानकम्=  
 करीरघावनजलम् । (१८) कोरूपानकम्=षडरपावननलम् । (१९) आमलकपानकम्=  
 आमलकघावननलम् । (२०) चिञ्चपानकम्=चिञ्चा-अम्लिका-इमली' इति मापायां,  
 तस्याः पानकं=पावनजलम् । (२१) शुद्धविहृतम्=अम्लानुत्कालिकम्पुष्पा बर्तं च ।

इह श्लेषद्वाराणि पृथिविकान्यपय् विज्ञेयानि ।

ये तु शाक्यादयः सविताः प्रायोपमोनिनः सन्ति तेषु शाक्यादयः  
 स्तोपमोर्गार्यम् 'आपो जीवा न सन्ति' इति प्रतिपादयन्ति, दण्डिनस्तु जलं  
 सवितां मन्यमाना अपि मोक्षप्रदादवस्तु स्वार्थमुत्कास्यन्ति, परमुपदिशन्ति, च,  
 यथा त्रिदशमुत्कासनीयं जलम्, इत्युपदिश्यात्कायसमारम्भं कारयन्तो न  
 केवलमुत्कार्यं विरहितान्ति, किन्तु तदाभितानन्यानपि द्वीन्द्रियान् विरापयन्ति ।

का बोधन (१५) सज्जर का बोधन (१६) नारियल का बोधन (१७) केर का बोधन  
 (१८) बेर का बोधन (१९) आमले का बोधन (२०) इमली का बोधन (२१) अम्लि से  
 उकास्य हुमा गर्म जल ।

जो शाक्य यदि सचित अणुकाय का सेवन करते हैं, उन में से शाक्य यदि  
 अपने उपमोता के लिए 'सब सचित नहीं है' इस प्रकार की प्रकृषणा करते हैं ।  
 सही लोक सब को सचित मान कर के भी मोक्ष और प्रसाद के बरा हो कर अपने लिए  
 पानी गरम करवाते हैं और दूसरों को उकासने का उपदेश देते हैं कि-सब तैल  
 सड़, उकासना चाहिए । जबकि तैल उकासेका पानी होना चाहिए  
 इस प्रकार उपदेश देकर अणुकाय का समास्य करते हुए न केवल अणुकाय की  
 हिंसा करते हैं अपि तु सब में रहन वाले द्वीन्द्रिय यदि की भी विरापना करत हैं ।

पित्तम् (१६) नारीजेलतु पित्तम् (१७) डेरतु पित्तम् (१८) मारानु पित्तम् (१९)  
 आलजानु पित्तम् (२०) आलजानु पित्तम् (२१) अमिथी उकासेतुं अरभ जल.

जो शाक्य यदि सचितअणुकायतु सेवन करे छ तेमांशी शाक्य यदि  
 शैताना उपमोता माटे 'सब सचित नहीं जे प्रकारनी प्रकृषणा करे छे छे छे कहने  
 सचित भानीने पयु शक जने प्रसाद बरा बरु पीताना माटे चाष्टी अरभ कराने  
 छे जने जीवने चष्टी अरभ करवाने उपदेश आपि छे छे-सब तयु सड़-उकासा  
 आपिने उकासेतुं अरभ जे. आ प्रभासे उपदेश आपिने अणुकायने समारभ करवा  
 बरा डेरतु अणुकायनीन हिंसा करे छे अनेतुं नदी परतु जलभां रदेवावागा द्वीन्द्रिय  
 आदिनी पयु विरापना करे छे

दृश्यन्ते च तीर्थादिषु अधःकर्मादिदोषदूषितभक्तपानादिग्रहणेनाष्कायादिमहासमारम्भं कुर्वाणाः । न च ते स्वात्मानं भवसागराचारयितुं समर्था भवन्ति, उक्तञ्च-भगवतो-त्तराध्ययनसूत्रे-(अध्य २० )

“ चिरंपि से मुंडरुई भवित्ता, अधिरव्वए तवनियमेहिं मट्टे ।

चिरपि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराए ” ॥ सू० ११ ॥

न केवल ते हिंसादोषभागिनः, अपि त्वन्यदोषभागिनोऽपि सन्ति, तदेव भगवानाह-‘अदुवा.’ इत्यादि ।

मूलम्—

अदुवा अदिन्नादानं ॥ सू० १२ ॥

छाया—

अथवा अदत्तादानम् ॥ सू० १२ ॥

तीर्थ आदि पर आधाकर्म आदि दोषों से दूषित आहारपानी ग्रहणकरके अप्कायका महारम करते हुए देखे जाते हैं । वे अपने आत्मा को भवसागर से तारने में समर्थ नहीं हैं । भगवान् ने उत्तराध्ययनसूत्र (अध्ययन २०) में कहा है—

“ जो पुरुष अस्थिर व्रत वाला है और तप तथा नियमों से ब्रष्ट है वह चिरकाल तक अपने आत्मा को क्लेश पहुँचाने पर भी सपराय (ससार से) पार नहीं हो सकता ” (उत्त अ २०) ॥ सू० ११ ॥

सचित्त जल का आरम करने वाले अकेली हिंसा के ही भागी नहीं हैं, किन्तु अन्य दोषों के भागी भी हैं । यही बात भगवान् कहते हैं—‘अदुवा.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—अथवा अदत्तादान का दोष लगता है ॥ सू० १२ ॥

तीर्थ आदि पर आधाकर्म आदि दोषोपेक्षित आहार-पाणी अक्षु करीने अप्कायने भंडारल करला होय ऐम जेवाभा आवे छे ते पोताना आत्माने भवसागरथी तारवाभा समर्थ नथी भगवाने-उत्तराध्ययन सूत्रमा (अध्ययन २०मा) कथु छे के-—

“ जे पुरुष अस्थिर व्रतवाणा छे अने तप तथा नियमोथी ब्रष्ट छे, ते लाभा समय सुधी पोताना आत्माने क्लेश थहोआउवा उपरात पणु ससारथी पार थध शकता नथी ” (उत्तरा० अ २०) (सू ११)

सचित्त जलने आरल करवावाणा अकेली हिंसानाज लागी नथी परन्तु अन्य दोषोपेक्षित पणु लागी छे ते वात भगवान कहे छे—‘अदुवा’ इत्यादि

मूलार्थ—अथवा अदत्तादानने दोष लागे छे (सू १२)

टीका—

‘अथवा’—इन्द्रः कथितस्यार्यस्य प्रकारान्तरेण स्पष्टीकरणे वर्तते । येऽण्काया रमिमास्तपामदचादानदोषाविरपि । यतोऽण्कायनोवैस्तेभ्यो नार्पितानि स्वशरीराण्यु पमर्दयितुं, ते च तानि वाङ्मनाःकाययोगै कृतकारितानुमोदितैस्पर्दयन्ति, तत-  
 चाण्कारम्मिमादचादानदोषोऽप्यनिवार्यो भवति, तस्मात्सुसुमुमिः सर्वेषांण्काया-  
 र्म्भो वर्जनीयः, इति मगवता साक्षात्प्रोक्तम् ॥ सू० १२ ॥

सन्निचमलोपमोगिनो हि पृष्टाः सन्धो यद् धदन्ति तदाह—

यद्वा-अण्कापारम्मं स्वयं परिहर्षुमसमाः श्वाक्यादयो यद्दन्ति तदाह—

‘कप्यं ये’ इत्यादि ।

टीकार्थ—पहल कही हुई बात का दूसरी तरह से स्पष्टीकरण करने के लिये ‘अथवा’ शब्द है । जो अण्काय का आरम्भ करते हैं उन्हें अदचादान का दोष भी समझता है । कारण यह है कि-अण्काय के जीवों ने अपने शरीर उपमर्दन करने के लिए उन्हें सौंभे ली है, फिर भी वे स्नेह मन बचन काय से और कृत कारित, अनुमोदना से उनका उपमर्दन करते हैं अतः अण्काय का आरम्भ करने वालों को अदचादान का दोष अनिवार्य है । अतः सुसुमु पुरुषों को अण्काय का आरम्भ त्यागना चाहिए । ऐसा मगवान् ने साक्षात् कहा है ॥ सू. १२ ॥

सन्निच कसका उपयोग करनेवाले पुरुषों पर जो उतर देते हैं सो कहते हैं-  
 यद्वा जो स्नेह अण्काय के आरम्भ को त्यागन में असमर्थ हैं उनका कर्मन बतलाते हैं-  
 ‘कप्यं ये’ इत्यादि ।

टीकार्थ—प्रथम कहेकी बातने जील सीतधी स्पष्टीकरणे करवाना अर्थमां  
 अथवा शब्द से अण्कायने आरम्भ करे से तेने अदचादानने दोष पक्ष बाजे  
 से कारण से से अण्कायना लोकोके पोतानु शरीर उपमर्दन करवा भाटे तेने सेऽण्-  
 नधी तो पक्ष ते दोषो मन, वयन अने श्वाधी अने करवुं, करवुं तथा अनुमोदनुं  
 ते परे कही उपमर्दन करे से ते कारणधी अण्कायने आरम्भ करवावागाने अदचा-  
 दानने दोष पक्ष अनिवार्य (राणी न शक्य नेवे) से जो भाटे सुसुमु पुरुषोको  
 अण्कायने आरम्भ त्यागी देवे जोधने को प्रभावे अत्रवाने साक्षात् कसु से (सू. १२)

सन्निच कसका उपयोग करवावागाने पुरुषना से उतर आपे छे-ते कहे से  
 अथवा से दोष अण्कायना आरम्भने त्यजवाभांअसमर्थ से तेमनु कहेनु-अथन  
 पक्षवे से ‘कप्यं ये’ इत्यादि

मूलम्—

कप्पइ णे कप्पइ णे पाउं अदुवा विभूसाए ॥ सू० १३ ॥

छाया—

कल्पतेऽस्माकं कल्पतेऽस्माकं पातुं, अथवा विभूपायै ॥ सू० १३ ॥

टीका—

‘कल्पतेऽस्माक’—मिति । न वयं स्वेच्छयोदकमृपमर्दयामः किन्त्वस्माकमागमे निर्जीवत्वेन प्रतिबोधितत्वादनपिद्धत्वाच्च पातुं कल्पते । ‘कल्पतेऽस्माकम्’ इत्यस्य द्विरुच्चारणेन पुनःपुनरनेकप्रयोजनवशाद् बहुविध उपभोगोऽस्माकं कल्पते, इति बोध्यते । तथाहि—

भस्मस्नायिनो वदन्ति—अस्माकं पातुमेव कल्पने न तु स्नातुमिति ।

शाक्यादयस्त्वेवं जल्पन्ति—स्नान-पानादि सर्वं कल्पते जलेनेति ।

मूलार्थ—हमें कल्पता है, हमें कल्पता है, (जल) पीने और विभूषा करने—हाथ पैर आदि धोने, नहाने—के लिए ॥ सू १३ ॥

टीकार्थ—हम स्वेच्छ से जल की विराधना नहीं करते, वरन हमारे आगम में जल को अचित्त बतलाया है और पीने का निषेध नहीं किया है, अत हमें पीना कल्पता है । ‘हमें कल्पता है’ यह दो बार कहने से यह सूचित किया गया है कि—प्रयोजन के वश नाना प्रकार का उपभोग करना हमें कल्पता है । जैसे—

भस्म से स्नानकरनेवाले कहते हैं—हमें पीना ही कल्पता है, स्नानकरना नहीं कल्पता ।

शाक्य आदि का कहना है कि—हमें पीना और स्नानकरना—सभी कुछ कल्पता है !

मूलार्थ—अमने कल्पे छे, अमने कल्पे छे, (जल) पीवाने अने विभूषा-हाथ पैर आदि धोवा, नडावा माटे (सू १३)

टीकार्थ—अमे स्वेच्छाथी जलनी विराधना करता नथी परतु अमारा आग-भमा जलने अचित्त भताव्यु छे, अने पीवानो निषेध कथी नथी तेथी अमारे पीवु कल्पे छे ‘अमारे कल्पे छे.’ आ जे वार कहेवाथी अे सूचित करवाभा आव्यु छे के—प्रयोजनवश नाना प्रकारनेो उपभोग करवानु अमने कल्पे छे जेम के—

भस्मथी स्नानकरवावाणा कहे छे—अमारे पीवु कल्पे छे, स्नान करवु कल्पतु नथी

शाक्य आदिनु कहेवु छे के—अमारे पीवु अने स्नान, सवे कछ कल्पे छे.

ते पुनरेवै वदन्ति—अथवा विभूषणैः—शोभार्थं कल्पतेऽस्माकमुदकमिति । विभूषा नाम—करचरणसुखादिप्रसाधनादिका, यथादिप्रसाधनरूपा वा, तदर्थं नलेन व्यपहर तामस्माकं नास्ति कोऽपि दोषोऽप्य इति ॥ सू० १३ ॥

पुनः किं कुर्वन्ति ते ? इत्याह—'पुनो सत्येहि,' इत्यादि  
 मूलम्—

पुनो सत्येहि विदुहति ॥ सू० १४ ॥

छाया—

पृथक् प्रसैष्यां चर्षयन्ति ( विदुहति वा ) ॥ सू० १४ ॥

॥ टीका ॥

आत्मानमनगारं प्रकृशमानां श्लाक्यादयः पृथक्—मिन्नमिन्नस्वरूपैः श्लैः—  
 स्नानपानपाशनादिसेचनादिमिरफ्फयत्रीशान् व्यावर्षयन्ति—प्राणेष्व्यो व्यपरोपयन्ति ।  
 यथा विदुहन्ती—'तिष्ठत्याया तेन विदुहन्ति—पिन्नेपेन चिन्दन्ति, सर्षया मायेन  
 विराधन्तीत्यर्थः ॥ सू० १४ ॥

उक्तका यह भी कहना है कि—विभूषण—शोभा के लिए भी एक का उपमोग हमें  
 कल्पता है । हाथ, पैर, मुख, आदि पोना और कन आदि पोना विभूषण है । इस के लिए  
 कल्पन व्यवहारक्रमे में हमें बरा भी दोष नहीं लगता ॥ सू० १३ ॥

वे और क्या करते हैं, सो करते हैं—'पुनो' इत्यादि ।

मूलार्थ—मिन्न—मिन्न शक्तों से एकत्र कर के हिंसा करते हैं ॥ सू० १४ ॥

टीकार्थ—अपन को अनगार करते हुए शान्त्य बगैरह मिन्न—मिन्न प्रकार के शक्तों  
 से स्नान, पान पोना सींचना आदि कार्य कर के अफ्फय की हिंसा करते हैं । अथवा  
 पूर्वमम से उद्य की विराधय करते हैं ॥ सू १४ ॥

तेभ्यु जे पद्यु कडेवु उ ठे विभूषण—शोभा भा? पद्यु कडेवुने उपभोजन अभाह  
 कथे उे दाव पत्र, सुभ आदिने पारवां अने वरु आदि पारवां ते विभूषण कडेवाव उे  
 जे भाटे कडेवुने व्यवहार कडेवाभां अमने कडापद्यु दोष काजते नथी (सू. १३)  
 ते नील्यु शु करे उे ते कडे उे 'पुनो' इत्यादि

मूलार्थ—बुरा बुरा शक्तोषी कडेवुनी हिंसा करे उे (सू. १४)

टीकार्थ—पेताने अनुचार कडेवाव शक्य बनेरे निन्न—मिन्न प्रकारका शक्तोषी  
 कल्पन, पान, पोना, सींचना आदि कार्य करके अफ्फयनी हिंसा करे उे अथवा  
 पूर्व रूपशी तेनी विराधय करे उे (सू. १४)

साम्प्रतमेपां युक्त्यागमयोर्निस्सारत्वं प्रदर्शयन्नाह—‘एत्यवि.’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्थ वि तेसिं नो निरुणाए ॥ सू० १५ ॥

॥ छाया ॥

अत्रापि तेषां नो निरुणायै ॥ सू० १५ ॥

॥ टीका ॥

तेषां शक्यादीनां युक्तयः अत्र=अस्मिन्नप्लायारम्भविषये नो=नैव निरुणायै=निश्चयकरणाय समर्थाः सन्ति । अपिशब्देन तेषामागमोऽपि न निश्चेतु समर्थो भवति । आगमत्वपि तत्र न संभवति, अनाप्तप्रणीतत्वात्, हिंसाविधायकत्वाच्च । यतो हि स एवागमशब्दवाच्यः यः खलु वीतरागप्रणीतः सर्वप्राणिहितकरो भवति ॥ सू० १५ ॥

उन का कथन युक्ति और आगम से सारहीन है, यह बतलाते हुए कहते हैं—‘एत्यवि.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—उन लोगों को युक्तियाँ अप्लाय के विषय में निश्चय नहीं कर सकती ॥ सू० १५ ॥

टीकार्थ—उन शाक्य आदि की युक्तियाँ अप्लाय के आरम्भ के विषय में, निश्चय करने में समर्थ नहीं हैं । ‘वि’ अपि शब्द से यह सूचित किया है कि—उनका आगम भी निश्चय करने में समर्थ नहीं है । उनका आगम, आगम भी नहीं है, क्योंकि वह आप्तपुरुषद्वारा प्रणीत नहीं है और हिंसा का विधान करनेवाला है । आगम वही कहला सकता है जो वीतरागद्वारा प्रणीत हो और प्राणीमात्र का हितकारी हो ॥ सू० १५ ॥

तेमनु कथन—कडेबु—युक्ति अने आगमथी सारहीन छे. अये पतावीने कडे छे—‘एत्यवि,’ इत्यादि

सुदार्थ—ते दोकेनी युक्तिअये अप्लायना विषयमा निश्चय करी शकती नथी. (सू. १५)

टीकार्थ—ते शाक्य आदिनी युक्तिअये अप्लायना आरम्भना विषयमा निश्चय करवामा समर्थ नथी ‘वि’ अपि शब्दथी अये सूचित करुं छे के तेमनु आगम पणु निश्चय करवामा समर्थ नथी तेमनु आगम ते आगम पणु नथी केमके ते आप्त पुरुषे द्वारा प्रणीत नथी अने हिंसानु निधान करवावाणा छे आगम ते कडेवाय छे के जे वीतरागद्वारा प्रणीत होय अने प्राणीमात्रनु हितकारी होय (सू. १५)

उत्प्रेषणार्थं धीकृत्य प्रतिषोध्य अस्य उद्देशस्य स्वकार्यस्युपसंहरकार- 'एत्य सत्यं' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्य सत्यं समारम्भमाप्तस्य इत्येते आरम्भा अपरिष्णाया भवति । एत्य सत्यं असमारम्भमाप्तस्य इत्येते आरम्भा परिष्णाया भवति । तं परिष्णाय मेधावी षोडशस्य उदयसत्यं समारम्भेष्वा, षोडशस्य समारम्भेष्वा, उदयसत्यं समारम्भेष्वा इत्येते म समञ्जसाणेष्वा । अरसेते उदयसत्यसमारम्भा परिष्णाया भवति से इ सुणी परिष्णाफक्रमे ति वेति ॥ सू० १६ ॥

सद्यो उरेशो समस्तो ॥ ३ ॥

छाया—

अथ सर्वं समारम्भमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिष्णाया भवन्ति । अथ सर्वं समारम्भमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिष्णाया भवन्ति । तत्र परिष्णाय मेधावी नैव स्वयमुदयसत्यं समारम्भे, नैषान्त्यैरुदयसत्यं समारम्भे, उदयसत्यं

इस प्रकार सब को ही बतलाकर इस उद्देश के समस्त कवन का उपसंहार करते हैं—'एत्य सत्यं' इत्यादि ।

मूलाय—अणुकाय में शब्द का आरम्भ करने वाले को ये आरम्भ शब्द नहीं होते । अणुकाय में शब्द का आरम्भ करने वाले को ये आरम्भ शब्द होते हैं । उन्हें ध्यानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं ब्रह्म का आरम्भ न करे, दूसरों से आरम्भ न कराव और आरम्भ करने वाले दूसरे को मग्न न जाने । जो अणुकाय के इस आरम्भ को जानता है वही परिष्णतकर्मा मुनि है । अगवान् से मैंने जो सुना वह कहता है ॥ सू० १६ ॥

अथ प्रभाषे ब्रह्मणे एव जलावीनि आ उरेशकानां समस्तं कवनने उरेशकार इति छे— एत्य इत्यादि

मूलाय—अणुकाय में शब्द का आरम्भ करने वाले को ये आरम्भ शब्द नहीं होते । अणुकाय में शब्द का आरम्भ करने वाले को ये आरम्भ शब्द होते हैं । उन्हें ध्यानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं ब्रह्म का आरम्भ न करे, दूसरों से आरम्भ न कराव और आरम्भ करने वाले दूसरे को मग्न न जाने । जो अणुकाय के इस आरम्भ को जानता है वही परिष्णतकर्मा मुनि है । अगवान् से मैंने जो सुना वह कहता है ॥ सू० १६ ॥



समारभमाणानन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १६ ॥

। तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ३ ॥

टीका--

अत्र=अस्मिन्नपकाये शस्त्रं=द्रव्यभावरूपं समारभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते आरम्भाः बन्धहेतुत्वेनापरिज्ञाता भवन्ति । अत्र=अस्मिन्नपकाये शस्त्रं=द्रव्य-भावरूपम् असमारभमाणस्य=अव्यापारयतः इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः, तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः । ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति दर्शयति-‘तत् परिज्ञाये’-त्यादि । तद्=उदकारम्भणं पग्निज्ञाय=‘बन्धाय भवती’-त्येवमवबुध्य मेधावी=साधुमर्यादायां सावधान, नैव स मुदकशस्त्र समारभेत, नैवोन्यैरुदकशस्त्रं समारम्भ-

टीकार्थ—इस अप्काय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का व्यापार करने वाला अपने व्यपारों को कर्मबध का कारण नहीं जानता । जो अप्काय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का उपयोग नहीं करते, उन्हें इस व्यापारों का ज्ञान होता है । अर्थात् वे ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देते हैं । ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है सो कहते हैं—जल के आरभ को कर्मबध का कारण जानकर साधु की मर्यादा में रहने वाले बुद्धिमान् स्वयं जलकाय का आरभ नहीं करे, दूसरों से आरभ नहीं करावे और जलका आरभ करने

टीकार्थ—आ अप्कायना विषयमा द्रव्य अने भावरूप शस्त्रेणो व्यापार करवा-वाणा चोताना व्यापारेणे कर्मबधनु कारण्यु जल्यता नथी जे अप्कायना विषयमा द्रव्य अने भावरूप शस्त्रेणो उपयोग करता नथी, तेने जे व्यापारेणु ज्ञान होय छे अर्थात् ते ज्ञपरिज्ञाथी जल्युनि प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेने त्याग करी दे छे

ज्ञपरिज्ञा पछी प्रत्याख्यानपरिज्ञा केवा प्रकारे उत्पन्न थाय छे, ते कहे छे—जलना आरभने कर्मबधनु कारण्यु जल्यु करीने साधुनी मर्यादाभा रडेवावाणा बुद्धिमान स्वयं जलकायने आरभ करे नछि, भीज पासो करावे नछि, अने जलने आरभ करवावाणाने

येत्, उदकशस्त्रं समारम्भणात् अन्यान् अपि न समनुजानीयात् नानुमोदये  
दिस्पर्शः । यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा  
मुनिर्मवति, इति व्रषीमि, एतद्व्याख्यानं प्राग्बु बोध्यम् ॥ सू० १६ ॥

इत्याचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययमे  
वृत्तीयोद्देशः समाप्त ॥ १ । ३ ॥

पहले दूसरी का अनुमोदन नहीं करे । जो उदकशस्त्र के आरम्भ को ध्यानता है वह  
परिज्ञातकर्मा मुनि है । 'इति व्रषीमि' का अर्थ पहले की तरह जामना पाइए ॥ सू० १६ ॥

इति भी आचाराङ्ग सूत्र की 'आचारचिन्तामणि' टीका के  
हिन्दी अनुवाद में प्रथम अध्ययनका  
तीसरा उद्देशक समाप्त ॥ १-३ ॥

अनुमोदन आये नहीं, जो उदकशस्त्र आरम्भने लगे थे, ते परिज्ञातकर्मा मुनि थे  
'इति व्रषीमि' ने अर्थ पहलेवाना प्रभावे लक्षणे लोके. (सू० १६)

इति भी आचाराङ्ग सूत्रनी 'आचारचिन्तामणि' टीकाना  
गुजराती अनुवादभा प्रथम अध्ययनने  
तीजे उद्देशक समाप्त ॥ १३ ॥



संश्लेषद्वारम्—

ननु तत्ररक्षयजीवाः सन्तीत्यत्र किं मानम् ? उच्यते—अङ्गाराद्यो  
बीजशरीराणि, छेषत्वाद्, हृष्यत्वाद्, करपरमादिसमुदायवत् ।

अङ्गारादीनां प्रकाशपरिणामः आत्मप्रयोगाभिर्भूतः शरीरस्यत्वात्,  
सर्वोत्प्रेक्षपरिणामवत् । यथा—रत्नन्यादीं पिच्छिकाल मापिबिज्ञपस्य स्वघोसस्य  
देहपरिणामो बीजप्रयोगविशेषाद् भवति, एवमङ्गारादीनामपि प्रकाशपरिणामः ।

यद्वा—अङ्गारादीनामूष्मा आत्मसंमयोगपूर्वकः, क्षीरोत्सत्वात्, ज्वरोत्पन्नवत् ।

उत्सर्गद्वारम्—

शुद्धा—तेजस्वय के बीजा के अस्तित्व में क्या प्रमाण है ?

समाधान—भंगार आदि, जीव के शरीर हैं, क्यों कि वह छब है भेष है और  
उत्प है, जैसे हाथ-पैर आदि का समूह ।

जन्मा—भंगार आदि की प्रकाशरूप पर्याय, आत्मा के प्रयोग से उत्पन्न हुई है  
क्यों कि वह शरीर में स्थित है, जैसे—सुगन्ध के शरीर की पर्याय, जैसे रात्रि बगैरह  
साथ समय में सुगन्ध नामका प्राणी का शरीरपरिणाम (जन्मका) जीव के प्रयोग से प्रकट  
होता है, उसी प्रकार भंगार आदि का प्रकाशरूप परिणाम भी आत्मा के व्यापार से ही  
उत्पन्न होता है ।

जन्मा—अङ्गार आदि की गर्मी आत्मा के व्यापार से उत्पन्न होती है, क्यों कि वह  
शरीर में है, जैसे ज्वर की गर्मी, ज्वर की गर्मी जीव से युक्त शरीर में ही उत्पन्न होती है,

संश्लेषद्वारम्—

शुद्धा—तेजस्वयना लुपेना अस्तित्व (होवापक्व)मं ह्युं प्रमाणं उ ?

समाधान—अङ्गार आदि लुपेना शरीर उ केभके ते उत्प उ वेध उ जने  
धम उ नेभके ज्ञाय, यज आदिना समूह

जन्मा—अङ्गार आदिनी प्रकाशरूप पर्याय आत्माना प्रयोजधी उत्पन्न वध  
उ ? कारणके ते शरीरमा स्थित उ, लेनी रीते—सुगन्ध (आग्निधे नामना प्राणी)ना  
शरीरनी पर्याय, जेभ सत्री बगेरे पास समकमां सुगन्ध (आग्निधे)नामक प्राणीने।  
शरीर-परिणाम (जन्मका) लुपेना प्रयोजधी प्रजट धाम उ ते प्रमाणे अङ्गार आदिना  
प्रकाशरूप परिणाम यज आत्माना व्यापारधील उत्पन्न धाम उ

जन्मा—अङ्गार आदिनी जरधी आत्माना व्यापारधी उत्पन्न धाम उ कारणके त  
शरीरमां उ नेभके ज्वर-तापनी जरधी, ज्वर-तापनी जरधी लुपधी युक्त शरीरमां

अयं भावः—कृतकारितानुमोदितभेदेन, मनोवाक्कायभेदेन, तथाऽतीतानागतवर्तमान-  
भेदेन च प्रत्येकक्रियायाः सप्तविंशतिभेदा भवन्ति; एवमस्या अपि तेजस्काय-  
जीवाभ्याख्यानरूपक्रियाया ऋकस्या एव सप्तविंशतिभेदा भवितुमर्हन्ति ।  
तत्र कस्याञ्चिदपि क्रियाया स्वात्मानं न नियुञ्ज्यादिति । उपपद्यतेऽप्ययमर्थः,  
अन्यथा हि स्वयंकृतस्वैवाभ्याख्यानस्य प्रतिषेधे कारितानुमोदितरूपाणां  
तेजस्कायजीवाभ्याख्यानरूपक्रियाणां प्रतिषेधाभावः प्रसज्येत । ततश्च तादृशाभ्या-  
ख्यानं पापाय न स्यात् । तथाचोत्सृज्यप्ररूपणापत्तिः ।

तात्पर्यं यह है—प्रत्येक के कृत, कारित, अनुमोदना, मन, वचन काय,  
और अतीत, अनागत, वर्तमान के भेद से ( इनका परस्पर गुणाकार करने से ) सत्ताईस  
भेद होते हैं । इसीप्रकार इस तेजस्काय का अपलापरूप क्रिया के भी सत्ताईस भेद हो  
सकते हैं । इन भेदों से किसी भी भेद में आत्मा को जोड़ना न चाहिए । अगर ऐसा अर्थ  
न लगाया जाता तो यह भी समझ लिया जाता कि—अग्निकाय का स्वयं अपलाप न करे,  
मगर अपलाप कराने और अनुमोदन करने की क्रियाओं का निषेध नहीं है । ऐसा  
अर्थ सगत नहीं है, क्यों कि ऐसा अर्थ करने से केवल स्वयंकृत अपलापका ही  
प्रतिषेध होगा, किन्तु कारित और अनुमोदित अपलापका प्रतिषेध नहीं होगा और इस  
प्रकार का अपलाप पाप का कारण न होगा । फिर तो सूत्र के विरुद्ध प्ररूपणा का  
दोष आवरगा ।

तात्पर्यं ये छे—प्रत्येक क्रियाना करबुं—करावबुं अने अनुमोदना, मन, वचन,  
काया अने भूतकाय, लविध्यकाय तथा वर्तमान जालना बोद्धी ( अने परस्पर  
बुद्धाकार करवाथी ) सत्तावीस बोध थाय छे. ये प्रमात्रे आ तेजस्कायना अपलापइय  
क्रियाना पञ्च सत्तावीस बोध थई शकै छे ये बोद्धामाथी कौई पञ्च बोद्धमा आत्माने  
जेउवे जेईअे नहि, परन्तु ये प्रमात्रे अर्थ करवाभा न आवे तो ये पञ्च सभल  
बोद्धामां आवत कै, अग्निकायने स्वयं अपलाप करे नहि परन्तु अपलाप कराववानी  
अने अनुमोदन करवानी क्रियाओने निषेध नथी आ प्रकारने अर्थ सगत नथी,  
केभकै—आवे अर्थ करवाथी केवण स्वयंकृत अपलापनेअ निषेध थये किन्तु कारित  
अने अनुमोदित अपलापने निषेध थये नहि, अने ये प्रकारने अपलाप पापत्  
कारण न थाय, पछी तो सूत्रना विरुद्ध प्ररूपणानो दोष आवथे.

“ तेन चित्तमंतमन्त्राया अपेगनीवा पुढोसता अस्त्य सत्यपरिष्कारं ”  
इत्यादि । ( दृश्यै० अ० ४ )

परिष्कारादिसु-

अग्निहायनीया द्विविधा, सूक्ष्मबादरमेवात् । तत्र सूक्ष्मनामकर्मोदयात्  
सूक्ष्माः । बादरनामकर्मोदयात् बादराः । तत्र सूक्ष्माः द्विधा, पर्याप्ता अपर्याप्ताम् ।  
सूक्ष्माः सर्वसोकम्यापिनाः । बादरास्तु लोकैश्चदेष्टे सन्ति ।

बादरा अग्निहायनीया अनेकविधाः—अज्ञातचित्तलातशुद्धान्वाद्यः । सर्वे बादरा  
अग्निहायनीया अपि द्विविधाः पर्याप्ता अपर्याप्ताम् । बादराणां यत्रैको नीयस्तत्रा-

‘ तेनैकाय सचित्त कदा गया है । उस में अनेक बीज हैं, उनका अस्तित्व अज्ञात-  
कदा है शक्तपरिष्कार अग्नि को छोड़ कर’ इत्यादि । ( दृश्यै० अथ० ४ )

परिष्कारादिसु—

अग्निहायनीया के बीज दो प्रकार के हैं—(१) सूक्ष्म और बादर, जिनके सूक्ष्म नामकर्म  
का उदय हो वे सूक्ष्म और जिनके बादर नामकर्म का उदय हो वे बादर बीज हैं । इनमें  
से सूक्ष्म के भी दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । सूक्ष्म बीज समस्त लोकैश्चारा में व्याप्त  
हैं और बादर लोक के एक देश में हैं ।

बादर अग्निहायनीया अनेक प्रकार के हैं । जैसे—अज्ञात, अज्ञात ( अज्ञात  
हुमा कर्म), शुद्ध अग्नि आदि । सब बादर अग्निहायनीया भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्त

“ तेनैकाय सचित्त कहेतुं छे तेमां अनेक एव छे तेन अस्तित्व अज्ञात-  
कदा छे शक्तपरिष्कार अग्निने छोड़ने । इत्यादि ( दृश्यै० अ० ४ )

परिष्कारादिसु—

अग्निहायनीया एव दो प्रकारना छे—(१) सूक्ष्म अने (२) बादर. जेने सूक्ष्म  
नामकर्मना उदय होय ते सूक्ष्म अने जेने बादर नामकर्मना उदय होय ते बादर  
एव छे तेमांही सूक्ष्मना पक्ष के दोह छे पर्याप्त अने अपर्याप्त. सूक्ष्म एव  
समस्त लोकैश्चारा में व्याप्त छे अने बादर लोकना लोक देशमां छे

बादर अग्निहायनीया अनेक प्रकारना छे. जैसे—अज्ञात अज्ञात, अज्ञात लोक  
शुद्ध अग्नि अने. सब बादर अग्निहायनीया पक्ष के प्रकारना छे—पर्याप्त अने अपर्याप्त,

यथा—ज्वरोष्मा जीवाधिष्ठितशरीरमेवाश्रित्य भवति, जीवसंयोगं नातिक्रामति । न च मृता ज्वरिणः क्वचिदुपलभ्यन्ते । एवमन्वयव्यतिरेकाभ्यामग्नेः सच्चित्ता विज्ञेया । न च सूर्यादिभिरनेकान्तो वाच्यः, सर्वेषामात्मसंयोगपूर्वक एवोष्ण परिणामो भवति, तस्मादनेकान्तो न संभवति ।

यद्वा--तेजः सचेतनम्, यथायोग्याहारग्रहणेन वृद्धिविशेषतद्विकार-वत्त्वात्, पुरुषवत् । एवमुक्तलक्षणेन तेजस्कायजीवाः सन्तीति विज्ञायते ।

यद्वा—अव्यक्तोपयोगादीनि कषायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिव्यप्-कायवत् तेजस्कायेऽपि समुपलभ्यन्ते । एवं च जीवलक्षणसद्भावात् तेजस्कायजीवाः सन्तीति निश्चीयते । आगमोऽपि यथा—

जीव के संयोग विना उत्पन्न नहीं होती । मुर्देमें ज्वर कहीं नहीं देखा जाता । इस प्रकार अग्नि में अन्वय—व्यतिरेकद्वारा सच्चित्ता ममदानी चाहिए । यहाँ मूर्त्य से हेतु में व्यभिचार नहीं है, क्यों कि सब में आत्मप्रयोगपूर्वक ही गर्मा हो सकती है, अतः व्यभिचार नहीं है ।

अथवा—तेज सचेतन है, क्यों कि यथायोग्य आहार ग्रहण करने से उस में वृद्धिरूप विकार देखा जाता है, जैसे पुरुष में । इस प्रकार इस लक्षण से तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व विदित होता है । अथवा अप्रकट उपयोग से लेकर कषायपर्यन्त जीव के लक्षण जैसे पृथ्वीकाय और अप्काय में पाये जाते हैं, उसी प्रकार तेजस्काय में भी पाये जाते हैं । इस प्रकार जीव के लक्षण पाये जाने के कारण तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व निश्चित होता है । इसमें आगम प्रमाण भी है—

उत्पन्न थाय छे एवना संयोग विना उत्पन्न थती नथी मुउतामा न्वर-ताव केध स्थणे जेवाभा आवतो नथी, आ प्रभाषु अग्निमा अन्वय-व्यतिरेकद्वारा सच्चित्ता समन्वी जेधये. अर्द्धि सूर्यथी हेतुमा व्यभिचार नथी केमके सर्वमा आत्मपूर्वकण गरभी होध शके छे, अेटला कारणथी व्यभिचार नथी

अथवा—तेज सचेतन छे केमके यथायोग्य आहार ग्रहण करवाथी तेनामा वृद्धिरूप विकार जेवाभा आवे छे जेवी रीते पुरुषमा आ प्रकारे एवना लक्षण भणवाथी तेजस्कायना एवेनु अस्तित्व जणुवाभा आवे छे

अथवा—अप्रकट उपयोगथी लधने कषायपर्यन्त एवना लक्षण जेवाभा आवे छे, ते कारणु तेजस्कायना एवेनु अस्तित्व निश्चय होय छे. आमा आगम प्रभाषु पणु छे—

त्यजन्ते, तस्मात् सूक्ष्मा वादराश्च प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तमेवेन द्विविधा भवन्ति । सर्वे चैते वर्णान्तरसंस्पर्शमेवै सदस्राग्रधो मिथमानाः सख्येययोनिप्रसूत्सन्नतसद्व्यमेदपरिमाणा भवन्ति । सप्रयां संवृतोप्या च योनि सखिताचितमिथमेवेन विधा । ण्यां सप्त सख्याणि योनयो भवन्ति ।

सूक्ष्मवादराणामुभयेषामग्निकायातां शरीरसंस्थान सूक्ष्मकलापाकृतिभ्यः, अन्य शरीरमयादिभ्यः पृथिवीकाय यत् । उभयेऽग्निकायाः प्रत्येकमसंस्पर्शेयाय ।

पर्याप्त के अर्थ ही उत्पन्न होते हैं । अत सूक्ष्म और वादर, प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो भेद हैं और वर्ण, रंग रस और स्पर्श के भेद से इतने भेदों को प्राप्त होते हुए इनकी संख्येय योनि वगैरह भेदों की संख्या सप्तों की हो जाती है ।

इनकी योनि संवृत और उणा है । वह भी सखित अनित और मित्र के भेद से तीन प्रकार की है । इनकी सात कास योनियाँ हैं ।

सूक्ष्म और वादर—दोनों प्रकार के अग्निहाय जीवों के शरीर का आकार सुइयों के समान ही तरह है । शरीरत्रय आदि अन्य भेद पृथ्वीकाय के समान हैं । दोनों प्रकार के अग्निहाय असंख्यात—असंख्यात हैं ।

अग्निहाय उत्पन्न आयु है जो क्षणिकी सूक्ष्म होने बाद प्रत्येकना पर्याप्त होने अपर्याप्तना केदधी से केदु है होने वयु, अंध, रस होने क्षणिकी केदधी केदधी केदधी यामता यथा ज्येनी सख्येय योनि वजेश भेदानी सख्या बाज्या यथा अन्य है

तेनी योनि सवृत होने उच्यु है ते ययु सखित, अनित होने मित्रना केदधी वयु प्रकारनी है ज्येनी सात कास योनिजो है

सूक्ष्म होने वादर होने प्रकारना अग्निहाय एवोना शरीरना आकार सोयना अमूर्तनी प्रभवे है शरीरत्रय (वयु शरीर) आदि अन्य भेद पृथ्वीकायनी समान है होने प्रकारना अग्निहाय असंख्यात—असंख्यात है

સંખ્યેયૈર્નિયમતો માવ્યમ્ । વાદરાણાં સ્વસ્થાનં મનુષ્યક્ષેત્રમેવ, ન તતઃ પરમસ્તિ ।

વાદરાસ્તેજસ્ક્રાયાઃ વ્યાઘાતાભાવે સત્તિ મનુષ્યક્ષેત્રેર્ધૃત્વીયદ્વીપસમુદ્રેષુ પશ્ચદશક્ષેત્રેષુ વિઘ્નન્તે । યુગલસમયરૂપે વ્યાઘાતે સત્તિ તુ પશ્ચમહાવિદેહેષુ વર્તન્તે, નાન્યત્ર । ઉપપાતાદ્વીકરણેન લોકસંખ્યેયભાગવર્તિનઃ સન્તિ ।

સમુદ્ઘાતેન સર્વલોકવર્તિનઃ પૃથિવીકાયાદયશ્ચ મારણાન્તિકસમુદ્ઘાતેન સમવદ્ધતા વાદરાગ્નિષુ સમુત્પદ્યમાનાસ્તત્તદ્વ્યપદેશભાજઃ સર્વલોકવ્યાપિનઃ સન્તિ ।

યત્ર ચ વાદરાઃ પર્યાપ્તાસ્ત વ વાદરા અપર્યાપ્તાઃ, યતસ્તે તન્નિશ્રયો

ઔર અપર્યાપ્ત । જહાં એક વાદર જીવ હોતા હૈ વહાં નિયમ સે અસલ્યાત જીવ હોતે હૈ । વાદર જીવોં કા ક્ષેત્ર મનુષ્યલોક હી હૈ, ઉસસે આગે નહીં ।

વાદર તેજસ્ક્રાય વ્યાઘાત (અન્તર) ન હો તો મનુષ્ય ક્ષેત્ર મેં અઢાઈ દ્વીપ સમુદ્રોં મેં પન્દ્રહ ક્ષેત્રોં મેં રહતે હૈ । યુગલિયોં કે સમયરૂપ વ્યાઘાત (અન્તર) કે હોને પર પાંચ મહાવિદેહોં મેં રહતે હૈ, અન્યત્ર નહીં । ઉપઘાત કી અપેક્ષા લોક કે સલ્યાત ભાગ મેં રહતે હૈ ।

સમુદ્ઘાત કી અપેક્ષા—સમસ્તલોકવ્યાપી પૃથ્વીકાય આદિ, મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત કરકે વાદર અગ્નિ મેં ઉત્પન્ન હોતે હુએ, ઉસ—ઉસ વ્યપદેશ (નામ) કે પાત્ર હો કર સર્વલોકવ્યાપી હૈ ।

જહાં વાદર પર્યાપ્ત હૈ વહીં વાદર અપર્યાપ્ત હૈ, ક્યોં કિ—અપર્યાપ્ત જીવ

ન્યા એક બાદર એવ હોય છે ત્યા નિયમથી અસખ્યાત એવ હોય છે બાદર એવોનુ ક્ષેત્ર મનુષ્ય લોકજ છે. તેનાથી આગળ નથી

બાદર તેજસ્ક્રાય, અન્તર ન હોય તો મનુષ્ય ક્ષેત્રમા અદી દ્વીપ—સમુદ્રોમા, પદર ક્ષેત્રોમા રહે છે યુગલિઆઓના સમયરૂપ અતર હોવા પર પાચ મહાવિદેહોમાં રહે છે, અન્યત્ર નહિ ઉપપાતાની અપેક્ષા લોકના સખ્યાત ભાગમા રહે છે

સમુદ્ઘાતની અપેક્ષા સમસ્તલોકવ્યાપી પૃથ્વીકાય આદિ મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત કરીને બાદર અગ્નિમા ઉત્પન્ન થઈને તે—તે વ્યપદેશ—(નામ)ને પાત્ર થઈને સર્વ લોકવ્યાપી છે

ન્યા બાદર પર્યાપ્ત છે ત્યાજ બાદર અપર્યાપ્ત છે, કેમકે—અપર્યાપ્ત એવ પર્યાપ્તના



वाहरापर्याप्तोभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वाहरा अपर्याप्तास्तेजस्काया अर्संस्यातगुणहीनाः,  
 सूक्ष्मा अपर्याप्तास्तेजस्काया विशेषहीनाः ।  
 सूक्ष्मपर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्माः पर्याप्तास्तेजस्काया विशेषहीना इति ।

एवं पुत्रयागममामाभ्यामन्नेर्षीवत्से सिद्धे यदि कश्चिदग्निहाय  
 नीहस्याभ्याभ्यामं कुर्यात्, उर्ध्वपयोगादिस्त्वैज्जमितस्य क्षीरापिच्छादुरात्मताऽ-  
 प्यभ्याख्यानं तत्र कर्तव्यं स्यात्, परन्तु तत्र उचितं मपतीत्यत्र आह—'नैवाऽऽ-  
 त्मानमभ्याख्याया'—इति । केनचिदात्मना क्षीरमिदं, परिगृहीत, केनचिच्च  
 क्षीरमिदं परिस्पृक्तमिति प्रत्यक्षदर्शनादात्मनः क्षीरापिच्छादत्त सिध्यति ।

वाहर अपर्याप्त पृथ्वीकाय के बीजों से वाहर अपर्याप्त तेजस्काय के बीज अर्संस्यातगुणा  
 कम हैं । सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय के बीजों से सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्काय के बीज  
 विशेष हीन हैं । सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय के बीजों से सूक्ष्म पर्याप्त तेजस्काय के बीज  
 विशेष हीन हैं ।

इस प्रकार युक्ति और आगमप्रमाण से अग्नि की सहीरता सिद्ध हो जाने  
 पर भी यदि कोई अग्निहाय के बीजों का अपस्वाप करता है तो वह उपयोग यदि  
 कछुओं से अनुमान किये जाने वाले और शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का अपस्वाप  
 करता है, अगर ऐसा करना उचित नहीं है, अतः सूत्रकार कहते हैं—'आत्मा का  
 अपस्वाप न करे' । किसी आत्मान यह शरीर प्रकण किया है और किसी न शरीर का  
 त्याग किया है यह बात प्रकण देखी जाती है । इस से यह सिद्ध हो जाता है कि शरीर,  
 आत्मारा अधिष्ठित है ।

वाहर अपर्याप्त पृथ्वीकायना एवोशी वाहर अपर्याप्त तेजस्कायना एव अर्संस्यात  
 सूक्ष्मा एवोशी सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायना एवोशी सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्कायना  
 एव विशेषहीन एव सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकायना एवोशी सूक्ष्म पर्याप्त तेजस्कायना  
 एव विशेषहीन ए—विशेष आशा ए

आ प्रमाद्ये युक्ति से आगमप्रमाणसुखी अग्निही सलपता सिद्ध कई जना  
 कर्तांश पक्ष से डोह अग्निहायना एवोशे अपस्वाप करे ए तो ते उपयोग लक्ष्मोशी  
 अनुभन करवाभां आनेका जाने शरीरता अधिष्ठाता आत्मानो अपस्वाप करे ए परन्तु के  
 प्रमाद्ये कर्तुं ते उचित नहीं, तेही सूत्रकार कहे ए— आत्मानो अपस्वाप न करे।' डोह  
 आत्मानो आ शरीर प्रकण कर्तुं ए, अने डोहसे शरीरने आज कर्तो ए के वान  
 प्रकण नेवाभां आने ए तेही के सिद्ध बाप ए के शरीर आत्माद्वारा अधिष्ठित ए

## પરિમાણદ્વારમ્—

વાદરપર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયજીવાઃ ક્ષેત્રપલ્યોપમસ્યાઽસંખ્યેયભાગમાત્રવર્તિપ્રદે-  
શરાશિપરિમાણાઃ મન્તિ । તદપેક્ષયા વાદરા અપર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયજીવા  
અસંખ્યાતગુણાઃ તદપેક્ષયા સૂક્ષ્મા અપર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયા અમંખ્યાતગુણાઃ, તદપેક્ષયા  
સૂક્ષ્માઃ પર્યાપ્તાસ્તેજસ્કાયા અસંખ્યાતગુણાઃ સન્તિ । પૃથિવીકાયેન સહાગ્નિકાયસ્ય  
પરિમાણસમાલોચનાયાં ત્વેવમવધેયમ્—

યે તેજસ્કાયા વાદરપર્યાપ્તાઃ ક્ષેત્રપલ્યોપમાસંખ્યેયભાગમાત્રવર્તિ-  
પ્રદેશરાશિપરિમાણાઃ સન્તિ, તે વાદરપર્યાપ્તેભ્યઃ પૃથિવીકાયેભ્યોઽસંખ્યાત-  
ગુણદ્વીનાઃ । શેપાહ્વયોઽપિ રાશયઃ પૃથિવીકાયવદ્ વિજ્ઞેયાઃ । તત્રાય વિશેષઃ—

## પરિમાણદ્વાર—

વાદર પર્યાપ્ત તેજસ્કાય કે જીવ ક્ષેત્રપલ્યોપમ કે અસંખ્યાતવે ભાગવર્તી  
પ્રદેશો કી રાશિ કે વરાવર હૈ । વાદર અપર્યાપ્ત તેજસ્કાય જીવ ઉનસે અસંખ્યાત  
ગુણા હૈ, સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત ઇનસે મી અસંખ્યાત ગુણા હૈ, ઓર સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત ઇન સે મી  
અસંખ્યાત ગુણા હૈ । પૃથ્વીકાય કે સાથ અગ્નિકાય કે પરિમાણ કા વિચાર ક્રિયા જાય તો  
હસ પ્રકાર હૈ—

તેજસ્કાય કે જો વાદર પર્યાપ્ત જીવ ક્ષેત્રપલ્યોપમ કે અસંખ્યાતવે ભાગવર્તી  
પ્રદેશો કે વરાવર હૈ, તે વાદર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાય કે જીવોં સે અસંખ્યાતગુણા હીન હૈ ।  
શેષ તીનોં રાશિયૈં પૃથ્વીકાય સે સમાન હી સમજ લેની યાહિણ । વિશેષતા સિર્ફ ઇતની હૈ—

## પરિમાણ દ્વાર—

બાહર પર્યાપ્ત તેજસ્કાયના જીવ ક્ષેત્ર-પલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી  
પ્રદેશોની રાશિના બરાબર છે બાહર અપર્યાપ્ત-તેજસ્કાય જીવ તેનાથી અસંખ્યાત ગુણા  
છે સૂક્ષ્મ અપર્યાપ્ત તેનાથી પણ અસંખ્યાત ગુણા છે અને સૂક્ષ્મ પર્યાપ્ત તેનાથી  
પણ અસંખ્યાત ગુણા છે પૃથ્વીકાયની સાથે અગ્નિકાયના પરિમાણનો વિચાર કરવામાં  
આવે તો આ પ્રકારે છે—

તેજસ્કાયના જે બાહર પર્યાપ્ત જીવ ક્ષેત્રપલ્યોપમના અસંખ્યાતમા ભાગવર્તી પ્રદેશોની  
બરાબર છે, તે બાહર પર્યાપ્ત પૃથ્વીકાયના જીવોથી અસંખ્યાત ગુણા હીન છે બાકીની  
ત્રણેય રાશિઓ પૃથ્વીકાયની સમાનજ સમજ લેવી જોઈએ, વિશેષતા માત્ર એટલી છે કે -

स्पर्शने प्रवर्तते, स मूढः लोकम्-अधिकायलोकम् अस्यास्पाति=  
 'अग्निश्चपञ्जीवो नास्ती'-त्यलपति । अयं भावः-सामान्यरूपणात्मनः सिद्धौ  
 तत्त्वमेव हि तस्यात्मनो मेदा पृथिवीकायादयः सिध्यन्ति, नान्मया ।  
 साधान्वात्मनोऽभ्याख्याने प्रवृत्तः साहसिकः पृथिवीकायादपिशेषात्मनोऽभ्याख्यानं  
 सुखं कर्तुंमार्षीति ।

अपि वायं भावाः-करचरबाधवक्त्रपुक्तशरीराभिष्ठाता सुभ्यक्तोपयोगादि  
 कल्पः स्वात्माऽपि येनाभ्यासयाता, तस्याऽपक्तोपयोगादिलक्षणाभिकायाभ्याख्यानं  
 किं नु हुंकर !-मिति ॥ सू १ ॥

'अग्निश्चपञ्जीवो नास्ती' इस प्रकार अग्निश्चपञ्जीवो का निषेध करता है ।

उत्पर्य यह है कि-सामान्यरूप से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होने पर ही उसके  
 पृथ्वीकाय आदि मेद सिद्ध हो सकते हैं अन्यथा नहीं । जो साहसी पुरुष सामान्य आत्मा का  
 ही निषेध करने को तैयार हो गया वह पृथ्वीकाय आदि विशेष आत्मों का निषेध कर  
 न तो स्वामयिक ही है ।

इससे यह भी आशय निकलता है-हाथ-पैर आदि अङ्गों से युक्त शरीर क  
 अभिष्ठाता और मूर्खमूर्खि प्रकृत उपयोग आदि लक्षणों वाले अपने आत्मा का भी अग्नि  
 निषेध कर दिया उसके लिए अप्रकृत उपयोग आदि लक्षणों वाले अग्निश्चपञ्जीवो का निषेध  
 कल्प कौन करी पाए ? ॥ सू १ ॥

ननु' का प्रमाणे अग्निश्चपञ्जीवो निषेध करे से

उत्पर्य जो से है-सामान्यरूप से आत्मा अस्तित्व सिद्ध भवानी व तेना  
 पृथ्वीकाय आदि मेद सिद्ध कर्तुं शक्ये से अन्यथा-जीवो शीते नहि, ने साहसी पुरुष  
 सामान्य आत्मानो निषेध करना चाहे तैयार कर्तुं तथा ते पृथ्वीकाय आदि विशेष  
 आत्मोंको निषेध करे जो तो स्वामयिक है ।

ज्येष्ठो जो पञ्च आशय निकले से है-हाथ-पैर आदि अङ्गों से युक्त  
 शरीर आधिष्ठाता ने शरीर शीते प्रकृत उपयोग आदि लक्षणोंवाला साधान्  
 आत्मोंको पञ्च अङ्गों निषेध करी दीया तेने अप्रकृत उपयोग आदि लक्षणोंवाला  
 अग्निश्चपञ्जीवो निषेध करने ते ही शक्ये पाए ? (सू १)

एवं च युक्त्यागमसंसिद्धः शरीराधिष्ठाता ज्ञानादिगुणवानयमात्मा कथमपि नापलपितुं शक्यः । तस्मादात्मा नास्तीत्येवमभ्याख्यानमात्मनो न कुर्यादित्यर्थः ।

यः खलु मन्दधीः, लोकरूपम्=अग्निकायलोकम्, अभ्याख्याति, आत्म-  
वत्सर्वप्रमाणसंसिद्धमप्यग्निकायलोकं प्रत्याचष्टे—‘अग्निकायजीवो नास्ती’ति, स  
आत्मानमभ्याख्याति=स मूढः खलु युक्त्यागमप्रमाणसंसिद्धमात्मानमपलपति ‘आत्मा  
नास्ती’ति । सर्वप्रमाणसंसिद्धाग्निकायलोकमभ्याख्याने प्रवृत्तस्य सुकरमेवात्मनोऽ-  
भ्याख्यानम्, अग्निकायवदेवात्मन्यपि प्रमाणसत्तायास्तुल्यत्वादिति भावः ।

य आत्मानमभ्याख्याति=यच्चात्मनोऽभ्याख्याने ‘आत्मा नास्ती’

इस प्रकार युक्ति और आगम से सिद्ध शरीर के अधिष्ठाता तथा ज्ञान आदि गुणों वाले आत्मा का निषेध नहीं किया जा सकता । अत एव ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का निषेध नहीं करना चाहिए ।

जो मन्दबुद्धि पुरुष अग्निकायरूप लोक का जो आत्मा की भक्ति समस्त प्रमाणों से सिद्ध है—निषेध करता है अर्थात् अग्निकाय के जीवों का निषेध करता है वह युक्ति और आगम से सिद्ध आत्मा का निषेध करता है । सब प्रमाणों से सिद्ध अग्निकाय लोक का अपलाप करने पर आत्मा का अपलाप करना सरल ही है, क्यों कि अग्निकाय और आत्मा के अस्तित्व में प्रमाणों का सद्भाव समान है ।

जो मूर्ख ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का निषेध करता है वह

आ प्रमाणे युक्ति अने आगमधी सिद्ध, शरीरना अधिष्ठाता तथा ज्ञान आदि गुणोवाणा आत्मानो निषेध करी शकतो नथी अटला भाटे ‘आत्मा नथी’ आ प्रमाणे आत्मानो निषेध करी शकतो नथी अटला भाटे ‘आत्मा नथी’ आ प्रमाणे आत्मानो निषेध करवो जेध अ न्हि

जे मन्दबुद्धि पुरुष अग्निकायरूपलोकनो जे जे आत्मा प्रमाणे समस्त प्रमाणोधी सिद्ध छे तेनो, निषेध करे छे, अर्थात् अग्निकायना एवोनो निषेध करे छे, ते युक्ति अने आगमधी सिद्ध आत्मानो निषेध करे छे सर्व प्रमाणोधी सिद्ध अग्निकायलोकना अपलाप करवाधी आत्मानो अपलाप करवो ते सरल छे केभके अग्निकाय अने आत्माना अस्तित्वमा प्रमाणोनो सद्भाव समान छे

जे मूर्ख ‘आत्मा नथी’ आ प्रमाणे आत्मानो निषेध करे छे, ते ‘अग्निकाय

मिस्तेषां शङ्क भवति । तस्य खेदः=खेदम्=उपमर्दनजन्यदुःखं जानातीति खेदः, स एव अशक्तस्य=अशक्त=संपमः, संपमो हि न व्यापादको भयदो वा कस्यापीत्यशक्तमुच्यते । तस्य खेदः=संपममङ्गमयजनितदुःखानुभवकृत् । एवं संपमानुष्ठानादेव मुनिर्त्वं सभ्यमिति भावः ।

ननु—कामिदं द्वापते दीर्घलोकाश्रयार्थं वनस्पतिरिति ? उच्यते—कामस्थितिकालेन, परिभाषेन, शरीरावगाहनाया च वनस्पतिकामस्य अन्यैकेन्द्रि यापेक्षया महत्त्वमस्ति । तथाहि—वनस्पतिकामस्य कायस्थितिकालोऽनन्तः, स चानन्तोत्सर्पिष्यवत्सर्पिणीरूपः, तस्मिन्संख्ययाः पुत्रलपरावर्त्ता भवन्ति, से पुत्रलपरावर्त्ता आबलिक्रया अर्त्सख्येये मागे यावन्तः समयान्तावत्समागाः

कामे के कारण अग्नि, वनस्पतिकाम का शक्त है । समय से किसी को विराधना नहीं होती, न वह किसी को मयकारी है, अत एव समय को अशक्त कहते हैं । संमम के भंग होने के समय से उत्पन्न होने वाला दुःख संमम का खेद कहलता है । इस प्रकार समय के पक्षन करने से ही मुनिपन होता है ।

शंका—दीर्घलोकाश्रय शब्द का अर्थ वनस्पति कैसे समझा जाय ?

समाधान—कामस्थिति के समय परिमाण और शरीर की अवगाहना से वनस्पतिकाम अन्य एकैन्द्रिय योयो की अपेक्षा महान् है । वनस्पतिकाम की कामस्थिति का काल अनन्त है, और वह अनन्त ही अनन्त उत्सर्पिणीरूप—अवसर्पिणीरूप है । उसमें अर्त्सख्यात् पुत्रलपरावर्त्तन होते हैं । वे पुत्रलपरावर्त्तन आबलिक्रम के अर्त्समयावर्त्तने मागे से

कारणही अग्नि वनस्पतिकामनु शक्त है । अथवाही कोठनी पक्ष विराधना घटी नहीं, ते कोठनी अवगाही नहीं, जे अटे सबभने अशक्त कहे है अथवाही अज यवाना अवधी उत्पन्न यवावाणु काल ते सबभने जेह कहेवाय है, अत प्रभावे अथमनु अवन अशवाधी अ मुनिपदुं होय है ।

शंका—दीर्घलोकाश्रय शब्द वनस्पति केही रीति समझाया जाय ?

समाधान—कामस्थितिना समय, परिमाण अने शरीरनी अवगाहनाधी वनस्पतिकाम, अन्य एकैन्द्रिय लोचनी अपेक्षासे महान् है । वनस्पतिकामनी कामस्थितिना काल अनन्त है अने ते अनन्त पक्ष अनन्त उत्सर्पिणी—अवसर्पिणीरूप है । तेषां अथवाव पुत्रलपरावर्त्तन यथ है, ते पुत्रलपरावर्त्तन आबलिक्रमना अर्त्समयावर्त्तना

अयमग्निऋणायलोकः स्वात्मवन्नैव अभ्याख्येय इति प्रतिबोधितम्, इदानीमग्निऋणायजीवोपमर्दनाद् विनिवृत्त एव मुनिर्भपितुमर्हतीत्याह—‘जे दीह०’ इत्यादि ।

मूलम्—

जे दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने, से असत्थस्स खेयन्ने, जे असत्थस्स खेयन्ने से दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः, सोऽशस्त्रस्य खेदज्ञः । योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः, स दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः ॥ सू. २ ॥

टीका—

यो भव्यः, दीर्घलोकशस्त्रस्य=दीर्घश्वात् लोकाश्च दीर्घलोकः=वनस्पतिः, तस्य शस्त्रं दीर्घलोकशस्त्रम्=अग्निः । वनस्पतिकायस्य दाहकरणेन विनाशकतयाऽ-

अग्निऋणायलोक, आत्मा की तरह निषेध करने योग्य नहीं है, यह बतला दिया । अब बतलाते हैं कि—अग्निऋणाय के जीवों की हिंसा से निवृत्त होने वाला पुरुष ही मुनि होता है—‘जे दीह०’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो दीर्घलोक (वनस्पतिकाय) के शस्त्र (अग्निऋणाय) के दुःख को जानता है वही समय के खेद को जानता है और जो समय के खेद को जानता है वह दीर्घलोक के शस्त्र के खेद को जानता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—जो भव्य पुरुष दीर्घलोक अर्थात् वनस्पति के शस्त्र—अग्नि के दुःख को जानता है, वही अशस्त्र अर्थात् समय के खेद को जानता है । वनस्पतिकाय की विराधना

अग्निऋणायलोक, आत्मान्नी प्रभाषे निषेध करवा योग्य नहीं, ते अतावी आभ्यु छे इवे अतावे छे के—अग्निऋणायना छवेानी हिंसाथी निवृत्त थावावाणा पुरुषण मुनि छाय छे—‘जे दीह०’ इत्यादि

मूलार्थ—जे दीर्घलोक (वनस्पतिकाय)ना शस्त्र (अग्निऋणाय)ना दुःखने लखे छे, तेण समयना जेदने लखे छे, अने जे समयना जेदने लखे छे, तेण दीर्घ लोकना शस्त्रना जेदने लखे छे (सू. २)

टीकार्थ—जे भव्य पुरुष दीर्घलोक अर्थात् वनस्पतिना शस्त्र अग्निना दुःखने लखे छे, तेण अशस्त्र अर्थात् समयना जेदने लखे छे वनस्पतिकायनी विराधना करवाना

पृथ्वानुसारी वायुरपि तत्र संभाव्यते, तदेवं वनस्पतिवृक्षीभूय वह्नो बहुतर  
 मोराभाशयतीति सूचनाय मगवता दीर्घलोकस्यस्यः परिहरीत इति ।

यद्वा—दीर्घलोकः=पृथिवीकायादिः, पृथिव्यन्वायुवनस्पतिकायानां  
 मरुत्स्थितिर्यथाक्रमं द्वाविंशतिः—सप्त—त्रि—दश—वर्षसहस्रपरिमाणा, अग्निकायस्य तु  
 बीभ्येबाहोरात्राणि । यथा वादरात्रिकायाः पर्याप्तकाः स्वल्पाः सन्ति, अन्ये  
 पृथिव्यादयः पर्याप्तकाः बहवः सन्ति, अतो दीर्घलोकः पृथिव्यादिस्तस्य  
 सप्तम्—अग्निकाय । अग्निरुत्पाद्यमानः मन्वास्त्यमानो वा पृथिव्यादिजीवसमूहं  
 परिहन्तीति तस्य सप्तत्वम् । अकम्—

पत्तो (कोसजा) का अनुसारी वायु भी वहाँ संभव है । इस प्रकार अग्नि वनस्पति का शक्त  
 हो कर बहुतेरे जीवों का विनाश करता है । यह सूचित करने के लिये मगवान् ने  
 'दीर्घलोकस्य' शब्द का अग्नि के लिये प्रयोग किया है ।

अथवा—'दीर्घलोकका' वर्षे पृथ्वीकाय आदि है । पृथ्वीकाय, अप्सराय, वायुकाय  
 और वनस्पतिकाय की मरुत्स्थिति क्रम से चाँद, सात तीन और दश हजार वर्ष की है,  
 मगर अग्निकाय की तीन रात्रि—दिन ही है । वादर अग्निकाय के पर्याप्त जीव स्वल्प हैं  
 मगर पृथ्वी आदि के पर्याप्त जीव बहुत हैं । अतः 'दीर्घलोक' शब्द से पृथ्वीकाय आदि  
 का उल्लेख करना चाहिए और उनका शक्त अग्निकाय समझना चाहिए । अग्नि उत्पन्न होते  
 ही और बरसते ही पृथ्वी आदि के जीवों के समूह का नाश करता है, अतः वह पृथ्वी आदि  
 का शक्त है । कहा भी है—

अने अत्यंत कमवर्ष पत्ता (३ पत्तो)ना अनुसारी वायुनेो पयु त्वां सलय उ अय  
 प्रभावे अग्नि, वनस्पतिनु शक्त जनी प्रजां लयेनेो विनाश करे उ आ उद्विगत  
 स्वल्प अटे अजवाने दीर्घलोकस्य शब्दनेो अग्नि अटे प्रयोग कयेो उ.

अथवा—दीर्घलोकनेो अय पृथ्वीकाय आदि उ, पृथ्वीकाय, अप्सराय वायुकाय,  
 अने वनस्पतिकायनी मरुत्स्थिति कमधी ज्योतिष सात, त्रयु अने इस उद्वार वर्षनी  
 उ परन्तु अग्निकायनी त्रयु रात्रि—दिवसज उ ज्योतिष—वादर अग्निकायना पर्याप्त  
 उ स्वल्प उ परन्तु पृथ्वी आदिना पर्याप्त उय प्रजां उ अने अटे 'दीर्घलोक'  
 शब्दनेो पृथ्वीकाय आदिनु अद्वय करनु ज्योतिषे, अने तेय शक्त अग्निकाय समजनु  
 ज्योतिषे अग्नि उत्पन्न स्वल्प अने अजवानेो विनाश करनु पृथ्वीआदिना लयेनेो  
 समूहनेो नाश करे उ तेथी ते पृथ्वी आदिनु शक्त उ त्रयु पयु उ है—

सन्ति । एतावान् कालो वनस्पतिकाल इत्युच्यते । परिमाणतन्मु प्रत्युत्पन्नवनस्पति-  
कायिकानां निर्लेपना नास्ति ।

शरीरावगाहनया च सातिरेकं योजनसहस्रम् । अतो वनस्पतिकायस्य  
दीर्घलोक इति व्यपदेशः । (प्रज्ञापना १८ पदे)

ननु प्रसिद्धमग्निशब्दं विहाय किमर्थमिह दीर्घलोकशस्त्रशब्दोपादानम् ?  
उच्यते—वनस्पतिकायदहनप्रवृत्तोऽग्निकायो बहुतराणिनां विनाशको भवति,  
वनस्पतिकाये बहुविधाः प्राणिनः कीट पिपीलिका भ्रमरमधुमक्षिकारूपोतादयो  
निप्रसन्ति, तरुकोटरेषु पृथिवीकायाश्च, अवग्यायरूपा अप्काया अपि, मृदुतर-

जितने समय होते हैं उतने हैं, इतना काल वनस्पतिकाल कहलाता है । परिमाण से प्रत्युत्पन्न  
वनस्पतिकायिक जीवों की निर्लेपना नहीं है । इनके शरीर की अवगाहना कुछ अधिक एक  
हजार योजन है । इसी कारण वनस्पतिकाय को दीर्घलोक कहते हैं ।

अब प्रश्न हो सकता है कि—प्रसिद्ध 'अग्नि' शब्द को छोड़ कर 'दीर्घलोकशस्त्र'  
शब्द का प्रयोग करने की क्या आवश्यकता थी ?

इसका उत्तर यह है कि—वनस्पतिकाय को जलाने में प्रवृत्त अग्निकाय और भी  
बहुत से प्राणियों का विनाश करता है । वनस्पतिकाय के सहारे कीड़े, चिउटी, भैरे,  
मधुमक्खी और कबूतर आदि बहुत से प्राणी निवास करते हैं । वृक्षों को खोतरों में  
पृथ्वीकाय के जीव भी होते हैं । ओसरूप अप्काय भी होता है, और अत्यन्त कोमल

लागभा जेटला समय थाय छे तेटला छे अेटलो डाण ते वनस्पतिकाण डडेवाय छे.  
परिभाषुथी प्रत्युत्पन्न वनस्पतिकायिक एवोनी निर्लेपना नथी तेना शरीरनी अवगाहना  
कईक अधिक अेक हत्तर योजन छे आ कारणुथी वनस्पति कायने 'दीर्घलोक' डडे छे

इवे प्रश्न थर्ष शके छे डे—प्रसिद्ध अग्नि शब्दने छोडीने 'दीर्घलोकशस्त्र'  
शब्दने प्रयोग करवानी शु आवश्यकता हती ? तेना उत्तर अे छे डे—वनस्पतिकायने  
गाणवामा प्रवृत्त (आहु) अग्निकाय थीन पषु प्राणीओने विनाश करे छे वनस्पतिना  
आश्रये डीडा, म डोडा, लभरा, मधभाभी अने कबूतर आदि धषुण प्राणीओ निवास करे  
छे. वृक्षाना अणोलभां पृथ्वीकायना एव पषु डोय छे अकणइप अप्काय पषु डोय छे.



उक्तमर्थं दृढीकर्तुं विपर्ययेन पुनः कथयति-‘योऽन्नस्य खेदः स दीर्घलोकस्य खेदः’ इति, व्याख्या पूर्ववत् । ॥ सू० २ ॥

॥ अक्षरम् ॥

ननु येन अक्षरेण बद्धिः लिखते, तत् केन दृष्टम् ? अपि चाक्षरं सयम स्वस्मिति केन दृष्टम् ? इति जिज्ञासायामाह-‘वीरेहि’ इत्यादि ।

मूलम्—

वीरेहि एयं अमिष्य दिदं, संजएहि सया अएहि सया अयमचेहि ॥ सू० ३ ॥

छाया—

वीरैः एतत् अमिष्य दृष्टम्, सयतैः सदा यतैः सदा अयमचेः ॥ सू० ३ ॥

इसी वाक्य को दृष्ट करने के उद्देश्य से पुनः अन्यरूप से कहते हैं कि-जो अक्षर (सयम) के खेद को जानता है वह दीर्घलोकस्य के खेद को जानता है । इस की व्याख्या पहले के समान ही समझनी चाहिये ॥ सू० २ ॥

अक्षरम्—

शंका होती है कि-जिस वाक्य से अग्नि को खेद होता है वह किस ने देखा है और सयमरूप अक्षर किस ने देखा है ? इसके उत्तर में कहते हैं-‘वीरेहि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—परिपह उपसर्ग आदि को बीजनेवाले संयत सदा यत्नवान् और सदा अप्रमत्त रहने वाले वीर पुरुषों ने यह देखा है ॥ सू० ३ ॥

आ वाचने एह उच्यते उद्देश्यो इषी जीव इषी उह उ उ-ये अक्षर (सयम)-ए चेदने अक्षरे उ ते दीर्घलोकस्य चेदने अक्षरे उ तेनी व्याख्या प्रथम ददेवी उ ते प्रथमे सयमपी नेधजे (स. २)

अक्षरम्—

सदा वाच उ हे ने अक्षरी अग्निने चेद वाच उ ते अक्षरे अयु उ ? अने अक्षररूप अक्षर अक्षरे अयु उ ? तेना उत्तरमां ददे उ -‘वीरेहि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—परीपह-उपसर्ग आदिने अक्षरवाचना सयम-सयमी सदा यत्नवान् अने सदा अप्रमत्त रहेवाचाना वीरपुरुषोन्ने ते अयु उ (स. ३)

“ભૂયાળમેસમાઘાઓ હવ્વાહો ન સંસઓ” । (દશવૈ ૩ અંગા ૦૩૫)  
 તસ્ય ચેદઙ્ગઃ=ચેદયતીતિ ચેદઃ=અગ્નેવ્યાપારઃ, અગ્નિવ્યાપારો હિ પૃથિવ્યાદિ-  
 જીવાનાં દહનાત્મકતયા દુઃસ્વમુત્પાદયતીત્યતઃ ચેદ-શબ્દેન વ્યપદિશ્યતે, તે  
 જાનાતીતિ ચેદઙ્ગઃ । અગ્નિકાયસ્ય વ્યાપારઃ સર્વપ્રાણિપીઢાકર ઇતિ વિજ્ઞાતા યઃ  
 સ્વહુ ભવતિ, સ એવ અશક્તસ્ય=સપ્તદશવિધસંયમસ્ય ચેદઙ્ગઃ=સયમક્ષરણજન્ય-  
 દુઃસ્વાનુભાવકઃ, અસ્તીતિ શ્રેષ્ઠ । અગ્નિકાયવ્યાપારેણ પૃથિવ્યાદિજીવાનાં  
 વિનાશસ્તેન સંયમક્ષરણં, તત્તથ મુનિત્વવિશ્વશ ઇતિ સર્વસ્વનાશકતયાગ્નિવ્યાપારઃ  
 સાધુનાં જ્ઞપરિયા વિજ્ઞાય પ્રત્યાલ્યાનપરિજ્ઞયા પરિહરણીય ઇતિ ભાવઃ ।

“યહ અગ્નિ ભૂતોં કા ઘાતક હૈ, ઇસમેં સંદેહ નહીં” । (દશવૈ ૩ અ ગા ૩૫)

ઉસ અગ્નિ કે વ્યાપાર કો પૃથ્વીકાય આદિ કા ચેદ કહતે હૈં, ક્યોં કિં દાહક હોને  
 કે કારણ વહ પૃથ્વી આદિ કો દુઃસ્વ ઉત્પન્ન કરતા હૈ । ઉસે જાનને વાલા ‘ચેદઙ્ગ’ કહલાતા  
 હૈ । ‘અગ્નિકાય કા વ્યાપાર સર્વ પ્રાણિયોં કો પીઢા પહુંચાતા હૈ’—જો એસા જાનતા વહીં  
 પુરુષ અશક્ત કા અર્થાત્ સત્તર પ્રકાર કે સયમ કે ચેદ કા—સયમ કે ભગ સે હોને વાલે  
 ચેદ કા જ્ઞાતા હોતા હૈ । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—અગ્નિકાય કે વ્યાપાર સે પૃથ્વીકાય આદિ કે  
 જીવોં કા વિનાશ હોતા હૈ, ઓર ઉસસે સયમભગ હોતા હૈ, ઓર સયમ કે ભગ સે મુનિપન  
 કા ભગ હોતા હૈ । ઇસ પ્રકાર અગ્નિવ્યાપાર સર્વસ્વ કા નાશક હોને સે વહ સાધુઓં કે લિપ્  
 જ્ઞપરિજ્ઞા સે જાનકર પ્રત્યાલ્યાનપરિજ્ઞા સે ત્યાગને યોગ્ય હૈ ।

“આ અગ્નિ ભૂતોના ઘાતક છે, એમાં સંદેહ નથી” (દશ વૈ. અ. ૩. ગા ૩૫)

આ અગ્નિના વ્યાપારને પૃથ્વીકાયને ખેદ કહે છે કારણ કે દાહક હોવાના  
 કારણે તે પૃથ્વીઆદિને દુઃખ ઉત્પન્ન કરે છે તેને નાણુવાવાળા ‘ખેદઙ્ગ’ કહેવાય છે.  
 ‘અગ્નિકાયને વ્યાપાર સર્વ પ્રાણીઓને પીડા પહોચાડે છે’ એ આ પ્રકારે નાણુ છે  
 તેજ પુરુષ અશક્તને અર્થાત્ સત્તર પ્રકારના સયમના ખેદને—સંયમના ભગથી  
 થવાવાળા ખેદને જ્ઞાતા—નાણુનાર હોય છે તાત્પર્ય એ છે કે—અગ્નિકાયના વ્યાપારથી  
 પૃથ્વીકાય આદિના જીવોને નાશ થાય છે અને તેથી સયમ ભગ થાય છે, અને  
 સયમના ભગથી, મુનિપણું ભંગ થાય છે આ પ્રમાણે અગ્નિવ્યાપાર સર્વસ્વને નાશક  
 હોવાથી સાધુઓ માટે જ્ઞપરિજ્ઞાથી નાણુને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી ત્યાગવા યોગ્ય છે.

किं कृत्वा तैरेतत् सृष्टिः-मित्याकारसायामाह-‘अभिमूय’ इति । परिपहोपसर्गात्, ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय-अन्तरायान्यघातिकर्म-सृष्टय च विजित्य केवलं समाप्तेत्यर्थः । कथममृतैस्तैः ?-रित्याह-संपतैः-सम्-सम्पत्प्रकारेण यथा-परमकल्याणया ईर्ष्यासमित्यादियतनापन्तस्तैः, सकलपद्वीति निक्षयपरिभ्राणपरायणैरित्यर्थः । यतना द्विविधा-ममत्तयतना, अममत्तयतना च । अयं ममत्तस्य कीदृशी यतना ? उच्यते-रूपायादिनिग्रहिन ईर्ष्याद्युपयोगवत्स्य ममत्तयतना कथ्यते ।

अममत्तयतना कपायरहितवचनसाध्या भवति । अत्र अममत्तप्रहापादि त्रिधादिप्रमादवर्जनं गृह्यते । यतनाप्रहापाद् यावन्नीचयतना गृह्यते । अत एव

उन्हां ने क्या कर के यह देखा है ? इस शंका का उत्तर है-परीवह और उपसर्गों को उच्च ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय नामक चार बाधिया कर्मों को वीरकर केवल ज्ञान प्राप्त कर के उन्हां न देखा है ।

ये देखने वाले किस प्रकार के थे ? इसका उत्तर यह है-सम्पत् प्रकार से, अथवा कल्याणपूर्वक ईर्ष्यासिति आदि का पावन करनेवाले अर्थात् समस्त पदकाव की रक्षा में उत्पर थे । यतना दो प्रकार की है-ममत्त की यतना और अममत्त की यतना । ममत्त की यतना कैसी होती है ? इसका उत्तर यह है कि-कषाय आदि का निग्रह करने वाला पुरुष ईर्ष्या आदि में जो उपयोग रखता है, वह ममत्तयतना है । अममत्त की यतना कपायरहित वचनों से होती है । यहाँ अममत्त शब्द से इन्द्रिय आदि प्रमादा का त्याग केना चाहिए । यतना शब्द से यहाँ मावर्गीय यतना का ग्रहण करना चाहिए । अतः

तेभ्यो तुं करीने जेथां छे ? आ शकाने उत्तर जे छे परीवह जने उपसर्गोंने वच ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय जने अन्तराय नामना चार बाधिया कर्मोंने लक्ष्मीने केवलज्ञान प्राप्त करीने तेभ्यो जेथां छे

ते जेवावाण्य केवा प्रहास्या कृत्वा ? तेने उत्तर-अम्भद्रप्रकारे अत्यन्त कल्याणपूर्वक ईर्ष्यासिति आदिना पावन कस्यावाण्य, अर्थात् समस्त पदकावनी रक्षार्थं तेने तत्पर कृत्वा यतना जे प्रहासनी छे-ममत्तनी यतना जने अममत्तनी यतना, ममत्तनी यतना केनी जेथ छे ? तेने उत्तर जे छे के-कषाय आदिना निग्रह कस्यावाण्य पुरुष ईर्ष्या आदिमां के उपयोग राजे छे ते ममत्तनी यतना छे, अममत्तनी यतना कपायरहित वचनोधी बाध छे, अदि अममत्त शब्दही इन्द्रिय आदि प्रमादोने त्याग देवे जेथजे, यतना यतनी अदि लक्ष्मीवाणी यतनातुं प्रकृतु करु जेथजे जे भाटे

टीका—

वीरैरिति । घनघातिकर्मरूपरिपुगणक्षपणानन्तरं लब्धातुलकेवला-

लोकलक्ष्म्या विराजन्त इति वीराः । यथा—राजानश्चतुरङ्गसैन्यसमावृतं स्वकीय-  
मरिवर्गं निहत्य लब्धराज्यविजयलक्ष्म्या विराजमाना वीरा निगद्यन्ते ।  
यद्वा—वि=विशेषेण ईरयन्ति=रागाद्यन्तरङ्गमहासुभटान् निवारयितुमनन्ततपोवीर्यं  
व्यापारयन्तीति वीराः । यद्वा—विशेषेण ईरयन्ति=शिवगतिं गमयन्ति भव्यजीवा-  
निति वीराः । यद्वा—विशेषेण ईरयन्ति=ज्ञानाचारादीन् प्रति प्रेरयन्ति भव्यजीवानिति  
वीराः, तीर्थङ्करा गणधराश्च, तैर्वीरैः, एतद्=अग्निकायस्वरूपं, यद्वा—अग्निशस्त्रम्  
अशस्त्रं चेति द्वयं दृष्टं=ज्ञानदृष्टय विलोकितम्, अर्थतस्तीर्थङ्करैः, गणधरैस्तु  
भगवद्वचनैरिति विशेषः ।

टीकार्थ—घातिकाकर्मरूपी शत्रुओं के समूह को नाश करने के अनन्तर अनुपम  
केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त होती है । उस लक्ष्मी से जो विराजमान हैं उन्हें वीर कहते हैं ।  
जैसे कोई राजा, चतुरंग सेना से युक्त शत्रुओं को हराकर प्राप्त राज्य और विजय की लक्ष्मी  
से सुशोभित हो कर 'वीर' कहलाते हैं । अथवा राग-द्वेष आदि आन्तरिक महायोद्धाओं  
को रोकने के लिए अनन्त तपोवीर्य का प्रयोग करने वाले 'वीर' कहलाते हैं । अथवा भव्य  
जीवों को विशेषरूप से मुक्ति की ओर प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं । अथवा  
विशेषरूप से ज्ञानाचार आदि की ओर भव्य जीवों को प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं ।  
ऐसे वीर तीर्थंकर गणधर आदि हैं । उन वीरों ने अग्नि के स्वरूप को अथवा अग्निशस्त्र  
और अशस्त्र को ज्ञानदृष्टि से देखा है । अर्थ से तीर्थंकरों ने और उन के वचनों के अनुसार  
गणधरों ने देखा है ।

टीकार्थ—घाति—कर्मरूपी शत्रुओंना समूहको नाश कथोना अनन्तर  
अनुपम केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी प्राप्त थाय छे ते लक्ष्मीथी के विराजमान छे तेने  
वीर कहे छे जेभू केरि राज, चतुरंग सेनाथी युक्त (चार प्रकारनी सेना सहित)  
शत्रुओंने हरावीने प्राप्त करेले राज्य अने विजयरूप लक्ष्मीथी सुशोभित भनी 'वीर'  
कहेवाय छे, अथवा—राग-द्वेष आदि आन्तरिक महायोद्धाओंने रोकवावाणाने 'वीर'  
कहे छे अथवा लव्य लोकोने विशेषरूपथी मुक्तिनी तरङ्ग प्रेरित करवावाणा 'वीर'  
कहेवाय छे अथवा विशेषरूपथी ज्ञानाचार आदिनी तरङ्ग लव्य लोकोने प्रेरित  
करवावाणा 'वीर' कहेवाय छे जेवा वीर तीर्थंकर अने गणधर आदि छे, ते वीरोंने  
अग्निना स्वरूपने अथवा अग्निशस्त्र अने अशस्त्रने ज्ञानदृष्टिथी जेया छे. अर्थथी  
तीर्थंकरोंने जेया छे. अने तेमना वचनों अनुसार गणधरोंने जेया छे.

तत्पौदकादिकं च । माससंज्ञं तु-अग्निं प्रति दुष्पनिहितमनोनाकायक्यम् । शेषाणि पृथिवीकायवद् बोध्यानि ॥ सू० ३ ॥

यस्तु प्रमादबद्धादुपमोभावमन्निकायजीवानुपमवर्षति, तत्कस्माद्—'जे' इत्यादि ।

सूत्रम्—

जे प्रमत्ते गुणद्विप से हु दहेति पशुत्वम् ॥ ४ ॥

छाया—

यः प्रमत्तः गुणार्थिकः ( गुणस्थितः ) स त्वत्तु वन्द इति प्रोच्यते ।

टीका—

यो हि प्रमत्तः—विषयकापायाविप्रमादबद्धः सन् गुणार्थिकः मयती स्तन्वयः । गुणः—अन्निकायकृतोपकारः स एवार्थः—प्रयोजनं यस्य स गुणार्थी, स एव गुणार्थिकः, रत्न-पवन-मन्त्र-साधनादिप्रयोजनवान् मयति । यद्वा—

(अग्ने) आदि से मिली अग्नि तथा गर्म बस अग्नि का उभयकायवत् है । अग्नि के प्रति हुए मन बध्न और कावका प्रवर्तन भाववत् है । शेष द्वार पृथिवीकाय के समान समझने चाहिए ॥ सू० ३ ॥

प्रमाद के बरा होकर उपमोह के निमित्त अन्निकाय के जीवों की किराफना करने वाले को होने वास्तव फल कहते हैं—'जे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—जो प्रमादी पुरुष अग्नि के गुणों का अर्थ-संभन्ध आदि में स्थित-है, वह उसके विषय वन्द कहलाता है ॥ सू० ४ ॥

टीका—विषय कथय आदि प्रमादों के अर्थ होकर पुरुष गुणार्थी होता है । अग्निप्रकृत द्वारा होने वास्तव उपकार यहाँ गुण कहा गया है । इस गुण का अर्थ गुणार्थिक कहलाता है । संभन्ध पक्वन्ता, उच्चारण करना आदि अग्नि के गुण हैं । जो

यथा वरुण अन्न अग्निं उभयकायवत्तु से अग्निं प्रतिदुं हुं मन बध्न अने कावत्तु प्रवर्तन से कावका से आधीना द्वार पृथ्वीकायनी समान अतएव-उभयवत् बोधये. (सू. ३) प्रमादने पर यद्य उपमोहजन्य निमित्ते अन्निकायना लुप्तोनी विराधना इत्यादि यजाने से हुए वाच से-अग्ने से. ते हुं दहे से 'ज' इत्यादि.

सूत्रार्थ—जो प्रमादी पुरुष अग्निना अर्थ-संभन्ध विशेषार्थ स्थित-उ ते अने भाटे वन्द कहेवाच से. (सू. ४)

टीका—विषय कथय आदि प्रमादों के अधीन बधने पुरुष अर्थार्थी वाच से अन्निकाय द्वारा बधनाये उपकार तेने अग्निं शुद्ध कहेवार्थ आये से आ शुद्धो अर्थ ते शुद्धार्थिक कहेवाच से संभन्ध-पक्वन्तु अन्वयात् वरुण अग्निना अर्थ से

सद=सर्वदा यतैः=चरणकरणविषये निरतिचारतया यत्नवद्धिः, तथा-सदा=  
सर्वकाले अप्रमत्तैः=विषयकषायादिवर्जितैः । एवम्भूतैर्वीरैरग्निकायस्वरूपं  
तदीयशस्त्रमशस्त्रं च दृष्टमित्यर्थः ।

ननु किं नामाग्निशस्त्रम् ? उच्यते-अग्न्युपमर्दकं शस्त्रम् । तत् किं-  
स्वरूप ?-मितिचेत्, अत्रधेहि-अग्निशस्त्रं तावद् द्विधा-द्रव्य-भावभेदात् । तत्र  
द्रव्यशस्त्रं त्रिविधम् स्वकायपरकायोभयकायभेदात् । स्वकायशस्त्रं-अग्निकायस्या-  
ग्निकाय एव, यथा-तृणाग्निः, पर्णाग्निः शस्त्रम् । परकायशस्त्रं-धूलिरापश्च, आर्द्रश्व-  
वनस्पति, त्रसाः प्राणिनश्च । उभयकायशस्त्रं तुषकरीषादिमिश्रोऽग्निरन्यस्याग्नेः,

सर्वदा चरणसत्तरी और करणसत्तरी में अतिचाररहित यतना करने वाले तथा सदैव विषय-  
कषाय आदि प्रमाद से रहित वीर पुरुषोंने अग्निकाय के स्वरूप को तथा उसके शस्त्र और  
अशस्त्र को देखा है ।

शङ्का—अग्निशस्त्र क्या है ?

समाधान—अग्नि की विराधना करने वाला शस्त्र अग्निशस्त्र कहलाता है ।  
उसका स्वरूप क्या है ? सो इस प्रकार समझो-द्रव्य और भाव के भेद से अग्नि  
शस्त्र दो प्रकार का है । इनमें से द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं-स्वकाय-शस्त्र, परकाय-शस्त्र  
और उभयकाय-शस्त्र । अग्निकाय का स्वकायशस्त्र अग्नि ही है, जैसे तिनके की अग्नि,  
पत्तों की अग्नि का शस्त्र है । धूलि और पानी आदि अग्निकाय का परकायशस्त्र है ।  
गीली वनस्पति भी परकायशस्त्र है और त्रस पाणी भी । तुष ( छिलका ) और करीष

सर्वदा अरथु सीतेरी अने करथुसीतेरीमा अतिचाररहित यतना करवावाणा तथा  
हु भेशा विषय-कषाय आदि प्रमादथी रहित वीर पुरुषोअग्ने अग्निकायना स्वरूपने  
तथा तेना शस्त्र अने अशस्त्रने ज्ञेया छे

शङ्का—अग्नि शस्त्र अथु छे ?

समाधान—अग्निनी विराधना करवावाणु शस्त्र ते अग्निशस्त्र कडेवाय छे तेतुं  
स्वरूप डेवुं छे ? ते आ प्रभाणु समजने-द्रव्य अने लावना खेदथी अग्निशस्त्र अे प्रकारना  
छे, तेमाथी द्रव्यशस्त्रना त्रथु लेद छे स्वकायशस्त्र परकायशस्त्र, अने उभयकायशस्त्र.  
अग्निकायनु स्वकायशस्त्र अग्निअ छे जेम तणुआनी अग्नि, पादडानी अग्निनु शस्त्र छे  
धूण अने पाणी आदि अग्निकायनु परकायशस्त्र छे वीदी वनस्पति यणु परकायशस्त्र छे  
अने त्रस प्राणी यणु परकायशस्त्र छे तुष अने छणु आदिथी भजेदी अग्नि

तप्तोदकादिकं च । माससत्त्वं तु-अग्निं प्रति दुष्पयिहितमनोवाक्यायक्यम् । शेषाणि  
 पृथिवीकायवद् बोध्यानि ॥ सू० ३ ॥

पक्षु प्रमादबन्धादुपमोमायमन्निकायजीवानुपमर्दयति, तत्कृत्वा- 'जे' इत्यादि ।

मूलम्—

जे प्रमत्त गुणादिए से हु दहेति पबुन्धइ ॥ ४ ॥

छाया—

यः प्रमत्तः गुणार्थिकः ( गुणस्थितः ) स स्वसु दण्ड इति बोध्यते ।

टीका—

यो हि प्रमत्तः-विषयकायायादिप्रमादपक्षगः सन् गुणार्थिकः मर्दती  
 स्पन्दयः । गुणः-अन्निकायकृतोपकारः स एवार्थः-प्रयोजनं यस्य स गुणार्थी, स  
 एव गुणार्थिकः, स्वप्न-पथन-प्रकाश-तापनादिप्रयोजनपान् मपति । यद्वा-

(अग्ने) आदि से मिली अग्नि तथा गर्म कर अग्नि का समयकायशक्त है । अग्नि के  
 प्रति कुछ मन बन्धन और कायका प्रवर्धन आवश्यक है । शेष द्वार पृथिवीकाय के समान समस्त  
 पार्थिव ॥ सू० ३ ॥

प्रमाद के बन्ध होकर उपमोहा के निमित्त अन्निकाय के बीजों की विरापना करने वाले  
 जो होने बान्त फल करते हैं- 'जे' इत्यादि ।

मूलार्थ-जो प्रमादी पुरुष अग्नि के गुणों का अर्थ-संभन्ना आदि में स्थित-है,  
 वह उसके लिए दण्ड कहलता है ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ-विषय कथाय आदि प्रमादों के अधीन होकर पुरुष गुणार्थी होता है ।  
 अन्निकाय द्वारा होने बान्त उपकार यहाँ गुण कहा गया है । इस गुण का अर्थ  
 गुणार्थिक कहलता है । संभन्ना पक्षना उच्चाका करना आदि अग्नि के गुण हैं । जो

तथा अरम अल अग्निं उच्यते अन्निकायशक्त ए अग्निं प्रति तु कुछ मन, बन्धन करने कायानु  
 प्रवर्धन ते आनशक्त ए आधीना द्वार पृथिवीकायनी समान अलअर-समन्वा लेख्ये. (सू. ३)

प्रमादने बन्ध अर्थ उपमोहन्य निमित्ते अन्निकायना लोवोनी विरापना करवा  
 यणाने ने इण वाय ए-मने ए. ते इण दहे ए 'जे' इत्यादि.

मूलार्थ-जो प्रमादी पुरुष अग्निना अर्थ-संभन्नु विजेरेमां स्थित-ए ते  
 जेना भाटे इ इ कहेवाय ए (सू. ४)

टीकार्थ-विषय कथाय आदि प्रमादोने अधीन यधने पुरुष गुणार्थी वाय ए  
 अन्निकाय द्वारा कथायाये उपकार तेने आदि गुण कहेवायां आन्यो ए अत गुणोने  
 अर्थो ते गुणार्थिक कहेवाय ए संभन्नु-पक्षानु, अन्वाए करणु आदि अग्निना गुण ए.ने

‘गुणस्थितः’ इति च्छाया, तेन गुणेषु=अग्निगुणेषु रन्धनपचनादिषु, शब्दादिषु वा स्थितः=आसक्तः, रन्धनाद्यर्थमग्निमुत्पादयति प्रज्वालयति यथाकथञ्चिदुपमर्दयतीत्यर्थः । स मनोवाक्कायस्य दुष्प्रणिधानेनाग्निशस्त्रसमारम्भकरणेन चाग्न्यादीनां प्राणिनां दण्डं प्रति कारणभूतत्वाद् दण्ड इति प्रोच्यते, कारणे कार्योपचाराद्, दण्डवत् प्राणिनां हिंसकतया दण्ड इति निन्दनाम्ना लोके प्रसिध्यतीति भावः ॥ सू० ४ ॥

एवं विज्ञायाग्निशस्त्रसमारम्भाद् विनिवर्तितव्यमित्याह—‘तं’ इत्यादि ।

मूलम्—

त परिष्णाय मेधावी इयारिणो जो जमहं पुञ्चमकासी पमाएणं ॥ सू० ५ ॥

छाया—

त परिज्ञाय मेधावी इदानीं नो यदहं पूर्वमकार्षं प्रमादेन ॥ सू० ५ ॥

पुरुष इन गुणों में अथवा शब्द आदि इन्द्रियविषयों में आसक्त है अर्थात् रांघने आदि के लिए अग्नि उत्पन्न करता है, जलाता है और किसी भी प्रकार उसका हनन करता है वह पुरुष अपने मन, वचन, काय के दूषित व्यापार के कारण तथा अग्निशस्त्र का समारम्भ करने के कारण अग्नि के जीवों के दडका कारण होने से दण्ड कहलाता है। कारण में कार्य का उपचार करने से दड के कारणभूत पुरुष को दड कहते हैं। लोक में उस पुरुष की ‘दड’ इस निन्दनीय नाम से प्रसिद्धि होती है ॥ सू० ४ ॥

अब बतलाते हैं कि पूर्वोक्त कथन जानकर अग्निशस्त्र के समारम्भ से वचना चाहिए—‘ते’ इत्यादि ।

मूलार्थ—अग्निकाय अथवा अग्निकाय के समारम्भ को जानकर बुद्धिमान् पुरुष निश्चय करे कि—प्रमाद के वश होकर मैंने पहले जो किया सो अब नहीं करूंगा ॥ सू० ५ ॥

पुरुष आ गुणोभा अथवा शब्द आदि इन्द्रियविषयोभा आसक्त छे अर्थात् राधवा आदिने भाटे अग्नि उत्पन्न करे छे, भाणे छे, अने केरि पणु प्रकारे तेनु डनन करे छे, ते पुरुष चोताना मन, वचन अने कायाना दूषित व्यापारना कारणे तथा अग्निशस्त्रने समारम्भ करवाना कारणे अग्निना लोवने दडनु कारणे होवाथी दड कडेवाय छे कारणभा कार्यने उपचार करवाथी दडना कारणभूत पुरुषने पणु दड कडे छे लोकभा ते पुरुषनी ‘दड’ आ निन्दनीय नामथी प्रसिद्धि थाय छे (सू ४)

इवे भतावे छे के—पूर्वोक्त कथन जानीने अग्निशस्त्रना समारम्भथी अथवुं जेथे—‘त’ इत्यादि

मूलार्थ—अग्निकाय अथवा अग्निकायना समारम्भने जानी बुद्धिमान् पुरुष निश्चय करे के—प्रमादना वश थडने मे पडेला ने कथुं छे ते इवे नई करे (सू ५)



टीका—

मेघादी-प्रहणभारणादिगुणवान्, यद्वा-साधुमर्पादारसोमे सावधानः, यद्वा-  
 हेयोपादेयविवेकनिपुणः, तम्-अग्निकार्यं, यद्वा तम्-अग्निशस्त्रसमारम्भं दृष्टनाम  
 पृष्ठार्द्रं पग्निद्राय-रूपपरिग्रया च यकारणत्वेन, प्रत्याख्यानपरिक्षया हेयत्वेन पर्याख्येयः,  
 प्रतिजानीते-अग्नि-मिथ्यात्वादिमलिनान्ताःकरणः प्रमादेन-विषयकष्यायादिममादबन्धतः  
 यम्-अग्निशस्त्रसमारम्भं पूर्वम्-महान्नावस्यापाम्, अकार्षम्-कृतवान्, पृष्ठोर्निस्त्य-  
 साकाङ्क्षत्वात् तम् इदानीम्-संप्रति प्रवक्ष्यामस्यापाम् नो-नैव करिष्य इति  
 श्लेषः ॥ सू० ५ ॥

अथ सर्वथाऽग्निशस्त्रसमारम्भपरिस्थागिनोऽनगारात्, तथाऽग्निशस्त्र  
 समारम्भे प्रवृत्तान् द्रव्यच्छिद्विन्ध निषिष्य प्रतिषोपयितुमाह-‘सज्जमाणा’ इत्यादि ।

टीकार्थ-प्रहण और भारणादिक गुणों से युक्त, अथवा साधुओं की मर्पादा की  
 रक्षा करने में सावधान अथवा हेय और उपादेय के विवेक में निपुण पुरुष अग्निकार्य अथवा  
 अग्निकार्य के समारंभ को जानकर अर्थात् उपरिक्षा से उसे कर्मबंध का कारण समझकर और  
 प्रत्याख्यानपरिक्षा से हेय समझकर इस प्रकार प्रतिज्ञा करते हैं-मिथ्यात्व आदि विकारों के  
 बंध होकर मैंने अज्ञानदश में अग्निकार्य का समारंभ किया था । वह समारंभ अब दौष्या-  
 अथवा में नहीं करूँगा ॥ सू० ५ ॥

अग्निशस्त्र का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारा तथा अग्निशस्त्र के समारंभ में  
 प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यच्छिद्वि पुरुषों को अस्मा अस्मा कर के समझाते हैं-‘सज्जमाणा’ इत्यादि ।

टीकार्थ-प्रहण और भारणादिक गुणवादी युक्त अथवा साधुजनों की मर्पादा की  
 रक्षा हेतु सावधान, अथवा हेय और उपादेयता विवेक में निपुण पुरुष अग्निकार्य  
 अथवा अग्निकार्यना समारंभने आदिने अर्थात् उपरिक्षाधी तेने दमअधनुं भारण  
 समझने अने प्रत्याख्यानपरिक्षाधी श्लेष-(आत्म) समझने आ प्रभावे प्रतिज्ञा  
 करे छे-मे अज्ञान इत्याभा मिथ्यात्व आदि विकारोंने बंध अग्नि अग्निकार्यना समारंभ  
 कर्षो इते; ते समारंभ इवे रीक्षा-अवस्थाभां नदीं इई (सू. ५)

अग्निशस्त्रने सर्वथा त्याग हेतुवाच्य अथवा ही तथा अग्निशस्त्रना समारंभना  
 प्रवृत्ति हेतुवाच्य द्रव्यच्छिद्वि पुरुषोंने अस्मा-अस्मा इतीने समझावे छे-‘सज्जमाणा’ इत्यादि  
 प. भा -७१

... शोचि एगे पवयमाणा, जमिणं विरुवरुवेहि  
... समारंभमाणा अणो अणोगरुवे पाणे

हया—

... अतगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिम विरुप-  
... अग्निशक्त्वं समारभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणिनो  
... ॥ सू० ६ ॥

टीका—

अग्निशक्तं=अग्निकायसमारम्भे परमकरुणया द्रवीभूतहृदयतया संकुचिता-  
अग्निशक्तसमारम्भपरित्यागिन इत्यर्थः, पृथक्=विभिन्नाः, केचित् प्रत्यक्ष-  
परोक्षज्ञानिनो भवितात्मनोऽनगाराः

भूतार्थ—अग्निकाय के आरभ में सकोच करने वालों को अलग समझो। और  
'हम अनगार हैं' ऐसा कहने वाले नाना प्रकार के जलों द्वारा अग्निकर्म का समारभ करने  
वाले दूसरे (द्रव्यलिङ्गी) अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—अत्यन्त दया के कारण अग्निकाय के समारभ में हार्दिक सकोच  
करने वाले, इसी कारण अग्निशक्त के समारभ के त्यागी अलग हैं, उन में कोई अवधि-  
ज्ञानी हैं, कोई मन-पर्ययज्ञानी हैं, कोई केवलज्ञानी हैं। कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा

भूतार्थ—अग्निशक्तयना आरभमा संकोच करवावाणाने अलग समझे, अने  
'अग्नि आणुगार छीये' ये पण्डु कडेवावाणा नाना प्रकारना शक्ते द्वारा अग्निशक्तनो  
समारंभ करवावाणा णीज (द्रव्यलिङ्गी) अनेक प्रकारना प्राणीयेनी हिंसा करे छे (सू ६)

टीकार्थ—अत्यन्त दयाना कारणे अग्निशक्तयना समारभमा हार्दिक संकोच  
करवावाणा, अज्ज कारणेथी अग्निशक्तनो समारभना त्यागी अलग छे—भूदा छे येमा  
कोई अवधिज्ञानी छे, कोई मन पर्ययज्ञानी छे, कोई केवलज्ञानी छे कोई परोक्षज्ञानी  
भावितात्मा आणुगार छे. ते सर्व सूक्ष्म अने आदर अग्निशक्तयनो समारंभ करवाभां

सन्तीति पश्य । इमे सूक्ष्मवाद्ग्निकायसमारम्भकरणे भीतास्मस्ता उद्विग्नास्त्रिकरव  
 विषेणौरग्निकायसमारम्भपरित्यागिनो विघ्नन्ते तानपन्नोक्तपेत्पर्यः ।

एके पुनरन्य तु 'वयमनगाराः स्मः' इति सामिमानं प्रकृत्मानाः 'वयमेवा  
 अग्निकायभीपरवृणपरा महाप्रतभारिभः' इति प्रकृत्पन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृषक  
 पृषकभावेन पश्य ।

इमे सूक्ष्मनगाराभिमिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु म प्रवर्तन्ते,  
 नापि गृहस्यकृत्य किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति-'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्-यस्माद् विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः द्रव्यभावभेदमित्तैः शक्तैः=  
 अग््निकायशक्तैः, अग्निर्कर्मसमारम्भेण=अग्नेः कर्मसमारम्भः अग्निर्कर्मसमारम्भः=

अग्निपर हैं । य सब सूक्ष्म और वादर अग्निकाय का समारम्भ करने में मीत-बदने वाले हैं,  
 अस्त हैं उद्विग्न हैं और तीन करण तीन योग से अग्निकाय के समारम्भ के त्यागी हैं,  
 उन्हें देखो ।

इन से विपरीत दूसरे लोग 'हम अनगार हैं, हमीं अग्निकाय की रक्षा  
 में उत्पन्न हैं, महाप्रती हैं' इस प्रकार अभिमान के साथ प्रकृत करते हुए द्रव्यलिङ्गी हैं,  
 उन्हें अस्मा समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये लोग साधुमां का तनिक भी कर्तव्य नहीं  
 करते और न गृहस्वकार्य का त्याग करते हैं ।

ये लोग तरह-तरह के द्रव्य और माष रूप अग्निकाय के शक्तों से अग्निर्कर्म का

धीर-अवधान से प्रकृत से, उद्विग्न से अने प्रकृत, प्रकृतोत्थी अग्निभावना  
 सभाषणना त्यागी से तेने सुखे ।

अनगारी विपरीत (उपर कहा तेनाही उद्वेग व्यवहार करना) धीर होकर  
 'अग्ने अग्निज्जर धीजे, अग्ने अग्निभावनी रक्षाभा उत्पन्न धीजे, महाप्रती धीजे,  
 जो प्रभावे अभिमाननी साथे प्रकृत करे से ते द्रव्यलिङ्गी से तेने अलग समझे-

अग्निज्जर होवानु अभिमान करवावाजा या होकर साधुजोना अन्तपक्ष कर्तव्यने  
 करता नहीं अने प्रकृतकर्ता कार्योना त्याग करता नहीं-

ते होकर तरेक-तरेकना द्रव्य अने आवरूप अग्निभावना शक्तोभी अग्निर्कर्मने-

अग्नि निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धनिबन्धनसावधव्यापारस्तेन, इमम् = अग्निकायं विद्दिसन्ति ।

अग्निकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूप लोक सर्वमेव विद्दिसन्तीत्याह—‘अग्निशस्त्र’—मित्यादि । अग्निशस्त्रम् = अग्न्युपमर्दकं शस्त्रम्, तत् पूर्वोक्तप्रकारं द्रव्यभावभेदभिन्नं समारम्भमाणाः = अग्निकायं प्रति व्यापारयन्तः अन्यान् त्रसाश्च विद्दिसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा—‘वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः सर्वारम्भपरित्यागिनः षड्जीवनिकायरक्षका अनगाराः स्मः’ इति वदन्तो दण्डि-शाक्यादयः सन्ति । ते चात्मानमनगारं प्रवदमाना नानगारगुणेषु लेशतोऽपि प्रवर्तन्ते ।

आरम्भ कर के अर्थात् अग्नि के निमित्त से ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का कारणभूत सावध व्यापार कर के अग्निकाय की हिंसा करते हैं ।

अग्निकाय की हिंसा में प्रवृत्त पुरुष षट्कायरूप समस्त जीवों की हिंसा करते हैं, यही बतलाते हैं—अग्नि का घात करने वाले—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र का अग्नि के विषय में प्रयोग करने वाले अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य पृथ्वीकाय आदि स्थावरों की तथा द्वीन्द्रिय त्रस जीवों की हिंसा करते हैं ।

ससार में बहुत से द्रव्यलिङ्गी हैं । ‘हम पञ्चमहाव्रतधारी, समस्त आरंभ का त्याग करने वाले और षट्काय के रक्षक अनगार हैं । इस प्रकार कहने वाले दण्डी शाक्य आदि हैं । वे अपने को अनगार कहते हुए भी लेशमात्र भी अनगार के गुणों में प्रवृत्ति नहीं करते ।

आरम्भ करीने अर्थात् अग्निना निमित्तार्थी ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंना कारणभूत सावध व्यापार करीने अग्निकायनी हिंसा करे छे

अग्निकायनी हिंसाभा प्रवृत्त पुरुष षट्कायरूप समस्त जीवोनी हिंसा करे छे, ज्ये भतावे छे—अग्निने घात करवावाणा—द्रव्यशस्त्र अने भावशस्त्रने अग्निना विषयभा प्रयोग करवावाणा अग्निकाय साथे भीन्न पृथ्वीकाय आदि स्थावरोंनी तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवोनी हिंसा करे छे

ससारभा धर्माण् द्रव्यलिङ्गी छे, ‘अने पञ्चमहाव्रतधारी समस्त आरम्भने त्याग करवावाणा अने षट्कायना रक्षक अणुगार छीजे,’ आ प्रकारे कहेवावाणा दण्डी शाक्य आदि छे ते चोताने अणुगार कहेता थका पणु लेशमात्र अणुगारना गुणोभा प्रवृत्ति करता नथी

शाक्यादयः पचन-पाचन-प्रतापन-प्रकाशापर्यमपि कर्मसमारम्भं कुरुन्ति, कारयन्ति, कुरुष्वोऽनुमोदयन्ति च, तेन पट्कायजीवविरागका भवन्ति ।

दक्षिणोऽपि-‘ वयं पञ्चमहाव्रतधारीणो जिनवचनारागका भवन्तारः स्मः ’ इत्यादि प्रकृतमानाः साध्याभासाः सावधमुपदिशन्तः शास्त्रनिषिद्धमप्यभिकर्मसमारम्भं कारयन्ति ।

इत्यग्रे हि-शास्त्रव्याख्यानादौ देवकुलादौ प्रतिमाप्रतिभयादिप्रतिष्ठादौ च धूपदीपहवनानादिभिरभिकर्मसमारम्भं कारयन्तो दक्षिण एव कथयन्ति च-स्नानादिना पुष्पैर्धूपैश्च पायसापूपलहृहादिभिर्विभिर्नैवेद्यैश्च प्रतिमापूजा

इत्यस्य आदि पचन, पाचन, तापन तथा प्रकाश आदि के द्विष्ट अभिकर्म का सम्पन्न करते हैं, कराते हैं और करते हुए का अनुमोदन करते हैं, अतः वे पट्काय के निरागक हैं ।

दक्षी करते हैं-‘ हम पंचमहाव्रतधारी हैं जिनवचन क आरापक भवन्तार हैं ’ । ये साध्याभास साधक का उपदेश देते हैं और शास्त्रनिषिद्ध अभिकर्म का सम्पन्न कराते हैं ।

शाक के व्याख्यान आदि में देवकुल आदि में, प्रतिमा प्रतिभय और प्रतिष्ठा आदि में धूप दीप और हवन आदि द्वारा अग्निर्कर्म का आरम कराते हुए दक्षी देव जाते हैं । वे ऐसा करते हैं-स्नान कराकर पुष्पों से धूप से लीप से, पूष से, तथा लहृहा आदि से तथा विभिन्न प्रकार के नैवेद्य से प्रतिमा की पूजा करनी

शाक्य आदि पचन, पाचन, तापन तथा प्रकाश आदि भाटे अग्निर्कर्मने समारंभ करे छे करावे छे अने करनारने अनुमोदन आपे छे । तेही ते पट्कायना निरागक छे ।

दक्षी करते छे छे- अने पञ्चमहाव्रतधारी जीजे, जिनवचनना आरापक भवन्तार जीजे । जे साध्याभास सावधनो उपदेश आपे छे अने शास्त्रनिषिद्ध अग्निर्कर्मने समारंभ करावे छे ।

शाक्यना व्याख्यान आदिमां देवकुल आदिमा, प्रतिमा प्रतिभय तथा प्रतिष्ठा आदिमां धूप, दीप अने हवन आदि द्वारा अग्निने आरंभ करववा केव तेना दक्षी नेवामां आपे छे ते अने करते छे छे-स्नान करवपनि पुष्पों धूपदी, लीपदी मातपूष तथा लहृहा आदिही तथा विभिन्न प्रकारनां नैवेद्यही प्रतिमाती पूजा करवी अछे जिन

कर्तव्येत्यादि । पुनः—जिनस्य वामपार्श्वे धूपः स्थापनीयः, दक्षिणपार्श्वे घृतपूर्णः प्रज्वालितः प्रदीपः स्थाप्यः, पायसापूपघृतपूरलड्डूकादि नैवेद्यमपि पुस्तः स्थापनीयमित्यादि । तच्च विनाग्निर्कर्मसमारम्भ नोपपद्यते । ओषध्यर्थं काथादि, शुष्ठिपाकादि, पातुमुष्णोदक, भोक्तुं विविधाहारं च कारयन्तीति ॥ सू० ६ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद—‘तत्थ’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवत्या परिष्णा पवेइया । इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-  
माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेवे अगणिसत्थं

चाहिए । जिन भगवान् के वैई (डावी) ओर घूप रखना चाहिए और दाहिनी (जिमणी) ओर घी से भग जलता दीप रखना चाहिए । सामने खीर, मालपूआ, घेवर और लड्डू आदि नैवेद्य रखना चाहिए ” । ये सब अग्निर्कर्म का समारम्भ किये विना नहीं हो सकते । वे लोग ओषधि के लिए काथ वगैरह, सौठ का पाक आदि, पीने के लिए गर्म जल और खाने के लिए विविध प्रकार के आहार बनवाते हैं ॥ सू० ६ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘तत्थखलु’ इत्यादि ।

मूलार्थ—इस विषय में भगवान् ने बोध दिया है । इसी जीवन के लिए, वन्दन, मानना और पूजा के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, तथा दु खों का निवारण करने के लिए वह स्वयं अग्निशत्रु का आरम्भ करता है, दूसरों से अग्निशत्रु का

लगवाननी डापी तरइ धूप राअवेो न्नेधंअे अने जभएी तरइ घीने लरेतो णणतो  
दीपक राअवेो न्नेधंअे सामे थीर, मालपूआ, घेवर अने लाडु आदि नैवेद्य राअवुं  
न्नेधंअे अे सवं अग्निर्कर्मना समारल कथां विना थर्ध शकता नथी ते दोड  
ओषधी भाटे क्वाथ वगेरे, सुंठना पाक आदि, पीवा भाटे गरम जल अने पावा  
भाटे विध-विध प्रकारना आहार अनावरावे छे (सू ६)

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—‘तत्थ खलु’ इत्यादि

मूलार्थ—आ विषयमा लगवाने जोध आय्ये छे आ जवन भाटे वदन, मानन,  
अने पूजने भाटे, जन्म-मरणथी मुक्त थवा भाटे तथा दु जेनु निराकरण करवा भाटे  
ते पाते अग्निशत्रुना आरल करे छे, पील पासे अग्निशत्रुना आरल करावे छे, अने

समारम्भ, अग्नेर्हि वा अग्निसत्त्वं समारम्भावेह, अग्ने वा अग्निसत्त्वं समारम्भावे समनुजानात्, त से अहियात्, त से अबोधीत् ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तत्र स्वच्छ भगवता परिष्ठा प्रवेदिता । अस्य वैच जीवितस्य परिषन्दन्मान्न पूरुनाय प्रातिमरणमोक्षनाय दुःस्वप्तिघातहेतुं स स्वयमेव अग्निश्मत्समारम्भे, अन्यैर्वा अग्निश्मत्समारम्भपति, अन्यान् वा अग्निश्मत्समारम्भाणान् समनुजानाति, त् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ७ ॥

टीका—

तत्र=अग्निश्मत्समारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिष्ठा=सम्यग्बोधः स्वच्छ प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मबन्धसमुन्नेदार्यं जीवेन परिष्ठाऽप्यस्य क्षरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपमोगद्धारम्—

शोकः कस्मै प्रयोजनान्याग्निश्मत्समारम्भयतो ?—स्याह—‘अस्य वैच जीवितस्ये’

भारम करता है और अग्निश्मत्समारम्भ करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है, तो यह उस के अहित के लिए है, यह अबोध के लिए है ॥ सू० ७ ॥

टीकार्थ—अग्निश्मत्समारम्भ के समारम्भ में श्री महावीरने सम्यक् उपदेश दिया है । आशय यह है कि—कर्मबन्ध का नाश करने के लिए जीव को परिष्ठाका आशय अवश्य लेना चाहिये, ऐसा उपदेश दिया है ।

उपमोगद्धार—

किञ्च प्रयोजन से सेवा अग्निश्मत्समारम्भ की हिंसा करते हैं यह बतझते हैं—इसी

अग्निश्मत्समारम्भे अग्निश्मत्समारम्भ करने वाले अनुमोदन करे से ते जेना (प्राप्ताना) अहित भाटे छे, ते अग्निश्मत्समारम्भे भाटे छे ( सू० ७ )

टीकार्थ—अग्निश्मत्समारम्भे श्री महावीरे सम्यक् उपदेश आशय छे, आशय जे छे ते—कर्मबन्ध नाश करवा भाटे छेवे परिष्ठाके आशय अवश्य लेवे जेहिजे जेवे उपदेश आशय छे

उपमोगद्धार—

इया प्रयोजनसे सेवा अग्निश्मत्समारम्भ की हिंसा करे छे जे जेना छे—अग्निश्मत्समारम्भे

त्यादि । अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य मुखार्थं प्रकाशकरणार्थम्, ओदनादिरन्धनार्थं, धूमयानादिगतिसिद्धयर्थं चेत्यर्थः । तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय-परिवन्दनं=प्रशंसा तदर्थं, यथा-अग्नियन्त्रेण 'आतिशवाजी' इति-भाषामसिद्धे क्षणनश्वरस्फुलिङ्गवृष्ट्यादौ, मानन=जनसत्कारः तदर्थं, यथा-भूपादीन् प्रसादयितुं दीपमालादीपवृक्षनिर्माणादौ । पूजन=रत्नरत्नादिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-देवप्रतिमाद्यर्थं भूपदीपारात्रिककरणादौ । तथा-जातिमरणमोचनाय=जन्म-मरणबन्धमोचनार्थं, यथा-हवनादौ, दुःखप्रतिघातहेतुम्=वातरोगापनयनार्थं गीतापनोदनार्थं ज्वरविषूचिकादिनिवृत्त्यर्थं च दहनप्रतापनादौ, स=नश्वरजीवन-सुखाद्यर्थी स्वयमेव अग्निशस्त्रम्=अग्न्युपमर्दकं द्रव्यभावगत्तं समारभते=व्यापारयति ।

क्षणभङ्गुर जीवन के सुख के लिए, प्रकाश करने के लिए, चावल आदि पकाने के लिए, रेल आदि चलाने के लिए, तथा अपनी प्रशंसा के लिए, जैसे-अग्नियन्त्र से क्षणविनश्वर चिनगारियाँ बरसाने के लिए अर्थात् 'आतिशवाजी' के लिए जन-सत्कार के लिए जैसे-राजा वगैरह को प्रसन्न करने के उद्देश्य दीपमालिका जलाना या दीपकों के वृक्ष की रचना करना, तथा वस्त्र, रत्न आदि पुरस्कार पाने के लिए, जैसे-देवप्रतिमा आदि के लिए धूप-दीप आदि करना । तथा जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, जैसे हवन आदि में, दुःखों का प्रतीकार करने के लिए, जैसे-वातरोग हटाने के लिए, ठंड दूर करने के लिए तथा ज्वर एव विषूचिका दूर करने के लिए डाम देना या तपाना आदि कार्य करने में । इन सब प्रयोजनों के लिए इस जीवन के सुख का अर्थात् पुरुष स्वयं द्रव्य

शुवनना सुभ भाटे, प्रकाश करवा भाटे, योषा आदि राधवा भाटे, रेल आदि चलाववा भाटे तथा चोतानी प्रशंसा भाटे, जेमके-अग्नि यन्त्रो क्षणविनश्वर चिन गारीयो बरसाववा भाटे अर्थात् 'आतिशवाजी' भाटे, जनसत्कार भाटे, जेम-राज वगेरेने प्रसन्न करवाना उद्देश्यो दीपमालिका जगववा अथवा दीपकेना वृक्षनी रचना करवी, तथा वस्त्र, रत्न आदि पुरस्कार प्राप्त करवा भाटे जेम-देवप्रतिमा आदि भाटे धूप-दीप आदि करवु, तथा जन्म-मरणार्थी मुक्त यवा भाटे जेम-हवन आदिभा, उ चोतो प्रतिकार करवा भाटे जेम-वातरोग हटाववा भाटे, ठंडी दूर करवा भाटे तथा ज्वर-ताप अने डेलेरा दूर करवा भाटे डामवु-आदि कार्य करवाभा, आ सर्व प्रयोजनो भाटे आ शुवनना सुभना अर्थात् पुरुष चोते द्रव्यभाव इय अग्निशस्त्रो



अग्न्येषां अग्निशस्त्रं समारम्भयति=उद्योन्नयति । अन्याम् वा अग्निशस्त्रं समारम्भयन्  
 समनुमानाति=अनुमोदयति । तत्=अग्निहायसमारम्भं, तस्य=अग्निहायसमारम्भं  
 कर्त्तव्यं, अकारयितुं, अनुमोदयितुम्, अदिताय मवति, तथा तत्, तस्य अन्वेषणे=  
 सम्पत्कामाया, मवति ॥ सू० ७ ॥

येन तु तीर्थं ह्यरादिसमीपेऽग्निहायसीवस्वरूपं परिद्वारं स एवं विभावयतीत्याह  
 -'से त' इत्यादि ।

मूकम्—

से तं संबुद्धमात्रे आयात्सीयं समुदाय सोम्या स्तु भगवतो अणमा  
 राणां वा अतिथि, इहमेगेसिं पायं मवइ-एस स्तु गंधे, एस स्तु मोहे, एस  
 कस्तु मार, एस मस्तु परस, इत्येत्यं गच्छि मीय अमिषं विरूपरुवेहिं सरयेहिं

मायकूप अग्निशस्त्र का आरंभ करता है दूसरो से आरंभ करवाता है और आरंभ करने वाले  
 को अनुमोदन करता है । यह अग्निहाय का आरंभ करने, करने और अनुमोदन करने वाले  
 के अहित और सम्पत्काम की अप्राप्ति के स्थि होता है ॥ सू० ७ ॥

जिस ने तीर्थ ह्यर आदि से अग्निहाय का स्वरूप समस्त किया है वह इस प्रकार  
 विचार करता है - 'से त' इत्यादि ।

मूकार्थ— जो पुरुष तीर्थ ह्यर मगवान् या उनके अनगारो से उपदेश सुनकर  
 वासि अज्ञाकार कर के विचरता है, वह इस प्रकार सोचता है—संसार में किन्ही-किन्ही को  
 ही यह ज्ञान होता है कि—यह प्रेम है, यह मोह है, यह मार है, यह मरक है ।

आरंभ करे छ नीज पासे आरंभ करवे छ अने आरंभ करवावावाने अनुमोदन  
 करे छ—आ अग्निहायने आरंभ करनार, करानार अने कराने अनुमोदन  
 करानारना अहित अने सम्पत्कामनी अप्राप्ति भाये जाय छ (स. ७)

वेदो तीर्थ ह्यर आदि पासेही अग्निहायनु स्वरूप समस्त दीपु छ ते आ  
 प्रभावे विचार करे छ - सेतं इत्यादि ।

मूकार्थ— जो पुरुष तीर्थ ह्यर मगवान् अथवा तो तेभ्या अणुपारा पासेही  
 उपदेश सोचणी वासि अज्ञाकार कराने विचरे छ—ते आ प्रभावे विचार छ है—स सारमा  
 होइ—होइनेअ आ अनुवाग्यं होइ छ है—आ अय छ आ मोह छ आ मार-भृत्य छ ।

अगणिकम्मसमारम्भेणं अगणिसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विद्दिस्स  
॥ सू० ८ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा  
अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष  
खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण  
अग्निशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विद्दिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा  
अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निश्चय्य आदानीयम्=उपादेय सर्वसावधयोगविरतिरूपं चारित्रं  
समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, संबुध्यमानः=अहिताबोधि-  
जनकत्वेन विज्ञाता भवति ।

स हि एवं विभावयति—इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेश-

गृद्ध लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निकर्म का आरंभ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता  
हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अनगारों के निकट उपदेश  
सुनकर सर्वसावधयोग के त्यागरूप चारित्र को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के  
समारम्भ को अहितकर और अबोधिकर समझ लेता है ।

वह इस प्रकार सोचता है—इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रन्थो के उपदेश से

व्या नरक छे गृद्धलोक नाना प्रकारना शस्त्रेधी अग्निकर्मना समारम्भ करीने अग्नि  
शस्त्रेना व्यापार करता थका अनेक प्रकारना प्राणीयोनी हिंसा करे छे (सू ८)

टीकार्थ—जे पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा तेभना अष्टुगारोनी समीप  
उपदेश सांभलीने सर्वसावधयोगना त्यागरूप चारित्रेना स्वीकार करीने विचरे छे ते  
अग्निकायना समारम्भने अहितकर अने अबोधिकर समझ ले छे

ते व्या प्रभाषे विचारे छे के—व्या मनुष्य लोकमा श्रमण निर्ग्रन्थोना उपदेशधी

संप्राप्तसम्यग्बोधवैराग्याणामात्मारविनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?  
-त्याकाङ्क्षायामार- 'एष स्रष्ट प्रन्यः' इत्यादि ।

एषः=अग्निस्तस्यसमारम्भः, स्रष्ट=निश्चयन, प्रन्यः=प्रप्यते=बध्यतेऽपेनेति-  
प्रन्यः=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणं कार्योपचारात् कारणभूतोऽग्निस्तस्यसमारम्भ एव  
कर्मबन्धरूपो प्रन्य इत्युच्यते । एवमप्रेक्ष्येति बोध्यम् । तथा-एषः=अग्निस्तस्यसमारम्भः  
मोहः=विपर्ययः=अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-  
एष मरकः=नरकजीवानां इष्टविषयातनास्थानम् ।

इत्यर्थः=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-मरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि  
पुनःपुनरेतदर्थमेव, लोकाः=ज्वालनवक्ष्यतीं जीवः गृहः=लिप्सुरस्ति । यथा-गृहः=

किंहे सम्पन्नान् और वैराग्य उत्पन्न हो गया है उन आत्माओं पुरुषों को ही विदित होता है ।  
यथा विदित होता : सो कहते हैं-'यद् मय हे' इत्यादि ।

यद् अग्निस्तस्य स्य समारम्भ निश्चय ही आठ प्रकार का कर्मबंध है । कारण में कार्य  
का उपचार करने से अग्निस्तस्य के समारम्भ को ही कर्मबंध कहा है, वास्तव में यह समारम्भ  
कर्मबंध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए । तथा यह अग्निसमारम्भ मोह  
है-विपर्यय है-अज्ञान है ।

तथा यह समारम्भ मृत्युरूप है-निगोद आदि मरणरूप है । और यह मरक है-मरक  
की दश प्रकार की वातमानों का स्थान है ।

कर्मबंध मोह, मरण और नरक रूप पेटे दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानो

उने सम्पन्नान् आने वैराग्य उत्पन्न बंध अयो उ ते अज्ञानाधी पुरुषोनेन अज्ञानाधी  
दोष उ शु अज्ञानाधी दोष उ ? ते कहे उ- आ मय उ आदि.

आ अग्निस्तस्येन आरंभ निश्चय-तस्मिन् आठ प्रकारना कर्मबंध उ कारणभा  
कारिणा उपचारे इत्याधी अग्निस्तस्येन समारम्भेन कर्मबंध कहे उ वास्तविक रीते  
एव समारम्भ कर्मबंधनु कारण उ आ प्रभावे अज्ञान पण समल देवु लोभने. तथा  
आ समारम्भ मोह उ-विपर्यय-मरण उ तथा आ समारम्भ मृत्युरूप उ-निगोद  
आदि मरणरूप उ आने आ नरक उ-नरकनी इस प्रकारनी वातनाप्येनु स्थान उ.

कर्मबंध मोह, मरण आने नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने पणु

अग्निकर्मसमारम्भेणं अग्निसत्यं समारम्भमाणे अपणे अपोगरूवे पाणे विहिंसद्  
॥ सू० ८ ॥

छाया—

स तत् संवृध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा  
अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष  
खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण  
अग्निशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विद्धिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा  
अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निश्चय आदानीयम्=उपादेय सर्वसावद्ययोगविरतिरूपं चारित्रं  
समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, संवृध्यमानः=अहितावोधि-  
जनकत्वेन विज्ञाता भवति ।

स हि एवं विभावयति—इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेश-

गृद्ध लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निकर्म का आरम्भ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता  
हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अनगारों के निकट उपदेश  
सुनकर सर्वसावद्ययोग के त्यागरूप चारित्र को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के  
समारम्भ को अहितकर और अवोषिकर समझ लेता है ।

वह इस प्रकार सोचता है—इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रन्थो के उपदेश से

आ नरक छे, गृद्धलोक नाना प्रकारना शस्त्रोधी अग्निकर्मने समारम्भ करीने अग्नि  
शस्त्रने व्यापार करता थका अनेक प्रकारना प्राणीओनी हिंसा करे छे (सू० ८)

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा तेमना अष्टगारोनी समीप  
उपदेश सांख्यीने सर्वसावद्ययोगना त्यागरूप चारित्रने स्वीकार करीने विचरे छे ते  
अग्निकायना समारम्भने अहितकर अने अवोषिकर समझ ले छे

ते आ प्रभावे विचारे छे छे—आ मनुष्य लोकमा श्रमण निर्ग्रन्थोना उपदेशधी

संजातसम्पत्तयवोपपैराभ्यानामात्मारविनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?  
 -त्याकाङ्क्षायामाह—'एष सख्यः प्रन्वः' इत्यादि ।

एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः, सख्यः=निश्चयेन, प्रन्वः=अप्यते=वप्यतेऽग्नेनेति-  
 प्रन्वा=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारात् अरम्भभूतोऽग्निशस्त्रसमारम्भ एव  
 कर्मबन्धरूपो प्रन्व इत्युच्यते । एवमत्रेवपि बोध्यम् । तथा-एषः=अग्निशस्त्रसमारम्भः  
 मोहः=विपर्ययः=अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-  
 एष नरकः=नारकजीपानां दशविधयासनास्थानम् ।

इत्यर्थः=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि  
 पुनःपुनरेतदर्थमेव, लोकाः=अज्ञानबन्धवर्ती जीवः गूढः=तिष्ठति । यद्वा-गूढः=

किं सम्पत्तय और वैराग्य उत्पन्न हो गया है उन आत्माधी पुरुषों को ही विदित होता है ।  
 क्या विदित होता है सो कहत हैं—'यह सब है' इत्यादि ।

यह अग्निशस्त्र का समारंभ निश्चय ही आठ प्रकार का कर्मबंध है । कारण में कार्य  
 का उपचार करने से अग्निशस्त्र के समारंभ को ही कर्मबंध कहा है, बाष्प में यह समारम्भ  
 कर्मबंध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये । तथा यह अग्निसमारंभ मोह  
 है-विपर्यय है-अज्ञान है ।

तथा यह समारंभ मृत्युरूप है-निगोद आदि मरणरूप है । और यह मरक है-नरक  
 की दशा प्रकार की आतङ्गजो का स्थान है ।

कर्मबंध मोह, मरण और मरक रूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी

जने सम्पत्तय जने वैराग्य उत्पन्न बंध जयो छे, ते आत्माधी पुरुषोनेक आत्माध्या  
 दोष छे शु आत्माध्या दोष छे । ते कहे छे—'आ अंध छे' इत्यादि ।

आ अग्निशस्त्रेण आरभ्य निश्चय-नश्चैव आठ प्रकारका कर्मबंध छे कारणमें  
 कार्यने उपचार इत्याधी अग्निशस्त्रेण समारंभनेक कर्मबंध कहे छे वास्तविक रीते  
 यह समारंभ कर्मबंधनुं कारण छे आ प्रभावे आत्मनः च यत् समष्टौ तेन जेधये, तथा  
 आ समारंभ मोह छे-विपर्यय-अज्ञान छे तथा आ समारंभ मृत्युरूप छे-निगोद  
 आदि मरणरूप छे जने आ नरक छे-नरकनी दश प्रकारनी पावनान्तेनुं स्थान छे

कर्मबंध, मोह, मरण जने नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने चनु

अग्निकर्मसमारम्भेणं अग्निसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूत्रे पाणे विहितस्र  
॥ सू० ८ ॥

टामा—

स तत् सवुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा  
अन्तिके, इहैकेपां ज्ञात भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष  
खलु नरकः, इत्यर्थं गृह्णो लोकाः, यदिमं विरूपस्त्वैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण  
अग्निशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहितस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा  
अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निश्चय आदानीयम्=उपादेय सर्वसावधयोगविगतिरूपं चारित्र्यं  
समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, सवुध्यमानः=अहितावोधि-  
जनकत्वेन विज्ञाता भवति ।

स हि एवं विभावयति—इह=मनुष्यलोके, एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेश-

गृह्य लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निकर्म का आरम्भ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता  
हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों को हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अनगारों के निकट उपदेश  
सुनकर सर्वसावधयोग के त्यागरूप चारित्र्य को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के  
समारम्भ को अहितकर और अवोधिकर समझ लेता है ।

वह इस प्रकार सोचता है—इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से

आ नरक छे गृह्यलोक नाना प्रकारना शस्त्रोधी अग्निकर्मने समारम्भ करीने अग्नि  
शस्त्रने व्यापार करता थका अनेक प्रकारना प्राणीयोगानी हिंसा करे छे (सू ८)

टीकार्थ—जे पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा तेमना अष्टुगादीनी समीप  
उपदेश सांलणीने सर्वसावधयोगना त्यागरूप चारित्र्यने स्वीकार करीने विचरे छे ते  
अग्निकायना समारम्भने अहितकर अने अवोधिकर समझ ले छे

ते आ प्रमाद्ये विचारे छे के—आ मनुष्य लोकमा श्रमण निर्ग्रन्थाना उपदेशधी

संज्ञातसम्पन्नबोधोपैरैराम्यानामात्माविन्नामय, इत्येवमिदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?  
 -त्याकाङ्क्षायामाह—'एष सख्य प्रपः' इत्यादि ।

एषः=अग्निशक्तिसमारम्भः, सख्यु=निश्चयन, ग्रन्थः=ग्रन्थते=ग्रन्थतेऽनेनेति-  
 ग्रन्थः=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारात् कारणभूतोऽग्निशक्तिसमारम्भ एव  
 कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते । एषमग्नेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः=अग्निशक्तिसमारम्भः  
 मोहः=विपर्यासः=अज्ञानम् । तथा-एष एष मारम्भरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-  
 एष मरणः=नारकजीवानां दुःखविषयाटनास्थानम् ।

इत्यर्थः=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-मरणरूप घोरदुःखफलं प्राप्यापि  
 पुनःपुनरेतदर्थमेव, लाङ्का=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृह्य=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृह्यः=

किं सम्पन्न और वैराग्य रूप हो गया है उन आत्माओं पुरुषों को ही विदित होता है ।  
 क्या विदित होता ' सो कहते हैं—'यह प्रप है' इत्यादि ।

यह अग्निशक्त का समारंभ निश्चय ही अष्ट प्रकार का कर्मबंध है । कारण में कार्य  
 का उपचार करने से अग्निशक्त के समारंभ को ही कर्मबंध कहा है, वास्तव में यह समारंभ  
 कर्मबंध का कारण है । इसी प्रकार अज्ञेय भी समझना चाहिए । तथा यह अग्निसमारंभ मोह  
 है-निपर्यास है-अज्ञान है ।

तथा यह समारंभ मृत्युरूप है-निगोद आदि मरणरूप है । और यह मरण है-मरण  
 की वसा प्रकार की वातनामो का स्थान है ।

कर्मबंध मोह मरण और नरक रूप और दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानो

नेने सम्पन्न होने वैराग्य रूप नहीं जयो, ते आत्माओं पुरुषोनेल लक्षणां  
 दोष ते शुं लक्षणां दोष ते? ते हते ते- आ प्रप ते अदि.

आ अग्निशक्तने आरंभ निश्चय-अज्ञेय आह प्रकारना कर्मबंध ते कारणं  
 कार्योपचार इत्यादी अग्निशक्तना समारंभनेल कर्मबंध हतो ते वास्तविक सीते  
 आ समारंभ कर्मबंधनुं कारणं छ आ प्रभवे आभय पक्ष समल वेतुं लोडके तथा  
 आ समारंभ मोह ते-विपर्यास-अज्ञान ते तथा आ समारंभ मृत्युरूप ते-निगोद  
 आदि मरणरूप ते अने आ मरण ते-मरणनी इस प्रकारनी वातनामोनुं स्थान ते

कर्मबंध मोह, मरण अने नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने पक्ष

भोगाभिलाषी लोकः=संसारी जीवः इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=कर्मबन्धमोहमरणनरकार्य-  
मेव प्रवर्तते इति शेषः ।

अयं भावः-भोगाभिलाषी लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूज-  
नार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं चाग्निशस्त्रसमारम्भं करोति, तत्फलं खलु  
कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपमेव लभते, तस्मादग्निशस्त्रसमारम्भस्य तदेव फलं  
बोध्यमिति ।

‘लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्तते’ इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ?  
इति जिज्ञासायामाह-‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=पूर्वोक्तप्रकारैः अग्निकर्म-

जीव वार-वार इसी की इच्छा करते हैं । अथवा भोगों का अभिलाषी संसारी जीव इस  
कर्मबन्ध, मोह मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्त होते हैं ।

तात्पर्य यह है-भोगों का अभिलाषी लोक शरीर आदि का पोषण करने के  
लिए, वदना, मानना और पूजा के लिए जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए और दुःख का  
प्रतीकार करने के लिए अग्निशस्त्र का समारम्भ करता है और फलस्वरूप कर्मबन्ध, मोह,  
मरण और नरक रूप फल पाता है । अत एव अग्निशस्त्र के समारम्भ का फल वही बन्ध  
आदि समझना चाहिए ।

‘लोक वार-वार कर्मबन्ध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करता है’ यह जो कहा है सो  
कैसे ज्ञात हुआ ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—

क्यों कि वह नाना प्रकार के पूर्वोक्तशस्त्रों से अग्नि की विराधना करने वाला

अज्ञानी एवं वार-वार तेनीज् ईच्छा करे छे अथवा-लोगोना अभिलाषी संसारी  
एव आ कर्मबन्ध, मोह, मरण् अने नरक भाटेज् प्रवृत्त थाय छे

तात्पर्य अ्ये छे-लोगोना अभिलाषी भाष्यसे शरीर आदित्तु पोषण् करवा भाटे  
वदना, मानना अने पूजने भाटे, जन्ममरण्थी मुक्त थावा भाटे अने दुःखनो  
प्रतिकार करवा भाटे अग्निशस्त्रनो समारम्भ करे छे अने इलस्वरूप कर्मबन्ध, मोह,  
मरण् अने नरकइय इलने प्राप्त करे छे अेटला भाटे अग्निशस्त्रना समारम्भतुं इल  
ते अथ आदि समज्वा जेई अ्ये

लोक वार-वार कर्मबन्ध वगैरे भाटेज् प्रवृत्ति करे छे अ्येत्तुं जे कछु ते केनी  
रीते ज्ञाणुवाभा आन्थु ? आ प्रभाण् ज्ञासा थावाथी कडे छे—

उभक्के तो नाना प्रकारना पूर्वोक्त शस्त्रोधी अग्निनी विराधना करवावाणा सावध



समारम्भेण=अन्युपमर्दनरूपसावध्यापारेण, इमम्=अग्निहाय विहितस्ति । तथा अग्निहस्तं समारम्भमाणः=व्यापारयन् अन्यान्=पृथिवीकायादीन्, अनेकस्यान्=असान् स्यापरांभ, प्रामान्=माभिनो, विहितस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ८ ॥

अग्निहस्तं समारम्भमाणा अनेकविधान् जीवान् कथं विहितस्ति ? उत्पति बोधयितुं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह- 'से वेमि' इत्यादि ।

मूळम्—

से वेमि-सति पाप्मा पृथ्वीनिस्त्रिया तपनिस्त्रिया पचनिस्त्रिया कट्टु निस्त्रिया गोमयनिस्त्रिया क्यवरनिस्त्रिया, सति संघाह्मा पाणा आहृष संपर्यति, अगमि च खलु पुद्गा एगे संघायमावन्नेति, जे तस्य संघायमान जति,

सवष व्यापार कर के अग्निहाय की हिंसा करता ह और अग्निहाय का आरंभ करता हुआ अन्य पृथ्वीकाय आदि नामा प्रकार के रथावर एव प्रस प्राणियों का पात करता है ॥ सू० ८ ॥

अग्निहाय का आरंभ करने वाले अनेक प्रकार के जीवों की विराधन्व किस प्रकार करते हैं । यह समझाने के लिये श्रीसुधर्मा स्वामी कहते हैं- 'से वेमि' इत्यादि ।

मूळार्थ-बड़ी से कहता हूँ-बौध पृथिवी के आभित हूँ, तृण के आभित हूँ, पत्तों के आभित हूँ, काष्ठ के आभित हूँ गोबर के आभित हूँ क्यवर के आभित हूँ, संपत्तिम बौध अचानक आकर अग्नि में पड़ जाने हूँ, कोय-कोय अग्नि का छूकर निकुड

व्यापार करीने अग्निहायनी हिंसा करे छे अने अग्निहायनो आरंभ करवा साधे अन्य पृथ्वीकाय आदि नामा प्रकारना प्रस एवो जे प्रभाने रथावर प्राणीजोनो पात करे छे (सू. ८)

अग्निहायनो आरंभ करवापाणा अनेक प्रकारना एवानी विराधन्व कथा प्रकार (कवी शक्ति) करे छे ? ते अममवषा भाटे, श्री सुधर्मा स्वामी कहें छः- से वेमि इत्यादि ।

मूळार्थ-ते दुं कट्टु छ-एव पृथ्वीना आभित छ तृणने आभित छ पत्ता-पाताने आभित छ काष्ठाने आभित छ गोबरने आभित छ क्यवरने आभित छ संपत्तिम अचानक आगीने अग्निमां पड़ी अथ छ जे सकेआरं अथ छ त

ते तत्थ परियावज्जंति जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उदायंति ॥ सू० ९ ॥

छाया—

तद् ब्रवीमि—सन्ति प्रागाः पृथिवीनिश्रिताः तृणनिश्रिताः पत्रनिश्रिताः काष्ठनिश्रिताः गोमयनिश्रिताः कचवरनिश्रिताः, सन्ति सपातिमाः प्राणाः आहत्य संपतन्ति, अग्निं च खलु स्पृष्टा एके संघातमापद्यन्ते, ये तत्र संघातमापद्यन्ते ते तत्र पर्यापद्यन्ते, ये तत्र पर्यापद्यन्ते ते तत्रापद्रावन्ति ॥ सू० ९ ॥

टीका—

तद्=अग्निकायहिंसया यथा बहुविधाः प्राणिनः प्रणश्यन्ति, तद् ब्रवीमि=कथयामि, पृथिवीनिश्रिताः=पृथिवीरूपं कायमाश्रित्य वर्तमानाः पृथिवीकायिका इत्यर्थः । 'पृथिवीनिश्रिताः' इत्युपलक्षणम्, तेन तदाश्रिताः कृमि-कुन्धु-पिपी-लिका-भुजङ्गम-मण्डूक-वृश्चिक-कर्कटकादयो गृह्यन्ते । तथा च पृथिवीकायिका-स्तदाश्रितास्त्रसाश्रेत्यर्थः, वृक्षलतादयश्च । तथा-तृणनिश्रिताः=वनस्पतिकायिकाः,

जाते हैं, जो सिकुड जाते हैं वे मूर्च्छित हो जाते हैं और जो मूर्च्छित हो जाते हैं वे मर भी जाते हैं ॥सू० ९॥

टीकार्थ—अग्निकाय की हिंसा से बहुत प्रकार के जीवों का घात होता है, सो मैं कहता हूँ—पृथिवी के सहारे रहने वाले जीव पृथिवीकायिकों के अतिरिक्त और भी बहुत से हैं । जैसे—कृमि, कुन्धुवा, विउटी, साप, मेंढक, बिच्छु, कैकडा, आदि । अतः पृथिवी आश्रित का अर्थ यहा पृथिवीकायिक स्थावर तथा त्रस जीव लेना चाहिए । वृक्ष और वेल आदि भी इसी में सम्मिलित हैं । तथा तृण-आश्रित वनस्पतिकाय के

मूर्च्छित थर्ध नय छे, अने ने मूर्च्छित थाय छे ते भरी पक्षु नय छे (सू. ९)

टीकार्थ—अग्निकायनी हिंसाथी घणान् प्रकारना एवोनो घात थाय ते हुं कहुं छुं-पृथ्वीना आश्रये रडेवावाणा एव पृथ्वीकायोनो साथे भीन पक्षु घण्णा छे नेम कृमि कुन्धवा, कीडीओ, साप, देडका, वीछी केकडा आदि ये कारखुथी पृथ्वीआश्रितनो अर्थ अहिं पृथ्वीकायिक स्थावर तथा त्रस एव देवा नेधये वृक्ष अने वेला-वेल आदि पक्षु तेभा सम्मिलित छे. तथा तृण-आश्रित वनस्पतिकायना एव अने तृणना आश्रये रडेवा-

तृणमाभिस्यासस्वापिनः मञ्जुककीटवृणश्चौकाइयथ, तथा—पत्रनिभिता=वनस्पति  
 कायिकाः पत्रमाभित्य निवासिनः पिपीलिकाभेदाः 'घोहन' इति मगबदेशे प्रसिद्धाः,  
 कीटपतङ्गनीलकण्ठमसुतयथ, तथा—काष्ठनिभिताः काष्ठं धरन्तीकृत्य स्वित्वाः घुणोरे  
 रिका-उष्णदाद्या, अथ काष्ठं क्षुष्कमिन्धनरूपं सार्द्रं च गृह्यते । तथा—गोमयनिभिताः  
 =उष्णपद्ममिस्फोटादयः । तथा कषयरनिभिताः—कषयरः क्षुष्कक्षुष्पत्रभासमुदा  
 कृत्यः, सं निभिता=समाभिताः कृमि-कुण्डुकीटादयः प्राणाः=प्रापिनः सन्ति ।

तथा—सपातिमाः=उष्णस्थोत्प्लुस्य पत्तनशीलाः, प्रत्याः=प्राणिनः वृद्धमद्यकम-  
 लिहापतङ्गपक्षिपचनादया सन्ति । एते सपातिमा आहत्य=अग्निद्वित्वाकृष्टाः स्वप-  
 मेवोपेत्य, अन्नो संपतन्ति ।

बीज और वृण के सहारे रहने वाले मच्छर कीड़े और घास की बड़ोके (बौक) भादि  
 वृण-निमित्त कहलते हैं । पतों के सहारे रहने वाले मगब देश में प्रसिद्ध घोहन तथा  
 कीट, पतंग एवं नीलकण्ठ (कट) भादि बीज हैं । घुन, उखई और उनके भण्डे भादि  
 काठ के सहारे रहने वाले बीज काष्ठनिमित्त कहलते हैं । यहाँ 'काष्ठ' शब्द से सूखा  
 ईकरूप काठ और गीम काठ, दोनों समझने पाविए । तथा गोबर के भाभित्त गिडीया और  
 मूमिस्फोटक (मूफोड) भादि बीज हैं । इसी केकार कचरे के सहारे रहने वाले कृमि कुण्डुया  
 तथा कौश कौश, ये सब प्राणी हैं ।

उड-उड कर गिरने वाले हांस, मच्छर, मक्खी पतंग, पक्षी और पवन भादि  
 सपातिम बीज कहलते हैं । ये सपातिम बीज आग की शिस्ता से स्वयं आकारित हो कर  
 ज्यम में गिर जाते हैं ।

प्राणा मच्छर कीड़ा अने घासनी ज्यो भादि वृणु भाभित्त कडेवाय से पत्ता-बाँडोना  
 आश्रये रहेवावाण मअधदेशमा भिन्न दोहन तथा कीट पतंग अने नीलकण्ठ (कट) भादि  
 एव से वृणु उषिठ अने तेना ईसं भादि-हाडोना सहारे रहेवावाण एव काष्ठनिमित्त  
 कडेवाय से भादि काष्ठ शब्दकी सुई बाडोनाय काष्ठ अने बीजां काष्ठ, आ अने समक्या  
 नोडये, तथा छायाभा आश्रय करीने रहेवां त्रिदोना अने भूदोना भादि एव से आ  
 प्रभाये कषराना आश्रये रहेवावाण कृमि, कुण्डुया तथा कीटा वजरे, आ अने प्राणी से.

उडी-उडीने पडवावाण हांस, मच्छर, भाजी, पतंग, पक्षी अने पवन भादि  
 सपातिम एव कडेवाय से अने सपातिम एव आश्रयी-अग्निनी शिपाशी येते  
 आकारित कडने अग्निभां पडी जाय से.

अग्निऋषिसमारम्भे पृथिव्यादिसमाश्रितानां स्थावराणां त्रसानां चोपमर्दना-  
दिकं यथा भवति तद् दर्शयितुमाह—अग्निं चेत्यादि ।

एके—केचित् प्राणिनः, अग्निम्—समुत्पादितं प्रज्वालितं चाग्निऋषिसमारम्भे  
स्पर्शकर्तारः, आर्षत्वात् कर्तरि क्तः ।

संघातं=पक्षादिदहनेन गात्रसंकोचनम् आपद्यन्ते, प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । तत्र=  
अग्नौ पतित्वा ये जीवाः सघातमापद्यन्ते, ते तत्र पर्यापद्यन्ते=तापामिभूता मूर्च्छा  
प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । ये तत्र=अग्नौ पर्यापद्यन्ते, ते तत्र=अग्नौ, अपद्रावन्ति=प्राणान्  
परित्यजन्ति । अग्निऋषिसमारम्भेण केवलमग्निऋषिसमारम्भेण विराधना न भवति, अपितु सर्वदिक्-  
सचारिणं त्रसानां पृथिव्यादीनां स्थावराणामपि बहुतराणां हिंसाऽवश्यं भवतीति  
भावः । अतः श्लोके भगवता—

अग्निऋषिसमारम्भेण विराधना न भवति, अपितु सर्वदिक्-  
सचारिणं त्रसानां पृथिव्यादीनां स्थावराणामपि बहुतराणां हिंसाऽवश्यं भवतीति  
भावः । अतः श्लोके भगवता—

कोई—कई प्राणी जलती अग्नि को स्पर्श करके सिकुड जाते हैं—उन के पल  
वगैरह जल जाते हैं । अग्नि में पड कर जो जीव सघात को प्राप्त होते हैं वे गर्मी से  
मूर्च्छित हो जाते हैं । अग्नि में गिरने वाले अपने प्राण भी खो देते हैं । अग्नि का समारम्भ  
करने से केवल अग्निऋषिसमारम्भेण विराधना नहीं होती वरन् सभी दिशाओं में सचार करने  
वाले त्रस और बहुत से स्थावर जीवों की भी हिंसा अवश्य होती है । इसी लिए  
भगवान् ने कहा है —

अग्निऋषिसमारम्भेण विराधना न भवति, अपितु सर्वदिक्-  
सचारिणं त्रसानां पृथिव्यादीनां स्थावराणामपि बहुतराणां हिंसाऽवश्यं भवतीति  
भावः । अतः श्लोके भगवता—

कोई—कई प्राणी जलती अग्नि को स्पर्श करके सिकुड जाते हैं—उन के पल  
वगैरह जल जाते हैं । अग्नि में पड कर जो जीव सघात को प्राप्त होते हैं वे गर्मी से  
मूर्च्छित हो जाते हैं । अग्नि में गिरने वाले अपने प्राण भी खो देते हैं । अग्नि का समारम्भ  
करने से केवल अग्निऋषिसमारम्भेण विराधना नहीं होती वरन् सभी दिशाओं में सचार करने  
वाले त्रस और बहुत से स्थावर जीवों की भी हिंसा अवश्य होती है । इसी लिए  
भगवान् ने कहा है —

“भायतेर्यं न इच्छति, पापकं नस्यत्तप ।  
 त्रिष्वसमन्नपरं सत्यं, सम्प्रभोषि दुरासयं ॥ १ ॥  
 पाईणं पडिण वापि, उद्धं मणुदिसामपि ।  
 अहे दादिबओ वापि, दहे उचरओपि य ॥ २ ॥  
 भूयानामेसभापाओ, इष्यबाहो न संसओ ।  
 तं परीषपयाक्का, संबओ किंचि नारमे ॥ ३ ॥” (दशमै० म० ६)

छाया—आसतेअसं नेच्छन्ति, पापकं न्वास्यितुम् ।  
 तीष्णामन्नपरत् कर्त्तुं, सर्वतोऽपि दुरासयम् ॥ १ ॥  
 माष्यां मतोष्यां वापि, कर्म्ममद्वदिस्वपि ।  
 मओ दक्षिणतो वापि, दहदुचरतोऽपि च ॥ २ ॥  
 मृतानामेव भापातो, इष्यबाहो न संसयः ।  
 तं मदीपमतानार्यं, संयतः किञ्चिन्नारमेत् ॥ ३ ॥

‘साधु अग्नि को बलमे की इच्छा तक नहीं करते, क्यों कि वह एक बड़ा ही तीस्ता शत्रु है, जो किसी भी ओर से दुस्साह है—सभी ओर से बलता है ॥१॥

यह अग्निराज पूर्व से भी और पश्चिम से भी ऊपर से भी और निदिशामो की तरफ से भी नीचे से भी और दक्षिण से भी तथा उत्तर से भी बलता है ॥२॥

अग्नि बीजों का घातक है, इस में कोई संशय नहीं है । साधु दीपक बलमे तथा प्रवासने के लिए उस का बरा भी भारस नहीं करते ॥३॥ (दशमै अध्याय ६)

किर मी कहा है—

साधु अग्निने सज्जायवानी उच्छ्रम सुधी करता नहीं, कारण ते जोह भक्तन वीक्ष्य शत्रु छे ते ठाउपय्य जालुसी दुस्तक छे—आरेव तरक्षी जाणे छे ॥ २ ॥

आ अग्निशत्रु पूर्वकी पक्ष अने पश्चिमकी पक्ष उत्तरकी अने विद्विआजोनी तरक्षी पक्ष नीचकी अने दक्षिणकी पक्ष अने उत्तरकी पक्ष जाणे छे ॥ २ ॥

अग्नि लोचोने आतक छे तेभां कर्त्तुं पक्ष सशक नहीं साधु दीपक सज्जायवना पक्ष तापवाने भाटे तेने अक्ष पक्ष आरस करता नहीं ॥ ३ ॥ (ध्याने. अध्याय. ६)

इरी पक्ष कहे छे—

“દો પુરિસા સરિસવયા અન્નમન્નેર્હિ સદ્ધિ અગ્નિકાયં સમારંભંતિ, તત્થ ણં એમે પુરિસે અગ્નિકાયં સમુજ્જાલેતિ, એમે વિજ્જવેતિ, તત્થ ણં કે પુરિસે મહાકમ્મયરાણ ? કે પુરિસે અપ્પકમ્મયરાણ ? ગોયમા ! જે ઉજ્જાલેતિ સે મહાકમ્મયરાણ, જે વિજ્જવેતિ સે અપ્પકમ્મયરાણ ” ॥

છાયા—દ્વૌ પુરુષૌ મહશવયસ્કૌ અન્યાન્યાભ્યાં સાર્દ્ધમ્ અગ્નિકાયં સમારંભેતે, તત્ત્ર સ્વલ્લુ એકઃ પુરુષઃ અગ્નિકાય સમુજ્જ્વાલયતિ, એકો વિધ્યાપયતિ, તત્ત્ર સ્વલ્લુ કઃ પુરુષઃ મહાકર્મતરકઃ ? કઃ પુરુષઃ અલ્પકર્મતરકઃ ? । ગૌતમ ! યઃ (અગ્નિ) ઉજ્જ્વાલયતિ સ મહાકર્મતરકઃ, ય (અગ્નિ) વિધ્યાપયતિ સ અલ્પકર્મતરકઃ ( મગવતી સૂત્ર ) ॥ સૂ. ૧ ॥

તદેવમગ્નિકાયર્હિસયા વહુતરજીવોપમર્દનં ભવતીતિ વિદિત્વા ત્રિકરણ-ત્રિયોગૈઃ કૃતકારિતાનુમોદિતૈશ્ચાગ્નિશસ્ત્રસમારમ્મો વર્જનીય ઇત્યાહ—‘એત્થ સત્થ’ ઇત્યાદિ ।

“સમાન ઉમ્મ વાલે દો પુરુષ પરસ્પર અગ્નિકાય કા આરમ કરતે હિં । એક પુરુષ અગ્નિકાય કો જલાતા હૈ ઓર એક બુઝાતા હૈ । ઇન મેં સે કૌન—સા પુરુષ મહાકર્મ બાંધતા હૈ ? ઓર કૌન અલ્પકર્મ બાંધતા હૈ ? । હે ગૌતમ ! જો અગ્નિ જલાતા હૈ વહ મહા કર્મ બાંધતા હૈ ઓર જો અગ્નિ બુઝાતા હૈ વહ અલ્પ કર્મ બાંધતા હૈ” (મગવતીસૂત્ર) ॥ સૂ. ૧ ॥

ઇસ પ્રકાર અગ્નિકાય કી હિંસા હોતી હૈ, યહ જાનકર ત્રીન કરણ, ત્રીન યોગ સે, તથા કૃત, કારિત ઓર અનુમોદના સે અગ્નિશસ્ત્ર કા સમારમ ત્યાગ દેના ચાહિદ, યહી વાત કહતે હિં—‘એત્થ સત્થ.’ ઇત્યાદિ ।

“સમાન ઉમરવાળા જે પુરુષ પરસ્પર અગ્નિકાયને આરમ કરે છે. એક પુરુષ અગ્નિકાયને સળગાવે છે બાળે છે અને એક બુઝાવે—ઓલવે છે તે બેમાથી કયો પુરુષ મહા કર્મ બાંધે છે અને કોણ અલ્પ કર્મ બાંધે છે ? હે ગૌતમ ! જે અગ્નિ સળગાવે છે—બાળે છે તે મહા કર્મ બાંધે છે અને જે અગ્નિ બુઝાવે છે તે અલ્પ કર્મ બાંધે છે ” (મગવતી સૂત્ર) (સૂ. ૯)

આ પ્રમાણે અગ્નિકાયની હિંસાથી ધણા પ્રકારના જીવોની હિંસા થાય છે. એ જાણી કરીને ત્રણ કરણ, ત્રણ યોગથી તથા કરવું, કરાવવું અને અનુમોદનાથી અગ્નિશસ્ત્રને સમારમ ત્યજી દેવો જોઈએ, એજ વાત કહે છે—‘એત્થ સત્થ.’ ઇત્યાદિ.

मूत्रम्—

एस्य सस्य समारंभमाणस्य इत्येते आरंभा अपरिष्णाया भवति । एस्य सस्यं मस्रमारंभमाणस्य इत्येते आरंभा परिष्णाया भवति । त परिष्णाय मेहासी जेव सस्यं अगणिसस्य समारंभेज्जा, नेवज्जणेहि अगणि-सस्य समारंभावज्जा अगणिसस्यं समारंभमाणे अप्ये न समणु कामिज्जा नस्सेते अगणिसस्यसमारंभा परिष्णाया भवति, स हु सुणी परिष्णापकम्म-ए च वेमि ॥ सू० १० ॥

॥ चउत्थो उरेसो समघो ॥ १-४ ॥

ध्याया—

अत्र सस्यं समारंभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिष्णाया भवन्ति । अत्र मस्रसमारंभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिष्णाया भवन्ति । सत् परिष्णाय मेपासी नैव स्वयमग्निष्य समारंभेत नैवान्यैरग्निष्य समारंभयत्, अग्निष्य समारंभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यच्चैतं भद्रिकर्मसमारम्भा परिष्णाया भवन्ति, स सस्यं सुनिः परिष्णातकर्मा-इति प्रधीमि ॥ सू० १० ॥

॥ चउत्थो उरेसो समाप्त ॥ १-४ ॥

टीका—

मस्र=मस्त्रिम् अग्निकाये, सस्य द्रव्यमात्ररूपं प्राणुक्त समारंभमाणस्य=

मूत्रार्थ—अग्निशय्य का आरंभ करने बादा इन आरंभो को नहीं जानता । अग्निशय्य का आरंभ न करन बादा इन आरंभो को जानता है । इन्हें जानकर सुखिमान् पुरुष स्वयं अग्निशय्य का आरंभ न कर, दूसरा से अग्निशय्य का आरंभ न करावे और अग्निशय्य का आरंभ करन बादा की अनुमोदना न कर । जो इन समारंभो का ज्ञाता होता है वही सुनि परिष्णातकर्मा है ऐसा मैं (मगवान् क कबजानुसार) कहता हूँ ॥ सू० १० ॥

टीकार्थ—अग्निशय्य में द्रव्य और भावस्वरूप पुरुष का व्यापार करने

मूत्रार्थ—अग्निशय्यने आरंभ करवावाणा जे प्पारसिने ज्ञानुत्त नघो अग्नि शय्यने आरंभ नदि करवावाणा जे प्पारसिने ज्ञानुत्त ते तेने ज्ञानीने सुखिमान् पुरुष स्वयं अग्निशय्यने आरंभ न करे, बीजा पासि अग्निशय्यने आरंभ करवावे नदि । जेने अग्निशय्यने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन जाये नदि जे अग्निशय्य शय्याना गाथा-आवुत्तार जेय ते सुनि परिष्णातकर्मा छे । जे प्रभावे हूँ (मगवानुसार) हूँ सू (सू. १०)

टीकाध—अग्निशय्यमा द्रव्य जने भावरूप पुरुषोऽपि शय्यने व्यापार (उच्यते)

व्यापारयतः, इत्येते=पचनपाचनादयः आरम्भाः=सावधव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=अष्टविधकर्मबन्धकारणत्वेनाविज्ञाता भवन्ति, अग्निकाये शस्त्रं प्रयुञ्जानस्य परिज्ञाया अभावादिति भावः ।

अत्र=अस्मिन् अष्काये शस्त्रम्=पूर्वोक्तस्वरूपम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य, इत्येते=पचनपाचनादयः, आरम्भाः=सावधव्यापाराः, परिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति तथा दर्शयति-‘तत् परिज्ञाये’-त्यादि । तत्=अग्निकायारम्भणं, परिज्ञाय=‘कर्मबन्धाय भवती’-त्येवमवबुध्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेककुशलः, साधुमर्यादावधानशील इति यावत्, नैव स्वयमग्निशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरग्निशस्त्रं समारम्भयेत्, अग्निशस्त्रं

वाले को अर्थात् पचन-पाचन आदि पापमय कार्य करने वालों को यह ज्ञान नहीं होता कि-यह कार्य आठ प्रकार के कर्मों के बन्ध का कारण है, क्यों कि अग्निकाय के शस्त्र का प्रयोग करने वाले में परिज्ञा का अभाव होता है ।

अग्निकाय में पूर्वोक्त शस्त्र का व्यापार न करने वाले को सावध व्यापारों का ज्ञान होता है । वह ज्ञपरिज्ञा से उन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है ।

ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है ? सो कहते हैं-अग्निकाय का आरंभ कर्मबन्ध का कारण है, यह जानकर हेय-उपादेय के विवेक में प्रवीण साधुमर्यादा का ध्यान रखने वाला स्वयमग्निशस्त्र का आरम्भ नहीं करता, दूसरों से

करवावाणाने अर्थात्-पचन-पाचन आदि पापमय कार्य-करवावाणाने ज्ञे ज्ञान डोटु नथी हे आ कार्य आठ प्रकारना कर्मोना बन्धनु कारणु छे, कारणु हे अग्निशस्त्रना शस्त्रनो प्रयोग करवावाणाओमां परिज्ञानो अभाव डोय छे

अग्निशस्त्रमा पूर्वोक्त शस्त्रनो व्यापार-उपयोग नहि करवावाणाने सावध व्यापारोनु ज्ञान डोय छे ते ज्ञपरिज्ञाथी तेने ज्ञे छे, अने प्रत्याख्यान परिज्ञाथी तेनो त्याग करी आये छे

ज्ञपरिज्ञानी पछी प्रत्याख्यान परिज्ञा कया प्रकारे उत्पन्न थाय छे ? ते कहे छे-अग्निशस्त्रनो आरम्भ कर्मबन्धनु कारणु छे ज्ञे प्रमाणे ज्ञे छे-उपादेयना विवेकमा प्रवीण-कुशल साधुमर्यादानु ध्यान राखवावाणा पोते अग्निशस्त्रनो आरम्भ करता नथी, भीष्ण पासे आरम्भ करवाता नथी, अने आरम्भ करवावाणाने अनुमोदन



समारम्भमाणान् भन्यान् न समनुजानीयात्—नानुमोत्पत् । शेष सुगमम् । यस्यैत  
 अग्निर्भस्मसमारम्भा—कर्मणां समारम्भा कर्मसमारम्भा, अग्ने कर्मसमारम्भा अग्निर्भस्म  
 समारम्भाः=अग्निं निमित्तोक्तस्य कर्मकारणीभूता उपमर्दनस्यापारा इत्यर्थः, परिज्ञाता  
 =सर्वथा ज्ञाताः, ज्ञपरिज्ञया चन्वकाण्णत्वेन विविक्ताः प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परि  
 ज्ञिता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा-परिज्ञातानि=ज्ञपरिज्ञया स्वरूपसो विपाकस्त  
 दुपादानतश्चाङ्गतानि प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परित्यक्तानि कर्माणि=सावयस्यापारा  
 यन-स परिज्ञातकर्मा=मनोवाक्यैः सकृत्सावयकस्मरणानुभवतिनिवृत्त्या मुनिमपती  
 त्यर्थः । 'इति ब्रवीमि' अस्य व्याख्यानं पूर्ववद् बोध्यम् ।

॥ इत्याचाराद्ब्रह्मस्योऽऽचारचिन्तामणिनीकार्या प्रथमाध्ययन  
 चतुर्थोऽध्यायः संपूर्णः ॥ १-४ ॥

आरंभ नहीं करता और आरंभ करने वालों की अनुमोदना नहीं करता । शेष भाग सुगम है ।  
 अग्नि के निमित्त स होने बाध तथा कर्मबंध क क्षरणमूत यह सब पापमय  
 व्यवहार जिस ने कर्मबंध के कारण ज्ञपरिज्ञ स समस्त कर प्रत्याख्यानपरिज्ञा स त्याग  
 दिया है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है । जिसम इन व्यापारों का स्वरूप, फल और कारण  
 ज्ञपरिज्ञा से जान लिया है तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग कर दिया है उसे परिज्ञात  
 कर्मा मुनि कहते हैं । ऐसा मुनि मन, बचन काय से समस्त सावय के करने करने और  
 अनुमोदन करने का त्यागी होता है । 'इति ब्रवीमि' की व्याख्या पृष्ठ क समाप्त समस्त  
 व्या पारिण । सू० १०॥

श्रीभाषारचिन्तामणि 'आचारचिन्तामणि' टीकाक रिन्दी अनुवादमें  
 प्रथम अध्यायनका चौथा उद्देश संपूर्ण ॥ १-४ ॥

आख्या नहीं. शेष-आधीना काज सुगम है  
 अजिना निमित्तकी बचावाग्र तथा अभवधना क्षरणमूत आ सब पापमय  
 व्यवहारने लेके कर्मबंधना क्षरणे तपरिज्ञाकी समस्तने प्रत्याख्यानपरिज्ञाया त्याग  
 की आख्या से तेने परिज्ञातकर्मा मुनि कहें है जेवा मुनि-मन, बचन, आवाकी  
 समस्त सावयने करतुं क्षरावतुं जने अनुमोदन करतु तेना त्यागी दाव है इति  
 ब्रवीमि की व्याख्या प्रथमना समाप्त समस्त लेवी लेखने. (स. १०)

श्री आचार्यगणेश्वरनी 'आचारचिन्तामणि' टीकाया  
 गुजराती-अनुवादमा प्रथम अध्यायनने  
 चौथा उद्देशक म पूज्य (१-४)

## अथ पञ्चमोद्देशकः—

चतुर्थोद्देशोऽग्निकायस्वरूपं मृणित्वप्राप्तये प्रतिबोधितम् । साम्प्रत तदर्थमेव क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधनावसरे वनस्पतिकायजीवस्वरूपं प्रतिबोधयितुकामः पञ्चमोद्देशकमुपक्रमते—‘तं णो’ इत्यादि ।

ननु क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधन कथं न प्रक्रम्यते ? उच्यते—वायुकायः प्रत्यक्षतया दृष्टिगोचरो न भवति, अतस्तत्र श्रद्धा झटिति नोदेतुं प्रभवति, पृथिव्याद्ये-केन्द्रियजीवस्वरूपं प्रतिबुध्य तु सुतरां वायुकायो विज्ञास्यते, अतः स एव क्रमो गुरुभिरुपादेयो भवति, येन जीवादितत्त्वविज्ञानाय शिष्याः

## पंचम उद्देशक—

चौथे उद्देश में साधुता प्राप्त करने के लिए अग्निकाय का स्वरूप समझाया है । इसी के लिए क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप समझाने के प्रसंग में वनस्पतिकाय का स्वरूप बतलाने के लिए पाँचवाँ उद्देश आरम्भ करते हैं—‘तं णो’ इत्यादि ।

प्रश्न—क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप क्यों नहीं बतलाया गया है ? और वायुकाय को छोड़कर वनस्पतिकाय के विवेचन का उद्देश्य क्या है ?

उत्तर—बात यह है कि वायुकाय नेत्रों से प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता—सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय से उस की प्रतीति होती है । इस कारण उस के विषय में जल्दी श्रद्धा नहीं होती । हाँ, पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों का स्वरूप समझ लेने पर वायुकाय सहज ही समझ में आ जायगा । गुरुजन वही क्रम काम में लाते हैं जिस से शिष्य जीवादि

## पञ्चम उद्देशक—

योथा उद्देशकमा साधुता प्राप्त करवाने भाटे अग्निकायनु स्वरूप समन्वयं छे आ भाटेण कंम अनुसार वायुकायनु स्वरूप समन्वयवाना प्रसंगे वनस्पतिकायनु स्वरूप अताववाने भाटे पाथमा उद्देशकनो आरम्भ करे छे—‘तं णो’ इत्यादि ।

प्रश्न—कम प्रमाणे वायुकायनु स्वरूप शा भाटे अताव्युं नथी ? अने वायुकायने छोडीने वनस्पतिकायना विवेचनमा कथे उद्देश्य छे ?

उत्तर—वात अे छे डे—वायुकाय नेत्रथी प्रत्यक्ष जेवामा आवतो नथी मात्र स्पर्शेन्द्रियथी तेनी प्रतीति थाय छे आ डारणुथी तेना विषयमा जल्दी श्रद्धा यती नथी छे, पृथ्वीकाय आदि अेकेन्द्रिय अणुनु स्वरूप समन्व लीधा पछी वायुकाय सङ्गे समन्वयामा आवी जशे. गुरुजन आ कंमने काममा लावे छे, जे वडे करी शिष्य अवादि

स्वयमेवोत्सहते, तस्माद् वायुकायस्वरूपमनभिधाय वनस्पतिकायः प्रथमं प्रस्तूपते—  
'तं वो' इत्यादि ।

यथा—जनन्तरश्चतुर्षोऽग्निः कालो दीर्घलोकाश्चन्द्राद्यैः प्रतिबोधितः ।  
तत्र दीर्घलोकाश्चन्द्राद्यो वनस्पतिरित्याश्रय समधिगम्याग्निः कायप्रकरणसमाप्त्य  
नन्तरं प्रथमं वनस्पतिकायस्वरूपं विज्ञातुकामस्य शिष्यस्य प्रतिबोधनाय प्रथमं  
वनस्पतिकायोद्देशं कथयति— 'तं वो' इत्यादि ।

यथा वनस्पतिकायोपमर्दनमिहस्याऽन्यगारत्वं उच्यते, तं प्रकारं निर्दिशति—  
'तं वो' इत्यादि ।

तज्जो के ज्ञान में उल्लिखित हों । यही कारण है कि पशु वायुकाय का स्वरूप न कह कर  
वनस्पतिकाय का वर्णन किया जाता है—'तं वो' इत्यादि ।

अथवा—चौथे उद्देश में अग्निः का 'दीर्घलोकाश्च' बतलाया है । दीर्घलोकाश्च  
अर्थ वनस्पतिकाय है, यह आशय जानकर अग्निः का प्रकरण के पश्चात् ही शिष्य को  
वनस्पतिकाय का स्वरूप जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है । विज्ञप्ता के अनुरूप  
दिया हुआ उद्देश ही अधिक सफल होता है, अतः शिष्य की विज्ञप्ता पूरा करने के  
लिए चौथे उद्देश में वनस्पतिकाय का वर्णन किया जाता है—'तं वो' इत्यादि ।

वनस्पतिकाय की जिज्ञासे निवृत्त होने पर ही साधुता प्राप्त होती है, यह किस प्रकार  
प्राप्त होती है ? सो कहते हैं—'तं वा' इत्यादि ।

तस्मान्ना ज्ञानम् उल्लिखितं वाच्यं न्य कारवृत्ती प्रथमं वायुकायना स्वरूपने नदि कडेता  
वनस्पतिकायानु वक्ष्यं कश्चाम् आभ्यु छे— 'तं वो' इत्यादि

अथवा—चौथा उद्देशार्थ अग्निः का 'दीर्घलोकाश्च' तरीके ज्ञानम् छे  
दीर्घलोकाश्चो अर्थ वनस्पतिकाय छे, जे आशयने समलने अग्निः कायना प्रकरणे पछी  
शिष्यने वनस्पतिकायना स्वरूपने ज्ञानवानी छप्ता होय—अथ ते स्वाभाविक छे अज्ञानने  
अनुरूप आपेते। उपदेशक अधिक सफल वाच्य छे जे कारवृत्ती शिष्यनी अज्ञाना तृप्त  
करवाने आटे पांजभा उद्देशार्थ वनस्पतिकायानु विवेचन कश्चाम् आवे छे—'तं वो' इत्यादि

वनस्पतिकायनी जिज्ञासी निवृत्त तथा पछी साधुता प्राप्त वाच्य छे ते तथा  
प्रथमे प्रथम वाच्य छे ते कडे छे—'तं वो' इत्यादि

मूलम्—

तं णो करिस्सामि समुट्ठाए मत्ता महमं, अभयं विदित्ता तं जे णो करए,  
एसोवरए एत्थोवरए, एस अणगारेत्ति पवुच्चइ ॥ सू० १ ॥

छाया—

तं नो करिष्यामि समुत्थाय मत्वा मतिमान्, अभयं विदित्वा तं यो नो कुर्यात्,  
एष उपरतः अत्रोपरतः, एषः अनगार इति प्रोच्यते ॥ सू० १ ॥

टीका—

मतिमान्=मेधावी श्रमणनिर्ग्रन्थादिदेशनाश्रमणसंजातहेयोपादेयविवेकवा-  
नित्यर्थः । मत्वा=वनस्पतिकायस्वरूपं विज्ञाय विभावयति—अहं समुत्थाय  
आत्मकल्याणार्थमुद्युक्तः सन् मन्त्रज्यां गृहीत्वा, तं=वनस्पतिकायसमारम्भं नो  
करिष्यामीति ।

मूलार्थ—मेधावी पुरुष विचार करता है—मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर  
वनस्पतिकाय का आरम्भ नहीं करूँगा । जो पुरुष समय को जानकर आरम्भ नहीं करता है  
वही आरम्भ से उपरत है—वही जिन शासन में आरम्भ से निवृत्त कहलाता है । वही अनगार  
कहलाता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—श्रमण निर्ग्रन्थ आदि का उपदेश सुनने से जिसे हेय और उपादेय का  
विवेक उत्पन्न हो गया है वह वनस्पतिकाय का स्वरूप जानकर इस प्रकार विचार  
करता है—मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर—दीक्षा लेकर वनस्पतिकाय का आरम्भ  
समारम्भ नहीं करूँगा ॥

मूलार्थ—मेधावी पुरुष विचार करे छे—हुं आत्मकल्याण भाटे तैयार धर्धने  
वनस्पतिकायने आरंभ नहिं करे जे पुरुष समयने जाणीने आरंभ करता नथी  
ते आरंभथी उपरत छे, तेज जिनशासनमा आरंभथी निवृत्त कहेवाय छे, तेज  
अणुगार कहेवाय छे ॥ १ ॥

टीकार्थ—श्रमण निर्ग्रन्थ आदिने उपदेश साधनवाची जेने हेय अने  
उपादेयने विवेक उत्पन्न धर्ध गये छे ते वनस्पतिकायना स्वरूपने जाणीने आ  
प्रभाषे विचार करे छे—

हुं आत्मकल्याणने भाटे उद्यत-तैयार धर्धने-दीक्षा लधने वनस्पतिकायने आरंभ  
समारंभ करीश नहिं

अस्योद्देशस्य वनस्पतिकायविषयकत्वात् तच्छब्देन वनस्पतिकायसमारम्भ-  
परिसृष्टते । अत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तरं तत्समारम्भप्रवृत्तिप्रदर्शनेन  
ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष इति प्रतिबोधितम् । यः अमर्ष-नास्ति मर्षं यस्मात् कस्य चित्  
भाषिनः इत्यमयः=सर्वप्राणिप्राणप्राणस्त्वयमः संयम, त-विदित्वा तं=वनस्पतिकाय-  
समारम्भं नो कुर्यात् । एष उपरतः=वनस्पतिजीवविषये सर्वथा समारम्भात् विनिवृत्तः,  
अप-अस्मिन् त्रिमशासने उपरतः मोक्ष्यते, इत्यन्वय । तथा एषः=पूर्वोक्तस्त्वय  
उपरतः अनगार' इति प्रोच्यते । अनगारगुणानां संपूर्णतया सप्त सत्त्वात्, स  
एषानगारस्यैवान्योऽस्तीति माय ।

अथ वनस्पतिकायस्य सम्पृक्तानार्यं प्रागुक्ताष्टविधद्रावणि निरूपणी-

यह उरोस वनस्पतिकायसवनी है अतः यहाँ 'तत्' शब्द से वनस्पतिकाय  
का समारंभ किया जाता है । पहले वनस्पतिकाय का ज्ञान होता है फिर उसके आरंभ  
का व्यापक किया जाता है, यह कठनाकर सूचना की गई है कि मोक्ष, ज्ञान और क्रिया-  
रोना से होता है ।

प्रिससं किरीटी प्राणी को मय नहीं ऐसा, प्रणीमात्र की रक्षारूप संयम अमर्ष  
कहता है । उसे जानकर वनस्पतिकाय का समारंभ न करे । इस प्रकार वनस्पतिकाय के  
आरंभ से निरत पुरुष त्रिमशासन में 'उपरत' कहलता है और बहो उपरत पुरुष अनगार  
है क्योंकि अनगार के गुण पूर्णरूप से उसीमें पाये जाते हैं ।

वनस्पतिकाय का स्वरूप सम्बद्ध प्रकार से जानने के लिए पूर्वोक्त आठ

का उद्देश वनस्पतिकायसवनी से जो आरंभ की गई 'तत्' शब्दकी वनस्पति  
कामने समारंभ दोषाभां जाने से पहलेका वनस्पतिकायनु ज्ञान काय से पछी तेना  
आरंभने त्याग करवाभां जावे से जो अन्तर्विने सूचना करवाभां जावी से ज्ञान  
कने किया का जन्नेकी मोक्ष काय से

अनाशी कर्ष पक्ष आक्षीने लक्ष काय नकि, जो प्रमाये प्राणीमात्रकी रक्षारूप  
अथम ते अक्षय कहेवाय से तेने आक्षीने वनस्पतिकायने समारंभ करे नकि का  
अमर्षे वनस्पतिना आरंभकी विश्व पुरुष त्रिमशासनमा उपरत कहेवाय से अने तेज  
उपरत पुरुष अनगार से आरंभ के-अक्षयान्ना सुख पूष रूपकी तेमांज जेवाभां जावे से

वनस्पतिकायनु स्वरूप सम्बद्धप्रकारे आक्षय माटे पूर्वोक्त आठ क्षयानु निरूपण  
५. भा-।

મૂલમ્—

તં જો કરિસ્સામિ સમુદ્ઘાણ મત્તા મદ્મં, અમયં વિદિત્તા તં જે જો કરણ,  
 ઇસોવરણ ઇત્થોવરણ, ઇસ અણગારેત્તિ પવુચ્ચઈ ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—

તં નો કરિણ્યામિ સમુત્થાય મત્વા મતિમાન્, અમય વિદિત્વા તં ચો નો કુર્યાત્,  
 ઇષ ઉપરતઃ અત્તોપરતઃ, ઇષઃ અનગાર ઇતિ પ્રોચ્યતે ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—

મતિમાન્=મેઘાવી શ્રમણનિર્ગન્થાદિદેશનાશ્રમણસંજાતહેયોપાદેયવિવેકવા-  
 નિત્યર્થઃ । મત્વા=વનસ્પતિકાયસ્વરૂપં વિજ્ઞાય વિભાવયતિ—અહ સમુત્થાય  
 આત્મકલ્યાણાર્થમુદ્યુક્તઃ સન્ પ્રવ્રજ્યાં ગૃહીત્વા, તં=વનસ્પતિકાયસમારમ્ભં નો  
 કરિણ્યામીતિ ।

મૂલાર્થ—મેઘાવી પુરુષ વિચાર કરતા હૈ—મૈ આત્મકલ્યાણ કે લિણ ઉઘત હોકર  
 વનસ્પતિકાય કા આરમ નહીં કરૂંગા । જો પુરુષ સયમ કો જાનકર આરમ નહીં કરતા હૈ  
 વહી આરમ સે ઉપરત હૈ—વહી જિન શાસન મેં આરમ સે નિવૃત્ત કહલાતા હૈ । વહી અનગાર  
 કહલાતા હૈ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગન્થ આદિ કા ઉપદેશ સુનને સે જિસે હેય ઓર ઉપાદેય કા  
 વિવેક ઉત્પન્ન હો ગયા હૈ વહ વનસ્પતિકાય કા સ્વરૂપ જાનકર ઇસ પ્રકાર વિચાર  
 કરતા હૈ—મૈ આત્મકલ્યાણ કે લિણ ઉઘત હોકર—દીક્ષા લેકર વનસ્પતિકાય કા આરમ  
 સમારમ નહીં કરૂંગા ॥

મૂલાર્થ—મેઘાવી પુરુષ વિચાર કરે છે—હું આત્મકલ્યાણ માટે તૈયાર થઈને  
 વનસ્પતિકાયને આરમ નહિ કરૂં જે પુરુષ સયમને જાણીને આરમ કરતા નથી  
 તે આરમથી ઉપરત છે, તેજ જિનશાસનમાં આરમથી નિવૃત્ત કહેવાય છે, તેજ  
 અણગાર કહેવાય છે ॥ ૧ ॥

ટીકાર્થ—શ્રમણ નિર્ગન્થ આદિને ઉપદેશ સાંભળવાથી જેને હેય અને  
 ઉપાદેયને વિવેક ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે તે વનસ્પતિકાયના સ્વરૂપને જાણીને આ  
 પ્રમાણે વિચાર કરે છે—

હું આત્મકલ્યાણને માટે ઉઘત—તૈયાર થઈને—દીક્ષા લઈને વનસ્પતિકાયને આરમ  
 સમારમ કરીશ નહિ

तथा-वृक्षाः अभ्यक्तोपयोगपुरादिमन्ता, अभ्यक्तचेतनावच्छात्, सुप्तमूर्च्छित-  
 पुस्तकत् । अथ वनस्पतीनां हृष्यत्वहेतुना जीवश्चरीरत्वं सिद्धयति, ततश्च सचिन्त-  
 त्वम् । अपरञ्च-वृक्षाः सचेतना, सर्वत्वगपहरणे मरणात्, अजन्त । वनस्पति-  
 कायस्य सचेतनत्वमग्रेऽपि साधयिष्यते- 'से वेमि-इमपि जाह्वम्मयं एयपि  
 जाह्वम्मयं' इत्यत्र ।

यद्वा-अभ्यक्तोपयोगादीनि कयापपर्यन्तानि जीवश्चक्षुष्यानि पृथिवी

उपयोग (चेतना) और सुप्त आदि से युक्त है, क्योंकि कि उन में अन्यक्त चेतना है, जो अभ्यक्त  
 चेतनावच्छा होना है वह अन्यक्त चेतनावच्छा और सुप्त आदि बाधा होता है ऐसे सुप्त  
 या मूर्च्छित पुरुष ।

इस प्रकार 'हृष्यत्व हेतु से सिद्ध होता है कि-वनस्पति जीव का शरीर है और जीव  
 का शरीर होने के कारण सचित भी है । इसके अतिरिक्त और भी प्रमाण है । जैसे इस  
 चेतनावान् है क्या कि उनकी सारी लम्बा (छाल) हृदय पर उनकी मृत्यु हो जाती है,  
 सारी लम्बा हृदय पर जिस की मृत्यु हो जाती है वह सचेतन ही होता है, जैसे वक्रण ।  
 वनस्पतिकाम की सचेतनता आगे भी- 'स वेमि-इमपि जाह्वम्मयं एयपि जाह्वम्मयं'  
 इस सूत्र की व्याख्या करते हुए सिद्ध की जायगी ।

अथवा-अभ्यक्त उपयोग से केवल कयापपर्यन्त जीव के जो लक्षण पृथ्वी-

(चेतना) होने सुप्त आदिभी युक्त है, केमके तेमा अन्यक्त चेतना से ने अन्यक्त  
 चेतनावच्छा होय से ते अन्यक्त चेतनावच्छा होने सुप्त आदिबाधा होय से अथ सुतेता  
 लम्बा मूर्च्छित पुरुष का प्रकार हृष्यत्व हेतुभी सिद्ध बाय से के-वनस्पति एवम्  
 शरीर से होने एवम् शरीर होवाना कारणे सचित पञ्च से ज्येनी आये नील्य पञ्च  
 प्रमाण से अथके-पृक्ष चेतनावान् से केमके तेनी तमाम आमदी-छाल कादी नाजवादी  
 तेनु मृत्यु सर्व जय से, तमाम छाल कादी नाजवादी तेनु मृत्यु सर्व जय से ते चेतन  
 का होय से ज्येनी शते लक्षणा वनस्पतिकामनी चेतनता आगण पञ्च- 'से वेमि-इमपि  
 जाह्वम्मयं एयपि जाह्वम्मयं' का सूत्रनी व्याख्या करती वधते सिद्ध करवामां आये।

अथवा-अभ्यक्त उपयोगभी बधने कयाप सुधी एवना ने लक्षण पृथ्वीकायनां

કાયોદેશે પ્રાગભિહિતાનિ, તેપાં જીવલક્ષણાનાં વનસ્પતિકાયેઽપિ સદ્ભાવાદ્ વનસ્પતિઃ સચિત્તોઽસ્તિ, મનુષ્યવદિતિ નિર્ણયતે ।

અપિચ—વનસ્પતિઃ સચેતનઃ, વાલાઘવસ્થાસંદર્શનાત્, અનુકૂલ-પ્રતિકૂલાહારાદિના પુષ્ટિકાર્યાદિદર્શનાત્, છેદનભેદનાદિના મ્લાનતાદિદર્શનાચ મનુષ્ય-શરીરવત્ ।

યથા મનુષ્યશરીરમનુકૂલેનાહારાદિના પુષ્યતિ, તત્પ્રતિકૂલેન તદભાવેન ચ શુષ્યતિ, એવં વનસ્પતિરપ્યનુકૂલજલવાતાદિભિઃ પુષ્યતિ, પ્રતિકૂલજલવાતાદિમિશ્ર શુષ્યતિ । યથા વા છેદનાદિના મનુષ્યશરીર હસ્તાદિ મ્લાયતિ, તથા કાય કે ઉદ્દેશ મેં પહેલે કહે ગયે હેં વે સવ વનસ્પતિકાય મેં મી પાયે જાતે હેં । ઇસ કારણ વનસ્પતિ મનુષ્ય આદિ કે સમાન સચિત્ત હૈ ।

તથા—વનસ્પતિ સચેતન હૈ, ક્યોં કિ ઉસ મેં વાલ્યાવસ્થા આદિ દેખી જાતી હેં, અનુકૂલ આહાર સે પુષ્ટિ ઓર પ્રતિકૂલ આહાર સે કૃશતા આદિ દિખાઈ દેતી હૈ, ઓર છેદન-મેદન આદિ કરને સે મુરજ્ઞાના વગૈરહ દેખા જાતા હૈ, જૈસે મનુષ્ય કા શરીર ।

તાત્પર્ય યહ હૈ કિ જૈસે મનુષ્ય કા શરીર અનુકૂલ આહાર આદિ સે પુષ્ટ હોતા હૈ ઓર પ્રતિકૂલ આહાર સે યા આહાર કે અભાવ સે સૂઝ જાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર વનસ્પતિ મી અનુકૂલ જલ-વાયુ આદિ સે પુષ્ટ હોતી હૈ ઓર પ્રતિકૂલ જલ-વાયુ આદિ સે સૂઝ જાતી હૈ । અથવા જૈસે છેદન-મેદન કરને સે મનુષ્ય કા શરીર હાથ આદિ મુરજ્ઞા ઉદ્દેશમા પહેલા કહ્યા છે, તે સર્વ વનસ્પતિકાયમા પણ જોવામા આવે છે આ કારણથી વનસ્પતિ મનુષ્ય આદિના સમાન સચિત્ત છે

તથા—વનસ્પતિ સચેતન છે, કેમકે તેમા ખાલ્યાવસ્થા આદિ અવસ્થાઓ જોવામા આવે છે અનુકૂલ આહારથી પુષ્ટિ અને પ્રતિકૂલ આહારથી કૃશતા-હુર્બલતા આદિ દેખાય છે, અને છેદન, ભેદન આદિ કરવાથી મુરજ્ઞાઈ જલુ-કરમાઈ જલુ સુસ્ત કે ખિન્ન થવાપણુ વગેરે જોવામા આવે છે જેવી રીતે મનુષ્યનુ શરીર

તાત્પર્ય એ છે કે જેમ મનુષ્યનુ શરીર અનુકૂલ આહાર આદિથી પુષ્ટ થાય છે, અને પ્રતિકૂલ આહારથી અથવા તેા આહારના અભાવથી સુકાઈ જાય છે તેવી રીતે વનસ્પતિ પણ અનુકૂલ જલ, વાયુ આદિથી પુષ્ટ થાય છે, અને પ્રતિકૂલ જલ વાયુ આદિથી સુકાઈ જાય છે અથવા જેવી રીતે છેદન-ભેદન કરવાથી મનુષ્યશરીરના હાથ-પગ આદિ કરમાઈ જાય છે તે પ્રમાણે પાઠકા, ફલ, ફૂલ, આદિ વનસ્પતિ પણ છેદન-ભેદન



प्लवङ्गफलसुमादिरूपो वनस्पतिरपि छेदनादिना म्हायति, तस्माद् वनस्पतिः सचेतन इति सिद्धम् ।

यथा—वनस्पतिर्मीनः, चेतनान्त्वात्, मनुष्यवत्, यथा मनुष्यस्य म्हादिप्रत्ययशक्तिरूपं चेतना, तथैव वनस्पतौ समुपलभ्यते । तयारि-वङ्गलादयो गीत-सुरागम्भूप-कामिनीचरणताडनादिभिः फलन्ति, शमीलज्वालामसृतिषु च स्वापान्त्रोपसंकोचादयो दृश्यन्ते । शापानुग्रहाम्यामान्तरौ संकोचविकाशौ समस्त वनस्पतीनां मन्तव्यः । उक्तम्—

यथा है उसी प्रकार पत्ता फल फूल, आदि वनस्पति मी छेदन-भेदन आदि से मुरझा जाती है इससे सिद्ध होता है कि वनस्पति सचेतन है ।

अथवा—वनस्पति मीन है, क्योंकि कि चेतनावाली है, जैसे मनुष्य । जैसे-मनुष्य आदि में शब्द आदि को ग्रहण करने की शक्तिरूप चेतना है उसी प्रकार वनस्पति में भी शब्द आदि को ग्रहण करने की शक्तिरूप चेतना पाई जाती है । वङ्ग आदि के वृक्ष गीत मखिरा का कुच्छ, कामिनी के पैर के ताडन आदि से फलते हैं । शमी तथा ऊगयवती आदि में स्वाप (सोना) अग्रबोध (आगना) और संकोच (सिकुड़ना) देखा जाता है । शाप और अनुग्रह से सब वनस्पति में संकोच और विकास होता है । यथा मी है —

आदिभी करमाथं व्यव छे सुकार्थं व्यव छे, आ कारव्युधी सिद्धं व्यव छे के वनस्पति सचेतन छे

अथवा—वनस्पति एव छे केमके-चेतनावाली छे जेम मनुष्य. जेवी रीते मनुष्य आदिमां शब्द आदिने प्रकृत्य करवानी शक्तिरूप चेतना छे ते प्रभावे वनस्पतिमां पशु शब्द आदिने प्रकृत्य करवानी शक्तिरूप चेतना जेवामां जावे छे अकृत्य आदि पशु जीव, भदिसना ज द्रुप (केजला) शीना पगधी बबेहुं तादन आदिभी हवे छे शमी पमा लज्जान ती (सीसामकी) आदिमा सुधं जनुं जजनुं जने सकेवाथं जनुं जवेरे जेवामां जावे छे शाप जने अनुग्रहधी सब वनस्पतिमां सकेव जने विकास व्यव छे. कहुं छे के-

“स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः शीधुगण्डूपसेकात्,  
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ।  
मन्दारो नर्मवाक्याच्चट्टमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाताद्,  
वल्ली गीतान्मेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः ” ॥ १ ॥ इति ॥

आगमोऽपि—

“वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अपोगजीवा पुढोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणणं ”  
इति । ( दशवै० )

प्रदर्शितं चाधुनिकवैज्ञानिकैः प्रत्यक्षतया स्वकृतप्रयोगविशेषेण वनस्पतीनां  
सच्चित्तत्वम्, यथा—क्रोधादिमुन्नाटयतां तेषां गालीप्रदानादिभर्त्सनाभ्याम्

“प्रियगु का पेड खियों के स्पर्श से विकसित होता है, बकुल मदिरा के कुल्ले से  
खिल उठता है । अशोक वृक्ष खी के पैर का आघात लगने से खिल जाता है । तिलक वृक्ष  
खियों के देखने से, तथा कुरवक उनके आलिगन से खिल उठता है । मन्दार वृक्ष विनोदमय  
वाक्य सुनकर, चम्पक मृदुहँसी से, वल्ली वक्त्र (मुख) वायु से और नमेरु गीत से विकसित  
होता है । कनेर का पेंड सामने नाचने से खिल जाता है ” ॥१॥

वनस्पति की सचेतनता आगम प्रमाण से भी सिद्ध होती है । दृग वैकालिक  
सूत्र में कहा है—शस्त्रपरिणत को छोड़कर शेष सब वनस्पति सचित्त कही गई है, वह  
अनेक जीववाली है और उन जीवों की सत्ता पृथक् पृथक् है ” ।

आधुनिक वैज्ञानिकोंने अपने प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष दिखला दिया है कि वनस्पति  
सचित्त है । क्रोध आदि करने से—गाली देने या भर्त्सना करने से वृक्ष, लता आदि

“ प्रियगुनो छोड स्त्रीञ्चोना स्पर्शाथी विकसित थाय छे, बकुल मदिराना डेगण्णा  
करवाथी भिली उठे छे अशोक वृक्ष स्त्रीना पगने आघात लागवाथी भिली उठे छे  
तिलक वृक्ष स्त्रीञ्चोने जेवाथी तथा कुरवक स्त्रीञ्चोना आलिगनथी भिली उठे छे मन्दार  
वृक्ष विनोदमय वाक्य साक्षणीने, चम्पक मृदु हसारीथी, वल्ली वक्त्र (मुख) वायुथी  
अने नमेरु गीतथी विकसित थाय छे कनेरने छोड तेना सामे नाचवाथी भिले छे ” ॥१॥

वनस्पतिनी सचेतनता आगमप्रमाणोथी पणु सिद्ध थाय छे दशवैकालिक  
सूत्रमा कहु छे—“ शस्त्रथी परिणुत—( छेदाञ्चेली )ने छोडीने भाकीनी सर्व वनस्पति  
सचित्त कडेवी छे, ते अनेक लुववाणी छे, अने ते लुवोनी सत्ता पृथक्-पृथक् छे ”

आधुनिक वैज्ञानिकोञ्चो पोताना प्रयोगो द्वारा प्रत्यक्ष—अतावी आप्थु छे वनस्पति  
सचित्त छे क्रोध आदि करवाथी, गाण देवाथी अथवा तिरस्कार करवाथी वृक्ष, लता आदि

इतत्यादयः सकोचमापद्यन्ते, स्तुतिवाक्यैश्च प्रवचन्ते, विक्रसन्ति चेति वनस्पतीनां सचेतनत्वे नास्ति केषाञ्चिद् विषयः ।

ये तु सूक्ष्मा वनस्पतिकायास्ते धक्षुषा नैव दृश्यन्ते, अतस्तेषां सचिचत्वं मग्नद्रव्यमात्रावगम्यमिति समापि भद्रा करणीयैव ।

प्ररूपणाद्वारम्-

वनस्पतिजीवा द्विविधा-सूक्ष्मवादरमेदात् । सूक्ष्माः सर्वलोके कञ्जलरूपिकावत् संभृताः । वादरास्तु लोकैकवशा सन्ति । सूक्ष्माः पर्याप्तापर्याप्तमेदाद्द्विविधाः ।

वादरा द्विविधाः-प्रत्येकशरीर-साधारणशरीरमेदात् । एकमकं जीव

सकोच को प्राप्त होते हैं और प्रशंसा करने से बचते हैं और फूँसते हैं अतः वनस्पति की चिकित्सा में सब किसी को भी विबाध नहीं है ।

सूक्ष्म वनस्पतिक्रम के जीव ईश्वर से नहीं दिखाई देते । मगधान् के वननों में ही बने जा सकते हैं । उन पर यथा रसनी चाक्षिप ।

प्ररूपणाद्वार-

वनस्पतिक्रम के जीव दो प्रकार के हैं-सूक्ष्म और वादर । सूक्ष्म जीव समस्त क्षेत्रकाश में कामल की कुम्पी की तरह भरे हुए हैं । वादर जीव लोक के एक-एक माग में होते हैं । सूक्ष्म जीवों के भी दो भेद हैं-पर्याप्त और अपर्याप्त ।

वादर जीव प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर के भेद से दो प्रकार के हैं ।

इतिवने प्राप्तं वायुं च जने प्रथसा कश्चाधी कृते च जने जित्ते च जे कश्चुधी वनस्पतिनी सचिचत्वात्मा कवे कश्चिने पक्षु विबाध नधी.

सूक्ष्म वनस्पतिक्रमना एव नेत्रधी जेष्ठ शकत्या नधी. ते अत्रवानना वचनेधी च लक्षी शकय च तेन पर भद्रा शकनी जेष्ठजे.

प्ररूपणाद्वार-

वनस्पतिक्रमना एव के प्रकारना छे (१) सूक्ष्म अने वादर. सूक्ष्म एव समस्त क्षेत्रकाशमा कालानी कुम्पीनी प्रमाने अरेवा छे वादर एव ते कन्य जेष्ठ-जेष्ठ शकय छे.

सूक्ष्म एवोना पक्षु छे जेष्ठ छे (१) पर्याप्त अने (२) अपर्याप्त. वादर एव प्रत्येकशरीर अने साधारणशरीरना जेष्ठधी जे प्रकारना छे जेष्ठ-जेष्ठ एव सम्य पी

પ્રતિ ગત પ્રત્યેકમ્, પ્રત્યેક શરીરં યેષાં તે પ્રત્યેકશરીરાઃ । પ્રત્યેકનામકર્મોદયવશા-  
દેકૈકસ્ય જીવસ્ય શરીરમૌદારિકં વૈક્રિયં વા પૃથક્ પૃથગ્ ભવતિ । એવમ્ભૂતા જીવાઃ  
પ્રત્યેકશરીરા ઉચ્યન્તે । નારકદેવમનુષ્યાઃ, દ્વીન્દ્રિયાદયઃ, પૃથિવ્યાદયઃ, વૃક્ષગુચ્છાદિ-  
વનસ્પતયશ્ચ પ્રત્યેકશરીરિણઃ સન્તિ । ઇમે પ્રત્યેકાઃ પ્રત્યેકજીવા અપિ કથ્યન્તે ।

પ્રત્યેકશરીરા દ્વાદશવિધાઃ—વૃક્ષ—ગુચ્છ—ગુલ્મ—લતા—વહ્ની—પર્વગ—તૃણ—વલય-  
રિતૌ—ષધિ—જલરુહ—કુહળમેદાત્ ।

તત્ર વૃક્ષા દ્વિવિધાઃ—એકાસ્થિકાઃ (એકવીજકાઃ) બહુવીજકાશ્ચ । તત્રૈકાસ્થિકા  
અનેકવિધાઃ—નિમ્બામ્રજમ્બૂકૌશમ્બાદયઃ । બહુવીજકા અપ્યનેકવિધાઃ—

એક—એક જીવસબધી શરીર પ્રત્યેકશરીર કહલાતા હૈ । પ્રત્યેકનામકર્મ કે ઉદય સે એક—એક  
જીવ કે શરીર ઔદારિક ઔર વૈક્રિય અલગ—અલગ હોતા હૈ । એસે અલગ—અલગ શરીર  
વાલે જીવ પ્રત્યેકશરીર કહલાતે હૈ—નારક, દેવ, મનુષ્ય દ્વીન્દ્રિય આદિ, પૃથ્વીકાય આદિ  
તથા વૃક્ષ, ગુચ્છ આદિ વનસ્પતિજીવ પ્રત્યેક શરીરી હૈ । ઇન્હે પ્રત્યેક ઔર પ્રત્યેકજીવ  
મી કહતે હૈ ।

પ્રત્યેકશરીરી વનસ્પતિકાય બારહ પ્રકાર કે હૈ—વૃક્ષ, ગુચ્છ ગુલ્મ, લતા, વહ્ની, પર્વગ,  
તૃણ, વલય, હરિત, ઔષધ, જલરુહ ઔર કુહળ ।

ઇનમે વૃક્ષ દો પ્રકાર કે હૈ—એકાસ્થિક અર્થાત્ એક વીજ વાલે ઔર બહુ-  
વીજક અર્થાત્ બહુત વીજો વાલે । એક વીજ વાલે નીમ, આમ, જામન ઔર કૌશમ્બ  
આદિ અનેક પ્રકાર કે હૈ । બહુવીજક મી અનેક પ્રકાર કે હૈ । જૈસે અસ્થિક, તિન્દુક,

શરીર પ્રત્યેક શરીર કહેવાય છે પ્રત્યેકનામકર્મના ઉદયથી એક—એક જીવના શરીર  
ઔદારિક અને વૈક્રિય અલગ—અલગ હોય છે એવા અલગ—અલગ શરીરવાળા જીવ  
પ્રત્યેકશરીર કહેવાય છે નારક, દેવ, મનુષ્ય, દ્વીન્દ્રિય આદિ પૃથ્વીકાય આદિ તથા  
વૃક્ષ, ગુચ્છ આદિ વનસ્પતિજીવ પ્રત્યેકશરીર છે તેને પ્રત્યેક અને પ્રત્યેકજીવ પણ કહે છે

પ્રત્યેકશરીરી વનસ્પતિકાય બાર પ્રકારના છે—વૃક્ષ, ગુચ્છ, ગુલ્મ, લતા, વહ્ની,  
પર્વગ, તૃણ, વલય, હરિત, ઔષધ, જલરુહ અને કુહળ

એમા વૃક્ષ બે પ્રકારના છે—એકાસ્થિક અર્થાત્ એક ખીજવાળા, અને બહુસ્થિક  
અર્થાત્ ઘણાજ ખીજવાળા એક ખીજવાળા—લીખડો, આબો, જાળુ અને કૌશમ્બ, આદિ  
અનેક પ્રકારના છે બહુખીજક એટલે ઘણા ખીજવાળા પણ અનેક પ્રકારના છે જેમકે—

यस्मिन्-विदुः-कफित्या-म्बाडक-मातुस्मि-बिल्व-मरु-पनस-दाडिम-इत्यादि ।

एकस्विकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलैकजीवमाभित्य मूलैकन्दस्कन्ध तद्भ्रूवात्प्रचालेषु प्रत्येकमसक्येया जीवाः सन्ति । एको मूलजीवस्तु मूलादिकस्य पर्यन्तं सर्वाभयं व्याप्य वृक्षेषु तिष्ठति ।

मन्वेकास्विकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलैकन्दस्कन्धत्वकृष्णत्वादप्यस्येकसक्येयजीवाः सन्ति, इति यदुक्तं तत् कवचमुपपद्यते, मूलादिकफलपर्यन्ता वृक्षा सर्वेष्वेकशरीराकारा एवोपलभ्यन्ते, यथा-दशदत्तस्य शरीरमसक्यमकरूपमुपलभ्यते यद्वत्, तस्मादेकशरीरात्मका एव वृक्षाः, कथममी प्रत्येकशरीरा असक्येयजीवा इति ? उच्यते—

(टी०) कफिष (कभिठ) अम्बाडक मातुस्मि, बिल्व, आमस्य पनस और दाडिम आदि ।

एकारिषक और बहुबीजक वृक्षों में मूलके एक जीव के सहारे मूल ऊँट तर्क छान रचना और प्रकाश में अलग-अलग असक्यमात जीव हैं । एक मूल जीव मूल से लेकर फल तक वृक्ष के सभी अवयवों में व्याप्त होकर रहता है ।

सुका—एक बीजवाले और बहुत बीज वाले वृक्षों के मूल, कन्द, रक्त, रचना, रसा आदि प्रत्येक असक्यमात जीव वाले हैं, यह कथन सही कैसे हो सकता है ? मूल से लेकर कर्मपर्यन्त वृक्ष सभी एक शरीराकार ही उपलभ्य होते हैं जैसे कि दशदत्त का शरीर अर्द्ध पकरूप ही देखा जाता है । वस्तु वस्तु एक-एक शरीररूप ही हैं । उन में असक्यमात प्रत्येक किस प्रकार हो सकते हैं ?

यस्मिन् विदुः कफिष अम्बाडक मातुस्मि (बिल्व) बिल्व, (जीवी) आमस्य, पनस अने दाडिम आदि.

येकास्विक अने बहुबीजक वृक्षों में मूलका जो एक छपना आधार मूल, कन्द, रक्त, रसा, रसा अने प्रकाश में अलग-अलग असक्यमात छपने के जो मूल छप, मूलकी छपने इस सुभी वृक्षता सर्व अवयवोभा व्याप्त यद्यने रहे ।

सुका—जो बीजवाला अने बहुबीजवाला वृक्षों में मूल, कन्द, रक्त, रसा, रसा अदि प्रत्येक असक्यमात छपवाला है आ कथन सायु है जो मूल के नीचे ही शरीर काय ? अथवा जो कथन सायु के नीचे शरीर देखें शरीर ?

मूलकी छपने इस सुभी वृक्ष अथ जो शरीराकार उपलभ्य प भाव है के मूल देवसायु शरीर अथ जो अकरूप अथ जो अने के जो मूल वृक्ष जो शरीर उपलभ्य है तेभा असक्यमात प्रत्येकशरीर के नीचे शरीर देखें शरीर ?

मूलस्कन्धादिषु तेषामसंख्येयानामपि जीवानां प्रत्येकनामकर्मोदयात् पृथक् पृथगेव एकैकशरीरसद्भावेन प्रत्येकशरीरत्वं सिध्यति ।

यद्यपि वृक्षाणां मूलादिषु प्रत्येकमसंख्येया अपि जीवाः परस्परं विभिन्नशरीराः, तथापि प्रवलरागद्वेषोपचिततथारूपप्रत्येकनामकर्ममाहात्म्यादेव परस्परं समाश्लिष्टाः संमिश्रिता भवन्ति । यथा श्लेषणद्रव्येण मिश्रीकृत्य निर्मितयां खसखसगुटिकाया प्रत्येकभागे स्वस्वसत्तया खसखसवीजानि तिष्ठन्ति । यथा वा—गुडमिश्रितैस्तिलैः कृतायां तिलपर्पटिकाया तिलाः स्वस्वरूपेण वर्तन्ते, तथैव प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवाः मूलकन्दादिषु प्रत्येकं तिष्ठन्ति । साधारण-

**समाधान—**मूल और स्कन्ध आदि में उन असंख्यात जीवों के, प्रत्येकनामकर्म के उदय से अलग-अलग एक-एक शरीर हैं, अत वे सब प्रत्येकशरीरी सिद्ध होते हैं ।

यद्यपि वृक्षों के मूल आदि में असंख्यात जीव हैं और उन सब के शरीर भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी तीव्र राग-द्वेष के कारण उपार्जित प्रत्येकनामकर्म के प्रभाव से ही वे सब आपस में मिले हुए-से रहते हैं । जैसे किसी चिपकनी चीज में मिलाकर बनाई हुई खसखस की गोली के प्रत्येक भाग में खसखस के बीज अपना अलग-अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं, अथवा जैसे गुड मिले तिलों की बनाई हुई तिलपपड़ी में तिलों के दाने अपने अपने स्वरूप में विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार प्रत्येकशरीरी असंख्यात जीव मूल, कन्द आदि में रहते हैं । साधारणवनस्पति से इन में यह भेद है कि—प्रत्येकशरीरी

**समाधान—**मूल अने स्कन्ध आदिमा ते असंख्यात जीवोना प्रत्येकनामकर्मना उदयधी अलग-अलग ओक-ओक शरीर छे, तो पणु तीव्र राग-द्वेषना कारणे उपार्जित-प्राप्त करेला प्रत्येकनामकर्मना प्रभावधीव ते सब आपसमा-परस्परमां भजेला रहे छे, जेभ कोरि चिपकनी (चीकड़ी-चोटी जय तेवी) चीजमा भेजवीने जनावेदी अन्नभसनी गोणीना प्रत्येक भागमा भसभसना जीव पोतानु अलग अलग अस्तित्व जनावी राजे छे अथवा जेभ गोण भेजवेदी तलनी तलपापड़ी-तलसाकणीमा तलना दाखु पोत-पोताना स्वरूपमा विद्यमान रहे छे, ते प्रमाणे प्रत्येकशरीरी असंख्यात जीव मूल, कन्द आदिमा रहे छे साधारण वनस्पतिधी तेनामा ओ लेद छे के-प्रत्येकशरीरी

नसविम्यस्त्वेतावान् विशेषः- प्रत्यक्षशरीराः परस्पर समिभिता अपि मिमा एव तिष्ठन्ति, साधारणशरीरास्त्वन्यान्वानुविद्धा इति ।

पक्षेण प्रत्यक्षं मूलजीवाद्भिन्न एकैको जीवः । उक्तं हि प्रज्ञापनायामेकत्वेकवहुजीववृक्षप्ररूपणामसरे- 'पत्ता पत्तेयजीविया' इति ।

तथा-तालसरलनालिकरवृक्षाणां स्फुन्धैकजीवः । उदुक्तम्-

“भाणाविहसंठाणा रुक्त्वाण एगजीविया पत्ता ।

संपोषि एगजीवो, ताल-सरल-नालिकरीणं ” ॥

तथा-नानाविध सस्यानानि, वृक्षणाम् एकजीविकानि पत्राणि ।

स्फुन्धोऽपि एकजीवः, तालसरल नारिकेलानाम् ॥ (प्रश्ना०)

जीव आपस में मिले हुए भी भिन्न-भिन्न रहते हैं किन्तु साधारणशरीरवाले जीव आपस में अनुविद्ध-एक रूप होकर रहते हैं । तात्पर्य यह है कि-प्रत्यक्षशरीरी जीवों का शरीर अस्म-अस्म होता है किन्तु इन साधारणशरीरी जीवों का शरीर एक ही होता है ।

पत्तों में मूल जीव से भिन्न एक-एक जीव अस्म-अस्म होते हैं । प्रज्ञापना सूत्र में एकजीव और बहुजीव वृक्षों की प्ररूपणा करते हुए कहा है- 'पत्ता पत्तेयजीविया' अर्थात् से प्रत्येक जीव वाले हैं ।

तथा ताल, ताल नालिकेर आदि वृक्षों का स्फुन्ध एक जीव है । कहा है-

“नाना प्रकार के आकार वाले वृक्षों के पत्ते प्रत्येकजीव हैं और ताल, सरल तथा नारियल के स्फुन्ध एकजीव हैं ” ।

एव परस्पर भिन्ना भूतां पक्ष भिन्न-भिन्न रहे थे, परन्तु साधारण शरीरवाण एव परस्परमा अनुविद्ध-मेकरूप धरन्ति स्ते उ तात्पर्य मे उ इ-प्रत्येकशरीरी एवेतां शरीर अस्म-अस्म होय थे, किन्तु एव साधारणशरीरी एवेतां शरीर मेकर होय थे

पत्ता-पत्राणां मूल एवमे भिन्न मेक-मेक एव अस्म-अस्म होय थे । प्रज्ञापनासूत्रमां मेकजीव आने बहुजीव वृक्षानां प्ररूपणा इत्या वता इत्यु उ हे- पत्ता पत्तेयजीविया अर्थात् पत्ता प्रत्येक एववाण्ये उ

तथा ताल, सरल, नालिकेर आदि वृक्षानां एकमेक एव उ इत्यु उ हे-

“नाना प्रकाराना आकाराना वृक्षानां पत्ता-पत्राणां प्रत्येकएव उ आने ताल, सरल तथा नारिकेलना एकमेकएव उ.”

मूलस्कन्धादिषु तेषामसन्ध्येयानामपि जीवानां प्रत्येकनामकर्मोदयात् पृथक् पृथगेव एकैकशरीरसद्भावेन प्रत्येकशरीरत्वं सिध्यति ।

यद्यपि वृक्षाणां मूलादिषु प्रत्येकमसन्ध्येया अपि जीवाः परस्पर विभिन्नशरीराः, तथापि प्रवलरागद्वेषोपचिततथारूपप्रत्येकनामकर्ममाहात्म्यादेव परस्परं समाश्लिष्टाः समिश्रिता भवन्ति । यथा श्लेषणद्रव्येण मिश्रीकृत्य निर्मितयां खसखसगुटिकाया प्रत्येकभागे स्वस्वसत्तया खमखसबीजानि तिष्ठन्ति । यथा वा-गुडमिश्रितैस्तिलैः कृतायां तिलपर्पटिकाया तिलाः स्वस्वरूपेण वर्तन्ते, तथैव प्रत्येकशरीरा असन्ध्येयजीवाः मूलकन्दादिषु प्रत्येकं तिष्ठन्ति । साधारण-

**समाधान—**मूल और स्कन्ध आदि में उन असख्यात जीवों के, प्रत्येकनामकर्म के उदय से अलग-अलग एक-एक शरीर है, अत वे सब प्रत्येकशरीरी सिद्ध होते हैं ।

यद्यपि वृक्षों के मूल आदि में असख्यात जीव हैं और उन सब के शरीर भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी तीव्र राग-द्वेष के कारण उपार्जित प्रत्येकनामकर्म के प्रभाव से ही वे सब आपस में मिले हुए-से रहते हैं । जैसे किसी चिपकनी चीज में मिलाकर बनाई हुई खसखस की गोली के प्रत्येक भाग में खसखस के बीज अपना अलग-अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं, अथवा जैसे गुट मिले तिलों की बनाई हुई तिलपपड़ी में तिलों के दाने अपने अपने स्वरूप में विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार प्रत्येकशरीरी असख्यात जीव मूल, कन्द आदि में रहते हैं । साधारणवन्स्पति से इन में यह भेद है कि-प्रत्येकशरीरी

**समाधान—**मूल अने स्कन्ध आदिमा ते असख्यात जीवाना प्रत्येकनामकर्मना उदयधी अलग-अलग एक-एक शरीर छे, तो पण तीव्र राग-द्वेषना कारणे उपार्जित-प्राप्त करेला प्रत्येकनामकर्मना प्रभावधी ते सर्व आपसमा-परस्परमा मलेला रहे छे, जेभ केअ चिपकनी (चीकण्डी-चोटी जय तेवी) चीजमा भेजवीने अनावेदी अत्रअसनी गोणीना प्रत्येक भागमा असअसना बीज पोतानु अलग अलग अस्तित्व अनावी राखे छे अथवा जेभ गोण भेजवेदी तलनी तलपापडी-तलसाकणीमा तलना दाखु पोत-पोताना स्वअपमा विद्यमान रहे छे, ते प्रभावे प्रत्येकशरीरी असख्यात जीव मूल, कन्द आदिमा रहे छे साधारण वन्स्पतिधी तेनामा जे लेद छे छे-प्रत्येकशरीरी



गुच्छा अनेकविधाः—आइकी—गुन्नाकी—तुलसी—पिप्पलीप्रभृतयः । गुन्मा—  
 सुसुस्त्रन्ववहुकाण्डप्रभृत्यफलोपेताः, तेज्जेकविधा—सेरिका—नवमासिका—कोरप्टक—  
 कन्दुवीचकाद्याः । सता अनेकविधा—पथलता—नागलताऽशोकलताचम्पकलतादयः ।  
 पत्य वनस्पतेस्तिर्यक् तयाविया शस्ता प्रशान्ता वा न मद्यताः सा लतोष्यते ।

पल्लवोऽनेकविधा—पुष्पफली—कूमाण्डी—कालिन्दी—तुम्बी—अपुपी—कोशातकी  
 —पटोलादयः । पर्वगा अनेकविधा—शुभ्र—बंस—नलबंस—वतसप्रभृतयः । तुगानि—  
 अनेकविधानि—कुशदूर्वादीनि । बल्यानि—ताल—तमास—कैतकी—कदली—कन्दर्या

गुच्छ अनेक प्रकार के हैं । जैसे—बरहर गुन्नाकी, तुलसी, पिप्पली आदि ।  
 भिन्नक तथा छोटा हो, कांड बहुत हो और जो पत्ता, फूल और फल से युक्त हो  
 उन्हें गुन्म कहते हैं । वे भी कई प्रकार के हैं । यथा—सेरिका नवमासिका कोरप्टक,  
 कन्दुवीचक आदि । सताएँ भी अनेक प्रकार की हैं, जैसे पथलता, नागलता अशोकलता  
 चम्पकलता आदि । जिस वनस्पति की तिरछी जगजा स्पस तरह की शाखाएँ प्रशाखाएँ नहीं  
 फैली वह सता कहलती हैं ।

कड़ी के भी अनेक भेद हैं । जैसे—पुष्पकली, कूमाण्डी, कालिन्दी, तुम्बी,  
 अपुपी (ककड़ी) कोशातकी तथा पटोलादि । पर्वग भी अनेक प्रकार के हैं ।  
 जैसे—शुभ्र, (सकरी) बस (बंस) नलबंस वेत आदि । कुश और वृष आदि तुग  
 अनेक प्रकार के होते हैं । ताल तमास कैतकी कदली, कन्दरी आदि कस्य

गुच्छ अनेक प्रकारनां छे जेच छे—तुवेर गुन्नाकी, तुलसी जिपपी, आदि  
 जेना मड नाना खेच छे जेहुल छेच अने जे पत्ता—फूल अने जेयोकी युक्त छेच  
 तेने गुन्म छे छे छे ते पत्य बध्ना प्रकारना छे जेम—सेरिका, नवमासिका, कोरप्टक  
 कन्दुवीचक जेरे सताज्ये पत्य अनेक प्रकारनी छे जेवी रीते जे—पथलता नागलता,  
 अशोकलता चम्पकलता आदि जे वनस्पतिनी तिरछी जगजा जस तरहनी  
 शाखाज्ये—प्रशाखाज्ये देखाती नथी ते सता छेछेवाच छे

कदलीना पत्य अनेक भेद छे जेवी रीते पुष्पकली कूमाण्डी, कालिन्दी, तुम्बी,  
 अपुपी, कोशातकी तथा पटोलादि पर्वग पत्य अनेक प्रकारना छे जेम—सेरिका बंस,  
 नलबंस वेत आदि कुश—नागलता अने कुल—अपु आदि तुग अनेक प्रकारना छेच छे  
 पथल, तमास, कैतकी, कदली—कदली, कन्दली आदिने पत्य छेछेवाच छे तदुवीचक, (वीचक)

પુષ્પેષુ અનેકજીવાઃ-સંખ્યાતા અસંખ્યાતા અનન્તા વા સન્તિ । ઉક્તચ્ચ-  
“પુષ્પા અણેગજીવા ” ઇતિ ।

“પુષ્પા જલયા થલયા, વિંટવદ્વા ય નાલિવદ્વા ય ।

સંસ્વિજ્જમસંસ્વિજ્જા, વોધન્વાડઠંતજીવા ય ” ॥

છાયા-પુષ્પાણિ જલજાનિ સ્થલજાનિ, વૃન્તવદ્વાનિ ચ નાલિવદ્વાનિ ચ ।

સંસ્વેયાનિ (સંસ્વેય જીવાનિ) અસંસ્વેયાનિ (અસંસ્વેય જીવાનિ)

વોદ્ધવ્યાનિ અનન્ત જીવાનિ ચ ॥ (પ્રજ્ઞા૦)

યત્તુ “પુષ્પાણિ ચૈકજીવાનિ મન્તવ્યાની”-તિ શીલાઙ્કાચાર્યૈરભિઠિતં તત્  
પ્રામાદિકમ્, પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રવિરોધાત્ ।

ફલેષુ મૂલજીવમાશ્રિત્ય પ્રત્યેકં દ્વૌ દ્વૌ જીવૌ સ્તઃ । ટોણિ ય જીવા ફલે  
મણિયા ” ઇતિ પ્રજ્ઞાપનાવચનાત્ । વૃક્ષાઃ પ્રરૂપિતાઃ, અથગુચ્છાદયઃ પ્રોચ્યન્તે-

ફૂલો મે અનેક-સંખ્યાત અસંખ્યાત અથવા અનન્ત જીવ હોતે હે । કહા મી હૈ-“પુષ્પા  
અણેગજીવા” ફૂલ અનેક જીવ વાલે હોતે હૈ ।

“જલ મેં ઉત્પન્ન હોને વાલે, સ્થલ મેં ઉત્પન્ન હોને વાલે, વૃન્તવદ્વા યા નાલિ-  
વદ્વા ફૂલ સંખ્યાત, અસંખ્યાત અથવા અનન્ત જીવ વાલે સમઘને ચાહિષ ” ।  
( પ્રજ્ઞાપનાસૂત્ર )

“ફૂલ એક જીવ વાલે હોતે હૈ” યહ શીલાઙ્કાચાર્ય કા કથન મૂલભરા હૈ, ક્યોં કિ  
યહ પ્રજ્ઞાપનાસૂત્ર સે વિરુદ્ધ હૈ ।

ફલોં મેં મૂલ જીવ કી અપેક્ષા પ્રત્યેક દો-દો જીવ હૈ । પ્રજ્ઞાપના સૂત્ર મેં કહા હૈ-  
“ ફલ મેં દો જીવ કહે ગયે હૈ । ”

યહાં તક વૃક્ષોં કા નિરૂપણ કિયા । અવ ગુચ્છ આદિ કે વિષય મેં કહતે હૈ-

કૂલોમા અનેક સંખ્યાત અસંખ્યાત અથવા અનન્ત-અવ હોય છે કહ્યું પણ  
છે-“ પુષ્પા અણેગજીવા ” “ ફૂલ અનેક અવવાળા હોય છે ”

“ જલમા ઉત્પન્ન થવાવાળા, સ્થળમા ઉત્પન્ન થવાવાળા વૃન્તવદ્વા અથવા  
નાલિવદ્વા ફૂલ સંખ્યાત અસંખ્યાત અથવા અનન્ત અવવાળા છે, એમ સમજવું  
જોઈએ ” ( પ્રજ્ઞાપનાસૂત્ર )

“ ફૂલ એક અવવાળા હોય છે ” આ શીલાકાચાર્યનું કથન ભૂલભયું છે, કેમકે  
તે પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રથી વિરુદ્ધ છે

કૂલોમા મૂલ અવની અપેક્ષા પ્રત્યેક એ-એ અવ છે. પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમા કહ્યું છે-  
“ ફૂલમા એ અવ કહેલા છે ”

અહિં સુધી વૃક્ષોનું નિરૂપણ કર્યું, હવે ગુચ્છ આદિના વિષયમા કહે છે -

जातस्तेन तच्छरीरगम्यत्यादित, सषषा स्वायत्तीकृत च, कथं तत्रान्यपां जीवानामव-  
काश, नहि देवदत्तच्छरीरे देवदत्त इवान्येऽपि जीवाः सर्वावयवेषु सहैव परस्परात्  
प्रवेष्टपूर्वकं प्रादुर्भवन्ति ?

यद्वा—यनैव तच्छरीरं निष्पाद्य सस्यवकाशे स्वैतरैः सह परस्पराभ्युपवेष्टेन  
स्वाधीनं कृतं, स एव यत्र प्रधानः स्यात् तत्रैव तस्यैव पर्याप्तपार्याप्तव्यवस्था,  
प्राणापानादियोग्यपुद्गलोपादानं वा भवेत्, ननु शेषाणाम् ? अत्रोच्यते—

नार्यं प्रश्नो युक्तिपयमारोहति, सङ्कार्क्षुर्जिनसासनपरिज्ञानामावात् ।

एक जो जीव उत्पन्न हुआ उसने वह शरीर उत्पन्न किया और उसे पूरी तरह अपना  
किया । फिर उस शरीर में दूसरे जीवों को अवकाश किस प्रकार मिल सकता है ? देवदत्त  
के शरीर में देवदत्त की तरह अन्य जीव भी सब अवयवों में एक दूसरे में मिलकर उत्पन्न  
कैसे हो सकते हैं ?

अथवा—किस जीवने वह शरीर उत्पन्न करके, अवकाश होने पर अपने  
से मिल कर अन्य जीवोंके साथ मिलकर ग्रहण किया है वही जीव उस शरीर में प्रधान  
होगा । परती विवसि में सती की पर्याप्त और अपर्याप्त की व्यवस्था होगी । वही प्राणापान  
आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करेगा । शेष जीवों के विषय में किस प्रकार यह व्यवस्था  
हो सकती है ।

समाधान—यह संका उचित नहीं कही जा सकती, क्योंकि संकाकार को  
विन्यासन का परिज्ञान नहीं है ।

के लय उत्पन्न यथे। तेष्ते ते शरीर उत्पन्न कथुं अने तेष्ते पूरी रीते पावानु करी  
बीधुं यथे शरीरमां जीव्य लवोने अवकाश केवी रीते भणी शके छे ? देवदत्तना  
शरीरमां देवदत्तनी प्रभावे अन्य लय यथे तत्राभ अवयवोमां ज्येष्ठ जीवने भणीने  
उत्पन्न केवी रीते यथे शके छे ?

अथवा के लवे जा शरीर उत्पन्न करीने अवकाश भजतां पावानाधी मिल  
अन्य लवोनी साथे भणीने अदृश्य कथुं छे ते लय ज्ये शरीरमा प्रधान यथे ज्येवी  
अवस्थाभां-स्थितिभां ज्येनी पथोप्य अने अपर्याप्तनी व्यवस्था यथे। तेज प्राण-  
अपान आदिना योग्य पुद्गलोने अदृश्य करेथे। शेष-ज्येष्ठिना लवोना विषयभां ज्ये  
व्यवस्था केवी रीते यथे शके छे ?

समाधान—जा शका योग्य नहीं केमके—शका इतराने जिन, शासननु  
परिज्ञान नहीं।

दीनि । हरितानि-तन्दुलीयक-वस्तुल-मार्जारपादिका-पालट्स्यादीनि । ओषधयः-  
 शालि-व्रीहि-गोधूम-यव-वर्जरी-मुद्ग-मापादयः । जलरूहाः-उत्पल-पद्म-कुमुद-  
 नलिन-पुण्डरीक-शतपत्र-सहस्रपत्र-कोकनदा-रविन्द-पनक-पनकचट्ट-शैवालदयः ।  
 कुहणाः भूमिस्फोटकाऽऽपकाय-सर्पच्छत्रादयः ।

उक्ताः प्रत्येकशरीरा वनस्पतयः । अथ साधारणशरीराः प्ररूप्यन्ते—

साधारणनामकर्मोदयादनन्ताना जीवानां साधारणमेकं शरीरं भवति । तस्मात्  
 साधारणमेक शरीरं येषां ते साधारणशरीराः ।

ननु कथमनन्तजीवानामेकं शरीरं समवति, तथाहि-यः खलु प्रथमं

कहलाते है । तन्दुलीयक, वस्तुल, मार्जारपादिका, पालकी आदि को हरित कहते है ।  
 शालि व्रीहि (धान) ओ गेहूँ, जौ, बाजरी, मूग, उडद आदि के पौधे ओषधि कहलाते हैं ।  
 उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, पुण्डरीक शतपत्र, सहस्रपत्र, कोकनद, अरविन्द, पनक,  
 पनकचट्ट, शैवाल आदि को जलरूह कहते हैं । भूमिस्फोटक, आपकाय और सर्पच्छत्र आदि  
 कुहण कहलाते हैं ।

यहाँ तक प्रत्येकशरीर वनस्पति का विवेचन हुआ । साधारणशरीर का प्ररूपण  
 इस प्रकार है—

साधारणनामकर्म के उदय से अनन्त जीवों का एक साधारण होता है । जिनका  
 शरीर साधारण अर्थात् एक हो, वे साधारणशरीर कहलाते हैं ।

शङ्का—अनन्त जीवों का शरीर एक कैसे हो सकता हो ? क्यों कि पहले-

वस्तुल (अधुवा) मार्जारपादिका, पालकी (सुवापालक) आदिने हरित कडे छे शाली,  
 व्रीहि (धान्य) गेहूँ-धतू, जव, भाजरी, मग, उडद आदि ओषधि कडेवाय छे  
 उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, पुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, कोकनद, अरविन्द, पनक,  
 पनकचट्ट शैवाल आदिने जलरूह कडे छे भूमिस्फोटक, आपकाय अने सर्पच्छत्र  
 आदि-कुहण कडेवाय छे

अर्द्धि सुधी प्रत्येक वनस्पतिनु विवेचन थयु, साधारण शरीरनु प्ररूपण आ प्रकार छे-  
 साधारणनामकर्मना उदयथी अनन्त एवोनु अेक साधारणशरीर डोय छे  
 जेनु शरीर साधारण अर्थात् अेक डोय ते साधारणशरीर कडेवाय छे

शङ्का—अनन्त एवोना शरीर अेक केवी रीते डोय शके छे ? केमके पडेल वडेलो

प्रातस्तेन तच्छरीरमुत्पादित, सद्यथा स्वायत्तीकृत च, कथं तत्रान्यथा जीवानामव-  
काश, नहि देवदत्तशरीरे देवदत्त इवान्यऽपि जीवाः सर्वावयवेषु सदैव परस्परात्  
प्रवेशपूर्वकं प्रादुर्भवन्ति ?

यद्वा—येनैव तच्छरीरं निष्पाद्य सत्यवकाशे स्वैतरैः सह परस्पराणुमवेशेन  
स्वाधीनं कृतं, स एव यत्र प्रधानः स्यात् ततश्च तस्यैव पर्याप्तापर्याप्तव्यवस्था,  
प्राणापानादियोम्यपुद्गलपोषादानं वा भवेत्, ननु शोषाभासः ? भ्रमोच्यते—

नार्यं प्रश्नो पुक्तिपथमारोहति, शङ्काकर्तुर्मिन्नशासनपरिग्रहानामावाह ।

पहल जो जीव उत्पन्न हुआ उसने वह शरीर उत्पन्न किया और उसे पूरी तरह अपना  
किया । फिर उस शरीर में दूसरे जीवों को अवकाश किस प्रकार मिल सकता है ? देवदत्त  
के शरीर में देवदत्त की तरह अन्य जीव भी सब अवयवों में एक दूसरे में मिलकर उत्पन्न  
कैसे हो सकते हैं ?

ज्यववा—जिस जीवने वह शरीर उत्पन्न करके, अवकाश होने पर अपने  
से मिल अन्य जीवोंके साथ मिलकर प्रवृत्त किया है वही जीव उस शरीर में प्रधान  
होगा । एसी स्थिति में उसी की पर्याप्त और अपर्याप्त की व्यवस्था होगी । वही प्राणापान  
आदि के योग्य पुद्गलों को प्रवृत्त करेगा । शेष जीवों के विषय में किस प्रकार यह व्यवस्था  
हो सकती है ।

समाधान—वह शंका उत्पित नहीं कही जा सकती, क्यों कि शंकाकार को  
विज्ञासन का परिग्रह नहीं है ।

ने एव उत्पन्न बयो तेजो ते शरीर उत्पन्न कर्तुं नने तेजो पूरी रीते पातानु करी  
धीनु पधी जे शरीरमां जीवने एवोने अवकाश केनी रीते भणी शके छै ? देवदत्तना  
शरीरमां देवदत्तनी प्रभावे अन्य एव पद्य तत्राभ अवयवोमां जेक जीवने भणीने  
उत्पन्न केनी रीते बर्ध शके छै ?

ज्यववा ने एवे ज्य शरीर उत्पन्न करीने अवकाश भवतां पातानाधी सिद्ध  
अन्य एवोनी साधे भणीने अक्षय कर्तुं छै ते एव जे शरीरमा प्रधान बयो जेवी  
अवस्थाभां-स्थितिभां जेनी पयोप्त नने अपर्याप्तनी व्यवस्था बयो तेच प्राण-  
अपान आदिना योम्य पुद्गलोंने अक्षय करयो. शेष-आसीना एवोना विषयभां जे  
व्यवस्था केनी रीते बर्ध शके छै ।

समाधान—ज्य शंका योम्य नधी केभडे-शंका करनारने जिन, शासननु  
परिग्रह नधी.

वाटरा वनस्पतयः संक्षेपतः पद्मिधाः—अग्रवीज—मूलवीज—पर्ववीज—स्कन्ध-  
वीज—बीजरुह—समूर्च्छिमभेदात् । अग्रे बीजं येपा ते—अग्रबीजाः कोरण्टरुप्रभृतयः ।  
मूलमेव बीजं येपा ते मूलबीजाः रुद्रल्यादयः । पर्वणि=ग्रन्थौ मन्धिभागे पर्वे वा  
बीजं येपा ते पर्वबीजाः इक्षु—वंश—वेत्रप्रभृतयः । स्कन्धः=स्थुड, स एव बीजं येपा ते  
स्कन्धबीजाः=अरणि—शल्लकी—स्तुहीप्रभृतयः । बीजाद् रोहन्ति=प्रादुर्भवन्तीति बीज-  
रुहाः=शालि—गोधूम—जत्र—मक्का—वर्जरीप्रभृतयः । समूर्च्छन्ति=बीजं प्रिनाऽपि दग्गभू-  
मावपि समुद्भवन्तीति समूर्च्छिमाः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणत्रिशाः ।

वाटर वनस्पति संक्षेप में छह प्रकार की हैं—(१) अग्रबीज (२) मूलबीज  
(३) पर्वबीज (४) स्कन्धबीज (५) बीजरुह और (६) समूर्च्छिम । जिन वनस्पतियोंका  
बीज आगे रहता है ऐसी कोरण्टक आदि वनस्पतियाँ अग्रबीज कहलाती हैं । पर्व  
(पोर—सधिभाग) में जिनका बीज हो, या पर्व ही जिनका बीज हो उन्हें पर्वबीज  
कहते हैं, जैसे—ईख, बाँस, वेत आदि । स्कन्ध जिनका बीज हो ऐसी अरणि,  
शल्लकी, स्तुही (थुहर) वगैरह स्कन्धबीज कहलाती हैं । शाली, गेहूँ, जौ, मक्की, बाजरी वगैरह  
बीज से उगने वाली वनस्पति को बीजरुह कहते हैं । बीज के बिना भी, जली हुई  
जमीन आदि में भी पृथ्वी और जल के संयोगमात्र से उत्पन्न होने वाली वनस्पति  
समूर्च्छिम कहलाती है ।

आदर वनस्पति संक्षेपमा छ प्रकारनी छे— (१) अग्रबीज, (२) मूलबीज,  
(३) पर्वबीज, (४) स्कन्धबीज, (५) बीजरुह, (६) समूर्च्छिम जे वनस्पतिओनुं  
बीज आगण रहे छे जेवी डेर टक आदि वनस्पतिओ अग्रबीज कडेवाय छे मूल  
जेव जेनु बीज डोय जेवी कडणी आदि वनस्पतिओ मूलबीज छे—(पोर—सधिभाग)मा  
जेनु बीज डोय तेने पर्वबीज कडे छे, जेभके—शेलाडी, बाँस, नेतर आदि स्कन्ध  
जेनु बीज डोय ते अरणी शक्य, स्तुही (थार) वगेरे स्कन्धबीज कडेवाय छे शाली,  
धउ, जव, मकाई, बाजरी वगेरे बीजथी उगवा वाणी वनस्पतिने बीजरुह कडे  
छे बीज बिना पणु अणी गज्जेदी जमीन आदिमा पणु पृथ्वी अने जलना  
संयोगमात्रथी उत्पन्न थवा वाणी वनस्पति ते समूर्च्छिम कडेवाय छे

आकारतः प्रत्यक्षधनस्पतिरूपेण दृश्यमाना अपि धनस्पतयोऽन्तर्गताः सन्ति ।  
तेषां लक्षणमुच्यते—

यस्मिन् मूले मग्ने सति समभक्राकारा मङ्गो भवति, तत्र नियमताऽनन्ता  
शशा भवन्ति । तथा यस्मिन् स्कन्दे मग्ने सति समभक्राकारो मङ्गाद्व्ययते तत्राप्य  
न्ता शशाः । एष त्रयसु स्कन्ध-स्वर्क-शाखा-प्रवाल-वज्र-पुष्प-फल-बीजेष्वपि  
विद्येयम् । ईदृशश्च मङ्गः प्रायशापरिक्वावस्थायां भवति ।

तथा—यस्य धनस्पतेर्मध्यगतसारभूतकाष्ठापक्षया बहुतरा स्यूला स्वर्ग भवति  
ता सपनन्तभीक्ष्णरूपा ।

आकार स प्रत्यक्षधनस्पति के समान दिग्दर्श देन बान्दी धनस्पतियों भी भक्तन जीव  
बन्ती होती है । उनका लक्षण यह है—

त्रिस्रका मूल्माग तोहन पर समान चक्रकार भंग होता है, उसमें नियम स  
कनन जीव होते हैं । इसी प्रकार त्रिस्रका कृष्ण मँगल पर समान चक्रकार भंग दिग्दर्श दे  
स्वर्मे भी भक्तन जीव होते हैं । यही घात रूप तथा, शाखा प्रवाल पत्र, पुष्प, फल  
और बीजों के विषय में भी समझनी चाहिये । इस प्रकार के भंग प्राय सब होने हैं जब  
धनस्पति कच्ची होती है ।

इसके अनिश्चित त्रिस्र धनस्पति के बीज के मागमाग की अपेक्षा छाल बहुत मोटी  
होती है वह छाल भी भक्तन जीव वाली होती है ।

आप्रस्थी प्रत्यक्ष धनस्पतिना समान-सरशी-देजावावागी धनस्पति पत्र अनन्त  
छत्राणी दोष छे तत्र तक्षत्र छे छे के-नेवा भूजभात्रने तोडवाधी समान आकार  
कम बाध छे तेमा नियमधी अनन्त छत्र दोष छे जे प्रभावे जेना इन्द्र आत्रवाधी  
अथवा आकार अत्र यमे। देजाध आवे तेमां पत्र अनन्त छत्र दोष छे जेक  
हय शक, तथा शाखा प्रवाल वज्र-पादा, पुष्प, इत अने बीजेना विषयमां  
पत्र सुमन्धी जेक जे आ प्रशस्ने अत्र प्राय इधारे बाध छे के अदरे धनस्पति  
होती दोष छे त्तारे बाध छे

जेना सिवाय जे धनस्पतिना वक्ष्यमां आरमात्रनी अपेक्षा छाल पत्ती के मोटी  
है व छे ते छाल पत्र अनन्त छत्रवागी दोष छे

साधारणनामकर्मप्रभावादनन्ता अपि जीवा एकस्मिन्नेव काले सदैवोत्पत्तिदेशे तिष्ठन्ति, सदैव पर्याप्तिं निर्वर्त्तयन्ति, सदैव प्राणापानयोग्यपुद्गलानुपाददते, सदैव च तेपामाहारादिपुद्गलग्रहणम्, तस्मान्न काचिदनुपपत्तिगिति । उक्तञ्च भगवता—

“ समयं वक्रंताणं, समयं तेसिं शरीरनिच्विती ।

समयं आणग्गहणं, समय उस्सानीमासा ॥ १६ ॥

एकस्स उ जं गहणं, वहूण साहारणाण त चेव ।

ज बहुयाणं गहणं, समासओ तंपि एगस्स ॥ १७ ॥

छाया-समकं व्युत्क्रान्तानां, समक तेषां शरीरनिर्वृत्तिः ।

समकमानग्रहणं, समकमुच्छ्वासनिःश्वासौ ॥ १६ ॥

एकस्य तु यद् ग्रहणं, वहूनां साधारणानां तदेव ।

यद् बहुकानां ग्रहणं, समासतस्तदप्येकस्य ॥ १७ ॥

साधारणनामकर्म प्रभाव से अनन्त जीव एक ही काल में साथ ही उत्पत्ति देश में उत्पन्न होते हैं, साथ ही पर्याप्तियाँ पूर्ण करते हैं, साथ ही प्राणापान के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं और साथ ही आहार आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं । अत एव इस कथन में तनिक भी अयुक्ति नहीं है । भगवान् ने कहा है—

“साथ ही वे जीव उत्पत्तिदेश में आते हैं, साथ ही उनका शरीर बनता है, साथ ही प्राण ग्रहण करते हैं, साथ ही उच्छ्वास-निश्वास होते हैं (१६) एक जीव जो ग्रहण करता है वह बहुत जीवों के लिए समान होता है और बहुत जीव जो ग्रहण करते हैं वह एक जीव के लिए भी होता है (१७)

साधारण्य नामकर्मना प्रभावथी अनन्त एव ओकञ्च कालमा साथेञ्च उत्पत्तिदेशमा उत्पन्न तथा छे साथेञ्च पर्याप्तियो पूर्णुं करे छे साथेञ्च प्राण-अपानना योग्य-पुद्गलेने अहणु करे छे, अने साथेञ्च आहार आदिना योग्य पुद्गलेने अहणु करे छे अे माटे आ कथनमा जरापणु अस्वाभाविकता अथवा अयुक्तता नथी. भगवाने कहु छे के —

“ते एव ओक साथेञ्च उत्पत्तिदेशमा आवे छे, साथेञ्च अेना शरीरे अने छे, साथेञ्च प्राण अहणु करे छे साथेञ्च आसोच्छ्वास थाय छे (१६) ओक एव ने अहणु करे छे ते अघाय एवे माटे समानपणु थाय छे, अने तमाअ एवे ने अहणु करे छे ते ओक एवने माटे पणु थाय छे (१७)



साधारणमाहारी, साधारणमाणपाणग्रहणं च।

साधारणजीवाणं, साधारणसम्पत्तौ एव” ॥ १८ ॥ (मन्ना० ११५)

जाना-साधारणमाहार साधारणमानमाणग्रहणं च।

साधारणजीवानां, साधारणसम्पत्तौ ॥ १८ ॥

एवं च परस्परानुविधानन्तजीवसमूहकेषु एकस्यरीरावस्थायिनो बीजाः साधारणस्यरीरा इति सिद्धम् । एते साधारणजीवसमूहेन साधारणसमूहेनापि च व्यपदिश्यन्ते।

तेजोविक्रियाः-सूर्यकन्द - वक्रकन्द - शर्कराकन्द - रक्षाश्च-पिण्डाश्च - लघुन-पत्राण्य-पृष्ठजन-सुशुषेरादयः । वनस्पतेर्मूलसंलग्नो मूष्पन्तर्गतो भागविद्यमानः कन्दः । एतेऽन्तर्जीवविषयस्वरूपाः सन्ति ।

साधारण बीजा का आहार साधारण होता है और साधारण प्राणपान का प्रथम होता है इस प्रकार उनका यह साधारण स्वरूप कहा गया है” ॥१८॥ (मन्ना० ११५)

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि एक दूसरे में मिळे हुए वनस्पतबीवसमूहरूप से एक ही स्तर में रहने वाले साधारण बीज हैं । इन बीजों के लिए 'साधारणजीव' तथा 'साधारण' स्वरूप ही व्यक्धार किया जाता है ।

साधारण बीज अनेक प्रकार के होते हैं । जैसे-सूर्यकन्द, वक्रकन्द, शर्कराकन्द, रक्षाश्च, पिण्डाश्च, लघुसुम प्याश्च, गाढर अथरत्न जाति । वनस्पति के मूलक साधनुषा हुआ और जमीन के अन्दर रहने वाला हिस्सा फल कहा जाता है । ये फल अन्तर्जीवों के फल हैं ।

साधारण लोचनेन आहार साधारण होय छे अने साधारण प्राणपानतुं मन्त्रु होय छे जे प्रभावे तेषु न्य साधारण लक्षण कसुं छे (१८)”

न्य प्रभावे सिद्ध मसु छे जेके बीजाभां भवेत्ता अन्तल्लवसमूहस्युपधी जेके च पृथिवीमां रहेवा वाणां साधारण लव छे जे लोचने भागे साधारण लव तथा साधारण शब्दने पद्य जनकार करी शक्य छे

साधारण लव अनेक प्रकारका होय छे जेम-सूर्यकन्द, रक्षाश्च, पिण्डाश्च, लघुसुम कुजनी गाढर, न्यद जाति वनस्पतिना भूजनी भावे जेकेजेता अने पृथिवीमां न्यद रहेवावापि भाग कइ कहेवाय छे न्य कइ अन्तल्लोचनेना सिद्ध छे

वाटरा वनस्पतयः सक्षेपतः पट्टिवधाः—अग्रवीज—मूलवीज—पर्ववीज—स्कन्ध-  
वीज—बीजरुह—संमूर्च्छिमभेदात् । अग्रे बीजं येपा ते—अग्रवीजाः क्रोरण्टकप्रभृतयः ।  
मूलमेव बीजं येपा ते मूलवीजाः रुदल्यादयः । पर्वणि=ग्रन्थौ मन्धिभागे पर्वे वा  
बीजं येपा ते पर्ववीजाः उक्षु-वंग-वेत्रप्रभृतयः । स्कन्धः=स्थुड, म एव बीजं येपा ते  
स्कन्धवीजाः=अरणि-शलकी-स्तुहीप्रभृतयः । बीजाद् रोदन्ति=प्रादुर्भवन्तीति बीज-  
रुहाः=शालि-गोधूम-जव-मक्का-वर्जरीप्रभृतयः । संमूर्च्छन्ति=बीज विनाऽपि दग्भू-  
मावपि समुद्भवन्तीति संमूर्च्छिमाः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणविशेषाः ।

वाटर वनस्पति सक्षेप मे छह प्रकार की हे—(१) अग्रवीज (२) मूलवीज  
(३) पर्ववीज (४) स्कन्धवीज (५) बीजरुह और (६) संमूर्च्छिम । जिन वनस्पतियोंका  
बीज आगे रहता है ऐसी क्रोरण्टक आदि वनस्पतियों अग्रवीज कहलाती हैं । पर्व  
(पोर—सधिभाग) में जिनका बीज हो, या पर्व ही जिनका बीज हो उन्हें पर्ववीज  
कहते हैं, जैसे—ईख, बाँस, वेत आदि । स्कन्ध जिनका बीज हो ऐसी अरणि,  
शलकी, स्तुही (थुहर) वगैरह स्कन्धबीज कहलाती हैं । शाली, गेहूँ, जौ, मक्की, बाजरी वगैरह  
बीज से उगने वाली वनस्पति को बीजरुह कहते हैं । बीज के बिना भी, जली हुई  
जमीन आदि में भी पृथ्वी और जल के संयोगमात्र से उत्पन्न होने वाली वनस्पति  
संमूर्च्छिम कहलाती है ।

वाटर वनस्पति सक्षेपमा छ प्रकारनी छे— (१) अग्रबीज, (२) मूलबीज,  
(३) पर्वबीज, (४) स्कन्धबीज, (५) बीजरुह, (६) संमूर्च्छिम जे वनस्पतिओतु  
बीज आगण रहे छे जेवी डेर टक आदि वनस्पतिओ अग्रबीज कडेवाय छे मूल  
ओज जेतु बीज डोय जेवी कदणी आदि वनस्पतिओ मूलबीज छे—(पोर—सधिभाग)मा  
जेतु बीज डोय तेने पर्वबीज कडे छे, जेभडे—शेखरी, बास, नेतर आदि स्कन्ध  
जेटु बीज डोय ते अरणी शक्य, स्तुही (थोर) वगेरे स्कन्धबीज कडेवाय छे शाली,  
घई, जव, मकाई, बाजरी वगेरे बीजथी उगवा वाणी वनस्पतिने बीजरुह कडे  
छे बीज बिना पणु जली गयेही जमीन आदिमा पणु पृथ्वी अने जलना  
संयोगमात्रथी उत्पन्न थवा वाणी वनस्पति ते संमूर्च्छिम कडेवाय छे

आकारत प्रत्येकवनस्पतिक्रमेण दृश्यमाना अपि वनस्पतयोज्ज्वलतीनाः सन्ति ।  
तेषां लक्षणमुच्यते—

पश्चिम मूले मग्ने सति समभक्राकारो मङ्गो भवति, तत्र नियमतोऽनन्ता  
बीजा भवन्ति । तथा यस्मिन् स्कन्धे मग्ने सति समभक्राकारो मङ्गो दृश्यते तमाप्य  
न्ता बीजाः । एवं त्रेषु स्कन्ध-स्वङ्-शाखा-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीजेष्वपि  
विशेषम् । ईदृशम मङ्गः प्रायेणापरिवृत्तस्यायां भवति ।

तथा—यस्य वनस्पतेर्मध्यगतसारयुतकच्छापक्षया बहुलतरा स्यूता स्वर्गु भवति  
सा स्वानन्तबीजस्वरूपा ।

आकार से प्रत्येकवनस्पति के समान दिखाई देने वाली वनस्पतियों में अनन्त बीज  
वाली होती हैं । उनका लक्षण यह है—

बिस्मय मूलाग टोडन पर समान पत्रकार मंग होता है, उसमें नियम से  
अनन्त बीज होते हैं । इसी प्रकार बिसका कण्ड मँगने पर समान पत्रकार मंग दिखाई दे  
उसमें भी अनन्त बीज होते हैं । मही बात स्कन्ध लवण, शाखा प्रवाल पत्र पुष्प, फल  
और बीजा के विषय में भी समझनी चाहिए । इस प्रकार के मंग प्रायः सब होते हैं वन  
वनस्पति कम्पी होती है ।

इसके अतिरिक्त जिस वनस्पति के बीज के सारभाग की अपेक्षा अम्ल बहुत मोटी  
होती है वह अम्ल में अनन्त बीज वाली होती है ।

आकारही प्रत्येक वनस्पतिना समान-सरणी-दोषावावाणी वनस्पति पशु अनन्त  
लवणानी होय छे तेतु लक्षणे छे छे के-नेना मूलभागने तोडवाणी समान आकार  
पत्र वाय छे तेमां नियमही अनन्त लवण होय छे छे प्रमाद्ये नेना इन्द्र भाजवाणी  
समान आकार काज पयो दोषार्थ आवे तेमां पशु अनन्त लवण होय छे छे  
पत्र स्कन्ध, लवण, शाखा प्रवाल पत्र-परिधियां, पुष्प, इत अने लीनेना विषयमां  
पशु समझनी छे छे आ प्रमाद्ये काज प्रायः इत्यारे वाय छे छे अत्यरे वनस्पति  
हानी होय छे त्वारे वाय छे

जेना सिवाय के वनस्पतिना पत्रमां सारभागनी अपेक्षा अम्ल बड़ी ल मोटी  
होय छे, ते अम्ल पशु अनन्त लवणानी होय छे

तथा—किसलयरूपे पत्राङ्कुरे उद्गम्यमाने नियमतोऽनन्ता जीवा भवन्ति । उक्तञ्च प्रज्ञापनाया प्रथमपदे ।

‘ सत्वोऽपि किसलयो खलु, उगममाणो अणतओ भणिओ. ’ इत्यादि ।

छाया—सर्वोऽपि किसलयः खलु उद्गच्छन् अनन्त भणितः इत्यादि ।

वनस्पतिभिद्यमानः पृथिवीसदृशेन भेदेन भिद्यते, सोऽप्यनन्तजीवस्वरूपः । अन्यच्च—

“ गूढसिराग पत्रं, मच्छीरं ज च होढ निच्छीरं ।

जंपि य पट्टणसधिं, अणतजीव वियाणाहि ॥ १ ॥ ” इति । (प्रज्ञा०)

छाया—गूढशिराकं पत्रं, सक्षीर यच्च भवति निःक्षीरम् ।

यदपि च प्रणष्टमन्धि, अनन्तजीव विजानीहि ॥ १ ॥ इति ।

तथा—कौपल जव उत्पन्न होती है तो उसमें भी अनन्त जीव होते ह । प्रज्ञापना के पहले पदमें कहा है—

“ उगते हुा सभी किसलय अनन्तकाय कहे गये हैं । ”

जिस वनस्पति की प्रथि या पोर, तोडनेपर रज से भरी हो, या जो वनस्पति, टूटने पर पृथ्वी के समान भेदों से टूटे, वह भी अनन्तजीववाली होती है ।

और भी कहा है —

“ जिस के तनु साफ दिखाई न देते हां, तथा जिसकी सधि विल्कुल दिखाई न देती हो ऐसा पत्ता, अगर दूधवाला हो या उसमें दूध उत्पन्न न हो, उसे भी अनन्तजीववाला समझना चाहिए ” ।

तथा—कुपण न्यारे उत्पन्न थाय छे त्यारे तेमा पणु अनन्त लुव डोय छे प्रज्ञापनासूत्रना प्रथम पदमा दहु छे डे -

“ उगता डोय ते सर्वं किसलय (पल्लव ताल कुमणा पानतो समूह) अनन्तकाय कथा छे ”

जे वनस्पतिनी अथि—गाड अथवा पोर, तोडवाथी रजथी लरेली, डोय अथवा जे वनस्पति, टूटवाथी पृथ्वीना समान बेढोथी तूटे ते पणु अनन्त लुववाणी डोय छे भीणु पणु कहुं छे डे -

“ जेना तनुओ बोअभा देभाता न डोय, तथा जेनी सधि (साधे) भीलकुल देभाती डोय नहि, जेवा पाहडा दूधवाणा डोय अथवा जेमा दूध उत्पन्न डोय नहि, तेने पणु अनन्त-लुव वाणा समजवा जेईजे ”

गूढधिराकमिति=गूढाः=असह्यमाणाः धिरा=नाडीघातं तन्नुष्णामिति वा यस्य तत् । प्रकष्टसंघीति=प्रणष्टः=सर्वथाऽनुपलभ्यमात्मः, सन्धिः=पञ्चदशसयोगरूपो मागो यस्य तत् । एतादृशं परं सक्षीरं=सदुग्धम्, बिःक्षीरम्=अनुत्पन्नदुग्धं वा तदन्त-  
र्गतं विमाननीहीत्यर्थः ।

एवमन्येऽप्यनेकविधाः द्वेषात्कादयोऽनन्तबीजाः स्वबुद्ध्या गुरुगमेन वा परिमावन्तीयाः । विस्तरतस्तु भिद्मामुमिं प्रज्ञापनासूत्रं बिलोकनीयम् ।

सूक्ष्मनिगोशास्तु मग्नवृचनावगम्या एव, अनन्तशरीरसघाते सत्यप्यतिसूक्ष्मत्वाभास्माकं चक्षुःपथेऽन्तरन्ति । “अणाग्निश्चा एव चक्षुष्फासं न त इति” इति वचनात् । उक्तञ्च प्रज्ञापनायां सदृष्टान्तं निगोदनीयस्वरूपं, यथा—

इसी प्रकार सेवार आदि अन्यान्य वनस्पतियों को भी अपनी बुद्धि से या गुरुगम से अन्तर्बीजवादी समझ लेनी चाहिए । जिन्हें विस्तारपूर्वक जानना हो उन्हें प्रज्ञापनासूत्र देखना चाहिए ।

सूक्ष्म निगोश मगवान् के वचन से ही समझे जा सकते हैं । एक शरीर में अन्तर् बीजों का फिट्ट होने पर भी वे बीज इतने सूक्ष्म होते हैं कि हम अपने नेत्रों से (आगम) उन्हें नहीं देख सकते । कहा भी है—“वे बीज सर्वज्ञकी आज्ञा से ही प्रकट किये (माने) जाते हैं । मैंस उन्हें नहीं देख सकती” । प्रज्ञापना सूत्र में उदाहरण के साथ निगोश का स्वरूप इस प्रकार बताया है—

ये प्रभाक्षे सेवया आदि अग्नि-अग्नि वनस्पतिज्योने पशु पक्ष्याणी बुद्धिबीजवशात् शुक्रजमभी अनतल्लवणापी समल्ल देनी लोभजे, नेने विस्तारपूर्वक आसुवानी उभय होय तेजोअ प्रज्ञापनासूत्र लोभ देनु लोभजे

सूक्ष्मनिगोश अजवानना वचनधी व समल्ल शकाय छे (आग्नी शकाय छे) जोक शरीरभी अनत लवोना पिंड होवा छतां पशु ते लव जेटका सूक्ष्म होय छे छे आपक्षे आपक्ष नेत्रधी तेने लोभ शकता नधी. कसु पशु छे छे—“ते लव सर्वज्ञानी आज्ञा (आजम)धी व अकसु करवाभा आवे छे—आसुवामां आवे छे नेत्रधी ते लोभ शकता नधी” प्रज्ञापनासूत्रमां उदाहरणनी साथे निजोदनु स्वरूप आ प्रभाक्षे जताञ्चु छे—

“जह अयगोलो धंतो, जाओ तत्तवणिज्जसकासो ।

सच्चो अगणिपरिणओ, निगोअजीवे तहा जाण ” ॥ १ ॥ इति ।

छाया—यथाऽयोगोलो ध्मातो, जातस्तप्तपनीयसंकाशः ।

सर्वोऽग्निपरिणतो, निगोजीवान् तथा जानीहि ॥ १ ॥

यथा—अयोगोलोऽग्निना ध्मातः तप्तसुवर्णसदृशः सर्वांशतोऽग्निपरिणतोऽग्नि-  
रूप एव भवति हे शिष्य ! तथैव निगोदजीवान् जानीहि । निगोदजीवाना परिमाण-  
स्वरूपमेव विज्ञेयम्—

अय लोकश्चतुर्दशरज्जुपरिमितोऽस्ति । एको रज्जुरसख्यातयोजनात्मकः, योजनं  
सख्याताङ्गुलपरिमितम्, एकमङ्गुलमसख्याताकाशप्रदेशात्मकं भवति । तस्याङ्गु-  
जस्यैकैकाकाशप्रदेशे निगोदानामसख्याता गोलकाः, एकैकस्मिन् गोलके निगोदानाम-  
सख्यातानि शरीराणि, एकैकस्मिन् शरीरेऽनन्ता जीवा निवसन्ति । उक्तञ्च—

“जैसे अग्नि में तपाया हुआ लोहे का गोला तपे सोने के समान पूर्णतया अग्निरूप  
ही हो जाता है, हे शिष्य ! उसी प्रकार निगोद के जीव समझो ” । निगोद जीवों का परिमाण  
इस प्रकार समझना चाहिए—

लोककाकाश चौदह राजू का है । एक राजू में असख्यात योजन होते हैं और  
सख्यात अंगुल का एक योजन होता है । आकाश के असख्यात प्रदेश—परिमित एक अंगुल  
होता है । इस अंगुल के एक—एक आकाश प्रदेश में निगोद जीवों के असख्यात गोलें होते  
हैं । एक—एक गोलक में असख्यात शरीर होते हैं और एक—एक शरीर में अनन्त जीवों का  
निवास है । कहा भी है—

“जेम अग्निमा तपावेदो लोढानो गोणो तपेला सोना—प्रभाणु पृष्ठपणु  
अग्निरूप न थं नथ छे, हे शिष्य ! ये प्रभाणु निगोदना एव समझे ” निगोदना  
एवोनु परिभाणु—ये प्रभाणु समज्जु जेधं अ—

लोकाकाश चौदह राजूना छे अेक राजूमा असख्यात योजन थाय छे, अने  
सख्यात अंगुलना अेक योजन थाय छे आकाशना असख्यातप्रदेश—परिमित अेक  
अंगुल होय छे अे अंगुलना अेक—अेक आकाशप्रदेशमा निगोद एवोना असख्या  
गोणाहोय छे अेक—अेक गोलकमा असख्यात शरीर होय छे अने अेक—अेक शरीरमा  
अनन्त एवोना निवास छे कहु पणु छे—

“ गोला य असस्त्रिज्जा, हुंति निगोया असंभया गोले ।  
एककको य निगोओ अयतजीवो भुणेयन्वो ” ॥ १ ॥

श्या-गोलाय असंभयया , भवन्ति निगोदा असंभयेया गोले ।  
एकैकश्च निगोदः, अनन्त जीवो द्वातव्याः ॥ १ ॥ इति ।

सत्रस्याप्रयेकजीवस्य तैत्रसकामये द्वे द्वे शरीरे पृथक् पृथक् स्त । तदेकैक  
शरीरमनन्तज्ञानावरणीयादियासदनन्तान्तरायकर्मणां वर्ग्यामि संयुक्तं वर्तते । सा  
पैरैका वर्ग्याञ्चन्तमृक्षमपरमाणुरूपयो मचवीति मृक्षमत्वं निगोदजीवानां सिद्धम् ।

ये च शरीरप्रयाङ्गुलासस्येयमागशरीरदिमदाः पृथिवीकायोरेवोऽमिदि  
तास्ते वनस्पतिक्रियायानामपि बोध्या, केवलमनिस्संस्थम्=अनियताकारं शरीरसंस्था-

“अंगुल के एक आकाशप्रदेश में असंस्मात् गोले एक गोले में असंख्यात निगोद-  
शरीर और एक-एक निगोदशरीर में अनन्त जीव अन्तः पादिए” ॥१॥

निगोद में रहने वाले हरिक जीव के अलग-अलग तैत्रस और कर्मण शरीर होते हैं,  
और प्रयेक शरीर अनन्त ज्ञानावरणीय आदि तथा अनन्त अन्तराय कर्मों की वर्ग्याओं से  
संयुक्त है, वह एक वर्ग्या अनन्तसूक्ष्मपरमाणुरूप होती है । इस कथन से निगोदिया जीवों  
की सूक्ष्मता सिद्ध होती है ।

पृथिवीकाय के तरेय में तीन शरीर तथा अंगुल के असंख्यातवें माग की  
अवपाहना आदि का कथन किया है वह वनस्पतिक्रिय के लिए भी समझना पादिए ।  
यहाँ विशेष बात यह है कि वनस्पति जीवों के शरीर का आकार अनियत होता है ।

“अङ्गुलानां ज्येष्ठ आकाशप्रदेशमां अथ आत वेणा ज्येष्ठ वेणामां असंभ्यात  
निगोद-शरीर अने ज्येष्ठ-ज्येष्ठ निगोद शरीरमां अनन्तस्य अणुया ज्येष्ठजे” ॥१॥

निगोदमां स्वेवा बाणा हरिक एवने अलग-अलग तैत्रस अने कर्मण शरीर  
होय छ अने प्रयेक शरीर अनन्त ज्ञानावरणीय आदि तथा अनन्त अन्तस्य  
कर्मोनी वर्ग्याओंकी संयुक्त छ ते ज्येष्ठ वनस्पति अनन्तसूक्ष्मपरमाणुरूप होय छ  
आ वचनशी निगोदना एवोनी सूक्ष्मता सिद्ध थाय छ

पृथ्वीकायना हरिषमां त्रय शरीर तथा अङ्गुलानां असंभ्यातमा आगनी अवया  
दना आदितु निरूपणं कथं छ ते वनस्पतिक्रिय मादे पणु संभल वेदु ज्येष्ठजे आदि  
विशेष बात ये छ है-वनस्पतिना एवोना आकार अनियत (निश्चयवत्तना) होय छ

नभेषाम्, शेषमन्यत् समानम् । एषां स्थानं घनोदधिवातवलयदि । संख्यामङ्गीकृत्या-  
नन्ताः सर्वे वनस्पतयः ।

एव वनस्पतीना वृक्षादिभेदैः प्रत्येकसाधारणभेदैः, तथा—वर्णगन्धरसस्पर्शभेदैश्च  
महस्रशो भेदा भवन्ति । योन्यादिभेदैः पुनर्लक्षशो भेदा जायन्ते ।

वनस्पतेर्योनिः संवृता भवति । तस्याः सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रयो भेदाः,  
तथा शीतोष्णमिश्रभेदेन त्रयो भेदाः । एवं गणनया प्रत्येकवनस्पतियोनीना दशलक्ष-  
संख्यका भेदा भवन्ति । साधारणवनस्पतीनां चतुर्दशलक्षसंख्यका भेदा जायन्ते ।

शेष सब पूर्ववत् है । इन का स्थान घनोदधिवातवलय आदि हे । सख्या की अपेक्षा पूर्वोक्त  
सब प्रकार की वनस्पति—सख्या अनन्त है ।

वृक्ष आदि के भेदों की अपेक्षा, प्रत्येक—साधारण की अपेक्षा तथा वर्ण, रस गन्ध और  
स्पर्श के भेद की अपेक्षा वनस्पति के हजारों भेद होते हैं । योनि आदि के भेदों की अपेक्षा  
विचार किया जाय तो लाखों भेद हो जाते हैं ।

वनस्पति की योनि संवृत है । संवृतयोनि सचित्त, अचित्त, और मिश्र के भेद से  
तीन प्रकार की होती है । शीत, उष्ण तथा मिश्र के भेद से भी तीन प्रकार की है । इस  
प्रकार गणना करने से प्रत्येकवनस्पति की दस लाख योनियाँ हैं । साधारणवनस्पति की  
योनियाँ चौदह लाख हैं ।

भाङ्गी तमाम पूर्वं प्रभाष्ये छे येन स्थानं घनोदधिवातवलय आदि छे सख्यानी  
अपेक्षा पूर्वोक्त सर्वे प्रकारनी वनस्पति—सख्या अनन्त छे

वृक्ष आदिना भेदोनी अपेक्षाये, प्रत्येक—साधारण्य अपेक्षाये तथा वर्ण, रस,  
गन्ध अने स्पर्शना भेदनी अपेक्षाये वनस्पतिना लुब्धो भेद थाय छे योनि  
आदिना भेदोनी अपेक्षाये विचार करवाभा आवे तो लाखो भेद थर्ध नथ छे  
वनस्पतिनी योनि संवृत छे संवृतयोनि सचित्त, अचित्त अने मिश्रना भेदथी त्रयु  
प्रकारनी छाय छे अने शीत उष्ण तथा मिश्रना भेदथी त्रयु प्रकारनी छे आ  
प्रभाष्ये गणना करवाथी प्रत्येकवनस्पतिनी दस लाख योनियो छे, अने साधारण्य-  
वनस्पतिनी योनियो चौदह लाख छे



परिमाणद्वारम्—

उक्तं प्रकृष्याद्वारम् । परिमाणद्वारमुच्यते—पर्याप्तवाद्दराः प्रत्येकवनस्पति  
जीवाः पिच्छीयूत-वृत्तुष्कोनीकृत-सोक्तभेष्यसंस्थेयमागवत्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणाः,  
वाद्दरपर्याप्ततेजस्कामजीवराक्षेधासंख्यातगुणाः सन्ति ।

अपर्याप्तवाद्दराः प्रत्येकवनस्पतिजीवास्तु अस्तस्यातानां लोकानां यावन्तः प्रदेशा-  
स्तावन्तः सन्ति । इमेऽप्यपर्याप्तवाद्दरतेजस्कामजीवराक्षितभाऽस्तस्यातगुणाः । प्रत्येक  
वनस्पतय सुस्मा न सन्ति, सास्त्रेऽनुपादानात् ।

साधारणवनस्पतिजीवाः-सुस्मवाद्दरपर्याप्तमेवैवतुर्विधा अपि पृथक् पृथगन-  
त्वानां लोकानां यावन्तः प्रदेशास्तावन्त इति । अत्रायं विशेषः—

परिमाणद्वार—

प्रकृष्याद्वारं कृत्वा । अत्र परिमाणद्वारं कर्तव्यं है-पर्याप्तवाद्दर-प्रत्येकवनस्पति जीव  
जीवने की हुई लोकभेदों के असंख्यातवर्गे मतलब की आकाशप्रदेशों की राशि के बराबर  
है, और वाद्दरपर्याप्ततेजस्काम के जीवों से असंख्यातगुने हैं । असंख्यात लोककाशों के  
प्रदेशों की बराबर अपर्याप्त वाद्दर प्रत्येकवनस्पतिकाम के जीव हैं और ये भी अपर्याप्तवाद्दर  
तेजस्काम के जीवों से असंख्यात गुने हैं । प्रत्येक वनस्पति में सूक्ष्म जीव नहीं होते बल्कि  
कि वाक में कहीं उनका अस्तित्व नहीं है ।

साधारण वनस्पति के जीव सूक्ष्म वाद्दर पर्याप्त और अपर्याप्त के चार प्रकार  
के हैं । इन चारों राशियों में से प्रत्येकजीवरानि की संख्या अन्त लोककाश के प्रदेशों के  
बराबर है । इसमें इतनी विशेषता समझ लेनी चाहिए—

परिमाणद्वार—

प्रकृष्याद्वारं कृत्वा इत्थं परिमाणद्वारं कर्तव्यं है-पर्याप्तवाद्दरप्रत्येकवनस्पति एव  
वृत्तुष्कोनीकृत-सोक्तभेष्यसंस्थेयमागवत्याकाशप्रदेशराशि-प्रमाणाः  
वाद्दरपर्याप्ततेजस्कामजीवराक्षेधासंख्यातगुणाः सन्ति । अत्रायं विशेषः—  
साधारण वनस्पति जीवने की हुई लोकभेदों के असंख्यातवर्गे मतलब की आकाशप्रदेशों की राशि-प्रमाणाः  
वाद्दरपर्याप्ततेजस्कामजीवराक्षेधासंख्यातगुणाः सन्ति । अत्रायं विशेषः—  
साधारण वनस्पति जीवने की हुई लोकभेदों के असंख्यातवर्गे मतलब की आकाशप्रदेशों की राशि-प्रमाणाः  
वाद्दरपर्याप्ततेजस्कामजीवराक्षेधासंख्यातगुणाः सन्ति । अत्रायं विशेषः—

साधारण वनस्पति एव सूक्ष्म वाद्दर पर्याप्त अने अपर्याप्ततेजस्काम जीवों के चार प्रकार के हैं । इन चारों राशियों में से प्रत्येकजीवरानि की संख्या अन्त लोककाश के प्रदेशों के बराबर है । इसमें इतनी विशेषता समझ लेनी चाहिए—

साधारणवादरपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता असख्यातगुणाः । तेभ्योऽपि सूक्ष्मपर्याप्तका असंख्यातगुणा विज्ञेया इति ।

सूक्ष्मानन्तजीवानां परिमाणं कियदिति सद्यन्तमुच्यते-यथा-कश्चित् प्रत्यादिमापकवस्तुना धान्यराशिं परिमाप्याञ्च्यत्र निक्षिपति, तथा यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशिं लोकरूपप्रस्थेन मापयेत् लोका संभृता भवेयुः ।

पर्याप्तवादरनिगोदपरिमाणं च यथा—

घनीभूतचतुरस्रीकृतसकललोकप्रतरस्यासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः पर्याप्तकवादरनिगोदाः सन्ति, ते प्रत्येकशरीर-वादरवनस्पति-पर्याप्तकेभ्यो-

साधारणवादरपर्याप्त जीवों की अपेक्षा वादर-अपर्याप्त असख्यातगुणा हैं । वादरपर्याप्त की अपेक्षा सूक्ष्म-अपर्याप्त असख्यातगुणा हैं और सूक्ष्म-अपर्याप्त उनसे भी असख्यातगुणा हैं ।

सूक्ष्म अनन्त जीवों का परिमाण कितना है, यह बात दृष्टान्त देकर समझाते हैं- जैसे कोई पुरुष प्रस्थ (सिर) आदि बाँटों से घान्य तोलकर दूसरी जगह रख देखा है, उसी प्रकार यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशि को लोकरूपी प्रस्थ से नापा जाय तो अनन्त लोक भर जाएँ ।

पर्याप्त वादर निगोद जीवों का परिमाण इस प्रकार का है-

चौकोर (चतुष्कोण) घन किये हुए सम्पूर्ण लोकप्रतर के असख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर पर्याप्तवादरनिगोद जीव हैं । वे प्रत्येकशरीर-वादरवनस्पति

साधारणपर्याप्त लोकोनी अपेक्षा वादरअपर्याप्त असख्यातगुणा छे वादरपर्याप्तनी अपेक्षा सूक्ष्म-अपर्याप्त असख्यातगुणा छे अने सूक्ष्म-अपर्याप्त तेनाधी पञ्च असख्यातगुणा छे

सूक्ष्म अनन्त लोकोनु परिष्णाम केटलु छे जे वात दृष्टान्त आपीने समझवे छे-जेम कौछ पुरुष प्रस्थ (तोणवानुं वजन १ शेर) आदि तोणवाना भाट-वजनथी. धान्य तोणीने भील जन्थाजे राणी दे छे ते प्रमाखे जे साधारण सूक्ष्म लोवराशिने द्वाकडूपी प्रस्थथी तोणवामा आवे तो अनन्त द्वाक बराछ नथ

पर्याप्तवादरनिगोद लोकोनु परिष्णाम आ प्रकारे छे-चतुष्कोण घन करेला सम्पूर्ण द्वाकप्रतरना असख्यातमा-लागतीं प्रदेशोनी परापर पर्याप्तवादरनिगोद लव छे.

अस्येयगुणाः । श्लेषाश्रयः—अपर्याप्तवाटरनिगोदाः, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदाः, पर्याप्त  
सूक्ष्मनिगोदाश्च प्रत्येकमसंख्येयलोककाशप्रदेशपरिमाणाः क्रमशो बहुतरकाः सन्ति ।  
साधारणजीवाद्यैतेभ्यो निगोदपरिमाणेभ्योऽनन्तगुणाः सन्तीति बोध्यम् ।

यदि लोककाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैका प्रत्येकवनस्पतिजीवाः स्थाप्यते,  
तर्हि असंख्याता लोका भ्रियन्ते । यदि तु लोककाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैको  
नियोज्यजीवः स्थाप्यत, तर्हि अनन्ता लोका भ्रियन्ते ।

उक्तञ्च प्रज्ञापनायाम्—१ पदे ।

“लोगानासपपसे परितगीव ठवेहि एक्केक ।

एवं ठवेरमाणा, ह्वैति लोगा असंखिज्जा ” ॥ १ ॥

पर्याप्त जीवा से असंख्यातगुणा है । श्लेष तीन अर्थात् अपर्याप्तवाटरनिगोद, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोद  
और पर्याप्त सूक्ष्मनिगोद असंख्यात लोककाश प्रदेशों के बराबर हैं और क्रमशः अधिक-  
अधिक संख्या में हैं । साधारण जीव इन से अनन्तगुणा हैं ।

यदि लोककाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक प्रत्येकवनस्पति के जीव स्थापित  
किये जायें तो असंख्यात लोक मर जायें, और यदि लोककाश के एक-एक प्रदेश में एक-  
एक नियोजिया जीव स्थापित जायें तो अनन्त लोककाश मर जायें । प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम  
पदमें कहा है—

“लोककाश के एक-एक प्रदेशमें अगर प्रत्येकवनस्पति के एक-एक जीव  
रक्ष दिये जायें तो असंख्यात लोक मर जाए ॥ १ ॥

वे प्रत्येकशरीर-आह्वनरूपति पर्याप्त लोकोषी अथ अन्तत लघु छे आश्रिता मय  
अपर्याप्त-अपर्याप्तवाटरनिगोदा अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदा अने पर्याप्तसूक्ष्मनिगोदा  
असंख्यात-लोककाश प्रदेशोना अलगर छे, अने क्रमशः अधिक-अधिक संख्यामां  
छे साधारण लव जेनाशी अनन्त लघु छे ।

जे लोककाशना लोक-लोक प्रदेशमां लोक-लोक प्रत्येक वनस्पतिना लवने स्थापित  
रूपमां आवे ते असंख्यात लोक असाधं लव, अने जे लोककाशना लोक-लोक प्रदेशमां  
लोक-लोक नियोजिया लवने राजवामां आवे ते अनन्त लोककाश असाधं लव ।

प्रज्ञापनासूत्रना प्रथम पदमां कसु छे ३ -

“लोककाशना लोक-लोक प्रदेशमां जे प्रत्येक वनस्पतिना लोक-लोक लव  
असाधमां आवे ते असंख्यात लोक असाधं लव ।” ॥ १ ॥

साधारणवादरपर्याप्तकेभ्य सूक्ष्मा अपर्याप्ता असंख्यातगुणाः । तेभ्योऽपि सूक्ष्मपर्याप्तका असंख्यातगुणा विज्ञेया इति ।

सूक्ष्मानन्तजीवानां परिमाणं कियदिति सदृष्टान्तमुच्यते-यथा-कश्चित् प्रस्थादिमापकवस्तुना धान्यराशिं परिमाप्याञ्ज्यत्र निक्षिपति, तथा यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशिं लोकरूपप्रस्थेन मापयेत् लोका संभृता भवेद्युः ।

पर्याप्तवादरनिगोदपरिमाणं च यथा—

घनीभूतचतुरस्रीकृतसकललोकप्रतरस्यासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः पर्याप्तवादरनिगोदाः सन्ति, ते प्रत्येकशरीर-वादरवनस्पति-पर्याप्तके

साधारणवादरपर्याप्त जीवों की अपेक्षा वादर-अपर्याप्त असंख्यातगुणा वादरपर्याप्त की अपेक्षा सूक्ष्म-अपर्याप्त असंख्यातगुणा हैं और सूक्ष्म-अपर्याप्त उन असंख्यातगुणा हैं ।

सूक्ष्म अनन्त जीवों का परिमाण कितना है, यह बात दृष्टान्त देकर समझ जैसे कोई पुरुष प्रस्थ (सेर) आदि बाँटों से धान्य तोलकर दूसरी जगह रख देखा प्रकार यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशि को लोकरूपी प्रस्थ से नापा जाय तो अ भर जाएँ ।

पर्याप्त वादर निगोद जीवों का परिमाण इस प्रकार का है—

चौकोर (चतुष्कोण) घन किये हुए सम्पूर्ण लोकप्रतर के असंख्यातके प्रदेशों के बराबर पर्याप्तवादरनिगोद जीव हैं । वे प्रत्येकशरीर-व

साधारणपर्याप्त एवोनी अपेक्षा आदरअपर्याप्त असंख्यातगुणा पर्याप्तनी अपेक्षा सूक्ष्म-अपर्याप्त असंख्यातगुणा छे अने सूक्ष्मतेनाथी पक्ष असंख्यातगुणा छे

सूक्ष्म अनन्त एवोनुं परिष्णाम डेटलु छे अे वात दृष्टान्त आर छे-अेम डेअर पुरुष प्रस्थ (तोणवानुं वजन १ शेर) आदि तोणवाना ० धान्य तोणाने भीलु अ्अाम्ने राभी डे छे ते अमाछे अे साधारण सूक्ष्म लोकरूपी प्रस्थथी तोणवामा आवे तो अनत लोकर भरअ नय

पर्याप्तआदरनिगोद एवोनुं परिष्णाम आ प्रकारे छे-अतुष्कोलु घन लोकरप्रतरना असंख्यातमा-लागतीं प्रदेशोनी अराअर पर्याप्तआदरनि

टीका—

यो गुणः—सम्बन्धादिक, स आर्षतः—भावतन्त्रे—परिभ्राम्यन्ति जीवा यत्र स  
 —आर्षतः—ब्रह्मनराभिम्याभिनानाभिक्तेष्वसंपातस्वरूपः संसारः । कारणे कार्यो-  
 पचाराद् संसारकारणीभूतस्य सम्बन्धादिगुणस्य संसारत्वेन व्यपदेशः । गुणसेवनात्  
 संसारं प्राप्नोतीति भाष्यः । उक्तमर्थं इतीकृत्युक्तवाक्यं परावर्तयन्नाह—य आर्षत इति ।  
 य आर्षतः—संसारः, स गुणः—सम्बन्धादिः । रागद्वेषवृत्तयः संसारी नैव सम्बन्धादिगुणतो  
 विरम्यते, न च मोक्षमार्गं प्राप्नोतीत्यर्थः ।

यद्वा—‘गुणे’ ‘आर्षते’ इति सप्तम्यन्तम् । यः गुणे—सम्बन्धादौ वर्तते,

टीकार्थ—सम्बन्धादि जो गुण आर्षत् विषय है वही आर्षत है । जिसमें  
 आर्षतन आर्षत् भ्रमण किया नाम उसे आर्षत कहते हैं । सम्बन्धादि आर्षत्—व्याधि  
 आदि भ्रमण प्रकार के कर्मों से परिपूर्ण यह संसार ही आर्षत है । सम्बन्धादि विषय  
 संसार के कारण हैं, स्वयं संसार नहीं है, किन्तु यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके  
 सम्बन्धादि विषयों को ही संसार कहा है । आशय यह है कि—इन विषयों का सेवन करने  
 से संसार की प्राप्ति होती है । इसी अभिप्राय को उक्त करने के अर्थसे वाक्य को  
 उक्त कर आशय कर रहे हैं—जो आर्षत है वही गुण है । राग-द्वेष आदि के कर्मीन  
 करने वाला संसारी जीव सम्बन्धादि गुणों से विरक्त नहीं होता और न मोक्षमार्ग  
 प्राप्त करता है ।

अथवा—मूल में जो ‘गुणे’ और ‘आर्षते’ पर भाष्य हैं । वे सप्तमिद्विवक्ति  
 में हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि—जो पुरुष सम्बन्धादि गुणों में वर्तता है वह आर्षत

टीकार्थ—सम्बन्धादि जो गुण आर्षत् विषय से तेज आवत्त से जेमां  
 आवर्तन आर्षत् भ्रमण करवाना आवे तेने आवत्त कहे से सम्बन्धादि, सम्बन्धादि, व्याधि  
 आदि नाना प्रकारका कर्मेष्टीषी परिपूर्ण आ आशय आवत्त से सम्बन्धादि विषय  
 आशय का अर्थ है, स्वयं आशय नहीं परन्तु आर्षत् आशय का अर्थ उपचार करीने  
 सम्बन्धादि विषयों से, न आशय कर्मी से आशय से से के—विषयों से सेवन करवायी  
 आशयनी प्राप्ति नाम से ते अभिप्रायने उक्त करवाना उक्तकी वाक्यने आशयने आशय  
 कहे से—जे आवत्त से ते अर्थ से ’ रागद्वेष आदिना आर्षतन रक्षेनाचण्ड संसारी  
 उप सम्बन्धादि अर्थों विरक्त रहेता नहीं अने मोक्षमार्गने प्राप्त करता नहीं ।

अथवा—मूलार्थों के ‘गुणे’ अने ‘आर्षते’ पर भाष्य हैं ते अर्थों विरक्तियों  
 से जेना अर्थों से वधी के—जे पुरुष सम्बन्धादि अर्थों वर्तते से ते आवत्त आर्षत्

लोगागासपएसे निगोयजीवं ठवेहि ऐक्केकं ।

एवं ठवेज्जमाणा, हवंति लोगा अणन्ताओ ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया-लोकाकाशप्रदेशे, प्रत्येकजीव स्थापय एकैकम् ।

एवं स्थाप्यमाना भवन्ति लोका असंख्येयाः ॥ १ ॥

लोकाकाशप्रदेशे निगोदजीवं स्थापय एकैकम् ।

एवं स्थाप्यमानाः भवन्ति लोका अनन्ताः ॥ १ ॥

इति परिमाणद्वारम् ॥ सू० १ ॥

शब्दादिविषयासक्त्या वनस्पतिकायांपमर्दनपराः पुनः पुनर्भवसिन्धौ निपत-  
न्तीत्याशयेनाह-‘ जे गुणे ’ इत्यादि ।

मूलम्—

जे गुणे से आवड्डे । जे आवड्डे से गुणे ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो गुणः स आवर्तः । य आवर्तः स गुण ॥ सू० २ ॥

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक निगोद जीव रख दिये जायें तो इस प्रकार रखने से अनन्त लोक हो जायें ” । इति परिमाणद्वार ॥ सू० २ ॥

इन्द्रियों के शब्द आदि विषयों में आसक्त होकर जो वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं वे बारम्बार भवसागर में डूबते हैं । इस अभिप्राय से शास्त्रकार कहते हैं:- ‘ जे गुणे ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो गुण है सो आवर्त है । जो आवर्त है सो गुण है ॥ सू० २ ॥

“ लोकाकाशना ऐक-ऐक प्रदेशमा ऐक-ऐक निगोद एव राभवामा आवे ते आ प्रकाशे राभवामा अनन्त लोक थध नय ” इति परिमाणद्वार ॥ सू० १ ॥

इन्द्रियोना शब्द आदि विषयोमा आसक्त थधने जे वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे ते बारवार लव-सागरमा डूणी नय छे जे अलिप्रायथी शास्त्रकार उडे छे- ‘ जे गुणे, ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जे गुण छे ते आवर्त छे जे आवर्त छे ते गुण छे ॥ २ ॥

गत्यागतिरूप आचरतां अपि न तेषां दुःखजनको भवति । सामान्यतः संसार  
वर्तिर्न सामान्यपञ्चराश्रिभूषणोपलब्धिषु सर्वेषां संसारिणां समस्येव तस्माद् शुभोप  
लब्धिर्न प्रतिपिच्यते । किन्तु यस्तत्र रागद्वेषपरिणामः स एव परिवर्जनीयत्वेन प्रति-  
बोध्यते, अथ एवोक्तं भगवान्—

“ कण्यसोक्तेरिं सरेरिं पेर्मं नामिनिवेशम् ” इत्यादि । किञ्च—

“ न कथं रूपमद्रष्टुं, यस्तुर्गोचरमागतम् ।

रागद्वेषौ तु यौ तथ, तौ पुनः परिवर्जयेत् ॥ ”

इदमत्र तत्त्वम्—कण्ठादिविषयासक्तताः स्तु वनस्पतिमीमांसा बहुषु

गति-भागतिरूप आचरतां भी उनके लिए दुःखजनक नहीं है । सामान्य संसारवर्तीपत्र  
और विषयो की सामान्य उपलब्धि सभी संसारी बीजा में होती है, अतः विषयो की उपलब्धि  
अ विषय नहीं किया जा सकता । हैं विषयो में जो राग-द्वेषरूप परिणाम है वही त्याग्य है ।  
अथ भगवान् ने कहा है—

“ कण्यसोक्तेरिं सरेरिं पेर्मं नामिनिवेशम् ” इत्यादि ।

“कान्तो को सुख देने वाले शम्भो पर अनुराग नहीं करता पादिए” । तथा—  
शक्तोके नामे जाया हुआ रूप अनदेख रही किया जा सकता यह तो दीक्ष  
ही जाता है, मगर उस से कोई हानि नहीं होती । अस्मत्ता उस रूप पर राग भा द्वेष करने  
से हानि होती है । अतः विवेकी पुरुष राग और द्वेष का त्याग कर ।

आशय यह है—शम्भु आदि विषयो में आसक्त पुरुष वनस्पतिकाम्य के बीजों को

प्रति-आचरतिरूप आचरतां च तेषामेव भाटे दुःखरूप नहीं सामान्य संसार  
वर्तीपत्रुं अने विषयोनी सामान्य उपलब्धि सब संसारी लोकोत्तं दोष से अने  
विषयोनी उपलब्धिने विषय करी शकता नहीं, का विषयोभां ने राग-द्वेषरूप  
परिणाम से तेष त्याग्य-त्याग देवा बोध्य से अनेके अचराने कहुं छ—

कण्यसोक्तेरिं सरेरिं पेर्मं नामिनिवेशम् ” अर्थात् अनेके शुभ देवाचरण  
रूपों पर प्रीति नहि करनी अनेके तथा नेत्रोनी साथ आवेता रूप न हीन-  
अतीक करी शकता नहीं ते तो देवताभां आवेत् से परन्तु तेषां देवता हानि  
वती नहीं, अत्रणत्त जे रूप पर राग अथवा द्वेष करवाओ हानि थाय से अने भाटे  
विवेकी पुरुष राग अने द्वेषने त्याग करे

आशय अने से है—शम्भु आदि विषयोभां आसक्त पुरुष वनस्पतिजायना लोकोनी

स आवर्ते=संसारे वर्तते । यश्चावर्ते, स गुणे वर्तते ।

ननु 'यो गुणे वर्तते, स आवर्ते वर्तते' इति यदुक्तं तत् सम्यगेव, परन्तु य आवर्ते वर्तते, न त्वसौ नियमेन गुणे वर्तते । यतस्तीर्थङ्करा भावितात्मानो मुनयः प्रतिमाधारिश्रावकाश्चावर्ते वर्तन्ते न तु शब्दादिगुणेषु, तदेतत् कथमुपपद्यते—'यश्चावर्ते वर्तते स गुणे वर्तते' इति ? ।

अनुकूलशब्दादिषु रागः, प्रतिकूलशब्दादिषु द्वेषः समुद्भवतीति रागद्वेषपूर्वकगुणेषु शब्दादिषु या प्रवृत्तिस्तस्या एवात्राधिकारः । एवं चास्य वाक्यस्य तीर्थङ्करादिविषयकत्वाभावात्नास्त्युक्तशङ्कावसर इति ।

अर्थात् संसार मे वर्तता है, और जो संसार में वर्तता है वह शब्द आदि में वर्तता है ।

शङ्का—जो शब्दादि गुणों में वर्तता है वह संसार मे वर्तता है, यह कथन तो ठीक है, परन्तु जो संसार में वर्तता है वह नियम से शब्दादि विषयों में नहीं वर्तता । भगवान् तीर्थंकर, भावितात्मा मुनि और प्रतिमाधारी श्रावक संसार में तो वर्तते हैं मगर शब्द आदि विषयों में नहीं वर्तते । अत एव यह कथन किस प्रकार बन सकता है कि जो आवर्त में वर्तता है वह शब्द आदि में वर्तता है ।

समाधान—अनुकूल शब्द आदि में राग उत्पन्न होता है और प्रतिकूल शब्द आदि में द्वेष होता है । इस प्रकार रागद्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति करने का ही यहाँ प्रकरण है । तीर्थंकर आदि राग-द्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति नहीं करते, अत यह वाक्य तीर्थंकर या भावितात्मा मुनि आदि के लिए लागू नहीं होता । इस प्रकार उक्त शंका का यहाँ स्थान नहीं है ।

संसारमा वर्ते छे, अने ने संसारमा वर्ते छे ते शब्द आदिमा वर्ते छे

शंका—ने शब्दादि शुद्धोमा वर्ते छे, ते संसारमा वर्ते छे आ कथन-तो ठीक छे, परन्तु ने संसारमा वर्ते छे ते नियमथी शब्दादिक विषयोमा वर्तता नथी भगवान तीर्थंकर भावितात्मा मुनि अने प्रतिमाधारी श्रावक संसारमा तो वर्ते छे, परन्तु शब्दादि विषयोमा वर्तता नथी अे माटे आ कथन केवी रीते णनी शके छे, के-ने आवर्त्तमा वर्ते छे ते शब्द आदिमा वर्ते छे ।

समाधान—अनुकूल शब्द आदिमा राग उत्पन्न थाय छे अने प्रतिकूल शब्द आदिमा द्वेष थाय छे आ प्रमाणे राग-द्वेषपूर्वक विषयोमा प्रवृत्ति करवी तेनुं न अर्द्धी प्रकरणे छे तीर्थंकर आदि राग-द्वेषपूर्वक विषयोमा प्रवृत्ति करता नथी, माटे आ वाक्य तीर्थंकर अथवा भावितात्मा मुनि आदिना माटे वाच्य थतुं नथी. आ प्रमाणे पूर्वे ने शंका करी छे ते शंकाने अर्द्धी स्थान नथी.



गत्यागतिरूप आचरतोऽपि न तेषां दुःखजनको मवति । सामान्यतः संसार  
 पतित्वं सामान्यदुःखद्विगुणोपलम्बिष्य सर्वेषां सत्सारिणां समपत्येन तस्माद् गुणोप  
 लम्बिर्न प्रतिपिष्यत । किन्तु यस्तत्र रागद्वेषपरिणामं स एव परिवर्धनीयत्वेन प्रति-  
 बोध्यते, अत एवोक्तं भगवता—

“ कण्णसोक्खेहिं सदेहिं पेम्मं नामिनिवेसप ” इत्यादि । किञ्च—

“ न ह्यक्यं रूपमद्रष्टुं, चक्षुर्गोचरमागतम् ।

रागद्वेषी तु यो तत्र, सौ बुधः परिवर्धयेत् ॥ ”

इदमत्र तस्मिन्—कण्णदिविषयासक्ताः स्तु वनस्पतिमीवान् पशुषी

गति आगतिरूप आचरत भी उनके लिए दुःखजनक नहीं है । सामान्य संसारवर्तमान  
 और विषयो की सामान्य उपलम्बि सभी संसारी जीवा में होती है, अत विषयो की उपलम्बि  
 का निषेध नहीं किया जा सकता । हाँ विषयो में जो राग-द्वेषरूप परिणाम है वही त्याग्य है ।  
 अत भगवान् ने कहा है—

“ कण्णसोक्खेहिं सदेहिं पेम्मं नामिनिवेसप ” इत्यादि ।

“कनो को मुस देने वाले शब्दों पर अनुराग नहीं करना चाहिए” । तथा—  
 जीवोंके जागे जाया हुआ रूप अनदेख नहीं किया जा सकता, वह तो वीस  
 ही जाता है, मगर उस से कोई हानि नहीं होती । अन्वयात् उस रूप पर राग या द्वेष करने  
 से हानि होती है । अतः विषयो पुरुष राग और द्वेष का त्याग कर ।

अथाय यह है—शब्द आदि विषयो में व्यसक्त पुरुष वनस्पतिशब्द के जीवों की

गति-आगतिरूप आचरत पशु तेजोने भटे दुष्करूप नहीं सामान्य संसार  
 वर्तमान् अने विषयोनी सामान्य उपलम्बि, सब संसारी जीवोभां होक छे जेकी  
 विषयोनी उपलम्बिनेना निषेध करी शकते नहीं, हाँ विषयोभां जे राग-द्वेषरूप  
 परिणाम छे तेव त्याग्य-त्यज्य रूप भोज्य छे, जेदते जनमाने कहुं छे—

“ कण्णसोक्खेहिं सदेहिं पेम्मं नामिनिवेसप ” अर्थात् जनोने सुख देवाद्यथा

शब्दो पर प्रीति नहि करी जेह जे तदा नेत्रोनी साधे आवेवा रूप, न हीन-  
 ज्योड करी शकत नहीं, ते तो द्वेषभां आवेव छे परन्तु तेभां जेह हानि  
 करी नहीं, अतएव जे रूप पर राग अथवा द्वेष करवावो हानि याव छे जे भटे  
 विषयो पुरुष राज अने द्वेषने त्याज करे.

अथाय जे छे हे—शब्द आदि विषयोभां व्यसक्त पुरुष वनस्पतिशब्दना लोकोनी

विहिंसन्ति । तथा हि-अनुकूलशब्दध्वनार्थी वेणुवीणापटहादिवाद्यानि निर्मातुं बहु-  
विधान् वनस्पतीन् विनिहन्ति । प्रियरूपविलोकनार्थी काष्ठमययुवतिप्रतिमा-गृह-  
तोरण-वेदिका-स्तम्भादि रचयितु कतिचन वनस्पतीन् विनिकृन्तति । एवं घ्राणसुखार्थी  
कर्पूर-केतकी-पाटल-लवङ्ग-सरसचन्दना-गुरु-केसर-जातीफल-जातीपत्रिकादीन् परि-  
ग्रहीतुं विविधान् वनस्पतीन् विहिनस्ति । रसास्वादसुखार्थी मूलकन्डादिगतानसंख्या-  
ताननन्तान् वा जीवानुपमर्दयति । एवं स्पर्शसुखाभिलाषी च कमलदलमृणालकदली-  
दलवल्कलानुकूलदुकूलतूलादीन् परिग्रहीतुं नानाविधवनस्पतीनां प्राणव्यपरोपणं  
प्रकरोति ।

बहुत हिंसा करते हैं । जैसे-अनुकूल शब्द सुनने का अभिलाषी पुरुष वेणु, वीणा,  
पटह (ढोल) आदि वाद्य बनाने के लिए नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के जीवों की  
हिंसा करता है । प्रियरूप देखने का इच्छुक युवती की काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण,  
वेदिका, और स्तम्भ बनाने के लिए वनस्पति को काटता है । इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय के  
सुखका लोभ कर्पूर, केतकी, पाटल, (गुलाब) लोंग, सरस चन्दन अगर, केसर,  
जायफल, जायपत्री आदि के उद्देश्य से विविध प्रकार के वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा  
करता है । रसास्वाद का अनुरागी मूल आदि कन्दों में रहने वाले असत्यात और अनन्त  
जीवों की हिंसा करता है । इसी प्रकार स्पर्श-सुख का अभिलाषी कमल के पत्ते, कमल की  
दडी, केले के , पत्ते छाल और अनुकूल वृक्ष तथा रुई प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के  
वनस्पति जीवों का प्राण लेता है ।

धर्षीण हिंसा करे छे जेभ-अनुकूल शब्द साधनवाना अभिलाषी पुरुष वेणु-वीणा,  
ढाल आदि वाद्य-वाजित्र बनाववा भाटे नाना प्रकारना वनस्पतिकायना एवानी हिंसा  
करे छे प्रियरूप जेवानी इच्छुक युवतीनी काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण, वेदिका  
अने स्तम्भ बनाववा भाटे वनस्पतिने कापे छे छे प्रभाषे घ्राणेन्द्रिय (नासिका)ना  
सुभना लोभ-लालस्यु कर्पूर, केतकी गुलाब लवीग, सरसचन्दन, अगर केसर,  
जायफल, जायपत्री आदि भेगववाना उद्देश्यथी विविध प्रकारना वनस्पतिकायिक एवानी  
हिंसा करे छे रसास्वादन अनुरागी एव भूण आदि कन्दोभा रडेवावाणा असभ्यात  
अने अनन्त एवानी हिंसा करे छे छे प्रभाषे स्पर्शसुभना अभिलाषी एव कमल-  
पत्ता, कमलकाकडी, केवणना पत्ता, छाल अने अनुकूल वृक्ष तथा रुई प्राप्त करवा  
भाटे नाना प्रकारना वनस्पति एवानी प्राण ले छे

एवं च वनस्पतिनिष्पन्नेषु शब्दादिगुणेषु वर्तमानः सत्सारं प्राप्नोति, स च सत्सारी रागद्वेषमलिनात्मकतया पुनः शब्दादिगुणेषु वर्तमानः अतुर्गतिः सत्सारतो न श्याम्बि बहिर्यातीत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

शब्दादिगुणोपलब्धिमात्रं न संसारान्तापत्तनस्य कारणं, किन्तु तत्र मूर्च्छेवेत्याह 'उद्द' इत्यादि ।

मूलम्—

उद्दं नहं तिरियं पार्थिवं पासमाये रूपार्ह पासर्, सुषमाये सदां सुषेर् ।  
उद्दं नहं तिरियं पार्थिवं सुषमाणे रूपेसु सुषेसु सरेसु यावि । एत लोप विपाहिए ॥ सू० ३ ॥

श्रुत्या—

उद्दं अथः तिर्यक् प्राचीनं पश्यन् रूपाणि पश्यति, सुषन् श्रुत्यां कृणोति, ऊर्णम् अथः तिर्यक् प्राचीनं मूर्च्छन् रूपेषु मूर्च्छति, उद्देः श्रुत्यां पापि । एष लोका भ्या म्याता ॥ सू० ३ ॥

इस प्रकार वनस्पति से तैयार होने वाले इन्द्रिय-विषयों में वनस्पति ही सत्सार प्राप्त करता है । सत्सारी ही राग-द्वेष से मुक्ति होता है, अतः फिर विषयों में प्रवृत्त होता है । इस प्रकार वह कभी संसार से बाहर नहीं निकल पाता ॥ सू० २ ॥

अथ अग्नि विषया को ग्रहण करने मात्र से संसार में पतन नहीं होता परन्तु उन में मूर्च्छा (गृन्धि) होना ही पतन का कारण है, यह कहते हैं—'उद्दं' इत्यादि ।

मूलार्थः—ऊपर नीचे और सामने तिरछी दिशा में दृष्टि डालता हुआ रूपों को देखता है, सुनता हुआ शब्द सुनता है । ऊपर नीचे और सामने तिरछी दिशा में रूपों में मूर्च्छित होता है और शब्दों में भी । यह लोफ कहा गया है ॥ सू० ३ ॥

जो प्रमाद्ये वनस्पतिही तैयार ववावाजा इन्द्रिय विषयोर्मा वर्तमान एव वशात्ने प्राप्त इहे उ सत्सारी रागद्वेषही मलिन बाध उ तेषी इरीने विषयोर्मा भवत्त बाध उ आ प्रमाद्ये ते कौर्ध द्विवक्ष सत्सारही लक्षार-नीडणी म्भवा नही (ध.२)

शब्द आदि विषयोने प्रकृत्य इववा मात्रही सत्सारर्मा पतन भवत्त नही परन्तु तेषां मूर्च्छा (गृन्धि) ववाधीन पतन बाध उ ते इहे उ— उद्दं इत्यादि ।

मूलार्थः—ऊपर नीचे करने सामे तिरछी दिशाभा दृष्टि नांभीने रूपाने सुवे उ संलगत्या यहा शब्द संलजे उ ऊपर नीचे करने सामे तिरछी दिशाभा इषोर्मा अने शब्दोर्मा पद्य मूर्च्छित बाध उ आ लोफ उहेवाप उ ॥ ३ ॥

## टीका—

प्रज्ञापकदिशापेक्षया ऊर्ध्वम्=ऊर्ध्वदिश्यवस्थितं पर्वतशिखरप्रासादहर्म्याद्युपरि-  
भागस्थम्, अधः=अधोदिश्यवस्थितं भूमिगृहादिकं, तिर्यक्=प्राच्यादिदिक्ष्ववस्थितं  
विदिक्ष्वस्थितं च गृहभित्तिप्रासादहर्म्यादिकं, प्राचीन-तिर्यक्पदस्य विवरणमेतत्,  
प्राच्यां दिशि विद्यमानं पदार्थजातम्, एतच्चोपलक्षणम्-अन्या अपि तिर्यग्दिशो  
विज्ञेयाः । यद्वा-प्राचीनमिति-ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्दिगन्वयि, तेनोर्ध्वाधस्तिर्यग्दिक्ष्व-  
स्थितं, प्राचीनं=पुरातनम्-आधुनिकशिल्पिदुष्करतयाऽऽश्चर्यकारि पदार्थजातं, पश्यन्=  
चक्षुर्व्यापारयन्, रूपाणि=चक्षुर्ग्राह्यतया परिणतानि रूपचद्रव्याणि शालमञ्जिकादीनि  
स्त्र्यादिरूपाणि वा पश्यति ।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-(देखने वाले की) दिशा की अपेक्षा ऊर्ध्व दिशा में-पर्वत के शिखर  
पर तथा प्रासाद या महल आदि के ऊपरी भाग में स्थित, भौ हरा आदि अधोदिशा में स्थित,  
पूर्व आदि तिरछी दिशाओं में स्थित तथा विदिशाओं में स्थित दीवार, हवेली और महल  
आदि को देखता है । मूल में आये हुए 'पार्श्व' अर्थात् 'प्राचीन' शब्द को तिरछी दिशा का  
विवरणरूप समझना चाहिए । अथवा 'प्राचीन' पद ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् सभी दिशाओं के  
साथ सबध रखता है । तात्पर्य यह निकला कि-ऊर्ध्व दिशा में स्थित अधोदिशा में स्थित  
तथा तिरछी दिशामें स्थित प्राचीन अर्थात् आधुनिक शिल्पकारों के लिए दुष्कर होने से  
आश्चर्य उत्पन्न करने वाले पुराने पदार्थों की ओर नजर करता हुआ सुन्दर पुतलियों वगैरह  
को तथा स्त्री आदि के रूप को देखता है ।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-(जेनारनी) दिशानी अपेक्षा ऊर्ध्व दिशाभा-पर्वतना शिखर  
पर तथा प्रासाद अथवा भडेल आदिना उपर भागभा, स्थित, हवेली आदि  
अधोदिशाभा स्थित, पूर्व आदि तिरछी दिशाओंभा स्थित, तथा विदिशाओंभा स्थित  
भांत, हवेली अने भडेल आदिने हेजे छे मूलभा आवेलेो 'पार्श्व' अर्थात् प्राचीन  
शब्दने तिरछी दिशाना विवरणरूप समझवे जेछे अथवा प्राचीन पद ऊर्ध्व,  
अधः अने तिर्यक् सर्व दिशाओंनी साथे सबध राजे छे तात्पर्य अने निकजे छे के-  
ऊर्ध्व दिशाभां स्थित, अधोदिशाभा स्थित, तथा तिरछी दिशाभा स्थित प्राचीन अर्थात्  
आधुनिक शिल्पकारो भाटे दुष्कर होवाथी आश्चर्य उत्पन्न करवावाणा पुराणा पदार्थोंनी  
तरङ्ग नजर करता थका सुन्दर पुतलीओ वगेरेने तथा स्त्रीआदिना रूपने हेजे छे

तथा-एतासु विदुषु च अण्वन्-भ्रोभ्रोपयोगस्युक्तः सन् अन्धान् पेषुनीषादि  
 स्मृत्यान् गीतनादादिकान् वा ध्रुणोति । भ्रोभ्रोपयोगमात्रे तु न ध्रुणोतीत्यर्थः ।  
 उपलक्षणमपेक्षित-विघ्नन् गन्धान् भिप्रति, रसपन् रसान् रसपति, स्पृशन्  
 स्पर्शान् स्पृशति ।

इह दर्शनव्यवहाराभ्यां रूपादिगुणोपलक्षिमात्रं मदर्थितम् । ऊर्णापस्तिर्यक्पदोपा  
 दानेन च रूपादिगुणानां सर्वदिग्भ्यापित्वेन तदुपयोगो दुष्परिहरोऽस्तीति प्रतिबोधितम् ।  
 रूपादिगुणोपयोगमात्रेण संसारगर्तावर्तसंपातो न भवति, किन्तु रूपादिगुणेषु मूर्च्छयेति  
 बोधयितुमाह-‘उद्दं’ इत्यादि ।

इती प्रकृत पूर्वोक्त विद्याभो में भ्रोभ्रोनिय का उपयोग क्या कर वेणु बीजा  
 यदि बाबा का, तथा गीत आदि का शब्द सुन्ता है । भ्रोत्र का उपयोग न हो तो  
 नहीं भी सुन्ता है । यह कवन उपलक्षण है, इस से यह भी समझ लेना चाहिए कि  
 भ्रम, रसना और स्पर्श इन्ध्रिय का उपयोग क्याकर सुन्ता है, बसता है और स्पर्श  
 करता है ।

जहाँ देखने और सुनने से रूप आदि गुणों की उपलक्षिमात्र सूचित  
 की है । ऊर्ण, अथ तथा तिर्यक् पद देकर यह प्रकृत किया है कि-इन्ध्रियों के विषय  
 रूप यदि, सभी विद्याभो में मरे पडे हैं । ऐसी स्थिति में उनको और ध्यान न जाने  
 देना ही बड़ा ही कठिन कार्य है । मगर रूप आदि गुणों की ओर उपयोग जाने  
 मात्र से संसार के गहरे में पतन नहीं होता । पतन तब होता है जब उनमें  
 मूर्च्छा या राग-द्वेष हो, यह बात प्रकृत करने के लिए कहा है-‘उद्दं’ इत्यादि ।

अत्र प्रमाद्ये पूर्वोक्त विद्याभोत्मां भ्रोत्रेन्द्रियेण उपयोगेन तज्जन्तुने वेणु-वीणा  
 आदि बालत्रोना तथा जीव आदिना शब्दे। सांख्ये उ भ्रोत्रेण उपयोगे न होत  
 तौ सांख्यत नहि आ कवन उपलक्षणं उ जेही जेभ समल तेनु जेधने के, शब्द,  
 रसना जने स्पर्शन धन्ध्रियेण उपयोगेन तज्जन्तुने सूये उ, आजे उ, जने स्पथ करे उ

जहाँ देखना जने सांख्यतथो रूप आदि सुषो-नी उपलक्षि मात्र सूचित करी उ  
 उर्ण, अथः तथा तिर्यक् पद आधीने जे सूचित कयुं उ के-ध्रियेना विषय  
 रूप आदि सर्व विद्याभोत्मां लर्वा पठ्यां उ जेही स्थितिमां तेनी तरह ध्यान नहि जना  
 देनु ते तो लारे कठिन कामसे परन्तु रूप आदि सुषो-नी तरह उपयोगेन लया मात्रधी  
 धन्ध्रियेण आध्यामां पठ्यानुं यतु नधी, पतन-पठ्यानुं तो लारे माथ उ के ल्याये. तेमां  
 भ्रु-अथवा राग-द्वेष बाध. या बात प्रकृत करवा भाटे कहुं उ -‘उद्दं’ धियादि.

पुनरूर्ध्वादेरुच्चारणं कस्याञ्चिदेकस्यामपि दिशि रूपादिषु मूर्च्छया संसारं प्राप्नो-  
तीति बोधनार्थम् ।

ऊर्ध्वादिदिक्ष्ववस्थितं रूपगुणं प्रति मूर्च्छन्=रागादिपरिणामं कुर्वन् सदसद्वि-  
वेकशून्यो भवन् वा रूपेषु=मनोहरेषु रूपवद्रव्येषु स्यादिरूपेषु वा मूर्च्छति=लोलुपो  
भवति । एव शब्देषु च मूर्च्छति । अपिग्रहणाद् गन्धरसस्पर्शेषु मूर्च्छति=गृध्नुर्भवति ।  
एषः=मूर्च्छाविषयीभूतो रूपादिगुणः, लोकः=ससारः, कारणे कार्योपचारात् मूर्च्छाविष-  
यीभूतरूपादिगुणात्मको लोक इति व्याख्यातः=भगवता कथितः । ॥ सू० ३ ॥

संयमे गृहीतेऽपि प्रमादवशेन रूपादिगुणेषु मूर्च्छामुपगतः सन् पुनरगारित्व-  
मापद्यते-इति दर्शयति-'एत्थ अगुत्ते.' इत्यादि ।

दोवारा ऊर्ध्व आदि दिशाओं का कथन करके यह बतलाया है कि-किसी भी एक  
दिशामें स्थिति रूपादि में मूर्च्छा होने पर भी ससार की प्राप्ति होती है ।

ऊर्ध्व आदि दिशाओं में स्थित रूप आदि विषयों में राग-द्वेषरूप परिणाम करता  
हुआ, सत्-असत् के विवेक से शून्य होकर मनोहर रूपों में या मनोहर रूपवाली स्त्री  
आदि के रूपों में पुरुष लोलुप हो जाता है । इसी प्रकार शब्दों में मूर्च्छित हो जाता है ।  
गंध, रस, तथा स्पर्श में भी मूर्च्छित हो जाता है । मूर्च्छा का विषयभूत यह रूप आदि ही,  
कारण में कार्य का उपचार करने से ससार कहलाता है । ऐसा भगवान् ने  
फरमाया है ॥ सू० ३ ॥

सयम ग्रहण कर लेने के पश्चात् भी प्रमाद के वश में होकर रूप आदि गुणों में मूर्च्छा को  
प्राप्त होनेवाला फिर गृहस्थ बन जाता है, यह बात बतलाते हैं-'एत्थ अगुत्ते' इत्यादि ।

येवार उर्ध्व आदि दिशाओं का कथन करीने ये अताव्यु छे छे-कैठ पण्यु अेठ दिशाभा  
स्थित इपादिभा मूर्च्छा यथा पण्यु स सारनी प्राप्त थाय छे उर्ध्व आदि दिशाओंभा स्थित  
रूप आदि विषयोभा राग-द्वेषरूप परिणाम करता थका सत्-असत्ना विवेकभा शून्य  
थधने मनोहर इयोभा अथवा तो मनोहर इपवाणी स्त्री आदिना इयोभा पुरुष लोलुप  
थध नय छे ये प्रमाद्ये शब्दोभा मूर्च्छित थध नय छे गंध, रस तथा स्पर्शभा पण्यु  
मूर्च्छित थध नय छे मूर्च्छाना विषयभूत (मूर्च्छा थवानु कारण्यु) आ इप आदिन्य, कारण्युभा  
कार्येने उपचार करवाथी, स सार कडेवाय छे ये प्रमाद्ये भगवाने इरभाव्यु छे (सू ३)

सयम अड्यु करी वीधा पछी पण्यु प्रमादवश थधने रूप आदि गुणोभा मूर्च्छा  
प्राप्तवावाणा इरीने गृहस्थ अनी नय छे. ये वात अतावे छे-'एत्थ अगुत्ते' इत्यादि.

મૂલમ્—

પ્રથમ અણુએ અનાજાર્યા, પુણો પુણો ગુણાસાપ્, વક્ત્રસમાચારે પમત્તે અગારમાચસે  
॥ સુ. ૪ ॥

છાયા—

અમ અણુપ્ત\* અનાજાર્યા પુન:પુનર્ગુણાસ્વાદઃ, વક્ત્રસમાચારઃ પમત્તઃ અગારમાચ  
સતિ ॥ સુ. ૪ ॥

ટીકા—

અમ=મસ્મિન્ રૂપાદિગુણે, અણુપ્ત=મનોવાસ્ક્રાપણપિત્તરહિત મનસા  
સ્વાદિષ્ટુ રજ્યતે, વક્ત્રસા પ્રાર્થયતિ કાચેન તદમિમુર્ચ્છ પ્રવત્તત, સ વાણુપ્તઃ અનાજાર્યામ્=  
અનાજારે વર્ષમાનઃ મગદ્દાઘાવર્ષિર્વર્ષી, અત્ત એવ પુન:પુનર્ગુણાસ્વાદઃ=મસકૃદ્  
વિવચનુસ્તાનુમવરસિકઃ, અત્ત એવ વક્ત્રસમાચાર\*—વક્ત્ર=કુચ્છિઃ સમાચાર =

મૂલાર્થ—રૂપાદિ વિષયો મેં મન વચન કાચકા વ્યાપાર ન રોકુને વાસ્ત મગવાનકી  
આજ્ઞા છે બાહર છે, વાર-વાર વિષયોકા આસ્વાદન કરને વાસ્ત કુટિલાચારી, પ્રમાદી (સાધુ)  
સિદ્ધિ ગૃહસ્થ વન વાસા છે ॥ સુ. ૪ ॥

ટીકા—રૂપ આદિ વિષયો મેં મન વચન બીર કાચ કી ગુચ્છિ તે રહિત  
વર્ષાન્ મન છે રાગ કરને વાજા વચન છે વિષયો કી પ્રાર્થના કરન વાસ્ત બીર કાચ  
છે તનમેં પ્રવૃત્તિ કરનેવાસ્ત એસા અનાચારી સાધુ મગવાન કી આજ્ઞા છે બાહર હો  
વળા છે। વહ વારમાર વિષયમુક્તા કે મેમ મેં રસિક હોકર કુટિલ અચારવાલા

મૂલાર્થ—રૂપાદિ વિષયોમાં મન, વચન અને કાચાનાં આપારને નહિ શેકવા  
પત્ય, તે ભગવાનની આજ્ઞાથી બહાર છે વારવાર વિષયોનું આસ્વાદન કરવાવાળા,  
કુટિલાચારી-પ્રમાદી (સાધુ) વાસ્ત વૃક્ષસ્થ બની બાધ છે

ટીકા—રૂપ આદિ વિષયોમાં મન વચન અને કાચાની ગુચ્છિથી રહિત  
અર્થાત્ મનથી રાગ કરવાવાળા, વચનથી વિષયોની પ્રાર્થના કરવાવાળા અને કાચથી  
તેમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા, એવા અનાચારી સાધુ ભગવાનની આજ્ઞાથી બહાર સર્પ બાધ છે.  
તે વારવાર વિષયમુક્તોના ભોગમાં રસિક થઈને કુટિલ અચારવાળા-અર્થાત્ ભગવાનનું

आचारो यस्य स वक्रसमाचारः—असंयमानुष्ठायी, नरकादिगतिजनकत्वादसंयमस्य वक्रतया व्यपदेशः । इत्थम्भूतः स प्रमत्तः=प्रमादवशाद् विषयेषु मूर्च्छितः, अगारं=गृहम् आवसति । गृहीतसंयमोऽपि प्रमादवशाद् विषयासक्तः सन् पुनर्गृहम्यो भवतीत्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

अथ शस्त्रद्वारम्—

अथ सर्वथा वनस्पतिशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथाऽग्निशस्त्रसमारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह—‘लज्जमाणा’ इत्यादि ।

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पाम, अणगारा मो-ति एने पवयमाणा, जमिणं

अर्थात् असमय का सेवन करने वाला प्रमादी फिर घर—वास में आजाता है । वह समय धारण करने के पश्चात् भी प्रमाद के वश होकर विषयों में भासक्त होने के कारण फिर गृहस्थ बन जाता है ॥ सू० ४ ॥

शस्त्रद्वार—

वनस्पतिशस्त्र के आरम्भ का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारों का तथा अग्निशस्त्र के आरम्भ में प्रवृत्त द्रव्यलिङ्गियोंका विवेचन करके उपदेश देते हैं—‘लज्जमाणा.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वनस्पतिकाय के आरम्भ में सकोच करने वाले साधुओं को अलग देखो । तथा ‘हम अनगार हैं’ इस प्रकार कहने वाले नाना प्रकार के शस्त्रोंसे

सेवन करवावाणा प्रमादी इरी घरवासमा आवी नय छे ते समय धारण कयी पछी पछ प्रमादने वश थधने विषयोमा आसक्त थवाना कारण्णु इरी गृहस्थ भनी नय छे (सू० ४)

शस्त्रद्वार—

वनस्पतिशस्त्रना आरभनेा सर्वथा त्याग करवावाणा अणुगारेनुं तथा अग्नि-शस्त्रना आरभमा प्रवृत्त द्रव्यलिङ्गीओनुं विवेचन करीने उपदेश आवे छे—‘लज्जमाणा’ इत्यादि

मूलार्थ—वनस्पतिकायना आरभमा स कोच करवावाणा साधुओने अलग नखु। तथा ‘अमे अणुगार छीअे’ आ प्रमाणुं छडेवावाणा, नाना प्रकारना शस्त्रोथी वनस्पति



विस्वस्वोर्हि सत्येर्हि वनस्पतिसमारम्भेण वनस्पतिसत्त्व्य समारममाणा अण्ये  
वनेगकृते पापे विरिसति ॥ सू० ५ ॥

भाषा—

सम्भ्रमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिसं विस्व  
स्वोः स्वोः वनस्पतिकर्मसमारम्भेण वनस्पतिवृत्तं समारममाणा भव्यान् अनेकरूपान्  
मात्वात् विरिसन्ति ॥ सू० ५ ॥

टीका—

सम्भ्रमानाः=परमकरुण्यार्द्रदयतया वनस्पतिकापसमारम्भे पराङ्मुखाः,  
वनस्पतिसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारा इत्यर्थः। पृथक्=विभिन्नाः=कचित् प्रत्यक्ष-  
ज्ञानिनोऽवधिमानःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो मावितात्मानः सन्तीति  
पश्य ।

पद्या—पृथक्=व्यलिङ्गित्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे=सूक्ष्मबाधर  
वनस्पतिकापसमारम्भकरणे मीवाकृस्ता उद्विष्टास्त्रिकरप्रियोगैर्वनस्पतिकापसमार  
म्भपरित्यागिनो विद्यन्ते इति चिह्नकयेत्यर्थः ।

वनस्पतिकाप का आरंभ करने वाले, वनस्पतिसत्त्व का आरंभ करते हुए अन्य बनेक प्रकार  
के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ५ ॥

टीकार्थ—आरम्भ करण्य से आरंभ करनेवाले मुनि वनस्पतिकाप के आरंभ से विमुख  
पड़ते हैं । ऐसे मुनि कोई अवधिज्ञानी, मन-पर्यायज्ञानी, और केवलज्ञानी होते हैं और कोई-  
कोई परोक्षज्ञानी ( भक्ति-सुप्त ज्ञान के धारक ) मावितात्मा होते हैं उन्हें देखो ।

अथवा इन्हें इन्द्रविजियों से अज्ञान ही समझना चाहिए । यह अज्ञान सूक्ष्म और  
बाधर वनस्पति का आरंभ करने में मीठ प्रसन्न उद्विष्ट हैं । तीन करण, तीन योग से  
वनस्पतिकाप के आरंभ के त्यागी हैं ।

भावने आरंभ करवावाण्य वनस्पति शब्दने आरंभ करता वहा अन्य बनेक  
प्रकारना प्राणीजोनी हिंसा करे छे ॥ ५ ॥

टीकार्थ—अन्वन्त करवाणी आरंभ करवावाण्य मुनि वनस्पतिकापना आरंभणी  
विरुद्ध रहे छे जेवा मुनि होर-होर अवधिज्ञानी मन पर्यायज्ञानी जने केवलज्ञानी, होय  
छे जने होर-होर परोक्षज्ञानी ( भक्ति-सुप्तज्ञानना धारक ) मावितात्मा होय छे तेने लुज्जे।  
अथवा तेने इन्द्रविजियों की अज्ञान समझना जेछे ते अपुआर सूक्ष्म जने  
आरंभ वनस्पतिकापने आरंभ करवावाण्य जीजोवा-अववाण्य, तस्त उद्विष्ट छे तपु  
करव्य तपु जेजणी वनस्पतिकापना आरंभना त्यागी छे।

इत्यारब्ध्या । मावशस्य तु वनस्पतिं प्रति मनोवाकृत्वायानां द्रुष्यणिधानम् । वनस्पति-  
 कर्मकारम्भेन=कर्मणां समारम्भः कर्मसमारम्भः=वनस्पतिं निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणी-  
 पादिकर्मबन्धनकसावधम्यापारस्तेन, इमं वनस्पतिक्रय विविसन्ति ।

वनस्पतिकार्याहिसायां प्रकृषाः स्वच्छ परजीवनिष्कायस्य लोके सर्वमेव विविसन्ती-  
 त्याह-‘वनस्पतिवृक्ष’-मित्यादि । वनस्पतिवृक्ष=वनस्पतिजीवोपमर्दकं वृक्षं पूर्वोक्त  
 प्रकारं, समारम्भायाः=वनस्पतिं प्रति प्रयुक्तानां, मन्वान्=वनस्पतिकार्यमिमान्,  
 ज्ञेयस्यात्, पृथिवीकायादीन्, द्वीन्द्रियादीन् प्रसांश्च सदाभितान् प्राणान्=माषिनां  
 विसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्याद्याः कन्द-मूल-पत्र

प्रकारकाः हैं । वसुधा, वांती, कुटार आदि उमयकायशक्य हैं । वनस्पतिक्रय के प्रति मन,  
 वचन और काय का असत् प्रयोग करना आवश्यक है । इन शक्तियों द्वारा वनस्पतिक्रयका  
 आरंभ करके ज्ञानावरण आदि ज्ञातप्रकार के कर्मों को उत्पन्न करने वाला सावध म्यापार  
 करके वनस्पतिक्रय की हिंसा करते हैं ।

जो वनस्पतिक्रय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह उदा बीजनिष्कायरूप समस्त लोक  
 की हिंसा करता है, वह स्वस्मते है, ‘वनस्पतिवृक्षम्’ इत्यादि ।

वनस्पतिक्रय की हिंसाजनक पूर्वोक्त वृक्षा का आरंभ करनेवाले केम वनस्पतिक्रय के  
 अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावरों की तथा वनस्पति-आमिन् द्वीन्द्रिय आदि प्रस जीवा  
 की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में अनक प्रकार के द्रव्यलिङ्गी हैं । उन में से शाक्य आदि कन्द, मूल,

तुल्य जने अग्नि आदि परकायशक्य से वसुधा वांती-कुटार इत्यत्र-इत्यादी आदि  
 वनस्पतिक्रय से वनस्पतिक्रय प्रति मन, वचन जने कावने असत्-प्रयोग करने  
 से ज्ञानशक्य से ज्ञेय शक्तियों द्वारा वनस्पतिक्रयने आरंभ करने-ज्ञानावरणीय आदि ज्ञात  
 प्रकारना कर्मने उत्पन्न करवाणाया सावध म्यापार करीने वनस्पतिक्रयनी हिंसा करे से

> वनस्पतिक्रयनी हिंसायां प्रकृष माय से ते उत्पन्निकायरूप सधरत  
 वीजनी हिंसा करे से ज्ञेयतावे से- वनस्पतिवृक्षम् इत्यादि

वनस्पतिक्रयना हिंसाजनक पूर्वोक्त शक्तियों आरंभ करनेवाला वीज वनस्पति  
 शक्य अतिरिक्त पृथ्वीकाय, आदि अन्य स्थावरोंनी तथा वनस्पति आमिन् द्वीन्द्रिय-  
 वे इन्द्रिय आदि प्रस ज्ञेयनी पक्ष हिंसा करे से

संसारमें अनेक प्रकारना द्रव्यलिङ्गी से तेषांभी शाक्य आदि कन्द, मूल, पत्र

एके पुनरन्ये तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रदमानाः=वयमेव वनस्पतिजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य ।

इमे ग्वल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषुंन प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्य क्रिञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=त्रिभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः=वनस्पतिकायशस्त्रैः, शस्त्रं हि वनस्पतिकायस्य द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम् । तत्र द्रव्यशस्त्रं=स्वकाय-परकायोभयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं दण्डलकुटादयः । परकाय-शस्त्रं=कर्तरी-पापाण-हस्त-पाद-मुख-वह्न्यादयः । उभयकायशस्त्रं=वासी-दात्र-

इनसे विपरीत कोई-कोई 'हम अनगार हैं' ऐसा अभिमानपूर्वक कहते हैं—'हम ही वनस्पति जीवों की रक्षा करने में तत्पर और महाव्रतधारी हैं,' इस प्रकार प्रलाप करते हुए द्रव्यलिङ्गी साधुओं को अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते । ये गृहस्थ के किसी भी कामका त्याग नहीं करते हैं, यह बात आगे बतलाते हैं—'यदिमम्' इत्यादि ।

नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकाय का आरम्भ करके वनस्पतिकायकी हिंसा करते हैं । वनस्पतिशस्त्र दो प्रकारका है—द्रव्यशस्त्र और मावशस्त्र । द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं—(१) स्वकायशस्त्र (२) परकायशस्त्र (३) उभयकायशस्त्र । डडा लकड़ी वगैरह स्वकायशस्त्र हैं । कैची, पत्थर, हाथ, पैर, मुख और आग आदि

तेनाथी विपरीत—विज्ञेयं केरु-केरु 'अमे अणुगार छीये' या प्रमाणे अलिमान पूर्वक कहे छे—'अमेव वनस्पति एवानी रक्षा करवाभा तत्पर अने महाव्रतधारी छीये' या प्रमाणे प्रलाप—(भकवाट) करनारा द्रव्यलिङ्गी साधुओंने गुण समझे

अणुगार डोवानु अलिमान करनारा ये द्रव्यलिङ्गी साधु अणुगारना शुष्ण भाटे वरा पणु प्रवृत्ति करता नथी ते गृहस्थाना केरु पणु कामने त्याग करता नथी ये भतावे छे 'यदिमम्.' इत्यादि

नाना प्रकारना वनस्पतिकायना शस्त्रो वडे वनस्पतिकायने आरम्भ करीने वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे वनस्पतिशस्त्र ये प्रकारना छे—द्रव्यशस्त्र अने लावशस्त्र द्रव्यशस्त्रना त्रणु लेह छे—(१) स्वकायशस्त्र, (२) परकायशस्त्र, अने (३) उभयकायशस्त्र उडा, लाकडी वगैरे स्वकायशस्त्र छे, केची—(कातर, साधुसे) पत्थर, हाथ, पैर,

इत्यादयः । मावस्यं ह्य वनस्पतिं प्रति मनोवाङ्मयाणां दुष्प्रणिधानम् । वनस्पति-  
 कर्मसारम्भेण=कर्मणां समारम्भः कर्मसमारम्भः=वनस्पतिं निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणी-  
 यादिकमबन्धननक्षत्रावध्यापारस्तेन, इम वनस्पतिकार्यं विहितान्ति ।

वनस्पतिकार्यहिंसायां प्रवृत्त्या स्वच्छ परजीवनिकायस्य लोकं सर्वमेव विहितन्ती-  
 त्यत्र-‘वनस्पतिवृत्त’-मित्यादि । वनस्पतिवृत्ते=वनस्पतिवीचोपमर्दकं अस्ते पूर्वोक्त  
 ब्रह्मरं, समारमणाणां=वनस्पतिं प्रति प्रयुक्तानां, अन्यान्=वनस्पतिकार्यमिभान्,  
 म्लोच्छ्रयात्, पृथिवीकायादीन्, द्वीन्द्रियादीन् प्रसांश्च तदाभितान् प्राधान्यमापिनः  
 रिसन्ति ।

इह पशुविषा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः फन्व-मूल-पत्र

सकाशकाः हैं । बसुला, दांती, कुम्हार आदि उभयकायकाः हैं । वनस्पतिकार्य के प्रति मन,  
 वनन और काय का असत् प्रयोग करना भावशक्त है । इन शक्तोंद्वारा वनस्पतिकार्यका  
 भारम करके ज्ञानावरण आदि आठप्रकार के कर्मों को उभयन करने वाला सावध व्यापार  
 करके वनस्पतिकार्य की हिंसा करते हैं ।

जो वनस्पतिकार्य की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह एही जीवनिकार्यरूप समस्त लोक  
 की हिंसा करता है, यह बतलाते हैं, ‘वनस्पतिवृत्तम्’ इत्यादि ।

वनस्पतिकार्य की हिंसाजनक पूर्वोक्त शक्तों का भारम करनेवाले लोग वनस्पतिकार्य के  
 अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि अन्य स्थावरों की तथा वनस्पति-आश्रित द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों  
 की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में अनेक प्रकार के द्रव्यलिङ्गिनी हैं । उन में से शाक्य आदि फन्व, मूल,

शुभ्र जने अग्नि आदि परकाशकाः से बसुला दांती-दातरु, कुम्हार-कुम्हारे आदि  
 उभयकाशकाः से वनस्पतिकार्य प्रति मन, वनन जने कायने असत्-प्रयोग करने  
 के भावशक्त से ज्ञानेद्वारा वनस्पतिकार्यने भारम करीने-ज्ञानावरणीय आदि आठ  
 प्रकारना करीने उत्पन्न करवाण्य सावध व्यापार करीने वनस्पतिकार्यनी हिंसा करे से

ये वनस्पतिकार्यनी हिंसामां प्रवृत्त याव से ते उत्पन्निकायरूप समस्त  
 लोकनी हिंसा करे से जे जवावे से- वनस्पतिवृत्तम्’ इत्यादि

वनस्पतिकार्यना हिंसाजनक पूर्वोक्त शक्तने आरम्भ करवाण्य लोक वनस्पति  
 कायना अतिरिक्त पृथ्वीकाय, आदि अन्य स्थावरोंनी तथा वनस्पति आश्रित द्वीन्द्रिय-  
 से त्रिविध आदि त्रस लवेणी पशु हिंसा करे से

संसारमा अनेक प्रकारना द्रव्यलिङ्गिनी से तेषांशी शाक्य आदि फन्व, मूल, पत्रा,

पुष्पफलादिभोजनार्थं वनस्पतिकर्मसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति च, तेन पद्मजीवनिकायविराधका भवन्ति । दण्डिनोऽपि “वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगराः स्मः” इत्यादि प्रवदमानाः साध्वामासाः सावधमुपदिशन्ति, शास्त्रमतिपिद्धमपि वनस्पतिकर्मसमारम्भं कारयन्ति ।

ते हि व्याख्यानमण्डपादौ चाशोकवृक्षपत्रादिभिर्वन्दनमालादिकं बन्धयन्ति, नानाविधपुष्पपत्रफलैः पञ्चोपचारादिपूजासु प्रवर्तयन्ति । तथाहि—

“काले सुइभूषणं, विसिद्धपुष्पाइर्हि विहिणा उ ।

सारथुइयोत्तगरुई, जिणपूया होइ कायव्वा ॥ १ ॥” (पञ्चाशकवृत्तिः)

छाया—काले शुचीभूतेन, विशिष्टपुष्पादिकैर्विधिना तु ।

सारस्तुति स्तोत्रकरुचिना, जिनपूजा भवति कर्तव्या ॥ १ ॥

पत्रा, फूल आदि खाने के लिए वनस्पति का आरभ करते हैं, कराते हैं और करने वाले की अनुमोदना करते हैं । ऐसा करके वे पद्मजीवनिकाय की विराधना के भागी होते हैं । “हम पंचमहाव्रतधारी, जिन भगवान् की आज्ञा के आराधक अनगर हैं” ऐसा कहने वाले दही झूठे साधु भी सावध का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध क्रिये हुए वनस्पतिकाय के आरभ का उपदेश देते हैं ।

वे व्याख्यानमण्डप आदि में अशोक वृक्ष के पत्तों से बन्दनवार आदि बंधवाते हैं, नाना प्रकार के फल फूल पत्तों से पंचोपचार आदि पूजाओं में (श्रावकों) को प्रवृत्त करते हैं । जैसे—

“उचित समय पर, विधिपूर्वक विशिष्ट पुष्प आदि के द्वारा सुन्दर स्तोत्र—स्तुतिपूर्वक जिन भगवानकी पूजा करनी चाहिए” ।

झूल आदि भावा भाटे वनस्पतिनो आरभ करे छे, अने करावे छे, अने करवावाणाने अनुमोदन आये छे अे प्रभाषे करीने ते पद्मजीवनिकायनी विराधनाना भागीदार थाय छे. ‘अमे पय महाव्रतधारी, जिन भगवाननी आज्ञाना आराधक अशुगार छीअे’ आ प्रभाषे कडेवावाणा दडी लुडा साधु पशु सावधनो उपदेश आये छे, अने शास्त्रमा निषेध करवाभा आवेलो वनस्पतिकायना आरभने उपदेश आये छे

ते व्याख्यान-मण्डप आदिमा अशोकवृक्षना पादुकाथी तोरशु आदि बंधावे छे. नाना प्रकारना झूल-झूल अने पादुकाथी पंचोपचार आदि पूजायोमा (श्रावकेन) प्रवृत्त करे छे-जोडे छे जेम-“उचित समय-योग्य समय पर विधिपूर्वक विशिष्ट-उत्तम पुष्प आदि द्वारा सुन्दर स्तोत्र, स्तुतिपूर्वक जिन भगवाननी पूजा करवी जेधये.”

अपरञ्च-उमास्वातिषाचक्रुत्तमकरणे—

‘मध्याह्नं कुसुमे पूजा’ इति । ‘गन्धवासासतैः स्रग्मिः’ इति ।

‘प्रधानैश्च फले’ पूजा’ इत्यादि । किञ्च—

“ न शुष्कैः पूजयेद्देवं, कुसुमैर्न महीगतैः ।

न विनीर्णदलैः स्पृष्टैः, न शूभैर्नाविकासिमि ” ॥ १ ॥

‘ न शुष्कैः पूजयेद्देवं कुसुमैर्न महीगतैः ’-इत्यनेन ‘ आर्द्रं स्रोति तैश्च कुसुमैर्देवं पूजयेत् ’-इत्यर्थोऽवगम्यते । अहो ! कीदृशो महासाधनोपदेशस्तेषाम् ।

एवं देवमन्दिरादीं कदलीस्तम्भादिरोपधेन, अशोकदिहृतपत्रैर्भस्मन-

पञ्चाशच्चरुति उमास्वातिकृत प्रकरण में कहा है—

‘मध्याह्नं में फूलों से पूजा की जाती है ।’ “गंध, वास और अक्षत से तथा भाग्यशो से पूजा होती है ।” उत्तम फलों से पूजा की जाती है ” इत्यादि । और भी कहा है—

“सूखे जमीन पर गिरे हुए, दूटी फेंसुड़ीलाक, हुए हुए, सराब और बिना निष्ठे फूलों से पूजा नहीं करनी चाहिये ” ।

‘सूखे और जमीन पर गिरे हुए फूलों से पूजा नहीं करनी चाहिये’ इसका अभिप्राय यह हुआ कि ताजे और सोहे हुए फूलों से पूजा करनी चाहिये अरु । उनका यह कैसा सत्य उपदेश है ।

इस प्रकार देवमन्दिर आदि में कदलीस्तम्ब लता करके, अशोक वृक्ष के पत्रों से

पञ्चाशच्चरुति उमास्वातिकृत प्रकरणमां कथं उ—

मध्याह्नमां कृतोपदे पूजा करवाभां ज्ञाने उ अथ, वास जने अक्षतशी तथा भाग्यशोशी पूजा शाय उ उत्तम ज्ञोशी पूजा करवाभां ज्ञाने उ । अत्रिवादि पीनु पद्य कथं उ है—

“सुखं, जमीन पर जरी पडेलां, जेनी पांजरी तुटी जय डोय, शपर्शं क्राज्येलां, अक्षत जने अिस्था विनानां कृतोशी पूजा नदि करवी जेधजे ।”

‘सुखं जने जमीन पर जरी पडेला कृतो पडे पूजा न करवी जेधजे ज्ञाने । अक्षिप्राय जे शयो के बीलां जने वास तोडेलां कृतोशी पूजा करवी जेधजे । अशरे । तेजोने आ सत्य उपदेश केवे । उ ?

आ प्रभासे देवमन्दिर आदिमां केजना स्थल उला करीने जयोहनुकनां पांरदांशी

मालिकादिवन्धनेन, प्रतिमोपरि सचित्तपत्रपुष्पादिक्षेपणेन सचित्तनालिकेरदाडिमर-  
सालफलादिनैवेद्योपचारेण च वनस्पतिर्हिंसा कारयन्तस्ते तदाश्रिताननेकविधान्  
त्रसस्थावरान् प्राणिनो घातयन्ति । नहि-वीतरागाणां सावधा सपर्या समुचिता,  
'एस खलु गंथे' इत्यादिवचनेन सर्वारम्भाणामस्मिन्नेवागमे तैः साक्षात् प्रतिपिद्धत्वात् ।  
नहि तत्तत्यागिभ्यस्तत्तच्यक्तद्रव्यसमर्पणं तुष्टिकरं भवतीति । नहि लोके मद्यमांस-  
त्यागिभ्यो मद्यमांससमर्पणं तत्परितोपाय जायते । अल बहुना ! हरितकन्दमूलादि-  
त्यागिनः श्रावका अपि न हरितकन्दमूलादिसमर्पणेन संतुष्यन्तीति विचारयन्तु  
मनीषिणः ॥ सू० ५ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद—'तत्थ' इत्यादि ।

वन्दनवार बाँधकर, प्रतिमा पर सचित्त पत्ते, फूल आदि चढाकर, सचित्त नारियल, दाडिम,  
आम आदि नैवेद्य के उपचार से वनस्पति को हिंसा करते हुए वे वनस्पति-आश्रित अनेक  
प्रकार के त्रस-स्थावर जीवों का घात करवाते हैं । वीतराग देव की पूजा सावध होना  
उचित्त नहीं है । 'एस खलु गंथे' इत्यादि कथन द्वारा इसी आगम में समस्त आरभों का  
वीतराग भगवान्ने साक्षात् निषेध किया है । जो पुरुष जिस वस्तु का त्यागी है, उसकी तुष्टि  
उस वस्तु को अर्पित करने से नहीं हो सकती । लोक में मद्य-मांस का त्याग करने वालों  
को मद्य-मांस की भेंट सतोषजनक नहीं होती । अधिक क्या कहें ! हरित कंद मूल के  
त्यागी श्रावक भी हरित कन्द मूल की भेंट से प्रसन्न नहीं होते हैं । बुद्धिमान् पुरुष स्वयं  
विचार करलें ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं—'तत्थ' इत्यादि ।

वन्दनवार आधीने, प्रतिमा उपर सचित्त पादडा, डूल आदि चढावीने, सचित्त नागिअेर,  
दाडम, आआ आदि नैवेद्यना उपचारथी वनस्पतिनी हिंसा करीने ते वनस्पति-आश्रित  
अनेक प्रकारना त्रस-स्थावर लुवेनो घात करावे छे वीतरागदेवनी पूजा साध डोय  
ते योग्य नथी, 'एस खलु गंथे' इत्यादि कथन द्वारा आ आगममा तमाभ समा-  
र लोनो वीतराग भगवाने साक्षात् निषेध उथी छे जे पुरुष जे वस्तुना त्यागी छे,  
तेनी प्रसन्नता ते वस्तुने अर्पण करवाथी थर्छ शकती नथी डोअमा मद्य-मांसना  
त्यागी-त्याग करवावाणाने मद्य-मांसनी भेंट सतोष उत्पन्न करती नथी, अधिक शुं  
कहीअे ! लीला कदमूणना त्यागी श्रावक पथु लीला कदमूणनी भेंटथी प्रसन्न थता  
नथी तो बुद्धिमान् पुरुष पोते विचार करी लीअे ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—'तत्थ' इत्यादि

मूलम्—

तस्य सख्य मगत्वया परिष्ठा प्रवेद्या । इमस्त चैव जीवितस्य परिवन्दन-  
 मण-पूयणाए, जाइमरमभोयणाए, दुःखप्रतिघायाहेउ, से सयमेव वपस्सप्रसत्यं  
 समारंमह, अण्णेहि वा वपस्सइसत्यं समारंमावेइ, अण्णे वणस्सइसत्यं समारंममाणे  
 समप्रमावइ, सं से अहियाए, सं से अबोरीए ॥ सू० ६ ॥

छाया—

तम सख्य मगत्वया परिष्ठा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन  
 पूजनाय, मातिमरणमोचनाय, दुःखप्रतिघातहेतु, स स्वयमेव वनस्पतिश्रद्धा समार  
 मणे, अन्यैर्वा वनस्पतिश्रद्धां समारम्भयति, अन्यान् वा वनस्पतिश्रद्धां समारममाणान्  
 समनुमानाति, तत् तस्याहिताय, तत् सम्याबोधये ॥ सू० ६ ॥

टीका—

वन=वनस्पतिकार्यसमारम्भे, मगत्वया=भीमहापीरेण, परिष्ठा=सम्पन्न  
 बोध सख्य=निश्चयेन प्रवेदिता=प्रतिबोधिता-कर्मफलसमुत्पद्येदार्य जीवन परि

मूलार्थ—वनस्पतिकार्य के आरंभ के संबंध में मगत्वान् न सम्पन्न बोध दिया है ।  
 इस जीवन के बन्धन मानन और पूजन के लिए, अम-मरण से छुटकारा पाने के लिए तथा  
 दुःख का विनाश करने के लिए तब वनस्पतिकार्यश्रद्धा का आरंभ करता है, दूसरा स  
 आरंभ करता और आरंभ करन वाले दूसरा का अनुमोदन करता है । वह आरंभ उस के  
 अधिक के लिए, उसकी अबोध के लिए होता है ॥ सू० ६ ॥

टीका—वनस्पतिकार्य के आरंभ के विषय में मगत्वान् भी महावीर स्वामी  
 सम्पन्न उपदेश दिया है । अर्थात् मगत्वान् ने कहाया है कि-कर्मफल को नष्ट करने क

मूलार्थ—वनस्पतिकार्यश्रद्धा आरंभना सम्पन्न बोध लभवाने सम्पन्न बोध आये।  
 से आ उपनना वदन, मानन, अने पूजन आये, अ म-मरणधी छुटवाने आये  
 तथा दुःखाने विनाश करवा आये स्वय वनस्पतिकार्यश्रद्धा आरंभ करे से जीव  
 यसे आरंभ कराने से अने आरंभ करवावाया जीवने अनुमोदन आपे से। ते  
 आरंभ तेना अधिक आये तेमय तेनी अबोधि आये होय से ॥ सू० ६ ॥

टीका—वनस्पतिकार्यश्रद्धा आरंभना विषयमां लभवान् श्री महावीर स्वामीने  
 सम्पन्न उपदेश आये। से अर्थान् लभवाने ज्ञान्यु से है-कर्मफल नष्ट करवा आये



ज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

### उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय वनस्पतिकायमुपदर्शयती ? त्याह—‘ अस्य चैव जीवितस्ये ’—त्यादि । अस्यैव नश्वरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्—आहार—वस्त्र—पात्र—माल्य—गन्ध—चूर्ण—तालवृन्ता—ज्वाला—खट्वा—पल्यङ्क—शिविका—शकट—हल—मुसल—पीठ—फलक—सिंहासन—दण्ड—लकुट—कपाट—वीणा—शालभञ्जिका—निर्माण—तापन—प्रतापन—प्रकाशने—न्धन—तैलाद्यर्थमित्यर्थः । तथा—परिवन्दन—मानन—पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा—कश्चित् स्वप्रशंसार्थम् उपवनादौ पत्रादिकर्तनकलाकौशलेन वृक्षलतादीनां पत्रादीनि तथा छेदयति यथा तत्कर्तनेन

लिए जीव को परिज्ञा (उपदेश) अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।

### उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं ? यह बतलाते हैं—इसी नाशशील जीवन के सुख के लिए अर्थात् आहार, वस्त्र, पात्र, माला गध, चूर्ण, तालवृन्त (पखा), आगल, खाट, पलंग, पालकी, गाड़ी, हल, मूसल, पीठा, (वाजेट) फलको (पाट), सिंहासन, डडा, लकड़ी, किवाड, वीणा, पुतली आदि बनवाने के लिए, तपाना, विशेष तपाना, प्रकाशन, ईंधन, और तैल आदि के प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं । तथा प्रशंसा के लिए भी वनस्पति की हिंसा करते हैं, जैसे—कोई पुरुष अपनी प्रशंसा के लिए बगीचा आदि में पत्ता वगैरह काटने की कला में कुशलता प्रकट करने के अभिप्राय से वृक्ष लता वगैरह को इस प्रकार काटता है जिससे उसमें

शुभने परिज्ञा (उपदेश)नो अवश्य स्वीकार करवो जेठजे

### उपभोगद्वार—

लोक शु प्रयोजनथी वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे ? ते अतावे छे—आ नाश यामवावाणा शुभना सुभ भाटे, अर्थात्—आहार, वस्त्र, पात्र, माला, गध, चूर्ण, प आ आगरियो, आट, पलंग, पालपी, गाडी, डल, मूसल, आजेठ, पाट, सिंहासन, डडा, लाकडी, कमाड, वीणा, पुतली वगेरे अनाववा भाटे, तपाववु विशेष तपाववु, प्रकाशन, धन्धन—(आणवाना लाकडा) अने तैल आदिना प्रयोजनथी वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे तथा प्रशंसा भाटे पण वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे, जेभके—कोई पुरुष पोतानी प्रशंसा भाटे अगीया आदिना पाडडा वगेरे कापवानी कलामां कुशलता अताववाना अभिप्रायथी

गजानमृगव्याघ्रसिंहादीनां स्वरूपं वधाना हृसादयस्तस्योपवनादेर्विधिष्टोमां  
वनयन्ति ।

मानने=अनसत्कारस्वरूपं, यथा-स एव पत्रादिकर्तनकलाकुशलतो  
मासाकारः स्वमाननार्थं कर्तरीशक्रेण हृशस्त्यादीनां पत्रादिकं कन्तति । एमने=  
एतन्नादिसामस्तदर्थम्, यथा-देशमतिमाघर्यं पत्रपुष्पफलादीनां प्रोटने । तथा-  
आविमरणमोचनाय=अन्मरणवन्धमोचनार्थं, यथा-मुक्तिकामन पूजायां  
पुष्पपादिसमुच्छेदने, तथा-दुःखप्रतिपातहेतु-व्याधिसमनाघर्यम्-ओषधि-  
हृशस्त्यादीनां मूलकन्दशास्तापत्रपुष्पफलादिमेदने, स जीवनसुखाघर्षी स्वयमेव

हाथ, पोडा, हिरन, बाघ, सिंह आदि का आकार बन जाता है और इससे उस वगीच की  
सुन्दरता बढ़ती है, ऐसा व्यवहार करता है ।

वनस्पति के स्त्रिय भी वनस्पति की हिंसा की जाती है, जैसे-पत्ता बगैरह काटने  
में कुछ कड़ी पुरोक माली कैंची से हड्डों या छत्रानों के पत्ता आदि काटता है । तथा पूजन  
के स्त्रिय अर्थात् बच्चों और रत्नों के स्त्रिय भी वनस्पतिकार की हिंसा करते हैं । जैसे-देव  
प्रथिमा आदि के स्त्रिय पत्र, फूल, फल तोड़ने में ।

कम मरण से छुटकारा पाने से स्त्रिय भी उक्त हिंसा की जाती है । जैसे-मुक्ति की  
इच्छा से पूजा के स्त्रिय फूल-फल तोड़ने में । दुःखों का प्रतीकार करने के स्त्रिय भी यह हिंसा  
की जाती है । जैसे-रोग मिटाने के स्त्रिय ओषधि, हृश, छत्रा मूल, कन्द, शास्ता पत्र, फूल  
आदि तोड़ने में हिंसा की जाती है ।

पुष्प लता वनेशने जेवा प्रकारे हापि छे हे तेमां हाथी, घोडा, हरण, बाघ सिंह आदिने  
प्रकारे जनी जस छे जने तेथी जे जणीजानी सु इत्या वपे छे. जेवुं सभलनेज करे छे

जन्-सत्कार भाटे पवु वनस्पतिनी हिंसा करवाभां आवे छे जेम-पांडां  
वनेशने हापवामां कुशल आजण कहेथे तेज भाणी कैंची (हावर)धी वृक्षो जसवा  
लताजोनां पत्तां आदि हापि छे. तथा पूजन भाटे अर्थात् वत्से जने रत्नाने भाटे  
पवु वनस्पतिकारनी हिंसा करे छे जेम-देवप्रथिमा आदि भाटे पत्र फूल इल तोड़वामां.

जन्-मरवुधी छुटवा भाटे पवु पूर्ण कहेथी हिंसा करवाभां आवे छे, जेमके-  
छुटिनी छुटवथी पूवा भाटे इल इल तोड़वामां.

हुजोने प्रतिकार करवा भाटे पवु जे हिंसा करवाभां आवे छे जेमके-राजनिचरज  
करवा भाटे ओषधी, पुष्प, लता, मूल कन्द, शास्ता, पत्र, फूल आदि तोड़वामां हिंसा कर-  
वामां आवे छे

वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिकायोपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं समारभते=व्यापारयति । अन्यैर्वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयति । अन्यान् वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति ।

तत्=वनस्पतिकायसमारम्भ, तस्य वनस्पतिसमारम्भ कुर्वतः कारयितुः अनुमोदयितुश्च अहिताय भवति । तथा-तत् तस्य अवोधये=सम्यक्त्वालाभाय भवति । ॥ सू० ६ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे वनस्पतिकायस्वरूपं परिज्ञातं, स एवं विभावयतीत्याह—'से तं ' इत्यादि ।

### मूलम्—

से तं संवुज्जमाणे आयाणीयं समुद्राय सोच्चा खलु भगवओ अण-

इस प्रकार जीवन को सुखी बनाने का अभिलाषी वह पुरुष वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाले द्रव्य और भावशस्त्र का स्वयं उपयोग करता है, दूसरों से उपयोग कराता है और वनस्पतिशस्त्र का उपयोग करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

वनस्पतिकाय का वह आरंभ, आरम्भ करने वाले, कराने वाले और अनुमोदन करने वाले के अहित के लिए होता है और सम्यक्त्व की अप्राप्ति का कारण बनता है ॥ सू० ६ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट वनस्पतिकाय का स्वरूप जिसने जान लिया है, वह इस प्रकार विचार करता है—'से तं ' इत्यादि ।

मूलार्थ—वह पुरुष भगवान् या अनगारों से सुनकर समझ-बूझकर सयम

अे प्रभाषे एवनेने सुभी भनाववाना अब्बिदाधी ते पुरुष वनस्पतिकायनी हिंसा करवावाणा द्रव्य अने भाव शस्त्राने स्वयं उपयोग करे छे, भीला पासे उपयोग करावे छे अने वनस्पतिशस्त्राने उपयोग करवावाणा भीलने अनुमोदन आपे छे

वनस्पतिकायने आ आरंभ, आरंभ करवावाणाने, करवावाणाने अने अनुमोदन करवावाणाने अहित माटे छे अने सम्यक्त्वनी अप्राप्तिनुं कारण्य अने छे ॥ सू० ६ ॥

तीर्थंकर आदिना समीपे वनस्पतिकायनुं स्वरूप नेषे ज्ञाषी दीधुं छे ते आ प्रभाषे विचार करे छे—'से तं ' इत्यादि

मूलार्थ—ते पुरुष भगवान् अथवा अणुगारों पासेही साक्षणी-समल-शुचीने

गाराय वा अति ए इहेगेसि जाय मषइ-एस स्वह गंभे, एस स्वह मोहे, एस स्वह मारे, एस स्वह गरए । इत्यर्थं गच्छि स्रोए, जमिणं विरूपरुवेहिं सत्येहिं वणस्सइ कम्मसमारंमेणं वणस्सइस्सत्वं समारंममाणे अण्णे अपेगएरुवे पाप्पे विहिंसइ ॥ सू० ७ ॥

जाया—

स तत् संपुष्यमान आदानीयं समुत्पाय भुत्वा स्वसु मगवता अनगाराणां वा अन्तिके, इहेकेपां शारं मषति-एस स्वह ग्रन्थः, एस स्वह मोहा, एस स्वह मारा, एस स्वह नरकः । इत्यर्थं पृथो लोकाः, यद्विमं विरूपरुवैः पृथ्वा वनस्पतिकर्मसमारम्भेण वनस्पतिपत्रं समारमगाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्रापान् विहिंसन्ति ॥ सू० ७ ॥

टीका—या स्वसु मगवता=तीर्थंकरस्य, अनगाराणां=तदीयधमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके भुत्वा, आदानीयम्=उपादेयसर्वसाधययोगविरतिस्यं चारिम, समुत्पाय=प्रवृत्तस्य विहरति, स तत्=वनस्पतिक्रायसमारम्भ समुप्यमान=अहितापोभिजनकत्वेन विद्याता सन् एवं विभावयति—'एवं स्वसु०' इत्यादि ।

प्रथम करके विषयता है । यह इस प्रकार समझता है—वनस्पतिक्रय का भारम प्रथम है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है । गृह जोग इसके सिव्य मयता प्रकार के शर्तों से वनस्पतिक्रय का भारम करके, शब्द का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्राप्ति का फल करते हैं ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष तीर्थंकर से मा उनके धमण निर्ग्रन्थों से सर्वसाधय त्याग रूप संयम स्वरूप समझकर और उसे अंगीकार करके विचारता है वह वनस्पतिक्रय के भारम को अहितकर और अनेकप्रियकर समझकर इस प्रकार विचार करता है—'एवं स्वसु०' इत्यादि ।

सबम अक्षयु करीने विचरे छे ते आ प्रभावे सभजे छे—वनस्पतिक्रयने आरल मष छे, जे मोह छे जे मार छे जे नरक छे अक्षयु छे जे आटे नान्य प्रकाशना यत्नेधी वनस्पतिक्रयने आरल करीने अक्षयु प्रथम करवा यहा नील पयु अनेक अक्षयुनेना पाव करे छे ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष तीर्थंकरणी अथवा तेमना अभयु निर्ग्रन्थो चासेभी सर्व साधय (कर्मन्व) त्यागरूप सबमन्व स्वइपने सभल ने अने तेने अनीकार करीने विचरे छे, ते वनस्पतिक्रयना आरलने अहितकर अने अनेकप्रियकर सभल आ प्रभावे विचार करे छे— एवं स्वसु० इत्यादि

इह=मनुष्यलोके एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशंजातसम्यग्बोधवैराग्याणामा-  
त्मार्यनामेवं ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—‘एष खलु’  
इत्यादि ।

एषः=वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे कार्यो-  
पचारात् कारणभूतो वनस्पतिशस्त्रसमारम्भ एव कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते ।  
एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः-  
अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष एव नरकः=  
नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इस मनुष्य लोक में जिन्हें श्रमण निर्गर्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य  
उत्पन्न हो गया है, उन्हीं को यह विदित होता है । क्या विदित होता है ? इस शका का  
समाधान करने के लिए आगे कहते हैं—‘ एष खलु ग्रन्थ० ’ इत्यादि ।

वनस्पतिकाय का आरंभ निश्चय से प्रथम अर्थात् कर्मबन्धरूप है । कारण में कार्य का  
उपचार करके आरंभ को कर्मबन्ध कहा है । वस्तुतः वह कर्मबन्ध का कारण है । इसी प्रकार  
आगे भी समझ लेना चाहिए ।

वनस्पतिकाय का समारम्भ मोह अर्थात् अज्ञान है—अज्ञानजनक है । यह मार है  
अर्थात् निगोद आदि में मृत्यु का कारण है । यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को दश प्रकार  
की यातना का कारण है ।

આ મનુષ્યલોકમાં જેને નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યક્જ્ઞાન, અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન  
થઈ ગયો છે તેઓ આ બાબે છે શું બાબે છે ? એ શકાનું સમાધાન કરવા  
માટે આગળ કહે છે, ‘ ઇષ ખલુ ગ્રન્થ૦ ’—ઈત્યાદિ

વનસ્પતિકાયનો આરંભ નિશ્ચય થયે છે—અર્થાત્ કર્મબંધરૂપ છે, કારણમાં  
કાર્યનો ઉપચાર કરીને આરંભને કર્મબંધ કહે છે, વસ્તુતઃ તે કર્મબંધનું કારણ છે  
એ પ્રમાણે આગળ પણ સમજ લેવું જોઈએ.

વનસ્પતિકાયનો સમારંભ મોહ અર્થાત્ અજ્ઞાન છે—અજ્ઞાનજનક છે, તે માર છે,  
અર્થાત્ નિગોદ આદિમાં મૃત્યુનું કારણ છે તે નરક છે, અર્થાત્ નારકી જીવોને દસ  
પ્રકારની યાતનાઓનું કારણ છે.

इत्यर्थम्—एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकाः=महान्बन्धवर्ती जीवः, यदा=सिप्सुरस्ति । यदा-यदा=मोगामि तापी, लोकाः=संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=बन्ध-मोह-मरणनरकार्थमेव मन्वन्त इति शेषः ।

लोकाः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव मन्वन्त इति यदुक्तं, तत् कर्म ज्ञायते ? इति विज्ञासायामाह—'यदिमम्' इत्यादि ।

यत्=यस्मात्, विस्परुमैः=नानाविधैः श्लेषैः पूर्वोक्तप्रकारैः, वनस्पतिकर्मसमा- रम्भे=वनस्पतिक्रयोपमर्दनरूपसाधन्यापारेण, इमं=वनस्पतिकार्यं विहितं । तथा वनस्पतिक्रम समारम्भाद्यन्त्यापारयन् ज्ञान्यान्=पृथिवीकायस्त्रीन् मनेकरूपान् व्यासन् स्थावराद्य तदाभितान् प्राणात्=प्राणिनाः विहितं=उपमर्दयति ॥ सू० ७ ॥

अज्ञानी जीव कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक रूप इन फलों को प्राप्त करके भी नर-नार इसी में गूढ़ होते हैं । अथवा मोग के अभिसारी पुरुष इसी मंथ, मोह, मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

मोग पुन-पुनः कर्मबन्ध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं यह जो कथन किया है सो कैसे ज्ञात हुआ ? इस विज्ञासा के होने पर कहते हैं—'यदिमम्' इत्यादि ।

क्यों कि माना प्रकार के पूर्वोक्त शब्दों द्वारा वनस्पतिकार्य की विज्ञा करने वाले लोग साधन व्यापार से वनस्पतिकार्य का ज्ञात करते हैं । तथा वनस्पतिकार्य का आरंभ करते हुए अन्य पृथ्वीकाय आदि अनेक प्रकार के तदाभित त्रस और स्थावर जीवों की ज्ञात करते हैं ॥ सू० ७ ॥

अज्ञानी एवं कर्मबन्ध मोह, मरण एवं नरकरूप को इष्टिने प्राप्त करिने पशु पक्ष-पक्ष जेमां यद आद्ये । अथवा ज्ञानना अनिच्छापी पुरुष आ प्रथ, मोह, मरण एवं नरक भाटेक प्रवृत्ति करे छे ।

मोह पुनः पुनः (इरी-इरी) कर्मबन्ध मरण भाटेक प्रवृत्ति करे छे; जे कथन जे भुं छे ते केवी शीते अथवाभां ज्ञानुं जे ज्ञानसा ज्ञानशी कहे छे 'यदिमम्' इत्यादि ।

इसके नाना प्रकारना पूर्वोक्त शब्दों द्वारा वनस्पति ज्ञानकी विज्ञा करवाचण दोह साधन व्यापारकी वनस्पतिकार्यने ज्ञात करे छे तथा वनस्पतिकार्यने आरंभ करवा ज्ञा, अन्य पृथ्वीकाय आदि अनेक प्रकारना तदाभित त्रस एवं स्थावर जीवोंने ज्ञात करे छे ॥ सू० ७ ॥

વનસ્પતિકર્મસમારમ્મફલપ્રદર્શનપુરસ્સરં વનસ્પતિસમારમ્મ્નેક્રસસ્થાપરજીવ-  
હિંસાઽવશ્યમ્માત્રિનીતિ પ્રદર્શિતમ્, સંપતિ વનસ્પતેઃ સચેતનત્વશ્ચક્ષુઃ તસ્ય મનુષ્ય-  
શરીરત્વ સચેતનત્વમસ્તીતિ પ્રદર્શયતિ—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

યદ્વા—યથા મનુષ્યશરીરે ચૈતન્યં સુગમં, તથા વનસ્પતિકાયેઽપિ, તસ્માદ્  
વનસ્પતેર્મનુષ્યશરીરસાદૃશ્ય દર્શયતિ સૂત્રકારઃ—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

સે વેમિ—ઇમંપિ જાદ્ધમ્મયં એયંપિ જાદ્ધમ્મયં, ઇમંપિ વુદ્ધિદ્ધમ્મયં એયપિ  
વુદ્ધિદ્ધમ્મયં, ઇમંપિ ચિત્તમંતયં એયંપિ ચિત્તમંતયં, ઇમંપિ છિણ્ણ મિલાઈ એયપિ

વનસ્પતિકાય કે આરમ્બ કા ફલ પ્રગટ કરકે યહ મી પ્રદર્શિત કર દિયા ગયા હૈ  
કિ—વનસ્પતિકાય કા આરમ્બ કરને સે અન્ય ત્રસ ઓર સ્થાવર જીવો કી હિંસા મી અવશ્ય  
હોતી હૈ । અવ વનસ્પતિકાય કે સચેતન હોને મેં શંકા હોને પર ઉસકી મનુષ્ય શરીર કે સમાન  
સચેતનતા સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈ—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

અથવા—જૈસે મનુષ્યશરીર મેં ચૈતન્ય કો સમજના સુગમ હૈં ઉસી પ્રકાર  
વનસ્પતિકાય મેં મી । અત એવ વનસ્પતિ મનુષ્યશરીર કે સમાન હૈ, યહ વાત સૂત્રકાર કહતે  
હૈં—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—વહ મેં કહતા હૂં—યહ (મનુષ્યશરીર) જન્મશીલ હૈ, વહ (વનસ્પતિશરીર) મી  
જન્મશીલ હૈ । યહ વૃદ્ધિશીલ હૈ, વહ મી વૃદ્ધિશીલ હૈ । યહ સચિત્ત હૈ વહ મી  
સચિત્ત હૈ । છેદને પર યહ મુરજ્ઞા જાતા હૈ, વહ મી છેદને પર મુરજ્ઞા જાતા હૈ ।

વનસ્પતિકાયના આરમ્બનુ ક્ષણ પ્રગટ કરીને એ પણ પ્રદર્શિત કરી આપ્યું છે કે—  
વનસ્પતિકાયને આરમ્બ કરવાથી અન્ય ત્રસ અને સ્થાવર જીવોની હિંસા પણ અવશ્ય  
થાય છે. હવે વનસ્પતિકાયની સચેતનતા હોવામા શકા હોવાથી તેની સચેતનતા  
મનુષ્યશરીરની સચેતનતા સમાન સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—‘સે વેમિ ’ ઇત્યાદિ

અથવા—જેમ મનુષ્ય શરીરમા ચૈતન્યને સમજવામા સુગમતા છે, તે પ્રમાણે  
વનસ્પતિકાયમા પણ સુગમતા છે. એ માટે વનસ્પતિ મનુષ્યશરીરના સમાન છે એ વાત  
સૂત્રકાર કહે છે—‘સે વેમિ ’ ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—તે હુ કહુ છુ—આ (મનુષ્ય શરીર) જન્મશીલ છે તે (વનસ્પતિ-  
શરીર) પણ જન્મશીલ છે, આ વૃદ્ધિશીલ છે, તે પણ વૃદ્ધિશીલ છે, આ સચિત્ત છે—  
છેદવાથી તે સૂકાઈ જાય છે, તે પણ છેદવાથી સૂકાઈ જાય છે આ પણ આહારક છે, તે

छिन्नं म्लिष्टाश्च, इमंपि आहारगं, एयंपि आहारगं, इमंपि अणित्ययं एयंपि अणित्ययं,  
 यंपि असासयं एयंपि असासयं, इमंपि चमोवचइयं एयंपि चमोवचइयं, इमंपि विप  
 रिणामधम्मयं एयंपि विपरिणामधम्मय ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स प्रथमि—इदमपि जातिधर्मकम् एतदपि जातिधर्मकम्, इदमपि द्विधर्मकम्  
 एतदपि द्विधर्मकम्, इदमपि त्रिधर्मकम् एतदपि त्रिधर्मकम्, इदमपि चिन्नं म्लायति  
 एतदपि चिन्नं म्लायति, इदमपि आहारकम् एतदपि आहारकम्, इदमपि अनित्यकम्  
 एतदपि अनित्यकम्, इदमपि अशाक्तम् एतदपि अशाक्तम्, इदमपि चयोपचयिकम्  
 एतदपि चयोपचयिकम्, इदमपि विपरिणामधर्मकम् एतदपि विपरिणामधर्मकम्  
 ॥ सू० ८ ॥

टीका—

येन साक्षाद्भगवन्मुखाद् वनस्पतेः सचेतनत्वं भुतं सोऽहं प्रथमि—  
 यथा भगवता कथितं, तथा कथयामीत्यर्थः । प्रतिहातमर्थं प्रदर्शयति—इदमपीत्यादि ।

यह भी आहारक है, यह भी आहारक है । यह भी अनित्य है, यह भी अनित्य है । यह भी  
 अशाक्त है, यह भी अशाक्त है । यह भी चय-उपचय वाक्य है, यह भी चय-उपचय  
 वाक्य है । यह भी विविध प्रकार से परिणमनशील है और यह भी विविध प्रकार से  
 परिणमनशील है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—किसने साक्षात् भगवान् के मुख से वनस्पतिक्रम की सचेतनता  
 सुनी है वही मैं कहता हूँ—वैसा भगवान् ने कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ । वही बात कहते  
 हैं—'इदमपि०' इत्यादि ।

पशु आहारक है अथ पशु अनित्य है ते पशु अनित्य है अथ पशु अशाक्त है ते  
 पशु अशाक्त है अथ पशु चय-उपचयवाक्य है ते पशु चय-उपचयवाक्य है अथ पशु  
 विविध प्रकारकी परिवर्तनशील है अने ते पशु विविध प्रकारकी परिवर्तनशील है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जैसे साक्षात् भगवान् ने भुजकी वनस्पतिक्रम की सचेतनता सांक्षेपिक से  
 ही कहुं सुं—जैसे भगवान् ने कहुं है तेहुं व हूँ कहुं सुं अथ चय उहे है—'इदमपि' इत्यादि ।



इह पुरुषस्योपदेशयोग्यतया सामर्थ्येन संनिहितत्वात्तच्छरीरं संनिकृष्टवा-  
चिनेदमृशब्देन परामृश्यते । इदमपि मनुष्यशरीरं, यद्वा—सामान्यरूपेण त्रसकाये  
चैतन्यस्य सुज्ञेयत्वात् इदं=त्रसशरीर, जातिधर्मकं-जातिः-जननं, तद्धर्मकं-जन-  
नस्वभाव, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि जातिधर्मकं=मनुष्यशरीरवद् वनस्पति-  
शरीरमपि जननस्वभावकमस्तीत्यर्थः । तथा इदमपि मनुष्यशरीरं वृद्धिधर्मकं=  
वालकौमाराद्यवस्थामाश्रित्य वर्धनस्वभावम्, एतदपि वनस्पतिशरीर अङ्कुरकिसलय-  
पत्रस्कन्धशाखाप्रशाखादिना वर्धनशीलम् । इदमपि मनुष्यशरीरं चित्तवत्=चेतना-

‘इदम्’ शब्द का प्रयोग समीपवर्ती वस्तु के लिए किया जाता है । मनुष्य ही  
उपदेश का पात्र है और उसका शरीर भी अत्यन्त समीप है अतः मनुष्य के शरीर को  
‘इदम्’ शब्दद्वारा निर्दिष्ट किया गया है । अथवा त्रस जीव के शरीर में चैतन्य को समझना  
सुगम है, इस कारण ‘इदम्’ का अर्थ मनुष्यशरीर के वजाय त्रस जीव का शरीर समझ  
लेना चाहिए ।

यह मनुष्यशरीर या त्रस जीव का शरीर उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है,  
उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है । तथा मनुष्य शरीर  
वृद्धिशील है—बाल, कुमार आदि अवस्थाओं में बढ़ता जाता है उसी प्रकार वनस्पति—  
शरीर भी अङ्कुर, किसलय, पत्र, स्कन्ध, शाखा और प्रशाखा आदि रूप से बढ़ता  
जाता है । मनुष्यशरीर चेतनावान् है उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी चेतनावान् है,

‘इदम्’ शब्दको प्रयोग समीपवर्ती वस्तु भाटे करवाना आवे छे मनुष्यज  
उपदेशने पात्र छे, अने तेनु शरीर अत्यन्त समीप छे अे कारण्थी मनुष्यना  
शरीरने ‘इदम्’ शब्दद्वारा निर्दिष्ट कथुं छे अथवा त्रस एवना शरीरमा चैतन्यने  
समज्जुं सुगम छे. अे कारण्थी ‘इदम्’ने अर्थ मनुष्य शरीरना भद्वे त्रस एवन्  
शरीर समज्जुं लेवुं लेध अे

आ मनुष्यशरीर अथवा त्रसएवन् शरीर उत्पन्न थवाना स्वभाववाणु छे, ते  
प्रमाण्णु वनस्पतिनु शरीर पणु उत्पन्न थवाना स्वभाववाणु छे तथा मनुष्यशरीर वृद्धि-  
शील छे—बालकुमार, आदि अवस्थाओंमा वधतुं लय छे, ते प्रमाण्णु वनस्पतिशरीर  
पणु अङ्कुर, किसलय—कुमणा, पान, पत्र, स्कन्ध, शाखा अने प्रशाखा आदिइपथी वध्थे  
लय छे, मनुष्यशरीर चेतनावान छे, ते प्रमाण्णु वनस्पतिनु शरीर पणु चेतनावान छे.

मुक्तम्, एतदपि=वनस्पतिशरीर विचरत्=चेतनावत्, लज्जालुपाभ्यादीनां सकोच  
 विकास-स्वापा-वबोधदक्षनात् । इदमपि=मनुष्यशरीरं इत्यादि छिन्नं सत् म्लायति=  
 वृष्यति, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि पल्लवफलपुष्पादि छिन्नं सत् म्लायति=  
 वृष्यं भवति । इदमपि आहारकम्=शरीरबनाद्याहारकरवशील, तथैव एतदपि=  
 वनस्पतिशरीरं मृच्छाद्याहारमोक्षि न चैतदाहारकत्वमचेतनाभां दृष्टम् ।

तथा इदमपि=मनुष्यशरीरम् अनित्यकम्= न सदाऽवस्थायि, एतदपि  
 वनस्पतिशरीरम् अनित्यकम् आपुणोऽप्यसिपत्वात्, वनस्पतिशरीरस्य हि उत्कृष्ट-  
 मायुरंशवत्संज्ञाणि । तथा-इदमपि=मनुष्यशरीरम् अक्षान्त=प्रतिक्षणमानीषीमर

क्यो किं सम्बाधती धात्री आदि वनस्पतियों में सकोच विकास स्वाप (निद्रा) और  
 भवबोध (बागना) देखा जाता है । हाथ आदि मनुष्यशरीर छेदने पर मुरझा जाता है  
 उसी प्रकार पत्ता फूल, फल आदिको वनस्पतिशरीर भी छेदने पर मुरझा जाता है । यह  
 मनुष्यशरीर रूप और भोजन आदि का आहार करता है और वनस्पति शरीर भी  
 पृथ्वी, जल आदि का आहार करता है । आहार करने कि क्रिया अचेतन में नहीं  
 देसी जाती ।

मनुष्यशरीर अनित्य है-सदा उठरने वाला नहीं है, इसी प्रकार वनस्पतिशरीर भी  
 अनित्य है, क्यो कि उसको वायु की सीमा है । वनस्पतिशरीर की उत्कृष्ट वायु दस हजार  
 वर्ष की है ।

मनुष्य शरीर अश्वत्थ है-आधीनिरण प्रतिक्षण होता रहता है और वनस्पति

केमके वनस्पती-(शीघ्रभय्नी), धात्री आदि वनस्पतियोंमें स देखावत, विकास, निद्रा  
 अने अश्वत्थ ज्ञेयतां आने छे

हाथ-आदि मनुष्यशरीर छेदवाधी सुहाई अथ छे. ते प्रभवे पाद १, १४ इव इव  
 आदि रूप वनस्पतिशरीर पक्ष छेदवाधी सुहाई अथ छे आ मनुष्यशरीर रूप अने  
 अथ वजरेने आहार करे छे तेम वनस्पतिशरीर पक्ष पृथ्वी, जल आदिने आहार  
 करे छे, आहार करवाणी क्रिया अचेतनतां ज्ञेयतां आवती नही.

मनुष्य शरीर अनित्य छे. केमके स्थिर स्टेववाणु नहीं जे प्रभवे वनस्पति  
 शरीर पक्ष अनित्य छे केमके-तेनी आयुष्मनी सीमा छे वनस्पतिशरीरनी वनस्प  
 आयु इव हजार वर्षनी छे.

मनुष्यशरीर अश्वत्थ छे-आधीनिरण प्रतिक्षण सदा स्टे छे तेम

णेन मरणात्, एतदपि=वनस्पतिशरीरम् अगाधत=प्रतिक्षणमरणशीलम् । यथा-  
 इदमपि=मनुष्यशरीरं चयापचयिकम्=इष्टानिष्टाद्वारादिकं प्राप्य वृद्धिहासशीलम्,  
 तथा-एतदपि=वनस्पतिशरीरं चयापचयिकम्=अनुकूल-प्रतिकूलजलवातादिना  
 वृद्धिहासस्वभावम् । यथा-इदमपि मनुष्यशरीरं विपरिणामधर्मकं=विविधपरिणाम-  
 शीलम्, तत्तद्व्याधिवशाद् उदरवृद्धिपाण्डुकृशत्वादिरूपं, रसायनस्नेहाद्युपचार-  
 वशाद् विशिष्टरूपत्रलोपचयादिरूपं वा विविधपरिणामं प्राप्नोति तथा-एतदपि=  
 वनस्पतिशरीरं विपरिणामधर्मकं=व्याधिवशात् पत्रपुष्पफलादीनां वृणादिष्वन्यथा-  
 भावदर्शनात्, विशिष्टदोहदप्रदानेन कटाचित्तेषामुपचयदर्शनाद् विविधपरिणाम-  
 शीलम् । यथा जननस्वभावादिधर्माणां समुदायः सचेतने मनुष्यशरीरे

शरीरं भी अगाधत है—उसका भी प्रतिक्षण मरण होता है । मनुष्यशरीर इष्टानिष्ट आहार  
 आदि को पाकर बढ़ता-घटता रहता है, उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी अनुकूल  
 जल—वायु से बढ़ता और प्रतिकूल जल—वायु से घटता है । जैसे मनुष्यशरीर में नाना  
 प्रकार के परिणामन होते हैं—विविध बीमारियों से उदर का बढ़ना, पाण्डु, कृशता आदि,  
 तथा रसायन और घृत आदि के सेवन से विविधरूप और बल की वृद्धि होती है,  
 उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी विविध प्रकार के परिणामनवाला है—रोग होने पर  
 वनस्पति के पत्ते, फूल, फल आदि और ही तरह के देखे जाते हैं, विशेष प्रकार का दोहद  
 देने से कमी—कमी उन में उपचय भी होता है । इस प्रकार वनस्पति का शरीर भी विविध  
 परिणामन वाला है । जननस्वभाव आदि धर्मों का समूह सचेतन मनुष्य शरीर में या त्रस

वनस्पतिशरीरं पञ्च अशाश्वतं छे—तेन पञ्च प्रतिक्षणं भ्रष्टं यत् रडे छे मनुष्य शरीर  
 इष्टानिष्ट आहार आदिथी वधु घटतु रडे छे ते प्रभाञ्च वनस्पतिनृ शरीरं पञ्च  
 अनुकूल जल—वायुथी वधे छे अने प्रतिक्षण जलवायुथी घटे छे जे मनुष्यशरीरमा  
 नाना प्रकारनु परिणामन थाय छे, विविध बीमारीओथी घटतु वधु, पाण्डुरोग,  
 कृशता ( दुबलापञ्च ) आदि, तथा रसायन अने घृतआदिना सेवनथी विशिष्टरूप  
 अने अलवृद्धि थाय छे, ते प्रभाञ्च वनस्पतिनृ शरीरं पञ्च विविध प्रकारना परिणामन-  
 वाणुं छे, रोग यतां वनस्पतिना पाण्डा, कूल, इल आदि नृहीन नतना होयाय  
 छे, विशिष्ट प्रकारना दोहद देवाथी कोर्ध—कोर्ध वधत तेमा उपचय थाय छे, जे प्रभाञ्च  
 वनस्पतिनृ शरीरं पञ्च विविध परिणामनवाणुं छे जननस्वभाव आदि धर्मोना समूह  
 सचेतन मनुष्यशरीरमा अथवा त्रसलवना शरीरमा जेवामा आवे छे, तेज प्रभाञ्च

प्रसवरीरे वा बतते, तथा-वनस्पतिप्ररीरेऽपि, तस्माद् वनस्पतिक्रायः सचेतन इति निःसंशयं जानीहीति भावः ॥ सू० ८ ॥

एवं वनस्पतिक्रायस्य सचिचत्वं विदित्वा ह्यनित्यमाप्तये त्रिकरमप्रियोगैस्त-  
त्समारम्भो कर्तनीय इत्याशयेनाह- 'एत्य सत्त्वं' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्य सत्त्वं समारम्भमाप्तस्य इच्छेते आरंभा अपरिष्णाया भवति, एत्य  
सत्त्वं असमारम्भमाप्तस्य इच्छेते आरंभा परिष्णाया भवति, त परिष्णाय मेहापी प्लेस  
स्यं वयस्सइस्तस्य समारंभेऽज्ञा, वेवण्णेहि वयस्सइस्तत्वं समारंभावेऽज्ञा, वेवण्ये

जीव के शरीर में पाया जाता है, उसी प्रकार वनस्पति के शरीर में भी पाया जाता है । अतः  
एवं वनस्पतिक्राय सचेतन है, यह बात नि संशय समस्त केमा चाक्षिण ॥ सू० ८ ॥

इस प्रकार वनस्पतिक्राय की सचिचता ध्यानकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन  
करण और तीन योग से वनस्पतिक्राय का समारंभ त्यागना चाक्षिण । इस अभिप्राय से कहते  
हैं—' 'एत्य सत्त्वं' इत्यादि ।

मूलार्थ—वनस्पतिक्राय में शक्त का आरंभ करने वाले को ये आरंभ ज्ञात  
नहीं होते । वनस्पतिक्राय में शक्त का आरंभ न करने वाले को ये आरंभ ज्ञात होते हैं ।  
इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष न तत्त्वं वनस्पतिशक्त का आरंभ करे, न दूसरों से वनस्पति  
शक्त का आरंभ करावे और न वनस्पतिशक्त का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन

वनस्पतिना शरीरमां यद्यु ज्ञेवाभां ज्ञाने छे ज्ञेव भाटे वनस्पतिक्राय सचेतन छे, जे  
पत्त अहेकशक्ति समल जेनी जेछजे ॥ ८ ॥

जे प्रभाजे वनस्पतिक्रायनी सचिचता ज्ञानी साधुता प्राप्त करवा भाटे  
यद्यु करवु जने प्रद्यु योजनी वनस्पतिक्रायने समारंभ लजने जेछजे जे  
अभिप्रायनी कहे छे:—' एत्य सत्त्वं' इत्यादि ।

मूलार्थ—वनस्पतिक्रायमां शक्तने आरंभ करवायजाने आ आरंभ ज्ञानुवाभां  
नधी (जने) वनस्पतिक्रायमां शक्तने आरंभ नहि करवायजाने आ आरंभ ज्ञानुवाभां  
छे तेने ज्ञानीने बुद्धिमान् पुरुष पते वनस्पतिशक्तने आरंभ करवा नधी  
जानीने पासे वनस्पतिने आरंभ करवाय नधी जने वनस्पतिशक्तने आरंभ  
करवायाजा ज्ञानीने अनुमोदन करवा नधी जे वनस्पतिशक्तना समारंभना ज्ञानुवा

वणस्सइसत्थं समारभंते समणुज्जाणेज्जा । जस्सेते वणस्सइसत्थसमारंभा परिणया  
भवति, से हु मुणी परिणायकम्मे-त्ति वेमि ॥ सू० ९ ॥

छाया-अत्र शस्त्र समारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र  
शस्त्रसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति; तत् परिज्ञाय मेधावी नैव  
स्वयं वनस्पतिशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैर्वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयेत्, वनस्पतिशस्त्रं  
समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते वनस्पतिशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता  
भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

टीका-अत्र=अरिमन् वनस्पतिकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणस्य=  
व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरण-त्रियोगैः आरम्भाः=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपाः  
सावधव्यापाराः अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति । अत्र=अस्मिन्नेव  
वनस्पतिकाये शस्त्रं=प्राशस्तप्रकारम् असमारभमाणस्य=अप्रयुक्तजानस्य इत्येते=पूर्वोक्ता  
आरम्भाः=सावधव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाता भवन्ति, प्रत्या-  
ख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति त प्रकारं दर्शयति-

करे । जो वनस्पतिशस्त्र के समारभ का ज्ञाता है वही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है । ऐसा  
मैं कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

टीकार्थ-वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त प्रकार से शस्त्र का उपयोग करने  
वाले को पूर्वोक्त-तीन करण तीन योग से होने वाले वनस्पति की हिंसारूप सावध  
व्यापार-अज्ञात होते हैं, अर्थात् वह नहीं जानता कि-इन व्यापारों से कर्म का बंध होता है ।  
जो वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का प्रयोग नहीं करता वह पूर्वोक्त सावध व्यापारों  
का ज्ञाता होता है । वह ज्ञपरिज्ञा से इन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग  
देता है । ज्ञपरिज्ञा के पश्चात् ही प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार होती है सो दिखलते हैं-

छे, तेव मुनि छे, तेव परिज्ञातकर्मा छे अये प्रभाषे हु कहु छु ॥ सू० ९ ॥

टीकार्थ-वनस्पतिकायना विषयमा पूर्वोक्त प्रकार्थी शस्त्रेण उपयोग करवावाणाने  
पूर्वोक्त (आगण कहेला) त्रसु करणु-त्रसु योग्थी धवावाणी वनस्पतिनी हिंसारूप सावध  
व्यापार अज्ञात होय छे, अर्थात् तेने जणुवामा नधी के आ व्यापारोधी कर्मने पध थाय छे  
जे वनस्पतिकायना विषयषु पूर्वोक्त सावध व्यापारोना ज्ञाता होय छे ते  
ज्ञपरिज्ञाधी तेने जणु छे अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाधी त्याग करी हे छे

ज्ञपरिज्ञानी पधीन प्रत्याख्यानपरिज्ञा देवा प्रकारे होय छे ते अतावे छे-

‘वत् परिश्रय’ त्यादि । वत्=वनस्पतिक्रायारम्भणं, परिश्रय=कर्मवचनस्य कारणं  
 भवतीत्यवगत्य, मेवासी=हेयोपादेयविवक्षन्निपुणः, नैव स्वयं वनस्पतिश्रयं समारमेत=  
 व्यापारयत्, अन्यैर्वा नैव वनस्पतिश्रयं समारम्भयेत्, वनस्पतिश्रयं समारम्भमाणान् न  
 समनुमानीयात्=नानुमोदयत् । श्रेयं सुगमम् ।

यस्यैते वनस्पतिकर्मसमारम्भाः=वनस्पतिं निमित्तीकृत्य कर्मकारणीभूताः  
 सातथव्यापाराः परिश्रयताः=प्रपरिश्रया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिश्रया  
 च परिश्रयता भवन्ति, स एव परिश्रयतकर्म=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्तितसकलसातथ  
 व्यापार, मुनिर्मभवति । ‘इति प्रसीमि’=इति=एतत्सर्वम्, प्रसीमि=मगवतः समीपे  
 यथा भुवै तथा कृपयामीत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रम्याचारविन्तामण्टीकायां प्रथमाध्ययने पञ्चमोद्देशकः संपूर्णः ॥

वनस्पतिक्राय के आरम्भ को कर्मबंध का कारण जानकर हेय-उपादेय का विवेक रखनेवाला  
 बुद्धिमान् पुरुष स्वयं वनस्पतिक्राय का आरम्भ न करे, दूसरा से आरम्भ न कराये और आरम्भ  
 करने वालों का अनुमोदन न करे । श्रेय सब सुगम है । वनस्पतिक्राय के आरम्भ के निमित्त  
 से होने वाले सातथ व्यापारों को जिसने प्रपरिश्रय से कर्मबंध का कारण जान लिया है और  
 प्रत्याख्यानपरिश्रय से त्याग दिया है, वह तीन कारण तीन योग से समस्त सातथों का त्यागी  
 ही मुनि होता है । सुभर्मा स्वामी अन्व स्वामी सं कहते हैं-हे बन्धु ! ऐसा मगवान् के समीप  
 मैं मुना है नेता ही यह सब मैं करता हूँ ॥ सू० ९ ॥

॥ श्री आचाराङ्गसूत्रकी ‘आचारविन्तामणि’ टीकाके हिन्दी अनुवाद में  
 प्रथम अध्यायनका पाँचवाँ उद्देश समाप्त ॥ १-० ॥

वनस्पतिक्रायना आरम्भने कर्मवचन कारण जानूने देव-उपादेयने विवेक साधना  
 सातथ बुद्धिमान् पुरुष येते वनस्पतिक्रायने आरम्भ करता नहीं, जीव पासे आरम्भ करावता  
 नहीं, अने आरम्भ करवावताने अनुमोदन आचना नहीं, श्रेय-ज्याही सब सुगम है  
 वनस्पतिक्रायना आरम्भना निमित्तकी बंधनाया सातथ व्यापारने जे प्रपरिश्रयकी  
 कर्मवचन कारण जानू लीपु है अने प्रत्याख्यानपरिश्रयकी त्याग आख्या है ते तलु करतु  
 तलु येतकी समस्त सातथाना त्यागीय मुनि होत है सुभर्मास्वामी अन्वस्वामीने कहे है-  
 हे बन्धु ! जे मगवानकी समीप में आसतु है; तेतु आ सब कुं कहुं तु ॥ सू० ९ ॥

श्री आचाराङ्गसूत्रकी ‘आचारविन्तामणि’ टीकाना गुजराती  
 अनुवादमा प्रथम अध्यायनने पाचवाँ उद्देशक समाप्त ॥१-५॥

## ॥ अथ पञ्चोद्देशः ॥

अनन्तरपञ्चोद्देशके वनस्पतिकायस्वरूपं निरूपितम् । अधुना क्रममाप्त त्रसकायस्वरूपप्रतिबोधनार्थमयं षष्ठ उद्देशकः प्रस्तूयते । इयं हि शैली भगवद्देशनायाः, यद्-वनस्पतिकायानन्तर त्रसकायप्रतिबोधनम्, सर्वस्मिन्नागमे तथैव भगवद्देशनायाः सच्चात् । एतत् समीचीनमपि, मनुष्यशरीरदृष्टान्तोपन्यासेन वनस्पतेः सचेतनत्वं साध्यते, तत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तरं मनुष्यस्वरूपं जिज्ञासमानस्य शिष्यस्य प्रतिबोधनाय तस्य त्रसकायान्तर्गतत्वेन त्रसकायोद्देशकव्यनस्यौचित्यात् । त्रसकाय-स्वरूप वक्तुमनाः श्री सुधर्मास्वामी कथयति—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

## छठाउद्देश

पिछले पाँचवें उद्देश में वनस्पतिकाय का स्वरूप निरूपण किया गया है अब क्रम से प्राप्त त्रसकाय का स्वरूप बतलाने के लिए छठा उद्देश कहते हैं ।

भगवान् के उपदेश की यही शैली है कि वनस्पतिकाय के अनन्तर त्रसकाय का स्वरूप समझाया जाता है । तब आगमों में भगवान् का उपदेश इसी प्रकार है । यह ठीक भी है, क्यों कि मनुष्य के शरीर का दृष्टान्त देकर वनस्पति की सच्चितता सिद्ध की है तो वनस्पतिकाय के स्वरूप के पश्चात् मनुष्य का स्वरूप जानने की इच्छा रखने वाले शिष्य के प्रतिबोध के लिए त्रसकाय का स्वरूप समझना चाहिए, क्यों कि मनुष्य भी त्रसकाय के अन्तर्गत है । त्रसकाय का स्वरूप कहने की इच्छा रखने वाले श्री सुधर्मास्वामी अलग सूत्र कहते हैं:—‘से वेमि ’ इत्यादि ।

## छठे उद्देश—

याद्यजाना यात्रमा उद्देशमा वनस्पतिकायना स्वरूपतु निरूपणं कर्त्तव्यमा आब्यु छे. इयं कथंभी प्राप्त त्रसकायना स्वरूपने अताववा माटे छठे उद्देशने कहे छे

लगवानना उपदेशनी अत्र योदी छे के -वनस्पतिकायनी पछी त्रसकायतु स्वरूप समजववामा आवे छे. सर्व आगमोमा लगवानने। उपदेश आ प्रभावे छे, अने ते हीत पद्य छे, केभंके मनुष्यना शरीरतु दृष्टान्त आपीने वनस्पतिनी सच्चितता सिद्ध करी छे, तो वनस्पतिकायना स्वरूप पछी मनुष्यस्वरूप जलुवानी इच्छा राखवावाणा शिष्यना प्रतिबोध माटे त्रसकायतु स्वरूप समजववु लेईअे, कारणके मनुष्य पद्य त्रसकायनी अन्तर्गत छे त्रसकायना स्वरूपने कहेवानी इच्छा राखवावाणा श्री सुधर्मास्वामी आगणतु सूत्र कहे छे -‘से वेमि ’ इत्यादि.

श्रुत्म्—

से वेमि संतिमे तसा पाप्मा, तंजहा-मंजया, पोयया, जराउया, रसया, संसेयया, संमुच्छिमा, उग्मियया, उववाइया, एस ससारेचि पबुबइ मैदस्स वकियामाओ ॥ सू० १ ॥

छाया—

स प्रवीमि, सन्तीमे प्रसाः प्राणाः, तद्यथा-अण्डनाः, पोतजाः, जरायुजा, रसजा, सस्वेदजा, संमुच्छिमा (संमुच्छिनजाः) उग्मिज्जा, औपपातिका (उपपातजाः) । एष संसार इति प्रोच्यते मन्दस्य अपिज्ञानतः ॥ सू० १ ॥

टीका—

येन भगवद्भवनारविन्दनिर्मलसङ्घर्षाः सम्यगवधारिता, साऽर्हं प्रवीमि= यथा भगवन्मुखान्छुर्तं तथा कल्पयामीत्यर्थः ।

प्रसाः प्राणा इम सन्तीत्यन्वयः । प्रसाः=प्रस्यन्ति-प्रसनामकर्मोदयात् तापाऽऽ-मुपवत्पाच्छायाऽऽदिकं प्रस्यमित्सर्वन्तीति प्रसाः=ह्योन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ताः ।

मूलार्थ—बहू मं कहता हूँ—ये व्रत प्राणी हैं, जैसे—अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज संस्वेदज, संमुच्छित उग्मिज और औपपातिक (उपपातज) । मंद एवं अज्ञानी के लिए यह संसार कहा गया है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—जिसने भगवान् के मुक्तकमल से निकल कर समस्त जीवादि स्वकृपा को मनी मँसि समस्त सिया है ऐसा मैं कहता हूँ अर्थात् हे भन्नु ! भगवान् के मुक्त से ऐसा मैंने श्रुत है ऐसा तुझे कहता हूँ ।

प्रसनामकर्म के उदय से ताप आदि से पर्युक्त होकर छाया गौरव की ओर जान पाके इन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक के जीव प्रस कहलाते हैं । इन में हीन्द्रिय जीव के स्पर्शन

मूलार्थ—ते हं उहुं उ—अ प्रस प्राणी उ जेभ-अण्डज पोतज जरायुज रसज संस्वेदज संमुच्छिम उग्मिज जने औपपातिक (उपपातज) मंद जने अज्ञानीको आटे आ संसार उद्वेगार्थ आओउ से ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—जेजे भगवन्मुख मुक्तकमलधी नीलमेला समस्त लुवादि स्वर्णपाना कर्षने इही शीते समल बीजा उ जेये हं उहुं उ अर्थात् हे भन्नु ! भगवन्मुखानी नेपु मे सांभन्नु उ तेपु ज तने उहुं उ

प्रसनामकर्मता उद्वेगी ताप वनेरेषी पीडा यमीने छाया विनेरेणी पासे अज्ञाना हीन्द्रिय, (ने इन्द्रिय) लुवाही उधने पंच इन्द्रियपाना लुवा सुधी सप प्रस



તત્ર દ્વીન્દ્રિયાણા સ્પર્શનરસનરૂપે ઢ્વ ઇન્દ્રિયે, ત્રીન્દ્રિયાણા સ્પર્શનરસનત્રાણરૂપાણિ ત્રીણોન્દ્રિયાણિ, ચતુરિન્દ્રિયાણા સ્પર્શનરસનઘ્રાણચક્ષુરૂપાણિ ચત્વારોન્દ્રિયાણિ, પચ્ચેન્દ્રિયાણા સ્પર્શનરસનઘ્રાણચક્ષુઃશ્રોત્રરૂપાણિ પચ્ચેન્દ્રિયાણિ સન્તિ ।

યદ્યપિ-ત્રસ્યન્તિ=અભિસન્ધિપૂર્વકમનભિસન્ધિપૂર્વકં વા ડધ્વમધસ્તિર્યક્ષુ ચલન્તોતિ વ્યુત્પત્તયા દ્વીન્દ્રિયાદયસ્તયાઽગ્નિકાયા વાયુકાયા અપિ ત્રસા ડન્યન્તે । ત્રસાના હિ દ્વૌ ભેદૌ મુલ્યતઃ સ્તઃ-ગતિતો લલ્બિતશ્ચ । તત્ર ગતિ =ક્રિયા ચલન, દેશાન્તરપ્રાપ્તિઃ, સ્વભાવતોઽનભિસન્ધિપૂર્વક-તથોગાદગ્નિકાયા વાયુકાયાશ્ચ ત્રસા ભવન્તીતિ ગતિત્રસા ડન્યન્તે । લલ્બિસ્તુ ત્રસનામકર્મોદયે સતિ ભવતિ,

ઔર રસના યે દો ડન્દ્રિયો હોતી હૈં । તીનઈન્દ્રિયવાલોં કે સ્પર્શન, રસના ઔર ત્રાણ, યે તીન ડન્દ્રિયોં હોતી હૈં । ચતુરિન્દ્રિય જીવોંકે સ્પર્શન, રસના, ત્રાણ ઔર ચક્ષુ, યે ચાર ડન્દ્રિયોં હોતી હૈં । પચ્ચેન્દ્રિય જીવોં કે સ્પર્શન, રસના ત્રાણ, ચક્ષુ ઔર શ્રોત્રરૂપ પોંચ ડન્દ્રિયોં હોતી હૈં ।

જો જીવ ડરાદાપૂર્વક યા વિના હી ડરાદે કે, ડપર નીચે યા તિરછે ચલતે હૈં યે ત્રસ જીવ હૈં । ડસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર દ્વીન્દ્રિય આદિ તથા અગ્નિકાય ઔર વાયુ મી ત્રસ કહલતે હૈં । મુલ્યરૂપ સે ત્રસ જીવોં કે દો ભેદ હૈં-(૧) ગતિત્રસ ઔર (૨) લલ્બિત્રસ । ગતિ કહિલે અથવા ક્રિયા, ચલના અથવા ંક દેશ સે દૂસરે દેશ મેં પહુંચના કહિલે । વિના ડરાદે કે યહ ગતિક્રિયા મૌજૂદ હોને કે કારણ અગ્નિકાય ઔર વાયુકાય મી ત્રસ હૈં । ડહેં ગતિત્રસ કહતે હૈં । ત્રસનાકર્મ કા ડદય હોને પર લલ્બિ-

કહેવાય છે દ્વીન્દ્રિય જીવોને સ્પર્શન (આમડી) અને રસના (જીભ) આ યે ડન્દ્રિયો હોય છે ત્રીન્દ્રિયોને આમડી, જીભ અને નાસિકા ડપ ત્રણ ડન્દ્રિયો હોય છે ચતુરિન્દ્રિય જીવોને આમડી, જીભ, નાસિકા અને નેત્ર, આ ચાર ડન્દ્રિયો હોય છે પચ્ચેન્દ્રિય જીવોને આમડી, જીભ, નાસિકા, નેત્ર અને શ્રોત્ર-કાન ડપ પાચ ડન્દ્રિયો હોય છે

જે જીવ ડચ્છાપૂર્વક અથવા ડચ્છા વિના ડપર, નીચે અથવા તિરછા ચાલે છે તે ત્રસ જીવ છે આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર દ્વીન્દ્રિય આદિ તથા અગ્નિકાય અને વાયુકાય ત્રણ ત્રસ કહેવાય છે મુખ્યરૂપથી ત્રસ જીવોના યે ભેદ છે-(૧) ગતિત્રસ (૨) લલ્બિત્રસ ગતિ કહેા અથવા ક્રિયા કહેા તે એકજ છે ચાલતું અથવા એક દેશથી બીજા દેશમા પહોચતું કહેા વિના ડચ્છાથી આ ગતિ કરવાની ક્રિયા હાજર હોવાથી અગ્નિકાય અને વાયુકાય ત્રણ ત્રસ છે. તેને ગતિત્રસ કહે છે. ત્રસનામકર્મનો ઉદય હોવાથી લલ્બિત્રસતા

तद्योगात्प्रसन्नविषयकदेशान्तरमाप्तिलक्षणक्रियायुक्तत्वाद् द्वीन्द्रियादय एव लम्बिप्रसा लभ्यन्ते । तेजोवायवः किल न प्रसनामकर्मोदयनिर्वाचा, किन्तु स्यावरनाम कर्मोदयनिर्वातत्वाच्छम्बित स्यावरा एव; तथाप्यत्र द्वीन्द्रियादयो लम्बिप्रसा एव परिशुभन्ते, न तु गतिप्रसा, अमिकायानां प्रागव चतुर्थोदये प्रतिबोपितत्वाद्, वायुकायानामपि प्रस्यमापत्वात् ।

यसु " लम्ब्या तेजोवायु प्रसा, लम्बिस्तन्लम्बिमात्र लम्बिप्रसानामि शम्बिकारो नास्ति, तेजसोऽमिहितत्वाद् वायोऽमिधास्यमानत्वाद्, अतः सामर्थ्यात् गतिप्रसा एवाभिक्रियन्ते " इति कैभिवृत्तं, तत् प्रामादिकम्,

प्रसा प्रस होती है। इस लम्बि से इरादापूर्वक गतिक्रिया द्विन्द्रिय आदि में ही पाई जाती है, अत एव उन्हें लम्बिप्रस कहते हैं। तेजस्काय और वायुकाय में प्रसनाम-कर्म का उदय नहीं होता। उन में स्थावरनामकर्म का उदय है, अतः लम्बि की अपेक्षा ये दोनों स्थावर ही हैं। फिर भी यहाँ द्विन्द्रिय आदि लम्बिप्रस बीजों का प्रद्वय करना आदि-प्रस बीजों का नहीं, ब्यों कि अमिकायिक बीजों का चौथे उदय में पहले ही वर्णन किया जा चुका है और वायुकाय का आगे वर्णन किया जायगा।

किसी न कहा है—लम्बि की अपेक्षा तेजस्काय और वायुकाय प्रस हैं। लम्बि सिर्फ शक्ति को ही कहते हैं। यहाँ लम्बिप्रस बीजों का प्रकरण नहीं है, ब्यों कि अमिकाय का कवन किया जा चुका है और वायुकाय का कवन आगे किया जायगा अतः सामर्थ्य से गतिप्रस ही यहाँ प्रहण करने योग्य हैं" । यह कवन प्रमादपूर्ण है।

प्रस उ अने लम्बिभी शुष्कायुवक अति करवाणी किंवा द्वीन्द्रियादिमात्र जेवामां अपे उ अने लम्बि भाटे तेने लम्बिप्रस कडे उ तेकरकाय अने वायुकायमां प्रसनामकर्मना उदय नधी; तेनामां स्थावरनामकर्मना उदय उ तेथी लम्बिनां अपेक्षाअने अने स्थावर ए उ इरीने यसु अदि द्वीन्द्रिय आदि लम्बिप्रस लवेनु ए प्रद्वय करव जेवजे, अतिप्रस लवेनु नदि. कारणके अमिकायिक लवेनु यथा उदयकमां प्रसम वर्णन करवामा आनी असु उ अने वायुकायनु आगत उपर वर्णन करवामां अपरथी.

हेतुअने कर्णु इ- लम्बिनी अपेक्षा तेजस्काय अने वायुकाय प्रस उ: लम्बि, मात्र शक्तिनेअ कडे उ अदि लम्बिप्रस लवेनु प्रद्वय नधी. कारणके अमिकायनु विवेचन तो कही देवामां आनुं उ अने वायुकायनु विवेचन आगत करवामां अपरथी तेथी सामर्थ्यथी अतिप्रस उ अदि प्रद्वय करवु योअ उ" अत कवन प्रमादपूर्ण उ

लब्धिचसानां गतिचसत्वेनाङ्गीकारात् । गतिचसानां लब्धिचसत्त्वाभावात्, द्वीन्द्रियादीनां गतिचसत्त्वेन शास्त्रेऽनङ्गीकाराच्च ।

प्राणाः=प्राणिनः, इमे=प्रत्यक्षतोऽवगम्याः, यद्वा-वक्ष्यमाणप्रकारकाः सन्ति । ते यथा-(१) अण्डजाः=अण्डाज्जाताः-पक्षिगृहकोकिलादयः, (२) पोतजाः=पोता एव जायन्त इति पोतजाः-हस्तिवल्गुलीचर्मजल्कादयः, (३) जरायुजाः=जरायुर्गर्भवेष्टनचर्म, तत्र जाताः-गोमहिष्यजा, चिकमनुष्यादयः, (४) रसजाः=विकृतरसाज्जाताः, (५) संस्वेदजाः=सम्बेदाज्जाताः-मत्कुणयूकादयः, (६) समूर्च्छिमाः=समूर्च्छनजाः मक्षिकापिपीलिकाशलभादयः, (७) उद्भिज्जाः=उद्भेदनम्-उद्भिज्ज, तस्माज्जाताः-पतङ्गखञ्जरीटादयः, (८) औपपातिकाः=उपपाते भन्नाः देवानार-

क्यों कि लब्धिचसो को गतिचसरूप में अगीकार किया गया है । मगर गतिचस लब्धिचस नहीं हो सकते । द्वीन्द्रिय आदि में गति का सद्भाव है अतः शास्त्र में ऐसा अगीकार नहीं किया गया ।

त्रस प्राणी इस प्रकार हैं-(१) अण्डज-अंडों से उत्पन्न होने वाले पक्षी, गृहकोकिला आदि । (२) पोतज-पोतरूप पैदा होने वाले हाथी, वल्गुली, चर्मजल आदि । (३) जरायुज-गर्भ जिस से लिपटा रहता है वह पतली चमड़ी जरायु कहलाती है उस से उत्पन्न होने वाले गाय, भैंस, बकरी, मनुष्य आदि जरायुज कहलाते हैं । (४) रसज-निकृत रस में पैदा हो जाने वाले, (५) संस्वेदज-पसीने से पैदा होने वाले खटमल, जू आदि । (६) समूर्च्छिम-मक्खी, फीडी, गलम आदि । (७) उद्भिज-उद्भेदन से उत्पन्न होने वाले पतंग, खजरीट आदि । (८) औपपातिक-देव और नारकी ।

कारण्ये ऽङ्गीकारस्येने गतिचसना इयमा अगीकार करवाभा आन्वये छे, परन्तु गतिचस लब्धिचस थर्ध शकता नथी द्वीन्द्रिय आदिभा गतिने सङ्भाव छे, तेथी शास्त्रभा अे प्रभाष्ये अगीकार करवाभां आन्वये नथी

त्रस प्राणी आ प्रभाष्ये छे-(१) अण्डज-अंडाथी उत्पन्न थवावाणा पक्षी, गृहकोकिला (गरोणी) आदि. (२) पोतज-पोतइय पैदा थवावाणा हाथी, वल्गुली, चर्मजल (जलो) आदि (३) जरायुज-गर्भ जेनाथी विंटाअेलु रहे ते पातणी आमडी जरायु कडेवाय छे तेभा उत्पन्न थवावाणा गाय, भेस, बकरी, मनुष्य आदि जरायुज कडेवाय छे (४) रसज-विकृतरसभा पैदा थवावाणा (५) संस्वेदज-परसेवाथी पैदा थवावाणा माकड, जू आदि (६) समूर्च्छिम-माफी, फीडी, तीड आदि (७) उद्भिज-उद्भेदनथी उत्पन्न थवावाणा पतंग, खजरीट आदि (८) औपपातिक-देव अने नारकी

इह सर्वेषां प्रसनीपानामप्यविधं जन्म प्रतिषोषितसूक्ष्मदेव संसृष्टनगमोपपत्तेषु समावेश्य त्रिविधं जन्मेत्यपि ऋद्धेऽमिहितम् । सन्तीत्यनेन प्रसनामप्यस्तित्वं त्रिकास्रवर्तीति बोध्यते । मन्दस्य=कुशास्रवासनापुक्तस्य, अत एव-अधिजानतः= विवाहितविवेकरहितस्य एषः=अण्डजाविस्तमुदायः संसारः प्रोच्यते, अष्टविप्रसक्त्याये कुशास्रवासनावतः पुनः पुनरुत्पत्तिरूपं संसरणं भवतीति स एषः संसारो निगद्यत इत्यर्थः ।

अथ प्रसक्त्यायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं लक्षणायद्द्वाराणि निरूपणीयानि । तत्र उक्तानि प्रकृपणा-परिमाण-सङ्को-उपयोग-वेदना-द्वाराणि यथाक्रमं प्रदर्शयन्ते, अथ-निष्ठ-वप-निष्ठ-द्वाराण्यं पृथिवीकायोद्देशो यथाऽमिहितं तथैवापमन्तम्यम् ।

यहाँ सभी प्रस नीलों का आठ प्रकार का जन्म बतलाया गया है । इसे संसृष्टन, गर्भ और उपपात में समाविष्ट कर देने से तीन प्रकार का जन्म प्राप्त में बतलाया है । 'संति' इस पद द्वारा प्रस नीलों का त्रिकास्रवर्ती अस्तित्व सूचित किया गया है । मन्द जन्म मिथ्याशास्त्रों के संस्कार से प्रभावित अत एव हित-महित के विवेक से रहन्य पुरुष के लिए अण्डज आदि का समूह रूप संसार कहा गया है । आठ प्रकार के प्रसक्त्याय में मिथ्याशास्त्रों के संस्कार बाधे का पुनः पुनः जन्म-मरण रूप संसरण होता है । वही संसरण संसार कहलाता है ।

प्रसक्त्याय का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए अण्डज आदि आठ द्वारों का निरूपण करना चाहिए । उन में से अण्डज प्रकृपणा परिमाण तथा उपयोग और वेदना द्वार क्रम से बतलाते हैं । वध और निष्ठ द्वार जैसे पृथ्वीकाय के उद्देश में कहे हैं वेते ही यहाँ समझ देने चाहिए ।

अदि सर्वं प्रस लोकोने आऽप्रकारेने ज म ज्वाभ्यो उ तेने समुष्टिन, अथ जने उपपातभां समावेश करी देवाधी त्रय प्रकारेने जन्म शास्त्रभां ज्वाभ्यो उ 'संति' आ पद द्वारा त्रय लोकेषु त्रिकास्रवर्ती अस्तित्व सूचित करवाभां ज्वाभ्यु उ. अत एवार्थ मिथ्याशास्त्रोना संस्कारधी प्रभावित, जेव हित अहितना विवेकधी रहन्य पुरुष भाटे अण्डज आदिना समूह रूप संसार इहेवाभां ज्वाभ्यो उ आऽप्रकारेना प्रसक्त्यायभां मिथ्याशास्त्रोना संस्कारवाणोनेषु पुनः पुनः जन्म-मरण रूप संसरण रूप उ जेव संसरण ते संसार इहेवाय उ

प्रसक्त्यायनु सर्वं ज्ञान प्राप्त करवा भाटे अण्डज आदि आऽ द्वारेषु निरूपण करनु जेधजे तेमांशी अण्डज, प्रकृपणा, परिमाण, शक्त् उपयोग जने वेदना द्वार कभधी ज्वाभ्यो उ, वध जने निष्ठ द्वार जेधी शीते पृथ्वीकायना उद्देशभां कर्वा उ तेनी शीते ज्वादि समस्त देवा जेधजे.

## लक्षणद्वारम्—

सुखदुःखेच्छाद्वेपादिकं चेतनलक्षणं त्रसकाये परिस्पष्टमस्ति । अस्य सचेतनत्वे विवादा नास्ति केपाञ्चित् अस्य व्यक्तोच्छ्वासादिलक्षणप्राणयोगात् । अपरञ्च—

त्रसकायस्य लक्षणं शास्त्रे नवविधं प्रज्ञप्तम् यथा—(१) अभिक्रमणम्, (२) प्रतिक्रमणम्, (३) संकोचनम्, (४) प्रसारणम्, (५) रुतम्, (६) भ्रमणम्, (७) प्रसनम्, (८) पलायनम्, (९) आगतिगतिविज्ञानम्, इति ॥

अभिक्रमणं=प्रज्ञापकं प्रत्यभिमुख क्रमणम्, प्रतिक्रमणं=प्रज्ञापकात् प्रतिकूलं क्रमणम् । संकोचनम्=गात्रसंकोचकरणम्, प्रसारणं=गात्रविततकरणम्,

## लक्षणद्वारम्—

सुख, दुःख, इच्छा और द्वेष आदि चेतना के लक्षण त्रसकाय में स्पष्ट माह्य होते हैं । इस की सचेतनता में किसी को भी विवाद नहीं है । प्रकट उच्छ्वास आदि प्राण होने के कारण त्रस जीव प्राणी हैं ।

शास्त्र में त्रसकाय का लक्षण नव प्रकार से वतलाया गया है । जैसे—(१) अभिक्रमण (२) प्रतिक्रमण (३) संकोचन (४) प्रसारण (५) रुत (६) भ्रमण (७) त्रसन—त्रास पाना (८) पलायन—भागना और (९) गति—आगति का ज्ञान । प्रज्ञापक की अपेक्षा से सामने जाना अभिक्रमण है । प्रज्ञापक की अपेक्षा से प्रतिकूल जाना—पीछे लौटना प्रतिक्रमण है । शरीर को सिकोडना संकोचन है । शरीर को फैलाना

## लक्षणद्वारम्—

सुख, दुःख, इच्छा અને द्वेष આદિ ચેતનાનું લક્ષણ ત્રસકાયમાં સ્પષ્ટ માહ્યમ પડે છે, તેની ચેતનતામાં કોઈને પણ વિવાદ-વાદો નથી પ્રકટ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણ હોવાના કારણથી ત્રસ જીવ પ્રાણી છે

શાસ્ત્રમાં ત્રસકાયના લક્ષણો અનેક પ્રકારે બતાવવામાં આવ્યા છે જેમકે—(૧) અભિક્રમણ, (૨) પ્રતિક્રમણ, (૩) સંકોચન, (૪) પ્રસારણ, (૫) રૂત, (૬) ભ્રમણ, (૭) ત્રસન—ત્રાસ પામવો, (૮) પલાયન—ભાગવું અને (૯) ગતિ—આગતિનું જ્ઞાન પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી સામે જવું તે અભિક્રમણ છે પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી પ્રતિકૂલ જવું—પાછા ફરવું તે પ્રતિક્રમણ છે. શરીરને સંકોચવું તે સંકોચન છે શરીરને ફેલાવવું તે પ્રસારણ છે

रुतं—इन्द्रकरवम्, भ्रान्तम्—इतथैतथ गमनम्, प्रसनम्—दुःस्वातुद्वेननम्, पलायितम्—  
पलायनम्, आगतेः कुतश्चित्कश्चिन्, गतेषु कुतश्चित् कश्चिदेव च विज्ञानम् ।  
ठक्ठवैतत्प्रमगन्ता दृष्टवैकाशिकसूत्रे -

“ खेति कसिचि पाणार्ण अभिकर्तं पडिकर्तं संकुचियं पसारियं रुतं संत  
वसियं पलाय्यं आगद्गइविष्वाया ” ॥ १ ॥ इति ।

प्रकृपयाद्वारम्—

प्रसकायाभतुर्विवाः—द्रीन्द्रिय - भीन्द्रिय - चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियमेवात् ।  
इस प्रयमोरेञ्के खोकवादिप्रकरणे प्रसानां मेदममेदाः प्रकृपिताः । विस्तरतो

प्रसारण है । बोधना रुत कह्यता है । इतर-उपर जाना भ्रमण है । दुःस से उद्रेग पाना  
प्रसन है । मार्गने को पलायन कहते हैं । एक बगह से दूसरी बगह जाने-जाने का विज्ञान  
आगतिगतिविज्ञान कह्यता है ।

भगवान् ने दशवैकाशिक सूत्र में कहा है—

“ जिन किन्हीं प्राणियों में अभिक्रमण, संकोचन, प्रसारण, रुत, भ्रमण,  
प्रसन, पलायन और आगतिगतिविज्ञान ( पाया जाता है वे सब प्रस जीव हैं । ) ”

प्रकृपयाद्वारम्—

प्रसकाय के चार भेद हैं—द्रीन्द्रिय, भीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय ।  
इसी शब्द के फलके उद्रेग के अन्तर खोकवादी प्रकरण में प्रस जीवों के भेद-प्रभेद  
कहे हैं । विस्तार से जानने के इच्छुक पढ़ी से जान लें । इस सूत्र में भगवान् ने

विशेष्य ते इत् कहेषाम् छ अष्टी-तस्मी अणु ते अमणु छे । दुःखधी उद्रेज पाणु  
ते प्रसन छे आणु तेने पलायन कहे छे जेह अणुधी जीअ अणुधने आणवा-  
अणुध विज्ञान ते आगतिगतिविज्ञान कहेषाम् छे

भगवान् ने दशवैकाशिक सूत्रों में कहे छे—

“ जे कोई प्राणीजोमें अभिक्रमण, अतिक्रमण, संकोचन, प्रसारण, रुत अमणु,  
प्रसन, पलायन अने आगति-गतिविज्ञान ( जेवामें आवे छे ते सब प्रस जीव छे ) ”

प्रकृपयाद्वारम्—

प्रस कायना चार भेद छे—द्रीन्द्रिय, भीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रिय । आण  
शाकना प्रममना उद्रेगमें खोकवादीप्रकरणमें प्रसजीवोना भेद-प्रभेद अणुध छे, विस्तरधी

## लक्षणद्वारम्—

सुखदुःखेच्छाद्वेषादिकं चेतनलक्षणं त्रसकाये परिस्पष्टमस्ति । अस्य सचेतनत्वे विवादा नास्ति केपाञ्चित् अस्य व्यक्तोच्छ्वासादिलक्षणप्राणयोगात् । अपरञ्च—

त्रसकायस्य लक्षणं शास्त्रे नवविधं प्रज्ञप्तम् यथा—(१) अभिक्रमणम्, (२) प्रतिक्रमणम्, (३) सकोचनम्, (४) प्रसारणम्, (५) रुतम्, (६) भ्रमणम्, (७) त्रसनम्, (८) पलायनम्, (९) आगतिगतिविज्ञानम्, इति ॥

अभिक्रमणं=प्रज्ञापकं प्रत्यभिमुखं क्रमणम्, प्रतिक्रमणं=प्रज्ञापकात् प्रतिकूलं क्रमणम् । सकोचनम्=गात्रसंकोचकरणम्, प्रसारणं=गात्रविततकरणम्,

## लक्षणद्वारम्—

सुख, दुःख, इच्छा और द्वेष आदि चेतना के लक्षण त्रसकाय में स्पष्ट मालूम होते हैं । इस की सचेतनता में किसी को भी विवाद नहीं है । प्रकट उच्छ्वास आदि प्राण होने के कारण त्रस जीव प्राणी हैं ।

शास्त्र में त्रसकाय का लक्षण नव प्रकार से बतलाया गया है । जैसे— (१) अभिक्रमण (२) प्रतिक्रमण (३) सकोचन (४) प्रसारण (५) रुत (६) भ्रमण (७) त्रसन—त्रास पाना (८) पलायन—भागना और (९) गति—आगति का ज्ञान । प्रज्ञापक की अपेक्षा से सामने जाना अभिक्रमण है । प्रज्ञापक की अपेक्षा से प्रतिकूल जाना—पीछे लौटना प्रतिक्रमण है । शरीर को सिकोटना संकोचन है । शरीर को फैलाना

## लक्षणद्वारम्—

सुख, दुःख, इच्छा અને द्वेष આદિ ચેતનાનું લક્ષણ ત્રસકાયમાં સ્પષ્ટ માલૂમ પડે છે, તેની ચેતનતામાં કોઈને પણ વિવાદ-વાદો નથી પ્રકટ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણ હોવાના કારણથી ત્રસ જીવ પ્રાણી છે

શાસ્ત્રમાં ત્રસકાયના લક્ષણો અનેક પ્રકારે બતાવવામાં આવ્યા છે જેમકે— (૧) અભિક્રમણ, (૨) પ્રતિક્રમણ, (૩) સંકોચન, (૪) પ્રસારણ, (૫) રૂત, (૬) ભ્રમણ, (૭) ત્રસન—ત્રાસ પામવો, (૮) પલાયન—ભાગવું અને (૯) ગતિ—આગતિનું જ્ઞાન પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી સામે જવું તે અભિક્રમણ છે પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી પ્રતિકૂલ જવું—પાછા ફરવું તે પ્રતિક્રમણ છે શરીરને સંકોચવું તે સંકોચન છે શરીરને ફેલાવવું તે પ્રસારણ છે





જિજ્ઞાસુમિસ્તત ણ્વાત્રગન્તવ્યાઃ । અસ્મિન્ સુત્રેઽપિ ભગવતા-અઙ્ઙજપોતજાદિભેદાઃ  
પદર્શિતાસ્તેઽપિ તત્રંવ સમાવિષ્ટાઃ ॥

### પરિમાણદ્વારમ્ —

ક્ષેત્રતઃ સર્વતિત્લાકમતરામંચ્યેયભાગવર્તિપદેશરાશિપ્રમાણાઃ ત્રસકાયપર્યા-  
પ્તકાઃ । એતે ચ વાદગ્તેજસ્કાયપર્યાપ્તકેભ્યોઽસચ્યેયગુણાઃ, ત્રમકાયપર્યાપ્તકેભ્યશ્ચ-  
સકાયિકાઽપર્યાપ્તકાઃ અમચ્યેયગુણાઃ ।

તથા કાલતઃ પ્રત્યુત્પન્નત્રસકાયિકાઃ સાગરોપમલક્ષપૃથક્ત્રવમમયરાશિપરિમાણા  
જઘન્યપદે, ઉત્કૃષ્ટપ્રદેઽપિ સાગરોપમલક્ષપૃથક્ત્રવપરિમાણા ણ્વેતિ । તથા આગમઃ—

અડજ ઓર પોતજ આદિ જો મેદ વતલાયે હૈ, યે સવ મી ડહીં મં અન્તર્ગત હો  
જાતે હૈ ।

### પરિમાણદ્વાર—

ત્રસકાય કે પર્યાપ્ત જીવ ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા સર્વતિત્ લોકપ્રતર કે અસંખ્યાતર્વે ભાગવર્તી  
પ્રદેશો કી રાશિ કે વરાવર હૈં । યે વાદર તેજસ્કાય પર્યાપ્ત જીવોં સે અસલ્યાતગુણા હૈં ।  
પર્યાપ્ત ત્રસકાયિક જીવોં કી અપેક્ષા અપર્યાપ્ત ત્રસ જીવ અસલ્યાતગુણા હૈં । કાલ કી અપેક્ષા  
જઘન્યપદ મેં પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસ જીવ એક લાખ સે નૌ લાખ તક કે સાગરોપમ કી સમય-રાશિ  
કે વરાવર હૈં ઓર ઉત્કૃષ્ટ પદ મે મી એક લાખ સે નૌ લાખ તક કે સાગરોપમ કી સમયરાશિ  
કે વરાવર હીં હૈં । આગમ મેં મી કહા હૈ—

જાણવાની ઇચ્છાવાળા ત્યાથી જાણી લે આ સૂત્રમા ભગવાને-અડજ અને પોતજ  
આદિના જે લેહ બતાવ્યા છે, તે સર્વનો તેમા સમાવેશ થઈ જાય છે.

### પરિમાણદ્વાર—

ત્રસકાયના પર્યાપ્તજીવ ક્ષેત્રની અપેક્ષા સર્વતિત્ લોકપ્રતરના અસંખ્યાતમા  
ભાગવર્તી પ્રદેશોની રાશિના બરાબર છે તે બાદર તેજસ્કાય પર્યાપ્ત જીવોથી અસંખ્યાત  
ગણુ છે પર્યાપ્ત ત્રસકાયિક જીવોની અપેક્ષા અપર્યાપ્ત ત્રસજીવ અસંખ્યાત ગણુ છે

કાલની અપેક્ષા જઘન્યપદમા પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસજીવ એકલાખ થી નવલાખ સુધીના  
સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર છે. અને ઉત્કૃષ્ટ પદમા પણ એક લાખથી નવલાખ  
સુધીના સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર જ છે આગમમા પણ કહ્યું છે -

“पशुपत्तया तसकाश्या केवकालस्स निस्सत्ता सिया ! गोयमा ! जहमपप  
सागरोपमसपसइस्सपुइस्स, उकोसतएधि सागरोपमसपसइस्सपुइस्स” ॥ इति ।

विरादापेसया प्रसानां निष्क्रमणमुपपातम् जघन्यत एको द्वौ प्रयो  
या भवन्ति, उत्कृष्टस्तु प्रतरस्यासंख्ययमागप्रदस्रपरिमाणाः । सप्तपु  
श्रीशानां नैन्तर्येणोत्पत्तिनिष्क्रमो या जघन्यनैकं समयं द्वौ समयौ श्रीन् वा  
समयान् भवति । उत्कृष्टस्त्वावलिकाया असंख्ययमागपरिमित कालं सतत  
मेपोत्पत्तिनिष्क्रमो या भवति । नैन्तर्येणैकजीवस्यावस्थानं तु जघन्यताऽन्त  
र्हूर्त्वं प्रसकाय भवति, तदनु स पृथिव्यायेकन्द्रियपु समुत्पद्यते । उत्कृष्टतः  
सात्त्विक सागरोपमसइस्सद्वयं सतत नैन्तर्येण प्रसकाय तिष्ठति । तत

“पशुपत्तय प्रसकायिक जीव कितने काल के बराबर है ? गौतम ! जघन्य  
पद में एक माल से नौ लाख तक के सागरोपम के बराबर और उत्कृष्ट पद में भी  
इतन ही है” ।

विरा की अपेक्षा प्रस जीवों का निष्क्रमण और उपपात जघन्य एक, दो या  
तीन हैं और उत्कृष्ट प्रतर क असंख्यातबेँ भागवर्ती प्रदेशों के बराबर है । प्रसकाय में  
जीवों की निरन्तर उत्पत्ति या प्यवन जघन्य एक समय, दो समय, तीन समयतक है ।  
उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातबेँ भाग परिमित काउ तक निरन्तर उत्पत्ति और प्यवन  
होता रहता है । निरन्तर एक जीव की रियति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्वं तक प्रसकाय में  
होती है और उसके बाद वह पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय में उत्पन्न होता है । उत्कृष्ट  
पुत्र अधिक दो हजार सागरोपमतक निरन्तर प्रसकाय में उत्पन्न सकता है । तपमान्

“अशु पन्न प्रसकायिक एव केवका कालनी जराजर उ ? गौतम ! जघन्य  
पदमा जेक सापथी नवस्राप सुधीना सागरोपमनी जराजर अने उत्कृष्ट पदमा पणु  
केवका ए उ”

विरादी अपेक्षा प्रस एवेणु निष्क्रमण अने उपपात जघन्य जेक, मे अशक  
पणु उ अने उत्कृष्ट प्रतरना असंख्यातभा भागवर्ती प्रदेशोनी जराजर उ प्रसकायर्था  
एवेणी निरन्तर उत्पत्ति अथवा निष्क्रमण (प्यवन) जघन्य जेक समय जे समय अथवा  
सप्त समय सुधी उ उत्कृष्ट आवलिकाना असंख्यातभा भाग परिमित काल सुधी  
निरन्तर उत्पत्ति अने निष्क्रमण (निगणु) पणु वने उ निरन्तर जेक एवनी  
स्थिति जघन्य अन्तमुहूर्त्वं सुधी प्रसकायर्था देव उ अने ते पणी ते पृथ्वीकाय  
आदि जेकेन्द्रियर्था उत्पन्न वाव उ उत्कृष्ट कर्था अधिक मे हजार सागरोपम सुधी

પૃથિવ્યાદિપૃત્પદ્યતે । ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ત્રસજીવાના સુખ દુઃખ વા યથા ભવતિ તદાહ—‘ નિજ્ઞાહતા ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

નિજ્ઞાહતા પદિલેહિતા પત્તયં પરિનિવ્વાણં સન્વેસિં પાણાણં સન્વેસિં ધૂયાણં  
સન્વેસિં જીવાણં સન્વેસિં સત્તાણં અસાય અપરિનિવ્વાણં મહાભયં દુઃખં—તિ વેમિ  
॥ સૂ૦ ૨ ॥

છાયા—

નિધ્યાય પ્રતિલેખ્ય પ્રત્યેક પરિનિર્વાણં સર્વેષાં પ્રાણાના સર્વેષાં મૂતાનાં  
સર્વેષાં જીવાના સર્વેષાં સત્વાનામ્ અસાતમ્ અપરિનિર્વાણં મહાભય દુઃખમિતિ  
વ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

પ્રકરણસમ્બન્ધાત્ ત્રસજીવસ્વરૂપં પૃથિવ્યાદિસકલજીવસ્વરૂપ વા

પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરો મેં ઉત્પન્ન હોતા હૈ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ત્રસજીવોં કો સુખ—દુઃખ જિસ પ્રકાર હોતા હૈ સો કહતે હૈં—‘ નિજ્ઞાહતા.’  
ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—વિચાર કરકે ઓર અચ્છી તરહ દેઝકર કહતા હૂં કિ—સમી  
પ્રાણિયોં કા, સમી મૂતોં કા, સમી જીવોં કા, ઓર સમી સત્વોં કા પરિનિર્વાણ અર્થાત્  
સુખ પૃથક્—પૃથક્ હૈ । તથા અસાતારૂપ, અપરિનિર્વાણરૂપ મહાભયરૂપ દુઃખ મી પૃથક્—  
પૃથક્ હૈ । ॥ સૂ૦ ૨ ॥

ટીકાર્થ—ત્રસ જીવોં કા પ્રકરણ હોને કે કારણ ‘વિચાર કરને’ કા  
આશય યહ હૈ કિ ત્રસજીવોં કા સ્વરૂપ, અથવા પૃથ્વીકાય આદિ સમસ્ત જીવોં કા

નિરતર ત્રસકાયમા રહી શકે છે, તે પછી પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોમા ઉત્પન્ન થાય  
છે. ॥સૂ૦ ૧॥

ત્રસ જીવોને સુખ—દુઃખ જે પ્રકારે થાય છે, તે કહે છે—‘નિજ્ઞાહતા’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—વિચાર કરીને સારી રીતે જોઈને કહું છું કે—સર્વ પ્રાણીઓ સર્વ-  
જૂતો, સર્વ જીવો અને સર્વ સત્ત્વોનું પરિનિર્વાણ અર્થાત્ સુખ પૃથક્—પૃથક્—જૂદા—જૂદા  
છે, તથા અસાતારૂપ અપરિનિર્વાણરૂપ મહાભયરૂપ દુઃખ પણ જૂદા—જૂદા છે ॥સૂ૦ ૨॥

ટીકાર્થ—ત્રસજીવોનું પ્રકરણ જોવાના કારણે ત્રસજીવોનું સ્વરૂપ અથવા પૃથ્વીકાય

निष्प्राय=मनसा समालोच्य, पठित्सेव्य=विमोच्य सम्यग् विज्ञापयेत्यर्थः, प्रयोपि=  
 कथयामि-सर्वेषां प्राणानां=प्राणाः सन्ति येषां ते प्राणाः=अग्निनस्तेषां सर्वेषां  
 मृतानाम्=उत्पत्तिशीलानाम्, सर्वेषां जीवानां=कालप्रये जीवनाद् घेतन्यस्वरूपायामि  
 त्यर्थः, सर्वेषां सत्त्वानां=सर्वदाऽस्तित्ववताम् प्रसजीवानाम्, यद्वा-सर्वेषामित्यस्य  
 पुनः पुनरुपादानेन स्यात्वा अपि गृह्यते, तेन प्रसतानां स्यादराणां च जीवानामित्ययः।  
 परिनिर्वाण=सुप्तं, प्रयेकम्=एकैकं पृथक् पृथगस्ति ।

अथभ्युत्पत्त्या विमिन्नाद्यबोधकत्वात् प्राणमृतादिस्मृतामाशुधारण न  
 पुनरुक्तिदोषः । 'निष्प्राया' 'पठित्सेवित्' इति पदद्वयेन जीवानां पुनः  
 पुनरुत्पत्त्यां पठित्सेवित् च सूचितम्, तदेव पुनः पुनर्विधेयतया पठित्सेवनाय

त्वरूप मन से विचार करके तथा सम्यक् प्रकार से जानकर कहा है । सभी प्राणियों का  
 सभी मृतो कर्मसु उत्पत्तिबोध जीवों का सभी जीवों ( विकास में बंदित्र रहने वालों ) का  
 और सभी सत्त्वों ( सत्त्वा अस्तित्व वाले प्रस जीवों ) का, अथवा बार-बार सम्येसि'   
 परम प्रयोग करने के कारण यह अर्थ केना चाहिय कि-सभी प्रस और स्थावर जीवा का  
 सुप्त पृथक्-पृथक् है ।

शब्दशास्त्र की दृष्टि से मिल-मिल कर्म के बोधक प्राण, मृत आदि  
 उक्तों का उच्चारण करने पर भी पुनरुक्ति दोष गही है । अथवा प्राण मृत आदि  
 उक्तों को एक ही कर्म का बाधक मान लिया जाय तो भी पुनरुक्तिगत गही है ।  
 निष्प्राया' पठित्सेवित्' इन दो पदों द्वारा जीवों का पुन पुन विचार पर  
 पठित्सेवित् सूचित किया है । उसी को पुनः पुन विधेयरूप से समझाने के उद्दि

आदि समस्त लोकोनु स्वरूप मनसो विचार करीने तथा सम्यक् प्रकारे आशीने  
 र्दु सु-स्य प्राणीकोनु सवभूतेनु अर्थात् उत्पत्तिशील लोकोनु सव लोको (तज्ज  
 कास लपित स्वेकवाण्य)नु अने सव सत्त्वो-(सवदा अस्तित्ववाण्य तस लोको)नु  
 अथवा बार-बार 'सम्येसि' परने प्रयोग करचना करने के अर्थ देवे: के-के के-  
 सव तस अने स्थावर लोकोनु सुप्त पृथक्-पृथक् छे

शब्दशास्त्र की दृष्टि से मिल-मिल अर्थ ना जोयक प्राण-मृत आदि शब्दोनु उच्चारण  
 करवायी पण पुनरुक्ति दोष जावतो नथी अथवा प्रपुभूत आदि शब्दोने केकल अर्थ ना  
 पयक भानी देवाभां जावे तो पण पुनरुक्तिदोष नथी निष्प्राया 'पठित्सेवित्' आ के  
 परो द्वारा लोकोनु पुनः पुन विचार अर्थात् पठित्सेवित् सूचित कहुं छे तेने पुनः पुनः

મનેકપર્યાયશબ્દૈસ્તેપામુપાદાનાત્ ।

તથા સર્વેષાં દુઃસ્વ પ્રત્યેકં પૃથક્ પૃથગસ્તિ । કથમ્ભૂતં દુઃસ્વમિત્યાહ—  
'અસાત'—મિત્યાદિ । અસાતમ્ અસાતવેદનીયકર્મફલભૂતમ્, તથા—અપરિનિર્વાણમ્=  
સર્વથા શરીરમનઃ પીડાકરમ્, તથા—મહાભયમ્=દુઃસ્વાદધિક ભયમન્યન્નાસ્તિ, યતઃ  
સર્વેડપિ પ્રાણિનઃ શારીરાન્માનસાદપિ દુઃસ્વાદુદ્વિજન્તે, તસ્માન્મહાભયસ્વરૂપમિત્યર્થઃ  
॥ સૂ. ૨ ॥

एतच्च ब्रवीमीत्याह 'तसन्ति पाणा.' इत्यादि ।

मूलम्—

तसन्ति पाणा पदिसो दिसासु य । तत्थ पुढो पास आतुरा, पस्तिवन्ति,  
सन्ति पाणा पुढो सिया ॥ सू. ३ ॥

अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

इसी प्रकार सब जीवों का दुःख भी पृथक्-पृथक् है । दुःख किस प्रकार का है ?  
सो कहते हैं—वह असातावेदनीय कर्म का फल है, शरीर और मन को पूरी तरह पीडा  
उत्पन्न करता है और महाभयकर है—दुःख से बढकर और कोई भय नहीं है, क्यों  
कि सभी प्राणी शारीरिक और मानसिक दुःख से घबराते हैं, अतः वह महाभयकारी  
है ॥ सू. २ ॥

और मैं यह कहता हूँ — 'तसन्ति पाणा' इत्यादि ।

मूलार्थ—प्राणी विद्विशाओ में और दिशाओ में उद्वेग पाते हैं । अलग-  
अलग प्रयोजनो के लोलुप लोग उन्हें सताप पहुचाते हैं । वे त्रस प्राणी पृथ्वी आदि विभिन्न  
आश्रयो पर आश्रित हैं ॥ सू. ३ ॥

વિધેયરૂપથી સમન્વવા માટે અનેક પર્યાયવાચી શબ્દોનો પ્રયોગ કરવામા આવ્યો છે.  
આ પ્રમાણે સર્વજીવોના હુ ખ પશુ જૂદા-જૂદા છે હુ ખ કયા પ્રકારના છે ?  
તે કહે છે—તે આ અસાતાવેદનીય કર્મનું ફળ છે, શરીર અને મનને પૂરી રીતે પીડા  
ઉત્પન્ન કરે છે અને મહા ભયકર છે હુ ખથી વધારે કોઈપણ ભય નથી. કારણકે સર્વ  
પ્રાણી-શારીરિક અને માનસિક હુ ખથી ગભરાય છે તેથી તે મહાભયકારી છે ॥સૂ. ૨॥

અને હુ એ પશુ કહુ છુ — 'તસન્તિ પાણા' ઈત્યાદિ

મૂલાર્થ—પ્રાણી વિદ્વિશાઓમા અને દિશાઓમા ઉદ્વેગ પામે છે અલગ-અલગ  
પ્રયોજનોથી લોલુપ લોક તેને સતાપ પહોચાડે છે તે ત્રસ પ્રાણી પૃથ્વી આદિ વિભિન્ન  
આશ્રયો પર આશ્રિત છે ॥સૂ. ૩॥

भाषा—

प्रस्यति भाषाः प्रदिशः दिक्षासु च । तत्र तत्र पूयङ् पश्य, आतुराः परितापयन्ति, सन्ति प्राणाः पूयङ् भिताः ॥ सू० ३ ॥

टीका—

भाषा=प्राणिनः प्रकरप्रसङ्गभात् प्रसञ्जीवाः प्रदिशा=प्रगता दिक् प्रदिक् विदिगित्यर्थः, सतः प्रदिशाः, तथा-दिक्षासु भाष्याविदिक्षु च समागन्तुक्येभ्यो दुस्त्रेभ्यः, प्रस्यन्ति=बिभ्यति । सर्षदिग्भिविदिक्षु प्रसाः सन्ति, ते च सर्षदिग्भिविदिग्भ्यः समागन्तुक्येभ्यो दुस्त्रेभ्यःस्यन्तीत्यर्थः ।

इतस्तेषां दुःस्त्रसंभवः ? इति जिज्ञासायामाह 'तत्र-तत्रे' स्यादि । तत्र-तत्रे=तेषु-तेषु, पूयङ्=विभिन्नेषु प्रयोगेषु, आतुराः=सर्षार्थमासादिगुण्यः प्रसन्तु परितापयन्ति=परिपीडयन्ति । विषिषवेदनोत्पादनेन प्राणव्यपरोपयेन च सर्षया दुस्त्रं जनयन्तीत्यर्थः । कीदृक्षास्ते प्रसाः, यानातुराः परितापयन्ति ? इति जिज्ञासाया-

टीकार्थ—प्रस का प्रकरण होने से प्राण 'इन्द्र' का अर्थ यहाँ प्रसञ्जीव समझना चाहिए । प्रस प्राणी विदिशाओं में जागृत हुए दुःस्त्रों से प्रसत हैं । तात्पर्य यह है कि—सभी विदिशाओं में और सभी दिशाओं में प्रसञ्जीव विद्यमान हैं और सभी विदिशाओं और दिशाओं से जाने वाले दुःस्त्रा से वे पीड़ित होते हैं ।

उन्हें दुःस्त्र क्यों होता है ? इसका उत्तर यह है—विभिन्न प्रयोगों से जातुर रोग सर्षात् सर्षा (शरीर), अम, मांस, आदि के अल्प पुरुष प्रस अंशों को पीड़ा पहुँचाते हैं । उन्हें मौसि-मौसि की वेदना उत्पन्न करके उनके प्राणों का व्यपरोपण करते हैं और सब प्रकार से दुःस्त्र उत्पन्न करते हैं । वे प्रसञ्जीव पृथिवी आदि के

टीकार्थ—प्रसनु प्रसङ्ग कोवाची प्रसु शब्दों का अर्थ प्रसञ्जीव समझने के लिये प्रस प्राणी विदिशाओं में तथा दिशाओं में जागृत हुए दुःस्त्रों की प्रस प्राणों से उत्पन्न वे वे दुःस्त्र विदिशाओं में जाने एवं दिशाओं में प्रस अंश विद्यमान से जाने एवं विदिशाओं तथा दिशाओं की जागृतवाणा दुःस्त्रों से पीड़ा प्रस से

तेने दुःस्त्रं या भाटे वाच्ये ? तेने उत्तर के से है—व्या-व्या प्रयोगों की जातुर रोग सर्षात् सर्षा (शरीर), अम, मांस वगैरह का अल्प पुरुष प्रस अंशों को पीड़ा पहुँचाते हैं, तेने व्युत्पन्नी-व्युत्पन्नी वेदना उत्पन्न करे से ते प्रस अंश पृथिवी आदि का अर्थ प्रस अंश-८६

માહ—' સન્તિ' ઇત્યાદિ । શ્રિતાઃ=પૃથિવ્યાદીનુ સમાશ્રિત્યાવસ્થિતાઃ, પૃથક્=વિભિન્નાઃ દ્વીન્દ્રિયાદયઃ, પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃ સન્તિ ।

યદ્યપિ સર્વદિગ્વિદિગ્મ્ય આગામિનો દુઃગ્વાદ્ વિમ્યન્તઃસજીવાઃ સ્વાત્મરક્ષાર્થે પૃથિવ્યાદીનુ સમાશ્રિત્વ વર્તન્તે તથાપિ માસચર્માદિલુબ્ધ્યા આતુરાસ્તાનુ વન્ધનતાડનાદિના શાવકાઘપહારેણ પ્રાણાઘપહારેણ ચ પરિપીડયન્તિ, તત્. સંસારં પ્રાપ્નુવન્તિ । તસ્માદેતત્ પરિજ્ઞાય સકલસાવધવ્યાપારપરિહારેણ સંયમાનુષ્ઠાને પ્રવર્તિતવ્યમિતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

અથ સર્વથા ત્રસકાયસમારમ્ભપરિત્યાગિનોઽનગારાનુ, તથા ત્રસકાય-સમારમ્ભપ્રવૃત્તાનુ દ્રવ્યલિઙ્ગિનુશ્ચ વિવિચ્ય પ્રતિવોધયિતુમાહ—' લજ્જમાણા ' ઇત્યાદિ ।

સહારે અલગ-અલગ રહે હુણે હૈં ।

યદ્યપિ સર્વ દિશાઓ ઓર વિદિગાઓ સે આનેવાલે દુ સ્ત્રો સે ડરને વાલે ત્રસ જીવ અપની રક્ષા કે લિણે પૃથ્વી આદિ કે સહારે ટિકે રહતે હૈં ફિર મી માંસ ઓર ચર્મ આદિ કે લોમી લોગ ડહોં વધન ંવ તાડન દ્વારા, ડનકે વન્ચોકા અપહરણ કરકે તથા ડનકે પ્રાણો કા હનન કરકે ડનહે પીડા પહુંચાતે હૈં ઓર ડસ કારણ વે હિંસક, સસાર કો પ્રાપ્ત હોતે હૈં । આશય યહ હૈ કિ—યહ સર્વ જાનકર સમ્પૂર્ણ સાવધ વ્યાપાર કા ત્યાગ કરકે સયમ કી સાધના મેં પ્રવૃત્ત હોના ડાહિણે ॥ સૂ૦ ૩ ॥

અવ પૂર્ણરૂપ સે ત્રસકાય કે આરભ કા ત્યાગ કરને વાલે અનગારો કા તથા ત્રસકાય કે આરભ મેં પ્રવૃત્તિ કરને વાલે દ્રવ્યલિગિયો કા વિવેચન કરકે સમજાતે હુણે કહતે હૈં—' લજ્જમાણા ' ઇત્યાદિ ।

અલગ-અલગ રહેલો છે

ને કે સર્વ દિશાઓ અને વિદિશાઓથી આવનારા દુ ખોથી ડરવાવાળા ત્રસકાય પોતાની રક્ષા માટે પૃથ્વી આદિના આશ્રયે ટકી રહે છે ફરી પણ માંસ અને ચામડા આદિના લોભી લોક તેને બધન એ પ્રમાણે તાડનદ્વારા, તેના અવ્યાઓનુ અપહરણ કરીને (ચોરી બધને) તથા તેના પ્રાણોનુ હનન-નાશ કરીને તેને પીડા પહોચાડે છે અને આ કારણથી તે હિંસક-સસારને પ્રાપ્ત થાય છે આશય એ છે કે—એ સર્વ જાણી કરીને સ પૂર્ણ સાવધ વ્યાપારને ત્યાગ કરીને સયમની સાધનામા પ્રવૃત્ત થવુ જોઈએ ॥૩॥

હવે પૂર્ણરૂપથી ત્રસકાયનાં આરભને ત્યાગ કરવાવાળા અલુગારોનુ તથા ત્રસકાયના આરભમા પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા દ્રવ્યલિગિઓનુ વિવેચન કરીને સમભવતા થકા કહે છે—' લજ્જમાણા ' ઇત્યાદિ

मूलम्—

स्मजमाना पुढो पास, अणगारा मोत्ति एणे पश्यमाणा, अमिणं, विरुपरुपेहि सत्थेहि तसकायसमारम्भेण, तसकायसत्थ समारममाणा अण्णे अणेगरुपे पाणे विहिससि ॥ सू० ४ ॥

अथा—

स्मजमाना पृथक् पश्य, अनगाराः स्मः, इति एके प्रसक्तमानाः, यदिमं विरुपरुपे अस्मैः प्रसक्तकायसमारम्भेण, प्रसक्तकायसत्थ समारममाणा अन्यान् अनकरूपान् मामान् विहिससन्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

स्मजमानाः=परमकरुपाऽर्द्रदृश्यतया प्रसक्तकायसमारम्भे पराङ्मुखताः प्रसक्तकायसमारम्भपरिष्ठागिनोऽजागारा इत्यर्थः । पृथक्=विभिन्नाः, कचित्-परिष्ठागिनोऽवधिमतःपर्ययकेवलिनः, केचित्-परोक्षज्ञानिना भाषितात्मान्, सन्तीति पश्य । यद्वा-पृथक्=द्रव्यलक्षित्वात् पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे प्रस-

मूलार्थ—प्रसक्त काय के आरंभ में संकोच करने वाले (अनगारा को) अन्त में समझे । 'इम अनगार हे' ऐसा कहने वाले कोर्ष-कोर्ष (द्रव्यलक्षणी) नाना प्रकार के शक्तों का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्रकार के प्राप्ति का ही हिंसा करते हैं उनको अन्त में देखो ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—परम करुणा से किनकर हृदय प्रवृत्त है ऐसे अनगार प्रसक्त काय के आरंभ से संकोच विमुक्त रहते हैं । वे अनगार अलग-अलग हैं । कोर्ष अवधिज्ञानी, कोर्ष मन-पर्ययज्ञानी और कोर्ष केवलज्ञानी हैं । कोर्ष-कोर्ष परोक्षज्ञानी भाषितमात्मा हैं

मूलार्थ—प्रसक्तकायना आरंभार्थं सङ्कोच करवावण्यं अणुभाराने अलग-अलग-समझे, अर्धे अणुभार छीजे' को प्रभावे कडेवावण्यं कोर्ष-कोर्ष द्रव्यलक्षणी, नाना प्रकारनां शक्तोक्षी प्रसक्तकायना आरंभ करीने, प्रसक्तकायना सन्धिने प्रयोग करवा यका पीछे पश्य अनेक प्रकारना प्राप्तिज्ञानी दिख करे छे तेने अलग अलग ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—परम करुणा की शक्ति हृदय प्रवृत्त से अना अणुभार प्रसक्तकायना आरंभ की शक्त या विमुक्त रहते छे-इस रहते छे ते अणुभार अलग-अलग छे । कोर्ष अवधिज्ञानी, कोर्ष मन-पर्ययज्ञानी, अने कोर्ष केवलज्ञानी छे कोर्ष-कोर्ष परोक्षज्ञानी



कायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैस्त्रमकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते, इति विलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्ते तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमान प्रवदमानाः 'वयमेव त्रसकायरक्षणपरा महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्; विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः, शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद्

इन्हें देखो । अथवा इन्हें द्रव्यलिङ्गियों से अलग समझना चाहिए । ये त्रसकाय का आरम्भ करते हुए डरते हैं, त्रस्त होते हैं, उद्विग्न होते हैं—तीन करण, तीन योग से त्रसकाय के आरम्भ के त्यागी हैं, यह देखो ।

और कोई-कोई 'हम अनगार हैं' इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए तथा 'हम ही त्रसकाय के रक्षक और महाव्रतधारी हैं' इस तरह प्रलाप करते हुए कई द्रव्यलिङ्गी हैं, उन्हें अनगारों से अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्त नहीं होते और न गृहस्थ के किसी काम का त्याग करते हैं । यह बात आगे बतलाते हैं—'यदिमम्' इत्यादि ।

द्रव्य और भाव के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है । द्रव्यशस्त्र के तीन

भावित्वात्मा छे आने लुञ्चो. अथवा अने द्रव्यलिङ्गीओथी अलग समञ्जवा नेछंअने ने त्रसकायने आरल करता उरे छे, त्रस्त थाय छे, उद्विग्न थाय छे—त्रषु करषु, त्रषु योगथी त्रसकायना आरलना त्यागी छे अने लुञ्चो.

अने कोछि-कोछि 'अमे अषुगार छीअे' अे प्रभाळु अक्षिमाकपूर्वक उडेता थका तथा 'अमेञ्च त्रसकायना रक्षक अने महाव्रतधारी छीअे' अे प्रभाळु प्रदाप-अकवाह करनारा केटलाक द्रव्यलिङ्गी छे तेने अषुगारोथी नूहा समञ्जे.

अषुगार होवानु अक्षिमान करवावाणा अे द्रव्यलिङ्गी अषुगारना शुष्वाभा नरापषु प्रवृत्त नथी अने गृहस्थना कोछि पषु कामने तेओअे त्याग कर्यो नथी ते वात आगण अतावे छे—'यदिमम्' इत्यादि

द्रव्य अने भावना सेहथी शस्त्र के प्रकारना छे द्रव्यशस्त्रना त्रषु सेह छे स्वकाय,

द्विविधम्, तत्र-द्रव्यद्वय-स्वकाय-परकायो-मयकायमेदात् द्विविधम् । तत्रस्वकाय-  
सहोप्रसक्तयस्य प्रसक्तायः, यथा-मृगादीनां व्यापकुम्बुरादयः, मनुष्यादीनां मनुष्यादयः ।  
परकायसहस्रम्-पापाणजलाग्निमगुठस्वस्तोमरुदिरिन्द्रादयः । उभयकायसहस्रम्-मगुठस्व  
विधारिणो मनुष्यादयः । भावद्वयं तु प्रसक्तार्थं प्रति मनोवाक्यकायानां दुष्प्रणिधानम् ।  
प्रसक्तयसमारम्भेण, प्रसक्तः=प्रसक्तधीमः कायः=शरीरं यस्य स प्रसक्तयस्य  
समारम्भः=वीडाकत् सावद्यस्यापारस्तन, इमं=प्रसक्तार्थं विहितन्ति ।

प्रसक्तयार्हिसायां प्रवृत्ताः त्वत्तु पद्मीपनिकायस्य लोकं सर्वमेव  
विहितन्तीत्याह-‘प्रसक्तयसहस्रम्’ इत्यादि । प्रसक्तयसहस्रं=प्रसक्तधीपमर्दकं सर्वं  
पूर्वोक्तप्रकारं, समारम्भमाणाः=प्रसक्तार्थं प्रति प्रयुक्तानां अन्यान्-प्रसक्तयभिन्नान्

मद हैं-स्वकाय परकाय, और उभयकाय । प्रसक्तय का प्रसक्तय स्वकाय-सहस्र है  
जैसे मृग आदि के शिष्ट व्याप कुत्ता आदि, मनुष्य के शिष्ट मनुष्य आदि । परकाय-सहस्र जैसे  
पत्थर बस अग्नि, लकड़ी, लकड़ार लोमर, शरी आदि । उभयकाय-सहस्र जैसे छात्रों, लड़कियों  
आदि कारण करने वाला मनुष्य आदि । प्रसक्तय के प्रति मन बचन, और कायका अप्रशस्त  
व्यापार होना भावद्वय है । इन नान्य प्रकार के शक्तों से प्रसक्तय का समारम्भ करके मोग  
प्रसक्तय को पीडा पहुँचाते हैं ।

प्रसक्तय की हिंसा में प्रवृत्ति करने वाले एक प्रकार के अनिच्छाकारण सम्पूर्ण  
लोक की हिंसा करते हैं, यह बात कहते हैं-प्रसक्तय में प्रसक्तय की हिंसा करने वाले  
शक्तों का जो प्रयोग करते हैं वे प्रसक्तय के अतिरिक्त अनेक प्रकार के दृष्टीकाय आदि

परकाय अने उभयकाय, प्रसक्तयत्तु प्रसक्तय ते स्वकायसहस्रं च नेम भुज आदिने  
भागे वाय-कुत्तरा आदि, मनुष्यने भागे मनुष्य आदि परकायसहस्रं, नेमके पत्थर  
लकड़, अग्नि, लकड़ी वरवार, आहुति शरी आदि, उभयकायसहस्रं, नेमके-लकड़ी  
लकड़ार आदि कारण करवाणया मनुष्य आदि, प्रसक्तयना प्रति मन, बचन अने  
हाथाने अप्रशस्त व्यापार यवो ते आकाशसहस्रं च ते नान्य प्रकारनां शक्तधी प्रसक्तयना  
समारम्भ करीने दोह प्रसक्तयने पीडा पहुँचाते हैं

प्रसक्तयनी हिंसामा प्रवृत्ति करवाणया च प्रशस्त्य उपनिशापस्य सम्पूर्ण  
दोहनी हिंसा करे च जे वाग हरे उ-प्रसक्तयभा प्रसक्तयनी हिंसा करवाणया-लकड़ो  
जे प्रशस्त करे उ, ते प्रसक्तयधी व्याप अनेक प्रकारना दृष्टीकाय आदि वाय रक्ष-पर

અનેક્યરૂપાન્ પૃથિવ્વીકાયાદીન્ પञ્ચસ્થાવરાન્, પ્રાણાન્=પ્રાણિન્, ત્રિહિંસન્તિ ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्दमूलपत्र-  
पुष्पफलादि भोक्तुं तदाश्रितत्रसजीवसमारम्भेण पृथिव्यादिस्थावरसमारम्भेण च  
त्रसजीवान्, पृथिव्यादीन् स्थावरांश्च ध्नन्ति घातयन्ति हिंसतोऽनुमोदयन्ति च ।  
दण्डिनोऽपि—

“ वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः ” इत्यादि  
प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति शास्त्रप्रतिषिद्धमपि पद्जीवनिकाय-  
समारम्भं कारयन्ति । प्रतिमामन्दिरादिनिर्माणार्थं गर्तकरणे, पापाणादीना  
खण्डश करणे, तेपामूर्ध्वतो निपतने च मनुष्यादीन् तथा—बहुतरवृक्षच्छेदने

पाँच સ્થાવર પ્રાણિયોં કી મોં હિંસા કરતે હૈ ।

સસાર મેં વહુત પ્રકાર કે દ્રવ્યલિંગી હૈ । ઉન મેં સે શાક્ય આદિ કન્દ, મૂલ, પત્ર, પુષ્પ, ફલ આદિ ભોગને કે લિષ્ટે ઉન પર રહે હુએ ત્રસજીવોં કા સમારભ કરકે ત્રસ ઔર સ્થાવર જીવોં કી ઘાત કરતે હૈ, કરાતે હૈ ઔર ઘાત કરને વાલે કી અનુમોદના કરતે હૈ । દણ્ડી મી—

‘ હમ પંચમહાવ્રતધારી, જિનાજ્ઞા કે આરાધક અનગાર હૈં ’ એસા કહને વાલે શૂદ્ધે સાધુ સાવધ કા ઉપદેશ દેતે હૈં ઔર શાસ્ત્ર મેં નિષિદ્ધ પદ્જીવનિકાય કા સમારભ કરાતે હૈં । પ્રતિમા, મન્દિર, આદિ કા નિર્માણ કરને કે લિષ્ટે—ખડ્ડે ખોદને મેં, પથરોં કે ટુકડે કરને મેં, ઉન્હેં ડપર સે પટકને મેં મનુષ્ય આદિ કા ઘાત કરાતા હૈ । વહુત—સે વૃક્ષોં કો છેદને મેં વૃક્ષાશ્રિત અણ્ડજોં કે પચેન્દ્રિય વર્ષ્વોં કા ઘાત કરાતે હૈં ।

પ્રાણીઓની પણ હિંસા કરે છે

સસારમા ઘણા પ્રકારના દ્રવ્યલિંગી છે એમાથી શાક્ય આદિ કન્દ, મૂળ, પત્ર, પુષ્પ, ફલ આદિ ભોગવા માટે—ઉપયોગ કરવા માટે, તેના પર રહેલા ત્રસ જીવોનો સમારભ કરીને અને પૃથ્વી આદિ સ્થાવર જીવોનો સમારભ કરીને ત્રસ અને સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરે છે કરાવે છે, અને ઘાત કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે દહી પણ “ અમે પંચમહાવ્રતધારી, જિનાજ્ઞાના આરાધક અણુગાર છીએ.” એ પ્રમાણે કહેવાવાળા જુઠા સાધુ સાવધનો ઉપદેશ આપે છે અને શાસ્ત્રમા નિષિદ્ધ પદ્જીવનિકાયનો સમારભ કરાવે છે

પ્રતિમા, મન્દિર વગેરેનુ નિર્માણ કરવા માટે ખાડા ખોદવા, પથરોના ટુકડા કરાવવા, તેને ઉપરથી પછાડવામા મનુષ્ય આદિને ઘાત કરાવે છે ઘણાજ વૃક્ષોને કાપવાથી વૃક્ષોના

तदाभितान् अष्टजशावकादीन्, पञ्चेन्द्रियान् पिपीलिकापतङ्गादिबहुविधपिकठेन्द्रि  
यांश्च, प्रतिमापूजनार्थं पुष्पवाटिकाकरणे पुष्पपत्रफलादिजोष्टनेऽपि च पशुवीथनि  
कायान् पातयन्ति ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिन कथयति—‘तस्य स्तसु’ इत्यादि ।

मूलाय—

तस्य स्तसु भगवत्या परिष्ठा पवेश्या, इमस्त स्वेन जीवियस्म परिचंण-  
मागण—पुष्पाय नारमरममोयपाय दुारकपट्टिपायहेठं से सपमेव तसकायसत्य समारं  
स्तु, अण्णेहिं वा तसकायसत्यं समारंमावेद, अण्ये वा तसकायसत्यं समारंममाये  
समणुनाप्य, सं से अदियाए, सं से अपोहीए ॥ सू० ५ ॥

कौडी पतंग आदि बहुत प्रकार के विकलेन्द्रिय जीवों का घात करते हैं । प्रतिमापूजन के  
लिए पूजाका बगीचा बनाने में फल, पत्ता और फल आदि तोड़ने में भी पट्टकाय के जीवों  
का घात करते हैं ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘तस्य स्तसु’ इत्यादि ।

मूलाय—प्रसकाम के नारम के विषम में भगवान्ने उपदेश दिया है । इसी  
जीवन के कर्म मानन, और पूजन के स्थि, तथा जन्म—मरण से छूटने के स्थि और  
दुःख का विनाश करने के स्थि वह स्वयं प्रसकाम के दात्र का समारम करता है  
पूजा द्वारा प्रसकाम का समारम करता है और प्रसकाम का समारम करन बाह अण्य  
जीवों का अनुमोदन करता है । यह उसके अहित के स्थि हैं, उसकी अनीधि के  
स्थि है ॥ सू० ५ ॥

आश्रये रवेता अदण्य लवेना पञ्चेन्द्रिय अण्योभ्योनि धान कशावे उ कौडी  
पतंग आदि पञ्चाय प्रकारना विकलेन्द्रिय लवेनेो घात कशावे उ प्रतिमापूजन आटे  
रुवेना अजीवा लनाववाभां हृत् पती (पांडरा) अने हृत् आदि तोडकभा पण  
प शावना लवेनेो घात करे उ ॥ ४ ॥

इवे सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीनि हटे उः— तस्य स्तसु. इत्यादि

मूलाय—प्रसकामना आरकाना विषमभां जमवाने उपदेश आश्रये उ आ  
लवनता बदन मान, अने पूजनने आटे तथा ज म—मरणधी छूटवा आटे अने  
इण्यने नाश करवा आटे ते पीते प्रसकामना शस्त्रने समारम करे उ जीव वासे  
प्रसकामनेो स्मरण कशावे उ अने प्रसकामनेो समारम करवावाण्य अन्व टोडने  
अनुमोदन आये उ ते अनेना अदित आटे उ अनेनी अनीधि आटे उ ॥ सू० ५ ॥

अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् पञ्चस्थावरान्, प्राणान्=प्राणिनः, विहिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्दमूलपत्र-पुष्पफलादि भोक्तुं तदाश्रितत्रसजीवसमारम्भेण पृथिव्यादिस्थावरसमारम्भेण च त्रसजीवान्, पृथिव्यादीन् स्थावरांश्च ध्नन्ति घातयन्ति हिंसतोऽनुमोदयन्ति च । दण्डिनोऽपि—

“ वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः ” इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति शास्त्रप्रतिषिद्धमपि षड्जीवनिकाय-समारम्भं कारयन्ति । प्रतिमामन्दिरादिनिर्माणार्थं गर्तकरणे, पापाणादीनां खण्डश करणे, तेषामूर्ध्वतो निपतने च मनुष्यादीन् तथा-बहुतरदृक्छेदने

पाँच स्थावर प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

ससार में बहुत प्रकार के द्रव्यलिङ्गी हैं । उन में से शाक्य आदि कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल आदि भोगने के लिए उन पर रहे हुए त्रसजीवों का समारभ करके त्रस और स्थावर जीवों की घात करते हैं, कराते है और घात करने वाले की अनुमोदना करते हैं । दण्डी भी—

‘हम पंचमहाव्रतधारी, जिनाज्ञा के आराधक अनगार हैं’ ऐसा कहने वाले झूठे साधु सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध षड्जीवनिकाय का समारभ कराते हैं । प्रतिमा, मन्दिर, आदि का निर्माण करने के लिए—खड्डे खोदने में, पत्थरों के टुकड़े करने में, उन्हें ऊपर से पटकने में मनुष्य आदि का घात कराता हैं । बहुत-से वृक्षों को छेदने में वृक्षाश्रित अण्डजों के पचेन्द्रिय बच्चों का घात कराते हैं ।

प्राणीઓની પણ હિંસા કરે છે

સ સારમા ધણા પ્રકારના દ્રવ્યલિંગી છે એમથી શાક્ય આદિ કન્દ, મૂળ, પત્ર, પુષ્પ, ફલ આદિ ભોગવવા માટે—ઉપયોગ કરવા માટે, તેના પર રહેલા ત્રસ જીવોનો સમારભ કરીને અને પૃથ્વી આદિ સ્થાવર જીવોનો સમારભ કરીને ત્રસ અને સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરે છે કરાવે છે, અને ઘાત કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે દડી પણ “અમે પંચમહાવ્રતધારી, જિનાજ્ઞાના આરાધક અણુગાર છીએ.” એ પ્રમાણે કહેવાવાળા જુઠા સાધુ સાવધનો ઉપદેશ આપે છે અને શાસ્ત્રમા નિષિદ્ધ ષડ્જીવનિકાયનો સમારભ કરાવે છે

પ્રતિમા, મંદિર વગેરેનું નિર્માણ કરવા માટે ખાડા ખોદવા, પત્થરોના ટુકડા કરાવવા, તેને ઉપરથી પછાડવામા મનુષ્ય આદિનો ઘાત કરાવે છે ધણાજ વૃક્ષોને કાપવાથી વૃક્ષોના

तदाभितान् अष्टमश्रावकादीन्, पञ्चेन्द्रियान् पिपीलिकापतङ्गादिवहुविधयिककेन्द्रि  
यांश्च, प्रतिमापूजनार्थं पुष्पवाटिकाकरण्ये पुष्पप्रफलादित्रोटनेऽपि च पश्वीषनि  
कायान् पातयन्ति ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी अम्बुस्वामिन क्वयति—'तस्य सक्तु' इत्यादि ।

मूलम्—

तस्य सक्तु मगत्वया परिष्णा पशेइया, इमस्स वेय जीवियस्स परिषंदन—  
मागय—पूजमाण जाइमरणमोयजाप दुःखपडियायहेठं से सयमेव तसकायसत्य समारं  
म्ह, अण्णेहि वा तसकायसत्यं समारंमाणेइ, अण्णे वा तसकायसत्यं समारंममाणे  
समणुजायाइ, तं से अरियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ५ ॥

कीर्ती परतंग आदि बहुत प्रकार के विकल्पोन्मिय जीवों का पात करते हैं । प्रतिमापूजन के  
स्मिन् फूलोंका बगीचा बनाने में, पुष्प, पत्रा और फल आदि तोड़ने में भी पशुकाय के जीवों  
का पात करते हैं ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी अम्बु स्वामी से कहते हैं—'तस्य सक्तु' इत्यादि ।

मूलार्थ—प्रसक्त्याय के आरंभ के विषय में मगत्वान्ने उपदेश दिया है । इसी  
जीवन के कथन, मानन, और पूजन के स्मिन्, तथा अन्म-मरण से छूटने के स्मिन् और  
दुःख का विनाश करने के स्मिन् वह स्वयं प्रसक्त्याय के शब्द का समारंभ करता है,  
पुसरा द्वारा प्रसक्त्याय का समारंभ करता है और प्रसक्त्याय का समारंभ करन बाळ अन्म  
कीर्ती का अनुमोदना करता है । यह उसके बह्मित के स्मिन् है, उसकी अंबोधि के  
स्मिन् है ॥ सू० ५ ॥

आश्रये रहेहा अहंन लोवोना पञ्चेन्द्रिय लब्ध्याज्जोने। धातु करवे छे कीर्ती  
पतन आदि पशुकाय प्रकारना विकल्पोन्मिय लोवोने। धातु करवे छे प्रतिमापूजन भाटे  
इतोना अजीवा जनापवभां हुस पत्तां (पांडका) अने इण आदि तोडनामा पशु  
पशुकायना लोवोने। धातु करे छे ॥ ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी अम्बु स्वामीने कहे छे— तस्य सक्तु. इत्यादि.

मूलार्थ—प्रसक्त्यायना आरंभना विषयमां लजवाने उपदेश आश्रये छे आ  
लपनना वदन मान, अने पूजनने भाटे तथा अन्म-मरणशी छूटना भाटे अने  
दुःखने नाश करवा भाटे ते शीते प्रसक्त्यायना शब्दने समारंभ करे छे जीव पासे  
प्रसक्त्यायने आरंभ करवे छे अने प्रसक्त्यायने समारंभ करवावाण्य अन्म तोडने  
अनुमोदन आयि छे ते जेमना बह्मित भाटे छे जेमनी अंबोधि भाटे छे ॥ सू० ५ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दनमानन-  
पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतु, स स्वयमेव त्रसकायशस्त्रं समारभते,  
अन्यैर्वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान्  
समनुजानाति, तत्तस्याहिताय, तत्तस्याबोधये ॥ सू० ५ ॥

टीका—

तत्र=त्रसकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=ज्ञ-प्रत्याख्यानभेदाद्  
द्विविधा, खलु निश्चयेन प्रवेदितः=प्रतिबोधिता । कर्मरजःपरिहरणार्थं जीवेन परिज्ञा-  
वश्य शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वारम्—

लोक कस्मै प्रयोजनाय त्रसकायमुपमर्दयतीत्याह—‘अस्य चैव  
जीवितस्य’ इत्यादि । अस्यैव=अचिरस्थायिनः, जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्—  
मांसचर्माद्यर्थम्, तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशसा, तदर्थम्, यथा-  
व्याघ्रादिमृगयादौ, मानन=जनसत्कारस्तदर्थम्, यथा-राज्ञ सकाशात् पदकादि

टीकार्थ—त्रसकाय के समारभ के सबध में श्री महावीरने जपरिज्ञा और प्रत्याख्यान-  
परिज्ञा का उपदेश दिया है । अर्थात् भगवान्ने कहा है कि-कर्मरज को हटाने के लिए जीव  
को परिज्ञा अवश्य स्वीकार करनी चाहिए ।

उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा करते हैं ? सो कहते हैं—इसी  
अस्थायी जीवन के सुख के लिए, मांस और चमड़ी के लिए, तथा प्रशसा के लिए, जैसे  
व्याघ्र आदि का शिकार करने में, मानन के लिए, जैसे राजा से पदवी पाने के उद्देश्य से

टीकार्थ—त्रसकायना समारभना सधधमा श्री महावीरे जपरिज्ञा अने  
प्रत्याख्यानपरिज्ञाने उपदेश आये छे अर्थात् लगवाने कहु छे के-कर्म रजने हर  
करवा भाटे एवे परिज्ञा अवश्य स्वीकारवी जेई अये

उपभोग द्वार—

लोक शुं प्रयोजनथी त्रसकायनी हिंसा करे छे ? ते कहे छे—आ अस्थिर एवनना  
सुध भाटे, मांस अने चामडीना भाटे, तथा प्रशसा भाटे जेअ के-वाघ आदिने  
शिकार करवाभा मान भाटे, जेभ के-राज पासेथी पदवी भेजववाना उद्देश्यथी एवता

सर्वं सखीसहस्रव्याघ्रादिपृथक्कलेष्वरनिर्माणादौ, तथा-पूजन-वस्त्ररत्नादिसामस्त-  
रक्षम्, यथा-देवीपूजार्थं बभिवानादौ,

तथा-प्राप्तिमरणमोक्षनार्थम् = जन्ममरणवन्वपरिशारार्थम् = यथा मोक्षका-  
मना यागादौ, यथा-वातादिव्यापिमतीकाराय वैद्यादौ सः-प्रीयन्सुखाद्यर्थी  
स्वयमेव प्रसक्त्यासक्तं समारम्भते = व्यापारयति अन्यैर्वा प्रसक्त्यासक्तं समारम्भयति =  
मयोन्नयति, अन्याद् वा प्रसक्त्यासक्तं समारम्भमाणान् समनुजानाति = अनुमोदयति,  
तत् = प्रसक्त्यासमारम्भणम्, तस्य = प्रसक्त्यास समारम्भं कुर्वन्, कारयितुः,  
अनुमोदयितुश्च, अहिंसाय मवति । तथा तत्-तस्य अथापये = सम्पत्कालामाय  
मवति ।

कथित व्याघ्र आदि के समान व्याघ्र आदि का फलेवर बनाने में, और पूजक के लिए जैसे  
रत्न आदि की प्राप्ति के लिए, तथा-देवीकी पूजा करने के लिए प्रयोजन से बभिवान  
आदि करने में हिंसा करते हैं ।

तथा-जन्म-मरण-मोक्ष अर्थि से छुटकारा पाने के लिए, जैसे-मोक्ष की कामना से  
जन्म अर्थि करने में, वात आदि के रोगों का प्रतीकार करने के लिए तैस आदि चैवार  
करने में, जीवन के सुख का जहाँ स्वयं ही प्रसक्त्यास के द्वारा का समारम्भ करता  
है दूसरो से प्रसक्त्यास के द्वारा का समारम्भ करता है और प्रसक्त्यास के द्वारा का समारम्भ करने  
एवं का अनुमोदन करता है । यह प्रसक्त्यास का आरम्भ उस आरम्भकर्ता के लिए अहितकर  
और अनोपिजनक होता है ।

प्राप्तना समान वाद्य आदिन्तु इतेष्वर जनापवाभां जने पूजन भाटे जेभडे-वस्त्र, रत्न  
आदि प्राप्ति भाटे तथा देवीनी पूजा करनेवाला प्रयोजनकी जतिदान आदि करनेवाला  
हिंसा करे छे.

तथा-जन्म, मरण जन्म आदिथी छुटवा भाटे जेभडे-मोक्षनी कामनाथी यज्ञ  
आदि करनेवाला, वात आदि रोगनी प्रतिहार करवा भाटे (राजनी इवा करने भाटे)  
उपनना मुजना जहाँ स्वयं-शैलेक प्रसक्त्यासना शक्तीना समारम्भ करे छे जीव  
प्राप्ते प्रसक्त्यासना शक्तीना समारम्भ करवावे छे जने प्रसक्त्यासना शक्तीना समारम्भ  
करवाणाने अनुमोदन अर्थि छे ते प्रसक्त्यासना आरम्भ जे आरम्भ करनेवाले भाटे  
अहितकरता जने अनोपि जनक करवावे छे



## वेदनाद्वारम्—

अत्र प्रसङ्गतस्रसकायस्य वेदनोच्यते—वेदना यथासंभवं द्विविधा—का यिकी, मानसी च । श्लयमूच्यादिवेधाज्जाता, ज्वरातिसारकासादिव्याधिजनिता वा कायिकी, प्रियवियोगादकृता मानसी ॥ सू० ५ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे त्रसकायस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह—  
'से त' इत्यादि ।

## मूलम्—

से त संवुच्छमाणे आयाणीयं समुष्टाय सोच्चा भगवओ अनगाराणं वा अन्तिए इहमेगेसि णाय भवइ, एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु

## वेदनाद्वार—

प्रसग पाकर त्रसकाय की वेदना का निरूपण किया जाता है—यथासंभव वेदना दो प्रकार की है—कायिक और मानसिक । कांट, सुई आदि चुमने से अथवा ज्वर, अतिसार, खांसी आदि रोगों से उत्पन्न होने वाली वेदना कायिक कहलाती हैं । प्रिय वस्तु के वियोग आदि कारणों से होने वाली वेदना मानसिक वेदना है ॥ सू० ५ ॥

जिसने तीर्थंकर आदि के समीप त्रसकायका स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार विचारता है—'से तं' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् अथवा अनगारों के समीप सुनकर वह त्रसकाय का ज्ञाता त्रसकाय को जानता हुआ समय धारण करके इस प्रकार जानता है—यह त्रसकाय का आरम्भ

## वेदनाद्वार—

प्रस ग ढोवाथी त्रसकायनी वेदानुं निरुपषु करवाभां आवे छे—साधारण्य रीते वेदना भे प्रकारनी छे—कायिक अने मानसिक काटा, सोय आदि वागवाथी, अथवा ज्वर—ताप, अतिसार—आडा, भासी आदि रोगोथी उत्पन्न थवावाणी वेदना कायिक कडेवाय छे प्रिय वस्तुना वियोग वगेरेना कारण्णोथी थनारी वेदना मानसिक—वेदना छे ॥सू०५॥

जेणे तीर्थंकर आदिना समीपमा त्रसकायनु स्वर्ष्य समल्ल वीधुं छे, ते आ प्रभाणे विचारे छे—'से त' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् अथवा अणुगारोना समीप साक्षणीने ते त्रसकायना ज्ञाता त्रसकायने जणुता थका समय धारण करीने आ प्रभाणे जणुं छे—आ त्रसकायने आरम्भ

मारे, एष स्वच्छ नरक, इच्छत्य गच्छिष्य सोप, मणिषि विरूपरूपेहि सत्यहि  
 तसकायसमारंभेण, तसकायस्त्य समारंभमाप्ये अण्यो अपेगस्त्वे पापे  
 विहिंसइ ॥ सू० ६ ॥

छाया—

स तत् संपुच्यमान आदानीपं समुत्पाय भुत्वा भगवतोऽनगाराणां वा  
 मन्तिके, इहेकेपां इतं भवति—एष स्वच्छ ग्रन्थः एष स्वच्छ मोहः, एष स्वच्छ  
 मारः, एष स्वच्छ नरकः। इत्यर्थे वृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः सस्यैः  
 प्रसकायसमारंभेण प्रसकायशक्तं समारंभमाप्योऽन्यान् अनेकरूपान् माषान्  
 विहितस्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

यः स्वच्छ भगवतः तीर्थंकरस्य, अनगाराणां=तदीयभयमनिर्घ्न्यानां वा मन्तिके  
 भुत्वा, आदानीमम्=उपादेयं सर्वसावधयोगविरहितस्य चारित्र्यं, समुत्पाय=अग्नीकृत्य,  
 विरूपति, स तत्=प्रसकायसमारंभं संपुच्यमानं=अहिताबोधिजनकरत्वेन विहाता  
 सन् एवं विभावयति—

मन्त्र है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है। स्वच्छ भोग गाना प्रकार के राजों द्वारा  
 प्रसकायका आरंभ करके, प्रसकायका आरंभ करते हुए अनेक प्रकारके अन्य प्राणियोंका  
 (भी) विहाता करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थंकर के मुख से अथवा उनके अनुयायी निर्घ्न  
 मणों के मुख से सुनकर सर्व सावध के त्यागरूप चारित्र्य को अंगीकार करके विचरता है,  
 वह प्रसन्नप के समारंभ को अहितकर और अबोधिजनक समझता है। वह इस प्रकार  
 सोचता है—

मन्त्र है, या मोह है या मार है; या नरक है तोहृष्य लोक नान्य प्रकारकी  
 शक्तोद्देश प्रसकायने आरंभ करीने, प्रसकायने आरंभ करवा यहा अनेक प्रकारना  
 अन्य प्राणियोंना पक्ष बाध करे ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष जन्मान तीर्थंकरना अनुयायी अथवा तेभना अनुयायी  
 निर्घ्न मणोना अनुयायी संलग्नीने सव सावध त्यागरूप चारित्र्यने अंगीकार करीने  
 विचरे ॥ ते प्रसन्नपना समारंभने अहितकर अने अबोधिजनक—अन्योधि  
 करना समझे ॥ ते या प्रभावे विचार करे ॥—

इह=मनुष्यलोके, एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशमजातसम्यगवबोधवैराग्याणा  
मात्मार्यिनामेव ज्ञातं भवति । किं ज्ञातं भवती ?-त्याकाङ्क्षायामाह—' एस खलु  
ग्रन्थः. ' इत्यादि ।

एष=त्रसकायसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=कर्मवन्धः, कारणे  
कार्योपचारात्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा एषः=त्रसकायसमारम्भः मोहः=  
विपर्यासः-अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष  
एव नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थम्=एतदर्थं=ग्रन्थ-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि  
पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः, गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्ध=  
भोगामिलाषी, लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्य-  
मेव प्रवर्तते ।

इस मनुष्य लोक में श्रवण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग् ज्ञान और वैराग्य प्राप्त  
कर लेने वाले ही यह ज्ञान लेते हैं कि-त्रसकाय का समारभ निश्चय ही कर्मवध है । यहाँ  
कारण में कार्यका उपचार करके कर्मवध के कारण को कर्मवध कहा है । आगे भी इसी प्रकार  
समझना चाहिए । यह त्रसकाय का समारभ मोह अर्थात् अज्ञान है । वह मार अर्थात्  
निगोद आदि में मृत्यु का कारण है । यह समारभ नरक है अर्थात् दस प्रकार की नारकीय  
यातना का स्थान है ।

अथ, मोह, मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी लोग  
वार-वार इसी के इच्छुक होने हैं । अथवा भोगों की अभिलाषा करने वाले संसारी लोग इस  
अथ, मोह, मार और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

આ મનુષ્ય લોકમાં નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યગ્જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય પ્રાપ્ત કરી-  
લેવાવાળાને એમ બાણી શકે છે કે-ત્રસકાયનો સમારભ નિશ્ચયજ્ઞ અથ-કર્મવધ છે  
અહિં કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને કર્મવધના કારણને કર્મવધ કહ્યો છે આગળ  
પણ આ પ્રમાણે સમજવું જોઈએ

આ ત્રસકાયનો સમારભ મોહ અર્થાત્ અજ્ઞાન છે આ માર અર્થાત્ નિગોદ આદિમાં  
મૃત્યુનું કારણ છે આ સમારભ નરક છે અર્થાત્ દસ પ્રકારની નારકીય યાતનાનું સ્થાન છે

અંથ, મોહ, મરણ અને નરકરૂપ ઘોર દુઃખમય ફલ પ્રાપ્ત કરીને પણ અજ્ઞાની  
લોક વારવાર તેની ઇચ્છાવાળા થાય છે અથવા ભોગોની અભિલાષા કરવાવાળા  
સંસારી લોક આ અથ, મોહ, માર અને નરક માટેજ પ્રવૃત્તિ કરે છે.

‘भोक्त पुनः पुनर्ग्रन्थाधर्यमेव प्रवर्तते’ इति यदुक्त, तत् कथं ज्ञायते ? इति  
 विवासायामाह—‘यदिमम्’ इत्यादि ।

यद्=यस्मात्, विकल्पकैः=नानाविधैः शस्त्रैः=पूर्वोक्तप्रकारैः प्रसक्त्यायसमारम्भम्=  
 प्रसक्त्यायोपमर्दनरूपतावद्यव्यापारेण, इम=त्रमकार्यं विद्मिन्नस्ति । तथा प्रसक्त्याय  
 उल्लं समासमाण्य=व्यापारयन् अन्यान् पृष्ठीकायादीन् स्यावरान्, पाणान्=  
 पाणिना, विद्मिन्नस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ६ ॥

यस्मै प्रयोजनाय प्रसक्त्यामो इन्पते, तत् प्रयोजनं यद्यपि—‘इमस्स येव  
 जीवियस्स’ इत्यादिनाऽभिहितम्, तथापि विशिष्य तदप्रयोजनं पुन प्रदर्शयितुमाह—  
 ‘से वेमि’ इत्यादि ।

भोग वारम्भार मय आदि के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं यह बात कैसे माहम हुई ?  
 इस का समाधान के लिए कहते हैं—‘यदिमम्’ इत्यादि ।

क्या कि वे नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा प्रसक्त्याम का समास करके प्रसक्त्याय की  
 हिंसा करते हैं और प्रसक्त्याम का समास करते हुए पृष्ठीकाय आदि अन्य रथावर  
 प्राणियों का भी निरापना करते हैं ॥ सू० ६ ॥

भिस प्रयोजन से प्रसक्त्याम की हिंसा की जाती है यह योजन ‘इस जीवन के सुख  
 के लिए इत्यादि कर्मन द्वारा बतझामा या चुका है, फिर भी विशेष रूप से उस हिंसाका  
 प्रयाजन बतझाने के लिए श्री सुभर्मा स्वामी कहते हैं—‘से वेमि’ इत्यादि ।

वेदक वारम्भार मय आदिना आठेण प्रवृत्ति करे छ जे जत ठेनी एते माहम  
 पदी ? जेनु समाधान करवा आटे कहे छै— यदिमम्’ इत्यादि

हेम के नाना प्रकारना शस्त्रेद्वारा प्रसक्त्यामो समासक करने प्रसक्त्यामो हिंसा  
 करे छे जेने प्रसक्त्यामो समासक करवा यज्ञ पृष्ठीकाय आदि अन्य रथावर प्राणी  
 जेने पण पात करे छे ॥ सू० ६ ॥

ने प्रयोजनकी प्रसक्त्यामो हिंसा करवाया आवे छे ते प्रयोजन का सुखना  
 सुख आटे’ इत्यादि निवेदनद्वारा ज्ञानाय छे (यथाची कथा छीजे) इती पण  
 विशेषरूपकी जे हिंसानु प्रयोजन ज्ञानाय आटे श्री सुभर्मा स्वामी कहे छै—  
 ‘से वेमि’ इत्यादि

## मूलम्—

से वेमि-अप्येगे अच्चाए हणति, अप्येगे अजिगाए वहंति, अप्येगे मंसाए वहंति, अप्येगे साणियाए वहंति, एधं हिययाए, पिताए, व्रयाए, पिच्छाए, पुच्छाए, वालाए, सिगाए, विसाणाए, दत्ताए, दाढाए, णहाए, ण्हारूणीए, अट्टीय, अट्टिर्मिजाए, अट्टाए, अणट्टाए, अप्येगे 'हिंसिस्तु मे' ति वा नहंति, अप्येगे 'हिंसंति मे' ति वा वहंति, अप्येगे 'हिंसिस्संति मे' ति वा वहंति ॥ सू० ७ ॥

## छाया—

तद् ब्रवीमि-अप्येके अर्चायै घ्नन्ति, अप्येके अजिनाय घ्नन्ति, अप्येके मासाय घ्नन्ति, अप्येके शोणिताय घ्नन्ति एव हृदयाय, पिताय, वसायै, पिच्छाय, पुच्छाय वालाय, शृङ्गाय, विषाणाय, दन्ताय, दंष्ट्रायै, नखाय, स्नायवे, अस्थे, अस्थिमज्जायै, अर्थाय, अनर्थाय, अप्येके 'अवधीपुरस्मा'-निति वा घ्नन्ति, अप्येके 'हिसन्त्यस्मा' निति वा घ्नन्ति, अप्येके 'हनिष्यन्त्यस्मा'-निति वा घ्नन्ति ॥ सू० ७ ॥

मूलार्थ—मैं वह (प्रयोजन) कहता हूँ—कोई अर्चा शरीर के लिए त्रसकाय का विराधना करते हैं, कोई चर्म-चमडे के लिए घात करते हैं, कोई मांस के लिए घात करते हैं, कोई रक्त के लिए घात करते हैं, कोई हृदय के लिए, पित के लिए, चर्वा के लिए पख के लिए, पूँछ के लिए, बाल के लिए, सींग के लिए, विषाण (सुअर का दात) के लिए, दात (हाथीदात) के लिए, दाढों के लिए, नख के लिए, स्नायु के लिए, हड्डी के लिए, मज्जा के लिए, अर्थ के लिए, अनर्थ के लिए—(निरर्थक) कोई 'हमें मारा था' इस भावना से, कोई 'हमें मारता है' इस भावना से, और कोई 'हमें मारेगा' इस भावना से त्रसकाय का घात करते हैं ॥ सू० ७ ॥

मूलार्थ—हु कहुं छु -कोई अर्चा (शरीर) भाटे त्रसकायने घात करे छे कोई आभडी भाटे घात करे छे. कोई मांस भाटे घात करे छे कोई रक्त-लोहडी भाटे घात करे छे कोई हृदय भाटे, पित्त भाटे, अरणी भाटे, पाप्पे भाटे, पूछडा भाटे, प्राण भाटे, शींगडा भाटे, विषाणु (सुअरना दात) भाटे, हाथी दात भाटे, दाढे भाटे, नख भाटे, स्नायु भाटे, हाउका भाटे, मज्जा भाटे, अर्थ भाटे, अनर्थ—(निरर्थक) कोई 'अमने मायां छुता' अये भावनाथी, कोई 'अमने मारे छे' अये भावनाथी, अने कोई 'अमने मारशे' आ भावनाथी त्रसकायने घात करे छे. ॥ सू० ७ ॥

टीका—

यदर्थं प्रसजीवा इत्यन्ते, सत् प्रवीमि-अप्येके=केचिच्च, अथापि-  
 रुम्दा षड्यमाणापेक्षया समुच्चयायाः, अर्थाय=अभ्यसे=पूज्यसे-इत्यर्था=शरीर,  
 तदर्थं धन्ति=रिसन्ति, यथा सुलक्षणं पुरुष भ्यापाद्य तच्छरीरेण विद्यामन्त्र,  
 सापयन्ति, यद्वा स्वल्पपुरुषनिर्माणार्थं द्वात्रिंशद्वृत्तं पुरुष प्रकृतौले निसिप्य  
 निम्नन्ति । तथा अप्येके=केचन अभिनाय=धर्मार्थं मृगभ्यामाद्यदीन् धन्ति ।  
 तथा अप्येके=केचन मांसाय छागादीन् धन्ति । अप्येके=केचन क्षोषिषाय=  
 त्रिंशद्वृत्तकरणादौ क्षोषितं प्रहीतुं धन्ति । एव इदयाय=इदं गृहीत्या  
 सापयन्ति, तदर्थं धन्ति । पिषाय मयूरादीन्, पसार्य भ्यागादीन्,  
 पिच्छाय मयूरादीन्, पुच्छाय रोम्भादीन्, वासाय घमर्यादीन्, प्रङ्गाय मृगादीन्,

टीकार्थ—इ अर्थू जिस प्रयोजनसे प्रसक्ता की रिसा होती है यह बतसा है ।  
 कर्मे-कर्म अर्था अर्था शरीर के लिए विद्यामान करते हैं उसे किसी पुरुष को अपने  
 स्वरूप वासा समझकर उसे मार सकते हैं और उसके शरीर से विद्या तथा मन्त्र का  
 धारण करते हैं । अथवा स्वल्पपुरुष के निर्माण के लिए कर्त्तव्य स्वरूप वाले पुरुष को  
 तपे हुए तैल में डालकर मारते हैं । कर्मे धर्म के लिए मृग और वाप आदि का पाठ  
 करते हैं । कर्मे मांस के लिए बकरा आदि को मारते हैं । कर्मे विशुद्ध का विज्ञान बनाने  
 आदि के लिए तथा रक्त पीने के उद्देश्य से पाठ करते हैं । इसी प्रकार इदं के लिए पाठ  
 करते हैं-पाठक लोग इदं लेकर मरते हैं । इसी तरह पिचके लिए मयूरा को पशुकि  
 लिए वाप आदि को पक्षी के लिए मयूरा को, एउके लिए रोम्भा आदि को, वासा के

टीकार्थ—जे प्रयोजनसे प्रसज्जोनी विद्या वाप है; ते कर्तुं उ उ कर्त्त-कर्म  
 अथ अर्था शरीरना आटे घात करे है जे अर्था-कर्म पुरुषने सारा तत्त्ववाजो समझने  
 तेम भारी नाजे है जने तेना शरीरधी विद्या तथा मन्त्रनी साधना करे है अथवा-  
 स्वल्पं पुरुषना निर्माण आटे अर्था तत्त्ववाजो पुरुषने तपावेबा तेवमा नांजीने  
 आरे है कर्म अथवा आटे मृग जने वाप जनेनेना घात करे है कर्म मांस आटे  
 पशु जनेने आरे है कर्म विशुद्ध विद्या अथवा अथवा जनेने आटे बोली अथवा करवाना  
 वैशेषधी घात करे है जे प्रयोजे कर्म इदं आटे घात करे है-आवाही तैल इदं तपने  
 अथ है जे प्रयोजे चित्त आटे धारने, शरीर आटे वाप आदिने चरण आटे  
 अथवा-अथ आदिने शक्ति आटे मृग आदिने आरे है विद्या-अथ जे है दाधी

विषाणाय, विषाणशब्दो गजदन्ते रूढस्तथापीह मूकरदन्तो ग्राह्यः, तदर्थं मूकरम्, दन्ताय हस्यादीन्, दष्ट्रायै वराहादीन्, नखाय व्याघ्रादीन्, स्नायवे गवादीन्, अस्थने शङ्खादीन्, अस्थिमज्जायै—अस्थिमज्जा=अस्थिगतरसः, तदर्थं, महीपादीन्, घ्नन्ति । इत्थम्—अर्थाय=प्रयोजनवशात् केचिद् घ्नन्ति । तथा— अनर्थाय= विनाऽपि प्रयोजन केचिद् घ्नन्ति । अप्येके=केचिच्च, “इमे व्याघ्रसर्प-मूकरादयः शत्रवो वा अरमान अपीडयन्, अरमदीयान् वाऽवघिषुः” इति द्वेषवासनया घ्नन्ति । अप्येके=केचिच्च, “इमे व्याघ्रादयः शत्रवो वा वर्तमानकालेऽस्मान्, अरमदीयान् वा हिंसन्ति ” इति मत्वा घ्नन्ति ।

लिए चमरी गाय आदि को, सींग के लिए मृग आदि को मारते हैं । विषाण शब्द यद्यपि हाथीदात के अर्थ में रूढ है तथापि यहाँ 'सुअर का दांत' अर्थ लेना चाहिए । सुअर के दात के लिए सुअर का घात किया जाता है । दांत के लिए हाथी आदि को, दाढ़ों के लिए शूकर वगैरह को, नख के लिए वाघ आदि को, स्नायु के लिए गाय आदि को, हड्डी के लिए शख आदि को, अस्थिमज्जा अर्थात् हड्डियों में रहने वाले एक प्रकार के रस के लिए भैंसा वगैरह का घात करते हैं । इस प्रकार कोई—कोई प्रयोजन के लिए त्रसजीवों की हिंसा करते हैं और कोई—कोई विना प्रयोजन ही हिंसा करते हैं । कोई—कोई 'इस वाघ, सर्प और शूकरने तथा शत्रुओंने हमें पीडा पहुँचाई है, अथवा हमारे आत्मीयजन का वध किया है' इस प्रकार की द्वेष—वासना से इनका घात करते हैं । कोई लोग यह सोचकर कि—'ये व्याघ्र आदि अथवा शत्रु वर्तमान कालमें हमें या हमारे लोगोंको मारते हैं' उनका घात करते हैं । कोई लोग यह विचार करके कि—'यह

दांतना अर्थभा ३६ छे तो पण्य अहि 'सूअरना दांत' अवेो अथ लेवेो जेधअे सूअरना दात भाटे सूअरनेो दात करवाभा आवे छे दात भाटे हाथी आदिनेो, हाढेने भाटे शूकर-लूउ वगेरेनेो, नण्य वगेरे भाटे वाघ आदिनेो, स्नायुने भाटे गाय आदिनेो, हाउकां वगेरे भाटे शख आदिनेो, अस्थिमज्जा अर्थात्, हाउकांभा रहेनारा अेठ प्रकार रस भाटे ले सा-पाडा वगेरेनेो दात करे छे, आ प्रभाण्ये केध-केध प्रयोजन भाटे त्रस अवेोनी हिंसा करे छे अने केध-केध प्रयोजन विनाअे हिंसा करे छे केध-केध 'आ वाघ सर्प' अने शूकर-लूउ तथा शत्रुअेअे अभने पीडा पछेोयाडी हुती अथवा अभारा आत्मीय जननेो (तेणु) वध कर्यो हुतो.' आ प्रकारे द्वेष-वासनाथी तेनेो दात करे छे केधभाण्यस अवेो विचार करीने के- 'आ वाघ आदि, अथवा शत्रु वर्तमान कालभा भने अथवा

अप्येके—केचिच्च, 'अस्मान् अस्मदीयान् वा इमे व्याघ्रादयः उपधो वा इनिव्यन्ति' इति हेतोस्तसक्त्यान् जन्ति ॥ सू० ७ ॥

एवं प्रसक्त्यासमारम्भं विदित्वा मुनिस्त्वलाभाय तत्समारम्भः सर्वथा परिहर्तव्यः, इत्याशयेनोद्देशकार्यमुपसंहरन्नाह— 'एत्थं सत्त्वं' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थं सत्त्वं समारम्भमाणस्त इच्छेते आरमा अपरिष्ठाया भवंति । एत्थं सत्त्वं असमारम्भमाणस्त इच्छेते आरमा परिष्ठाया भवंति तं परिष्ठाया मेहावी येन सय तसक्त्यासत्थं समारम्भेन्ना, येवज्जणेहि तसक्त्यासत्थं समारम्भेन्ना, येवज्जणे तसक्त्यासत्थं समारम्भेते समणुभावेन्ना । जस्सेते तसक्त्यासत्ता

प्राप्त आदि अथवा यह शत्रु हमें या हमारों को मारेगे' उन्हें मार डालते हैं । इस प्रकार जेग प्रसक्त्या की हिंसा करते हैं ॥ सू० ७ ॥

इस प्रकार प्रसक्त्या के समारम्भ को जानकर साधुता प्राप्त करने के लिये प्रसक्त्या का अारम्भ सर्वथा त्याग देना चाहिये । इस आशय से इस उद्देश का उपसंहार करते हुए करते हैं—'एत्थं सत्त्वं' इत्यादि ।

मूलार्थ—प्रसक्त्या में शत्रु का समारम्भ करने वाले को यह आरम्भ अपरिष्ठाव होते हैं । प्रसक्त्या में शत्रु का समारम्भ नहीं करने वाले को यह आरम्भ परिष्ठाव होते हैं । मेहावी पुरुष उन्हें जानकर स्वयं प्रसक्त्या में शत्रु का समारम्भ न करे, दूसरों से प्रसक्त्या के शत्रु का समारम्भ न करावे और प्रसक्त्या में शत्रु का समारम्भ करने वाले का अनु

आभाशने भावे छे, तेथी तेने घात करे छे जेधं बेह 'आ वाह आदि अथवा आ शत्रु भने अथवा आभाशने भावे छे, जेधुं विचारिनि तेने भायी नांछे छे, आ प्रभावे बेह प्रसक्त्यानी हिंसा करे छे ॥ सू० ७ ॥

आ प्रभावे प्रसक्त्याना अभाशने अथवा ते साधुता प्राप्त करवा भाटे प्रसक्त्याने आरम्भ अथवा त्यागी देवा जेधं—अल देवा जेधंजे, जे आशयथी आ उद्देशने उपसंहार करवा वहा कहे छे— एत्थं सत्त्वं इत्यादि

मूलार्थ—प्रसक्त्याने विषे शत्रुने समारम्भ करवावाजाने आ आरम्भ अपरिष्ठाव होय छे प्रसक्त्याने विषे शत्रुने समारम्भ नहिं करवावाजाने आ आरम्भ परिष्ठाव छे (अथवाभा छे)। जुद्धिमान पुरुष तेने अथवा तेने प्रसक्त्याभां शत्रुने समारम्भ करे नहिं भीला पासे प्रसक्त्याना शत्रुने समारम्भ करवावे नहिं जने प्रसक्त्याभां शत्रुने समारम्भ



रभा परिष्णाया भवति, से हृ मृणी परिष्णाय कर्म्ये-त्ति वेमि ॥ सू० ८ ॥

उद्यो उमेगो समतो ॥ ६ ॥

छाया—अत्र शस्त्र समारभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, तं परिज्ञाय मेषारी नैव स्वयं त्रसकायशस्त्र समारभेत, नैवान्यैस्त्रसकायशस्त्रं समारम्भयेत्, त्रसकायशस्त्रं समा-रभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते त्रसकायशस्त्रमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ८ ॥

॥ पष्ठोद्देशः समाप्तः ॥ ६ ॥

टीका—अत्र=अस्मिन् त्रसकाये, इत्वं=पूर्वाक्तप्रकार, समारभमाणस्य=व्यापारयत, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरणत्रियोगैः आरम्भाः=अनस्पतिकार्योपमर्दनरूपाः सावधव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति ।

अत्र=अस्मिन्नेवत्रसकाये, शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुक्तज्ञानरय, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावधव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विज्ञाता भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

मोदन न करे । जो त्रसकाय के समारंभो का ज्ञाता है वही मुनि है, परिज्ञातकर्मा है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—त्रसकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार करने वाले को 'तीन करण और तीन योग से होने वाले सावध व्यापार कर्मबन्ध के कारण हैं' ऐसा ज्ञात नहीं होता ।

और त्रसकाय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार न करने वाला पूर्वोक्त सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबन्ध का कारण समझता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है ।

हरवावाणाने अनुमोदन आपे नडि, जे त्रसकायना समारभने जल्ले छे तेज् मुनि छे, परिज्ञातकर्मा छे ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—त्रसकायना विषयमा पूर्वोक्त ( आगण कडेला ) शस्त्रेणो व्यापार करवावाणा 'त्रलु करलु अने त्रलु योगथी थवावाणो सावध व्यापार कर्मबन्धनुं करलु छे' जे प्रमाञ्जे जल्लता नथी. अने त्रसकायमा पूर्वोक्त ( आगण कडेला ) शस्त्रेणो व्यापार नडि करवावाणा पूर्वोक्त ( आगण कडेला ) सावध व्यापारोने ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबन्धनुं करलु सभजे छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेना त्याग करी दे छे

इपरिष्ठापूर्विका प्रत्याख्यानपरिष्ठा यथा भवति तं प्रकारं वर्धयति- 'तत् परिष्ठाये' - स्यादि । तद्=प्रसक्त्यापारम्भणम्, परिष्ठाये=कर्मबन्धस्य कारणं भवतीत्यनुपपद्यते, मेवापी=वेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं प्रसक्त्यापन्नं समारमेत=व्यापारयेत्, अन्यैर्वा नैव प्रसक्त्यापन्नं समारम्भयेत्, प्रसक्त्यापन्नं समारम्भाभावात् अन्याम् वा न समनुजानीयात्=आनुमोदयेत् ।

यस्यैते प्रसक्त्यापन्नमा=प्रसक्त्यापोपमर्दकसाध्यव्यापाराः, परिष्ठाताः=इपरिष्ठाया बन्धकारणत्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिष्ठाया च परिष्ठाता भवन्ति, स एव परिष्ठातकर्मा=त्रिकरणत्रियोगैः परिवर्तितप्रसक्त्यापन्नव्यापाराः, मुनिभवति । 'इति प्रवोमि' इति । अस्य व्याख्यानं पूर्ववत् ॥ सू० ८ ॥

॥ श्याभाराङ्गसूत्रस्याचारविन्तामनिटीकायां प्रथमाध्ययने पष्ठ उद्देशका सपूर्माः ॥

इपरिष्ठापूर्वक होने वाली प्रत्याख्यानपरिष्ठा का स्वरूप शाब्दिक दिखाने हैं प्रसक्त्य के कारण को कर्मबन्ध का कारण जानकर मुक्तिमान् भवति हेम-उपादेय का विवेकी पुरुष स्वयं प्रसक्त्य के शब्द का उपयोग न करे, दूसरो से प्रसक्त्य के शब्द का उपयोग न करे और प्रसक्त्य के शब्द का उपयोग करनेवाले का अनुमोदन न करे ।

जिसने प्रसक्त्य का बात करने वाले साध्य व्यापारों को इपरिष्ठा से बंध का कारण समझ लिया है और प्रत्याख्यानपरिष्ठा से त्याग दिया है वही तीन करण तीन योग से सर्व साध्य व्यापारों का श्रुता पुरुष मुनि होता है । 'इति वेमि' पदकी व्याख्या पहले के समान समझनी चाहिए ॥ सू० ८ ॥

श्री आचारारङ्गसूत्रके प्रथम अध्यायन का छठा उद्देश समाप्त १-६ ॥

इपरिष्ठापूर्वक भवावस्थी प्रत्याख्यानपरिष्ठात् स्वयं शाब्दिक पठाने से-प्रसक्त्यापन्न आरम्भने कर्मबन्धन कारण जावने मुक्तिमान् भवति हेम-उपादेयने विवेकी पुरुष पाते प्रसक्त्यापन्न शब्दने उपयोग करे नहि जीव पासे प्रसक्त्यापन्न शब्दने उपयोग कराने नहि, अने प्रसक्त्यापन्न शब्दने उपयोग करवावस्थाने अनुमोदन अपि नहि ।

नेसे प्रसक्त्यापन्न बात करवावस्था साध्य व्यापारने इपरिष्ठाधी अधुन कारण समल हीधु से अने प्रत्याख्यानपरिष्ठाधी तल हीधु से ते तल करण तल योगधी सर्वसाध्यव्यापारने शाब्दिक उपयोग पुरुष मुनि होय से 'इति वेमि' पदनी व्याख्या पहलेके प्रभासे समल देनी लेईये । ॥ सू० ८ ॥

॥ श्री आचारारङ्गसूत्रना प्रथम अध्यायनने छठो उद्देश समाप्त ॥ १ । ६ ॥

। અથ સપ્તમોદ્દેશકઃ ।

વાયુકાયસ્ય ચાક્ષુષપ્રત્યક્ષવિષયત્વાભાવાત્ તસ્ય સચિત્તત્વે સ્વતઃ શ્રદ્ધા નોત્પદ્યતે, કિન્તુ પૃથિવ્યાદ્યેકેન્દ્રિયાણાં, દ્વીન્દ્રિયાદેસ્રસકાયસ્ય ચ સ્વરૂપં વિદિત્વા જાતશ્રદ્ધો વાયુકાયં સુતરાં વિજાનાતીત્યાશયેન તદ્વિંપયકશ્ચરમઃ સપ્તમોઽયમુદ્દેશકઃ પ્રારમ્ભ્યતે ।

યથા વાયુકાયોપમર્દનનિવૃત્ત્યા મુનિત્વં પ્રાપ્યતે, તં પ્રકારં પ્રદર્શયિતુમાહ—  
'પહૂ એજસ્સ.' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

પહૂ એજસ્સ દુગુંછણાએ આયંકદંસો અહિયં—તિ નચ્ચા । જે અજ્ઞાત્યં

સાતવૌ ઉદ્દેશ—

વાયુકાય કે જીવ ચક્ષુ કે ગોચર નહીં હોતે, અત એવ વાયુ કી સચિત્તા મેં સ્વતઃ શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન નહીં હોતી । કિન્તુ પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિયોં કા, તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોં કા સ્વરૂપ સમજ્ઞ લેને સે જિસે શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન હોગઈ હૈ વહ વાયુકાય કો સ્વય હી જાન લેતા હૈ । હસ આશય સે વાયુકાયસબધી યહ અતિમ સાતવૌ ઉદ્દેશ આર મ ક્રિયા જાતા હૈ ।

વાયુકાય કી હિંસા ત્યાગને સે હી સાધુપન પ્રાપ્ત હોતા હૈ, યહ બાત આગે પ્રદર્શિત કરતે હૈ—'પહૂ એજસ્સ' ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થે—દુ સ્વદર્શીં પુરુષ (વાયુકાય કે આરમ કો) અહિતકર જાનકરકે વાયુકાય કે આરમ્મ કો ત્યાગને મેં સમર્થ હોતા હૈ । જો અધ્યાત્મ કો જાનતા હૈ વહ

સાતમે ઉદ્દેશ—

વાયુકાયના એવ નેત્રથી જોવામા આવતા નથી, એ કારણથી વાયુની સચિત્તામા સ્વતઃ શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થતી નથી પરન્તુ પૃથ્વીકાય આદિ એકેન્દ્રિયોના તથા દ્વીન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોના સ્વરૂપને સમજ્ઞ લેવાથી જેને શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ ગઈ છે, તે વાયુકાયને પોતેજ જાણી લે છે. એ આશયથી વાયુકાયસબધી આ અતિમ-છેલ્લા સાતમા ઉદ્દેશનો આરભ કરવામા આવે છે.

વાયુકાયની હિંસા ત્યાગવાથી સાધુતા પ્રાપ્ત થાય છે એ વાત આગળ બતાવે છે—'પહૂ એજસ્સ' ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—દુ અદર્શીં પુરુષ (વાયુકાયના આરભને) અહિતકર જાણીને વાયુકાયના આરભને ત્યજી દેવામા સમર્થ હોય છે, જે અધ્યાત્મને જાણે છે તે બહારને જાણે છે,

मात्र से रहिया जानइ, जे रहिया जाणइ, से अन्वय्यं मात्रइ । परं तुस्मन्नेसि ।  
इ संतिगया दहिया गावर्कसंति जीर्णं ॥ सू० १ ॥

छाया—

प्रश्न एतस्य प्रगुप्सायाम् आतङ्कदर्शी अहित-मिति ज्ञात्वा । यः अप्यात्मं  
जानाति, स रहिर्जानाति । यः रहिर्जानाति स अप्यात्मं जानाति । एतत् दुस्य  
मन्ययाम् । इह सान्तिगताः द्रविकाः नावकास्तन्ति भीषितुम् ॥ सू० १ ॥

टीका—

यः आतङ्कः=हृत्कृत्रीयनं, दुःखं, तत्र आगेरमानसमेदात् द्विविधम्, तत्र  
कष्टकृत्वादिजनितं शारीरम् प्रियवियोगाप्रियसंयोगामिलपितानामदारिद्र्यादि  
कृत मानसम् । एतत् द्विविधदुःखरूपमातङ्क पश्यति सखीलभेत्यातङ्कदर्शी, यदा-  
परनोवकायसमारम्भेण वायुकायसमारम्भेण वा यदुःखं स आतङ्कः, सं

यद्य को जानता है, जो मात्र को जानता है वह अप्यात्म को जानता है । यह (दुःख-दुःख)  
दुःख का भी अपन समान है । उपशम को प्राप्त और राज-द्वेष से रहित संयमी पुरुष, पर  
को हिंसा करके अपन जीवन को इच्छा नहीं करते ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—कष्टमय जीवन या दुःख को आतङ्क कहते हैं । शारीरिक और  
मानसिक मेद से दुःख दो प्रकार का है । कष्टक एवं शय्य आदि से होने वाला दुःख  
शारीरिक कहलाता है । प्रियवियोग और अप्रियसंयोग, इस की अप्रति और दरिद्रता  
आदि से होने वाला दुःख मानसिक कहलाता है, इन दोनों प्रकार के दुःखरूप आतङ्क को  
देखने वाला आतङ्कदर्शी कहलाता है । अथवा परजीवनिकाय या वायुकाय के समारम्भ से  
होने वाला दुःख आतङ्क कहलाता है, और उसे देखने वाला आतङ्कदर्शी है । यह

के लक्षणे आये छे ते अप्यात्मने आये छे ज्ञा (अप्य-दुःख) जीवज्जाने पञ्च  
आयसु। समान छे

उपशमने प्राप्त होने राज-द्वेषही रहित संयमी पुरुष परनी-जीवानी हिंसा  
करने पीतान्ता लुपन्ती उभय करता नहीं ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—कष्टमय जीवन अथवा दुःखने आतङ्क कहे छे शारीरिक होने  
मानसिक दोहरी दुःख ने प्रकृतियां छे कष्टक अर्थात् शय्य आदिही धनाभाव्य दुःख  
शारीरिक कहेवाक छे प्रियवियोग अने अप्रियसंयोग, कष्टनी अप्रति अने दरिद्रता  
आदिही बनास दुःखे ते मानसिक कहेवाक छे ज्ञा अने प्रकृतियां दुःखरूप आतङ्कने  
बेवावाक्य आतङ्कदर्शी कहेवाक छे अथवा परजीवनिकाय अथवा वायुकायना समारम्भही

પશ્યતીત્યાતઙ્કદર્શી ભવતિ, સ હિતાહિતવિવેકકુશલત્વાદ્ અહિતમ્=અથુમકરં વાયુ-  
કાયસમારમ્ભગમસ્તીતિ જ્ઞાત્વા, એજસ્ય=એજત્વીત્યેજઃ કમ્પનશીલત્વાદ્ વાયુઃ,  
તસ્ય, જુગુપ્સાયાં=નિન્દાયાં, સેવનપરિવર્જને સમારમ્ભનિવૃતૌ, ઇતિ યાવત્ ,

પ્રશ્નુઃ=સમર્થો ભવતિ । જુગુપ્સા, સંયમના, અકરણા, વર્જના, વ્યાવર્તના,  
નિવૃત્તિરિત્યેકાર્થાઃ ।

અયમાશયઃ—વાયુકાયસમારમ્ભકરણે શારીરં માનસં ચ સર્વમેવ દુઃખં મયિ  
સમાપદ્યેત, તસ્માદિદમાતઙ્કજનકત્વાદહિતમિતિ વિજ્ઞાતા, તત્સેવનલક્ષણસમારમ્ભ-  
પરિહરણે સમર્થો ભવતીતિ ।

યઃ અધ્યાત્મમ્=આત્મનીતિ અધ્યાત્મમ્ સ્વાત્મગતં સુખં દુઃખં વૈત્યર્થઃ,

હિત—અહિત કે વિવેક મેં કુશલ હોને સે વાયુકાય સે આરમ્ભ કો અહિતકર સમજકર વાયુ  
કે આરમ્ભ કા ત્યાગ કરને મેં સમર્થ હોતા હૈ । મૂલ મેં આયે હુએ જુગુપ્સા (દુગુછા) શબ્દ  
કે ફરૂ અર્થ હોતે હૈં । જૈસે—સયમન, અકરણ (ન કરના), વર્જન (વ્યાગના), વ્યાવર્તન  
(હટના) ઓર નિવૃત્તિ (ત્યાગ) ।

આશય યહ હૈ—‘વાયુકાય કા આરમ્ભ કરને સે મુક્તે શારીરિક ઓર માનસિક સમી  
દુઃખ પ્રાપ્ત હોગે અત યહ આરમ્ભ અતકજનક હોને કે કારણ અહિતકર હૈ’ । એસા જાનને  
વાલા ઉસકે સેવનરૂપ આરમ્ભ કે ત્યાગ મેં સમર્થ હોતા હૈ ।

જો અધ્યાત્મ કો અર્થાત્ અપને આત્મા મેં સ્થિત સુખ—દુઃખ કો જાનતા હૈ

થનાઃ હુ ખ આતક કહેવાય છે, અને એને જોવાવાળા આતકદર્શી છે તે હિત-  
અહિતના વિવેકમા કુશળ હોવાના કારણથી વાયુકાયના આરભને અહિતકર સમજીને  
વાયુના આરભને ત્યાગ કરવામા સમર્થ હોય છે મૂલમા આવેલો ‘દુગુછના-જુગુપ્સા’  
શબ્દના કેટલાય અર્થ થાય છે જેમકે—સયમન, અકરણ—( નહિ કરવું ) વર્જન,  
(ત્યાગવું) વ્યાવર્તન, (હટવું) અને નિવૃત્તિ (ત્યાગ)

આશય એ છે કે—‘વાયુકાયનો આરભ કરવાથી મને શારીરિક અને માનસિક  
સર્વ દુઃખ પ્રાપ્ત થશે, એ માટે એ આરભ આતકજનક હોવાના કારણે અહિતકર  
છે,’ એ પ્રમાણે જોવાવાળા એના સેવનરૂપ આરભના ત્યાગમા સમર્થ હોય છે

જે અધ્યાત્મને અર્થાત્ પોતાના આત્મામા સ્થિત સુખ—દુઃખને જાણે છે, તે જાણ

जानाति स बहिः=परकीय सुखं दुःख वा जानाति । ममात्मनि दुःखमसातवेदनीय-  
 क्रमोदयात् समापत्तिः, सुखमपि सातवेदनीयकर्मोदयात् स्वानुभवसिद्धम्, एव  
 सात्मगतसुखदुःखमत्यक्षेण परकीयसुखदुःखानुमानं क्तुं क्षम्यतीत्यर्थः । उक्तमप्य  
 रीक्ष्य पुनस्तमेव परावस्यन्नाह—' यः बहिर्जानाति ' इत्यादि ।

य, बहिः=परात्मगत सुखं दुःख वा जानाति, स अप्यात्म=स्वात्मगत  
 सुखं दुःखं वा जानाति । परेषां स्वस्य च सुखदुःखयोरनुकूलप्रतिकूलवेदनीयरूपे  
 स्वरूपे साम्यादिति भावः ।

यद्वा-परविराषनापरिहारेण तत्फलभूतं स्वात्मनाः सुखं, तथा  
 परपीडनेन तत्फलभूतं स्वात्मनो दुःखं भवति, एव परकीयमेव सुखं दुःखं वा

एक वाक्य अर्थात् दूसरे के सुख-दुःख को जानता है । और जन्मा में असातवेदनीय क्रम के  
 उदय से दुःख जन्मा है और सातवेदनीय क्रम के उदय से सुख अनुभव सिद्ध है । इस  
 प्रकार अपने आत्मा का सुख और दुःख जो प्रापक्ष से जानता है, वह दूसरे के सुख-दुःख  
 का अनुमान कर सकता है । इसी अर्थिप्राय को पुष्ट करने के लिए मही बात फटकर पड़ती  
 है—जो वाक्य को जानता है वह अप्यात्म को जानता है ।

अर्थात्—जो पराये सुख-दुःख को जानता है वह अपने आत्मा के सुख दुःख को  
 जानता है । पराये और अपने सुख-दुःख का अनुकूल वेदन और प्रतिकूल वेदन रूप  
 स्वरूप समान है ।

अथवा-परको पीडा पहुँचाने का त्याग करने से सुखरूप फल प्राप्त  
 होता है और पीडा पहुँचाने से दुःख मिलता है । इस प्रकार पराया सुख और दुःख

अर्थात् जीवना सुख-दुःखने अक्षे ॐ माया आत्मने विवे असातवेदनीय कर्मना  
 उदयधी दुःख आत्मा ॐ अने सातवेदनीय कर्मना उदयधी सुख स्थानुभवसिद्ध ॐ  
 या प्रभासे पीदाना आत्मना सुख-दुःखनु अनुमान करी शके ॐ अने अलिप्रभने पुष्ट  
 ॐ अने माटे अने बात पढानेने कहे ॐ-ने जाहने अक्षे ॐ ते अन्धात्मने अक्षे ॐ

अर्थात्—पराया सुख-दुःखने अक्षे ॐ ते पीदाना अन्धात्मना सुख-दुःखने  
 अक्षे ॐ पराया-जीवना अने पीदाना सुख-दुःखनु अनुभव वेदन अने प्रवृत्त  
 वेदनरूप स्वरूप समान ॐ

अथवा—जीवने पीडा पहुँचावना त्याग करवाधी सुखरूप इव प्राप्त था  
 ॐ अने पीडा पहुँचावनाधी दुःख भजे ॐ

સ્વાત્મનઃ સુખરૂપેણ દુઃખરૂપેણ વા પરિણમ્યતે । એવં તયોઃ કાર્યકારણભાવં યો વિજાનાતિ, સ એવ સ્વાત્મગતસુખદુઃખવિજ્ઞાતેતિ ભાવઃ ।

પરકીયસુખદુઃખવિજ્ઞાતા સ્વાત્મનઃ સુખં દુઃખં વા જાનાતીત્યુક્તાર્થે હેતું પ્રદર્શયન્નાહ— ‘એયં તુલ્લમન્નેસિ’ ઇતિ । એતત્=સુખં દુઃખં વા, તુલ્ય=સદ્દશમેવ, અન્યેષામ્=પરેષાં જીવિનાં સ્વસ્વ ચેત્યર્થઃ ।

“ કદ્દ્રેણ કટણા વ, પાણ વિદ્વસ્સ વેયણદ્દમ્સ ।

જા હોહ અણિઠ્ઠવાણી, ણાયવ્યા સવ્વજીવાણ ॥

જહ મમ ણ પ્રિય દુક્ખ, જાણિય એમેવ જીવાણ ” ॥

છાયા— કાષ્ટેન કણ્ટકેન વા પાદે વિદ્વસ્ય વેદનાર્ત્તસ્ય ।

યા ભવતિ અનિર્વાણિ—જ્ઞાતવ્યા સર્વજીવાનામ્ ॥

યથા મમ ન પ્રિય દુઃખં જ્ઞાત્વા એવમેવ સર્વજીવાનામ્ । ” ઇતિ ।

હી અપને સુખ—દુઃખ કે રૂપ મેં પરિણત હો જાતા હૈ । ડસ પ્રકાર જો ડનકે કાર્યકારણ ભાવ કો જાનતા હૈ વહી અપને આત્મા કે સુખ—દુઃખ કા જ્ઞાતા હોતા હૈ ।

દૂસરોં કે સુખ—દુઃખ કા જ્ઞાતા હી અપને સુખ—દુઃખ કો જાનતા હૈ, ડસ વધન મેં હેતુ ડિરખલાતે હુણ કહતે હૈ—‘યહ સુખ ઓર દુઃખ દૂસરોં કે ઓર અપને સમાન હી હૈ’ । કહા મી હૈ—

લકડી સે યા કટક સે પૈર મેં વિંધ જાને કી વેદના સે પીઢિત પુરુષ કો જો અસતોપ હોતા હૈ, વહી સવ જીવોં કો હોતા હૈ ।

જૈસે મુક્તે દુઃખ પ્રિય નહીં હૈ, ડસી પ્રકાર અન્ય અન્ય પ્રાણિયોં કો મી દુઃખ પ્રિય નહીં હૈ ” ।

આ પ્રમાણે ધીજ્ઞાના સુખ અને દુઃખ પોતાના સુખ—દુઃખના રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે. આ પ્રમાણે જે તેના કાર્ય—કારણ ભાવને જાણે છે, તેજ પોતાના આત્માના સુખ—દુઃખના જ્ઞાતા હોય છે

ધીજ્ઞાના સુખ—દુઃખના જ્ઞાતા જ પોતાના સુખ—દુઃખને જાણે છે. આ કથનમાં હેતુ ખતાવતા થકા કહે છે કે—

“ આ સુખ અને દુઃખ ધીજ્ઞાના અને આપણા સમાન છે ” કહ્યું છે કે—

“ લાકડીથી અથવા કાટાથી ધગમા વિંધાઈ જવાની વેદનાથી પીડિત પુરુષને જે અતવેદના થાય છે, તેવીજ સર્વ જીવોને (વેદના) થાય છે ”

“જેમ મને દુઃખ પ્રિય નથી, તે પ્રમાણે ધીજ્ઞા પ્રાણીઓને પણ દુઃખ પ્રિય નથી.”

अथ च—“मर्त्यमिति परतं पुरुषस्योपजायते ।

शक्यस्तेनानुमानेन, परोऽपि परिरिसत्तम्” ॥१॥ इति ।

स्वपर-सुखदुःखास्तुर्यस्ववेदिनो न बाधुकार्यं विराधयन्तीत्याह-  
 'ह्र शान्तिगताः' इत्यादि । इह=किनमवयत, शान्तिगताः=स्वपरदुःखसुखयोः  
 समत्वविज्ञानात् औपम्यिकमात्रं प्राप्याः सम्यक्तिकेन इत्यर्थः यद्वा=शान्तिः=  
 सावधम्पापारपरिहारः, तस्मिन्पगवाः इत्थिकाः=रागद्वेषपरिहाराः, यद्वा=अथ=  
 संयमः कर्मद्रवणकारिणात्, स विपत्ते येषां ते इत्थिकाः= कर्मनिवारणधीकाः  
 संयमिनः अपिपित्तम्=अप्यज्ञानादिना बाधुकार्यस्य समारम्भेण प्राणान् परिरिसिद्धं  
 नावकाङ्क्षन्ति=नेच्छन्ति ।

दूसरी कहा क्या है—

‘तेरा मरना ही अच्छा है, ऐसा बाधु सुनने मात्र से पुरुष को जो दुःख होता है,  
 इसी में कल्याण समझकर दूसरों की रक्षा करती बाधिये” ॥ १ ॥

धो पुरुष स्व-पर सुख-दुःख को समान समझते हैं वे बाधुकाव की विराधना  
 नहीं करते, यही बात कहते हैं—

जिनशासन में अपने और पराये सुख-दुःख को समान समझकर धो उपरम  
 भावको प्राप्त हुए हैं अर्थात् सम्यग्दर्शि हैं अथवा पापमय व्यापारों के त्यागी हैं, तथा  
 राग-द्वेष से रहित हैं, अथवा कर्मों को निवारण करनेवाके संयम से विमुक्ति हैं, वे  
 परम आदि से बाधुकाव तथा समारम्भ करके अपने प्रार्थों की रक्षा करने की इच्छा  
 नहीं करते ।

जील अन्त्याने पदु उहू उ के-

“चाहे मरुतु व आइ छे” जे प्रभावे सभलवाधी पुरुषने के दुःख माय  
 छे ते अनुमानधी जीलनी रक्षा करनी जेईजे. ॥ १ ॥

जे पुरुष स्व-परना (पितानां जने पारकान्ना) सुख-दुःखने समान समझे छे  
 ते बाधुकावनी विराधना करता नही, ते बात कहे छे—

जिन शासनमां पितानां जने जीलनां सुख-दुःखने समान समझने के उपरम  
 भावने प्राप्त भया छे, अर्थात् सम्यग्दर्शि छे अथवा पापमय व्यापारोंना त्यागी छे  
 तथा राग द्वेषही रहित छे अथवा कर्मोंनु निवारणु करतावाणा संयमधी विमुक्ति छे ते  
 वे परम आदिही बाधुकावने समारम्भ करीने पितानां प्रायेणी रक्षा करवानी इच्छा करता नही.



જિનપ્રવચનોક્તચરણકરણસેવિનઃ સ્વપ્રાણરક્ષણાર્થમપિ પરજીવોપમર્દનં નેચ્છન્તિ,  
તે હિ અચાક્ષુષવાયુજીવવિરાધનાવિનિવૃત્તાઃ કથમન્યચાક્ષુષપૃથિવ્યાદિજીવોપમર્દને  
પ્રવર્તેત, ન કથમપીતિ ભાવઃ ।

અથ વાયુવાયસ્ય સમ્યગ્જ્ઞાનાર્થં લક્ષણાદ્યષ્ટ દ્વારાણિ નિરૂપણીયાનિ ।  
તત્ર લક્ષણપ્રરૂપણાપરિમાણશસ્ત્રોપભોગદ્વારાણિ યથાક્રમં નિરૂપ્યન્તે । અવ-  
શિષ્ટ-વધવેદનાનિવૃત્તિ દ્વારાણિ પૃથિવીકાયોદેશે યથા કથિતાનિ તથૈવાવગન્તવ્યાનિ ।

જિનાગમ મેં કથિત ચરણ-કરણ કા સેવન કરને વાલે અપને પ્રાણોં કી રક્ષા  
કરને કે લિપે મી ઢૂસરે જીવ કી હિંસા કરને કી અભિલાષા નહીં કરતે । વે ચક્ષુ સે  
ન દિરલાઈ દેને વાલે વાયુકાય કે જીવોં કી વિરાધના સે મી નિવૃત્ત હોતે હૈં તો ચક્ષુ-  
ગોચર અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ કે જીવોં કી વિરાધના મેં કેસે પ્રવૃત્ત હો સકતે હૈં-કિસી  
પ્રકાર મી નહીં ।

વાયુકાય વા સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરને કે લિપે લક્ષણ આદિ આઠ દ્વારોં કા નિરૂપણ  
કરના ચાહિપે । અનમેં સે લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર ઓર અપભોગ દ્વારોં કા ક્રમ સે  
નિરૂપણ કરતે હૈં । શેષ વધ, વેદના ઓર નિવૃત્તિ દ્વાર જૈસે પૃથ્વીકાય કે અદેશ મેં કહે હૈં  
વૈસે હી યહાં સમજ લેને ચાહિપે ।

જિનાગમમા ઢહેલા અરણ્ય-કરણ્યનું સેવન કરવાવાળા પોતાના પ્રાણોની રક્ષા  
કરવા માટે પણ ખીજા જીવોની હિંસા કરવાની અભિલાષા કરતા નથી તે નેત્રથી  
નહિ દેખાતા વાયુકાયના જીવોની વિરાધનાથી પણ નિવૃત્ત હોય છે, તો પછી નેત્રથી  
જોઈ શકાય તેવા ખીજા પૃથ્વીકાય આદિના જીવોની વિરાધનામા કેવી રીતે પ્રવૃત્ત  
થઈ શકે છે ? કોઈ પ્રકારે પણ થઈ શકતા નથી

વાયુકાયનું સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે લક્ષણ આદિ આઠ દ્વારોનું નિરૂપણ  
કરવું જોઈએ. તેમાંથી લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર અને ઉપભોગ દ્વારોનું ક્રમથી  
નિરૂપણ કરે છે, શેષ-(બાકી) વધ, વેદના અને નિવૃત્તિ દ્વાર જેવી રીતે પૃથ્વીકાયના  
ઉદ્દેશમા ઢલા છે, તેવીજ રીતે અહિં સમજ લેવું જોઈએ

लक्षणद्वारम्—

ननु कथमिदं ज्ञायते वायुः सचिच इति ? अत्रोच्यते—शुद्धतां तावदनुमानं प्रमाणम् वायुभेदनात् । अनन्यप्रेरिताऽनियततिर्पङ्गमनवरत्नात्, हरिणानवादिबद्धि । अनियतविश्लेषणोपादानात् परमाणौ अपरप्रेरित-तिर्पङ्गतिस्त्वेषुपि नानैकान्तिकत्वम्, तस्य हि परप्रयोगनिर्पेषस्य स्वाभाविकी गतिरनुभविर्मयति तस्मात् सा नियतैव । भागमोऽपि प्रमाणं, यथा—इत्यैकालिकम्—“ वात चिचमंतमन्त्राया अयोगजीवा पुडोसचा अमृत्य सत्यपरिणयण ” । इति,

वायुचिचवानासुपातोऽनेकजीवः पृथक्सरः अन्यत्र क्षुद्रपरिणतात् । इति च्छाया

लक्षणद्वारम्—

संज्ञा—वायु सचिच है, यह बात किस प्रकार जानी जाय ।

समाधान—पहले अनुमान प्रमाण ही स्वीकार—वायु चेतनायुक्त है क्यों कि वह दूसरों की प्रेरणा बिना अनियत रूप से तिरछी गति करता है, जैसे हिरन रोस आदि । हेतु में 'अनियत' विशेषण लगा देने से प्रेरणा का अभाव और तिरछी गति होने पर भी परमाणु स्वभिचार नहीं होता । परमाणु दूसरे की प्रेरणा के बिना जो गति करता है वह गति भेरी के अनुसार नियत ही होती है—अनियत नहीं । इस विषय में आगम भी प्रमाण है । दशनेकालिक सूत्र में कहा है—

“ वायु सचिच कही गई है । वह अनरु जीवोंवाली है, और उन जीवों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् है । तिरक क्षुद्रपरिणत वायु सचिच नहीं है ” ।

लक्षणद्वारम्—

संज्ञा—वायु सचिच है जो वात केवी इति ज्ञायी यथाय ?

समाधान—प्रथम अनुमानप्रमाण बंधने—वायु चेतनायुक्त है किमते ते औचनी प्रेरणा बिना अनियतवृत्ती तिरछी अति करे है । ७म-अथ २व आदि हेतुमा अनियत विशेषण लक्षणी देवाधी परप्रेरणानो अभाव अने तिरछी अति होवा उताव पण परमाणुभी अनिश्चर यतो नयो, परमाणु औचनी प्रेरणा बिना ७ अति करे है ते अति ज्येष्ठी-अनुभार नियतक होव है अनियत नहिं ।

आ विषयमां आरभ पण प्रमाण है इत्येवाति सूत्रमा इत्यु है—

“ वायु सचिच इदेवाभां आन्वी है ते अने उचवाये है अने ते उचानु अस्तित्व पृथक्-पृथक् ( ७३-७४ ) उ भाव क्षुद्रपरिणत वायु सचिच नहीं है ”

## प्ररूपणाद्वारम्—

वायुकाया द्विविधाः—सूक्ष्मा वादराश्चेति । तत्र सूक्ष्माः सकललोकव्यापिनः, वादरास्तु लोकैरुद्देशे सन्ति । वादराः पञ्चविधाः—उत्कलिकावातः, मण्डलिकावातः, गुञ्जावातः, घनवातः, शुद्धवातश्चेति । ये तु ते पौरस्त्यादिभेदा लोकवादिप्रकरणे प्रागभिहितास्तेऽप्यत्रैवान्तर्भूताः । यः स्थित्वा स्थित्वा उत्कलिकाभिर्वाति स उत्कलिकावातः, वातोलीरूपो मण्डलिकावातः, यो गुञ्जन् वाति स गुञ्जावातः, पृथिव्यादीनामाधारतया व्यवस्थितो हिमपटलकल्पोऽतिघनीभूतो घनवातः, मन्द-  
स्तिमितः शीतकालादिषु शुद्धवातः ।

संक्षेपेण वायुकायास्त्रिविधाः—सचित्ता अचित्ता मिश्राश्च । उत्कलिकावातादयः

## प्ररूपणाद्वारम्—

वायुकाय दो प्रकार का है—सूक्ष्म और वादर । सूक्ष्म जीव समस्त लोक में रहते हैं । वादर पाँच प्रकार के हैं—(१) उत्कलिकावात (२) मण्डलिकावात (३) गुञ्जावात (४) घनवात और (५) शुद्धवात । पौरस्त्य आदि जो भेद लोकवादी के प्रकरण में पहले बतलाये हैं वे सब भी इन्हीं भेदों में अन्तर्गत हो जाते हैं । ठहर-ठहर कर उत्कलिकारूप से बहनेवाली वायु उत्कलिकावात है । वातोलीरूप वायु को मण्डलिकावात कहते हैं । गूँज-गूँज कर बहने वाली वायु को गुञ्जावात कहते हैं । पृथ्वी आदि के आधार पर स्थित हिमपटल के समान अत्यन्त सघन वायु को घनवात कहते हैं । शीतकाल आदि में धीमे-धीमे चलने वाली वायु शुद्धवात है ।

संक्षेप से वायुकाय के तीन भेद हैं—(१) सचित (२) अचित और

## प्ररूपणाद्वारम्—

वायुकाय के प्रकारना छे (१) सूक्ष्म अने (२) वादर. सूक्ष्म एव समस्त लोकमा व्याप्त छे अने वादर, लोकना अक-द्वेषमा रडे छे आदर पाय प्रकारना छे (१) उत्कलिकावात, (२) मण्डलिकावात, (३) गुञ्जावात, (४) घनवात अने (५) शुद्धवात

पौरस्त्य आदि के भेद लोकवादीना प्रकरणमा पहिला बताव्या छे, ते सर्वे आ भेदोमा अन्तर्गत थथ नय छे जरा-रही-रहीने उत्कलिकारूपमा बडेवावाणो वायु ते उत्कलिकावात छे वातोलीरूप वायुने मण्डलिकावात कडे छे गूँज-गूँज ने बडेवावाणी बवाने गुञ्जावात कडे छे पृथ्वीआदिना आधारपर स्थिति हिमपटल समान अत्यन्त सघन वायुने घनवात कडे छे शीतकाल आदिमा धीमे-धीमे बडेतो वायु ते शुद्धवायु छे संक्षेपथी वायुकायना त्रयु भेद छे (१) सचित (२) अचित अने (३) मिश्र.

सपिपाः, उद्गारोन्मेषादयोऽपि सपिपाधिचयोः समिभनेन मिभाः ।

परिमाणद्वारम्-

ये वादरपर्याप्तका वायुकायास्ते संवर्तितस्रोत्रप्रतरासस्येयमागवर्ति  
 मदेवराशिपरिमाणाः, शेषास्त्रयोऽपि राशयः पृथगसस्येयमोकाकाशप्रदेश-  
 परिमाणा भवन्ति, विशेषमायमभावगन्तव्याः-वादरापूकायपर्याप्तकेभ्यो वादरवायु  
 पर्याप्तका असस्येयगुणाः, वादरापूकायाऽपर्याप्तकेभ्यो वादरवायुकायाऽ  
 पर्याप्तका असस्येयगुणाः । सूक्ष्मापूकायाऽपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवायुकायाऽपर्याप्तका  
 विशेषाधिकाः, सूक्ष्मापूकायपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मवायुकायपर्याप्तका  
 विशेषाधिकाः ॥ सू० १ ॥

(१) मित्र । उक्ताशिकावात आदि संचित हैं, उद्गार और उन्मेष आदि अचिंत हैं, और  
 मिस्री हुई-संचित-अचिंत वायु मिश्र है ।

परिमाणद्वार-

वादरपर्याप्तवायुकाय के बीच संवर्तित स्रोत्रप्रतर के असस्येयतरे मागवर्ती प्रदेशों के  
 बराबर है । शेष तीनों प्रत्येक राशिमें असस्येयत स्रोत्राकाश के प्रदेशों के बराबर हैं ।  
 यही इतना विशेषता समझनी चाहिए-वादर अर्काय के पर्याप्त बीजों की अपेक्षा वायुकाय  
 के वादर पर्याप्त असस्येयत गुणा हैं । अर्काय के अपर्याप्त वादर बीजों से वायुकाय के  
 अपर्याप्त वादर असस्येयत गुणा हैं । अर्काय के सूक्ष्म अपर्याप्त बीजों से सूक्ष्म वायुकाय के  
 अपर्याप्त विशेष अधिका हैं । अर्काय के सूक्ष्म पर्याप्त बीजों से सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्त  
 विशेषाधिका हैं ॥ सू० १ ॥

उक्ताशिकावात आदि संचित हैं उद्गार और उन्मेष आदि अचिंत हैं और अचिंत  
 तथा अचिंत के अने अने साथे भोजन होय ते वायु मिश्र है

परिमाणद्वार-

वादरपर्याप्तवायुकाय का एक संवर्तित लोक प्रतरास असस्येयतमा मागवर्ती  
 प्रदेशोंका बराबर है और प्रत्येक राशिमें असस्येयत लोकप्रतरास प्रदेशोंकी  
 बराबर है अर्थात् विशेषता समझनी चाहिए-वादर अर्कायना पर्याप्त एवोनी  
 अपेक्षा वायुकायना वादर पर्याप्त असस्येयत त्रया से अर्कायना अपर्याप्त वादर  
 एवोनी वायुकायना अपर्याप्त वादर असस्येयत त्रया से अर्कायना सूक्ष्म अपर्याप्त  
 एवोनी सूक्ष्म वायुकायना अपर्याप्त विशेष अधिका है अर्कायना सूक्ष्मपर्याप्त  
 एवोनी, सूक्ष्म वायुकायना पर्याप्त विशेषाधिका है ॥ सू० १ ॥

अथ सर्वथा वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथा वायुकाय-  
समारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह—‘लज्जमाणा.’  
इत्यादि ।

अथ शस्त्रद्वारम्—

मूलम्—

लज्जमाणा पृढो पास । अणगारा मो-त्ति एगे पवयमाणा जमिणं विस्वस्ववेहिं  
सत्येहिं वाउरुम्मसमारंभेणं, वाउसत्य समारंभमाणा अण्णे अपोगस्ववे पाणे  
विहिंसति ॥ सू० २ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य । अनगारा. स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं  
विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकायसमारम्भेण, वायुकायशस्त्र समारभमाणा अन्यान् अनेक  
रूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० २ ॥

वायुकाय के समारभ का सर्वथा त्याग करने वाले मुनियों को और वायुकाय के  
समारम्भ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिङ्गियों को अलग-अलग बतलाने के लिए कहते हैं—  
‘लज्जमाणा.’ इत्यादि ।

शस्त्रद्वार—

मूलार्थ—वायुकाय का समारम्भ करने में सकोच करने वाले अनगारों को अलग  
देखो, और कोई-कोई ‘हम अनगार हैं’ ऐसा कहते हुए नाना प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय  
का समारम्भ करके, वायुकाय का समारम्भ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की  
हिंसा करते हैं उनको अलग देखो ॥ सू० २ ॥

वायुकायना समारभना सर्वथा त्याग करवावाणा मुनिओने अने वायुकायना  
समारभमा प्रवृत्ति करवावाणा द्रव्यलिङ्गिओने भूदा-भूदा पताववा भाटे कडे छे —  
‘लज्जमाणा.’ इत्यादि

शस्त्रद्वार—

मूलार्थ—वायुकायना समारभमा स केव करवावाणा अणुगारोने भूदा भूदो,  
अने केध-केध ‘अमे अणुगार छीओ’ ओवु कडेनारा अने नाना प्रकारना शस्त्रोथो  
वायुकायना समारभ करीने, वायुकायना समारभ करता थका ओवु अनेक प्रकारना  
प्राणिओनी हिंसा करे छे तेने पछु भूदा-भूदा भूदो ॥ सू० २ ॥

टीका—

उज्जमानाः परमकक्षणायाऽर्द्धचित्त्वा वायुकायसमारम्भे पराङ्मुखाः,  
 वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनागाराः, पृथक्—विभिक्षा, क्वचन प्रत्यक्ष  
 ज्ञानिनोऽपि मनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भाषितात्मानः सन्तीति  
 पश्य । यद्वा—पृथक्—अन्यलिङ्गिन्य पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे वायुकायसमार  
 म्भकारणे सीतासस्ता उद्विग्नाक्लिष्टगणधियागैर्नापुकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते  
 इति विलोकयेत्पर्य ।

एकं पुनरन्यत् 'अयमनगाराः स्मः' इति सामिमानं प्रवदमानाः 'अयमत्र  
 वायुकायसमारम्भपरित्यागः महाप्रतपारिणः' इति मल्लपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान्  
 पृथक् पश्य ।

टीकार्थ—परम कक्षणा से आर्द्ध-चित्त होने के कारण वायुकाय के समारम्भ से  
 विमुख, वायुकाय के समारम्भ का स्वभा त्याग करने वाले अनगार भिन्न हैं—कोई अपवि-  
 ज्ञानी कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं और कोई मनिष्ठुतज्ञान के धारक  
 भाषितात्मा साधु हैं उन्हें देखो । अथवा उन्हें द्रव्यलिङ्गियों से भिन्न समझो । ये अनगार  
 वायुकाय का समारम्भ करने में मीठ हैं प्रकृत हैं उद्विग्न हैं तथा तीन कारण तीन योग से  
 वायुकाय का समारम्भ करने के त्यागी हैं ।

और कोई—कोई 'इमं अनगारं' इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए 'इमं ही  
 वायुकाय की रक्षा करने वाले परममहाप्रतपारी हैं' ऐसा प्रकल्प करने वाले द्रव्यलिङ्गी  
 हैं उन्हें अनगारों से अलग समझो ।

टीकार्थ—परम कक्षणाधी आर्द्ध-चित्त होकर वायुकायना समारम्भधी  
 विमुख वायुकायना समारम्भने स्वभा त्याग करवावा अनगार ज्ञानी हैं—कोई  
 अपविज्ञानी कोई मनःपर्ययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं और कोई मनि-  
 स्थुतज्ञान के धारक भाषितात्मा साधु हैं, तेने लुभ्ये । अथवा तेने द्रव्यलिङ्गि-  
 नी लुभ्ये । ते अनगार वायुकायने समारम्भ करवावा मीठ (मीठ वाग) हैं प्रकृत हैं  
 उद्विग्न हैं तथा त्रय करण त्रय योगधी वायुकायने समारम्भ करवाना त्यागी हैं  
 अने कोई-कोई अने अनगार लुभ्ये' अथ प्रकल्पे अभिमानपूर्वक कहे हैं  
 हैं 'अने वायुकायनी रक्षा करवावा परममहाप्रतपारी लुभ्ये । अने वायुकाय  
 करवावा द्रव्यलिङ्गी हैं तेने अनगारधी लुभ्ये ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः, शस्त्रैः शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्यशस्त्रं-स्वकायपरकायोभयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं-शीतवायोरुष्णवायुः, उष्णवायोश्च शीतवायुः पूर्वादिगादिवायोः पश्चिम-दिगादिवायुः स्वकायशस्त्रम् । व्यजन-तालवृन्त-शूर्प-चामर-पत्र-वेलकर्णाभिधारणादयः, घर्मातीं यद् वहिरवतिष्ठते वातागमनमार्गे साऽभिधारणा,

तथा-चन्दनोशीरादीनां गन्धाः, अग्निज्वालाप्रतापश्च, तथा मृशलादिना

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते और गृहस्थों के किसी कृत्य का त्याग नहीं करते हैं । यह आगे कहते हैं.—

द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है । द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं—( १ ) स्वकाय ( २ ) परकाय और ( ३ ) उभयकायशस्त्र । उष्णवायु, शीतवायु का और शीतवायु, उष्णवायु का, तथा पूर्वादिदिशाओंका वायु, पश्चिमादिदिशाओं के वायु का स्वकायशस्त्र है, पखा, तालवृन्त, शूर्प, चामर, पत्र, कपडा और अभिधारणा आदि, घृष से पीडित पुरुष हवा आने के रास्ते में ठहरता है उसको अभिधारणा कहते हैं ।

तथा-चन्दन, खसखस आदि की गंध, आगकी ज्वाला, ताप आदि परकायशस्त्र है ।

અણુગાર હોવાનું અભિમાન કરવાવાળાઓ દ્રવ્યલિંગી (સાચા) અણુગારના ગુણોમાં જરા પણ પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, અને ગૃહસ્થોના કોઈ પણ કાર્યોનો ત્યાગ કરતા નથી તે આગળ કહે છે

દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્રના બેદથી શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે, દ્રવ્યશસ્ત્રના ત્રણ ભેદ છે (૧) સ્વકાય, (૨) પરકાય, (૩) ઉભયકાય-શસ્ત્ર, ઉષ્ણવાયુ, શીતવાયુનો અને શીતવાયુ, ઉષ્ણવાયુનો તથા પૂર્વાદિ દિશાઓના વાયુનો પશ્ચિમ આદિ દિશાઓનો વાયુ સ્વકાયશસ્ત્ર છે વાસનો બનાવેલો તથા તાલપત્રનો બનાવેલો પખો, શૂપડા, ચામર, પત્ર, વસ્ત્રખંડ અને અભિધારણા આદિ, તાપથી પીડિત પુરુષ હવા આવવાના રસ્તામાં થોભી જાય છે, તેને અભિધારણા કહે છે

તથા-ચન્દન, ખસખસ, આદિની ગંધ, અગ્નિ, અગ્નિની જ્વાલા, તાપ આદિ તથા

कण्डनं, तुषापपसारणाद्यै रूर्पास्फासनं, वक्त्रादिगन्तरजध्मृतिवारणाय वक्त्रादीना-  
 मान्मेटनमास्फोटनं मस्फोटनं च, तथा क्षीघ्रगमनं वायुकायस्य विरापकं परकाय-  
 क्तम् । उमयकायकृतम्-अनावृत्तमुखेन मापकम्, एतत्सर्वं द्रव्यकृतम् । मापकं  
 तु मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम् । एवंविधैः श्लेषैः, वायुकायसमारम्भेण-वायुकायो-  
 पमर्दकत्वावद्यव्यापारेण, इमं वायुकार्यं विहितन्ति ।

वायुकार्याहसामां प्रवृत्ताः स्वच्छ पृथ्वीपनिकायरूपं लोके सर्वमेव  
 विहित्वीत्याह—' वायुकायकृतम् ' इत्यादि । वायुकायकृतं=वायुकायोपमर्दकं  
 द्रव्यमापकं पूर्वोक्तप्रकार, समारम्भावाः=वायुकार्यं प्रति प्रयुज्यानाः अन्वयं=वायु  
 कायमिधान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् स्वावरान् द्वीन्द्रियादीन्प्रसाध मापान्=  
 प्राणिनाः, विहितन्ति ।

मुख से फूटना किन्के हटान के स्थि रूप से फटकना, भू-रेत आदि घाटने के स्थि  
 वक्त्र आदि को फटकारना-सफरक्य तथा कन्दो कण्ड्य मो वायुकाय का विरापक परकाय  
 कृत है लुके मुख से बोकन्य उमयकायकृत । सम बचन, और कायका अपरास्त व्यापार  
 मानकृत है । इन नाना प्रकार के शक्तो से द्रव्यकिंगी वायुकाय की हिंसा करने वाले सावय  
 व्यापार करके वायुकाय की हिंसा करते हैं ।

जो वायुकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह बद्धकायरूप समस्त स्त्रोक की  
 हिंसा करता है, यह कहते हैं-वायुकाय की विरापना करने वाले पूर्वोक्त द्रव्य और मानकृतो  
 का वायुकाय के प्रति प्रयोग करने वाले वायुकाय से भिन्न अनेक प्रकार के पृथ्वीकाय आदि  
 रचयरो की तथा द्वीन्द्रिय आदि प्रसजीवी की भी हिंसा करता है ।

भूतलकी कूटकुं, छाल काठका भाटे, रूपककी क्यटकनुं, पूण-रेती वनेरेने क जेरना  
 भाटे वक्त्र वनेरेने क्यटकनुं-पलायनुं, तथा कलदी-कलदी क्यलनुं ते पक्ष वायुकायनुं  
 विरापक परकाय शक्त छे उवाक-बस्ता मोडे क्यलनुं ते उवाककायशक्त छे आ सर्व  
 वायुकायनी द्रव्यशक्त छे अन्, पञ्च अने कायाने अपरास्त (पञ्चापुत्र लाक नडि ते)  
 व्यापार ते लावशक्त छे आ नाना प्रकारना शक्तेकी द्रव्यकिंगी वायुकायनी हिंसा  
 करवावाणयो सावय व्यापार करीने वायुकायनी हिंसा करे छे

जे वायुकायनी हिंसार्थ प्रवृत्त काय छे ते बद्धकायरूप समस्त लोकनी हिंसा  
 करे छे जे कहे छे-वायुकायनी विरापना करवावाण्य पूर्वोक्त द्रव्य अने लावशक्तने  
 वायुकायना प्रति प्रयोग करवावाण्य वायुकायकी भिन्न अनेक प्रकारना पृथ्वीकाय आदि  
 रचयरोनी, तथा द्वीन्द्रिय आदि वस लोकेनी पक्ष हिंसा करे छे



હહ વહુવિધદ્રવ્યલિંગિનો વિધન્તે, તત્ર શાક્યાદયો વ્યજનાદિશસ્ત્રૈર્વાયુકાય-સમારમ્ભં કુર્વન્તિ, કારયન્તિ, કુર્વતોઽનુમોદયન્તિ, તથા ચ સંપાતિમાદીનાં હિસનેન ષટ્કાયાવિરાધકા ભવન્તિ । દષ્ટિનોપિ—“વયં પ્રચ્ચમહાવ્રતધારિણો જિના-શ્ચારાધકા અનગારાઃ સ્મઃ” ઇત્યાદિ પ્રવદમાનાઃ સાધ્વાભાસાઃ સાવઘમુપદિશન્તિ, શાસ્ત્રપ્રતિષિદ્ધમપિ વાયુકાયસમારમ્ભં કુર્વન્તિ, કારયન્તિ ચ । તે હિ અનાવૃતમુખેન વદન્તિ ગાયન્તિ ચ । તથા અપ્રપૂજાદૌ વિવિધવાઘનૃત્યાદિકં કારયન્તિ, ઇતસર્વૈ મિથ્યાદર્શનશલ્યાભિઘં પાપમાચરન્તિ ।

ઉક્તશ્ચ—“ગંધવ્વનહવાહય-લવણજલારત્તિઆહ્વીવાઈ ।

જં કિચ્ચં તં સલ્વં-પિ ઓઅરહ અગાપુયાઈ ” ॥ ૧ ॥

સસાર મેં તરહ-તરહ કે દ્રવ્યલિંગી હૈ, ડન મેં સે શાક્ય આદિ પરખા વગૈરહ સે વાયુકાય કા ઘારમ કરતે હૈ, કરાતે હૈ ઓર ઘારમ કરને વાલે કી અનુમોદના કરતે હૈ, ઓર સપાતિમ ( ઉડકર અચાનક ઓજાને વાલે ) આદિ જીવોં કી હિંસા કરકે ષટ્કાય કે વિરાધક બનતે હૈ । ઘૂઠે સાધુ દષ્ટી મી ‘હમ પંચમહાવ્રતધારી તથા જિન ભગવાન કી આઘ્ના કે આરાધક અનગાર હૈ’ ઇસ પ્રકાર કહતે હુઈ સાવઘ કા ઉપદેશ દેતે હૈ । શાસ્ત્ર મેં નિષિદ્ધ વાયુકાય કા સમારંભ કરતે હૈ ઓર કરાતે હૈ । વે ઘુલે મુખ સે બોલતે ઓર ગાતે હૈ, તથા અપ્રપૂજા આદિ મેં વિવિધ પ્રકાર સે વાઘ ઇવ નૃત્ય આદિ કરાતે હૈ । યહ સબ મિથ્યાદર્શનશલ્યાનામક પાપ હૈ । વે ઇસકા ઓચરણ કરતે હૈ । જૈસે કહા હૈ-

સ સારમાં તરેહ-તરેહના દ્રવ્યલિંગી છે, તેમાંથી શાક્ય આદિ પગા વગેરેથી વાયુકાયનો આરંભ કરે છે, કરાવે છે, અને આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે, અને સપાતિમ ( ઉડીને અચાનક આવવાવાળા ) આદિ જીવોની હિંસા કરીને ષટ્કાયના વિરાધક બને છે. ઠંડી યજ્ઞ ‘અમે પંચમહાવ્રતધારી તથા જિન ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક અણુગાર છીએ.’ આ પ્રમાણે કહેતા થકા સાવઘનો ઉપદેશ આપે છે શાસ્ત્રમાં નિષિદ્ધ મનાઓલા વાયુકાયનો સમારંભ કરે છે અને કરાવે છે તે યજ્ઞા મુખથી-ઉઘાડા મોઢે-બોલે છે અને ગાય છે, તથા અપ્રપૂજા વગેરેમાં વિવિધ પ્રકારથી વાઘ અને નૃત્ય આદિ કરાવે છે આ સર્વે મિથ્યાદર્શનશલ્ય નામનુ પાપ છે તે ઓનું આચરણ કરે છે. જેમ કહ્યું છે-

छाया—गन्धर्वनृत्यवादित्र—समणमकाराप्रिकादिदीपादयः ।

यत्किञ्चित्कृत्यं सस्तर्वमप्यन्तरस्यग्रपूजायाम् ॥ १ ॥ इति ।

किञ्च—सप्तदशमेदिपूजाविधावपि गीतनृत्यवाद्यानि कर्त्तव्यतयोपदिशन्ति ।

किञ्चैकविंशतिविधपूजायामपि नृत्यगीतवादिभ्योऽभ्यामरशीजनैश्च वायुकायसमा-  
रम्भं कारयन्ति ।

उक्तञ्च—“स्नानं विठेपनं चामूक्यं पुष्पवास—

धूपमदीपफलस्तन्दुलपत्रपूगैः ।

नैवेद्यवारिवसनैश्चमरातपत्र,—

वादिप्रगीतनटनस्तुतिकोशहृदया ॥ १ ॥

इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा ” इत्यादि ।

‘गाना, नाचना कथाना समण—कल आरती करना, दीपक बलाना आदि भिन्ने कार्य हैं, वे सब अग्रपूजा में किये जाते हैं ’ ॥१॥

तथा वे द्रव्यसिद्धी कण्ठी ‘सत्तरप्रकार की पूजा में भी गीत, नृत्य और वाद्य आदि क्रियाएँ करनी चाहिए’ ऐसा उपदेश देते हैं ।

तथा इकट्ठसमेदी पूजा में भी नृत्य गीत, वादित्र तथा चामर और पंसा आदि के द्वारा वायुकाय का समारंभ करते हैं । ऐसा कहा है —

“स्नानं, विठेपनं, चामूक्यं, पुष्प वास धूप दीप, फल, चाबक पत्र, सुपारी, नैवेद्य कल, बल चामर, छत्र वादित्र गीत माटय, स्तुति और कोशहृदि, इस तरह इकट्ठ प्रकार की जिन भगवान् की पूजा होती है ” ॥१॥

वाजुं, नाचजुं, पञ्चजुं, श्रीकुं कल, आरती करनी, दीपक—दीपों बलानों आदि नेटलां काय छे ते सर्व अग्रपूजाभां करवाभां आवे छे. ’ ॥ १ ॥

तथा ते द्रव्यसिद्धी—इ दी सत्तरप्रकारनी पूजाभां पञ्च कथेशां नृत्य जाने काय वालत्र आदि क्रियाओं करनी जेथजे. जेवो उपदेश आपे छे.

तथा जेकवीससेदी पूजाभां पञ्च नृत्य, गीत, वालत्र तथा चामर जाने पञ्चा आदि द्वारा वायुकायको समारंभ करवे छे जेभ कहुं पञ्च छे—

“स्नानं, विठेपनं, चामूक्यं, पुष्प, वास, धूप, दीप, इत थोजा, चत्र, सोपारी, नैवेद्य, कल, बल चामर छत्र, वालत्र, गीत, नाचक स्तुति जाने कोशहृदि ( धर्मदाना नामे नाचुं—धन—नीहृदि ) आ प्रभवे जेकवीस प्रकारनी जिनकायवाननी पूजा काय छे. ” ॥१॥

अलमधिकेन—एवमपि ते प्रलपन्ति—यदि जिनभक्त्युद्रेकेण साधुरपि नृत्येत्तदा नास्ति दोष इति ॥ सू० २ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जन्मूस्वामिनं प्राह—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेइया । इमस्स चैव जीवियस्स परिवंदणमाणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव वाउसत्थं समारंभइ, अण्णेहिं वा वाउसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वाउसत्थं समारंमते समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अवोहीए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परि-

ज्यादा क्या कहें ! वे यहाँ तक भी वकते हैं कि—जिनराज की भक्ति में भक्त होकर अगर साधु भी नाचने लगे तो भी कोई दोष नहीं है अर्थात् वह आराधक है ॥ सू० २ ॥

सुधर्मा स्वामी जन्मू स्वामी से कहते हैं—‘तत्थ खलु’ इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने वायुकाय के आरंभ के विषय में उपदेश दिया है । इसी जीवन के परिवन्दन, मानन, और पूजन के लिए, जन्म—मरण से छुटकारा पानेके लिए, दुःख का नाश करने के लिए लोग स्वयं वायुकायशस्त्र का आरंभ करता है, दूसरों से वायुकायशस्त्र का आरंभ कराता है और वायुकायशस्त्र का आरंभ करने वाले दूसरों की अनुमोदना करता है । यह उसके अहित के लिए और उसकी अवधि के लिए है ॥ सू० ३ ॥

विशेष शु कहीअे, ते अेटवे सुधी पणु कडे छे के—जिनराजनी लक्षितभा भक्त यधने अगर साधु पणु नाच करवा लागे तो पणु केउ दोष नथी अर्थात् ते आराधक छे ॥२॥

सुधर्मास्वामी जन्मूस्वामीने कडे छे—‘तत्थ खलु’ इत्यादि

मूलार्थ—भगवाने वायुकायना आरंभना विषयमा उपदेश आप्थो छे आ लपनना परिवंदन, मानन अने पूजा भाटे, जन्म, मरणथी छुटवा भाटे, दुःखना नाश करवा भाटे कौक स्वयं—पोते वायुकायशस्त्रना आरंभ करे छे, अनि पासे वायुकायशस्त्रना आरंभ करावे छे अने वायुकायशस्त्रना आरंभ करवावाणा अनिने अनुमोदन आप्थे छे । ते अनि (पोताना) अहित भाटे अने तेमनी अण्णधिने भाटे छे ॥ ३ ॥

बन्धनमाननपूजनाय, जातिमत्समोषनाय, दुःखप्रतिपातहेतुं स स्वयमेव वायुधस्र  
समारमते, अन्यैर्वा वायुधस्रं समारम्भयति, अन्यान् वायुधस्रं समारममाणान् समजु  
नानाति, तद् तस्याभिताय, तद् तस्याबोधये ॥ सू० ३ ॥

टीका—

सम=वायुकायसमारम्भे, मगपता=भीमहावीरेण, परिष्ठा=इ-प्रत्यास्थान-  
मैदाव् विषिषा, स्वच्छ=निश्चयेन, प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मरज-परिहरणार्थं मम्य-  
बीधेन परिष्ठाज्जिह्वं धरणीकरणीयेति मगपता प्रतिबोधिसमिति मावः ।

उपयोगद्वार—

श्लोकः कस्मै प्रयोजनाय वायुकायसुपमर्दयतीत्याह—‘अस्य वैश्व  
धीवितस्य’ इत्यादि । अस्यैव=अस्यकालावस्थायिनः, जीवितस्य=मीढनस्य  
सुखार्थम् उपजन-तालान्त-मक्ष-प्यात-कृत्कारा-प्रीसादिभिः, क्षीतोष्णवायु

टीकार्थ—वायुकाय के समारंभ के विषय में श्री महावीरने उपरिष्ठा तथा प्रत्या-  
स्थानपरिष्ठा बतवा है । तात्पर्य यह है कि-कर्मरज की रजको हटाने के लिए मम्य बीध को  
परिष्ठा अवश्य स्वीकार करना चाहिये, ऐसा उपदेश मगपतने दिया है ।

उपयोगद्वार—

श्लोक किस प्रयोजन से वायुकाय की निराधना करते हैं ? यह बतवाते हैं-इस अव्यक्तस्थान  
धौन के सुख के लिए पंथा ताडपला दिखना, धौकनी का धौकना, फूक मारना, यास केना  
आदि क्रियाओं द्वारा तथा शीत और उष्ण वायुका सेवन द्वारा वायुकाय की हिंसा करते हैं ।

टीकार्थ—वायुकायना समारंभना निषेधना श्रीमहावीरे उपरिष्ठा तथा प्रत्यास्थान  
परिष्ठा अवधानी छे ताडपला जे छे छे-कर्मरजपी रजने दूर करना आटे मम्य उपोन्ने  
परिष्ठाते अवश्य स्वीकार करी लेवे जेधजे आ प्रभाते भगवाने उपदेश आये छे

उपयोगद्वार—

श्लोक क्या प्रयोजनसे वायुकायनी निराधना करे छे ? जे बतावे छे आ उप  
कायना उपनना सुख आटे पया ताडपला दिखना धमज धमपी-कृ क मारपी, यास  
लेवे, आदि क्रियाओंद्वारा तथा शीत जने उष्ण (उष्ण जने गरम) वायुना सेवनद्वारा

सेवनेश्च, तथा परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थ-दृतिर्वाद्यवेपु-  
 प्रभृतिवादानादौ, माननं=जनसत्कारस्तदर्थं, व्यजनयन्त्रादिप्रचालनादौ,  
 पूजनं=वस्त्ररत्नादिलाभस्तदर्थं वायुयान-वायुयन्त्रादिनिर्माणादौ, तथा जाति-  
 मरणमोचनार्थं=देवप्रतिमाभिमुख नृत्यगीतवादित्रप्रयोगे, व्यजनचामरादिवीजने च,  
 तथा दुःखप्रतिघातहेतुं=व्याधिप्रतीकारार्थं नवीनवैज्ञानिकोद्भावितवायु-  
 चिकित्साया, तथा-तालवृन्तादिना वायुकायोद्भावने स=जीवनसुखाद्यर्थी,  
 स्वयमेव वायुशस्त्रं=वायुकायोपमर्दकं-शस्त्रं समारभते=व्यापारयति, अन्यैर्वा वायु-  
 कायशस्त्रं समारम्भयति=प्रयोजयति, अन्यान् वायुशस्त्रं समारभमाणान् समनु-

तथा परिवन्दन अर्थात् प्रशंसा पाने के लिए, मशकवाद्य और वांसुरी बजाकर, मानन अर्थात्  
 जनसत्कार के लिए व्यजनयत्र (बीजली का पखा) गानयत्र ( रेडियो, ग्रामोफोन आदि) बजाकर,  
 पूजन अर्थात् वस्त्रों एवं रत्नों आदि के लाम के लिए वायुयान (एरोप्लेने) वायुयत्र आदि के  
 बनाने में, तथा जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए, जैसे-जिनप्रतिमा के आगे नृत्य, गीत  
 और वादित्र का प्रयोग करने में, चामर पखा आदि डुलाने में, तथा दुःख का नाश करने के  
 लिए, जैसे-व्याधि मिटाने के लिए आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा निकाले हुई वायुचिकित्सा  
 में तथा ताडपखा आदि द्वारा वायुकाय की उदोरणा करने में वायुकाय की हिंसा करते  
 हैं। इस प्रकार इस जीवन के सुख के अर्थी स्वयं वायुकाय के धातक शस्त्रों का समारम्भ  
 करते हैं, दूसरों से कराते हैं और वायुकाय का समारम्भ करने वाले दूसरों का अनुमोदन

तथा परिवन्दन, अर्थात् प्रशंसा भेगववा भाटे मशकवाद्य अने वासणी वगेरे  
 भलवीने, व्यजनयत्र तथा गानयत्र ( विजणीथी आलता पभा अने रेडीयो  
 तथा आभोक्षेन ) वगेरे भलवीने, पूजन अर्थात्-वस्त्रो अने रत्नो आदिना लाल  
 भाटे वायुयान ( अरोप्लेन ) अने वायुयत्र आदि भनाववामा तथा जन्म-मरणथी  
 छुटवा भाटे जेभके-देवप्रतिमानो पाने नृत्य-गीत अने वाद्यत्रनो प्रयोग करवामा,  
 चामर, पभा आदि डलाववामा, तथा दुःख अने नाश करवा भाटे, जेभके-व्याधि मटाडवा  
 भाटे आन्कालना वैज्ञानिकद्वारा शोध करवायेली वायुचिकित्सा, तथा ताडपत्रना  
 पभाद्वारा वायुकायनी छीदरवावा वायुकायनी हिंसा करे छे अने प्रभाए आ लवनना  
 सुभना अर्थी पाने वायुकायना धातक शस्त्रोना समारम्भ करे छे, भीलनी पाने करवे छे  
 अने वायुकायनो समारम्भ करवावाणा भीलने अनुमोदन आपे छे. वायुकायने

जानाति=अनुमोदयति । तद्=वायुकायसमारमणं, तस्य=वायुकायसमारमणं  
 कुर्वत कारयितुः अनुमोदयितुम् अहिताय भवति । तथा=तत् तस्य अबोधय=  
 सम्यक्साक्षामाय भवति ॥ सू० ३ ॥

येन तु तीर्थङ्गरादिसमीपे वायुकायस्वरूपं पश्चिातं स एषं विभावयतीत्याह—  
 'से तं' इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संयुज्जमाप्ये आयाणीयं ससृष्टाय सोबा स्तु मन्स्यो अगारान्तां वा  
 अंतिप, इहमेगेसि पायं मवा-एस सख्द गंवे एस सख्द मोहे, एस सख्द मारे, एस  
 सख्द गरप । इष्वत्प गश्चि सोप, ममिष विक्रमस्वेहिं सत्पेहिं वाउकम्मसमारमेणे,  
 पाउसत्सं समारममाणे जण्णे अणेगस्स्ये पापे विहिंसइ ॥ सू० ४ ॥

करते हैं । वायुकाय का यह आरंभ करने वाले करने वाले और उसकी अनुमोदना करने  
 वाले को अहितकर होता है तथा अविचक्षण होता है ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट बिसने वायुकाय का स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार  
 विचार करता है—'से तं' इत्यादि ।

मूलार्थ—मज्जान् से या उनके अंगारों से मुनकर-समस्तकर बिसने संसम धारण  
 किया है वह जानता है कि—यह वायुकाय का समारंभ ही प्रथम है यही मोह है, यही मार  
 है, यही मरक है । इसी में छोटा गुद हो रहे है, क्यों कि नाना प्रकार के शक्तों से वायुकाय  
 के समारंभद्वारा वायुकाय का आरंभ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा  
 करते हैं ॥ सू० ४ ॥

आरंभ आरंभ इत्यावाणने, इत्यनारने जने तेनी अनुमोदना व्यापवावाणने  
 अहितकर भाव छ तथा अविचक्षण भाव छ ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदिना समीपमां जेजे वायुकायनु स्वरूप समल बोधि छ, ते जा  
 प्रभावे विचार करे छ— से तं इत्यादि ।

मूलार्थ—मज्जान् पासोधी जसवा तेमना जण्णारा पासेधी सांजणी-समल  
 ने जेजे संसम धारण कर्तुं छ ते जेजे छ हे—जा वायुकायने समारंभ प्रथम छ  
 जेज मोह छ जेज मार छ जेज मरक छ जेमां होके बुद्ध बर्ध रखा छ केभडे  
 नाना प्रकारना शक्तोधी वायुकायना समारंभद्वारा वायुकायने आरंभ इत्यादि  
 अन्य जनेके प्रकारना प्रवृत्तिनी हिंसा करे छ ॥ सू० ४ ॥

## छाया—

स तत् संवुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके इहैकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृह्यो लोकः, यदिम विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकर्मसमारम्भेण वायुशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ४ ॥

## टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावद्ययोगविरतिरूप चारित्र्यं समुत्थाय=अङ्गीकृत्य, विहरति, स तत्=वायुकाय समारम्भणं संवुध्यमानः=अहिताबोधिजनकत्वेन विज्ञाता सन्नेवं विभावयति—

इह=मनुष्यलोके, एकैषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंज्ञातसम्यग्बोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—'एष खलु ग्रन्थः' । इत्यादि ।

एषः वायुशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे

टीकार्थ—जिस पुरुषने तीर्थंकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थों के मुखारविन्द से सुनकर सर्व सावद्य का त्यागरूप सयम अगीकर किया है वह वायुकाय के समारम्भ को अहितकर और अबोधिजनक समझता हुआ इस प्रकार विचारता है—

इस लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करने वाले आत्मार्थी जनों को ही यह विदित होता है कि—

वायुशस्त्र का यह समारम्भ निश्चितरूप से कर्मबन्ध का कारण है । कारण में

टीकार्थ—ये पुरुषे तीर्थंकर भगवान् अथवा तेमना अनुयायी श्रमण-निर्ग्रन्थानां मुखारविन्देऽथी सावधानीने सर्व सावद्यना त्यागरूप सयम अगीकार कर्षीं छे, ते वायुकायना समारम्भने अहितकर अने अबोधिजनक समझता थका आ प्रमाद्ये विचारे छे—

आ लोकमा श्रमण निर्ग्रन्थाना उपदेशथी सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य प्राप्त कर्षवाणा आत्मार्थी एवोनेज्जे अने नक्षुवामा छे के—

वायुशस्त्र आना समारम्भ निश्चितरूपथी कर्मबन्धुं कारण्ये छे कारण्यमा

कार्योपचारात् । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः वायुः सप्तमारम्भाः, मोहः=विपर्ययः  
 =अज्ञानम् । तथा एष एव मारः=मरण निगोदादिमरणरूपः । तथा एष एव नरकः=  
 नारकजीवानां दशनिषयातनास्थानम् ।

इत्यु-एतदर्थं ग्रन्थमोहमरणनरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थं  
 मेव, लोकाः=अज्ञानवस्तुवर्ती जीवः गृहः=लिप्सुरस्ति । यद्वा वृद्धः=मोगामिस्वामी,  
 मोहः=संसारी जीवः, इत्यर्थ-एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तत इति शेषः ।

लोक पुन पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्तत इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञापते ? इति  
 जिज्ञासायामाह—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=नालादिषुः क्लेशैः पूर्वोक्तमकारैः वायुकर्म

कार्यं क्व उपचार करके कर्मबंध के कारण को मूल में कमबध कहा है । आगे भी इसी  
 प्रकार समझ लेना चाहिए । तथा यह वायुकाय का समारंभ अज्ञानरूप है, यह निगोद  
 आदि में मूल्य का कारण है, और नरक है अर्थात् नास्कीय यातनाओं का स्थान है ।

बंध, मोह मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल पाकर भी अज्ञानी जीव बार-बार  
 इसी की समझा करते हैं । अथवा मोगों के अमिस्वामी संसारी जीव इस बंध, मोह, मरण  
 और नरकरूप फल के किए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

जोग कर्मबंध के किए ही पुनः पुनः प्रवृत्ति करते हैं, यह जो कहा है सो किस प्रकार  
 जाना जाय ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—'यदिमम्' इत्यादि ।

क्यों कि माना प्रकार के, वायुकाय की विरूपण करने वाले सावय ध्यापार

कार्योपचार करके कर्मबंध के कारण को मूल में कमबध कहा है । आगे भी इसी  
 प्रकार समझ लेना चाहिए । तथा यह वायुकाय का समारंभ अज्ञानरूप है, यह निगोद  
 आदि में मूल्य का कारण है, और नरक है अर्थात् नास्कीय यातनाओं का स्थान है ।

बंध, मोह, मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी  
 जीव बार-बार इसी की समझा करते हैं । अथवा मोगों के अमिस्वामी संसारी जीव इस  
 बंध, मोह, मरण और नरकरूप फल के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

जोग कर्मबंध के लिए पुनः पुनः प्रवृत्ति करते हैं जो प्रकृत्ये ने कहा है तो  
 इसी रीति जल्दी शक्य ? जेही उदाहरण यथां कहे थे—'यदिमम्' इत्यादि ।

क्यों कि माना प्रकार की वायुकाय की विरूपण करने वाले सावय ध्यापार द्वारा तो  
 प्र व्या-८८



સમારમ્ભેણ=વાયુકાયોપમર્દનરૂપસાવધવ્યાપારેણ, ઇમં=વાયુકાયં વિહિનસ્તિ । તથા-  
વાયુશસ્ત્રં સમારમ્ભાણઃ-વ્યાપારયન્, અન્યાન્=પૃથિવીકાયાદીન્, અનેકરૂપાન્  
સ્થાવરાંસ્ત્રસાંશ્ચ, પ્રાણાન્=પ્રાણિનઃ વિહિનસ્તિ=ઉપમર્દયતિ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

વાયુશસ્ત્ર સમારમ્ભાણા અનેકવિધાન્ જીવાન્ કથ વિહિસન્તિ, તત્ ચ પ્રતિ-  
બોધયિતું શ્રીસુધર્મા સ્વામી પ્રાહ—‘ સે વેમિ. ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

સે વેમિ-સતિ સંપાડ્મા પાણા આહચ્ચ સંપયંતિ ય, ફરિસં ચ સ્વલ્લ પુટ્ટા ઇગે  
સંઘાયમાવજ્જતિ । જે તત્થ સઘાયમાવજ્જંતિ, તે તત્થ પરિયાવજ્જંતિ । જે તત્થ  
પરિયાવજ્જંતિ તે તત્થ ઉદ્દાયતિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા—

તદ્ બ્રવીમિ-સંતિ સંપાતિમાઃ પ્રાણાઃ, આહત્ય સંપતન્તિ ચ, સ્પર્શં ચ સ્વલ્લ  
સ્પૃષ્ટા ઇકે સંઘાતમાપઘન્તે । યે તત્ત્ર સઘાતમાપઘન્તે, તે તત્ત્ર પર્યાપઘન્તે । યે તત્ત્ર  
પર્યાપઘન્તે તે તત્ત્રાપદ્રાવન્તિ ॥ ૫ ॥

દ્વારા વે વાયુકાય કા ઘાત કરતે હૈં । તથા વાયુકાય કે શસ્ત્રોં કા પ્રયોગ કરતે હુપ પૃથ્વીકાય  
આદિ અનેક પ્રકાર કે સ્થાવરોં કા, તથા ત્રસ જીવોં કા ઉપમર્દન કરતે હૈં ॥ સૂ. ૪ ॥

વાયુકાય કે શસ્ત્રોં કા પ્રયોગ કરને વાલે નાના પ્રકાર કે જીવોં કી હિંસા કૈસે કરતે  
હૈં ? યહ વત્તલાને કે લિપ શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહતે હૈં —‘ સે વેમિ. ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—વહ મૈં કહતા હૈં—ઇકાઇક ઉડકર પડને વાલે જીવ હૈં જો અચાનક  
આપડતે હૈં, ઓર વાયુકાય સે સ્પૃષ્ટ હોકર કોઈ-કોઈ સઘાત કો પ્રાપ્ત હોતે હૈં । જો  
સઘાત કો પ્રાપ્ત હોતે હૈં ઉનકા શરીર સિકુડ જાતા હૈ, મૂર્છિત હો જાતે હૈં, વે મર મી  
જાતે હૈં ॥ સૂ૦ ૫ ॥

વાયુકાયને ઘાત કરે છે તથા વાયુકાયના શસ્ત્રોને પ્રયોગ કરતા થકા પૃથ્વીકાય  
આદિ અનેક પ્રકારના સ્થાવરો તથા ત્રસજીવોનું ઉપમર્દન (નાશ) કરે છે ॥ સૂ. ૪ ॥

વાયુકાયના શસ્ત્રોના પ્રયોગ કરવાવાળા નાના પ્રકારના જીવોની હિંસા કેવી રીતે  
કરે છે ? એ બતાવવા માટે શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે —‘ સે વેમિ ’ ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—હું તે કહું છું—એકાએક (આગિતા) ઉડીને પડવાવાળા જીવ છે  
તે અચાનક આવી પડે છે, અને વાયુકાયથી સ્પૃષ્ટ થઈને કોઈ-કોઈ જથ્થે થાય  
છે એ સઘાત-સસુઠાય-જથ્થાપમા પ્રાપ્ત થાય છે, તેનું શરીર સ કોચાઈ જાય છે,  
મૂર્છિત થઈ જાય છે, અને તે મરી પણ જાય છે ॥ સૂ. ૫ ॥

टीका—

सत् प्रथमि=वायुकायहिंसया यथा बहुविधाः प्राणिनः प्रवश्यन्ति, सत्  
 क्ययामि=संपातिमाः=उत्पत्योत्पत्यपतनशीलाः, प्राणाः=प्राणिनः सन्ति=वायु  
 क्ययामित्व विद्यन्ते । एते संपातिमाः आहत्य=व्यजनताडनरक्षादिभिः मोक्षा  
 पितवायुकायादाघातं प्राप्य, संपतन्ति=वायुभेगसमाकुप्टाः प्राणापगमायोद्धिग्नास्तत्रैव  
 वायुकाये संविद्यन्ति, संश्लिष्यन्तीत्यर्थः ।

स्पर्शं चेति । स्पर्शोऽस्यास्तीति स्पर्शः=स्पर्शवान्, सं स्पर्शं=वायुकार्यं, स्पृष्टाः  
 =स्पर्शकर्तारः मार्पत्वात् कर्तारि कः । एके=वायुभेगसमाहताः प्राणिनाः, संपातमाप  
 यन्तं=परस्परसंपर्केन गात्रसंश्लेषं प्राप्नुवन्ति ।

ये सप्त=वायुकाये संपातिता संपातमापयन्ते, ते सप्त=वायुकाये

टीकार्थ—वायु की हिंसा से अनेक प्रकार के प्राणियों का घात किस प्रकार होता  
 है सो कहता हूँ । संपातिम अर्थात् उड़-उड़कर पड़ने वाले अनेक जीव वायुकाय के आभित  
 रहते हैं । ये संपातिम जीव पत्ता साजगन्त—पत्ता कि एक व्यक्ति, बल आदि से ऊपरिणा को हुई  
 वायुकायद्वारा आघात पाकर गिर पड़ते हैं, अर्थात् वायु के वेग से लिपक़र पहराये हुए  
 वायुकाय के साथ ही जुड़-से जाते हैं ।

यहाँ स्पर्श का अर्थ है स्पर्शवान् अर्थात् वायु । कोई-कोई वायु के वेग से आहत  
 हुए जीव संपात को प्राप्त होते हैं अर्थात् परस्पर रगड़ साकर सिकुड़ जाते हैं ।

वायुकाय में पड़े हुए जो जीव सिकुड़ जाते हैं वे वायुकाय के व्यपात से

टीकार्थ—वायुकायनी हिंसाधी अनेक प्रकारना प्राणीजोनेध घात देनी हीते  
 याम उ ते हुं हुं हुः—संपातिम—उड़ी-उड़ीने पडकवाया अनेक एव वायुकायना  
 आशये रहे उ ते संपातिम एव, पला, ताडन, पत्र आदिधी उड़ीरवा  
 कशजोवा वायुकायद्वारा आघात पानीने पड़ी अथ उ अर्थात् वायुना वेगधी  
 ये आघातेन अकसजोवा वायुकायनी साधेश जोधर् अथ उ

अही स्पर्शाने अथ उ—स्पर्शवान्—अर्थात् वायु देहर्-देहर् वायुना वेगधी  
 आहत-ताडन कशजोवा एव संपात-कवापयाने प्राप्त याम उ अर्थात् परस्पर  
 बससर्धने सडोवर्ध अथ उ

वायुकायर्मा पडेवा ने एणे संश्लेषर् अथ उ ते वायुकायना आघातधी भूर्ति

संश्लिष्टा पर्यापद्यन्ते=वायुकायाघातेन मूर्छाभाप्नुवन्ति-प्रणष्टचेतना भवन्तीत्यर्थः ।  
ये तत्र=पर्यापद्यन्ते, ते तत्र=वायुकाये, अपद्रावन्ति=प्राणैर्वियुज्यन्ते ।

वायुशस्त्रसमारम्भेण न केवलं वायुजीवविराधना जायते, किन्तु सर्वदिक्-  
संचारिणां संपातिमजीवानामन्येषां च बहुविधाना हिंसाऽपि दुर्निवारा भवतीति  
भावः ॥ सू० ५ ॥

एवं वायुकायस्य सच्चित्तत्वं विदित्वा मुनित्वप्राप्तये त्रिकरण-त्रियोगैस्तत्समा-  
रम्भो वर्जनीय इत्याशयेनाह—'एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारम्भमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवन्ति ।

मूर्छित हो जाते हैं—उनकी चेतना नष्ट हो जाती है, और जो मूर्छित हो जाते हैं वे प्राणों से  
रहित हो जाते हैं अर्थात् मर जाते हैं ।

वायुकाय के शस्त्र का आरम्भ करने से अकेले वायुकाय की ही विराधना नहीं होती  
वरन् सभी दिशाओं में फिरने वाले सपातिम जीवों की तथा अन्य अनेक प्रकार के जीवों की  
हिंसा होना भी अनिवार्य है ॥ सू० ५ ॥

इस प्रकार वायुकाय की सच्चित्ता समझकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन करण  
तीन योग से वायुकाय का समारम्भ त्यागने योग्य है । इस आशय से सूत्रकार कहते हैं—  
'एत्थ सत्थं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—वायुकाय के विषय में शस्त्र का व्यापार करने वाला इन व्यापारों

थर्ध नय छे—तेनी चेतना नाश पाभी नय छे अने ले मूर्छित थर्ध नय छे ते  
प्राणुधी रहित पणु थर्ध नय छे अर्थात् मरणु पाभे छे

वायुकायना शस्त्रेणो आरंभ करवाधी, अकेला वायुकायना एवोनीज विराधना  
थाय छे अट्टणु नडि परन्तु सर्व दिशाओभा इरवावाणा सपातिम एवोनी तथा  
अन्य अनेक प्रकारना एवोनी घात थवी ते पणु अनिवार्य छे ॥ सू० ५ ॥

आ प्रमाणु वायुकायनी सच्चित्ता समज्जने साधुता प्राप्त करवा भाटे त्रणु  
करणु त्रणु योगधी वायुकायने समारंभ त्याग करवा योग्य छे. अे आशयधी  
सूत्रकार कडे छे—'एत्थ सत्थं' इत्यादि.

मूलार्थ—वायुकायना विषयमा शस्त्रेणो व्यापार करवावाणाओ अे व्यापारोने

एतत् सत्यं असमारममात्मस्य इत्येते आरम्भा परिष्णाया भवन्ति । त परिष्णाय मेधावी षेव सत्यं वाउसत्यं समारमेज्जा, षेवऽप्येहि वाउसत्य समारमावेज्जा, षेवऽप्ये वाउसत्यं समारमते समणुजापेज्जा, अस्सेते वाउसत्वसमारमा परिष्णाया भवन्ति, से हु सुवी परिष्णापक्रमे—ति वेमि ॥ सू० ६ ॥

छाया—

अथ अस्मिन् समारममात्मस्य इत्येते आरम्भाः अपरिष्णाता भवन्ति । अथ अस्मिन् समारममात्मस्य इत्येते आरम्भाः परिष्णाता भवन्ति । त परिष्णाय मेधावी नैव स्वयं वायुसत्त्वं समारमेत, नैवान्यैर्वायुसत्त्वं समारम्भयेत्, नैवान्यान् वायुसत्त्वं समारममान् समनुजानीयात् । यस्यैते वायुसत्त्वंसमारम्भाः परिष्णाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिष्णातकर्मा, इति व्रवीमि ॥ सू० ६ ॥

टीका—

अथ—अस्मिन् वायुकाये, अस्मिन्—पूर्वोक्तपक्षरं समारममात्मस्य—न्यायाप्यता, इत्येते—पूर्वोक्ताः भिन्नरूपभियोगैः कृता आरम्भाः—वायुकाययोपमर्दनस्याः

को कर्मबन्ध का कारण नहीं समझता । वायुकाय में शक्ता का व्यापार न करने बाध इन व्यापारों को कर्मबन्ध का कारण समझता है । उसे जानकर विवेकी पुरुष स्वयं वायु शक्त का अपस्म न करे, दूसरों से वायुशक्त का आरम्भ न करवे और वायुशक्त का आरम्भ करने बाधों का अनुमोदन न करे । जो वायुकाय के शक्तों के व्यापार को जानता है वही मुनि है, वही सावध व्यापार का त्यागी है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ६ ॥

टीकाार्थ—वायुकाय के विषय में पूर्वोक्त शक्तों का उपयोग करने बाध तीन क्रम तीन योग से किये जाने बाधे और वायुकाय के वातक सावध व्यापारों को कर्मबन्ध

कर्मबन्धनुं कारण समञ्जसा नहीं, वायुकायभा शक्तोने व्यापार नहीं करवावणा ते व्यापारने कर्मबन्धनुं कारण समञ्जे छे तेने जाह्यीने विवेकी पुरुष चोते वायुशक्तोने व्यापार करे नहीं, पीला पासे वायुशक्तोने व्यापार करवावे नहीं, अने वायुशक्तोने व्यापार करवावणाने अनुमोदन आपे नहीं, से वायुकायना शक्तोना व्यापारने जाये छे तेव मुनि छे तेव सावध व्यापारना त्यागी छे आहुं—(आ प्रमाये) हुं कहुं छु ॥ सू. ६ ॥

टीकाार्थ—वायुकायना विषयमां पूर्वोक्त शक्तोने उपयोग करवावणा तवुं कारण तवुं योगशी करवाभा जावता अने वायुकायना वातक सावध व्यापारने कर्मबन्धनुं कारण

सावधव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगताः भवन्ति ।

अत्र=अस्मिन्नेव वायुकाये, शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्रसु-  
ञ्जानस्य, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावधव्यापाराः, परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरि-  
ज्ञया परिज्ञाताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति, तं प्रकारं दर्शयति-‘तद्  
परिज्ञाय’ इत्यादि । तद्=वायुकायारम्भणं, परिज्ञाय=‘कर्मबन्धस्य कारणं भवती’  
त्यवगत्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः स्वयं वायुशस्त्रं नैव समारभेत=नैव  
व्यापारयेत्, अन्यैर्वायुशस्त्रं नैव समारम्भयेत्, वायुशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान्  
नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत् ।

यस्यैते वायुशस्त्रसमारम्भाः=वायुकायमुद्दिश्य शस्त्रैस्तदुपमर्दनरूपाः

का कारण नहीं समझता । अर्थात् उसे यह ज्ञान नहीं होता कि-‘इन पाप-कृत्यों से मुझे  
कर्म का बंध होगा’

लेकिन इसी वायुकाय के विषय में शस्त्रों का आरम्भ न करने वाला सावध व्यापारों  
को ज्ञपरिज्ञा से जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है ।

ज्ञपरिज्ञापूर्वक प्रत्याख्यानपरिज्ञा जिस प्रकार होती है सो दिखलाते हैं-वायुकाय के  
आरम्भ को कर्मबन्ध का कारण जानकर हेयोपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष स्वयं वायुशस्त्र  
का आरम्भ न करे, दूसरों से वायुशस्त्र का आरम्भ न करावे और वायुशस्त्र का आरम्भ करनेवालों  
का अनुमोदन न करे ।

जिसने वायुकायसबधी इन आरम्भों को अर्थात् सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से

समझता नहीं अर्थात् तेमने ये ज्ञान थयुं नहीं के-‘आ पापकृत्येथी मने कर्मने  
बन्ध थशे’ परतु आ वायुकायना विषयभा शस्त्रेने आरल नडि करवावाणा सावध  
व्यापारिने ज्ञपरिज्ञाथी नल्ले छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्यल्ले हे छे ज्ञपरिज्ञापूर्वक  
प्रत्याख्यानपरिज्ञा ने प्रमाळ्णे छेय छे. ते अतावे छे-वायुकायना आरलने कर्मबन्धनुं  
कारणु नल्ल्णीने छेय-उपाद्देथेने विवेक राअवावाणा पुरुष पोतेन वायुशस्त्रेने आरल  
करे नडि अील पासे वायुशस्त्रेने आरल करावे नडि. अने वायुशस्त्रेने आरल  
करवावाणाने अनुमोदन आपे नडि.

ने वायुकायसंभधी ये आरलने अर्थात् सावध व्यापारिने ज्ञपरिज्ञाथी ‘कर्म-

सावयव्यापाराः, परिहृताः=इ-परिहृत्या बन्धकारणतया विदित्वा प्रत्याख्यान-  
परिहृत्या च परिवर्जिता भवन्ति, स एव परिहृतकर्मा=त्रिकरणप्रयोगैः परिनिर्जित  
सकम्पसावयव्यापाराः, मुनिमवति ।

न्तु त्रिकरणप्रयोगैर्वायुकायविराभनापरिहारेण यस्तु परिहृतकर्मा स एव  
मुनिर्भवतीत्युक्तं क्वचनमुपपद्यते ? यतो हि गच्छता विच्छन्ना आसीनेन स्वपता  
शुद्धानेन मापमात्रेण वायुकायविराभना दुष्परिहारा कर्त्तव्यं मुनिभरेत् विच्छेत्  
आसीत् क्षयीत् शुद्धीत् भावेत् ? इति । अप्रोष्यते-मुनिर्ना सर्वं स्वकर्त्तव्यं यत्नयैव  
सपादनीयम्, अत एवोक्तं भगवता—

कर्मण का कारण बान किया और प्रत्याख्यानपरिहारा से त्याग किया है वही तीन करण  
और तीन योग से त्याग करने वाला मुनि होता है ।

शंका—‘तीन करण और तीन योग से वायुकाय की विराभना का त्याग  
करने वाले ही मुनि होते हैं’ यह कथन किस प्रकार सही हो सकता है ? पहले,  
ठहरने, बैठने सोने आहार करने और माफण करने में वायुकाय की विराभना से बच नहीं  
सकते । ऐसी तन्ना में मुनि कैसे कहे, कैसे ठहरे कैसे बैठे, कैसे सोए, कैसे योगन करे  
और कैसे कहे ?

समाधान—मुनि को अपनी सब क्रियाएँ यत्नापूर्वक ही करनी चाहिए ।  
भगवान्ने कहा है—

अन्धनुं कश्चि उ ज्ञेयं ज्ञायी वीपु उ ज्ञाने प्रत्याख्यानपरिहाराधी तेने त्वच्छ वीध  
उ ते त्रयु कश्चि ज्ञाने त्रयुयोगधी त्याज कश्चावाणा मुनि बोध उ

शंका— त्रयु कश्चि ज्ञाने त्रयुयोगधी वायुकायनी विराभनाने त्याज कश्चावाणा  
ए मुनि बोध उ ज्ञा यत्न केवी रीते सायु बोध शके उ ? आसतां ज्ञसत्तां,  
शेकातां, सुतां सोज्जन कश्चां ज्ञाने वायु कश्चां वायुकायनी विराभनाधी ज्ञयी शकार्त  
नधी ज्ञेवी उशाभां मुनि केवी रीते आले केवी रीते ज्ञसे, केवी रीते शकाय, केवी  
रीते सुवे, केवी रीते सोज्जन करे ज्ञाने केवी रीते ज्ञात ?

समाधान—मुनिज्ये फेतामी सव क्रियाज्ये यत्नापूर्वक करनी ज्येधजे, ज्ञानवाने  
कहे उ—

“ જય ચરે જયં ચિદ્દે, જયમાસે જયં સપ્ ।

જયં ધુંજતો ભાસંતો, પાવકુમ્મં ન વંધઈ ” ॥ ૧ ॥

નતુ ગમનાગમનાદૌ યતનાયાઃ સુસપાદ્યત્વેઽપિ ભાષણયતના કથ ચિધેયા ? કથમપિ ભાષણે દિ વાયુકાયવિરાધના પરિદ્ધર્તુ ન શક્યતે, કથં મુનિર્યતનયા ભાષેત ? ભાષણે વાયુકાયવિરાધનયા સાદ્દ્ સૂક્ષ્મવ્યાપિસપાતિમજીવાનામપિ વિરાધના-ઽવશ્યમ્ભાષિની, તેપાં વાયુવેગસમાક્રાંટાનામાહત્ય સંપતનેન, વાયુસંસ્પર્શેન ચ સંઘાત પર્યાપચ્ય-પદ્રાવણાન્ત ભવતીત્યેત્રૈવોદ્દેઝેઽભિદ્ધિતત્વાત્ ? ઇતિ ચેદુચ્યતે—

મુસ્ખવચ્ચિકાવધનં ભાષણયતના ભગવતા પ્રતિવોધિતા, એપ વાયુકાય-

“યતનાપૂર્વક ચલે, યતનાપૂર્વક સ્થલા રહે, યતનાપૂર્વક વેઠે, યતનાપૂર્વક સોણ, યતનાપૂર્વક મોજન કરે ઓર યતનાપૂર્વક વોલે તો (સાધુ) પાપકર્મ કા વધ નહીં કરતા હૈ ” ॥૧॥

શંકા—જાને—આને મેં યતના સરલતા સે હો સકતી હૈ મગર વોલને કી યતના કિસ પ્રકાર કરની યાહિણ ? વોલને મેં વાયુકાય કો વિરાધના કીસી મી પ્રકાર નહીં ટલ સકતી તો મુનિ કિસ પ્રકાર ભાષણ કરે ? ભાષણ કરને મેં વાયુકાય કી વિરાધના કે સાથ સર્વત્ર વ્યાપ્ત હોટે—હોટે સપાતિમ જીવો કી વિરાધના મી અવશ્ય હોતી હૈ । ઇસી ઉદ્દેશ મેં વતલાયા ગયા હૈ કિ—સપાતિમ જીવ વાયુ કે વેગ સે ચિત્ચકર આ પડતે હૈ ઓર વાયુ કે સ્પર્શ સે સઘાત કો પ્રાપ્ત હોતે હૈ, મૂર્છિત્ત હો જાતે હૈ ઓર મર મી જાતે હૈ ।

સમાધાન—ભગવાન ને મુસ્ખવચ્ચિકા વાધના ભાષણી કી યતના વતલાઈ હૈ ।

‘યતનાપૂર્વક ચાલે, યતનાપૂર્વક ઝેસે, યતનાપૂર્વક રોકાય, યતનાપૂર્વક સુવે, યતનાપૂર્વક મોજન કરે, આને યતનાપૂર્વક ઝોલે તો (સાધુ) પાપ કરમને બધ કરતા નથી ॥૧॥

શંકા—જવા આવવામાં યતના સરલતાપૂર્વક થઈ શકે છે, પરંતુ ઝોલવાની યતના કેવી રીતે કરવી જોઈએ ? ઝોલવામાં વાયુકાયની વિરાધના કોઈ પણ પ્રકારથી ટળી શકતી નથી, તો મુનિ કેવી રીતે ભાષણ કરે ? ભાષણ કરવામાં વાયુકાયની વિરાધનાની સાથે સર્વત્ર વ્યાપ્ત નાના-નાના સપાતિમ જીવોની વિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે આ ઉદ્દેશમાં ઇલાવવામાં આવ્યું છે કે—સપાતિમ જીવ વાયુના વેગથી ખેચાઈને આવી પડે છે, આને વાયુના સ્પર્શથી સંઘાત-(સમુદાય)ને પામે છે, મૂર્છિત થઈ જાય છે અને મરણ પણ પામે છે

સમાધાન—ભગવાને મુખવચ્ચિકા વાધવી તે ભાષણની યતના ઇલાવી છે આ વાયુકાયનો

समारम्भः अन्यमोहमारनरकरूपस्तस्मादहितोऽयमिति मत्वा वायुकायविराधनया  
 शान्तिमार्गावलम्बिनः संयमिनः प्राज्ञान् पारयितुमपि नाशकाङ्क्षन्तीत्यथैवोद्देशे  
 स्मृपविस्तृता भगवता मापजयतनारूपं सुस्वस्त्रिकावन्धनमिति सूचितम् । उक्तञ्च  
 स्मृत्यान्सूत्रे—

“ तत्रो पञ्चा गोयमा ! सस्त्रिणे सुहृपत्तिं सुहृजे सस्त्रिं बंधे ॥ १ ॥

सुहृपत्तीः नं मंते ! क्विपमाणा ? गोयमा ! सुहृपमाणा सुहृपत्ती । सुहृपत्ती नं  
 मंते ! कस्त बत्वस्त क्त्वे ? गोयमा ! एगस्तपि सेयबत्वस्त नं अहृपुडलाए  
 सुहृपत्तिं करेह ॥ २ ॥

कस्तहं सुहृपत्तीय नं अहृ पुडलाई ? गोयमा ! अहृकम्मवइणहृ ॥

सुहृपत्ती नं मंते !, क्वं बंधे !, गोयमा ! एगकमेव दुषकमप्यमाणेव दोरेण  
 सस्त्रिं सुहृ बंधेह । सुहृपत्तीयनं मंते ! के अटे ?, गोयमा ! नणं सुहृअते सह वट्टति  
 से सेणहेण सुहृपत्ती । कस्तसुहृअत्ते । सुहृपत्तिं सुहृजेसस्त्रिं बंधे ?, गोयमा ! सस्त्रिणाठ  
 बीवरकस्सणहृ ॥ ३ ॥

अइ नं मंते ! सुहृपत्ती वाठजीवरकस्सणहृए तो किं सुहृमवाठकायजीवरकस्सण-  
 हृए वा वायरवाठकायजीवरकस्सणहृए वा ? गोयमा ! गोति सुहृमवाठकायजीव  
 रकस्सणहृए वायरवाठकायजीवरकस्सणहृए । मो-ति अविसेसं, एवं ते सग्घेवि  
 धरिंरिता पवुन्धंति ॥ ४ ॥” इति ।

यह वायुकाय का समारंभ मन्त्र है, मोह है, मार है, मरक है और इस कारण  
 अहितकारी है, अतः एवं शान्ति-मोक्षमार्ग का अनुष्ठान करने वाले समयमें वायुकाय की  
 निराधना करके अपने प्राणों की भी रक्षण नहीं करते । इसी उद्देश में भगवान् ने  
 उपदेश दिये हुए माया यतनारूप सुस्वस्त्रिका का बंधना सूचित किया है । स्मृत्यान् सूत्र  
 में कहा भी है—

समारम्भ उ अहं उ आहं उ मार उ नरक उ अने ते काश्चे अहितकारी उ जेट्ठा  
 भाटे शान्ति-मोक्ष मार्ग उ अवलम्बन करवावाण्य अयमी वायुकायमी निराधना करीने  
 पीत्तान्ना प्राण्णी पवु उण्ण करवा नणी अ उदेशमां जयवाने उपदेश आपत्ता यत्ता  
 वाया यतनारूप सुस्वस्त्रिका बंधवानी सूचन्ना करी उ.

स्मृत्यान्सूत्रमां कसुं पणु उः—



“ જયં ચરે જયં ચિદ્વે, જયમાસે જયં સપ્ ।

જયં ધુંજંતો ભાસંતો, પાવકમ્મં ન બંધઈ ” ॥ ૧ ॥

નનુ ગમનાગમનાદૌ યતનાયાઃ સુસંપાદ્યત્વેઽપિ ભાષણયતના કથં વિધેયા ? કથમપિ ભાષણે હિ વાયુકાયવિરાધના પરિહર્તુઃ ન શક્યતે, કથં મુનિર્યતનયા ભાષેત ? ભાષણે વાયુકાયવિરાધનયા સાર્દ્ધં સુક્ષ્મવ્યાપિસપાતિમજીવાનામપિ વિરાધના-ઽવશ્યમ્ભાવિની, તેષાં વાયુવેગસમાક્રુષ્ટાનામાહત્ય સંપતનેન, વાયુસંસ્પર્શેન ચ સંઘાત પર્યાપચ્ય-પદ્રાવણાન્ત ભવતીત્યત્રૈવોદ્દેશેઽભિહિતત્વાત્ ? ઇતિ ચેદુચ્યતે—

મુખવલ્લિકાબધનં ભાષણયતના ભગવતા પ્રતિવોધિતા, એ વાયુકાય-

“યતનાપૂર્વક ચલે, યતનાપૂર્વક સ્થલા રહે, યતનાપૂર્વક વેઠે, યતનાપૂર્વક સોપ, યતનાપૂર્વક ભોજન કરે ઓર યતનાપૂર્વક બોલે તો (સાધુ) પાપકર્મ કા બધ નહીં કરતા હૈ ” ॥૧॥

શઙ્કા—જાને-આને મેં યતના સરલતા સે હો સકતી હૈ મગર બોલને કી યતના કિસ પ્રકાર કરની ચાહિય ? બોલને મેં વાયુકાય કી વિરાધના કીસી મી પ્રકાર નહીં ટલ સકતી તો મુનિ કિસ પ્રકાર ભાષણ કરે ? ભાષણ કરને મેં વાયુકાય કી વિરાધના કે સાથે સર્વત્ર વ્યાપ્ત છોટે-છોટે સપાતિમ જીવો કી વિરાધના મી અવશ્ય હોતી હૈ । ઇસી ઉદ્દેશ મેં બતલાયા ગયા હૈ કિ-સપાતિમ જીવ વાયુ કે વેગ સે સ્વિચ્ચકર આ પઢતે હૈ ઓર વાયુ કે સ્પર્શ સે સઘાત કો પ્રાપ્ત હોતે હૈ, મૂર્છિત્ત હો જાતે હૈ ઓર મર મી જાતે હૈ ।

સમાધાન—ભગવાન્ ને મુખવલ્લિકા વાંધના ભાષણી કી યતના બતલાઈ હૈ ।

‘યતનાપૂર્વક ચાલે, યતનાપૂર્વક બેસે, યતનાપૂર્વક રોકાય, યતનાપૂર્વક સુવે, યતનાપૂર્વ ભોજન કરે, અને યતનાપૂર્વક બોલે તો (સાધુ) પાપ કર્મનો બધ કરતા નથી ॥૧॥

શંકા—જવા આવવામાં યતના સરલતાપૂર્વક થઈ શકે છે, પરંતુ બોલવાની યતના કેવી રીતે કરવી બેઠે? બોલવામાં વાયુકાયની વિરાધના કોઈ પણ પ્રકારથી ટળી શકતી નથી, તો મુનિ કેવી રીતે ભાષણ કરે ? ભાષણ કરવામાં વાયુકાયની વિરાધનાની સાથે સર્વત્ર વ્યાપ્ત નાના-નાના સંપાતિમ જીવોની વિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે આ ઉદ્દેશમાં બતાવવામાં આવ્યું છે કે-સંપાતિમ જીવ વાયુના વેગથી ખેંચાઈને આવી પડે છે, અને વાયુના સ્પર્શથી સંઘાત-(અસુહાય)ને પામે છે, મૂર્છિત થઈ નત્ય છે અને મરણ પણ પામે છે

સમાધાન-ભગવાને મુખવલ્લિકા બાધવી તે ભાષણની યતના બતાવી છે આ વાયુકાયને

प्रमाददरकेषु सर्वे मुसे बन्धीयात् मुत्सवभ्या म्दन्त । कोऽर्थे ? गौतम । यत्स्तु  
 म्लान्ते सदा पर्वते तेनार्येन मुत्सवमी । कस्यै अर्थाय म्दन्त ! मुत्सवमी मुखेन सादे  
 बन्धीयात् ? गौतम । स्वस्तिवायुजीवरसमार्याम् ॥ ३ ॥

यदि स्तु म्दन्त ! मुत्सवमी वायुजीवरसमार्याय तर्हि सूक्ष्मवायुकायजीव-  
 रसमार्याय वा वादरवायुकायजीवरसमार्याय ? गौतम । नो इति सूक्ष्मवायुकाय-  
 जीवरसमार्याय, (किन्तु) वादरवायुकायजीवरसमार्याय, नो इति अविशेषम्, एवं  
 ते सर्वेऽपि अर्हन्तः सृपन्ति ॥ ४ ॥ इति ।

संपत्ति केविन्मुनिमन्त्या मुत्सवसिकावन्वनं प्रतिपेपयन्ति तेषामाचार्यास्तु

प्रश्न—आगवान् । मुँहपती का अर्थ क्या है ?

उत्तर—वह सर्वत्र मुँह पर बंधी रहती है इस लिए वह मुँहपती कहलती है ।

प्रश्न—किस प्रसोजन से मुँहपती मुस पर बांधनी चाहिए ?

उत्तर—मुँहपती बांधना साधु का स्वर्गि है इस लिए, तथा वायुकाय के बीजों की  
 रक्षा के लिए मुँहपती बांधी जाती है ॥३॥

प्रश्न—आगवान् अगर वायुकाय की रक्षा के लिए मुँहपती है तो सूक्ष्म वायुकाय की  
 रक्षा के लिए है या वादर वायुकाय की रक्षा के लिए ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए नहीं किन्तु वादर वायुकाय के बीजों की  
 रक्षा के लिए है । सभी अर्हन्त ऐसा ही कहते हैं ” ॥४॥

आयुक्त बनने को मुनि मानने वाले कोई-कोई मुत्सवसिका के बांधने का

प्रश्न—अत्रवन् । मुकुपत्तीने अर्थं तुं छे ?

उत्तर—गौतम । ते कर्मशां मुजपर जाधी रहे छे तेषी ते मुकुपत्ती कडेवाध छे

प्रश्न—तुं प्रयोगनशी मुकुपत्ती मुजपर जाधवी ज्येजे ?

उत्तर—मुकुपत्ती जाधवी ते आपुनु स्वतिज छे को भाटे, तथा वायुकायना  
 लयेनी रक्षा भाटे मुकुपत्ती जाधि. (३)

प्रश्न—अत्रवन् । अजर वायुकायनी रक्षा भाटे, मुकुपत्ती छे तो तुं सूक्ष्म  
 वायुकायनी रक्षा भाटे छे अथवा वादर वायुकायनी रक्षा भाटे छे ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकायनी रक्षा भाटे नहीं परन्तु वादर वायुकायना लयेनी  
 रक्षा भाटे छे सर्व अर्हन्त को प्रमावेज कडे छे (४)

अथ काय पीत्यने मुनि मन्त्यावाया कोर्ष-कोर्ष मुजपसिका जाधवानो त्रिषध

मुखवस्त्रिकावन्धन स्वीकुर्वन्त्येव । उक्तञ्च जिनपतिशिष्यपूर्णभद्रगणिकृतातिमुक्तक-  
चरित्रे ( श्लोकेषु ८०-८१-८२ )—

“अथानन्यमुखस्तिष्ठन्, पुरतो निश्चलासनः ।  
प्राञ्जलिर्वदनद्वारे, दधानो मुखवस्त्रिकाम् ॥ ८० ॥

इत्यादि यावत्—

श्रुश्रावासौ श्रुतस्यार्थ, -मतिमुक्तमुनिर्मुदा ” ॥ २ ॥ इति

विक्रमसवत्सरे द्व्यशीत्यधिकद्वादशशत ( १२८२ ) परिमिते पूर्णभद्रगणिना  
विरचितोऽयमतिमुक्तकचरित्रनाघेयो ग्रन्थः, यस्यास्मिन् विक्रमसवत्सरे द्व्यधिकद्वि-  
सहस्र ( २००२ ) परिमिते विंशत्यधिकसप्तशत ( ७२० ) वर्षाणि व्यतीतानि, इतश्च  
स्फुटमेतदवगम्यते मुखवस्त्रिकावन्धन-सादर परिगृहीतं तेषामाचार्यैस्तदनुयायिभिश्च ।

निषेध करते हैं । परन्तु उनके आचार्य मुखवस्त्रिका वाधना स्वीकार करते हैं । जिनपति के  
शिष्यपूर्णभद्रगणिविरचित ‘अतिमुक्तकचरित्र’ ( श्लोक ८०-८१-८२ ) में कहा है—

“पर-पदार्यों में मुख न मानने वाला, निश्चल आसन से सामने हाथ जोड़कर मुख  
पर मुँहपती धारण किये हुआ अतिमुक्तक मुनिने श्रुतका अर्थ सुना ॥ ८०-८२ ॥

विक्रम सवत् १२८२ में पूर्णभद्र गणिने यह अतिमुक्तकचरित्र नामक ग्रन्थ  
लिखा है । इस सवत् २००२ तक उसे ७२० वर्ष हो चुके हैं । इस से स्पष्ट ज्ञात होता  
है कि उनके आचार्योंने और उनके अनुयायियोंने मुखवस्त्रिका का वाधना आदरपूर्वक  
अंगीकार किया है ।

करे छे परन्तु तेमना आचार्य मुखवस्त्रिका आधवानु स्वीकार करे छे जिनपतिना शिष्य  
पूर्णभद्रगणिविरचित ‘अतिमुक्तकचरित्र’मा श्लोक ८०-८१-८२मा कहुँ छे—

पर पदार्योंमा मुख नहि मानवावाणा निश्चल आसनथी सामे हाथ जोडीने  
मुखपर मुँहपती धारण करेला ‘अतिमुक्तक’ मुनिजे श्रुतना अर्थ साभये ॥ ८०-८२ ॥

विक्रम सवत् १२८२मा पूर्णभद्र गणिये आ अतिमुक्तकचरित्र नामने ग्रंथ  
लिखे छे आ सवत् २००२ सुधीमा तेने ७२० वर्ष व्यतीत अर्थ बुझया छे अथी स्पष्ट  
भाषुमा आवे छे के-तेमना आचार्योंजे अने तेमना अनुयायियोंजे मुखवस्त्रिका  
आधवानु आदरपूर्वक अंगीकार कर्तुं छे

अपरञ्च खिनपतिक्षिप्य क्व विरचिते सनत्कुमारपरिभ्रे सनत्कुमारद्वितीय-पूर्व-  
मधिक- 'विक्रमयज्ञो' - नृपवर्षनेत्रमिदित्सु-

“ सुखेन्दुरामन्सुखबलिकम्,  
क्यासु लेमे विरवा द्वितीयैः ।

निपेषितः प्राम्तनिषिष्टरामः—

इंसीर विञ्चाञ्चि सरः भियं यः ॥ १ ॥ ”

सनत्कुमारः, द्वितीयपूर्वमन्मनि विक्रमयज्ञो नाम नृपोऽमवत् । स च परिपदि  
वर्मकथाभक्त्यायं ययोपविष्टस्तद्रूपीनं कर्षणाह—

“ सुखेन्दुरामन्सुखबलिकम् ” इत्यादि । व्याख्या—इन्दुरिय सुखं सुखेन्दुः,  
सुखेन्दो राजन्ती सुखबलिका यस्य स सुखेन्दुराजन्सुखबलिकाः, सुखोपरिनिव  
द्वातिभूवत्पद्मविनिर्मितवदेदीप्यमानसुखबलिकाः । विरमाः=निर्मलान्तः करणाः,

इसके अतिरिक्त खिनपति के शिष्य क्वद्वारा रचित सनत्कुमारपरिभ्रे में सनत्कुमार के  
तीसरे पूर्वमवर्षती विक्रमयज्ञ नामक राजा का वर्णन करते हुए कहा है—

सनत्कुमार अपने द्वितीय पूर्वमवर्ष में विक्रमयज्ञ नामक राजा का । वह परिभ्रे में  
वर्मकथा सुनने के लिए जिस प्रकार बैठे या उसका वर्णन करते हुए करते हैं—‘सुखेन्दु’  
इत्यादि । इसकी व्याख्या इस प्रकार है—

जिसके सुखबल पर सुखबलिका सुशोभित थी अर्थात् सुख के ऊपर बनी  
हुई, सफेद बल की बनी हुई सुखबलिका से जिसका सुख शोभायमान हो रहा था,  
जिसका अन्तःकरण निर्मल था और जो द्विजा के समूह से सेवित था ऐसा विक्रमयज्ञ—

ये शिवाय खिनपतिनाशिष्य क्वद्वारा रचित सनत्कुमारपरिभ्रे सनत्कुमारना  
श्रीव्य पूर्वमवर्षती विक्रमयज्ञ नामक राजानु वर्णन करता कहा कहे छे छे—

सनत्कुमार पीताना श्रीव्य पूर्वमवर्षती विक्रमयज्ञ नामक राजा कता, ते परिभ्रेमां  
(सलाभो) वर्मकथा सोलवत्ता भाटे के प्रभाष्ये जेका कता तेंतुं पबुन करता कहा कहे  
छे छे—सुखान्तु इत्यादि जेनी व्याख्या का प्रभाष्ये छे—

जेना सुखबल पर सुखबलिका सुशोभित कवी अर्थात् सुख ऊपर जापित्री  
कहेव वरनी जनेही सुखबलिकाधी जेनुं सुख शोभायमान यधिरक्षुं कतुं जेनुं अन्तःकरण  
निर्मल कतुं जने जे द्विजेना समुहधी सेवित कता, जेवा विक्रमयज्ञ नामक राजा

द्विजौधैः=द्विजसमूहैर्निपेक्षितः, यः=विक्रमयशो नृपः कथासु=वर्मकथापरिपत्सु  
श्रियं=शोभा लभे=प्राप्तवान् । किमिव ? प्रान्ते निविष्टा राजहंसी यस्य तत् प्रान्त-  
निविष्टराजहंसि, विभ्राजि=देदीप्यमानं सर इव ।

यथा प्रान्तनिविष्टया राजहस्या विभ्राजमानं सरः श्रियं लभते तथा मुखो-  
परिनिवद्धदेदीप्यमानमुखवस्त्रिकाया विक्रमयशो नृपः सदसि श्रियं लब्धवानित्यर्थः ।

करेण मुखवस्त्रिकाधारणे तु करतलव्यावृत्तमुखवस्त्रिकाया दीप्तिः समाच्छादिता  
स्यात्, कथं तर्हि ' राजन्मुखवस्त्रिकः '—इत्यत्र ' राजन् '—पदप्रयोगसंसूचितमुख-  
वस्त्रिकागतप्रभायाः प्रकाशमानता तिरोहिता भवेत्, तर्हि राजहंसीप्रभया ' विभ्राजी '  
—ति सरोविशेषणेन साम्यमपि न सिद्धयेत् ।

नामक राजा धर्मकथा की परिषद् में शोभा को प्राप्त हुआ । कैसी शोभा को प्राप्त हुआ ?  
जैसे जिसके किनारे राजहंसो बैठी हो वह तालाव सुशोभित होता है ।

जिसके किनारे राजहंसो बैठी हो वह तालाव जैसे शोभित होता है उसी प्रकार मुख  
पर बधी हुई और देदीप्यमान मुखवस्त्रिका से विक्रमयश राजा व्याख्यानपरिषद् में  
शोभित हुआ ।

अगर हाथ से मुखवस्त्रिका पकड़ी होती तो मुखवस्त्रिका की दीप्ति हथेली से  
छिप जाती । ऐसी स्थिति में ' राजन्मुखवस्त्रिकः ' इस पद में ' राजन् ' शब्द के प्रयोग से  
मुखवस्त्रिका की जो प्रभा सूचित की है वह प्रकाशमान कैसी होती ? फिर तो वह छिपी हुई  
प्रभा रहजाती ! और फिर सरोवर के किनारे बैठी हुई राजहंसिनी की उरमा भी ठीक नहीं  
बैठ सकती ।

धर्मकथानी सलामा शोभाने पाम्या छे केवी शोभाने पाम्या छे ? जेभके—जेना  
किनारे राजहंसी जेहा डोय ते तणाव सुशोभित थाय छे

जेना किनारे राजहंसी जेहा डोय ते तणाव जेवी रीते सुशोभित डोय छे ते  
प्रभाषे मुभ पर भाधेली अने अगमगाट शोभायमान मुभवस्त्रिकाथी विक्रमयश राज  
व्याख्यापरिषद्—(सलामा)मा शोभता छता

अथवा हाथथी मुभवस्त्रिका पकडी डोते तो ते मुभवस्त्रिकानी दीप्ति—प्रकाश  
हथेलीथी ढकाछ जात. जेवी स्थितिमा ' राजन्मुखवस्त्रिक ' आ पदमा ' राजन् '  
शब्दना प्रयोगथी मुभवस्त्रिकानी जे प्रभा—(प्रकाश) सूचित करी छे, ते प्रकाशमान  
केवी रीते थात ? पछी तो ते ढकाजेली जेवी प्रभा रही जात अने पछी सरोवरना  
किनारे जेहेला राजहंसीनी उपमा परापर घटी शकत नहि.

अपरञ्च सरसि रामहृसी यथा सबयाऽनावृता सती सरःश्रीर्मा मनपति तय  
 मुसबस्त्रिका नृपस्य भिय करोतीति तात्पर्यं क्वतलेन मुसबस्त्रिकाधारणे क्यमनि  
 नोपपद्यते ।

उस्मादेतत्सनत्कुमारपरिषयथ विक्रमयज्ञानृपस्य सदोरकमुसबस्त्रिकाधधन  
 मासीदिति सुस्पष्टमावेव्यति ।

अहो! महीयान मोहमहिमा यत्सकीयगुरुस्वराणां सप्रदायशाक्यमपिसमुह्यह्वय-  
 मवीमा न क्यमित्प्रपन्ते ।

विस्तरवस्तु मिश्राद्यभिदसवेकास्त्रिकसूत्रस्य मत्कृताधारमणिमठजूपाटीपायां  
 प्रथमाभ्ययने बिलोकनीयम् ।

इसके अतिरिक्त—जैसे राजहंसिनी बिसकुस उपाड़ी होकर डी सरोवर की शोभा  
 बढ़ाती है उसी प्रकार मुसबस्त्रिका राजा की शोभा बढ़ाती थी । यह तापय दाय से मुस  
 बस्त्रिका धारण करने में किसी भी प्रकार नहीं पट सकता ।

अतः सनत्कुमारपरिष का यह पद्य स्पष्टरूप से प्रकट करता है कि—विष्णु मरा राजा  
 के मुस पर बेलासहित मुसबस्त्रिका बंधी थी ।

अहो ! मोह की महिमा महान है जिस के प्रभाव से आधुनिक लोग अपने गुरुओं  
 के परम्परा वाच्य का उल्लंघन करते हुए भी अग्रिम नहीं होते ।

विरतार से समझने की इच्छा रखने बाळ मेरी रफी हुईं इतिहासिक सूत्र की  
 'आचारमण्डितामणियां'—टीका के अन्तर पढ़के अभ्ययन में देख सकते हैं ।

जैसे सिंधु-जैवी शीते राजहंसिनी जैकहम उपाड़ी यद्यनिक अधोवस्त्री शोभा  
 बढ़ाते हैं तैवीच शीते मुसबस्त्रिका राजनी शोभा बढ़ाती है। आ तात्पर्य दास्यथी  
 मुसबस्त्रिका धारण करे तो—अथवा कश्चाधी डोह पद्य प्रभारे जनी शके नदि

जैसे धारणथी सनत्कुमारपरिषनु जै यह स्पष्टरूपथी जनावी आपे उ है -  
 बिक्रमयज्ञानृपस्य विक्रमयज्ञानृपस्य विक्रमयज्ञानृपस्य विक्रमयज्ञानृपस्य विक्रमयज्ञानृपस्य

अहो! मोहने महिमा महान है जैना प्रभावथी आधुनिक लोग जैना  
 सुमुजोना परम्परा वाच्यनु उल्लंघन करता पद्य यशभावा नथी।

विस्तारथी धमकवानी उपाया राजवाचना मनी रनेती व्यपेक्षाविशुभनी  
 आचारमण्डितामणियां—टीकानी अहर पदेवा अभ्ययनमा जैध शके उ

इति ब्रवीमि, इति=एतत्सर्वं ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

अथ पद्मजीवनिकायारम्भकरणेन कर्मबन्धो भवतीत्याह—‘एत्थंपि. इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थंपि जाण उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति, आरंभमाणाविणयं वयंति, छन्दोवणीया अज्ज्ञोववण्ण आरंभसत्ता पररंति संगं ॥ सू० ७ ॥

छाया—

अवापि जानीहि उपादीयमानाः, ये आचारो न रमन्ते, आत्ममाणा विनय वदन्ति, छन्दोपनीता अध्युपपन्नाः, आरम्भसक्ताः प्रकुर्वन्ति सङ्गम् ॥ सू० ७ ॥

सुधर्मा स्वामी कहते हैं—यह सब भगवान् के समीप जैसा सुना है वैसा कहता हूँ ॥ सू० ३ ॥

एव यह कहते हैं कि—पद्मजीवनिकाय का आरम्भ करने से कर्मबन्ध होता है—‘एत्थंपि.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वायुकाय के विषय में भी आरम्भ करने वाले, कर्मों से बद्ध होते हैं, ऐसा समझो । जो आचार में रमण नहीं करते आरम्भ करते हुए भी अपने को विनय (चारित्र) वाले मानते हैं, इच्छानुसार चलते हैं, गृह्य हैं और आरम्भ में आसक्त हैं वे कर्मों उपार्जन करते हैं ॥ सू० ७ ॥

सुधर्मा स्वामी કહે છે —આ સર્વ લગવાનની સમીપમાં જેવું સાલવ્યુ છે તેવુંજ કહું છું. ॥ ૬ ॥

હવે એ કહે છે કે—પદ્મજીવનિકાયનો આરંભ કરવાથી કર્મબંધ થાય છે—‘एत्थंपि’ इत्यादि

मूलार्थ—वायुकायना विषयमा पणु आरंभ करवावाणा, कर्मोर्थी बद्ध थाय छे ए प्रमाळे समझे जे आचारमा रमणु करता नथी, आरंभ करता थका पणु पोताने विनय (चारित्र) वाणा माने छे, इच्छानुसार चाले छे, गृह्य छे, अने आरंभमा आसक्त छे, ते कर्मोनु उपार्जन करे छे ॥ सू० ७ ॥

टीका—

अत्रापि=एतरिमन् वायुकायेऽपि, अपिश्चब्दात् अवशिष्टे पृथिव्याविचलुत्के  
 स्वागरे प्रसक्ताये च ये भोगोलुपाः स्वार्थकङ्गाः आरम्भ कुर्वन्ति, ते उपादीयमानाः  
 ज्ञानापरधीयादिकर्मभिर्बध्यमाना मन्तीत्येष जानीहि ।

एकधीवारम्ममत्तः श्लेषधीप्रमिकायारम्ममन्नितकर्ममिषद्धो मन्तीत्येषं विद्दी  
 त्पूर्वा । के पुनः पृथिव्याधारम्मकरणेन श्लेषधीवारम्ममन्यकर्ममिरपि पश्यमाना  
 मन्तीति जिज्ञासायामाह—'ये आचारे न रमन्ते' इति ।

ये आचारे=ज्ञानदक्षनादिपठविधाचारे न रमन्ते=न वृत्ति कुर्वन्ति, तान्  
 कर्मभिर्बध्यमानान् जानीहि । के पुनराचारे न रमन्ते ? दण्डिज्ञाप्यादयः ।

कथमेतजिज्ञायते ? इति जिज्ञासायामाह—'आरममाणा विनयं वदन्ति'

टीकार्य—इस वायुकाय के विषय में भी—(अपि) शब्द से पृथ्वी आदि अन्य  
 स्थानों में तथा प्रसक्ताय में जो भोगों के लोभ्य और स्वार्थपरायण होकर आरम्भ करते हैं  
 वे ज्ञानावरण आदि कर्मों से बद्ध होते हैं, ऐसा समझो ।

तात्पर्य यह है कि—एक जीव के आरम्भ में प्रवृत्ति करने वाले शेष जीविकायोंके  
 आरम्भ से उत्पन्न होने वाले कर्मों से भी बद्ध होता है ।

ऐसे कौन हैं जो पृथ्वी आदि एक कायका आरम्भ करके शेष जीविकायों के आरम्भ  
 से होने वाले कर्मोदारा बद्ध होते हैं ? इस का समाधान करने के लिए कहते हैं—

जो ज्ञानाचार दर्शनाचार आदि पाँच आचारों में स्थिर नहीं होते उन्हें  
 कर्मबन्ध होता है, ऐसा जानो । आचार में कौन स्थिर नहीं होते ? दण्डी तथा शाक्य आदि ।

यह कैसे ज्ञात हुआ ? इसके उत्तर में कहते हैं—ये पृथ्वीकाय आदि की विरापणा

टीका—आ वायुकायाना निषधमां पञ्च अपि शब्दधी पृथ्वी आदि अन्य  
 स्थानेषामां तथा प्रसक्तायमां नो भोगेना लालसु जने स्वार्थपरायण्यु यानि आरम्भ  
 करे छ ते ज्ञानावरण्यु आदि कर्मोधी बद्ध भाव छ जे प्रभासे समझे

तात्पर्य जे छ हे—जेके लक्षण्यु आरम्भमां प्रवृत्ति करवावाण्यु जाहीना लव-  
 निकायोना आरम्भधी उत्पल्यु यवावाण्यु कर्मोधी पञ्च बद्ध भाव छे

जेवा हेव छ छे जे पृथ्वी आदि जेके भावने आरम्भ करीने जाहीना लव-  
 निकायोना आरम्भधी यनास कर्मोदारा भाव छे ? तेनु समाधान करवा भागे कहे छे—

जे ज्ञानाचार-दर्शनाचार आदि पाँच आचारोमां स्थिर नहीं बत्वा तेने कर्म  
 बन्ध भाव छे जे प्रभासे समझे

आचारमां हेव स्थिर नहीं रहैता ? इही जने शाक्य आदि  
 जे इही रीते बद्धु ? तेना उत्तरमां कहे छे—ते पृथ्वीकाय आदिनी विरापणा



इति । आरम्भणाः, पृथिव्यादीन् पीडयन्तोऽपि विनयः=कर्मणां विनयाद् विनयः सयमस्तं, वदन्ति=‘वयमेव संयमिसेवनपराः’ इति निश्चङ्कं निगदन्तीत्यर्थः ।

ननु स्वात्मानं सयमिन मन्यमानास्ते कस्मात्पृथिव्यादिजीवहिंसनपराः ? इति जिज्ञासायां हेतुगर्भविशेषणपदद्वयमाह—‘छन्दोपनीताः’ ‘अध्युपपन्नाः’ इति । ‘छन्दोपनीताः’=‘छन्दः’=स्वाभिप्रायः, तेनोपनीताः स्वतन्त्राः शास्त्रविरुद्धविचारशीला इत्यर्थः ।

यद्वा छन्दः-अभिप्रायः=इच्छा, विषयाभिलाषस्तेनोपनीताः, तथा ‘अध्युपपन्नाः,’ अधि=अधिकम् अतिशयेन उपपन्नाः=तद्गतचित्ताः विषयसंनि-विष्टचित्ताः विषयभोगार्थमातुरा इत्यर्थः । यतश्छन्दोपनीता अध्युपपन्नाश्च तस्मात्ते पृथिव्यादीन् विहिंसन्तीति भावः । एवं पृथिव्यादिहिंसनेन पुनः कर्मबन्धं प्राप्नोतीत्याह—‘आरम्भसक्ताः’ इत्यादि । आरम्भः=सावद्यव्यापारः,

करते हुए भी अपने आपको निश्चक होकर सयमी कहते हैं । वे यह मानते हैं कि हम ही सयम का सेवन करने में तत्पर हैं ।

वे लोग अपने आपको संयमी मानते हुए भी पृथ्वीकाय आदि के जीवों की हिंसा में तत्पर क्यों होते हैं ? ऐसी जिज्ञासा होने पर दो विशेषण कहते हैं, जिन में हेतु छिपा है—‘छन्दोपनीत’ और ‘अध्युपपन्न’

छन्द का अर्थ है—अपना अभिप्राय, उससे स्वतंत्र अर्थात् शास्त्र से विरुद्ध विचार करने वाले । अथवा छन्द का अर्थ इच्छा है । कहाँ विषयभोगों की अभिलाषा को छन्द कहा है, उस में जो स्वतंत्र हो । तथा अध्युपपन्न अर्थात् विषयों में अत्यन्त आसक्त-विषयभोगों के लिए आतुर । तात्पर्य यह है कि—छन्दोपनीत और अध्युपपन्न होने के कारण वे पृथ्वी आदि की हिंसा करते हैं और कर्मों का बंध करते हैं । आरम्भ

करवा छत्ताय पषु पोते-पोताने नि श क धर्धने सयमी कडे छे ते अेषु माने छे के -अमे पषु संयमर्तु सेवन करवाभा तत्पर छीअे

ते दोक पोते-पोताने सयमी मानता थका पषु पृथ्वीकाय आदिना एवानी हिंसाभा तत्पर शा माटे डोय छे ? अेवी एज्ञासा थता वे विशेषषु कडे छे नेभा डेतु छुपाअेले। छे ‘छन्दोपनीत’ अने ‘अध्युपपन्न’ ‘छन्द’ने अर्थ छे पोताने अभिप्राय तेनाथी स्वतंत्र अर्थात् शास्त्राथी विरुद्ध विचार करवावाणा अथवा छन्दने अर्थ इच्छा छे, अहिं विषयभोगोनी अभिलाषाने छन्द कडेल छे तेभा ने स्वतंत्र डोय तथा अध्युपपन्न अर्थात् विषयभां अत्यन्त आसक्त-विषयभोगो माटे आतुर तात्पर्य अे छे के छन्दोपनीत अने अध्युपपन्न डोवाना करखे ते पृथ्वी आदिनी हिंसा करे छे अने कर्मोने अंध करे छे आरम्भ अर्थात्-सावद्य व्यापारभा प्रवृत्त पुरुष ज्ञानावरणीय

यत्र सत्का-प्रवृत्ताः, सद्-सन्त्यन्ते=स्त्रियते भीषा भवेनेति सद्-ज्ञानावरणी  
यादिकं कर्म, तं सद्प्रकर्षन्ति=समुत्पादयन्ति ।

एवं पद्मीवनिकापारम्भकारिणः सक्तु कर्मबन्धनपराधीनतां समुपेत्य बन्ध  
नरामरूपेष्टविद्योगानिष्सयोगेप्सिताऽसिद्धिबिम्बिभ्याभिजनितदुःखं सक्तुषोपोरतर  
संसारदावानछे पुनः पुनः स्वात्मानमिन्धनीकुर्वन्तीति भाव ॥ सू० ७ ॥

अथ यस्तु प्रयिष्यादिपद्मीवनिकापारम्भकाराद्विनिवृत्तः स एव मुनिर्मवती  
सुरेश्वर्यमुपसंहरन्नाह—'से वसुम' इत्यादि ।

मूलम्—

से वसुमं सव्यसमन्वागतपञ्चाद्येषां अप्याद्येषां अकरबिज्जं पापं कर्म गो  
कण्ठेति ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रदानेन आत्मना अकरभीय पापं कर्म नो बन्धेपवेत्  
॥ सू० ८ ॥

अर्थात् साव्य व्यापार में प्रवृत्त ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को उपासक करते हैं ।

इस प्रकार पद्मीवनिकाय का आरम्भ करने वाले कर्मबन्धन के बंधन होकर  
बन्ध मरण, इष्टविद्योग अनिष्टसंयोग इष्ट की असिद्धि तथा विविध प्रकार की व्यापियों से  
सम्बन्ध होने वाले दुःखों से व्याप्त, पोस्तरसंसाररूपी दावानल में अपने आत्मा को ईकन  
कगते हैं ॥ सू० ७ ॥

जो पृथ्वी आदि पद्मीवनिकाय के आरम्भ से निवृत्त है वही मुनि होता है, इस उद्देश  
के अर्थ का उपसंहार करते हुए साव्यकार करते हैं—'से वसुमं' इत्यादि ।

मूलार्थ—वही वसुमान् है (सम्यक्त्व-चारित्र्यात्-सम्यग्दृष्टि है) जो बंधन पापों को  
धमनेवाले ज्ञानात्मा से पाप को अकरणीय समझकर नहीं करता है ॥ सू० ८ ॥

आदि इतिमु उपासकं इति उ

आ प्रभावे पद्विनिधानेन आरभ्य इत्याद्या इति-अने आधीन बंधने  
बन्ध, अरा मरुत्तु अविद्योग, अनिष्टसंयोग, अक्षेत्री वस्तुनी अत्रापि, तथा  
विविध प्रकारणी व्यापियोंकी उत्पन्न बनारां दुःखोंकी व्याप्त, पोस्तर संसाररूपी  
दावानलमां पोषणा आत्माने धमन-(जगतसुख) जगत्ते उ ॥ सू० ७ ॥

ने पृथ्वी आदि पद्विनिधानेन आरभ्य निवृत्त उ तेव मुनि इत्ये उ  
आ उद्देशना अर्थेनो उपसंहार इतिने शास्त्रकार उक्ते उ— से वसुमं इत्यादि

मूलार्थ—तेव वसुमान् उ (सम्यक्त्व-चारित्र्यात्-सम्यग्दृष्टि उ) ने बंधन  
पापोंने बंधुपायाणा संनतात्माधी धमने अकरणीय (करवा योग्य नहीं कोने)  
समझने इत्या नहीं ॥ सू० ८ ॥

ટીકા—

યસ્તુ પદ્મજીવનિકાયારમ્ભનિવૃત્ત્યા સંયમપાલનપરાયણઃ, સ વસુમાન્, દ્વિવિધાનિ હિ વસુનિ સન્તિ દ્રવ્યભાવમેદાત્, તત્ર દ્રવ્યવસુનિ-સુવર્ણાદીનિ, ભાવવસુનિ-સમ્યક્ત્વાદીનિ, અત્ર ભાવવસુતાત્પર્યક્તો વસુશબ્દઃ, તાનિ વસુનિ યસ્ય યસ્મિન્ વા સન્તિ સ વસુમાનિત્યર્થઃ, સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનેન=સર્વાણિ સમન્વાગતાનિ પ્રજ્ઞાનાનિ યસ્યાત્મનઃ સ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનઃ=યથાવસ્થિતવિપય-ગ્રાહિસર્વવિપયકજ્ઞાનવાન્, તેન ।

યદ્વા-સર્વેષુ દ્રવ્યપર્યાયેષુ સમન્વાગતં=સમ્યક્પ્રાપ્ત તત્તદ્વિપયમાકલ્પ્ય સર્વ-દ્રવ્યપર્યાયગતં પ્રજ્ઞાનં યસ્ય સ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનઃ, તેન, આત્મના, અકરણીયમ્=અકર્તવ્યમ્, ऐदिकपारलौकिकसुखविधातकत्वादनाचरणीयम्, इति मत्वा, पापं कर्म=પ્રાણાતિપાત-મૃષાવાદા-દત્તાદાન-મૈથુન-પરિગ્રહ-ક્રોધ-માન-માયા-લોભ-રાગ-દ્વેષ

ટીકાર્થ—જો પુરુષ પદ્મજીવનિકાયસવધી આરમ્ભ કા ત્યાગ કરકે સયમ કે પાલન મેં તત્પર હોતા હૈ વહી વસુમાન્ હૈ । વસુ કે દો મેદ હૈ—(૧) દ્રવ્યવસુ ઓર (૨) ભાવવસુ । સ્વર્ણ આદિ ધન દ્રવ્યવસુ કહલાતા હૈ, ઓર તપ સયમાદિરૂપ ઋદ્ધિ કો ભાવવસુ કહતે હૈ । યહાં ‘વસુ’ શબ્દ સે ભાવવસુ હી સમજના ચાહિૈ । વસુ જિસે પ્રાપ્ત હો વહ વસુમાન્ હૈ, અર્થાત્ સમ્યક્ત્વ આદિ સે યુક્ત પુરુષ વસુમાન્ કહલાતા હૈ ।

જો વસ્તુ જૈસી હૈં ઉસે ઉસી રૂપ મેં જાનને વાલા સર્વપ્રાહી જ્ઞાન ‘સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન’ કહલાતા હૈ । અથવા સમસ્ત દ્રવ્યો ઓર પર્યાયો કો યથાર્થરૂપ સે જાનને વાલા જ્ઞાન ‘સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન’ કહલાતા હૈ । ઇસે જ્ઞાનરૂપ આત્મા સે પાપ કો ઇસ લોક તથા પરલોકસવધી સુખો કા ઘાતક હોને સે અકર્તવ્ય સમજકર (૧) પ્રાણાતિપાત (૨) મૃષાવાદ (૩) અદત્તાદાન (૪) મૈથુન । (૫) પરિગ્રહ (૬) ક્રોધ, (૭) માન (૮) માયા (૯) લોભ

ટીકાર્થ—જે પુરુષ પદ્મજીવનિકાયસવધી આરમ્ભને ત્યાગ કરીને સયમના પાલનમા તત્પર થાય છે તેજ વસુમાન્ (સમ્યક્દષ્ટિ) છે વસુના બે ભેદ છે. (૧) દ્રવ્ય-વસુ અને (૨) ભાવવસુ, સુવર્ણ આદિ ધન દ્રવ્યવસુ કહેવાય છે અને સમ્યક્ત્વ આદિ રૂપ ઋદ્ધિને ભાવવસુ કહે છે આર્હિ ‘વસુ’ શબ્દથી ભાવવસુ જ સમજવું જોઈએ વસુ જેને પ્રાપ્ત હોય તે વસુમાન્ છે અર્થાત્ સમ્યક્ત્વ આદિથી યુક્ત પુરુષ વસુમાન્ કહેવાય છે

જે વસ્તુ જેવી છે તેને તેવા રૂપમા જાણવાવાળા સર્વપ્રાહી જ્ઞાન ‘સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન’, કહેવાય છે અથવા સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને યથાર્થ રૂપથી જાણવા વાળું જ્ઞાન ‘સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન’ કહેવાય છે એવા જ્ઞાનરૂપ આત્માથી પાપને આ લોક તથા પરલોક-સવધી સુખોનું ઘાતક હોવાથી અકર્તવ્ય સમજીને (૧) પ્રાણાતિપાત, (૨) મૃષાવાદ, (૩) અદત્તાદાન, (૪) મૈથુન, (૫) પરિગ્રહ, (૬) ક્રોધ, (૭) માન,

—कर्मदाऽभ्याख्यान-वैशुन्य-परपरिवाद-रत्परति-मायामृषा-मिथ्या-दक्षेनश्चत्या  
मिधानमष्टादशमकारं नावपयेत्—न स्वयं कुर्यात्, न धान्यैः कारयेत्, न धान्यं  
कुर्यात्पुनःसादयेदित्यर्थः ।

योऽप्यमात्मा स्वकीयमहानेन सर्वद्वेष्यपर्यायसमाकलनयोग्यतां धारयति, येन  
ष मोक्षमार्गावस्म्बन्तः स्त्रियपदमपि छन्दयते गन्तुम्, तस्यात्मनः पुनरप्यपतन  
कारिणात् पापं कर्म सर्वथा परित्याग्यमिति विभाव्य पद्मीवनिकापारम्भकारणा  
स्वर्षथा विनिवर्तितव्यमिति भावः ॥ सू० ८ ॥

पद्मीवनिकापारम्भस्य सर्वथा परिहार एव मुनित्वं प्रापयतीत्याह—‘तं  
परिष्णाय’ इत्यादि ।

मूलम्—

तं परिष्णाय मेहावी जेष सयं छज्जीवनिकायसत्यं समारंभेन्मा  
प्येषऽप्योर्हि छज्जीवनिकायसत्यं समारंभवेन्मा, प्येषऽप्ये छज्जीवनिकायसत्यं  
(१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) वैशुन्य (१५) परपरिवाद  
(१६) रति-भरति (१७) माया-मृषा और (१८) मिथ्यादर्शनरूप अष्टादश प्रकार का पाप  
को स्वयं नहीं करता है, दूसरा से नहीं करता है और दूसरे करत बाहु का अनुमोदन नहीं  
करता है बही पुरुष बभ्रुमान् है ।

तत्पर्यं यह है कि—जो ब्रह्मा अपने प्रज्ञान से समस्त द्रव्यों और पर्यायों को  
महती भाँति जानने की योग्यता धारण करता है और जो मोक्ष-मार्ग का आग्रह लेकर  
मुक्तिपद भी प्राप्त कर सकता है उसको ब्रह्मा का अवपतन करन बाहु पापद्वय सर्वथा  
व्याग्य है ऐसा विचार करके पद्मीवनिकाय के बर्षम संवित हो जाना चाहिये ॥ सू० ८ ॥

पद्मकाय के बर्षम का त्याग ही साधुता प्राप्त कयता है, यह बात मनो करते  
हैं—‘तं परिष्णाय’ इत्यादि ।

(८) भाषा (९) डोल (१०) राज, (११) द्वेष, (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान,  
(१४) वैशुन्य (१५) परपरिवाद, (१६) रति-भरति, (१७) माया-मृषा अने (१८)  
मिथ्यादर्शनरूप अष्टादश प्रकारना के पाप तेने पीते करवा नथी, पीब पाये करवा  
नथी अने पीब करवावाजाने अनुमोदन आपवा नथी. तेर पुरुष बभ्रुमान् छे  
तापय के छे छे—जे ब्रह्मा पीवाना प्रज्ञानधी समस्त द्रव्ये अने पर्यायिने  
दृष्टी रीते अनुबानी योग्यता धारण करे छे अने ले मोक्षमार्गने आग्रह करे छे मुक्तिपद  
पहुँ प्राप्त करी सके छे तेने, आत्मानुं अध-जन करनारां पापद्वय सर्वथा त्याग्य छे  
जेवा विचार करीने पद्मीवनिकायना आरंभधी निवृत्त कर्षं पुरुं जे जे. ॥ सू० ८ ॥  
पद्मीवनिकायना आरंभने त्याग साधुता प्राप्त करवे छे जे बात आनन कहे छे—  
‘तं परिष्णाय’ इत्यादि.

समारंभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते छज्जीवनिकायसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति,  
से हु मुणी परिण्णायकम्म्ये—त्ति वेमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सत्तमो उद्देशो समत्तो ॥ १ । ७ ॥

॥ आचारसूत्रे पदमज्जयण समत्तं ॥ १ ॥

छाया—

तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं पट्जीवनिकायशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैः  
पट्जीवनिकायशस्त्रं समारम्भयेत्, नैवान्यान् पट्जीवनिकायशस्त्रं समारम्भमाणान्  
समनुजानीयात् । यस्यैते पट्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु  
मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सप्तम उद्देशः समाप्तः ॥१-७॥

॥ आचारसूत्रे प्रथमाध्ययनं समाप्तम् ॥

टीका—

तत्=पट्जीवनिकायारम्भणं, परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया 'कर्मबन्धस्य  
कारणं भवती'ति बुद्ध्वा मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं पट्जीवनिकाय-  
शस्त्रं समारभेत । अन्यैर्नैव समारम्भयेत्=नैव प्रयोजयेत् । अन्यान् पट्जीवनिकाय-  
शस्त्रं समारम्भमाणान् नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत् ।

यस्यैते पट्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः—पट्जीवनिकायानां शस्त्रैः=

मूलार्थ—यह बात जानकर बुद्धिमान् पुरुष पट्जीवनिकायसवधी शस्त्र का  
समारम्भ न करे, दूसरों से पट्जीवनिकायसवधी शस्त्र का समारम्भ न करावे, और पट्-  
जीवनिकायसवधी शस्त्र का समारम्भ करने वालों का अनुमोदन न करे । पट्जीवनिकाय-  
सवधी आरम्भ को जो बंध का कारण जान लेता है, वही मुनि है और वही परिज्ञातकर्मा है ।  
ऐसा मैं कहता हूँ ॥सू० ८॥

टीकार्थ—पट्जीवनिकाय के आरम्भ को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबन्ध का कारण जानकर  
हेय-उपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष पट्जीवनिकाय के शस्त्र का स्वयं आरम्भ न करे,  
दूसरों से न करावे और आरम्भ करने वालों को अनुमोदना न करे ।

पट्जीवनिकायसवधी जो शस्त्र पहले बतलाये जा चुके हैं उनके द्वारा पट्जीवनिकाय को

मूलार्थ—ये बात जानकर बुद्धिमान् पुरुष पट्जीवनिकायसवधी शस्त्रको  
समारम्भ न करे नहि, भीला पासे पट्जीवनिकायसवधी शस्त्रको समारम्भ करावे नहि, अने  
पट्जीवनिकायसवधी शस्त्रको समारम्भ करवावाणाने अनुमोदन आपे नहि  
पट्जीवनिकायसवधी आरम्भने के अधुन कारण जानले दे छे तेज मुनि छे, अने  
तेज परिज्ञातकर्मा छे अवे हु छहु छु ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—पट्जीवनिकायको आरम्भने ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबन्धुं कारण जानले हेय-  
उपादेयको विवेक रखवावाणा पुरुष पट्जीवनिकायको शस्त्रको पोते आरम्भ न करे नहि,  
भीला पासे करावे नहि, अने आरम्भ करनारने अनुमोदन आपे नहि.

पट्जीवनिकायसवधी के शस्त्र प्रथम बतावी आच्छा छे पट्जीवनिकायको

स्वस्वशत्रैः समारम्भाः=पीडाकरसाधनव्यापाराः परिहृताः=अपरिहृता मन्त्रकारण  
त्वेन विद्विताः, प्रत्याख्यानपरिहृता च परिहृता भवन्ति स एव परिहृतकर्मा-  
त्रिकरमप्रियोनैः परिहृतिसकलसाधनव्यापाराः, मुनिर्भवति । इति=एतत् सर्वम्,  
प्रवीणि=मगवतः समीपे यथा भूतं तथा कथयामि ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रे आचारविन्तामणिटीकायां आख्यपरिहृताख्ये  
प्रथमाध्ययने सप्तमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १-७ ॥

पीडा पहुँचाने वाले साधन व्यापारों को अपरिहृता से कर्मबंध का कारण मानकर  
प्रत्याख्यानपरिहृता से त्याग देता है वही पुरुष तीन करण और तीन योग से साधन व्यापारों  
का त्यागी मुनि होता है । यह सब मगवान् के मुखारविन्द से जाता है साक्षात् मुनि है  
किसाही करता है ॥ सू० ९ ॥

॥ इति श्री आचाराङ्गसूत्रकी आचारविन्तामणिटीका के हिन्दी-अनुवादमें  
प्रथम अध्यायनका सातवाँ उद्देश सम्पूर्ण ॥ १ ॥

पीडा पहुँचानेवाला साधन व्यापारों से अपरिहृताही कर्मबंध का कारण मानने  
प्रत्याख्यान परिहृताही त्यज दे छे ते पुरुष त्रय करण जाने त्रय योगही साधन  
व्यापारोंसे त्यागी मुनि होता छे आ सर्वे मगवानना मुखारविन्दी से छे साक्षात्  
मुनि छे तेहुँ करे छे ॥ सू० ९ ॥

इति श्रीआचारंगसूत्रकी 'आचारविन्तामणि' टीकाना गुजराती अनुवादभा  
प्रथम अध्यायनने सातमे उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-७ ॥

आद्ये चाध्ययने प्ररूपितमिदं संसारचक्रेऽनिशं,  
 आम्यन् दिक्षु विदिक्षु गच्छति ततश्चात्मा समागच्छति ।

इत्येव कथितं मही-जल-शिखि-प्राण-द्रुमाणां तथा,  
 जीवत्वं त्रस-कायिकस्यचतदारम्भे परिज्ञाऽपि च ॥ १ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशमापाकलित-  
 ललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-वादिमानमर्दक-  
 श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-‘जैनशास्त्राचार्य’ पदभूषित-  
 कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-  
 घासीलालव्रति विरचितायाम् आचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्ता  
 मणिटीकायां शस्त्रपरिज्ञाख्यं प्रथममध्ययनं संपूर्णम् ॥ १ ॥

प्रथम अध्ययन में यह निरूपण किया गया है कि-आत्मा संसार चक्र में पहकर  
 नाना दिशाओं में और नाना विदिशाओं में निरन्तर भ्रमण करता रहता है । साथ ही पृथ्वी,  
 अप्, तेज, वायु वनस्पति और, त्रस की सच्चितता भी सिद्ध की गई है, और उनका  
 आरम्भ करने में परिज्ञा भी प्रदर्शित की गई है ॥ १ ॥

॥ इति श्री-आचाराङ्गसूत्रकी ‘आचारचिन्तामणि’ टीका के  
 हिन्दी अनुवाद में ‘शस्त्रपरिज्ञा’ नामक प्रथम अध्ययन  
 सम्पूर्ण ॥ १ ॥

प्रथम अध्ययनमा अने निरूपण करवाभा आव्यु छे के-आत्मा संसारचक्रमां  
 पडीने अनेक दिशाओमा अने अनेक विदिशाओमा निरन्तर भ्रमण करतो रहे छे  
 साथेच पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति अने त्रसनी सच्चितता पणु सिद्ध करी  
 छे. अने तेने आरंभ करवाभा परिज्ञा-विवेक पणु प्रदर्शित करेव छे ॥ १ ॥

॥ इति श्री आचाराङ्गसूत्रनी ‘आचारचिन्तामणि’ टीकाना गुजराती  
 अनुवादमां ‘शस्त्रपरिज्ञा’ नामनुं प्रथम अध्ययन सम्पूर्णं ॥ १ ॥

# दाताओनी नामावली

आद्य मुरब्बीभी, मुरब्बीभी, सहायक मेम्बरो  
तथा  
मेम्बरोनी याही

---

आमचार ठक्कावरी वीर

---

ता १८-१०-४४ वी ता २८-२-५८ सुधीभा  
हापस वय्मेस मेम्बरो.

---

(२५० वी कोणी रकमो का बाहीमां आसिब करी नथी )

श्री अणिल वारत मे स्था जैन शास्त्रोद्धार समिति

जरेदीका कुवा रोड - धीन बोण पाखे

राजकोट



## આધમુરખીશ્રીઓ-૪

( ઓછામાં ઓછી રૂા. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર )

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ જાણીતા મીલમાલીક અમદાવાદ		૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ વારીયા હા. શેઠ લાલચ દભાઈ, જેય દભાઈ નગીનભાઈ, વૃજલાલભાઈ, તથા વલ્લભદાસભાઈ ભાણુવડ		૬૦૦૦
૩	કોઠારી જેયંદભાઈ અજરામર હા હરગોવીંદભાઈ જેયંદભાઈ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	ઝોલાપુર	૫૦૦૧

## મુરખીશ્રીઓ-૨૨

( ઓછામાં ઓછી રૂા. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર )

૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કોઠારી હા કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	„	૩૨૮૯૧૧-૧
૪	સ્વ. પિતાશ્રી જગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે હ ભાવસાર ભોગીલાલ જગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મહેતા માણેકલાલ અમુલધરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સંઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરળી	૨૦૦૦
૯	શેઠ દહેરચંદ કુંવરજી હા. શેઠ ન્યાલચંદ દહેરચંદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ જગનલાલ હેમચંદ વસા હા. મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુબઈ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	મોરળી	૧૯૬૩
૧૨	મહેતા સોમચંદ તુલસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ મણીગૌરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા દલપતરામભાઈ	„	૧૦૦૨
૧૫	બગડીઆ જગજીવેનદાસ રતનશી	જામનગર	૧૦૦૨

१६	शेठ आत्माराम भावेकरवाले	जमदावाड	१००१
१७	शेठ भावेकरवाले बाबाळभाई	पोरणडर	१००१
१८	श्रीमान अक्षयि कलभेवा ( रेल्वे मॅनेजर साहेब ) कलकत्ता		१००१
१९	भेवा सोमबाई नेवृत्तीभाई ( कराचीवाला )	भोरणी	१००१
२	शाह करीवाले अनोपबंदभाई	जवाले	१००१
२१	कादरी छत्रीबाईस करणबंदभाई	मुण्ड	१०००
२२	कादरी रजीवदास करणबंदभाई	सिंदोर	१०००

सहायक मेम्बरो-४६

( कोलमा कोळी इ. ५०० नी रकम व्यापनार )

१	शाह रजलभाई मोहनबाई	जमदावाड	७५१
२	भाई केशवबाई करीअक	जामरमटी	७५०
३	श्री स्थानकरवासी जैन सब		
	का शेठ लुवाभाई वलसीभाई	बडवाणु साहेर	७५०
४	शेठ नरैत्तमदास कोषकभाई	नेसवरनगर	७००
५	शेठ रतनशी छीरलभाई का जेकरभनदासभाई	जमनेधपुर	५५५
६	भाटवीभा वीरभर प्रभाणुड का जमीरबंदभाई	भाणीवणीया	५२७
७	भोरणीवाला सबवी देवबंद नेवृत्तीभाई तथा		
	तेमना धर्मपति ज. सौ. मणीभाई तरुधी		
	का मुणबंद देवबंद ( कराचीवाला )	महाड	५११
८	वोरा मणीबाई पापटवाले	जमदावाड	५०२
९	मोसणीवा करीबाई बालसड तथा		
	ज. सौ. ज. पामिन मोसणीवा	जमदावाड	५०२
१०	शेठ प्रेमबाई भावेकरबंद तथा ज. सौ. समस्तभिन		
	( राजसीतापुरवाणा )	जमदावाड	५२
११	शेठ धरबाई पुर्योतमदास	जमदावाड	५०१
१२	शेठ वडुवाले छमनबाई	जमदावाड	५१
१३	शाह शान्तीबाई भावेकरवाले	जमदावाड	५०१
१४	शेठ शीवबाई इमरभाई ( कराचीवाला )	सीवडी	५०१
१५	कामदार ताराबंद पापटवाले पिसलपाणा	राजकोट	५००
१६	भेवा मोहनबाई कपुरबंद	राजकोट	५०
१७	शेठ मोनीबंद पापटभाई	राजकोट	५०
१८	शेठ रामलभाई शामल बीसवी	राजकोट	५०१

૧૯	સ્વ. પિતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે		
	હા. વેણીચંદ શાન્તીલાલ ( જાણુઆવાળા )	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ઠાકરશી કરસનજી થાનગઠ		૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઝોરંગાબાદ	૫૦૦
૨૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ઝોરંગાબાદ	૫૦૦
	૧૫૦ શેઠ શેષમજી જીવરાજજી		
	૧૨૫ „ અનરાજજી લાલચંદજી		
	૧૨૫ ધુકડચંદજી રૂપચંદજી		
	૧૦૦ ઠંગડુમલજી ચાદમલજી		
	૫૦૦		
૨૩	મહેતા મૂળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઈ દ્રાક્ષા		૫૦૦
૨૪	શેઠ હરખચંદ પુરૂષોત્તમ હા. ઇન્દુકુમારભાઈ	ચોરવાડ	૫૦૧
૨૫	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી ગુગલીયા	રાણાવાસ	૫૦૧
૨૬	સ્થા. જૈનસંઘ હા. બાટવીયા અમીચંદ ગીરધરભાઈ આખીજાળીઆ		૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમજીભાઈ બાવાભાઈ		
	હા. કુલચંદભાઈ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ મુખઈ		૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. મુળજીભાઈ મણીલાલ મુખઈ		૫૦૧
૨૯	સ્વ. કાન્તીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ મુખઈ		૫૦૧
૩૦	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી ( જેતપુરવાળા )	મુખઈ	૫૦૧
૩૧	શાહ જયતીલાલ અમૃતલાલ	શીવ	૫૦૧
૩૨	વોરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ	શીવ	૫૦૧
૩૩	શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઈ	ખારડોઠ	૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી બેન ધીરજીકુવર સુનીલાલ મહેતા	ભાણુવડ	૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ.	દ્રાક્ષા	૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ	રાજકોટ	૫૦૧

\*

### ૩૧૬ મેમ્બરોનું ગામવાર લીસ્ટ

#### અમદાવાદ તથા પરાંઓ

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હસ્તે કૃષ્ણીચંદભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીલોપનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	૧

1	श्रीक प्रेमचंद साठस्य ६	२५०
७	शाकं रतीलाळ बायीलाळ	२५१
८	श्रीक लावणार्थ मजणदास	२५१
६	स्व. ज्योतिबाळ वर्धमानदा स्मरणार्थें कस्तो कान्तिबाळ ज्योतिबाळ देसाई	२५१
१०	बाबसाहेब ज्योतिबाळ जमनादास (बाटववाजा)	२५१
११	शाकं नटवराळ जडुलाळ	२५१
१२	शाकं नरसिंहदास त्रीशोपनदास	२५१
१३	श्री शाकपुर इरीवापुरी जाडोटी स्वा. जैन उपासक डा. वसुदेवदासी श्रीक धर्मरावाळ पुत्रोत्तमदास	२५१
१४	श्री श्रीपापेण इरीवापुरी जाडोटी स्वा. जैनसद डा. जडुलाळ ज्योतिबाळ	२५१
१५	शाकं श्रीनुबाई ज्योतिबाळ C/o शाकं ज्योतिबाळ मंडासुजराज	२५१
१६	शाकं ज्योतिबाळ उज्ज्वली	२५१
१७	श्री सुभावाळ डी. श्रीक डा. डी. क. सुसंस्कृतीकेन श्रीक	२५१
१८	श्रीसौराष्ट्र स्वा. जैनसद डा. शाकं कान्तिबाळ लक्ष्मणदाळ	२५१
१६	श्रीती नाथावाळ मंडादेवदास	२५१
२०	शाकं मीकनबाळ त्रीकभदास	२५१
२१	श्री छोटोटी स्वा. जैनसद डा. शाकं पोवालाळ पीताम्नसदास	२५१
२२	श्रीक पीपटलाळ कं सशान्ता स्मरणार्थें डा. श्रीक ज्योतिबाळ पीपटलाळ	२५१
२३	देसाई ज्योतिबाळ वर्धमान ज्योतिबाळरावाणा डा. ज्योतिबाळ ज्योतिबाळ देसाई	२५१
२४	शाकं नवनीतबाळ ज्योतिबाळराज	२५१
२५	शाकं मणीबाळ आशासक	२५१
२६	शाकं श्रीनुबाई साठस्य ६	२५१
२७	शाकं वरलक्ष्मणदास उमेश्वर ६	२५१
२८	शाकं ज्योतिबाळ-व कस्तुरीस्व ६	२५१
२६	सुधनी लक्ष्मणदाळ ज्योतिबाळ (स्वा. जैन)	२५१
३०	शाकं ज्योतिबाळ मीकनबाळ पोवादासदास	२५१
३१	ज. सी. जिन स्वतंत्रार्थ नादेवा डा. शाकं पुवाळ ज्योतिबाळ	२५१
३२	शाकं हरिबाळ जेडाबाळ साठस्य ६	२५१
३३	श्री सरसपुर इरीवापुरी जाडोटी स्वा. जैन उपासक डा. बाबसाहेब ज्योतिबाळ ज्योतिबाळ	२५१
३४	श्रीक पुजराज लक्ष्मणराज साठस्य ६	२५१
३५	श्रीक दावण्ड भीमीलाळ	२५१





## ગુંદા

- ૧ સ્વ. મહેતા પુનમચંદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે  
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

## ગોંડલ

- ૧ સ્વ. ખાખડ વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ કમળબાઈ તરફથી  
હા. માણિકચ દલાઈ તથા કપુરચ દલાઈ ૨૫૧
- ૨ પીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ અ. મૌ  
લીલાવતી સાકરચંદ કોઠારીના ખીબ વરસીતપની ખુશાલીમા ૩૦૧
- ૩ કામદાર જીઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા. હરીલાલ જીઠાભાઈ ૩૦૧

## ગોધરા

- ૧ શાહ ત્રીલોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

## ઘટકેણુ

- ૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

## ઘોલવાડ (થાણા)

- ૧ મહેતા ગુલાબચંદ ગંભીરમલજી ૩૦૦

## ચુડા (બાલાવાડ)

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હ. રતીલાલ ગાધી પ્રમુખ ૨૫૧

## જલેસર (ખાલાસોર)

- ૧ સંઘવી નાનચંદ પોપટભાઈ યાનગઢવાળા ૨૫૧

## ભમજેધપુર

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ ૩૮૭

- ૨ શાહ ત્રીલોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧

## ભમનગર

- ૧ શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧

- ૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી ૨૫૧

- ૩ વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ ૨૫૧

## ભમખંભાળીઆ

- ૧ શેઠ વસનજી નારજી ૨૫૧

- ૨ શ્રી સ્થા. જૈન. સંઘ હા. મહેતા રણજીદાસ પરમાજી ૨૫૧

- ૩ સંઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ ૨૫૧

सुनामदं

शाक भण्डीवाल भीमनाथ ङा. कुरीवालनाथ (ढाटीना भाणीभावाणा) २५१

सुनारहेव ( मध्यप्रांत )

बेबाषी त्रीकमल बाबाबाध २५१

केतपुर

शेठ अमृतवाल हीरलनाथ ङा. नरसेरामनाथ (कत्यापुरवाणा) २५१

रोप्री छेटावाल वनेवङ २५१

डेपारी डाडरकुमार वेणीवाल २५१

केतलसर

शाक लक्ष्मीवङ कपुरवङ २५१

कमठार लीलाधर लवराजना स्मरबाणै तेमना धर्मपति कजकजिन  
वरक्षी ङा. सान्तीवालनाथ केठिलवाणा २५१

कवास

स्व. पुरभीजा लडेस्वङ मासेकुम्भना स्मरबाणै तेमना धर्मपति  
लवतीनाथ वरक्षी ङा. कवतीनाथ २५१

डेझिधिया

श्री स्वा. जैन सब ङा. शेठ म पावाल भारवे २५०

मानजद

शाक मकरशीनाथ करसनल २५१

शेठ जेठवाल त्रीसोवनवास २५१

शाक धारशी पाणवीर ङा. मुजलवालनाथ २५१

दंडाणू शेठ ( बाणा )

शाक डेरलजनवास जोवाक जंधार ( करंवीवाणा ) २५१

दिल्ली

वाला पूज्जीवङ जैन (सिन्दूर विडवाणा) ३५१

धार ( मध्यप्रांत )

शेठ साजरमलल पनावालल २५१



## ધાંગધા

૧	શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ હા. શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સંઘવી નારણદાસ વખતચંદ	૩૦૧
૩	ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

## ઘોરાણ

૧	મહેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	૩૫૧
૨	સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈ સ્મરણાર્થે હા પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી	૨૫૧
૩	ચ. સૌ. ખચીબેન ખાણુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર ચોઈલ મીલ પ્રા. લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ. રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ રાયચંદ	૩૦૧
૬	ગાધી પોપટલાલ જેચંદ	૨૫૦

## ધંધુકા

૧	ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. વોરા પોપટલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રબુજ વાઘજીભાઈ	૨૫૧

## નંદુરખાર

૧	શ્રી સ્થાનવાસી જૈન સઘ હા. શેઠ ત્રેમચંદ ભગવાનલાલ	૨૫૦
---	---	-----

## પાણુસાણા

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	૨૫૧
---	-------------------------	-----

## પાલણપુર

૧	લક્ષ્મીબેન હા મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગમ્થ સ્થા. જૈન પુસ્તકાલય	૨૫૧

## પાલેજ

૧	સ્વ. મનસુખલાલ મોહનલાલ સઘવીના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧
---	---	-----

## ખરવાળા (ઘેલાશા)

૧	સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે હા. તેમના ધર્મપત્નિ સુરજબેન ચોરારજી	૨૫૧
---	---	-----

जजसरा (बाबाजी)

- १ स्व. पूरव मातुजी कठलजाफना स्मरव्यार्थ  
 क. देवार्थ मज्जात काणीदास २५१
- २ शैक पोचटवाव रावणल रावडीवाणा क. शैक मानस व प्रेमवद  
 जेराव (कभ)

- १ शैक वांगल केरावल (मानव सर माटे) २५१  
 जेटाद

- १ स्व. वसाजी वरजोनी वडास छवनवावना स्मरव्यार्थ  
 क. तेमना धर्मपति छललजिन २५१
- २ श्री स्थानवासी जैनस व (२५० जाडी) २५१

जेटेडी

- १ शाक प्रवीणवद नरसिंहवद (सावुडवाणा) २५१
- २ शाक जीरधरवाव साकरवद २५१

बाणुवद

- १ शैक जेवडवार्थ भावुकवद ३०१
- २ सवणी भावुकवद भाधवल २५१
- ३ शैक वावलवार्थ भावुकवद (दावपुरवाणा) २५१
- ४ शैक रामल लवावार्थ २५१
- ५ शैक परमशी वीमल हेडरीजा २५१
- ६ हेडरीजा बादावाव कानलवार्थ क. ज. सो. गांताजिन वसनल २५१

भद्रास

- १ शैक मेघरावल देवीवडल २५१

भनेर (बाबा)

- १ शाक शेरमलल देवीवडल कसवतजववणा  
 क. पूनभवडल शेरमलल जाल्या २५१  
 मानकुवा (कभ)

- १ स्व. भडेता कुवरल नाधावावना स्मरव्यार्थ  
 क. तेमना धर्मपति कुवरवार्थ वरजवद  
 (मानकुवा स्थानवासी जैनस व माटे) २५१

## ધાંગધા

૧	શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ હા શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સંઘવી નારણદાસ વખતચંદ	૩૦૧
૩	ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

## ધોરાજી

૧	મહેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	૩૫૧
૨	સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈ સ્મરણાર્થે હા. પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી	૨૫૧
૩	અ સૌ. ખચીબેન ખાણુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર ઓઈલ મીલ પ્રા. લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ. રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ રાયચંદ	૩૦૧
૬	ગાંધી પોપટલાલ જેચંદ	૨૫૦

## ધંધુકા

૧	ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. વોરા પોપટલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રબુજ વાઘજીભાઈ	૨૫૧

## નંદુરબાર

૧	શ્રી સ્થાનવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ	૨૫૦
---	--	-----

## પાણુસાણા

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	૨૫૧
---	-------------------------	-----

## પાલણુપુર

૧	લક્ષ્મીબેન હા. મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા જૈન પુસ્તકાલય	૨૫૧

## પાલેજ

૧	સ્વ. મનસુખલાલ મોહનલાલ સંઘવીના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧
---	--	-----

## બરવાળા (ઘેલાશા)

૧	સ્વ. મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે હા. તેમના ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી	૨૫૧
---	--	-----

૧૬	સ્વ. કાનલ મૂળાના સ્મરણાર્થે તથા માતૃશ્રી દિવાળીબાઈના ૧૬ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા. જ્ઞાતીલાલ કાનલ કાળાવડવાળા (મલાક)	૨૫૧
૧૭	ચૈક છુચાલબાઈ જેઠાસાઈ	૨૫૦
૨૮	ચાહ પ્રેમલ માલશી જાગર (મલાક)	૨૫૧
૨૯	સ્વ. પિતાશ્રી પતુભાઈ મોનાબાઈના સ્મરણાર્થે હા. કાનલ પતુભાઈ	૨૫૧
૩૦	ચાહ વેલલ જેશી જભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમનાં મનોપતિ જી. સો. સ્વ. નાનબાઈના સ્મરણાર્થે	૩૦૧
૩૧	સ્વ. પિતાશ્રી રામશી વેલલના સ્મરણાર્થે હા. ચાહ કામલ રામશી (મલાક)	૩૦૧
૩૨	ચૈક ત્રણકલાલ કસ્તુરજી લીજલીવાળા તરફથી શ્રી જ્ઞાનમર શાસ્ત્ર લાલાર લીલડી માટે (આદુ જા)	૨૫૧
૩૩	સ્વ. પિતાશ્રી શીમશી કોરશી તથા માતૃશ્રી પાલાબાઈના સ્મરણાર્થે હા. ચાહ જ્ઞાનશીભાઈ શીમશીભાઈ કમ્બવતરીવાળા (મલાક)	૩૦૧
૩૪	ચૈક મુનીલાલ નરસેસમ વેકરીવાળા	૨૫૧
૩૫	ચાહ વૃજાજભાઈ શીવલ (મલાક)	૨૫૧
૩૬	સ્ત્રીલાલ ભાઈજી મહેતા	૨૫૧
૩૭	ચાહ શીમલ મૂળા પૂજ (મલાક)	૨૫૧
૩૮	મીસર્સ સવાણી ડ્રાન્સપાઈ કંપની હા. ચૈક માણેકલાલ વાઢીલાલ	૨૫૧
૩૯	ચેલાણી વલલલ નરસેરામ હા. નરશીભાઈ વલલલ	૨૫૧
૪૦	જી. સો. સમતાબેન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ જ્ઞાનશી ચાહ (મલાક)	૨૫૧
૪૧	ચેલાણી કુનેશ્વર પાનાચંદ	૨૫૧
૪૨	કપાશી મીકનલાલ શીવલાલ	૨૫૧
૪૩	સ્વ. પિતાશ્રી કેશવલાલ વજરાજ કેઠારીના સ્મરણાર્થે મુસ્લબેન તરફથી હા. લખમલાલભાઈ (મલાક)	૨૫૧
૪૪	હીચા જમુવલાલ મોલીચંદ (વાટકોપર)	૨૫૧
૪૫	ચૈક સચારમલલ રેવીચંદલ કાવેડીયા (સાહડીવાળા)	૨૫૧
૪૬	રાશી જનજીવ મુદરલ (વાટકોપર)	૨૫૧
૪૭	રાશી જીનલકીશોર જનજીવ (વાટકોપર)	૨૫૧
૪૮	રાશી પ્રવીણજી જનજીવ (વાટકોપર)	૨૫૧
૪૯	ચાહ ત્રીલોચનદાસ માનસિંજ રોડીવાળાના સ્મરણાર્થે હા. ચાહ હરખચંદ ત્રીલોચનદાસ	૨૫૧
૫૦	ચાહ ડેસલાલ હમરશી પ્રાંજીબવાળા હા. ચાહ વાઢીલાલ જેઠાલાલ	૨૫૦
૫૧	ચાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ	૨૫૧

મુંબઈ તથા પરાંઓ

૧	શેઠ છગનલાલ નાનજીભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ હરજીવન કેશવજી	૨૫૧
૩	ઘેલાણી પ્રભુલાલ ત્રીકમજી ( બોરીવલી )	૨૫૨
૪	શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાલા	૨૫૧
૫	શ્રીવર્ધમાન સ્થા. જૈનસઘ હા કેસરીમલજી અનોપચ દજી ગુગળીયા(મલાડ)	૨૫૧
૬	શેઠ ડુંગરશી હ સરાજ વીસરીયા	૨૫૧
૭	શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ. સૌ કાન્તાબેન રમણીકલાલ	૨૫૧
૮	શાહ હિંમતલાલ હરજીવનદાસ	૨૫૧
૯	શાહ રતનશી મોણુશીની કુપની	૨૫૧
૧૦	શાહ શીવજી માણુક કચ્છ (બેરાબવાળા)	૨૫૧
૧૧	વોરા પાનાચ દ સઘજીના સ્મરણાર્થે હા ત્રખકલાલ પાનાચ દ વોરા બ્રધર્સે	૨૫૧
૧૨	સ્વ પૂ પિતાશ્રી વીરચ દ જેસીગભાઈ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે હા. કેશવલાલ વીરચ દ શેઠ	૨૫૧
૧૩	શાહ કુવરજી હ સરાજ	૨૫૧
૧૪	સ્વ માતુશ્રી માણુકબેનના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ વલ્લભદાસ નાનજી ( પોરબ દરવાળા )	૩૦૧
૧૫	શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પૂનમીયા સાદહીવાળા	૨૫૧
૧૬	એક સદ્ગૃહસ્થ હા શેઠ સુદરલાલ માણુકચ દ	૨૫૧
૧૭	અ સૌ. પાનબાઈ હા શેઠ પદમશી નરસિંહભાઈ ( મલાડ )	૨૫૧
૧૮	શ્રી અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા દલીચ દ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૯	સ્વ શાહ નાગશી સેજપાળ ગુદાળાવાળાના સ્મરણાર્થે હા રામજી નાગશી (મલાડ)	૩૦૧
૨૦	શાહ રામજી કરશનજી થાનગઢવાળા	૨૫૧
૨૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	૨૫૧
૨૨	શીવલાલ ગુલાબચ દ શેઠ મેવાવાળા	૨૫૧
૨૩	સ્વ. જટાશ કર દેવજી દોશીના સ્મરણાર્થે હા રણુછોડદાસ (બાબુલાલ) જટાશ કર દોશી	૩૦૧
૨૪	સ્વ ગોડા વણારશી ત્રીલોવન સરસઈવાળાના સ્મરણાર્થે હા જગજીવન વણારશી ગોડા ( મલાડ )	૨૫૧
૨૫	સ્વ ત્રીલોવનદાસ વજપાળ વીંછીયાવાળાના સ્મરણાર્થે હા. હરગોવિંદદાસ ત્રીલોવનદાસ સજમેરા	૨૫૧

મહિલી (૬૫૭)

૧ શ્રી સ્વા ૭ કોટી કેન શ્રવ હા. મહેતા સુનીલાલ વેલ્લ ૨૭૭

એસાણા

૧ શાહ પદમશી મુસ્લ હના સમરણાઈ હા. શીવલાલ પદમશી વીરમગામવાળા ૨૫૧

ગોસ્વામી

૧ શાહ કેવરાજ પેલણ ૨૫૦

૨ શ્રીકૃત નાથલાલ ડી. મહેતા ૨૫૧

ગાદગીરી

૧ શેઠ જાદમલ સૂરજમલ જી. જી. ૨૫૦

રાણપુર (બાલાવાડ)

૧ શ્રીમતી માતૃશ્રી જસૂતબાઈના સમરણાઈ હા. ડો. નરૈત્તમદાસ સુનીલાલ ૨૫૧

રાણાવાસ (માસ્વાડ)

૧ શેઠ જ્વાનમલ નેમીચંદ હા. બાબુરીબજલ ૩૦૧

રાજકોટ

૧ ખી વાલીલાલ ડાઈજી બેન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્કસ ૪૦૦

૨ શેઠ સ્ત્રીલાલ ન્યાલચંદ ૨૫૧

૩ બાબુ પરશુરામ હાનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા) ૨૫૦

૪ શેઠ મનુભાઈ મુળચંદ (બેન્કનીબર સાહેબ) ૨૫૧

૫ શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમચંદ તેમનાં ખર્મપતિના વરસીતપ પ્રસાદી ૨૫૧

૬ ઉદાણી ન્યાલચંદ હાકેમચંદ વડોલ ૨૫૧

૭ શેઠ પ્રભારામ વીઠ્ઠલ ૨૫૧

૮ શેઠ હરમીચંદ ટીપચંદ (બિંદલવાળા) સ્ટેશનમાસ્તર ૨૫૧

૯ બેન મુર્મબાળા નૌતમલાલ જસાણી (વરસીતપની સુયાલી) ૨૫૧

૧૦ મોટી સૌભાગ્યચંદ મોટીચંદ ૨૫૧

૧૧ જાણી બીમલ વેલ્લ તરૂચી તેમનાં ખર્મપતિ ૨૫૧

જી. સૌ સમસ્તબેનના વરસીતપની સુયાલી ૨૫૧

૧૨ દોશી મોટીચંદ ખારશીભાઈ (રીડાચંદ) બેન્કનીબર સાહેબ ૨૫૧

૧૩ કામદાર વડુલાલ હવણ ૨૫૦

૧૪ હેમણી ધેલુભાઈ સવચંદ ૨૫૧

૫૨ સ્વ. પિતાશ્રી શામળજી કલ્યાણજી ગોડલવાળાના સ્મરણાર્થે	
તેમના પુત્રો તરકુથી હા. વૃજલાલ શામળજી ખાવીશી	૩૦૧
૫૩ શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા	૨૫૧
૫૪ સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચદ જસાણીના સ્મરણાર્થે	
હા. લક્ષ્મીચદ તથા કેશવલાલભાઈ	૩૦૧
૫૫ સ્વ. પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે	
હા. દેવશી હ સરાજ કચ્છ ખીડાલાવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૫૬ સ્વ માતૃશ્રી ગોમતીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ પોપટલાલ પાનાચદ	૨૫૧
૫૭ શેઠ નેમચદ સ્વરૂપચદ ખલાતવાળા હા ભાઈ જેઠલાલ નેમચદ	૨૫૧
૫૮ સ્વ પિતાશ્રી શાહ અખાલાલ પરસોતમ પાણુશણ્યાવાળાના	
સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરકુથી હા. ખાપાલાલભાઈ	૨૫૧
૫૯ બેન કેસરબાઈ ચંદુલાલ જેસીગલાલ શાહ	૨૫૧
૬૦ દડીયા જેસીગલાલ ત્રીકમજી	૨૫૧
૬૧ શાહ કાન્તીલાલ મગનલાલ (ઘાટકૈાપર)	૨૫૧
૬૨ કોઠારી સુખલાલજી પૂનમચદજી (ખાર)	૨૫૧
૬૩ સ્વ માતૃશ્રી કડવી બાઈના સ્મરણાર્થે હા. તેમના પૌત્ર	
હુકમીચદ તારાચદ દોશી (કાઠીવલી)	૨૫૧
૬૪ શેઠ સારાભાઈ ચીમનલાલ	૨૫૧
૬૫ શાહ કૌરશીભાઈ હીમજીભાઈ	૩૦૧
૬૬ પિતાશ્રી કુદનમલજી મોતીલાલજીના સ્મરણાર્થે	
હા. મોતીલાલ જીખરમલ (અહમદનગરવાળા)	૨૫૧
૬૭ શ્રી વર્ધમાન શ્વેતામ્બર સ્થા જૈનસંઘ	
હા. શેઠ રૂપચદ શીવલાલ કામદાર (અધેરી)	૨૫૧
૬૮ અ. સૌ કમળાબેન કામદાર હા રૂપચદ શીવલાલ (અધેરી)	૨૫૧
૬૯ ધી મરીના મોડન હાઈસ્કુલ ટ્રસ્ટ ફંડ હા શાહ મણીલાલ ઠાકરસી	૨૫૧
૭૦ સ્વ માતૃશ્રી જીવીબાઈના સ્મરણાર્થે	
હા શામજી શીવજી કચ્છ ગુદાળાવાળા (ગોરેગાવ)	૨૫૧
૭૧ શાહ સ્વજીભાઈ તથા ભાઈલાલભાઈની ક પની (કાંડીવલી)	૨૫૧
૭૨ અ સૌ લાણુ બેન હા સ્વજી શામજી (કાઠીવલી)	૨૫૧
૭૩ અ સૌ. બેન કુદનગૌરી મનહરલાલ સઘવી (ખારરોડ)	૨૫૧
૭૪ શાહ કરશનભાઈ લઘુભાઈ (દાદર)	૩૦૧
૭૫ અ. સૌ. રજનગૌરી ચંદુલાલ શાહ C/O ચંદુલાલ લક્ષ્મીચદ (માઠુ ગા)	૨૫૧
૭૬ મહેતા મોટર સ્ટોર્સ હા. અનોપચદ ડી. મહેતા (સુખઈ)	૨૫૧

भारिणी (४२७)

१ श्री. रमा ७ डोटी केन सत्र ७७ भडेवा मुनीलाल वेवळ २७७  
भेसाण्णा

१ शाह पडमशी सुरव इना स्मरणार्थी ७७. श्रीमलाल पडमशी वीरभजामबाणा २५१  
भोम्भासा

१ शाह देवराज पेशवा २५०  
२ श्रीसुत नावालाल श्री. भडेवा २५१

बाहजीरी

१ शैल जाहमलल सुरवमलल के ४४  
राण्णपुर (खलावाह)

१ श्रीमती मातुश्री अभूतजाहिना स्मरणार्थी ७७. शे. नरीसमदास मुनीलाल २५१  
राण्णावास (भारवाह)

१ शैल ज्ञानमलल नेमीवडल ७७. जालुरीजभव ७७ ३०१  
राजकोट

- १ भी वादीलाल सर्मि के ६ प्रिन्टीम वडके ४००
- २ शैल रवीलाल न्यासवड २५१
- ३ जालु परशुराम छजनलाल शैल (उडेपुरवाणा) २५०
- ४ शैल भद्रुभाई मुणवड (मिन्लनीवर साडेज) २५१
- ५ शैल शान्तीलाल प्रभवड तेमनां धर्मपतिना वरसीतप प्रसवे २५१
- ६ उद्याणी न्यासवड डाडेभवड वडील २५१
- ७ शैल प्रभाराम वीडुलल २५१
- ८ शैल उडेभिवड श्रीपवड (विंढलवाणा) श्देशनभास्तर २५१
- ९ ज्हेन सुर्वजाणा नीतमलाल ज्जाणी (वरसीतपनी पुसाडी) २५१
- १० मोदी सौलाजवड मोदीवड २५१
- ११ ज्जाणी भीमल वेवळ तरुणी तेमनां धर्मपति  
ज्. श्री. समस्तमेनना वरसीतपनी पुसाडी २५१
- १२ दोशी मोदीवड धारशीभाई (रीटावड) मिन्लनीवर साडेज २५१
- १३ कामदार यडुलाल लवराज २५०
- १४ ज्जेभाणी वेडुभाई सववड २५१



## રંગુન

- ૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. કમળાબેન ૨૫૧
- લખતર**
- ૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ. શાન્તિલાલ રાયચંદ ૨૫૧
- ૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે  
હા ભાઈ ત્રીલોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧
- ૩ શાહ તલકશી હીરાચ દના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧
- ૪ શાહ ચુનીલાલ માણીકચંદ ૨૫૧
- ૫ શાહ બદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા ભાઈ શાન્તીલાલ બદવજી ૨૫૧
- ૬ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ સમરતબેન  
મજલાલ તરફથી હા જય તીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

## લાલપુર

- ૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા મગનલાલભાઈ ૨૫૧
- ૨ શેઠ મૂળચંદ પોપટલાલ હા મણીલાલભાઈ તથા જેસીગલાલભાઈ ૨૫૧

## લાખેરી (રાજસ્થાન)

- ૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા મહેતા અમૃતલાલ જેઠલાલ  
(સીવીલ એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

## લીમડી (પંચમહાલ)

- ૧ શાહ કુવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧
- ૨ છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ ૨૫૧

## લોનાવલા

- ૧ શેઠ ઘનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧

## વઢવાણુ શહેર

- ૧ શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા સવાઈલાલ ત્રબકલાલ શાહ ૨૫૧
- ૨ શાહ મગનલાલ ગોઠજીદાસ હા રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧
- ૩ સુઘવી મૂળચંદ બેચરભાઈ હા જીવણુલાલ ગફલદાસ ૨૫૧
- ૪ શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ ૨૫૧
- ૫ શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧

६	वोरा अत्रसुख भजनताल	२५१
७	सबनी शीवताल श्रीमल्लार्थ	२५१
८	शाक दोबरी दोपकरण	२५१
९	वोरा डोसावार्थ लाबबइस्था केन सव डा. वोरा नानबइ शीवताल	२५१
१०	वोरा धनल्लार्थ लाबबइस्था केन सव डा. वोरा मानाबइ योअरडाब	२५१
११	दोशी वीरबइ सुखबइ डा. दोशी नानबइ उरभरी	२५१
१२	स्व. वोरा मणीवाब भजनताल डा. वोरा अत्रसुख भजनताल	२५१

वटाभण्ड

१	श्री वटाभण्ड स्था. केन सव डा. श्री यल्लार्थ कल्लार्थ पटेल	२५१
---	---	-----

बलसाई

१	शाक श्रीभवइ मूलल्लार्थ	२५१
---	------------------------	-----

बण्डी

१	भेट्या नानाताल छजनवाडनां धर्मपति स्व. बळजकेन तवा पुरीजिनता रमरुवाडें डा. लार्थ मनकरवाब नानाताल	२५१
---	--	-----

बडोडरा

१	डामदार देशवताल दिभतराम प्रेडिसर साडेन (वेडिलवाजा)	२५१
२	बडीब मणीताल देशवताल शाक	२५१
३	स्व. पिताश्री शाक इडीरबइ पुनलाधना रमरुवाडें डा. शाक रमणुवाल इडीरबइ	२५१

बडीया

१	पजमीया लवानलार्थ हाणावार्थ (नेतपुरवाजा)	२५१
---	---	-----

बांझनेर

१	भास्तर बांन्वीताल बळकवाब पंढेरीया	२५१
२	शी स्था. केन सव (इ. २५० जाडी)	२५१
३	ध्वतरी मुनीवाल पीपटलार्थ गोरणीवाजः डा. प्राणुवाल मुनीवाल	२५१

वींछीया

१	श्री. स्था. केन सव डा. बळमीरा शिवबइ लळवाज	२५१
---	---	-----

## વીરમગામ

- ૧ શાહ વાડીલાલ નેમચદ વકીલ ૨૫૦
- ૨ શાહ વિઠ્ઠલભાઈ મોદી માસ્તર ૨૫૧
- ૩ શાહ નાગરદાસ માર્જુકચદ ૨૫૧
- ૪ શાહ મણીલાલ જીવણલાલ (શાહપુરવાળા) ૨૫૧
- ૫ શાહ અમુખલ (અચુભાઈ) નાગરદાસના ધર્મપત્નિ અ. સૌ બેન લીલા-  
વતીના વરસીતપના પારણાની ખુશાલીમા હા ભાઈ કાન્તીલાલ નાગરદામ ૩૦૦
- ૬ સ્વ શેઠ ઉજ્જમશી નાનચદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરકુથી  
હા શેઠ ચુનીલાલ નાનચદ ૨૫૧
- ૭ સ્વ મણીલાલ લક્ષ્મીચદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરકુથી  
હા ખીમચદભાઈ ( ખારાઘોડાવાળા ) ૨૫૧
- ૮ સ્વ શેઠ હરીલાલ પ્રજ્ઞદાસના સ્મરણાર્થે હા શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ ૨૫૧
- ૯ સઘવી જ્યેષ્ઠભાઈ નારણદાસ ૨૫૧
- ૧૦ સ્વ શાહવેલશીભાઈ સાકરચદભાઈના સ્મરણાર્થે  
હા ચીમનલાલ વેલશી (કત્રાસવાળા) ૨૫૧
- ૧૧ પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરકુથી (મોટીબેનના સ્મરણાર્થે) ૨૫૧
- ૧૨ શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપુત્ર વાડીલાલભાઈના ધર્મપત્નિ અ. સૌ.  
નારગીબેનના વરસીતપ નીમિત્તે હા શાન્તીભાઈ ૨૫૧
- ૧૩ સ્વ છળીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ  
કમળાબેન તરકુથી હા મણુલાકુમારી ૨૫૧
- ૧૪ શ્રી સ્થા જૈન શ્રાવિકાસંઘ હા પ્રમુખ અ. સૌ રબાબેન વાડીલાલ ૨૫૧
- ૧૫ સ્વ ત્રીલોવનદાસ દેવચદ તથા સ્વ અ. સૌ ચચળબેનના  
સ્મરણાર્થે હા ડૉક્ટર હિંમતલાલ સુખલાલ ૨૫૧
- ૧૬ શાહ મૂળચદ કાનજીભાઈ તરકુથી હા શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઈ ૨૫૧
- ૧૭ શેઠ મોહનલાલ પીતામહદાસ હા. ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલ ૨૫૧
- ૧૮ શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઈના વરસીતપ નીમિત્તે  
હા નથુભાઈ નાનચદ શાહ ૩૦૧
- ૧૯ સ્વ મણીયાર પરસોત્તમ સુદરજીના સ્મરણાર્થે  
હા શેઠ સાકરચદ પરસોત્તમદાસ ૨૫૧
- ૨૦ શેઠ મણીલાલ શીવલાલ ૨૫૧

## વેરાવળ

- ૧ શાહ કેશવલાલ જ્યેષ્ઠભાઈ ૨૫૧
- ૨ શાહ ખીમચદ સૌભાગ્યચદ વસનજી ૨૫૧

ଅଭିନୀତ

- ୧ ଶ୍ରୀ. ମହନଶାସତ୍ର କୁନ୍ଦନଶାସତ୍ର ଡୋଢ଼ାଶିଳା ଶମ୍ଭୁଦାସ  
 ଡା. ତେଜନୀ ଧର୍ମଧରାଣି ରାଜକୁମାରଦାସ ମହନଶାସତ୍ର ୧୫୧

ଆଶ୍ରମିନୀ (୩୩୩)

- ୧ ଡୋଢ଼ାଶିଳା କୁନ୍ଦନଶାସତ୍ର ମୋହନଦାସ ୧୫୦

ଆଶ୍ରମ

- ୧ ଶ୍ରୀ. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଡା. ଶ୍ରୀ. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ୩୦୧  
 ୨ ଶ୍ରୀ. ଶ୍ରୀ. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଡା. ଡୋଢ଼ାଶିଳା ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ୧୫୧  
 ୩ ପଟ୍ଟେଇ ମହାନଦାସ ଡୋଢ଼ାଶିଳା ୧୫୧  
 ୪ ଶ୍ରୀ. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ୧୫୧  
 ୫ ପୁରୀଜିନ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ସବଣୀ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ  
 ଡା. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ମହାନଦାସ ଡୋଢ଼ାଶିଳା ୧୫୧  
 ୬ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ମୋହନଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ  
 ଡା. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ୧୫୧  
 ୭ ସବଣୀ ନାରଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଡା. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ନାରଦାସ ୧୫୧

ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣ

- ୧ ଶ୍ରୀ. ଶ୍ରୀ. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଡା. ଶ୍ରୀ. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ୧୫୧

ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣ (୩୩୩)

- ୧ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ  
 ମହାନଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ୧୫୧

ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣ ଦ୍ରବ୍ୟ

- ୧ ଶ୍ରୀ. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ୧୫୧  
 ୨ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ୧୫୧  
 ୩ ଶ୍ରୀ. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ  
 ଡା. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ (ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ) ୧୫୧  
 ୪ ଶ୍ରୀ. ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣଦାସ ୧୫୧

સંજોષી (પંચમહાલ)

- |   |  |     |
|---|--|-----|
| ૧ | શાહ લુણાણ ગુલાબચંદ                       | ૨૫૧ |
| ૨ | શ્રી સ્થા. જૈનસઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ દલીચંદ | ૨૫૧ |

હાટીનામાળીયા

- |   |                    |     |
|---|--------------------|-----|
| ૧ | શેઠ ગોપાલણ મીઠાભાઈ | ૨૫૦ |
|---|--------------------|-----|

હારીજ

- |   |   |     |
|---|---|-----|
| ૧ | શાહ અમુલખભાઈ મૂળણ હા. પ્રકાશચંદ અમુલખ               | ૩૦૧ |
| ૨ | સ્વ બેન ચંદ્રકાન્તાનાં સ્મરણાર્યે હા. અમુલખ મૂળણભાઈ | ૩૦૧ |

હુબલી

- |   |                            |     |
|---|----------------------------|-----|
| ૧ | શેઠ હીરાચંદ વનેચંદળ કટારીઆ | ૨૫૧ |
|---|----------------------------|-----|



કુલ્લ મેમ્બરોની સંખ્યા તા. ૨૮-૨-૫૮ સુધી

૪ આઘ સુરખીશ્રીઓ	૩૧૬ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
૨૨ સુરખીશ્રીઓ	૮૩ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
૩૬ સહાયક મેમ્બરો	૪૬૧ કુલ મેમ્બરો

( બીજા વર્ગને સહતર બંધ કરવામા આવેલ છે )

રાજકોટ, તા. ૧-૩-૫૮

સાંકરચંદ ભાઈચંદ શેઠ  
મંત્રી,

શ્રી અ. ભા. ઝવે. સ્થા. જૈન શા. સ.